

कल्हण कृत

राजतरंगिणी

डॉ॰ रघुनाथ सिंह

कल्हणकृत

राजतरंगिणी

द्वितीय भाग

भाष्यकार

रघुनाथसिंह

एम० ए०, एल० एल० बी०, पी-एच० डी०

हिन्दी प्रचारक संस्थान

वाराणसी • कलकत्ता • लखनऊ

कल्हण कृत

राजतरंगिणी

(तरंग ४, ५, ६)

(आलोचनात्मक भूमिका, ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक अध्ययन
तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

डॉ० रघुनाथ सिंह
एम. ए., एल-एल. बी, पी-एच. डी., डी. लिट्.

भाग २

हिन्दी प्रचारक संस्थान
(व्यवस्था : कृष्णचन्द बेरी एण्ड सन्स)
पो० बा० नं० १०६, सी २१/३० पिशाचमोचन,
वाराणसी–१

प्रकाशक :
विजय प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो. बा. नं. १०६
सी. २१/३०, पिशाचमोचन, वाराणसी–१

प्रथम संस्करण : १९७३

मूल्य : ~~१००~~ रुपये
१५०/–

मुद्रक :
वर्द्धमान मुद्रणालय
वाराणसी–१

विषय सूची

परिशिष्ट

भूमि

कर्कोट काल से काश्मीर का इतिहास ऐतिहासिक मोड़ लेता है। गाथा काल को नमस्कार करता है। ऐतिहासिक काल में प्रवेश करता है। अन्तर्देशीय जगत् से निकलकर, अन्तार्राष्ट्रीय जगत् में प्रवेश करता है। और प्रवेश करता है, अपने मध्य गौरव काल में।

भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर तूफान उठा। मुसलिम शक्ति के उदय ने परिस्थितियों को अचानक बदल दिया। पुरानी मान्यतायें समाप्त हुईं। नवीन मान्यतायें, नवीन दर्शन, नवीन अनुशासन के साथ जन्म ली। राज्य एवं राजनीति घुल कर एक हुई। लौकिक राज्य सिसकता मर गया। देवाधिराज, अलौकिक-राज का विकराल रूप सामने आया।

विश्व इतिहास ने पृष्ठ उलटा। रक्त-रंजित भविष्य हँस उठा। काश्मीर के पूर्वीय सीमापर, भारत की उत्तरीय सीमा पर, नवोदित तिब्बत राष्ट्र ने किया दुनिया को चकित। चुनौती दिया, चीन को। चुनौती दिया भारत को। दोनों सजग हो उठे।

मुसलिम शक्ति एवं तिब्बत के उदय ने, भारत की, काश्मीर की, चीन की, रणनीति बदल दी। राजनीति बदल दी। इतिहास नें करवट लिया। काश्मीर की राजनीति, अन्तर्देशीय न होकर, हो गयी अन्तार्राष्ट्रीय। हिमालय-कुक्षि में बैठा काश्मीर, बैठ गया राष्ट्रों की सीमाओं की गोद में। बनकर, एक समस्या। उनके लिये। आजकल की तरह।

तिब्बत एवं मुसलिम शक्ति के विरुद्ध संघ बनते रहे। बिगड़ते रहे। चीन-भारत मिलता रहा। चीन-काश्मीर मिलता रहा। करने सामना। उस झंझावात का जो उत्तर से उठ रहा था। पश्चिम से उठ रहा था। शस्त्र एवं शास्त्र के साथ।

भारतीय राज्य नवीन शक्तियों के कार्य-कलाप से अनभिज्ञ थे। नवोदित शक्तियाँ जब शस्त्र एवं शास्त्र के साथ आयीं, तो भारतीय राज्य लड़खड़ा उठे। गिरे पड़े। सात शताब्दियों तक उठने की शक्ति न रही।

लेकिन सीमान्त पड़ोसी काश्मीर ने इन खतरों को समझा। सामना करने के लिये उठा। तत्पर हो गया। लोहा लिया। भारत के पराधीन होने पर भी; तीन शताब्दियों तक, करता रहा आज़ादी का भोग। संघर्षों में उतराता रहा। डूबता रहा। तथापि रहा सफल काश्मीर आज़ादी की रक्षा करने में।

गुप्त साम्राज्य गया। भारत बिखरा। मौर्य एवं गुप्त शासक सीमान्त के प्रति जागरूक थे। शत्रु का सामना घर में बैठकर नहीं, बाहर निकल कर, सीमापर, पहुँच करके करते थे। इस रणनीति के कारण विदेशियों को खदेड़ते रहे, उन्हें भारत में, जमने का अवसर न मिल सका। भारत ने सनातन रणनीति सातवीं शताब्दी पश्चात् त्याग दी। परस्पर उलझ गये। गृहयुद्धों में फँस गये। काश्मीर सीमावर्ती आसन्न

खतरा देखकर सर्वदा संघटित रहा। शक्ति बिखरने नहीं दिया। उस शक्ति के कारण, उस प्रभाव के कारण, पश्चिम-उत्तर एवं मध्येशिया में अन्तिम राज्य था, जहा विदेशी पताका फहरा सकी थी। काश्मीरियों के लिये यह कम गौरव का विषय नहीं है। प्रत्येक स्वतन्त्रता प्रेमी सेनानो का मस्तक, उन महान आत्माओं के चरण रज का स्पर्श कर, गौरवान्वित हो उठेगा।

नवीन परिस्थितियों के कारण, भारत तथा काश्मीर के राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टिकोणों में अन्तर आ गया। काश्मीर परिस्थितियों के अनुकूल अपना परिवर्तन करता रहा। काल के अनुरूप बनाता रहा। और भारत जड़ बनता गया। जनता ने सामाजिक एवं राजनैतिक ढाँचा शिथिल कर दिया। निर्जीव कर दिया। एक बार विदेशियों के घरमें जमते ही, पुनः उठ न सका। काश्मीर पाँच शताब्दियों तक संघर्ष करता रहा। इस संघर्ष के पीछे उसकी संयोजनीयक प्रवृत्ति थी।

एक और अन्तर था। भौगोलिक परिस्थितियाँ भिन्न थीं। प्रकृति भिन्न थी। काश्मीर को आवृत करती उत्तुंग पर्वत-मालायें उसकी अभेद्य कवच थीं। कर्ण के समान जन्मजात वर्म उसे प्राप्त था। इस प्राकार कवच के कारण, अपने घर में सुरक्षित बैठकर, हिमाद्रि कुक्षि में निश्चिन्त होकर, बाहर भांक सकता था। आक्रमण कर सकता था। सैनिक अभिमान कर सकता था। शस्त्र एवं शास्त्र दोनों का आश्रय ले सकता था। केवल मेवाड़ को यह भौगोलिक लाभ प्राप्त था। यही कारण है। जब कभी विदेशी सेनाओं ने यमुना नदी पार किया, तो दिल्ली से ढाका तक उत्तरापथ का विस्तृत मैदान उनके अन्तर्गत, उनके अधिकार में आ गया।

भारत टूटता गया। बिखरता गया, बिखर कर जीवनश्री खो दिया। प्रतिरोधात्मक शक्ति खो दिया। विदेशी आक्रामकों द्वारा पदाक्रान्त हुआ। गुलामी में जकड़ गया। अपने घर में बन्दी बन गया। मुक्त हुआ। आठ शताब्दी पश्चात् बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में।

किन्तु काश्मीर संघटित होता गया। शक्तिशाली होता गया। विदेशी आक्रामकों को समराग्नि में काश्मीरी वीर आहुति देते रहे। उस आहुति ने, उस स्वातन्त्र्य-यज्ञ ने, काश्मीर की उष्मा गरम रखो। जोवन-ज्योति बुझ न सकी। जलती रही। भयंकर झंझावात आया। ज्योति कम्पित हुई। पुनः स्थिर हुई। उसका तेल कभी समाप्त न हुआ। काश्मीरी वीर अपने त्याग एवं बलिदान से स्नेहपात्र पूर्ण रखते रहे। ज्योति कम नहीं हुई। कौन ऐसा मानव है? कौन ऐसा भारतीय है? जो उस ज्योतिपुंज की अमर कहानो सुनकर, स्वयं ज्योतिष्मान् न हो उठेगा।

सबका कारण होता है। इसका भी कारण है। विदेशी आक्रामकों का सामना, काश्मीरी बाहर निकलकर, चौदहवीं शताब्दी तक, करते रहे। नवीन रणनीति सीखते रहे। शत्रुओं के गुणों से लाभ उठाते रहे। दोषों से बचते रहे। लड़ने की क्षमता पैदा करते रहे। भारत की चिर प्राचीन रणनीति का, पारम्परिक सीमान्त रक्षानीति का अनुकरण करते रहे। अपनी सीमा से, भारतीय सीमा से, निकलकर विदेशी आक्रामकों से लोहा लेते रहे।

दूसरी ओर भारत अपनी सीमा में ही सिकुड़ता गया। लड़खड़ाता गया। विघटित होता गया। इतना विघटित हुआ कि उसका सामाजिक ढाँचा, धार्मिक ढाँचा, बदल गया। भारत में ही एक भारतीय दूसरे के विरुद्ध, एक दर्शन दूसरे के विरुद्ध, मर मिटने पर सन्नद्ध हो गया।

काश्मोर तथा अन्य भारतीय राज्यों के दृष्टिकोणों में यही सबसे बड़ा अन्तर है। एक ओर दृष्टि,

स्थानीय, प्रादेशिक एवं लौकिक थी, तो दूसरी ओर काश्मीर की दृष्टि अन्तर्राष्ट्रीय थी। उसकी पैनी दृष्टि चीन तक दौड़ती थी। कन्याकुमारी से कामरूप तक दौड़ती थी।

भारतीय राज्य विदेशी सेना का सामना अपने घर में बैठकर करते थे। उनके घरों में शत्रु घुसता रहा, बैठता रहा। उन्हें विभाजित करता रहा। उनका मनोबल तोड़ता रहा। उनकी स्थिति दुर्ग में घिरे, उन सैनिकों जैसी थी, जो रसद चुकने पर स्वयं दुर्ग का समर्पण कर देते थे। भारतीयों की आँखें खुलीं। लेकिन उस समय, जब अवसर खो चुके थे।

केवल अपनी रक्षा काश्मीर ने नहीं किया। वह सजग सीमान्त प्रहरी था। उत्तरदायित्व का निर्वाह किया। भारत को दासता की शृंखला में शताब्दियों तक बँधने नहीं दिया। किन्तु कितने लोग इसे जानते हैं ?

काश्मीर में विदेशी संस्कृति, विदेशी दर्शन, प्रवेश के साथ, काश्मीरी उत्पाटित किये गये। वे निकले। अपने धर्म, अपनी संस्कृति, अपनी रक्षा के लिये, अपनी मातृभूमि को नमस्कार कर। मुट्ठी भर भूसे की तरह बिखर गये, चारों ओर। बिखर गये, एक खोयी हुई जाति के रूप में। एक विपन्न जाति के रूप में। हो गये, पराये अपने ही घर में।

उनके घरों में जो बैठे, उनके लिये पुरातन काश्मीर मर चुका था। उनके लिये काश्मीर का इतिहास, उनका इतिहास नहीं था। वह भूतयुग मात्र था।—फिर उस इतिहास की गाथा कौन गाता ? काश्मीरी वीरों की विरदावली कौन सुनता ? अतीत गौरव सुनकर, पूर्वजों का गौरव सुनकर, किसकी छाती फूलती ? धमनियों में रक्त प्रवाह तीव्र होता ? कौन अभिमान करता अपने पर ? कौन मेवाड़ के चारणों की तरह, भारतीयों की तरह, गलियों में, रथ्या पर उनकी गीत गाता ? उन्हें उठाता ?

काश्मीर की कथा शेष हो गयी। उसकी वीथियाँ, उसके कुंज, उसकी वनश्री, उसकी पर्वत मालायें, उसके नाग, उसकी श्रोतस्विनियाँ, उसके प्रसन्न सरोवर, उसकी कुल्यायें, वही थी। वही सूर्योदय था। वही सूर्यास्त था। वही शर्वरी थी। वही तुषार-वर्षा थी। वही पवन था। वही हिम-मण्डित शिखर था। वितस्ता की वही उज्ज्वल जल-धारा थी। यदि कुछ नहीं था, तो वह जीवन नहीं था, वह प्रेरणा नहीं थी, वह नाद नहीं था, वह दिग्विजयों की गौरव शालिनी शृंखला नहीं थी, जो अतीत बनकर, काश्मीर के खँडहरों में घोर निद्रा ले रही थी।

अरबी इतिहासकारों के लिये, परशियन इतिहासकारों के लिये, काश्मीर बुतपरस्ती का गढ़ था। उनकी लेखनी उठी। वे उस गढ़ की कैसे गौरव गाथा गाते ? उनकी लेखनी थी एकांगी, प्रचारक। सुलतानों, सूबेदारों के प्रश्रय में कागज पर चलनेवाली। घटनाओं के शताब्दियों पश्चात् बिना किसी आधार के चलीं। बाये से दाये चलीं। कागज पर चढ़ाती चलीं दूसरा रंग। लगी भरने एक रंग पर दूसरा रंग। न पूर्व रंग रहा और न उत्तर। सब हो गया बदरंग।

पश्चिम से, रेगिस्तानों से आँधी चली। आकाश हो गया तिमिराच्छन्न। शस्त्रों की झंकार के साथ चला नव प्रभावित हुआ जगत्। उस दिशा से, शस्त्रों की छाया में, वहाँ के विद्वान् चले। मिशनरी चले। पर्यटक चले। नवीन दर्शन के साथ। नवीन उत्साह के साथ। कठोर प्रवर्तकभावना के साथ। उन्होंने उलट दिया, पुरानी मान्यताएँ। पलट दिया, मानवीय मूल्य। पलट दिया, लौकिक राज्य। सब कुछ हो गया एक मिल्लत का जुज़।

शताब्दियों पश्चात् पश्चिम से फिर चली शीतल वायु। यूरोप के शीतल हरे-भरे क्षेत्रों से। उसके साथ चले मिशनरी। चले पर्यटक। खोजते अनुसन्धान की दिशा। भ्रमण करते, मरुस्थल में गड़े नगरों में, पत्थरों से ढके नगरों में, खँडहरो में ध्वंसावशेषों में। कुछ खोजते। कुछ पूछते। कुछ समझते।

वे पहुचे काश्मीर। चकित हो गये। उन्हें लगा, जैसे पहुँच गये सुहावने यूरोप में। उन्हें काश्मीर अच्छा लगा। उससे अच्छा लगा वहा का अतीत। अतीत मुसकराया। आकर्षित किया, काश्मीर के खँडहरों ने, ध्वंसावशेषों ने। वे बैठ गये। उनके बीच।

शिलाखण्ड बोले। पत्थर बोले। उन्होंने सुनी उनकी वाणी। मुग्ध हुए भूत, मूर्तमान हुआ, अतीत बोला। काश्मीर बाला। उनकी बोली समझे। सजल नेत्र नत हो गये, श्रद्धा के साथ।

वे चकित हुए। चकित हुआ मन। चकित लेखनी उठी। सृजन करने लगी। काश्मीर का निरपेक्ष इतिहास। वे जिज्ञासु के समान आये थे, अन्वेषक के रूप में आये थे, किन्तु उनका पाण्डित्य देखकर चकित हुआ काश्मीर मण्डल।

पुराने बस्तों की बन्दे खुलीं। सोते बिखरे पत्र, सोते इतिहास-सूत्र जागे। उन विदेशियों ने शारदा देश में शारदा का किया प्रणाम। शारदा की कृपा से देखा, समझा पुरातन को पुरातन की तरह। इतिहास की तरह। जिज्ञासु को तरह। वैज्ञानिक की तरह।

वे गये कल्पना से दूर। बहुत दूर शताब्दियों दूर। उन्होंने बिखरे अलंकृत शिलाखण्डों से, खण्डित प्रतिमाओं से पूछा, उनकी कहानियाँ। उन्होंने काश्मीरियों से सुना, उनका गौरवमय अतीत। सबसे सुनकर, सबसे जानकर, उनकी आँखें झुकीं। पृष्ठों को उलटते गये। देखते गये। अक्षर मुखरित होते गये। सुनाते गये। जिसे लोग भूल गये थे। काश्मीरी भूल गये थे। जगत् भूल गया था।

उन्होंने महान काश्मीरी इतिहासकारों अंजलिबद्ध प्रणाम किया। तरंगों का मन्थन किया। मन्थन से निकला, क्रमबद्ध धवल इतिहास। उनके मन्थन से निकला विल्सन प्रणीत हिन्दू काश्मीर का इतिहास। मूर क्राफ्ट की मथानी से निकला, प्रथम नागरी लिपि में मुद्रित राजतरंगिणी। चारों तरंगिणियों के साथ। जो कि काश्मीर से बहुत दूर, वंगभूमि में, कलकत्ता महानगर में एक सौ छत्तीस वर्ष पूर्व प्रकाशित हुई।

एक था, आस्ट्रिया देशीय सैनिक कप्तान ट्रोयर। वह था सफल सैनिक लार्डविलियम वैण्टिक का मित्र। जब वैण्टिक था कर्नल। ट्रोयर और वह दोनों युद्धभूमि में एक पक्षसे लड़ते थे। कालान्तर में लार्ड विलियम वैण्टिक भारत के आठवें गवर्नर जनरल हुए। उन्हें स्मरण हुआ, उनका विचक्षण बुद्धि ट्रोयर। आमन्त्रण पर ट्रोयर आया भारत। वह सैनिक सर्वेक्षण विशेषज्ञ था। पूर्व ने उसे आकर्षित किया। उसकी रुचि बढ़ी पुरातत्त्व को ओर। वह कलकत्ता संस्कृत कालेज का हो गया मन्त्री। उसने दर्शन किया राजतरंगिणी का। तरंगिणी में स्नानकर, जैसे हो गया निर्मल।

संस्कृत उसकी भाषा नहीं थी। अंग्रेजी उसकी भाषा नहीं थी। फ्रेंच उसकी भाषा नहीं थी। काश्मीरी उसकी भाषा नहीं थी। राजतरंगिणी समझने के लिये। सीखने लगा संस्कृत। वह हुआ मुग्ध काश्मीर के इतिहास पर।

जगत् ने देखा। सात शताब्दियों पश्चात् तरंगिणी पर लिखा भाष्य, यूरोपीय भाषा में प्रथम अनुवाद। जगत् स्तम्भित हुआ। पाश्चात्त्य विद्वान चकित हुए। देखकर, एक विदेशी का काश्मीर के प्रति अनुराग। अद्भुत तपस्या। अद्भुत निष्ठा। वे अगड़ाई लेते उठे। धन्यवाद देते उठे। उसके स्तुत्य प्रयास को। उसके अथक श्रम को।

नागरी लिपि में कल्हण की मूल पदावली मुक्ता तुल्य अक्षरों में विदेशी कागज पर, बैठने लगी। १८४० ई० में आज से एक सौ इकतीस वर्ष पूर्व। निकली पेरिस के मुद्रणालय से, फ्रान्सीसी भाषा के अनुवाद भाष्य सहित।

पूर्व पुरुषों को नमस्कार करता, पूर्व रचनाकारों को नमस्कार करता, पूर्व को नमस्कार करता, आया एक विनम्र जिज्ञासु। आकर्षित था, काश्मीर की सुषमा पर नहीं। काश्मीर की सुरभित केसर की क्यारियों पर नहीं। काश्मीर के कल-कल करते नागो पर नहीं। काश्मीर की प्रकृति पर नहीं। उसके प्रचुर जलाशयों पर नहीं, डल झील के आमोद-प्रमोद पर नहीं। वह आकर्षित था, काश्मीर के इतिहास पर। उसके भग्न मन्दिरों की योजना पर, उनकी रचना पर, उनके तीर्थ स्थलों पर, जो केवल मात्र ईंट-पत्थर के संग्रह नहीं थे। उनमें था मूर्तमान काश्मीर का दर्शन। काश्मीर का इतिहास।

काश्मीर सीमान्त क्षेत्र, आर्याना (अफगानिस्तान) ईरान, काफिरिस्तान स्वात, तुर्किस्तान, मंगोलिया आदि की यात्रा करता आया, वह था, प्रातः स्मरणीय स्वर्गीय मानव एम०. ए०. स्तीन। वह काश्मीर के ध्वंसावशेषों, भग्न मन्दिरों, भग्न विहारों, भग्न स्तूपों, भग्न मठों, भग्न प्रतिमाओं, लुटे नगरों, गड़े नगरों, उजड़े गावों से पूछता, सुनता उनकी कहानियाँ। उसने उठाया परदा। अतीत मुसकराया।

काश्मीर में डोगरों का राज था। उसने काश्मीर की वीथियों, वनों, पर्वतों, नागों, जलाशयों, गावों, पुरो और वितस्ता से लगा पूछने उनकी कहानी। उसने अलंकृत भग्न शिलाखण्डों को देखा। भग्न मन्दिरों को देखा। भग्न प्रतिमाओं को देखा। भग्न शिलालेखों को देखा। उनसे किया परिचय। उनमें बैठकर, उनके पास बैठकर, लगा बनाने इतिहास का प्रारूप। लगा पूछने प्रत्यक्षदर्शी रूपा से, वितस्ता से, पर्वत मालाओं से, निर्झर से, दिग्विजयी सेनाओं की वीर गाथाएं। पूछा उन विभूतियों का जीवन वृत्त, जिनका काश्मीर था। जो काश्मीर के थे। जो काश्मीर पर गर्व करते थे। मरते थे, उसके लिये। जीते थे, उसके लिये।

वह बैठा। पण्डितों के चरणों में। लेकर कल्हण की राजतरंगिणी। उसकी आँखें रुकने लगी एक एक शब्द पर। लगा समझने प्रतिशब्द का अर्थ। पदों में लगा खोजने कल्हण का भाव। उनका तात्पर्य। अक्षर बोले। वाक्य वाले। पृष्ठ बोले। अध्याय बोले। बोला युगों का इतिवृत्त।

अतीत बोल उठा, कोने-कोने से, कण-कण से बोल उठा। बोल उठे वितस्ता के जल बिन्दु। बोल उठीं, उल्लोल सर की उल्लोलें। उसने सुना, कान लगा कर। जो सुना, उसे पूछा, खँडहरों से, शिला खण्डों से, खड़ी ज़ियारतों से, खड़ी मसजिदों से, सब बोले। उसे ज्ञात हुआ तथ्य। उसे मालूम हुई वस्तुस्थिति।

उसकी लेखनी उठी। गतिशील हुई। उसने शब्दों को, उनके अर्थों को, उनके भावो को श्रद्धा-पूर्वक, भक्तिपूर्वक लगा संयुक्त करने लण्डन के शान्त वातावरण में, जागृत वातावरण में, लोकतन्त्रीय वातावरण में, अंग्रेजी भाषा में, अनुवाद एवं भाष्य में उलड़ते हुए ऐतिहासिक तथ्य।

चार वर्षों तक भ्रमण करता रहा, अध्ययन करता रहा, काश्मीर में। उसने पण्डितों का आह्वान किया। संस्कृत सीखा। संस्कृत बोला। लिया सहायता, वृद्ध पण्डितों से, वृद्ध विज्ञजनों से। उद्घाटित किया राजतरंगिणी का रहस्य। नेत्र प्रफुल्लित हुए। उसने देखा—ग्रीस, रोम, मिश्र, कार्थेज की तरह

काश्मीर का इतिहास, केवल राजाओं के जीवन-मृत्यु, उनके साहस, जातियों के संघर्ष, सामन्तों के संघर्ष, राजाओं के संघर्ष, देश-प्रदेशों के संघर्ष, उत्थान-पतन का इतिहास नहीं है। उसमें कुछ और है। वह कुछ और उसके अनुसन्धान में लगा।

कुछ और क्या था ? जानना चाहा। बैठ गया—श्री नगर में। डोगरा राज्य ने दिया उसे सहयोग। श्रीनगर के पण्डितों ने दिया उसे सहयोग। उसने साथ लिया जानकारों को। हिन्दू-मुसलमान दोनों से पूछने लगा, उनके पूर्वजों का इतिवृत्त। लगा घूमने, चारणों की तरह। लगा भ्रमण करने इतिहास-कारों की तरह। लगा उठाने ग्रन्थों को। लगा उलटने पुरातन पृष्ठों को।

उसने देखा। वह इतिहास केवल राजाओं का इतिहास नहीं था। शासकों का इतिहास नहीं था। वह इतिहास था, गावों के टूटे-फूटे पत्थरों का, अग्रहारों का, नगरों का, नागों का, जलाशयों का, विहारों का और स्तूपों का। उसका पूर्व अनुभव, उसका पूर्व अर्जित ज्ञान, आया उसके काम। उसने समझा। काश्मीर कुछ और था, जो अब नहीं रहा।

वह कुछ और इतिहास था, मानव विकास का, मानव की उदात्त कल्पनाओं के साकार रूप का। वह इतिहास उतना ही पुराना था, जितना पुराना इतिहास था। वह मृत समाधियों का, पिरामेडों का, राज प्रासादों का, विलास भवनों का, केलि उद्यानों का, परदाराहरण का, सुन्दरी हरण का, राज हरण का, लोलुप राज पुरुषों का, साहसी वीरों का, महत्वाकांक्षी नर-नारियों का इतिहास मात्र नहीं है। सुखों की कहानियों का, दुःखों की आहका, शोषक वर्गों का, शोषित वर्ग का, सर्वहारा वर्ग का, इतिहस नहीं है। वह इतिहास जातियों की स्पर्धा का, अस्पृश्यता की विभीषिका का, क्रूरकर्मी आधिनायकवादियों का नहीं है। वह कुछ और इतिहास था, उनका जिनकी भौतिकता में आध्यात्म प्रसन्न मन झाकता था। कहता था—मनुष्य साधना नहीं है, साध्य है। मनुष्य जीवन का कुछ प्रयोजन है।

वह इतिहास था, उन महान निर्माणों का, जिनमें दर्शन गढ़कर बैठाया गया था। उनमें उदार कल्पना, सहिष्णु कल्पना, निरपेक्ष कल्पना साकार की गयी थी। मनसा उस ओर प्रवाहित हुई थी, जो मानव को निर्मल करती, चलती थी। उसे वहाँ पहुँचाती थी, जहाँ उसे पहुँचना चाहिए था।

काश्मीर का इतिहास गुँथा है, पुरातन गान्धार से, पुरातन पंचनद से, पुरातन उत्तरा पथ से, अफगानिस्तान से, ईरान से, चीन तथा तिब्बत से। भारत के पूर्व से, दक्षिण से, उत्तर और पश्चिम से। स्तोन ने इसे समझा। अध्ययन किया, एक तपस्वी की तरह। एक योगी की तरह। निष्ठा के साथ। श्रद्धा के साथ बिना पूर्वाग्रह के उसने कठिन को सरल किया। सोये को उठाया। वह कर्नल टॉड के समान राजस्थान की गाथा लिखने नहीं बैठा था। वह बैठा था लिखने प्रामाणिक इतिहास। सिद्ध करने कल्हण का इतिहास।

उसने उत्तर दिया, उन विद्वानों को। जो कहा करते थे। भारतीय इतिहास लिखना नहीं जानते थे। भारत ने इतिहास नहीं लिखा है। काव्य लिखा है। गाथा लिखा है। स्तीन ने उत्तर दिया। यदि काव्य के साथ सर्वांगीण प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत किया जाय, तो क्या वह इतिहास नहीं होगा ? केवल इस लिये इतिहास नहीं होगा कि उसकी भाषा काव्यमय है ? सरस है ? पद्यमय है ? अलंकृत है ?

उस महापुरुष ने काश्मीर की सीमा पर, उसके गावों में, उसके नगरों में, उसके दुर्गों में, उसके

ध्वंसावशेषों में, उनमें आबाद लोगों में, बैठकर, मिलकर, चलकर, खोजा—लुप्त संस्कृति, लुप्त जीवन, लुप्त, धर्म, लुप्त व्यवहार एवं लुप्त इतिहास-रेखा।

वह मरुस्थलों में घूमा, उपत्यकाओं में घूमा, नदी-प्रवाहों में घूमा। सबने उसे सुनाया अपनी कहानी। जन जीवन में मिलकर, उनके मानस से मिलकर, ढूढ़ निकाला, उनके, संस्कारों को, रीति-रिवाजों को, उनके पूर्व पुरुषों को। उसने उनसे जिज्ञासा किया। उनके हृदयों से अनजाने निकालीं, वे गाथाएँ, वे लोरिया' वे कहानियाँ, जिनमें इतिहास निहित था।

बुहलर जर्मनी से आकर, पुरातत्त्व का अध्ययन कर, काश्मीर भ्रमण कर, पाण्डुलिपियों का संग्रह किया। उस मनस्वी स्तीन ने स्वर्गीय बुहलर के पथ का अनुसरण किया। लगा खोजने-पाण्डु-लिपियों को। किया, उनका संग्रह जिन्हें काश्मीरी सजोकर रखे थे। अमूल्य निधि तुल्य शताब्दियों से रखे थे। पूजा की सामग्री समझ कर रखे थे। बैठे थे। भूल गये थे। उनके पत्रों में, उन भोजपत्रों में वाणी थी। वे कहते थे ? उसने भक्ति से, श्रद्धा से, ग्रन्थों का आवरण खोला।

काश्मीरियों ने समझा, अपनी निधि का मूल्य। अपना मूल्य। वे शारदा देश वासी आये, शारदा की वन्दना करते, उसके सान्निध्य में, उसने उनका आदर किया। सत्कार किया। उत्साहित किया। प्रेरित किया, उन्हें बताया। ये, वे नहीं थे। जो आज हैं। वे थे, उनकी सन्तान, जिन्होंने दिया था, भारत को इतिहास, भारत को दिग्विजयों की परम्परा। वे थे उनकी सन्तान, जिन्होंने दिया था, विश्व को संस्कृत काव्य, संस्कृत साहित्य। वे थे उनकी सन्तान, जिनकी कीर्ति से भारत का, काश्मीर का, मुख उज्ज्वल हुआ था।

उसने जागृत किया, उनमें आत्मसम्मान। उसने जागृत किया, उनमें स्वाभिमान। उन्हें समझाया, जीवन का मूल्य। वे मिले, उस विदेशी से श्रद्धा से। उसके साथ जो उन्हीं के समान आर्यों की थीं सन्तान। उन्होंने स्मृति से, ज्ञान से, दिया, अर्घ, उस महापुरुष को। उस अर्घ ने लिया राजतरंगिणी के आंग्ल भाषा का रूप। आया प्रकाश में, लण्डन संस्करण, आज से इकहत्तर वर्ष पूर्व, राजतरंगिणीका अनुवाद एवं भाष्य। उसने अनुप्राणित किया, उसी प्रकार, जिस प्रकार कर्नल टॉड ने किया था। राजस्थान के सम्बन्ध में।

श्रीनगर से सुदूर कलकत्ता में श्रीजोगेश चन्द्र दत्त ने चारों राजतरंगिणियों का अनुवाद किया। आज से ८० वर्ष पूर्व हरिलाल शास्त्री ने चटगांव में बंगला अनुवाद किया। उत्साह बढ़ा। धुर दक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, हिन्दी आदि सभी भाषाओं में हुए अनुवाद। हुआ स्तीन के आधार पर, लेखक हुए उत्सा-हित। भारतीय भाषाओं में होने वाले अनुवादों की माला से काश्मीर का वक्षस्थल हो गया सुशोभित।

भारतीय जनता ने किया काश्मीर दर्शन। उन्होंने समझा। काश्मीर केवल प्राकृतिक सौन्दर्य का निकेतन नहीं था। वह था चिन्तकों का स्थान। योगियों की साधना भूमि। तान्त्रिकों का अभ्यास स्थान। काश्मीर त्रिक केन्द्र। दार्शनिकों की पीठ। भक्तों का आश्रय। जिज्ञासुओं का गुरुकुल। वह था चेतन। उसमें था वह जीवन जो जीव को उठा देता था।

भारत ने काश्मीर देखा। मुग्ध हुआ। उसके आध्यात्मिक रूप पर। दर्शनों ने दर्शन किया, शैव दर्शन का, प्रतभिज्ञा दर्शन का, त्रिकदर्शन का और तन्त्रों के गूढ़ रहस्यों का।

जगत् कह उठा। कौन कहता है? भारतीय इतिहास लिखना नहीं जानते थे। भारत में इतिहास की परम्परा नहीं थी। क्या चार शताब्दियों तक, विश्व में कहीं, एकही शीर्षक से, एकही इतिहास का, क्रम-बद्ध प्रणयन होता रहा है? यह चमत्कार, यह अध्यवसाय, यह धैर्य, यह अनोखी सूझ, क्या विश्व को उसके सम्मुख नतमस्तक कराने के लिये पर्याप्त नहीं है?

भारत काश्मीर का ऋणी है। उसके कारण भारत की कलंक कालिमा मिटी है। भारतीय इतिहास लिखना नहीं जानते थे। उनका कोई इतिहास नहीं था। धवल काश्मीर ने भारत को धवल बनाया है।

श्री स्तीन द्वारा प्रशस्त किये मार्ग का मैं एक कणमात्र हूँ। अगणित कणों से मिलकर मार्ग, सड़क बनता है। उसपर अगणित नर-नारी चिरकाल तक चलते रहते हैं। कण प्रसन्न होता है, उनके पवित्र चरण स्पर्श से। यही प्रसन्नता कण के बलिदान, उसके परिश्रम का पारितोषिक है।

भविष्य की भारतीय सन्तान, काश्मीर की सन्तान,—अफगानिस्तान, तुर्किस्तान, काफिरिस्तान, गान्धार, तिब्बत, स्वात, सीमान्त स्थित, स्थानों, भूगर्भ-रक्षित पुरातत्त्व सामग्रियों, ताम्रपत्रों, भूर्जपत्रों, अभिलेखों, शिला लेखों, स्थापत्य एवं प्रतिमाओं, तत्कालीन मानव के व्यक्त भावों, घटनाओं आदि का अध्ययन कर काश्मीर के पूर्ण इतिहास लिखने का प्रयास करेंगे। आशा करता हूँ पूर्व इतिहासकारों, रचनाकारों के पूरक बनेंगे। भविष्य के रचनाकार शोध के साथ इस दिशा में यदि प्रगति किये, तो इस लोक में रहूँ, परलोक में रहूँ, मेरी आत्मा उनके प्रयास के लिये, शुभ कामना ज्ञात एवं अज्ञात किसी भी अवस्था में करती रहेगी। मेरी दुर्बल वाणी, मुक्त कण्ठ से, श्रद्धा से, आदर से, नतमस्तक उनका गुण गान करती रहेगी।

लोग कहते हैं। इतिहास गड़े मुर्दे को उखाड़ना है। पुरानी बात याद करने से, जानने से, इस आर्थिक युग में, यान्त्रिक युग में, भौतिक युग में क्या लाभ? समय नष्ट करना है। अर्थ का अपव्यय है। उनसे विनम्रता पूर्वक यही कहना चाहता हूँ, नित्य प्रातःकाल उठने, नित्य भोजन करने, नित्य सोने से, नित्य एक ही काम रोज करने से, इन भूतकालिक क्रियाओं को नित्य नये शिरे से दुहराने से क्या लाभ? इस जीवन से ही क्या लाभ? हम रहें या न रहें इससे संसार का क्या बनता, बिगड़ता है? हमारे जैसे कोटि-कोटि लोग आये और गये। जिसका जन्म हुआ। वह मरा। उनसे यही कहता हूँ। पशु और मनुष्य में कुछ अन्तर है। शैतान और इंसान में कुछ अन्तर है। विकास और ह्रास में कुछ अन्तर है। मनुष्य के अन्दर असुर बैठा है। सुर बैठा है। असुर उठता है। मनुष्य बन जाता है राक्षस। बन जाता है, क्रूर कर्मा दैत्य। बन जाता है, मात्स्यन्याय का प्रतीक। बन जाता है, अराजक। बन जाता है हिंस्र पशु तुल्य भयंकर।

इतिहास उपस्थित करता है, उदाहरण। असुर बनने पर क्या होता है। सुर बनने पर क्या होता है। कुपथगामी बनने का क्या परिणाम होता है। और सुपथगामी होने से क्या लाभ होता है। जीवन का मूल्य इतिहास उपस्थित करता है। इतिहास उपस्थित करता है, किन परिस्थितियों में क्या संगत और असंगत है। इतिहास दर्शन नहीं है। आध्यात्म नहीं है। इतिहास कर्मों के परिणामों का उदाहरण है। अनुशासनहीन, चरित्रहीन लोग, जनता पर किस प्रकार विपत्ति लाते है तथा अनुशासित एवं चरित्र मान विपत्तियों से देश, जाति एवं समाज को बचाकर, किस प्रकार ले चलते हैं, इसका विवरण है।

मेरा यह समय दुःखमय काल रहा है। भगवान् ने जन्म दिया था वह अपने इच्छा पर नही था। मरना अपने हाथ में नहीं है। पशु, पक्षी, प्राणी मात्र जीवन से मरण पर्यन्त किसी न किसी प्रकार समय व्यतीत करते हैं। आजन्म पचास वर्ष तक सक्रिय राजनीति में रहा। स्वतन्त्रता सग्राम के अनेक

साथी बिछुड़ गये। अनेक राजनीतिक स्वार्थों के चक्कर में अपनी-अपनी अलग-अलग सीमा बना लिये। समवयस्क साथी कुछ नहीं रहे, कुछ दुनियाँ में उलझ गये। नौकरी कभी किया नहीं। अब करने की अवस्था भी नहीं रही। वकालत संसद में जाने के पश्चात् त्याग दिया। दिल्ली में व्यतीत हुए बीस वर्ष के व्यस्त जीवन के पश्चात् काशी में जीवन एवं कार्य-कलाप का सीमित हो जाना अखरा। परन्तु काशी मनुष्य के अन्तिम जीवन की आश्रय है। लोग यहाँ मरने आते हैं। मैं यहाँ पैदा हुआ। यहाँ मरूँगा या नहीं कौन जानता है। परन्तु काशी का अव्यक्त प्रभाव पड़ता ही है। उस प्रभाव, उस संस्कार के कारण मैं संयत रह सका। न कभी उदास हुआ और न निराश। जीवन का यह भी एक अध्याय है, मान लिया।

समय काटना था। इस लिए राजतरंगिणी की ओर ही मन लगाया। खेती कभी किया नहीं था अतएव बहुत बड़ी खेती होने पर भी वहाँ न तो मन लगा सका और न जा सका। खेती करने योग्य शरीर में शक्ति भी नहीं रह गयी थी। मैंने सरस्वती की उपासना ही शिव की नगरी में उचित समझा। दर्शनों में, आध्यात्मिक उलझनों में पड़ना अनावश्यक माना। सादगी, ईमानदारी, सच्चाई से जीवन बीत जाय, यही सबसे बड़ा दर्शन मेरे लिये था। मैंने अपने जीवन में किसी का अनुपकार नहीं किया था, अपना कुछ दिया ही है, लिया नहीं, छल, कपट, धोखा का आश्रय नहीं लिया। यह जीवन के इस उत्तर काल में मेरे लिये सबसे बड़ा सन्तोषप्रद सिद्ध हुआ।

सरस्वती की उपासना में कोई राजनीतिक एवं आर्थिक न तो प्रतिस्पर्धा है और न शोषण। क्षेत्र आकाश-समान ओर-छोर हीन है। यह काम सुगम था। चारों ओर से अपने को समेट लिया। काशी में अनेक पुस्तकालय हैं। अनेक विश्वविद्यालय हैं। विचारकों की रचनाओं में भ्रमण करना प्रिय लगा, रुचि बढ़ती गयी।

आर्थिक दृष्टि से भविष्य अन्धकारमय था। किसी तरफ से आमदनी नहीं थी। राज सम्मान, राज सहायता से मैं सर्वदा दूर रहा। स्वतंत्र विचार स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण सत्तारूढ़ दल मुझे विरोधी ही मानता रहा। दिल्ली लौटना असम्भव था। समय काटना था। काशी विश्वविद्यालय एवं वाराणसेय संस्कृत विश्व-विद्यालय मेरे केन्द्र बन गये। वहाँ चुपचाप एक कोने में जाकर बैठकर पढ़ता था। पाठक वहाँ युवक छात्र थे। उनके दादा की उम्र का था। इस अन्तर के कारण अपने और उनमें अन्तर रखता था।

राजनीतिक जीवन निश्चित नहीं था। आर्थिक जीवन बिगड़ता ही गया। मितव्ययी होने का इस काल में जितना ही प्रयत्न करता, उतना ही व्यय बढ़ता गया। बचपन से ही दान करने की आदत थी। इस वर्ष दश सहस्र मुद्रा अस्पतालों तथा स्कूलों के दान में निकल गया। संचित धन व्यय होता गया। आय के सभी स्रोत परम्परागत के अतिरिक्त अन्य सब पूर्णतया बन्द हो गये थे।

शरीर भी उतना साथ नहीं दे सका, जितना कि मैं उससे अपेक्षा करता था। बहुत दिनों से से आसन-प्राणायाम करता हूँ। वे अपने काम आये। शरीर को ठीक रखें। फिर भी शरीर अपनी इच्छानुसार काम करने से जबाव दे देता था।

राजनीतिक महत्त्व कम होने के कारण चंचल साथी आँख फेर चुके थे। मैं किसी का उपकार या लाभ कराने की स्थिति में नहीं था। अतएव मेरी चिन्ता कौन करता ? मन उचटने पर सर्वश्री अलखनाथ यादव अथवा महन्त वीरभद्र मिश्र, तुलसी मानस मन्दिर तथा संकटमोचन के यहाँ चला जाता था। उनका सत्कार आदर पाकर मन भर उठता था।

अर्थाभाव के कारण काश्मीर जाकर कुछ और अनुसन्धान कार्य नहीं कर सका। अपना आत्म-

सम्मान, स्वाभिमान त्यागकर मुख खोलना, अच्छा न लगा। मेरी आवश्यकताएँ नगण्य थीं इसलिये इस संकट कालीन स्थिति का उत्साह के साथ सामना करता रहा। घर पर खाना मिल जाता, वस्त्र मिल जाता, कुछ रुपये मिल जाते, मेरे लिये पर्याप्त था। पुराना कुल होने के कारण परम्परा से ब्राह्मण, संन्यासी को रोज खिलाना आवश्यक था, मधुकरी देना आवश्यक था, गाय रखना अनिवार्य था, उनमें कमी नहीं हो सकती थी। उसका निर्वाह अपने जीवन पर्यन्त करना चाहता था। पैतृक सम्पत्ति से उसके लिये आय हो जाती थी। मेरी पत्नी उसे कर लेती। उसमें उसे रस मिलता।

प्रकाशक सस्ती अर्थकरी पुस्तकें छापते हैं। तरंगिणी जैसे विशाल ग्रन्थ का भाष्य छापना सरल नहीं था। श्री कृष्णचन्द्र बेरी ने इस ओर ठोस कदम उठाकर, मैत्री धर्म के पालन के साथ पुस्तक प्रकाशित कर हिन्दी जगत् की सेवा की है। इस दुःखमय काल में सन्तोष के वे एक श्रोत थे।

प्रो. श्री पी. एन. पुष्प जम्मू-काश्मीर अनुसन्धान विभाग की कृपा से फारसी मूल पुस्तकों की माइक्रोफिल्म प्राप्त हो सकी है। बिना उनके सहयोग के यह सम्भव नहीं था। उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

काश्मीरी शब्दों का उच्चारण कुछ भिन्न होता है। उन्हें तथा कुछ स्थानों की जानकारी प्राप्त कराने में सर्वश्री सर्वानन्द शास्त्री, अमीरा कदल, श्रीनगर तथा श्री पृथ्वीनाथ कौल पुत्र स्वर्गीय दामोदर कौल निवासी बाना मुहल्ला हब्बाकदल श्रीनगर, पुस्तकालयाध्यक्ष काशी विश्वविद्यालय ग्रन्थागार तथा श्रीमती सुभद्रा दर पुत्री स्वर्गीय मनमोहन लंगर, मुन्शी बाग, श्रीनगर, पत्नी श्यामसुन्दर लाल दर, भूतपूर्व प्रस्तोता (रजिस्ट्रार) काशी विश्वविद्यालय, से काश्मीर शब्दों के जानने में सहायता मिली है। वे धन्यवाद के पात्र हैं। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय ग्रन्थालय के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री लक्ष्मी नारायण तिवारी पुत्र श्री उदय नारायण तिवारी निवास स्थान पीपरपत्ती बलिया को धन्यवाद देता हूँ जिनके कारण पुस्तकालय की सुविधा प्राप्त कर सका हूँ।

श्री पशुपति प्रसाद द्विवेदी एम. ए. आचार्य पुत्र जयलाल प्रसाद द्विवेदी, ग्राम गौरी, डाकखाना वांसी जिला वस्तो प्राध्यापक उत्तर रेलवे इण्टर कालेज वाराणसी कैण्ट राजतरंगिणी रचना काल के प्रारम्भ से ही मेरे सहायक रहे हैं। उनका संस्कृत का ज्ञान स्तुत्य है। उनके कारण अनुवाद करने तथा अर्थ समझने में सरलता हुई है। वे ही रचना काल में मेरे एकपात्र सहायक रहे हैं। श्रीकृष्णमुरारी सिंह पुत्र मंगला प्रसाद सिंह ग्राम नारायणपुर, हिन्दू विश्वविद्यालय समीपस्थ जिसे शिशु अवस्था से ही अपने साथ रखा है इस काल में सहायता देता रहा है। उसे भगवान् जीवन में सफलता दे यही कामना है।

प्रत्येक राजा के समय की सम सामयिक घटनाएँ दी गयी हैं। उनके कारण तत्कालीन स्थिति समझने तथा अनुसन्धान कार्य में सहायता मिलेगी। पुस्तक के अन्त में इतिवृत्त क्रम दिया गया है। श्रीमती सी. एम. डफ ने 'क्रोनोलॉजी आफ इण्डिया' पुस्तक लिखी है। उनका धैर्य तथा परिश्रम स्तुत्य है। अर्वाचीन अनुसन्धानों के कारण कालक्रम में अन्तर पड़ गया है। अतएव, हिन्दू कालीन कालक्रम के लिये उसके कालक्रम को मान्यता नहीं दी है। निःसन्देह मुसलिम कालीन कालक्रम प्रायः ठीक दिया गया है। मैंने अन्य स्रोतों से काल गणना लेकर इतिवृत्ति क्रम दिया है। श्रीमती डफ ने हिजरी तथा मुसलिम महीनों का उदाहरण परशियन इतिहासकारों के आधार पर दिया है। हिजरी, मास एवं दिन का सन् तथा अंग्रेजी मास और दिन बनाने में त्रुटियाँ होती रही है। मैंने भिन्न-भिन्न स्रोतों से कालक्रम लेकर, जो अधिक मान्य

है, उसे ही दिया है। भारतीय विद्या भवन के ऐतिहासिक प्रकाशनों के अन्त में इतिवृत्ति क्रम दिया गया है। उससे भी सहायता लिया है। भारत तथा सीमान्त देशों की काल गणना विशेष रूप से दी गयी है। काश्मीर का उन देशों की घटनाओं से विशेष सम्बन्ध रहा है। उन्होंने काश्मीर इतिहास को प्रभावित किया है।

कालगणना चतुर्थ तरंग के पूर्वार्ध की स्पष्ट नहीं है। पाँचवें तरंग से कालक्रम ठीक से मिलने लगते हैं। मत वैभिन्न की अवस्था में श्री स्तीन के मत को मान्यता दिया है। कल्हण ने लौकिक सम्वत् का प्रयोग किया है। लौकिक सम्वत् का सन्, विक्रमी सम्वत् तथा शक सम्वत् दिया गया है।

कल्हण ने अप्रचलित शब्दों का कम व्यवहार किया है। अनुवाद करने में जोनराज, श्रीवर, एवं शुक की अपेक्षा कम परिश्रम करना पड़ा है। कल्हण की भाषा सुसंस्कृत है। कल्हण के आठ अनुवाद भिन्न भाषाओं में मेरे ही पास हैं। किंचित् कठिनाई होने पर उनसे सहायता मिल जाती थी। श्री रणजीत सीताराम पण्डित का अनुवाद मूल के अत्यन्त समीप है। श्री स्तीन का अनुवाद अधिक बोधगम्य एवं सरल है।

यदि काश्मीर के सीमान्त देशों का इतिहास समझ लिया जाय, तो अनुवाद तथा भाव समझने में सरलता होती है। कल्हण की शैली आदि के सम्बन्ध में प्रथम खण्ड में लिख चुका हूँ यह भूमिका उसकी पूरक मानी जायगी।

मैंने पुस्तक सर्वश्री विल्सन, मूरक्राफ्ट, ट्रोयर, बुहलर, कनिंघम, स्तीन विदेशी पाश्चात्य विद्वानों को समर्पित करने के साथ स्वर्गीय अपने पिता के मामा स्वर्गीय विश्वनाथ सिंह को समर्पित किया है। उनके विषय में कुछ पंक्तियाँ प्रथम खण्ड में लिख चुका हूँ। वह काश्मीरराज प्रताप सिंह के काशी प्रवास के समय उनके मित्रों में से थे। वह सन् १९०५ ई० से ही इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय महासभा) के सक्रिय सदस्य रहे। वंग-भंग तथा स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था। उसी समय से हमारे घर में स्वदेशी का प्रयोग होने लगा। उन्नीस सौ इक्कीस के पूर्व दो बार कारागार की यातना भोग चुके थे। सन् उन्नीस सौ इक्कीस में दो गोली लगी। तथापि बहादुरी और शक्ति के कारण बच गये। नमक सत्याग्रह सन् १९३० में अपनी भूमि सत्याग्रह करने के लिये दिया। ढाई वर्ष के लिये उन्हें कारावास का दण्ड मिला। जेल में उनका स्वास्थ्य गिरता गया। जब तक स्वस्थ थे सन् १९२२ ई० से १९३२ ई० तक वाराणसी नगर पालिका के सदस्य चुने जाते रहे। उनके जैसा निष्कपट, वीर, सत्यवादी, प्रपंचहीन व्यक्ति मैंने जीवन में अबतक नहीं देखा। उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति मुझे दे दिया। उन्हीं के पुण्य प्रताप के कारण मैं कुछ कर और लिख सका हूँ। उन्हीं की सम्पत्ति के कारण आज इस समय मुझे दो रोटी मिल रही है। उन्हीं के कारण काश्मीर की ओर मेरी रुचि हुई थी।

महात्मा गान्धी को काशी के सनातनी पण्डितों का सहयोग नहीं मिल सका था। वह उनके हिन्दू सुधार, तथा हरिजन सुधार, मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी आदि विचारों के कट्टर विरोधी थे। काशी में उनपर आक्रमण तथा विरोधी प्रदर्शन होते थे। महात्मा गान्धी के प्रथम आगमन काल से ही उनके साथ मोटर पर रक्षा की दृष्टि से बैठते थे। उनकी प्रतिभा के कारण कोई मोटर पर आक्रमण करने का साहस न कर सकता था। वह इतने शक्तिशाली थे कि पन्द्रह सौ बैठक, एक हजार दण्ड तथा चारपसेरी की गदा सौ हाथ फेरते थे। नाल उठाने और मुगदर फेरने में उनका कोई सानी नहीं था।

प्रातः काल चार बजे दशाश्वमेध घाटपर गंगा जल में प्रवेश करते थे। छः बजे निकलते थे। प्रतिदिन गंगा आरपार करते थे। गंगा जब बढ़ जाती थी तो दशाश्वमेध-कूद कर तैरते हुए राजघाट उसपार पहुँचते थे और शिवाला के सम्मुख पार कूदकर दशाश्वमेध पहुँचते थे। चुनार किला से तैरते हुए दशाश्वमेध पर कितने ही बार आये थे। उनके लिये वह साधारण बात थी। मैं भी एक बार चुनार से तैरकर दशाश्वमेध घाट आया था।

खान-पान में शुद्धता को वरीयता देते थे। कट्टर सनातन धर्मी थे। कभी बाज़ार का घी, बाज़ार तथा मिल की चीनी तथा बाज़ार का बना सामान नहीं खाते थे। डाक्टरों तथा हकीमों की अपेक्षा बीमार होने पर आयुर्वेदिक की औषधि करते थे।

स्वतन्त्रता के उदय के साथ ही जमीन्दारी उन्मूलन हुआ। जमीन्दारी समाप्त होने पर उन्हे हाथी बेचना पड़ा। कुलीनता की एक कड़ी टूटी। तथापि वह कभी दुःखी नही हुए। भयंकर मँहगायी के कारण घोड़ा-गाड़ी निकालना पड़ा। यह उन्हें अखर गया। घर से बाहर निकलना त्याग दिये। उनका स्वास्थ्य फिर नहीं सुधरा सन् १९४४ ई० में दिवंगत हो गये।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ग्रन्थागार के उप-पुस्तकालयाध्यक्ष सर्वश्री हरदेव शर्मा, जलंधर, शिवनाथ राघव तथा विश्वनाथ घटक, वाराणसी धन्यवाद के पात्र हैं जिनके कारण अध्ययन में सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त होती रहीं।

श्री महादेव चतुर्वेदी आचार्य तथा श्री महेश कुमार जायसवाल, वाराणसी ने प्रूफ रीडिंग के कार्य में पुस्तक का प्रूफ देखकर अनुगृहीत किया है। तथापि कुछ त्रुटियाँ रह गयी हैं जिसे अगले संस्करण में सुधार दिया जायेगा। महावीर प्रेस के व्यवस्थापक श्री बाबूलाल जी फाल्गुल जैन तथा भारती मुद्रण के श्री सिद्धनाथ सिंह जी को धन्यवाद देता हूँ जहाँ से पुस्तक मुद्रित हुई है।

मैं उन सभी महानुभावों, ज्ञात एवं अज्ञात प्रेस वालों आदि को धन्यवाद देता हूँ जिनके परिश्रम से पुस्तक इस रूप में भारतीय जनता के सम्मुख आयी है।

रघुनाथ सिंह

घीहट्टा

(औरंगाबाद)

वाराणसी-शहर

उद्गम्

कर्कोट वंश से काश्मोर का इतिहास गाथा काल को नमस्कार कर, ऐतिहासिक काल में प्रवेश करता है। राजाओं की मुद्रायें उनका काल निर्णय करने के लिए मिलने लगती हैं। राजाओं का नाम, काल तथा उनका कार्यकलाप विदेशी स्रोतों से मिलने लगता है।

कर्कोट काल काश्मीर का गौरवशाली काल कहा जायगा। साहित्य, संस्कृति, कला, निर्माण, स्थापत्य का विकास इसी काल में हुआ है। काश्मीर ने काव्य एवं स्थापत्य में भारत को नवीन शैली दी है। यह शैली जीवनमय है। सरस है। सरल है। उसमें मानव कल्पनाएँ मुसकराती हैं। प्रौढ़ राष्ट्र की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं।

विदेशी पर्यटकों का इस काल में अधिक आगमन हुआ। वे चकित हुए। देखकर, एक प्रतिभाशाली, सुसंगठित राष्ट्र को। उस राष्ट्र की अपनी परम्परा थी। अपना विकास था। उसने किसी की नकल नहीं की थी। उसका विकास देशीय था। शताब्दियों की देन थी। देशभक्ति भावनामय थी। दृष्टि संकुचित नहीं थी। उदार थी। उसमें प्रादेशिक, दैशिक एवं जातीयता का दोष नहीं था। शुद्ध सहिष्णु भारतीय दृष्टि थी।

विदेशी इतिहासों में काश्मीर का उल्लेख मिलने लगता है। उनके अध्ययन से भारतीय सीमान्त देश तथा काश्मीर के इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ सकता है। मध्येशिया में रूसी पुरातत्त्वविदों द्वारा खनन कार्य तथा अनुसन्धान आरम्भ किया गया है। निःसन्देह काश्मीर की सीमा समीपस्थ होने के कारण भूगर्भ में छिपी सामग्रियों का जब दर्शन होगा, तो नवीन प्रकाश इतिहास पर पड़ेगा। उनके कारण वर्तमान इतिहास-प्रवाह मुड़ सकता है।

कल्हण की काल गणना इस समय से प्रामाणिक रूप ग्रहण करती है। कल्हण पहला निश्चित काल कर्कोटकाल के अन्त में ३८८९ लौकिक सम्वत् देता है (४:७०३)। इसके पश्चात् ३९३१ लौकिक देता है। कल्हण की काल गणना यहाँ से ठीक चलती है। उसमें अविश्वास करना भ्रामक होगा। काल गणना पर अनेक विद्वानों ने मत प्रकट किया है। उनमें मतैक्य नहीं है। मुसलिम काल में संस्कृत ग्रन्थों की होली के कारण प्रचुर इतिहास सामग्रियाँ नष्ट हो गयी हैं।

भारत के पराधीन होने के पश्चात् भारतीय आत्मविश्वास खो बैठे। मुसलिम काल में जो कुछ परशियन इतिहासकार लिख गये थे, उन्हें तथा अंग्रेजी काल में पाश्चात्य विद्वान् जो कुछ लिखते थे उन्हें प्रामाणिक दृष्टि से देखा जाता था। बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक तक यही प्रवृत्ति रही। महात्मा-गान्धी के आगमन तथा उनके स्वातन्त्र्य आन्दोलन के कारण भारतीयों में स्वाभिमान तथा आत्मविश्वास दोनों लौटे। लोगों ने समझा संस्कृत भाषा में जो कुछ लिखा गया है, उसमें तथ्य है। सच्चाई है। उन्हें

न समझने का कारण अध्ययन का अभाव है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की यह मनोवृत्ति शासक एवं शासितों के स्तर-अन्तर के कारण थी।

श्री स्तीन ने संस्कृत का अध्ययन कर इस धारणा को असत्य ठहराया। उन्होंने प्रमाणित किया कि संस्कृत में अमूल्य इतिहास सामग्री है। उसका उपयोग सतर्कता से करना चहिए। अठारहवीं, उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के इतिहासों में इसी मनोवृत्ति का अनुकरण कर परशियन तथा विदेशी उद्धरणों को महत्त्व दिया जाता रहा है।

विदेशी अध्ययन से प्रभावित विद्वान् ईसा से तीन सहस्र वर्ष पूर्व जाने के लिये तैयार नहीं होते थे। वेद, पुराण तथा संस्कृत ग्रन्थों को कपोलकल्पित गाथा ऐतिहासिक दृष्टि से मान ली गयी थी। इस दिशा में विचारकों का मत परिवर्तित हो रहा है। कलिगताब्द तथा महाभारत काल से चले आये लौकिक सम्वत् की गणना विद्वान् सत्य नहीं मानते थे। परन्तु लौकिक सम्वत् का क्रमबद्ध उद्धरण एवं उल्लेख मिलता है। उसमें तथा कलिगताब्द में केवल २५ वर्षों का अन्तर है। पाश्चात्य मतों से प्रभावित विद्वान् उनपर विश्वास नहीं करते थे। उनपर सहज ही अविश्वास कर लेना इतिहास के साथ, काश्मीर के साथ एवं भारतीय काल गणना के साथ अन्याय होगा।

मिश्र तथा पश्चिम का इतिहास खींच-तानकर ईसा से सहस्र या दो सहस्र अधिक तीन सहस्र वर्ष पूर्व पहुँचता है। अतएव पश्चिम एवं पश्चिम एशिया के इतिहासज्ञ उससे दूर जाने में हिचकते हैं।

मिश्र की लिपि का उच्चारण अभी तक नहीं मिला है। अर्थ तो समझ लेते हैं परन्तु उच्चारण रूप क्या था, उसके ज्ञात होने पर भारतीय वैदिक संस्कृत भाषा से उनका सम्बन्ध था या नहीं प्रकाश पड़ेगा। मिश्र समीपवर्ती देश यूनान तथा रोम की भाषाएँ संस्कृति के समीप हैं। मिश्र इन दोनों के मध्य में पड़ता है। मिश्र शब्द की ध्वनि संस्कृत है। मिश्र भाषा ज्ञान एवं वहाँ के अभिलेख पढ़े जाने पर उस की प्राचीन सभ्यता क्या थी, वे कौन थे, आदि बातें प्रकाश में आ सकती हैं।

काश्मीर इतिहास का सम्बन्ध मध्य एशिया, सीमान्त देश, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, तिब्बत तथा चीन से जुटा है। सीमान्त देश परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते रहे हैं। सांस्कृतिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक आदान-प्रदान स्वाभाविक है। पहलवी भाषा तथा तत्सम्बन्धी साहित्य समझने की आवश्यकता है। ज़िन्दावेस्ता इस भाषा का प्रमुख ग्रन्थ है।

पूर्व मुसलिम कालीन सीमान्त देशों का इतिहास काश्मीर के इतिहास पर प्रकाश डाल सकता है। इसी प्रकार राजतंगिणी भी उनके इतिहास प्रणयन में योगदान करती है। ज़िन्दावेस्ता का नागरी लिपि संस्करण पूना से प्रकाशित हुआ है। उसे पढ़ने तथा देखने से अनायास भाव उठता है कि वैदिक किंवा संस्कृत भाषा किसी अपभ्रंश कालीन जगत् में विचर रहे हैं वह उतना ही रुचिकर है, जितनी पैशाची आदि काश्मीर सीमावर्ती भाषाएँ।

राजतरंगिणी का सर्वांगीण भाष्य उसी समय पूर्णता प्राप्त करेगा जब सीमान्त भाषाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अध्ययन किया जा सकेगा। निःसन्देह उन देशों में बिखरे शिलालेखों वास्तु, मूर्ति एवं भास्कर कला का अध्ययन अनुसन्धानों की ओर बढ़ सकेगा।

कल्हण चतुर्थ तरंग से लौकिक सम्वत् का क्रमानुसार उल्लेख करता है। उनपर अविश्वास करना मूढ़ता है। काश्मीर तथा काश्मीर सीमान्त देशों में मुसलिम शक्ति के उदय के पश्चात् प्राचीन ग्रन्थों

की उपेक्षा की गयी। धर्मोन्माद में उनकी होली लगी। अमूल्य, अलभ्य इतिहास सामग्रियाँ नष्ट हो गयीं। उनकी पुनःप्राप्ति नहीं हो सकती। जो कुछ सामग्री उपलब्ध है, उन्हीं का अध्ययन कर, उनसे निष्कर्ष निकालकर अथवा अनुमान किया जा सकता है।

मध्य एशिया तथा अफगानिस्तान से ईरान तक इस समय खनन कार्य हो रहे हैं। उनके कारण नित्य नवीन बातें मालूम होती जा रही हैं। यह हमारा भाष्य भी जिस प्रगति से जगत् प्रगति कर रहा है कुछ समय पश्चात् व्यर्थ निरर्थक हो जायगा तथापि तब तक के लिये रूपरेखा का कार्य करेगा। पाकिस्तान निर्माण के पश्चात् काश्मीर के सीमान्तवर्ती ही नहीं अनधिकृत रूप से काश्मीर भूखण्ड पर पाकिस्तान के अधिकार के कारण उन स्थानों पर जाना असम्भव हो गया है। वहाँ की पर्वतीय जातियों का अध्ययन करके तथा उनमें बिखरी सामग्री को बटोरने पर बहुत कुछ नवीन बातें प्रकट हो सकती हैं। उन्हें भविष्य के रचनाकारों के लिये छोड़ देना ही उचित प्रतीत होता है। सारहीन अनुमान एवं निष्कर्ष निकाल कर केवल और उलझन ही उत्पन्न करना होगा।

प्रथम खण्ड में राजतरंगिणी के काल तथा तरंगों का वर्गीकरण किया है। वह आज भी ठीक लगता है। प्रथम तीन तरंग प्रथम खण्ड में प्रकाशित हो चुका है। द्वितीय, प्रस्तुत खण्ड में चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ तरंग का अनुवाद एवं भाष्य है।

ऐतिहासिक दृष्टि से यह खण्ड इतिहास के अधिक समीप है। तत्कालीन अरबी तथा परशियन लेखों ने गैर मुसलिम देशों के विषय में बहुत कम लिखा है। जो लिखा भी है वह अधूरा है एकांगी है। उन्होंने प्राचीन इतिहास पर भूलकर भी नज़र नहीं फेकी है। इसलाम ग्रहण के पश्चात् नाम आदि जैसे बदल दिये जाते हैं, उसी प्रकार इतिहास बदलकर एक नवीन साँचे में देश का पुराकाल ढाला जाता है। आधुनिक जगत् में भी यह हो रहा है। लोकतन्त्रीय देश लोकतन्त्रीय दृष्टि से, कम्युनिस्ट किंवा समाजवादी मार्क्स के तूलिका से इतिहास में रंग भरते हैं।

यदि मुसलिम इतिहासकारों ने एकांगी किंवा अपने रंग में इतिहास रंगना चाहा तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता। वे कुछ और दूसरा करने के लिये स्वतन्त्र नहीं थे। शताब्दियों से प्रवाहित पुरानी अलौकिक किंवा धर्म सापेक्ष धारा से हटकर निरपेक्ष धारा में बहना उनके लिये कठिन था मुसलिम इतिहास-कारों ने नव मुसलिम के समान व्यक्ति का नाम परिवर्तित कर उसे जिस प्रकार एक नवीन दर्शन, एक नवीन समाज का पुरजा बना देते हैं, उसी प्रकार देश का भी नाम बदलकर उसे उसका पुरातन विस्मरण कराकर, नवीन जामा पहना देते हैं। इसीलिये काश्मीर का नाम बदलकर बागे सुलेमान रख दिया गया। उसकी पुरातन परम्परायें भारतीय इतिहास एवं संस्कृति से न जोड़कर मुसलिम देशों तथा मुसलिम इतिहास परम्परा से जोड़ी जाने लगी। आधुनिक युग इसका अपवाद नहीं है। रावलपिण्डी आदि का नाम बदल दिया गया। पाकिस्तान नाम ही इस क्रिया का प्रतीक है। इतने विकास पश्चात् भी संकुचित प्रवाह बदल नहीं सका है। अपितु जगत् को जैसे पुराने देवाधिराज युग में पुनः ले जाना चाहता है, जहाँ धर्म, विचार, जाति सहिष्णुता एवं निरपेक्षता के लिये स्थान नहीं होता।

कर्कोट काल की महत्त्वपूर्ण घटना, हुएन्त्सांग का आगमन है। पर्यटन वर्णन में जो कुछ उसने लिखा है, वह अनेक गुत्थियों को सुलझा कर, काश्मीर के तत्कालीन इतिहास पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। चीन के स्रोतों का जलपान करने के लिये उत्सुक कर देता है।

सीमान्त विदेशी मुख्यतया तुर्किस्तान, तिब्बत एवं अफगानिस्तान के लोगों का प्रवेश काश्मीर में होता रहा है।

कुछ राजनीतिक एवं आर्थिक, कुछ धार्मिक एवं विद्यानुराग के कारण काश्मीर में प्रवेश करते रहे। काश्मीर का द्वार विदेशियों के लिये उन्मुख रहा। काश्मीर में उनका आदर होता था। द्वितीय श्रेणी नागरिक कभी नहीं समझे गये। काश्मीरी समाज में मिल गये। क्योंकि उनका धर्म एवं संस्कृति एक ही थी।

द्वितीय चीनी पर्यटक ओकुंग ने काश्मीर के इतिहास पर और प्रकाश डाला है। तुर्क बौद्ध धर्मावलम्बी थे। काश्मीर के माध्यम से तुर्किस्तान, तिब्बत तथा चीन में बौद्ध धर्म फैला था। सीमान्तवर्ती तुर्कों का निकट सम्बन्ध काश्मीर से था। काश्मीर में बौद्ध धर्म विकसित था। विहारों तथा स्तूपों की शृंखलाओं से काश्मीर मण्डित था। राजा तथा जनता बुद्ध, वैष्णव तथा शैवादि धर्मों को एक साथ मानते थे। बुद्ध को विष्णु अवतार मानकर, बौद्ध धर्म को हिन्दू धर्म का अंग मान लिया गया था।

हिन्दू धर्म एवं समाज प्रगतिशील था, जड़ नही था। पुरानी मान्यताओं के प्रति आदर था। उनमें स्फूर्ति थी। जीवन था। दिग्विजय काश्मीर का आदर्श था। ललितादित्य का दिग्विजय भारत तक सीमित नहीं था। काश्मीर वाहिनी भारत के बाहर अफगानिस्तान, तुर्किस्तान एवं तिब्बत तक विजय-पताका फहराती पहुँची थी। भारत के बाहर दिग्विजय करते उसकी मृत्यु हुई थी। वह भारतीय सेना का विदेश भूमि पर अन्तिम एवं गौरवपूर्ण अभियान था। इसके पश्चात् भारत की सेना ने भारत के बाहर पग नहीं रखा।

इसलाम का उदय हुआ। उसकी बाढ़ में भारतीय सेना सीमा पार नहीं कर सकी और सीमा रक्षा करने में भी सफल न हो सकी। राजा जयापीड भारत का अन्तिम राजा है जो पश्चिम से चलता धुर पूर्व बंगाल तक पहुँचा था। तत्पश्चात् द्विग्विजय की धुँधली झलक कभी-कभी दिखायी पड़ जाती है। परन्तु उन्हें प्रादेशिक माना जायगा। भारत के अन्तिम सार्वदेशिक दिग्विजय करने का श्रेय जयापीड को ही प्राप्त है। वह गौरव जयापीड के माध्यम से काश्मीर को मिलता है। इस प्रकार काश्मीर दिग्विजयों के अध्याय को बन्द करता है।

कर्कोट वंश के पश्चात् काश्मीर में उत्पल वंश का राज्य स्थापित हुआ। कल्हण इस समय से विस्तृत वर्णन उपस्थित करता है। उसका ऐतिहासिक घटनाक्रम सत्य प्रमाणित हुआ है। मुख्य घटनाओं का कालक्रम दिया है। वे मुद्राओं, शिलालेखों, निर्माणों तथा विदेशी स्रोतों से प्रमाणित होते हैं। उसकी वर्णनशैली अर्धगाथात्मक से पूर्ण ऐतिहासिक एवं गम्भीर हो गयी है। वह छोटी से छोटी घटनाओं का विस्तार से वर्णन करता है।

उत्पल वंश के राज्य काल में आन्तरिक सुव्यवस्था, संघटन तथा निर्माण के कार्यों पर अधिक जोर दिया गया था। सुय्य ने वितस्ता की धारा बदल कर उसे नवीन धारा में बदल कर देना तत्कालीन अभियन्ताओं की अद्भुत सूझ एवं निपुणता का परिचायक है।

वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव इस काल में बढ़ता गया। शंकर वर्मा इस काल में सैनिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण राजा हुआ है। उसने दिग्विजय की परम्परा को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। उत्पल वंश राज्य के पश्चात् यशस्कर एवं संग्रामदेव के अनन्तर अभिमन्यु वंशीय राजाओं का समय आता है। उनके राजाओं का यथास्थान विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

३

तरंग

कर्कोट वंश—

१. दुर्लभवर्धन--प्रज्ञादित्य (लौ. ३६७७ = सन् ६०१ ई०) अश्वघास कायस्थ राज कर्मचारी से राजा बालादित्य ने अपनी एकमात्र कन्या अनंगलेखा का विवाह कर दिया था। राजा की मृत्यु के साथ-साथ गोनन्द वंश का अध्याय बन्द होता है। गोनन्द वंश ३६४१ वर्षों तक काश्मीर राज रंग मंच को प्रभावित करता रहा। उसकी कथा शेष होने पर, पत्नी राज कन्या अनंगलेखा के कारण, दुर्लभक राजमुकुट का अधिकारी हो गया। काश्मीर राज्य २५४ वर्षों तक कर्कोट वंशीय राजाओं द्वारा शासित होता रहा। अनंगलेखा साध्वी नहीं थी। परन्तु राज्य प्राप्ति पश्चात् चरित्र में सुधार हुआ।

दुर्लभ देव के नाम की मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। तंग वंशीय चीन इतिवृत्ति में दुर्लभवर्धन का उल्लेख मिलता है। उससे प्रकट होता है। वह काश्मीर पर सन् ६२७–६४९ ई० के मध्य राज्य करता था। चीन-काबुल व्यापारिक पथपर राजा का प्रभाव था। हुएन्त्सांग के स्वागत के लिये राजा की माता तथा कनिष्ट भ्राता हुष्कपुर गये थे। राजकीय स्वागत सम्भार में रथ, अश्व आदि थे। हुएन्त्सांग हुष्कपुर बिहार में ठहरा था। हुएन्त्सांग का वर्णन प्रामाणिक है। दुर्लभवर्धन ऐतिहासिक राजा है।

रानी अनंगलेखा ने अनंग भवन विहार निर्माण कराया। उसका पुत्र राजकुमार मल्हण अल्पायु था। थोड़े ही अवस्था में मर गया।

बुद्ध भगवान् विष्णु के अवतार मान लिये गये थे। अतएव बुद्ध एवं विष्णु दोनों की पूजा एक ही भगवान् के दो स्वरूपों में होती थी। इस काल में शैवमन्दिर प्रतिष्ठा का उल्लेख नहीं मिलता। मल्हण स्वामी, दुर्लभस्वामी मन्दिरों तथा अनेक विहारों के निर्माणों का उल्लेख मिलता है। इससे प्रकट होता है कि हिन्दू तथा बौद्ध एक साथ सहिष्णुतापूर्वक रहते थे। उनमें विरोध नहीं था।

२. दुर्लभक, प्रतापादित्य (द्वितीय) (लौ० ३७१३ = सन् ६३७ ई०) अनंगलेखा देवी का पुत्र दुर्लभक अपर नाम प्रतापादित्य था। उसके नाम की एक स्वर्ण मुद्रा भी मिली है। उसका मन्त्री उड था। उड ने अग्रहार स्थापित किया था। राजा ने अपने नाम पर प्रतापपुर पत्तन आबाद कराया। कुरहिन परगना में तापर स्थान है। प्राचीन कालीन ध्वंसावशेष मिले हैं। सिकन्दर बुतशिकन ने काश्मीर के सभी मन्दिर, विहार, मठ आदि नष्ट कर दिये थे। उसी समय से वर्तमान ध्वंसावशेष बिखरे हैं।

काश्मीर कर्कोटकाल में समृद्धिशाली देश था। विकाश शील था। सैनिक दृष्टि से भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा सुसंघटित था। विदेशी व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। आयात-निर्यात में कठिनता नहीं थी। देशी एवं विदेशी व्यापारियों में भेद-भाव एवं पक्षपात राज्य नहीं था। नोण व्यापारी का

वैभव राजा से भी अधिक था। नोण ने नोण मठ की स्थापना किया था। एक समय नोण ने राजा को आमन्त्रित किया। राजा नोण की पत्नी नरेन्द्रप्रभा के रूप यौवन पर मुग्ध हो गया। किन्तु मर्यादा के कारण अपना भाव प्रकट नहीं किया। राजा की मानसिक अवस्था का आभास नोण को मिल गया। अपनी पत्नी लेने के लिये राजा से आग्रह किया। राजा धर्म-विरुद्ध कार्य होने के कारण स्वीकार नहीं किया। नोण ने एक रास्ता निकाल लिया।

काश्मीर के मन्दिरों में नृत्य एवं गान की प्रथा थी। महिलायें देव सेवा हेतु जीवन अर्पण कर देती थीं। मन्दिर प्रवेश होते ही उनका सम्बन्ध पूर्व कुटुम्ब से छिन्न हो जाता था। वे बन्धनहीन हो जाती थीं। नोण ने पत्नी मन्दिर पर चढ़ा दिया। वह मन्दिर सेवा किंवा कुछ भी करने के लिये मुक्त थी। वह पत्नी नहीं थी। वह थी, केवल महिला। राजा ने उससे विवाह कर लिया।

इससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। मन्दिरों में नृत्य, गान होता था। नर्तकियाँ होती थीं। वे भगवान् पर जीवन एवं शरीर दोनों अर्पण कर देती थीं। दक्षिण के मन्दिरों में प्रचलित देव-दासी प्रथा तुल्य यह प्रथा नहीं थी। देव दासियाँ आचरणों के कारण कुख्यात थो। देवता के व्याज से देवस्थान दुराचार का केन्द्र बन गया था। परन्तु काश्मीर की स्थिति भिन्न थी। मन्दिरों की नर्तकियों एवं गायिकाओं का स्तर ऊँचा था। वे स्वेच्छानुसार मन्दिर में रह या बाहर जा सकती थीं।

नरेन्द्रप्रभा मन्दिर प्रवेश पश्चात् मुक्त थी। अपनी दिशा चुन सकती थी। मन्दिर प्रवेश के कारण सर्वदा के लिये मन्दिर की दासी नहीं थी। उसने राजा से विवाह कर लिया। काश्मीरी समाज ने इसे बुरा नहीं माना। राजमहिषी रूप में स्वीकृत किया। काश्मीर में अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित था। जाति बन्धन कठोर एवं निरंकुश नहीं था। जन मानस संकीर्ण नहीं था। राजा का पिता स्वयं अश्वघास कायस्थ था। परन्तु उसके नाना राजा बालादित्य ने कन्या का विवाह उससे किया था। पुरुष एवं स्त्री दोनों स्वेच्छा से अन्तर्जातीय विवाह करते थे।

नरेन्द्रप्रभा ने नरेन्द्रेश्वर शिव मन्दिर का निर्माण कराया। उसे चन्द्रापीड, तारापीड, मुक्तापीड पुत्र रत्न हुए। वे पुत्र जारज किंवा प्रतिलोम सन्तान नहीं माने गये। उन्हें राजपुत्र माना गया। वे काश्मीर के प्रतिभाशाली राजा क्रम से हुए हैं। भारत को उनके लिये गर्व है।

३. चन्द्रापीड—वज्रादित्य (लौ० : ३७६३ = सं० ६८७ ई०) पिता राजा दुर्लभक की मृत्यु पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रापीड काश्मीर का राजा हुआ। वह धर्मभीरु, न्यायप्रिय एवं योग्य शासक था।

चीन के तंग वंश इतिहास में राजा तारापीड का उल्लेख मिलता है। चन्द्रापीड दूरदर्शी था। राजनीति विशारद था। सुदूर पश्चिम से उठते नव मुसलिम खतरे को समझ लिया था। अरबों को परास्त करने के लिये, उनकी बाढ़ रोकने के लिये, चीन से सहायता को याचना किया था। चीन सम्राट् ने काश्मीर-राज को पद-गौरव से विभूषित किया था।

चन्द्रापीड धर्मात्मा, न्यायप्रिय, कुशल एवं सच्चरित्र राजा था। आचरण शुद्ध था। विचार निर्मल था। कल्हण लिखता है—उसके पूर्व धर्म एक पाद था। उसने धर्म को चारों पाद युक्त किया। वह सत्ययुग के राजाओं की श्रेणी में रखने योग्य था, परन्तु ब्रह्मा ने भूल से उसे मृत्यु लोक में भेज दिया था। क्षमा एवं विक्रम दोनों, विरोधी भाव राजा में थे। किन्तु उनमें द्वन्द्व नहीं होता था। उसका कोश समान भाव से जनता को संतृप्त करता था। शुद्ध श्री ने दोषों को अन्य नृपों में त्याग कर, उसे ग्रहण

किया था। राजा उद्विग्नकारक कार्य नहीं करता था। स्तुत्य कार्य करने पर, उसके लिये स्तुति प्राप्त करने पर, लज्जित होता था। विनयी था। मन्त्रियों एवं राजसेवकों को विनयी बनाया था। धर्मभीरुता के कारण निज यश त्यागकर भी कार्य करता था।

कल्हण राजा के न्यायप्रियता, सज्जनता का दो-तीन उदाहरण उपस्थित करता है। राजा त्रिभुवन स्वामी मन्दिर निर्माण करना चाहता था। किन्तु एक चर्मकार की कुटिया बीच स्थान में पड़ती थी। चर्मकार ने न तो कुटी दिया और न कार्य आरम्भ करने के लिये सूत लगाने दिया। चर्मकार धन लेकर भी कुटी बेचने के लिये तत्पर नहीं था। बात राजा के पास पहुँची। राजा ने उसे सादर बुलाया। बाह्याली में राजा एवं चर्मकार का संम्वाद उस समय के समाज की दृढ़ता एवं अधिकारों की मान्यता का ज्वलन्त उदाहरण है। राजा बाह्याली में चर्मकार से मिला था। यह इस बात की ओर संकेत करता है। उस समय स्पृश्यापृश्य का विचार जोर पकड़ रहा था।

राजा ने उससे प्रार्थना किया। चर्मकार ने उत्तर दिया—'यदि आप मेरी कुटी पर, पधारकर, कुटी के लिये भिक्षा माँगें, तो दूँगा।' राजा अविलम्ब चर्मकार की कुटी पर पहुँचा। कुटी का दान माँगा। चर्मकार ने कुटी दे दिया। त्रिभुवन स्वामी मन्दिर निर्माण हुआ।

जनता की मनःस्थिति पर इस घटना से प्रकाश पड़ता है। चर्मकार एवं राजा समान स्तर के व्यक्ति प्रशासन के सम्मुख प्रकट होते हैं। चर्मकार को धनादि प्रलोभित नहीं कर सका। उसने आत्म-सम्मान तथा स्वाभिमान को अधिक महत्त्व दिया। राजभय से कुटी नहीं बेचा। जानता था। राजा निरंकुश नहीं था। वह भी धर्म से मर्यादित था। इस भावना ने जनता का स्तर उठाया था। अपनी अधिकार सीमा में समाज कार्य करता था। यह इस बातको प्रकट करता है। राजा न्याय परिक्रिया एवं न्याय संहिता की उपेक्षा नहीं कर सकता था। शासक नहीं था। राजा में प्रभुसत्ता नहीं अपितु विधि, आचार एवं परम्परा में निहित थी। उस समय काश्मीरी धन की अपेक्षा मान, प्रतिष्ठा एवं स्वाभिमान को अधिक महत्त्व देते थे। राजा एवं प्रजा की मर्यादा एवं समाज के जीवन स्तर को कथानक स्पष्ट करता है।

एक दूसरा उदाहरण कल्हण और उपस्थित करता है। एक ब्राह्मणी थी। उसके पति की हत्या दूसरे ब्राह्मण साथी ने कर दिया। कोई प्रत्यक्ष प्रमाण हत्या का नहीं मिलता था। ब्राह्मणी राज द्वार पर प्रायोवेशन (आमरण अनशन) करने लगी। राजा कुछ पता नहीं चला सका।

राजा स्वयं त्रिभुवन स्वामी मन्दिर के सम्मुख न्याय प्राप्ति हेतु अनशन करने लगा। रात्रि में स्वप्न हुआ। जिस व्यक्ति पर सन्देह ब्राह्मणी करती है, उसे मन्दिर में शालिचूर्ण विकीर्ण कर, उसपर चलाया जाय। यदि शालिचूर्ण पर अपराधी का पदचिह्न दिखायी पड़े, तो अपराध सिद्ध समझकर, दण्ड दिया जाय। राजा ने खर्खोद विद्या पारंगत ब्राह्मण को अपराधी पाया। उसे दण्ड दिया। ब्राह्मण अवध्य था। अतएव उसे मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सका।

खर्खोदविज्ञ ब्राह्मण ने राजा के भाई की प्रेरणा पर वर्णाश्रम पालक, भूपाल चूणामणि चन्द्रापीड पर अभिचार किया। चन्द्रापीड मरणासन्न हो गया। राजकर्मचारियों ने ब्राह्मण को दण्ड देना चाहा। परन्तु राजा ने उसे क्षमा कर दिया। केवल इतना कहा—'इसमें इसका क्या दोष है। दोष उसका है, जिसकी प्रेरणा पर उसने अभिचार क्रिया द्वारा प्राणहरण का प्रयास किया था।' राजा ने त्रिभुवन स्वामी मन्दिर की स्थापना किया। राजा के मन्त्री छलित ने छलितस्वामी मन्दिर का निर्माण कराया।

राजा का गुरु मिहिर दत्त ने गम्भीर स्वामी की स्थापना की थी। राजा विष्णु एवं बुद्धानुरागी था। उसके काल में शिव मन्दिर एवं प्रतिष्ठा सम्बन्धी उदाहरण नहीं मिलता। राजा चिरस्थायी यश के साथ दिवंगत हुआ।

४. तारापीड-उदयादित्य (लौ० ३७७२ = सन् ६९६ ई०) भ्रातृद्रोह के कारण तारापीड काश्मीर का राजा चन्द्रापीड के पश्चात् हुआ। ज्येष्ठ भ्राता कनिष्ट के सर्वथा विपरीत था। ब्राह्मण द्रोही था। उसके कारण ब्राह्मणों ने अभिचार क्रिया द्वारा ज्येष्ठ भ्राता की हत्या कराकर, राज्य तारापीड को दिलवाया था। अतएव तारापीड ब्राह्मणों से शंकित था। उसने ब्राह्मणों का दमन करना आरम्भ किया। ब्राह्मणों ने अभिचार किया। जिन उपायों से वह राज्य प्राप्त किया था, वे ही उपाय उसके मरण के कारण हुए। काश्मीर में अभिचार द्वारा किसी का मारना साधारण बात थी। प्राचीन काश्मीर जीवन का यह एक कुसंस्कार था।

५. ललितादित्य-मुक्तापीड (लौ० ३७७६ = सन् ७०० ई०) ललितापीड तथा जयापीड के काल में काश्मीर भारत में सबसे शक्तिशाली राज्य था।

ललितादित्य मुक्तापीड तारापीड का भाई था। भारत वर्ष का अन्तिम बहिर्जगत् दिग्विजयी राजा था। उसके समय में अन्तिम बार भारतीय सेना भारत से बाहर दिग्विजय हेतु गयी थी। बारह सौ बहत्तर वर्ष इस घटना को बीत गये, परन्तु भारतीय राजा, भारतीय नेतृत्व एवं भारत गौरव वृद्धि हेतु भारतीय सेना भारतीय सीमा के बाहर नहीं जा सकी।

कल्हण विस्तार के साथ ललितादित्य का वर्णन करता है। उसमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री है। उनका अध्ययन एवं उपयोग अभी तक पूर्णरूपेण नहीं हो सका है। राजा ने भारत के बाहरी भूखण्ड पर राज्य स्थापित किया था। विदेशी विद्वानों ने ललितादित्य का उल्लेख किया है। उसकी ऐतिहासिकता सिद्ध है।

ललितादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसका अपर नाम प्रतापादित्य भी था। उसकी मुद्रायें काश्मीर से उत्तर-प्रदेश, बिहार में मुंगेर तक प्राप्त हुई हैं। कन्नौज अर्थात् कान्यकुब्ज के राजा यशोवर्मा को पराजित किया था। उसकी विजयी सेना कलिंग किंवा उड़ीसा तक पहुँची थी।

तंगवंशीय चीन सम्राट हुएन्त्सुंग (सन् ७१३-७५५ ई०) के पुरावृत्ति में लगभग सन् ७३६–७४७ ई० के मध्य मुक्तापीड का उल्लेख मिलता है। ललितादित्य की अपनी वैदेशिक नीति थी। उसने पश्चिम से उठते मुसलिम खतरे को समझा था। उसने सीमावर्ती देशों से सम्पर्क स्थापित किया उनसे दौत्य सम्बन्ध किया। तिब्बत तथा अरब दोनों की बाढ़ रोकने में सफल हुआ था। कल्हण का ललितादित्य 'सार्वभौम' राजा है। सार्वभौम राजा की उन दिनों भारतीय मान्यता के अनुसार इक्कावन करोड़ कर्ष वार्षिक आय मानी जाती थी।

कल्हण ललितादित्य की प्रशंसा करते शिथिल नहीं होता। उसकी लेखनी उत्साह के साथ स्वतः अग्रसर होती जाती है। भाषा ओजमयी स्फूर्तिपूर्ण हो जाती है। उसका प्रताप एवं विक्रम तथा मानवता अतुलनीय है। ललितापीड जैसा सक्षम राजा काश्मीर तथा भारत ने उस समय से आज तक नहीं उत्पन्न किया है। वह भारत का अन्तिम विदेश दिग्विजयी राजा था। उसका समय सैनिक देशी तथा विदेशी अभियानों में व्यतीत हुआ था। कल्हण का वर्णन ऐतिहासिक घटनाओं तथा रोमांचक

रुचिकर कथानकों से भरा पड़ा है। तथापि ललितादित्य ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसे काल्पनिक राजा मानना मूढ़ता होगी।

काश्मीर वीरों की महान् वाहिनी काश्मीर से अभियान करती, दुंदुभी बजाती, यशो पताका फहराती, कान्यकुब्जेश्वर यशोवर्मा को पराजित करती, उत्तरप्रदेश, बिहार को पार करती, पूर्व सागर तक पहुँच गयी थी। किसी में भी साहस शेष नहीं रह गया था, जो काश्मीरी वीरों का सामना करता। वहाँ से प्राग्ज्योतिष की ओर होती, काश्मीर वाहिनी दक्षिण पथ की ओर मुड़कर, गौड़ एवं कलिंग का अतिक्रमण करती, कर्णाट देश पहुँचकर, कावेरी तट पर नारिकेल जलपान करती है। पुनः गुजरात से होती, किन्नर नरेश, कम्बोज, भौट्ट देश, दरद, उत्तर सिन्धु, उत्तर कुरु, वालकाम्बुधि (गोबी) सिकता सिन्धु, तुषार, स्त्रीराज्य जालन्धर (कांगड़ा), लोहर (पूँछ) पर अधिकार कर, मुम्मिन को तीन बार पराजित करती है।

उत्तर पश्चिम सीमा परवर्ती देशों का इतिहास लुप्त प्राय है। मुसलिम विजय के पश्चात् उन देशों के प्राचीन निर्माण नष्ट कर दिये गये। उनपर नवीन धार्मिक मुसलिम निर्माण बनाये गये। पुस्तके नष्ट कर दी गयीं। समस्त जाति के मुसलिम धर्म ग्रहण कर लेने पर, उन्हें अपने पुराने इतिहास के प्रति रुचि नहीं रह गयी थी। जो कुछ सामग्री शेष थी वह भी स्वतः नष्ट होती गयी।

सान्धिविग्राहिक विवेकी मित्रशर्मा था। राजा ने अष्टादश कर्म स्थानों के स्थान पर पाँच कर्म स्थान और स्थापित किये। उसने यशोवर्मा के पराजय पश्चात् मित्रशर्मा को पंचमहाशब्द की उपाधि एवं पद से विभूषित किया।

राजा की सभा में वाक्पतिराज एवं भवभूति जैसे महान् कवि एवं विद्वान् थे। उसने पंजाबस्थ जालन्धर (त्रिगर्त), लोहर (पूँछ) आदि अनुजीवियों को दिया था। उसने तुषारों पर विजय किया था। तुषार देश का अर्थ तोष अथवा तुखारिस्तान है। उसमें बदखशाँ एवं वक्षु नदी का ऊपरी भूखण्ड सम्मिलित था। तुर्क उस समय बौद्ध थे। उन्होंने काश्मीर में अनेक चैत्य तथा देवस्थान स्थापित किये थे। तुर्क विजय-उत्सव अल्बेरुनी के समय तक काश्मीर में मनाया जाता था। राजा ने मुम्मिन जो सम्भवतः उर्ध्व भागीय सिन्ध उपत्यका का तुर्की अधिपति था, तीन बार पराजित किया। भौट्ट विजय का समर्थन तंगवंश के इतिहास से मिलता है। दरद काश्मीर को उत्तर तथा उत्तर पश्चिम सीमावर्ती जाति है। भौट्ट विजय के समय उनका विजय करना स्वाभाविक जान पड़ता है। पुरातन दरद ही आजकल का दर-दिस्तान है।

ललितादित्य अपने समय का विशाल निर्माणकर्ता यशस्वी राजा है। उसने दर्पितपुर, मुनिश्रितपुर, फलपुर, पर्णोत्स (पूँछ), ललितपुर, मार्तण्ड, लोकपुण्य, परिहासपुर तथा अनेकानेक पत्तनों एवं नगरों को स्थापना किया था। उसकी रानी चक्रमर्दिका ने चक्रपुर तथा कमला ने कमला हट्ट बसाया था।

नगर एवं पत्तन निर्माणों के अतिरिक्त उसने बौद्ध एवं विष्णु देवस्थानों का निर्माण किया था। उनमें राजविहार चतुश्शाला, बृहद्चैत्य, बृहद्जिन मुख्य हैं। नृसिंह, मुक्तास्वामी, परिहास केशव, मुक्ताकेशव, महावाराह, गोवर्धनधर, विष्णुध्वज, कमला केशव, मित्रेश्वर, राम तथा लक्ष्मण आदि की स्थापना किया था। ललितादित्य की मन्त्रि-परिषद अपने समय की सर्वश्रेष्ठ विद्वानों का समूह था। चंकुण विदेशी तुषार था। परन्तु

वह भी राजा ललितादित्य का यशश्वी मन्त्री था। उसने चंकुण विहार का निर्माण कर, ललितादित्य द्वारा विहार से लायी गई–सुगत की प्रतिमा स्थापित किया था। चंकुण का साला ईशानचन्द्र ने ईशान विहार, आचार्य भप्पट ने भप्पटेश्वर, कमला हट्ट निर्माणकर्ती रानी कमला ने कमलाकेशव, रानी चक्रमर्दिका ने देव लक्ष्मण स्वामी तथा अनेक लोगों ने रक्षटेश्वर आदि की स्थापनायें की थी।

राजा जितना ही वीर था, उतना ही रचनात्मक कार्यों में रुचि लेता था। उसने सिंचाई के लिए अरघटो (रहटो) को लगवाया था। कुल्या अर्थात् नहरों द्वारा सूखी भूमि के सिंचन हेतु, नहर निर्माण कराया था। उसकी रानी ईशान देवी ने खातम्बु निर्माण कराया।

राजा अथक परिश्रमी था। सर्वदा नवीन निर्माणों एवं नवीन देश विजयों में रत रहता था। राजा उत्साही, कर्मठ, सत्यवादी एवं चतुर शासक था। वह भीषण से भीषण परिस्थितियों में भी साहसहीन नहीं होता था। पराक्रम में कमी नहीं होती थी। परिस्थितियाँ जितनी कठिनाइयाँ उसके मार्ग में लाती थीं, राजा उतना ही प्रतिभाशाली एवं सफल सिद्ध होता था।

राजा का अन्तिम अभियान काश्मीर के बाहर आर्याणक (ईरान) पर हुआ था। वही वह दिग्विजय करता दिवंगत हुआ था। मन्त्रियों के बुलाने पर भी, काश्मीर की जनता की प्रार्थना पर भी, सुख पूर्वक काश्मीर में जीवन निर्वाह करने के लिये नहीं लौटा। उसने विदेश से ही जो इच्छापत्र लिखकर भेजा था, वह उसके राजनीतिक विचारों एवं चरित्र का सुन्दर दर्पण है।

ललितादित्य के जीवन में दो ही बात खटकती है। काश्मीर में शारदा की यात्रा के लिये भारतवर्ष से यात्री तथा संस्कृत पढ़ने के लिये गौड़ देश के विद्यार्थी जाते थे। राजा ने गौड़ देश के राजा का बध करा दिया। कारण कल्हण नहीं देता।

ललितादित्य उदार, सहिष्णु था। गलती तुरन्त स्वीकार कर लेता था। एक समय वह मद-पान की अवस्था में प्रवरपुर दाह की आज्ञा दे दिया। मन्त्रियों ने दाह न कराकर, घास के बण्डलों में आग लगवा दिया। राजा ने समझा, आदेश का पालन हो गया। जब होश आया, तो पश्चात्ताप करने लगा। वास्तविकता ज्ञात होने पर, उसने आदेश दिया कि मदपान की अवस्था में दी गयी, उसकी किसी आज्ञा का पालन न किया जाय। उसने मन्त्रियों की प्रशंसा उनके विवेकपूर्ण कार्य के लिये किया।

ललितादित्य ने काश्मीर का एकीकारण किया। उसने गिलगित, दरद आदि स्थानों से तिब्बत का प्रभाव समाप्त कर, उन्हें काश्मीर प्रभावक्षेत्र में लाया। उसने अरबों की बाढ़ रोक दिया। मुसलमानों का साहस नहीं हुआ। वे आगे बढ़ सके। भारत, अफगानिस्तान आदि देश ललितादित्य के कारण कुछ शताब्दियों तक और आजादी की सास ले सके। ललितादित्य ने चीन से भी सहायता माँगी थी। अरबों को पश्चिम-उत्तर एशिया से निकालने के लिये।

ललितादित्य के समय बुद्ध तथा हिन्दूधर्म दोनों एक साथ विकसित हो रहे थे। चीनी पर्यटक ओ-कुंग ललितादित्य के मृत्यु के कुछ वर्षों पश्चात् काश्मीर की यात्रा किया था (सन् ७५९–७६३ ई०)। उसके वर्णन से प्रकट होता है कि बौद्ध धर्म विकसित स्थिति में था। काश्मीर में अनेक विहार, स्तूप एवं चैत्य थे। राजा तथा उसके सहयोगी बौद्ध निर्माणों में रुचि लेते थे। दोनों धर्मों के निर्माण कार्य होते थे। विष्णु तथा बुद्ध दोनों की प्रतिमाएँ ललितादित्य ने स्थापित किया था। ललितादित्य के समय विदेशी

काश्मीर में आते थे। उनके प्रति आदर का व्यवहार किया जाता था। चंकुण तुर्क बौद्ध था। वह ललितादित्य का मन्त्री था।

ललितादित्य की सबसे बड़ी देन है। उसके समय पश्चिमोत्तर सीमान्त दिशा से किसी भी विदेशी शक्ति का भारत में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। वह यदि न होता, तो मुसलिम शक्ति पाँच शताब्दी पूर्व ही भारत में प्रवेश कर, इसलामी पताका फहरा चुकी होती।

राम एवं लक्ष्मण का ऐतिहासिक प्रमाण शिलाखण्डों अथवा निर्माणों में नहीं मिलता। इस कारण अनेक देशी एवं विदेशी विद्वान् राम को काल्पनिक पुरुष मानते हैं।

ललितादित्य ने इतिहास की इस गुत्थी को सुलझाया है। उसने पुरातत्त्व विभाग के समान खनन कार्य कराया था। एक टीला अथवा डूहा के नीचे से दो मन्दिर निकले थे। मन्दिर के द्वार पर लिखा था कि राम एवं लक्ष्मण ने दोनों केशव मन्दिरों की स्थापना की थी। वहाँ से प्राप्त प्रतिमा को राजा ने परिहास पुर में स्थापित किया था। कल्हण इस खनन कार्य का उल्लेख करता है। इस मन्दिर में नृत्य गान हेतु एक परिवार को वृत्ति भी प्रदान की गयी थी। युगों से मन्दिर के भूमि में गड़ जाने पर भी, परिवार की कन्यायें परम्परा का अनुकरण करती नृत्य एवं गान उस स्थान पर करती थीं। इस सूत्र के आधार पर वहाँ खनन कार्य हुआ। मन्दिर निकला। उनपर स्पष्ट वर्णों में लिखा था। मन्दिर का निर्माण राम एवं लक्ष्मण ने कराया था। इस विषय पर यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

ललितादित्य की मृत्यु भारत के बाहर आरण्यक देश में विजय करते समय हुई थी। एक मत है कि तुषार देश में अति तुषार वृष्टि के कारण राजा ससैन्य तुषार में नष्ट हो गया। दूसरा मत है कि मिहिरकुल के समान उसने स्वयं अग्नि प्रवेश किया। तीसरा मत है कि उत्तरा पथ में वह देवसुलभ भूमि में प्रवेश किया। कल्हण स्वयं इस विषय में निश्चयात्मक वर्णन नहीं करता।

६. कुवलयापीड (लौ० ३८१३ = सन् ७३७ ई०) रानी कमला देवी से उत्पन्न राजा ललितादित्य का ज्येष्ठ पुत्र कुवलयापीड पिता की मृत्यु पश्चात् राजा हुआ। तत्कालीन समय का महान् त्यागी राजा हुआ है। आध्यात्म अनुराग में उसने राज्यश्री का त्याग कर, योग मार्ग का अनुकरण किया था।

राजा ने देखा कि उसके मन्त्री, भृत्य, सेवक आदि उससे तथा उसके विरोधी उभय पक्षों से धन संग्रह कर, सबके कृपापात्र बनकर, धूर्तता पूर्वक धन अर्जन करते हैं। राजा को मानव के इस पतन पर राज्य प्रशासन से विरक्ति हो गयी। उभय पक्षों से धन ग्रहण करने वालों को समाप्त किया। राज्य को निष्कंटक किया। उस समय भी एक मन्त्री ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया। मन्त्री को दण्ड देने का विचार किया। जाँच पर पता चला कि अनेक लोग राज्य प्रशासन में ऐसे थे, जिनकी निष्ठा वास्तव में उसके प्रति नहीं थी। केवल स्वार्थसिद्धि हेतु प्रशासकीय स्थानों पर जमे थे। उसने निश्चय किया। उन लोगों को दण्ड देना चाहिए। साथ ही विचार उठा। इतने प्राणियों की हत्या से क्या लाभ? उसे विराग उत्पन्न हुआ। मानव की छल-प्रवृत्ति, उनकी धूर्तता, उनके पाखण्ड पर, उसे घृणा उत्पन्न हो गयी। उसने राज त्याग का निश्चय किया। प्लक्षप्रस्रवण वन चला गया।

राजा के वन गमन पर पिता का मित्र मन्त्री मित्रशर्मा शोकान्वित हो गया। उसने स्वयं अपने प्राणों का त्याग वितस्ता-सिन्धु संगम काश्मीर प्रयाग में कर दिया।

७. वज्रादित्य—वप्पियक—ललितादित्य : (लौ० ३८१४ = सन् ७३८ ई०) वज्रादित्य का अपर नाम वप्पियक था। वह माता रानी चक्रमद्रिका एवं पिता ललितादित्य का पुत्र था। राजा कुवलयादित्य का विमातृ भ्राता था। उसकी प्रकृति ज्येष्ठ भ्राता वज्रादित्य के सर्वथा विपरीत थी। दुर्वासा समान क्रोधी था। परिहासपुर में पितृप्रदत्त विविधोपकरण अपहृत कर लिया। उसका अन्तःपुर कामुक स्त्रियों से भरा रहता था। उनमें वीजाश्व सदृश विचरता था।

काश्मीर में दासप्रथा नहीं थीं। मानव क्रय एवं विक्रय की सामग्री न थे। मुसलिम प्रभाव के कारण और मुसलिम व्यापारियों का मानव व्यापार में संकोच न होने के कारण राजा ने बहुत काश्मीरियों को म्लेच्छों के हाथों बेच दिया। उसका आचार, विचार एवं व्यवहार म्लेच्छों तुल्य हो गया।

इस वर्णन से प्रकट होता है। काश्मीर में इस समय मुसलिम व्यापारी काफी संख्या में आ गये थे। मनुष्यों का क्रय-विक्रय पशुओं के समान करते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि काश्मीर में मुसलिम दासों का एक समूह बन गया। दासों का धर्म उनके स्वामी का धर्म होता था। काश्मीरी दास ही मुसलिम बन गये। काश्मीरी मुसलमानों की संख्या बढ़ने लगी। यह विशम परिस्थिति इसके पूर्व काश्मीर में उत्पन्न नहीं हुई थी। मानव व्यापार की सामग्री नहीं था। काश्मीर के सरल, उत्साहमय, उमंगमय समाज में शोकान्वित पशुओं समान व्यवहार किये जाने वाले स्वयं काश्मीरियों के वंशज अलग हो गये थे। उनका एक अलग समाज था। वे काश्मीरी स्वतन्त्र नागरिक नहीं थे। उनकी स्वतन्त्रता के साथ, उनके धर्म का लोप हो गया था। उनकी यह परिस्थिति अनजाने काश्मीरी समाज को प्रभावित करने लगी।

८. पृथिव्यापीड—(लौ० : ३८२१ = सन् ७७६ ई०) रानी मंजरिका देवी तथा वज्रादित्य का पुत्र पृथिव्यापीड राजा हुआ। उसके विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। कल्हण ने उसका वर्णन केवल एक श्लोक में समाप्त कर, उसकी तुलना यम से किया है।

९. संग्रामापीड—(प्रथम) (लौ० : ३८२५ = सन् ७४९ ई०) पृथिव्यापीड का विमातृ भ्राता संग्रामापीड (प्रथम) पृथिव्यापीड के पश्चात् राजा हुआ। वह रानीमम्मा का पुत्र था। उसने केवल सात दिन राज्य किया।

१०. जयापीड--विनया दित्य : (लौ० ३८२५ = सन् ७४९ ई०)

११. जज्ज—(लौ० ३८२५ = सन् ७४९ ई०) जिस समय जयापीड विजय हेतु काश्मीर के बाहर गया था, उस समय उसका शाला जज्ज सिंहासन पर अधिकार स्थापित कर लिया। जब जयापीड काश्मीर में प्रवेश किया, तो जज्ज उससे युद्ध करने के लिए आया। कई दिनों तक जयापीड शुष्कलेत्र ग्राम में जज्ज से युद्ध करता रहा। जज्ज के शासन से क्षुभित जनता ने जयापीड का साथ दिया। श्रीदेव एक ग्राम चाण्डाल ने युद्ध क्षेत्र में जज्ज के मुँह पर पत्थर से आघात किया। जज्ज अश्व से गिर पड़ा। उसके साथी भाग गये। जज्ज मारा गया और जयापीड ने पुनः राज्य प्राप्त किया।

१२. जयापीड पुनर्राज्य प्राप्ति द्वितीय बार (लौ० : ३८२८ = सन् ७५२ ई०) वज्रादित्य का अन्तिम कनिष्ठ पुत्र था। कर्कोट वंश के दुर्बल एवं अप्रतिभाशाली राजाओं जिनका उल्लेख विदेशी तथा अन्य स्वतन्त्र स्रोतों में नहीं मिलता, राजा जयापीड ज्वाज्वल्यमान नक्षत्र तुल्य प्रकाशित होता है। उसकी प्रतिभा के कारण काश्मीर ने अपना परम्परागत गौरव पुनः प्राप्त किया था।

जयापीड ने दो बार दिग्विजय यात्रा काश्मीर के बाहर किया था। उसका आदर्श ललितादित्य जैसा था। कल्हण का वर्णन पढ़कर काश्मीरराज मेघवाहन एवं रणादित्य का स्मरण हो जाता है। उनके चरित्रों के समान कल्हण ने जयापीड का चरित्र गाथात्मक बना दिया है। जयापीड ऐतिहासिक व्यक्ति है। उसका उल्लेख तत्कालीन संस्कृत कवियों के काव्यग्रन्थों में मिलता है। जयापीड स्वयं संस्कृत का सफल कवि था। अन्दरकोट में आज भी गाथा प्रचलित है भीड़ से नष्ट होने वहाँ जयपुर बसाया था। निस्सन्देह जयापीड ने कन्नौज विजय किया था। कर्कोट वंश का [illegible] शाली राजा था। इसने भी पितामह राजा ललितादित्य तुल्य दिग्विजय किया था। किन्तु उसका सैनिक अभियान भारतीय सीमा [illegible] ही सीमित था। ललितादित्य के समान वह 'आर्याणक' (ईरान) तक कौन कहे काश्मीर सीमा का उल्लंघन कर उत्तर पश्चिम की ओर नहीं बढ़ सका था।

जयापीड की विजय यात्रा काश्मीर के महान् राजाओं को दिग्विजय शृंखला की अन्तिम कड़ी है। अन्तिम समय काश्मीर सीमा उल्लंघन कर काश्मीरी वीरों ने सैनिक यात्रा की थी। तत्पश्चात् काश्मीरी राजाओं को गतिविधि, काश्मीर तक ही सीमित रह गयी। तथापि वे मुसलिम आक्रमणों का सफलता पूर्वक सामना करते रहे। और उन्हें पीछे हटाते रहे। स्वाधीनता की रक्षा सन् १३३९ ई० तक स्वतन्त्रता का उपयोग करते रहे।

राजा जयापीड के समय काश्मीरी सैनिकों में पुरुषार्थ की कमी मिलती है। उसके साथ जितने काश्मीरी वीर दिग्विजय के लिये काश्मीर से बाहर निकले थे उनमें अत्यधिक यात्रा की कठोरता के कारण साथ त्याग कर काश्मीर लौट गये। स्वामिभक्ति में शिथिलता आ गयी थी। कल्हण काश्मीरियों की इस मनोवृत्ति पर दुःख प्रकट करता है। जयापीड साहसहीन नहीं हुआ।

जयापीड मित सैनिकों एवं परिकरों के साथ अपनी यात्रा आरम्भ रखा। वह परिमित सेना के साथ प्रयाग पहुँच गया। प्रयाग में उसने एक कम एक लाख अश्वों का दान किया। उसने वहाँ गंगा जल पात्रों पर अपनी मुद्रा तब तक के लिये लगाते रहने का आदेश दिया जब तक पुन: कोई एक लाख अश्वों का दान नहीं कर देता। गंगा जल पत्र पर 'श्री जयापीड देवस्य' मुद्रा लगती थी। मुद्रांकित जल काश्मीर की गौरव गाथा के साथ भारत वर्ष के कोने-कोने में पहुँचता था। काश्मीरी सैनिकों के व्यवहार से उनका मन उदास हो गया।

सेना को काश्मीर लौट जाने का आदेश दिया। रात्रि में सेना से बाहर एकाकी भेष बदलकर निकल गया। जिस गर्व के साथ दिग्विजय के लिये निकला था। उस गर्व पर आघात पहुँचा था। वह बिना दिग्विजय किये काश्मीर में पहुँचकर अपना मुख नहीं दिखाना चाहता। उसके स्वाभिमान को ठेस लगी थी। यदि काश्मीरी सेना उसका साथ देती तो वह ललितादित्य से कम काश्मीर को गौरवान्वित न करता।

राजा भ्रमण करता पाण्ड्रवर्धन नगर में प्रवेश किया वहाँ जयन्त राजा था। नगर स्थित कार्तिकेय मन्दिर में गया। मन्दिर में भरतानुगामी नृत्य, गीतादि हो रहा था। राजा गीतादि के पश्चात् मन्दिर के बाहर द्वारशिला पर बैठ गया। उसे कमला नामक नर्तकी ने देखा। कमला ने दूती के माध्यम से राजा को घर बुलाया। नर्तकी के उपचार से राजा विस्मित हो गया। वह नर्तकी के निवास स्थान पर निवास करने लगा।

नगर एक सिंह के आतंक से आतंकित था। सिंह क्षुधा शान्ति हेतु प्रतिदिन नगर में प्राणी

संहार करता था। नगर के राजा एवं राजपुत्र भी रात्रि में सिंहभय से बाहर नहीं निकलते थे। राजा ने सिंह का बध कर, नागरिकों एवं राजा का त्रास दूर किया। सिंह के मुख में राजा का नामांकित कंकण फँस गया था। दूसरे दिन राजा ने सिंह मुख स्थित कंकण पर जयापीड नाम देखकर चकित हुआ। जयापीड का अन्वेषण आरम्भ हुआ। [illegible]ला नर्तकी के यहाँ रहते, जयापीड का भेद खुल गया। राजा जयन्त सादर राजप्रासाद में जयापीड को [illegible] उनमें वीजा[illegible] कन्या कल्याण देवी का विवाह उससे कर दिया। जयापीड ने पंच गौड़ नरेशों को जीता। जयन्त की रा[illegible] सीमा बढ़ाया।

कालान्तर में मित्रशर्मा का पुत्र अमात्य देवशर्मा राजा के पास पहुँचा। राजा कल्याण देवी तथा कमला के साथ काश्मीर प्रस्थान किया। मार्ग में कान्य कुब्जेश्वर से राज्यचिह्न स्वरूप सिंहासन प्राप्त किया।

जज्ज काश्मीर में राजा बन गया था। जयापीड के काश्मीर पहुँचने पर, जज्ज युद्ध के लिये निकला। जज्ज युद्ध में श्रीदेव ग्राम चाण्डाल द्वारा मारा गया। जज्ज की मृत्यु के पश्चात् जयापीड पुनः काश्मीर के सिंहासन पर बैठा। शत्रुओं का संहार राजा ने जहाँ किया था, वहाँ कल्याण देवी ने कल्याणपुर बसाया। राजा ने विपुल केशव तथा कमला देवी ने कमलापुर नगर बसाया। कमला देवी को राजा ने महाप्रतीहार पीड़ा नामक अधिकार प्रदत्त किया। राजा ने अन्य प्रदेशों से विद्वानों एवं पण्डितों को लाकर काश्मीर मण्डल को गुणीजनों युक्त बनाया। क्षीर नामक उपाध्याय से विद्या ग्रहण कर राजा विद्वान् हो गया। उन दिनों राजपद की अपेक्षा पण्डितपद काश्मीरियों को अधिक प्रिय था। भट्ट उद्भट राजा का सभापति था। कुट्टनीमत प्रणेता दामोदर गुप्त राजा का मन्त्री था।

जयापीड ने जयपुर कोट (अन्दर कोट) निर्माण कराया। उसने महाकार बुद्ध प्रतिमा एवं बिहार निर्माण के साथ-साथ जयदेवी की प्रतिष्ठा भी किया। चतुरात्मा एवं शेषशायी केशव की अपने नगर में स्थापना की।

स्वप्न में श्री कृष्ण ने द्वारिका निर्माण का आदेश दिया। राजा ने द्वारावती का निर्माण कराया। द्वारावती अधिष्ठान को बाह्य तथा जयपुर को आभ्यन्तर (अन्दर) कोट कहते हैं। पंच शब्द महाभाजन मन्त्री जयदत्त ने जयपुर कोट में मठ निर्माण कराया। मथुरापति प्रमोद के जमाता तथा राजा के क्षत्ता आच ने पवित्र अचेश्वर की स्थापना किया।

राजा जयापीड मुख्य कार्यों के पश्चात् पुनः दिग्विजय के लिये प्रस्थान किया। पूर्व सागर तक पहुँच गया। उसके यामिक मुम्मिन आदि प्रमुख राजा थे। उसने पूर्व दिशा में विनयादित्यपुर की स्थापना किया।

उसने एक समय व्रती के वेश में पूर्व दिक्पति भीमसेन के दुर्ग में प्रवेश किया। वहाँ जज्ज का भ्राता सिद्ध रहता था। वह दुर्ग प्रविष्ठकर्ता राजा जयापीड को पहचान लिया। भीमसेन से रहस्योद्घाटन किया। भीमसेन राजाको बन्दी बना लिया। राजा बन्दी अवस्था में अपने मुक्ति की चिन्ता करने लगा।

इसी समय नगर में लूना महासंक्रामक रोग फैल गया। स्पर्श संचारी होने के कारण व्याधिग्रस्त व्यक्ति आवादी से अलग कर दिया जाता था। राजा ने लूना व्याधि सदृश रोग उत्पन्न करने के लिये पित्तोद्रेकी वस्तुओं को मगा कर सेवन किया। अंग में वज्र वृक्ष का दूध लगाया। फफोला निकल आया। लूना ग्रस्त समझ कर, उसे नगर से बाहर मरने के लिए रख दिया गया। मुक्त होने पर ही राजा अच्छा हो गया। भीमसेन का दुर्ग विजय किया।

नेपाल पालक राजा अरमुडी था। जयापीड उसके षड्यन्त्र का शिकार हो गया। अरमुडी युद्ध न कर, दूर चला गया। राजा ने उसका पीछा किया। अरमुडी पलायन करता समुद्र तटपर शिविर लगाया। राजा जयापीड भी उसका पीछा करता पहुँच गया। दोनों सेनाओं के मध्य में नदी थी। सरिता जल जानुपर्यन्त मात्र था। जयापीड नदी प्रकृति से अपरिचित था। नदी पार हेतु जल में प्रवेश किया। समुद्र समीपवर्ती नदी अचानक बढ़ गयी। जयापीड की सेना बाढ़ से नष्ट हो गयी। राजा स्वयं तैरता बहुत दूर चला गया। अरमुडी ने मशक से सन्नद्ध पुरुषों द्वारा राजाको बन्दी बना लिया। राजा के बन्दी बनने पर, अरमुडी ने उत्सव मनाया। काल गण्डिका तटवर्ती अत्युच्च पाषाण वेश्म में राजा बन्दी बना दिया गया। वेश्म के नीचे नदी बहती थी। नदी की धारा देखते राजा मुक्ति की चिन्ता करने लगा। बन्दी गृह में बैठा, श्लोकों की रचना करता था।

मित्रशर्मा का वंशज देवशर्मा था। राजा का राजमन्त्री था। राजा की मुक्ति का प्रयास किया। अरमुडी को धन प्रलोभन दिया। अरमुडी प्रलोभन में फँस गया। देवशर्मा ने विश्वास दिलाया। काश्मीर राज्य जयापीड के विशाल कोश के साथ देगा। दूतों से विश्वास प्राप्त कर, देवशर्मा नेपाल पहुँचा। काश्मीरी सेना को काल गण्डिका नदी के तटपर रख दिया। कुछ परिवारों के साथ अरमुडी के पास पहुँचा। कोश पान पूर्वक मन्त्री देवशर्मा तथा अरमुडी प्रतिज्ञा बद्ध हुए। देवशर्मा ने अरमुडी से कहा 'जयापीड का धन सेना में है। विश्वस्तों को ही उसका ज्ञान है। मैं जयापीड से पूछना चाहता हूँ। धन कहाँ है? अतएव सेना में मैं नहीं गया। क्योंकि सेना में रहकर धन रखने वालों पर अधिकार पाना कठिन था। एक-एक को बुलाकर बन्दी बना लेना चाहिए। सेना भी अज्ञानता के कारण क्रुद्ध न होगी' अरमुडी ने देवशर्मा को राजा जयापीड से मिलने का आदेश दे दिया।

जयापीड से मिलने पर मन्त्री ने जिज्ञासा किया। 'मनोबल तो नहीं टूटा था ?' राजा ने अपनी निस्सहायावस्था पर दुःख प्रकट किया। मन्त्री ने उससे पुनः पूछा। 'तेज हत नहीं हुआ है, तो विपत्ति दूर हो जायगी।' क्या वातायन द्वारा नदी में कूद सकते हैं? राजा ने उत्तर दिया बिना मशक के नदी पार करना कठिन था। बहुत ऊँचे से गिरने पर मशक भी छिन्न-भिन्न हो जायगी। मन्त्री ने उपाय निकाल लिया। राजा से मुखादि धोने के लिए बाहर जाने के लिए कहा। यह भी कहा। वह मुक्ति का उपाय निकाल लिया था। पुनः आने पर राजा को ज्ञात हो जायगा। राजा बाहर गया।

देवशर्मा ने शरीर फुलाकर प्राण विसर्जन कर दिया। कण्ठ पर अपने रक्त एवं नाखून से लिख दिया। 'मैंने सरिता सन्तरण का उपाय निकाल लिया है। मेरे इस शरीर रूपी दृति पर आरूढ़ होकर नदी में कूद कर प्राण रक्षा कर लो, सेना नदी तटपर है। उससे मिल जाइये'।

राजा लौट आया। उसने देखा। देवशर्मा का मशक सदृश शरीर फूला। वह उस शरीर पर आरूढ़ हो गया। नदी में कूद पड़ा। राजा को चोट नहीं लगी। वह अपनी सेना में पहुँच गया।

काश्मीर की सेना ने क्षण मात्र में सम्पूर्ण नेपाल देश को राजा अरमुडी सहित नष्ट कर दिया। देवशर्मा के अपूर्व त्याग के कारण राजा जयापीड मुक्त हुआ। नेपाल पर काश्मीरी सेना की विजय हुई।

राजा ने विजित स्त्री राज्य से कर्ण श्रीपट को निबद्ध कर धर्माधिकरण नामक कर्म स्थान

स्थापित किया। राजा ने चलगंज अर्थात् चल कोश की प्रथा भी चलाया। दिग्विजय समाप्त कर राजा ने काश्मीर में प्रवेश किया।

कल्हण का कथानक महापद्मसर को कथा से समाप्त हो गया है। एक द्रविड़ मान्त्रिक महापद्मसर के नाग को पकड़ कर, बाहर बेचना चाहता था। नाग के स्वप्न पर राजा ने मान्त्रिक को बुलाया। उसके साथ महापद्मसर अर्थात् ऊलरलेक गया। द्रविड ने मन्त्र शक्ति से जल सुखा दिया। केवल एक वित्ता लम्बा पद्म नाग दृष्टिगोचर हुआ। राजा ने मान्त्रिक से जल को यथावत् करा दिया। पद्मनाग ने राजा को ताम्र कर गिर दिखाया। क्रम राजस्थ ताम्रगिरि से ताम्र निकालकर राजा ने अपने नाम की एक कम शत कोटि ताम्र मुद्राएँ टंकणित कराया।

अरब लेखक बालधुरी सूचना देता है—'अब्बासी खलीफा अलमन्सूर के समय सिन्ध का गवर्नर हिशाम बिन अमर अबू तलघी (सन् ७६८-७७२ ई०) था। उसने काश्मीर विजय किया था। उसने बहुत से गुलाम और बन्दी बनाए।' यह बात गलत है। जयापीड इस काल में स्वयं दिग्विजय कर रहा था। सम्भवतः यह उत्तर मुलतान में सिन्ध के सूबेदारों के सन्दर्भ में कहता है।

किन्तु राजाओं के जीवन में भी विपर्यय होता है। राजा ने पितामह ललितादित्य का आदर्श त्याग दिया। पिता वज्रादित्य के मार्ग का अनुकरण किया। कायस्थों की प्रेरणा पर, राजा दिग्विजय के स्थान पर, धन संग्रह करने लगा। धन के लिए प्रजा पीड़क बन गया। राजागण पूर्वकाल में दिग्विजय प्रजा उपकार हेतु करते थे। वह चेष्टा प्रजा शोषण के लिए करने लगा। जयापीड का जो पाण्डित्य प्रजा सुख हेतु था। वही प्रजा पीड़न में लगा। उसने धन का अपहरण किया। कृषकों का भाग हरण करने लगा। ब्राह्मण वृत्ति एवं धनाभाव के कारण मरने लगे। राजा, प्रजा का धन शोषण करता रहा। उसके चरित्र विपर्यय के कारण कवियों ने काव्यों में भी उसकी स्तुति में विपर्यय कर दिया।

ब्राह्मण अत्याचार से त्राहि-त्राहि करने लगे। विज्ञप्ति काल में राजा के समीप पहुँचे। प्रतिहारियों ने उनपर प्रहार किया। ब्राह्मण क्रन्दन करने लगे। कुछ ब्राह्मणों ने कहा—'उनका शाप सब कुछ करने में समर्थ है'। उद्धत राजा ने ब्राह्मणों की उपेक्षा की। उनका अपमान किया. इट्टिल नामक ब्राह्मण के शाप के कारण राजा पर वितान से स्खलित होकर स्वर्ण दण्ड गिर पड़ा। राजा घायल हो गया। उसके घाव में कीड़े पड़ गये। उसका अंग आरी से काटा गया। राजा मर्मान्तिक पीड़ा से कष्ट पाता रहा। प्राणों ने उसका त्याग कर, उसे दुखों से मुक्त किया।

राजा की माता अमृतप्रभा ने राजा को आत्म शान्ति के लिये अमृत केशव की स्थापना किया।

(१२) ललितापीड : (लौ० ३८५९-३८७१ = सन् ७८३-७९५ ई०)—जयापीड का दुर्गा देवी रानी से उत्पन्न पुत्र ललितापीड काश्मीर का राजा हुआ। उसके राज्य में वारांगनाओं का प्राबल्य था। उसने अपने पिता द्वारा दुष्कृति से अर्जित धन चारण आदि को देकर, कोश रिक्त करने लगा। वेश्याओं का प्रिय पात्र था। राजगृह विटो से भर दिया। विटो ने राजा को पौश्चली विद्या में प्रवीण कर दिया। जयापीड आदि काश्मीरके प्रसिद्ध गौरव शाली राजाओं को जड़ मानता था पूर्वकालीन दिग्विजयी विक्रमशाली राजाओं का उपहास करता था। मन्त्रियों को वेश्याओं का चरण चिह्नित वस्त्र प्रदान करता था। स्वाभिमानियों के

लिये उसकी राज सभा में स्थान नहीं था। मन्त्री मनोरथ ने स्वाभिमान रक्षा हेतु, राजा का त्याग कर दिया। राजा ने सुवर्ण पार्श्व, फलपुर एवं लोचनोत्स ब्राह्मणों को दान दिया। इसकी कोई मुद्रा नहीं मिली है।

(१३) संमाग्रापीड : (द्वितीय) (लौ० ३८७१-३८७८ = सन् ७९५-८०२ ई०)—राजा जयापीड का कल्याण देवी से उत्पन्न पुत्र संमाग्रापीड काश्मीर का राजा हुआ। उसका अपर नाम पृथिव्यापीड था। इसकी भी अभी तक कोई मुद्रा नहीं मिली है।

(१४) चिप्पट जयापीड : (लौ० ३८७८-३८८९ = सन ८०२—८१३ ई०)—ललितापीड का शिशु पुत्र था। अपर नाम वृहस्पति था। शैशवावस्था में ही राजा हुआ था। वह जयादेवी नाम्नी कल्यपाली (कलवारिन) वेश्या से उत्पन्न राजपुत्र था। अखुव ग्राम के उप्प नामक कलवार पुत्री की सुन्दरता पर मुग्ध होकर राजा ने उसे अन्तःपुर में रख लिया। पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म, धर्म, मातुलो द्वारा बालक राजा परिपालित हुआ था। पञ्च महाशब्दों की उपाधि एवं पद से उत्पलक विभूषित था। अन्य कर्म स्थानों को अन्य मातुलो ने प्राप्त किया।

जयादेवी ने जयेश्वर की प्रतिष्ठा किया। जयापीड ने महान् सम्पत्ति एकत्रित किया था। उसने स्वयं भोग नहीं किया। उसका भोग किया, भोगी पुत्र ललितापीड ने और जो शेष रह गया था, उसे उसके श्यालों ने ले लिया। कृपण के धन का जो परिणाम होता है, वही राजा जयापीड के संचित धन का हुआ भगिनी पुत्र राजा चिप्पट जयापीड के नाश की कामना करते थे। राज्य पर स्वयं अधिकार करना चाहते थे। अभिचार क्रिया द्वारा उत्पलक आदि मातुलों ने अपने भगिनी पुत्र राजा की हत्या करा दिया। इसका समय और स्रोतों से निश्चय होता है। राजानक रत्नाकर ने काव्य हरविजय के इति पाठ में लिखा है कि उसने युवक वृहस्पति राजा के समय अपना काव्य लिखा था। कल्हण रत्नाकर का नाम अवन्तिवर्मा के राज्य प्रसंग में उसकी प्रसिद्धि का कारण देता है।

(१५) अजितापीड : (लौ० ३८८९-३९२६ = सन् ८१३—८५० ई०)—राजा वप्पिय का मेघावली देवी द्वारा उत्पन्न पुत्र त्रिभुवनपीड षड्यन्त्रकारी न होने के कारण राजा नहीं हो सका। वप्पिय द्वारा जयादेवी द्वारा उत्पन्न पुत्र अजितापीड था। उत्पल ने उसे बलात् राजा बना दिया।

उत्पल बन्धु परस्पर वैर रखते थे। चारों भाइयों को एक समान प्रसन्न रखने में राजा दुःख-स्थिति का अनुभव करने लगा काश्मीर मण्डल राजा रहित प्रतीत होता था। राज्य का भोग करने वाले उत्पल आदि थे।

उत्पल ने उत्पल स्वामी तथा उत्पलपुर तथा पद्म ने पद्मस्वामी तथा पद्मपुर की स्थापना किया। पद्म की स्त्री गुण देवी ने अधिष्ठान तथा विजयेश्वर में मठों की स्थापना किया। धर्म ने धर्म स्वामी तथा कल्याण ने कल्याण स्वामी की स्थापना किया। मम्म ने एक गाय के साथ पञ्च सहस्त्र दीनार दान किया। उसने पचासी सहस्त्र गोदान कर कुम्भ प्रतिष्ठा सम्भार के साथ मम्म स्वामी की स्थापना किया।

मम्म एवं उत्पल में अधिकार लिप्सा के कारण युद्ध होने लगा। इसी युद्ध को उद्देश्य कर कवि शंकुक ने 'भुवनाभ्युदय' काव्य लिखा था।

(१६) अनगपीड : (लौ० ३९२६-३९२९ = सन् ९५०—९५३ ई०)—मम्म आदि ने अजितापीड को हराकर, संग्रामापीड के पुत्र अनंगापीड को राजा बनाया। मम्म का उत्कर्ष देखकर उत्पल पुत्र सुखवर्मा में ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

(१७) उत्पलापीड : (लौ० ३९२९-३९८१ = सन् ९५३—९५५ ई०)—उत्पल की मृत्यु के पश्चात् सुखवर्मा ने अजितापीडात्मज उत्पलापीड को राजा बनाया। राजा के सन्धि विग्रहिक में रत्नस्वामी का मन्दिर निर्माण कराया। सुखवर्मा की हत्या उसके भाई शुष्क ने कर दिया। शूर नामक मन्त्री की सुखवर्मा के पुत्र गुणी अवन्तिवर्मा को राजा बनाने का विचार किया। उत्पलापीड को राज्यच्युत कर अवन्तिवर्मा को राजा बनाया गया और कर्कोटवंश का राज्य लुप्त होकर उत्पल वंश में राज्यश्री आ गयी।

★

उत्पल वंश

(१) अवन्तिवर्मा : (लौ० ३९३१–३९५९=सन् ८५५।५६–८८३ ई०)—अवन्तिवर्मा काश्मीर का यशस्वी राजा हुआ है। राज्य प्राप्त कर, राजा ने अवांछनीय तत्त्वों को नियन्त्रित किया। उसने अपने आदर्श चरित्र तथा कर्मों से गिरते समाज को पुनः उठाया। उसका मन्त्री शूरवर्मा था। राजा और मन्त्री दोनों एक दूसरे के पूरक थे। राज्यप्राप्ति के पश्चात् राजा को मनःस्थिति का वर्णन कल्हण ने (४ : ६–१५) किया है। वह योगवासिष्ठ वर्णित राम वैराग्य एवं लक्ष्मी प्रसंग में कही गयी बातों का स्मरण दिलाती है। उसने राज्य का भोग एकाकी नहीं किया। अपने बन्धुओं तथा राज्य कर्मचारियों को भी उसका भागी बनाया। मन्त्री द्वैमातुर शूरवर्मा को युवराज बनाया। शूरवर्मा ने खाधूया, हस्ति कर्ण अग्रहार देकर, शूर स्वामी मन्दिर तथा मठ का निर्माण कराया। राजा के अपर भ्राता समर ने समर स्वामी एवं चतुरात्मा केशव की स्थापना किया। शूरवर्मा के कनिष्ठ भ्राता धीर एवं विन्नय ने स्व नामांकित मन्दिरों का निर्माण कराया। शूर का दौवारिक श्रीमान् महोदय ने महोदय स्वामी की स्थापना किया। मन्दिर में रामट नामक विद्वान् व्याख्याता पद पर प्रतिष्ठित था। आमात्य प्रभाकरवर्मा ने प्रभाकर स्वामी की स्थापना किया। उसने शुकावली भी बनवाया। शूरवर्मा ने संस्कृत विद्या के प्रोत्साहन एवं विकास हेतु योजना बनायी।

राज्य सभा के मुक्ता कण, शिव स्वामो, कवि आनन्दवर्धन, रत्नाकर आदि विद्वान् शोभित थे। रत्नाकर की प्रशंसा क्षेमेन्द्र ने अपने काव्य में किया है।

अर्धनारीश्वर का प्रासाद सुरेश्वरी क्षेत्र में शूर ने निर्माण कराया। अर्धनारीश्वर का मन्दिर कल्हण के समय सुरेश्वरी क्षेत्र में मौजूद था। कल्हण वहाँ पूजनार्थ जाता था। सुरेश्वर तथा शूर मठ की प्रतिष्ठा की गयी। शूरपुर (हरपुर) में उसने ढक्क अर्थात् सैनिक चौकी स्थापित किया। शूरका पुत्र रत्न-वर्धन था। उसने सुरेश्वरी प्रांगण समीपस्थ, शूर मठ अन्तर्गत, भूतेश्वर हर स्थापित किया। शूर की पत्नी काव्य देवी ने सदा शिव काव्य देवीश्वर को स्थापना किया।

राजा ने अपने नाम पर विश्वैकसर में अवन्तिपुर स्थापित किया। राजा ने राज्य प्राप्ति के पूर्व अवन्तिस्वामी तथा राज्य प्राप्ति पर अवन्तीश्वर की स्थापना किया। राजा ने त्रिपुरेश्वर, भूतेश्वर एवं विजयेश्वर में रौप्य द्रोणी सहित तीन पीठ बनवाया।

शूर की निष्ठा राजा के प्रति अतुलनीय थी। राजा एक समय भूतेश्वर गया। राजा देवता के पीठपर पुजारियों द्वारा उपपादित वन्य उत्पल एवं तिक्त शाक भोग रखा देखा। राजा ने इस शोचनीय स्थिति का कारण पूछा। मन्दिर व्यय हेतु राज्य को ओर से प्रबन्ध था। देवोत्तर सम्पत्ति से आय की योजना थी। जिज्ञासा का उत्तर पुजारियों ने दिया कि शूर मन्त्री का सुतोपम बली सेवक धन्व डामर मन्दिर के ग्रामों का हरण कर, उनको आय स्वयं उपयोग करता था। राजा दुःखित हुआ। पूजा बिना समाप्त किये, उठ गया। शूल जनित व्यथा का बहाना किया।

शूर को घटना ज्ञात हुई। शूर ने धन्व को बुलाया। उसने भूतेश्वर स्थित भैरव के मन्दिर में धन्व का बध करा दिया।

राजा अवन्तिवर्मा हृदय से वैष्णव था। वैष्णव प्राणी हिंसा नहीं करते। राजा ने वैष्णव सम्प्रदाय की मर्यादा स्थापित करते हुए, राज्य में जीव हिंसा वर्जित घोषित की गयी। प्राणी मात्र में अहिंसा भाव व्याप्त हो गया था। अवन्तिवर्मा के काल में ही, भट्ट कल्लट आदि सिद्ध हुए थे।

काश्मीर देश में उत्पादन जल प्लावन अवर्षण एवं तुषार पात आदि के कारण अन्न कम हो गया था। राजा ललितादित्य ने सिंचाई की कुछ व्यवस्था की थी। कालान्तर में व्यवस्था क्रमशः बिगड़ती गयी। काश्मीर उपत्यका जल प्लावनों से त्रस्त रहती थी। अन्न का भाव बढ़ गया था। सुय्य ने इस समय सुयोजित योजना के साथ उत्पादन वृद्धिका प्रयास आरम्भ किया। सुय्य का जन्म अज्ञात था। कुछ उसे अयोनिज कहते हैं। शिशु मृत्तिका पात्र में रखा था। सुय्या चाण्डाली उसे उठा ले गयी। चाण्डाली द्वारा पालित होने के कारण उसे सुय्य कहते थे। सुय्य ने राजा की सहायता द्वारा जलप्लावन दूर करने को व्यवस्था किया। वितस्ता का प्रवाह बदल दिया गया। वितस्ता की धारा, उसकी द्रोणी, पत्थरों और मिट्टियों के एकत्रित हो जाने से ऊँची हो गई थी। जल प्रवाह छिछला होने के कारण दोनों तटों पर फैल जाता था। वितस्ता का पेटा अर्थात् द्रोणी स्थान-स्थान पर साफ किया गया। जल गति से बहने लगा। जलप्लावन भय दूर हो गया। धारा नियन्त्रित हो गयी।

पूर्व काल में त्रिगामी के वाम भाग से सिन्धु एवं दक्षिण से वितस्ता जाती थी। दोनों का संगम वैन्य स्वामी के समीप होता था। प्रवाह परिवर्तन करने पर, दोनों का संगम नगर के समीप हो गया था। संगम के दोनों तटों पर फूलपुर में विष्णुस्वामी एवं परिहासपुर में वैन्य स्वामी का मन्दिर था। सुन्दरी भवन के समीप सुय्य अभ्यर्चित योगशायी ऋषि केश विष्णु का स्थान था। कल्हण के समय वितस्ता तट पर वृक्षों से जो नावें बद्ध होती थी, उनके डोरियों के लगभग २९३ वर्ष पश्चात् तक चिह्न मिलते थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है। मैं स्वयं गंगा तट पर रहता हूँ। नावों के बान्धने से घाटों के पत्थरों पर जो चिह्न आज से तीन सौ वर्ष पूर्व बन गये थे, वे आज भी देखे जा सकते हैं। सुय्य ने सात योजन लम्बा बाँध निर्माण से वितस्ता नियन्त्रित कर दिया। नियन्त्रण के कारण वितस्ता का जल दोनों तटों के ऊपर फैलकर, जल प्लावन का दृश्य उपस्थित नहीं कर सका। जल सरलता पूर्वक ऊलर लेक अर्थात् उल्लोल सर में गिरता था। पालियों से जल निरुद्ध कर स्थान कुण्ड सदृश निर्मित किया गया उन्हें आज भी कुण्डल कहा जाता है। सुय्य अपने समय का महान् निर्माण एवं नियोजन कर्ता हुआ है। उसने स्थान-स्थान से मिट्टियों को मगाया उनका भूपरीक्षण किया। विभिन्न मिट्टियों को कितने दिन पश्चात् सिंचाई की आवश्यकता होगी। अनुसन्धान किया गया। निश्चित समयों के अन्तर पर सिंचाई की व्यवस्था की गयी।

अन्न उत्पादन बढ़ गया। नवीन भूमि निकल आयी। जल प्लावन द्वारा नष्ट होती कृषि बच गयी। अन्न सस्ता हो गया। पेट भरने लगा। चारों ओर समृद्धि का दृश्य दिखायी पड़ता था।

वितस्ता अर्थात् झेलम नदी ऊलर लेक से जिस स्थान से निकल कर, बारहमूला की ओर चलती थी। वहाँ सुय्यने स्वनामांकित सुय्य नगर की स्थापना किया। वही वर्तमान सोपोर शहर है। सुय्य सेतु का भी निर्माण कराया। राजा अवन्तिवर्मा का समय मन्त्री शूर तथा सुय्य के सतत प्रयासों से सतयुग का स्मरण दिलाता था।

अवन्तिवर्मा अपना प्राण विसर्जन करने के लिये त्रिपुरेश पर्वत स्थित ज्येष्ठेश्वर गया। मृत्यु

निश्चित जान कर, चिरगोपित वैष्णव तत्व शूर को समझाया। भगवद्गीता का श्रवण करते हुए, राजाने प्राणोत्सर्ग लौकिक सम्वत् ३९५९ = कलि ३९८४ = विक्रमी ९४० = ईसवी ८८३ = शक ८०५ आषाढ़ शुक्ल तृतीया को किया।

(२) शंकर वर्मा (लौ० ३९५९-३९७७ = सन् ८८३-९०१ ई०) सुख वर्मा यद्यपि युवराज था, तथापि रत्नवर्धन प्रतिहार के प्रयास से अवन्ति वर्मा का पुत्र शंकर वर्मा काश्मीर का राजा हुआ। शूरवर्मा के पुत्र सुखवर्मा को राजा ने युवराज बनाया। राजा एवं युवराज में स्नेह नहीं रह सका। सुखवर्मा को राजा ने पराजित किया। शंकर वर्मा पिता तुल्य लक्ष्मी की अपेक्षा कीर्ति को अधिक महत्व देता था। शंकर बर्मा के समय से काश्मीर के राजाओं की तिथि मिलने लगती है।

शंकर वर्मा महाराज जयापीड के लगभग १३१ वर्ष पश्चात् काश्मीर की पुरातन दिग्विजय परम्परा को पुनर्जीवित किया। शताब्दियों पश्चात् काश्मीरी वीर पुनः दिग्विजय के लिये निकल पड़े। जिस समय काश्मीर की सीमा त्यागकर द्वार से निर्गत हुआ, उस समय उसके साथ नव लाख केवल पैदल सैनिक, एक लाख अश्वारोही तथा तीनशत हाथी थे। राजा शंकर वर्मा ने कल्हण के शब्दों में काश्मीर की दिग्विजय परम्परा को पुनर्जीवन दान दिया था। उसकी सेना में समीप वर्ती सामन्तों की भी सेनाएँ सम्मिलित होती गयी। उसने दार्वाभिसार, गुर्जर, (पंजाब का गुजरात जिला) तथा त्रिगर्त विजय किया। गुर्जर पति ने टक्क देश राजा को अर्पित कर सन्धि किया।

शंकर वर्मा प्रताप शाली राजा था। उसने थक्किय वंशीय प्रतीहार भृत्य को भोजराज द्वारा अपहृत, उसका राज्य दिलाया। उसने दरद एवं तुर्कों पर नियन्त्रण किया। उदभाण्ड पुर (औहिन्द) के राजा को पराजित किया।

राजा की पत्नी उत्तर पथेश्वर स्वामिराज की कन्या सुगन्धा थी। राजा ने शंकर गौरीश्वर तथा सुगन्धेश का निर्माण कराया। गौरीश एवं सुगन्धेश मन्दिर में उसने तत्कालीन अलंकार शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् भट्ट नायक को नियुक्त किया। राजा ने परिहास पुर की सामग्रियों से शंकरपुर निर्माण किया। वह पाटन (पत्तन) नगर पशु, ऊनी वस्त्र आदि के बाजार के लिये प्रसिद्ध हो गया। राजा के मन्त्री रत्नवर्धन ने रत्नेश सदाशिव की स्थापना किया।

किन्तु राजा का समय एक समान व्यतीत नहीं हुआ। उत्तरार्धकाल को कुछ लोग गौरव पूर्ण नहीं कहते। कहा जाता है। उसमें प्रजा पीड़क प्रवृत्ति जागृत हो गयी। उसने राजकोश पूर्ण करने के लिये देवोत्तर सम्पतियों का हरण किया। प्रजा शोषण के लिये गृहकृत्य एवं अट्टपतिभाग दो नवीन कर्म स्थान अर्थात् मन्त्रणालयों की स्थापना किया। राज्य मन्दिर पर चढ़े, ग्रामों आदि को लेकर, उनको आय का भागी बनाया। वेगार प्रथा काश्मीर में अज्ञात थी। उसे प्रचलित किया। स्कन्धक एवं ग्राम कायस्थो द्वारा ग्रामीणों से धन लेने लगा। धन संचय एवं राज्य कोश भरने के लिए पाँच दिविर, छठवे शकच तथा लवट नामक गंजवर अधिकारियों को नियुक्त किया। दासी पुत्र कायस्थो को विद्वानों की अपेक्षा प्रश्रय दिया। राज पुत्र गोपाल वर्मा साधु-प्रवृत्ति था। पिता के शोषणो एवं प्रजापीड़क नीतियों से विरत होने के लिए आग्रह किया। राजा ने पुत्र की बाते सुनकर स्वयं पुत्र से याचना किया '—' 'पुत्र तुम्ही मुझे एक वर दो-"राज्य प्राप्तिकर, तुम मुझसे अधिक प्रजा शोषण न करोगे।"

धन संग्रह वृत्ति के कारण राजदरबार में कलाकारों एवं विद्वानों का आदर सत्कार नहीं होता था।

भल्लट आदि प्रसिद्ध कवि जीवन निर्वाह के लिये निम्न वृत्ति ग्रहण किये। कवि तथा विद्वान् जिनका पूर्व काल में राजकोश से प्रतिपालन होता था, उनका जीवन निर्वाह अन्य साधनो से होने लगा। काश्मीर के सभी राजा संस्कृत ज्ञाता थे। संस्कृत काश्मीर की राज भाषा थी। परन्तु शंकर वर्मा संस्कृत भाषण नह, कर सकता था। वह राज सभामें भी देववाणी के स्थान पर, अपभ्रंश बोलता था।

राजा का मंत्री सुखराज था। द्रोह की आशंका से रात्रि काल में दर्वाभिमार के राजा नरवाहन की अनुचरों द्वारा हत्या करा दी गयी। वह घटना भारतीय तथा काश्मीरी परम्परा के विरुद्ध थी। कुपथ गामी राजा के बीस-तीस पुत्र विना सांघातिक बीमारी के ही दिवंगत हो गये। उसने सुखराज के भगिनी पुत्र को द्वाराधिप का उत्तरदायित्व पद दिया। परन्तु वीरानक स्थान पर उसका वध हो गया। राजा वध का समाचार सुनकर कुपित हो गया।ससैन्य वीरानक गया। वीरानक का समूल उच्छेद कर दिया।

राजा शंकर वर्मा ने द्वितीय विजय यात्रा किया। शक्ति शाली सेना काश्मीर से निर्गत हुई। उरसा (हजारा जिला) में वहाँ के निवासियों तथा उसके सैनिको में कलह हो गया। पर्वतों पर स्वपाक थे। उनके द्वारा छोड़ा एक बाण राजा के कण्ठ में घुसगया। शरीर से बाण निकालते समय राजा मर गया। उसका मरण गुप्त रखा गया। काश्मीर वाहिनी सत्वर गति से काश्मीर की ओर लौटी। सत्य समाचार अत्यन्त गोपनीय रखा गया। छः दिनों के पश्चात् काश्मीर की विजयी सेना ने काश्मीर में सगौरव प्रवेश किया। वोल्यासक स्थान पर राजा की अन्त्योष्टि क्रिया की गयी। सुरेन्द्रवती आदि तीन रानियों तथा कृतज्ञ वेला वित्त नें राजा का स्वर्ग अनुगमन किया। लाड तथा वज्रसार नामक दो भृत्यों ने भी राजा का अनुगमन किया। इस प्रकार राजा के साथ छः प्राणियो ने अपने प्राणा की आहुति दी।

राजा दूरदर्शी था। इस समय सीमान्त पर अरब तथा तुर्क समरोत्सुक सैनिक सर्वदा आक्रमण करते रहते थे। राजा उन्हें दण्ड देने के लिये, उनसे काश्मीर एवं भारत की रक्षा करने के लिये, धन संग्रह किया था। धन से उसने सेना संघटित किया। द्वितीय बार दिग्विजय के लिये निकला। काश्मीरी सैनिकों के वीरता की पुनः धाक जम गयी। राजा के साथ प्राणाहुति करने वाली तालिका से प्रकट होता है कि राजा सर्वप्रिय था। अन्यथा उसके साथ स्वतः कोई प्राणोत्सर्ग कैसे करता ? राजा ने अर्थ संग्रह से भोग विलास नहीं किया। अपव्यय नहीं किया। यह निर्विवाद है। उसने देश की रक्षा की दृष्टि से आर्थिक संग्रह के लिये योजनाएँ बनायी थी। उसका अभिप्राय गोपाल वर्मा को दिये, उपदेश से प्रगट होता है। वह जनता का हितेच्छु था, काश्मीर भक्त था। दूरदर्शी था। भारत की सीमा पर उठती काली घटा उसे ज्ञान था। अर्थ संग्रह के लिये त्याग करना ही पड़ता है। उसने जनता से धन लिया। संकट काल था। जनता यदि स्वेच्छा से धन नहीं देती, तो देशहित की दृष्टि से, उसे अन्य साधनों से, लेना ही पड़ता है। जापान में भी युद्ध के समय धातु प्राप्ति के लिये बुद्ध प्रतिमा गलायी गयी थी।

कल्हण को काश्मीर सीमावर्ती तत्कालीन परिस्थितियों का ज्ञान नहीं था। अन्यथा वह शंकर वर्मा को आर्थिक दृष्टि से प्रजा पीड़क ने लिखता। शंकर वर्मा नीतिज्ञ एवं वीर राजा था। उसने काश्मीर सीमा वर्ती क्षेत्रो को पुनः काश्मीर के अन्दर लाकर, काश्मीर को सुरक्षा की दृष्टि से, शक्ति शाली बना दिया। उसने पीर पन्तसाल से पंजाब की सीमावर्ती दरद तथा तुर्कों के मध्यवर्ती क्षेत्र पर अधिकार किया था। उसने एक वीर योद्धा के समान रण अभियान में वीर गति प्राप्त किया।

(३) गोपाल वर्मा (लौ० ३९७७–३९७९ = सन् ९०२–९०४ ई० , रानी सुगन्धा द्वारा

पाल्यमान धार्मिकतोज्वल, सत्य सन्ध गोपाल वर्मा ने वसुन्धरा का पालन किया। राजकीय दुःसंस्कारों से दूर था। उसकी माता रानी सुगन्धा प्रभाकर देव मन्त्री में अनुरक्त थी। तथापि प्रभाकर ने उदभाण्डपुर विजय कर, काश्मीर-गौरव में वृद्धि किया। उसने शाही राज्य लल्लिय पुत्र तोरमाण अपर नाम कमलुक को प्रदान किया।

राजा गोपाल वर्मा को अपनी माता रानी सुगन्धा तथा प्रभाकर का आचरण पसन्द नहीं था। राजा ने राजकोश का हिसाव प्रभाकर से मांगा। प्रभाकर ने उत्तर दिया। कोश अर्थात् गंज का धन शाही युद्ध में व्यय हो गया। राजा से प्रभाकर शंकित हो गया। उसने राजा के मरण हेतु खारखोद वेत्ता राम देव से अभिचार कराया। अभिचार के कारण, राजा गोपाल वर्मा दो वर्ष राज्य भोग कर, मर गया। राजदण्ड भय से अभिचार कर्ता राम देव ने भी आत्म हत्या कर लिया।

(४) संकट वर्मा : (लौ० ३९७९ = सन् ९०४ ई०) रथ्या (सड़क) पर घूमते हुए, गोपाल वर्मा के भाई संकट को लाकर, राजा बनाया गया। वह केवल दश दिन राज्य कर दिवंगत हो गया।

(५) सुगन्धा : (लौ० ३९७९-३९८१ = सन् ९०४-९०६ ई०) प्रजा की प्रार्थना पर शंकर वर्मा की रानी सुगन्धा स्वयं शासन करने लगी। सुगन्धा की ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। उसके काश्मीर की शासिका होने में सन्देह नहीं रहता। रानो ने गोपाल केशव, तथा सुगन्धा नगर स्थापित किया। गोपाल वर्मा की युवती भार्या नें नन्दा मठ एवं केशव की स्थापना किया।

वंश वृक्ष दग्ध न हो, अतएव रानी सुगन्धा गोपाल वर्मा की अन्य पत्नी जय लक्ष्मी के सन्तान की कामना करने लगी। प्रसवानन्तर संतान नष्ट हो गया। सुगन्धा किसी स्ववंशीय को राजा बनाने के लिये तत्पर हो गयी।

काश्मीर में इसी समय तन्त्रि पदातिको का उदय हुआ। तत्पश्चात् एकांग समाश्रित सुगन्धा रानी ने तन्त्रियों के सहयोग से दो वर्ष शासन किया। एक समय किसी योग्य व्यक्ति को राज्य देने की इन्छा से रानी ने मन्त्री, सामन्त एवं एकांगों को एकत्रित किया।

अवन्ति वर्मा का वंशांकुर समाप्त हो जाने के कारण स्व कुटुम्बिनी गग्गा से सुख वर्मा द्वारा उत्पन्न शूर वर्मा के नाती निर्जित वर्मा को राज्य देने का विचार किया। किन्तु कुछ मन्त्रियो ने निर्जित वर्मा के पंगु होने के कारण विरोध किया। वाद विवाद हो रहा था कि तन्त्रियो ने निर्जित वर्मा के दश वर्षीय पुत्र पार्थ को राजसिंहासन पर बैठा दिया।

(६) पार्थ : (लौ० ३९८१-३९९७ = सन् ९०६-९२१ ई०) सुगन्धा राज्यच्युत हो गयी। हताश श्रीनगर के बाहर चली गयी। गमन शील रानी ने अपने साथियो, जो उसकी सहायता एवं निष्ठा का दम भरते थे, विरोधियों के साथ देखा। राजा पार्थकी एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है।

सुगन्धा : पुनर्राज्य प्राप्ति (लौ० ३९८९ सन् ९१४ ई०) सुगन्धा हुस्कपुर में थी। एकांग सैनिक उसे राजधानी वापस लाये। रानी का प्रत्यावर्तन सुनकर तन्त्री सैनिक संघटित हो गये। युद्ध हेतु रानी सन्नद्ध हो गयी। एकांग पराजित हो गये। सुगन्धा बन्दी बन गयी। बन्दी अवस्था में ही निष्पालक विहार में दिवंगत हो गयी। इसका परिणाम घातक हुआ। सैनिक वर्ग प्रवल हो गया। वे समय-समय पर सुविधानुसार राजाओं को बनाने और बिगाड़ने लगे। भविष्य के अनर्थों की जड़ यह परम्परा हो गयी।

निर्जित वर्मा अपने पंगु पुत्र बालक भूपति का संरक्षक बन गया। मन्त्रियों सहित घूस लेने लगा। ग्राम कायस्थो के समान भूभुजों ने अधिकाधिक उत्कोच अर्थात घूस लेकर तन्त्रियों की सेना से अन्योन्य का विघटन किया। जिस काश्मीर देश के राजाओं ने कान्य कुब्जा द देशों को प्राप्त किया था, कितने ही राजाओं को उनका राज्य दिलाया था, दान से भारत में प्रसिद्धि पायी थी, अनेको राज्य अपने राज्य में सम्लित कर, उन्हें अन्न वस्त्र दिया था, वे ही काश्मीर के राजा, काश्मीर मण्डल में ही, तन्त्रियों को हुण्डी देकर, जीविका चलाने लगे।

जिस मेरु वर्धन मन्त्री ने पुराधिष्ठान (पण्डरेथन) में श्री मेरु वर्धनस्वामी नामक विष्णु की स्थापना किया था, उसके पुत्र गुप्त रूप से राज्य प्राप्ति का प्रयास करने लगे। उनमें ज्येष्ठ शंकर वर्धन ने सुगन्धादित्य के साथ मैत्री कर लिया। राज प्रसाद लूटने लगे। इसी समय भीषण दुर्भिक्ष (सन् ९१७-९१८ ई०) ने काश्मीर मण्डल को पीड़ित किया। वितस्ता नदी मृत शवों से पट गयी। काश्मीर मण्डल स्मसान बन गया। इस आपत्ति काल में मन्त्री एवं राज्य कर्मचारी भूख से तड़पती प्रजा को महँगा अन्न बेचकर धनाढ्य हो गये। उस समय तन्त्रियों का हुण्डी धन बेचकर, जो लाभ प्राप्त करने में समर्थ होता था, वही मन्त्री बन जाता था। धन प्राप्तकर्ता कायर राज पिता पंगु अपने सुख भोग को ही उत्तम माना। भूतकालीन, प्रजापालक राजा तुंजीन चन्द्रापीड आदि राजाओ की परम्परा का जैसे काश्मीर में लोप हो गया।

राजा की स्थिति डांवाडोल थी। कभी पिता को उत्पाटित कर पार्थ और कभी पुत्र को उत्पाटित कर पंगु मन्त्रियों की सहायता से राजा बन जाता था। राज व्यवस्था विशृंखलित हो गयी। आचार-विचार का पतन होने लगा था।

मन्त्रियों का सम्बन्ध रानियों से हो गया। राज्य प्राप्ति की लालसा से मेरु वर्धन के पुत्रों ने मनोज्ञा अभागिनी मृगावती का विवाह पंगु से कर दिया। मृगावती का भी सम्बन्ध सुगन्धादित्य से था। रानियाँ अपने-अपने पुत्रों को राज्य पर प्रतिष्ठित करने के लिए, धन, मान, एवं शरीर दान कर, परस्पर स्पर्धा करने लगी।

(७) **निर्जित वर्मा**—पंगु (**लौ० ३९९७–३९९८ –सन् ९२१-९२३ ई०**) निर्जित वर्मा की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। तन्त्रियों ने पार्थ को राजच्युत कर उसके पिता को काश्मीर का राजा बनाया।

(८) **चक्रवर्मा** (**लौ० ३९९८–४००९—सन् ९२३–९३३ ई०**) क्षीण पुण्य निर्जित वर्मा (पंगु) शिशु पुत्र चक्रवर्मा को राज्य पर अभिषिक्त कर, मर गया। पैत्रिक राज्याभिलाषी पार्थ के अनुवर तन्त्रि पदाति ने एकांगों के साथ सत्ता प्राप्ति हेतु युद्ध किया। शिशु राजपुत्र कुछ समय माता वप्पट देवी और दश वर्ष तक भ्राता मही छिल्लिका के अभिभावकत्व में वार्धक्य प्राप्त किया।

(९) **शूर वर्मा**:—(**लौ० ४००९–४०१०—सन् ९३३–९३४ ई०**) तन्त्रियों ने चक्रवर्मा को राजच्युत कर मृगावती द्वारा उत्पन्न पंगु पुत्र को राजा बनाया क्योंकि मातुल एवं मन्त्री तन्त्रियों का देय नहीं दे सके थे। तन्त्री विरोधी हो गये थे। शूरवर्मा तन्त्रियों को सन्तुष्ट न कर सका। अतएव उनका कोप भाजन बन गया।

(१०) **पार्थ** :—(द्वितीय बार **लौ० ४०१०–४०११—सन् ९३४–९३५ ई०**) तन्त्रियों ने शूरवर्मा को राज्यच्युत किया। प्रचुर धन प्राप्त कर, पार्थ को पुनः राजा बनाया। तन्त्रि चक्र नियन्त्रित करने में पटु, पार्थ प्रिया, वेश्या साम्बवती ने साम्बेश्वर की स्थापना किया।

(११) **चक्रवर्मा :—**(पुनर्राज्य प्राप्ति लौ० ४०११-४०११ = सन् ९३५ ई०) चक्रवर्मा की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। कालापेक्षी चक्रवर्मा ने पार्थ से अधिक धन तन्त्रियों को देकर, पुनः राजा बन गया। नष्टबुद्धि चक्रवर्मा ने मेरु वर्धन के पुत्रों को प्रशासन का भार दे दिया। उसने शंकर वर्धनको अक्ष पटलाधीश तथा दुराचारी एवं दांभिक शम्भु वर्धन को गृहकृत्य पद पर नियुक्त किया। किन्तु उसी वर्ष पौषमास में तन्त्रियों का हुण्डिका देय न देने के भय से, राज्य त्याग दिया। वह मडव राज्य में था। उसी समय राज्यार्थी शंकर वर्धन ने शंभु वर्धन को दूत बनाकर, तन्त्रियों के पास भेजा। किन्तु अपने ज्येष्ठ भाई के साथ विश्वासघात कर और स्वयं अत्यधिक धन तन्त्रियों को देने का विश्वास देकर, शम्भु वर्धन ने राज्य प्राप्त कर लिया।

(१२) **शम्भु वर्धन :—**(लौ०४०११-४०११ = सन् ९३५-३६ ई०) राज्य भ्रष्ट चक्रवर्मा रात्रि में श्री ढक्क निवासी डामरश्रेष्ठ संग्राम के निवास स्थान पर पहुँचा। उसने अपनी दीनता प्रदर्शित की। भविष्य की आशा दिलाकर, डामरों को पक्ष में कर लिया। डामर तथा चक्र वर्मा दोनों कोश पान पूर्वक प्रतिज्ञा वद्ध हुए।

उसी समय शंकर वर्धन को अग्रसर कर, तन्त्रि पदाति युद्ध करने के लिये निकल पड़े। चक्र वर्मा ने शीघ्रता पूर्वक संघटन कर लिया। पद्मपुर में घोर संग्राम हुआ। शंकर वर्धन हत हो गया। सेनापति के मरने पर, तन्त्रिसेना छिन्न भिन्न हो गयी। पाच-छः हजार तन्त्री युद्ध में हत हुए। युद्ध में अद्भुत पराक्रम चक्रवर्मा ने प्रदर्शित किया। शम्भु वर्धन दूसरे दिन तन्त्रियों का संघटन कर ही रहा था, कि सम्मिलित सामंत, सचिव, एकांगों से मिलाकर, चक्रवर्मा के सैन्य के साथ दिक्मार्ग व्याप्त कर लिया। पुरवासियों के आशीर्वाद घोष, कर्ण भेदी भेरी ध्वनि, एवं जय से शोभित, चक्रवर्मा ने नगर में प्रवेश किया।

(१३) **चक्रवर्मा :—**(तृतीय बार; लौ० ४०१२-४०१३ = सन् ९३६-९३७ ई०) शम्भु वर्धन बन्दी बनाकर, राजा के सम्मुख लाया गया। प्राण भय से कांप रहा था। श्री हत भूभट ने स्वाभिमान प्रदर्शन हेतु राजा के सम्मुख ही राज्यच्युत, बन्दी, नतमस्तक, राजा शम्भु वर्धन का वध कर दिया।

महाभारत काल से चली आती, राजनीतिक मर्यादा का अतिक्रमण किया गया। क्योंकि राजा अवध्य था। युद्ध बन्दी अवध्य होते थे। परम्परा तोड़ने का परिणाम अत्यन्त घातक देश के लिए सिद्ध हुआ। इसी समय से राजाओं के वध की परम्परा काश्मीर के अंकुरित हुई। राजा का वध मुसलिम देशों में प्रचलित था। साधारण बात थी। परन्तु हिन्दू राज्यों में राजा और ब्राह्मण अवध्य थे।

चक्रवर्मा राज्य प्राप्ति पश्चात् निरंकुश, अभिमानी क्रूर एवं कुपथगामी हो गया। राजा ने रंग नामक प्रख्यात विदेशी डोम्ब गायक को बाह्याली में गीत गायन का अवसर दिया। हंसी तथा नागलता रंगू की युवती कन्यायें थीं। उनके रूप माधुरी एवं गान पर राजा मुग्ध हो गया। मर्यादा त्याग दिया। उन्हें राज्य प्रासाद में स्थान दे दिया। हंसी महादेवी बन गयी। राज वन्धुओं के मण्डप में डोम्ब कन्या हंसी सेविकाओं द्वारा व्यंजन सुख लेने लगी। राज्य प्रासाद तथा प्रशासन में डोम्बों का प्राबल्य हो गया। इस प्रसंग का वर्णन कल्हण विस्तार पूर्वक करता है।

जिस चक्रवर्मा के मन्त्री चोर, स्वपाकी रानी तथा स्वपच सखा थे, उस राज्य की तत्कालीन स्थिति का क्या वर्णन किया जा सकता है। राज्य ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु राज पदाकांक्षी सेवक लोलुप डोम्बों का जूठन भोजन करते थे। देव मन्दिरों में डोम्ब रानी जाती थीं। मन्दिरों की प्रतिमायें उनके प्रवेश के कारण प्राणहीन शिलावत् मान ली गई। डोम्बों तथा उनके परिवार के आलोचको के लिए राज्य द्वार बन्द था। उनकी आज्ञा अनुलंघनीय थी। तथापि राजा ने पाशुपत सम्प्रदाय के आश्रय हेतु चक्र मठ स्थापित

किया। उसके जीवन काल में मठ निर्माण पूर्ण न हो सका। उसके मृत्यु-उपरान्त राजा की रानी के कारण मठ निर्माण पूर्ण हुआ ।

चक्रवर्मा कोश पान सहित डामरोंसे प्रतिज्ञा बद्ध हुआ था। तथापि डामरों को पीड़ित किया। अनेक निरपराध एवं विश्वस्त डामरों का वध करवा दिया। डामर प्रतिहिंसा ज्वाला से भभक उठे। चोरों के समान अवसर पाकर, एक रात राज प्रसाद में प्रवेश किए। हत्या करने की योजना बनायी गयी।

स्वपाकी के शयनागार समीपस्थ शौचगृह में शौच हेतु राजा गया था । वहाँ उसे नि:शस्त्र देखते ही डामरों ने उसे घेर लिया। राजा पर शस्त्र प्रहार होने लगा। राजा चिल्लाया। आहत होता भागकर, शयन गृह में शस्त्र प्राप्ति हेतु प्रवेश किया। शस्त्र प्राप्त न कर सका। आत्मरक्षा में असमर्थ हो गया।

स्वपाकी से कातर राजा भयातुर लिपट गया। उसी स्थिति में डामरों ने उसका बध कर दिया। रानियाँ प्रसन्न हुई। उनकी प्रेरणा पर राजा की दोनों जाघें पत्थर से कूट कर चूर्ण कर दी गयीं।

(१४) उन्मतवन्ति :—(लौ० ४०१३-४०१५ = सन् ९३७-९३९ ई०) सर्वत्र ही मूर्ख सचिवों ने पार्थ के दुराशय पुत्र उन्मत वन्ति को राजा बनाया। वह राजा चक्रवर्मा से भी अधिक पापी हुआ। उसकी सभा विटो एवं क्षुद्र मनुष्यों की संग्रह थी। उन्होंने उसके नाम को सार्थक किया।

स्थान में वस्त्र उठाकर नाचने वाला पर्वगुप्त राजा का सर्वप्रिय था। राजाओं की दुर्बलता का लाभ उठाकर, पर्व गुप्त स्वयं राजा बनना चाहता था। पर्वगुप्त सर्वट छोज कुमुद, अमृताकर भूमट आदि पांच मन्त्रियों ने कोश पान पूर्वक मित्रता की। राजा ने द्विज रक्क को मुख्य मन्त्रित्व पद प्रदान किया। रक्क ने रक्क जयादेवी नाम से श्री की प्रतिमा स्थापित किया। पर्वगुप्त की प्रेरणा पर अपना राज सुरक्षित रखने की अभिलाषा से राजा ने कुटुम्बियों का वध किया। राजा पार्थ सर्वस्व लुट जाने पर जयेन्द्र विहार में भिक्षा द्वारा जीवन निर्वाह करने लगा। राजा ने अपने शिशु, माताओं, शंकरवर्मा आदि को किवाड़ बन्द कर अन्न-जल बिना मार डाला। पिन्ट हत्या के लिए उद्यत, हत्या के लिए अनुमति प्रदानकर्ता मन्त्रियों का राजा ने सम्मान किया।

राजा की आज्ञा से राजा का पिता राजा विहार में बन्दी किया गया। वहाँ उसकी इतनी क्रूर एवं नृशंस हत्या की गई कि कल्हण का वर्णन पढ़ते समय हृदय कम्पित हो उठता है। क्रूरता भी लज्जित हो जाती है। राजा पार्थ को मृत सुनकर राजा उसे देखने के लिए गया। चरम राज भक्ति प्रदर्शन हेतु पर्व गुप्त ने अपने पुत्र को आदेश दिया। पुत्र ने घोर नारकीय कार्य किया। मृत राजा पार्थ के शरीर में छुरिका घुमेड़ दिया। राजा मृत पिता पार्थ के प्राणहीन शव पर होता क्रूरकर्म देखता, मुसकुराता प्रसन्न हो रहा था। पापी राजा रोग ग्रस्त हो गया। उसकी प्राणांतक व्यथा देखकर, अन्त: पुर की चौदह रानियों सहित प्रजा प्रसन्न हो गयी। अन्त:पुर की दासियों ने एक शिशु को ख्यात कर दिया शूरबर्मा नामक वह शिशु राजा का पुत्र है। राजा को वेदनापूर्ण मृत्यु आषाढ़ मास सन् ९६९ ई० में हो गयी।

(१५) शूरवर्मा:—(४०१५-४०१५ = सन् ९३९ है) पितृघाती राजा का पुत्र शूरवर्मा द्वितीय बार काश्मीर का राजा हुआ। कमल वर्धन द्रोह की भावना से सशक्ति नगर की सीमा पर पहुँच गया। उसका विरोध एकांग तन्त्री सामन्त, स्याल हारक तथा अश्वारोहियों ने कर दिया। किन्तु कमल वर्धन विजयी हुआ। राजधानी में प्रवेश किया। कमल वर्धन का जय सुनकर एकाकी शिशु भूपलि की प्राण रक्षा हेतु उसकी माता

उसे कहीं उठा ले गयी । कमल वर्धन विजयी होते भी मूर्ख मन्त्रियों के चक्कर में सिंहासन पर नहीं बैठा।

उत्पल कुल के नष्ट हो जाने पर, विप्रगण गोकुल में एकत्रित हुये । कौन राजा बनाया जाय । इस पर दीर्घ कालिक वाद-विवाद विप्र परिषद में होने लगा। परस्पर मत वैभिन्न होने के कारण वे किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। कमल वर्धन चाहता था। परिषद उसे राजा घोषित करे। परन्तु परिषद ने उसे ईंटों से मारकर भगा दिया। प्राय: छः दिनों तक द्विज वहीं स्थित रहे। इसी बीच पताका, वाद्य, ध्वज, युग्म, काहल, कास्य, ताल, आदि के कोलाहल से परिषदों का अशेष बल वहाँ आकर मिल गया। कमल वर्धन की आशा बल्लरी अनायास सूख गयी।

पिशाच पुर ग्राम में वीरदेव नामक गृहस्थ का कामदेव पुत्र था। मेरु वर्धन मन्दिरों में बालकों को पढ़ाता था। कालान्तर में राजा शंकरवर्मा का गजाधिकारी हो गया था। उसका पुत्र भी गजाधिकारत्व प्राप्त किया। प्रभाकर देव सुगन्धा रानी का प्रच्छन्न जार हो गया था। प्रभाकर देव का पुत्र यशश्कर देव था। वह विद्वान था। फल्गुणक भृत्य के साथ विदेश चला गया। देशान्तर में उसने मंगलप्रद स्वप्न देखा। पीठ देवियों के आशीर्वाद से प्रसन्न एव उत्साह युक्त काश्मीर मण्डल में प्रवेश किया।

द्विजों को बोधित करने के लिए वधु के दूतों ने राजपुत्र को राज दिलाने के लिए वाग्मी होने के कारण यशश्कर को अपने पक्ष से परिषद के सम्मुख ले गये। परिषद स्थित द्विज ने उसे देखते ही दैव योग से बोल उठे—'यही राजा हो'। शीघ्रता पूर्वक यशश्कर का विप्रों ने राज्याभिषेक कर दिया। जिस व्यक्ति को दीनावस्था में प्रातःकाल लोग पैदल जाते देखे थे, वही काश्मीर का राजा होकर लौटा।

षष्ठ तरंग

(१) यशश्कर :—(लौ० ४०१५–४०२४ सन् ६३९–६४८ ई०) यशश्कर ने शिथिल प्रशासन को संगठित किया। अनुशासन पर जोर दिया। वह उदार शासक था। काश्मीर का पठित ब्राह्मण राजा था।

उसे निर्वाचित करने वाले लोगों की भीड़ ज्योंही राजप्रासाद में प्रवेश करने लगी, उन्हें राजा ने बाहर ही रोक दिया। उसने विप्रों से कर बद्ध निवेदन किया—'आप लोग देवताओं तुल्य हैं। परन्तु राज्य-दान के अभिमान से मदोरत होकर आप व्यवहार करेंगे, अतः कार्य काल के अतिरिक्त अन्य समय मेरे निकट आना उचित नहीं हैं।'

शासन मर्यादा को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया। नष्टप्राय पूर्व व्यवस्थाओं को अपनी प्रतिभा से उन्नत किया। परिणाम अवश्यम्भावी था। देश में चोरी, राहजनी तथा डाका बन्द हो गया। आततायियों के समक्ष में बात आ गयी। उनका कठोरता पूर्वक दमन होगा।

बुरे कामों से वे विरत हो गये। नियोगी वर्ग विविध कार्यों के अतिरिक्त और भी कार्य करता था। राजा ने कृषि कर्म पर कर, लगाकर, उनके कार्य कलापों को मर्यादित कर दिया।

वर्णों को मर्यादानुसार कार्य करने के लिए बाध्य कर दिया। ब्राह्मण शस्त्र धारण नहीं करते थे। उन्हें स्वाध्याय एवं पठन पाठन में लगाया। कृषि वर्ग को राजद्वार देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। सामगान कर्ता गुरु लोगों के लिए मदिरा पान वर्जित कर दी गई। तपस्वियों को असंग्रही बनाया। स्त्रियों का हबुआना तथा जादू टोना करना रुक गया। ज्योतिषी, वैद्य, सभ्य, गुरु, मंत्री, पुरोहित दूत एवं स्थेय मूर्ख एवं अपण्डित नहीं थे राज्य जनता के कार्यों में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करता था।

राजा यशश्कर न्याय प्रिय था। कल्हण ने उसकी न्याय प्रियता का उदाहरण उपस्थित किया है। राजा मानव था। वह अपना पूर्व जीवन राज प्राप्ति के पश्चात् भी नहीं भूला था।

न्याय प्रार्थी एक ब्राह्मण भोजन के समय राजा के द्वार पर उपस्थित हुआ। भोजन काल था। राजा ने अपने साथ उसे बैठाकर भोजन कराया। और न्याय किया। राजा ने प्रत्यवेक्षा पूर्वक सूक्ष्मैक्षिका बुद्धि द्वारा धर्म का अन्तर ज्ञात करते हुए, सतयुग की स्थिति देश में उत्पन्न कर दी।

कल्हण वर्णाश्रम धर्म का अनुयायी था। उसने राजा की निन्दा किया है कि उसने डोम्ब अधिकारी अथवा उच्छिष्ट भोजी भृत्यों को अपने पास से नहीं हटाया।

परन्तु कालान्तर में राजा की नीति बदल गयी। वह अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु पर प्रसन्न होकर, जानता में सन्देह उत्पन्न कर दिया। राजा अन्याय एवं अत्याचार देखकर, भी आँख मूदने लगा। उसने लल्ला नाम्नी वेश्या को अतःपुर की कान्ताओं के भी ऊपर रखा। लल्ला का अवैध

सम्बन्ध यामिक चाण्डाल के साथ था । रहस्य हाडी नामक अधिकारी द्वारा प्रकट हो गया। भर्तृहरि के समान रहस्य जानकर राजा विरक्त हो गया । उसने कृष्ण मृग चर्म धारण कर लिया।

राजा ने अपनी पैतृक भूमि पर आर्य देशीय छात्रों के लिए मठ स्थापित किया । वितस्ता पुलिन पर विप्रो को अग्रहार दिया। राजा उदर रोग ग्रस्त हो गया था। उसने संग्राम देव को अपना औरस पुत्र न जानकर बर्राट का राज्याभिषेक कर दिया।

वर्णाट :—(सन् ९४८ ई०) वर्णाट राजा यशश्कर के प्रपितृव्य रामदेव का पुत्र था । राज प्राप्ति पश्चात् वर्णाट मुमूर्षु राजा को देखने नहीं आया। राजा दुःखी हो गया। निश्चय किया। अकृतज्ञ वर्णाट के स्थान पर संग्रामदेव को राज्य दिया जाय। वर्णाट अर्गला युक्त अष्ट मण्डप से एक रात्रि बन्दी रहकर, दूसरे दिन राज प्रासाद से निकाल दिया गया। वह केवल एक दिन के लिए राजा था। संग्राम देव को राज्य दिया । स्वनिर्मित मठपर प्राणविसर्जन हेतु चला गया। मृत्यु निश्चित जानकर, राजा यशश्कर के भृत्यों ने साथ त्याग दिया। मुमूर्षु राजा के पास दो सशस्त्र पाँच सौ स्वर्ण मुद्राएँ थीं। अपने व्यय आदि के लिए लेकर राज प्रासाद से निकला।

राजा की दुर्बलता का लाभ उसके प्रति निष्ठा प्रकटकर्ता भृत्यों ने उठाया । पर्व गुप्त आदि पाँच मन्त्रियों ने राजा की स्वर्ण मुद्राएँ छीन ली। उसके सम्मुख ही परस्पर विभाजित कर लिया। राजा मठ की एक कोठरी में त्यक्त व्यक्ति तुल्य घटना का मूक द्रष्टा बना पड़ा रहा। राजा शीघ्र मर नहीं रहा था। राज्य भय दूर करने के इच्छुक पिन्ट, सुहृद्, बन्धु, भृत्य उसे शीघ्र ही विष खिलाकर मार डाले। उसका चिता पर अवरोध वधुओं में केवल एक सती त्रैलोक्य देवी सती हुई।

कथा है। राजा की मृत्यु उसकी न्यायप्रियता के कारण हुई थी। चक्रमेलक स्थानपर चन्द्रभानु विप्र तपस्वी रहता था। उसने अधर्म कार्य किया था । राजा ने शास्त्रानुसार उसके मस्तक पर तप्त लौह श्वानपद चिह्न दगवा दिया। उसका मातुल योगी वीरनाथ था। राजा का सन्धि विग्रहिक था। राजा पर प्रतिहिंसा के कारण अभिचार किया था। उसके कारण वह सात दिन में ही मर गया। परन्तु कल्हण इस कथा पर अविश्वास करता है। क्योंकि राजा की बिमारी दीर्घ कालीन था।

संग्रामदेव :—(सन् ९४८-९४९) शिशुराजा संग्रामदेव की अभिभाविका उसकी पितामही थी । भूभट आदि सहित पर्वगुप्त ने पाँच मन्त्रियों के साथ राज्य पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। पर्वगुप्त राज्य प्राप्ति के लिए गुप्त षड्यन्त्र करने लगा। एकांगों के भय के कारण पर्वगुप्त खुलकर कुछ करने में असमर्थ था। उसने अभिचार क्रिया द्वारा राजा की हत्या का विचार किया।

एक समय महाहिमपात होने पर मार्ग एवं स्थान जनशून्य हो गया था। लोग अपने घरों में बैठे थे। पर्व गुप्त ने सैन्य संग्रह किया। राजधानी निरुद्ध कर लिया। शिशु राजा के कण्ठ में पुष्पमाला डालकर, उसे खींच लिया। राजा सिंहासन के नीचे गिर गया। राजा संग्रामदेव के शरीर से शिला बाध दी गयी। रात्रि में वितस्ता नदी में डुबा दिया।

पर्वगुप्त :—(सन् ९४९-९५० ई०) पर्वगुप्त षड्यन्त्रों द्वारा राज्य प्राप्ति में सफल हो गया। पर्व गुप्त अभिनव नामक दिविर से उत्पन्न संग्राम गुप्त का पुत्र था।

पर्वगुप्त ने जनता के रोग भूत नियोगियों को प्रोत्साहित किया। राजा स्कन्द भवन विहार के समीप पर्वगुप्तेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया। राजा यशश्कर के अन्त:पुर की गौरी तुल्य एक नव सुन्दरी ने लोक-निन्दा दूर कर दिया था। पर्वगुप्त उसपर आसक्त था। उसे प्राप्त करना चाहता था। परन्तु वह सती थी। सतीत्व की रक्षा करना चाहती थी। रानी ने उसके अत्यन्त जोर देने पर बाध्य होकर कहा। पर्वगुप्तेश्वर मन्दिर का निर्माण पूर्ण हो जाने पर इच्छा पूर्ण करेगी। कामी पर्वगुप्त ने मन्दिर निर्माण शीघ्राति-शीघ्र पूर्ण कर दिया। मन्दिरोत्सव के दिन रानी ने हवनाग्नि में शरीर की आहुति कर सतीत्व एवं कुल मर्यादा की रक्षा की। राजा तृष्णा रोग से पीड़ित हो गया। सुरेश्वरी क्षेत्र में चला गया। वही प्राण विसर्जन किया।

क्षेमगुप्त :—(सन् ९५०–९५८ ई०) आसव सेवन से उन्मत्त, वित्त एवं तारुण्य ज्वर ग्रस्त क्षेम गुप्त राजा हुआ। जो कि पर्वगुप्त का पुत्र था।

क्षेमगुप्त की एक ताम्र मुद्रा मिली है। दुर्जन संग के कारण, वह स्वभाव से दुर्वृत्त एवं भयावह था। फल्गुण आदि अनेक लालितक उसकी सेवा करते थे। परापहरण कुशल, परनारी रति प्रिय, परायत्त आशय, राजा अनर्थ से तत्पर था। आदर पात्रों का अनादर एवं नारियों में समय व्यतीत करता था। सज्जनों के लिये राज्य सभा प्रवेश योग्य नहीं रह गयी थी। चंचल एवं दुर्बल बुद्धि व्यक्ति था। राज सभा एवं समाज दोनों गिर गये थे। फल्गुण ने फल्गुण स्वामी मन्दिर की प्रतिष्ठा किया था। फाल्गुण की उचित बातों की राजा हँसी उड़ाता था।

राजा ने संग्राम डामर की हत्या करने के लिये बधिको को भेजा। भयग्रस्त संग्राम जयेन्द्र विहार में शरण लिया। राजा ने विहार में आग लगवा दिया। विहार की सुगत कास्य प्रतिमा गल गयी। उस रीति से तथा प्राचीन देवगृहों के पाषाणों से उसने क्षेम गौरीश्वर मन्दिर का निर्माण किया। क्षेमगुप्त ने दग्ध विहार पर चढ़े कुछ ग्रामों को वापस लेकर खश राजा को दे दिया।

क्षेमगुप्त ने लोहर दुर्ग के शासक राजा सिंहराज की कन्या दिद्दा से विवाह किया। वह दिद्दा से अति स्नेह के कारण दिद्दा क्षेम, संयुक्त नाम से काश्मीर में प्रसिद्ध हो गया। दिद्दा के मातामह श्री भीमशाही ने भीम केशव के भव्य मन्दिर की स्थापना किया। द्वारपति फल्गुण ने अपनी कन्या चन्द्रलेखा राजा को प्रदान की। दिद्दा फल्गुण से असन्तुष्ट हो गयी। राजा शिकार अर्थात् मृगया प्रेमी था। वनों में, डोम्ब और कुत्तों के साथ, शिकार खेलता था। कृष्ण चतुर्दशी का दिन था। मृगया के समय एक शृगाली देखा। उसके मुख से अग्नि ज्वाला निकल रही थी। संत्रस्त राजा काँपने लगा। लूता ज्वर से ग्रस्त हो गया। राजा ने वाराह क्षेत्र हुस्कपुर में श्री कण्ठ एवं क्षेम मठ निर्माण कराया था। वह प्राण विसर्जन हेतु वाराह क्षेत्र में आया। रोग ग्रस्त राजा ने वही प्राण त्याग किया।

अभिमन्यु :—(सन् ९५८–९७२) दिद्दा रानी द्वारा अनुपालित क्षेमगुप्त का आत्मज अभिमन्यु राजा हुआ। सन्धि विग्रहिक शुद्धान्त एवं मुख्य कर्माधिकारी शयन करती राज वधू के समीप निर्भय होकर जाते थे।

अभिमन्यु के राज्य काल में तुंगेश्वर के आपण अर्थात् बाजार में भीषण अग्नि लगी। वह अग्नि वर्धनस्वामी के पार्श्वस्थ भिक्षु की पारक पर्यन्त फैल गयी।

क्षेमगुप्त से फल्गुण ने अपनी कन्या चन्द्रलेखा का विवाह कर दिया था। सपत्नी रानी दिद्दा फल्गुण से इस लिये असन्तुष्ट रहती थी। पति की मृत्यु पर दिद्दा पति-चिता के समीप गयी। भयभीत हो उठी।

सती नहीं होना चाहती थी। मन्त्री नरवाहन ने कातर दिद्दा को देखा। उसे दया आयी। दिद्दा का सती होना रोक दिया। प्रसन्न दिद्दा राज प्रासाद लौट आयी।

रक्क पिशुन था। रानी के दिमाग में भर दिया। फल्गुण राज्य अपहरण करना चाहता था। रानी शंकित हो गयी। शंकित फल्गुण भी सावधान हो गया। फल्गुण मन्त्रशक्ति, शौर्य्य, उत्साह एवं कुशल शासक होने के कारण आँखों में गड़ने लगा था। फल्गुण का पुत्र कर्दम राज था। क्षेम राज की अस्थियाँ गंगा प्रवाह हेतु गया था। पुत्र के आगमन तक फल्गुण पूछ निवासी हो गया। वह नगर से निकलकर काष्ठ-वाट समीप पहुँचा ही था कि रक्क द्वारा प्रेरित रानी दिद्दा ने फल्गुण की हत्या हेतु याष्टिकों को भेज दिया। फल्गुण वाराह क्षेत्र आया। सैन्य सहित उसका आगमन सुनकर आमात्यों सहित दिद्दा काँप उठी।

फल्गुण पूर्व स्वामी राजा क्षेम गुप्त के लिये शोकान्वित था। उसे विरक्ति हुई। अस्त्र-शस्त्र भगवान् वाराह के चरणों में अर्पित कर दिया। सैनिक वृत्ति से संन्यास ले लिया। सुनकर, दिद्दा को सन्तोष हुआ।

पर्व गुप्त ने छोज एवं भूभट मन्त्रियों से अपनी दो पुत्रियों का पाणिग्रहण कराया था। उनके द्वारा उत्पन्न महिम एवं पाटल थे। राज प्रासाद में राजपुत्र तुल्य प्रवर्धित हुए थे। राज्य प्राप्ति की लालसा से हिम्मक आदि से मन्त्रणा किये। षड्यन्त्र करने लगे। रानी दिद्दा ने सुना। वे राज्य प्रासाद से निर्वासित कर दिये गये। महिमन के पीछे याष्टिक लग गये। महिमन भयभीत हो गया। शक्तिसेन श्वसुर का आश्रय लिया। याष्टिक पीछा करते पहुँचे। शक्तिसेन ने याष्टिकों को लौट जाने के लिये बहुत समझाया। याष्टिक नहीं हटे। शक्ति सेन ने जमाता महिमन को खुलकर आश्रय दिया। संश्रय प्राप्त उसके पास हिम्मक, मुकुल तथा परिहासपुर निवासी में एरमन्तक, अमृताकर वा पुत्र श्रीमान् उदयगुप्त, ललितादित्य पुरवासी यशोधर, भी वहाँ आ गये। उनलोगों ने महिमन का पक्ष लिया। विद्रोह किया।

केवल एक मन्त्री नरवाहन ने दिद्दा रानी का साथ दिया। दिद्दा रानी परिस्थिति की गम्भीरता समझ गयी। आत्मज राजा को शूर मठ रक्षा हेतु भेज दिया। ललितादित्य पुर के द्विजों को धन देकर अपनी ओर मिला लिया। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणों के द्वारा ही विद्रोहियों में फूट पड़ गयी। दिद्दा रानी ने यशोधर आदि को कम्पनादि पद प्रदान किये। दिद्दारानी की आज्ञा काश्मीर मण्डल में अखण्डित हो गयी थी।

शाही राज थक्कन था। कम्पनाधिपति थक्कन से कुपित हो गया। स्व वंशजों सहित उसपर आक्रमण किया। थक्कन बन्दी हो गया। रक्क आदि पिशुनो के कारण रानी थक्कन विरोधी हो गयी। विजयी थक्कन ज्योंही निवास स्थानपर पहुँचा, रानी ने उसे निर्वासित करने के लिये याष्टिकों को भेजा। थक्कन पर मिथ्या आरोप सुनते ही हिम्मक एवं एरमन्तक आदि पूर्ववत् विद्रोही हो गये। किन्तु नरवाहन आदि ने रानी का साथ दिया। सुभधर आदि लोग सशक्ति नगर में प्रवेश किये। राजा पुनः रक्षा हेतु भट्टारकरिका मठ भेज दिया गया। रानी राजप्रासाद का किवाड़ बन्दकर बैठ गयी।

मठ विद्रोहियों ने समय से लाभ नही उठाया। दूसरे दिन चतुर रानी ने अपना बल संघटित कर लिया। अद्भुत धैर्य का परिचय दिया। भट्टारक मठ से शूर मठ तक युद्ध होने लगा। सिंह द्वार पर एकांग सैनिक संघटित हो गये। राज कुल भट्ट भी शत्रु सैन्य को भयभीत करता वहाँ पहुँच गया। शत्रु नष्ट हो गये। हिम्मक मारा गया। यशोधर बन्दी हो गया। एरमन्तक युद्ध करता रहा। उसकी तलवार टूट गयी। अश्व से गिर गया। बन्दी बना लिया गया। उदयगुप्त युद्ध त्यागकर चला गया। रानी ने यशोधर, शुभधर, एवं सबान्धव मुकुल को बन्दी गृह में डाल दिया। एरमन्तक के कण्ठ में महाशिला बाधकर वितस्ता में डाल दिया

गया। रानी दिद्दा मन्त्री नरवाहन की स्वाभिमान के कारण शत्रुओं का संहार कर शक्ति समन्वित हो गयी। उसने रक्क आदि को कम्पन आदि कर्मस्थानों पर नियुक्त किया। नरवाहन को राजानक पदवी से विभूषित किया।

कुप्य नामक युग्मवाही के दो पुत्र सिन्धु एवं भुय्य थे। ज्येष्ठ सिन्धु ने पर्वगुप्त की सेवा में गजाध्यक्ष पद प्राप्त किया था। उसने सिन्धु गजा स्थान स्थापित किया। चंचल बुद्धि रानी दिद्दा में उसने शंका उत्पन्न कर दिया। मन्त्री नरवाहन उसका राज्य लेना चाहता था। चंचल बुद्धि दिद्दा में शंका ने जड़ जमा लिया। उसने अपना गुप्त विचार भी प्रकट कर दिया।

किसी दिन नरवाहन ने रानी को भोजन हेतु आमन्त्रित किया था। सिन्धु ने रानी को मना किया। रानी ने संदेश भेज दिया—"वह स्त्री धर्म युक्त है। अतएव आने में असमर्थ है।" नरवाहन के प्रति उसकी सद्भावना नष्ट हो चुकी थी। नरवाहन का अपमान अनेक प्रकार से रानी करने लगी। नरवाहन परिशान हो गया। स्वयं जीवित ही शरीर त्याग दिया।

रानी ने संग्राम डामर के पुत्रों के वध का विचार किया। रानी के भय से वे लोग घोष में उत्तर चले गये। आक्रामक द्वारपति कय्यक आदि को मार डाला। डामर रानी के सम्मुख आ गये। अपना प्रभाव प्रकट किये।

रक्क की मृत्यु के पश्चात् फल्गुण को रानी ने पुनः राज्य शासन देने के लिए बुलाया। न्यस्त शस्त्र फल्गुण ने पुनः शस्त्र ग्रहण किया। दुर्बुद्धि जयगुप्त अक्षपटलाधीश हो गया। राज सेवक प्रजा को लूटने लगे।

दौश्शील्य भाजन माता के पापों से राजा अभिमन्यु दुःखी रहता था। वह भय रोगग्रस्त था, कार्तिक शुक्ल त्रितीया सन् ९७२ ई० को राजा दिवंगत हो गया।

नन्दिगुप्त :—(सन् ९७२-९७३) अभिमन्यु का बालक पुत्र नन्दिगुप्त राजा हुआ। रानी दिद्दा पुत्र की मृत्यु पर शोक विह्वल हो गयी थी। सिन्धु का सुभाशयी भ्राता नगराधि कृत भुय्य रानी की धर्म चर्या का परिपोषक हुआ। रानी प्रजा सेवा में रत हो गयी। उसने जनता का स्नेह प्राप्त किया रानी ने दिवंगत पुत्र के पुण्य हेतु अभिमन्यु स्वामी एवं अभिमन्दुपुर निर्मित किया। दिद्दापुर, दिद्दास्वामी एवं मध्यदेशीय, लाट, शौदोत्र आदि निवासियों के लिए मठ निर्माण कराया। स्वर्णवर्षिणी रानी ने पति कंकण वर्ष के पुण्योत्कर्ष अभिवृद्धि हेतु कंकणपुर निर्माण किया। श्वेत शैल युक्त दूसरे दिद्दास्वामी की स्थापना की। बौद्ध धर्मावलम्बियों के लिए चतुःशाला युक्त विहार निर्माण कराया। उसने पितामह सिंह राज के नाम पर सिंह स्वामी तथा दैशिक द्विजन्माओं के निवास हेतु मठ निर्माण कराया। वितस्ता सिन्धु संगम को मठ वैंकुन्ठ आदि निर्माणों से पावन कर दिया। उसने चौसठ प्रतिष्ठायें भी की। देव गृह के दग्ध प्राकार मण्डलों का जीर्णोद्धार कर, उन्हें शैल वप्रों अर्थात् पत्थरों के प्राचीर से आवृत किया। रानी पंगु थी। उसे पीठ पर लेकर बलगा चलती थी। बलगा ने बलगा मठ स्थापित किया।

किन्तु एक वर्ष पश्चात् ही वर्षिणी रानी दिद्दा का शोक समाप्त हो गया। उसने मार्ग का कण्टक जानकर पौत्र राजा नन्दि गुप्त की मृत्यु हेतु अभिचार क्रिया कराया। राजा नन्दिगुप्त अकाल ही कालकवलित हो गया।

त्रिभुवन गुप्त :—(९७३-९७५ ई०) नन्दिगुप्त के पश्चात् उसके भ्राता त्रिभुवन गुप्त का अभिषेक किया गया। किन्तु दिद्दारानी ने अपने पौत्र राजा त्रिभुवन गुप्तकी भी हत्या करा दिया।

भीमगुप्त :—(सन् ९७५—९८०-८१ ई०) रानी ने अन्तिम पौत्र भीमगुप्त को काश्मीर के सिंहासन पर बैठाया। इसी समय वृद्ध मन्त्री फल्गुण दिवंगत हो गया। फल्गुण वदो मृत्यु के पश्चात् रानी निरंकुश हो गयी। उसको दुष्ट चेष्टाओं की सीमा नहीं रह गयी।

पर्णोत्क अर्थात् पूँछ में वद्दिवास नामक ग्राम में वाण नामक खस का पुत्र तुंग रहता था। वह भैंस चराता था। चरवाहा का उद्यम करता था। पाँच भाइयों सुगन्धिसीह प्रकट नाग, अट्टयिक तथा षणमुख के साथ काश्मीर मण्डल में प्रवेश किया।

सन्धि विग्रहिक के कार्यालय में तुंग लेख हारक अर्थात् हरकारे का कार्य करता था। एक समय दिद्दा ने उसे सन्धि विग्रहिक के समीप देखा।

युवक पर आसक्त हो गयी। दिद्दा का वह युवा जार बन गया। तुंगानुरागी पापी रानी ने भुय्य की विष द्वारा हत्या करा दी। देवकलश रक्क का पुत्र था। कौटिन्य-आचरण शील, (पर पुरुषोप-स्थापन कार्य कर्ता) निर्लज्ज, विट, बेलावित्त, उस देव कलश को रानी ने भुय्य के स्थान पर नियुक्त किया। द्वारादि नायक कर्दम राज भी रानो के कौटिन्य कार्य में रत हो गया। चार पाँच मास राज प्रासाद में रहते-रहते राजा भीमगुप्त ने प्रौढ़ावस्था प्राप्त किया। उसने राज व्यवस्था एवं कुवृत्ति शील पितामही में सुधार का प्रयास किया। उसकी सुधारक प्रवृति देखकर, दिद्दा चिन्तित हो गयी। उसकी हत्या करने का विचार किया। राजा अभिमन्यु की स्त्री ने उसे गुप्त रुप से लाकर पुत्र बना लिया था। अतएव वह अपने पूर्वजों के समान क्रूर एवं चरित्र भ्रष्ट नहीं था। देवकलश द्वारा मन्त्रणा कर रानी भीम गुप्त को बन्दी बना लिया। उसने अनेक यातनाओं द्वारा भीम गुप्त की जीवन लीला समाप्त करवा दी।

दिद्दा :—(सन् ९८०—१००३ ई०) दिद्दा की ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। भीम गुप्त की मृत्यु पश्चात् स्वयं राज्य सूत्र लेकर काश्मीर की शासिका बन गयी। तुंग सर्वाधिकारी बना। भ्राता सहित तुंग द्वारा पदच्युत मन्त्रियों ने विद्रोह का विचार किया। परस्पर मन्त्रणा किये। दिद्दा के भ्रातृ पुत्र, क्रौर पौरुष, एवं उग्र नृप विग्रह राज को काश्मीर बुलाया जाय।

विग्रहराज ने ब्राह्मणों को प्रापोवेशन हेतु प्रेरित किया। विप्रों के एकवद्ध हो जाने पर तुंग को मारने के लिये लोग खोजने लगे। आक्रमण की आशंका से रानी दिद्दा ने तुंग को एक घर में रखकर द्वार बन्द कर दिया।

रानी चतुर थी। सुमनोमन्तक आदि ब्राह्मणों को सुवर्ण देकर मिला लिया। प्रायोवेशनकारी ब्राह्मणों में फूट हो गयी। ब्राह्मणों का खतरा स्वतः समाप्त हो गय। विग्रहराज ब्रह्मणों के लोभ वृत्ति एवं कर्मों से हताश हो गया। जैसे आया था लौट गया।

कालान्तर में तुंग आदि प्रबल हो गये। कर्दम आदि विद्रोहियों को मार डाला। रुष्ट होकर विरोधी वर्ग देश से निर्वासित हुए सुलक्कन, रक्क पुत्र तथा अन्य मुख्य मन्त्रियों को आहूत किया। विग्रह राज ने गुप्तरूप से दूतो को भेजकर ब्राह्मणों से पुनः प्रायोवेशन आरम्भ करवाया। घूस ग्रहण करने की इच्छा से प्रायोवेशन पर बैठे ब्राह्मणों पर तुंग ने आक्रमण किया। उन्हें भगा दिया। ब्राह्मण मध्य गुप्त रूप से निवास

करता विग्रह राज का कटक बारिक आदित था। वह भाग रहा था। मार डाला गया। वत्सराज बन्दी हो गया। सुमनोमत्तक आदि स्वर्णग्राही ब्राह्मणों को भीतुंग ने बन्दीगृह में रख दिया।

फल्गुण के मृत्यु पश्चात् राजपुरी का राजा स्वतन्त्र हो गया था। सैनिक अभियान किया गया। राजपुरी राजा वीर पृथ्वी पाल ने आक्रमण किया। काश्मीरी सेना क्षय प्राप्त की। सैनिक अभियान में शियाटक एवं हंसराज मन्त्री मारे गये। चन्द्रादि की इतनी दुर्गति हुई कि उसकी अपेक्षा उनका मरना ही अच्छा था।

तुंग अपने भाइयों के साथ अन्य मार्ग से प्रविष्ट होकर, राजपुरी में आग लगा दिया। अग्नि दाह के कारण राजपुरी नष्ट हो गयी और काश्मीर के शेष मन्त्रियों पर आया सैन्य संकट दूर हो गया। निर्बल होने पर राजपुरी पति ने कर देना स्वीकार किया। इस प्रकार उस समय तुंग के कारण नष्ट कार्य का सुन्दर योजन हो गया। तुंग को कम्पन पद दिया गया। तुंग ने नगर में प्रविष्ट होते समय डामरों का संहार किया।

आशंकित दिद्दा ने भ्राता उदयराज के पुत्र संग्राम राज को युवराज बनाया। दिद्दा ने अपने भाइयों के सभी पुत्रों को बुलाया। उन सब के सामने सेव का फल उनकी बुद्धि परीक्षा हेतु फेक दिया। 'कौन कितना लेता है'—कहती हुई सबको ध्यानपूर्वक देखने लगी। बालक आपस में सेव अधिक से अधिक लेने के लिए लड़ने लगे। संग्राम राज ने सबसे ज्यादा फल प्राप्त किया। बिना चोट चपेट लगे, स्थिर एक ओर खड़ा रहा। दिद्दा के पूछने पर उसने कहा—कलह से दूर रह कर फलों को एकत्रित करता था। लड़ने झगड़ने से दूर था। चोट चपेट से बच गया। रानी दिद्दा संग्राम राज की वाणी सुनकर, उसे ही राज सिंहासन योग्य माना। दिद्दारानी सन् १००३ ई० भाद्र शुक्ल अष्टमी को दिगवंत हुई। संग्राम राजा काश्मीर का प्रथम लोहरवंशीय राजा हुआ।

—:०:—

राजतरंगिणी--पाठ

प्रस्तुत संस्करण का पाठ तथा पाठ भेद श्रीस्तीन (संस्करण सन् १८९२ ई०) पर आधारित है परन्तु कुछ स्थानों पर पाठ एवं पाठ भेद सर्वश्री मूर क्राफ्ट (कलकत्ता, संस्करण सन् १८३५ ई०) ट्रोयर (पेरिस; संस्करण सन् १८४० ई०) दुर्गा प्रसाद (काव्य माला संस्करण बम्बई, सन् १८९२ ई०) रामतेज शास्त्री (काशी, संस्करण सन् १९६० ई०) तथा पाण्डुलिपी वाराणसेय संस्कृत श्विविद्यालय पंजीकृत संख्या ७३९६५ ए. संबत १९१९ एवं काशी विश्व विद्यालय पाण्डुलिपी संबत १८८४ से सहायता लीगयी है।

राजतरंगिणी चतुर्थ तरंग

कर्कोट वंश

दुर्लभ वर्धन—प्रज्ञादित्य = अनंगलेखा (लौ० ३६७७ वर्ष)

- मल्हण
- दुर्लभक–प्रतापा दित्य (द्वितीय) (लौ० ३७१३ वर्ष)
  - चंद्रापीड–वज्रादित्य (लौ० ३७६३ वर्ष)
  - तारापीड–उदयादित्य (लौ० ३७७२ वर्ष)
  - मुक्तापीड–ललितादित्य (लौ० ३७७६ वर्ष)
    - कुलवयापीड (लौ० ३८१३ वर्ष)
    - वज्रादित्य वप्पियक–ललितादित्य (लौ० ३८१४ वर्ष)
      - त्रिभुवनापीड
        - अजितापीड (लौ० ३८८९ वर्ष)
          - उत्पलापीड. (लौ० ३९२९ वर्ष)
      - पृथिव्यापीड (लौ० ३८२१ वर्ष)
      - सग्रामापीड (प्रकाश) (लौ० ३८२५ वर्ष)
      - जयापीड–विनयादित्य (लौ० ३८२८ वर्ष)
        - ललितापीड (लौ० ३८५९ वर्ष)
          - चिप्पट जयापीड–वृहस्पति (लौ० ३८७८ वर्ष)
        - सग्रामापोड पृथिव्या पीड (द्वितीय) (लौ० ३८७१ वर्ष)
          - अनंगापोड (लौ० ३९२६ वर्ष)

पुन: लौकिक वर्षों के साथ मास तथा दिन न देकर केवल पूर्ण संख्या दो गयी है ।

राजतरंगिणी चतुर्थ तरंग

कर्कोटि वंश

क्रम	नाम राजा	श्लोक स०	राज्याभिषेक लौ०			सन् ई०	राज्यकाल		
			वर्ष	मास	दिन		वर्ष	मास	दिन
१	दुर्लभ बर्धन	२	३६७७	१०	१	६०१	३६	०	०
२	दुर्लभक	७	३७१३	१०	१	६३७	५०	०	०
३	चंद्रापीड	४५	३७६३	१०	१	६८७	८	८	०
४	तारापीड	११९	३७७२	६	१	६९६	४	०	२४
५	मुक्तापीड ललितादित्य	१२६	३७७६	६	२५	७००	३६	७	११
६	कुवलया पीड	३७२	३८१३	२	६	७३७	१	०	१५
७	वज्रादित्य	३९३	३११४	२	२१	७३८	७	०	०
८	पृथिब्या पीड	३९९	३८२१	२	२१	७४५	४	१	०
९	सग्रामा पीड (प्रथम)	४००	३८२५	३	२१	७४९	०	०	७
१०	जज्ज	४१०	३८२५	३	२८	७४९	३	०	०
११	जयापीड	४०२	३८२८	३	२८	७५२	३१	०	०
१२	ललिता पीड	६६०	३८५९	३	२८	७८३	१२	०	०
१३	संग्रामा पीड (द्वितीय)	६७४	३८७१	३	२८	७९५	७	०	०
१४	चिप्पट जयापीड	६७६	३८७८	३	२८	८०२	१२	०	०
१५	अजिता पीड.	६८९	३८८९	०	०	८१३	३७	०	०
१६	अनंगा पीड	७०७	३९२६	०	०	८५०	३	०	०
१७	उत्पला पीड	७०९	३९२९	०	०	८५३	२	०	०

उक्त गणना श्रीस्तीन के आधार पर की गयो है । उनका समय लगभग समझना चाहिये ।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

चतुर्थस्तरङ्गः

तद्वीतव्यतिरेकमद्रितनयादेहेन मिश्रीभव-
न्निष्प्रत्यूहमिह व्यपोहतु वपुः स्थाणोरभद्राणि वः ।
वेण्या भोगिवधूशरीरकुटिलश्यामत्विषा वेष्टिता
जूटाहेरपि यत्र भाति दयितामूर्त्येव पृक्ता तनुः ॥ १ ॥

भेदरहित एवं अद्रितनया के देह से मिश्रित होता हुआ, निष्प्रत्यूह स्थाणु (शिव) का शरीर आप लोगों के ऐहिक अमङ्गलों को नष्ट करे; जिसमें भोगि-वधू (सर्पिणी) के शरीरवत् कुटिल एवं श्यामलकान्ति वाली वेणी से वेष्टित जूटस्थ अहि का शरीर भी दयिता[1] मूर्त्ति से सम्पृक्त सा मालूम पड़ता है।

पाठभेद :

श्री गणेशाय नमः, ओं श्री गणेशाय नमः, ओम्, ओं स्वस्ति, श्रीगुरवे नमः, ओम् नमो भगवद्भ्याम् पाठभेद मिलता है।

श्लोक संख्या १ में 'मिश्रीभव' का 'सिद्धीभव', 'व्यपोहतु' का 'व्यपोहत' 'वेष्टिता' का 'चेष्टिता' तथा 'भाति' का 'माति' पाठभेद मिलता है।

पाण्डुलिपियों में प्रतिलिपिकारों ने अपनी श्रद्धा भक्ति के अनुसार तथा पुरानी मान्यता के अनुरूप मङ्गल-सूचक 'ओम्' आदि लिख दिया है जिससे इसमें पाठभेद अधिक है।

पादटिप्पणी :

(१) दयिता—शिव का दयिता समन्वित होना लोक प्रसिद्ध है। यहाँ पर कवि ने अपनी प्रतिभा के विलास से श्री शिव की जटा में स्थित सर्प को भी पार्वती के वेणीसान्निध्य से दयिता युक्त बना दिया है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलङ्कार सुन्दर ढंग से आया है।

कवि कल्हण प्रगतिशील कवि था। वह पुरानी लकीर का फकीर नहीं था। कल्हण ने किसी तरङ्ग में न तो गणेश की वन्दना की है और न गणेश का नाम लिया है। वह गणेश के माता-पिता पार्वती-शिव के अर्धनारीश्वर रूप का भक्त था। नर-नारी की मैत्री की यह कल्पना उसे बहुत प्रिय थी। प्रायः सभी तरङ्गों के आदि में उसी की स्तुति की है।

कल्हण कालिदास के काव्य से प्रभावित था। कालिदास रूढ़िवादी नहीं थे। परम्परावादी नहीं थे। उन्होंने भी ग्रन्थारम्भ श्री गणेश किंवा सरस्वती की वन्दना से नहीं किया है। काश्मीरी स्वभावतः शैव होते हैं। सोमदेव ने कथासरित्सागर शिव की वन्दना से आरम्भ किया है। परन्तु प्रत्येक लम्बक के आरम्भ

स महीं राजकन्यां च प्राप्तवानेकतः कुलात् ।
रत्नानां च सुतानां च राजाऽभूद्भाजनं शनैः ॥ २ ॥

दुर्लभवर्द्धन :

२. राजा दुर्लभवर्धन[1] ने कश्मीर मण्डल तथा राजकन्या दोनों को एक ही गोनन्द वंश से प्राप्त किया था और शनैः शनैः रत्नों एवं पुत्रों से युक्त हुआ।

में गणेश की भी वन्दना करता है। कालिदास ने रघुवंश में शिव की, कुमारसम्भव एवं मेघदूत में किसी की भी नहीं, अभिज्ञानशाकुन्तल एवं विक्रमोर्वशी में शिव की वन्दना की है। उनमें पार्वती का भी उल्लेख किया है। मालविकाग्निमित्र में कान्तासंमिश्रण के साथ शिव की वन्दना की है। अर्धनारीश्वर की वन्दना कल्हण के सदृश नहीं किया है। दोनों को एक ही अंग का रूप मानकर नहीं किया है। तथापि एक झलक अवश्य अर्धनारीश्वर की मिल जाती है। कल्हण पुरुष-प्रकृति, नर-नारी दोनों की कल्पना करता है। केवल एक की वन्दना से एक शक्ति की ही वन्दना होती है। कल्हण पूर्णता चाहता था। वह मानव के एकांगी रूप को पसन्द नहीं करता। नर-नारी, पुरुष-प्रकृति के मिलने पर ही सृजक शक्ति का, उस शक्ति का जो प्राणीमात्र का जीवनस्रोत है, जिससे यह जगत् प्रपंच चलता है उसे कल्हण ने अर्धनारीश्वर रूप मानकर अपने इष्टदेव की कल्पना की है। प्रकृति की पूर्णता की कल्पना कर अपने मंगलाचरण को वास्तव में पूर्ण बनाया है। प्रायः सभी पुरातन कवि अपने इष्टदेव की स्तुति एवं वन्दना मंगलाचरण में करते हैं। इस परम्परा का निर्वाह कालिदास एवं कल्हण दोनों ने किया है। वे दोनों शैव दर्शन से प्रभावित थे। उनका शैव दर्शन भी अपने ढंग का निराला था। कालिदास एवं कल्हण दोनों ने गुरु के महत्त्वका मंगलाचरण में उल्लेख नहीं किया है। वे स्वयं अपने कार्यों से अपने परिश्रम से काव्यकला प्राप्त किये थे। किसी के प्रसाद का परिणाम नहीं था।

अनेक आधुनिक विद्वानों ने कालिदास के प्रत्यभिज्ञा दर्शन से प्रभावित होने की बात कही है। यह दर्शन गुरु की कल्पना करता है। कालिदास ने गुरु की वन्दना नहीं की है। कह सकते हैं। कालिदास एवं कल्हण दोनों शैव दर्शन से प्रभावित होते हुए भी रूढ़िवादी नहीं थे। उन्होंने अपनी स्वतंत्र काव्यधारा चलायी है। उस धारा प्रवाह में सर्वदा नवीन एवं प्रसन्न जलबिन्दुओं का दर्शन होता है। वे हृदय को शीतल करते हैं। नवजीवन देते हैं। सर्वदा नवीन दिशा की ओर ले जाते हैं। वे अपने निर्भीक एवं युक्त विचारों एवं व्यंजनाओं से पाठकों को न तो शिथिल होने देते हैं और न उन्हें पुराने चले हुए पथ से ले जाते हैं।

पादटिप्पणी :

२. राजा का राज्याभिषेक सर्वश्री स्तीन के अनुसार लौकिक संवत् ३६७७ वर्ष दस मास एक दिन, ट्रोयर सन् ५९७ ई० ६ मास, कनिङ्घम सन् ५९४ ई० ९ मास, विलसन सन् ६१५ ई० ५ मास, बाली सन् ४९० ई० देते हैं। स्तीन ने राज्य काल ३६ वर्ष दिया है।

दुर्लभवर्धन की एक स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त हुई है। उसके मुख्य भाग पर लक्ष्मी की मूर्त्ति है। उसके दक्षिण ओर 'दुर्लभ' तथा बाईं ओर 'देवं' और पृष्ठ भाग पर 'दण्डायमान राजा' तथा 'किदा'; (र) टंकणित है। (सी. एम. आई. III. : 7 ; 1-9.)

२. (१) **दुर्लभवर्धन** आइने अकबरी में 'दिरलेपिर दिखुन' तथा उसे बालादित्य का जामाता और राज्य काल ३६ वर्ष दिया गया है। चीनी लेखों में इसे तु-

लौ-पा कहा है। उसका काल सन् ६२७ से ६४९ दिया है। चीन से पिकिन (काबुल) वाणिज्य पथ पर उसका अधिकार माना गया है।

अथर्ववेद में विषधर सर्प के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। महाभारत में कर्कोट नाग का उल्लेख मिलता है। (सभा : ९ : ९, वनपर्व : ६६ : ४, कर्णपर्व : ४४ : ४३ मोसलपर्व ५:१५७) कर्कोट नाग का उल्लेख श्रीवर ने किया है (३ : ४५७) प्रमुख नागों की तालिका में नागराज कर्कोट का प्रमुख स्थान आता है।

'नागानामधिपौ नीलो वासुकिश्चापि तक्षकः।
कम्बलाश्वतरौ नागौ कर्कोटकधनंजयौ ॥

नी० ८८ = १०५१-१०५२

नेपाल राजवंश का संरक्षक देवता कर्कोट नाग माना जाता है। नेपाल में कर्कोट नाग पूज्य तथा जनप्रिय है। दुर्लभ वर्धन : (ए-६२७-६६३ ई०) कर्कोट वंश से कश्मीर का क्रमबद्ध तथा तिथि-अनुसार इतिहास मिलता है। इस वंश के राजाओं का वर्णन नाम विदेशी पर्यटकों, लेखकों तथा मुद्राओं पर अंकित प्राप्त हुआ है। इस वंश के वर्णन से आधुनिक ऐतिहासिकों के वैज्ञानिक इतिहास का रूप कल्हण उपस्थित करता है। यहाँ से कल्हण की वर्णनशैली तथा घटनाओं के उल्लेखों में एक मोड़ मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से कर्कोट काल का तिथिक्रम, संवत् घटनाक्रम आदि विश्वसनीय है।

चीन के तंग वंश के इतिवृत्त अर्थात् ऐतिहासिक लेखों से प्रकट होता है। सन् ६२७-६४९ ई० के मध्य दुर्लभवर्धन कश्मीर पर राज्य करता था। उसका चीन से काबुल तक व्यापारिक पथ पर अधिकार एवं प्रभाव था।

कल्हण के अनुसार दुर्लभवर्धन लौकिक संवत् २६७७ में सिंहासन पर बैठा था। वह कर्कोट वंश का प्रथम राजा था। उसने ३६ वर्षों तक राज्य किया।

हसन लिखता है--'राजा दुरलव बरदन दामाद बालादित्य ने विक्रम ६५५ में खंग वजीर की मदद से हुकूमत का तख्त सर पर रख कर मख़लूक खुदा की अदल व अहसान और सखावत और मिहरबानी से आबाद किया। अनन्तलेखा के पेट से मल्हन नाम का एक लड़का रखता था। जिसे राजा बालादित्य ने अपनी हीन व हयात में मुतबना किया था। वह तीस साल की उमर में कूच कर गया। उस जमाना में दरयाए वेहत तफ़ानी हुआ। जिससे (नादह पूरा के बन्ध की जिसे राजा मेघवाहन ने मज़बूत करके दरयाए बहरा को कोट मारन के दामन में अबूर दिया था) जगह से उठाकर और अपने असली मजरा खोलकर अपनी छिछली रविश पर जारी कर दिया। इस दिन दरयाए बहत ने मैदान व तालन भर्ग को तूफानी बनाकर तालाब जल को मतमूज कर दिया। राजा ने इसके इन्सदाद में खुद को नाताकत पाकर उसकी मरम्मत की कोशिश की।' (७५)

कश्मीर में विष्णु तथा वैष्णव सम्प्रदाय का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। साथ ही साथ विष्णुधर्मोत्तर पुराण ने विष्णु के चक्रिन् रूप (विष्णु धर्मः ३ : १२५ : १०) का उल्लेख किया है। राजतरंगिणी में अनेक राजाओं तथा उनके मंत्रियों ने विष्णु मंदिर तथा तत्सम्बन्धी देवस्थानों का निर्माण कराया है। रणादित्य, प्रवरसेन द्वितीय, दुर्लभवर्धन, उसका पुत्र मल्हण, चन्द्रापीड, उसकी रानी के गुरु मिहिरदत्त, चन्द्रापीड के नगराधिकारी छलितक, ललितादित्य तथा कमला देवी उनमें मुख्य हैं। कर्कोट वंश के राज्य काल में वैष्णव सम्प्रदाय शैव एवं बुद्ध धर्म के प्रायः समकक्ष हो गया था।

चीन पुरालेख में उल्लेख

हुयेन्त्सांग महान् चीनी पर्यटक था। उसने भगवान् बुद्ध के उपदेशों, धर्मग्रन्थों के संग्रह तथा बौद्ध तीर्थों की यात्रा हेतु सन् ६२९ ई० में भारत के लिए प्रस्थान किया था। सन् ६३० ई० में भारत में प्रवेश किया। सन् ६३१ से ६३३ कश्मीर में दो वर्ष रह कर

पर्यटन एवं अध्ययन किया। उसका संस्मरण किसी विदेशी द्वारा लिखा गया कश्मीर के विषय में सर्वप्रथम संस्मरण है। उसने कश्मीर का वर्णन किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वह ६५७ धर्मग्रन्थों तथा बौद्ध संबंधी १५० स्मृति शेष अर्थात् रिलिक्स लेकर अपने देश लौटा। उसने ७५ ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया है।

वह मध्येशिया, कुचा, वामियान, गान्धार, उरसा तक्षशिला होता कश्मीर पहुँचा था। उसके मार्ग की कठिनाइयों तथा जिन देशों में उसने पर्यटन एवं यात्रा की थी, उसका रोचक वर्णन पढ़ने से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि भारतीय संस्कृति तथा धर्म कहाँ तक फैला था। भारत के वे दिन कितने गौरवशाली थे। उसके संस्मरण से निम्नलिखित उल्लेख दे देना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

"उरशा पहुँच कर आग्नेय दिशा की ओर चला। मार्ग में उत्तुंग कठिन पर्वतीय दर्रों को पार किया। लौह सेतु तथा १००० लो की मार्ग यात्रा समाप्त करने पर कश्मीर देश में आया। इस देश की राजधानी महानदी की पश्चिमी सीमा पर है। यहाँ १०० विहार हैं। श्रमण किंवा भिक्षु लगभग ५००० होंगे। इसके अतिरिक्त यहाँ ४ विशाल अद्भुत ऊँचाई के अतीव सुन्दर स्तूप हैं। उनका निर्माण अशोकराज ने कराया था। उनका परिमाण तथागत के एक शरीर इतना था।

जब ह्वेनत्सांग यहाँ आया तो देश में पत्थर के फाटक (द्वार द्रंग) द्वारा प्रवेश किया। यह राज्य का पश्चिमी द्वार था।

"राजा ने अपनी माता तथा कनिष्ठ भ्राता को स्वागत तथा अभिनन्दन करने के लिए भेजा। उनके साथ रथ तथा अश्व थे। वे हमारे लिए भेजे गये थे। पत्थर के द्वार से प्रवेश करने पर संघाराम में गया। वहाँ पूजा किया। एक मन्दिर में लौटकर विश्राम किया। इस मन्दिर का नाम हुष्कर (पुस्से-क्रिया-लो) था।

"उस दिन रात्रि में मन्दिर के पुरोहितों ने एक स्वप्न देखा। एक देवता उनसे कह रहा था–'यह भिक्षु महाचीन से आया है। वह पवित्र पुस्तकों का अध्ययन करना चाहता है। भारत के पवित्र तीर्थ-स्थानों की यात्रा का आकांक्षी है।' पुरोहितों ने कहा—'हमने तो अभी उसके विषय में कुछ सुना ही नहीं है।''

"देववाणी ने कहा—'यह मानव जो विनय अर्थात् धर्म के अन्वेषण में आया है, उसे अगणित पवित्र आत्माएँ घेरे हुए हैं। वह जहाँ जाता है, उसका अनुसरण करती हैं। इस प्रकार का व्यक्ति आप लोगों के मध्य आज रात्रि में विश्राम कर रहा है। उन यात्रियों का जो बहुत दूर से आते हैं, उनके प्रति विशेष ध्यान देना, बड़ा भारी गुण कहा गया है। अब आप लोग धर्मग्रन्थों का पाठ आरम्भ कीजिए उसके प्रति स्तुति की भावना प्रेरित कीजिए। आप लोग अपने कर्तव्यों से क्यों विरत होकर आलस्य से सो रहे हैं?''

"देव वाणी पर विचार करते पुरोहित जाग गये। घूमते-फिरते हुए, ध्यानस्थ बैठे हुए, धर्मग्रन्थों का पाठ करने लगे। पाठ करते करते प्रातःकाल हो गया। सब ने एक दूसरे से स्वप्न वाणी का वर्णन किया। वे भक्तिभाव में विभोर हो गए।

"इस प्रकार बहुत दिनो तक उस मन्दिर में रहते और पाठ के बीच (उसने) राजधानी (श्रीनगर) के लिए प्रस्थान का निश्चय किया। राजधानी से एक मील पर एक धर्मशाला में पहुँचा।

"राजा (दुर्लभवर्धन) अपने समस्त एकत्रित मन्त्रियों, राजधानी के पुरोहितों के सहित धर्मशाला की ओर अग्रसर हुआ। उस समय उसके साथ एक हजार व्यक्तियों का जनसमूह था। शोभा यात्रा, पताकाओं तथा क्षत्रों से सुशोभित थी। राजपथ

धूपदान से सुगंधित था। राजपथ की भूमि पुष्पों से आच्छादित थी।

"राजा और उसका जब सामना हुआ तो दोनों ने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक एक दूसरे का अभिवादन किया। आगन्तुक अतिथि के सम्मुख अगणित पुष्प उसकी पूजा स्वरूप बिखर गये। पूजा प्राप्ति के पश्चात् राजा ने उससे एक विशाल हाथी पर चढ़ने के लिए निवेदन किया। हस्तिरूढ़ वह राजकीय, पौरगणीय सम्मान प्राप्त करता राजधानी (श्रीनगर) के समीप पहुँचा।"

"वे जयेन्द्र बिहार (चे-ए-इन-तो-लो) पर ठहरे।

"दूसरे दिन राजा ने उसे राजभवन में बुलाकर पूजा तथा स्वागत स्वीकार करने के लिए निवेदन किया। उसने सैकड़ों भिक्षुओं तथा पुरोहितों को जो ख्याति प्राप्त थे। उस समय उपस्थित रहने के लिए कहा।

"आहारादि प्राप्ति के पश्चात् राजा ने धर्म-संगति आरंभ करने के लिए निवेदन किया। धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों पर प्रकाश डालने की प्रार्थना की।

"राजा ने उसकी प्रसन्नता तथा यह जानकर कि वह दूरदेश से आया है, उसकी ज्ञानपिपासा तीव्र है, और उसके पास कोई मूल ग्रन्थ नहीं है, जिसका वह पाठ करे, अतएव उसने बीस विद्वानों को पवित्र ग्रन्थों तथा शास्त्रों की प्रतिलिपि करने के लिए दिया। साथ-ही साथ पांच व्यक्तियों को उसकी सेवा तथा आदेश पालन के लिए नियुक्त किया। उसकी आवश्यकतानुसार सब वस्तुओं तथा वांछित चीजों को तुरंत निःशुल्क दिया जाता था।"

"बिहार का प्रधान भिक्षु बहुत ही उत्तम चरित्र व्यक्ति था। वह धर्म के नियमों तथा अध्यादेशों का कठोरतापूर्वक पालन करता था। वह महान् मेधावी था। एक श्रमण तथा भिक्षु के लिये जिन बातों की आवश्यकता थी, उन सबको जानता था। उसकी बुद्धि प्रखर थी। उसकी आध्यात्मिक शक्ति का विकास हो चुका था। व्यवहारप्रिय था। उसे अतिथि स्वरूप आमंत्रित किया। वह विनय के साथ, रात दिन प्रार्थना कर, प्रश्न पूछता था। अनेक शास्त्रों के विषय में विचार-विनिमय करता था।

"उस प्रसिद्ध व्यक्ति की आयु सत्तर वर्ष की थी। उसने अपनी प्राकृतिक शक्तियों पर नियन्त्रण कर लिया था। उसके जैसा उत्तम व्यक्ति पाकर वह प्रसन्नतापूर्वक उससे बातें करता था।"

"मध्याह्न के पूर्व वह कोश पढ़ता था। मध्याह्नोत्तर शास्त्र पढ़ता था। पठन-पाठन के समय सीमान्तर्गत भिक्षु तथा श्रमण आ जाते थे। उपदेश तथा विषय को जल्दी समझ जाता था। शास्त्र के गूढ़ से गूढ़ विषयों के अन्त तक पहुँच कर उन्हें समझ जाता था।"

"इस प्रकार की संगति में महायानविशुद्ध सिंह (पि-शू-तो-संग-हो) जिनबन्धु (चिन-न-फन-तू); सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय के सुगत मित्र (सू-किय-मि-तो-लो) वसुमित्र (पो-सु-मि-तो-लो) तथा महा सांघिक सम्प्रदाय के सूर्यदेव (सू-लि-पे-ति-यो) और जिन त्राता (चिन-न-त-लो-तो) सम्मिलित होते थे।"

"यह (कश्मीर) देश अतीत काल से विद्या में श्रेष्ठता किंवा विशेषता प्राप्त करता रहा है। यहाँ के भिक्षु उत्तम धार्मिक योग्यता तथा विशिष्ट गुण रखते हैं। वे प्रतिभा-ख्याति प्राप्त हैं। सिद्धान्तों का वर्णन तथा उनके भाष्य की शैली और शक्ति स्पष्ट है। अन्य देशों के भिक्षु भी यद्यपि अपने गुणों के कारण विशिष्ट कहे जायँगे परन्तु वे यहाँ (कश्मीर) की समानता नहीं कर सकते। वे साधारण श्रेणी से सर्वथा भिन्न हैं।"

हुयेन्त्सांग कनिष्क काल के संगति किंवा संगायन अथवा परिषद का वर्णन करता है। उसे यथास्थान दिया जा चुका है। दो वर्ष कश्मीर में निवास किया। सूत्रों तथा शास्त्रों का अध्ययन कश्मीर देश के विद्वानों से किया था।

वह नैऋत्य दिशा पर्वतमालाओं तथा नदियों को पार करता सात सौ मील चलकर तोही नदी पर पूंछ (पर्णोत्सचीनी शब्द पु-नु-त्सो) राज्य में पहुँचा। वहाँ से लगभग चार सौ मील चलकर रजौरी आया। (चीनी शब्द-ही-लो-शे-यू-लो) वहाँ से आग्नेय दिशा की ओर चला। पर्वतों तथा नदियों को पार करता सात सौ ली चलकर टक्कदेश (चिनी त्सेह-किय) पहुँचा।

हुयेन्त्सांग यहाँ के चरित्र का वर्णन करता है। वह लमघान (चीनी—लन-पो) से कश्मीर में प्रवेश किया था। उसकी इस देश की यात्रा समाप्त हो रही थी। अतएव उसने स्पष्ट कहा है कि लमघान से पुनः सीमावर्ती देश पहुँचकर, उसने देखा कि साधारण जनता अपने स्वभाव, रीति, रिवाज, पहनावा तथा भाषा में भारतीय जनता से विभिन्नता रखती है।

राजपुरी से दो दिन चलकर वह चन्द्रभागा नदी पारकर जैपुर (चीनी—चे-पे-पु-लो) नगर में आया। यहाँ वह विधर्मियों के मन्दिर में रात्रि पर्यन्त निवास किया (यहाँ विधर्मियों से अर्थ है—जो बौद्ध धर्म के अनुयायी नहीं थे)। यह मन्दिर नगर के पश्चिमी द्वार के बाहर था। इसमें लगभग बीस जन रहते थे। दूसरे दिन चलकर वह साकल अर्थात् स्यालकोट पहुँच गया।

हुयेन्त्सांग के वर्णन से कम से कम तीन बातें स्पष्ट होती हैं। कश्मीर की यात्रा में उसे कहीं तस्करों तथा आततायियों से भेंट नहीं हुई। जनता ने सर्वत्र उसका आदर किया। समाज की किसी बुराई का वर्णन नहीं करता। दो वर्ष कश्मीर मुख्यतः श्रीनगर के प्रवास में उसे कुछ कष्ट नहीं हुआ। उसे आलोचना योग्य कोई घटना नहीं मिली, जिसका वह प्रसंगतः वर्णन करता। उसने अपनी बीती, दुःख-सुख सबका वर्णन विधिवत् किया है। इससे प्रकट होता है कि कश्मीरी समाज पूर्ण विकसित था। राज्य तथा शासन-व्यवस्था संघटित थी। राज्य में शान्ति थी। आतंक, विद्रोह, षडयंत्र तथा धार्मिक समुदाय में दोषों का अभाव था। प्रजा सुखी तथा धनधान्य पूर्ण थी। लोगों का चरित्र गिरा नहीं था।

राजा का अपनी माता तथा कनिष्ठ भ्राता को उसके स्वागत हेतु सीमान्त पर भेजना तथा श्रीनगर पहुँचने पर दलबल सहित स्वयं स्वागतार्थ आना महत्त्वपूर्ण घटना थी। विदेशियों तथा धर्म जिज्ञासुओं के लिए जनता, राजा और राजन्य वर्ग में कितना आदर था। यह इस बात का द्योतक है। कश्मीर का राजा आदर्श राजा था। वह हिन्दू धर्म के उदात्त मूल सिद्धान्तों का कितनी अच्छी तरह पालन करता था।

कश्मीर के विद्वानों के लिए जिस हृदयोद्गार को उसने लिखा है, उससे स्पष्ट हो जाता है। सम्पूर्ण एशिया में कश्मीर जैसे विद्वान् नहीं थे। इस विदेशी ने एशिया के प्रायः सभी राज्यों का भ्रमण किया था। उसने भारतवर्ष में निवास किया। उसने अपने अनुभव से कश्मीर के विद्वानों तथा लोगों के लिए जिन उदात्त वचनों का प्रयोग किया है वह कश्मीरियों के लिए गौरव के साथ ही साथ उनकी सबसे बड़ी ऐतिहासिक सम्पत्ति है।

उसके लेख से पता चलता है कि कश्मीरी जनता किसी एक धर्म अथवा सम्प्रदाय पर स्थिर नहीं थी। बौद्ध पूजा के साथ ही साथ हिन्दू मंदिरों, देवी-देवताओं के स्थानों को बहुलता थी। यह हिन्दू जनता की सहिष्णुता तथा उदारता का परिचायक है। आज भी हिन्दू वैष्णव, शैव, देवी, भैरव, बौद्ध, जैन मन्दिरों में जाता है। सभी स्थान पर पूजा नमस्कार करता है। गुरुद्वारों में जाकर वहाँ भी मस्तक टेकता है। यह विचार-स्वातन्त्र्य एवं कट्टरता के अभाव को प्रकट करता है। यह किसी जाति का गुण है। अवगुण नहीं है। ईसाई, मुसलमान, यहूदी तथा बौद्ध प्रवर्तक धर्म हैं। वे अपना समाज, अपनी सीमा बढ़ाना चाहते हैं। उन्होंने अपने चर्च, संघ एवं मिल्लत की दीवार बना ली है। उस दीवार के अन्दर जो

पतिगोपितदौःशील्या तुल्यसौभाग्यगौरवा ।
अनङ्गभवनं चक्रे विहारं नृपतिप्रिया ॥३॥

३. राजा ने अपनी पत्नी देवी अनंगप्रभा की दुःशीलता को गोपनीय रखा, अतएव सौभाग्य एवं गौरवशालिनी, उस नृपति-प्रिया ने अनंग भवन विहार[1] बनाया।

शिशुरेवायुषोऽल्पत्वं दैवज्ञोक्तं विचिन्तयन् ।
राज्ञः सुतो मह्लणाख्यो मह्लणस्वामिनं व्यधात् ॥४॥

४. राजपुत्र शिशु मल्हण ने दैवज्ञोक्त[1] आयु स्वल्पता विचार कर, मल्हण स्वामी का निर्माण कराया।

है, वह उनका है। बाहर का व्यक्ति अनजान है। विधर्मी है। हिन्दू किसी को विधर्मी नहीं मानता। इसी का व्यवहार उसने कश्मीर में देखा था। यही आज भी भारतीय विचारधारा है। यद्यपि इस विचारधारा के अतिरेक के कारण भारत को गुलाम भी बनना पड़ा है।

भारत में वह समय हर्षवर्धन (सन् १६०६–६४७ ई०) का था। हुयेन्त्सांग ने हर्षवर्धन के समय का भी वर्णन किया है। दोनों वर्णनों को मिलाकर देखने से प्रकट होता है। कश्मीर के लिए उसने जिस स्नेहोद्गार तथा गौरवपूर्ण वाणी का प्रयोग किया है, उसके किसी और लेख में कहीं नहीं मिलता। हर्ष की मृत्यु सन् ६४७ ई० अर्थात् राजा दुर्लभवर्धन के समय में हो गई थी। भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं उत्थान की ज्योति की यह अंतिम शिखा थी। इस ज्योति में शांति, आनंद, सहिष्णुता, सरलता तथा पूर्ण विकसित भारतीय समाज का दर्शन मिलता है।

कहा जाता है, कश्मीर पर हर्ष ने अधिकार कर लिया था। यह भी कहा जाता है, कश्मीर पहुँचकर उसने बुद्ध प्रतिमा ली थी। किन्तु उसके कश्मीर विजय का कोई साधार प्रमाण नहीं मिलता है। हुयेन्त्सांग के वर्णन से पता चलता है, कश्मीर राज्य स्वतंत्र था। उसका राजा किसी के अधीन अंशतः नामतः नहीं था। उसके अनुसार कश्मीर की सीमावर्ती राजपुरी (राजैरी) पर्णोत्स (पूछ) भीमवर, उरशा (हजारा), तक्षशिला तथा सिंहपुर अर्थात् साल्टरेज कश्मीर राज्य में सम्मिलित थे, अथवा उन पर कश्मीर राजा का किसी प्रकार का अधिकार था। सिन्धु के पूर्वीय क्षेत्र, तक्षशिला, उरशा, सिंहपुर (साल्टरेज), राजपुरी और पर्णोत्स छोटे-छोटे राज्य थे। वे पूर्ण प्रभुता सम्पन्न राज्य नहीं थे। वे किसी न किसी रूप में कश्मीर के राजा को कर अथवा निश्चित भेंट देते थे। हुयेन्त्सांग के अनुसार तक्षशिला पर कश्मीर का अधिकार कुछ ही समय पूर्व हुआ था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३ में 'पतिगोपित' का 'पतिर्गोपित', 'पत्युर्गोपित' तथा 'दौःशील्या' का पाठभेद 'दौः शील्यात्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३ (१) **अनंग भवन विहार :** इस स्थान का पता अभी तक नहीं लग सका है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४ में 'दैवज्ञोक्तम्' का 'दैवज्ञोर्थं' तथा 'व्यधात्' का 'न्यधात्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

४ (१) **दैवज्ञ :** इस शब्द का सरल अथ होता है—ज्योतिषी या गणक। जन्मफल जो बताता है उसे दैवज्ञ कहते हैं। दैव अर्थात् भाग्य की बात

पारेविशोककोटादौ प्रदत्तप्रतिपत्तिना ।
अदीयत द्विजेन्द्रेभ्यः चन्द्रग्रामः क्षमाभुजा ॥५॥

५. उस क्षमाभुज (राजा) ने सत्कार पूर्वक द्विजों को पारेविशोक, कोट[1] आदि के पार (समीपवर्ती) चन्द्रग्राम[2] प्रदान किया ।

बताने वाले को दैवज्ञ कहते हैं । बंगाल में ब्राह्मणों की एक जाति ही दैवज्ञ है ।

(२) मह्लण स्वामी : इस मन्दिर तथा स्थान का पता नहीं चलता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५ में 'विशोककौटादौ' का 'विशोकं कोटाद्रौ' 'विशोककोटादौ' तथा 'अदीयत' का 'आदीयत' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५ (१) पारे विशोक : शाब्दिक अर्थ, विशोक के पार होता है । जिस प्रकार जमुना पार, गंगा पार, आदि कहा जाता है । विशोक नदी का वर्तमान अपभ्रंश नाम विसाऊ है । इसका उल्लेख (६:१३०) राजा पर्व गुप्त के प्रसंग में किया गया है।

पर्व गुप्त का जन्म पारेविशोक में हुआ था । उसका पिता दिविर अभिनव था । पारेविशोक का पुनः उल्लेख राजा जयसिंह के प्रसंग (रा: ८ : २१९४) में किया गया है । यहाँ उल्लेख आता है कि गन्धर्व वन के कोट्टेश ने तिक्क का मस्तक काटकर राजा जयसिंह के पास जो उस समय पारेविशोक में था, भेजा था । विशोका वर्तमान विशाउ नदी है । वह कौन्सर नाग अर्थात् कर्मसर (करमसर) पीर पंजाल पर्वतमाला के समीप से निकलती है । प्रारम्भ में वह पूर्व बहती है । तत्पश्चात् उत्तर बहती है । गम्भीरा संगम विज्बोर के अधोभाग में है, वहाँ वितस्ता से मिलती है ।

नीलमत पुराण (२७१, ४३०, ४९१, १०३१) उसे लक्ष्मी नाम से अभिहित करता है । वितस्ता को उमा तथा हर्षपथा को सची का रूप माना है । नामकरण पर प्रकाश डालता है । 'विशोक, का अर्थ शोक से दूर होना होता है । 'पारे विशोका' का सरल अर्थ 'विशोक' से पार हो जाना है ।

श्रीवर ने इसका उल्लेख (१:३:१३,१५ में किया है । हरचरितचिन्तामणि में राजानक जयद्रथ ने भी इसका उल्लेख किया है (४ : ५२ तथा १२ : ३५) वितस्ता माहात्म्य (२ : ७) में इसका वर्णन मिलता है ।

पारेविशोक कोट का अस्तित्व अब नहीं मिलता । पारेविशोक उस क्षेत्र का नाम है, जो संभवतः दिवसर जिला में विसौ नदी के पूर्ववर्ती अंचल में है । द्रष्टव्य (भाग १ : २२१, परि० २२ तथा ९२) । हरिचरित-चिन्तामणिः (४ : ४२, १२ : ३५) तथा वितस्ता माहात्म्य (२, १७) में विशोका का उल्लेख मिलता है । नीलमत पुराण में विशोका का उल्लेख किया गया है (नी० २२०, २३०, २८०, २८२, २८४, २८५, २८६, १०१२, १०५६, १२८०, १२८१, १२९५, १३८९) ।

(२) चन्द्र ग्राम : यह ग्राम पारेविशोक के समीप होना चाहिए । इसका अभी तक पता नहीं चल सका है ।

हर्ष एवं काबुल के राजवंश पर दो शब्द लिखना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा । दोनों का घनिष्ठ सम्बन्ध कश्मीर के इतिहास से था । हुयेन्त्सांग तथा चच-नामा दोनों से वस्तुस्थिति पर विशेष प्रकाश पड़ता है ।

हर्ष ने भारतीय एकता स्थापित की थी । उसमें अशोक और समुद्रगुप्त के गुण थे । वह भारत का अंतिम हिन्दू सम्राट् था । गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् उत्तरी भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे । मंदसोर अर्थात् दासपुर में यशोधर्म ने राज्य स्थापित किया । गुप्तकाल में मंदसोर पश्चिमी मालवा की राजधानी थी । इसी प्रकार

कन्नौज में मौखरी वंश ने राज्य स्थापित किया। राज्य का संस्थापक ईशान वर्मा था। इस वंश का प्रसिद्ध राजा गृहवर्मा हुआ है। इस वंश का प्रतापी राजा हर्षवर्धन था। हर्षचरित में बाणभट्ट ने इस वंश को वैश वंशी राजपूत लिखा है। महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने भी इस वंश को वैश वंशीय राजपूत की संज्ञा दी है।

इस वंश के महाराज नरवर्धन का विवाह बज्राणी देवी से हुआ था। उसका पुत्र महाराज राज्यवर्धन था। उसका विवाह अपसरा देवी से हुआ था। उसका पुत्र महाराज आदित्यवर्धन था। उसका विवाह महासेन गुप्त देवी से हुआ था। उसका ही पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकर वर्धन था। उसका विवाह यशोमती देवी से हुआ था। इसकी मृत्यु सन् ६०५ ई० में हुई थी। थानेश्वर वंश में भट्टारक महाराजाधिराज की पदवी यहीं से प्रारम्भ होती है। स्पष्ट है। थानेश्वरराज ने अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। उसके पुत्र परमभट्टारक महाराजाधिराज राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन हुए। उनकी बहन का नाम राज्यश्री था। राज्यश्री का विवाह कन्नौज के मौखरी वंशीय राजा गृहवर्मा के साथ हुआ था।

मालवा के राजा ने गृहवर्मा की हत्या करा दी। राज्यश्री बन्दी बन गयी। राज्यवर्धन ने मालवराज पर आक्रमण कर, उसे पराजित कर दिया। मालवराज का मित्र वंगराज शशांक था। उसने राज्यवर्धन की हत्या सन् ६०६ ई० में करा दी। राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात् हर्षवर्धन राजा हुआ। हर्ष ने शशांक को पराजित करने की योजना बनाई।

उसने आसाम के राजा भास्करवर्धन से सन्धि की। मालवराज माधव गुप्त से भी सन्धि कर उसने शशांक को पूर्व तथा दक्षिण से घेर लिया। कन्नौज की ओर बढ़ा। शशांक ने कन्नौज त्यागकर पूर्व पलायन किया। हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री को विन्ध्याचल की पहाड़ियों से ढूँढ निकाला। उस समय वह सती होने जा रही थी। हर्ष कन्नौज तथा थानेश्वर दोनों का राजा होकर भारत का सम्राट् हो गया। उसकी सेना में ५००० हाथी, २०,००० अश्वारोही, ५०,००० पदातिक थे। उसने साढ़े पाँच वर्ष के अन्दर समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार कर लिया।

इस समय पश्चिम एशिया में मुसलिम शक्ति का उदय हो रहा था। भारत में हर्ष अपना साम्राज्य संगठित कर शक्तिशाली बन रहा था। जिस समय मुहम्मद साहब मक्का से मदीना सन् ६२२ ई० में गये उसी समय हर्ष साम्राज्य का विस्तार करने में लगा था। उसने सन् ६२० ई० में पुलकेशिन पर आक्रमण कर, उसे पराजित किया। पैगम्बर मुहम्मद साहब का सन् ६३२ ई० में देहावसान हुआ। हर्ष ने उसके २ वर्ष पश्चात् सन् ६३४ ई० में वल्लभी के राजा ध्रुवसेन पर आक्रमण कर, उसे परास्त किया। अपनी कन्या का उसने विवाह कर, सन्धि कर ली।

इसी वर्ष मुसलिम जगत् के प्रथम खलीफा और पैगम्बर मुहम्मद साहब के स्वसुर हज़रत अबूबक्र की हत्या कर दी गई। इसी समय हर्ष ने आनन्दपुर, कच्छ तथा दक्षिणी काठियावाड़ पर विजय प्राप्त की। सन् ६३७ ई० में शशांक की मृत्यु हो गई। हर्ष ने बंग विजय किया। इसी समय पुलकेशिन की भी मृत्यु हो गयी। इस समय हज़रत उमर दूसरे खलीफा थे। सन् ६४३ ई० में हर्ष ने गंजाम पर अधिकार कर लिया। उत्तरी पहाड़ी प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा पर उसका अधिकार हो गया।

इतिहास-लेखकों ने लिखा है। सिन्ध, कामरूप, वल्लभी तथा कश्मीर ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। परन्तु जहाँ तक कश्मीर का सम्बन्ध है, उसने हर्ष की न तो अधीनता स्वीकार की थी, और न उस पर हर्ष विजय प्राप्त कर सका था। सन् ६४१ ई० में हर्ष ने एक ब्राह्मण राजदूत चीन भेजा था। वह सन् ६४३ ई० में लौट आया। चीन से एक शिष्टमण्डल सन् ६४६ ई० में हर्ष की राज-

श्रीनगर्यां प्रतिष्ठाप्य दुर्लभस्वामिनं हरिम् ।
षट्त्रिंशता स वर्षाणां क्ष्मावृषाऽस्तमुपाययौ ॥६॥

६. श्री नगरी में विष्णु दुर्लभ स्वामी[1] की प्रतिष्ठा तथा ३६ वर्ष शासन कर राजा अस्त (दिवंगत) हुआ।

सभा में आया । इस समय अर्थात् सन् ६४४ ई० में पैगम्बर मुहम्मद साहब के दामाद हज़रत उसमान तीसरे खलीफा थे । हर्ष की मृत्यु सन् ६४७ ई० में हुई । इसलाम तथा हिन्दू शक्ति दोनों एक ही काल में पुनसंगठित होकर बढ़ने लगीं । इसलाम के आगमन के १०० वर्षों के अन्दर मुसलमान मदीन से चलकर अटलांटिक महासागर के तट और सिन्धु नदी तक पहुँच गए और इसी समय हिन्दू-भारत विघटित होने लगा । दोनों की प्रगति एक साथ हुई परन्तु दोनों एक ही शताब्दी के अन्दर एक दूसरे के घोर विरोधी और कट्टर शत्रु के रूप में दिखाई पड़ने लगे ।

हर्ष काल में साहित्य, संस्कृति, विद्या आदि की वृद्धि हुई । भारत का गौरव पुनः जाग उठा । हर्ष स्वयं लेखक था । उसने नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका तीन नाटक लिखे हैं ।

कश्मीर की दक्षिणी पूर्वीय सीमा पर हर्ष का राज्य था । पश्चिमी तथा उत्तरी सीमा का वर्णन हुएन्त्सांग तथा चचनामा से प्रकट होता है । उसके अनुसार कपिसा का राज्य विस्तृत था । उसका १० राज्यों पर अधिकार था । उसमें लम्पक (लग़मान) नग्रहार (जलालाबाद) तथा गान्धार सम्मिलित थे । तथा एक और राज्य जबुलिस्तान था । कपिसा तथा जबुलिस्तान के राजा हिन्दू थे । राजाओं का नाम भारतीय था । जबुलिस्तान के राजा का पद 'शाही' था । कपिसा के राजा अपने को क्षत्रिय कहते थे ।

वासुदेवराज की मुद्रा ससानियन, पहलवी तथा भारतीय लिपियों में मिली है । उससे वहमन, मुलतान, तुकन, जबुलिस्तान, सपरदलक्षण (सब्द लक्ष) का राजा होना प्रकट होता है । इसी काल के एक दूसरे राजा के होने का वर्णन मिलता है । उसका नाम शाही तिगिन था । उसे तकान, खुराशान का पहलवी भाषा में राजा तथा भारतीय भाषा में भारत तथा ईरान का राजा होना लिखा है ।

चचनामा से इस समय के इतिहास पर और प्रकाश पड़ता है । सहसी राय का पुत्र सिहरस का राज्य कश्मीर की सीमा से कन्नौजराज की सीमा तक फैला था । पश्चिम में मकरान था । राजा सिहरस का देहान्त राजा निमरूज के साथ युद्ध करने में हो गया । निमरूज प्रदेश ईरान का एक सूबा था ।

सिहरस के पश्चात् राय सहसी राजा हुआ । उसके समय में ब्राह्मण चच अत्यन्त शक्तिशाली हो गया था । अपने स्वामी की मृत्यु के पश्चात् वह स्वयं राजा बन गया ।

चच कश्मीर की सीमा तक आया था । उसने अपनी तथा कश्मीरराज की सीमा निर्धारित की थी । ईरान पर इसी समय अरबों ने आक्रमण किया । परिस्थिति से लाभ उठाकर उसने मकरान के एक भाग पर अधिकार कर लिया । यह काल सन् ६४० ई० के समीप माना जाता है ।

चच ने अपने राजा की विधवा रानी से विवाह कर लिया था । उससे उसको दो पुत्र दहर सिपाह तथा दाहर हुए थे । चच के पश्चात् उसका भाई चन्द्र राजा हुआ । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र दुराज तथा दाहर में राज्य के उत्तराधिकार के लिए झगड़ा होने लगा । चच के पुत्र दहर सिपाह ने दुराज को हरा दिया । राज्य चच के दोनों पुत्रों में बांट दिया गया । दहर सिपह के मृत्यु के पश्चात् दाहर ने अकेले राज्य सम्हाला ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६ में 'दुर्लभ' का 'दुर्लभ' 'दुर्ल्लभ'; 'स वर्षाणाम्' का 'वत्सराणाम्' 'सत्सराणाम्' 'मवर्षाणाम्' तथा 'क्ष्मावृषां' का 'क्ष्मावृषो' पाठभेद मिलता है।

अनङ्गदेव्यां संभूतस्तस्य दुर्लभकः सुतः ।
शशास वासवसमस्ततो वसुमतीं कृती ।।७।।

दुर्लभक (प्रतापादित्य द्वितीय)

७. अनंग (लेखा) देवी से उत्पन्न इन्द्रतुल्य उसके पुत्र दुर्लभक ने पृथ्वी का शासन किया ।

पादटिप्पणी :

६ (१) **दुर्लभ स्वामी :** दुर्लभ स्वामी का मन्दिर श्रीनगर में था । इसका पता नहीं चलता । आबादी तथा नवीन निर्माणों के कारण अब पता चलना भी दुर्लभ है ।

श्रीनगरी शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है । अशोक ने नगरी की स्थापना की थी । वहाँ श्रीनगरी शब्द का प्रयोग किया गया है न कि श्रीनगर । द्रष्टव्य है टिप्पणी–भाग १ : पृष्ठ १३८-१४६; श्लोक १: १०४ ।

पाठभेदः

श्लोकः संख्या ७ में 'देव्याम्' का पाठ भेद 'देव्या' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

श्री दत्त दुर्लभक प्रतापादित्य का राज्याभिषेक काल कलि : ३७५३ = शक ५५६ = लौ० = ३७१० = सन् ६३४ ई.; श्री स्तीन लौ० : ३७१३ वर्ष १० मास १ दिन = ३३७ ई. श्री एस्.पी. पण्डित सन् ६५२ ई.; श्री ट्रायर सन् ६३३ ई., ३ मास, श्री कनिंघम सन् ६३० ई. ६ मास, श्री विलसन सन् ६५१ ई. ५ मास, पीर हसन विक्रमी ६९१ ई. राज्य काल सभी ५० वर्ष देते हैं ।

श्री दुर्लभक प्रतापादित्य की एक स्वर्णमुद्रा प्राप्त हुई है । उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा श्री प्रताप तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा कि (दार) लिखा है । एक ताम्र मुद्रा भी मिली है । उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा श्री प्रताप तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा कि (दार) लिखा है । (सी. एम. आई : III ९ : I : II)

हसन लिखता है–'परताप पीड पिसर मल्हन जिसका पहला नाम दुरलवक था, अपने बड़े बाप के वफ़ात के बाद विक्रमी ६९१ में तख्त पर बैठा । हनुमान को वज़ारत का रुतवा बख्शा और कामराज की हद्दूद में तापर नाम एक शहर बसाकर अपनी तख्तगाह बनाया । महल के मुतस्सिल ही पत्थर का एक मज़बूत और मनकश बुतखाना बुलन्द किया । इतराफ व् इकनाफ से ताजिर और हरफत गर तलब करके अपनी हिफाज़त के मज़बूत किला में निगाह रखता था ।

'उस जमाना में मुल्क मालवा का मुल्क इल्तज़ार नून नामीं शख्श इस शहर में पहुँचा और उमदह और अजीब चीजें राजा की नज़रों से गुजराई । राजा के दौलतखाना के मुतसिल ही अपने लिए एक बुलन्द आली शान मकान तामीर किया ।

'एक दिन खुशकिसमत राजा ने नामूर ताजिर की खुशी और इन्वसात के खातिर ज़माने के बड़े बड़े लोगों के इजतमा से एक आलीशान महफिज जिसमें शमा काफ़ूरी और खुशी के सामान की आरायश के साथ साथ एक हजार दो सौ शौख रकासाएं व मय बाजे और सरूर की थीं आरास्ता की । बदमस्त ताजिर फरहत और सरूर की शआअ से चिनगारी लेने में मसरूर थी । लेकिन शमा काफ़ूरी के धुएँ के चढ़ने से उसका दिमाग दर्द में मुवतिला हो गया । जिससे उसे निहायत परेशानी हुई ।

'दूसरे दिन नामवर सौदागर इनसाफ पसन्द राजा की मेहमानदारी की मुहफिल की आराइश में मशगूल हुआ । अपने मकान के ताक और परदे रात की रोशन करनेवाली रोशनी से रोशन किये । नेक सीरत राजा झाझों और अरगनों और ताल की

मातामहस्य यो मात्रा दौहित्रस्तनयोकृतः ।
प्रतापादित्य इत्याख्यां तत्कुलानुगुणां दधे ॥८॥

८. मातामह[1] (नाना बालादित्य) के दौहित्र जिसे माता ने पुत्र बनाया उस दुलभ ने तद्वशांनुरूप प्रतापादित्य नाम धारण किया ।

आवाज़ के सुनने और अन्धे की तरह लालों की रोशनी के देखने और ज़हरह ख्याल माहर देवो की मुलाकात और शराब के भरे हुए प्याला पीने से ऐश व मसरत की शराब से सरमस्त हो गया । मुसलसिल तीन दिन तक ऐश व ईशरत और खुशहाल था ।

खुदा के करने से ऐसा हुआ कि खुश इखलाक ताजिर के मकान से एक माहर वनज़र में आई । राजा उसके रूखसार के खाल पर उसके बालों की तरह रेशान हो गया । रूखसत के वक्त सौदागर ने ऐश व इशरत का सामान वमय लाल शव चिराग के राजा की खिदमत में नज़र कर दिया । वाली ने कुबुलियत का हाथ उन सब पर छोड़ कर तमाम चीजें उसे बख्श दी । सिर्फ उस माशूका के चेहरा पर मफतून होकर मजनू की तरह रात दिन गमी की कोठरी में हूमार था और साथ ही अफशाए राज से बचता भी था ।

'इश्क एक धूवाँ है । और धुएँ को कोई बन्द नहीं करता । आखिरकार खबर मशहूर हो गयी आर सौदागर ने अपनी दिलवर से हाथ उठाकर राजा दादगर की बीमारी और ग़म को दूर करने के लिये पेशकश किया । राजा ने बदनामी के खौफ और इज्ज़त के लिहाज से पसन्द न किया । सौदागर ने राजा की इज्ज़त के खयाल से उस माहर को बुत-खाना महादेव के पादरियों को नजर करके नेक जात राजा को खुफिया तौर से पैगाम भेज दिया कि वह परीजाद मेरे निकाह से निकल गयी है । अब अपनी मरजी के मुताबिक मन्दिर के पुजारियों से खरीद करके अपनी उम्मीद की खेती को सैराब करें ।

राजा ने यह खबर सुनकर अपनी दिलवर को मन्दिर के महन्तों से खरीदकर महल में पहुँचा लिया और उसकी हमनशीनी और सुहवत में अपनी प्यारी उमर सरफ कर दी, उसके पेट से तीन लड़के पैदा हुए : एक चन्दरापीड, दूसरा तारापीड और तीसरा ललिता-पीड। राजा परताप ने अदल तौर अहसान से पचास साल हकूमत में गुजारे और चन्दरापीड को जानशीन करके दुनिया से गुजर गया । (उर्द अनुवाद : ७६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८ में 'तत्कुलानुगुणां' का पाठभेद 'तत्कुलानुगुणम्' तथा 'तत्कलानुगुणं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८. (१) **मातामह** : बालादित्य बिना पुत्र के मर गया था । यह उत्तराधिकार का प्रश्न था । मिताक्षरा, मयूख, दायभाग कानून के अनुसार गोत्र सपिण्डा उत्तराधिकार प्राप्त करता है । प्रतापादित्य नाती था । भिन्न गोत्र सपिण्डा था । वह मातामह का पूर्ण उत्तराधिकारी होता है । (मनुस्मृतिः ९ : १३१ याज्ञवल्क्य २:१२८,१३५)

पुरातन धर्मशास्त्र एवं व्यवहार के अनुसार राज्य का उत्तराधिकारी राजा का ज्येष्ठ पुत्र अथवा अन्य पुत्रों में से कोई होता है । कन्या का पुत्र राज्य का उत्तराधिकारी नहीं होता । इसका उदाहरण नहीं मिलता । यदि कन्या का पुत्र उत्तराधिकारी होता है तो राज गोत्र एवं वंश से दूसरे वंश एवं गोत्र में चला जाता है । गोत्र एवं वंश की परंपरा स्थिर रखने के लिए दौहित्र को राज्य देने की व्यवस्था नहीं है ।

एक मिश्रधातु की मुद्रा प्राप्त हुई है । जिस पर 'श्री दुर्लभदेव' टंकणित है । (क्वाइन्स आफ़ मिडिवल इंडिया पृष्ठ ४३ : प्लेट : ३ : ७) ।

डा. श्री लल्लन जी गोपाल प्रोफेसर काशी विश्व विद्यालय का मत है :

श्री प्रताप की स्वर्ण तथा रजत-मुद्रा के लेख के विषय में कुछ विवाद है । यह निर्विवाद है कि प्रतापादित्य ही श्री प्रताप का पूरा नाम है। कारण यह है कि प्रतापादित्य राजा की क्रमसंख्या कतिपय विद्वानों ने अलग-अलग दी है । श्री स्मिथ ने श्री स्तीन का अनुकरण किया है । (सी : सी : आई : एम : १: पृष्ठ २६५, २६८) उसने प्रतापादित्य द्वितीय अर्थात् दुर्लभक की मुद्राएँ मानी हैं । किन्तु सामान्यतः धारणा हो गयी है कि मुद्राएँ ललितादित्य मुक्तापीड की हैं। (रा : स्तीन : खण्ड : २ : पृष्ठ ३१८ : पाद टिप्पणी : संख्या ५१) कनिंघम ने इस प्रकार का सुझाव पूर्व काल में भी दिया था । (सी : एम : आई : पृष्ठ ४४) तीन प्रतापादित्यों में सरलता पूर्वक प्रतापादित्य प्रथम को इस विवाद से वंचित कर सकते हैं । ये मुद्राएँ तूरमान तथा प्रवरसेन द्वितीय के पूर्व की नहीं हो सकतीं । शेष दोनों प्रतापादित्यों में ललितादित्य मुक्तापीड की मुद्राएँ मानने के लिए अधिक झुकाव है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्री प्रताप की मुद्राएँ फैजाबाद जिला, गाँव भिटवारी; बाँदा जिला तथा राजघाट वाराणसी, मुँगेर तथा पटना (नालन्दा) से मिली हैं। कश्मीर के अन्य राजाओं की मुद्राएँ इतने दूर फैले हुए स्थानों से नहीं मिली हैं । वे विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुई हैं; अतएव उनका आकस्मिक मिलना नहीं कहा जा सकता । केवल धर्म तथा व्यापार उन्हें कश्मीर से इतनी दूर नहीं ला सका था । अधिक सम्भावना यही है कि वह दिग्विजयी सेना ललितादित्य के साथ आयी थी । ललितादित्य ही एक ऐसा कश्मीरी राजा है जिसने उत्तर भारत में विस्तृत दिग्विजय किया था। कल्हण ने उसके सफल विजय का वर्णन कान्यकुब्ज के यशोवर्मन से कलिंग तक का करता है। ललितादित्य के विजय द्वारा यशोवर्मन के भूभाग पर ललितादित्य का प्रभाव पड़ना आवश्यक था। उत्तर प्रदेश तथा बिहार में मुद्राएँ मिलने के तथा उसकी विजयों के कारण उसे प्रतापादित्य का पद मिलना राजतरंगिणी के प्रमाणों से सिद्ध हो जाता है।

'यहाँ श्री कनिंघम ने एक अद्वितीय मुद्रा जिस पर श्री प्रताप टंकणित है उस पर प्रकाश डाला है । (सी : एम : आई : प्लेट : ३:९२, सन्दर्भ में कुछ लिखना उचित है । दोनों मुद्राओं में टंकणित लक्ष्मी मूर्तियों में इतना अन्तर है जो कि ललितादित्य की मुद्राओं पर टंकणित है कि उन्हें एक ही स्थान से टंकणित होना मानना कठिन है । इस मुद्रा पर लक्ष्मी की मूर्ति कलात्मक शैली से टंकणित की गयी है। जबकि ललितादिव्य की मुद्रा पर की आकृति अपरिष्कृत है । वह तूरमान की मुद्रा पर टंकणित आकृति की शैली से बहुत भिन्न नहीं है । अतएव इसे प्रतापादित्य द्वितीय दुर्लभक की मुद्रा कहना ठीक होगा । कनिंघम की व्याख्या एक मुद्रा का उल्लेख करता है जिसके मुख्य भाग पर प्रताप तथा पृष्ठ भाग पर देव टंकणित है । वह प्रतापदेव की पहचान करने में असफल रहा है क्योंकि प्रताप देव किसी राजा का नाम कश्मीर राजाओं की तालिका में नहीं मिलता । किन्तु उसके पाठ का हम समर्थन नहीं कर सकते । पहले तो 'प' तथा 'र' अलग अक्षर है । वह मिश्रित 'प्र' नहीं है । अन्य मुद्राओं के मुख्य भाग की तुलना अन्य मुद्राओं से करने पर कनिंघम जिसे 'त' समझता है वह वास्तव में लक्ष्मी का सिंहासन है ।

'श्री ज. प्रताप मुद्राएँ सर्व प्रथम बाँदा संग्रह में सन् १९२७ ई० में मिली हैं । कालान्तर में श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने उन्हें राजघाट संग्रह से प्राप्त होने की सूचना दी है । दोनों ही स्थानों पर मुद्राएँ 'श्री प्रताप' मुद्राओं के साथ मिली हैं । यह मुद्राएँ बिल्कुल श्री प्रताप की मुद्राओं के समान हैं, अन्तर केवल यह है कि श्री एवं प्रताप के मध्य 'ज' शब्द सन्निवसित है ।

'श्री प्रयाग दयाल (जे : ए. एस. बी ; एन. एस; ४१ : सन् १९२८ ई० पृष्ठ ६) उसे जज्ज को

मुद्रा मानते हैं। जिसने अपने बहनोई जयापीड विनयादित्त की अनुपस्थिति में राज्य ले लिया था। किन्तु यह मुद्राएँ उत्तरप्रदेश के जिलों से मिली हैं न कि कश्मीर के किसी भाग से। अतएव यह सुझाव के विरुद्ध जाता है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि ललितादित्य मुक्तापीड प्रतापादित्य तथा जयापीड विनयादित्य के मध्यवर्ती काल में कश्मीर की राजकीय शक्ति तेजस्वी प्रकाशित नहीं होती। अतएव यह सम्भव नहीं मालूम होता कि कश्मीर दूरस्थ क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित रखा होगा।

'कल्हण के वर्णन से मालूम होता है कि जयापीड विनयादित्य एक शक्तिशाली शासक था। जिसने कि अपके प्रपितामह ललितादित्य मुक्तापीड के पराक्रम को दुहराया और कन्नौज होता प्रयाग तथा बंगाल पहुँचा था। अतएव इसकी सम्भावना हो सकती है कि 'ज. प्रताप' मुद्रा उत्तरभारत के दिग्विजय के सन्दर्भ में जारी की गयी होगी। यद्यपि उस समय की अशान्त राजनीतिक परिस्थितियों में इस प्रकार का आक्रमण सम्भव था। उसकी उपलब्धि का पुष्टीकरण का नहीं मिलता। उनकी ऐतिहासिकता के विषय में सन्देह किया गया है। यदि यह मुद्राएँ श्री जयापीड विनयादित्य द्वारा जारी की गयी होतीं तो उनके साथ कुछ उसकी मुद्राएँ 'श्रीविनयादित्य' टंकणित मिलती विशेषतः जबकि वादा तथा सम्भवतः राजघाट के संग्रह में उनकी संख्या नगण्य नहीं थी। इसमें कोई उचित कारण नहीं मालूम पड़ता कि क्यों विनयादित्य की मुद्राएँ कश्मीर तक सीमित रह गयीं और श्री जप्रताप मुद्राएँ उत्तर प्रदेश में मिलती हैं? इसका स्पष्टीकरण करना कठिन होता है कि विनयादित्य ने अपने पूरे नाम के साथ मुद्रायें क्यों न जारी कीं? जबकि उसने अपनी श्री विनयादित्य मुद्राओं पर वह कर चुका था। और नवीन विजित देशों पर गौणरूप से अपना प्रवेश किया था।

'चूंकि बाँदा तथा बनारस दोनों स्थानों से श्रीप्रताप तथा श्री ज० प्रताप मुद्राएँ केवल मिलो हैं इसलिये श्री आल्तेकर ने सुझाव दिया है कि दोनों साथ ही जारी की गयी थीं। उनका यह भी विचार है कि जयापीड विनयादित्य के जिस विजय की बात कही जाती है उसने उसे सिंहासन पर बैठने के पूर्व किया था। एक साहसी युवक के समान अपने पितामह की दिग्विजय में उसने भाग अपने पितामह की आज्ञा से अथवा स्वयं लिया होगा। उसने अपने पितामह की मुद्रा में 'ज' अक्षर सन्निवेशित कर दिया होगा–जो उसके पितामह द्वारा जारी की गयी थी। इन सब बातोंपर विचार कर इस समय जो सुझाव दिया गया है वही सबसे अच्छा अबतक है। (नुमिस्टिक नोटस् एण्ड मोनोग्राफ्स पृ. २३ : २४)।

इसी राजा के समय प्रसिद्ध कश्मीरी भिक्षु रत्नचिन्ता चीन गया था। वहाँ उसका आदर हुआ। चीन में सन् ७०६ ई० तक निवास किया। उसने कितने ही बौद्ध ग्रन्थों का पाली तथा संस्कृत से चीनो भाषा में अनुवाद किया था। उसने एकाक्षर धारनो का भी शुद्ध और सरल अनुवाद चीनी भाषा में किया था।

बालादित्य का जामाता दुर्लभवर्धन था। भिन्न गोत्र होने के कारण राज्य का अधिकारी नहीं था। कन्या राजसूत्र धारण कर राज्य कर सकती थी। वर्तमान एलिजावेथ ब्रिटेन की साम्राज्ञी एलिजावेथ द्वितीय के पति को ब्रिटेन का सिंहासन नहीं मिला और न वह सिंहासन पाने का अधिकारी हो सकता है। सिंहासन पर अधिकार दिवंगत राजा के वंशज का ही हो सकता है। इसलिए क्विन एलिजावेथ वास्तविक रानी है। उसके पश्चात् रानी से उत्पन्न सन्तान ब्रिटेन का राजा होगा। यही बात दुर्लभ वर्धन तथा दुर्लभक के साथ चरितार्थ होती है।

बालादित्य की मृत्यु के पश्चात् उसकी कन्या अनंगलेखा अथवा भिन्न गोत्र सपिण्डा होने के कारण उसका नाती दुर्लभक मिताक्षरा हिन्दू संहिता के अनुसार उत्तराधिकारी होता है। अतएव दुर्लभक

ओडेनैडबिडात् प्राप्तश्रिया यन्मन्त्रिणा कृताः ।
अग्रहारा हनुमता पुण्यानुमतसंपदा ॥९॥

९. राज मन्त्री उड[1] पुत्र हनुमान ने पुण्यार्जन हेतु कुबेर[2] से प्राप्त सम्पति द्वारा अग्रहार स्थापित किया ।

अपने नाना वालादित्य का राज्य स्वयं अपने अधिकार से नाती होने के कारण प्राप्त करता है। यही कारण है कि उत्तराधिकारी पूर्ण सिद्ध करने के हेतु उसे दुर्लभ वर्धन का पुत्र राजा हुआ कल्हण ने न कहकर अनंगलेखा का पुत्र राजा हुआ वर्णन किया है। राज्याभिषेक के समय उसका नाम भी बदलकर प्रतापादित्य रख दिया गया। प्रायः गोद लेने पर लोग लड़के का नाम बदल कर अपनी इच्छानुसार रख लेते हैं। यहां भी इसी प्रकार से किया गया। कल्हण स्वयं कहता है कि अनंगलेखा ने उसे दौहित्र मानकर राजा बनाया। क्योंकि बालादित्य बिना पुत्र के मरा था। उसकी मृत्यु के पश्चात् दुर्लभक बन्धु अथवा भिन्न गोत्र सपिण्डा की हैसियत से अर्थात् मिताक्षरा के अनुसार गोत्रज सपिण्ड तुल्य अपने नाना का पूर्ण उत्तराधिकारी होता है। (राज ४:८ मनुस्मृति ११::३१, : ६ : ११३१, याज्ञवल्क २ : १२८ तथा १३१,१३५)।

यह विषय कानूनी दृष्टि से रोचक है। क्योंकि उत्तराधिकार कन्या वंश में चला जाता है। भारतीय संस्कृत साहित्य में उत्तराधिकार राजा का ज्येष्ठ तथा अन्य पुत्रों अथवा प्रपौत्रों को जाता है। किन्तु कन्या के पुत्रों अथवा अन्य बन्धुओं अर्थात् भिन्न गोत्र सपिण्ड में जाने का उदाहरण नहीं मिलता।

कल्हण ने स्वयं तृतीय तरंग में वर्णन किया है कि बालादित्य ने राजवंश कन्या के गोत्र में न चला जाय चिंता प्रकट करते हुए भाग्य को पुरुषार्थ से जीतने का विचार किया था।

सुतासंतानसाम्राज्यमनिच्छन्नथ पार्थिवः ।
दैवं पुरुषकारेण जेतुमासीत्कृतोद्यमः ॥
(रा. ३: ४८७)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९ में 'औडेनेंड' का 'गैडेनैड' 'औडैनै', 'ओडेनै' तथा 'पुण्यानुम' का पाठभेद 'पुण्यानम' मिलता है।

पाद‌टिप्पणी :

९ (१) **औड :** यहाँ उड के स्थान पर 'औड' शब्द संगत प्रतीत होता है। 'औड' का अर्थ है 'उड' का पुत्र। 'औड हनुमान' का अर्थ होता है, 'उड' का पुत्र हनुमान।

(२) **कुबेर :** कुबेर वैश्रवण का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है। (८:१०:२८) शतपथ ब्राह्मण उन्हें राक्षसों का राजा मानता है। (१३:४:३:१० शांखलायन श्रौतसूत्र : १६:२:१७ आश्वलायन श्रौतसूत्र : १०:७: तैत्तिरीय आरण्यक : १:३१:३ ।) कुबेर एक देवता की तरह नमस्कृत एवं प्रार्थित है। रामायण के अनुसार गन्धमादन को कुबेर ने उत्पन्न किया था। (बा० ९१:१६)। विश्रवा पिता तथा इडविडा माता के पुत्र और रावण के भ्राता थे। इनकी स्त्री का नाम मोभद्रा था। (आदि : १९८:६) अगस्ताश्रम में राम ने कुबेर के मन्दिर का दर्शन किया था। (अनु : १२:१८) पुष्पक विमान रावण ने कुबेर से छीन लिया था।

विश्वकर्मा ने कैलास पर इनके सुन्दर भवन का निर्माण किया था (किष्कि० का० ४३:२१)। कुबेर अलकापुरी के राजा हैं (भाग ६:२:३२:४ । १:३७ ; १२:१-६७ ११:३३ ; १,७० : ३८ ; ६७:२) नरवाहन अर्थात् पालकी पर चढ़ने के कारण इनका नाम नरवाहन पड़ा था। राजाओं के राजा थे। अतएव उनका नाम राज-राज पड़ा था (आदि २,५:१,३)। भगवान् नारद ने इनकी दिव्य

प्रतापतापितारातिः प्रतापपुरपत्तनम् ।
मघवन्नगरस्पर्धि दीर्घबाहुर्व्यधत्त सः ॥१०॥

१०. (अपने) प्रताप से शत्रुओं को संतप्त कर्ता उसी दीर्घबाहु ने मघवन्नगर[1] (इन्द्र नगर) की स्पर्धा करने वाले प्रतापपुर[2] पत्तन का निर्माण कराया ।

सभा का विस्तृत वर्णन किया है । (आदि २२६:३२) पृथ्वी दोहन के समय कुबेर दोग्धा थे । (द्रोण : ६६:२४) कुबेर ने सरस्वती नदी के तटपर तपस्या की थी । उसे नलकूबर नामक पुत्र तथा पुष्पक विमान प्राप्त हुआ था । (शल्य ४७:३८:३१) यक्षों एवं राक्षसों के राजा रूप में उत्तर दिशास्थित कैलास पर कुबेर का अभिषेक किया गया था । (वन : १११:१०-११) लंका में राक्षसों के राजा थे । परन्तु रावण ने लंका राज्य लेकर उन्हें वहाँ से हटा दिया था । (आदि : २७५:१-३)

पादटिप्पणी :

१०. (१) **मघवन्नगर**—इन्द्रका नाम मघवा है । निवास-स्थान स्वर्ग है । राजधानी अमरावती है । (अरण्य : ३ : ४८-४०) यहाँ अर्जुन भी गये थे । (आदि : ७५-२७) राजवाड़ा वैजयन्त है । उद्यान नन्दन है । गज ऐरावत है । अश्व उच्चैश्रवा है । रथ विमान है । सारथी मातलि है । धनुष शक्रधनु है । कृपाण पुरंजय है । पौराणिक किंवदन्ती के अनुसार सुमेरपर्वत पर स्थित अमरावती देवताओं की नगरी है । वहाँ जरा-मृत्यु शोक-ताप कुछ नहीं होता । एक मत है कि अमरावती आमूदरया अर्थात् आक्सस नदी के समीप कहीं पर बसी थी ।

(२) **प्रतापपुर**—प्रतापपुर ही वर्तमान तापर है । यह कुहिन परगना में बारहमूला श्रीनगर सड़क पर है । रा : ८ : ८२० से इस स्थान का परिचय और स्पष्ट हो जाता है । सुस्सल के पलायन काल में जबकि वह श्रीनगर से लोहर बारह मूला होता जा रहा था तो प्रतापपुर का उल्लेख किया गया है । वहाँ अपने साथियों से एक प्रकार से परित्यक्त कर दिया गया था । रात भर वहीं विश्राम किया था ।

तापर का उल्लेख जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में किया है । प्रतापपुर का उल्लेख वंगिल परगना के सन्दर्भ में किया गया है । (रा : ८ : ८२०)

श्रीस्तीन सन् १८६२ ई० सितम्बर मास में इस स्थान पर गये थे । उन्हें सड़क के समीप ही जियारत सैय्यद निजामुद्दीन और बतर बाबा साहब के मध्य दो बड़े टीलों के ध्वंसावशेष मिले थे । इन पर अलंकृत स्तम्भों के तथा तोरण आदि के शिलाखण्ड मिले थे । बतर बाबा के जियारत की दीवालों में प्राचीन खुदाई किये हुए बहुत पत्थर लगे थे । यह सब पत्थर सड़क बनाने के काम में उस समय के पश्चात् लाये गये । उनकी गिट्टी तथा ढोका बनाकर सड़क-निर्माण के कार्य में लाया गया । स्थानीय जनश्रुति है कि तापदत्त (प्रतापादित्य) ने नगर बसाया था । यह स्थान पाटन से चार मील उत्तर-पश्चिम है । इस समय भी गाँव बड़ा है । यहाँ मन्दिरों के ध्वंसावशेष श्रीस्तीन को मिले थे ।

सितम्बर सन् १९४२ ई० में कश्मीर पुरातत्त्व विभाग की ओर से यहाँ खनन-कार्य किया गया था । मन्दिर का अधिष्ठान यहाँ मिला है । द्वार, प्रांगण प्राकार आदि का आकार खनन-कार्य के कारण दिखायी देता है । यह विष्णु मन्दिर था । शारदा लिपि में शिलालेख मिला है । इसका निर्माण किसी ब्राह्मण के पुत्र गाध ने किया था । मन्दिर के शिल्पी का नाम लक्ष्मण लिखा मिला है । इसका काल परमानन्द देव जो जयसिंह का पुत्र था उसके समय का है ।

नानादिगन्तरायाततत्तत्क्रयिकसंकुले ।
नोणाभिधोऽवसत्तस्य देशे रौहीतको वणिक् ॥११॥

११. नाना दिगन्तरों से आये क्रयिक संकुल उसके देश में रौहीतदेशीय[१] नोण[२] नामक वणिक रहता था।

रौहीतदेशे जातानां निवेशाय द्विजन्मनाम् ।
महागुणो नोणमठं पुण्यज्येष्ठं चकार सः ॥१२॥

१२. उस महा गुणी ने रौहीत[१] देशोत्पन्न द्विजों के निवास हेतु पुण्याग्रणी नोण[२] मठ स्थापित किया।

तापर मैं गया हूँ। यहाँ भारतीय सैनिक छावनी पड़ी थी। गाँव बड़ा है। मन्दिर बहुत बड़ा है। मन्दिर के प्राकार का रूप भूमि तक बचा है। पूर्व दिशा की ओर मध्य प्राकार में तोरणद्वार है। मन्दिर के गर्भगृह में अधिष्ठान मात्र शेष रह गया है। मन्दिर के पृष्ठ, वाम तथा दक्षिण भाग में मिट्टी के टीले हैं। कुछ स्तम्भ यत्र-तत्र पड़े हैं। छोटे-छोटे अथवा जो शिलाखण्ड उठाये जा सकते थे उन्हें गाँव वाले उठा ले गये हैं। या तो उनका उपयोग जियारतों तथा कब्रिस्तानों में किया गया है अथवा मकानों में लगा लिये गये हैं। मन्दिर में मार्तण्ड तथा बुनियार की तरह स्तम्भावली प्राकार से सटे हुए मन्दिर की तरफ थी कि नहीं, कहना कठिन है। परन्तु स्तम्भों को देखने से इसका अनुमान किया जा सकता है कि रही होगी। तोरणद्वार भव्य रहा होगा। वह काफी ऊँचाई पर है। बाहर तथा मन्दिर के भीतर प्रांगण तक उतरने के लिए सीढ़ियाँ हैं। तोरणद्वार तथा मन्दिर के द्वार मध्य स्थान पर गरुड़ अथवा पताका खड़ा करने का चौकोर पत्थर पूर्वरूप से ही है। कुछ पत्थरों पर मूर्तियां बनी हैं। परन्तु वे इतनी बुरी तरह विकृत की गई हैं कि उनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ लिखना कठिन है।

पादटिप्पणी :

११ (१) **रौहीतक** : एक लोकसमूह का नाम है जिन्हें नकुल ने राजसूय यज्ञ दिग्विजय पश्चिम के समय विजय किया था। हस्तिनापुर के पश्चिम पड़ता है। (स० स० २९.४) वर्तमान रोहतक क्षेत्र है। रौहीतक एक स्थान का और महाभारत में उल्लेख मिलता है। उस देश का यवन राजा था। उसे कर्ण ने अपने दक्षिण दिग्विजय काल में जीता था (म० व० १ : २४)। हुएन्त्सांग वर्णन करता है कि मुंगली नगर से ३० ली या उसके लगभग पश्चिम जाने पर एक बड़ी नदी पार करने पर एक स्तूप ५० फिट ऊँचा अशोक राजा का निर्मित किया है। उसे वह लू-ही-ट-किया लिखता है। (बाल० ३ : १२७)

वर्तमान समय हरियाना प्रदेश का रोहतक एक जिला है। इसका क्षेत्रफल २३३० वर्ग मील है। जनसंख्या १४, २०, ३९१ (सन् १९६१ ई०) हैं। यमुना एवं सतलज नदियों के मध्यवर्ती उच्चतम भूमि पर दिल्ली से ४४ मील उत्तर-पश्चिम स्थित है। रोहित शब्द रौहीत से भिन्न है। रोहित एक गन्धर्व का नाम है जो गुटबम पर्वत पर निवास करता था (वि०:४:४१,५२)।

(२) **नोण**—नोण मैं समझता हूँ कि इस नाम का व्यापारी था। व्यापार करने के कारण इसका नाम नोण पड़ गया होगा। कश्मीर में नमक नहीं होता। बाहर से आता है। नोण कश्मीर के बाहर का वणिक् था। बहुत कुछ सम्भव है कि वह नमक का बड़ा व्यापारी रहा होगा। हिन्दी नोन का अर्थ नमक होता है। नोण-लवण एक ही शब्द लवण के अपभ्रंश हैं।

पादटिप्पणी :

१२ (१) **रौहीत** : रौहीत अथवा रोहतक नाम से इतिहासों में वर्णन किया गया है। अलबेरुनी ज्यौतिष का वर्णन करते हुए देशान्तर रेखा का वर्णन

नरेन्द्रप्रभा का विवाह—

स जातु राजभवने राज्ञा प्रीत्या निमन्त्रितः ।
अर्चितोऽभवदेकाहमुपचारैर्नृपोचितैः ॥१३॥

१३. कदाचित् प्रेमपूर्वक राजा ने उसे राजभवन में निमन्त्रित कर नृपोचित उपचार से एक दिन पूजित किया ।

प्रातः सुखासिकां प्रेम्णा पृष्टोऽथ पृथिवीभुजा ।
शीर्षव्यथामकथयत् प्रजातां दीपकज्जलैः ॥१४॥

१४. प्रातः राजा के प्रेमपूर्वक सुखनिद्रा पूछने पर, उसने दीप[1] कज्जलों के कारण समुत्पन्न शिरोव्यथा कही ।

ततः क्रमेण नृपतिस्तेन जातु कृतार्थनः ।
वसंस्तदास्पदेऽद्राक्षीत्क्षपायां मणिदीपकान् ॥१५॥

१५. तदनन्तर क्रम से कदाचित् नोण ने राजा को आमन्त्रित[1] किया । उसके स्थान पर निवास करते हुए राजा ने रात्रि में मणि[2] दीपकों को देखा ।

करता है, वह कहता है कि लंका से मेरु देशांतर की सीधी रेखा रौहीतक दुर्ग के समीप जो मुलतान जिला में है, जाती है । यह दुर्ग तथा स्थान अलबेरुनी के अनुसार उसके काल में उजड़ गया था । आर्य-भट्ट कुसुमपुर के ज्योतिष सिद्धान्त पर वर्णन करते हुए देशान्तर की रेखा के सम्बन्ध में रौहीतक का वर्णन करता है । (अलबेरुनी अनुवाद सचाऊ १ : ३०८, ३१६)लाखा मण्डल के आलेख में पुनः इसका उल्लेख मिलता है (एपिग्राफिका इंडिया १:१०)

स्वर्गीय डाक्टर बुलहर ने डाक्टर वरगेस के सुझाव पर वर्तमान रोहतक को ही रौहीतक अथवा रौहीत माना है ।

(२) **नोण मठ :** इस स्थान का पता नहीं चलता । यह भी नहीं मालूम होता कि किस क्षेत्र में इसका निर्माण किया गया था ।

१३ (१) **नृपोचित उपचार :** प्रतीत होता है, कश्मीर के राजा गणमान्य नागरिकों को आज कल के राजा, राजपुरुष, मन्त्रियों तथा राष्ट्रपतियों के समान आमंन्त्रित कर, उनका सत्कार करते थे । यह परम्परा प्राचीन है । अन्यथा राजा वणिक् नोण को आमन्त्रित न करता और न तो कल्हण ही इसका उल्लेख करता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४ में 'प्रजातां' के स्थान 'प्रजानां' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४ (१) **दीप कज्जल :** यहाँ तात्पर्य जलते दीपक की जलती बत्ती से उठते धूएँ से है । तैल दीप से निसन्देह धुआँ उठता है । उस धूएँ से महिलायें काजल, कजरौटा में पारती हैं । नोण उसी ओर संकेत करता है । तेल जितना ही शुद्ध और निर्मल, बत्ती जितनी ही उज्ज्वल और नवीन होगी बत्ती जलने से उतना ही कम धुआँ उठेगा । कश्मीर में दीपक जलाने के लिए सरसों का तेल प्रयोग किया जाता है । सरसों का तेल गरी या तिल के तेल की तरह साफ नहीं होता । स्त्रियाँ काजल सरसों के तेल की जलती बत्ती पर पारती हैं । सरसों के तेल का धुआँ कुछ तीक्ष्ण होता है । सरसों का तेल भी तीक्ष्ण होता है । आँख में लगने से किंचित् कष्ट होता है । राजा के प्रासाद में सरसों के तेल से दीप जलते थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५ में 'कृतार्थनः' का पाठभेद 'कृताननः' मिलता है ।

विलासित्वेन लक्ष्म्या च तादृश्या तस्य विस्मितः ।
अथ द्वित्राण्यहान्यासीत्तत्रैव स कृतार्हणः ॥१६॥

१६. उस पूजक की विलासिता एवं उस प्रकार की लक्ष्मी (सम्पत्ति) से विस्मित वह दो तीन दिन वहीं पर रहा ।

एकदा तेन तत्कान्ता व्यलोकि ललिताकृतिः ।
श्रीनरेन्द्रप्रभा नाम हर्म्ये हिमकरानना ॥१७॥

१७. एक दिन उसने हर्म्य में उसकी हिमकरानना[1], ललिताकृति नरेन्द्रप्रभा नाम्नी पत्नी को देखा ।

उरोजपूर्णकुम्भाङ्का सदूर्वाहितविभ्रमा ।
मूर्तिमन्मङ्गलमिव स्मरस्य च गृहस्य च ॥१८॥

१८. उरोजों से पूर्ण कुम्भ एवं मनोरम जंघों (सदूर्वा) से विभ्रम शालिनी वह कामदेव और गृह के मूर्तिमान् मंगल तुल्य थी ।

पादटिप्पणी :

१५ (१) **आमन्त्रण :** कल्हण पुरानी प्रथा का उल्लेख करता है । राजा भी गणमान्य नागरिकों के आमन्त्रण पर उनके यहाँ पधारता एवं उनका आदर-सत्कार प्राप्त करता था ।

(२) **मणि दीप :** यहाँ अर्थ उस दीप से है, जिसका प्रकाश उसमें लगे हुए मणियों के कारण होता है । उसमें साधारण दीपों के समान तैल आदि का प्रयोग नहीं किया जाता । मणियों के प्रकाश के कारण स्वतः प्रकाश होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७ में 'व्यलोकि' का पाठभेद 'विलोक्य' मिलता है ।

पादटिप्पणियाँ :

१७ (१) **हिमकरानना :** हिम शीतल होता है । चन्द्रमा शीतल होता है । नरेन्द्रप्रभा के मुख मण्डल की उपमा शशि से देते हुए हिम शब्द के प्रयोग से कल्हण ने नरेन्द्रप्रभा के लावण्य की ओर संकेत किया है । हिम का अर्थ कर्पूर भी होता है । कर्पूर वर्ण, हिम वर्ण, दोनों तुल्य वर्ण हैं । कर्पूर में सुगन्धि होती है । शीतलता होती है । हिम तरल होता है । कर्पूर स्निग्ध होता है । नरेन्द्रप्रभा का सौन्दर्य मांस किंवा जड़ सौन्दर्य का आकर्षण मात्र नहीं था । उसमें जीवन था । हिम जल अर्थात् जीवन का घनीभूत रूप है । कर्पूर स्नेह किंवा तैल का घनीभूत रूप है । इस उपमा से कल्हण ने नरेन्द्रप्रभा के सौन्दर्य, वर्ण एवं लावण्य का सजीव चित्र खींच दिया है । नरेन्द्र प्रभा अत्यन्त गौर वर्ण थी । इससे यह भी प्रकट होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८ में 'कुम्भाङ्का' का 'कुम्भाङ्क' 'विभ्रमा' का 'विभ्रमं' 'लमिव' का 'लंदिनं' 'लमूर्ति' 'लं तस्यै' तथा 'स्मरस्य' का पाठभेद 'वरस्य' एवं 'पुरस्य' मिलता है ।

पाद टिप्पणी :

१८ (१) **सदूर्वाहितविभ्रमा :** पाण्डुलिपि एस. ए. १ के पार्श्वटिप्पणी में इसकी व्याख्या दी गयी है—'सन्तौ च तावूरू सदुरू ताभ्यामाहितो विभ्रमो यया ।' कल्हण ने यहाँ इस पद द्वारा अपने कवित्व एवं पैनी कविदृष्टि का परिचय कराया है । श्लेष की अच्छी योजना हुई है ।

हर्म्यस्य निर्जनतया स निःशङ्कविहारिणीम् ।
तां त्रिलोक्यानवद्याङ्गीमभिलाषेण पस्पृशे ॥१९॥

१९. हर्म्य की निर्जनता[1] के कारण निःसंकोच विहारिणी उस अनवद्यांगी को देखकर, राजा अभिलषित हो गया।

साऽपि दर्शितमालिभिः किंचित्साचीकृतानना ।
अपश्यत्काश्यपीकान्तं श्रोत्रविश्रान्तया दृशा ॥२०॥

२०. सखियों के संकेत से किंचित् तिर्यक् आनन वाली उसने कर्णायत लोचन से राजा को देखो।[1]

प्राग्जन्मप्रेमबन्धाद्वा निदेशाद्वा मनोभुवः ।
सपक्षपातं सा तस्य दृष्ट्यैव विदधे मनः ॥२१॥

२१. पूर्व जन्म[1] के प्रेम बन्धन या मनोभव[2] के निदेश के कारण उसने दृष्टि से ही उसके मन को आकृष्ट कर लिया।

पादटिप्पणी :

१९ (१) निर्जन किंवा एकान्त स्थान किंवा शून्य मन्दिर, में यौवन भार से दबी, गजगामिनी, काम पुत्तली कामिनी को देखकर, पुरुष का मन रति अभिलाषा से कैसे बच सकता है ? इसका सुन्दर चित्रण कल्हण ने किया है। राजा के काम एवं रति के आकर्षण, मिलन की एकान्त कामना, की भाव व्यंजना में अश्लीलता न आने देते हुए कल्हण ने काव्यमयी भाषा एवं ललित पद में भाव प्रकट कर दिया है।

२० (१) काश्मीर में काम एवं स्मर शास्त्र पर बहुत कुछ लिखा गया है। वसुनन्द के 'स्मर शास्त्र' का (तरंग १:३३७) तथा दामोदर गुप्त के 'कुट्टनीमतम्' का (रा.४:४९६) उल्लेख कल्हण ने किया है। उनका अध्ययन कल्हण ने किया था। सखियाँ रति सुख के लिए अभिसारिका को संकेत कर रही हैं। रति सुख की तीव्र आकांक्षा में अभिसारिका इतना तीव्र कटाक्ष करती है कि उसकी आँखें कान तक खिंच जाती हैं। अति तीव्र रति सुख की भावना का कल्हण ने सफलतापूर्वक वर्णन किया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१ में 'निदेशाद्वा' का 'निर्देशाद्वा' तथा 'तस्य' का 'तस्यै' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी से सूक्तिसंग्रह का यह ९६वाँ श्लोक है।

२१ (१) पूर्व जन्म : भारतीय धर्म पुनर्जन्मवाद सिद्धान्त में विश्वास करने के लिये बाध्य कर देता है।

(२) मनोभुवः मन से उत्पन्न काम का नाम है। शिव ने काम को भस्म किया था। उस समय से वह अनंग हो गया है। कालिदास के कुमारसम्भव का का यही कथानक है। कल्हण ने काव्य एवं राजा किंवा अनंगलेखा के चरित्र में किसी प्रकार का दोष तथा परस्त्री अथवा पर पति बिलासजन्यसुख में अनैतिकता न आने देने के लिए, पूर्वजन्म के प्रेम वन्धन का आश्रय लिया है।

बौद्ध एवं जैन धर्म ईश्वर में विश्वास नहीं करते। नास्तिक धर्म हैं। तथापि वे भी पुनर्जन्म एवं कर्मसिद्धान्त में विश्वास करते हैं।

प्रत्येक कार्य का कोई कारण होता है। प्राणी की उत्पत्ति का भी कोई हेतु है। यदि माता-पिता किंवा नर-नारी का संयोग ही सन्तान कारण मान लिया जाय तो एक विशेष योनि में, विशेष रूप,

विशेष बुद्धि, वैभव, निर्धन-धनी, स्वस्थ-अस्वस्थ, निरभिमानी-अभिमानी, मूर्ख-बुद्धिमान, क्यों कोई उत्पन्न होता है। इसी प्रकार कोई पशु-पक्षी, कीटाणु पाद-अपाद आदि क्यों होता है ? कोई आजन्म दुखी और कोई आजन्म सुखी होता है ? यदि ईश्वर के कारण होता है, तो ईश्वर प्राणियों के जन्म, जीवन, रूप में भेद दृष्टि क्यों रखता है। एक ही समय, एक ही मुहूर्त, एक ही गर्भ में जन्म देने में यदि मानव तुल्य वह पक्षपाती है तो निरपेक्ष ईश्वर कैसे कहा जायेगा ? यदि सुख-दुख व्यक्ति-कर्म के कारण उत्पन्न होते हैं; तो ईश्वर कर्म के अनुसार दंड एवं फल देगा। ऐसी अवस्था में सद्यः जन्म ग्रहण करता बालक क्यों कष्ट पाता है। एक पुण्यात्मा आजन्म पवित्र रहता भी कष्ट पाता है। एक पापी पापरत होता भी सुखी देखा जाता है। एक व्यक्ति को देखकर प्रसन्नता होती है। उससे स्नेह होता है। प्रेम होता है। परन्तु दूसरे को देखकर घृणा क्यों होती है ? एक में अनुराग तथा दूसरे में विराग क्यों उत्पन्न होता है ? इन्हीं बातों की व्याख्या के लिए आत्मा की सत्यता मानी गयी है। शरीर अनित्य एवं आत्मा नित्य मानी गयी है। वह आत्मा नाना योनियों में अपने कर्मानुसार घूमती तथा कर्मफल पाती रहती है। यही पुनर्जन्म सिद्धान्त का आधार है।

कर्मातीत होकर प्राणी अपने भविष्य जन्म को रोक सकता है। वह जन्म-मरण की शृंखला से मुक्त हो सकता है। यह भारतीय सिद्धान्त है। यहूदी, ईसाई तथा मुसलमान आदि धर्म की परम्परा मानने वाले पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। क्योंकि यहाँ ईश्वरेच्छा से ही सब कुछ होता है। तर्क यह दिया जाता है। यदि आत्मा का पुनर्जन्म होता है तो उसे पुर्वजन्म की सब बातें स्मरण क्यों नहीं रहतीं ? भारतीय दर्शन इसका उत्तर देता है।

अज्ञान से आवृत होने के कारण आत्मा केवल वर्तमान देखती है। भविष्य नहीं देखती। भूत को सर्वथा वर्तमान की चिन्ता में भूल जाती है। यदि इस आवरण का नाश हो जाय तो आत्मा त्रिकालज्ञ हो सकती है। योग में इसी को 'क्षीयते आवरणं' कहा गया है। योग द्वारा पूर्वजन्म का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके साधन वर्णन किये गये है। पूर्वजन्म की स्मृति प्रायः देखी गयी है। अबोध शिशु एवं बालक अपना पूर्व जन्म बताते देखे गये हैं।

वैदिक काल से आत्मा का अमरत्व माना गया है। उपनिषद काल में नचिकेता को सदेह यमलोक की यात्रा कर वापस लौटते देखा गया है (कठोपनिषद्) छान्दोग्य उपनिषद् का सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं चाण्डाल होता है। कर्मों के कारण ही इतर मानव योनि प्राप्त करता है।

अनन्तर मरणोत्तर आत्मा की चार अवस्थाओं का विचार विकसित हुआ। अतएव अद्वैत प्रदर्शन के प्रतिपादक श्री शंकराचार्य घोषणा कर उठे।

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं।
पुनरपि जननीजठरे शयनं ॥

प्रश्न उपस्थित होता है। शरीर मृत्यु प्राप्त कर नष्ट हो गया तो कर्मफल भोग कौन करता है ? सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण ने इसका समाधान किया है। प्रकृति :

'संसरति बाध्यते, मुच्यते च नानाश्रया।'

भारतीय आस्तिक दर्शन एवं बौद्ध दर्शन में पुनर्जन्म सम्बन्धी दो मत प्राप्त होते हैं। एक के अनुसार सूक्ष्म शरीर से अकृत आत्मा का पुनर्जन्म होता है। दूसरे के अनुसार केवल अनुभव संस्थान का ही पुनर्जन्म होता है। जन्म-मरण शृंखला कर्म-सिद्धान्त अथवा ज्ञान सिद्धान्त दोनों पर आधारित है। यूनानी इतिहासकार हिरोडोटस स्पष्ट कहता है मिश्र वालों का इसमें विश्वास था कि तीन सहस्र वर्ष भ्रमण कर पुनः आत्मा का वापस आ जाना सम्भव है। पाइथोगोरस भी पुनर्जन्म का समर्थक है। जेनोफोनीज़ का कथन है कि पाइथागोरस ने एक कुत्ते का भूकना सुनकर, अपने एक मित्र की वाणी पहचाना था।

क्षणादलब्धस्पर्शोऽपि तां सौभाग्यसुधामयीम् ।
मज्जानमपि संस्पृश्य स्थितामिव विवेद सः ॥२२॥

२२. वह बिना स्पर्श[1] प्राप्त किये ही; उस सौभाग्य सुधामयी का संस्पर्श प्राप्त कर, उसे स्थित सा अनुभव करने लगा।

हर्म्यस्तम्भच्छन्नगात्री क्षणं भूत्वा जगाम सा ।
व्यावर्त्य वक्त्रं पश्यन्ती पार्थिवं तं मुहुर्मुहुः ॥२३॥

२३. हर्म्य स्तम्भ के ओट में शरीर छिपाकर किंचित् काल स्थिर हो (कर) बार-बार आनन घुमाकर उस नृपति को देखती हुई, वह चली गयी।[1]

गृहीतहृदयस्तन्व्या तावतैव महीपतिः ।
स चिन्ताजिह्मनयनो राजधानीं शनैर्ययौ ॥२४॥

२४. तावन्मात्र से गृहीत हृदय (वाला) महीपति चिन्ता के कारण जिह्म नयन[1] हो राजधानी गया।

होमर के इलियड में देवता देवलोक से पृथ्वी पर चले आते थे। मनुष्य इसी प्रकार स्वर्गलोक चले जाते थे। सर्वश्रेष्ठ यूनानी दार्शनिक अफलातून के फ्रीडो में प्रसंगतः शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली आत्मा के पुनः जन्म की बात कही गयी है। इसी प्रकार उसके 'लाज' नामक संवाद में इस जन्म में बदला चुकाने के लिए पुनः जन्म लेने की बात का प्रतिपादन किया गया है।

योगवासिष्ठकार इस विषय पर वैज्ञानिक प्रकाश डालता है। मनुष्य की मृत्यु के पश्चात् उसका संस्कार उसके साथ जाता है। उस संस्कार में सब कुछ उसी प्रकार निहित रहता है जैसे वट के अतिसूक्ष्म बीज में विशाल वट वृक्ष। 'लीला' तथा 'चुड़ाला' उपाख्यान में इसकी यौगिक एवं वैज्ञानिक व्याख्या की गयी है। कल्हण इसी ओर संकेत करता है। पूर्व-जन्म के परस्पर प्रेम, अनुरागादि संस्कार के कारण राजा एवं नरेन्द्रप्रभा में पुनः अनुराग किंवा मनोभव एक दूसरे के दर्शन मात्र से उत्पन्न हो गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२ में 'मज्जानमपि' का पाठभेद 'मज्जानामपि' तथा 'अज्ञातामपि' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ६७ वाँ श्लोक है।

२२. (१) **स्पर्श :** स्वप्न में बिना प्रत्यक्ष स्पर्श आदि के मानव सुख-दुःख का अनुभव करता है। जागृत अवस्था में उसी प्रकार मानसिक सुख-दुःख का अनुभव बिना प्रत्यक्ष कार्य किये करता है। मन ही कल्पना करता है। मन ही सुख दुःख का भोक्ता है। वासना एवं इन्द्रिय सुख मन ही की चेष्टाएँ मानी गयी हैं। राजा बिना स्पर्श किये नरेन्द्रप्रभा के मिलन सुख का मानसिक अनुभव करने लगा। कल्हण राजा की मानसिक अवस्था का चित्रण करता है।

पादटिप्पणी :

२३. (१) यह भाव किसी रति सुख अभिलाषिणी पुरुष पर अत्यन्त आसक्त नारी की चेष्टा को व्यक्त करता है। कल्हण नरेन्द्रप्रभा की मूक चेष्टा को व्यक्त करता है। वह राजा के स्नेह बन्धन में बँध गयी थी। उसकी ओर से मिलन में कोई अवरोध नहीं था।

पादटिप्पणी :

२४ (१) यहाँ जिह्मनयन का कुटिलनयन अर्थ अभिप्रेत है। चिन्ता से आँखों में वक्रता का आ जाना स्वाभाविक है।

तत्र तस्य तदाकारध्यानावहितचक्षुषः ।
सममन्तःपुरप्रीत्या प्रपेदे तानवं तनुः ॥२५॥

२५. वहां उसकी आकृति के चिन्तन में लगे उस नृपति का शरीर अन्तःपुर के प्रम के साथ क्षीण होने लगा ।

अचिन्तयत्स धिक्कष्टं रूढोऽयमशुभावहः ।
अस्मिन्मे मानसोद्याने रागनामा विषद्रुमः ॥ २६ ॥

२६. उसने सोचा–धिक् ! कष्टम् !! मेरे इस मानसोद्यान में रागनामक[1] अशुभावह विषद्रुम रूढ़ (उत्पन्न) हो गया है ।

अहो नु सुभगा रागवृत्तिश्चित्तं विजित्य या ।
विवेकादीन्व्यधाद् दूरे सुहृदः परिपन्थकान् ॥२७॥

२७. अहो ! (आश्चर्य है) उस सुभग रागवृत्ति को, जिसने चित्त विजित कर विवेकादि सुहृदों को शत्रुवत् दूर कर दिया ।

भाव्यं कौलीनभीतेन येन भूमिभृता सता ।
तस्य मे दुस्सहः कोऽयं सदाचारविपर्ययः ॥२८॥

२८. राजा होकर मुझे दुष्कर्म से भयभीत रहना चाहिये, तथापि मुझमें यह कौन दुस्सह सदाचार विपर्यय हो रहा है ।

यत्र दारापहरणं राजैव कुरुते विशाम् ।
परः को नाम तत्रास्तु शासिता नीत्यतिक्रमे ॥२९॥

२९. जहां नृपति ही[1] स्वयं प्रजाओं की स्त्रियों का हरण करता है, वहां दूसरा कौन नीतिअतिक्रमण पर शासन करेगा ?

---

२६ (१) राग—सांसारिक सुख सम्बन्धी प्रवृत्ति को राग कहते हैं । पंच क्लेशों में से यह एक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७ में 'सुभगा' का 'सुभगः' तथा 'या' का 'यः' पाठभेद मिलता है ।

श्लोक संख्या २९ में 'शासिता' का पाठभेद 'शमिना' तथा 'शमिता' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ९८ वां श्लोक है ।

२९ (१) राजा की मानसिक स्थिति का कल्हण ने बड़ी निपुणता के साथ २५-२९ श्लोकों में वर्णन किया है । अनुराग के पश्चात् निराश होने पर वैराग्य उत्पन्न होता है । वैराग्य के साथ मन में उच्च विचार उठते हैं । इस श्लोक में कल्हण ने पर-स्त्री चिन्तन की मानसिक स्थिति को भी बुरा माना है । राजा अपने कर्त्तव्य को स्मरण कर, अपनी वासना एवं राग पर उदित वैराग्य भावना द्वारा विजय प्राप्त करना चाहता था ।

विमृष्यन्निति भूपालो विस्मतुमभवत्क्षमः ।
न पद्धतिं साधुसेव्यां न च तां दीर्घलोचनाम् ॥३०॥

३०. इस प्रकार विचार करते हुए भूपाल साधुजन-सेव्य सदाचार पद्धति एवं उस दीर्घलोचना[1] को विस्मृत करने में समर्थ नहीं हुआ ।

तमथ प्रथितास्वास्थ्यं नेदीयोमरणं वणिक् ।
स जनाज्ज्ञातवृत्तान्तः सुजनो विजनेऽब्रवीत् ॥३१॥

३१. वह सुजन वणिक् मरणासन्न नृपति का अस्वास्थ्य वृत्तान्त लोगों से जानकर एकान्त में राजा से कहा।[1]

इमामवस्थां प्राप्तोऽसि किं धर्मेण निरुध्यसे ।
न प्राणसंशये जन्तोरकृत्यं नाम किंचन ॥३२॥

३२. आप की यह अवस्था हो गयी है। धर्म से क्यों बाध्य हो रहे हैं ? प्राणियों के प्राण संशय में कुछ भी अकृत्य[1] अर्थात् अकरणीय नहीं होता है ।

यन्मतानि प्रतीक्ष्यन्ते विबुधैर्धर्मसंशये ।
तेषामपीदृशे कृत्ये श्रूयते संयमव्ययः ॥३३॥

३३. धर्म संशय में विद्वान् जिनके विचारों को प्रमाण मानते हैं उनका भी इस परिस्थिति में संयम त्याग[1] सुना गया है ।

पादटिप्पणी :

३० (१) दीर्घलोचना : दीर्घ, विस्तृत नेत्र से यहाँ तात्पर्य है। वैराग्य एवं नीति का स्मरण होते हुए भी राजा मानवीय दुर्बलताओं का शिकार बन गया था। राजा होने के कारण राजधर्म का त्याग नहीं कर सकता था। अनीति मार्ग का अवलम्बन नहीं करना चाहता था। राजशक्ति का आश्रय लेकर अपनी कामवासना तृप्ति के लिए प्रलोभन, शक्ति, दबाव, तथा जबर्दस्ती नहीं कर सकता था। किन्तु दूसरी ओर वह कामिनी को भूल, उसके रूप आकर्षण से विरत नहीं हो सका।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१ में 'तास्वास्थ्य' का 'तां स्वस्थं' तथा 'विजने' का 'विजनो' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३१ (१) नोण वणिक् संवाद (किष्कि० ३२-३६) वाल्मीकि रामायण में वर्णित जाबालि एवं भगवान् राम के संवाद का स्मरण दिलाता है। वणिक् भौतिकवाद एवं भौतिक सुख की प्रशंसा करता है । तर्क उपस्थित करता है । वणिक् तर्क उपस्थित करने में हेतुवाद का आश्रय लेता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का ९९ वाँ श्लोक है।

३२ (१) अकृत्य : कुत्ता का मांस अखाद्य है। उसका स्पर्श तक वर्जित है। एक समय गाधि वंशजों ने कुत्ते का मांस भक्षण किया था उनसे जब प्रश्न किया गया कि अभक्ष्य का भक्षण कर आपने दोष किया है, तो उन्होंने तर्क उपस्थित किया कि प्राण संशय काल में प्राण बचाने के लिए किया गया दोष अपराध किंवा अकृत्य नहीं है ।

पादटिप्पणी :

३३ (१) संयम त्याग : धर्म संशय काल में अर्थात् क्या करना चाहिए और क्या नहीं, उस समय

यशोऽनुरोधादुचितं नापि देहमुपेक्षितुम् ।
स्वकीर्तिर्न परासूनां कीर्णा कर्णरसायना ।।३४।।

३४. यश के अनुरोध से देह की उपेक्षा समुचित नहीं है। क्योंकि मरणानन्तर कर्ण रसायन स्वकीर्ति सुनी नहीं जाती[१] ।

विद्वान् जिन महापुरुषों के वचनों का प्रमाण मानते हैं उन्हीं महापुरुषों ने प्राणसंशय की परिस्थिति में संयम का त्याग किया है । युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा' की मृत्यु का समाचार निस्सार होते हुए भी **"अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरः"** अश्वत्थामा मारा गया—वह नर है या हाथी कहकर अपने कार्य का समाधान किया था । श्री कृष्ण ने अर्जुन के विरोध प्रदर्शन करने पर भी अविलम्ब निहत्थे कर्ण का वध करने के लिए प्रेरित किया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४ में 'दुचितं का 'दुदितं' तथा **'कीर्णाक' का 'कीर्णक'** पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०० वाँ श्लोक है ।

३४ (१) कल्हण ने इस श्लोक में चार्वाक किंवा लोकायत दर्शन के सिद्धान्तों का सन्निवेश किया है । इस दर्शन में चारु शब्द हैं। मनोहर लगता है । अतएव एकमत यह भी है कि इसी कारण दर्शन का नाम चार्वाक रखा गया था । बृहस्पति लोकायत दर्शन के प्रवर्तक कहे गये हैं । मैत्रेयी उपनिषद् में उल्लेख है । असुरों की बुद्धि भ्रंश करने के लिए बृहस्पति ने इस मत का प्रवर्तन किया था । बृहस्पति के शिष्य कहा जाता है कि चार्वाक थे । वे नास्तिक जड़वाद के प्रतिनिधि आचार्य हैं । अनेक चार्वाक व्यक्तियों का उल्लेख पुग साहित्य में मिलता है । लोकायत परलोक नहीं मानते । अतएव ईश्वर नहीं मानते । वे हेतुवादी कहे गये हैं ।

दर्शन का मौलिक सिद्धान्त है कि देह से आत्मा भिन्न नहीं है । देह के नाश होने पर आत्मा का नाश हो जाता है । जीवनसुख ही परम पुरुषार्थ है । परलोक किंवा पुनर्जन्म नहीं होता । मृत्यु ही मुक्ति है । सुख एवं दुख युक्त संसार है । सुख की जो उपेक्षा करते हैं वे मूर्ख हैं । परलोक मिथ्या है । देह का नाश होना ही पदार्थों की अंतिम अवस्था है । प्रमाण केवल प्रत्यक्ष प्रमाण है । ऐहिक सुख ही परम श्रेय है । भौतिक जगत् ही सत्य है । चैतन्य केवल चार भूतों पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि के संयोग से बनता है ।

मृत्यु के पश्चात् जीवन नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती । चतुर्भूतों का विलय हो जाता है । उनके योग से उत्पन्न चैतन्य नष्ट हो जाता है । अतएव परलोक, स्वर्ग, नरक आदि कवि कल्पनाएँ हैं । संसार का नियन्त्रण करने वाला राजा ही परमेश्वर है । धर्म, कर्म, कर्मकाण्ड, इत्यादि पुरोहितों की जीविका के साधन मात्र हैं ।

यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ।।

उनका कहना है । यदि यज्ञ में वध किया पशु स्वर्ग जाता है तो पिता का बध कर क्यों न उसे स्वर्ग भेजा जाय ? यदि श्राद्ध से पितरों की सन्तुष्टि होती है, तो नीचे रखे हुए खाद्य पदार्थ से ऊपरी मंजिल में बैठे मनुष्य की तृप्ति क्यों नहीं हो जाती ? वेद एवं शास्त्रविहित धर्म को त्याग कर, भौतिक सुख को ही उत्तम कर्त्तव्य मानना चाहिए ।

केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्तव्योऽर्थनिर्णयः ।
युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते ।।

इस श्लोक में निहित सिद्धान्त उपरोक्त श्लोक संख्या २१ के सर्वथा विरुद्ध है । जहाँ पूर्व जन्म का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । कल्हण का वह मत अपना नहीं है । इसने विभिन्न विचारों एवं

मा भून्मदनुरोधस्ते त्वत्प्रियार्थं हि पार्थिव ।
प्राणा अपि न मे गण्या इन्द्रियार्थेषु का कथा ॥३५॥

३५. 'मेरा विचार न करें। हे पार्थिव ! आप के प्रिय हेतु निश्चय ही मेरे प्राण भी नगण्य हैं। इन्द्रिय भोग्य[1] पदार्थों का क्या महत्त्व है ?

एवमुक्तोऽपि नादत्से तां चेत्तत्सा सुरास्पदात् ।
गृह्यतां नर्तकीभूता नृत्यज्ञत्वान्मयाऽर्पिता ॥३६॥

३६. इस प्रकार कहने पर भी आप नहीं ग्रहण करते हैं तो मैं नृत्यज्ञ होने के कारण उसे नर्तकी[1] रूप से देव मन्दिर में अर्पित[2] कर देता हूँ। वहाँ से उसे आप ग्रहण कर लें।

घटनाओं को लिपिबद्ध कर इतिहास रूप में रखा है।

पादटिप्पणी :

३५ (१) इन्द्रियार्थ : कल्हण ने इस शब्द का इसी भाव में (रा. ३ : ५१४) में प्रयोग किया है। स्त्रियां इन्द्रिय भोग हेतु हैं। इसका अर्थ निकलता है। पुरा काल में कुछ लोगों की यही कल्पना थी। यद्यपि इस विचार में अब परिवर्तन हो गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६ में 'दत्से का 'धत्से', 'चेत्तत्सा' का 'चेत्तदा' तथा 'नर्तकीभूता' का 'नर्तकी भूत्वा' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

३६. (१) नर्तकी : मन्दिर में नृत्य-गान करती थी। यह देवदासी प्रथा तो नहीं थी परन्तु इससे स्पष्ट होता है कि कश्मीर के मन्दिरों में नर्तकी, गायिका नर्तकों एवं गायकों अथवा देवार्चन हेतु स्त्रियों को रखने की प्रथा थी। इससे यह भी प्रकट होता है कि कन्या हो केवल मन्दिर पर नहीं चढ़ाई जाती थी। विवाहिता स्त्री भी मन्दिरों में प्रवेश पा सकती थी। प्रवेश का अर्थ अपने आपको देवपर अर्पित कर देना होता था। इस प्रकार पूर्व विवाह सम्बन्ध स्वतः छिन्न हो जाता था।

३६. (२) अर्पित : बालाएँ मुख्यतया मन्दिर या देवस्थानों पर देवसेवा के लिए अर्पित कर दी जाती थीं। स्त्रियाँ भी अर्पित की जाती थीं। ईसाइयों के रोमन केथोलिक सम्प्रदाय में 'नन' आजन्म चर्च पर अर्पित रहती है। इसी प्रकार रोमन कैथोलिक पादरी आजन्म अविवाहित, असंग्रही एवं चर्च अनुशासन में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। भारत में बालक भी देवस्थान पर अर्पित किये जाते थे। वे ब्रह्मचारी अनन्तर संन्यासी हो जाते थे। बौद्ध धर्म में स्त्रियाँ भिक्षुणी होकर संघ के अनुशासन में रहती थीं। भिक्षुणी, देवार्पित स्त्री, किंवा देवदासी एवं नन भी चाहे तो पुनः गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश कर सकती थी।

इसका अर्थ दूसरा यह भी लगाया गया है कि विवाह विच्छेद के लिए यह साधन मान लिया गया था। कश्मीर के हिन्दू सहिष्णु तथा उदार थे। वे रूढ़िवादी नहीं थे। इस प्रकार देवता पर अर्पित की गई स्त्रियाँ चाहे उनका पति मर भी जाय तो विधवा नहीं मानी जाती थीं।

नेपाल में भी इसी प्रकार की कुछ प्रथा दूसरे रूप में प्रचलित है। वहाँ नायरों की कुमारी कन्याएँ भगवान् अर्थात् वासुदेव वृक्ष से विवाह कर लेती थीं। उनका दूसरा विवाह सांसारिक विवाह होता था। वे यदि विधवा हो भी जाती थीं, तो उन्हें सधवा मान लिया जाता था। वे अपना पुनर्विवाह कर लेती थीं।

कश्मीर की प्रथा में बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है। बौद्ध स्त्रियाँ तथा पुरुष दोनों कुछ काल

तेनेति प्रेर्यमाणः स बलिना च मनोभुवा ।
प्राग्लज्जामथ जग्राह कथंचित्तां सुलोचनाम् ॥३७॥

३७. वणिक् तथा बली कामदेव के द्वारा इस प्रकार प्रेरित होकर वह राजा सर्वप्रथम लज्जित हुआ, पश्चात् कथंचित् उस सुलोचना को अंगीकृत किया ।

कृत्यैरुदात्तैः साऽपास्ततादृक्चारित्रलाघवा ।
नरेन्द्रमहिषी चक्रे श्रीनरेन्द्रेश्वरं हरम् ॥३८॥

३८. नरेन्द्रमहिषी ने उस प्रकार के चरित्र कलंक[1] को उदात कृत्यों से दूर कर दिया और श्री नरेन्द्रेश्वर[2] शिव की स्थापना की ।

के लिए अथवा सर्वदा के लिए किसी बिहार अथवा संघाराम में प्रवेश कर भिक्षु हो सकते हैं । यदि वे ब्रह्मचर्य जीवन अथवा श्रमण जीवन न बिताकर पुनः गार्हस्थ्य जीवन में प्रविष्ट होना चाहते हैं तो चीवर त्यागकर गृहस्थ हो जाते हैं । नरेन्द्रप्रभा का देवता पर अर्पित होकर पुनः गार्हस्थ्य धर्म में प्रवेश करना इसी बात की ओर लक्ष्य करता है । देवता पर अपने आपको अर्पित करना अपनी इच्छा पर निर्भर था । एक बार अर्पित होने का अर्थ यह नहीं था कि आजन्म मन्दिर की सेवा, गान एवं नर्तन में जीवन बिता दिया जाय जैसा कि कालान्तर में भारत में हो गया था । द्रष्टव्य : (जाग्रत नेपाल, दक्षिण पूर्व-एशिया ।)

इस घटना से एक और उदाहरण मिलता है । अन्तर्जातीय विवाह कश्मीर में प्रचलित था । अन्यथा राजा वणिक् महिला से किस प्रकार विवाह कर सकता था ? राजा ने अपने प्रेम को इसीलिए प्रकट नहीं होने दिया कि विवाहित स्त्री से विवाह करना अथवा उसे अपने यहां रखना मर्यादा तथा नीति विरुद्ध था । इससे स्पष्ट होता हैं, उस समय अन्तर्जातीय विवाह मर्यादा एवं नीति विरुद्ध नहीं था बल्कि प्रचलित था ।

इस प्रसंग का वर्णन (रा० १ : १५१; ४ : २६९ ; ७ : १४६० ८ : ७०६, ७१०) कल्हण ने किया है ।

पादटिप्पणी :

३७ (१) कामदेव : धर्म के तीन पुत्रों में कामदेव एक है । इसकी पत्नी का नाम रति है । (आदि० ६६ : ३२-३३) भगवान् विष्णु का एक नाम कामदेव है । (अनु० १४९ : ७३) । पौराणिक देवता है । पत्नी रति है । सखा वसंत है । वाहन कोकिल है । अस्त्र पुष्पधनुष है । ध्वजा मीन एवं मकरांकित है । शैलसुता के सती हो जाने पर शिव ने विवाह न करने का निश्चय किया । समाधिस्थ हो गये । तारकासुर ने एक वर प्राप्त किया कि उसकी मृत्यु शिव पुत्र द्वारा अभीष्ट है । शिव को पुत्र नहीं था । निर्भय होकर वह देवताओं को त्रस्त करने लगा । देवताओं ने शिव की समाधि भंग करने का भार कामदेव को दिया । काम ने शिव-समाधि भंग हेतु पुष्प बाण प्रहार किया । शिव ने कुपित होकर उसे भस्म कर दिया । काम की पत्नी विलाप करने लगी । शिव ने उसे अनंग रहने का वरदान दिया । उस समय से कामदेव का नाम अनंग पड़ गया । द्वारका में कृष्णपुत्र प्रद्युम्न रूप में उसका जन्म हुआ । प्रद्युम्न काम के अवतार थे ।

पादटिप्पणी :

३८ (१) चरित्र कलंकः—कल्हण के समय प्रतीत होता है इस प्रकार का कार्य अनुचित माना जाने लगा था । अन्यथा कल्हण यहां चरित्र कलंक शब्द का प्रयोग नहीं करता । आजकल यदि नन चर्च

क्रमेण च प्रजापुण्यैः चन्द्रापीडाभिधं सुतम् ।
प्रासोष्ट पार्थिववधूर्निधानमिव मेदिनी ॥३९॥

३९. क्रम से उस राजपत्नी ने प्रजा-पुण्य से मेदिनी[1] के निधान तुल्य चन्द्रापीड नामक पुत्र उत्पन्न किया।

तस्याभिजनमालिन्यं स्वच्छैरच्छेदि तद्गुणैः ।
शाणाश्मकषणैः कार्ष्ण्यमाकरोत्थं मणेरिव ॥४०॥

४०. उसका कुल कलंक[1] उसके स्वच्छ गुणों से ठीक उसी प्रकार दूर हो गया, जैसे शान पर चढ़ाकर रगड़ने से मणि की खान में लगी कालिमा।

त्याग कर शादी करती है तो वह समाज में अच्छी दृष्टि से नहीं देखी जाती। इसी प्रकार कोई संन्यासी एवं संन्यासिनी होकर पुनः गृहस्थ धर्म में प्रवेश करे तो यह कृत्य अनुचित माना जाता है। भारत में सतीत्व को अत्यन्त महत्त्व एवं ऊँचा स्थान दिया गया है। नारियाँ पति के साथ सती हो जाना पसन्द करती थीं परन्तु परपुरुष पर आँख उठाना बर्दाश्त नहीं करती थीं। सतियों की इसी लिये पूजा होती थी। प्रशंसा होती थी। कल्हण ने तत्कालीन आचार का ध्यान रखते हुए नरेन्द्रप्रभा के इस कार्य को कुल कलंक कहते हुए भी उसके पुण्य कार्यों के कारण कलंक धो जाना स्वीकार किया है।

३८ (२) **नरेन्द्रेश्वर :**—इस देवस्थान का पता नहीं चल पाया है।

पादटिप्पणी :

पद ३९ से ४३ का अनुवाद प्राध्यापक डाक्टर व्ह्लर ने भी किया है।

३९ (१) **मेदिनी :** पृथ्वी का एक नाम मेदिनी है। भगवान् विष्णु ने मधु एवं कैटभ दैत्यों का अपनी पल्थी पर रखकर वध किया था। उनका शव जल में डूब कर घुल गया। उनके मेद से पृथ्वी आच्छादित हो गयी। (पद्म० कि० २; मार्क० ७८; ह० वें ३. १३) मेद से पृथ्वी बन गयी। पृथ्वी का नाम मेदिनी पड़ा (शा० ३३५) महाभारत में कथा आती है। जल की ऊर्मियों से मथित होकर उन दैत्यों ने मेद त्याग किया। उससे आच्छादित होकर वहाँ का जल अदृश्य हो गया। उस पर भगवान् ने नाना प्रकार की सृष्टि की। वसुधा उनके मेद से आच्छादित हो गयी थी। अतएव नाम मेदिनी पड़ा (सभा० ३८:३९) कालिदास ने—'न मामवति सद्वीपा रत्नसूरपि मेदिनी' वर्णन किया है। (रघुवंश : १:६५)।

(२) **निधान :** द्रव्य-कोश, ख़ज़ाना के अर्थ में निधान शब्द प्रयुक्त किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४० में 'कषणैः' का पाठभेद 'ककणैः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०१ वाँ श्लोक है।

४० (१) **कुलकलंक :** पूर्व श्लोक में कल्हण ने चरित्र कलंक का प्रश्न उठाया था। इसमें वह नरेन्द्रप्रभा के कुल कलंक को उसी प्रकार दूर होना कहते हैं, जैसे मणि किंवा हीरा खान से निकलने पर मलिन होता है, परन्तु जब वह शान पर चढ़ाया जाता है, तो उसमें चमक आती है। खान से निकलने पर उसका मूल्य कम होता है। परन्तु शान चढ़ने पर उज्ज्वलता के साथ उसका मूल्य बढ़ जाता है। कहावत है। हीरा के कटने पर ही उसका मूल्य आँका जाता है। जैसी अच्छी उसकी कटाई होगी, उतना ही उसका मूल्य होगा। बेलजियम कट हीरा

धूमाद् गाढमलीमसाच्छुचि पयः सूते घनस्योद्गमो
लोहस्यातिशितस्य जातिरचलात्कुण्ठाश्ममालामयात् ।
किं चात्यन्तजडाज्जलाद् द्युतिमतो ज्वालाध्वजस्योद्भवो
जन्मावन्यनुकारिणो न महतां सत्यं स्वभावाः क्वचित् ॥४१॥

४१. अत्यन्त मलीमस धूम-उत्पन्न घनोद्गम पवित्र पय-वृष्टि करता है, कुण्ठ प्रस्तर-मालामय पर्वत से अति तीक्ष्ण लौह की उत्पत्ति होती है, और भी अत्यन्त जड़ जल से द्युतिमान बड़वानल उत्पन्न होता है, अतएव यह सत्य है कि कहीं भी महान् लोगों के सत्य स्वभाव, जन्म स्थान का अनुकरण करने वाले नहीं होते हैं।[1]

तारापीडोऽपि तनयः क्रमात्तस्यामजायत ।
अविमुक्तापीडनामा मुक्तापीडोऽपि भूपतेः ॥४२॥

४२. क्रम से उस पत्नी में भूपति के तारापीड[1] मुक्तापीड[2] अपर नाम अविमुक्तापीड नामक पुत्र हुए।

वज्रादित्योदयादित्यललितादित्यसंज्ञकाः ।
प्रतापादित्यजाः ख्याताश्चन्द्रापीडादयोऽपि ते ॥४३॥

४३. वे प्रतापादित्य के पुत्र चन्द्रापीड आदि (दो) भी वज्रादित्य, उदयादित्य, ललितादित्य नाम से प्रख्यात हुए।[1]

प्रसिद्ध है। आजकल इसराइल में हीरा काटा जाता है। भारत में जयपुर इसके लिए प्रसिद्ध है। कल्हण इसी ओर संकेत करता है। खान से निकले हीरे के समान जिस समय वह राजकुल में आयी थी, मलिन थी। परन्तु अपने पुण्य कार्यों एवं सच्चरित्र व्यवहार से राजा के कुल पर कलंक नहीं लगने दिया। वह कश्मीर के भविष्य के राजाओं की जननी थी कल्हण राजवंश के कुल-कलंक को इस प्रकार प्रक्षालित होना मानता है। नरेन्द्रप्रभा ने अपने कर्म से कुल-कलंक धोया था न कि राजशक्ति का आश्रय लेकर।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१ में 'शितस्य' का 'सितस्य', 'ज्वालाध्वजस्योद्भवो' का 'ज्वालाध्वजस्योद्भभो,' 'ध्वलस्योद्भवो' तथा 'जन्मावन्य' का 'जन्मावश्य' जन्मावध्य पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०२ वाँ श्लोक है।

४१ (१) कल्हण यहाँ विचार आनुवंशिक परम्परा तथा अन्तर्जातीय विवाह पर प्रकट करता है। अग्नि (बड़वानल) शीतल जल से उत्पन्न होता है।

पादटिप्पणी :

४२ (१) **तारापीड** : चन्द्रापीड के पश्चात् तारापीड राजा हुआ था। उसके प.चात् मुक्तापीड राजा हुआ।

(२) **मुक्तापीड** : कल्हण का सुझाव है कि वास्तव में उसका नाम अविमुक्तापीड होना चाहिए। मुक्तापीड का एक अर्थ होता है, जिसका उष्णीष ले लिया जाय। डा० व्हुलर ने इसका अनुवाद किया है—'वह जिसके उष्णीष में मुक्ता होता है।' यहाँ अर्थ किया जा सकता है, 'जिसके उष्णीष मुकुट में मुक्ता अथवा जिसने अपना राजमुकुट त्याग दिया है।'

पादटिप्पणी :

४३ (१) श्री एच० एच० विलसन ने हिन्दू हिस्टोरी ऑफ कश्मीर (पृष्ठ ४४) में इस पद का

वर्षान्पञ्चाशतं भुक्त्वा भुवं दुर्लभभूपतिः ।
पुण्यनिश्श्रेणिभिः पुण्यामारुरोह दिवं शनैः ॥४४॥

४४. दुर्लभ भूपति पचास वर्ष पृथ्वी का भोग कर पुण्य-सोपानों द्वारा पुण्य स्वर्ग लोग प्रयाण किया ।

भिन्न अर्थ लगाकर लिखा है कि प्रतापादित्य के ७ पुत्र थे । यह त्रुटिपूर्ण है । इस त्रुटि की ट्रोयर तथा लस्सन दोनों ने अपने अनुवादों में पुनरावृत्ति की है। प्राध्यापक ब्हूलर ने सर्वप्रथम इस त्रुटि की ओर ध्यान आकर्षित किया था ।

पादटिप्पणी :

४४ (१) कल्हण प्रतापादित्य द्वारा निर्मित किंवा स्थापित किसी देवस्थान अथवा मन्दिर का उल्लेख नहीं करता ।

हर्षवर्धन की मृत्यु के कारण भारत की जैसे केन्द्रीय शक्ति विलुप्त हो गई । उसके पश्चात् क्या हुआ सब अन्धकार के गर्भ में छिपा है । गुप्त वंशज राजा माधव गुप्त अनन्तर आदित्यसेन का वर्णन मिलता है। आदित्यसेन दुर्लभक का समकालीन सन् ६७२ ई० में राज्य कर रहा था ।

चचनामा के अनुसार कासिम ने कश्मीर तथा कन्नौज के विरुद्ध अभियान किया था । परन्तु किरत के विजय का ही उल्लेख मिलता है। किरत या कीर काँगड़ा प्रदेश माना जाता है । मुसलिम सेना कश्मीर की सीमा तक पहुँच गयी थी । कश्मीर की सीमा पर मुसलिम सेना पहुँचने का सर्वप्रथम वर्णन मिलता है ।

प्रतापादित्य का राज्यकाल इस दृष्टि से महत्त्व पूर्ण कहा जायेगा । उसके समय में मुसलिम सेना सर्व प्रथम भारत में प्रवेश कर, कश्मीर की सीमा तक पहुँची थी ।

मुसलिम खलीफा के साम्राज्य के पूर्वीय मण्डल का राज्यपाल हज्जाज था । भारत पर मुसलमानों के आक्रमण के तीन कारण दिये गये हैं । एक लेखक का कहना है कि खलीफा वलीद के पिता पाँचवें खलीफा अबुल मलिक थे । सिन्ध से कुछ लड़कियाँ तथा सामान खरीदने के लिए अपने अधिकारियों को भेजा । वे जब सिन्धके बन्दरगाह देवल पहुँचे तो दाहिर राजा के अधिकारियों ने उनके कार्यों को अनुचित ठहराकर विरोध किया । भारत में लड़कियों का क्रय, विक्रय तथा दासप्रथा नहीं थी । मुसलमान दास अर्थात् गुलाम बनाना और उनको खरीदना और और बेचना जायज़ मानते थे । दासी और गुलामों का व्यापार करते थे ।

हज्जाज ने मकरान के सूबेदार मुहम्मद बिन हारून को एक पत्र के साथ दाहिर से हरजाना वसूल करने के लिए भेजा । दाहिर ने उत्तर दिया । इस कार्य के लिए वह उत्तरदायी नहीं है ।

सूबेदार ने उवेदुल्ला को देवल पर आक्रमण हेतु भेजा । देवल में वह दाहिर के सैनिकों से पराजित होकर मारा गया । दूसरी बार बुंदेल दाहिर पर आक्रमण करने के लिए भेजा गया । वह भी पराजित होकर जिन्दगी से हाथ धोया ।

मुहम्मद बिन कासिम सूबेदार हज्जाज का भतीजा और दामाद भी था । उसे दाहिर को परास्त करने का भार दिया गया । उस समय उसकी उम्र १७ वर्ष की थी । कासिम के साथ ६००० सीरिया के घोड़ों का रिसाला, ऊँटों का रिसाला तथा ३००० ऊँट सामान ढोने के लिए थे । शिराज से होते हुए वे मकरान आये ।

वर्तमान दरवेजी स्थान के पास ही से अरमाइल द्वारा वे सिन्ध में प्रवेश किये । उसकी सेना के साथ और भी अरब मिल गये । वह थत्ता या तत्ता के समीप सन् ७११ ई० में पहुँच गया । देवल पर घेरा डाला गया । तीन दिन तक घमासान युद्ध होता

रहा। इसी बीच एक ब्राह्मण ने किला विजय का उपाय बता दिया। किला में ब्राह्मण ने एक जन्त्र झण्डे पर लगाया था। लोगों को विश्वास दिलाया था। किले का पतन नहीं होगा। मुसलमानों ने अपने 'वलिस्ता' से छोड़े गये वाणों से जन्त्र गिरा दिया। इस जन्त्र के गिरते ही किले के लोगों का साहस टूट गया। इसलाम कबूल न करने पर सत्रह वर्ष के ऊपर के जवान हिन्दू मुसलमानों द्वारा मूलियों की तरह काट डाले गये। दुर्ग का पतन हो गया। इसलाम कबूल करने या मौत के घाट उतरने में एक मानने के लिए कहा गया। उनकी स्त्रियाँ, कन्याएँ तथा बच्चे गुलाम बना लिए गए। वहाँ मसजिद बनाई गई। चार हजार मुसलिम सैनिक नगर में रख दिये गये। हज्जाज के पास पाँचवाँ हिस्सा लूट का सामान तथा ७५ सुंदर हिन्दू युवतियाँ तोहफे के तौर पर भेज दी गईं।

देवल के पतन के पश्चात् मुसलिम फौज निरून की ओर बढ़ी। दाहिर ने जयसिंह को बहमनाबाद बुला लिया। सन् ७१२ ई० में निरून पर मुसलमानों का अधिकार हो गया। यह नगर देवल से ईशान दिशा में ७५ मील पर था। सेहबान नगर का भी पतन हो गया। जयसिंह ने बुधिया के राजा के यहाँ शरण ली। राजा का नाम काक था। उसके पिता का नाम कोतल था। कुम्भ नदी के तट पर उसकी राजधानी थी। युद्ध के पश्चात् इसका भी पतन हुआ। दाहिर का भतीजा बझरा तथा उसके साथी मारे गये।

कासिम का सामना करने के लिए बहमनाबाद में दाहिर ५० हजार अश्वारोहियों के साथ रावर के मैदान में डट गया। यहाँ भयंकर युद्ध हुआ। दाहिर ने युद्ध-भूमि में अचानक वीरगति प्राप्त की। राजा की मृत्यु के पश्चात् रानी कुछ दिनों तक युद्ध संचालन करती रही। सफलता की आशा न देखकर वह स्वयं सती हो गई। मुसलमानों ने रावर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दुर्ग के अन्दर ६००० हिन्दू सैनिक बकरियों की तरह मार डाले गये।

कासिम विजयोत्साह के साथ बहमनाबाद की ओर चला। यहाँ पर भी मुसलमानों की विजय हुई। लगभग २६०० सैनिनक मारे गये। कासिम ने यहाँ दाहिर की दूसरी रानी लाडी से विवाह कर लिया। दाहिर की कन्या सूर्य देवी तथा परिमल देवी खलीफा के पास तोहफे के तौर पर भेज दी गयीं।

अरोर में दाहिर के पुत्र ने मोर्चेबंदी की। कासिम ने अपनी नवविवाहिता दाहिर की द्वितीय रानी लाडी से पुत्र को समझाने के लिए कहा। रानी पुत्र के पास गयी। पुत्र ने उसे मुसलमानी धर्म तथा सतीत्व त्यागने के लिए धिक्कारा। विदा कर दिया। यहाँ घोर संग्राम हुआ। मुसलमानी फौज की विजय हुई।

मुलतान का नाम मूलस्थान था। यहाँ नरसिंह अवतार हुआ था। समृद्धिशाली नगर था। दाहिर के भतीजे ककस ने यहाँ मोर्चेबन्दी की। मुलतान का सन् ७१३ ई० में पतन हुआ। मन्दिर नष्ट किये गये। लोग मुसलमान धर्म मानने या मरने के लिए मजबूर किये गये। दुर्ग सिका पर आक्रमण किया गया। यह रावी के दक्षिण तट पर स्थित था। यहाँ सुवर्ण-प्रतिमा तथा इतना संचित धन मिला कि अरबों ने नगर का नाम सोने का शहर रख दिया। यहाँ की स्त्रियाँ गुलाम बना ली गयीं। हिन्दू योद्धा इसलाम कबूल न करने पर क्रूरतापूर्वक मार डाले गये। कासिम ने घघ्घर के समीप ओदी पर आक्रमण किया। यहाँ भी युद्ध के पश्चात् स्त्री और बच्चे गुलाम बना लिए गये। सैनिक मार डाले गये। मन्दिर नष्ट कर दिये गये। लूट कर धन एकत्रित कर लिया गया।

मुलतान विजय के पश्चात् सिन्ध घाटी में मुसलिम राज्य स्थापित हो गया। कासिम उत्तरी पंजाब की ओर बढ़ता काँगड़ा लेता कश्मीर की सीमा पर पहुँच गया। जनश्रुति है। दाहिर के भतीजे ने शरण निमित्त कश्मीर में प्रवेश किया था।

राजचूडामणिः श्रीमांश्चन्द्रापीडस्ततोऽभवत् ।
पीडितेन्दुत्विषा कीर्त्या कलेः पीडां चकार यः ॥४५॥

चन्द्रापीड[१] :

४५. तदनन्तर राजचूड़ामणि श्रीमान् चन्द्रापीड नृपति हुआ। जिसने चन्द्रकान्ति को तिरस्कृत करने वाली कीर्ति से कलि को पीड़ित किया।

कल्हण भारत तथा कश्मीर की सीमा पर हुई इतनी बड़ी घटना का न तो वर्णन करता है और न कुछ संकेत ही करता है। दाहिर का भतीजा कश्मीर आया होगा तो उसके साथ कुछ लोग भी रहे होंगे। राजवंशीय होने के कारण उसका सम्मान किया गया होगा। मालूम होता है कि ४०० वर्ष के लम्बे काल में कल्हण के समय तक इस घटना को लोग भूल गए थे। राजा प्रतापादित्य जिस वर्ष अर्थात् सन् ७१३ ई० में दिवंगत हुआ, उस समय कश्मीर की सीमा से सिन्ध तक मुसलिम आतंक स्थापित हो चुका था।

इसी राजा प्रतापादित्य के काल में चीनी पर्यटक इत्सिंग ने भारत-भ्रमण (सं० ६७५-६८५ ई०) किया था।

पादटिप्पणी :

४५. श्री दत्त चन्द्रापीड विनयादित्य का राज्याभिषेक काल कलि ३७८५ = शक ६०६ = लौ० ४६० = सन् ६८४ ई०; श्री स्तीन लौ० ३७६९ वर्ष १० मास १ दिन श्री एस पी पण्डितः सन् ६८२ ई० श्री ट्रायर सन् ६९६ ई० ११ मास; श्री कनिंघम ६८९ ई० ८ मास श्री विलसन सन् ७०१ ई० ५ मास, पीर हसन विक्रमी संवत् ७४१ तथा श्री दत्त, स्तीन, पाणेत, आदि राज्यकाल ८ वर्ष ८ मास देते हैं।

४५ (१) चन्द्रापीड : यहाँ श्लेष है। श्री स्तीन ने अपनी टिप्पणी में कल प्रोथ मेमायर्स रिलेटिफस अ-ले-असी : २ : २७५ का उल्लेख किया है। प्रतीत होता है। वह प्रथम व्यक्ति था। जिसने चन्द्रापीड़ को 'तेरन-तोलो-पि-लि' कश्मीर का राजा माना है। चीनी तंग वंश की पुरावृत्त के अनुसार सन् ७१३ ई० में चीन के सम्राट् से अरबों के विरुद्ध उसने सहायता माँगी थी (द्रष्टव्य ए० रेमुसट, नौव, मेलगेज् एसिपट १ : १९६) इन पुरावृत्तों में यह भी उल्लेख है कि लगभग सन् ७२० ई० में चीन के सम्राट् ने 'तेहैन-तो-लो-पी-ली' को राजा के पद से विभूषित किया था। इसके अनुसार चन्द्रापीड का सन् ७१९ ई० में जीवित रहना प्रमाणित होता है। कल्हण की काल गणना के अनुसार चन्द्रापीड का राज्य काल सन् ६८६-६९५ ई० के मध्य आता है। श्री कनिंघम ने अपने एनसियेण्ट ज्याग्रफी (पृष्ठ ९१) पर कर्कोट वंश के काल-निर्णय पर प्रकाश डाला है। (प्रोफेसर व्हुलर का इण्डियन ऐण्टीक्वेरी २ : १०६, तथा प्रोफेसर मुलर का इंडिया पृष्ठ ३३३ तथा श्री पाण्डुरंग पण्डित का गौड़वहो तथा रीनाड मेम्वायर पृष्ठ १८८ जिसमें उत्तर पश्चिम भारत की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला गया है, द्रष्टव्य है।)

(२) कलि : कलि का यहाँ अर्थ कलियुग है। ऋग्वेद में (१०:३९:८) यह एक ब्राह्मण के रूप में चित्रित किया गया है। अश्विनीकुमारों ने उसे तारुण्य तथा पत्नी दी थी (ऋ० १:११२ आ)। अधर्म का वंशज था। क्रोध पिता तथा हिंसा माता का यह पुत्र था। दुर्वृत्ति इसकी भगिनी थी। इस से भय पुत्र एवं मृत्यु कन्या हुई थी। कलियुग का वर्णन मार्कण्डेय ऋषि ने युधिष्ठिर को बताया था (वन० : ५० : ५६ : ७० : १८८) इसने वृषभ रूप धर्म तथा गौरूप पृथिवी को त्रस्त किया था। परीक्षित ने उसका आतंक देखकर उसके लिये द्यूत, मद्यपान, स्त्रीप्रसंग, हिंसा, सुवर्ण आदि पांच स्थान निवास हेतु निश्चित किया था। (भा० १:१७) कलि की जाति म्लेच्छ है।

एकपादाकृतिर्धर्मः समस्येवोज्झितो नृपैः ।
शुद्धश्लोककृता येन पादैः संयोजितस्त्रिभिः ॥४६॥

४६. (पूर्व) राजाओं द्वारा एक पादाकृति धर्म समस्या[1] तुल्य त्यक्त था। जिसे उसने तीन पादों से संयोजित कर शुद्ध चतुष्पाद किया।

कलियुग : सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलि चार युग माने गये हैं। यह देश जीवन का लाक्षणिक रूप है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार शयन करना कलियुग, जम्हाई लेना द्वापर, उठना त्रेता तथा चलना सतयुग है। गणितज्ञ आर्यभट्ट ने कलियुग का आरम्भ ईसा पूर्व ३१०२ वर्ष रखा है। इसकी पुष्टि रविकीर्ति के अहड़ोड़ के लेख (सन् ६३३ ई०) से दी है। परन्तु वृद्ध वर्ग, और वाराह मिहिर ने कलियुग का आरम्भ महाभारत युद्ध से ६३५ वर्ष पूर्व माना है। द्रष्टव्य : खण्ड १:४:१८, पृ०८० ।

हसन लिखता है—'राजा चन्द्रापीड कि उसका असली नाम वज्रादित्य था विक्रमी ६४१ में बाप की मसनद पर बैठा। अदल व इन्साफ के साथ मख़लूक खुदा की दरद को पहचान कर मुराद पर पहुँचाया। एक दिन एक बरहमन राह में मक़तूल पड़ा था। उसकी बीबी ने राजा के सामने इस्तगाशा किया। बावजूद तलाश उसका क़ातिल न मिल सका। इन्शाफ पसन्द राजा ने तीन दिन और तीन रात नींद खुराक के बगैर सर किये।

'चौथे दिन ख्वाब में रुहानियों में से एक शख्स को देखा कि वह फरमाता है कि अपने बुतख़ाना के संगोन चबूतरह पर पिसा हुआ आटा चलनी के ज़रिया मानिक बर्फ के छाने और खास व आम से तमाम लोगों को उस चबूतरह पर गुज़ार कर हरएक आदमी के पाँवों के निशान देखने चाहिए। जिस आदमी के पाँवों की दो नकश आटे के बिस्तर पर साबित हो जाए उसी को बरहमन का क़ातिल समझना। उसकी वजह यह है कि मक़तूल की रूह हमेशा क़ातिल के दामन में हाथ डालकर उसके पीछे रहती है।

'जब राजा को यह विशारत हुई तो दूसरे दिन बुतखाना के सगीन चबूतरा पर आटे छलनी के ज़रिया छानकर शहर के तमाम मर्द और औरतों को जमा किया और हर एक को अलग-अलग बिछे हुए आटे पर गुज़ारा। जिस वक्त क़ातिल गुज़रा उसके पाँवों के दो नक़श उसकी सतह पर साबित हो गये। उसको पकड़ कर बरहमन के क़सास में सूली पर लटका दिया। आखिरकार बरहमन के क़तल का इक़रार किया।

'नीज़ बयान करते हैं कि राजा मज़कूर ने तिरभुवन स्वामी की ताज़ीम के लिए बुतखाना की बुनियाद डाली। और उसकी बुनियाद के मुख्य करने में कोशवाक़ हो गयी। इस मन्दिर के मुतसिल एक भंगी का घर भी था। नेक जात राजा ने मन्दिर की कमी को दूर करने के लिए मन्दिर की सतह ज़मीन पर अशरफियाँ बिछाकर उससे जमीन के टुकड़े की दरख्वास्त की। चमड़े सीने वाले ने अपनी कम हिम्मती के पेश नज़र मंजूर न किया। जितनी भी राजा ने आजिज़ी और नरमी से इसरार किया न सुना। जब इसरार हद से गुजर गया तो कड़े सीने वाले ने कहा अगर तू चाहता है कि इस ज़मीन के टुकड़े को मुझसे ताकत या पैसा से ले ले तो हरगिज़ नहीं ले सकता। अलबत्ता अगर मेरे घर पर नंगे पाँवों आये और इस टुकड़े को मुझसे बतौर खैरात तलब करें तो यकीनन् मैं दूंगा। राजा फौरन तख्त से उतरा और मोची के मकान में नंगे पाँवों तशरीफ ले गया। पारहदोज़ ने ज़मीन का टुकड़ा बतौर खैरात बिला एवज़ उन्हें बख्श दिया। बस राजा ने मन्दिर की इमारत मुकम्मल की। आठ साल और आठ माह सल्तनत में गुजार कर एक जादवान को चला गया। (पृष्ठः ७६-७७)

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०३ वाँ श्लोक है।

४६ (१) समस्या : इस श्लोक का भावार्थ

यं क्षमाविक्रममुखाः परस्परविरोधिनः ।
सिषेविरे गुणास्तुल्यं दिव्योद्यानमिवर्तवः ॥४७॥

४७. दिव्य[1] उद्यान को ऋतुओं के समान क्षमा, विक्रम, आदि परस्पर विरोधी गुण समान भाव से उस नृप को सेवित किये ।

स्थाने स्थाने यदीया श्रीस्तुल्यमाप्याययन्त्यभूत् ।
द्रुमानुद्यानकुल्येव निखिलाननुजीविनः ॥४८॥

४८. जैसे उद्यानकुल्या द्रुमों को तृप्त करती है, उसी प्रकार स्थान स्थान पर, जिसकी सम्पति समानभाव से निखिल अनुजीवी वर्ग को संतृप्त करती थी ।

दोषांस्त्यक्त्वाऽन्यभूपेषु यं शुद्धा श्रीरशिश्रियत् ।
मार्गाद्रिष्वोघकालुष्यं क्षिप्त्वा सिन्धुरिवार्णवम् ॥४९॥

४९. जिस प्रकार नदी प्रवाह कालुष्य को मार्ग गत पर्वतों पर त्याग कर, सिन्धु का आश्रय ग्रहण करती है, उसी प्रकार शुद्ध श्री ने दोषों को अन्य नृपों में त्याग कर, जिसका आश्रय ग्रहण किया ।[1]

कार्यज्ञो यो न तच्चक्रे यत्फलेऽभूद्विविग्नधीः ।
परं समाचरन्स्तुत्यं स्तूयमानस्त्रपां दधे ॥५०॥

५० कार्यज्ञ नृपति ऐसा कार्य नहीं करता था, जिसका परिणाम उद्विग्नकारक होता, अपितु स्तुत्य कार्य करते हुए, स्तुति प्राप्त करने पर, लज्जित होता था ।

होगा—"पूर्व नृपतिगण समस्यासदृश एक चरण वाले धर्म का परित्याग कर दिये थे । किन्तु भूपति चन्द्रापीड सुकवि तुल्य दूसरे पादत्रय का योजन कर, धर्म को सम्पूर्ण पादयुक्त किया । कृत युग में प्रक्रिया-पाद, त्रेता में औसंग पाद, द्वापर में उपोद्घात पाद तथा कलयुग में संहार पाद होता है ।" मनु के अनुसार कलियुग में केवल एक पाद धर्म रहता है । (मनुस्मृति १ : ८१ : ८२) ।

पादटिप्पणी

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०४वाँ श्लोक है ।

४७ श्लोक का भावार्थ होगा—"जिस प्रकार नन्दन कानन में सब ऋतुएँ युगपद् आविर्भूत होती हैं, उसी प्रकार क्षमा एवं पराक्रम प्रमुख विरोधी गुण समूह तुल्यभाव से उसका आश्रय ग्रहण करते थे ।

(१) दिव्य उद्यान—नन्दन वन है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८ में 'द्रुमा' का पाठभेद 'श्रमा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०५ वाँ श्लोक है ।

४९ (१) श्लोक का भावार्थ होगा—"नदी जिस प्रकार मार्ग स्थित पर्वतमालाओं में प्रवाह मालिन्य का परित्याग करके सागर में मिलती है, उसी प्रकार लक्ष्मी ने अपनी दोषराशि को पूर्व राजाओं को प्रदान कर शुद्धभाव से उसका आश्रय ग्रहण किया ।"

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५० में 'न तच्चक्रे' का 'नतश्चक्रे' 'यत्फले' का 'यत्फली' 'विविग्न' का 'विविघ्न', 'विविग्र' का 'विविज्ञ' तथा 'चरन्स्तुत्यं' का पाठभेद 'चरत्स्तुत्यं' मिलता है ।

व्यनीयत न योऽमात्यैर्विनयं तान्स्वशिक्षयत् ।
वज्रं न भिद्यते कैश्चिच्छिनत्त्यन्यान्मणींस्तु तत् ॥५१॥

५१. जिसे मन्त्रियों ने विनय नहीं सिखाया, अपितु उसने ही उन्हें सिखाया। ठीक है, किन्हीं मणियों के द्वारा वज्र का भेदन नहीं होता, बल्कि वही अन्य मणियों का भेदन करता है।

यस्याधर्मभयादासीत्संत्याज्यो धर्मसंशये ।
निजोऽपि पक्षः कुलिशत्रासादिव गरुत्मतः ॥५२॥

५२. कुलिश त्रास[१] से गरुड़[२] तुल्य धर्म संशय उपस्थित होने पर, वह राजा धर्मभय से, निज पक्ष का भी त्याग कर देता था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१ में 'मात्यैः' का 'मान्यैः' तथा 'च्छिनत्त्य' का पाठभेद 'निभनत्त्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०६ वाँ श्लोक है।

५१ (१) श्लोक का भावार्थ होगा—'वज्र जिस प्रकार अन्य द्रव्य द्वारा नहीं बिद्ध होता प्रत्युत वह मणि-समूह का भेदन करता है; उसी प्रकार राजा मंत्री-गण के निकट शिक्षा नहीं ग्रहण करता था, बल्कि उन्हें उपदेश देता था।'

इन्द्र के वज्र का उल्लेख मिलता है। वह इन्द्र का अस्त्र था। विश्वकर्मा ने उसे दधीचि की हड्डियों से निर्माण किया था (वन. १०० : २४)

यहाँ पर वज्र का अर्थ हीरा है। हीरा का स्वतः भेदन नहीं होता। बल्कि वही मणियों का भेदन करता है। माला बनाने के लिए मणियों को छेदने के हेतु हीरे की आवश्यकता होती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२ में 'यस्याध' का 'यस्य घ' तथा 'गुरुत्मतः का पाठभेद 'गुरुत्मता' एवं 'गरुत्मत्तां' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५२ (१) **कुलिश त्रास :** गरुड़ बिजली की गड़गड़ाहट से, जिसे इन्द्र के वज्र की ध्वनि कहते हैं भयभीत हो जाता है।

(२) **गरुड़ :** दक्षिण पूर्व भारत में गरुड़ की मूर्तियाँ अनेक स्थानों पर मिली हैं। कम्बुज (कम्बोडिया) में प्राप्त गरुड़मूर्ति अपनी कला के लिए प्रसिद्ध है। मूर्ति में आकृति पुरुष विग्रह वाले पक्षी के समान प्रदर्शित की गयी है। गरुड़ का स्थान वैकुंठ है। पक्षियों के राजा हैं। नागों से उनका सर्वदा विरोध रहता है।

वेदों में एक शक्तिशाली पक्षी श्येन का उल्लेख आता है। एक मत है कि वैदिक कालीन गरुड़ का उप नाम है। संस्कृत साहित्य में गरुड़ का उप-नाम है। संस्कृत साहित्य में गरुड़ का अर्थ बाज पक्षी भी दिया गया है (ऋग् १० : १४४, ४) श्येन तथा सुपर्ण भिन्न थे। (ऋ. २ : ४२ : २) स्वर्ग से श्येन पृथ्वी पर सोमरस लाये थे। (ऋ ३ : ४३ : ७ : ४ : २६ : ६ : ८ : ९ : १०० : ८) इसी प्रकार पुराणों में कथा है कि गरुड स्वर्ग से अमृत लाये थे।

गरुड़ कश्यप पिता एवं विनता माता के पुत्र हैं अरुण का गरुड़ कनिष्ठ भ्राता है। विष्णु भगवान् का सेवक तथा वाहन गरुड़ हो गया था।

राजा सगर से गरुड़ की बहन सुमति का विवाह हुआ था। (वा० ३८ : ४) गरुड़ का भवन लोहित नगर के सालमली वृक्ष के नीचे स्थित था। विश्वकर्मा ने स्वयं उसका निर्माण कराया था (किष्कि० ४० : ३७ : ३८)। सम्पाति गरुड़ का वंशज था। (किष्कि० ५८ : २६)। केवल तीन प्राणी समुद्र को नाघ सकते थे—हनुमान गरुड़ तथा मरुत्।

न्याय्यं दर्शयता वर्त्म तेन राज्ञा प्रवर्तिताः ।
स्थितयो वीतमन्देहा भास्वतेव दिनक्रियाः ॥५३॥

५३. न्याय पथ प्रशस्त करते राजा ने, मन्देह[1] रहित सूर्य के समान दैनिक क्रियाओं को सुनिश्चित रूप से प्रवर्तित किया।

नियन्त्रिता यद्भणितिस्तद्गुणोदीरणादियम् ।
अतिप्रसङ्गभङ्गात्तन्नेयत्तावाप्तितः पुनः ॥५४॥

५४. उसकी गुणमयी यह कथा अति प्रसंगभय के कारण नियन्त्रित कर दी है न कि उसके इतने ही गुण प्राप्त हैं।

(सु० ५६ : ९) राम से इन्होंने कहा था–'सरलता ही बल है।' (सु० : ५० : ४५ : ६०) गरुड़ का निवास छठवें अन्तरिक्ष में है। (उ० २३)

अमृत प्राप्ति के लिये आया जानकर यक्ष-गन्धर्व तथा देवताओं ने गरुड़ से युद्ध किया। गरुड़ उस युद्ध में जीत गया। इन्द्र ने गरुड़ पर वज्र-प्रहार किया। वज्र का कोई प्रभाव नहीं हुआ। गरुड़ गुफा में रखे अमृत को ओर अग्रसर हुआ। गुफा के चारों ओर अग्नि-ज्वालाओं की प्राचीर थी। सुदर्शन चक्र गुफा की रक्षा कर रहा था। गरुड़ अति सूक्ष्म रूप धारण कर चक्र के भीतर से निकल गया। अमृत के दोनों पार्श्वों में दो नाग रक्षा कर रहे थे नागों के समीपस्थ आता प्राणी उनके दृष्टिपात मात्र से भस्म हो जाता था। गरुड़ ने उनकी आँखों में धूल झोंक दी। वे देख न सके। गरुड़ अमृतघट लेकर बाहर निकले। भगवान् विष्णु से उसकी भेंट हो गयी। अमृत कुम्भ हाथ में होते हुए भी गरुड़ ने एक बूँद भो अमृत का पान नहीं किया। विष्णु ने वर माँगने के लिये कहा। गरुड़ ने दो वर प्राप्त किये। उसका आसन ऊँचा एवं बिन अमृत पान किये भी अमर रहे। यही कारण है कि गरुड़ का आसन रथ पर लगी ध्वजा पर रहता है। भगवान् रथ पर बैठते हैं और गरुड़ रथ के ऊपर रहता है।

अन्य देवी-देवताओं के वाहनों का स्थान देवी एवं देवताओं के अधिष्ठान से कुछ नीचे रहता है। इसी परम्परा के कारण विष्णु-मन्दिरों में गरुड़ मूर्ति ऊँचे स्तम्भ पर बैठायी जाती है। गरुड़ध्वज को विष्णु-ध्वज भी कहते हैं। इस कथा का मूल ऋग्वेद में है। ब्राह्मण साहित्य में यह कथा विस्तार के साथ दी गयी है। वह सौपर्ण, काद्रेय आख्यान नाम से प्रसिद्ध है। महाभारत आदि पर्व में सौपर्णाख्यान अधिक विस्तार के साथ दिया गया है। उनकी गति छन्दयुक्त कही गयी हैं। भागवत में गजेन्द्रमोक्ष प्रसङ्ग में उनको छन्दोमय गरुड़ कहा गया है। गरुड़ प्रकाश एवं नाग तम के देवता माने गये हैं। गरुड़ एवं नाग संघर्ष का दृश्य मथुरा में कुषाण काल की एक पाषाण-कलाकृति में मिला है।

गरुड़ के ६ पुत्र-सुमुख, सुनामन्, सुनेत्र, सुवर्चस, सुरुचि तथा सुबल थे। (उद्या० ९९ : २—३) गरुड़ पुराण अपने पिता को सुनाया था। इनके नाम से गारुडोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं मन्त्रात्मक) भी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३ में 'वीतमन्देहा' का पाठभेद 'वीतसन्देहा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५३ (१) मन्देह् : एक राक्षस वर्ग है जिनके विषय में कथा है कि उदय होते सूर्य का उदय पर्वत पर मार्गविरोध कर देते थे। वे लोहित सागर में निवास करते थे। प्रातः काल ऊर्ध्वमुख होकर सूर्य से संघर्ष करने लगते थे। सूर्यमण्डल के ताप से

तस्य त्रिभुवनस्वामिप्रासादारम्भकर्मणि ।
चर्मकृत्कोऽपि न प्रादात्कुटीं क्षेत्रोपयोगिनीम् ॥५५॥

चमकार और राजा :

५५. जब कि उसने त्रिभुवन स्वामी[1] मन्दिर का निर्माण प्रारम्भ किया तो काइ चर्मकृत (चर्मकार) उसे क्षेत्रोपयोगी अपनी कुटी नहीं दिया ।

शश्वत्प्रतिश्रुतार्थानां नवकर्माधिकारिणाम् ।
नैसर्गिकाग्रहग्रस्तः सूत्रपातं न चक्षमे ॥५६॥

५६. नवीन कर्माधिकारियों के समक्ष देने की प्रतिज्ञा करके भी, (क्षेत्र को) स्वाभाविक आग्रह के कारण उसने उन्हें सूत्रपात नहीं करने दिया ।

विज्ञापितोऽथ तैरेत्य तमर्थं पृथिवीपतिः ।
तानेव सागसो मेने चर्मकारं न तं पुनः ॥ ५७ ॥

५७. इसे उन लोगों ने (राजा को) विज्ञापित किया । राजा ने उन्हीं लोगों को दोषी ठहराया, न कि उस चर्मकार को ।

सन्तप्त एवं ब्रह्म तेज से निहत हो समुद्र के जल में गिर पडते थे । वहां से पुनर्जीवन प्राप्त कर पर्वत-शिखरों पर लौट जाते थे । यह क्रम निरन्तर उनका चलता रहता था । (किष्कि० :४०:४१; विष्णु० : २ : ४, १५)

पादटिप्पणी :

५५ (१) **त्रिभुवन स्वामी :** इस मन्दिर के स्थान का पता नहीं चलता । कल्हण ने मन्दिर का पुनः उल्लेख (रा० ४ : ७८ तथा ९९ में) किया है । अंतिम उल्लेख (८:८०) राजा उच्चल के प्रसंग में आया है । चमार अस्पृश्य समझे जाते थे ।

(२) **चर्मकृत् :** श्लोक ५७ में 'चर्मकार' तथा श्लोक ६१ मे 'पादूकृत्' कहा गया है । एक ही शब्द चर्मकृत्, चर्मकार, चमार जाति के उपनाम हैं । कल्हण ने (रा. ४।५७) में चर्मकार शब्द का प्रयोग इसी के लिए किया है । कल्हण ने (रा० ४।७६ में) इसी चर्मकार से मयाऽस्पृश्येन वोक्षितम् कहलवा कर स्पष्ट कर दिया है ।

राजा चन्द्रपीड का इस मन्दिर में स्वयं प्रायोवेशन करने के प्रसंग में कल्हण उल्लेख (रा :४ ९९) करता है । राजा उच्चल (सन् १०९१-१११ ई०) के समय तक यह मन्दिर वर्तमान था । राजा हर्ष (सन् १०८९-११०१ ई०) मन्दिर की शुकावली उठा ले गया था । राजा उच्चल ने यथावत् शुकावली पुनः कायम कर दी । श्री आनन्द कौल का मत है कि झेलम के छठवें पुल के पश्चात् वाम तट पर यह मन्दिर था । इसके पास एक ठक बाबा साहब की मजार है ।

संस्कृत शब्द चर्मकार, चर्मकृत्, चर्मार, चर्मर है । मनुस्मृति १० : ३६ में उल्लेख मिलता है कि वैदेह स्त्री एवं निषाद पुरुष से इस जाति की उत्पत्ति हुई है । निषाद स्त्री एवं वैदेह पुरुष से भो इनकी उत्पत्ति बतायी जाती है । विलियम कुक का मत है कि लोक-कथाओं के अनुसार चाम नामक ऋषि से इस जाति की उत्पत्ति हुई है । शेरिंग का मत है कि 'लोना' स्त्री से इनकी उत्पत्ति हुई है ।

महाभारत में चर्मण्डल एक जनपद के रूप में वर्णित किया गया है (भीष्म : ८९ : ४०)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५६ में 'नैसर्गिका ग्रह' का 'नैसर्गिक ग्रह' तथा 'सूत्र' का पाठभेद 'सूत्रो' मिलता है ।

सोऽभ्यधात्तान् धिगेतेषामप्रक्षापूर्वकारिताम् ।
प्रागेव यैरपृष्ट्वा तं प्रविष्टं नवकर्मणि ॥ ५८ ॥

५८. (राजा ने) उनसे कहा–'बिना सहमति प्राप्त किये, उनके इस कार्य को धिक्कार है। जिन्होंने पहले ही बिना पूछे नवीन कार्य आरम्भ किया।

नियम्यतां विनिर्माणं यद्वाऽन्यत्र विधीयताम् ।
परभूम्यपहारेण सुकृतं कः कलङ्कयेत् ॥५९॥

५९. 'निर्माण कार्य रोक दो, अन्यथा अन्यत्र करो। दूसरों की भूमि अपहरण कर, कौन अपना सुकृत कलंकित करेगा।

ये द्रष्टारः सदसतां ते धर्मविगुणाः क्रियाः ।
वयमेव विदध्मश्चेद्यातु न्याय्येन कोऽध्वना ॥६०॥

६०. 'हम लोग, जो कि सद् असद् द्रष्टा हैं, वे ही यदि धर्म विरुद्ध कार्य करें, तो कौन न्याय पथ का अनुसरण करेगा ?'

इत्युक्तवति भूपाले प्रेषितो मन्त्रिपर्षदा ।
पार्श्वात्पादूकृतस्तस्य दूतः प्राप्तो व्यजिज्ञपत् ॥६१॥

६१. राजा के इस प्रकार कहने पर मन्त्रिपरिषद्[1] द्वारा पादूकृत (चर्मकार) के पार्श्व (पास) प्रेषित दूत वहां से आकर विज्ञापित किया –

इच्छति स्वामिनं द्रष्टुं स च ब्रूते न चेन्मम ।
युक्तः प्रवेश आस्थाने बाह्याल्यवसरेऽस्तु तत् ॥

६२. 'वह स्वामी का दर्शन करना चाहता है और कहता है-' 'यदि आस्थान[1] में मेरा प्रवेश युक्त न हो तो, बाह्यालि[1] समय में राजा दर्शन दें।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६० में 'न्याय्येन' का 'न्यायेन' तथा 'कोऽध्वना' का पाठभेद 'कोऽधुना' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०७वाँ श्लोक है।

पादटिप्पणी :

१ (१) मन्त्रि परिषद : द्रष्टव्य है : खण्ड १: क० ३३।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२ में 'बाह्याल्य' का पाठभेद 'बाह्याल्या मिलता है।

पादटिप्पणी :

६२ (१) आस्थान : दरबार, राजसभा, दीवान खास। आस्थान मण्डप का अर्थ सभा भवन है। (ई. आई: ४)

(२) बाह्यालि : प्रतीत होता है चर्मकार किंवा वाटल उस समय अस्पृश्य माने जाते थे। उनका प्रवेश सभा-भवन अर्थात् आस्थान में वर्जित था। प्रतीत होता है। यह दरबार का बाहरी भाग था। वे लोग जो आस्थान में नहीं आ सकते थे, उनका प्रवेश होता था। राजा उनकी बात सुनता था। मुगल दरबार के दीवान खास तथा दीवाने आम को दृष्टि में रखते हुए यह स्थान दीवान आम तुल्य था। राजप्रासाद के बाहरी कक्ष को बाह्याली कहते थे। अभिलेखों में बाह्याली का अर्थ नगर का सीमान्त परवर्ती स्थान दिया गया है। (कारपस इन्शक्रिप शोनम इण्डिकेरम खण्ड: २:भाग १:पृष्ठ: १८१,१८५)

अन्येद्युरथ भूपेन स बहिर्दत्तदर्शनः ।
पुण्यकर्मणि नो विघ्नः किं त्वमेवेत्यपृच्छ्यत ।।६३।।

६३. दूसरे दिन भूपति ने बाहर-दर्शन देकर पूछा-'मेरे पुण्य कार्य में तुम क्यों विघ्न बन रहे हो ?

प्रतिभाति गृहं तच्चेद्रम्यं तव ततोऽधिकम् ।
तदर्थ्यतां धनं वाऽपि भूर्येवं चाभ्यधीयत ।।६४।।

६४. 'यदि तुम्हें वह गृह प्रिय है, तो उससे अधिक रम्य प्रदान किया जाय अथवा प्रचुर धन ग्रहण करो—' इस प्रकार राजा ने उससे कहा ।

तूष्णीं स्थितं ततो भूपं चर्मकारो व्यजिज्ञपत् ।
दन्तांशुसूत्रैस्तत्सत्त्वमानं ज्ञातुमिवोद्यतः।।६५।।

६५. तदनन्तर तूष्णीभूत भूप से दन्तकिरण रूपी सूत्रों द्वारा उसका सत्त्व प्रमाण जानने को ही, मानों उद्यत चर्मकार[१] बोला--

राजन् विज्ञाप्यते किंचिद्यदस्माभिर्यथाशयम् ।
न स्थेयमवलिप्तेन तत्र द्रष्ट्रा सता त्वया ।।६६।।

६६. 'राजन् ! मैं कुछ अपना अभिप्राय आपसे निवेदित करता हूँ। उसे जानकर आप गर्वयुक्त न होवें ।

नाहमूनः शुनो नास्ति काकुत्स्थात् पार्थिवः पृथुः ।
क्षुभ्यन्तीवाद्य तत्सभ्याः संलापेऽस्मिन्किमावयोः ।।६७।।

६७. 'मैं कुक्कुर (श्वान) से कम नहीं हूँ। और आप काकुत्स्थ[१] से बड़े नहीं है । तथापि हम दोनों के परस्पर संलाप से आज सभ्य[२] (दरबार) क्यों क्षुब्ध है ?

श्लोक संख्या ७:३८५, ३९२, ९२६, ९८६ तथा ८:४६ द्रष्टव्य है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६३ में 'पृच्छ्यत' का पाठभेद 'पृच्छत' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६५(१) चर्मकार : कश्मीर में बाटल कहे जाते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६६ में 'विज्ञाप्यते' का विज्ञप्यसे, 'किंञ्चि' का 'कञ्चि' तथा 'यथाशयम्' 'का पाठभेद 'यथायथम्' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६७ में 'नास्ति' का पाठभेद 'नासि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६७ (१) काकुत्स्थ—ककुत्स्थ–भगीरथ के पुत्र तथा रघु के पिता का नाम है । ककुत्स्थ राजा के वंशज को काकुत्स्थ कहते हैं । भगवान् रामचन्द्र इसी वंश के थे ।

(२) सभ्य—राजसभा के सभासदों को सभ्य कहा जाता था । द्रष्टव्य : (खण्ड १ : ५०४) चर्मकार ने खुशामदी दरबारियों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है । सभ्य किंवा दरबारियों का पेशा होता है

जातस्य जन्तोः संसारे भङ्गुरः कायकञ्चुकः ।
अहंताममताख्याभ्यां शङ्कुभ्यामेव बध्यते ॥६८॥

६८. 'संसार में उत्पन्न प्राणी का भंगुर काय-कचुक अहं एवं ममता नामक दो शंकुओं द्वारा आवद्ध है ।

कङ्कणाङ्गदहारादिशोभिनां भवतां यथा ।
निष्किंचनानामस्माकं स्वदेहेऽहंक्रिया तथा ॥६९॥

६९. 'कंकण, अंगद हारादि से सुशोभित आपके शरीर में जिस प्रकार अहंभाव है, उसी प्रकार निष्किंचन[1] मेरे में भी है ।

राजा की खुशामद करना। यदि कोई राजा की बातों का उत्तर-प्रत्युत्तर देता है अथवा तर्क करता है, तो उन्हें कृत्रिम क्रोध आता है । वे अपनी कृत्रिम क्षुब्धता इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि राजा समझ जाय कि वे उनके सबसे बड़े सहानुभूति और उसकी प्रतिष्ठा तथा मर्यादा की विशेष चिन्ता रखनेवाले हैं। उसमें व्यवधान होते ही वे क्षुब्ध हो जाते हैं।

पुराणों के अनुसार सभ्य न्याय सभा के सदस्य होते थे । सभासद विशेषतया ब्राह्मण होते थे। क्षत्रिय तथा वैश्यों का होना वर्जित नहो था । शूद्र न्यायसभा के सदस्य नहीं हो सकते थे । (मत्स्य० : २१४:२१; विष्णु० २:२४:२५)

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०८वाँ श्लोक है।

६८ (१) **काय-कंचुक :** सर्प प्रति वर्ष केंचुल बदलता है । परन्तु उसकी आत्मा एवं पंजर पूर्ववत् रहता है। यहाँ कल्हण ने मनुष्य के शरीर की उपमा भंगुर काय-कंचुक से दी है यह शरीर भी सर्प के कंचुक अर्थात् केंचुल तुल्य है । शरीर बदल जाता है। परन्तु आत्मा यथावत् रहती है । गीता के निम्नलिखित श्लोक के भाव को प्रकट करता है :

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि,
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानिदेही ।

किन्तु यह क्षणभंगुर काय-कंचुक संसार में आबद्ध रहता है । उसे बाँध कर रखने वाले दो शंकु अर्थात् कीले हैं—अहंकार एवं ममता । कल्हण ने यहाँ भारतीय दर्शन की ओर संकेत किया है । अहंकार के ही कारण दृश्यमान जगत् का बोध होता है । अहंकार के लोप होते ही द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन तीनों का लोप हो जाता है । केवल निर्मल आत्मा रह जाती है । इस जगत् में मानव, मोह अर्थात् ममता के कारण आबद्ध है । मोह किंवा ममता बन्धन है । इस बन्धन के टूटने पर मुक्ति मिलती है । इस जगत् में प्राणी अहंकार एवं ममता नामक दो शंकुओं से जकड़ दिया गया है । बाँध दिया गया है । उनके शिथिल होते ही संसार बन्धन शिथिल हो जाता है । प्राणी मुक्त होता है ।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १०९ वाँ श्लोक है।

६९ (१) **निष्किंचन :** चमत्कार मर्मस्पर्शी भाषा में राजा से अपनी तुलना करता है । दोनों शरीर में जाति, दरिद्र एवं सामाजिक विषमता के कारण वास्तव में भेद नहीं है । चर्मकार राजा पर व्यंग्य करता है । आभूषण मनुष्य के शरीर पर धन एवं वैभव के अहंकार का प्रदर्शन मात्र है । उन्हें धारण करने वाला प्राणी उनके द्वारा अपने अभिमान को प्रकट करता है । अहंकार को प्रकट करता है । परन्तु गरीब से गरीब के शरीर में भी अहंकार निवास करता है । अहंकार धनी एवं गरीब किसी एक के ही शरीर में नहीं रहता । वह प्राणी मात्र के शरीर में रहता है । अतएव प्राणी मात्र अहंकार के झूले में झूल रहे हैं । उनमें अहंकार वेदभाव नहीं करता ।

देवस्य राजधान्येषा यादृशी सौधहासिनी।
कुटी घटमुखानद्धतमोरिस्तादृशी मम ॥७०॥

७०. 'आपकी सौधहासिनी राजधानी जिस प्रकार है, उसी प्रकार घटमुख गवाक्ष[1] मयी मेरी कुटी[2] भी है।

आ जन्मनः साक्षिणीयं मातेव सुखदुःखयोः।
मठिका लोठ्यमानाऽद्य नेक्षितुं क्षम्यते मया ॥७१॥

७१. जन्म से लेकर सुख-दुख की माता तुल्य साक्षी, इस मठिका[1] को लुण्ठित (नष्ट) होते देखने में मैं असमर्थ हूँ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७० में 'सौध' का पाठभेद 'सौम्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ११० वाँ श्लोक है।

७०(१) **घटमुख गवाक्ष :** चर्मकार किस स्थिति में रहते थे, उसका जीता-जागता चित्र कल्हण ने खींचा है। कश्मीर में वे बाटल कहे जाते हैं। वे लोग जिप्सियों के समान जीवन व्यतीत करते हैं। उनका मकान मिट्टी का होता है। उसमें बड़े बरतनों जैसे घट-मुख आदि दिवाल में लगा दिये जाते हैं, जो झरोखे का कार्य करते हैं। उससे हवा आती-जाती है। खाना बनाने का धुआँ उससे निकलता है। चर्मकार इसी घटमुख गवाक्ष की ओर संकेत करता है।

चर्मकार समाज में निम्नस्तर, अस्पृश्य एवं हीन दशा का व्यक्ति माना जाता है। राजा उससे बाह्याली में मिला था। यह राजा को इस भेद-भावना पर व्यंग करता है। अन्य लोग राजा से प्रासाद में मिल सकते थे। उनको प्रवेश राज प्रासाद में होता था। परन्तु चर्मकार उससे बहिष्कृत था। चर्मकार से उच्च श्रेणी के लोग चर्मकार पर अपने इस विशेष अधिकार के कारण गर्व करते थे। चर्मकार उसी भेद का उत्तर देता व्यंग करता है कि एक प्राणी सौध में रहता था। दूसरा उसके जैसी कुटी में रहता था। परन्तु सौध एवं कुटी में रहने वाला मूलतः प्राणी मात्र है। दोनों के दो स्थानों पर रहने के कारण प्राणी के शरीर, आत्मा, चिन्तन, अहंकार, ममता की भावना में भेद नहीं उत्पन्न होता। दोनों प्राणी, जागरण, सुख, निद्रा, शोक, आदि का अनुभव समान रूप से विभिन्न परिस्थितियों में रहने पर भी करते हैं। उनसे अछूते नहीं रहते।

(२) **कुटी :** कश्मीर के चर्मकार अर्थात् बाटल के निवासस्थान का कल्हण यहाँ सजीव वर्णन करता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १११वाँ श्लोक है।

७१ (१) **मठिका :** चर्मकार विनम्र भाषा में अपनी कुटिया न देने का कारण उपस्थित करता है। वह अपनी कुटी की तुलना माता से करता है। माता गर्भ में जिस प्रकार उसका पालन करती थी, रक्षा करती थी, उसी प्रकार कुटी इस जगत् में उसकी रक्षा, तुषारपात, गर्मी एवं वर्षा से रक्षा करती थी। वह उसके जीवन के सुख-दुख एवं अनेकानेक विषम घटनाओं की साक्षी थी। राजा के सुख-दुख आदि के साथी उसके पार्षद थे, राज्य था, राजभवन था। राजा उनका त्याग नहीं कर सकता था। यदि अपने कार्यों के साक्षी राज्य का राजा त्याग नहीं कर सकता था तो चर्मकार अपने कार्यों की साक्षी कुटी का कैसे त्याग कर

नृणां यद्वेश्महरणे दुःखमाख्यातुमीश्वरः ।
तद्विमानच्युतोऽमर्त्यो राज्यभ्रष्टोऽथ पार्थिवः ॥७२॥

७२. 'मनुष्यों के गृह अपहरण का दुःख कहने में विमान[1] च्युत अमर्त्य एवं राज्य भ्रष्ट पार्थिव ही समर्थ हो सकते हैं।

एवमप्येत्य मद्वेश्म सा चेद्देवेन याच्यते ।
सदाचारानुरोधेन दातुं तदुचितं मम ॥७३॥

७३. 'इस पर भी यदि आप आकर, मेरे गृह की याचना[1] करें, तो सदाचार के अनुरोध से, मुझे प्रदान करना ही उचित होगा।'

सकता था! चर्मकार ने अकाट्य तर्क उपस्थित किया है।

यदि राजा अपने राज्य एवं राजभवन को नष्ट होता नहीं देख सकता, तो चर्मकार कैसे अपनी कुटी का नष्ट होना देखेगा। राजा को जिस प्रकार अपने राज्य, राजप्रासाद, राजभवन की ममता है, अहंकार है, उसी प्रकार चर्मकार को भी अपनी कुटी का है। कल्हण ने माता की उपमा कुटी से देकर अपनी विचक्षण बुद्धि का परिचय दिया है। माता पुत्र का साथ किसी भी परिस्थिति में नहीं त्यागती। पुत्र माता के मातृ-ऋण से कभी उऋण ही नहीं होता। उसी प्रकार माता स्वरूप कुटी का त्यागना कैसे उचित किंवा संगत कहा जायेगा?

पादटिप्पणी :

७२ (१) विमान : कल्हण ने यहाँ अपूर्व उपमा दी है। यह उपमा जैसे आधुनिकतम लगती है। कल्हण के समय वायुयान नहीं था। देवता वायुयान पर गमन करते हैं। विमान से गिरा प्राणी जीवन से अवश्य रहित हो जाता है। विमानारूढ़ देवता विमान से च्युत होने पर, अपना देवत्व खो देता है। मर्त्य हो जाता है। सर्वस्व खोकर घोर विपन्नावस्था में पड़ जाता है। उस दुख की सीमा नहीं रहती। उसी प्रकार राज्यच्युत राजा अपना सर्वस्व खो देता है। राज्यप्रासाद, सुख, प्रसाधन सभी उसका साथ त्याग देते हैं। मुखापेक्षी पार्षद आँख फेर लेते हैं। पदच्युत राजा का कुछ अपना नहीं रह जाता। उसका सब कुछ अपहरण हो जाता है। देवता एवं राजा को देवत्व एवं राजत्व हरण का जो दुःख होता है, वही दुख गृह अपहरण के कारण प्राणियों को होता है। गृह हरण के पश्चात् प्राणी बिना घरबार के हो जाता है। उसका कहीं ठिकाना नहीं रहता। उसके गृह अपहरण के दुःख की कल्पना इस प्रकार राज्य अपहृत राजा एवं विमानच्युत देवता ही कर सकता है। क्योंकि दोनों अपनी वस्तुओं के अपहरण के कारण अपना आकर्षण एवं शक्ति खो देते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७३ में 'मप्येत्य' का 'मुपेत्य', 'सा' का 'मां' 'स' तथा 'द्देवेन' का पाठभेद 'देवन' मिलता है।

पादटिप्पणी :

७३ (१) याचना : कल्हण यहाँ पर परोक्षरूप से राजा बलि एवं भगवान् वामन की घटना की पुनरावृत्ति चर्मकार एवं राजा से करवाना चाहता है। असुर गुरु शुक्राचार्य के मना करने पर भी, राजा बलि ने भगवान् की याचना पर पृथ्वी का दान गुरु आज्ञा का विरोध करने पर भी किया था। राजा बड़ा था। सवर्ण था। अतएव वह भगवान् स्वरूप याचक था। चर्मकार अस्पृश्य था। उसे असुर राजा बलि स्वरूप समझ, कल्हण ने इस श्लोक में यही भाव व्यंजित किया है। माँगने पर व्यक्ति

इति तेनोत्तरे दत्ते भूभृद्गत्वा तदास्पदम् ।
कुटीं जग्राह वित्तेन नाभिमानः शुभार्थिनाम् ॥७४॥

७४. उसके इस प्रकार उत्तर देने पर, उसके स्थान पर जाकर वित्त[1] से कुटी राजा ने ग्रहण कर लिया, ठीक है शुभार्थियों को अभिमान नहीं होता ।'

अवाचच्चर्मकारस्तं तत्र स व्यञ्जिताञ्जलिः ।
राजन् धर्मानुरोधेन परवत्ता तवोचिता ॥७५॥

७५. वहां उस चर्मकार ने अंजलि बद्ध कर उससे कहा,—हे राजन् ! धर्मानुरोध से आपकी यह परवत्ता[1] उचित ही है ।

श्वविग्रहेण धर्मेण पाण्डुसूनोः पुरा यथा ।
धार्मिकत्वं तथा तेऽद्य मयाऽस्पृश्येन वीक्षितम् ॥७६॥

७६. 'पूर्व काल में जिस प्रकार श्वान[1] शरीरधारी धर्म ने पाण्डुपुत्र[1] (युधिष्ठिर) की परीक्षा ली थी । उस प्रकार आज अस्पृश्य मैंने आपकी धार्मिकता देखी ।

छोटा हो जाता है । याचक भगवान् को भी अति लघु वामन रूप धारण करना पड़ा था । प्राचीन भारतीय परंपरा थी । दानी को माँगने पर दान देना ही चाहिये । राधा पुत्र कर्ण ने माँगने पर भिक्षुक ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र को अपना जन्मजात कवच उतार कर दे दिया था । याचक बड़ा से बड़ा होने पर भी याचनाकाल में दाता से लघु हो जाता है । घर पर आये किसी भिक्षुक को लौटाया नहीं जाता । यह भारतीय परंपरा रही है । चर्मकार इसी ओर संकेत करता है । यदि कुटी पर आकर याचना की जायेगी, तो वह याचना स्वीकार करेगा । यह उसके लिए उचित था । चर्मकार ने राजा की इससे अप्रतिष्ठा नहीं की है । भगवान् वामन, इन्द्र आदि सभी याचक दानी के द्वार किंवा स्थान पर जाकर दान की याचना किये हैं । चर्मकार कुटी बेचने की अपेक्षा दान कर, अपना स्थान एवं मर्यादा समाज में उठाना चाहता था ।

पादटिप्पणी :

७४ (१) वित्त : चर्मकार ने कभी कुटी बेचने की बात नहीं कहीं थी । उसने यही कहा था । सदाचार के अनुरोधसे याचना पर दूँगा । कल्हण ने वित्त शब्द पद में रख दिया है । अर्थात् धन लेकर चर्मकार ने कुटी दी । राजा को ऊपर उठाकर चर्मकार को साधारण विक्रयकर्ता बना दिया है । चर्मकार एवं राजा के संवाद में कहीं विक्रय का प्रश्न नहीं उठाया गया था । कल्हण ने चर्मकार को बहुत ऊँचा दार्शनिक, निर्भीक, साम्य विचारों का अनुकरणीय व्यक्ति चित्रित किया है । कल्हण का 'वित्त' शब्द यहाँ रखना उठते चर्मकार को हठात् गिरा और राजा को उठा देता है । यह मेरी दृष्टि में असंगत है । राजा ने स्वयं पूर्व उल्लिखित श्लोक ६४ में दो प्रस्ताव चर्मकार के सम्मुख रखा था । कुटी से भी रम्य आवास अथवा प्रचुर धन लेकर चर्मकार कुटी दे दे । चर्मकार ने इस प्रस्ताव का उत्तर ७३ वें श्लोक में केवल राजा की याचना पर ही कुटी देने का वचन देकर दिया था । धन लेकर नहीं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७५ में 'तत्र' का पाठभेद 'ततः' मिलता है ।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ७६ में 'श्वविग्रहेण' कः 'अविग्रहेण', 'पुरा यथा' का पाठभेद 'पुरा यथा' मिलता है ।

स्वस्ति तुभ्यं चिरं स्थेया धर्म्या वृत्तान्तपद्धतीः ।
दर्शयन्नीदृशीः शुद्धाः श्रद्धेया धर्मचारिणाम् ।।७७।।

७७. 'स्वस्ति[1]! राजन्!! आप चिरकाल स्थायी इस प्रकार की धर्म पद्धतियों को प्रदर्शित करें, जिनमें कि धर्मचारियों की श्रद्धा रहे।'

एवं निष्कल्मषाचारः स चक्रे पावनीं भुवम् ।
राजा त्रिभुवनस्वामिकेशवस्य प्रतिष्ठया ।।७८।।

७८. इस प्रकार निष्कलंक आचारशाली वह राजा त्रिभुवन स्वामी[1] की प्रतिष्ठा द्वारा पृथ्वी को पवित्र किया।

कृत्यैः प्रकाशदेव्याख्या प्रकाशाकाशकान्तिभिः ।
प्रकाशिकाविहारस्य तत्पत्नी कारयित्र्यभूत् ।।७९।।

७९. उसकी राज्ञी प्रकाश देवी समुज्वल आकाश सदृश कमनीय कृत्यों द्वारा प्रकाशित विहार[1] की कारयित्रा हुई।

गुरुर् मिहिरदत्ताख्यः तस्योदात्तगुणोऽभवत् ।
विश्वंभरस्य गम्भीरस्वामिनाम्नो विधायकः ।।८०।।

८०. उसका उदात्त गुणी मिहिरदत्त गुरु था। वह विश्वम्भर गंम्भीर स्वामी का विधायक था।

पादटिप्पणी :

७६ (१) **श्वान :** पाण्डवों के स्वर्गारोहण प्रसंग की ओर कल्हण संकेत करता है। पाण्डवों ने हिमालय में गलने के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ एक श्वान भी चलने लगा। मार्ग में सबसे पहले द्रौपदी गिर गयी। पाण्डवों का साथ छूट गया। तत्पश्चात् क्रमशः नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम भी गिर गये। युधिष्ठिर उनका साथ त्यागते, अग्रसर होते गये। श्वान उनके साथ चलता गया। जब स्वर्ग में एकाकी आने के लिए कहा गया, तो उन्होंने उत्तर दिया। श्वान उनके साथ प्रारम्भ से ही था। कैसे उसका त्यागकर एकाकी आ सकते हैं। वह श्वान वास्तव में धर्मराज था। युधिष्ठिर के धर्म की परीक्षा लेने के लिए श्वान का रूप धारण कर उनके साथ हो गया था। श्वान ने अपना रूप त्यागकर धर्मराज का रूप धारण कर लिया। युधिष्ठिर तथा धर्मराज दोनों ने सशरीर स्वर्गारोहण किया।

(महाभारत स्वर्गारोहण पर्व २०:३ अ० ४)

७७(१) **स्वस्ति** – स्वस्ति का अर्थ कल्याण होता है। (ऋ १:१:९; १:३४:१; २:३२:८; १०:८:४: ३१:११:३:३८:६:२२:९:२२:१० शत: ब्रा: १:९:१: २७ वाजसनेयी संहिता १३:१९)

चमार ने भी आशीर्वाद दिया है। आशीर्वाद देना किसी वर्ग या जाति विशेष का कार्य नहीं था।

पादटिप्पणी :

७८ (१) त्रिभुवन स्वामी : द्रष्टव्य : टिप्पणी रा० ४:५५ खण्ड १ :

पादटिप्पणी :

७९ (१) **प्रकाशिका विहार :** इस स्थान का अभी तक पता नहीं चल सका है। अनुसन्धान का विषय है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८० में 'गंभीरस्वामी' 'विश्वम्भरस्य' का नारायणस्य तथा का पाठभेद 'गम्भीरसंगम्' मिलता है।

सर्वाधिकरणस्थैर्योच्छेत्ता छलितकाभिधः ।
नगराजिकृतस्तस्य छलितस्वामिनं व्यधात् ॥८१॥

८१. सर्वाधिकरण स्थेय का उच्छेदक उसके नगराधिकृत छलितक ने छलित[1] स्वामी का मन्दिर बनवाया ।

पादटिप्पणी :

'विश्वम्भरस्य' का 'नारायणस्य' एवं 'गम्भीर स्वामी' के लिये 'गम्भीर संगम' का पाठभेद मिलता है । इस श्लोक से संकेत मिलता है कि गम्भीर स्वामी का मन्दिर गम्भीर संगम पर था ।

पादटिप्पणी :

८० (१) **गम्भीर स्वामी :** गम्भीर स्वामी का मन्दिर विद्वानों ने अनुमान लगाया है । गम्भीर संगम पर था । दोनां नामों को समानता के कारण यह अनुमान लगाया गया है । गंभीर संगम का उल्लेख वितस्ता माहात्म्य (८:१६) विजयेश्वर माहात्म्य १५१ में मिलता है । पंडित साहिबराम के तीर्थ में वितस्ता तथा विशोका अर्थात् विशौ नदी के संगम पर यह स्थान निर्दिष्ट किया है । नाम की प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि विशोका नदी के अधोभाग संगम से कुछ पूर्व रामण्य अटवी अर्थात् रामब्यार नदी का जल विशोका ग्रहण करती है । उसी स्थान को गम्भीर कहा जाता है । राजा सुस्सल के प्रसंग में गम्भीर पर बने सेतु का उल्लेख कल्हण (रा० ८:१०:६३) तथा पुनः राजा जयसिंह के प्रसंग में सुज्जी को सेना के साथ गम्भीरा तट पर आने क वर्णन करता है ।

तस्कदर उदर अर्थात् चक्रधर उपत्यका के तीन मील अधोभाग जाने पर तथा मरहोम गाँव अर्थात् मडवाश्रम के समीप वितत्सा में मिलने से कुछ पहले विशोका (विशौ) तथा रामण्यअटवी अर्थात् राम व्यार नदियों का संगम होता है । यह संगम गम्भीर संगम कहा जाता है । क्योंकि यहाँ पर जल गहरा है । प्रायः सभी नदियों के संगमस्थान भारत में तीर्थ एवं पवित्र माने जाते हैं । इसी प्रकार यह संगम भी तीर्थ माना जाता है । विशोका तथा रामण्याटवी नदी के संगम से वितस्ता तथा विशोका संगम के मध्यवर्ती इस मिली धारा को गम्भीरा कहते हैं । विजयेश्वर तथा श्रीनगर के मध्य यह स्थान सैनिक दृष्टि से महत्त्व रखता है । यहाँ क्रम से दो बार निर्णायक युद्ध हुए हैं । राजा सुस्सल की सेना सन् ११२२ ई० में पीछे हटती यहाँ पर पूर्णतया पराजित हो गयी थी । सन् ११२८ ई० अर्थात् ६ वर्ष पश्चात् सुज्जी जो राजा के पुत्र का सेनापति था, यहाँ पर विद्रोहियों पर विजय प्राप्त किया था । (रा० ८:१०:६३ १४९७)

गम्भीर संगम पर कोई प्राचीन ध्वंसावशेष नहीं मिला है । उसका मुख्य कारण मालूम होता है कि नदियों की बाढ़ आदि तथा जलप्लावन के कारण सब कुछ प्रवाह में बह गया होगा । द्रष्टव्यः (खण्ड १: पृष्ठ ८७, १७१, २८० तथा परि० पृष्ठ २२)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८१ में 'करण' का पाठभेद 'करणा' तथा 'कारिण' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८१ (१) **छलित स्वामी :** इस मन्दिर का पता नहीं चलता है । प्रतीत होता है छलितक अपने ऐच्छिक कार्यों से न्यायालय (स्थेय) के ऊपर हो गया था ।

कदाचन सभासीनं पृष्टा धर्माधिकारिभिः ।
प्रायोपविष्टा राजानं ब्राह्मणी काचिदब्रवीत् ॥८२॥

८२. किसी समय प्रायोपवेशन[1] करने वाली, कोई ब्राह्मणी[2] धर्मअधिकारियों के प्रश्न पर सभासीन राजा से बोली[3] ।

त्वयि प्रशासति महीमहो गर्हानिबर्हणे ।
सुखसुप्तस्य मे पत्युर्हृतं केनापि जीवितम् ॥८३॥

८३. 'अहो आश्चर्य है ! गर्हित कृत्य दूर करने वाले आपके पृथ्वी पर शासन करते, सुख पूर्वक प्रसुप्त मेरे पति का किसी ने जीवनहरण कर लिया ।[1]

पादटिप्पणी :

८२ (१) **प्रायोपवेशन :** प्रायोपवेशन–द्रष्टव्य है रा० १ : क० ३२ तथा ४ : ९९, ५ : ४६८, ६ : २५, ३३६, ३४३, ७ : १३, १०, ८८, ११५, १६११, ८ : ५१, ११०, ६५८, ७०९, ७६८,८०८ ९३९, २२२४, २७३३, २७३९, प्रायोपवेशन अधिकारी–रा० १ : क० ३२ तथा ६ : १४ :

(२) **ब्राह्मणी :** आइने अकबरी के लेखक ने सन्धिमत के समान ही स्थान चन्द्रापीड को न्याय के सम्बन्ध में दिया है, यथा–एक ब्राह्मणी अपने पति के अज्ञात हत्यारे के सम्बन्ध में राजा से न्याय याचना की। राजा ने ब्राह्मणी से पूछा कि क्या किसी पर उसका सन्देह है ? उसने उत्तर दिया । उसके पति की किसी से भी शत्रुता नहीं थी । केवल एक व्यक्ति से दार्शनिक विषय पर विवाद होता रहता था । राजा ने उस व्यक्ति को बुलाया । उसने अपराध अस्वीकार किया । राजा ने दैवी कृत्य द्वारा परीक्षा लेना चाहा । ब्राह्मणी ने कहा । अपराधी जादू जानता था । उस कारण उस पर कोई प्रभाव नहीं हो सकेगा । राजा की समझ में बात न आयी । वह किस प्रकार न्याय करे । उसे रात में नींद नहीं आती थी । वह बेचैन रहने लगा । उसका भोजन भी छूट गया । रात्रि में उसे स्वप्न हुआ । वह एक मन्त्र पढ़कर चावल के आटे को बिखेर दे । कथित अपराधी को उस पर चलने के लिए कहे । यदि चलने पर दो पद चिह्न मिलें तो उसे अपराधी माना जाय । राजा ने स्वप्न के आदेशानुसार कार्य किया । ब्राह्मण अपराधी प्रमाणित हुआ । किन्तु ब्राह्मण अवध्य था । अतएव एक बिना सर की लोहे की मूर्ति बनाई गयी । उससे ललाट दाग दिया गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८३ में 'म पत्युः' का पाठभेद 'मत्पत्युः मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८३ (१) **प्रशासन :** कल्हण ने ब्राह्मणी के मुख से राजधर्म सम्बन्धी उदात्त सिद्धान्तों को कहलवाया है । राजा समस्त प्रजा का रक्षक है । उसका धर्म प्रजा का प्रतिपालन एवं राज का योगक्षेम है । राजनीति दर्शन का यहाँ आदर्श सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है । यदि राज्य में कोई भी अनाचार अत्याचार अन्याय एवं अपराध होता है तो उसका उत्तरदायित्व राजा पर है । राज शास्त्र का मौलिक सिद्धान्त है । राजा का कर्तव्य प्राणीमात्र की ज्ञात एवं अज्ञातरूप से रक्षा करना है । यदि किसी प्राणी को किसी प्रकार कष्ट पहुँचता है, तो उसकी जिम्मेदारी से राजा बच नहीं सकता था ।

एषैव महती लज्जा सदाचारस्य भूपतेः ।
यदकालभवो मृत्युस्तस्य संस्पृशति प्रजाः ॥८४॥

८४. 'सदाचारी भूपति के लिये यह लज्जास्पद है कि उसकी प्रजा अकाल[१] मृत्यु प्राप्त करती है ।

कलिकालबलात्तच्चेत्त्वादृशैरपि दृश्यते ।
पापात्पापतरेऽमुष्मिन्दोषे कथमुदास्यते ॥८५॥

८५. 'यदि आप जैसे भी कलिकाल[१] प्रभाव के कारण उसे देखते हैं, तो इस दोष के प्रति क्यों उदासीन हैं, जो पाप से पापतर हैं ।

चिन्तयन्त्यपि नावैमि भर्तुः कंचिद्विरोधिनम् ।
निर्दोषस्य हि तस्याऽऽसन्सर्वतः शीतला दिशः ॥८६॥

८६. 'चिन्तन करने पर भी मैं सर्व दिशाओं से शीतल निर्दोषी उस भर्ता के किसी विरोधी को नहीं ज्ञात कर पा रही हूँ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८४ में 'यदका' का पाठभेद 'यदाका' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८४ (१) **अकाल मृत्यु :** भगवान् राम को एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र को अकाल मृत्यु के लिए उन्हें देश के राजा होने के कारण उत्तरदायी बनाया था । जीवनदान माँगा था । उसी प्रकार कल्हण ने ब्राह्मणी के मुख से प्रजा होने के नाते पतिहत्या सबंधी अपराध के लिए न्याय की याचना की है । हिन्दू नीति दर्शन का यह मौलिक सिद्धान्त है । राजा के दोष किंवा पाप के कारण देश में अकाल, अवर्षण, महामारी तथा अकाल मृत्यु होती है । यह अधिकार राजा तथा प्रजा के कर्तव्यों को निश्चय करता है ।

पादटिप्पणी :

८५(१) **कलिः** का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं मिलता । किन्तु अश्विनों के कृपापात्र एक व्यक्ति के लिए यह शब्द आया है । (ऋ० १ : १२:१५: १०:३९) इसका बहुवचन (अथर्ववेद १० : १० : १३) में गंधर्वों के साथ उल्लेख मिलता है ।

महाभारत वनपर्व (१८८ : २५ : ८५ तथा १९० :७:१२) में मार्कण्डेय ने कलि-प्रभाव का वर्णन किया है । कलियुग के अन्तिम भाग में प्रायः मनुष्य मिथ्यावादी हो जाते हैं । ब्राह्मण शूद्र का कार्य करते हैं । शूद्र वैश्यों के समान धनोपार्जन करते हैं । अथवा क्षत्रियों के कर्म से जीविका पालन करते हैं । ब्राह्मण यज्ञ, स्वाध्याय, दण्ड एवं मृगचर्म का त्याग कर देते हैं ?

भक्ष्याभक्ष्य का विचार नहीं रखते । ब्राह्मण जप से दूर भागते हैं । शूद्र वैदिक मन्त्र जपने लगते हैं । छल से शासन करनेवाले पापी, असत्यवादी, आन्ध्र, शक, पुलिन्द, यवन, काम्बोज, वाल्हीक तथा शौर्य सम्पन्न राजा देश के राजा होते हैं । आयु कम हो जायेगी । बल, वीर्य एवं पराक्रम घट जायेगा । मनुष्य नाटे कदके होंगे । सत्य का अंश उनकी बातों में कम होगा । वृथा ही मनुष्य ब्रह्मज्ञान की बात करेंगे । शूद्र द्विजातियों को 'ए' कहकर सम्बोधन करेंगे ।

ब्राह्मण लोग शूद्रों को आर्य कहकर सम्बोधित करेंगे । सुगन्धित द्रव्यों का गन्ध कर्म हो जायेगा । रसयुक्त पदार्थ स्वादहीन हो जायेंगे । स्त्रियाँ नाटे

अनसूयो निरुत्सेकः प्रियवाग्गुणवत्सलः ।
पूर्वाभिभाषी निर्लोभो न विद्वेष्यो हि कस्यचित् ॥८७॥

८७. 'वह अनसूय एवं गर्व रहित प्रिय वक्ता, गुणवत्सल, पूर्वाभिलाषी, तथा निर्विरोधी था ।

तस्य तुल्यवया बाल्यात्प्रभृत्यध्ययनेऽधमः ।
माक्षीकस्वामिवास्तव्यो विप्रः शङ्कयोऽभिचारवित् ॥८८॥

८८. 'उसका समवयस्क बाल्यावस्था से अध्ययन में अधम मक्षिका स्वामी के समीप रहने वाला अभिचारवेत्ता विप्र शंकनीय है ।

कद की तथा बहुत सन्तान उत्पन्न करने वाली होंगी । उनमें शील एव सदाचार का अभाव होगा । व्यभिचार की बातें करेंगी । ब्राह्मण वेद बेचनेवाला तथा स्त्रियाँ वेश्या होंगी ।

गायों का दूध कम हा जायेगा । वृक्षों में फल-फूल कम होंगे । उन पर उत्तम पक्षियों के स्थान पर कौवे अधिक बैठेंगे । ब्राह्मण, ब्रह्महत्या जैसे पाप में लिप्त तथा मिथ्यावादी नरेशों से दान लेंगे । वे समस्त दिशाओं को भिक्षा के लिए पीड़ित करेंगे । गृहस्थ कर भार भय से लुटेरे हो जायेंगे । ब्राह्मण मुनियों जैसी कपटपूर्ण आकृति धारण कर वैश्यवृत्ति से जीविकायापन करेंगे । कपटरूप धारण कर नख तथा दाढ़ी-मूँछ धारण करेंगे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८७ में 'निरुत्सेकोः' का 'निरहंकारः' तथा 'विद्वेष्यो' का पाठभेद 'विद्वेषो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८८ (१) **मक्षिका स्वामी :** कल्हण (रा० ८ : ११७१) के उल्लेख से प्रतीत होता है । मक्षिका स्वामी का स्थान श्रीनगर के उपनगर किंवा एक भाग में था । स्थान बृहत्सेतु से दिखाई पड़ता था । राजा सुस्सल (सन् ११२१-२८ ई०) राज्यकाल में श्रीनगर के पूर्व-दक्षिणी सीमा से आग उठकर लग गयी थी । यह अग्नि कास्थिला अर्थात् काथूल से आरम्भ हुई थी । बृहत्सेतु से मक्षिका स्वामी में लगी अग्नि दिखाई पड़ती थी । और वहाँ से धुआँ हाथियों के झुण्ड के समान निकलता था । वहाँ से अग्नि इन्द्रभवन विहार में गिर कर लग गयी । इससे स्पष्ट प्रकट होता है । बृहत्सेतु तथा इन्द्रभवन विहार के समीप मक्षिका स्वामी का स्थान था । मक्षिका स्वामी का स्थान वर्तमान मायसुम समीपस्थ स्थान है । बृहत्सेतु का उल्लेख कल्हण ने (रा: ३ : ३५४, ८ : ११७१) किया है । द्रष्टव्य है । (रा : खण्ड १ : पृष्ठ ५५९, ५६८) । यह क्षेत्र श्रीनगर के पूर्व-उत्तर कोण में वितस्ता तथा महासरित के मध्य कैथूल स्थान वर्तमान मायसुम की दूसरी दिशा में था । मायसुम शब्द मक्षिका का अपभ्रंश है । महासरित के लिए द्रष्टव्य है—(रा: ३ : ३३९-३४९ तथा भाग १ : १४३, ३७६, ५५० तथा खण्ड : १ : परिशिष्ट : २२ । नीलमत पुराण में मक्षिका स्वामी नाग का उल्लेख मिलता है ।

श्रीनगर की आग्नेय दिशा में द्वीप है । यहाँ यूरोपियनों की बस्ती थी । इसे मायसुम कहते हैं । यह स्थान वितस्ता नदी तथा स्तोन्थकुल अर्थात् महासरिता की दो शाखाओं के बीच स्थित है । महासरिता पर टिप्पणी तृतीय तरंग श्लोक ३३९ में दो गयी है । कास्थिल के बड़े अग्निकाण्ड के सम्बन्ध में इसका वर्णन (८ : ११७) कल्हण ने पुनः किया है । मक्षिका स्वामी का मन्दिर इसी स्थान के पड़ोस में था । नीलमत पुराण में मक्षिका स्वामी नाग का वर्णन किया गया है ।

विश्वावसु : पारिजातो गल्लुलुल्लो जलु लुसद् ।
जागश्च मक्षिकास्वामी मूजिल : कुवस्तथा ॥ १३२=१०९८

द्रष्टव्य : खण्ड १ : पृष्ठ ५५९, ५६८ तथा महासरिताः खण्ड : १ : १४३, ३७६, ५५० तथा प० : २२ ।

गुणदारिद्र्यनिर्निद्रैः क्षुद्रैः कौशलशालिनाम् ।
प्रसिद्धिस्पर्धया वन्ध्यैर्बाध्यन्तेऽसूयया‌ऽसवः ॥८९॥

८९. 'गुणदारिद्र्य से निद्रा रहित, क्षुद्र (जन) प्रसिद्धि स्पर्धा एवं असूया के कारण कौशलशालियों का बध करते हैं ।'

नापौंश्चलीयो दुःशीलो नाद्रोहो नित्यशङ्कितः ।
नावाचालो मृषाभाषी नाकायस्थः कृतघ्नधीः ॥९०॥

९०. 'पुंश्चली पुत्र के अतिरिक्त और दुःशील कौन ? बिना द्रोह के नित्य शंकित कौन? अवाचाल मिथ्याभाषी कौन ? कायस्थ बिना कृतघ्न बुद्धि कौन ?'

नादातृगृहजो लुब्धो नानीर्ष्यो नित्यदुःखितः ।
नास्त्रीजितः सर्वहास्यो नावृद्धः स्निग्धभाषितः ॥९१॥

९१. 'अनुदार गृहोत्पन्न के अतिरिक्त कृपण कौन ? ईर्ष्या रहित नित्य दुःखित कौन ? स्त्रैण के अतिरिक्त सर्व जन हास्य कौन ? अवृद्ध के अतिरिक्त स्निग्धभाषी कौन ?'

नानन्यजः पितृद्वेषी नारागी निरपत्रपः ।
नाक्षुद्रविद्यः पापीयानिति भूतार्थसंग्रहः ॥९२॥

९२. 'जारज ही पितृद्वेषी, कामुक ही निर्लज्ज, अक्षुद्र विद्यावान पापी होता है, यही भूतार्थ (सारभूत सिद्धान्त) है।'

इत्युक्तवत्यां ब्राह्मण्यां तच्छङ्कावसतिं द्विजम् ।
आनीय परिशुध्यस्वेत्यभ्यधाद्वसुधाधिपः ॥९३॥

९३. 'इस प्रकार ब्राह्मणी के कहने पर उसके शंकास्पद द्विज को बुलाकर वसुधाधिप ने कहा'-'स्वयं को निर्दोष सिद्ध करो ।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८९ में 'बन्ध्यैः' का पाठभेद 'रहितैः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८९ (१) शंका : ब्राह्मणी ने मक्षिका स्वामी के समीप निवासी अभिचारवेत्ता विप्र पर क्यों शंका करती है, इसका कारण किंवा तर्क (रा: ४:८९-९२) उपस्थित करती है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९० में 'नापौश्चलीयो' का पाठभेद 'नापुंश्चलेयो', 'नापुंश्चलीयो तथा 'नापौश्चलेयो मिलता है ।

पादटिप्पणी :

९० (१) कायस्थ : वर्तमान कायस्थ जाति से सम्बन्ध नहीं है । कश्मीर राज्य विभाग में कार्य करने वाले कर्मचारियों की संज्ञा कायस्थ से दी गयी है । कश्मीर में कायस्थ संज्ञक व्यक्ति किसी भी जाति का हो सकता था । द्रष्टव्य: खण्ड १ : ६०१ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९२ में 'द्वेषी' का 'दोषी' तथा 'विद्यः' का 'विद्या' पाठभेद तथा उक्त श्लोक के पश्चात् तिलकम् लिखा मिलता है ।

९३ (१) निर्दोष सिद्ध : भारतीय शास्त्र एवं परम्परा में भी स्वयं को निर्दोष सिद्ध करने की प्रथा

भूयो ब्राह्मण्यवादीत्तं ख्यातः खार्खोदविद्यया ।
निस्संभ्रमः स्तम्भयितुं देव दिव्यक्रियामयम् ॥९४॥

९४. पुनः ब्राह्मणी ने नृपति से कहा—'यह खार्खोद[1] विद्या से प्रसिद्ध है, भ्रम रहित यह दिव्य क्रिया[2] स्तम्भित कर सकता है ।'

मिलती है । भगवान् रामचन्द्र ने देवी सीता को स्वयं निष्कलंक सिद्ध करने के लिए कहा था । देवी ने अग्निपरीक्षा दी थी । यहाँ अपराधी स्वयं ब्राह्मण था । ब्राह्मण हिन्दू शास्त्र के अनुसार अवध्य माना गया है । अतएव राजा ने हत्या का दण्ड हत्या से न देकर विप्र को अपने निर्दोष होने की परीक्षा देने के लिए कहा । प्राचीन काल की अनेक गाथायें प्रचलित हैं कि निर्दोष सिद्ध करने के लिए हाथ पर अग्नि अथवा जलता लोहा रखते थे । अग्नि पर चलने के लिए कहते थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९४ में खार्खोद का पाठभेद 'ख्यातोद' तथा 'खातोद' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

९४ (१) **खार्खोद विद्या :** कश्मीर में इन्द्रजाल, मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना, अभिचार अत्यन्त प्रचलित था । विदेशी लेखकों ने उनके सम्बन्ध में आँखों देखी अद्भुत बातें लिखी हैं । प्राचीन काल से आज तक उन पर लोगों का विश्वास है । कश्मीर के पुरुषों तथा स्त्रियों को प्रायः मैंने तावीज, जन्तर आदि पहने तथा उन पर अटूट विश्वास रखते हुए देखा है । श्री बुहलर अपनी रिपोर्ट (पृ : २४) में इस पर प्रकाश डाल चुके हैं । मार्को पोलो कश्मीरियों के सम्बन्ध में लिखता है—उन्हें भूत विद्या की, माया किंवा अभिचार का आश्चर्यजनक ज्ञान है। उन्हें इसमें इतनी प्रवीणता है ।क उनकी मूर्तियाँ बोलने लगती हैं । वे अपनी माया किंवा इन्द्रजाल से ऋतुओं में परिवर्तन ला देते हैं । अन्धकार उत्पन्न कर देते हैं । अनेकों अद्भुत बातें कर देते हैं । जिन्हें बिना आँखों देखे विश्वास करना कठिन हो जाता है ।' (यूले : मार्कोपोलो : १ : १७५)

कल्हण ने खार्खोद का पुनः उल्लेख (राः५:२३९) में राजा गोपाल वर्मा (सन् ९०२-९०४ ई०) के प्रसंग में किया है । उसका कोषाध्यक्ष राजा से भयभीत हो गया था । अपने सम्बन्धी रामदेव जो खार्खोद विद्या में पारंगत था, राजा को मारने के लिए खार्खोद विद्या का आश्रय लेने के लिए कहा। रामदेव के खार्खोद विद्या के प्रयोग के कारण राजा गोपाल वर्मा की मृत्यु हो गयी ।

विजयेश्वर माहात्म्य में इसका उल्लेख मिलता है । खार्खोद का उल्लेख चरक (५ : २३) में मिलता है । हरचरित चिन्तामणि (२ : १२५) में खार्खोद शब्द एक ऐन्द्रजालिक अथवा अलौकिक पुरुष के लिये प्रयोग किया गया है । उल्लेख कृत्या तथा वैताल के साथ प्रायः मिलता है। शब्द 'खार्खोद' प्राचीन भोजपत्र पर अभिचार मंत्र लिखा 'बेवर' की पाण्डुलिपि में मिलता है । 'ख' द्वारा विनाश कृत्यकर्म तथा वैतालों के दुष्कृत्यों के कारण होता है । (डा०हायर्सलेसः पेपरः इण्डियन एण्टीकेरी २१ : ३५६ तथा ३६८) इसी प्रकार के दो अभिचार मन्त्र प्राचीन मध्य एशिया के बेवर की एक पांडुलिपि में मिले हैं । उसमे 'खर्खोद' तथा 'खाखोर्द' लिखा है । (जनरल : एशियाटिक सोसाइटी : बंगाल सन् १८९३ ई० पृ. २५ में) रा : ७ : ३९८ उल्लिखित शब्द

म्लायद्वक्त्र इवावादीत्ततस्तां मेदिनीपतिः ।
अदृष्टदोषे किं कुर्मो वयमत्राधिकारिणः ॥९५॥

९५. तदनन्तर म्लानमुख मेदिनीपति ने उससे कहा—'जिसका दोष देखा नहीं गया है, उसके प्रति हम अधिकारी क्या कर सकते हैं ?'[१]

खुरखुट का कोई सम्बन्ध खार्खोद से है या नहीं यह विषय अनुसन्धान की अपेक्षा करता है ।

(२) **दिव्यक्रिया**—यहाँ अर्थ दैवी परीक्षा एवं प्रमाण से है । यथा अग्नि, जल, आदि के माध्यम से अपने को निर्दोष प्रमाणित किया जाता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९५ में 'स्तां' का पाठभेद 'स्तं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

९५. (१) **दण्डाभियोग**—परम्परागत मान्यताओं के अनुसार दण्डाभियोग पूर्णता हेतु दो बातें आवश्यक हैं । दोषपूर्ण मन तथा तदनुयायी कार्य । वही व्यक्ति दण्डित किया जा सकता है, जो स्वयं अपराध करे अथवा दूसरों के द्वारा अपराध करावे किंवा प्रेरणा दे। राजा उस समय तक दण्ड नहीं दे सकता था, जब तक अपराध प्रमाणित न हो। ब्राह्मणी ने न तो प्रत्यक्ष प्रमाण एवं साक्ष्य दिया था और न तो अप्रत्यक्ष प्रमाण किंवा साक्ष्य उपस्थित किया था। अतएव राजा ने साक्ष्य एवं प्रमाण के अभाव में दण्ड देना स्वीकार न कर, भारतीय न्यायपरम्परा का पालन किया था ।

अनेक स्थानों पर दण्ड पशुओं के हाँकने का दण्ड, डण्डा, पैना अथवा लकड़ी के रूप में व्यवहार किया गया है । (ऋ० ७:१३:६) ऐ०ब्रा० २:३५, श. ब्रा० (१:५:४:६) उपनयन संस्कार के समय दण्ड का उल्लेख मिलता है ।(आश्व० गृह्य सूत्र:१:१९:६:२२)

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार दीक्षा काल में एक व्यक्ति दण्ड को लेकर खड़ा हो जाता था ताकि दानव को दूर भगा सके (शा०गृ०सूत्र २ : १ : ६ : ११)

राजदण्ड एवं राजा दोनों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया है। (पा० गृ०सू० ३ : १५) शतपथ ब्राह्मण में राजा के अदण्ड्य तथा दण्ड वध के अधिकारी होने का उल्लेख है । (श०ब्रा०५:४:४:७) राजा अपराधियों के लिए विधि एवं दण्ड का प्रमुख स्रोत था । ब्राह्मण्य ब्रात्यों की एक विशेषता थी । वे अदण्डों को भी दण्ड देते थे । (पं० स्वि० ब्रा०- १७ : १ : १९)

पुराणों तथा स्मृतियों में दण्डशास्त्र पर बहुत कुछ लिखा गया है । समाज में जैसे जैसे असंयम, अनीति, अराजकता एवं अपराधों की वृद्धि होती गयी, वैसे वैसे दण्ड कठोर होता गया। दण्डसंहितायें बनने लगीं । दण्ड का स्वरूप कृष्णवर्ण एवं नेत्र रक्त वर्ण माना गया । शासक जहाँ निर्भय रूप से दण्ड देता है, वहाँ प्रजा कर्तव्यच्युत नहीं होती—'प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति' । यदि दण्ड का संचालन विधिवत् नहीं किया जाता तो बालक, वृद्ध, ब्राह्मण, स्त्री, विधवादि प्राणी पीड़ित रहते हैं । दण्ड के अभाव में प्राणिमात्र अपनी मर्यादा उल्लंघन कर देते हैं । दण्ड सर्वदा, प्रहारों, पराक्रमों, कोपों, तथा व्यवसायों में उपस्थित रहता है । देवता भी उन्हीं को पूछते हैं, जो दण्ड देते हैं। सृष्टि के सृजक ब्रह्मा, पूषा, अर्यमा की पूजा कोई नहीं करता । रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य्य, चन्द्रमादि दण्ड दे सकते हैं, अतएव उनकी पूजा होती है । दण्ड प्राणियों की स्वप्नावस्था में भी जागृत रहता है—'दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुः बुधाः' विद्वान् दण्ड को ही धर्म मानते हैं । दण्डभय से लोग पापाचरण से विरत होते हैं । राजदण्ड भय से अपराध नहीं करते । दण्ड दुर्दमों का दमन करता है । उन्हें दण्ड देता है । अतएव उसे दण्ड की संज्ञा दी गयी है । दण्ड भय से देवताओं ने शिव का

नान्यस्मिन्नपि दण्डस्य प्रसङ्गोऽनिश्चितागसि ।
किं पुनर्ब्राह्मणो दण्डयो यो दोषेऽपि वधं विना ॥९६॥

९६. 'अनिश्चित अपराध वाले दूसरों का भी दण्ड प्रसंग अनुचित है। दोषी सिद्ध होने पर भी दण्डनीय ब्राह्मण अवध्य[१] है।'

उक्त्वेति विरते तस्मिन् द्विजजायाऽब्रवीत्पुनः ।
चतस्रः क्षणदाः क्षीणा राजन्नपि न शस्यते ॥९७॥

९७. यह कहकर उस राजा के विरत होने पर द्विजपत्नी पुनः बोली,—'राजन् ! चार रात्रियाँ व्यतीत हो गयीं कुछ ग्रहण नहीं किया।'

नान्वगां परिणेतारं हन्तुः प्रतिचिकीर्षया ।
तत्राविहितदण्डेऽस्मिंस्त्यजाम्यनशनैरसून् ॥९८

९८. 'हन्ता के प्रतिशोध की इच्छा से भर्ता का अनुगमन[१] नहीं किया अब इसे दण्ड[२] न देने पर, अनशन द्वारा प्राण त्याग कर दूंगी।

भाग निश्चित किया था। कुमार को सेनापति बनाया गया। प्रजापति ब्रह्मा ने दण्ड संचालन हेतु ही देवताओं का अंश लेकर राजा को उत्पन्न किया। (ब्रह्माण्ड २ : ७ : ६१ मत्स्य १३२ : ५५ १४८) (६६-६७)।

पादटिप्पणी

९६ (१) मृत्युदण्ड–हिन्दूराज्य में ब्राह्मण अवध्य माना गया है। नेपाल में अब तक ब्राह्मण को प्राण दण्ड नहीं दिया जाता। कश्मीर में भी सन् १९४७ तक ब्राह्मण अवध्य था। स्मृतियों तथा प्राचीन भारतीय दण्ड संहिताओं में ब्राह्मण को एक ही अपराध के लिए अन्य वर्णों की अपेक्षा साधारण दण्ड दिया जाता था। दण्ड विवेक में बृहस्पति ने मुण्डन, निर्वासन तथा शरीर दागने को दण्ड व्यवस्था की है।

महापातकयुक्तोपि न विप्रो वधमर्हति ।
निर्वासनं तथा मौण्ड्यं तस्य कुर्यान्नराधिपे ।।बृह०।।

बौध्यायन ने भी यही कहा है :

ब्राह्मणस्य भ्रूणहत्या, गुरुतल्प, सुवर्णस्तेय सुरापणेषु, कबन्ध भगश्व पद............।

नारद का विचार है :

अभीरह पुरुषः कार्यो ललाटे द्विज हतिनाह, गुरतल्पे, भगा कर्या, सुरपाने सुरध्वजा,स्त्रेमेतु स्वयाद्य क्रत्व............

इनका भावार्थ यही है कि ब्राह्मण के मस्तक पर गरम लोहे से दाग दिया जाय। दाग का रूप मस्तक विहीन पुरुष, भग, श्वान, पद, ध्वजा होगा, दागने के पश्चात् उसे निर्वासित कर दिया जाय। नारद के अनुसार ब्रह्महत्या करने वाले ब्राह्मण के ललाट पर अशिर पुरुष, गुरुपत्नी के साथ भोग करने वाले के ललाट पर भग चिह्न से दागा जाय, सुरासेवक अर्थात् शराबी का ललाट ध्वजा तथा चोर के ललाट पर श्वानपद से गरम लोहे से दागा जाय, ताकि आजन्म लोगों को मालूम होता रहे कि उसने अमुक अपराध किया है।

अबुल फजल हिन्दुओं के इसी दण्डविधान को दुहराता है। हत्या करने वाले ब्राह्मण के ललाट पर अशिर पुरुष की छाप गर्म लोहे से लगा दिया जाता था। असिर पुरुष के चिह्न से स्पष्ट होता था कि मनुष्य का मस्तक छिन्न किया गया है। अथवा हत्या का अपराधी है। (मनुस्मृतिः ८:३३७-३३८)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ९७ में 'राजन्नपि न शस्यते' का पाठभेद 'राजन्न नस्य में' मिलता है।

पादटिप्पणी :

९८. (१) **अनुगमन :** ब्राह्मणी पति के साथ क्यों नहीं सती हुई। इसका कारण उपस्थित

तथा स्थितायां ब्राह्मण्यां कृतप्रायोपवेशनः ।
स्वयं त्रिभुवनस्वामिपादानुद्दिश्य सोऽभवत् ॥९९॥

९९. इस प्रकार ब्राह्मणी के स्थित होने पर वह (राजा) त्रिभुवन स्वामी के चरणों को उद्देश्य[1] कर प्रायोवेशन[2] प्रारम्भ कर दिया।

त्रिरात्रोपोषितं तत्र राजानं रजनीक्षये ।
स्वप्नेऽस्वप्नोत्तमोऽवोचत्सत्योक्तिं सत्यवाहनः ॥१००॥

१००. तीन रात्रि यावत् राजा के उपवास करने के उपरांत रजनी क्षीण होने पर, स्वप्न में न सोने वालों में उत्तम भगवान् गरुड़ सत्यवाहन[1] विष्णु, उस सत्यभाषी से बोला।

ईदृङ् न युज्यते राजन् सत्यस्यान्वेषणं कलौ ।
निशीथे कस्य सामर्थ्यं कर्तुं दिवि विकर्तनम् ॥१०१॥

१०१. 'राजन्! कलियुग[1] में इस प्रकार राज्यान्वेषण युक्ति युक्त नहीं है। मध्यरात्रि कालीन आकाश में सूर्य को प्रकट करने में कौन समर्थ है?

करती है। प्रतिशोध की भावना एवं दण्डित कहीं अदण्डित न रह जाय, इस तीव्र कामना से अपने पति का अनुगमन अर्थात् पति के साथ चितारोहण नहीं कर सकी थी।

(२) दण्ड : ब्राह्मणी राजा से दण्ड की याचना करती है। वह किसी विशेष प्रकार के दण्ड देने पर जोर नहीं देती है। साम, दाम, दण्ड एवं भेद राज्य संचालन की चार नीतियाँ हैं। दण्डों को तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। उत्तम साहस दण्ड में वध, सर्वस्व हरण, देश निर्वासन, अंगच्छेद आदि दण्ड दिये जाते थे। इनके अतिरिक्त मध्यम साहस तथा प्रथम साहस दण्ड थे। अर्थदण्ड की भी तीन श्रेणियाँ की गयी हैं। प्रथम साहस दण्ड में तीन सौ पण, मध्यम साहस में पाँच सौ पण, एवं उत्तम साहस में एक सहस्रपण तक जुर्माना किया जाता था।

पादटिप्पणी :

९९. उद्देश्य : प्राचीन प्रथा थी। किसी कार्य के सिद्ध एवं दोषादि के प्रमाणित न होने पर अथवा दोष के अपरिहार्य होने पर भगवान् के विरुद्ध अथवा भगवान् के लिए किया जाता था। भगवान् स्वयं इस कार्य का उत्तरदायित्व लेकर, चाहे कार्य सफल करें, अथवा उचित उपाय निकालें।

राजा के मन में ब्राह्मणी की बातों का प्रभाव हुआ था। उसकी अन्तरात्मा कहती थी। घटना में कुछ तथ्य हैं। अपराधी को दण्ड मिलना चाहिए। परन्तु साक्ष्य एवं प्रमाण के अभाव में वह दण्ड दे सकने में असमर्थ था। उसने भगवान से ही इस सम्बन्ध में मार्गदर्शन की अपेक्षा की।

(२) प्रायोवेशन–जीवन रहने तक आहार त्याग-कर ध्यानस्थ मुद्रा में आसीन रहना प्रायोवेशन कहा जाता है। भागवत पुराण में उल्लेख है कि परीक्षित ने गंगा किनारे अनशन व्रत स्वीकार किया था। वायु पुराण में कथा आती है। इन्द्र द्वारा शिष्यों की हत्या करने पर सुकर्मा ने प्रायोवेशन किया था।

पादटिप्पणी :

१०० (१) सत्यवाहन : सत्यवाहन शब्द गरुड़ का विशेषण है।

पादटिप्पणी :

१०१ (१) कलियुग : कहाँ कलियुग का अन्धकारमय काल और कहाँ सतयुग का सत्यान्वेषण, दोनों बातें परस्पर

भवच्छक्त्यनुरोधेन सकृदेतत्प्रवर्त्यते ।
मत्प्रासादाङ्गनेऽमुष्मिन् शालिचूर्णं विकीर्यताम् ॥१०२॥

१०२. 'आपकी शक्ति के अनुरोध से, मेरे प्रभाव के कारण, एक बार इसे प्रवर्तित कर रहे हैं- 'इस प्रांगण में शालि चूर्ण विकीर्ण कर दो ।'

प्रदक्षिणं कुर्वतोऽस्य त्रिरत्र यदि दृश्यते ।
ब्रह्महत्यापादमुद्रा पादमुद्रानुयायिनी ॥१०३॥

१०३. 'इसको तीन बार करते[१], इसके पदचिह्न[२] यदि दिखायी दें तो--

---

विरोधी हैं । कलि का गुण, मिथ्या, अनीति, अनाचार एवं दुराचार है । और सत्ययुग का प्रभाव सत्यान्वेषण, सत्पथ पर चलना है । वणिक् तर्क उपस्थित करता है । जिस प्रकार रात्रि में सूर्य का उदय असम्भव है, उसी प्रकार कलियुग में सत्य का अन्वेषण । सत्य और कलियुग दोनों विरोधी दिशाएँ एवं मार्ग हैं । शास्त्रों, मुख्यतः पुराणों एवं महाभारत में कलियुग की जो कल्पना की गयी है, उसका कल्हण यहाँ पर समर्थन करता है ।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ।
अन्ये कलियुगे नृणांयुगह्रासानुरूपतः ॥
तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौयुगे ॥

मनुः १:८५ : ८६

कलियुग को सर्वोत्तम तीर्थ गंगा है । (वन: ८५: ८९:९१) कलियुग के अंतिम भाग में जगत की स्थिति (वन : ११८:३९-६४) एवं कलियुग तथा युगान्त में जगत् की क्या परिस्थिति होगी । इसका वर्णन (वन:- १९०:११:८८) किया गया है। इसी प्रकार कलि के युगधर्म का वर्णन (शान्ति ६९:९१:६३ तथा अध्याय ३२१:२३२:२३१) किया गया है। मार्कण्डेय ने कलि के प्रभाव का वर्णन महाभारत (वनपर्व १८८:- २५-८५ तथा १९०:७:६२) में किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०२ में 'भवच्छ' का पाठभेद 'भवद्भ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१०३ (१) श्री स्तीन तथा श्री पण्डित ने श्लोक-संख्या १०३ तथा १०४ का अनुवाद युग्मकम् के समान एक साथ किया है । अन्य अनुवादकों ने भी इसी का अनुकरण किया है । श्री कल्हण ने दोनों श्लोकों को युग्मकम् में नहीं रखा है । अतएव यहाँ अनुवाद अलग अलग किया गया है ।

श्लोक १०३, १०४ का भावार्थ निम्नलिखित भी होगा—'यदि प्रदक्षिणकारी के चरणचिह्न के पश्चात् भाग में ब्रह्महत्या पाद मुद्रा दिखायी पड़े, तो इस प्रकार होने पर, हत्याकारी को यथोचित दण्ड भोग दिया जाय ।'

(२) ब्रह्महत्या—कथा है । ब्रह्महत्यारे के पीछे ब्रह्महत्या पिशाची किंवा प्रेतिनी के रूप में लग जाती है । काशी खण्ड स्कन्द पुराण (१ : ३१) में उल्लेख आता है कि शिव ने जब ब्रह्मा का पंचम मुख विच्छेद कर दिया, तो ब्रह्महत्या शिव के पीछे लग गयी थी । ब्रह्महत्या इसी प्रकार इन्द्र के पीछे भी लगी थी । जनश्रुति है । हत ब्राह्मण ब्रह्म हो जाता है । पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार आदि स्थानों में हत्या किये गये ब्राह्मण के नाम पर ब्रह्म का चौरा बना देते हैं । उसकी पूजा होती है । ब्रह्म क्रुद्ध होने पर लोगों को लग भी जाता है ।

तदैष वधको भूत्वा सदृशं दण्डमर्हति ।
रात्रावेष विधिः कार्यो दिने पापहृदर्यमा ॥१०४॥

१०४. 'यह बधिक है । उचित दण्डयोग्य है । यह विधि रात्रि में करना, क्योंकि दिवा-काल में दिवस्कर पाप[1] हरण कर लेते हैं ।'

अथ तत्कारयित्वा स दृष्टदोषे द्विजन्मनि ।
दण्डं दण्डधरश्चक्रे द्विजत्वाद्वधवर्जितम् ॥१०५॥

१०५. यह क्रिया कराकर, ब्राह्मण के दोषी सिद्ध होने पर, दण्डधर[1] राजा ने ब्राह्मण होने के कारण (उस अभिचारी को) अतिरिक्त अन्य दण्ड दिया ।

वृत्रासुर तथा नमुचि के वध के कारण इन्द्र को ब्रह्महत्या लग गयी थी । ब्रह्महत्या के भय से इन्द्र कमल के अन्दर छिप गये । इस समय दो इन्द्र हुए । नहुष तथा ययाति । किन्तु दोनों स्वल्पकालीन थे ।

(स्कन्द १ : १ : १५) ब्रह्महत्या से इन्द्र किस प्रकार छूटे, पुराणों में यह कथा विभिन्न प्रकार से कही गयी है । एक कथा है । ब्रह्महत्या के चार भाग किये गये । भूमि, वृक्ष, जल एवं स्त्री को एक एक वरदान देकर उन्हें दिया गया । पृथ्वी को वरदान के अनुसार गड्ढों का स्वतः जल से भरना तथा उसके जलस्तर पर क्षर एवं कर्क के रूप में एकत्रित हो जाना है । वृक्ष को बरदान के अनुसार जहाँ वृक्ष टूटता है वहीं अंकुर तथा गोंद निकलता है । तृतीय वरदान के अनुसार जिसमें जल मिलाया जाय उसकी वृद्धि तथा उससे फेन उत्पन्न होता है । चतुर्थ वरदान के अनुसार स्त्रियों को प्रसूति काल तक संभोग की इच्छा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १०४ में 'तदैष' का पाठभेद 'तदेष' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१०४. वैदिक साहित्य में 'पाप' शब्द प्रायः पापी के लिये प्रयोग किया गया है। (ऋ, ४:५:५७,८:५०: ११,१०:१०:१२, अथर्ववेद १३:४:४२:१२:१:४७) अथर्ववेद में पाप के लिये भी इसका प्रयोग किया गया है (अथ० १०:१:१०,१०:३:४) ।

(१) **पापहरण :** पाप की तुलना अन्धकार और पुण्य की तुलना प्रकाश से की गयो है । प्रकाश के उदय होते ही अन्धकार तिरोहित हो जाता है । पुण्य के कारण पाप पलायन करता है । जगत् में जघन्य पाप निशा काल में होते हैं । निशा जगत् को अपनी गोद में ले लेती है । कुछ दिखाई नहीं देता । नियम के आवरण में सब कुछ छिप जाता है ।

रात्रि पाप स्थान है । उसमें पापी पनपता है । जागृत होता है । जागृत काल अर्थात् दिन में सो जाता है । उसको पाप क्रिया दिन में नष्ट प्राय रहतो है । चोरी, डकैती, हत्या, अनैतिक अपराध, जगत् के पापों किंवा अपराधों की गणना में अनुपाततः ८० प्रतिशत होता है । दिन में अपराध, पाप क्रिया एवं मनोवृत्ति स्वभावतः कम होती है । इस मानव प्रकृति को कवि भाषा में प्रदर्शित किया गया है ।

पादटिप्पणी :

१०५ (१) **दण्डधर :** इसका शाब्दिक अर्थ होता है : यमराज, शासनकर्ता, संन्यासी और द्वारपालादि । वह व्यक्ति जो दण्ड अर्थात् दण्डा धारण

महोमघोना भर्तृघ्ने तस्मिन् विहितशासने ।
ततो द्विजन्मजाया सा कृताशीरभ्यधादिदम् ॥१०६॥

१०६. उस पतिहन्ता को राजा के दण्ड देने पर, उस द्विजजाया ने आशीर्वाद[1] प्रदान करते हुए कहा--

इयत्यवनिभृत्सर्गे गूढपापानुशासनम् ।
कार्तवीर्यस्य वा दृष्टं तव वा पृथिवीपते ॥१०७॥

१०७. 'पृथ्वीपते ! राजाओं की सृष्टि-परम्परा में गुप्त पाप का दण्ड देना कार्तिवार्य[1] अथवा आपके में देखा गया है ।'

करता है । दण्डधर मौर्य तथा गुप्तकाल में राज्याधिकारी होते थे । अपराधियों को दण्ड देनेवाले न्यायकर्ता, न्यायाध्यक्ष किंवा स्थेय को दण्डधर कहते थे । यहाँ पर कल्हण ने दण्डधर शब्द राजा चन्द्रापीड के लिए प्रयुक्त किया है । राजा का विशेषण है । यम तथा राजा के अर्थ में दण्डधर शब्द का प्रयोग किया जाता है । एक जीवित तथा दूसरा मरने पर दण्ड देता है । दण्डी संन्यासी दण्ड धारण करते हैं । उनका भी विशेषण दण्डधर है । ब्रह्मचारी पलाश वृक्ष का दण्ड धारण करते हैं । दण्डधारक का अर्थ न्यायकर्ता है । न्यायाधीश एवं दण्डविधायक होता है । दण्डपाणि शिव के गण विशेष थे । दण्डपाणि नाम एक गली काशी का मुहल्ला है । दुष्ट दमनार्थ हाथ में दण्ड धारण करने के कारण उन्होंने दण्डपाणि संज्ञा प्राप्त की थी । राजनीति शास्त्र में चार साधन साम, दाम, दण्ड एवं भेद माने गये हैं । इनमें एक दण्ड है । राजा उसे धारण करता है । अतएव उसे दण्डधर कहते हैं। भारतीय प्राचीन राजनीतिक सिद्धान्त के अनुसार राजसंस्था एवं दण्ड दोनों की उत्पत्ति एक साथ हुई है— (मनु : अ० ७ : शांति : ५९ : १३ : ३३) दण्ड राजशक्ति का प्रतीक है । जगत का रक्षक है । सोने वालों को जगानेवाला है । दण्ड को मनु ने धर्म स्वीकार किया है (मनु : ७: १८) । आधुनिक मान्यताओं के अनुसार दण्ड, प्रतीकारात्मक, निषेधात्मक, अवरोधात्मक एवं सुधारात्मक होता है।

राजा के हाथों में दण्ड अथवा डण्डा प्रतीक स्वरूप भारत ही नहीं, सुमेर बबलोन तथा मिस्र के राजाओं को लिये हुए दिखाया गया है । कहीं यह छोटा दिखाया गया है और कहीं लम्बा । मिस्र के फरोहा के हाथ में छोटा ऊपर घूमी हुई अथवा कशा किंवा चाबुक के रूप में आधुनिक काल में यूरोप के राजाओं किंवा रानियों के हाथ में दिखाया गया है । दण्ड राज्यशक्ति का प्रतीक है । अश्व जिस प्रकार कशा किंवा चाबुक के भय में चलता है । अनुशासित होता है; उसी प्रकार प्राणी दण्ड के कारण अनुशासित रहते हैं । समाज में सामाजिक प्राणी तुल्य व्यवहार करने के लिए बाध्य हो जाते हैं ।

पादटिप्पणी :

१०६ (१) **आशीर्वाद :** मंगलकामना द्योतक वाक्य किंवा मंगलकामना प्रकट करना आशीर्वाद है। मंगल तीन प्रकार के होते हैं (१) नमस्कारात्मक, (२) आशीर्वादात्मक तथा (३) वस्तुनिर्देशात्मक। कालिदास ने आशीर्वादात्मक मंगलों का प्रयोग किया है । कल्याण की कामना से आशीर्वाद दिया जाता है, जैसे–'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध श्रवा:' इसे आशीर्वादात्मक कहा जाता है। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रथम श्लोक इसी परिभाषा में आता है। वहाँ मंगलकामना आशीर्वादात्मक की गयी है ।

पादटिप्पणी :

१०७ (१) **कार्तवीर्य :** अर्जुन, सहस्रार्जुन तथा हैह्यापति कार्तवीर्य के नामान्तर हैं। उसे

दण्डधारे त्वयि क्ष्माप क्षितिमेतां प्रशासति ।
को वैरस्नेहयोः पारमनासाद्यवसीदति ॥१०८॥

१०८. 'हे ! क्ष्मापते !! दण्डधारी आपके क्षिति पर शासन करते, वैर और स्नेह को बिना परिणाम प्राप्त किये, कौन रह सकता है ?'

इत्थं कृतयुगध्येयैर्धर्म्यवृत्तान्तवस्तुभिः ।
स्वल्पोऽपि राज्यकालोऽस्य पर्याप्तैः पर्यपूर्यत ॥१०९॥

१०९. इस प्रकार सतयुग[1] स्मारक, पर्याप्त धर्म कृत्यों से, स्वल्प भी इस (राजा) का राज्य काल परिपूर्ण था।

सुदर्शन चक्र का अवतार माना गया है। (नारद १ : ७६) उसको एक शत सन्तानें च्यवन के शाप से मृत हो गयी थीं। केवल यह सप्तमी व्रत स्नान के कारण उस शाप से मुक्त हुआ था। दत्तात्रेय ने उसको एकाक्षरी मंत्र बताया था। बारह वर्ष पर्यन्त गणेश की आराधना का आदेश दिया था। गणेश की आराधना से उसे सुन्दर शरीर और सहस्र भुजा मिले थे। अतएव इसका नाम सहस्रार्जुन पड़ गया था। (गणेश : १ : ७२)

अमात्यगण कार्तवीर्य का राज्याभिषेक करने आये। उसने सिंहासन पर बैठना अस्वीकार किया। विचार किया। प्रजा द्वारा प्राप्त 'कर' का बदला ठीक चुका नहीं सकेगा।

गर्गमुनि ने सह्याद्रि की गुहा में दत्तात्रेय की उपासना का निर्देश किया। (मार्क० : १६) दत्तात्रेय की एक सहस्र वर्ष सेवा कर उसने चार बार सहस्रबाहु, अधर्मनिवृत्ति, पृथ्वीपालन, युद्ध में मृत्यु प्राप्त किया। उसने कर्कोट नाग से अवश्यदेश की माहिष्मती अथवा भोगवती नगरी जीता था। वहीं पर उसने नगर बसाया। दत्तात्रेय तथा नारायण ने इसका राज्याभिषेक किया था। (मार्क० : १७) स्वल्प काल में समस्त पृथ्वी उसने जीत ली। राक्षसों का वध किया। (नारद : १७६) रावण उससे युद्ध करने आया। सहस्रार्जुन अपनी पत्नियों सहित नर्मदा तट पर स्नान कर रहा था। उसने सहस्रों हाथों से नदी का प्रवाह रोक दिया। रावण की पूजा-सामग्री नदी का जलस्तर ऊपर उठने के कारण बह गयी। रावण क्रोधित हो गया। सहस्रबाहु पर आक्रमण कर दिया। सहस्रार्जुन ने रावण को पकड़ कर उसके साथी मंत्रियों को हतवीर्य कर दिया। पुलस्त्य ने अपने पौत्र रावण के पकड़े जाने की बात सुनी। कार्तवीर्य से पौत्र मुक्ति की प्रार्थना की। (वा : रा : उ : ३३, विष्णु) : ४ : ११; आ : रा : सार १३ : मा० ६. १५)

उसने पृथ्वी जीतकर अनेक यज्ञ किये। यज्ञ में एक रथ तथा ध्वज प्राप्त हुआ था। (मत्स्य० ३२ ह० वं० १ : ३३ मार्क० १७; पद्म सृ:१२ अग्नि० : २७५ : ब्रह्म० १३, विष्णुधर्म १ : २३) कालान्तर में वह प्रजा को कष्ट देने लगा। भगवान् ने परशुराम का अवतार लिया। शंकर ने परशुराम को यथेष्ट शक्ति दी। (कर्ण २५ : १४७-१५६ विष्णुधर्म २ : २३) अनन्तर परशुराम तथा कार्तवीर्य में युद्ध गुणावती के उत्तर, खाण्डवारण्य स्थित टीले पर हुआ। सहस्रार्जुन मारा गया। सहस्रार्जुन को सम्राट् तथा चक्रवर्ती कहा गया है (ह०:व०१:३३; पद्म०:१५; ब्रह्म०: १३, विष्णुधर्म १ : २३; नारद : १ : ७६)

लक्ष्मण के शक्ति लग कर मूर्छित होने पर भगवान् राम ने शोक प्रकट करते हुए लक्ष्मण को कार्त्तवीर्य से भी श्रेष्ठ कहा है। क्योंकि वे एक ही वेग से पाँच सौ बाणों की वर्षा करते थे (वा० : युद्ध ४० : २०)।

पादटिप्पणी :

१०९ (१) **सतयुग** : सतयुग को कृतयुग

स्रष्टुर्विष्टरपाथोजसंसर्गेण निरर्गलः ।
निबिडं जडिमा जाने व्यधत्त धियि संनिधिम् ॥११०

११०. ऐसा प्रतीत होता है कि आसन कमल के संसर्ग से ब्रह्मा[१] की बुद्धि में निरवरोध प्रबल जड़ता स्थान प्राप्त कर गयी ।

भी कहते हैं । सतयुग, त्रेता, द्वापर एवं कलियुगों में युग गणना, विभाजित की गयी है । कृतयुग में धर्म के चारों पाद रहते हैं । प्रत्येक युग धर्म एक दूसरे से भिन्न है । कृतयुग में तपस्या, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ तथा कलियुग में दान धर्म माना गया है । (मनु : ११८५-८६) कृतयुग में मनुष्यों की आयु ४०० वर्ष, त्रेता में ३०० वर्ष, द्वापर में २०० वर्ष तथा कलियुग में १०० वर्ष मानी गयी है । इसी लिये आशीर्वाद देते समय 'शतं जीवेत्' किंवा शतायु हो, कहा जाता है । सतयुग के पश्चात् क्रमशः धर्म गिरने लगता है । अधर्म की वृद्धि होने लगती है । किन्तु जम्बूद्वीप के नव वर्षों में केवल भारत-वर्ष में ही क्रिया प्रतिक्रिया होती है ।

चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं, त्रेता, द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥
(विष्णु० : २ : १६)

वैदिक ग्रन्थों में सत, त्रेता, द्वापर, कलियुगों के विभाग का निर्देश स्पष्टतया नहीं मिलता । स्मृतियों एवं पुराणों में चारों युगों का सविस्तार प्रतिपादन उपलब्ध है ।

वैशाखशुक्ल अक्षय तृतीया, रविवार को सत्य युग की उत्पत्ति हुई थी । इसका परिमाण १७,२८,००० वर्षों का है । इस युग में भगवान् ने मत्स्य, कूर्म, वराह एवं नृसिंह अवतार धारण किया था । स्वर्णमय पात्रों को सत्ययुग में प्रचुरता थी । मानव अत्यन्त दीर्घाकृति एवं अतिदीर्घ आयु वाले होते थे । प्रधान तीर्थ इस युग का कुरुक्षेत्र था । लोग पुरुषार्थ सिद्धि कर कृतकृत्य होते थे । अतएव इस युग का नाम 'कृतयुग' पड़ गया । धर्म चतुष्पाद पूर्ण था । मनु का धर्मशास्त्र एकमात्र अवलम्बनीय शास्त्र था । महाभारत में उल्लेख है कि कलियुग के पश्चात् कल्कि द्वारा सत्य युग की पुनः प्रतिष्ठा होगी । (वन : १९१ : १-१४, १४९ : ११–२५)

पादटिप्पणी :

११० (१) ब्रह्मा : ब्रह्मा पद्म से उत्पन्न हुए हैं । पद्म पर ही आसन लगा कर आसीन रहते हैं । कथा है कि विष्णु-नाभि से कमल नाल निकलता है । उस कमल नाल के प्रस्फुटित कमल पर ब्रह्मा पद्मासन से आसीन रहते हैं । शेषनागशायी विष्णु की नाभि से पद्म नाल पर ब्रह्मा, साथ में लक्ष्मी, नारद आदि के साथ विष्णु का चित्र भारत में सर्वप्रिय एवं प्रचलित है ।

सृष्टि के प्रारंभ में अन्धकार था । उस समय एक विशाल अण्ड प्रकट हुआ । उस अण्ड से प्रथम प्रजापालक देवगुरु पितामह ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ । (आदि : १:२९-३२) उनके मानस ६ पुत्र मरीचि, अग्नि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह तथा क्रतु उत्पन्न हुए थे । (आदि ६५-१०, ६६ : ४७) ब्रह्मा के दक्षिण अंगूठे से दक्ष तथा वाम से दक्षपत्नी का जन्म हुआ था । इनमें दक्षिण स्तन को भेदकर धर्म मनुष्य रूप में प्रकट हुआ था । (आदि : ६६-३०) ब्रह्मा के दो पुत्र और हैं । उनका नाम धाता एवं विधाता है (आदि ६६:५०) गाण्डीव धनुष का ब्रह्मा ने निर्माण किया था (आदि २२४ : १९) विष्णु भगवान् के नाभि कमल से उत्पत्ति आख्यान (वन : २०३:१०-१५) में कहा गया है । ब्रह्मा के शरीर से मृत्यु की उत्पत्ति हुई है । (द्रोण : ५३:१७-१८) ब्रह्मा की सृष्टि रचना का वर्णन सौप्तिक पर्व में किया गया है (सौ : १७-१०-२०) ब्रह्मा ने मानसिक संकल्प से कैलाश

विभक्तवर्णशोभस्य तस्याभावन्यथा कथम् ।
माहेन्द्रस्येव धनुषो विदधे दृष्टनष्टताम् ॥१११

१११. नाना वर्ण[1] रंजित इन्द्रधनुष सदृश वर्णाश्रम पालक भूपाल चन्द्रापीड़ का अभ्युदय मात्र कैसे विनाश होगा ?

पर 'मानस' सरोवर उत्पन्न किया था। (बाल : २४:८) पूर्व काल में ब्रह्मा ने ऋष्यमूक पर्वत की रचना की थी (अ : ७३:३०) विश्वकर्मा ने ब्रह्मा के लिए पुष्पक विमान की रचना की थी। उसे कुबेर को दे दिया था। (सुन्दर ९:११-१२) प्राणियों ने जब इनसे अपने कार्यों के विषय में पूछा तो इन्होंने जल की रक्षा करने के लिए कहा (उत्तर : ४:१२१०-११) उनमें कुछ ने कहा। वे जल का रक्षा करेंगे। कुछ ने कहा कि वे जल का पूजन (यक्षण) करेंगे। रक्षा करने वाले राक्षस तथा यक्षण करने वाले यक्ष हुये (उत्तर ४:१२-२३) ब्रह्मा का भवन मेरु पर्वत के केन्द्रीय शिखर पर स्थित था (उत्तर : ३६:७-८)।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १११ में 'विभक्त' का पाठभेद 'विविक्त' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१११ (१ **वर्ण :** कल्हण ने 'विभक्त वर्ण शोभस्य' शब्द का प्रयोग किया है। उसका अर्थ इन्द्रधनुष होता है। वर्णाश्रम में अनेक वर्ण होते हैं। उसी प्रकार इन्द्रधनुष में अनेक वर्ण होते हैं। कल्हण ने इन्द्रधनुष के वर्ण से वर्णाश्रम की उपमा दी है। इन्द्रधनुष वर्ण धारण करता है। इसी प्रकार राजा भी चातुर्वर्ण धारण करता है। उसको रक्षा करता है। वर्णधारक इन्द्रधनुष का वर्ण, जिस प्रकार क्षणिक होता है, लुप्त हो जाता है। उसी प्रकार वर्ण धारक राजा भी क्षण में ही लुप्त हो जाता है।

ऋग्वेद में वर्ण शब्द जाति वाचक बन गया है। इसका अर्थ रंग है। प्रारम्भ में दास एवं आर्यों के वर्ण का उल्लेख मिलता है। दास वर्ण (ऋ : १२:१४) आर्य वर्ण (**ऋ.** : ३:३४९) का विभेद भी दिखाया गया है। (गो: ब्रा: १:१:२३७ ; का. सं. ११:६९)।

ऋग्वेद काल में दो ही वर्ण मिलते हैं। किन्तु परवर्ती साहित्य में चारों वर्णों का पूर्णतः विकास उभर आया है। (श०ब्रा० ५५:२:९; ६:४:४:९:१३ ; बृ.उ. १:२:२५ ; ब्रा० ८:४ ; का: सं: ३४:५ ; पं.वि.ब्रा. : ५:१७ ; तै.ब्रा. १:२:६:७ ऋ. १०:९०:१२ ; अ. ११ : ६ : ६ ; वा. सं. ३१ : ११ तै. ब्रा. ३ : १२ : ५) एक प्रकार से चार वर्ण ब्राह्मण, राजन्य, वैश्य एवं शूद्र का उल्लेख मिल जाता है। एक मत है कि उक्त सूक्त बहुत बाद में जोड़ दिया गया है। पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि ऋग्वेद काल में वर्णव्यवस्था नहीं थी। पं. वि. ब्रा : (११:१, अवे : १५) में सिन्धु देशीय आर्यों को ब्राह्मण सस्कृति के अन्दर नहीं माना गया है। अतएव एक मत है कि वर्णव्यवस्था मध्यदेश में हुई थी। आर्यों का आदि स्थान सिन्धु देश में नहीं था। चतुर्वर्णों का ऋग्वेद में केवल पुरुष सूक्त में उल्लेख आया है। प्रथम तीन वर्णों का शेष तीन वर्णों से विपर्यय दिखाया गया है। ब्राह्मण शब्द ऋग्वेद में विरल है। क्षत्रिय कठिनता से एकाध बार आया है। (ऋ. ८:१०४:१३ ; १०:१०९:३) राजन्य, वैश्य एवं शूद्र का उल्लेख केवल पुरुष सूक्त में है। ब्राह्मण शब्द का प्रारम्भिक अर्थ कवि एवं साधु था। अनन्तर पुरोहित का वाचक बन गया (ऋ: १:१०८७ ; ४:५०:८ ; ८:७:२० ; ८:४५:३९ ; ८:५३ ७ ; ८:८१:३० ; २:११२:१ ; १०:८५) ब्राह्मण शब्द अनुभवी एवं ज्ञानी के लिए भी आया है। (ऋ. १०:१०७:६ ; १०:१२५:५) आर्य एवं अनार्य के

कारयित्वाऽभिचारं तं निग्रहोग्ररुषं द्विजम् ।
तं यशश्शेषतामीशं तारापीडोऽनुजोऽनयत् ॥११२॥

११२. अनुज तारापीड ने दण्ड के कारण, अति रुष्ट उस विप्र द्वारा अभिचार कृत्य सम्पन्न कराकर, उसे कीर्तिमात्र अवशेष कर दिया।

दुष्कर्मदुर्भगान् भोगान्भोक्तुं पापा गुणोन्नतम् ।
मृद्नन्ति कण्टकान्प्राप्तुं करभा इव केतकम् ॥११३॥

११३. पापी दुष्कर्म,दुर्भग भोगों के भोग हेतु गुणोन्नत जन को, उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे कण्टक की प्राप्ति के लिए, करभ (ऊँट) केतक (पादप) नष्ट कर देता है।

ततः प्रभृति भूपानां राज्येच्छूनां गुरून् प्रति ।
दुष्टाः प्रवृत्ता राज्येऽस्मिन्नभिचारादिकाः क्रियाः ॥११४॥

११४. उसी समय से इस राज्य में राज्येच्छुक भूपों द्वारा गुरुओं (श्रेष्ठ जनों) के प्रति दुष्ट अभिचारी क्रियायें प्रवर्तित हुईं।

रंगभेद के कारण वर्ण बना है। ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की तुलना इरानी अथर्वों तथा रथेस्थाओं से की जा सकती है। रंग एवं वर्ग दोनों ही वर्ण एवं जातिव्यवस्था के कारण माने गये हैं। महाभारत काल में वर्णव्यवस्था विकसित हो गयी थी। वहाँ कहा गया है कि गुण कर्म विभाग पूर्वक भगवान् ने चातुर्वर्ण की सृष्टि की है (भीष्म : २८:१३ शान्ति : २०७:३०-३३)।

पादटिप्पणी :

११२ (१) **कीर्तिमात्र :** राजा का शरीरान्त हो गया। उसके महान् कार्यों एवं गौरव की कीर्ति-काया जगत् में शेष रह गयी थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११३ में 'भोगान्भोक्तुं' का 'भोक्तुं भोगान्' तथा 'प्राप्तुं' का 'प्राप्तं' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

११३ (१) **करभ : केतक :** कल्हण ने पापी लोगों की उपमा करभ अर्थात् ऊँट से दी है। केतक पुष्पित होने पर सुगन्धि दान करता है। उसके सुगन्धित पुष्प किंवा गुण का किंचित् मात्र ध्यान न कर ऊँट केतकी की कटीले पत्ती आदि के लोभ से केतक को समूल नष्ट कर देता है। समूल नष्ट होने से उसका गुण भी नष्ट हो जाता है। पापी जन उन्नत जनों को नष्ट कर उसके साथ उनके गुणों को भी नष्ट कर देते हैं।

पादटिप्पणी :

११४ (१) **अभिचार :** कल्हण स्पष्ट वर्णन करता है कि इस समय से राजाओं एवं अन्य श्रेष्ठ जनों की हत्या हेतु अभिचारी क्रियायें आरंभ हुईं। इसने कश्मीर के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन में यथेष्ट उथल-पुथल किया है। उसने सामाजिक ढाँचे को समय समय पर इतना राजनीतिक धक्का दिया है कि समस्त समाज हिल उठा था। उसका वर्णन यथास्थान किया गया है।

वेद में अभिचार का उल्लेख मिलता है। शत्रु को मारने किंवा हानि पहुँचाने हेतु किये जाने वाले मन्त्र-पाठ किंवा यज्ञ को अभिचार कहते हैं। अथर्ववेद में अभिचार मंत्र का उल्लेख है (अ० ८:२:२६ ; १०:३:७ ; १९:९:९ ; श्री : २:३:५ ; १५:७:३५)। अभिचारित शब्द का भी उल्लेख मिलता है। (अथर्व : १०:४:९)।

श्रीचन्द्रापीडदेवस्य तत्क्षमित्वमपश्चिमम् ।
संस्मर्यमाणं कुरुते न कस्योत्पुलकं वपुः ॥११५॥

११५. उस चन्द्रापीड देव की अपूर्व क्षमता का स्मरण कर, किसका शरीर पुलकित नहीं होता ?

मुमूर्षुर्यत्स लब्ध्वाऽपि तं कृत्याधायिनं द्विजम् ।
वराकेऽन्यप्रयुक्तेऽस्मिन्को दोष इति नाब्रवीत् ॥११६॥

११६. मुमूर्ष (मरणासन्न) उसने उस अभिचारकारी द्विज को प्राप्त कर भी 'अन्य द्वारा प्रेरित इस बिचारे का क्या दोष है'—अतएव वध नहीं किया [१]।

विस्मृतः स कृतक्ष्माभृत्पङ्क्तिमध्येऽग्र वेधसा ।
दत्वा काकपदं नूनं न्यस्तः कलिनृपावलौ ॥११७॥

११७. विधाता सतयुगीन[१] नृपावली मध्य इस (राजा) को रखना भूल गये। अतएव निश्चय ही काकपद[२] रखकर, कलि नृपावली में रख दिया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११६ में 'कृत्याधायि' का पाठभेद 'कृत्याध्यायि' मिलता है।

११६ (१) कल्हण ने राजा की इस घटना का उल्लेख कर उसे राजर्षि ही नहीं उससे भी ऊपर उठा दिया है। जगत् में अनेक महान् राजा हुए हैं। अनेक सन्त हुए हैं। परन्तु शक्ति रहते अपने हत्यारे को दण्ड के लिये शक्ति का प्रयोग न करना विश्व के इतिहास में शायद ही कहीं ऐसा उदाहरण मिल सके। साधु या सन्त अपने हत्यारे को क्षमा कर सकते हैं। उनके पास भौतिक शक्ति नहीं होती। हत्यारे को दण्ड नहीं दे सकते। उनके पास साधन नहीं होता। किन्तु राजा सर्वसत्तासम्पन्न है। साधन सम्पन्न है। दण्ड दे सकता है। अपने ही हत्यारे को सन्त एवं साधु के समान क्षमा कर देना, समर्थ रहते भी अपनी सामर्थ्य का उपयोग न करना, एक ऐसा उदाहरण है, जो चन्द्रापीड को विश्व के राजाओं की परंपरा में बहुत ऊपर उठा देता है। क्षमा की उसने पराकाष्ठा कर दी है। कल्हण ने (श्लोक संख्या ११७) कहा है कि चन्द्रापीड सत्य युग के राजाओं की परंपरा एवं पंक्ति में रहने योग्य है। ब्रह्मा से भूल हो गयी थी। उसे कलियुग में उत्पन्न किया। कल्हण अप्रत्यक्षरूप से द्वापर, त्रेता एवं कलियुग के सब राजाओं किंवा नृपों से ऊपर चन्द्रापीड का स्थान रखता है। उसके जीवन का मूल्यांकन कल्हण ने स्वयं कर दिया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११७ में 'नूनं' का पाठभेद 'न्यूने' मिलता है।

पादटिप्पणी :

११७(१) सतयुगः इसका यह अर्थ है कि राजा को सतयुग में होना चाहिए था। गलती से कलियुग के राजाओं की तालिका में नाम होने के कारण कलि में जन्म लिया था। उसके नाम के सम्मुख काक पद चिह्न लगाकर भूल ठीक कर उसे सतयुग की राजावली में ब्रह्मा ने पुनः रख दिया।

(२) काकपद—संस्कृत साहित्य में किसी पद या वाक्य में यदि कोई विषय, शब्द किंवा अक्षर टूट जाता है तो उसके नीचे काकपद का चिह्न लगाकर ऊपर लिख दिया जाता है। कहीं-कहीं पार्श्व पर भी चिह्न लगा दिया जाता है। चिह्न

अष्टौ वर्षान् साष्टमासाननुगृह्येति मेदिनीम् ।
प्रविवेश वशी स्वर्गमनिशं च सतां मनः ।।११८।।

११८. वह वशी आठ वर्ष आठ मास पृथ्वी को अनुगृहीत कर, सज्जनों के मन एवं स्वर्ग में प्रवेश किया ।

भ्रातृद्रोहास्रसुहृदा प्रतापेन भयावहः ।
उवाह तारापीडः स चण्डः क्ष्मामण्डलीं ततः ।।११९।।

तारापीड[1]

११९. तदनन्तर भ्रातृ द्रोह के कारण रक्तरंजित प्रताप से भयावह उग्र, उस तारापीड ने पृथ्वी का भार ग्रहण किया ।

काकपद के समान प्रतीत होता है । अतएव उसे 'काकपद' कहते हैं । इसे 'कोव छंदों' भी कहते हैं । इसका प्रयोग 'कावत्सुन्द' रूप में अभी भी किया जाता है ।

कल्हण का तात्पर्य है कि राजा का स्थान सतयुग में था न कि कलियुग में । भगवान् ने भूल क्यों की उसी का यहाँ स्पष्टीकरण किया गया है । कलियुग में उत्पन्न होने पर भी राजा में सतयुग के ही सब उदात्त गुण थे । उस पर कलि का प्रभाव नहीं पड़ सका था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११८ में 'स्वर्गमनिशं' का पाठभेद 'स्वर्गविषादं' 'स्वर्गविषदं' तथा 'च सतां' का 'स च तां' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११९ में 'हास्त्रसुहृदा' का 'हास्रसुहृदा' 'हासुसुहृदा' ; 'उवाह' का 'उवाच' 'उवास' तथा 'मण्डलीं' का पाठभेद 'मण्डलं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११९(१)श्रीदत्त राजा तारापीड का राज्याभिषेक समय कलि ३७९४ = शक ६१५ = लौ० ३७६८ सन् ६९३ ई. ; श्री स्तीन लौ० ३७७२ वर्ष ८ मास १ दिन ; श्री एस. पी. पण्डित सन् ६९१ ई., पीर हसन विक्रमी संवत् ७५० देता है । सर्वश्री दत्त, स्तीन तथा पीर हसन तीनों ने राज्यकाल ४ वर्ष २४ दिन लिखा है ।

भ्रातृहत्या तथा दमन, दोनों ही पाप हैं । दोनों अपराध एक साथ हाथ मिलाकर साथी की तरह चलते हैं । बौद्ध नाटकों में गुण एवं अवगुण दोनों ही पात्र रूप में रंगमंच पर आते हैं । कार्य करते हैं । अपना रूप प्रकट करते हैं । बुद्धघोष का नाटक तालपत्र पर लिखा तुरफान में, कुशान काल की लिपि में मिला है । उसमें पात्र के रूप में बुद्धि, धृति तथा कीर्ति मिलते हैं । (प्रोफेसर लूडर का वर्णन प्रुशियन एकाडेमी सन् १९११ ई०)

आइने अकबरी में नाम तरनन्द तथा राज्य-काल ४ वर्ष २४ दिन दिया गया है ।

हसन लिखता है—'राजा तारापीड कि उसका असली नाम उदयादित्य था, विक्रमी ५७० में भाईकी वफात के बाद हकूमत का ताज सरपर रखा । इन्साफ पसन्द भाई के बरखिलाफ सितमगिरी, रूफाकी और खूंरेजी का शेवह अपना तरीका बना लिया । मखलूक खुदा को जौर वो जफा और जुल्म व दंगा से आजार और तकलीफ पहुँचाई । उसके आज़ार की सख्ती और उसकी आदात की मक्कारी से इस मुल्क के वाशिन्दे जंगल और पहाड़ियों में फ़रार अख्तियार कर गये । और बहुत से घर तबाह हो

पूर्णपात्रप्रतिभटं द्विषां लुण्टयता यशः ।
शिशोः प्रतापस्योत्पत्तौ कबन्धा येन नर्तिताः ॥१२०॥

१२०. पूर्ण पात्र समान शत्रुओं के यश का हरण करते, जिस नृपति ने प्रताप रूपी शिशु की उत्पत्ति[1] में, कबन्धों[2] को नर्तित किया।

तस्यातिदुष्टचेष्टस्य लक्ष्मीर्दीप्ताऽपि सर्वतः ।
अभूदुद्वेगजननी श्मशानाग्नेरिव द्युतिः॥१२१॥

१२१. उस अति दुष्ट चेष्टा वाले की सर्वतः दीप्त लक्ष्मी भी श्मशान की अग्नि की द्युति तुल्य उद्वेग जनक थी।

गये । ज़ालिम राजा पहाड़ियों की घाटी में गया, और भागने वालों को ज़बर और कहर से शहर लाकर अकसर उनको कत्ल कर दिया। इस वजह से इतराफ़ मुमलकत के कुछ हिस्से उसके कब्ज़े से निकल गये ।'

श्री आनन्द कौल राजा तारापीड (सन् ६-६-६७० ई०) द्वारा निर्मित एक मन्दिर का उल्लेख करते हैं । सिकन्दर बुतशिकन प्रसिद्ध जामा मसजिद श्रीनगर में इसी मन्दिर को तोड़कर उसके भग्नावशेष से सन् १४०४ ई० में बनवाया थी । यहीं पर वह मन्दिर था । यह स्थान बौद्धों का भी तीर्थ था । लद्दाख के बौद्ध वहाँ भी आया करते थे। उसे प्राचीन नाम त्सित्सुंग त्सुवलक कं कहते हैं । पृष्ठ २८।

पादटिप्पणी :

१२० (१) **उत्पत्तिः** यहाँ जातकर्म संस्कार से तात्पर्य है। यह चौथा संस्कार है। प्राचीन दश प्रमुख संस्कारों में एक संस्कार है। बालक के जन्म के समय होता है। फलित ज्योतिष का वह अंग जिसमें नव-जात शिशु का शुभाशुभ फल कहा जाता है। जन्म दिवस पर पूजा-पाठ, उत्साह, प्रसन्नता, एवं आनन्द प्रदर्शन करने के लिये मंगलगान के साथ नृत्यादि का आयोजन किया जाता है।

(२) **कबन्ध**–युद्ध स्थल में रक्तपात, हत्या, शवादि देखकर कबन्ध प्रसन्नतः से नाच उठते हैं।

कबन्ध का अर्थ मस्तक विहीन शरीर होता है। प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि मस्तक विहीन शरीर भी रणभूमि में मस्तक छिन्न हो जाने पर भी लड़ता था। गाथा का मूल स्रोत अनार्य है। भीलों तथा राजपूताने (राजस्थान) की अनेक जातियों में इस प्रकार की गाथाएँ बहुत प्रचलित हैं।

कबन्ध की कथा वाल्मीकि रामायण अरण्य काण्ड तथा महाभारत के सभा एवं वन पर्व में दी गयी है। दण्डकारण्य में कबन्ध राक्षस निवास करता था। जटायुबध के पश्चात् राम लक्ष्मण देवी सीता की खोज में वन में घूमने लगे। जनस्थान से तीन कोश दूर जाकर वे क्रौञ्चारण्य में पहुँचे। तीन कोश पूर्व जाकर मतंग ऋषि के आश्रम में पहुंचे। पर्वत पर उन्हें एक गुफा दिखायी पड़ी। वहाँ पर बीभत्स, रौद्ररूप अयोमुखी राक्षसी दिखायी दी। राक्षसी ने लक्ष्मण से विवाह की याचना की। लक्ष्मण ने उसके कान-नाक आदि काट लिये। राक्षसी भयंकर नाद करती भाग गयी।

अनन्तर भयंकर कबन्ध जिसका मुख उसके पेट में था। राम-लक्ष्मण के सम्मुख आया। उसे केवल एक नेत्र था। ज्वाला तुल्य धधकता था। उसने अपनी लम्बी भुजा से राम एवं लक्ष्मण को बाँध लिया। राम ने उसकी दाहिनी भुजा खड्ग से काट दी। कबन्ध का वध कर उसे जला दिया। चिता से दिव्य पुरुष शाप द्वारा कबन्ध हुआ अपने सुन्दर रूप में निकला वह विश्वावसु गन्धर्व था। उसने देवी सीता के अन्वेषण की योजना बनायी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२१ में 'चेष्टस्य' का पाठभेद 'देष्टस्य' तथा 'दिष्टस्य, मिलता है।

मन्त्रैः प्रभावसांनिध्यं देवानां क्रियते द्विजैः ।
मत्वेति देवद्वेषी स द्विजानां दण्डमत्यजत्॥१२२॥

१२२. ब्राह्मण, मन्त्रों द्वारा देवों का प्रभाव सांनिध्य प्राप्त करते हैं, यह जानकर, देव विद्वेषी वह, द्विजों का दण्ड देना, प्रारम्भ किया ।

मासं षड्भिर्दिनैरूनं चतस्रश्च समा भुवि ।
स प्राभवद् गुरुद्रोहप्ररोहत्सुकृतात्ययः ॥१२३॥

१२३. गुरुद्रोह के कारण, क्षीण पुण्य यह राजा, छ दिन कम, एक मास चार वर्षः पृथ्वी पर रहने में समर्थ हुआ ।

अथ गूढाभिचारेण विहितायुःक्षयो द्विजैः ।
स भ्रातुः सदृशीं शान्तिं प्रपेदे न पुनर्गतिम् ॥१२४॥

१२४. तत्पश्चात् द्विजों ने गुप्त अभिचार द्वारा उसकी आयु भी नष्ट कर दी, और वह राजा, भ्राता सदृश शान्त हो गया, किन्तु उसकी गति नहीं पायी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२३ में 'मासं' का "मासैः" पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ११२वाँ श्लोक है ।

१२३ (१) **गुरु शब्द** : विशेषण तथा संज्ञा दोनों रूपों में प्रयुक्त होता है । बृहस्पति को देव गुरु और मीमांसक प्रभाकर को भी गुरु कहते हैं । अपने से सम्बन्ध में ऊँचे व्यक्ति को भी गुरु कहते हैं । माता, पिता, भाभी, भाई, चाचा-चाची, नाना-नानी, मामा-मामी, पितामह-पितामही आदि को गुरु कहते हैं । भारत की धार्मिक पृष्ठभूमि में गुरु उस पुरोधा, आचार्य अथवा अध्वर्यु को कहते हैं, जो शिक्षक का कार्य करता है । महापातकों में गुरु-द्रोह एक महापातक है । गुरुका स्थान इतना ऊँचा माना गया है कि, उसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर आदि के समकक्ष रखा गया है ।

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

भारतीय गुरु की कल्पना अद्वितीय है । गुरु-परंपरा वैदिक एवं पौराणिक काल में प्रचलित थी । हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन, बौद्ध तथा सिखों ने भी गुरु परंपरा स्वीकार की है । मनुस्मृति के अनुसार (२ : १४२) गुरु उसे कहा जाता है जो शिष्यों के अनेक संस्कारों को सम्पन्न करता है । उसके भोजन आदि की भी व्यवस्था करता है । बृहस्पति ने वेदादि के शिक्षक को गुरु कहा है । तांत्रिक परिभाषा में 'ग' कार सिद्धि 'उ' कार विष्णु तथा 'रेफ' पाप हरण के लिए माना गया है । गुरु गृहस्थ तथा विरक्त दोनों होते थे । आज भी होते हैं । चाणक्य तथा मनु ने केवल ब्राह्मण को ही गुरु मानने का विधान किया है । वैदिक काल में जनक, विदेह, अश्वपति कैकेय जैसे क्षत्री भी गुरु हुए हैं । निर्गुण परम्परा में नाथ, निरंजन आदि संप्रदायों में गुरु की महत्ता असाधारण मानी गयी है । मनु के अनुसार एक युवा किंवा बालक भी क्षमता रखने पर गुरु हो सकता है । गुरु यदि कोई बात शिष्य से विद्यादान में प्रकट नहीं करता, तो वह पाप माना गया है । छान्दोग्योपनिषद् का कथन है कि यदि गुरु स्वतः कोई बात शिष्य से छिपाता है, तो वह देवताओं के सम्मुख अपराधी कहा गया है ।

योऽयं परापकरणाय सृजत्युपायं
तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः ।
धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्नि-
र्भूत्वाऽम्बुदः स शमयेत्सलिलैस्तमेव ॥१२५॥

१२५. दूसरे के अनुपकार हेतु, जिस उपाय की सृष्टि जो करता है, उसी उपाय से उसका विनाश होता है, अग्नि नयन को अन्धा करने वाले जिस धूम को उत्पन्न करता है, वही बादल होकर, सलिल द्वारा उसी का शमन करता है।[1]

जिस प्रकार मन्त्रियों का पाप राजा, स्त्रियों का पाप पतियों को लगता है, उसी प्रकार शिष्यों का पाप गुरुओं को लगता है। जीविका अर्जन करने वाले शिक्षकों तथा वेतन प्राप्त कर पठन-पाठन कराने वालों को मनु ने वणिक् कहा है।

गुरु का इतना महत्त्व था कि एकलव्य ने अपना अंगूठा काटकर, गुरु द्रोणाचार्य को देकर, अपने जीवन का उद्देश्य ही समाप्त कर दिया था। गुरु को धोखा देने या उनसे मिथ्या भाषण करने का भीषण परिणाम होता है। परशुराम को गुरु मानकर शिक्षा ग्रहण कर ब्राह्मण बने, कर्ण को शाप के कारण अंतिम काल में समस्त युद्ध-विद्या विस्मृत हो गयी थी। गुरु की आज्ञा पालना कर्तव्य एवं उनका द्रोह पाप माना गया है, जिसका परिणाम सदा भयावना होता है।

गुरुमुख होना हिन्दुओं में कर्तव्य समझा जाता है। बिना गुरुमुख या कोई गुरुदीक्षा लिये मुक्ति नहीं पा सकता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२५ में 'यम' का पाठभेद 'चयो' मिलता है।

पादटिप्पणी :

राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ११३ वाँ श्लोक है।

१२५ (१) कल्हण ने इस पद में एक मौलिक नैतिक सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए, दो उदाहरण उपस्थित किये हैं। किसी का अनुपकार करने के लिए जिसे साधन बनाकर कार्य लिया जाता है, उसी साधन से अनुपकारी भी नष्ट होता है। यदि शास्त्र का आश्रय लेकर अथवा धन का आश्रय लेकर दूसरे का अनुपकार करते हैं तो एक समय आता है कि उसी शास्त्र एवं धन का आश्रय लेकर दूसरे भी अनुपकार करते हैं। तथ्य है कि हिंसा का आश्रय लेकर जो क्रान्तियाँ की गयी हैं, उन क्रान्तिकारियों को क्रान्ति की हिंसा प्रवृत्ति ही खा जाती है। फ्रान्स, इंगलैण्ड, रूस के प्राचीन उदाहरणों के अतिरिक्त मिस्र, बर्मा, इराक, सीरिया आदि के ज्वलन्त उदाहरण आँख खोलने के लिए पर्याप्त हैं।

कल्हण ने एक दूसरा उदाहरण उपस्थित कर अपने काव्य एवं तर्क का अच्छा उदाहरण उपस्थित किया है। धूआँ आँख में लगता है। व्यक्ति आँख बन्द कर लेता है। आँख से जल बहने लगता है। धूआँ मनुष्य को अंधा तुल्य बना देता है। अग्नि धूआँ को उत्पन्न करता है। यह जानकर उत्पन्न करता है कि वह दूसरे को कष्ट देगा, उन्हें अन्धातुल्य बना देगा। परन्तु वही धूम आकाश में पहुँचकर, बादल बनने में सहायक होता है। धूमस्वरूप बादल बरसता है। वही बरसता जल धूम उत्पन्न करने वाले अग्नि का सर्वनाश कर देता है। अग्नि की ऊष्मता का नाश हो जाता है। दूसरे प्रकार से और तर्क

राजा श्रीललितादित्यः सार्वभौमस्ततोऽभवत् ।
प्रादेशिकेश्वरस्रष्टुर्विधेर्बुद्धेरगोचरः ॥१२६॥

ललितादित्य (मुक्तापीड)[1]

१२६. ब्रह्मा ने प्रादेशिकेश्वर रूप में उसकी सृष्टि की थी किन्तु अनन्तर ब्रह्मा की बुद्धि से भी अगोचर श्री ललितादित्य[1] सार्वभौम राजा हुआ।

दिया जा सकता है। ऊष्मता के कारण समुद्र से भाप उठता है। उसका रूप धूआँ जैसा होता है। वह बरसता है। पानी बरसते ही ऊष्मा का लोप हो जाता है। गर्मी भागती है। शीत आती है। गर्मी अपने द्वारा उत्पन्न किये भापस्वरूप व्योम में स्वयं शीतल हो जाती है। वायुयान में यात्रा करने पर यह बात और स्पष्ट हो जाती है। वायुयान बादलों के मध्य चलता है तो वहाँ बादल का स्वरूप बिलकुल धूआँ जैसा लगता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १२६ में '-ादेशिक' का पाठभेद 'प्रादेशक' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१२६ (१) **ललितादित्य** : ललितादित्य मुक्तापीड की दो ताम्र मुद्रायें मिली हैं। ललितादित्य का अपर नाम प्रतापादित्य था। मुद्रा के एक तरफ लक्ष्मी देवी और श्रीप्रताप तथा दूसरी तरफ दण्डायमान राजा तथा कि(दार) टंकणित है। श्री ललितादित्य किंवा प्रतापादित्य की मुद्रायें भिटवारी गाँव फैजाबाद, बाँदा, राजघाट, सारनाथ (वाराणसी), पटना, मुँगेर, तक मिली हैं। किसी भी कश्मीर के राजा की मुद्रा कश्मीर से विहार अभी तक नहीं मिली है। ललितादित्य के उत्तरभारत में फैले प्रभाव को प्रकट करता है। कल्हण वर्णन करता है कि ललितापीड कन्नोजराज यशोवर्मन को पराजित करता उड़ीसा तक पहुँचा था। ललितादित्य ने हो प्रतापादित्य का विरुद धारण किया था। (रा : ४ : १३४)।

श्री दत्त राजा ललितादित्य मुक्तापीड प्रथम का राज्याभिषेक काल कलि ३७९८शक ६१६ = लौ० ३७७३ = सन् ६९७ ई० श्री स्तीन लौ० ३७७६ वर्ष ६ मास २५ दिन, श्री एस० पी० पण्डित सन् ६९५ ई०, श्री ट्रायर सन् ६९५ ई० ११ मास, श्री कनिंघम सन् ६९३ ई० २ मास, श्री विलसन सन् ७१४ ई० १ मास, श्री पीर हसन विक्रमी संवत् ७५४ तथा श्री वाली सन् ५८५ ई०, एवं राज्यकाल सर्वश्रीदत्त, स्तीन, पण्डित ने ३६ वर्ष ७ मास ११ दिन तथा पीर हसन ने केवल ३६ वर्ष ७ मास दिया है।

आइने अकबरी में नाम लुल्लदत्त तथा राज्यकाल ३६ वर्ष ७ मास ११ दिन दिया गया है। आइने अकबरी के अनुसार वह गौरवशाली राजा था। राज्य का विस्तार किया था। भगवान् की कृपा से उसने ईरान, तुरान, फारस, हिन्दोस्तान, तथा जहाँ भी मानव आबादी थी विजय किया था। उसकी मृत्यु उत्तरीय पर्वतमाला में हुई थी। कहा जाता है कि एक साधु के शाप के कारण वह पत्थर हो गया। उसके सम्बन्ध में अनेक उत्तम गाथाएँ प्रचलित हैं।

ललितादित्य यशस्वी राजा था। उसका नाम चीन के पुरावृत्त में मिलता है। यह उल्लेख तंग वंश के कागजपत्रों में मिला है। उससे प्रगट होता है। काश्मीरराजा—मु-तो-पी (मुक्तापीड) के समय सम्राट हुए-न-त्सांग का (सन् ७१३-७५५ ई०) और प्रथम चीनी अभियान 'पो-लि-' वालतिस्तान के विरुद्ध सन् ७३६-७४७ ई० के मध्य हुआ था। राजा ललितादित्य ने तिब्बतियों के विरुद्ध चीन-सम्राट् से सन्धि प्रस्ताव रखा था। सम्राट् से तिब्बतियों के विरुद्ध सैनिक सहायता भी माँगी थी। चीनी सेना कश्मीर के मध्य महापद्म सर अर्थात् उलर लेक के समीप शिविर स्थापित करने वाली

थी। राजा मुक्तापीड ने दो लाख सैनिकों के प्रबन्ध का विश्वास सम्राट् को दिलाया था। मध्य देश के भारतीय राजा की सहायता से तिब्बत के पाँचों मार्गों को बन्द कर दिया था।

(संक्षिप्त विवरण म-तू-अन-लि सन्दर्भ में ए० रेमुसट्स के अनुवाद नौव, मेलं गेस एसिपट १,१७६ कल प्रौथ के मेम्वायर दलोटिफस अ० लें० एसी २ : २७५ इंडिया एण्टीक्वेरी २ : १०२ तथा मेमर्स लेवी तथा चवान्नेस जनरल एसिपट सन् १८९५ई०: ३५१ में मिलता है।)

मुक्तापीड ललितादित्य की शक्ति के सम्बन्ध में चीनी पुरा साहित्य चाहे जो उल्लेख करे किन्तु यह निर्विवाद है कि 'मु-तो-पी' कश्मीर का राजा मुक्तापीड है। कश्मीर के दूत का समय चीनी पुरावृत्त में नहीं दिया गया है। अतएव कल्हण ने मुक्तापीड का जो समय दिया है, उससे तुलना नहीं की जा सकती। कल्हण ललितादित्य का राज्यकाल सन् ७०० से ७३६ ई० देता है। इसी पुरावृत्त से रा. ४ : ४५ वर्णित चन्द्रापीड के समय में २५ वर्षों का शुद्धिकरण रह जाता है।

रोनाडड मेम्वायर पृष्ठ १८९ पर उल्लेख करते हुए गंभीर सन्देह प्रकट किया गया है कि युद्ध की स्थिति अवश्य उत्पन्न हो गयी होगी। ललितादित्य के समय में पश्चिमोत्तर भारतीय सीमा पर मुसलिम खतरा बढ़ने लगा था।

कन्नौज अपनी पुरानी गरिमा हर्ष के पश्चात् खोता गया। ललितादित्य के समय यशोवर्मा (सन् ७२५–७५२ ई०) कन्नौज का राजा था। उसने सन् ७४३ ई० में चीन सम्राट् के पास बुद्धसेन को अपना राजदूत बनाकर भेजा था। सम्राट् से प्रार्थना की थी। कश्मीर और कन्नौज के विवाद में मध्यस्थ बनकर मामला निपटा दें। चीनी इतिहासकारों ने उसका ई-चा-फोन-मो नाम से उल्लेख किया है।

इसकी सम्भावना अधिक प्रतीत होती है। (अल्बेरूनी इण्डिया २ : १७८) जब कश्मीर राजा का उल्लेख करता है तो उसके दिमाग में मुक्तापीड ही था। वह कश्मीर के राजा को मुत्ते लिखता है। कश्मीरी तुर्कों पर विजय उत्सव चैत्रमास की द्वितीया को मनाते थे। उनके अनुसार, अल्बेरूनी लिखता है—'मुक्तापीड ने विश्व पर शासन किया था। किन्तु यह बात कश्मीरी अपने प्रायः सभी राजाओं के विषय में कहते हैं। वे इस विषय में इतने प्रमादी हैं कि उसका वही समय देते हैं जो हमारे समय के बहुत पूर्व है और उनकी बातों को मिथ्या-बता देता है।' प्रोफेसर ब्हुलर (इण्डियन एण्टी-क्वेरी १९ : ३८३) लिखते हैं 'फारसी लिपि में लिखा गया है 'मती-मुत्तपीर' वास्तव में मुक्तापीड शब्द का अपभ्रंश है।' श्री स्तीन ओंकुंग के नोट (पृष्ठ ५) में लिखते हैं—'मैंने दिखाया है कि सम्भवतः मुक्तापीड का एक निर्देश उस चीनी यात्री के पर्यटन में मिलता है।'

(२) **सार्वभौम** : इसका अर्थ है 'सब भूमि का सम्राट्। यह प्राचीन राज पद है। मुद्राराक्षस नाटक में भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। (३ : २२) वाक्पति के प्राकृत काव्य गौड़वहो तथा कल्हण के ललितादित्य युद्ध अभियान वर्णन तथा शैली में बहुत कुछ साम्य है। यूरोपीय विद्वान् ललितादित्य को जिस काल में कल्हण रखता है' उसमें शंका करते हैं।

शुक्रनीति ने राज्यों का वर्गीकरण किया है—सामन्त, माण्डलिक, राजन, महाराज, स्वराज, साम्राज, विराज तथा सार्वभौम। शुक्रनीति ने उनके आय का भी उल्लेख रजतकर्ष में किया है—सामन्त–१–३ लाख, माण्डलिक ४-१० लाख राजन् ११-२० लाख, महाराज २१-२५ ५० लाख, स्वराज ५१-१०० लाख, साम्राज १-१० करोड़, विराज-११-५० करोड़ कर्ष, सार्वभौम ५१ करोड़। सार्वभौम राज के आय को कोई सीमा नहीं है। पुरातन राज्य वर्गीकरण की वह चरम सीमा है।

हसन लिखता है—'राजा ललितापीड ने कि उसका लकब मुकतापीड था। विक्रम सं० ७५४ में ज़ालिम भाई के कूच करने के बाद मुल्क की दुलहिन को अदल इन्शाफ के जेवर के साथ आरास्ता करके, आसपास के मुल्क जो उसके भाई के अहद में हाथ से चले गये थे, अपने कब्जा अक़दार में लाये। सल्तनत के ज़ब्त व रब्त और नज़म व नस्क के बाद इरादह का झण्डा बुलन्द करके, भारी फौज और काफी सामान के साथ पंजाब और देहली को फतह कर लिया। इसके बाद कन्नौज के राजा के साथ जंग व जदल करके मगलूब किया और उसके वजीर मेतर शरमा को गिरफ्तार करके कैद कर लिया। आखिरकार मगलूब राजा ने इलामत का हलका गरदन में डालकर सारी खराज अपने ऊपर लाज़िम कर लिया और अपने मुल्क महरुसा पर दोबारह क़ाबिज़ हो गया।

'ललतादित ने वहाँ से कूच करके गौड़ देश (बंगाल) की दरियाए कालका तक फतह कर लिया। और शहर कलिंग पर कब्जा करके बिहार की तरफ चला। राजा बिहार आजजी इन्कसारी से पेश आया। इसलिए अपनी हकूमतपर फिर मुश्ता-क़बल हो गया। यहाँ से दरयायेगंगा के रास्ता से अपनी फौज ज़फर मौज ने साथ मुल्क बंगाला पर चढ़ाई की। काफी जंग व जदल के बाद बंगाला के राजा को शिकस्त के भँवर में गर्क करके उसका तमाम माल असवाब और हाथी घोड़े ग़नीमत पाकर दरयाए शोर के किनारा तक बहुत से शहर और मुमालिक फतह कर लिए। इसके बाद जगन्नाथ जी के तवाफ से बहरह पाव होकर वहाँ के बरहमनों को बेशुमार नजर व खैरात बख्शी। इसके बाद दक्खिन की तरफ रवाना होकर उस तरफ राजाओं को मतीअ बनाकर अपने मौरुसी मुल्कों पर दोबारह काबिज़ बनाया। रटा नाम की एक औरत जो दक्खिन के किसी एक मुल्क पर हाकिम थी भारी भोज और कोह शकोह हाथों के साथ जंग के लिए निकलकर मरदाना कोशिश की। आखिरकार अला-मत के आस्ताना पर सर रखकर अपना हकूमत पर फायज़ हो गयी। बादहू बंगाला के मुज़ाफात को दर-याए काबेरी के किनारह तक कब्जा कर लिया। यहाँ पर नारियल की शराब के खम खाने जो कभी आँख से न देखे थे मिले और उनके पीने से फौज की थकावट और सफर की तकलीफ दूर हो गयी।

'इसके बाद सरनदीप, सिंगल दीप, गुजरात और मालवा को अपने कब्जा इक्तदार में लाया और द्वारका और अज़ी फतह करके पंजाब के रास्ता से इरादह की लगाम काबुल और खुरासान की तरफ मोड़ी। काबुल हिरात और खुरासान फतह के बाद बुखारा की तरफ चला। वहाँ का हाकिम मौमिनखां मुकाबिला के पेश आया। चार दफा दाद शजाअत देकर बिलआखिर भाग गया। आखिरकार हाथ अमन के दामन डालकर वाज़ व खराज़ क़बूल किया। यहाँ से झण्डा बुलन्द करके समरकन्द, ताशकन्द, खोकन्द, काशगर, तंगान, और खुतन के ममालिक लड़ाई और सुलह से अपने कब्जे में लाकर तुरकिस्तान के तमाम ममालिक और शहर फतह कर लिए। यहाँ सामान व असबाब और बेशुमार दौलत फर्श और हाथी जमा कर लिए। बारह साल के बाद तिब्बत के रास्ता में खित्ता दिलपंजीर में पहुँचा। ग्यारह करोड़ दीनार बोतेश्वर के मन्दिर पर बतौर खैरात चढ़ाये। लाहौर और जालन्धर अपने मात-हतों के कब्जा में छोड़ दिये।

'हिन्दुस्तान और तुरकिस्तान के फतह करने के मौका पर हर शहर और हर जगह से अक़लमन्द और फाजिल लोग अलूमगरीबां और फनून अजोबा में मुमताज थे मुन्तख़ब करके अपने साथ कश्मीर में लाया। इनमें एक शख्स चनकुन नामी अक़लमन्द था। यह शख्स फनकीमिया और अलूम-गरीबां में लाशानी था। इसे अपनी वज़ारत और मुसाबहत के लिए पसन्द किया। हकूमत का काम इसी के सायबराये से अंजाम पाता था।

'कहते हैं कि शाही फौज मुल्क भक्कर को फतह करते वक्त ग़नीम के ग़लवा के वायस मुँह मोड़कर

भागने लगी। रास्ता में गज़ब आलूद दरया पेश आया जिससे अबूर करना नामुमकिन था। वजीर बातदबीर ने एक जौहर अपनी बगल से निकाल कर दरया की गहराई में डाल दिया। जिससे पानी में उसके बीचों बीच शगाफ पैदा हो गया और अबूर का रास्ता निकल आया। लश्कर व असबाब व घोड़े और चौपाए आसानी से गुजर गये और हर एक शख्स ने हलाकत से निजात पाई। वज़ीर ने एक दूसरा ज़ौहर पहले जौहर को दिखाया जिसकी कशिश से वह जौहर दरया से निकलकर वज़ीर के हाथ में पहुँच गया और दरया का पानी बदस्तूर बहने लगा।

'हिन्दुस्तान के फतह के मौका़ पर एक मजरूब और मजरूह शख्स जिसकी नाक कटी हुई थी राजा के सामने हाजि़र हुआ। और बतौर फरयादियों के अर्ज की कि मलूका समन्दर एक दूर व दराज़ की वलायत है। जिसके इर्द-गिर्द रेगिस्तान और कोहिस्तान वाका है। और रास्ता में कोई आबादी नहीं है। उसका हुक्मरान गरूर की शराब से मस्त है। क्योंकि रास्ता की सख्ती और बेचैनी की वजह से मुखा़लिफों से कोई आदमी भी उसके मुल्क में नहीं पहुँच सकतां।

'इस वक्त खैर अन्देशी तौर पर मैंने उसके फ़रमाइश की कि इस वक्त राजा ललितादित्य किस्मत की मदद से सरकशों को जोरों जवर करता है। उसकी पैरवी हमारे ऊपर वाजिब है। ताकि मुल्क व माल महफूज रहे और रिआ।ा को तकलीफ और जबाल न पहुँचे। गलती के सादिर होने पर मुझे अजाब के शिकंजा़ में डालकर इस हालत तक पहुँचा दिया। ललितादित्य ने उसका इलाज कराया। यहाँ तक कि उसके जखम मन्दमिल हो गये।

'उसके बाद वह बदज़ात हमेशा ललितादित्य को अपने मुल्क के राजा और तम्बीह और सजा के लिए तरगीब और तहरीर करता था। ललितादित ने उस रास्ता और उस तरफ के कवायद उससे दरयाफत किये। उस आदमी ने बयान किया कि हमारे मुल्क के दो रास्ते हैं। उनमें से एक आसान रास्ता है और पानी और चारह हर जगह मुमकिन है। लेकिन तीन माह की मुद्दत तक यहाँ पर बराबर चलना है। और दूसरा रास्ता पन्दरह दिन तक में तै किया जाता है। लेकिन बहुत दुशवार और मुशकिल से है। और पानी और चारा नायाब।

'राजा ने उसके बयान के मुताबिक दो हफ्ता की तमाम ज़रूरियात सरंजाम देकर जरार लश्कर के साथ दुशवार रास्ता से दो हफ्ता की मुद्दत तक रेगिस्तान दरमियान चलकर रास्ता ज़ाहिर न हुआ। इसके बाद बदअकल रहवर को दरबार आली में हाजिर किया और हकीकत राह पूछी। बयान किया कि इस दुशवार रास्ता की कोई इन्तहा नहीं है। मेरा यह मतलब था कि तुम जैसा कजकलाह और व शान व शौकत वाला बादशाह पश्श के हाथ से हलाक हो और हमारे मुल्क के राजा को तेरे हाथ से कोई तकलीफ और अजा़र न पहुँचे। नामवर राजा और उसकी सारी फौज इस खबर के वाका होने से खौफ व खतरे के भंवर में पड़ गयी। इन्शाफपसन्द राजा ने अपनी फौज को दिलासा से तसल्ली फरमाई और खुदगमगीनी हालत कमाल अज्ज़वज़ारी से दरगाहवारी रहाई की इल्तजा की।

'चन्कुन वजीर ने अज़रूए तदवीर ज़मीन की रगों की तशखीश करके मुनासिब मौका़ पर एक गहरा कूआं खोदा। यहाँ तक कि पानी जाहिर हो गया। और लश्कर और चौपाए सीराव हो गये। इसके बाद बरतनों में पानी हमराह लेकर बड़े मसाकत तै करने के बाद उस मुल्क में वारिद हुए। और वहां के राजा का किला फतह करके दूसरे रास्ते से लौटे। इसी तरह अजीब व गरीब हालात वजीर के कारनामों से बहुत यादगार है।

'जिस वक्त राजा ललितादित खित्ता दिल वजीर में मुकीम हुआ तो मुल्क और रियाया की

आबादी और दिहात और कसबाजात की तजदीद और बुतखाने मिहमानसरा व शफाखाना जात की तामीर में बहुत कोशिश की उनमें से ललतापूर, लखपत पूर, रीतपुर, लीलापुर, कसवा पूछ, परसपूर और लोकभवन है। मौजा ललितापुर में सूरज का मन्दिर तामीर करके फनूज का ख़िराज उसके इखराजात के लिए वक़्फ कर दिया और मौजा हाकुराह में मुक्तास्वामी का मन्दिर और कोह महादेव पर महादेव स्वामी मन्दिर तामीर किया। और हरेक मन्दिर के कवा की मुलमा साजी में एक लाख हजार तौले सोना सरफ किया और परसपूर में टीला की बुलन्दी पर परिहास केशव का मन्दिर निहायत बुलन्दी और मजबूती के साथ तामीर किया और उसके गुम्बद को बीस लाख सोलह हजार तोले चान्दी से मुलम्मा किया और उसके सहन में एक पत्थर का थम पचास हाथ लम्बा और पचास गज नासब किया और उसके मुतासिल की मौज़ा देवर में मुक्ता केशव का मन्दिर निहायत बुलन्द और संगीन तैयार किया कि चौरासी हजार तोले उसके गुम्बद फी चोटी पर मुलम्मा किया था। और बुद्ध अवतार की चौरासी हज़ार मूर्तियाँ सोने चान्दी और कान्सा से दुरुस्त करके परसपुर के मन्दिर में नमब की थी। और बुतखाना मारतण्डशूर की मरम्मत के लिए जो मटन के टीलों पर वाक़ा है काफी रुपया सर्फ किया और ज्येष्ठेश्वर का मन्दिर कि कोह सुलेमान की बुलन्दी पर नुमाया है मरमत और तजदीद से दुरुस्त फरमाया और चक्रदर की बुलन्दी पर कि बैजबारह में वाक़ा है। रहट के जरिया पानी जारी किया और नहरों और वन्दों की मरम्मत से काश्तकारी की तरक्की आला दरजा पर पहुँचा दिया। नरसिंह औतार का मन्दिर बनाया। और मौज़ा शीरदरी में एक पुराना मन्दिर जो ज़मीन के नीचे छुप गया था ज़ाहिर किया। जिसके दरवाजे के पत्थर पर लिखा हुआ था कि यह मन्दिर श्री रामचन्द्र और लछमन जी ने तामीर फरमाया है।

'और एक देग बनाई थी जिसमें हजार आदमियों के लिए खाना पकाया जाता था और एक लाख आदमियों को रोजमर्रा अपने लंगर से रोटी देता था। और उसकी बीबी चकरा हरानी ने चकरीपूर सात हजार घरों की आवादी के साथ बसाया।

'ललितादित आदिल सखी, नेक खसलत रैय्यत परवर राजा था। लेकिन दूसरी खसलते उसकी जात में बुरी थी। एक यह कि हालत मस्ती में बेजा हुक्म देता था। और दूसरे यहाँ कि वादह मवादह और कसमों का पूरा न था। चुनांचः बंगाला के राजा गोर को वादह और कसम से अपने साथ लाके यहाँ क़तल कर दिया। इस नामुबारक क़लाम के सुनने से उसके मुतवसिल और मन्सूब इन्तकाम के इरादह से मख़लूक की एक जमाअत लेकर इस जगह पहुँचे और शाम तलवार मियान से निकालकर बहुत से बड़े बड़े अमरा को क़तल कर दिया और परीहास केशव और मुक्ता केशव के मन्दिरों को दरहम बरहम करते उनकी इमारतों को आग लगा दी और लूट मारकाट के मरदानगी के साथ वापस लौट गये।

'ललतादित ने अपनी आखिरी उमर में हिन्दुस्तान के इंतजाम और सयासत की तजदीद इरादह करके दोबारह तुरकिस्तान की तरफ गया और वस्ताएशिया के बहुत से शहर और मुल्क अपने कब्जा अक्तदार में ले आया। आखिरकार उसे मुल्क के इतराफ में इस्तकामत करके कश्मीर आने का खयाल मुतलिकन छोड़ दिया। अमराए और अराकान मुल्क काश्मीर अर्जदास्ते लिखी और आपकी उमर अजीज के औकात हुक्मरानी और कशूर कशाई में गुजर गये। अब हसरत और महरूमी के मारे हुवों को अपने दोदार स मसरूफ फरमाए। और यहाँ पर ही जिन्दगी की किश्ती मकसूद के साहिल पर पहुँचाए। राजा नामदार ने जबाव लिखा कि इक़बाल के बाजू की ताक़त से बहुत मुल्क जो तर व ताजगी और वसहत में बे नजीर हैं और शुमाल के वसग्रद आबाद हैं। इस वक्त तक मैंने फतह किये हैं।

अभी तक मेरा दिल जहाँगीरी से मुतआईन नहीं हुवा है। इसलिए कश्मीर की तरफ लौटना और वहाँ आराम करना तबीअत तक़ाज़ा नहीं करती। मेरे दो बलंद बेटे एक कुवलयापीड और वजरादित बड़ा है। इन दोनों से जिसको क़ाबिल समझे उसे सल्तनत के लिए उठाए और मेरे इन तजबीज शुदह कानूनों से एक कदम बाहर न रखे।

दफा अवल : 'यह कि मुल्क काश्मीर पहाड़ों के ऊँचे ऊँचे चोटियों से महफूज है। अगर शहर के रईस और अरकान मुनहरफ न हों तो तुम्हारे मुल्क का दुश्मन इस मुल्क पर हरगिज़ काबिज़ नहीं हो सकेगा। इजाजत न दे कि मुल्क में फसाद और मनाद का गुबार उठे।

दफा दोयम : 'यह कि पहाड़ी आदमियों से बिला शबूत ख़ाता जान बुझकर चट्टी और तावान वसूल करे। इन्हें हमेशा रअब और हैवत के शिकंजों में मुबतिला रखे क्योंकि फराबी और बेगमी की हालत में और खैर सरी और सरकशी के ख़याल से पहाड़ों की घाटियों में फितना और आज़ार के रूदार होंगे।

दफा सोयम : 'किसानों के लिए सामान एक साल से ज्यादा न छोड़े ताकि फरागत और फराखी माशात की वजह से जरायत और खेती-बाड़ी के काम में सुस्ती न करें और हल और खेती का सामान जयादह न छोड़ें ताकि दूसरों को ज़मीन पर हरीस न हो।

दफा चहारम : 'कश्मीर के बीज बोने वाले लोगों को खेतीबाड़ी और पीठ पर बोझ उठाने की तक़लीफ में हमेशा मशग़ूल रखे ताकि लिवास और खुराक के लिए हमेशा मुहताज हो। इस संबब से शहर के रहने वालों को ईंधन कोयला और दीगर ज़रूरी सामान पहुँचा करे और थोड़े नफ़ा की वजह से अदल शहर के मुहताज हो। चाहिए कि किसान के पास मवेशी घोड़े खुराक, पोशाक, मकान, जमीन और जना शोपी के तालुकात अहल शहर की मनशावा हो क्योंकि दौलतमन्दी के वायस आराम तलब होगा और खेती बाड़ी की मेहनत और खिदमत की तकलीफ के लिए तैयार न होगा। बेनयाज़ी के वायस ताजिर हो जाएगा। और अशया कार आमदनी को गिरा बेचेगा। जिससे यकीनन चीजों को अरज़ानी और खिदमत के कायदा मुनकतअ हो जायगा और शहर का निज़ाम दरहम बरहम होगा।

दफा पंजुम : 'यह कि हथियार रखने वालों के हमेशा एक जगह करार न दे वरना फसाद के मुरतकिव होंगे।

दफा-शशुम : 'यह कि किलों की मज़बूती और रास्तों और सड़कों की हिफाजत में कोशिश करें और फरागत के वक्त दुश्मनों से गाफिल न हों व हरब व ज़रब का सामान और गल्लों का ज़खीरा किलों में मौजूद रखे।

दफा-हफ्तुम : 'यह कि अहल अमला और मुहासबान दफ्तर को एक दूसरे के साथ रिस्तादारी ताल्लुक कायम न करने दें वकौल रखिये एक चोर होता है और दूसरा पहरेदार !

दफा हस्तुम : यह कि बादशाह के लिए मुमकिन नहीं है कि वज़ातखुद जुज़वी व कुली अमूर में कब्जा कर सके। इसलिए लाज़िम है कि महासबों और मुन्शियों अहलकार और अमाल के हुकमों ऐबजोई और काबिश करें जिससे अहलकारों को तंगी माश हो। इस बिनाए पर कमाल बे एतवारी और बे एतमारी से अमूर ममलकत में खलल डालेंगे—फक़त।

'इसके बाद राजा नेक नाम अपनी वकिया उम्र हदूद तुरकिस्तान में बसर की। वहाँ ही इन्तकाल कर गया। बाजे कहते हैं कि वापसो के वक्त गिलगित के रास्ता से रवाना होकर जब कोह आरयाटक जिसे इस वक्त देवहसोई कहते हैं पहुँचा तो वह मय अपनी फौज और नौकरों-चाकरों के बरफ के नीचे दब गया और एक फरद बसर भी जिन्दह न रहा। उसकी हकूमत की मुद्दत छत्तीस साल सात माह थी।'

प्रतापांशुच्छटाकूटैः पटवाससधर्मभिः ।
जम्बुद्वीपद्विपेन्द्रस्य येनातन्यत मण्डनम् ॥१२७॥

१२७. जिस नृपति के सुगन्धि चूर्ण सदृश प्रतापांशुच्छटापुंज द्वारा जम्बूद्वीप[1] रूपी द्विपेन्द्र (गज) का मण्डन सम्पादित किया ।

नयाञ्जलिषु बद्धेषु राजभिर्विजयोद्यमे ।
पार्थिवः पृथुविक्रान्तिर्युधि क्रोधं मुमोच यः ॥१२८॥

१२८. विपुल विक्रम जो पृथ्वीपति विजयोद्यम के समय राजाओं के विनयांजलि बद्ध होने पर, क्रोध त्याग देता था ।

विनिस्सरज्जनतया भयाद्गर्भानिवामुचन् ।
द्विषां वक्षतयो यस्य निशम्यास्कन्ददुन्दुभिम् ॥१२९॥

१२९. जिसका भयंकर दुन्दुभी नाद सुनकर, प्रजाओं के पलायन के कारण, शत्रु नारियां मानो भय से गर्भ त्याग कर दीं ।

पादटिप्पणी :

(१) **जम्बूद्वीप :** वेद में जम्बूद्वीप शब्द मुझे नहीं मिला । रामायण के अनुसार जम्बूद्वीप पर्वतों से युक्त है । उसकी भूमि को सगर के पुत्रों ने खोदा था । महाभारत ने सप्त द्वीपों में एक द्वीप जम्बूद्वीप को माना है । (सभा : २८ : ६) उसकी स्थिति सोमनस पर्वत के उत्तर बताई गयी है (किष्कि० : ४० : ५९) यह द्वीप भूमण्डल के मध्य स्थित है । इसके विस्तार आदि का वर्णन भीष्म पर्व (११ : ५-७) में किया गया है । गंगा की सात धाराओं में एक धारा का नाम जम्बू नदो है (भीष्म ६ : ४८) ।

जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष है । पुराणों के अनुसार राजा प्रियव्रत ने भूमण्डल का सात भाग किया था । अपने सातों पुत्रों को एक-एक भाग दिया था । ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को जम्बूद्वीप दिया था । शुकदेव जी ने राजा परीच्छित से कहा था—'यह भूमण्डल एक विशाल कमलतुल्य है । सप्तद्वीप इसके सप्तकोष हैं । सप्तकोषों के मध्य जम्बूद्वीप है । वह लक्ष्य योजन विशाल है । 'जम्बूद्वीप वृत्ताकार है । इसमें नववर्ष हैं । नामकरण के सम्बन्ध में कथा है कि जम्बू एक नदी है । वह जामुन के पेड़ से चूने वाले रस से निकला है । यह ब्रह्मलोक से निकलने वाली सात नदियों में एक है । इसी नदी के नाम पर जम्बूद्वीप नाम पड़ा है । अल्बेरुनी लिखता है—'जम्बूद्वीप सब द्वीपों के मध्य में है । इसमें उगे हुए एक वृक्ष के कारण इसका नाम जम्बूद्वीप पड़ा है । इस वृक्ष की शाखाएँ सौयौजन तक विस्तृत हैं ।' अलबेरूनी के कथन का आधार विष्णु पुराण प्रतीत होता है । विष्णुपुराण में जम्बूद्वीप को सब द्वीपों के मध्य स्थित माना गया है :—

समस्तामेतेषां मध्यसंस्थितः । (विष्णु २ : २ : ७)

विष्णुपुराण में सप्तद्वीपों को सप्त समुद्र घेरे है । पृथ्वो मेखला स्वरूप प्रतीत होती है ।

जम्बूप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो द्विजः ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥
(वि० : २ : २ : ५)

एते द्वीपा समुद्रस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षुसुरासर्पिदधिदुग्धजलैः समम् ॥
विष्णुः २ : २ : ६)

विलोलतिलकान्तैर्यः सनेत्राम्भोभिराननैः ।
निवापाञ्जलिदानानि द्विषां नारीरकारयत् ॥१३०॥

१३०. जिस नृपति ने शत्रु स्त्रियों द्वारा विलोल तिलक एवं नेत्र जलयुक्त आननों से निवापांजलि[1] (तर्पांजलि) दान कराया ।

क्षितिं प्रदक्षिणयतो रवेरिव महीपतेः ।
जिगीषोः प्रायशस्तस्य यात्रास्वेव वयो ययौ ॥१३१

१३१. उस जिगीषु महीपति का वय पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते, सूर्य के समान ही विजय यात्रा[1] में प्रायः व्यतीत हुआ ।

करं पूर्वदिशो गृह्णन्प्रतापानलसंनिधौ ।
अन्तर्वेद्यां महाराजः स कीर्त्युष्णीषभृद्बभौ ॥१३२॥

१३२. कीर्ति स्वरूप उष्णीषधारी वह 'महाराज'[1] प्रतापाग्नि के निकट पूर्व दिशा (रूपी वधू) का कर ग्रहण करते हुए अन्तर्वेदी[2]–प्रांगण में सुशोभित हुआ ।

जैन ग्रन्थों में जम्बूद्वीप का उल्लेख है । उसके अनुसार पृथ्वी पर मेरु पर्वत के चारों ओर घिरा हुआ थाली के आकार का पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक १००००० योजन लम्बा चौड़ा जम्बू द्वीप है । इसमें मेरु पर्वत से ४५०० योजन दक्षिण दिशा में विजय द्वार के अन्दर भर्ता नामक क्षेत्र है । वह विजय द्वार से चूल हिमवन्त पर्वत तक सीधा ५२६ । १ । १६ योजन (६ कला) चौड़ा है । चूलहिमवंत पर्वत के समीप १४४७१ योजन लम्बा है (जैनतत्त्व प्रकाश पृष्ठ ६३ : आमेलक ऋषि महाराज)

पाठभेद :

श्लोक संख्यां १३० में 'कारयत्' का पाठभेद 'कारयन्' मिलता है ।

पादटिप्पणी:

१३० (१) **निवाप** : निवाप संस्कार में पित्रों कर वच्छ जल द्वारा पिण्ड तर्पण करने के पूर्व रोरी जल में डाला जाता है । पितरों के लिए सामान्य रूप से तर्पणांजलि किंवा जलाजंलि देने को निवापाञ्जलि कहते हैं । 'पितृदानं निवापः स्यात् श्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः' । कालिदास ने रघुवंश में लिखा है । 'निर्वर्त्यते यैर्नियमाभिषेको येभ्यो निवापाञ्जलयः पितॄणाम् ।'

पादटिप्पणी :

१३१ (१) **यात्रा** : यहाँ पर शब्द श्लिष्ट है । पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है । यह भारतीय अति प्राचीन सौर सिद्धान्त है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३२ में 'स' का पाठभेद 'स्व' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३२ (१) **महाराज** : महाराज शब्द यहाँ श्लिप्ट है । महाराज का अर्थ राजा होता है । महाराज शब्द का व्यंग्यार्थात्मक प्रयोग भी किया जाता है ।

आजकल महाराज़ शब्द कलकत्ता आदि बड़े शहरों में भोजन बनानेवाले पंडित के लिए प्रयुक्त किया जाता है ।

कश्मीर में महाराज शब्द से विवाह के समय दुलहे को पुरानी परंपरा के अनुसार पुकारा जाता है ।

कन्यानां यत्र कुब्जत्वं व्यधादू गाधिपुरे मरुत् ।
तत्रैव शंसनीयः स पुंसां चक्रे भयस्पृशाम् ॥१३३॥

१३३. जिस गाधिपुर[1] में मरुत ने कन्याओं को कुब्ज कर[2] दिया था वहीं प्रशंसनीय इस राजा ने भीत पुरुषों को कुब्ज कर दिया ।

श्लेष होने के कारण इसका दूसरा अर्थ इस प्रकार भी होता है : 'वह एक दुलहे के समान शिरो वस्त्र (उज्ज्वल) अपने गौरव स्वरूप धारण किये वेदी के प्रज्वलित अग्नि के सम्मुख देदीप्यमान अपनी दुलहिन का पाणिग्रहण किया।'

ऋग्वेद (३ : ५ : ७) राजाओं के अनेक पद गौरव किंवा विरुद सम्राट, राजाधिराज, एकराज आदि दिये गये हैं । महाराज पद उन राजाओं को प्राप्त होता था जिनके आधिपत्य में अनेक राजा होते थे। महाराज शब्द का ऐतरय ब्राह्मण (७ : ३४ : ९) में उल्लेख है । इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण (१६ : ४ : २१; २ : ५ : ४९) तथा कौशीतकी ब्राह्मण (५ : ५) में महाराज का शब्द का उल्लेख मिलता है । रा० : ८ : १३५२ में भी इस शब्द का उल्लेख कल्हण ने किया है । शुक्रनीति के अनुसार २१ से ५० लाख रजत कर्ष वाले राजा को महाराज कहा जाता था ।

१३२ (२) **अन्तर्वेदी** : यहाँ समासोक्ति अलंकार है । अन्तर्वेदी का अर्थ गंगा यमुना का मध्यवर्ती क्षेत्र तथा घर का आंगन किंवा प्रांगण होता है । विवाह के समय पर अपनी वधू का कर-स्पर्श गृह के अन्तर्वेदी में करते हैं और यहाँ राजा ने पूर्व दिशा रूप वधू का कर-स्पर्श गंगा यमुना के मध्यवर्ती क्षेत्र अन्तर्वेदी में किया था ।

यमुना के मध्यवर्ती भूमि को दोआबा किंवा दोआब कहते हैं । कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक के विस्तृत भूभाग को अन्तर्वेदी कहा जाता है । इसी में दोआबा भी सम्मिलित था । मराठा पुरालेखकों ने हिन्दुस्तान नाम से अन्तर्वेदी की संज्ञा दी है । उन्होंने दिल्ली तथा प्रयाग उत्तर प्रदेश के भूभाग पर अधिकार किया था । पूजा तथा संकल्प में उत्तर प्रदेश के हिन्दू अन्तर्वेदी का नाम लेते हैं । वेदी शब्द यहाँ श्लिष्ट है । यह अन्तर्वेदी के साथ ही साथ विवाह के समय अग्नि की वेदी जिसके चारों ओर सप्तपदी संस्कार में परिक्रमा की जाती है का भी अर्थ होता है । परम भट्टारक महाराजाधिराज स्कन्दगुप्त का सामन्त सर्वनाग अन्तर्वेदी पर शासन करता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३३ में 'पुरे' का 'पुरो' तथा 'पुंसां चक्रे' का 'पुमांश्चक्रे' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३३ (१) **गाधिपुर** : गाधिपुर प्राचीन कान्यकुब्ज एवं वर्तमान कन्नौज नगर का नाम है । गाधिराज के नाम पर नगर का नाम रखा गया था ।

(२) कुब्ज—बाल्मीकि रामायण में कान्यकुब्ज प्रदेश के नामकरण की कथा दी गयी है । कन्याओं के कुब्जा होने के कारण प्रदेश का नाम कान्यकुब्ज पड़ा था ।

कन्नौज किंवा कान्यकुब्ज का उल्लेख वाक्पतिराज के प्राकृत काव्य गौड़वहो में आया है । हुएन्त्सांग इस सम्बन्ध में एक गाथा विस्तार के साथ कहता है (सि० यू० की १ : २०६, २१०) महाभारत के अनुसार यह नगर राजा गाधि की राजधानी था । कान्यकुब्ज नाम से प्रसिद्ध था (आ० १७४ : ३, वन ११५ : २०) यहाँ विश्वामित्र ने इन्द्र के साथ सोमपान किया था । (वन : १७ : १७) विष्णु तथा वायुपुराण में गाधि की कथा दी गयी है । गाधि इन्द्र के अवतार थे । कुशाश्व ने इन्द्र तुल्य स्थान प्राप्त करने की कामना की । एक सौ वर्ष तपस्या की । इन्द्र को स्वयं कुशिक

यशोवर्माद्रिवाहिन्याः क्षणात्कुर्वन्विशोषणम् ।
नृपतिर्ललितादित्यः प्रतापादित्यतां ययौ ॥१३४॥

१३४. यशोवर्माद्रि[1] वाहिनी[2] नृपति ललितादित्य ने क्षण मात्र में शोषण करते हुए प्रतापादित्य[3] हो गया ।

मतिमान् कन्यकुब्जेन्द्रः प्रत्यभात्कृत्यवेदिनाम् ।
दीप्तं यत्ललितादित्यं पृष्ठं दत्त्वा न्यषेवत ॥१३५॥

१३५. कृत्यवेत्ताओं में कान्यकुब्जेश्वर [1]बुद्धिमान् सिद्ध हुआ, जो कि प्रतापी ललितादित्य को प्रथम पीठ[2] दिखाकर, सेवित किया ।

के पुत्र के रूप में अवतार धारण करना पड़ा । कुशिक का पुत्र होने के कारण गाधि कौशिक कहे गये । विश्वामित्र का अपर नाम कौशिक है । गाधि का वंश पौरव किंवा चन्द्र था । कान्यकुब्ज की शाखा है । (विष्णु : ४ : ७, वायु : ९१ : ६३-६५) ऐ : ब्रा : ७ : १८) विश्वामित्र के पुत्रों को गाथिन कहा जाता है (आ : श्रौ : सू : ७ : १८) विश्वामित्र को 'गलिन' कहा गया है । महाभारत (आदि : ७४ : ६९) में गाधि के पिता का नाम कुशनाभ दिया गया है । कुशिक शब्द भी कुशनाभ के लिये आता है । कान्यकुब्ज देश के राजा थे (आदि : १७४ : ३) । कुशिक किंवा गाधि अपने पुत्र विश्वामित्र को राज्य देकर स्वर्ग गमन किये । (शल्य : ४० : १६) रामायण के अनुसार पुत्रेष्टि यज्ञ द्वारा गाधि का जन्म हुआ था । (बाल : ३४ : ५) कुशनाभ के पुत्र थे । (बा० : का: १५ : १६) उनकी पुत्री का नाम सत्यवती था । (बा० : ३५ : ७)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३४ में 'प्रतापादि' का पाठभेद 'प्रलयादि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३४ (१) अद्रि : यशोवर्मा की तुलना पर्वत से की गयी है । अभी तक कोई ऐतिहासिक सामग्री यशोवर्मा के सम्बन्ध में नहीं प्राप्त हुई है । केवल वाक्पतिराज के गौड़वहों में यशोवर्मा के गौड विजय का वर्णन मिलता है । अनुमान किया गया है कि मुक्तापीड ने मध्यप्रदेश के जिस राजा से सन्धि की थी वह सम्भवतः यशोवर्मा था ।

(२) वाहिनी : इस शब्द का अर्थ सेना तथा सरिता दोनों होता है ।

(३) प्रतापादित्य : यह ललितादित्य के पिता का नाम है । इससे यह नहीं प्रकट होता कि ललितादित्य का एक नाम प्रतापादित्य भी था । जनरल कनिंघम ने अनुमान लगाया है कि ललितादित्य का एक नाम प्रतापादित्य था । (क्वाइन्स आफ मिडीवल इण्डिया पृष्ठ ४०) यशोवर्मा की कल्हण ने पर्वत तथा ललितादित्य की उपमा आदित्य अर्थात् सूर्य के प्रताप से दी है । पर्वत स्थिर है । जड़ है । उस पर मानव, जन्तु, वर्षा, सूर्य, आतप सभी कुछ पड़ती है, उसे रौंदती है । वह कुछ कर नहीं सकता । दूसरे का कुछ बिगाड़ नहीं सकता । किन्तु सूर्य तपता है । प्रगतिशील है । जीवन देता है । वह कभी प्रकाशहीन नहीं होता । सर्वदा उसका प्रताप प्रकाश फैलता रहता है । परन्तु पर्वत अन्धकार में लीन हो जाता है । वर्षाकाल में उसके आश्रित पादप, एवं शिलाखण्ड त्रस्त होते हैं । प्रबल वर्षाधारा में वे गिरते पड़ते बह निकलते हैं । पर्वत भूकम्प में गिर जाते हैं । टूट जाते हैं । किन्तु सूर्य कभी आक्रान्त, त्रस्त एवं क्षीण नहीं होता । वह सर्वदा एक रूप रहता है । उसकी गति में, उसके प्रकाश में, उसके प्रताप में कभी कमी नहीं आती ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३५ में 'कन्य' का 'कान्य' पाठभेद मिलता है ।

तत्सहायास्ततोऽप्यासन्निकाममभिमानिनः ।
कुसुमाकरतोऽप्युच्चैः सुरभिश्चन्दनानिलः ॥१३६॥

१३६. उसके सहायक उससे भी अधिक स्वाभिमानी सिद्ध हुए, क्योंकि कुसुमाकर (वसन्त) की अपेक्षा सुरभित चन्दना[1]निल (मलयानिल) अधिक सुरभित होता है।

पादटिप्पणी :

१३६ (१) **कान्यकुब्ज** : हर्ष के काल तथा उसके पश्चात् कान्यकुब्ज का स्थान भारतवर्ष में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। अलबेरूनी कान्यकुब्ज को भारतवर्ष के मार्गों किंवा राजपथों का केन्द्र मानता है। राजशेखर ने भी कन्नौज से भारतवर्ष के अन्य स्थानों की दूरियों को मापने का निर्देश किया है। (काव्य मीमांसा अ० १७) कन्नौज के कई नामों का उल्लेख मिलता है। काव्यमीमांसा (अ० १) में इसे 'महोदय', अभिधानचिन्तामणि (पृष्ठ १६६) तथा अभिधानरत्नमाला में (पृष्ठ ३१) इसे कान्यकुब्ज तथा ह्वेनत्सांग (बोल १ : २०७) ने उसे 'कोनो-कुशो' कहा है।

कन्नौज से सम्बन्ध करने वाले तथा अन्य राजपथों का निम्नलिखित उल्लेख अलबेरूनी ने किया है।

(१) कन्नौज से प्रयाग तत्पश्चात् पूर्वीय तट तथा दक्षिण कांची (काजीवरम्)

(२) कन्नौज से वाराणसी तत्पश्चात् गंगासागर।

(३) कन्नौज से कामरूप तथा नेपाल और तिब्बत।

(४) कन्नौज से दक्षिण तट वनवासी।

(५) कन्नौज से बजान या नारायण तत्पश्चात् गुजरात की राजधानी।

(६) मथुरा से धार नगरी

(७) बजान से धार और उज्जैन।

(८) धार से मन्दगिर (गोदावरी तट स्थित)

(९) धार से भारतीय सागरतटीय तान।

(१०) बजान से काठियावड़ के दक्षिण तटीय सोमनाथ।

(११) अनहिलवारा (आधुनिक पाटन) से पश्चिमी समुद्रतट तान (बम्बई के उत्तर)

(१२) बजान से माटी होते हुए सिन्ध नदी के के संगम लोहरानी तक।

(१३) कन्नौज से कश्मीर

(१४) कन्नौज से पानीपत, अटक, काबुल, गजनी।

(१५) बब्रहान से अधिष्ठान (पुराधिष्ठान) कश्मीर।

(१६) मकरान स्थित तीज से सेतु बन्ध तक।

(२) **पीठ** : गत पद की उपमा का क्रम इस पद में भी मिलता है। यशोवर्मा ललितादित्य के सम्मुख से इस प्रकार पलायन करता है, जिस प्रकार सूर्य की ओर न देख सकने के कारण कोई मुख मोड़ लेता है। तत्पश्चात् उसी सूर्य से स्वास्थ्य रक्षा की कामना पीठ पर घाम खाते हुए करता है।

पादटिप्पणी :

(१३६) (१) **चन्दनानिल** : चन्दन दक्षिण में होता है। दक्षिण की वायु चलती है तो वह चन्दन की सुगन्धित के साथ बहती आती है। बंगाल में मकानों की खिड़की तथा द्वार दक्षिण की ओर रखा जाता है। दक्षिण वायु को महत्त्व दिया गया है। कलकत्ता महानगर में दक्षिणाभिमुख मकानों की कीमत अपेक्षाकृत अधिक होती है।

मलय भारत की सप्त पर्वतमालाओं में एक है। मैसूर पश्चिमी अंचल से प्रारम्भ होकर ट्रावनकोर को पूर्वीय सीमा बनाती दक्षिण चली जाती है। भवभूति ने मलय पर्वत को कावेरी नदी से आवृत लिखा है। मलय पर्वत पर इलायची, कालोमिर्च, चन्दन, सुपाड़ी तथा नारिकेल वृक्ष खूब होते हैं।

श्रीयशोवर्मणः संधौ सांधिविग्रहिको न यत् ।
नयं नियमनालेखे मित्रशर्माऽस्य चक्रमे ॥१३७॥

१३७. इस (राजा) का सान्धिविग्रहिक[1] मित्र शर्मा सन्धि (लेख) में यशोवर्मा नियमन लेख नाम से सहमत नहीं हुआ।

सोऽभूत्संधिर्यशोवर्मललितादित्ययोरिति ।
लिखितेनादिनिर्देशादनर्हत्वं विदन्प्रभोः ॥१३८॥

१३८. अतः यह सन्धि[1] यशोवर्मा और ललितादित्य की है यहां आदि में स्वामीनाम (ललितादित्य) निर्देश न होने के कारण उनकी अप्रधानता सिद्ध होती थी।

सुदीर्घविग्रहाशान्तैः सेनानीभिरसूयिताम् ।
औचित्यापेक्षितां तस्य क्षितिभृद्बह्वमन्यत ॥१३९॥

१३९ सुदीर्घ काल युद्ध करने वाले: सेनानियों ने इसे असूया[1] (गुण में दोष) माना किन्तु नृपति ने उसके इस विचार औचित्य की प्रार्थना की।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३७ में 'को न यत्' का पाठभेद 'कोऽभवत्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१३७ (१) **सान्धिविग्रहिक :** राजा के परराष्ट्रमन्त्री को सान्धि विग्रहिक कहते है। सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संशय तथा द्वैधी भाव इन छः गुणों के संचालन में राजा का परामर्श दाता होता था। उसे षाड्गुण्य होना आवश्यक है। उसे नीतिज्ञ तथा बहुभाषा-विद् होना चाहिए। वह युद्ध में राजा के साथ रहता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के उदयगिरि के शिलालेख से पता चलता है कि उसका सचिव वीरसेन जिसकी उपाधि सन्धिविग्रहिक थी चन्द्रगुप्त के साथ मालवा युद्ध में उपस्थित था। (अर्थ० : ८ : ९८-९९; अग्नि० : २३४: अं ९ ; २४० मनु०: ७ : १५९–१८०, मत्स्य २१४ : १६; फ्लीट गुप्त इन्स्क्रिपशन्स ३५–३६।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३८ में 'र्हत्वं' का पाठभेद 'र्यत्वं' 'र्धत्वं' एवं 'र्घत्वं' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१३८. सभी अनुवादकों ने श्लोक संख्या १३८ तथा १३९ का अनुवाद एक साथ किया है। श्री कल्हण ने दोनों श्लोकों को 'युगलकम्' किंवा युग्मम् नहीं लिखा है। कलकत्ता की प्रति में 'युगलकम्' पद १३८ के पश्चात् लिखा मिलता है।

(१) **सन्धि :** प्रतीत होता है। तत्कालीन प्रथा थी। सन्धि में उभय पक्ष अपनी प्रतिलिपियों में अपना नाम पहले रखते थे। हस्ताक्षर होने के पश्चात् पहले नाम जिस पक्ष का लेख में होता था। वह पक्ष उसे रख लेता था। यह परम्परा मित्रशर्मा को प्रतीत होता है; रुचिकर नहीं लगी। अतएव उसने विरोध किया।

वर्तमान परम्परा है। यदि भारत में किसी राजा अथवा राष्ट्र का प्रधान आता है, तो उस देश का राष्ट्रगान पहले गाकर, तत्पश्चात् भारत का राष्ट्रीय गान गाया जाता है। सौजन्यता के नाते अपने यहाँ आनेवाले के लिये यह औपचारिक प्राथमिकता दी जाती है।

उक्त श्लोक के पश्चात् 'युगलकम्' प्रतिलिपियों में लिखा मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३९ में 'ताम्' का 'तम्' तथा 'पेक्षितां का 'पेक्षतां' पाठभेद मिलता है।

प्रीतः पञ्चमहाशब्दभाजनं तं व्यधत्त सः ।
यशोवर्मनृपं तं च समूलमुदपाटयत् ॥१४०॥

१४०. वह (राजा) प्रसन्न होकर उसे (मित्र शर्मा को) पंच महाशब्द का पात्र बनाया और नृप यशोवर्मा का समूल उत्पाटन किया ।

अष्टादशानामुपरि प्राक्सिद्धानां तदुद्भवैः ।
कर्मस्थानैः स्थितिः प्राप्ताः ततः प्रभृति पञ्चभिः ॥१४१॥

१४१. उस समय से प्राक् सिद्ध अष्टादश[1] कर्म स्थानों पर और पांच कर्मस्थान[2] स्थापित हुए ।

महाप्रतीहारपीडा स महासंधिविग्रहः ।
महाश्वशालाऽपि महाभाण्डागारश्च पञ्चमः ॥१४२॥

१४२. महा प्रतिहार पीडा, महा संधि विग्रह, महाश्वशाला, महाभाण्डार ।

पादटिप्पणी :

१३९ (१) **असूया** : दूसरे के गुणों में दोष निकालने का अर्थ असूया होता है । रस के अन्तर्गत एक संचारी भाव है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४० में 'च' का पाठभेद 'तु' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४१ (१) **अष्टादश कर्मस्थान** : कल्हण ने अष्टादश कर्मस्थानों का उल्लेख (रा० १ : १२०) में किया है । अष्टादश कर्मस्थानों का उल्लेख रामायण में मिलता है ।

पंचतन्त्र (३ : ६७-७०), रघुवंश (१७ : ६८) तथा शिशुपाल वध (१४ : १९) में कर्मस्थानों को तीर्थ कहा गया है (५ : ३८) (भाग १ : १७८) द्रष्टव्य है ।

कर्मस्थान का शाब्दिक अर्थ कर्म करने की जगह होता है । कर्म स्थान का फलित ज्योतिष में लग्न से दशवां स्थान होता है । उससे व्यक्ति के पिता, पद, राज सम्मान आदि के विषय में विचारहोता है ।

(२) **पंच महाशब्द-कर्मस्थान** : अष्टादश कर्म स्थानों के अतिरिक्त पांच और कर्म स्थान जोड़े गये हैं । उनका उल्लेख रा० : ४ : १४२ में किया गया है ।

कर्मस्थान का पुनः उल्लेख (रा : ४ : ४८५ ४ : ६८०) कल्हण ने किया है । पंच महाशब्द प्राचीन दानपत्रों, शिलालेखों, प्रशस्ति पट्टों आदि के सन्दर्भ में भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों में मिलता है । महाशब्द एक प्रकार की पदवी थी । (इंडियन एण्टीक्वेरी ४ : १०६ : १८०, २०४, १३, १३४) श्री डब्लू० इलियट का मत है । पंच महाशब्द का अर्थ है बाह्य यन्त्र । जिन्हें राजा अपने सरदारों को बजाने का अधिकार देता था । (इंडियन एण्टीक्वेरी ५ : २५१) मुसलिम शासन मुख्यतः मुगलों के शासनकाल में प्रतिष्ठित मन्सबदारों, सूबेदारों, अधीनस्थ राजाओं, नवाबों आदि को डंका बजाने, निशान लेकर चलने, सेना रखने, उनके पद-मर्यादा के अनुसार अधिकार दिया जाता था । पंच शब्द का अर्थ कुछ विद्वानों ने लगाया है । दिन में जिसे पांच बार डंका या नौबत बजाने का अधिकार राजा ने दिया है । एक मत है कि पांच प्रकार के बाजों के, जिन्हें बजाने का अधिकार दिया जाता था उनका विरुद पंच महाशब्द था । (इंडियन एण्टीक्वेरी १२ : ९५, १४, २०२)

पाठभेद :

श्री स्तीन का सुझाव 'पीडा' शब्द के लिए 'पीठ' है ।

महासाधनभागश्चेत्येता यैरभिधाः श्रिताः ।
शाहिमुख्या येष्वभवन्नध्यक्षाः पृथिवीभुजः ॥१४३॥

१४३. तथा पांचवें का महासाधन भागादि[1] नाम थे, जिन पर मुख्य मुख्य शाही[2] वंशीय पृथ्वीभुज अध्यक्ष हुए।

कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः ।
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम् ॥१४४॥

१४४. कवि वाक्पतिराज[1] श्री भवभूति[2] सेवित, विजित यशोवर्मा, उसके गुण स्तुति का पाठक हो गया।

पादटिप्पणी :

१४३ (१) महासाधन भाग—इस पदवी का वास्तविक अर्थ क्या है, अनुसन्धान का विषय है।

विलसन पृष्ठ ४५, लस्सेन इण्डिस्चे अल्टर कुमस्कण्डे लीपजिग ३:९०८ के अनुसार यह शब्द सार्वजनिक निर्माण के निर्देशक के लिए प्रयोग किया गया है। पुलिस मंत्री के लिए भी इस शब्द का प्रयोग होना बताया जाता है।

(२) शाही : काबुल में ब्राह्मन शाही का शासन था। तत्पश्चात् गजनी में मुसलमानों का शासन स्थापित होने पर काबुल तथा गान्धार के राजा लोग शाही कहे जाने लगे। अल्बेरूनी ने उन्हें 'हिन्दू शाहियां काबुल' कहा है। कल्हण ने शंकर वर्मा के राज्य काल में उद्भाण्ड र में राज्य करनेवाले प्रबल शाही राजाओं का उल्लेख किया है। अल्बेरूनी वर्णित प्रथम शाही राजा 'कल्लर' सम्भवतः कल्हण वर्णित शाही राजा था। शाही पदवी भारतीय शक काल से ही राजाओं तथा सम्राटों के पद के लिए अभिहित होने लगी थी। श्वेत हूण तथा तुर्क, जो काबुल उपत्यका तथा गान्धार में राज्य करते थे, उन्होंने शाही पदवी धारण की थी। अल्बेरूनी ने इन शासकों को तुर्क वंशीय माना है। उनका मूल वास्तव में तिब्बती वंश था। इस बात से भी प्रमाणित होता है कि ओ-कुंग जब गान्धार की यात्रा सन् ७५३ तथा ७६४ ई० में कर रहा था, तो उसे वहां तुर्क वंशीय राजा शासन करते मिले थे। चीन के तंग वंश के पुरावृत्त से पता चलता है कि तुर्क वंशीय इन राजाओं का नाम तथा राज्यकाल भी दिया गया है। वे आठवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में कपिन—(गान्धार) में शासन करते थे। इसी समय मुक्तापीड, (ललितादित्य) का राज्य काल पड़ता है। इनमें एक शाही शासक कश्मीर राजा के अधीन था।

पादटिप्पणी :

१४४ (१) वाक्पतिराज : कवि वाक्पतिराज प्रकृत काव्य गउडवहो का रचनाकार का। उसमें महाराज यशोवर्मा के गौड़-विजय का वर्णन है। वाक्पतिराज का अर्थ गौरव विद्वानों में बहुत समादृत है जिसके लिए निम्न श्लोक समुद्धृत है।

वागीश्वरं हन्त भजेऽभिनन्द-
मर्थेश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं स्तौमि तु कालिदासं
बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥

[वाणी के स्वामी अभिनन्द को भजता हूँ, अर्थ के अधिपति वाक्पतिराज को प्रणाम करता हूँ। रसेश्वर कालिदास को स्तुति एवं सर्वेश्वर बाण को नमन करता हूँ।]

द्रष्टव्य : (भाग: १:१७३,५,४ तथा क० १०,१४,२७)।

(२) भवभूति : मालतीमाधव, उत्तररामचरित तथा महावीरचरित भवभूति के प्रसिद्ध

किमन्यत् कन्यकुब्जोर्वी यमुनापारतोऽस्य सा ।
अभूदाकालिकातीरं गृहप्राङ्गनवद्वशे ॥१४५॥

१४५. अधिक क्या कहें ? यमुना पार से कालिका तीर[1] पर्यन्त कान्यकुब्ज भूमि गृह प्रांगण तुल्य हो गयी।

यशोवर्माणमुल्लङ्घ्य हिमाद्रिमिव जाह्नवी ।
सुखेन प्राविशत्तस्य वाहिनी पूर्वसागरम् ॥१४६॥

१४६. उसकी वाहिनी[1] जाह्नवी के हिमालय तुल्य यशोवर्मा का उल्लंघन सुखपूर्वक करती पूर्व सागर[2] में प्रवेश की।

नाटक हैं। नाटककारों में भवभूति का नाम कालिदास के बाद आता है। उनकी प्रसिद्ध कृति उत्तररामचरित (नाटक) है। उसमें करुण रस का परिपाक हुआ है। उनके विषय में अनेकों सूक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। ''कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते।'' ''भवभूतेः सम्बन्धाद् भूधरभूरिव भारती भाति ॥

भवभूति कश्मीरनरेश यशोवर्मा के सभापण्डित थे। यशोवर्मा को कश्मीर नरश ललितादित्य मुक्तापीड ने पराजित किया था। (सन् ७६६ ई०) अनन्तर सन्धि हो गयी। भवभूति बरार प्रान्त में पद्मपुर के थे। इनका गोत्र कश्यप था। इनकी शाखा कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय थी। ब्राह्मण थे। पिता का नाम नीलकण्ठ था। माता का नाम जतुकर्णी था। इनका मूल नाम श्रीकण्ठ था। उपाधि उदुम्बर थी। भवभूति नाम कालान्तर में पड़ गया था। लाक्षणिक ग्रन्थों में भवभूति के छन्दों के उदाहरण प्रायः मिलते हैं।

'उत्तररामचरित' को कालिदास से भी श्रेष्ठ कहा गया है : 'उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते।'

भवभूति के नाटक उच्चकोटि के हैं। उनमें कवित्व का पूर्ण विकास दिखाई देता है। करुण रस वर्णन में भवभूति की समानता अबतक किसी कवि ने नहीं की है। उत्तररामचरित में करुण रस मूर्तिमान हो उठा है। वज्र भी द्रवित हो जाता है : 'अपि ग्रावा रोदिति अपि दलति वज्रस्य हृदयम्।'

द्रष्टव्य : खण्ड १:८१,१७३,४,४,४८५,५२९,५७९, क० १०,१४,४१।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४५ मे 'कन्य' का 'कान्य' तथा 'दाकालिका' का 'दशालिका' एवं 'दाशालिका' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

१४५ (१) **कालिकातीर :** कालिका नदी गंगा नदी के दक्षिण तट पर समानान्तर बहती कन्नौज के अधोभाग में कुछ दूर पर जाकर गंगा में मिल जाती है। इसे काली नदी कहते हैं।

पादटिप्पणी :

१४६ (१) **वाहिनी :** सेना का एक भेद है। एक वाहिनी ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ अश्वारोही तथा ४०५ पदाति सैनिकों से बनती थी। वाहिनी शब्द यहाँ श्लिष्ट है। वाहिनी का अर्थ नदी भी होता है। वाहिनी शब्द का उल्लेख कल्हण ने (रा. ४ : १३४, ७ : २, तथा ८ : ३४०-३ में) किया है। वाहिनीपुर एक गाँव का भी उल्लेख कल्हण ने (रा. ७ : १४९८ में) किया है।

(२) **पूर्व सागर :** बंगाल की खाड़ी का नाम यहाँ पूर्व सागर दिया गया है। वास्तव में बंगाल की खाड़ी भारत प्रायद्वीप के पूर्व में पड़ती है। केवल बंगाल प्रदेश के दक्षिण में पड़ता है। इस समय

पश्यद्भिर्जन्मवसुधां सेर्ष्याधोरणभर्त्सितैः ।
तन्मातङ्गैः कलिङ्गेभ्यः कथंचित्प्रस्थितं पथि ॥१४७॥

१४७. अपनी जन्म भूमि देखने के कारण उसके मातंग[1] (गज) हस्तिपकों (फीलवानों) के बहुत सक्रोध भर्त्सित करने पर कलिंग[2] देश से किसी प्रकार मार्ग पर लाये गये ।

उत्कल, आन्ध्र, मद्रास प्रदेशों के पूर्व में सागर अर्थात् बंगाल की खाड़ी पड़ती है। कुछ लोग बंगाल की खाड़ी को दधिसागर मानते हैं।

पादटिप्पणी :

१४७ (१) **मातंग—हाथी :** कौटिल्य ने कलिंग तथा बंगाल के हाथियों को श्रेष्ठ माना है। हुएन्त्सांग (बील : २ : २०६) ने भी कलिंग के हाथियों की प्रशंसा की है। इस श्लोक से स्पष्ट होता है कि कलिंग देश से हाथी कश्मीर में सेना के लिए मँगाये जाते थे। वे युद्धक हाथी होते थे।

(२) **कलिंग देश :** उत्कल प्रदेश का नाम कलिंग है। इसे आजकल उड़ीसा कहते हैं। कलिंग शब्द का बौद्ध ग्रन्थों में बहुत उल्लेख मिलता है।

द्रष्टव्य : (खण्ड १ : १३६, १७२, परिशिष्ट : ६१ तथा क० १३, १४)

कलिंग शब्द देश, राज्य तथा नगर तीनों के लिए प्रयुक्त होता है। वैतरणी, गोदावरी नदियों तथा पूर्व में पूर्वीय समुद्र किंवा बंगाल की खाड़ी के मध्यवर्ती भाग को कलिंग देश कहते हैं। कलिंग की सीमा समय-समय पर बदलती रही है। एक समय कलिंग की सीमा गंगा सागर से गोदावरी तक विस्तृत थी। प्रायः महानदी तथा गोदावरी के मध्यवर्ती क्षेत्र में यह सीमा स्थिर रहती थी।

पाणिनि ने कलिंग को राज जनपद की संज्ञा दी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वंग तथा कलिंग के हाथी श्रेष्ठ माने गये हैं। कलिंग महाराज नन्द के साम्राज्य का अंग था। किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य एवं बिन्दुसार काल में स्वतंत्र हो गया था।

प्लिनी ने कलिंग की तत्कालीन शक्तिशाली सेना का वर्णन किया है। कलिंग विजय सम्राट् अशोक ने किया था। कलिंग युद्ध के रक्तपात का इतना गम्भीर प्रभाव अशोक पर पड़ा था कि उसकी जीवन-धारा बदल गयी थी। दृष्टिकोण बदल गया था। उस समय कलिंग की राजधानी तोसली थी। भुवनेश्वर से ५ मील दक्षिण वर्तमान धौली स्थान है। यहाँ पर अशोक का लेख तथा विशाल गजमूर्ति मिली है।

धौली मैं दो बार जा चुका हूँ। समीपस्थ पहाड़ी पर प्राचीन मंदिर तथा बिखरे शिलाखण्ड हैं। अशोक कालीन कलिंग की राजधानी मानी गयी है। स्थान रमणीय है। भुवनेश्वर से यहाँ तक कच्ची सड़क है। परंतु अब सड़क पक्की बनायी जा रही है। खारवेल कलिंग का महान् प्रतापी राजा हुआ है। अभिलेखों में उसे कलिंगाधिपति तथा कलिंग चक्रवर्ती कहा गया है। उसकी राजधानी शिशुपालगढ़ थी। यह स्थान भुवनेश्वर से डेढ़ मील दक्षिणपूर्व है।

अभिलेखों से प्रकट होता है। तूफान के कारण कलिंग नगर, द्वार, प्राकार, भवन तथा उपवन नष्ट हो गये थे। खारवेल ने उनका जीर्णोद्धार कराया था। नहर, मन्दिरादि से नगर की शोभावृद्धि की थी। चौथी शताब्दी में कलिंग लघु राज्यों में विघटित हो गया था। तत्पश्चात् गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। पाँचवीं शताब्दी में मध्य कलिंग में पितृ भक्त कुल तथा दक्षिण कलिंग में माठर तथा वाशिष्ठ वंशों के राजा क्रमशः वर्तमान सिंहपुर (श्री काकुलम् समीपस्थ) तथा पिष्टपुर (पीडापुरम्) जिला गोदावरी से शासन करते थे।

गंग राजाओं का कलिंग पर छठी से आठवीं तथा दशवीं से तेरहवीं शताब्दी तक अधिकार था। गंगों की राजधानी कलिंग नगरी थी। उसकी पहचान वेशधारा नदी तट स्थित श्रीकाकुलम् जिले के

आकृष्टलक्ष्मीपर्यङ्कदन्तिसख्यादिवागताः ।
अशिश्रियंस्तं निश्शेषा दन्तिनो गौडमण्डलात् ॥१४८॥

१४८. आकृष्ट लक्ष्मी पर्यङ्क पर स्थित दन्ति के मैत्री से ही मानो सम्पूर्ण हस्ती गौड़ मण्डल से आकर (राजा का) आश्रय प्राप्त कर लिये ।

मुखलिंगम और कलिंगपत्तन से की गयी है । इसकी राजधानी दंतपुर में थी । वह दोनों उक्त स्थानों के मध्य थी । महावस्तु के अनुसार दंतपुर कलिंग का प्रधान नगर था । वर्मा एवं मलय द्वीप में कलिंग शब्द प्रचलित है ।

छठवीं तथा सातवीं शताब्दी में शशांक तथा हर्षवर्धन का कुछ समय तक कलिंग पर अधिकार था । उस समय चीनी यात्री युआ-च्वांग भारत में आया था । उसने कलिंग का वर्णन किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४८ में 'पर्यङ्क' का 'पर्यङ्का' तथा 'अशिश्रियन्' का 'अशिश्रयन्' का पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४८ (१) **गौड़ :** अविभाजित समस्त बंगाल का नाम गौड़ था । कल्हण ने गौड़ प्रदेश का पुनः उल्लेख (रा. ४ :३२३, ३२४, ३३४, ३३५, ४२१, ४६८, ७ : ५६४ तथा ८ : २०५३) किया है । द्रष्टव्य : खण्ड १ : ३७, ५९८ तथा क: १४ ।

कौटिल्य ने गौड़ देश अर्थात् वंग देश का हाथी उत्तम माना है । कल्हण के उल्लेख से प्रकट होता है कि कश्मीर में गौड़ देश से हाथी खरीदे जाते थे । उनकी गणना उत्तम हाथियों में होती थी । बंगाल का प्राचीन नाम गौड़ था । स्कन्द पुराण के अनुसार गौड़ देश वंग से लेकर भुवनेश्वर तक विस्तृत था ।

वंगदेश समारम्य भुवनेशान्तगः शिवे ।
गौड़ देशः समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः ।।

गौड़ का पर्यायवाची शब्द पुण्ड्र का भी उल्लेख मिलता है ।

गौड़ नरेश नरसिंह का उल्लेख पद्मपुराण (१८९:२) में किया गया है । गौड़ देश का सर्व प्रथम उल्लेख सन् ५५४ ई० में हराटा अभिलेख में मिला है । उसमें ईश्वर वर्मा मौखरी के गौड़ देश पर विजय का उल्लेख किया गया है । वाण भट्ट ने गौड़ नरेश शशांक का उल्लेख किया है । उसने हर्ष वर्धन के ज्येष्ठ भ्राता राज्यवर्धन का वध किया था । माधाई नगर के नाम पत्र से प्रकट होता है कि गौड़ नरेश लक्ष्मणसेन का कलिंग तक प्रभुत्व था । गौड़ देश के नाश पर संस्कृत काव्य की परुषा वृत्ति का नाम गौड़ी पड़ गया है । ब्राह्मण, कायस्थों, आदि जातियों की उपजातियां गौड़ है । गौड़ लखनौती (लक्ष्मणवती) हिन्दू राज्य उत्कर्ष काल में संस्कृत विद्या की केन्द्र थी । गीत गोविन्द कार महाकवि जयदेव, कविवर गोवर्धनाचार्य, धोयी, व्याकरणाचार्य उमापति, धार, शब्द कोष कार हलायुध आदि विद्वानों का सम्बन्ध गौड़ से रहा है । इसके ध्वन्सावशेष बंगाल के मालदा नगर से १० मील दक्षिण-पश्चिम, अतीत की कहानी कहते पड़े हैं ।

बंगाल की राजधानी काशीपुरी, वरेन्द्र एवं लक्ष्मणवती रही है। तेरहवीं शताब्दी में बंगाल पर मुसलमानों की सत्ता स्थापित हुई। उस समय से बंगाल की राजधानी कभी गौड़ और कभी पाडुआ रही है । पाडुआ लगभग बीस मील गौड़ से दूर स्थित है । इन नगरों के ध्वंसावशेष अपनी दशा पर यात्रियों के आँसू बहाने के लिये शेष रह गये हैं । मुसलिम काल में मन्दिरों को नष्ट कर उनके शिलाखण्डों एवं मलवों से मसजिद तथा जियारतें बनायी गयी हैं । सन् १५७५ ई० में सम्राट् अकबर के सूबेदार ने गौड़ के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर राजधानी पाडुआ से हटाकर गौड़ में स्थापित की थी । कालान्तर में महामारी के कारण नगर परित्यक्त कर दिया गया । तत्पश्चात् तीन सौ नव वर्षों तक यह नगर घने जंगलों में खण्डहरों के भयावने रूप में पड़ा है । यहाँ खनन

कटकेभघटाहस्तकृतवीचिकचग्रहः ।
अदृश्यताग्रगैस्तस्य गृहीतः पूर्ववारिधिः ॥१४९॥

१४९. उसका सेनाग्रगामी कटक गज समूह के द्वारा पूर्व सागर के अपने सूँडों से तरंग रूपी केश[1] का ग्रहण किया—ऐसा देखा गया।

वनराजिश्यामलेन दिशं वैवस्वताङ्किताम् ।
स प्रतस्थेऽब्धितीरेण तत्कृपाणेन तु द्विषः ॥१५०॥

१५०. वह वन मालाओं से श्यामल[1] समुद्र तट से होकर वैवस्वतांकित[2] (दक्षिण) दिशा को प्रस्थान किया। और उसकी कृपाण से शत्रुओं ने भी वही (दक्षिण दिशा को) प्रस्थान किया।

कार्य आरम्भ किया गया है। उससे नगर के प्राचीन वैभव पर प्रकाश पड़ता है।

लखनौती में नवीं तथा दशवीं शताब्दी के पाल नरेशों का राज्य था। बारहवीं शताब्दी तक सेन वंश की सत्ता यहाँ कायम थी। पाल तथा सेन वंशों के राज्य-काल में अनेक मन्दिरों के निर्माण किये गये थे। वे मुसलिम शासन में नष्ट कर दिये गये। मुसलिम काल को अनेक इमारतों के ध्वंसावशेष यहाँ मिलते हैं। उनमें मन्दिरों आदि के शिलाखण्ड लगाये गये हैं। प्रसिद्ध सोना मसजिद प्राचीन मन्दिरों की सामग्री से निर्मित की गयी थी। यह मसजिद पुराने टूटे दुर्ग में स्थित है। इस मसजिद की निर्माण-तिथि सन् १५२६ ई० है। इसके अतिरिक्त नसरत शाह की मसजिद सन् १५३० ई० में बनी थी। यह कला की दृष्टि से अच्छी मानो जाती है। मैं यहाँ की दो बार यात्रा कर चुका हूँ।

बंगाल का गौड़ प्रसिद्ध है। परन्तु गौड संज्ञक अन्य स्थान भी है। लिंग एवं कूर्म पुराण के अनुसार उत्तर प्रदेश के वर्तमान जिले गोंड़ा का समीपवर्ती प्रदेश गौड कहा जाता था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी। हितोपदेश में कौशांबी को गौड़ प्रदेश के अन्तर्गत लिखा गया है। चेदि राजाओं के दसवीं तथा ग्यारहवीं शताब्दी के ताम्रपत्रों एवं शिलालेखों से प्रकट होता है कि वर्तमान गोंडवाना का समीपस्थ प्रदेश गौड कहा जाता था। राजतरंगिणी के उल्लेख से पता चलता है कि पंच गौड़ अर्थात् पाँच स्थान गौड़ नाम से प्रख्यात थे। छत्तीस प्रकार के राजपूतों में एक प्रकार के राजपूत गौड़ थे। अविभक्त उत्तर-पश्चिम भारत में अत्यधिक पाये जाते थे। कर्नल टाड का मत है कि बंगाल के गौड राजा इसी वंश किंवा कोटि के राजपूत थे। गौड़ एक राग भी है। इसके गान का काल तृतीय प्रहर तथा संध्या है। यह श्री राग का पुत्र माना जाता है। कान्हड़ा गौड़, केदार गौड़, नारायण गौड़, रीति आदि इसके अनेक भेद हैं। इनके अतिरिक्त गौड़ सारंग तथा गौड़ मल्लार संकर राग हैं।

पादटिप्पणी :

१४९ (१) **केश** : कल्हण को काव्यकला एवं उसकी पैनी दृष्टि का यहाँ दर्शन होता है। घुंघराले बाल उत्तम माने जाते हैं। पूर्व सागर अर्थात् बंगाल की खाड़ी की तरंगों की उपमा कामिनी के केश से दी गयी है। लम्बे घुंघराले केश यदि किसी स्त्री के पीठ प्रदेश पर खुले झूलते रहे तो उनमें सागर की लहरों की तरह लहरियों के बल पड़े दिखायी देते हैं। केश का रंग काला होता है। समुद्र के जल का रंग नीला होता है। अत्यन्त गम्भीर जल का रंग अति नीला हो जाता है। यदि केश में तेल लगा दिया जाय तो उनमें लहरों की तरलता भी दृश्यगत होगी। उनमें कालिमा के स्थान पर नीलिमा आ जाती है। कल्हण ने निश्चय ही वंग युवती, जिनके केश लम्बे होते हैं, देखा होगा। अन्यथा ऐसी उपमा देना कठिन था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५० में 'वैवस्वता' का पाठभेद 'वैवस्विता' मिलता है।

तस्योर्ध्वजूटाः कर्णाटाः कृतप्रणतयोऽनयन् ।
सुवर्णकेतकीस्त्यक्त्वा प्रतापमवतंसताम् ।।१५१।।

१५१. ऊर्ध्व जटाधारी[1] कर्णाटक[2] देशीय (उसे) प्रणाम कर सुवर्ण केतकी[3] परित्याग करके उसके प्रताप को अवतंस (कर्णाभरण) बनाया ।

पादटिप्पणी :

१५० (१) **वनराजिश्यामलेन :** यहाँ उपमा ललितादित्य के कृपाण से दी गयी है । कृपाण का श्याम रंग खड्ग-शतक में दिया गया है । लोहा श्यामल होता है । (काव्य माला १६, १७, २३) कल्हण ने कृपाण की तुलना (रा० : ४ : १५६) सर्प से की है । सर्प का वर्ण भी श्याम होता है । इस प्रकार वन तथा सर्प की श्यामलता से ललितादित्य के कृपाण की उपमा देकर कल्हण ने अपनी काव्य कला का प्रदर्शन किया है ।

(२) **दक्षिण दिशा :** यम की दिशा दक्षिण कही गयी है । यम का रूप भी श्याम होता है । दक्षिण दिशा का वर्णन महाभारत (उद्योग : अ:१:६) में किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५१ में 'टा : कर्णाटाः' का पाठभेद 'टः कर्णाटः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५१ (१) **ऊर्ध्वजूटा :** मूर्धा पर लम्बा केश किंवा जटा आज भी मदरासी ब्राह्मण रखते हैं । मूर्धा का अधोभाग बनवाकर मध्यभाग का केश रखकर उसे जूड़े के समान बाँधते हैं । उसमें पुष्प भी लगाते हैं । दक्षिण के ग्रामों तथा कुलीन सनातनी ब्राह्मणों में केश रखने की यह प्रथा प्रचलित है। किन्तु आधुनिक युग में प्रथा लुप्त होती जा रही है । कल्हण का वर्णन कर्णाटक निवासियों के वेश-भूषा से मिलता है । स्वर्ण केतकी का त्याग कर शरण में आने की प्रथा का वर्णन कल्हण ने किसी प्राचीन प्रथा के आधार पर किया है । विजेता अथवा स्वामी के सम्मुख नम्र, विनीत किंवा शरणागत रूप में जाने पर केश से पुष्प निकाल लिया जाता था । तामिल में इस प्रकार के केश रखने को 'डडूमे' कहते हैं । जटा मूर्धा से लटकती रहती है। परन्तु मूर्धा पर जटा बाँधा जाता है अतएव उसे ऊर्ध्व जटा कहा गया है ।

केतकी एक पुष्प है । इसे केवड़ा कहते हैं । गुलाब जल एवं केवड़ा जल का प्रयोग ताम्बूल के खैर तथा पेय जल को सुगन्धित करने के लिये किया जाता है । दक्षिण आन्ध्र प्रदेश का केवड़ा किंवा केतकी पुष्प सर्वाधिक सुगन्धित एवं भारत में श्रेष्ठ माना जाता है । केतकी दो प्रकार की—एक पीली और दूसरी श्वेत होती है । पीली केतकी को स्वर्ण किंवा सुवर्ण केतकी कहते हैं । श्वेत केतकी को हिन्दी भाषा में केवड़ा कहते हैं । वर्षाऋतु में केतकी पुष्पित होती है । प्रसिद्ध है कि केतकी पर भ्रमर न तो बैठता है और न गूँजता है। पुराणों के अनुसार शंकर पर केतकी पुष्प नहीं चढ़ाया जाता । केतकी लगाने से केशों की दुर्गन्धि तिरोहित होती है । केतकी एक राग का भी नाम है । सुवर्ण केतकी का दोनों अर्थ पुष्प, पुष्प आभूषण किंवा केतकी तुल्य स्वर्ण या रजत का आभूषण हो सकता है ।

केतक एवं केतकी एक ही है । केतक वृक्ष के नाम के लिये प्रायः प्रयुक्त किया गया है और केतकी उसके पुष्प का वाचक है । कालिदास ने केतक को भी पुष्प माना है—'मारुतोद्धूतमगमत्केतकं रजः' (रघुवंशः ४ : ५५) । मेघदूत 'केतकैः सूचिभिन्नैः' (मेघदूतः २५) तथा रघुवंश में पुनः 'केतक' पुष्प का वर्णन कालिदास ने किया है (रघुवंशः ६:१७, १३:१६,) ऋतु संहार में केतकी नाम दिया गया है 'हसितमिव विधत्ते सूचिभिः केतकीनाम् —' (ऋतु संहारः २ : २३; २:२०, २४) केतकी का पुष्प दक्षिण में विशेषतया होता है। कर्णाटिक के लोग जो केशों में पुष्प लगाते थे वे राजा के दास अपनी हीनावस्था प्रदर्शित

तस्मिन्प्रसङ्गे रट्टाख्या कर्णाटी चटुलेक्षणा ।
अपासीत् नृपतिर्भूत्वा पृथुश्रीर्दक्षिणापथम् ॥१५२॥

१५२. उस समय रट्टा[1] नाम चंचललोचना कर्णाटकामिनी विशाल दक्षिणापथ पर राज्य कर रही थी ।

करने के लिये केतकी पुष्प निकाल देते थे । स्तीन ने आभूषण अनुवाद किया है । यह ठीक नहीं प्रतीत होता।

(२) **कर्णाटक** : परिशिष्ट नं. पृष्ठ ११४-११६ खण्ड प्रथम द्रष्टव्य है ।

(३) **सुवर्ण केतक** : एक प्रकार के सुवर्ण आभूषण का अनुमान लगाया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५२ में 'पृथुश्रीर्द' का पाठभेद 'पृथुश्रीद' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५२ (१) **रट्टा** : एक मत है कि, रट्टा शब्द रटा किंवा 'राष्ट्रकूट' महाराष्ट्र वंश को अभिहित करता है । यह वंश कर्णाटक के मध्य आठवीं शताब्दी से अपने आधीन रखा था । इसे कनारा प्रदेश भी कहते हैं । कनारी किया यहां की भाषा है । (इंडियन एण्टीक्वेरो १२ : २१६, २१८ तथा हिस्टोरी आफ डेकन : भण्डारकर : ६२)

दक्षिणापथ—इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है—दक्षिण ले जाने वाला पथ । नर्मदा नदी के दक्षिणी भाग अर्थात् भारतीय प्रायद्वीप क्षेत्र के लिए यह शब्द रूढ़ हो गया है। पाली एवं प्राकृत में उसके रूप क्रमशः 'दक्खिणापथ' तथा 'दाक्खिन वह' आता है । फाहियान उसे 'टा-चिन' अर्थात् दक्षिण नाम से अभिहित करता है । (फाहियान : बील : १९३ १९४) दक्षिणापथ में कौन-कौन भूखण्ड सम्मिलित थे निश्चयात्मक रूप से कहना कठिन है । वाल्मीकि रामायण उल्लिखित दण्डकारण्य दक्षिणापथ का एक बड़ा भूखण्ड था । पाणिनि में अवंति का उल्लेख मिलता है । किन्तु दक्षिण के अन्य भूखण्डों का प्रतीत होता है पाणिनि को ज्ञान नहीं था । कात्यायन उस पर टीका करते हुए माहिष्मती चोल एवं पांड्यों का उल्लेख करते हैं (चतुर्थ : १ : १६८, १७५; २ : ८७) पंतजलि को मालावर तक के भूखण्डों का ज्ञान था । महाभारत (शांतिपर्व:२०७-४२-४५) में पुलिंदों, शबरों, चुचकों एवं मद्रकों को दक्षिणापथ निवासी कहा गया है । इसका स्थान आन्ध्र, महाराष्ट्र एवं मध्यप्रदेश था । अनेक पुराणों में चोल, पांड्य, केरल भी दक्षिणापथ में माना गया है । (मार्क० ५७:४५ वायु:०४५:१२४; मत्स्य ११२:४६) गोदावरी दक्षिणापथ की सीमा में सम्मिलित की गयी है । (मार्क० ४५:१०४) दक्षिणापथ की सीमा कभी भी सुनिश्चित नहीं थी । उत्तर में विन्ध्याचल एवं नर्मदा और दक्षिण में समुद्र तट उसकी सीमा मानी गयी थी ।

वैदिक साहित्य में सुराष्ट्र के साथ दक्षिणापथ का उल्लेख किया गया है । (बौध : सू. १०:१:२:१३) । ऋग्वेद (१०:६१:८) में 'दक्षिण पद' शब्द आया है । (कौशीतकी उपनिषद् २:१३) उस समय तक विन्ध्याचल दक्षिणापथ की सीमा मानी जाती थी । महाभारत (वन० ६१:२३) में दक्षिण भारत का परिचय नल ने दमयंती को दिया है । दक्षिण भारत का नामान्तर दक्षिणापथ माना गया है । पुराणों के अनुसार विन्ध्याचल के दक्षिण दिशा का भूभाग जिसमें नर्मदा का क्षेत्र भी सम्मिलित है दक्षिणापथ था । इस भाग में इक्ष्वाकु के ४८ पुत्रों ने राज्य किया था । पुत्रों की संख्या अनेक स्थानों में भिन्न-भिन्न दी गयी है । वायु पुराण के अनुसार २० पुत्र तथा भागवत के अनुसार सुद्युम्न के तीन पुत्रों ने दक्षिण में राज्य किया था (वायु:८८:११) विष्णु :४:२:३, भाग०९:१:४१) ।

वर्तमान काल में दक्षिणापथ का उस क्षेत्र से बोध होता है जो उत्तर में विन्ध्याचल और नर्मदा,

विन्ध्याद्रिमार्गाः पर्याप्ता निष्पर्यन्तप्रभावया ।
दुर्गयेव तया देव्या कृता निहतकण्टकाः ॥१५३॥

१५३. असीमित प्रभावशालिनी इस देवी ने देवी दुर्गा[1] के समान विन्ध्याद्रि मार्ग को पर्याप्त (विस्तृत) एवं निष्कंटक बना दिया ।

दक्षिण में कृष्णा के उत्तरी तट, पश्चिम में पश्चिमी घाट तथा आन्ध्र प्रदेश के उत्तर पश्चिमी तथा कुछ मध्य के जिलों तक सीमित है ।

प्रयाग स्थित समुद्रगुप्त के प्रशस्ति लेख में दक्षिणापथ के निम्नलिखित राजाओं की तालिका दी गयी है। इससे तत्कालीन दक्षिणापथ की सीमा का बोध होता है ।

(१) कोसल—राजा–महेन्द्र (दक्षिण कोसल जि० विलासपुर रायपुर) ।

(२) महाकातांर—राजा–व्याघ्रराज (गोडवाना के पूर्व)

(३) कौशल—राजा–मंत्रराज (उड़ीसा समुद्र तटवर्ती कौशल आदि)

(४) पिष्टपुर—राजा–महेन्द्र (पिट्ठापुर जि० गोदावरी

(५) गिरिकोट्टुर—राजा–स्वामिदत्त (गंजाम, कोटूर)

(६) एरण्ड पल्ल—राजा–दमन (गंजाम जि० चिकाकोल समीपस्थ एरंड पल्लि)

(७) कांची—राजा–विष्णु गोप (कांजीवरम्)

(८) अवमुक्त—राजा–नीलराज (निश्चित पता नहीं) ।

(९) वेङ्गी–राजा हस्ति वर्मा–(गोदावरी–कृष्णा नदी के मध्यवर्ती समुद्र तटीय भाग) ।

(१०) पालक्क–राजा उग्रसेन (कृष्णा नदी के दक्षिण) ।

(११) देवराष्ट्र राजा–कुबेर (बिजगापट्टम जिला) ।

(१२) कुस्थलपुर—राजा धनंजयादि (निश्चित पता नहीं) ।

साधारणतया विन्ध्य एवं हिमालय का आर्यावर्त, नर्मदा के उत्तर का भूखण्ड उत्तरापथ तथा दक्षिण का दक्षिणापथ कहा जाता था ।

१५३ (१) दुर्गा—यहाँ पर दुर्गा शब्द विन्ध्यवासिनी किंवा विन्ध्याचल देवी के लिए प्रयोग किया गया है । कल्हण ललितादित्य का मार्ग कर्णाटक से कावेरी की ओर ले जाता है । यहाँ चन्दनाद्रि अर्थात् मलावार की पर्वतमाला होनी चाहिए । स्तीन का मत है यह विन्ध्याचल पर्वत मध्यप्रदेश का नहीं है । विलसन (पृष्ठ ४७) ने सुझाव दिया है । इसे पूर्वीय घाट को पहाड़ियों में होना चाहिए । विंध्यपर्वत का वर्णन कल्हण ने श्लोक १६१ में किया है । द्रष्टव्य : ३:३६४, ४:१५३,१६४, तथा ५:१५२ खण्ड १:३१ ११३, ११५, ३०५, ३९८, ३३०, ४७, ४४५, ५२४, ५७४ ।

दुर्गा विश्व व्यापक आदि माया का एक उपनाम है। इन्हें त्रिगुणात्मिका देवी भी कहते हैं । मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत 'देवी माहात्म्य' में देवी का निर्देश दुर्गा नाम से किया गया है । उन्हें, काली, लक्ष्मी एवं सरस्वती का अवतार माना गया है । दुर्ग नामक असुर का बध करने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा है । कथा है दुर्गम देवताओं का नाश करना चाहता था । उसने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया । पृथ्वी से वेदों को चुरा लिया । अतएव यज्ञादि समस्त कर्म बन्द हो गये। अनावृष्टि से पृथ्वी त्रस्त हो गयी। ब्राह्मण के निवेदन पर देवी ने शत नेत्र रूप धारण कर दुर्गम का वध किया । चुराये हुए वेदों को मुक्त किया । (पद्म० स्व० २८,७,२८)

महाभारत में उल्लेख मिलता है कि युधिष्ठिर ने विराट नगर में प्रवेश करने के समय दुर्गा की स्तुति

ललितादित्यपादाब्जनखदर्पणमण्डले ।
स्वमूर्तिं वीक्ष्य संक्रान्तां प्रणता साऽपि पिप्रिये ॥१५४॥

१५४. वह (रानी) प्रणाम करते समय ललितादित्य के पाद-कमल के नख दर्पण मण्डल में अपनी मूर्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ।

तालीतरुतलाचान्तनालिकेररसोर्मयः ।
कावेरीतीरपवनैः तद्योधाः क्लममत्यजन् ॥१५५॥

१५५. उसके योद्धाओं ने ताल वृक्ष तले नारिकेल के रसोर्मि पान कर कावेरी[1] तटवर्ती समीर से श्रान्ति दूर की ।

की थी । देवी ने उन्हें प्रत्यच्च दर्शन दिया था । युधिष्ठिर के मंगल के लिए वर दिया । (विराटः अ० ६) महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण की प्रेरणा पर अर्जुन ने देवी की स्तुति की थो । देवी ने अन्तरिक्ष में स्थित होकर उसे विजय का वर दिया था । (भीष्म २३-४-१९) अर्जुन की स्तुति दुर्गा स्तोत्र नाम से प्रसिद्ध हुई । (भीष्म २३:२२)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५५ में 'नालिकेर' का पाठभेद 'नारिकेल' 'नारिकेर' तथा 'रसोर्मयः' का 'सुरोमयः' एवं 'सुरोदयः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५५ (१) कावेरी नदी : कावेरी के तट पर श्रीरंग क्षेत्र, त्रिचनापल्ली, तथा कुम्भकोणम् प्रधान नगर हैं । पश्चिमी घाट में कुर्ग की पहाड़ियों से कावेरी का उद्गम आरम्भ होता है। इसका उद्गम स्थान अरब सागर से केवल २० मील दूर है । नदी ४७५ मील लम्बा मार्ग समाप्त करती पूर्व सागर किंवा बंगाल की खाड़ी में गिरती है। दक्षिणपूर्व मैसूर एवं मद्रास प्रदेशों में बहती है । इसका उद्गम कुर्ग एवं मैसूर के पश्चिमी भाग में यह झरना मात्र रूप में दिखाई देता है । इसका मार्ग यहाँ पथरोला है । मैसूर नगर में १२ मील उत्तर पश्चिम कावेरी अपनी सहायक नदी हेमवती अथवा लक्ष्मणा से मिलती है । यह त्रिवेणी तीर्थ माना जाता है । यहाँ पर कृष्णराज सागर बाँध बाँधा गया है । इस सागर से ९२ हजार एकड़ भूमि की सिंचाई होती है । कामिनी तथा शमसा इसकी सहायक नदियां हैं । मैसूर नगर से १५ मील पूर्व नदी शिव समुद्र द्वीप द्वारा दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है । यहां ३२० फीट ऊँचा जलप्रपात है । उसके द्वारा विद्युत उत्पादन होता है । मद्रास प्रदेश में पहुँचने पर नीलगिरि से निकलनेवाली भवानी नदी इससे मिलती है । त्रिचनापल्ली के समीप यह पुनः सेरिगम द्वीप द्वारा दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है । दक्षिणी शाखा कोलमून है । इस स्थान से तंजौर का अत्यन्त उर्वर डेल्टा आरंभ हो जाता है । दक्षिण भारत का धान्य भण्डार है । धान उत्तम होता है ।

कावेरी नदी का ऐतिहासिक महत्त्व है । ईशा से चार सौ वर्ष पूर्व इस पर एक बाँध सिंचाई के लिए बाँधा गया था । वह आजतक अच्छी अवस्था में है । भारत के लिए गौरव की बात है । सम्भवतः यह विश्व का सबसे प्राचीन और अब तक चलती हालत में सिंचाई बाँध है । सन् १९३४ ई० में कालसून में ११७६ फुट ऊँचा तथा २२५० फुट लम्बा मैटूर बाँध का निर्माण किया गया है । उससे लाखों एकड़ भूमि की सिंचाई होती है । कावेरी की सिंचाई व्यवस्था से मद्रास तथा मैसूर में १३ लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होती है । मुख्य नहरों तथा प्रशाखा नहरों की लम्बाई क्रमशः १५०० तथा २००० मील है । कावेरी का औसत जल संचार १२० लाख एकड़ फुट है । इसके अतिरिक्त

चन्दनाद्रेः तदास्कन्दत्रासभ्रश्यदहिच्छलात् ।
श्रीखण्डद्रुमदोःषण्डान्मण्डलाग्रा इवापतन् ॥१५६॥

१५६. उस मलयाचल पर उसके आक्रमण भय से सरकते हुए सर्पों के व्याज से चन्दन वृक्ष के बाहु मण्डल से निपतित असि तुल्य लग रहे थे ।

उत्तराश्मस्विव पदं क्षिप्त्वा द्वीपेष्वविघ्नतः ।
स कुल्याया इवाम्भोधेः क्षिप्रं चक्रे गतागतम् ॥१५७॥

१५७. वह उत्तरण[1] प्रस्तर तुल्य द्वीप पुंजों पर निर्विघ्न (रूप में) चरण-पाद रखकर कुल्या सदृश समुद्र का शीघ्र ही अनायास गतागत करने लगा ।

ततोऽब्धिवीचिनिर्घोषैरुद्गीतजयमङ्गलः ।
प्रतस्थे पश्चिमामाशां जिगीषूणामपश्चिमः ॥१५८॥

१५८. विजेताग्रणी सागर तरंग के निर्घोषों से जयमंगल गान कर (श्रवणकर) वहां से पश्चिम दिशा को प्रस्थान किया ।

आक्रम्य क्रमुकश्यामान् कोङ्कणान् सप्त तापयन् ।
तुरगानिव तिग्मांशोः प्रतापस्तस्य पप्रथे ॥१५९॥

१५९. जिस प्रकार सूर्य प्रताप अपने सप्ताश्वों[1] को प्रयत्न करते हुए फैलाता है, उसी प्रकार राजा का प्रताप क्रमुक[2] श्यामल सप्त कोङ्कण[3] देशों को आक्रान्त कर प्रतप्त करते विस्तृत हो गया ।

जोग, कृष्ण राज सागर, शिव समुद्र तथा मैटूर आदि स्थानों में जल से विद्युत् उत्पादन किया जाता है । इसे दक्षिणी गंगा कहकर पवित्र मानते हैं ।

रामायण में कावेरी नदी का उल्लेख माता सीता के अन्वेषण के सन्दर्भ में मिलता है । सुग्रीव ने अंगद से वहाँ जाकर खोजने के लिये कहा था :

ततस्तामादगां दिव्यां प्रसन्नसलिलाशयाम् ।
तत्र द्रक्ष्यथ कावेरीं विह्वलामप्सरोगणैः ॥

(कि० ४१:१४-१५)

महाभारत में उल्लेख मिलता है कि कावेरी वरुण की सभा में उपस्थित रहकर उनकी उपासना करती है । (सभाः ९:२०) इसमें स्नान करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है ।

(वन० ८५:२२)

पादटिप्पणी :

१५६ (१) असि : कल्हण ने असि अर्थात् कृपाण की उपमा श्याम सर्प से दी है । इसी प्रकार उसने श्लोक १५० में कृपाण को श्याम लिखा है ।

पादटिप्पणी :

१५७ (१) **उत्तरण :** अभी भी छिछली छोटी नदियों या झरनों के तल में पत्थर के ढोके अथवा खण्ड रखकर नीचे से पानी चलते रहने पर भी पार किया जाता है । यह कश्मीर में क्षुद्र सरिताओं के तल में आज रखा जाता है । उसके द्वारा बिना पद भिगाये पदयात्री नदी पार कर जाता है । यह उत्तरण जल में द्वीप सदृश प्रतीत होते हैं । उनके चारों ओर जल रहता है । कल्हण यहाँ उत्तरण प्रस्तर से द्वीपों की उपमा देता है । जिनका अतिक्रमण करता, ललितादित्य समुद्र पार करने लगा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५९ में 'क्रमुकश्यामान्' का पाठभेद 'क्रमुकान्सप्त' 'कोङ्क' का 'कौङ्क' तथा 'तिग्मांशोः' का

पश्चिमाब्धेर्मरुद्व्यस्तवीचेराविर्भवन्त्यभूत् ।
द्वारका तस्य सैन्यानां प्रवेशौत्सुक्यदायिनी ॥१६०॥

१६०. उसके सैनिक पश्चिमाब्धि वायु से व्यस्त तरंगों के कारण प्रकट होती द्वारका[1] में प्रवेश हेतु उत्सुक हो गये।

'तिग्मांशुः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१५९ (१) सप्त अश्व : अथर्ववेद में सूर्य को सप्तसूर्या कहा गया है। संभवतः वे सूर्य की सात रश्मियों के लाक्षणिक रूप हैं। (अ० १३. ३. १०) सूर्य के रथ में सात अश्व हैं। वह सप्त अश्व सूर्य की सप्त रश्मियों के प्रतीक हैं। पौराणिक साहित्य में कश्यप को सूर्य का प्रतिरूप माना गया है। उसकी दिति तथा अदिति दो पत्नियां हैं। दिति दिन तथा अदिति रात्रि का प्रतिनिधित्व करती हैं। इनका पुत्र अग्नि है। वह सूर्य का प्रतिनिधित्व पृथ्वी पर करता है। शाक द्वीप से सूर्य प्रतिमा तथा सूर्योपासना भारत में सर्व प्रथम आयी थी।

(२) क्रमुक : पुंगोफल किंवा सुपाड़ी को क्राक कहते हैं। समुद्रवर्ती नारिकेल, आदि वृत्तों को अपेक्षा सोपाड़ी का वृक्ष अधिक सुन्दर होता है।

(३) सप्तकोंकण : सप्त कोंकण शब्द पुराकाल से प्रयोग होता आया है। इस समय महाराष्ट्र प्रदेश के पश्चिमी तट को जो अरब सागर और सह्याद्रि पर्वत माला के मध्य पड़ता है, कोंकण कहते हैं। कोंकण अत्यन्त पतला भूभाग है। पूर्व में वर्तमान रत्नागिरि जिला पड़ता है। वहां के निवासी ब्राह्मण कोंकणस्थ कहे जाते हैं। जिन्हें चितपावन भी कहा जाता है। रत्नागिरि जिला इस अंचल का प्रसिद्ध क्षेत्र है। सप्त कोंकण में, केरल तुलंग, गोवाट राष्ट्र (गोआ), कोंकण, केरतह, वरलत्ता तथा बरबेटा आते हैं। आज भी सप्त कोंकण शब्द प्रचलित है। द्रष्टव्य है : खण्ड १:३१४:६८,६९,११६,११७ तथा क० १४,१८)

पादटिप्पणी :

१६० (१) द्वारका, द्वारवती, द्वारावती : प्राचीन प्रसिद्ध द्वारकापुरी सौराष्ट्र में है। ओखा बन्दरगाह के पार एक द्वीप पर द्वारिका है। यहां प्राचीन सरोवर आदि के ध्वन्सावशेष अभी तक टूटे फूटे पड़े हैं। मुसलिम माझियों की यहाँ काफी आबादी वर्तमान द्वारका समुद्र तट पर है। वहाँ से प्रभास क्षेत्र, श्री कृष्ण का दाह स्थान समीप है। चारों धाम में द्वारका एक धाम है। शंकराचार्य के चार पीठस्थान में एक द्वारिका है।

कल्हण के द्वारिका वर्णन से प्रतीत होता है कि कल्हण ने द्वारिका की यात्रा की थी।

प्राचीन राजधानी का नाम द्वारका किंवा द्वारिका है। कुशस्थली द्वापर युग के अंत में द्वारका में परिणत हो गयी। तीन करोड़ म्लेच्छ सेना सहित काल यमन ने मथुरा पर आक्रमण किया। मगधराज जरासन्ध युद्ध में पराजित होकर अट्ठारहवें आक्रमण का उद्योग कर रहा था। यादवों के बड़ी संख्या में हत होने की आशंका थी। यादवों की रक्षा हेतु श्री कृष्ण ने एक ऐसे दुर्ग निर्माण की कल्पना की जो दुर्गम तथा निरापद के साथ ही साथ जहाँ से महिलाएँ भी युद्ध कर सकें। कोई यादवों को पराजित न कर सके। कृष्ण ने समुद्र में बारह योजन भूमि पर वैभवपूर्ण द्वारिका नगर बसाया। मथुरा से यादवगण आकर यहाँ आबाद हुए। यादवों को निरापद स्थान में रखकर कृष्ण ने कालयवन को पराजित किया। उनके अश्वादि द्वारिका लाकर राजा उग्रसेन को दे दिया। निरापद होने पर भी पौण्ड्रक तथा शाल्व ने द्वारका पर आक्रमण किया। श्री कृष्ण ने उन्हें दोनों को युद्धों में पराजित कर द्वारका में अश्वमेध

यज्ञ किया। यादवों के संहार तथा श्री बलराम एवं कृष्ण के स्वर्गारोहण के पश्च त् द्वारका को समुद्र ने डुबा दिया। (मौसल: ७:४:४२)। श्री कृष्ण ने द्वारका त्यागने का सन्देश यादवों को दारुक द्वारा भेजा था। अर्जुन के साथ सब यादव द्वारका त्याग कर चले गये। समुद्र ने श्री कृष्ण के गृह को समुद्र में विलीन होने से बचा लिया।

प्लावयामास तां शून्यां द्वारकाश्च महोदधिः।
यदोरेव गृहं त्वेकं गाप्लावयत् सागरः॥

(भाग० १० : ५२ : ५ : १० : ६६ १-३ : १० : ७६ : ८-१४, १८ : ८९ : २३ : १ : ९० : १ : १० : ११ : ३१ : विष्णु ५ : २४ : २६-७ : ३७ तथा ३८।

महाभारत में द्वारका का उल्लेख विस्तार से किया गया है। रेवत पर्वत से सुशोभित कुशस्थली में श्रीकृष्ण की सम्मति से यादव रक्षित होकर निवास करने लगे। कुशस्थलो का दुर्ग देवताओं लिए भी दुर्गम हो गया था। दुर्ग निवासिनी स्त्रियाँ भी युद्ध करती थीं। रेवतक किंवा गोमान दुर्ग की लम्बाई तीन योजन थी। एक एक योजन पर सेनाओं के तीन शिविर थे। प्रत्येक योजन के अन्तर पर सौ द्वार थे। वे सेनाओं द्वारा सुरक्षित थे। (सभा : १४ : ५०-५५) द्वारका में बैठने के लिए दशार्ही सुन्दर सभा थी। उसकी लम्बाई चौड़ाई एक एक योजन थी। वहाँ वृष्णि एवं अन्धक वंशीय लोग श्री बलराम एवं कृष्ण के साथ बैठते थे। (सभा ३८)। द्वारका दुर्ग के चारों ओर खाइयां बनी थीं। वह ऊंची प्राकार से घिरी थी। नन्दन, मिश्रक, चैत्ररथ एवं वैभ्राज नामक वन बने थे। द्वारकापुरी के पूर्व दिशा में उत्तुंग रैवतक पर्वत था। दक्षिण में लताविष्ट, पश्चिम में सुकक्ष, और उत्तर में वेणुमत्त नामक पर्वत थे। पर्वतों के चारों ओर वन एवं उपवन थे। पुरी की पूर्व दिशा में एक रमणीय पुष्करिणी थी। उसका विस्तार शत धनुष था। पुरी में पचास द्वार थे। उसमें प्रवेश हेतु आठ प्रशस्त राजपथ थे। सोलह चौराहे थे। शुक्राचार्य को योजना अनुसार नगर निर्माण किया था। (सभा अ० ३८) द्वारका तथा वहाँ का पिण्डारक क्षेत्र पवित्र क्षेत्र है। पिण्डारक क्षेत्र में स्नान करने पर गाथा है कि स्वर्ण की प्राप्ति होती है। (वन ८२) यदु वंश का संहार करने के लिए मुनियों ने साम्ब के पेट से मूसल पैदा होने का शाप दिया था। (१-१९-२१)।

द्वारका, प्रभास क्षेत्र तथा वेट द्वारका की मैंने दो बार यात्रा की है। ओखा बन्दरगाह तथा वेट द्वारका के मध्य जो द्वीप पर बसी है, गहरा समुद्र है। प्राकृतिक बन्दरगाह है। ओखा से नाव अथवा मोटर वोट से वेट द्वारका जाते हैं। महाभारत वर्णन पढ़कर जाना उचित होगा। वेट द्वारा पहाड़ी द्वीप है। महाभारत पर्वत का होना वर्णन करता है। ओखा बन्दरगाह पर खड़े होकर देखने पर पहाड़ी का स्पष्ट ज्ञान होता है। द्वारका के डूबने का वर्णन मिलता है। यह निश्चय ही सत्य है। प्राकृतिक भूचाल आदि के कारण द्वारका का बड़ा भाग समुद्रस्थ हो गया है। पुराणों के अनुसार श्रीकृष्ण का गृह बच गया था। निश्चय हो सम्पूर्ण द्वारका नहीं डूबी थी। महाभारत में पुष्करिणी का उल्लेख मिलता है। द्वारका में यह आज भी टूटी हालत में वर्तमान है। उसका परिमाण महाभारत में जो दिया गया है वही है। मुझे द्वारका में अनेक ध्वन्सावशेष मिले। वे सुदूर प्राचीन काल के हैं। यहाँ एक बड़े कूप से जल निकाला जाता है। स्थान सुरम्य है। मुसल्मानी आबादी एवं आक्रमण के कारण यहां सब कुछ नष्ट हो गया था। अब जो कुछ है वह आधुनिक निर्माण है। द्वीप पर मुसलिम अधिकार तथा उनकी आबादी की बहुलता हो जाने के कारण कालान्तर में वर्तमान द्वारका के निर्माण कल्पना की गयी थी। वह मुख्य भूमि से सम्बन्धित है।

आदित्य १८७ ई०

रामायण में आदित्यों की संख्या बारह दी गयी है। उन्हें तैंतीस वैदिक देवताओं के अन्तर्गत रखा

विन्ध्याद्रिस्तद्बलक्षुण्णधातुरेण्वावृताम्बरः ।
प्रत्यभात् त्यक्तमर्यादः कोपताम्र इवोन्नमन् ॥१६१॥

१६१. उसकी सेना से उठते धातु रेणु[1] से आवृत आकाश ऐसा प्रतीत होता था जैसा मर्यादा रहित विन्ध्याद्रि क्रोध से तप्त होकर उठ रहा हो ।

विशतां दशनश्रेण्यस्तस्यावन्तिषु दन्तिनाम् ।
महाकालकिरीटेन्दुज्योत्स्नया खण्डिताः परम् ॥१६२॥

१६२. अवन्ति[1] में प्रवेश करते हुए उसके गजों की दशन पंक्तियां महाकाल किरीटेन्दु की ज्योत्स्ना[2] से अत्यन्त खण्डित हो गयीं ।

गया है (अ० ३ : १४ : १४) । इन्द्र के इच्छानुसार आदित्य भाग रावण के विरुद्ध युद्धार्थ सन्नद्ध हो गये थे (उ० २७ : ४-५) । युद्ध हेतु अमरावती से अन्य देवताओं के साथ बाहर आये थे । उ० ७ : २७ : २२) इन्द्र के साथ राम-रावण युद्ध में राक्षसों के विरुद्ध आदित्यगण चले थे (उ० २८-२७) माता सीता के शपथ ग्रहण समारोह में राम की सभा में आदित्यगण उपस्थित थे । (उ० ९७–७) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६१ में 'रेण्वावृता' का पाठभेद 'रेणु वृता' तथा 'रेण्ववृता' मिलता है

पादटिप्पणी :

१६१ (१) धातु रेणु : द्वारिका से सौराष्ट्र तथा मध्य गुजरात होते राजा ललितादित्य अवन्तिका पहुँचा था । पश्चिमी सौराष्ट्र बालुका बहुल है । राजस्थान का समुद्र की ओर बढ़ता हुआ भाग कह सकते हैं । द्वारिका से अवन्ती किंवा उज्जैन तक पहुँचने के दो मार्ग हो सकते हैं । जहाँ उसे धातु रेणु से आवृत आकाश मिला होगा ।

द्वारिका से उज्जैन पहुँचने के लिये, जामनगर, राजकोट, बैकानेर, सुरेन्द्र नगर, अकमदा गोधरा के क्षेत्र मिलते हैं । यह मार्ग सरल तथा सीधा पड़ता है । दूसरा मार्ग दक्षिणी राजस्थान से होकर जाता है। दक्षिणी राजस्थान में मरुस्थल नहीं है । मैं उदयपुर से अहमदाबाद तक वर्तमान राजपथ संख्या ८ से कई बार यात्रा कर चुका हूँ । यहाँ मरुस्थल नहीं बल्कि पहाड़ियां मिलती हैं । वे बहुत हरी भरी नहीं हैं । दक्षिणी राजस्थान के मार्ग से द्वारिका से उज्जैन जाना सम्भव नहीं प्रतीत होता । दूर का मार्ग पड़ता है ।

कल्हण ने द्वारिका की यात्रा की थी । उसका यह वर्णन भी एक प्रमाण है । उत्तरी सौराष्ट्र में राजस्थान से गरम हवा आती है । तूफान किंवा आँधी के समय राजस्थानी वायु में अबरक, तथा सिकता कण उड़ते हैं । अबरक राजस्थान में अजमेर के पश्चात् मिलना आरम्भ हो जाता है । चित्तौर क्षेत्र तक मिलता है । यदि गरमी के दिनों में कोई अजमेर से चित्तौर मोटर से यात्रा करे तो उसे चारों ओर धूल उड़ती मिलेगी । अभरक के चूर्ण यहाँ सतह पर मिलते हैं । यह धूल भयंकर रूप से उड़ती है । मध्याह्न काल में भी अंधकार हो जाता है । लगभग यही अवस्था उत्तरी सौराष्ट्र की है । वहाँ भी भूमि पर फैले उज्ज्वल सिकता-कण अभरक जैसे लगते हैं । वहां भी आँधी चलती है । बालू के साथ अन्य पदार्थ भी उड़कर शरीर भर देते हैं । कल्हण इसी ओर संकेत करता है । मैंने समस्त सौराष्ट्र का भ्रमण किया है । द्वारिका के समीप सूखी भूमि है । सिकता मय भूखण्ड है । धूल उड़ती है । वहाँ से जैसे जैसे पूर्व बढ़ते हुए समुद्र से दूर होते जायेंगे हवा गर्म और धूल युक्त मिलेगी । आँधी और तूफान आने पर अवस्था भयंकर हो जाती है । कल्हण इसी आँधी और तूफान को धातु रेणु कहता है ।

पादटिप्पणी :

१६२. (१) अवन्ति : अवन्तिका पुरी का

सर्वतोदिक्कमालोक्य जितप्रायांस्ततो नृपान् ।
स प्राविशत् सुविस्तीर्णमपथेनोत्तरापथम् ॥१६३॥

१६३. सब दिशाओं में नृपों को विजित प्राय देखकर वहाँ से सुविस्तीर्ण उत्तरापथ अपथ[1] से प्रस्थान किया ।

वर्णन सप्त पुरियों के प्रसंग में पुरा साहित्य में अत्यधिक किया गया है । अवन्ती क्षेत्र आधुनिक मालवा के अन्तर्गत था । उज्जैन राजधानी थी । उज्जैन में शिव की महाकाल रूप में पूजा होती है ।

विश्वास किया जाता है कि उज्जैन के विद्वान् ग्रीक नाट्य शास्त्र की प्रगति तथा शैली से परिचित थे । उनका यह सम्पर्क उज्जैन तथा स्कन्दरिया के साथ होते व्यापार के कारण और निकट हो गया था। स्कन्दरिया का व्यापार पश्चिम तटीय बन्दरगाह भरुकच्छ, जो भड़ौच है, से होता था । उज्जैन ज्योतिष विद्या का केन्द्र था ।

अवन्ति का उल्लेख रामायण (कि० ४:४१:१०) में आता है । सुग्रीव ने अंगद को वहाँ माता सीता को खोजने के लिये कहा था । अवन्ति का उल्लेख महाभारत (सभा ३८:२९, भीष्म ९:४३) में आता है । शिप्रा तट पर सप्तमोक्षदायिनी नगरियों में से एक थो ।

मालव जनपद का प्राचीन नाम अवन्ती है । अवंती नरेश ने महाभारत युद्ध में कौरवों के पक्ष से युद्ध किया था । आधुनिक मालवा का इसे पश्चिमी भाग कह सकते हैं । उसकी राजधानी उज्जयिनी किंवा उज्जैन थी । इसका अपर नाम अवंती था । हैहय लोगों ने अपने राज्य की दक्षिणी राजधानी माहिष्मती (मांधाता) को बनाया था ।

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

बौद्ध काल में अवन्ती ने विशाल राज्य का रूप ले लिया था । इस देश का सबसे प्रतापी राजा चंड-प्रद्योत महासेन था । उसने वत्स के राजा उदयन को कपट गज द्वारा बन्दी बना लिया था । उसकी कन्या वासवदत्ता का उदयन ने हरण किया था । बिंदुसार एवं अशोक के समय अवंती मौर्य साम्राज्य का मध्यवर्ती प्रदेश था । राजधानी उज्जयिनी थी । वहाँ मगध का राज्यपाल शासक था । सम्राट् अशोक अपनी कुमारावस्था में वहाँ रह चुका था । अवंती जनपद के विदिशा स्थान में शुंग वंश की एक राजधानी थी । वहाँ सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र अग्निमित्र शासन करता था । मालवगण सिकन्दर तथा चन्द्रगुप्त मौर्य से भयभीत होकर रावी तट से जयपुर मार्ग द्वारा दक्षिणापथ की ओर चले तो अवंती में आबाद हुए हो गये । उन्हीं के नाम पर कालान्तर में अवंती का नाम मालवा पड़ गया । मालवा के विषय में कहावत है :

मालव भूमि अति गहिर गंभीर ।
पग पग रोटी डग डग नीर ॥

प्राचीन गाथा है कि चन्द्रमा की किरणों के कारण हाथी का दाँत फट जाता है । यहाँ पर कल्हण ने उपमा दी है कि महाकाल किरीट के किरणों के प्रकाश से ललितादित्य के युद्धक गजों के दाँत चिनक गये थे । विशेष द्रष्टव्यः खण्ड १:५३५, ५७६ । मैं उज्जैन कई बार जा चुका हूँ ।

पाठभेद :

श्लोक सं. १६३ में 'दिक्क' का पाठभेद 'दिश' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६३ (१) अपथ : उत्तरापथ आने के लिए उज्जैन से दो मार्ग हो जाते हैं । एक सोधा मार्ग है । यह उज्जैन, कोटा, सवाई माधोसिंह, मथुरा होता दिल्ली आता है । अथवा सवाई माधोसिंह जैपुर

राजभिस्तस्य तत्रोग्रैः संग्रामोऽभूत्पदे पदे ।
कुलाद्रिभिरिवेन्द्रस्य पक्षच्छेदोद्यमस्पृशः ॥१६४॥

१६४. पक्षच्छेद[1] हेतु उद्यत इन्द्र के कुल[2] पर्वतों के समान वहाँ उसका पद-पद पर उग्र राजाओं से संग्राम हुआ।

काम्बोजानां वाजिशाला जायन्ते स्म हयोज्झिताः ।
ध्वान्तच्छलात्तद्विरुद्धैर्निरुद्धा महिषैरिव ॥ १६५ ॥

१६५. काम्बोजों[1] की अश्वशालाएँ अश्वरहित हो गयी थीं। अन्धकार के व्याज से वे ऐसी प्रतीत होती थीं मानों उसके विरोधियों ने महिषों से निरुद्ध कर दिया है।

होता दक्षिणी पंजाब में पहुँचता है। दूसरा मार्ग उज्जैन, भोपाल, सांची, झांसी, ग्वालियर, आगरा, मथुरा होते दिल्ली जाता है। दूसरा मार्ग दूर पड़ता है। परन्तु इस मार्ग में मरुस्थल नहीं है। दुर्गम पहाड़ियां उज्जैन से आरम्भ होकर ग्वालियर तक पड़ती हैं। उज्जैन से कोटा तक पहाड़ी पड़ती है परन्तु उसके पश्चात् मरुस्थल आरम्भ होता है। मरुभूमि में यत्र-तत्र पहाड़ियां पड़ती हैं। दोनों मार्ग सुगम नहीं हैं। पैदल यात्रियों के लिए कष्टकर है। हराभरा समतल मैदान दिखाई नहीं पड़ता। अतएव कल्हण ने उत्तरापथ अर्थात् उत्तर भारत जाने-वाले मार्ग को अपथ कहा है। उन दिनों आज की समान सड़कें नहीं थीं। मैदान न होने तथा पहाड़ी होने के कारण मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा, उतार-चढ़ाव के साथ कष्टदायक था। कल्हण ने उसे अपथ कहा है।

कथासरित्सागर में सोमदेव ने उज्जयिनी का उल्लेख किया है। मैं इस क्षेत्र में मोटर से यात्रा चार बार कर चुका हूँ। मैंने इसका अनुभव किया है— 'अवन्ती में उज्जयिनी नगरी है—उसमें शिव का आवास है। वह एक साध्वी स्त्री की भाँति किसी भी अपरिचित के लिए अपेद्धा, श्री कमल के सदृश श्री सम्पन्न सज्जनों के मृदु हृदय की तरह गुणाकर, पृथ्वी के अनेक अद्भुत वस्तुओं से पूर्ण थी। उस समय राजा ने धन की इतनी वर्षा की कि बौद्धों के अतिरिक्त और कोई 'अनीश्वर' नहीं रह गया था। राजा महेन्द्रादित्य ने बालक का नाम 'विक्रमादित्य', जैसा शिव ने बताया, रखा।'

महाभारत अनुशासन पर्व (४: ५८) के अनुसार उज्जयन के पिता विश्वामित्र तथा दादा गाधि थे।

संभव है कि उज्जयन विश्वामित्र के पुत्रों में ब्रह्मवादी था। उज्जैन शब्द इसी उज्जयन का अपभ्रंश है।

पादटिप्पणी :

१६४ (१) **पक्षच्छेद** : कथा है कि सुदूर अति प्राचीन काल में पर्वतों के पंख थे। वे उड़ते थे। उन पर्वतों का पंख काटकर उन्हें गतिहीन एवं एक स्थान पर स्थायी किंवा जड़ इन्द्र ने बना दिया था।

(२) **कुलपर्वत** : कुलपर्वत सात हैं (१) महेन्द्र, (२) मलय, (३) सह्य (४) शक्तिमान, (५) रिक्ष (६) विन्ध्य तथा (७) पारियात्र।

महेन्द्रो मलयः सह्यः, शक्तिमातृक्षपर्वतः ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥

पादटिप्पणी :

१६५ (१) **कम्बोज** : यह शब्द ईशापूर्व पाँचवीं शताब्दी की रचना यास्क कृत निरुक्त में आया है। (२:२-८) पतंजलि के महाभाष्य में (१।१:१) निरुक्त के उल्लिखित कम्बोज शब्द का उद्धरण दिया गया है। उसमें कम्बोज तथा आर्यों की भाषा में क्या अन्तर है उस पर प्रकाश डाला गया है। बौद्ध साहित्य में कम्बोज एक महान् प्रदेश माना गया है।

अफगानिस्तान के पूर्वीय अंचल को कम्बोज कहते हैं। पुरासाहित्य में कम्बोज के अश्व प्रसिद्ध माने गये हैं। भारत-पाकिस्तान विभाजन के पूर्व समस्त भारत में यहाँ से घोड़े विक्रय के लिये भेजे जाते थे। उन्हें काबुली घोड़ा कहा जाता था। हमें स्मरण है। मेरे घर के समीप औरंगाबाद की विशाल सराय है। वहाँ काबुल से घोड़े पठान लेकर आते थे। अरबी घोड़े भी आते थे। घोड़े बेचने वालों की अपनी एक जाति तथा समाज था। वे वर्षों के पश्चात् मिलते थे। उनका मिलन बड़ा सुखद होता था। वे अपने साथ हींग, सूखा फल, तथा ऊनी सामान भी बेचने के लिये लाते थे। मेरे पूर्वज औरंगाबाद की सराय में इनकी आढ़त करते थे। द्रष्टव्य : ख०१ : ५०, ३२, ७८, ९९, १३१ तथा क०१५।

कम्बोज पश्चिमोत्तर भारतखण्ड का प्रसिद्ध जनपद था। अर्जुन ने इस जनपद पर विजय प्राप्त की थी।

गृहीत्वा तु बलं सारं फाल्गुनः पाण्डुनन्दनः।
दरदान् सह काम्बोजैरजयत पाकशासनम् ॥ २७:२३

यहाँ काश्मीर के दरद देश को जीतने का स्पष्ट उल्लेख है। युधिष्ठिर के रथ में कम्बोज के अश्व जोते गए थे। रथ वाह्लीक नरेश युधिष्ठिर के लिए लाया था।

बाह्लीको रथमाहार्षीज्जाम्बूनदविभूषितम्।
सुदक्षिणस्तु युयुजे श्वेतैः काबोजजैर्हयैः ॥

सभापर्व ५३:५

महाभारत उद्योग पर्व अध्याय १६० में वर्णन आता है कि पूर्व पश्चिम उत्तर दिशाओं के राजा तथा कम्बोज, खश, शाल्व, दुर्योधन की सेना में थे। और पाण्डवों से युद्ध किये थे।

प्राच्यैः प्रतोच्यैरथ दाक्षिणात्यै-
रुदीच्यकाम्बोजशकैः खशैश्च।
शाल्वैः समत्स्यैः कुरुमुख्यैरनूपै-
र्म्लेच्छैः पुलिन्दैर्द्रविडान्धकैश्च ॥

१६०:१०३

भीष्म निर्मित गरुडव्यूह के पुच्छ स्थान में काम्बोज सैनिक खड़े किये गए थे। उनके साथ अवन्ति देश के राजकुमार विन्द और अनुविन्द तथा कम्बोज एवं शूरसेन देश के योद्धा थे।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजाश्च शकैः सह।
युद्धमासन् महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥५६:७॥

महाभारत काल में इस देश का राजा सुदक्षिण था। वह महारथी था। द्रौपदी स्वयंवर में उपस्थित था। अर्जुन द्वारा इसका तथा इसके भाई का वध हुआ था। उद्योग पर्व—१६६१-५ आदि पर्व १८५-१५ कर्ण पर्व १५६:१११ द्रोणपर्व ९२:-६१:२२ द्रोणपर्व ९४:३०।

परमकाम्बोज नामक भारतीय जनपद का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने इस जनपद पर विजय प्राप्त की थी। (सभा पर्वः २७:५५)। राजपुर अर्थात् राजौरी में काम्बोजों पर कर्ण ने विजय प्राप्त की थी। (द्रोणपर्व ४:५)

कम्बोज : निरुक्त २:२ में कम्बोज देशवासियों की भाषा को अन्य आर्य भाषाओं से विभिन्न बताया गया है। कालान्तर में कम्बोज सिन्धु नदी के उत्तर पश्चिम में आबाद हो गये थे। सामवेद में कम्बोज औपमन्यव का एक आचार्य के रूप में उल्लेख किया गया है। कम्बोज निवासी उपमन्यु के वंशज थे।

प्राचीन पारसी शिलालेखों में कम्बुजिय कम्बोज के लिए कहा गया है। कम्बोडिया का नाम कम्बुज था। वस्तुतः भारतीय साहित्य में वर्णित कम्बोज पूर्व की ओर नहीं पश्चिम उत्तर की तरफ था। पुराणों में उल्लेख आया है।

काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बरा अंगलौकिकाः।
चीनाश्चैव तुषाराश्च बहुला बाह्यतो तदा ॥

मारकण्डेय, वायु, ब्राह्मण तथा वामन पुराणों में 'काम्बोजा दरदाश्चैव' उल्लेख मिलता है। एक मत है कि काम्बोज जाति कश्मीर के राजौरी स्थान से हिन्दुकुश पर्वत माला तक फैली थी। दरद जाति एवं देश इनका सीमान्त था।

स्कन्द पुराण में दिये देशों की तालिका में काम्बोज देश का नाम है। तथा वहाँ १० लाख ग्रामों का होना लिखा गया है।

कम्बोजों का उल्लेख पाणिनि अष्टाध्यायी (४:१:१७५) में किया गया है। पतंजलि ने भी अपने महाभाष्य में (१:१:१ में) उल्लेख किया है।

कम्बोज प्राचीन जाति है। वैदिक समय से उनका इतिहास मिलता हैं। वे सिन्धु नदी के उत्तर पश्चिम आबाद थे। भागवत पुराण (२:६:३५, १०,७५,१२,१०,८२,१३) में उनका उल्लेख मिलता है।

आनन्दज सांगोपनि ने वैदिक शिक्षा मद्रनिवासी गुरु से प्राप्त की थी। कम्बोज तथा भद्र का सम्बन्ध स्पष्ट प्रकट होता है। कम्बोज का वर्णन ऋग्वेद में नहीं मिलता।

यास्क के निरुक्त (२:८) में कम्बोज का उल्लेख मिलता है। उन्हें एक भाषा भाषी कहा गया है। मूल वैदिक भाषा थी।

यास्क कम्बोज का नाम कम्बल से सम्बन्धित करता है। उसे काम धातु से भी सम्बन्धित करता है। कहता है कि वे 'कमनीय योजस' थे। कम्बोज का कम्बल तथा ऊन का सामान बहुत उत्तम होता था। यह भारत में प्रसिद्ध था।

मैंने स्वयं इस दिशा के देशों का भ्रमण किया है। भेड़ तथा अश्व दो मुख्य यहां के पशु धन हैं। जिनका उत्तर पश्चिम के लोगों के जीवन में बड़ा स्थान रहा है। ऊन वस्त्र तथा मांस भोजन एवं अश्व व्यापार और वाहन के लिए प्रयोग किया जाता है। नेपाल में कम्बोज देश का प्रयोग तिब्बत के लिए किया जाता रहा है।

जैन उत्तराध्ययन सूत्र भाग २ चम्पेय जातक महावस्तु भाग २ महाकथा कुणाल जातक में अश्वों में कम्बोज अश्वों की प्रशंसा की गयी हैं।

यहां काम्बोज, वाह्लीक, वनायु सिन्धु देश के साथ काम्बोज को रखा गया है। अश्वों की प्रशंसा की गई है। अतएव काम्बोज, वाह्लीक, वनायु तथा सिन्धु देश एक समूह तथा निकटवर्ती देश है। यह सब देश सिन्धु नदी तटवर्ती हैं। रामायण के अनुसार उत्तर पश्चिम के देश थे। महाभारत में पश्चिमोत्तर भारतवर्ष के एक जनपद के रूप में सभापर्व (२७:२३) में इसका उल्लेख किया गया है।

कम्बोज देशों के अश्वों की मुख्य विशेषता यह थी कि वे पूँछ, कान, नेत्र स्थिर कर दौड़ते थे।

सभा पर्व (५३:५) तथा वनपर्व (१८८:३६) में भविष्यवाणी की गयो है कि कलियुग में कम्बोज देशीय म्लेच्छगण राजा होंगे। उद्योगपर्व (१३०:१०३) में उल्लेख है कि दुर्योधन की सेना में काम्बोज के योद्धागण सम्मिलित थे। उद्योग पर्व (१३३:१-३) से प्रकट होता है कि महाभारत में काम्बोज का राजा सुदक्षिण था। उसकी गणना महारथियों में की गयी है। भीष्म द्वारा निर्मित गरुड़ व्यूह के पुच्छ स्थान में कम्बोज सैनिकों को स्थान दिया गया था। पाण्डवों से द्वेष का मुख्य कारण यह था कि कम्बोज-राजा सुदक्षिण द्रौपदी के स्वयंवर में भाग लिया था। वहां उसका कनिष्ठ भ्राता अर्जुन द्वारा मारा गया था। आदिपर्व (१८५:१५) तथा कर्ण पर्व (१५३:११) राजा सुदामेण स्वयं युद्ध में अर्जुन द्वारा मारा गया था। द्रोणपर्व (९२:१६:७३) तथा (९४:२०) राजा सुदामेण कम्बोज देशीय अश्व पर आरूढ़ होकर युद्ध निमित्त प्रस्थान किया था। भीष्म पर्व (७१:१३) सुदक्षिण का पिता स्वयं कम्बोज-राज कहा जाता था। द्रोणपर्व में उल्लेख आता है कि सात्यकि ने सहस्रों कम्बोजों का महाभारत युद्ध में वध किया था। किन्तु महाभारत के शान्ति तथा अश्वमेध पर्वों में वर्णन मिलता है कि उनका देश वर्वर जाति द्वारा विजय किया गया था।

पाणिनि पश्चिमोत्तर देश का निवासी था। क्षत्री जाति पराजित हो गयी। उसके पश्चात् यवन

आदि के साथ उनका उल्लेख होने लगा। उसे इस दशा के देशों का ज्ञान था। उसके आचार, व्यवहार का अनुभव था। वह काम्बोज को मुण्ड कहता है। मुण्ड का अर्थ होता है सर के बालों का मुण्डन करा देना अर्थात् पूरा बाल मुड़वा देना। हरिवंश पुराण से पता चलता है कि शक लोग अपना आधा मस्तक मुड़ाते थे। आधा मस्तक मुड़ाने की प्रथा हमारे बाल्यावस्था में बनारस तथा आस पास के कृषकों मुख्यतया क्षत्रियों और भूमिहारों में खूब प्रचलित थी ऊपरी भाग से ललाट तक बाल मुड़ा दिया जाता था। काशी के महाराजा १९३७ तक कुछ इसी प्रकार बाल बनवाते थे। मेरे पिता जी इसी तरह बाल बनवाते थे। इसे अच्छा कहते थे।

कम्बोज जनपद का नाम भी आता है। अंगुत्तर निकाय में इसका उल्लेख बाल मुड़ाने के सम्बन्ध में दिया है। भवन, पारद, कम्बोज, पह्लव, खस, आदि पाँच गणों ने हैहयवंशीय राज्य के लिए पराक्रम किया था। राजा सगर ने हैहयों का संहार किया था। पाँचों गण के लोग ऋषि वसिष्ठ की शरण में गये। वसिष्ठ ने उन्हें अभयदान दिया। गुरु वसिष्ठ के वाक्यों का आदर कर सगर ने उनका वध नहीं किया। उनका धर्म नष्ट कर उन्हें छोड़ दिया। उनकी वेषभूषा बदल दी। यवनों और कम्बोजों का समस्त सर मुड़वा दिया। उन्होंने पारदों को मुक्तकेश कर दिया। हरिवंश में उल्लेख है कि शक, यवन, काम्बोज, पारद, कसर्प, महिष, दरद, चोल तथा केरल के निवासी क्षत्रिय थे। सगर ने इनका धर्म नष्ट कर इन्हें क्षात्र धर्म रहित कर दिया था। महाभारत काल तक कम्बोज जाति क्षत्रिय मानी जाती थी। अतएव उनके आचार विचार में तथा धर्म में अन्तर पड़ना स्वाभाविक है।

कालिदास रघुवंश महाकाव्य में वक्षु के तट पर हूणों को पराजित कर राजा रघु कम्बोज में आते हैं। कम्बोज उनकी शक्ति के सम्मुख मस्तक झुका देते हैं। राजा का हाथी एक अखरोट के वृक्ष से बांधा जाता है। हाथी के कारण वृक्ष झुक जाता है।

लम्पक से राजपुरी तक यह लोग रहते थे। उनका आचार व्यवहार भारतीयों से निम्न कोटि का था। सीमान्त की जाति थी। मुख्य भारत के वासी नहीं थे। उनका व्यवहार रूखा था। उनका रूप साधारण था। आचरण उद्धत तथा उग्र था।

काम्बोजदेशो देवाश वाजिराशिपरायण ॥ २४
काम्बोजदेशसौरभ्य महाम्लोच्छन्तु पूर्वके ॥
वाल्हीकदेशो देवोशि अश्वोत्पत्तिपरायण ॥ २८

कम्बोज देश को कहा गया है कि पांचाल से लेकर म्लेच्छ देश के दक्षिण पूर्व तक विस्तृत था। म्लेच्छ देश भारत के सीमान्तस्थ उत्तर पश्चिम को मुसलिम देश समझना चाहिए। काम्बोज जाति पंजाब और वाह्लीक अर्थात् बलख के मध्यवर्ती विशाल भूखण्ड में रहती थी। कम्बोज के अश्वों की बड़ी तारीफ की गयी है। अशोक के शिला धर्म लेख पाँचवें में कम्बोजों का काबुल उपत्यका तथा कन्दहार में रहना बताया गया है।

जातकों से मालूम होता है कि काम्बोज उत्तर पश्चिमी भूखण्ड निवासी थे। वर्वर जाति के संसर्ग के कारण आर्य संस्कृति के धर्म से विरत होकर वर्वर हो गये थे। महावंश के अनुसार स्वामी महामित ने अशोक काल में यवन देश में प्रचार किया था। समन्त पासादिका में इसी प्रकार का उल्लेख मिलता है। अंगुत्तर निकाय में कम्बोज गान्धार का उल्लेख आया है। जम्मू द्वीप की उत्तर पश्चिम की सीमा के सम्बन्ध में उसका उल्लेख किया गया है। वहां गान्धार और कम्बोज जनपद थे। उन्हें उत्तरापथ में सम्मिलित किया गया है। गान्धार और कम्बोज दोनों की स्थिति इस काल में भिन्न प्रतीत होती है। उनमें अफगानिस्तान तथा काश्मीर का दक्षिणी भाग सम्मिलित हो जाता है। अशोक के शिला लेख में योन कम्बोजेश उल्लेख मिलता है। किन्तु महावस्तु भाग एक में बुद्ध ज्ञान के विस्तार की जहाँ बात कही गयी है वहाँ देशो की नाम संख्या

तुःखाराः शिखरश्रेणीर्यान्तः संत्यज्य वाजिनः ।
कुण्ठभावं तदुत्कण्ठां निन्युर्दृष्ट्वा हयाननान् ॥१६६॥

१६६. अश्वों को त्यक्त कर पर्वतश्रेणियों पर जाते तुखारों[१] ने हयमुखों (किन्नरों) को देखकर अश्वों की उत्कण्ठा कुण्ठित कर दी ।

दी गयी है । परन्तु गान्धार तथा काम्बोज का नाम नहीं दिया गया है । चुल्लान देश में गान्धार जनपद के स्थान पर योन अर्थात् जनपद दिया गया है । यौन-१ भगवती-सूत्र दक्षिणापथ में लिखा गया है । उत्तरापथ के गान्धार कम्बोज जनपद का ज्ञान नहीं था । उसमें दक्षिण के जनपदों का उत्तम वर्णन है । इसी प्रकार कर्ण पर्व महाभारत में १४ जनपदों में कम्बोज का नाम नहीं दिया गया है । उसमें गान्धार का उल्लेख है । डा० मललसेकर ने अपरान के कम्बोज और घटजातक के केसभोज को एक देश मानने का सुझाव दिया है ।

राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'अशोक' पृष्ठ १६८ पदसंकेत में कम्बोज जनपद को गान्धार जनपद से मिलाकर काबुल उपत्यका माना है । अशोक ने अपने पंचम शिलालेख में यौन कम्बोजेश के साथ ही साथ गान्धार जनपद को अपने राज्य की सीमा में होने का संकेत किया है । धौली 'यौन कम्बोज' तथा गिरनार पाठ में 'यौन कम्बोज' उल्लेख मिलता है । कम्बोज जनपद में चार वर्ण व्यवस्था के स्थान पर केवल आर्य एवं दास मिलते हैं । उनमें यह रिवाज था कि आर्य दास हो सकता था और दास भी आर्य हो जाता था । यूनान में दास प्रथा थी । दास अनेक कारणों से पूर्ण नागरिक और नागरिक दास बन जाता था । यह व्यवस्था रोमन, यहूदी तथा मुसलिम काल में प्रचलित थी ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६६ में 'तुःखाराः' का पाठभेद 'भुख्खारा' 'भुक्खाराः', 'तुःखारा'; 'कुण्ठभावं' का 'कुण्ठभावां' तथा 'हयाननान्' का 'हयाननाम्' मिलते हैं ।

पादटिप्पणी :

१६६ (१) तुखार : ललितादित्य के तुखारों की विजय का काश्मीर में बड़ा महत्त्व दिया गया था । अलबेरूनी अपने भारत भ्रमण अध्याय ७६ में काश्मीरी उत्सवों के विषय में लिखता है 'चैत्र द्वितीया को काश्मीरी एक उत्सव मनाते हैं । उसे 'अगदुश' (अकादुज १) कहते हैं । इस उत्सव को अपने राजा (मुत्ते) मुक्तापीड द्वारा तुर्की पर हुई विजय की स्मृति में मनाते हैं । उनके कथनानुसार उसके राजा ने समस्त पृथ्वी पर राज्य किया था । किन्तु इस प्रकार की बात प्रायः अपने सभी राजाओं के लिए कहते हैं ।

तुहखारा तथा कल्हण द्वारा अन्य स्थानों में उल्लिखित तुखार जाति एक ही है । संस्कृत ग्रंथों में तुखार शब्द का प्रयोग इस जाति के लिए किया गया है । यूनानी तोक्सापोई या तोचरी शब्द तुखार के लिए आया है । ह्वेनसांग ने उनके लिए 'तु-हो-लो' शब्द का प्रयोग किया है । बलख से दक्षिण जाने पर ह्वेनसांग ने 'की-ची' अर्थात् गज राज्य में प्रवेश किया । आग्नेय दिशा चल कर विशाल हिमाच्छादित पर्वतमाला में प्रवेश किया । वहाँ ६०० ली और चलने पर 'फन-पेन-न' अर्थात् वामियान राज्य में प्रवेश किया । (२ : ५२)

मैं वामियान तथा इस भूभाग में घूम चुका हूँ । ह्वेनसांग का वर्णन अक्षरशः सत्य मिलता है । अपनी पुस्तक 'आर्याना' में इस प्रदेश का विस्तार से वर्णन किया है ।

आगे चल कर ह्वेनसांग पुनः कहता है—श-लो-कि अर्थात् हीनयानी विहार में वर्षावास समाप्त करने पर तुखार के राजा के निवेदन पर प्रज्ञाकर

पुनः बलख लौट गया। और उससे अलग होकर पूर्व दिशा की ओर चला। (२.५०)

कुछ इतिहासकारों का कहना है कि तुखार जाति बड़ी (यू-थे-ची) जाति के लोग थे। वक्षु अर्थात् आक्सन नदी की उपत्यका तथा बलख और बदख्शां में आबाद हो गये। प्रारम्भिक मुसलिम कालीन लेखकों ने इस अंचल का नाम तोखरिस्तान दिया है। इसका पूर्वी भाग महाचीन की सीमा से मिलता था।

तुःहकार जिह्वामूलीय सिद्धान्त के अनुसार तुखार हो गया है। कल्हण ने (४.२११) में तुःखार शब्द का पुनः उल्लेख किया है। पुनः (४.२२६) तुःखार शब्द का प्रयोग किया है।

विल्हण ने विक्रमांकदेव चरित (९.११६ तथा १८:९३) में तुखार शब्द का उल्लेख किया है। कल्हण ने तुखार के साथ पर्वत तथा अश्वों का उल्लेख कर इस बात का निश्चय किया है कि तुःखार तुखार जाति थी। क्योंकि इस अंचल के घोड़े प्रसिद्ध होते हैं और थे।

एक और मत है कि तोखरिश देश·मध्येशिया में अलताई पर्वत के दक्षिण था। गोवी के रेगिस्तान की वायव्य दिशा में था। कूचा तुरफान तथा कराशहर उसके प्रसिद्ध नगर थे। तुर्क और चीनी दोनों उन्हें आतंकित करते रहते थे। यदि ह्वेनसांग की बात ठीक मान ली जाय तो तोखार और तोखरिश सीमावर्ती प्रदेश अथवा एक ही भूखण्ड के दो भाग हो गये हैं।

एक मत है कि तोखरिश देश मध्य एशिया में था। उसका स्थान अल्ताई पर्वत के दक्षिण एवं गोवी मरुस्थल के उत्तर-पश्चिम था। उसके कूचा, तूरफान, कराशहर मुख्य नगर थे। वहाँ के निवासी बौद्ध थे। भाषा संस्कृत थी। भारतीय संस्कृति का अनुकरण करते थे। कालान्तर में वे ईरानी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभावमें आ गये थे। तुखार लोग संस्कृत साहित्य में वर्णित तुषार है। तोखरी जाति जिसका उल्लेख पुरातन साहित्य में मिलता है-तुखार है। हुएनत्सांग के अनुसार 'तु-हो-लो' अर्थात् तुखार लोग बड़े 'चूए-ची' जाति की एक शाखा थे। ओक्सस नदी के ऊर्ध्वभागीय उपत्यका में रहते थे। उसमें बदखसां सम्मिलित था। मुसलिम लेखकों ने इस भूखण्ड को तुखारिस्तान नाम से अभिहित किया है। कल्हण ने तुखार का उल्लेख चंकुण के सम्बन्ध में (रा० ४.२२६) किया है। चंकुण मन्त्री तुखार देश निवासी था। चंकुण तुखार ने चंकुण विहार तथा स्तूप की स्थापना की थी (४:२११)। तुखार प्रदेश में तुर्की जाति के लोग आठवीं तथा उसके पूर्व शताब्दियों में आबाद थे। चंकुण इस प्रकार तुर्कवंशी बौद्ध था। चीनी पर्यटक ओ कुंग ने सन् ७५०-७६३ ई० के मध्य इस विहार तथा स्तूप को काश्मीर में देखा था। स्तीन का मत है कि चंकुण एक चीनी पदवी 'त्सियांग-चियुन' थी : यह पदवी तुर्की मन्त्री अपने प्रदेश में धारण करता था। काश्मीर में आने पर यह उसका नाम ही पड़ गया था। कवि विल्हण ने विक्रमांकदेव चरित में तुखार का उल्लेख किया है।

पुराणों में आन्ध्रों के पश्चात् आने वाले आभीर गदमिल, कंक, पवन तथा तुखार वंश के राजाओं के साथ इनका भी उल्लेख है। इनकी राज्यावधि ५०० वर्ष मानी गयी है। भा० १२:१:३०, वायु : ९९: ३६०, ६२, मत्स्य : २७२:१९:२१, ब्रह्माण्ड ३ : ७४-१७२-१७३।

भागवत के अनुसार इस वंश में १४ राजा हुए थे। अन्य स्थानों में उन्हें तुषार कहा गया है। इस वंश के राजाओं का निवास स्थान शक द्वीप में एक मत के अनुसार था। महाभारत के अनुसार यह एक जनपद था। यहाँ के राजा युधिष्ठिर के राजसूय में भोजन परोसने का कार्य किये थे। गन्धमादनपर्वत में द्वैत वन की ओर प्रस्थान करते समय पाण्डव तुषार देश में होते हुए सुबाहु के नगर में पहुँचे थे।

त्रीन्वारान्समरे जित्वा जितं मेने स मुम्मुनिम् ।
सकृज्जयमरेर्वीरा मन्यन्ते हि घुणाक्षरम् ॥१६७॥

१६७. वह मुम्मुनि[1] को तीन बार समर में जीतकर विजित माना क्योंकि एक बार शत्रु विजय को घुणाक्षर न्याय (देवकृत) तुल्य मानते थे ।

(बन० १७७:१२) तुषार निवासी म्लेच्छ मान्धाता के राज्य में तुषार जनपद निवासी भीष्म निर्मित क्रौंच व्यूह की दक्षिण ओर स्थित थे (भीष्म:७५:२१)

पादटिप्पणी :

१६७ (१) मुम्मुनि : कतिपय विद्वानों का मत है कि मुम्मिन शब्द खलीफा अमीर-उल-मोमनीन के लिए आया है। कल्हण ने सुस्सल के सन्दर्भ में मुम्मिन का उल्लेख किया है । मुम्मुनि सुस्सल का पक्षपाती था । पुनः तरंग ८-२१७९ में मुम्मुनि का उल्लेख किया गया है । यहां पर संगत के भ्राता रूप में चित्रित किया गया है । द्रष्टव्य है : पृष्ठ ५४८ ।

कल्हण कहता है कि मुम्मिन को तीन बार पराजित किया । राजा ललितादित्य केवल एक बार पराजित कर शान्त नहीं रह गया । इससे स्पष्ट होता है कि वह मुसलिम तुर्कों के विनाश पर तुल गया था । आगे चलकर प्रकट होगा कि उसने मुसलिम शक्ति को दलित तथा क्षीण करने के लिए प्रयास किया था ।

कल्हण ने रा० ३:३३२ में मुम्मुनि शब्द का प्रयोग प्रवरसेन द्वितीय के काल में किया है । राजा प्रवरसेन ने मुम्मुनि को सात बार पराजित किया था । "सप्त वारान्स तत्याज जित्वा मुम्मुनिभूभुजम्" अष्टम तरंग ३ तथा तरंग ४ के काल में शताब्दियों का अन्तर पड़ जाता है । अतएव मुम्मुनि कोई एक ही व्यक्ति नहीं है । पर किसी वंश अथवा कबीला अथवा जाति का वाचक है । शाही और खाकान तुल्य यह वंशवाचक हो सकता है । इस शब्द का मूल भारतीय नहीं है । विदेशी शब्द है ।

मुम्मुनि का यहां वर्णन तुखार तथा भौट देश जीतने के मध्य में कल्हण ने किया है । भौट का उल्लेख तिब्बत कमियों के लिए किया गया है जो लद्दाख क्षेत्र के समीपवर्ती क्षेत्रों में रहते थे । कल्हण ने दरद विजय का भी वर्णन किया है जो कश्मीर की उत्तर पश्चिम सीमा पर रहते थे । अतएव यह जाति तुर्क वंशीय होगी । तुखारों से मिलती जुलती अथवा पूर्व काल में एक जाति अथवा राष्ट्र के होते हुए भी कालान्तर में दो भागों में बंट गये होंगे ।

नारायण कौल ने मुम्मुनि को मोमिन खां कहा है । वह जो बुखारा का राजा अथवा सूबेदार था । शायद इससे तात्पर्य अलमैमून नब्बास वंशीय से है । मैमून बहुत दिनों तक खुरासान में था । परन्तु इसका काल ललितादित्य के समय से एक शताब्दी पश्चात् आता है अतएव भ्रामक और गलत है ।

बेदिया उद्दीन ललितादित्य को खुरासान तक पहुँचाता है । यहां वह मज्देर्जिद की सहायता करता है किन्तु अरबों की प्रसिद्धि सुनकर लौट आता है । इस कथन से भी पुष्टि होती है कि ललितादित्य अरब किंवा मुसलिम खतरे को समझ गया था । यह उसकी तीक्ष्ण बुद्धि और दूरदर्शिता का परिचायक है । क्योंकि अरब विरोधी राजा की सहायता करता वह पाया जाता है ।

मुसलिम इतिहास में मोमिन शब्द उन मुसलमानों के लिए आया है जिन्होंने हजरत मुहम्मद साहब की सहायता मदीना में कर उनके साथी हो गए थे । भारत में मोमिन बिरादरी जुलाहों अर्थात् कपड़ा बीनने वालों के लिए साधारणतः प्रयुक्त की जाती है । वे अपने को अब अन्सार बिरादरी कहने लगे हैं । प्रवरसेन द्वितीय के काल में मुसलिम धर्म का जन्म भी नहीं हुआ था । अतएव मोमिन तथा मुम्मिन एक ही अर्थ के वाचक नहीं हो सकते । यह भी निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि

चिन्ता न दृष्टा भौट्टानां वक्त्रे प्रकृतिपाण्डुरे ।
वनौकसामिव क्रोधः स्वभावकपिले मुखे ।।१६८।।

१६८. भौट्टों[1] के स्वाभाविक पाण्डुर मुखपर चिन्ता उसी प्रकार दृष्टिगोचर नहीं हुई, जिस प्रकार बन्दरों के स्वभाव कपिलवर्ण मुख पर क्रोध नहीं दिखाई देता ।

तस्य प्रतापो दरदां न सेहेऽनारतं मधु ।
दरीणामोषधिज्योतिः प्रत्यूषेऽर्क इवोदितः ।।१६९।।

१६९. जिस प्रकार प्रातः उदित सूर्य का प्रकाश दरी (गुफा) की ओषधि[1] के प्रकाश को सहन नहीं करता उसी प्रकार इस राजा का प्रताप दरदों[2] के निरन्तर मद्यपान को नहीं सहन किया ।

कस्तूरीमृगसंस्पर्शी धूतकुङ्कुमकेसरः ।
सैन्यसीमन्तिनीस्तस्य संचस्कारोत्तरानिलः ।।१७०।।

१७०. कस्तूरी मृगसंस्पर्शी[1] एवं कुंकुम-केसर[2] को कम्पित करने वाली उत्तरानिल ने उसकी सेना की सीमन्तिनियों[3] को अलंकृत किया ।

प्रवरसेन द्वितीय के काल से मुम्मुनि मुसलमान धर्मी नहीं था ।

एक मत यह भी है कि मुम्मिन खलीफा के खिताब असीसल मूमिनम का अपभ्रंश है अथवा उसी के लिए आया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १६८ में 'भौट्टानाम्' का 'भोट्टानाम्' तथा 'क्रोधः' का 'क्रोधा' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६८ (१) भौट्ट : कल्हण यहाँ मानव स्वभाव किंवा प्रकृति का वर्णन करता है । चिन्ता व्याप्त होने पर अथवा शोक होने पर मुख पीला पड़ जाता है । क्रोध के समय मुख स्वभावतः लाल हो जाता है । भौट्टों का मुख मंगोलरक्त होने के कारण पीला होता है । अतएव चिन्ता तथा शोक का रंग उनके मुख वर्ण से प्रकट नहीं हुआ । प्रकृति ने ही उन्हें पीला—पीतवर्ण जन्मजात बनाया था । कल्हण ने उनकी बन्दरों से उपमा दी है । बन्दर का मुख लाल होता है । क्रोधित होने पर भी बन्दर के क्रोध का ज्ञान उनके रक्त वर्ण मुख को देखकर नहीं किया जा सकता । अप्रत्यक्ष रूप से उसने परिहास से बन्दर की तुलना भौट्टों से कर दी हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६९ में 'त्यूषेऽर्क' का पाठ भेद 'त्यूषार्क' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६९ (१) ओषधि : कथा है कि ओषधियाँ रात्रि में पर्वतों पर चमकती हैं । ट्रोयरकी टिप्पणी इस श्लोक पर द्रष्टव्य है । द्रष्टव्य है टिप्पणी दरद खण्ड १:३२३ ।

(२) दरद : द्रष्टव्य है टिप्पणी श्लोक १:३१२ तथा परिशिष्ट 'घ' खण्ड एक १ ।

पादटिप्पणी :

१७० (१) कस्तूरी मृग : कश्मीर की उत्तर पूर्व दिशा में उत्तुंग पर्वतमाला है । कस्तूरीमृग नेपाल, सिक्किम और भूटान के पर्वतीय अंचल में मिलते हैं । काठमाण्डू तथा कैली पांग में कस्तूरी की व्यापार होता है । कस्तूरी मृग की नाभि में होती है । वह चमड़े की झिल्ली द्वारा चारों ओर से बन्द रहती है इसे स्थानीय भाषा में 'नाफा' कहते

हैं। जब कस्तूरी बेचनी होती है तो खरीदने वाले के सम्मुख नाफा चीड़कर कस्तूरी निकालते हैं। नकली 'नाफा' आजकल बहुत मिलता है।

कस्तूरी मृग : कस्तूरी मृग हिमालय पर्वत-माला के २४०० से ३६०० मीटर ऊँचाई तक तथा तिब्बत, नेपाल, इण्डोचीन, साइबेरिया, कोरिया, कांसू, आदि के भूभाग में पाये जाते हैं। यह अफ्रीका के डिगडिग मृग की तरह छोटा होता है। इसको शृंग नहीं होता, इसकी पूँछ पर बाल नहीं होते। इसका शरीर पृष्ठ भाग में पिछले पुट्ठे तक २० से ३० इंच तक होता है। नाक से पिछले पुट्ठे तक लम्बाई ३० से ४० इंच तक होती है। मृगियों के पूँछ पर घने बाल होते हैं। जुगाली किंवा पगुरी करने वाले अन्य पशुओं के समान इस मृग के ऊपर जबड़े में आगे का काटने बाला चौड़ा दांत नहीं रहता। केवल चबाने वाले दांत चौभड़ के पूर्व वाले दांत होते हैं। नर मृगों के ६० से ५० मिली मीटर के लम्बे दोनों दांत ठुड्डी के बाहर निकले रहते हैं। अंगोपांग लम्बे और पतले होते हैं। पिछली टांगे अगली टांगों की अपेक्षा अधिक लम्बी होती हैं। नीचे से इसके खुर पतले होते हैं। खुरों एवं टखनों की बनावट विशेष प्रकार की होती है। छोटी और नुकीलो होती है। तेज दौड़ते हैं। छोटे खुर तथा नाखूनों के कारण छोटी से छोटी चट्टानों पर खड़े हो सकते हैं। पैर खुरों की बनावट के कारण तुहिनपात हुए पर्वतों पर भी नही धँसते। कठोर हिम खण्ड पर भी इनका पैर नहीं फिसलता। इनकी कुदान १५ से २० मीटर तक लम्बी होती है। कान गोलाकार लम्बे होते हैं। श्रवण शक्ति तेज होती है। पेट और कमर का निचला भाग श्वेत होता है। शेष शरीर कत्थई भूरे रंग का होता है। इसके शरीर का रंग बदलता भी रहता है। शरीर का ऊपरी भाग स्वर्णाभ झलक लिये, हलका, पीला, अथवा नारंगी रंग का भी पाया जाता हैं। कमर एवं पीठ पर बहुधा रंगीन धब्बा रहता है। बालों का निचला आधा भाग श्वेत होता है। बाल सीधे और सख्त होते हुए भी स्पर्श करते समय मुलायम लगते हैं। बाल ७६ मीली मीटर लम्बे होते हैं। यह पर्वतीय जगत् की चट्टानों तथा गुफाओं में रहते हैं। अपना आवास कठिन शीत काल में भी नहीं त्यागते। चारे की तलाश में बहुत दूर निकल जाने पर भी अपने आवास पर लौट आते हैं। आराम से लेटने के लिए मिट्टी का गढ़ा भी बना लेते हैं।

धासपात, एवं जंगली शाक ही इसका खाद्य पदार्थ है। ऋतु काल के अतिरिक्त नर एवं मादा कभी एकत्र नहीं रहते। इन्हें एकांत प्रिय लगता है। शाकाहारी हैं।

संस्कृत में कस्तूरी, मृगनाभि, मुगम्य, कश्मीरी में टास, हिमांचल में विजौरी, तथा रौसा, नेपाल में बीना, लद्दाख में रिवजा, तिब्बत में लवलव, लहराते, चीन में शी-ही-एंग चे, अरब में मिस्क, ईरान में भुश्क तथा अंग्रेजी में भस्कन कहते हैं। युवा मृगों की नाफा में कस्तूरी अधिक होती है। वृद्ध तथा बालमृगों में कम होती है। प्रत्येक नाफा में १० से ५५ ग्राम तक कस्तूरी होती है। कस्तूरी का रंग गहरे बैंगनी, लाल से लेकर काला तक होता है। कस्तूरी स्पर्श में चिकनी तथा कागज पर रखने पर पीला धब्बा लगा देती है। पांच प्रकार की कस्तूरी मिलती है। (१) सर्वोत्तम कस्तूरी, तिब्बत, शीकांग एवं इण्डोचीन की पर्वतमालाओं में पाये जाने वाले मृगों में मिलती है। (२) मंगोलिया के बाहरी पर्वतों तथा साइबेरिया से प्राप्त कस्तूरी घटिया होती है। (३) यू चुन्नाव कस्तूरी (४) आसामी तथा नेपाली और (५) कश्मीरी कस्तूरी साधारण होती हैं।

(२) केसर : केसर कश्मीर में होती है।

(३) सीमन्तिनियाँ : इस पद में कल्हण ने ललनाओं के लालित्य की सुन्दर प्रशंसा की है। लम्बे केश वाली स्त्रियाँ सीमन्तिनी हैं।

शून्ये प्राग्ज्योतिषपुरे निर्जिहानं ददर्श सः ।
धूपधूमं वनप्लुष्टोत्कालागुरुवनात्परम् ॥१७१॥

१७१. उसने शून्य प्राग्ज्योतिषपुर[1] में दावानलदग्ध कालागुरु[1] वन से अत्यधिक सुगन्धित धूप[3] देखा ।

मरीचिकावितीर्णार्णोविभ्रमे वालुकाम्बुधौ ।
तद्गजेन्द्रा महाग्राहसमूहसमतां ययुः ॥१७२॥

१७२. मरीचिका[1] जल का भ्रम उत्पन्न करने वाले वालुकाम्बुधि[2] में उसके गजेन्द्र महाग्राह समूह सदृश लगते थे ।

पादटिप्पणी :

१७१—(१) प्राग्ज्योतिषपुर : द्रष्टव्य है— खण्ड १ : ३७२, ४७७, पृष्ठ १४ तथा २३ । कल्हण ने इसका उल्लेख सर्वप्रथम त० २ : १४७ तथा अंतिम ८ : २८११ में किया है । मयासुर की राजधानी थी (सभा ३८ : २९) उसके पश्चात् यहाँ का राजा भगदत्त हुआ था (सभा २६ : ७-८) यह असुरों का अजेय दुर्ग था । नरकासुर यहाँ निवास करता था । (उद्योग ७८ : ८०) भगदत्त के पश्चात् यहाँ का राजा वज्रदत्त हुआ था । (आश्व० ७५ : १) पुराणों में यह प्राच्य जनपद कहा गया है । वायु० ४५ : १२२, मार्क० : ७ : ४४, मत्स्य : ११४ : ४५, ब्राह्मण २ : १६ ५४ तथा महाभारत में कुछ स्थानों पर इसे म्लेच्छ देश कहा गया है । यहाँ के राजा भगदत्त की प्रशंसा की गयी है । (सभा० २५–१०००–१ : उद्योग : ६६ : ५८०४, कर्णपर्व ५ : १०४–१०५) । महाभारत में कुछ अन्य स्थानों पर यहाँ का राजा नरकासुर कहा गया है । वन० (१२ : ४८८) उद्योग (४७,८०, ९२) हरिवंश (५ : १२१, ६७९१–, १२२ : ६८७) भागवत में प्राग्ज्योतिषपुर पाठ मिलता है । नगर का द्योतक है ।

(२) कालागुरु : जलाने पर अत्यन्त सुगन्धित धूम्र निकलता है । प्राचीन काल में इसके धूप से स्त्रियाँ अपने केशोंको सुवासित करती थीं । सिलहट (पूर्व बंगाल) के पर्वतीय जंगल में यह होता है । इसके पुराने वृक्ष में कालागोद या गुगुल जैसा पदार्थ निकलता है । जिसे अग्निपर डालने पर दिव्य गन्ध निकलती है ।

कालिदास ने अपने ग्रन्थों में बहुत बार कालागुरु का उल्लेख किया है । जैसे—

प्रासादकालागुरुधूमराजि-
स्तस्याः पुरो वायुवशेन भिन्ना ।
वनान्निवृत्तेन रघूत्तमेन
मुक्ता स्वयं वेणिरिवावभासे ॥
—रघुवंश, १४ लोक १२

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७२ में 'काम्बुधौ' पाठभेद 'कार्णवे' मिलता है ।

१७२ (१) मरीचिका : रेगिस्तान किंवा मरुस्थल में जल का भ्रम होता है । आस्ट्रेलिया के पथ से सिडनी तक की यात्रा रेल से की थी । समुद्र तटवर्ती स्थानों के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया मरुस्थल है । ट्रान्स आस्ट्रेलियन रेल से मैंने यात्रा की । यह मरुस्थल से जाती है । दिन में सचमुच दूर पर चमकते हुए श्वेत सिकता कणों में जल का भ्रम होता था । हिन्दुस्तान के उदयपुर मेवाड़ का मैं अध्यक्ष हुआ तो मुझे कई बार उदयपुर मेवाड़ से अजमेर तक मोटर कार से आना जाना पड़ता था । इस यात्रा में

तद्योधान्विगलद्धैर्यान् स्त्रीराज्ये स्त्रीजनोऽकरोत् ।
तुङ्गौ स्तनौ पुरस्कृत्य न तु कुम्भौ कवाटिनाम् ॥१७३॥

१७३. उस स्त्री राज्य[1] में स्त्रियों ने उनके योद्धाओं को उत्तुङ्ग स्तन अग्रसर कर (के) धैर्य हीन किया न कि उनके गज कुम्भ ने ।

स्त्रीराज्यदेव्यास्तस्याग्रे वीक्ष्य कम्पादिविक्रियाम् ।
संत्रासमभिलाषं वा निश्चिकाय न कश्चन ॥१७४॥

१७४. उसके समक्ष स्त्री राज्य (की) देवी (रानी) की कम्पादि विक्रिया का निरीक्षण करना 'यह संत्रास जन्य थी अथवा अभिलाषा जन्य' इसका कोई निर्णय नहीं कर सका ।

राजस्थान के घोर मरुस्थल का दर्शन हुआ । दूर पर चमकते बालू में जल का भ्रम अनायास उत्पन्न होता था । यह क्रिया जब धूप होती है उसी समय दृश्य गत होती है । मृग मरीचिका इसलिये इस भ्रम को कहा जाता है कि प्यासा मृग इस मरीचिका को जल समझकर दौड़ता है । वह दौड़ते-दौड़ते मर जाता है परन्तु जल का उसे दर्शन नहीं होता । जल के भ्रम का ही उसे ज्ञान होता रहता है । आस्ट्रेलिया की मृग मरीचिका राजस्थान से और स्पष्ट लगती है ।

(२) बालुकाम्बुधि : कल्हण ने आगे चलकर (४:२७९ तथा ४:३०६ में) पुनः इसका उल्लेख किया है । कल्हण इस मरुस्थल को उत्तर दिशा में रखता है । यह पूर्वीय तुर्किस्तान का मरुस्थल अथवा तिब्बत हो सकता है । धुर उत्तर में गोवी का मरुस्थल पड़ता है । कतिपय अनुवादकों में उसे ही कल्हण वर्णित बालुकाम्बुधि से जोड़ा है । परन्तु वह इतना दूर है कि वहां तक ललितादित्य का पहुँचना कठिन था । यदि यह गोबी का मरुस्थल होता तो कल्हण मार्ग में पड़ने वाले देशों का उल्लेख करता ।

एशिया महाद्वीप में मंगोलिया के अधिकांश भाग में फैला हुआ यह विश्व का भयंकर एवं विशाल मरुस्थल है । इस मरुस्थल का पश्चिमी भाग तारिम बेसिन का ही एक भाग है । यह उत्तर से दक्षिण ६०० मील, पूर्व से पश्चिम १००० मील लम्बा है । तिब्बत एवं अल्ताई पर्वतमालाओं के मध्य छिछले गर्त के रूप में स्थित है । स्थल तल की औसत ऊँचाई समुद्रतल से ४ हजार फीट ऊँची है । प्राकृतिक भू रचना ढालू मैदान के समान है । उसके चारों ओर पर्वतमालाएं हैं । कटाव तथा संरक्षण क्रियाओं के प्रबल होने के कारण यह अपनी विशिष्ट भू रचना के लिए प्रसिद्ध है । प्राचीन कालीन विभिन्न सभ्यताओं के द्योतक अनेक भग्नावशेष एवं ध्वंसावशेष यहां मिलते हैं । वर्षा ५ से ७ इन्च प्रतिवर्ष होती है। कभी हिम तथा कभी हिम एवं बालू मिश्रित तूफान आते हैं । घास तथा कँटीली झाड़ियां मिलती हैं । जल का अभाव है । कारवाँ मार्ग पर १० से ४० मील की दूरी पर जलकूप मिलते हैं । आबादी बहुत थोड़ी है । मंगोल मुख्य जाति है । उत्तर तथा दक्षिण घास के मैदानों में आदिम वासी खानाबदोश रहते हैं । पूर्व भाग में दक्षिणपश्चिम मानसून से कुछ वर्षा हो जाती है । यहाँ खेती तथा पशुधन है । उत्तर पश्चिम सीमा-वर्ती क्षेत्र में भेड़-बकरियाँ पाली जाती हैं । सुदूर उत्तर में कुछ जंगल हैं । उत्तर में औरखान तथा उसकी सहायक नदियों की उपत्यका में कुछ चीनी आबादी है ।

पाठभेद

श्लोक संख्या १७३ में 'कवाटिनाम्' का पाठ 'कराटिनाम्' मिलता है ।

पाद टिप्पणी :

१७३ (१) स्त्रीराज्य : काल्पनिक स्त्री राज्य की कथा है कि कोई पुरुष ६ मास से अधिक

उत्तराः कुरवोऽविक्षंस्तद्भयाज्जन्मपादपान् ।
उरगान्तकसंत्रासाद् बिलानीव महोरगाः ।। १७५ ।।

१७५. जिस प्रकार गरुड़ के त्रास से महाउरग बिल में प्रवेश करते हैं उसी प्रकार उस (राजा) के भय से उत्तर[1]कुरुवासी अपने जन्मदाता पादपों का आश्रय लिये ।

जयार्जितधनः सोऽथ प्रविवेश स्वमण्डलम् ।
भिन्नेभमौक्तिकापूर्णपाणिः सिंह इवाचलम् ।। १७६ ।।

१७६. जिस प्रकार विदारित गज मौक्तिकों से पूर्णपाणि सिंह पर्वत मध्य प्रवेश करता है। उसी प्रकार वह विजयार्जित धन के साथ अपने मण्डल में प्रवेश किया ।

वहाँ नहीं रह सकता । महाभारत तथा वराह मिहिर के बृहत् संहिता में स्त्री राज्य का उल्लेख किया गया है । द्रष्टव्य : लास्सेन १ : ८५१ ।

चन्द्रगुप्त मौर्य राज सभा स्थित यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने दक्षिण के पाण्डय राज्य में स्त्रीराज होने का उल्लेख किया है । प्राचीन कालीन यूनानियों में यह गाथा प्रचलित थी कि भूमध्य सागर में कहीं स्त्री राज्य था । ट्रावनकोर राज्य में स्त्री ही राज-सिंहासन पर बैठती किंवा राजाओं के समान राज करती थी ।

पादटिप्पणी :

१७१ (१) उत्तरकुरु : द्रष्टव्य—परिशिष्ट 'छ' पृष्ठ ५४-६० । खण्ड एक तथा १:११३ एवं क० १३ । एक मत है कि उत्तरकुरु का क्षेत्र काल्पनिक है ।

उत्तर कुरु हिमालय में काश्मीर के उत्तर पूर्व माना जाता है । अर्जुन द्वारा विजय यात्रा के सन्दर्भ में उत्तरकुरु का वर्णन सभा पर्व में किया गया है । महाकाव्यों में उत्तरकुरु का वर्णन मिलता है । महाभारत में प्राप्त वर्णन के अनुसार यह प्रदेश पर्वतीय तथा मानव प्रवेश के लिए कठिन माना गया है । उत्तर दिशा के विजय प्रसंग में निम्नलिखित उल्लेख मिलता है ।

उत्तरकुरुवर्षे तु सासूयासाद्य पाण्डवः ।
इयेष जेतुं तं देशं पाकशासननन्दनः ।।
सभा पर्व २७:२७

न चात्र किंचिज्जेतव्यं अर्जुनात्र प्रदृश्यते ।
उत्तराः कुरवो ह्येते नात्र युद्धं प्रवर्तते ।।
सभा पर्व २८:११

भीष्म पर्व में धृतराष्ट्र की जिज्ञासा पर संजय ने वर्ष, पर्वत, मेरुगिरि का वर्णन करते हुए उत्तर कुरु को मेरु पर्वत अर्थात् पामीर के पार्श्व में बताया है । निम्नलिखित ४ द्वीपों का वहाँ उल्लेख किया गया है ।

भद्राश्वः केतुमालश्च जम्बूद्वीपश्च भारत ।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ।। ६ । २ ।

भद्राश्व, केतुमाल, जम्बू, उत्तर कुरु में पुण्यात्मा निवास करता है ।

भीमपर्व अध्याय ७ में उत्तर कुरु का और वर्णन मिलता है ।

दक्षिणेन तु नीलस्य मेरो पार्श्वे तथोत्तरे ।
उत्तराः कुरवो राजन् पुण्याः सिद्धनिषेविताः ।

(नीलगिरि से दक्षिण तथा मेरु गिरि के उत्तर भाग में पवित्र उत्तर कुरु वर्ष है । वह सिद्ध पुरुषों का निवास स्थान है ।)

कल्हण ने स्वर्णपिपीलिका का वर्णन किया है जो नदी के बालू से मिलती है। उत्तरकुरु के प्रयोग में उत्तरकुरु की विशेषता में सूक्ष्म कांचन बालुका अर्थात् बालू का वर्णन मिलता है । इस वर्णन से स्पष्ट है कि उत्तरकुरु कश्मीर के समीपस्थ तथा वर्तमान काश्मीर का ही एक भाग था । महाभारत का वर्णन वर्तमान भौगोलिक स्थितियों से मिलता है ।

जालंधरं लोहरं च मण्डलानीतराणि च।
प्रसादीकृत्य विदधे राजत्वं सोऽनुजीविनाम् ॥१७७॥

१७७. वह अनुजीवियों को जालन्धर[1], लोहर[2] तथा अन्य भी मण्डल प्रदान कर राजपद (नृपत्व) से भूषित किया।

वहां के स्त्रियों की सौन्दर्य की प्रशंसा की गयी है। स्त्रियों तथा पुरुषों के रूप गुण तथा वेष एक प्रकार का कहा गया है।

पादटिप्पणी :

१७७ (१) जालन्धर : पंजाब का वर्तमान जिला जालन्धर है। प्राचीन जालन्धर क्षेत्र में मुस्लिम विजय के शताब्दियों पूर्व हुएनत्सांग (सियू-जी १ : १७५) तथा जनरल कनिंघम के अनुसार (एनसिएण्ट ज्योग्राफी १३६) व्यास नदी का ऊर्ध्वभाग जिसे कागंड़ा अर्थात् त्रिगर्त कहते हैं, सम्मिलित था। द्रष्टव्य : खण्ड १:३८, १६५, ४८८, ४८९, ए० २५ क० १५, इन्दोग्राफिक इंडिया १:११, १०२।)

(२) लोहर : लोहर किंवा लोहर कोट का कश्मीर के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। कल्हण ने इसका उल्लेख—४:१७७, ७:१४०, ५८४, ७०३, ७८१, ८२२, ९६५, ९९६, १०००, १०४०, ११००, ११८९, १३८६, १५८६, १५९८, १६१३, ७:८, २०३, २०६, २९४, २७९, ४११, ५१९, ५६१, ५६४, ५८४, ६०९, ७१७, ७६९, ८८५, ९१४, १०४७, १२२७, १३६३, १६३८, १६३२, १७९५, १८३२, १९३२, २०१२, २०३५, २२७७, ३३०१, ३३७१, ३२७२ में किया है। विलसन ने लोहर को भ्रम में लहोर मान कर अनुवाद किया है। बिलसन के पश्चात् उस का अनुकरण कर लेखकों ने लोहर किंवा लोहर कोट को पंजाब का लाहौर मान लिया है। सर्व प्रथम श्री स्तीन ने इस भ्रम को दूर किया है। यह स्थान लोहरिन उपत्यका में पुत्त अर्थात् प्राचीन पर्णोत्स में है। यह जन-धन सम्पन्न तथा समृद्धिशाली पर्वतीय उपत्यका उन स्रोत नदियों के मध्य है जो पीर पंजाल पर्वत की दक्षिणी ढाल किंवा निम्न भूमि के तत कुटी शिखर तथा तोश मैदान के अंचल का जल बहाकर ले जाती हैं। लोहरिन नदी जो इन स्रोत-स्विनियों से बनती है, वह मण्डी के समीप नगरी उपत्यका की स्रोतस्विनी से मिलती है। जो लोहरिन को उत्तर पश्चिम से मिलाती है। आठ मिल और बहने पर यह सुरन नदी से मिल जाती है। दोनों मिलकर द्रुत्त की तोही किंवा तेरसी नदी बन जाती है। इस क्षेत्र की सबसे उपजाऊ भूमि मण्डी से ८ मील ऊर्ध्वभाग में है। यहां पर बड़े गांव तथा बन्द त्रन्द, गगवन्द, और डोयी वन्द मिलकर लोहरिन कहलाते हैं। उनका नाम उनके कबीलों पर बन गया है। वे जिले के केन्द्र माने जा सकते हैं।

मुख्य लोहरिन उपत्यका तथा उसके पश्चात् पार्श्व की उपत्यका जो उत्तर में पर्वतमाला से नीचे जाती है वहाँ से मार्ग तोश मैदान पास की ओर जाता है। यहाँ अत्यन्त प्राचीन काल से कश्मीर से पश्चिमी पंजाब की ओर जाने का मार्ग था। इस मार्ग का महत्त्व सरल आवागमन के कारण है। लोहर तथा कश्मीर का सम्बन्ध काश्मीरी आबादी होने के कारण और हो गया है। राजपुरी अर्थात् राजोरी के उत्तर पश्चिम लोहर अंचल है। वहाँ का राजवंश कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठा था। उसके पश्चात् कश्मीर एवं लोहर एक ही राजवंश के आधीन हो गये थे। लोहर का दुर्ग कश्मीर के इतिहास में ख्याति प्रसिद्ध है।

लोहरिन तथा कश्मीर का निकटतम सम्बन्ध दोनों राजवंशों में उस समय स्थापित हो गया जब

सिंहराज की कन्या रानी दिद्दा का विवाह कश्मीर के राजा क्षेमगुप्त के साथ हो गया। सिंह राजा का स्वयं विवाह उदभाण्डपुर वैहण्ड तथा काबुल के शक्तिशाली शासक भीम शाही की कन्या के साथ हो गया था। इससे प्रकट होता है कि लोहरिन का राज्य केवल लोहरिन तक सीमित नहीं था। और पंजाब के दक्षिणी उपत्यका मणी, सुरत, सदरून, तथा सम्भव प्रान्त भी इसमें सम्मिलित थे। रानी दिद्दा ने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर पर स्वयं सन् ९८० से १००३ ई० तक राज्य किया था। भाई उदयराज के पुत्र संग्रामराज को अपना दत्तक पुत्र बना लिया था। तथापि लोहर विग्रहराज के अन्तर्गत था। सम्भवतः वह उदयराज का एक और पुत्र रहा होगा।

विग्रहराज रानी दिद्दा के समय में ही राज्य का उत्तराधिकारी होना चाहता था। संग्रामराज की मृत्यु (सन् १०२८ ई०) के पश्चात् उसने कश्मीर राज्य प्राप्त करने के लिए द्वितीय बार सफल प्रयास किया था। लोहर से ससैन्य श्रीनगर के लिए आषाढ़ मास में अभियान किया। कश्मीर सीमास्थित द्वार अर्थात् द्रंग को फूंक दिया। ढाई दिन चलकर राजधानी श्रीनगर की सीमा पर पहुँच गया। वहाँ पराजित हो गया। मार डाला गया। इस काल में सबसे नजदीक मार्ग लोहर से कश्मीर का तोश मैदान द्वारा पड़ता था। यह पास या दर्रा १३५०० फिट ऊँचा है। मई से नवम्बर तक आवागमन के लिए खुला रहता है।

विग्रहराज का पुत्र क्षितिराज था। उसका उल्लेख लोहर राजा के रूप में बिल्हण ने अपनी रचना विक्रमांकदेव चरित्र में किया है। क्षितिराज ने राज्य सिंहासन राजा उत्कर्ष, जो राजा अनन्त का पौत्र था, के लिए त्याग दिया था। वह कश्मीर-राजा हर्ष का कनिष्ठ भ्राता था। उत्कर्ष जब राजा कलश की मृत्यु (सन् १०८९ ई०) के पश्चात् कश्मीर पर राज्य करने के लिए लाया गया तो उसने कश्मीर ७ राज्य के साथ लोहर का राज्य मिलाकर दोनों का राजा बन गया। आने वाले उथल पुथल के समय में लोहर कश्मीर की रक्षा के लिए महत्त्व पूर्ण सैनिक स्थान प्रमाणित हुआ। राजा हर्ष ने राजपुरी वर्तमान राजोरी पर सैनिक अभिमान किया था। सेना तोशमैदान पास तथा लोहर होती हुई राजोरी पहुँची थी।

लोहर राज वंशी उच्चल राज्य का उत्तराधिकारी बनना चाहता था। उसने प्रथम अभियान राजपुरी से कश्मीर की ओर किया। अपनी छोटी सैनिक टुकड़ी लोहर के राज्यपाल के क्षेत्र से ले आया। उसने द्वार के पर्णोत्स द्वारपति को अपने अभियान से चकित कर दिया। पूंछ में शत्रु को पराजित करता कश्मीर के पश्चिमी अंचल क्रमराज में पहुँच गया। उच्चल का आक्रमण वैशाख मास के आरम्भ में हुआ था। इस समय तोशमैदान का पास केवल पैदल ही पार किया जा सकता था। राजा हर्ष को पराजय से बचाने के लिए मन्त्रियों ने सलाह दी। लोहर पर्वतमाला की ओर पलायन कर जाय, परन्तु उसने उनकी सलाह पर ध्यान नहीं दिया।

हर्ष की मृत्यु के पश्चात् कश्मीर तथा लोहर का राज पुनः अलग अलग हो गया। लोहर तथा उसका समीपवर्ती क्षेत्र सुस्सल के भाग में मिला। कश्मीर का राजा उच्चल बन गया। लोहर से सुस्सल ने उच्चल पर आक्रमण किया किन्तु श्रीनगर आक्रमण अभियान में वह सल्यपुर में पराजित हो गया। सल्यपुर द्रुत परगना में वर्तमान गांव सिल पोर है। वह श्रीनगर मार्ग पर सीधा पड़ता है। उच्चल की मृत्यु पौष सुदी अष्टमी सन् ११११ ई० में हो गयी। सुस्सल के सौतेले भाई कल्हण ने कश्मीर ले लिया। उसने अपने शत्रु सम्बन्धियों को लोहर के मजबूत किले में बन्द रखा। भिक्षाचर से खतरा उत्पन्न होने पर उसने ग्रीष्म ऋतु सन् ११२० ई० अपने कुटुम्ब लोहर भेज दिया। और स्वयं हुष्कपुर होता मार्गशीर्ष में उनके पास पहुँच गया। वसंत ऋतु में भिक्षाचर ने राजपूरी होते सेना भेजा, ताकि वह

पराजयव्यञ्जनार्थं नानालिङ्गानि पार्थिवाः ।
उग्रेण ग्राहितास्तेन वहन्त्यद्यपि निर्मदाः ॥ १७८ ॥

१७८. उस उग्र राजा ने पराजय व्यंजनार्थं स्वभावरूप उन निरभिमानी राजाओं को नाना-लिंगों को ग्रहण कराया जिन्हें वे आज भी धारण करते हैं ।

बन्धमुद्राभिधानाय पश्चाद्बाहू तदाज्ञया ।
तुरुष्का दधते व्यक्तं मूर्धानं चार्धमुण्डितम् ॥ १७९ ॥

१७९. उसकी आया से तुरुष्क[१] बन्ध मुद्राभिधान हेतु (निश्चय ही) पृष्ठ भाग में वाहु एवं अर्ध मुण्डित मूर्धा[२] रखते हैं।

सुस्सल पर आक्रमण करे । यह सेना दक्षिण से बढ़ती हुई पर्णोत्स पहुँची । जहाँ वह सुस्सल द्वारा पराजित हो गयी । सुस्सल के समय लोहर का नाम केवल एक बार और सुनाई पड़ता है । जयसिंह तीन वर्ष लोहर में निवास करने के पश्चात् कश्मीर में आया और पिता सुस्सल से बारहमूला में भेंट किया था ।

पादटिप्पणी :

१७८ (१) लिंग : "लिमर्थं गमयतीति लिंगम्" लिंग का सामान्य रूप से चिन्ह तथा सूचक एवं ज्ञापन अर्थ भी होता है ।

यहाँ लिंग शब्द का अर्थ चिह्न विशेष हो है, जिसे पराजय सूचनार्थ ही बाध्य होकर राजा गण धारण किये ।

पादटिप्पणी :

१७९ (१) तुरुष्क : कल्हण ने इस स्थान पर तुरुष्क शब्द का प्रयोग किया हैं न कि तुखार का । इससे स्पष्ट होता है कि तुरुष्क अर्थात् तुर्क लोग पूर्णतया राजा ललितादित्य के अधीन थे । कश्मीर में वे काफी संख्या में रहते थे । अन्यथा इस आदेश का कोई अर्थ नहीं होता ।

हरिवंश पुराण में प्रसंग आता है कि गुरु वशिष्ठ के आदेश पर म्लेच्छ लोग विशेष प्रकार से सर का बाल बनवाया करते थे । ताकि उन्हें सरलतापूर्वक पहचाना जा सके । शक लोग आधा सर मुड़ाते थे । काम्बोज तथा पारद पूरा सर मुंडन करवाते थे । पारद गण दाढ़ी रखते थे । यूनानी मस्तक का अगला भाग बनवाते थे । हिमालय के पर्वतीय लोग ललाट के ऊपर बाल बनवाते थे । काफिरस्तान के लोग शिखा छोड़कर पूरा बाल बनवाते थे। कश्मीर के दक्षिण पंजाब के उत्तरी पश्चिमी पर्वतीय भाग के रहने वाले तुर्क लोग आज भी इसी मुद्रा में प्रायः रहते हैं ।

अर्धमुण्डित मूर्धा रखना पठानों में रिवाज है अफगानिस्तान की यात्रा में ग्रामों में अर्धसर मुड़ाये तथा कंठ तक पीछे बाल रखे लोगों को बहुत बड़ी संख्या में देखा था । इसे पट्टा रखना कहते थे । प्रायः उत्तरी भारत में इस प्रकार के बाल रखने की प्रथा आज से ६० या ७० वर्ष पूर्व थी । जमीन्दार तथा बड़े लोग अपनी भद्रता प्रदर्शन हेतु इस प्रकार बाल रखते थे । यह मुसलिम प्रभाव के कारण था । मुसलिम शासन काल शताब्दियों तक रहने के कारण शासकों की रीति रिवाज को प्रायः जनता ने अपना लिया था । मेरे पिता इसी प्रकार बाल बनवाते थे । मुझे भी याद है कि जब मैं चार या पाँच वर्ष का था । इस प्रकार बाल बनवाया गया था । सभ्यता के प्रचार के साथ अंग्रेजी ढंग से बाल बनाने की प्रथा प्रचलित हो गयी है । पुरानी प्रथा अफगानिस्तान आदि में भी लोग भूलने लगे हैं ।

क्षितिभृद् दाक्षिणात्यानां तिर्यक्त्वज्ञापनाय सः ।
पुच्छं महीस्तलपर्शि चक्रे कौपीनवाससि ॥ १८० ॥

१८०. उस नरपति ने दाक्षिणात्यों का तिर्यक्त्व (पशुत्व) ज्ञापन के लिए भूमि स्पर्शी कौपीन वस्त्र धारण करवाया।

न तत्पुरं न स ग्रामो न सा सिन्धुर्न सोऽर्णवः ।
न स द्वीपोऽस्ति यत्रासौ प्रतिष्ठां न विनिर्ममे ॥ १८१ ॥

१८१. ऐसा कोई भी पुर, ग्राम, सिन्धु, अर्णव एवं द्वीप नहीं था, जहाँ उसने (देव) प्रतिष्ठा न की हो।

क्वचिच्चेष्टासमुचितं क्वचिच्च समयानुगम् ।
बाहुल्येन प्रतिष्ठानां स मानी नाम संदधे ॥ १८२ ॥

१८२. उस राजा मानी ने प्रतिष्ठाओं का प्रायः कहीं चेष्टानुरूप कहीं समयानुगामी नामकरण किया (नाम रखा।)

सुनिश्चितपुरं चक्रे दिग्जये कृतनिश्चयः ।
सगर्वो दर्पितपुरं कृतवाक् कृतकेशवम् ॥ १८३ ॥

१८३. वाक् स्वाभिमानी राजा दिग्विजय के निश्चय पर सुनिश्चितपुर[१] तथा निश्चय पूर्ण होने पर केशव की प्रतिष्ठा पूर्वक (के साथ) दर्पितपुर[२] का निर्माण किया।

पादटिप्पणी :

१८० (१) वस्त्र : दक्षिण में दो तरह से वस्त्र पहनते हैं। लुंगी की तरह वस्त्र कटिप्रदेश पर धारण करते हैं। इसे 'मुण्ड' कहते हैं। और ब्राह्मण लोग प्रायः लुंगी की तरह ही पहनते हैं। ब्राह्मण लोग लुंगी का पुछिल्ला धोती की तरह पीछे बाँधते हैं। उसे हिन्दी में लाग कहते हैं। कौपीन लुंगी किंवा मुण्ड की तरह होती है। महात्मा गांधी कौपीन पहनते थे परन्तु उसका लाग अथवा वाम भाग का छोर पीछे कटि से खोंसते थे। कल्हण दाक्षिणात्यों के इस वेष-भूषा का वर्णन करता है। दाक्षिणात्यों पर अपनी श्रेष्ठता प्रकट करने के लिये ललितादित्य ने धोती अथवा मुण्ड का जमीन तक लटकते रहने की प्रथा प्रचलित करवायी। आज कल भी दाक्षिणात्य जन जो धोती पहनते हैं उनके धोती का पुछिल्ला पीछे की ओर लटकता रहता है। उत्तर भाग में धोती का पूरा छोर या पुछिल्ला चुन कर पीछे कटिमध्य में खोंस लेते हैं।

पादटिप्पणी :

१८१ (१) राज तरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह ११४ वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

१८२ में 'मानी' का 'मुनी' पाठ भेद मिलता है।

पाठभेद :

१८३ में 'सगर्वो' का 'सदर्पो' तथा 'कृतवाक्' का 'कृतवान्' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

१८३ (१) सुनिश्चितपुर : इस स्थान का पता नहीं चलता।

(२) दर्पितपुर : इस स्थान का पता नहीं चलता।

फलं गृह्णन् फलपुरं पर्णोत्सं पर्णमाददत् ।
क्रीडारामविहारं च क्रीडन् राजा विनिर्ममे ॥ १८४ ॥

१८४. उस राजा ने जहाँ फल ग्रहण किया वह फलपुर[1] और जहाँ पर्ण लिया वहाँ पर्णोत्स[2] तथा जहाँ क्रीडा किया वहाँ क्रीड़ा राम विहार[3] निर्मित कराया ।

पाठभेद :

१८४ में 'क्रीडाराम' का पाठभेद 'क्रीडाराज' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१८४ (१) फलपुर : यह स्थान परिहासपुर के समीप वितस्ता सिन्धु संगम के निकट होना चाहिए ।

(२) पर्णोत्स : वर्तमान पूंछ है। कश्मीर में इसे पुन्त कहते हैं। ह्वेनसांग ने इसका 'पुन-नु-त्सो' नाम से उल्लेख किया है । कश्मीर से राजौरी अर्थात् राजपुरी जाते समय वह यहां आया था। वह सम्भवतः तोश मैदान के राजा के आधिपत्य में था। तत्पश्चात् यह लोहर के पर्वतीय राज्य का जिला हो गया । ह्वेनसांग के वर्णन से प्रतीत होता है कि इस स्थान का नाम ललितादित्य के पूर्व से ही पर्णोत्स था । यहां के रहने वाले काश्मीरी पुन्त को ही पर्णोत्स का अपभ्रंश मानते हैं ।

राजौरी से पूंछ मैं आया हूँ । राजौरी से पुंछ तक सड़क अच्छी है । सड़क पर बहुत मोड़ हैं। भीमवर गली पहुँचा। यहां चौराहा है। एक मार्ग पूंछ की तरफ जाता है । यहां पर बाला कोट की पहाड़ी है । उसके दूसरी तरफ सैनिक छावनी थी । मैं यहां सितम्बर, १९६२ को पहुँचा था। पाकिस्तानी सिपाही गोली चला रहे थे । यह हालत ४ दिन से थी । युद्ध विराम रेखा पार कर पाकिस्तानी सिपाही आ जाते हैं। भारतीय नागरिकों के पशु तथा कभी कभी आदमी पकड़ ले जाते हैं। इस प्रकार की घटनाएं प्रायः हुआ करती हैं । भारतीय नागरिक तथा सैनिक कठोर अनुशासन होने के कारण पाकिस्तानी क्षेत्र में नहीं जाते ।

राजौरी पूंछ नवीन सड़क सैनिक दृष्टि से निर्माण की गयी है। बालाकोट के पश्चात् स्वर्ण कोट बैली पड़ती है । उपत्यका सुन्दर है। मध्य में नदी बहती है । शाली तथा मक्का की खेती बहुत होती है । नदी के धरातल में भारतीय फौज की छावनी पड़ी थी । चीड़ के वृक्ष बहुत हैं। स्वर्णकोट से पूंछ तक शाली तथा मक्का की खेती बहुत अच्छी मिली । दोनों ओर हरियाली, श्याम पर्वत माला और उपत्यका में शाली की खेती स्वर्ण पादप की तरह लगती थी। यहां के ६६ प्रतिशत निवासी पाकिस्तान चले गये । इस समय ३३ प्रतिशत आबादी रह गयी है । श्रीनगर से पूंछ उरी से होकर जाते थे। इस समय नगर पहुँचने में पूँछ से २ दिन समय लगता है । यहां पर पाकिस्तानी फौज तथा कबीले वालों ने २१-१०-१९४७ को आक्रमण किया था। थोड़ी सेना थी । पूछ तीन तरफ से घिर गया था। परन्तु भारतीय जनरल प्रीतम सिंह ने यहां ख्याति प्राप्त की थी। यहां के नागरिक उन्हें नहीं भूल सके हैं। यहां का हवाई अड्डा पाकिस्तान की गोलियों की बौछार में चान्दनी रात में ७ दिन के अन्दर बनाया गया था । पूँछ नदी पर नगर बसा है। यहाँ से लोहर का प्रसिद्ध स्थान कुछ दूर था । मैं यहां इच्छा रहते हुए भी साधन की कमी के कारण इस बार नहीं जा सका ।

राजा की कश्मीर फ़ौज में डोंगरा, सिख तथा सूदन मुसलमान थे । सूदन लोग पहले ब्राह्मण थे । आज भी पाकिस्तानी फौज में उनकी संख्या एक लाख होगी। कश्मीर राजा हरीसिंह का उन पर डोंगरा होने के कारण बहुत विश्वास था । परन्तु पाकिस्तानी

एकमूर्ध्वं नयद्रत्नमधः कर्षत्तथापरम् ।
बद्ध्वा व्यधान्निरालम्बं स्त्रीराज्ये नृहरिं च सः ॥ १८५ ॥

१८५. उसने स्त्री राज्य में एक चुम्बक ऊर्ध्व प्रदेश में और एक चुम्बक अधः प्रदेश में स्थापित कर बिना आधार[1] भगवान् नृहरि[2] (नृसिंह की मूर्ति) स्थापित की ।

आक्रमण काल में वे पाकिस्तानियों से मिलकर डोंगरा तथा सिखों के साथ युद्ध करने लगे थे ।

पूंछ पहले छोटा राज्य कश्मीर के आधीन था । परन्तु सन् १९२९ में वह पूर्णतया कश्मीर में मिला लिया गया । पूँछ के क्रमशः मोतीसिंह, बलदेव सिंह, सुखदेव सिंह, जगदेव सिंह राजा हुए हैं । शिवरतन सिंह अपनी सम्पत्ति बेचकर देहरादून में रहते हैं । पूँछ के मन्दिर इन्हीं राजाओं के निर्माण हैं ।

नगर के मध्य में एक पहाड़ी पर किला बना है । किलेमें राजकीय कार्यालय है । पूँछ का व्यापार आदि कम हो गया है । यहां के लोगों ने मुझसे कहा कि पूँछ का नाम ऋषि पुलस्त्य के नाम पर रखा गया है । पर्णोत्स शब्द वे लोग सुनकर चकित हुए । नगर में अहमदिया मुसलमानों की एक बड़ी मसजिद का निर्माण हुआ है ।

मुझे कुछ प्राचीन वस्तुएँ ध्वन्सावशेष आदि नहीं मिले । नगर उजड़ा प्रतीत होता है । एक दशनामी अखाड़ा है । स्वामी शंकरानन्द रहते हैं । वे बंगाली साधु हैं । चालीस वा पचास वर्षों से यहीं निवास करते हैं । अखाड़ा के साथ एक गाथा गुथी है । उन्होंने मुझसे कहा—भगवान् राम और कृष्ण जनता की सेवा करने के लिए हुए थे । उन्हें हम भगवान् मान कर पूजने लगे ।

पूंछ में सुदन मुसलमान राजा मलदयाल राज्य करते थे । यहाँ सघन वन था । एक महात्मा रहते थे । एक दिन सुदनराज की महात्माजी से भेंट हो गयी । राजा ने कुछ दान करना चाहा । महात्मा ने राजा से भैंस का दूध मांगा । राजा की भैंस कभी गाभीन नहीं हुई थी । यद्यपि राजा ने उसे खूब पाल-कर बड़ी किया था । राजा को आश्चर्य हुआ । घर पर आया । थन से दूध निकल रहा था । राजा महात्मा का शिष्य हो गया । कुछ समय पश्चात् राजा गुलाब सिंह ने पूंछ पर आक्रमण किया । सुदन राजा की रक्षा महात्मा जी करने में असमर्थ होकर जीवित समाधि ले लिये । इस समाधि पर मन्दिर बना है । यहां एक कूप है । पानी तक पहुँचने के लिए सीढ़ियां बनी हैं ।

पूंछ के राजा का महल सुन्दर पाश्चात्य प्रासाद शैली पर बना है । इसे मोती महल कहते थे । इसमें संयुक्त राष्ट्र संघ के सैनिक पर्यवेक्षक इस समय रहते हैं । प्रासाद के सम्मुख शालोमार के शैली का बाग बनाया गया है । यहां की हरियाली तथा वृक्षों की आवलियाँ शोभनीय हैं ।

पाकिस्तानी फौज पूंछ नदी के उस पार तथा भारतीय फौज इस पार अर्थात् नगर की तरफ रहती है । पाकिस्तान से आये हिन्दू तथा सिख शरणार्थी यहां रहते हैं ।

(३) क्रीडाराम विहार : इस स्थान का पता अभी तक नहीं लग सका है ।

पादटिप्पणी :

१८५ (१) आधारहीन : अधर में लटकती निरावलम्ब मूर्ति निर्माण विद्या तथा विज्ञान का काश्मीरियों को ज्ञान था। अनेक स्थानों पर निरालम्ब मूर्तियों का वर्णन आता है परन्तु शायद यह पहला ही वर्णन है जब कि इस प्रकार के मन्दिर तथा मूर्ति का निर्माण किया गया था। चुम्बक पत्थर का अन्वेषण अति प्राचीन है। लोहा को अपनी ओर आकर्षित करना इसका मुख्य गुण है। गाथा है कि चीनी ईसा से २६०० वर्ष पूर्व से चुम्बकीय दिक्-सूचक यन्त्रों का प्रयोग करते आ रहे हैं। जापानियों ने सातवीं शताब्दी में वह ज्ञान प्राप्त किया था।

दिगन्तरस्थे भूपाले तस्मिंस्तत्कर्मकृत्किल।
पुरं विधाय तन्नाम्ना तत्कोपफलमन्वभूत् ॥ १८६ ॥

१८६. उस नृपति के दिगन्तर में ही रहने पर उसका एक पुरी निर्माण कर्ता अधिकारी उसके नाम से ललितपुर[1] निर्मित कर राजा के क्रोध फल का अनुभव किया।

---

(२) नृसिंह : कश्यप पिता तथा दिति माता का पुत्र हिरण्यकश्यप था। पराक्रमी था। घोर तपस्या किया। ब्रह्मा से वरदान प्राप्त किया—'किसी मानव, देवता, राक्षस, पिशाच. आदि से न मारा जाऊँ। किसी के शाप से भी मृत्यु न हो। न किसी भी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र से, न दिन में, न रात में, न जल, थल एवं अंतरिक्ष में, मारा जाऊँ। काल को इस प्रकार परास्त कर काल की चिन्ता न करता वह निरंकुश हो गया। उसके चार पुत्र—अनुह्लाद, ह्लाद, प्रह्लाद एवं संह्लाद थे। प्रह्लाद विष्णुभक्त था। हिरण्यकश्यप उससे रुष्ट हो गया। भक्ति से विरत करने के लिए प्रह्लाद को अनेकों यातनाएँ दी गईं। पाश बद्ध किया गया। पर्वत से गिराया गया। समुद्र में डुबाया गया। सर्प दंश कराया गया। विष दिया गया। यहां तक कि अग्नि, कृत्या, अस्त्र-शस्त्र, के प्रयोग द्वारा प्रह्लाद को त्रास दिया जाने लगा। किन्तु प्रह्लाद भक्ति पद से विचलित नहीं हुआ। (विष्णु : १:१९) अनन्तर शंबासुर को नियुक्त किया गया। प्रह्लाद को कष्ट दे। भक्ति विरत करे। किन्तु भगवान् विष्णु ने सुदर्शन चक्र भेजकर प्रह्लाद की रक्षा की। विष्णु पुराण का मत है कि प्रह्लाद को हिरण्यकश्यप ने क्षमा कर दिया और उससे स्नेह करने लगा। (विष्णु अंश : १९ अ० : २९) यहां नृसिंह द्वारा हिरण्यकश्यप के वध का संकेत मात्र है। मत्स्यपुराण (अ० १६२) के अनुसार नृसिंह एवं हिरण्यकश्यप की सेना में युद्ध हुआ था। नृसिंह अवतार भगवान् ने देवताओं के कहने से धारण किया था। भगवान् के विराट रूप का वर्णन किया गया है। (मत्स्यः अ० १६१) हिरण्यकश्यप की सभा में भगवान् ने पहुँचकर दैत्यों तथा हिरण्यकश्यप से भयंकर युद्ध किया था। सबको परास्त कर उसे नखों से विदीर्ण कर दिया।

नृसिंह का एक नाम स्थूण है। हिरण्यकश्यप जब सब उपायों से थक कर प्रह्लाद को विष्णु से विरत न कर सका तो राज भवन के स्तम्भ से बांध कर उसे त्रास देने लगा। कहने लगा—'बोलो तुम्हारा भगवान् कहां है।' उत्तर मिला—'वह सर्वत्र है। इस खम्भ में भी है।' इस उत्तर से क्रुद्ध होकर स्तम्भ पर उसने पदाघात किया। स्तम्भ टूट गया। उससे नृसिंह रूप भगवान् प्रकट हुए। भगवान् ने हिरण्यकश्यप को अपनी जाँघों पर लिटा लिया। उसके हृदय को नखों से विदीर्ण कर मार डाला। यही अनुश्रुति विशेष लोकप्रिय है। नृसिंह की मूर्ति दो शैली में मिलती है। एक तो उपर्युक्त घटना का प्रदर्शन करती है। दूसरी में नृसिंह तथा हिरण्यकश्यप का युद्ध प्रदर्शित किया गया है। इलौरा में युद्ध करती मूर्ति का अच्छा प्रदर्शन किया गया है। एक मत है कि नृसिंह की कल्पना पंचरात्रि व्यूह से अधिक सम्बन्धित है। विष्णु अवतार की कल्पना बाद में की गयी है। संकर्षण चतुर्विंश विष्णु में एक हैं। उनका मुख सिंह का है। सिंह भारतीय प्रतीक विद्या में ज्ञान का प्रतीक माना गया है। गुप्त काल में नृसिंह की विशेष पूजा होने लगी। सर्व प्रथम इसका अंकन मृगमुद्रा पर गुप्तकालीन मिली है। यह मुद्रा बसाढ़ से प्राप्त हुई है। वैखानस आगम में नृसिंह के एक विशिष्ट रूप की कल्पना की गयी है। वह अत्यन्त सौम्य है।

पाठभेद :

१८६ में 'तत्कोपफलमन्वभूत्' का पाठ भेद 'तत्तत्फलप्रदमभूत्' तथा 'तत्तत्फलदमन्वभूत्' मिलता है।

ललिताख्ये पुरे तस्मिन्नादित्याय स भूपतिः ।
सग्रामां कान्यकुब्जोर्वीमभिमानोर्जितो ददौ ॥ १८७ ॥

१८७. स्वाभिमानी वह भूपति उस ललितपुर में प्रतिष्ठित (भगवान्) आदित्य[1] को संग्राम में विजित कान्यकुब्ज[2] भूमि प्रदान किया।

पादटिप्पणी :

१८६ (१) ललितपुर : रा० ४ : २१९ तथा २२४ में ललितादित्यपुर का उल्लेख किया गया है। यही ललितपुर है। विही परगना में लटपोर गाँव वितस्ता के दक्षिण तट पर स्थित है। स्थानीय जनता में जनश्रुति व्याप्त है कि ललितादित्य ने यहाँ तथा समीपस्थ उदर में नगर बसाया था। इस स्थान पर प्राचीन ध्वन्सावशेष नहीं मिले हैं।

१८७ (१) आदित्य : ऋग्वेद (२ : ७१-१) में छह आदित्यों की गणना है। वे मित्र, अर्यमन्, भग, वरुण, दत्त तथा अंश है। ऋग्वेद (९ : ११४ : ३) में सात आदित्य और (१०:७२, ८) आठ आदित्यों के नामों का उल्लेख मिलता है। महाभारत (आदि० ६६:३६) के अनुसार आदित्यों में इन्द्र सबसे बड़े तथा विष्णु अर्थात् वामन सबसे छोटे अवतार गिने गये हैं।

मार्तण्ड एवं आदित्य दोनों ही सूर्य के नाम हैं। ललितादित्य ने आदित्य की स्थापना ललितपुर तथा मार्ताण्ड नगर प्राकार का निर्माण अन्यत्र कराया था। दोनों एक ही स्थान नहीं प्रतीत होते। आदित्य द्वादश हैं। उनमें मार्ताण्ड एक है। यही आदित्य एवं मार्ताण्ड में अन्तर प्रतीत होता है।

ऋग्वेद में आदित्य सम्बन्धी सूक्त है। एक स्थान में केवल आदित्य सम्बन्धी ६ देवता हैं। (ऋ० २:२७:१) अदिति का आठवाँ पुत्र मार्ताण्ड है। (ऋ० १०-७२-८-९ श० ब्रा० ६:१:२:८) शतपथ ब्राह्मण ने द्वादश आदित्य माना है। वे बारह मासों के प्रतीक हैं (श० ब्रा० ११:६:३:८) ऋग्वेद में सूर्य को आदित्य कहा गया है। (८:१०१ १५) अदिति से उत्पन्न १२ पुत्रों को ही द्वादश आदित्य किंवा साध्यदेव तैत्तिरीय ब्राह्मण ने माना है (१:११९ १) विष्णु, शक्र, अर्यमा, धृति, त्वष्टृ, विवस्वत्, सावित्र आदित्य से सामवेद हुआ है। (ए० प्रा० २५-७ सां० ब्रा० ६।१०) श० ब्रा० ११:५८ छा० उ० ४:१७:२ जै० अ० ब्रा० ३:१५:७, श० ब्रा० ४:१ गो० ब्रा० १:६) १-१५:१७ पुराणों में कश्यप पिता तथा अदिति माता के पुत्र आदित्य कहे गये हैं। प्रश्नोपनिषद् में आदित्य को प्राण कहा गया है। (१।५) जिस समय आदित्य उदय होता है, पूर्व दिशा में प्रवेश करता है, तो पूर्व दिशा के प्राणों को अपनी किरणों से धारण करता है। १:६

आदित्य की उपासना अभिमुक्त तीर्थ संस्कार में करने के लिए कहा गया है। विष्णु पुराण (३-५ २४) याज्ञवल्क्य ने आदित्य की उपासना की है। विष्णु (१:१५-१२६,१३१ वायुपुराण : ६६-६) ब्राह्मण (३:२:६७,-६९) मत्स्य (६-३-५) में कहा गया है कि चक्रमन्वन्तर के तुसित देव वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य नाम से प्रख्यात हुए हैं। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार जगत्-सृजन काल में सौर मण्डल आदित्य नाम से अभिहित हुआ है। क्योंकि सर्वप्रथम अर्थात् आदि में उत्पन्न हुए थे। वैदिक साहित्य में अग्निदेव का प्रमुख स्थान था। और सूर्य का सबसे निम्न। पुराणों में अग्नि का स्थान सूर्य से निम्न रखा गया है। कुछ पुराणों में अग्नि कालाग्निः काल रूप में सूर्य तत्त्व भी माने गये हैं। एक स्थान मर कालाग्नि को सूर्य कहा गया है—आदित्यस्तु असौ सूर्यः कालाग्निः। ब्राह्मण (२:१३:१७)।

सूर्यलोक का नारद ने उल्लेख किया है। साम्ब (१:६) एवं भविष्य पुराण में सूर्य उपासना का

तेन हुष्कपुरे श्रीमान् मुक्तस्वामी व्यधीयत।
बृहद्विहारो भूपेन सस्तूपश्च महात्मना ॥ १८८ ॥

१८८. उस महात्मा भूपति ने हुष्कपुर में श्रीमान् मुक्ता स्वामी की स्थापना एवं स्तूप सहित विशाल विहार निर्मित कराया।

विशद वर्णन है। सूर्य उपासना भारत में और प्रबल हो गयी विदेशों के सम्पर्क से। विदेशी सूर्य उपासक पुरोहित मग कहे जाते थे। वे शकद्वीप से भारत आये थे। वे सूर्य मन्दिरों के पुरोहित बन गये थे।

कृष्ण के पुत्र साम्ब ने चन्द्रभागा के तट पर सूर्य मन्दिर निर्माण कराया था। किन्तु कोई ब्राह्मण पुरोहित होने के लिये उद्यत नहीं हुआ। उसने उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख से सलाह किया। गौरमुख ने राय दी कि शाकद्वीपी मग सूर्य उपासना में निपुण हैं। उन्हें बुलाया जाय। मग की उत्पत्ति के विषय में बताया कि निक्षरा एक ब्राह्मण सुजिट्ट की कन्या थी उससे सूर्य प्रेम करने लगे। उससे उत्पन्न पुत्र का नाम जरगस्त हुआ। एक मत है कि यह जरदस्तु थे। उनसे मगों की उत्पत्ति हुई। साम्ब गरुड़ारूढ़ होकर शकद्वीप गये और मग पुरोहित लाये।

गोविन्दपुर के शिलालेख से प्रकट होता है कि मगों की उत्पत्ति सूर्य से हुई थी। मग लोग सम्राट् साइरस ईरान से अधिक सम्पर्क में आये थे। जब उसने अपना साम्राज्य भीडिया और लोडिया तक विस्तृत किया था। गाथा है कि मूल स्थान अर्थात् मुलतान सूर्य मन्दिर मगों का निर्माण कराया था। जिसके पुरोहित पूर्वी ईरान से आये थे। (एज आफ इमिरियल यूनिटी पृष्ठ १२१) वाराह मिहिर ने उनका उल्लेख किया है। प्लेप्सी ने द्वितीय शताब्दी में मगों का दक्षिण में रहना बताया है। पुराणों में मग पुरोहितों द्वारा सूर्य उपासना के तीन केन्द्र माने गये हैं। उनमें प्रथम मूलस्थान था। उसे मित्र बन भी कहते थे। इसको उदयपुर, हंसपुर, मगपुर, साम्बपुर, प्रह्लादपुर, तथा आद्य स्थान भी कहते हैं। अवूहिना ने साम्बपुर का उल्लेख किया है। हुयेन्त्सांग ने सातवीं शताब्दी में मुलतान की यात्रा की थी। उसने स्पष्ट कहा है कि इस स्थान की प्रसिद्धि सूर्य मन्दिर के कारण है। उसके अनुसार सूर्य की मूर्ति पीत स्वर्ण की थी। ढाली गयी थी। उसे अमूल्य रत्नों से अलंकृत किया गया था। यहाँ स्त्रियां गान करती थीं। बत्ती जलाती थीं। पुष्प तथा धूपदान करती थीं। सभी देशों से यात्री पूजा के लिए आते थे। हजारों यात्री मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा करते थे।

निस्सन्देह पुराणों से प्रकट होता है कि मगों के भारत में आगमन के पश्चात् सूर्योपासना विशेष विकसित हुई। सूर्य मूर्ति तथा मन्दिरों को लोकप्रिय बनाया गया। ईसवी सन् के प्रारम्भिक काल से सूर्योपासना प्रचलित हो गयी। कश्मीर इस प्रभाव से अछूता नहीं रहा। मग लोग पश्चिम तथा उत्तर पंजाब में आबाद थे। मुलतान कश्मीर से बहुत दूर नहीं था। अतएव कश्मीर के राजा भी सूर्य पूजा से प्रभावित होकर मार्तण्ड, आदित्य किंवा सूर्य मन्दिर का निर्माण विशाल शैली पर कराया। मार्तण्ड मन्दिर में ग्रीक कला की छाप मिलती है। कारण मालूम होता है कि ईरानी मग लोग जो यूनानी स्थापत्य से प्रभावित थे उन्होंने अपनी शैली पर मन्दिरों का निर्माण कराया।

साम्ब तथा भविष्य पुराणों में सूर्योपासना पद्धति का वर्णन किया गया है। ईरान देशीय मगों द्वारा लायी सूर्योपासनाके प्रभाव के कारण सौर सम्प्रदाय का उदय भारत में हो गया।

१८८ (१) हुष्कपुर : यहाँ पर विहार तथा स्तूप का होना निर्विवाद है। रेवरेण्ड श्री कोई को उसकर के समीप सन् १८३८ में एक स्तूप मिला था। एक चित्र भी अपनी पुस्तक में उन्होंने दिया है। श्री स्तीन अगस्त मास सन् १८९० में इस

एकां कोटिं गृहीत्वा स दिग्जयाय विनिगतः ।
भूतेशाय ददौ शुद्धचै कोटीरेकादशाऽऽगतः ॥ १८९ ॥

१८९. वह एक कोटि लेकर दिग्विजय हेतु गया था और परावृत्त होकर ग्यारह कोटि शुद्धि[1] हेतु भूतेश को प्रदान किया।

स तत्र ज्येष्ठरुद्रस्य शिलाप्रासादयोजनम् ।
भूमिग्रामप्रदानं च विदधे वसुधाधिपः ॥ १९० ॥

१९०. उस वसुधाधिप ने वहाँ ज्येष्ठ रुद्र[1] का प्रस्तुत प्रासाद निर्मित कर भूमि एवं ग्राम प्रदान किया।

स्थान पर आये थे। ग्राम से ४०० गज के अन्तर पर स्तूप का केवल नाममात्र अवशेष रह गया था। यहां के ग्रामीणों से पूछने पर मालूम हुआ कि किसी साहब की आज्ञा से वह जमीन के बराबर कर दिया, गया।

उस्कर तथा बारहमूला के मध्य आध मील पर १० फुट ऊंचा लिंग स्तीन को मिला था। प्राचीन स्मारकों तथा मन्दिरों के चिह्न यहां के खेतों तथा भूमि पर बहुत बिखरे उन्हें दिखाई दिए थे।

ओ-कुंग चीनी पर्यटक ने अपने स्तूपों की तालिका में इस स्तूप का नाम दिया है। बिहार को मोंग-ली विहार कहा है। वह कहता है कि उत्तरी भारत के राजा ने गौरव प्राप्त करने पर विहार का निर्माण कराया था।

अलबेरूनी ने मुक्तापीड का वर्णन किया है। चैत्रशुक्ल पक्ष में कश्मीर में अगुश असयुज का पर्व होता है। यह उत्सव मुत्तई (मुक्तापीड) के तुर्क विजय के सम्बन्ध में अब तक मनाया जाता है। तुर्क विजय का कितना महत्त्व कश्मीर में किया जाता है इसी से प्रकट होता है।

मोंग ली शब्द मुक्तापीड के नाम का चीनी-करण है। विहार का नाम मुक्ता विहार रहा होगा। इसका चीनी मोगली शब्द है। यह मुक्ता का अपभ्रंश है।

पादटिप्पणी :

१८९ (१) शुद्धि : म्लेच्छ देश, विदेश एवं समुद्र यात्रा के पश्चात् शुद्धि का विधान बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक विशेषतया लोग करते थे। यदि ब्रिटेन अथवा यूरोप, अमेरिका पढ़ने या किसी कार्य से जाते थे तो जाति से च्युत कर दिए जाते थे। काशी से कुछ वंशों के लोग ब्रिटेन शिक्षा के लिए गये थे। समुद्र यात्रा के कारण उन्हें जाति च्युत कर विलयतिया कह दिया गया था। आजकल विदेश यात्रा करना गौरव की बात मानी जाती है। राजा ने भी समुद्र यात्रा की थी। अतएव उसने ग्यारह करोड़ मुद्रा भूतेश पर अपनी शुद्धि हेतु चढ़ाया था। शुद्धि क्रिया को कुछ लोग विदेश यात्रा संबंधित प्रायश्चित्त कहते थे।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९० में 'भूमिग्राम' का पाठभेद 'भूमिग्रामे' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१९० (१) ज्येष्ठ रुद्र : ज्येष्ठ रुद्र का देव-स्थान भूतेश्वर (बुतसर) के अति समीप था। पश्चिमी मन्दिर समूह भूतेश्वर वर्ग में पूजा हेतु सम्मिलित थे। उसमें मुख्य मन्दिर ललितादित्य द्वारा निर्मित प्रतीत होता है। द्रष्टव्य खण्ड १ : १३९, १६५, १८६-१९१, २०५।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९१ में 'चक्रधरे' का पाठभेद 'चक्रधर' मिलता है।

चक्रे चक्रधरे तेन वितस्ताम्भःप्रतारणम् ।
विनिर्मायारघट्टालीस्तांस्तान्ग्रामान्प्रयच्छता ॥१९१॥

१९१. उसने अरघट्टों[1] (रहटों) को बनवाकर उन उन ग्रामों को प्रदान कर चक्रधर[2] में वितस्ता जल प्रतारण किया।

सोऽखण्डिताश्मप्राकारं प्रासादान्तर्व्यधत्त च ।
मार्तण्डस्याद्भुतं दाता द्राक्षास्फीतं च पत्तनम् ॥१९२॥

१९२. उस दाता (राजा) ने अखण्डित पत्थरों के प्राकार एवं द्राक्षा समृद्धि से युक्त नगर और प्रासादोत्तर अद्‌भुत मार्ताण्ड[1] निर्मित किया।

पादटिप्पणी :

१९१ (१) अरघट्ट : द्रष्टव्य : खण्ड १:२८७-२८९ क० ३५

(२) चक्रधर : चक्र भगवान् विष्णु तथा कृष्ण का आयुध है। चक्रवर्ती राजा का चिह्न भी माना जाता है। (वायु ५७-६८)। द्रष्टव्य: खण्ड १:८५, ११०, १२३, १७१, २६०, २७८, २७९ २८३, २८४, ५० ११. २२।

व्रिजबोर के नीचे चक्रधर वर्तमान स्थान तस्कदर है। उद्र और अधित्यका के कारण जो अर्ध चन्द्राकार भूमि तस्कदर तक फैली है, उसकी भूमि नहर किंवा कुल्या से सींची नहीं जा सकती है। अम्भः-प्रतारण शब्द का प्रयोग कल्हण ने (त: ११५७) में भी किया है। अरघट से जल वितस्ता से उठाकर इस क्षेत्र की सिंचाई की जाती थी। आधुनिक भाषा में इसे लिफ्ट इरिगेशन कहते हैं। आजकल कूपसे जल सिंचाई के लिए लिया जाता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९२ में 'मार्ताण्ड' का पाठभेद 'मार्त्तण्ड' मिलता है।

१९२. (१) मार्ताण्ड—द्वादश आदित्यों में आठवें आदित्य का नाम मार्ताण्ड है। (म० आ० ७:१०:भा० ५:२०, ४४ ब्राह्मण ३:७:२७८-२८८)। महाभारत में इनको कामधेनु का पति कहा गया है (म० अनु० ११७, ११)। मार्ताण्ड का अर्थ मृत्यु होता है। एक मत है कि पृथ्वी के जिस स्थान पर सूर्य सात मास क्षितिज में रहता है एवं आठवें मास अस्तंगत होता है उसी स्थान में इस आदित्य का निवास होता है।

मार्ताण्ड मन्दिर भारतवर्ष के भग्नावशेषों में अपना विशेष स्थान रखता है। इसका प्राकार २२० + १४२ फीट है। इसमें मिश्र के स्थापत्य की भव्यता तथा ग्रीस के स्थापत्य का लालित्य दोनों का अपूर्व मिश्रण मिलता है। स्थापत्य की पूर्णता काश्मीरी शैली है। परन्तु गान्धार शैली उसमें जैसे मुसकराती है। उत्तर गुप्तकालीन भास्कर्य तथा स्थापत्य कला की प्रगति गान्धार शैली से अछूती नहीं है। उसने कश्मीर में आगे चलकर बनने वाले, मन्दिरों के लिए जैसे प्रतिकृति का कार्य किया है।

इस समय प्राचीन मन्दिर भंग पड़ा है। समीप ही मान मन्दिर, जलस्रोत एवं कुण्ड के उस पार भवन अर्थात् वामन नाम से मन्दिर बना है। वह सूर्य मन्दिर है।

स्तीन ने अपने अनुवाद में 'प्राकार के अन्दर' लिखा है। एक दूसरा मत है। प्रासादान्तर शब्द का अर्थ प्रांगण के समीप होता है। अन्तर शब्द समीप तथा अन्दर दोनों के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसका अर्थ लगाया जाता है कि मार्ताण्ड का मन्दिर ललितादित्य के पूर्व से ही मार्तण्ड अधित्यका पर स्थित था।

लोकपुण्ये पुरं कृत्वा नानोपकरणावलीम् ।
प्रतिपादितवाञ्जिष्णुर्ग्रामैः साकं स विष्णवे ॥१९३॥

१९३. उस विजयकामी ने लोक पुण्य में नगर निर्मित कर ग्रामों के साथ नाना प्रकार के उपकरणों को भगवान् बिष्णु को अपित किया।

ततः परं परीहासशीलो भूलोकवासवः ।
विहसद्वासवावासं परिहासपुरं व्यधात् ॥१९४॥

१९४. तदुपरान्त परिहासशील भूलोक वासव ने इन्द्रपुरी का परिहास करने वाले परिहासपुर[1] का निर्माण कराया।

अदिति के आठ पुत्रों में एक मार्ताण्ड किंवा मार्तण्ड था। कथा है कि सात पुत्रों के साथ देवी अदिति स्वर्ग चली गयीं। आठवें पुत्र मार्ताण्ड को त्याग दिया (ऋ० १०:६२:८-९: ।) ऋग्वेद में मार्ताण्ड शब्द पक्षी के लिए भी केवल एक बार उल्लिखित हुआ है (ऋ० ३:३८:८)

पाठभेद :

श्लोक सं० १९३ में 'जिष्णुर्ग्रामैः' का पाठभेद 'जिष्णुग्रामैः' मिलता है।

१९३ (१) लोकपुण्य—इसे लोक बवन कहते हैं। इसका संस्कृत नाम लोक भवन था। पुण्य स्थान के कारण लोक पुण्य अर्थात् जनता के पुण्य का स्थान रखा गया है। यह व्रिग परगना में लारिकपुर ग्राम के पास एक सुन्दर मधुर जलस्रोत है। इस समय एक इमारत का ध्वन्सावशेष पड़ा है। यह मुगल काल में सम्राट् हेतु ग्रीष्म कालीन निवास स्थान तुल्य बनवाया गया था। औरंगजेब ने जलस्रोत के निकट ही बगीचा तथा मसजिद निर्माण किया था। उक्त निर्माण में शिला खण्ड प्राचीन इमारतों, मन्दिरों आदि से लिये गये हैं। जलस्रोत के समीप कुछ मूर्तियाँ भी पड़ी हैं। उनकी पूजा स्थानीय ब्राह्मण करते हैं। यह स्थान विजय विहारा अर्थात् विजयेश्वर से लगभग साढ़े बारह मील दक्षिण है। यहां कई ध्वन्सावशेष मिले हैं। जलस्रोत में पुराने पत्थर लगाये गये हैं। नीलमत पुराण में लोक पुण्य का उल्लेख किया गया है।

लोकपुण्यं हि तन्नाम सर्वपापहरं परम् ।
कापोतकं नरः स्नात्वा गोप्रदानफलं लभेत् ॥
नीः १२९२

जहांगीर अपनी आत्म कथा में लिखता है। शनिवार ४ वीं को लोक भवन सोते पर पड़ाव पड़ा। यह सोता भी सुन्दर स्थान है। यद्यपि इस समय वह इतना अच्छा नहीं है। पर इसकी मरम्मत कर दी जाय तो बहुत सुन्दर हो जायगा। हमने आज्ञा दे दी कि यहां एक उपयुक्त इमारत बनाई जाय। और सामने के जलाशय की मरम्मत करा दी जाय। तज्जुकरात जहाँगीर : हिन्दी अनुवाद पृष्ठ ३८३-३८७

पाठभेद :

श्लोक सं० १९४ में 'परं' का पाठभेद 'पारं' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१९४ (१) परिहासपुर परसपोर दिवसरका करेवा श्रीनगर से लगभग १४ मील दूर होगा। शादीपुर से दक्षिण पश्चिम ढाई मील दूर स्थित है। बारह मूला की सड़क पर है। ललितादित्य अपने राज्य की नवीन राजधानी यहां स्थापित करना चाहता था। मुख्य कारण यह था कि श्रीनगर की भूमि नीची तथा यहाँ की ऊँची थी। यहाँ पेय निर्मल मधुर जल प्राप्त था। करेवा किंवा अधित्यका अनेक ध्वन्सावशेषों से भरा पड़ा है। परिहासपुर का जैसा वर्णन मिलता है तथा वहाँके ध्वन्सावशेषों की

बिरेजे राजतो देवः श्रीपरीहासकेशवः ।
लिप्तो रत्नाकरस्वापे मुक्ताज्योतिर्भरैरिव ॥१९५॥

१९५. रजत निर्मित भगवान् परिहास केशव रत्नाकर (समुद्र) शयन में मुक्ता[1] ज्योति पुंज से लिप्त तुल्य शोभित थे ।

नाभीनलिनकिञ्जल्कपुञ्जेनेवानुरञ्जितः ।
अचकात्काञ्चनमयः श्रीमुक्ताकेशवो हरिः ॥१९६॥

१९६. सुवर्णमय मुक्ता केशव[1] हरि नाभि कमल के केसर पुंज से अनुरंजित तुल्य कान्तिमान थे ।

विशालता देखकर निःसन्देह कहा जा सकता है कि यदि यह यथावत् स्थित रहता तो कश्मीर के सब मन्दिरों प्रासादों आदि से श्रेष्ठ होता । यह मार्तण्ड मन्दिर से भी विशाल तथा भव्य होता । यहाँ भारतीय पुरातत्त्व विभाग द्वारा कुछ कार्य किया गया है । बौद्ध धर्म सम्बन्धी स्तूप, विहार तथा चैत्य का चिन्ह मिला है । उनकी विशेषता विशाल शिला खण्ड तथा शिलाओं के जोड़ तथा उनकी बनावट में है ।

चंकुण ललितादित्य का मन्त्री था । अधित्यका के उत्तर पूर्व कोण पर चंकुण निर्मित स्तूप था । यह स्तूप १२८ फीट २ इञ्च वर्ग क्षेत्र में निर्मित था । इसकी रचना मुकुलित पद्म तुल्य थी । स्तूप के केवल दो कोणीय अधिष्ठान शेष रह गये हैं । इसके शिला खण्ड आदि खोदकर ग्रामीण उठा ले गये हैं । इस समय भग्न शिलाखण्डों का महान् संग्रह मात्र रह गया है । अपने गौरव काल में विश्व के किसी स्तूप से कम भव्य तथा सुन्दर नहीं रहा होगा । चंकुण विहार का अस्तित्व कल्हण के समय तक था । इसका जीर्णोद्धार रजा मुस्सल के समय में रिल्हण की स्त्री ने किया था । इसके दक्षिण राज विहार था । परिहास केशव का मन्दिर वैष्णव मन्दिर था ।

आइने अकबरी में पुरिसपुर (परिहासपुर) का वर्णन मिलता हैं । अबुल फजल लिखता है—'वहाँ एक विशाल मूर्ति पूजकों का मन्दिर खड़ा था । उसे सिकन्दर बुत शिकन ने तुड़वाया था ।' (आ० अ० २:२५९)

रेफीउद्दीन भी मन्दिरों के स्तम्भों का वर्णन करता है । यहाँ के शिला खण्ड मकानों, जियारतों तथा कब्रिस्तानों में लगे हैं ।

पादटिप्पणी :

१९५ (१) मुक्ता ज्योति : मुक्ता का स्थान समुद्र है । समुद्र का नाम रत्नाकर इसी लिए पड़ा है । समुद्र से विभिन्न प्रकार के रत्न निकलते हैं । यहाँ पर अर्थ शेषशायी विष्णु से है । शेषशय्या पर विष्णु सागर में विश्राम करते हैं । जो मुक्ता का आलय है । शेषशायी विष्णु की पूजा पुरातन काल में बहुत प्रचलित थी । शेषशायी विष्णु की शेष पर शयन मुद्रा में प्रतिमा जलमें रखी जाती है । यह मन्दिर के अन्दर तथा बाहर खुले दोनों में रखी जाती है । चारों ओर से जल शेष को स्पर्श करता है । इसलिए शेष की शय्या तथा विष्णु दोनों का दर्शन होता है । इस प्रकार की सबसे सुन्दर मूर्ति मैंने काठमांडू में देखी है । अत्यन्त रमणीय उद्यान सरोवर बनाकर उसी में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा रखी है । स्थान भी अत्यन्त दर्शनीय है ।

पादटिप्पणी :

१९६ (१) मुक्ता केशव : परिहासपुर में खड्ड पार करने पर अकमनपुरा गांव के समीप

महावराहः शुशुभे काञ्चनं कवचं दधत् ।
पाताले तिमिरं हन्तुं वहन्निव रविप्रभाः ॥१९७॥

१९७. कांचन कवच[1] धारण करते हुए महावरा है[2] इस प्रकार शोभित हो रहे थे मानो पाताल तिमिर विनाश हेतु रवि प्रभा धारण किये हैं।

गोवर्धनधरो देवो राजतस्तेन कारितः ।
यो गोकुलपयःपूरैरिव पाण्डुरतां दधे ॥१९८॥

१९८. इस (राजा) ने रजत मय गोवर्धन[1] धर देव को निर्मित कराया जो कि गोकुल[2] पयःपूर के समान पाण्डुर थे।

अधित्यका चढ़ने पर दो मन्दिरों का भग्नावशेष बहुत दूर तक बिखरा मिलता है। एक मन्दिर की स्तम्भावली एवं प्राकार मार्तण्ड मन्दिर से भी बड़ा है। दोनों मन्दिर क्रमशः परिहास केशव तथा मुक्ता केशव के थे।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९७ में 'रविप्रभाः' का पाठभेद 'रविः प्रभाः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१९७ (१) कांचन कवच : भगवान् विष्णु की मूर्ति का समय-समय पर शृङ्गार किया जाता है। उसी के सम्बन्ध में बारहमूला स्तूप मन्दिर के साथ ही एक स्तूप भी राजा ने निर्माण कराया था। ह्वेन्त्सांग ने उसे सन् ६३९ ई० में देखा था। मन्दिर का चिह्न नहीं मिलता।

केवल एक स्तूप का चिह्न एक प्राकार के अन्दर मिलता है। यह उश्कर गाँव के कुछ पश्चिम है। परिहासपुर तुल्य है। प्रतीत होता है कि यह स्तूप पूर्वकालीन किसी अधिष्ठान पर बनाया गया था। कुशान कालीन रहा होगा। यहाँ पर प्राचीन कलात्मक देवमूर्तियों के खण्डित मस्तक बहुत पाए गए हैं। शारदा लिपि में स्थान का नाम हसकरा मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि ललितादित्य के काल में भी यही नाम प्रचलित था। गांव के किनारे पर दो ठोस शिवलिंग है।

वराह विष्णु के अवतार हैं। जल से डूबी पृथ्वी का भगवान् ने उद्धार किया था। यही बात कश्मीर उपत्यका के लिए कही गयी है। बारहमूला के पास पर्वत से जलमार्ग निकाला गया। डूबी भूमि ऊपर चली आयी। पृथ्वी का उद्धार जल से किया गया। इस प्रकार का प्रकरण मुझे नहीं मिला है। सम्भव है बारहमूला के ही प्रसंग को लेकर वराह की गाथा कही गई है।

पादटिप्पणी :

१९८ (२) गोवर्धन धर : अधित्यका अर्थात् करेवा बौद्ध धर्मावलंबियों के लिए सम्भवतः सुरक्षित रखा गया था। दूसरा करेवा हिन्दू मन्दिर के लिए सुरक्षित था। करेवा को स्थानीय लोग गोरदन कहते हैं। एक हिन्दू मन्दिर का ध्वन्सावशेष पड़ा है। सम्भव है कि यही ललितादित्य के गोवर्धनधर का मन्दिर रहा होगा।

गोवर्धन व्रज मण्डल का एक प्रसिद्ध पहाड़ी स्थान है। यह पर्वत भगवान् श्री कृष्ण का स्वरूप माना गया है। गिरिराज नाम से भी प्रख्यात है। व्रजवासी गण से अपनी पूजा न प्राप्त करने के कारण इन्द्र उनसे रुष्ट हो गये। घोर वृष्टि की। श्री कृष्ण ने गायों की रक्षा हेतु गोवर्धन पर्वत को एक सप्ताह तक अपने हाथों पर उठा कर गायों की रक्षा की। इस गोवर्धन धारण करने के कारण श्री कृष्ण का नाम गोवर्धनधर हो गया है। सभाः ३८, ४१:९; उद्योग १३०:४६।

चतुष्पञ्चाशतं हस्तान् रोपयित्वा महाशिलाम् ।
ध्वजाग्रे दितिजारातेस्ताक्ष्यर्स्तेन निवेशितः ॥१९९॥

१९९. उसने चौवन हस्त महाशिला रोपित कर (उस) विष्णुध्वज[1] पर गरुड़ स्थापित किया।

चक्रे बृहच्चतुश्शालाबृहच्चैत्यबृहज्जिनैः ।
राजा राजविहारं स विरजाः सततोर्जितम् ॥२००॥

२००. निरभिमानी उस राजा ने बृहत् चतुश्शाला, बृहत् चैत्य,[1] बृहत् जिन से युक्त निरन्तर सम्पन्न रहने वाले राज विहार[2] का निर्माण कराया ।

तोलकानां सहस्राणि चतुर्भिरधिकानि सः ।
अशीतिं निदधे हेम्नो मुक्ताकेशवविग्रहे ॥२०१॥

२०१. उसने मुक्ता केशव के शरीर मे चौरासी सहस्र तोला[1] सुवर्ण निहित किया ।

पादटिप्पणी :

१९९ (१) विष्णुध्वज : इतिहासलेखक मुहम्मद अजीम कहता है कि उसने अपनी आँखों से यहाँ गरुड़ स्तम्भ के भग्न खण्डों को देखा था।

पादटिप्पणी :

२०० (१) बृहच्चैत्यः—दक्षिण की ओर ललितादित्य द्वारा निर्मित एक चैत्य का चिन्ह मिलता है। इसके निर्माण में विशाल शिलाखण्डों का प्रयोग किया गया था। एक शिला खण्ड १४ + १२:६ तथा ५:५ इञ्च मोटा है। देव अधिष्ठान २७ फुट वर्गाकार में है।

(२) राजविहार : स्तूप के दक्षिण राज विहार था। पूर्वीय दीवाल की सीढ़ियों से कोठरी में जाने का मार्ग है ज़ो बरामदा का काम करता है। विहार में २६ कोठरियाँ थीं। वह आयताकार है। मध्य में प्रांगण है। आंगण में पत्थर का फर्श लगा है। कोठरियों के सम्मुख स्तम्भावली पर चौड़ा बरामदा बना था। बाह्य अधिष्ठान १० फिट ऊँचा है। यहाँ की २५ नम्बर की कोठरी में एक मृत्तिका पात्र में ४४ रजत मुद्राएँ विनयादित्य, विग्रह तथा दुर्लभ के समय की प्राप्त हुई हैं। ये श्रीनगर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस विहार का जीर्णोद्धार कई बार किया गया था जिसके चिन्ह स्पष्ट मिलते हैं।

पादटिप्पणी :

२०१. (१) तोलक : प्रचलित शब्द 'तोला' है। बारह माशा का एल तोला तथा आठ रत्ती का एक माशा होता है। कतिपय ऐतिहासिकों की धारणा है कि तोला, माशा, रत्ती की तौल मुसलिम काल में प्रचलित हुई थी। वह धारणा कल्हण के उल्लेख से भ्रामक सिद्ध होती है। हिन्दू राज्य काल में तोला प्रचलित था। अबुल फजल ने भी उल्लेख किया है कि तोला कश्मीर में प्रचलित था। आज भी तोला प्रचलित है। बारह माशा का एक तोला, जो छानबे रत्तिका अर्थात् रत्ती के बराबर होता है ।

भारत में दाशमलविक प्रणाली के पूर्व तौल प्रकार निम्नलिखित था : ८ चावल = एक रत्ती; ८ रत्ती = एक माशा, १२ माशा = एक तोला; ५ तोला = एक छटाक; ४ छटाक = एक पाँव; १६ छटाक एक सेर; ५ सेर = एक पंसेरी; ८ पंसेरी या ४० सेर = १ मन ।

तावन्त्येव सहस्राणि पलानां रजतस्य च ।
संधाय शुद्धधीश्चक्रे श्रीपरीहासकेशवम् ॥२०२॥

२०२. उस शुद्धधी ने उतने ही सहस्र पल[1] रजत निहित कर, श्री परिहास केशव की स्थापना की ।

रीतिप्रस्थसहस्रैस्तु तेन तावद्भिरेव सः ।
व्योमव्यापिवपुः श्रीमान् बृहद्बुद्धो व्यधीयत ॥२०३॥

२०३. उसने उक्त प्रस्थ[1] परिमाण रीति (ताम्र) से व्योमव्यापो श्रीमान् बृहद् बुद्ध देव का निर्माण कराया ।

चतुश्शाला च चैत्यं च तावता तावता व्यधात् ।
धनेनैवेति तस्यासन्पञ्च निर्मितयः समाः ॥ २०४ ॥

२०४. उस नृपति ने उतने उतने धन के मूल्य से चतुश्शाला[1] एवं चैत्य[2] का निर्माण कराया । उसकी पांचों निर्मितियाँ समान थीं ।

पादटिप्पणी :

२०२. (१) पल--पांच घुमचियों (गुञ्जा) का एक माशा होता है । सोलह माशा का एक कर्ष; चार कर्ष का एक पल; सौ पल का एक तुला; बीस तुला का एक भार; दस भार का एक आचित होता है । (अमरकोष : २ : वैश्य वर्ग ८५-८७)

कश्मीर में--चार खाय रुपये जो साढ़े तीन तोला के बराबर था, एक पल माना जाता था । कीलो के पूर्व ८० तोला का सेर होता था । तीस पल का १०८ तोला होता था एक मनवत के बराबर । चार मनवत का एक तर्क और १६ तर्क का एक खरवार होता था । खरवार १७७ $\frac{१२९}{१८७}$ पाइण्ड होता है । पल का एक माप और मिलता है । एक पल ३२० रत्ती का भी कहीं कहीं माना जाता रहा है । तेलगू के एक पल १० पगोद में बराबर होता था ।

पादटिप्पणी :

२०३. (१) प्रस्थ : बत्तीस पल का एक प्रस्थ होता था । किन्तु श्री स्तीन ने उसे सोलह तोला का बताया है । जोनराज के समय प्रस्थ प्रचलित था (जोन : ८०४) कहीं कहीं द्रोण का सोलहवाँ भाग प्रस्थ माना जाता था । श्लोक संख्या २०३ तथा २०४ से स्पष्ट प्रकट होता है कि कश्मीर में धर्मों के प्रति कितनी सहिष्णुता थी । बौद्ध तथा हिन्दू धर्म परस्पर विरोधी नहीं थे ।

पादटिप्पणी :

२०४. (१) चतुश्शाला : इसका अर्थ होता है, वह भवन अथवा गृह जिससे चार बड़े-बड़े कमरे होते हैं । आजतक उसे चौपाल, बैठक किंवा दीवान खाना कहते हैं । क्षेमेन्द्र ने (लोक प्रकाश) अन्य शालाओं के साथ चतुःशाला का भी उल्लेख किया है । (पृष्ठः१२)

(२) चैत्य : पालि शब्द चेतीय है । 'चिताया भवः चैत्यः'--चैत्य का सम्बन्ध चिता से है । इस शब्द का प्रयोग वेदी, देवस्थान, प्रासाद, धार्मिकस्थान के लिये भी किया गया है । जैन धार्मिक स्थानों में चैत्यालय शब्द छोटे मन्दिरों के लिए प्रयोग किया जाता है । उसमें तीर्थंकरों की मूर्तियां होती हैं । (वन : १९० : ६७, भाग : ९ : ११२७, का अपो० १०० : ४३; आदि : १ : २२९)

राजतान् क्वापि सौवर्णान्क्वापिदेवान् विनिर्ममे ।
पार्श्वेषु मुख्यदेवानां पार्षदो धनदोपमः ॥२०५॥

२०५. कुबेर तुल्य उस नृपति ने मुख्य देवों के पार्श्व में स्वर्ण एवं रजतमय पार्षद[1] देव मूर्तियों का निर्माण कराया ।

कियन्ति तत्र रत्नानि ग्रामान्परिकरं तथा ।
स प्रादादिति कः शक्तः परिच्छेत्तुमियत्तया ॥२०६॥

२०६. उसने कहा (मन्दिरों पर) कितने रत्नों, ग्रामों एवं परिकर का दान किया कि, इतना ही दान किया, इसकी गणना में कौन समर्थ है ।

चिता स्थान, अथवा चिताभस्म आदि अन्तिम अवशेष के ऊपर स्मृति स्वरूप निर्माण, वृक्षारोपण आदि किया जाता है । किसी महापुरुष की स्मृतिकिंवा बुद्ध भगवान् के जीवन सम्बन्धी घटनाओं को चैत्य के चारों ओर मूर्तियों में खोदा किंवा बनाया जाता है । प्रारम्भिक रचना शैली वेदी, गर्भगृह किंवा मण्डप के समान थी । कालान्तर में उसकी अपनी एक वृत्ताकार शैली स्वतः बन गयी । चैत्य पूजा का महत्त्व है । भारत से ही चैत्य निर्माण परम्परा विदेशों में पहुँची, जहाँ बौद्धधर्म पहुंचा था । श्रीलंका में चैत्य को 'दगोवा' तथा तिब्बत में 'दुंग तेन' तथा लद्दाख में 'चौतरन' कहते हैं । बौद्ध जगत् में चैत्य प्रासाद उस स्थान को कहते हैं, जहाँ मन्दिर में उपासना के लिये, स्तूप स्थापित किया जाता है । चैत्य प्रासाद के अर्धवृत्ताकार भाग में स्थापित स्तूप उपासना केन्द्र होता था । स्तूप के पार्श्व में प्रदक्षिणा पथ होता था । कश्मीर के हरवान ध्वन्सावशेष देखने से यही धारणा होती है । वहाँ चैत्य था । प्रारम्भ में चैत्य काष्ठ निर्मित होते थे । उनका उल्लेख रामायण, बौद्ध एवं जैन साहित्य में मिलता है । अनन्तर पाषाण तथा ईंट के निर्माण होने लगे । कालान्तर में पर्वत को, चट्टानों को काटकर चैत्य बनाया जाने लगा । भाजा, कोर्दाने तथा कार्ले के चैत्य प्रासाद में काष्ठ चैत्यों की अनुकृति बनायी गयी है जिसमें काष्ठ के जोड़ तक शिला में दिखाये गये हैं । इलोरा, अजन्ता, अफ़गानिस्तान के वामियान तथा कश्मीर की अनेक पर्वत निर्मित गुफायें, जो इस समय जियारत का रूप ले ली हैं, प्राचीन चैत्यों की स्मृतियाँ हैं । कन्धार में बाबर की जिस गुफा में विजय लेख है, वह भी प्राचीन बौद्ध गुफा थी । उसे देखकर मैंने अनुभव किया था । उन्हें शैल गृह, शैल मण्डप एवं चेतिया अथवा चैत्य गृह कहा जाने लगा था । पश्चिम भारत में नासिक के २०० मिल की सीमा में लगभग ९०० चैत्य गुफाएँ हैं । उनका निर्माण काल ईशा पूर्व दो शताब्दी से ईशा पश्चात् सातवीं शताब्दी है । वर्मा, नेपाल में ठोस चैत्य बहुत बने मिलते हैं । वे किसी भिक्षु किंवा धार्मिक पुरुष की स्मृति के स्मारक हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०५ में 'पार्षदो' का पाठभेद 'पार्थिवो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२०५ (१) पार्षद : मुख्य देवताओं के साथ उनके पार्षदों किंवा अनुचरों, सेवकों अथवा उपचारकों की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं । विष्णु मन्दिर द्वार के दोनों ओर जय एवं विजय की मूर्तियाँ दण्डायमान स्थापित की जाती हैं । मुख्य देवताओं के पार्षद भिन्न-भिन्न नाम एवं रूप के होते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०६ में 'करं तथा' का पाठभेद 'करांस्तथा' मिलता है ।

अवरोधैरमात्यैश्च सेवकैश्च नरेश्वरैः ।
तत्र प्रतिष्ठाः शतशो विहिता भुवनाद्भुताः ॥२०७॥

२०७. उसकी अन्तःपुर की स्त्रियों, अमात्यों, सेवकों एवं नरेश्वरों ने वहाँ भुवनाद्भुत सैकड़ों प्रतिष्ठाएँ कीं ।

राज्ञी कमलवत्यस्य कमलाहट्टकारिणी ।
राजतं विपुलाकारं कमलाकेशवं व्यधात् ॥२०८॥

२०८. कमला हट्ट[1] की निर्माण कारिणी, उसकी रानी कमलावती ने विपुलाकार, रजत मय कमला केशव[2] का निर्माण किया ।

अमात्यो मित्रशर्माऽपि चक्रे मित्रेश्वरं हरम् ।
श्रीकय्यस्वामिनं चक्रे लाटः कय्याभिधो नृपः ॥२०९॥

२०९. अमात्य मित्रशर्मा ने 'मित्रेश्वर' हर की और लाट[1] देशीय कय्य नृप ने श्री कय्य स्वामी की प्रतिष्ठा की ।

श्रीमान् कय्यविहारोऽपि तेनैव विदधेऽद्भुतः ।
भिक्षुः सर्वज्ञमित्रोऽभूत् क्रमाद्यत्र जिनोपमः ॥२१०॥

२१०. उस श्रीमान्[1] ने अद्भुत शोभाशाली कय्य विहार[2] का भी निर्माण कराया, जहाँ पर क्रम से जिनोपम (बुद्ध तुल्य) भिक्षु सर्वज्ञ[3]मित्र हुआ था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०८ में 'वत्यस्य' का पाठ भेद 'देव्यस्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२०८ (१) कमला हट्ट : हाट, हट्ट, हट्टी का अर्थ बाजार होता है । यहाँ पर कमला हट्ट का सरल अर्थ कमला देवी के नाम पर बना तथा लगता हुआ बाजार है ।

(२) कमला केशव : स्थान का पता नहीं चलता। राजतरंगिणियों से भी कुछ सूत्र नहीं मिलता।

पादटिप्पणी :

२०९ (१) लाट : द्रष्टव्य, परिशिष्ट 'थ' राजतरंगिणी : भाग : १ : पृष्ठ ११७ ।

पादटिप्पणी :

२१० (१) श्रीमान् : अनेक अनुवादकों ने यहाँ पर श्रीमान् शब्द का अनुवाद राजा अर्थात् ललितादित्य के लिये किया है ।

(२) कय्य विहार : कय्य विहार का उल्लेख मिलता है । स्थान का निश्चित पता नहीं लगता ।

(३) सर्वज्ञमित्र : ललितादित्य के समय में निर्मित कय्य विहार में निवास करता था । कुछ उसे कश्मीर के राजा का भतीजा तथा कुछ उसे दामाद कहते हैं । उसने श्रृंगधर स्तोत्र की रचना तारा की स्तुति में की है । अपनी दूसरी पुस्तक शतक स्तोत्र में उसने देवी का १०८ नाम दिया है । कहा जाता है कि जब उसने अपना सब कुछ त्याग दिया, तो एक ब्राह्मण जो अपनी कन्या का विवाह करना चाहता था

तुःखारश्चङ्कुणश्चक्रे स चङ्कुणविहारकृत् ।
भूपचित्तोन्नतं स्तूपं जिनान् हेममयांस्तथा ॥२११॥

२११. चंकुण विहार निर्माता, उस तुखार[1] चंकुण[2] ने, भूपति के चित्त के समान उन्नत स्तूप एवं हेममय जिनों को निर्मित किया ।

उससे सहायता माँगी । उसके पास ब्राह्मण की सहायता निमित्त कुछ नहीं था । उसने अपने आपको राजा के हाथों बेच दिया । राजा उस समय १०० मनुष्यों का नरमेध करना चाहता था । उसने अपनी वलि के लिए प्रस्तुत अन्य लोगों का करुण क्रन्दन सुना तो तारा की स्तुति में अपना स्तोत्र पढ़ने लगा । देवी तारा प्रकट हुई । देवी ने सबकी रक्षा की । नील तन्त्र में तारा का ११०० नाम दिया गया है । इस काश्मीरी लेखक का पता नहीं चलता । निर्वाण तन्त्र तारा रहस्य आदि रचनाओं से तन्त्रों का विकास होने लगा । काल चक्र का अभ्यास कश्मीर में प्रचलित हो गया । कश्मीर के किस राजा के समय की यह घटना है, कहना कठिन है । प्रयोजन केवल यह सिद्ध करने का रहा है कि कथ्य विहार का ऐतिहासिक महत्त्व है और कथ्य ऐतिहासिक पुरुष था, जो राजतरंगिणी के घटना क्रम की सत्यता की पुष्टि करता है।

सर्वज्ञमित्र की कहानी शुनःशेष की पुराण, रामायण, महाभारत वर्णित कहानी से मिलती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २११ में 'तुःखा' का पाठभेद 'भुःखा' तथा 'तुखा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२११ (१) तुखार : द्रष्टव्य टिप्पणी रा: ४:२४६

(२) चंकुण विहार : चीनी शब्द त्सियंग-कियुन हैं । श्रीलेवी का मत है कि उक्त चीनी शब्द तुखार मन्त्री का पद था । उसका संस्कृतकरण चंकुण है । चंकुण विहार चीनी पर्यटक औ-कुंग के समय तक वर्तमान था । वह इस विहार में गया था । यहाँ एक चैत्य की खुदाई में आलेख, चमन तथा चाकू मिला है।

औ-कुंग कश्मीर उपत्यका में सन् ७५० ई० में आया था । अपने पर्यटन काल में सबसे अधिक दिनों तक कश्मीर में रहा था । कश्मीर उपत्यका में चार वर्ष व्यतीत किया था । यहीं उसने बौद्धधर्म तथा संस्कृत विद्या का अध्ययन किया था । ललितादित्य द्वारा उष्कर में निर्मित विहार में निवास करता था । उसने अमृत भवन विहार तथा कृत्याश्रम विहार का वर्णन किया है । अशोक द्वारा निर्मित स्तूप तथा ५०० अर्हतो के आने का वर्णन करता है ।

कर्कोट काल में हो मातृचेता काश्मीरी विद्वान् हुआ है । उसके दो श्लोक मध्येशिया में मिले हैं ।

अहो संसारदौरात्म्यम् अहो निर्वाणसत्तता ।
नाथोऽपि सन् तत्र गतः करुणात्मा त्वया सदृक् ॥
नानागतभयम् नोक्तम् नोक्तम् न नैत्रीन प्रवर्तिता ।
न संसारश्च गमितो नाथ यत्वम् चतुर्विधः ॥

कल्हण ने चंकुण का पुनः उल्लेख तरंग ४:२१५, २४६-२६२ में किया है । इससे प्रतीत होता है कि चंकुण का कितना महत्त्व था और ललितादित्य के मन्त्री के रूप में वह कितना अधिकार रखता था । सर्वश्री लेवी तथा चवान्नीस ने अपने ओ-कुंग के टिप्पणी (जनरल एशियाटिक सोसाइटी : सन् १८९५ ई०, ६:३५२) में लिखा है कि कल्हण का उल्लेख तथा ओ-कुंग का तत्सम्बन्धी तौ-कि ओए किंवा तुर्कों को आठवीं शताब्दी में कश्मीर में निवास करने पर प्रकाश डालता है ।

ओ-कुंग-चीनी पर्यटक था । अतएव चीनी चंकुण के विहार में उसका चार वर्ष रह जाना स्वाभाविक प्रतीत होता है । कश्मीर से बुद्धधर्म तिब्बत तथा चीन पहुँचा था। यह इस बात का प्रमाण है कि चीनी

ईशानदेव्या तत्पत्न्या खाताम्बु प्रतिपादितम् ।
सुधारसमिव स्वच्छमारोग्याधायि रोगिणाम् ॥२१२॥

२१२. उसकी पत्नी ईशान देवी ने खाताम्बु[१] प्रतिपादित किया, जो कि सुधा रस तुल्य स्वच्छ एवं रोगियों के लिये आरोग्य प्रद था ।

ललितादित्यभूभर्तुर्वल्लभा चक्रमर्दिका ।
सहस्राण्योकसां सप्त तत्र चक्रपुरं व्यधात् ॥२१३॥

२१३. भूपति ललितादित्य की वल्लभा चक्रमर्दिका ने वहाँ सप्त सहस्र गृहाकीर्ण चक्रपुर[१] का निर्माण कराया ।

आचार्यो भप्पटो नाम विदधे भप्पटेश्वरम् ।
अन्येऽपि रक्छटेशाद्या बहवो बहुभिः कृताः ॥२१४॥

२१४. आचार्य भप्पट ने भप्पटेश्वर[१] का निर्माण किया । अन्य बहुत लोगों ने भी, रक्छटेशादि प्रभृति बहुत से निर्माण किये ।

भिक्षुक कश्मीर में अध्ययन हेतु आते थे । चंकुण ने यह विहार विशेषतया तुर्क तथा विदेशी भिक्षुओं का लिये निर्माण कराया था । यद्यपि उसमें अन्य भिक्षुओं के रहने में कोई बाधा नहीं रही होगी । यह तुर्की इस लिये भी प्रतीत होता है कि ओ-कुंग ने अपने लेख में तुर्क राजाओं द्वारा निर्मित देवस्थानों आदि का उल्लेख देता है । चंकुण शब्द का मूल चीनी था । यह पदवी बहुत प्रचलित थी । वह चीन से तुर्किस्तान में आयी और वहाँ से कश्मीर में पहुँची थी । जहाँ तुखार मन्त्री का व्यक्ति वाचक नाम हो गया था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१२ में 'सुधारस' का पाठभेद 'सुधासर' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२१२ (१) खाताम्बु : खाता का अर्थ कृत्रिम सरोवर, जलाखात, तड़ाग है । उस सरोवर किंवा जलाशय को कहते हैं, जो देव स्थान के सम्मुख बनाया जाता है ।—'अखातं देवखातकम्' (अमर : १ : वारि वर्ग : २७) उत्तर भारत में प्रायः सरोवर, कुण्ड, किंवा तालाब मन्दिरों के सम्मुख बनाये जाते हैं । दक्षिण भारत में मन्दिर सरोवर के मध्य बनाते हैं । कहीं-कहीं मन्दिर के सम्मुख या पार्श्व में भी सरोवर बना मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१३ में 'ललिता' का पाठभेद 'वल्लभा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२१३ (१) चक्रपुर : इस स्थान तथा ग्राम का वर्तमान नाम क्या है, पता नहीं चलता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१४ में 'भप्पटो' का 'भपटो' : 'भप्पटे' का 'भपटे' तथा 'रक्छटे' का 'कर्कटे' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२१४ (१) भप्पटेश्वर : यह मन्दिर किस स्थान पर था, पता नहीं लगता ।

अधिष्ठानान्तरेऽप्यत्र चङ्कुणेनाग्र्यमन्त्रिणा ।
सचैत्यः सुकृतोदारो विहारो निरमीयत ॥२१५॥

२१५. अग्र्यमन्त्री चंकुण ने दूसरे अधिष्ठान[1] (राजधानी-श्रीनगर) में सचैत्य, सुकृत, दिव्य विहार[2] का निर्माण किया ।

भिषगीशानचन्द्राख्यः स्यालश्चङ्कुणमन्त्रिणः ।
विहारमकरोल्लब्ध्वा तक्षकानुग्रहाच्छ्रियम् ॥२१६॥

२१६. मन्त्री चंकुण का स्याला (साला) भिषग् ईशानचन्द्र ने तक्षक[1] के अनुग्रह से श्री प्राप्तकर, विहार निर्माण कराया ।

एवं हेममयीमुर्वीं स कुर्वन्नुर्वरापतिः ।
गुणैरौदार्यशौर्याद्यैर्मघवानमलङ्घयत् ॥२१७॥

२१७. उस उर्वरापति[1] ने इस प्रकार पृथ्वी को हेममयी करते हुए, गुणों, औदार्य, शौर्यादि के द्वारा इन्द्र का अतिक्रमण किया ।

हेलयाऽपि विनिर्यान्ती वक्त्राद्वसुमतीपतेः ।
न कदाचन तस्याज्ञा देवैरप्युदलङ्घयत ॥२१८॥

२१८. उस वसुमतीपति (राजा) के मुख से हेला पूर्वक भी निकलती हुई आज्ञा का उल्लंघन देवों ने भी कभी नहीं किया ।

पादटिप्पणी :

२१५ (१) अधिष्ठानान्तर : इस शब्द का तात्पर्य यहाँ दूसरी राजधानी है। यह वर्तमान श्रीनगर है। क्योंकि ललितादित्य ने अपनी राजधानी परिहासपुर बनाया था। अधिष्ठान का अर्थ राजधानी अथवा प्रदेशीय अथवा जिला का प्रशासकीय केन्द्र अथवा नगर है।

(२) विहार : यह स्पष्ट नहीं होता कि ओं-कुग ने श्लोक ४:२११ वर्णित विहार में निवास किया था अथवा उक्त विहार में। चंकुण विहार के स्थान का पता कल्हण नहीं देता। किस क्षेत्र में चंकुण ने निर्माण कराया था। परन्तु स्पष्ट कहता है कि वह अधिष्ठान अर्थात् श्रीनगर में था। श्रीनगर स्थित विहार चार शताब्दियों तक अर्थात् कल्हण के समय तक सुरक्षित था। रिल्हण की स्त्री सुस्सला ने विहार की मरम्मत करायी थी (रा. ८:२४१५)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१६ में 'स्याल' का पाठभेद 'श्याल' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१६ (१) तक्षक : द्रष्टव्य टिप्पणी 'तक्षक' रा: १:२२०:

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१७ में 'उर्वरा' का पाठभेद 'उर्वरी' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१७ (१) उर्वरा : 'उर्वरा सर्वसस्याढ्या'— परिभाषा अमरकोशकार ने किया है। (अमरः भूमि वर्ग २४) उस भूमि को कहते है जो सब प्रकार के सस्य को उत्पन्न करती है। इसका सरल अर्थ उपजाऊ भूमि है। उर्वरापति का अर्थ खेती किंवा फसल का

तथाहि पूर्वपाथोधेस्तटे सकटको वसन् ।
आनीयन्तां कपित्थानीत्यादिदेश स जातुचित् ।।२१९।।

२१९. किसी समय पूर्व पाथोधि[1] के तटपर सेना सहित रहते हुए, उस राजा ने 'कपित्थ[2] को ले आओ' आज्ञा दी ।

किंकर्तव्यतयाऽन्धेषु पुरोगेषु स्थितेष्वथ ।
उपानयत्कपित्थानि दिव्यः कोऽपि पुमान् पुरः ।।२२०।।

२२०. किंकर्तव्यविमूढ़ हो पुरोगामियों के स्थित रहने पर, कोई दिव्य पुरुष[1], कपित्थों को सम्मुख ले आया ।

अग्रादुपायनं गृह्णन् कृतसंज्ञो भ्रुवा प्रभोः ।
कस्य त्वमिति पप्रच्छ प्रतीहारः प्रसृत्य तम् ।।२२१।।

२२१. उसके निकट जाकर, प्रभु का भ्रू संकेत पाकर, आगे से उपायन (उपहार) ग्रहण करते हुए, प्रतिहारी ने पूछा—'आप किस के (भृत्य) हैं?'

सोऽभ्यधात्तं कपित्थानि दत्वा राज्ञः प्रियाण्यहम् ।
प्रहितोऽद्य महेन्द्रेण नन्दनोद्यानपालकः ।।२२२।।

२२२. उसने राजा के प्रिय कपित्थ फलों को प्रदान कर (प्रतिहारी से) कहा—'मैं नन्दन[1] उद्यान का पालक हूँ । आज महेन्द्र ने भेजा है ।

स्वामी है । उर्वी शब्द पृथ्वी के अर्थ में प्रयोग किया जाता है । उर्वरापति का अर्थ पृथ्वीपति सम्राट् ललितादित्य है ।

पादटिप्पणी :

२१९ (१) पूर्व पयोधि : पूर्व वारिधि, पूर्व समुद्र तट, वर्त्तमान बंगाल को खाड़ी का पश्चिमी तट है। एक मत है कि दधि सागर ही बंगाल की खाड़ी है ।

(२) कपित्थ : उत्तर भारत में कपित्थ का अर्थ कैथ किंवा कैत का फल होता है । यह फल हमारे बाग काशी में भी है । किन्तु वहाँ पर कापित्थ कैथ नहीं है । कल्हण का उल्लेख है कि कपित्थ केवल कश्मीर में होता है । (४ : २३७) पर कश्मीर के बाहर भारत के मैदान में सर्वत्र यह फल होता है। कल्हण कहता है । यह फल कुछ दिन एवं घनागम काल अर्थात् मई मास में होता है और कुछ ही सप्ताह में समाप्त हो जाता है । सर्व श्री स्तीन तथा सीतारामरणजीत पण्डित का मत है कि वह फल 'चेरी' हैं। चेरी कश्मीर में मध्य मई मास में पक कर खाने योग्य हो जाती है । कुछ ही सप्ताह में इसकी फसल समाप्त होती है । इसमें अप्रैल और मई में फूल लगताहै और मध्य मई मध्य जून तक पक जाता है । हिमालय के उत्तरी तथा पश्चिमी भागों के अतिरिक्त चेरी भारत में और कहीं नहीं होती । क्षेमेन्द्र ने लोक प्रकाश में जहाँ कश्मीर के फलों का उल्लेख किया है, वहाँ कपित्थ फल की भी गणना कश्मीर में फलों में है । कश्मीर का कपित्थ तथा दक्षिण भारत में होने वाले कपित्थ में जलवायु के कारण रंग, रूप, स्वाद, आकार में भेद होना स्वाभाविक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२० में 'यान्धेषु' का 'यार्तेषु' तथा 'उपानयत्क' का पाठभेद 'उपानयन्क' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२० (१)दिव्यपुरुष : स्वर्गीय, अलौकिक किंवा लोकातीत पुरुष को दिव्य पुरुष कहते हैं ।

पादटिप्पणी :

२२२ (१) नन्दन उद्यान पालक : दिव्य पुरुष

रहो महेन्द्रसंदिष्टं वक्तव्यं किंचिदस्ति मे ।
इति श्रुत्वा प्रतीहारः सभां चक्रे स निर्जनाम् ॥२२३॥

२२३. मुझे एकान्त में कहने योग्य नरेन्द्र का कुछ वक्तव्य (सन्देश) है । ' यह सुनकर, उस प्रतीहार ने सभा को निर्जन कर दिया ।

ततो दिव्यः पुमानूचे शक्रस्त्वां वक्ति भूपते ।
क्षन्तव्यं पथ्यमप्येतत्सौजन्यान्निष्ठुरं वचः ॥२२४॥

२२४. अनन्तर दिव्य पुरुष ने कहा—'भूपते ! शक्र (इन्द्र) आपसे कहते हैं, "पथ्य भी, इस निष्ठुर वचन को सौजन्यता से क्षमा कीजिएगा ।

तुर्ये युगेऽपि भूपाल दिक्पाला अपि ते वयम् ।
बिभृमो यत्प्रणम्याज्ञां श्रूयतां तत्र कारणम् ॥२२५॥

२२५. 'भूपाल ! कलियुग में भी हम सब दिक्पाल[1] जिस कारण से प्रणाम कर, आपकी आज्ञा धारण करते हैं, उसका कारण सुनिए ।

पुरा ग्रामगृहस्थस्य कस्यचित्पृथुसंपदः ।
जन्मान्तरे कर्मकरो हालिकोऽभूद्भवान्किल ॥२२६॥

२२६. 'पूर्व जन्म में आप, किसी प्रभूत सम्पत्तिशाली ग्राम गृहस्थ कर्मकर हालिक[1] (हलवाहा) हुए थे ।

एकदा तस्य ते ग्रीष्मे वाहयित्वा महावृषान् ।
श्रान्तस्य निर्जलेऽरण्ये क्षीणप्रायमभूदहः ॥२२७॥

२२७. 'एक बार महा वृषभों को जोतकर आपके परिश्रान्त होने पर, ग्रीष्म कालीन निर्जल अरण्य में दिन क्षीण समाप्त प्राय हो गया था ।

ने (३ : २२५) अपना चरिचय दिक्पाल दिया है। नन्दन उद्यान-कानन किंवा वन इन्द्र का स्वर्ग स्थित उपवन है। पुराणों के अनुसार समस्त स्थानों से वह सुन्दर है। मानवों का भोग काल समाप्त हो जाता है, तो इस वन में सुख भोग के लिये भेज दिये जाते हैं।

पादटिप्पणी :

२२५ (१) दिक्पाल : दसों दिशाओं के पालक देवताओं को दिक्पाल कहते हैं। उनमें पूर्व के इन्द्र, अग्नि कोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैर्ऋत के नैर्ऋत, पश्चिम के वरुण, वायव्य के मरुत, उत्तर के कुबेर, ईशान के ईश, ऊर्ध्व के ब्रह्मा एवं अधोदिशा के अनंत दिक्पाल हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २२६ में 'ग्राम' का पाठभेद 'ग्रामे' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२२६ (१) हालिक : 'खनति तेन तद्वोढाऽस्येदं हालिकः सैरिकी—' (अमर : २ : वैश्यवर्ग ६४) हल में जुते खेत जोतने वाले बैलों का नाम हालिक होता है। परन्तु इसका अर्थ हलवाहा भी होता है।

ततः स्वामिगृहात् क्षुत्तृट्खिन्नस्य भवतोऽन्तिकम् ।
वारिकुम्भीमपूपं च गृहीत्वा कश्चिदाययौ ॥२२८॥

२२८. तदनन्तर क्षुधा एवं तृषा से खिन्न, आपके पास (आपके) स्वामि-गृह से, वारिकुम्भी एवं अपूप[1] कोई लेकर आया ।

निर्धौतपाणिपादस्त्वं भोक्तुं संप्रस्तुतस्ततः ।
विप्रं कण्ठगतप्राणमवश्यः पुरतोऽतिथिम् ॥२२९॥

२२९. पश्चात् आप हाथ पैर प्रक्षालित कर, भोजन करने को प्रस्तुत हुए, तदनन्तर सम्मुख अतिथि[1] रूप में कण्ठगत प्राण वाले विप्र को देखा ।

स त्वामवोचत् मा भुङ्क्ष्व दुर्भिक्षोपहतस्य मे ।
कण्ठे यियासवः प्राणा वर्तन्ते भोजनं विना ॥२३०॥

२३०. 'उसने आप से कहा—"मत खाओ", दुर्भिक्ष पीड़ित कण्ठ गत मेरे प्राण भोजन बिना निकलने वाले हैं ।

हल को अस्त्र बनाकर लड़ने वाले को भी हालिक कहते हैं । यहाँ पर हालिक शब्द हल जोतने वाले मनुष्य के लिये प्रयोग किया गया है । यह अगले श्लोक २२७–२२९ के पाठ से स्पष्ट हो जाता है ।

पादटिप्पणी :

२२८ (१) अपूप : कश्मीर में इसे कुंलछिह कहते हैं । पूप, अपूप, पिष्टक एक ही शब्द के पर्यायवाची नाम हैं । पुआ मालपूआ एवं अनरसा हिन्दी नाम हैं । गेहूँ के आटे की लिट्टी जिसे मिट्टी के कपाल किंवा कसोरा में पका कर यज्ञ में देवताओं के लिये हवन किया जाता है, उसे भी अपूप कहते हैं ।

पादटिप्पणी :

२२९ (१) अतिथि : यह कथा महाभारत वर्णित रन्तिदेव से मिलती है । इनका नियम था कि अतिथि विमुख नहीं लौट सकता था । इस नियम के कारण इनके परिवार को अत्यन्त कष्ट उठाना पड़ा है । एक समय परिवार के लोगों को अड़तालीस दिन तक भूखों रहना पड़ा । दूसरे दिन वह सामने रख कर भोजन करने ही वाला था कि अतिथि रूप कई चाण्डाल एवं शूद्र उसके सम्मुख आ गये थे । सारा भोजन उन्हें देकर भूखे रह गये । (भाव : ९ :) रन्तिदेव भरत वंशीय सम्राट् थे । उनकी गणना श्रेष्ठ सोलह राजाओं में की गयी है । श्रेष्ठ दानी राजा के रूप में इनका उल्लेख पुराण महाभारत तथा प्राचीन वाङ्मय में मिलता है । श्री कृष्ण ने इनके दान एवं अतिथि सत्कार का वर्णन किया है । (म० शा० : २९ : १२०–१२९) महाभारत एवं विष्णु पुराण में इनको संकृति राजा का पुत्र कहा गया है । अतएव इन्हें सांकृत्य पैत्रिक नाम प्राप्त हुआ था । (अनु० १३७ : ६) माता का नाम संकृति था । राजा भरत की पांचवी पीढ़ी में हुआ था—भरत, वितथ, भुवमन्यु, नर, संकृति एवं रन्तिदेव । हस्तिनापुर का सुविख्यात सम्राट हस्तिन इसका चाचा था । इसका राज्य चर्मण्वती नदी के तट पर था । राजधानी दशपुर नगरी में थी । भगवान् नारद ने इनके अतिथि सत्कार एवं दान का वर्णन किया है । (द्रोण० अ: ६७) इन्होंने जीवन में कभी मांस ग्रहण नहीं किया था । (अनु० ११५ : ६३)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३० में 'भुङ्क्ष्व' का पाठभेछ 'भुक्त्वा' मिलता है ।

वारितः पार्श्वगेनापि तस्मै त्वं प्रीतिपूर्वकम् ।
पूपार्धं वारिकुम्भीं च प्रादाः प्रियमुदीरयन् ॥२३१॥

२३१. 'पाश्ववर्ती के निवारित करने पर भी, प्रिय (वचन) कहते हुए तुमने प्रेम पूर्वक उसे आधा अपूप एवं वारिकुम्भी[1] प्रदान किया।

पात्रे प्रसन्नचित्तस्य काले दानेन तेन ते ।
अखण्डितानामाज्ञानां शतमासीत् त्रिविष्टपे ॥२३२॥

२३२. 'यथा समय उस दान के कारण स्वर्ग में प्रसन्न चित्त आपकी शत संख्यक आज्ञाएँ अखंडित थीं।

तेन वारिप्रदानेन वाञ्छामात्रेऽपि दर्शिते ।
प्रादुर्भवन्ति सुस्वादा नद्यो मरुपथेष्वपि ॥२३३॥

२३३. 'उसे वारि प्रदान के कारण, वांच्छा मात्र भी प्रदर्शित करने पर मरु पथ में भी, सुस्वादु जल वाली नदियां प्रादुर्भूत हो जाती हैं।

सत्क्षेत्रप्रतिपादितः प्रियवचोबद्धालवालावलि-
र्निर्दोषेण मनःप्रसादपयसा निष्पन्नसेकक्रियः ।
दातुस्तत्तदभीप्सितं किल फलन्कालेऽतिबालोऽप्यसौ
राजन् दानमहीरुहो विजयते कल्पद्रुमादीनपि ॥ २३४ ॥

२३४. 'हे राजन्! सत् क्षेत्र प्रतिपादित, प्रिय वचन से आबद्ध, आलवाल एवं मन की प्रसन्नता[1] रूपी निर्दोष जल[2] से सिंचित, अति बाल भी, वह दानमहीरुह दाता के तत् तत् अभी-प्सित की समय से पूर्ति करते हुए, कल्पद्रुम आदि को विजित कर रहा है।

पादटिप्पणी :

२३१ (१) वारिकुम्भी : वारिकुम्भ, जल कलश और वारिकुम्भी जल की कलशी के अर्थ में यहाँ प्रयोग की गयी है। पानी का लोटा एक प्रकार की वारिकुम्भी ही है। झारी पात्र भी वारिकुम्भी का एक रूप है। वारिकर्णिका का अर्थ वारिकुम्भिका होता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३४ में 'पादिताः' का 'रोपिताः' तथा 'दातुस्तत्तदभीप्सितं किल फलन् काले' का पाठ-भेद 'दत्ते तत्तदभीप्सितं किल फलं काले इत्यन्यादर्शे, मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्तिसंग्रह का ११५ वाँ श्लोक है।

२३४ (१) प्रसन्नः मनःप्रसादपयसा—वाल्मीकीय रामायण में प्रसन्न जल की उपमा मन से दी गयी है। कल्हण ने उसी उपमा को अपने शब्दों में रखा है—रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥ २:५ ।

(२) कल्पद्रुम : समुद्र मन्थन के समय चौदह रत्न के साथ कल्पवृक्ष किंवा कल्पद्रुम समुद्र से प्राप्त हुआ था। इन्द्र ने इसे लिया था। इस वृक्ष का नाश कल्पांत तक नहीं होता। इससे जो वस्तु माँगी जाती है, वह तत्काल मिलती है। अन्य नाम कल्पविटप, कल्पतरु, सुरतरु, कल्पलता एवं देवतरु है। मुसल-

अल्पावशेषास्तास्त्वद्य सन्त्याज्ञास्तव भूपते ।
वचोऽलङ्घ्यं क्षपयतो यत्र तत्राविचारतः ॥ २३५ ॥

२३५. 'हे भूपते ! आपके यत्र तत्र विना विचार के अलंघ्य वचन का प्रयोग करते हुए, आपकी आज्ञाएँ आज अल्प मात्र में अवशिष्ट रह गयो हैं ।

अपि चेतरभूपालसुलभं महतः सतः ।
कस्माद्विचारशून्यत्वं तवापि हृदि रोहति ॥ २३६ ॥

२३६. 'महान् होते हुए भी, आपके हृदय में इतर भूपाल सुलभ विचारशून्यता कैसे उत्पन्न हो गयी ।

दिनानि कतिचिद्यानि कश्मीरेषु घनागमे ।
जायन्ते तानि पूर्वाब्धौ फलानि शिशिरे कुतः ॥ २३७ ॥

२३७. 'कश्मीर में घनागम[1] काल के कतिपय दिनों तक जो फल होते हैं, वे पूर्व समुद्र[2] तटपर शिशिर (ऋतु) में कैसे हो सकते हैं !

विगाहसे दिशं यां यां तत्र तत्रैव तत्पतेः ।
त्वदाज्ञाग्रहणे यत्नः पूर्वदानप्रभावतः ॥ २३८ ॥

२३८. 'पूर्व दान के प्रभाव से जिस जिस दिशा में आप जाते हैं, वहाँ-वहाँ, उस दिशा के पति का यत्न आपको आज्ञा ग्रहण करने में होता है ।

मानों में भी धारणा है कि एक वृक्ष स्वर्ग में है । उसे तूबा कहते हैं । देवताओं के वृक्ष मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष एवं हरिचन्दन हैं । उनमें एक कल्पतरु किंवा कल्पवृक्ष है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३६ में 'चेतरभू' का पाठभेद 'चेतसि भू' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३७ (१) घनागम : वर्षा के आगमन का काल अर्थात् वर्षा ऋतु अर्थ है ।

(२) पूर्व समुद्र तट-शिशिर : सात समुद्र— (१) क्षीरोद (२) लवणोद, (३) दध्यूद, (४) धृतोद, (५) सुरोद, (६) इक्षूद तथा (७) स्वादूद है । यहाँ पर पूर्व समुद्र का अर्थ बंगाल की खाड़ी से लगाना चाहिए । कतिपय विद्वान् बंगाल की खाड़ी को दधि समुद्र और अरब सागर को रत्नाकर सागर कहते हैं । क्षेमेन्द्र के अनुसार क्षारसमुद्र, क्षीरसमुद्र, दधिसमुद्र, घृतसमुद्र, मधुसमुद्र, खादूदक तथा सुस्वादूदक समुद्र हैं । (लोक प्रकाश पृष्ठ ८३–८५)

पादटिप्पणी :

२३८ (१) दिशापति : दिशापति एवं दिक्पाल में अन्तर है । ज्योतिष के अनुसार दिशाओं के स्वामी ग्रह होते हैं । आठ दिशाओं के स्वामी आठ ग्रह माने जाते हैं । दक्षिण के मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, आग्नेय के शुक्र, नैऋत्य के राहु, वायव्य के चन्द्रमा, तथा ईशान के बृहस्पति हैं । नवों ग्रहों में से केतु का नाम केवल दिशापति में नहीं है ।

आशां श्रितस्य माहेन्द्रीमाज्ञा स्वल्पाऽपि तेऽधुना ।
गृहीता कथमप्येषा शक्रेणाभग्नशक्तिना ॥ २३९ ॥

२३९. 'पूर्व दिशा (महेन्द्र की दिशा) को प्राप्त, आपकी इस समय की स्वल्प भी यह आज्ञा, अप्रतिहत शक्ति युक्त शक्र ने किसो प्रकार ग्रहण की है ।

विना प्रयोजनं मुख्यं तस्मादाज्ञास्त्वया क्वचित् ।
नैवमेव पुनर्देया विरलाः सन्ति ता यतः ॥ २४० ॥

२४०. 'इसी प्रकार बिना मुख्य प्रयोजन के. सामान्य रूप से, कहीं आप आज्ञा न दें, क्योंकि वे विरल रह गयी हैं' ।

इत्युक्त्वाऽन्तर्हिते तस्मिन् भूपालो विपुलाशयः ।
चिन्तयन् दानमाहात्म्यं परं विस्मयमाययौ ॥ २४१ ॥

२४१. यह कहकर उसके अन्तर्हित होने पर विपुलाशय भूपाल दान माहात्म्य का चिन्तन करते हुए, परम विस्मित हुआ ।

ततः प्रभृति तादृक्षयोग्यार्थप्राप्तिलालसः ।
परिहासपुरे चक्रे स्थिरां गुर्वीं स पर्विणीम् ॥ २४२ ॥

२४२. तब से लेकर उस प्रकार की फल प्राप्ति की लालसा से उस नृपति ने परिहासपुर में स्थायी एवं बहुत बड़े पर्व[1] की स्थापना की ।

सहस्रभक्तमित्येवं प्रख्यातायां सदक्षिणम् ।
लक्षमेकोत्तरं भक्तपात्राणां यत्र दीयते ॥ २४३ ॥

२४३. यह उत्सव सहस्र भक्त[1] नाम से प्रख्यात हुआ । जहाँ पर दक्षिणा सहित एकाधिक एक लाख भोजन (भक्त पात्र) प्रदान किये जाते थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४० में 'दाज्ञास्त्व' का पाठभेद 'दाज्ञा त्व' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४२ में 'योग्यार्थ' का पाठभेद 'योग्यार्थि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४२ (१) पर्व : पर्व का अर्थ उत्सव किंवा त्योहार होता है । राजा ने एक बहुत बड़े उत्सव का आयोजन किया जो स्थिर था । प्रति वर्ष किंवा निश्चित समय एवं दिन पर होता था । इस अवसर पर विशिष्ट धार्मिक कृत्य पूजा शृङ्गारादि किया जाता था ।

पादटिप्पणी :

२४३ (१) भक्त : यहाँ पर भक्त शब्द का अर्थ प्रायः सभी अनुवादकों ने भोजन किया है । कल्हण ने सहस्र भक्त एवं भक्त पात्र दोनों शब्दों का उल्लेख

अभिप्रायेण तेनैव पत्तनान्यूषरेषु सः ।
चक्रे यत्रेषु तृष्णार्तः कश्चिज्जातु पिबेदपः ॥ २४४ ॥

२४४. उसने इसी अभिप्राय से ऊषरों[1] में पत्तनों का निर्माण किया जहाँ पर कदाचित् कोई तृष्णार्त जल पीये ।

संजग्राह स देशेभ्यस्तांस्तानन्तरविन्नरान् ।
विकचान्सुमनःस्तोमान्पादपेभ्य इवानिलः ॥ २४५ ॥

२४५. जिस प्रकार अनिल पादपों से विकसित सुमन पुंजों का संग्रह करता है, उसी प्रकार उसने तत् तत् देशों से विद्वानों का संग्रह किया ।

तेन कङ्कणवर्षस्य रससिद्धस्य सोदरः ।
चङ्कुणो नाम तुःखारदेशानीतो गुणोन्नतः ॥ २४६ ॥

२४६. उसने तुखार[1] देश से रस सिद्ध कंकणवर्ष के सहोदर भ्राता गुणोन्नत चंकुण को लाया ।

एक ही पद में किया है । भक्त पात्र का अर्थ भोजन पात्र तथा भात का बरतन भी होता है । बौद्ध पालि ग्रन्थों में भोजन ग्रहण को भात ग्रहण करना कहते हैं । भात मिलने का अर्थ बौद्ध ग्रंथों में भोजन मिलना है । आज कल इस प्रकार के 'भोजन पात्र' को 'पत्तल' कहते हैं । 'कितने पत्तल दिये गये' का अर्थ 'कितने लोगों को भोजन दिया गया' संख्या में गणना की जाती है । इसी प्रकार 'कितनी थालियां लगीं' का अर्थ होता है 'कितनी संख्या की थालियों में भोजन दिया गया ।' कल्हण ने भक्त किंवा भात शब्द का प्रयोग कर हिन्दू तथा बौद्ध दोनों जनों को भोजन मिलने का गौण रूप से वर्णन किया है।

पादटिप्पणि :

२४४ (१) ऊषर: यह शब्द उत्तर प्रदेश, बिहार आदि हिन्दी भाषाभाषी क्षेत्र में खूब प्रचलित है । ऊसर और बंजर भूमि में अन्तर है । ऊसर शब्द संस्कृत शब्द ऊषर का अपभ्रंश है । ऊसर भूमि में में रेह होता है । उसमें घास नहीं उगती । कोई वृक्ष भी नहीं लगता । किन्तु ऊषर का कूप जल ग्रीष्म ऋतु में शीतल रहता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४५ में 'न्नरान्' का पाठभेद 'ज्जनान्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४६ में 'तुःखार' का 'भुःखार' 'भुख्खार' 'भुखार', 'नीतो' व्या 'न्नीतो' तथा 'गुणोन्नतः' का पाठभेद 'गुणोत्तरः तथा 'गुणान्न' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४६ (१) तुखार देश : अथर्व वेद, रामायण, महाभारत एवं पुराणों में तुखार किंवा तुषार देश का उल्लेख मिलता है । हिमालय के उत्तर पश्चिम दिशा में यह देश था। यहाँ के अश्व बहुत प्रसिद्ध होते थे । तुर्की घोड़े मेरी बाल्यावस्था में भी काशी बिकने के लिये आते थे । अरबी काबुली तथा तुर्की घोड़ा प्रसिद्ध हैं । हरिवंश पुराण में उल्लेख मिलता है कि तुखार जाति विन्ध्य पर्वत में रहती थी। यह ठीक नहीं है। सम्भव है वे बाहर से आकर वहाँ आबाद हुए हों। किन्तु उनका वह मूल स्थान नहीं माना जा सकता ।

तुखार तथा तुषार एक ही शब्द हैं । अरबों के

स रसेन समातन्वन् कोशे बहुसुवर्णताम् ।
पद्माकर इवाब्जस्य भूभृतोऽभूच्छुभावहः ॥ २४७ ॥

२४७. वह रस[1] प्रभाव से कोश में सुवर्ण वृद्धि करते हुए, भूभृत् (राजा) के लिये इस प्रकार शुभावह हुआ, जिस प्रकार पद्माकर कमल के लिये ।

रुद्धः पञ्चनदे जातु दुस्तरैः सिन्धुसंगमैः ।
तटे स्तम्भितसैन्योऽभूद्राजा चिन्तापरः क्षणम् ॥ २४८ ॥

२४८. कदाचित् पंचनद[1] के तटपर दुस्तर सिन्धु संगमों के कारण सेना सहित अवरुद्ध राजा क्षण मात्र चिन्ता युक्त हुआ ।

ततोऽम्बुतरणोपायं तस्मिन्पृच्छति मन्त्रिणः ।
अगाधेऽम्भसि रोधस्थश्चङ्कुणो मणिमक्षिपत् ॥ २४९ ॥

२४९. जबकि वह मन्त्रिगणों से अम्बुतरण (जल पार) का उपाय पूछ रहा था, उसी समय तट स्थित चंकुण ने अगाध जल में एक मणि फेंका ।

तत्प्रभावाद् द्विधाभूतं सरिन्नीरं ससैनिकः ।
उत्तीर्णो नृपतिस्तूर्णं परं पारं समासदत् ॥ २५० ॥

२५०. उस रत्न के प्रभाव से सरिता जल के द्विधाभूत (विभाजित) हो जाने से सेना सहित नृपति उत्तीर्ण कर शीघ्र ही दूसरे तट पर पहुँचा ।[1]

के अनुसार तुखारस्थान वह भू भाग था जो प्राचीन वैक्ट्रिया (बलख) प्रदेश ओक्सस (वक्षु) नदी के मध्य-वर्ती दोनों तटों पर पर्वतीय प्रदेश था । वह वर्तमान बद्‌खशा तक फैला था ।

पादटिप्पणी :

२४७. इस श्लोक का यह अर्थ भी हो सकता है— वह रससे कोश में बहुत सुवर्ण वृद्धि करते हुए, राजा के लिये उसी प्रकार शुभावह हुआ जिस प्रकार तड़ाग रससे पद्मकोष में बहुसुवर्णता की वृद्धि करता है ।

इसका एक भावार्थ यह भी हो सकता है— 'सरोवर जिस प्रकार जलदान द्वारा पद्मकोश की सुवर्णता साधित करता है; उसी प्रकार चंकुण रस प्रभाव से भूपति के कोश की श्रीवृद्धि साधन करता उसका मंगल विधान करता था ।

पादटिप्पणी :

२४७ (१) रस : रस का यहाँ रसायन तथा जल दोनों के लिये प्रयोग किया है । पद्माकर का रस कमल की तथा चंकुण का रस राजकोश की श्रीवृद्धि करता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २४८ में 'स्तम्भित' का पाठभेद 'स्तिमित' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४८ (१) पंचनद : अविभक्त पंजाब प्रदेश है । नाम पाँच नदियों अर्थात् झेलम (वितस्ता) चनाव (चंद्र-भागा) रावी (इरावती) सतलज (शतद्रु) एवं व्यास (विपाशा) के पंजाब में रहने के कारण पंचनद किंवा पंज-आब अर्थात् पाँच पानी पड़ा है । अविभक्त पंजाब प्रदेश सिंध के पूर्वीय तट से जमुना के पश्चिमी तट का भू क्षेत्र था । पंजाब किंवा पंचनद की राजनीतिक भौगोलिक सीमा समय-समय पर बदलती, घटती तथा बढ़ती रही है ।

पादटिप्पणी :

२५० (१) नदी का पानी घट जाने तथा सेना

मणिमन्येन मणिना चङ्कुणोऽप्याचकर्ष तम् ।
सलिलं प्रागवस्थं च क्षणेन सरितामभूत् ॥ २५१ ॥

२५१. चंकुण ने अन्य मणि द्वारा उस मणि को खींच लिया और क्षण में ही सरिता जल पूर्ववत् हो गया।

परिभाव्याद्भुतं तत्स प्रशंसामुखराननः ।
प्रणयाच्चङ्कुणं राजा मणियुग्ममयाचत ॥ २५२ ॥

२५२. उस अद्भुत (चमत्कार) को देखकर, प्रशंसा करते हुए, प्रसन्न मुख राजा ने प्रेम पूर्वक चंकुण से दोनों मणियों की याचना की।

स तमाह स्म विहसन् कर्मेमौ कुरुतो मणी ।
योग्यौ मत्पाणिगावेव किं स्यात् स्वीकरणेन वः ॥२५३॥

२५३. वह (चंकुण) हँसते हुए, उससे कहा—'मेरे पाणिस्थ ही ये दोनों योग्य मणियाँ कार्य करती हैं। अतएव आप इसे लेकर क्या करेंगे ?

सामान्येष्वेव लभते सोत्कर्षं वस्तु संप्रथाम् ।
महत्सु तस्य का शोभा विविधोत्कृष्टवस्तुषु ॥२५४॥

२५४. 'अति उत्कृष्ट वस्तु सामान्य वस्तुओं में ही प्रसिद्धि प्राप्त करती है। विविध उत्तम वस्तुओं के बाहुल्य में उसकी क्या शोभा ?

प्रस्यन्दनं शशिमणेर्गणयन्ति ताव-
द्यावत्स्थितो जलनिधेः पुलिनैकदेशे ।

सहित ललितादित्य का उस पर चले जाना पुरातन बाइबिल में वर्णित इक्सोडस भी कथा से मिलती है। महात्मन् मूसा का पीछा जब फरोहा कर रहा था तो सिनाई और मिश्र के मध्य पतला समुद्र भाग दो हिस्सों में फट गया। महात्मन् मूसा लाखों साथियों के साथ पार चले गये। फरोहा अपनी सेना के साथ पार करने लगा तो जल पुनः मिल गया। और फरोहा ससैन्य उसमें डूब मरा।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५२ में 'परिभाव्या' का 'प्रतिभाव्या' तथा 'प्रशंसा' का 'प्रशंशा' पाठभेद मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५४ में 'उत्कृष्टवस्तुषु' का पाठभेद 'त्कृष्टभूमिषु' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का ११६ वाँ श्लोक है।

स स्वीक्रियेत यदि तेन ततस्तदाऽस्य
स्यन्दः स्फुरन्नपि न तत्सलिले विभाव्यः ॥ २५५ ॥

२५५. 'चन्द्रकान्त मणि' के प्रश्रवण की गणना तब तक ही होती है, जब तक जलनिधि तट के एक देश में स्थित रहता है। यदि वहाँ से सागर उसे उररीकृत (गर्भस्थ) कर ले तो इस (मणि) का स्फुरित भी जल में स्यन्दन उस जल में विभाव्य (संलसित) नहीं होगा।'

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् राजा सस्मितमब्रवीत् ।
संभावयसि किं रत्नमाभ्यामभ्यधिकं मम ॥ २५६ ॥

२५६. उसके यह कह कर, विरत होने पर, सस्मित राजा ने कहा—'क्या मेरे पास इन दोनों रत्नों से उत्कृष्ट रत्न होने की सम्भावना करते हो ?'

अतोऽधिकतरं यद्वा किंचित्त्वं मम पश्यसि ।
तदादाय प्रयच्छेदं निष्क्रयेण मणिद्वयम् ॥ २५७ ॥

२५७. 'मेरे पास यदि तुम इससे अधिकतर कोई वस्तु देखते हो तो उसे निष्क्रय रूप में लेकर इस मणिद्वय को दे दो।'

ततो महान्प्रसादोऽयमित्युक्त्वा चङ्कुणोऽब्रवीत् ।
स्वायत्ते स्वामिनो रत्ने मह्यमिष्टं तु दीयताम् ॥ २५८ ॥

२५८. 'यह आपकी महती कृपा है' कहकर चंकुण ने कहा,—'ये दोनों रत्न स्वामी के आधीन हैं। मेरा इष्ट (अभीष्ट) दीजिये :'

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५५ में 'स्पन्दः' का 'स्यन्दं' 'स्यन्दैः' 'स्यन्दन', तथा 'विभाव्यः' का पाठभेद 'वभाव्याः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२५५. (१) चन्द्रकान्त मणि—इस मणि के विषय में प्राचीन कथा चली आती है कि चन्द्रमा के किरण स्पर्श से शीतल होती है। आर्द्रता उत्पन्न करती है। इससे जल बिन्दु निकलने लगते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५७ में 'अतो' का पाठभेद 'ततो'; 'किंचित्वं' का, 'कोषोत्थं', 'कोशे त्वं' तथा 'निष्क्रयेण' का 'निष्क्रियेण' पाठभेद मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५८ में 'तु दी' का पाठभेद 'प्रदी' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या 'मागधेभ्यो' का पाठभेद 'मगधेभ्यो' मिलता है।

गजस्कन्धेऽधिरोप्यैतन्मागधेभ्यो यदाहृतम् ।
दत्त्वा सुगतबिम्बं तज्जनोऽयमनुगृह्यताम् ।। २५९ ।।

२५९. 'मगध' देश से गज स्कन्ध पर रखकर जो सुगत विम्ब (बुद्ध प्रतिमा) आयी थी उसे प्रदान कर मुझे अनुगृहीत करें।

सलिलोत्तरणोपायो मणिदेवेन गृह्यताम् ।
संसारोत्तरणोपायः सुगतो मह्यमर्प्यताम् ।।२६०।।

२६०. 'सलिल उत्तरण का उपायभूत मणिद्वय[1] आप ग्रहण करें, और संसार उत्तरण का उपाय-भूत सुगत प्रतिमा मुझे अर्पित करें।'

पादटिप्पणी :

२५९. (१) मगध—श्री स्तीन के अनुसार गया तथा पटना जिलों का भूखण्ड, जो गंगा के दक्षिण था, मगध कहा जाता था। किन्तु मगध वाराणसी क्षेत्र के पूर्व में मुगेर तक विस्तृत माना जाता था। पूर्व काल में उसकी राजधानी राजगृह तत्पश्चात् पटना रहा। हुएन्तसांग ने तत्कालीन मगध की सीमा दी है—उत्तर—गंगा नदी; पश्चिम—वाराणसी, पूर्व—हिरण्य पर्वत मुगेर; दक्षिण—किरण सुवर्ण अथवा सिंहभूमि। काशी में लोकोक्ति है कि करम-नासा नदी के पूर्व मगध है। वह हुएन्तसांग के वर्णन से मिलता है।

वैण्येन पृथुना पूर्वं मगधेषु प्रतिष्ठितम् ।
दृष्ट्वैवाप्नोति हि फलं पुण्डरीकस्य मानवः ।।
११६३, १३७४, १३७५

नीलमत पुराण काल में विहार मगध नाम से विख्यात था।

भगवान् बुद्ध का कार्यक्षेत्र विहार तथा पूर्वीय उत्तर प्रदेश रहा है। कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि मगध में बुद्ध प्रतिमाएँ बनती थीं। वहाँ बौद्ध धर्म तथा बौद्धों का कुछ प्रभाव था। मगध की प्रतिमा का सम्भवतः उन दिनों वही महत्त्व था जो काशी के शिव लिंग का है। काशी में कहावत है—काशी के कंकर शंकर समान हैं। यद्यपि काशी में शिव लिंग नर्मदा से लाये गये शिवलिंगाकार शिला-खण्डों से बनाया जाता है। चंकुण विहार प्रतिमा को इसीलिये महत्त्व देता है कि विहार बौद्ध धर्म का केन्द्र तथा बौद्ध जगत् के पवित्र तीर्थों का स्थान भी है। इससे यह भी प्रकट होता है कि बुद्ध प्रतिमायें विहार में गढ़ी जाती थीं। चंकुण ने अर्थ के स्थान पर धर्म को महत्त्व दिया है। वह अलौकिक मणियों के स्थान पर भगवान् बुद्ध की प्रतिमा अपनी उपा-सना के लिये अच्छा समझा था।

चंकुण बौद्ध था। इससे यह भी बात प्रकट होती है। बौद्ध यदि न होता तो वह बुद्ध प्रतिमा के प्रति न तो इतनी रुचि दिखाता और न मणियों के स्थान पर प्रतिमा की याचना करता। इससे एक बात और प्रकट होती है। तुखार देश में बौद्ध धर्म का प्रचार था।

पादटिप्पणी :

२६० (१) मणि—एक पांडुलिपि पार्श्व टिप्पणी में व्याख्या की गयी है—"मणिः एवं संसार-तरणोपायः इत्यारोपः अतएव गृह्यतामित्येकः वचनान्तं क्रियापदम् । मणि एव संसारतरणोपायस्त्वया-गृह्यतामित्यन्वयः—मणि ही संसार तरण का उपाय है। यह आरोप किया गया है। अतएव 'लीजिये इस

इति तेनार्थितो युक्त्या जिनबिम्बं ददौ नृपः ।
वाग्मिनां कस्य सामर्थ्यं परिपन्थयितुं वचः ॥२६१॥

२६१. इस प्रकार युक्ति पूर्वक उसके प्रार्थना करने पर जिन[1] बिम्ब नृप ने प्रदान किया। वाग्मी जनों को वाणी अन्यथा करने में किसका सामर्थ्य हो सकता है।

स्वविहारेऽथ भगवान् स तेन विनिवेशितः ।
कपिशाभिः सकाषाय इव यो भाति कान्तिभिः ॥२६२॥

२६२. उसने भगवान् की उस मूर्ति को स्वकीय विहार[1] में निवेशित किया। कपिश[2] कान्तियों से वह मूर्ति काषाय युक्त तुल्य प्रतीत होती थी।

दृश्यतेऽद्यापि कटकैरायसैः परिवेष्टितः ।
गजस्कन्धनिबद्धस्य सूचको यस्य विष्टरः ॥२६३॥

२६३. गजस्कन्ध पर निबद्ध होने का सूचक लौह कटकों से परिवेष्टित जिसका विष्टर[1] आज भी देखा जाता है।

एकवचनान्त क्रिया पद का प्रयोग किया गया है। मणि ही संसार-तरणोपाय है तुम इसे लो इस प्रकार अन्वय होता है। दोनों मणि ही संसार तरण के उपाय हैं यह आरोप किया गया है। अतएव 'गृह्यताम्' यह एकवचनान्त क्रिया पद का प्रयोग किया गया है। दोनों मणि ही संसार तरण के उपाय, अतएव आप उसे लें अर्थात् क्रिया मणि के अनुसार रखी गयी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६१ में 'कस्य' का पाठभेद 'यस्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२६१ (१) जिन : भगवान् बुद्ध के १८ नामों में एक नाम जिन है। अन्य नाम—(१) संर्वज्ञ (२) सुगत (३) बुद्ध (४) धर्मराज (५) तथागत (६) समन्तभद्र (७) भगवत् (८) मारजित (९) लोकजित् (१०) जिन (११) षडभिज्ञ (१२) दशबल (१३) अद्वयवादि (१४) विनायक (१५) मुनीन्द्र (१६) श्रीधन (१७) शास्तृ एवं (१८) मुनि हैं।

बुद्ध के अवान्तर भेद से शाक्य मुनि के सात नाम—(१) शाक्यमुनि (२) शाक्य सिंह (३) सर्वार्थसिद्ध (४) शौद्धोदनि (५) गौतम (६) अर्कबन्धु एवं (७) मायादेवीसुत हैं।[1]

जिन शब्द के कारण कभी कभी उलझन पैदा हो जाती है। जिन विष्णु, सूर्य, बुद्ध के 'नामों के अतिरिक्त जैनों के तीर्थंकर के भी नाम है। जिन का अर्थ जीतने वाला किंवा जयी होता हैं। यहाँ पर जिन का अर्थ भगवान् बुद्ध है।

पादटिप्पणी :

२६२ (१) विहार : चंकुण द्वारा निर्मित श्रीनगर में विहार कल्हण के काल तक मौजूद था। (रा : ४ : २१५; ८ : २४१५)

(२) कपिशकान्ति : भूरा = सुनहला = आरक्त रंग। 'तोये कांचनपद्मरेणु कपिशे'। विक्रमांक देव चरितः ३ : २७; मेघ : २१; रघु १२:२८

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६३ में 'स्कन्ध' का 'स्कन्द', 'स्कन्दा' तथा 'सूचको य' का पाठभेद 'सूचकैर्यं' मिलता है।

२६३ (१) विष्टर : आसन : द्रष्टव्य : रघु

अभिप्रायानुसारेण प्रकटीकुरुते प्रियम् ।
अहो महाप्रभावानां भूपतीनां वसुन्धरा ॥२६४॥

२६४. आश्चर्य है ! वसुन्धरा[1] महाप्रभावशाली भूपतियों के अभिप्रायानुसार कार्य करती है ।

अशिक्षितं कदाचित्स स्वयं दमयितुं हयम् ।
निनायारण्यमेकाकी हयविद्याविशारदः ॥ २६५ ॥

राम लक्ष्मण द्वारा निर्मित मन्दिर

२६५. कदाचित् हयविद्याविशारद वह (राजा) एकाकी स्वयं अशिक्षित हय के दमन हेतु अरण्य में गया ।

दूरान्निर्मानुषे तत्र ललनां ललिताकृतिम् ।
एकां ददर्श गायन्तीं नृत्यन्तीमपरामपि ॥ २६६ ॥

२६६. दूर से उसने, निर्मानुष अरण्य[1] में ललिताकृति, एक गान करती एवं दूसरी नृत्य करती हुई ललना को देखा ।

क्षणाच्च ते समापय्य गीतनृत्ते मृगीदृशौ ।
प्रणम्य किंचिद्गच्छन्त्यावपश्यद्दमयन्हयम् ॥ २६७ ॥

२६७. हय का दमन करते हुए, नृपति ने क्षणान्तर देखा कि वे दोनों मृगनयनी ललनायें नृत्य गान समाप्त कर, प्रणाम[1] कर जा रही है ।

---

८ : १८; कुमार सम्भव : ७ : ७२; शिशुपाल वध : १४ : १२ ।

पादटिप्पणी :

२६४ (१) वसुन्धरा : पृथ्वी के २७ नामों में एक नाम वसुन्धरा है । (रघुवंश : ४ : ७) ।

पादटिप्पणी :

२६६ (१) अरण्य : वह कौन सा अरण्य था इसका पता कल्हण नहीं देता । दिशा की भी सूचना नहीं दिया है । राजा स्वयं घोड़ा को निकालने अथवा सिखाने के लिए जाता था । अतएव यह स्थान राजभवन के समीप कोई अरण्य होना चाहिये ।

पादटिप्पणी :

२६७ (१) प्रणाम : यह भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति है कि नाटक, गान, एवं नृत्य आरम्भ करते समय सूत्रधार, नट, नटी, गायिका एवं नर्तकियां भगवान् को प्रणाम करती दर्शकों का स्वागत करती हैं । कला की समाप्ति पर पुनः प्रणाम कर दर्शकों से विदा लेती हैं । दर्शकों के अभाव में भी वे अपने गुरु किंवा देव का स्मरण कर नतमूर्धा व वक्षस्थल पर अंजलि बद्ध प्रणाम करती हैं । वह अत्यन्त प्राचीन प्रथा है । उसका अनुकरण आज भी शास्त्रीय नृत्य एवं गान में किया जाता है ।

तुरगं तं समारुह्य तत्रागच्छद्दिने दिने ।
दृष्ट्वा तथैव ते कान्ते गत्वाऽपृच्छत्सविस्मयः ।। २६८ ।।

२६८. उस अश्वपर आरूढ़ हो वह प्रतिदिन (वहां) जाता था । उसी प्रकार उन ललनाओं को देखकर, विस्मय पूर्वक जाकर, उनसे पूछा :—

तमूचतुस्ते नर्तक्यावावां देवगृहाश्रिते ।
यः शूरवर्धमानोऽयं ग्रामस्तत्राऽऽवयोर्गृहम् ।।२६९।।

२६९. उस (राजा) से उन दोनों नर्तकियों ने कहा––'हम दोनों देवगृह की आश्रिता[1] हैं । यह, जो शूरवर्धमान ग्राम है, वहीं हम दोनों का गृह है ।

इहत्यजीवनभुजां मातॄणामुपदेशतः ।
अस्मत्कुलेन नियतं नृत्तमत्र विधीयते ।।२७०।।

२७०. 'यहाँ से जीविका खाने वाली मातृजनों (माताओं) के उपदेश से हमारे कुल द्वारा, यहाँ नियमित नृत्य किया जाता है·।

रूढिः परम्परायाता सेयमस्मद्गृहे स्थिता ।
आवामन्योऽपि वा नात्र निमित्तं ज्ञातुमीश्वरः ।।२७१।।

२७१. 'परम्परा से आती हुई यह रूढ़ि हमारे गृह में स्थित है। यहाँ हम दोनों अथवा अन्य भी. कोई इसका कारण जानने में समर्थ नहीं है ।'

पादटिप्पणी :

२६९ (१) आश्रित : कल्हण ने उन नर्तकियों को मन्दिर की देवदासी न कहकर देवगृह आश्रित कहा है । यह शब्द महत्त्वपूर्ण है । देव आश्रित तथा देव दासी में अन्तर है । प्रतीत होता है । इस मन्दिर पर कोई देवोत्तर सम्पत्ति ग्राम खेतादि के रूप में किसी राजा ने मन्दिर में नित्य नृत्य गान के शुल्क में चढ़ाया था । वह भूमि किंवा ग्राम उक्त नर्तकियों के कुटुम्ब के पास था । उसकी आयसे उनका निर्वाह होता था । इसे जागीर कहते हैं । ग्रामों में सर्वदा पूजा पाठ करने के लिए आययुक्त भूमि आदि दे दी जाती हैं । यह प्रथा अबतक प्रचलित है । नर्तकियों के कुटुम्ब का भरण पोषण उस आय से होता था । अतएव वे उस देवगृह की आश्रिता थीं । यह परम्परा से उनके कुटुम्ब में होता आया था । वे भी उन्हें करती थीं । कल्हण ने अगले श्लोक ४ : २७० में उसे और स्पष्ट कर दिया है । इसे आनृत्य अनुदान आजकल के वैधानिक शब्दों में कह सकते हैं ।

काशी विश्वनाथ मन्दिर में अवध के नवाबों के अनुदान से अब तक नौबत बजती है । यद्यपि अवध की नवाबी का अन्त शताब्दियों पूर्व हो चुका है ।

(२) शूरवर्धमान ग्राम : इस स्थान का पता नहीं चलता परन्तु वह स्थान भी ४ : २६६ वर्णित अरण्य के समीप होना चाहिये क्योंकि ललनायें प्रति दिन वहाँ नर्तन के लिये आती थीं ।

एवं वचस्तयोः श्रुत्वा नृपोऽन्येद्युः साविस्मयः ।
तदुक्त्या मेदिनीं कृत्स्नां कारुभिर्निरदारयत् ॥२७२॥

२७२. इस प्रकार उनकी बातें सुनकर, विस्मित नृपति ने दूसरे दिन तदुक्त समस्त मेदिनी को कारुओं द्वारा खुदवा डाला ।

दूरं निर्हृतमृद्भिस्तैरथाद्राक्षीन्निवेदितम् ।
नृपतिः पिहितद्वारं जीर्णं देवगृहद्वयम् ॥२७३॥

२७३. दूर (गहराई) तक मिट्टी हटाने के पश्चात् उन (कारुओं) के निवेदित करने पर, राजा ने अवरुद्ध द्वार जीर्ण दो देवगृह देखे ।

उद्घाटितारररिर्वर्णैः पीठोत्कीर्णैर्निवेदितौ ।
अपश्यत्केशवौ तत्र रामलक्ष्मणनिर्मितौ ॥२७४॥

२७४. (मन्दिर का) कपाट उद्‌घाटित करने पर, वहाँ केशव की दो मूर्तियाँ (राजा ने) देखी । पीठ पर उत्कीर्ण वर्णों[1] (अक्षरों) से ज्ञात हुआ कि, वे राम-लक्ष्मण निर्मित थीं ।

परिहासहरेः पार्श्वे पृथक्कृत्वा शिलागृहम् ।
स रामस्वामिनः श्रीमान् प्रतिष्ठाकर्म निर्ममे ॥ २७५ ॥

२७५. उस श्रीमान् (राजा) ने परिहास हरि के पार्श्व में पृथक् शिलागृह निर्मित कर, श्री राम स्वामी का प्रतिष्ठा कर्म किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७२ में 'तदुक्त्या' का 'तदुक्तां'; 'तदुक्तौ' तथा 'कृत्स्नां' का पाठभेद 'कृच्छ्रां' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७३ में 'दूरं नि' का पाठभेद 'दूरनि' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोल संख्या २७४ में 'तारररि' का 'ताररै' तथा 'त्कीर्णै' का 'त्कीर्णौ' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७४ (१) केशव : अर्जुन को केशव नाम की व्युत्पत्ति बताते हुए भगवान् कृष्ण ने कहा––जगत को नचाने वाली सूर्य की, तथा अग्नि और चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाशित होती हैं वे सब मेरा केश कहलाती है । उस केश से युक्त होने के कारण सर्वज्ञ द्विज श्रेष्ठ मुझे केशव कहते हैं । अर्जुन ! इस प्रकार केशव नाम सम्पूर्ण देवताओं और महात्मा ऋषियों के लिए वरदायक है। (शान्तिः ३४१ : ४८, ४९)

(२) वर्ण : मूर्तियों के आसन पीठ अथवा पृष्ठ भाग पर मूर्ति तथा संस्थापक का नाम खोद दिया जाता था । यह प्रथा अब भी प्रचलित है ।

(३) राम-लक्ष्मण : यह महत्त्वपूर्ण अन्वेषण था । महाभारत तथा रामायण में उल्लेख है कि राम ने उत्तर दिशा की यात्रा की थी । इस मूर्ति के वर्णन से प्रकट होता है कि वास्तव में राम एवं लक्ष्मण कश्मीर आये थे । वे ऐतिहासिक व्यक्ति थे । मूर्ति पर खुदी लिपि क्या थी तथा क्या लिखा था इसका वर्णन कल्हण नहीं करता । यदि कल्हण का यह वर्णन पूर्ण होता तो भारतीय इतिहास की गुत्थी सुलझ जाती ।

देवोऽपि लक्ष्मणस्वामी तथैवाभ्यर्थ्य पार्थिवम् ।
चक्रमर्दिकया चक्रेश्वरपार्श्वे निवेशितः ।। २७६ ।।

२७५. उसी प्रकार रानी मर्दिका ने राजा की अभ्यर्थना कर, चक्रेश्वर[1] के पार्श्व में, देव लक्ष्मण स्वामी की प्रतिष्ठा की ।

दिग्जये पुरुषः कश्चिद् वृत्तप्रत्यग्रनिग्रहः ।
अग्रे न्यक्षिपदात्मानं गजारूढस्य भूभुजः ।। २७७ ।।

मरुथस्ल अभियान

२७७. (उसके) दिग्विजय काल में गजारूढ़ नृपति के सम्मुख सद्यः दण्ड प्राप्त कोई पुरुष, उसके सम्मुख अपने को डाल दिया[1] ।

पादटिप्पणी :

२७६ (१) चक्रेश्वर का पता नहीं लग सका है । नीत मत पुराण तथा माहात्म्यों से मालूम होता है कि चार विभिन्न स्थानों पर शिव की पूजा होती थी, शुभ धुमती तटपर, (नीलमत ११५१) विजयेश्वर 'चक्रतीर्थ' का स्रोत ईशेश्वर (इसावर) के समीप (ईशालय महात्म्य तथा सुरेश्वरी महात्म्य) तथा पुनमोह के ऊपर गुफा में हर्षेश्वर (विजयेश्वर माहात्म्य १५६; वितस्तामाहात्म्य २ : श्लोक २३ ।)

चक्रेश्वर का पता लगाना चाहता था। अपने वृद्ध ब्राह्मण ड्राइवर तथा दोनों मित्रों से बात कह दी थी । एक दिन मैं सिन्ध-उपत्यका के ध्वंसावशेषों को देखने के लिए जा रहा था। यह पक्की सड़क श्रीनगर से सिन्ध उपत्यका में विचार नाग होकर जाती है।

हवल में वर्तमान कामर्स कालेज के पास पहुँचा तो ड्राइवर ने कहा कि इस सड़क के नीचे पहले सीढ़ियाँ थीं । सीढ़ियाँ इस पर्वत की तरफ गयी थीं । इस सड़क पर मुझे दो मन्दिरों के रूप मिले जो जियारतों में बदल दिये गये हैं । मैं यह सुनते ही रुक गया । ड्राइवर ने अपनी स्मरण शक्ति पर जोर देते हुए कहा इस स्थान को चक्रेश्वरो पहले कहते थे। इस तरफ पड़ने वाले अनेक मन्दिरों के ध्वंसावशेषों को देखकर मुझे स्थान की महत्ता का अनुभव प्रारम्भ से ही होता था । सम्भव है यह स्थान चक्रेश्वर किंवा चक्रेश्वरी तीर्थ रहा हो जो इस समय पक्की सड़क के नीचे पड़ गया है। यदि खनन कार्य बड़े पैमाना पर हो तो कश्मीर के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है। भूगर्भ में इतनी सामग्रियाँ पड़ी हैं कि उनके बिना देखे किसी प्रकार का निश्चय करना इतिहास के प्रति अन्याय करना होगा। नीलमत पुराण में चक्रेश्वर तथा चक्रेश्वरी दोनों का उल्लेख मिलता है ।

चक्रेश्वरं स चन्द्रेशं कश्यपेशं विलोहितम् ।
कामेशं स वसिष्ठेशं भूतेशं स गणेश्वरम् ।। १०२३, ११९५, ११९३

दुर्गां गौरीं स विजयां शकुनीं ब्रह्मचारिणीम् ।
चन्द्रेश्वरीं तथा दृष्ट्वा मनोरथमवाप्नुयात् ।। १११५, ११७८

पादटिप्पणी :

२७७ (१) इस श्लोक तथा अगले श्लोकों में वर्णित कथा अलबेरुनी की दी हुई कथा से मिलती है । (इण्डिया २:११) यह कथा कनिष्क के कन्नौज के राजा पर आक्रमण करते समय की घटनाओं से मिलती है । कनिष्क की कथा कश्मीर के सर्वप्रिय राजा ललितादित्य से जोड़ दी गयी है। इससे प्रतीत होता है कि अल्बेरुनी तथा कल्हण का मूल स्रोत इस कथा के सम्बन्ध में एक ही था । द्रष्टव्य टिप्पणी : ४ : २९४ ।

तं कृत्तपाणिघ्राणादिव्रणैः शोणितवर्षिणम् ।
त्राणार्थिनं कारुणिकः स्वोदन्तं पृष्टवान्नृपः ॥ २७८ ॥

२७८. कटे पाणि, घ्राणादि के व्रणों से शोणितवर्षी, उस त्राणार्थी से उसकी कथा, दयालु नृपति ने पूछी ।

स तस्मै सिकतासिन्धुसविधस्थस्य भूपतेः ।
प्रख्यातमूचे सचिवमात्मानं हितकारिणम् ॥ २७९ ॥

२७९. उसने राजा से अपने को सिकता सिन्धु के निकटवर्ती भूपति का हितकारी एवं प्रख्यात सचिव कहा ।

प्रणतिर्ललितादित्यनृपतेः क्रियतामिति ।
हितं कथयतः स्वस्य निग्रहं च ततो नृपात् ॥ २८० ॥

२८०. 'ललितादित्य नृपति को प्रणति करो'—यह हित वचन कहने के कारण उस राजा ने यह दण्ड दिया ।

प्रतिजज्ञे च भूपेन ततस्तत्स्वामिनिग्रहः ।
रूढव्रणोऽगदंकारैः स चाकार्यत सत्कृतैः ॥२८१॥

२८१. तदनन्तर, भूप ने उसके स्वामी को दण्डित करने की प्रतिज्ञा की और इसके व्रण को सत्कृत चिकित्सकों द्वारा ठीक कराया ।

ततो विहितयात्रं तं स मन्त्री कृतसत्क्रियः ।
कदाचिदेवमवदद्विजने जगतीभुजम् ॥२८२॥

२८२. तदुपरान्त, सत्कार प्राप्त, उस मंत्री ने यात्रा करते, जगतीपति (राजा) से कदाचित् निर्जन में इस प्रकार कहा--

---

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७९ में 'मात्मानं' का 'माख्यातं' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७९ (१) श्लोक संख्या २७९ तथा २८० का अनुवाद प्रायः सभी अनुवादकों ने युग्मम् के समान किया है । परन्तु दोनों श्लोक युग्मम् प्रतीत नहीं होते अतएव अलग-अलग अनुवाद किया गया है ।

(२) सिकता सिन्धु = सम्भवतः गोवी का मरुस्थल ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८० के अन्त में एकाध प्रति में 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८१ में 'रूढ़व्रणो' का पाठभेद 'गूढव्रणो' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८२ में 'द्विजने' का पाठ भेद 'दद्विजेन' मिलता है ।

एवंविधस्य कायस्य राजन् यत्परिरक्षणम् ।
तत्र वैरविशुद्धयाशा विडम्बयति मामियम् ॥२८३॥

२८३. 'हे राजन् ! इस प्रकार शरीर की मैंने रक्षा, वैर शोधन की आशा से की है, और यह मुझको विडम्बित कर रही है ।

बाष्पैर्जलाञ्जलिं दत्त्वा दुःखाय च सुखाय च ।
कृतकृत्यो ध्रुवं जह्यामवमानहतानसून् ॥२८४॥

२८४. 'कृतकृत्य होकर, निश्चय ही मैं सुख एवं दुःख को अश्रुजलों से जलांजलि देकर, अपमानित प्राण का त्याग कर दूँगा ।

अपकृत्याधिकं शत्रोरपकारं जयेन्मितम् ।
गम्भीरं प्रतिनद्येव निनादं नदतो गिरिः ॥२८५॥

२८५. 'शत्रु का अधिक अपकार करके (उसके) न्यून अपकार को उसी प्रकार जीतना चाहिए; जिस प्रकार पहाड़ गम्भोर प्रतिध्वनि द्वारा नाद करते हुए की ध्वनि को जीतता है—

इतो मासैस्त्रिभिर्गम्या भूः प्राप्या त्वरितं कथम् ।
यदा वा प्राप्यते वैरी तदा तत्रैव किं वसेत् ॥२८६॥

२८६. 'यहाँ से तीन मास तक गमनोपरान्त (शत्रु) भूमि प्राप्त होगी । तब किस प्रकार शीघ्र वहाँ पहुँचा जा सकता है ? जब वह प्राप्त होगा तो उस समय (क्या) वह (शत्रु) वहीं रहेगा--

मासार्धलङ्घ्यं पन्थानं तस्मादुपदिशामि ते ।
गृहीत्वा स जलं गम्यश्चमूनां किंतु निर्जलः ॥ २८७ ।

२८७. 'अतएव आपको पन्द्रह दिन में लंघनीय मार्ग निर्दिष्ट करता हूँ । किन्तु सेना को जल लेकर चलना चाहिये, क्योंकि वह पथ निर्जल है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८४ में 'जह्याम' का पाठभेद 'जह्याद' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८५ में 'जन्येमितम्' का 'जयेहितम्' 'जोहितम्' 'जमोन्मितम्','जयोर्मितम्'तथा 'जयेन्दितम्' और 'गिरिः' का पाठभेद 'गिरेः, एवं 'गिरः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का ११८ वाँ श्लोक है ।

तद्भूमिजा बन्धवो मे न वक्ष्यन्ति त्वदागमम् ।
सामात्यान्तःपुरो राजा छद्मनाऽनेन गृह्यते ॥ २८८ ॥

२८८. 'वहाँ के निवासी मेरे बन्धु हैं। वे आपका आगमन नहीं कहेंगे। इस छद्म से आमात्य एवं अन्तःपुर सहित, वह गृहीत हो जायगा।'

इत्युक्त्वा सोऽकरोत्तस्य प्रवेशं बालुकार्णवे ।
पक्षे क्षीणे च कटको निस्तोयः समपद्यत ॥ २८९ ॥

२८९. यह कहकर, उसने बालुकार्णव में उस (राजा) का प्रवेश कराया। पक्ष (पन्द्रह दिन) के क्षीण होने पर कटक (सेना) जल रहित हो गया।

तत्राप्यहानि द्वित्राणि वहन्नेवाभवन्नृपः ।
तृष्णार्तं वीक्ष्य सैन्यं च मन्त्रिणं तमभाषत ॥ २९० ॥

२९०. जल समाप्त होने पर, भी दो तीन दिन इसी प्रकार नृप ने व्यतीत किया। सेना को तृष्णार्त देखकर उस मंत्री से कहा—

उक्तकालाधिका यावद् वासरा गमिताः पथि ।
मुमूर्षु तृष्णया सैन्यं तदध्वा शिष्यते कियान् ॥ २९१ ॥

२९१. 'उक्त काल से अधिक दिन मार्ग में व्यतीत हो गये। तृष्णा से सैन्य मुमूर्ष हो रहे हैं। वह पथ कितना अभी शेष है।'

ततो विहस्य सोऽवादीज्जिगीषो शेषमध्वनः ।
किं पृच्छत्यरिराष्ट्रस्य यमराष्ट्रस्य वा भवान् ॥ २९२ ॥

२९२. तदनन्तर, उसने विहँस कर कहा—'जिगीषो ! आप अरिराष्ट्र अथवा यमराष्ट्र मार्ग का अवशिष्ट मार्ग पूछ रहे हैं।

पाठभेद :—

श्लोक संख्या २८८ में 'नाऽनेन' का पाठभेद, 'ना तेन' मिलता है।

पाठभेद :—

श्लोक संख्या २८९ में 'क्षीणे च' का पाठ भेद 'क्षीणे तु' मिलता है।

पाठभेद :—

श्लोक संख्या २९२ में 'गीषो:' का पाठभेद 'गीषोः' मिलता है।

त्वं हि स्वामिहितायैव समुपेक्ष्य स्वजीवितम् ।
मृत्युवक्त्रं सकटको मया युक्त्या प्रवेशितः ॥२९३॥

२९३. 'स्वामी के हित के लिये मैंने अपने जीवन की उपेक्षा कर, युक्तिपूर्वक कटक सहित तुम्हें मृत्यु मुख में प्रविष्ट कर दिया है ।

नेदं मरुमहीमात्रं भीमोऽयं वालुकार्णवः ।
नाम्भोऽत्र लभ्यते क्वापि कस्त्राता तेऽद्य भूपते ॥२९४॥

२९४. 'यह मरुस्थल मात्र नहीं है, यह भीम वालुकार्णव है। यहाँ कहीं जल नहीं प्राप्त होता है। हे ! भूपते !! आज यहाँ आपका कौन रक्षक है ?'[1]

श्रुत्वेति पृतना कृत्स्ना समभूद्गीतसौष्ठवा ।
करकाभ्रंशितफला स्तम्बशेषेव शालिभूः ॥२९५॥

२९५. यह सुनकर, समग्र सेना उसी प्रकार सौष्ठव रहित हो गयी, जिस प्रकार करकापात[1] से नष्ट, फलवाली शालि भूमि स्तम्भ (डंठल) मात्र, शेष रह जाने से हो जाती है ।

पादटिप्पणी :

२९४ (१) अलबेरुनी ने इसी प्रकार की एक कथा का वर्णन कनिष्क के प्रसंग में किया है। (अल्बेरूनी, इण्डिया : २ : ११) कल्हण ने राजतरंगिणी सन् ११४८ ई० में लिखना आरम्भ किया था। उसकी समाप्ति सन् ११४९ ई० में की। अलबेरुनी का समय सन् १००० ई० के लगभग का है। अर्थात् अलबेरुनी ने अपने पर्यटन का वर्णन राजतरंगिणी लिखे जाने के लगभग एक शताब्दी पूर्व किया था।

इतना स्पष्ट है कि घटना तथा कथानक यदि राजा कनिष्क और ललितादित्य का नाम छोड़ दिया जाय तो प्रायः एक ही है। कहना न होगा कि काबुल में कनिष्क के सम्बन्ध में तथा कश्मीर में ललितादित्य के सम्बन्ध में यह गाथा प्रचलित रही होगी। कनिष्क तथा ललितादित्य दोनों हो कश्मीर के राजा थे। अतएव कश्मोर में गाथा जिस रूप में प्रचलित रही होगी, वही अधिक सत्य मानी जायगी। काश्मीरी लोग अपने देश के ही राजा कनिष्क तथा ललितादित्य जिनके समय में लगभग आठ सौ वर्षों का अन्तर है एक ही गाथा नहीं जोड़ सकते हैं। कल्हण की बात अधिक प्रमाणित मानी जानी चाहिए। लासेन (इण्डि० अल्टर कुम्सकुन्दे : ३ : ९९५) का मत है कि यह कथा कनिष्क से उठाकर ललितादित्य जो कश्मीर का प्रिय राजा था, उसके साथ लगा दी गयी है। अल्बेरुनी तथा कल्हण दोनों की गाथा का मूल स्रोत एक ही है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९५ में 'स्तम्ब' का पाठभेद 'स्तम्भ' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२९५. (१) करकापात : कल्हण ने यह उपमा प्रत्यक्षदर्शी एवं अपने अनुभव से दी है। उत्तर भारत में इसे ओला पड़ना कहते हैं। बर्फ के टुकड़े आकाश से गिरते हैं। उनके गिरने से शाली अर्थात् धान के बालों पर आघात पहुँचता है। बालियाँ टूट कर गिर जाती हैं डण्ठल खड़ा रहता है। यह दृश्य प्रायः ओला गिरने अथवा करकापात के पश्चात् दिखायी

संत्यक्तजीविताशानां भीरूणां क्रन्दितध्वनिम् ।
भुजमुद्यम्य शमयंस्ततो नृपतिरब्रवीत् ॥२९६॥

२९६. तदनन्तर, जिनकी जीविताशा छूट गई है ऐसे भीरुओं की क्रन्दित ध्वनि को हाथ उठाकर, शान्त करते हुए; राजा ने कहा—

अमात्य तव कृत्येन प्रीताः स्वामिहितैषिणः ।
मरावप्यत्र शीतार्ता इव रोमाञ्चिता वयम् ॥२९७॥

२९७. 'हे अमात्य ! स्वामिहितैषी तुम्हारे कृत्य से हम प्रसन्न हैं। हम सब इस मरुभूमि में भी शीतार्त तुल्य रोमांचित हो रहे हैं।

अभेद्यसारे मयि तु व्यक्तमेवंविधोऽपि ते ।
प्रयोगः कुण्ठतां यातो लोहं वज्रमणाविव ॥२९८॥

२९८. 'अभेद्य दृढ़ता वाले मेरे ऊपर तुम्हारा इस प्रकार का प्रयोग निश्चय ही उसी प्रकार कुण्ठित हो गया है, जिस प्रकार वज्रमणि[1] पर लौह।

मणिभ्रमाद्वह्निकणं गृह्णन्दग्धा इवाङ्गुलीः ।
त्वं मिथ्यावयवाँल्लूनानद्य शोचिष्यसि ध्रुवम् ॥२९९॥

२९९. 'मणि भ्रम से अग्निकण ग्रहण करते हुए जिस प्रकार उँगलियों के दग्ध होने पर पश्चात्ताप करते हैं. उसी प्रकार तुम मिथ्या ही आज अपने कटे अंग पर शोक करोगे।

निदेशेनैव मे पश्य पयः सूतेऽद्य मेदिनी ।
रसितेनाम्बुवाहस्य रत्नं वैदूर्यभूरिव ॥३००॥

३००. 'जिस प्रकार वैदर्य भूमि मेघ की रसित (कड़क) से रत्न उत्पन्न करती है, देखो ! आज उसी प्रकार मेदिनी निदेश मात्र से जल उत्पन्न करती है।'

देता है। समस्त खेत की शाली ठूँठी खड़ी दिखायी देती है। वही बात कश्मीर के बाहर शेष भारत में गेहूँ के खेतों के साथ होती है। गेहूँ अथवा जौ की फसल ओला गिरने के पश्चात् उसी प्रकार ठूँठी खड़ी लगती है जिस प्रकार शाली करकापात के पश्चात् कश्मीर में।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९७ में 'प्रीताः' का पाठभेद 'प्रीतः' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९८ में 'मेवंविधोऽपि ते' का 'मेवोविधोऽपि' तथा 'प्रयोगः' का पाठभेद 'प्रयासः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२९८ (१) वज्रमणि तथा लौह : वज्रमणि लोहा से भी अधिक कठोर होता है। वज्र पर यदि लोहा गिरे तो वह वज्र को चूर नहीं कर सकता। लोहा का औजार जो वज्र पर गिर कर उसे तोड़ना चाहता है वह स्वतः भुरथ अर्थात् कुण्ठित हो जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९९ में 'ह्निकणं' का पाठभेद 'ज्रकणं' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०० में 'निदेशेनैव' का 'दिनेशेनैव' तथा 'वैदूर्य' का पाठ भेद 'वैडूर्य' मिलता है।

इत्युक्त्वा सोऽम्बु निष्क्रष्टुं कुन्तेनोर्वीं व्यदारयत् ।
उज्जिहीर्षुर्वितस्ताम्भः शूलेनेव त्रिलोचनः ॥३०१॥

३०१. यह कहकर, राजा ने जल कर्षण के लिए कुन्त (भाला) से पृथ्वी को उसी प्रकार विदारित किया, जिस प्रकार वितस्ता का जल निकालने को अभिलाषा से त्रिलोचन ने त्रिशूल[1] से किया था ।

अथोज्जगाम पातालक्ष्मीलीलास्मितच्छविः ।
रसातलात्सरित् साकं सैन्यानां जीविताशया ॥३०२॥

३०२, अनन्तर, रसातल[1] से सैनिकों की जोवित आशा के साथ, पाताल[2] लक्ष्मो के लीला स्मित तुल्य छवि युक्त सरिता प्रादुर्भूत हुई ।

तस्य सेनाचराणां सा क्लमं चिच्छेद वाहिनी ।
वृथाव्ययीकृताङ्गस्य मन्त्रिणस्तस्य चेप्सितम् ॥३०३॥

३०३. उस वाहिनी[1] ने उसके सेनाचरों का क्लेम और वृथा ही अंग नष्ट कर्ता, उस मन्त्री के अभीप्सित को नष्ट कर दिया ।

पादटिप्पणी :

३०१. (१) त्रिशूल : शूलघात कथा की उपमा यहाँ कल्हण ने ललितादित्य के जल निकालने से दी है। ललितादित्य ने कुन्त अर्थात् भाला के आघात से पृथ्वी से जल निकाला था। त्रिलोचन अर्थात् शिव ने त्रिशूल के आघात से बेरी नाग के समीप जल निकाला था। वही वितस्ता स्रोत रूप जल अवतीर्ण हुआ था। नील कुण्ड, वितस्ता तथा शूलघात तीनों नाम से वितस्ता अवतरण का उल्लेख मिलता है : (नी० २५४=३४४, ३४५ ।

पादटिप्पणी :

३०२ (१) रसातल—सात ऊर्ध्व लोक–भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक महर्लोक, जनलोक, तपलोक, तथा सत्यलोक है। सात अधः लोक—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, एवं पाताल है । क्षेमेन्द्र ने रसातल की सीमा १० सहस्र योजन दिया है । इसका देवता फणेश्वर लिखा है 'अत्रोपरि रसातलं नाम पातालं यत्रानन्ताख्याः फणेश्वरदेवाः सन्ति, । योजन सहस्राणि दश—।' (पृष्ठ ८१)

(२) पाताल =सप्तअधोलोक में पाताल लोक है। क्षेमेन्द्र ने पाताल का देवता हाटकेश्वर तथा उसका परिमाण दश सहस्र योजन माना है। रसातल आदि लोकों की गणना की है—उसने निम्न क्रम रखा है।—अत्रोपरि रसातलं नाम पातालं अत्रोपरि विशालाख्यं नाम पातालं—अत्रोपर्याशालाख्यं नाम पातालं—अत्रोपर्यपयशालाख्यंनाम पातालं,—अत्रोपरि मण्डलाख्यं नाम पातालं—अत्रोपरि पातालाख्यं नाम पातालं–(पृष्ठ ८१-८२)

पाताल के विषय में क्षेमेन्द्र लोक प्रकाश में लिखता है—अत्रोपरि पातालाख्यं नाम पातालं यत्र लैंगनसंवलितपादकीवतारसंचारकिरातपतेः, यत्र योजनसहस्राणि दशप्रमाणं, हाटकमयसमारम्भसारम्भस्वतालविगलितानेकविचित्रचैतन्यस्वरूपविश्वव्यापी भगवान् हाटकेश्वरदेवता स्थितः । भुवनेऽस्मिन्प्रमाणमित्याहुः । (१०, ०००) (पृष्ठ ८२)

पादटिप्पणी :

३०३ (१) वाहिनी =यहाँ पर वाहिनी का अर्थ सेना तथा नदी दोनों है। एक सेना में ५०१

लूनाङ्गोऽमङ्गलाशंसी स मन्त्री विफलश्रमः ।
स्वस्य भर्तुर्विवेशाऽऽदौ नगरीमन्तकस्ततः ॥३०४॥

३०४. लूनांग[1] एवं अमंगल सूचक, विफल श्रम, वह मन्त्री प्रथम अपने स्वामी के नगर में प्रवेश किया, तदनन्तर अन्तक ।

राज्ञाऽपि कुटिलाचारो निगृह्य स महीपतिः ।
निजस्य मन्त्रिणस्तस्य तुल्यावस्थो व्यधीयत ॥३०५॥

३०५. राजा ने भी कुटिलाचारी उस महीपति को निगृहीत कर, उसके मन्त्री तुल्य उसकी अवस्था कर दी ।

यथोपयोगं तेनैव स्थाने स्थाने प्रवर्तिताः ।
अद्यापि कुन्तवाहिन्यः प्रवहन्त्युत्तरापथे ॥३०६॥

३०६. उसी के द्वारा उपयोगानुसार, स्थान-स्थान पर प्रवाहित, कुन्तवाहिनी[1] (सरिताएँ) उत्तरापथ में आज भी बहती हैं ।

सहस्रशः संभवन्तोऽप्यपरे भुवनाद्भुताः ।
अतिप्रसङ्गभङ्गेन तद्वृत्तान्ता न दर्शिताः ॥३०७॥

३०७. अन्य भी भुवनाद्भुत आश्चर्यकारी, सहस्रों उसके वृत्तान्त हैं । किन्तु कथा में अति प्रसंग भय से उन्हें प्रदर्शित नहीं किया ।

यन्निश्शब्दजला घनाश्मपरुषे देशेऽतिघोरारवा
यच्चाच्छाः समये पयोदमलिने कालुष्यसंदूषिताः ।
दृश्यन्ते कुलनिम्नगा अपि परं दिग्देशकालाविमौ
तत्सत्यं महतामपि स्वसदृशाचारप्रवृत्तिप्रदौ ॥३०८॥

३०८. निःशब्द जल (शान्त जल) वाली नदियाँ, प्रस्तर बहुल कठोर प्रदेश में, अति घोर रव से युक्त एवं स्वच्छ भी मेघाच्छन्न काल में कालुष्य से संदूषित देखी जाती है । उससे सिद्ध होता है, ये देश-काल[1] महान् लोगों के भी स्वभाव को अपने सदृश आचार में परिवर्तित कर देते हैं ।[2]

हाथी, ५०० रथ १५०० अश्व, २५०० पदादिक, होते हैं । दश सेना की एक पृतना होती है । दश पृतना की एक वाहिनी होती हैं ।

पादटिप्पणी :

३०४ (१) लूनांग : क्षत, विक्षत तथा आहत व्यक्ति मुख्यतया जिसका अंग भंग हो गया है, उसका दर्शन मंगल कार्यों किंवा यात्रा के समय अमंगल एवं अशुभ माना जाता है । नकटा, नाक कटा व्यक्ति सामने पड़ जाय तो उसे अशुभ एवं अमंगल मानते हैं । (रा. ७ : ३१२)

पादटिप्पणी :

३०६ (१) कुन्त वाहिनी : विलसन का मत है कि कुन्तवाहिनी नदी का नाम था । (विलसन् हिस्टौरी, पृष्ठ ५०) स्तीन का मत है कि कुन्तवाहिनी शब्द प्रतीत होता है, कोई स्थानीय संकेत है । जिसका अर्थ अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है । कुन्तवाहिनी का सरल अर्थ कुन्त द्वारा निर्मित सरिता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०८ में 'दिग्देश' का पाठभेद 'धिग्देश' मिलता है ।

कलेर्वाऽयं प्रभावः स्यान्नरनाथासनस्य वा ।
यत्सोऽपि भीमकलुषाः प्रवृत्तीः समदर्शयत् ॥३०९॥

३०९. यह कलि का अथवा राजसिंहासन[1] का प्रभाव है. जो कि उस (राजा) ने भी बीभत्स कलुषित प्रवृत्तियाँ दिखायीं ।

अवरोधसखो राजा परिहासपुरे स्थितः ।
स जातु मदिराक्षीबः सचिवानेवमन्वशात् ॥३१०॥

परिहासपुर अग्निदाहप्रयासः

३१०. कदाचित् परिहासपुर[1] में स्थित वह राजा अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ मदिरोन्मत्त हो सचिवों से इस प्रकार कहा—

कृतं प्रवरसेनेन यदेतत् प्रवरं पुरम् ।
तन्निर्दहथ मन्यध्वे मत्पुरस्यैव चेच्छ्रियम् ॥३११॥

३११. 'प्रवरसेन निर्मित इस प्रवरपुर[1] को यदि मेरे पुर के ही समान श्रीयुक्त समझते हो तो दग्ध कर दो ।'

पादटिप्पणी :

३०८ (१) देश-काल : देश-काल का प्रभाव किस प्रकार सार्वजनिक तथा महान् लोगों के आचार में परिवर्तन ला देता है, इसका उल्लेख श्लोक ३०८ तथा ३०९ में कल्हण करता है ।

(२) प्रायः सभी अनुवादकों ने श्लोक संख्या ३०८ और ३०९ का एक साथ युग्मम् रूप में अनुवाद किया है । कल्हण ने दोनों श्लोकों को युग्मम् नहीं लिखा है । अतएव दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग-अलग किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०९ के अन्त में 'युग्यम्' लिखा मिलता हैं ।

पादटिप्पणी :

३०९ (१) राजसिंहासन : यहाँ पर अर्थ राज पद से लगाना चाहिए । राजसिंहासन का मद महान् राजाओं में सर्व, अभिमान, तथा न्याय एवं आचार के स्थान पर शक्ति का घमंड भर देता है । वे न्यायोचित, नीति एवं राजधर्म को भूलकर राजशक्ति के आश्रय के कारण निरंकुश हो जाते हैं ।

पाद टिप्पणी :

३१० (१) परिहासपुर : द्रष्टव्य परिशिष्ट परिहासपुर लेखक की जोन कृत राजतरंगिणी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३११ में 'पुरस्यैव' का पाठभेद ''पुरस्येव' मिलता है ।

घोरामलङ्घिताज्ञस्य श्रुत्वेत्याज्ञां महीपतेः ।
गत्वाऽश्वघासकूटानि तेऽदहन्वातुलानके ॥३१२॥

३१२. महीपति की अलंघनीय इस घोर आज्ञा को सुनकर, उन लोगों ने बातुलानक[1] में जाकर अश्वों के घास पुंज को दग्ध कर दिया ।

हर्म्याग्राद्वीक्षमाणस्तद्वह्निज्वालोज्ज्वलाननः ।
उल्कामुख इवाऽभूत् स हर्षाट्टहसितोत्कटः ॥३१३॥

३१३. हर्म्याग्र उसे देखता हुआ वह्नि की ज्वाला से प्रसन्नमुख एवं हर्ष से उत्कट अट्टहास युक्त वह नृपति उल्कामुख[1] सदृश हो गया था ।

पादटिप्पणी :

३११ (१) प्रवरपुर : राजा प्रवरसेन द्वारा बसाया गया श्रीनगर। पाद टिप्पणी राज : ३ : ३३० –३४९ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१२ में 'गत्वाश्व' का पाठभेद 'गत्वाशु' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३१२. (१) बातुलानक : यह स्थान कहाँ पर था अभी तक पता नहीं चल पाया है ।

पादटिप्पणी :

३१३. (१) उल्कामुख : उल्कामुख शब्द का अर्थ स्तीन तथा श्री आर.एस पण्डित ने भिन्न किया है । स्तीन उल्का का सरल प्रचलित अर्थ उल्कापात से लगाते हैं । उसका मुख उल्का के समान हो गया । श्री पण्डित ने अर्थ राक्षस किंवा पिशाच (गोवलिन) की तरह हो गया, लगाया है । उल्कामुख एक बन्दर हुताशन का पुत्र था । सुग्रीव ने उसे दक्षिण दिशा में सीता को खोजने के लिये भेजा था । (बा० किष्कि० : ४१ : ४)

उल्का शब्द का प्रयोग ऋग्वेद काल (ऋ० : ४ : ४ : २ : १० : ६८ : ४) से ही प्रचलित है । अथर्ववेद में भी उल्का शब्द का प्रयोग किया गया है । (अथर्व : १९ : ९ : ८) ब्राह्मण ग्रन्थों में वह जलते हुए काष्ठ के अर्थ में लगाया गया है । (श. ब्रा : ११ : २ : ७ : २१; ३ : ९ :)

उल्का आकाश से गिरता है, तो अत्यन्त चमकता किंचित् लाल रंग का होता है । बन्दर का मुख भी लाल होता है । यदि काष्ठ जलता हो, तो वह भी अंगार की तरह लाल हो जाता है । यहाँ पर राजा का मुख अग्नि ज्वाला के पड़ते रंग के कारण गौर वर्ण ज्वाला के समान लाल हो गया था । आग बलती है, तो उसकी ज्वाला से निकलता प्रकाश स्थिर नहीं रहता । वह लहर की तरह चंचल रहता है । कभी विशेष गहरा, और कभी हल्का बदलता रहता है । उल्का पात का रंग बदलता नहीं । बन्दर का मुख भावानुसार बदलता है । परन्तु बन्दर की उपमा यहाँ बैठती नहीं । उपमा अग्नि ज्वाला के मनुष्यमुख पर पड़ते रंग के अनुरूप होनी चाहिए । वैदिक साहित्य में उल्का का जो अर्थ दिया गया है वही यहाँ ठीक बैठता है । आग घास में लगी थी । उसकी ज्वाला हवा को गति के साथ तेज तथा हल्की होती थी । जलते काष्ठ की भी ज्वाला पवन के कारण हल्की तथा वेगवती होती है । राक्षस, पिशाच, तथा बन्दर जैसा मुख हो गया था । यह अर्थ यहाँ नहीं बैठता । राजा के तमतमाते मुख का भाव अट्टहास के साथ परिवर्तित होता था । उसके साथ मुख पर पढ़ती ज्वाला की लाली भी मुद्रा परिवर्तन के साथ बदलती थी ।

द्वेषादिवैकृतवतः प्रतिभासतेऽन्यो
मिथ्यैव चित्रमधिको विशदात्मनोऽपि ।
चन्द्रादि पश्यति पुरो द्विगुणं प्रकृत्या
तेजोमयं तिमिरदोषहतं हि चक्षुः ॥३१४॥

३१४. आश्चर्य है—द्वेषादि विकारयुक्त, महान् जनों को भी मिथ्या ही, अन्य (जन) अधिक (उन्नत) प्रतिभाषित होते हैं। ठीक है—'तिमिर दोष[1] ग्रस्त चक्षु वाला व्यक्ति चन्द्रादि तेजोमय वस्तु को प्रकृत्या सम्मुख द्विगुण देखता है।'

नैवं चेदेकमपि तत्पुरं प्रवरभूपतेः ।
असंख्यपुरनिर्माता स विवेदाऽधिकं कुतः ॥३१५॥

३१५. यदि ऐसा न होता, तो असंख्यपुर निर्माता, वह प्रवर[1] भूपति के उस एकमात्र नगर को अधिक कैसे मानता ?

क्षीणक्षैब्योऽथ निध्यार्य नगरप्लोषकिल्बिषम् ।
उष्णनिःश्वाससुहृदा पस्पर्शेऽनुशयाग्निना ॥३१६॥

३१६. क्षीण क्षैब्य (मदरहित) होकर नगर दाहजन्य पाप का ध्यान करके पश्चात्तापाग्नि एवं उष्ण निःश्वासरूपी सुहृद से युक्त हो गया।

तत्कुर्वतेऽन्तःसुषिरा गूढं येनाऽऽतनुक्षयम् ।
दह्यन्ते जीर्णतरवः कोटरस्थानला इव ॥३१७॥

३१७. जिस प्रकार जीर्ण तरु को कोटरस्थ अग्नि दग्ध[1] कर देती है, उसी प्रकार अन्तःशून्य जन तनुक्षय पर्यन्त, वह कर्म करते हैं, जिसके द्वारा गुप्त रूप से दग्ध होते रहते हैं।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का ११९ वां श्लोक है।

३१४ श्लोक संख्या ३१४ तथा ३१५ का अनुवाद सर्वत्र एक साथ युग्मम् रूप में किया गया है। परन्तु कल्हण दोनों पदों को युग्मम् नहीं लिखता। अतएव दोनों श्लोकों का अनुवाद अलग-अलग किया गया है।

(१) तिमिरदोष = शाब्दिक अर्थ अन्धकार, अन्धेरा होता है। नेत्र का एक रोग है। नेत्र रोग से तात्पर्य है। सुश्रुत में तिमिर दोष के अनेक भेदों एवं लक्षणों को वर्णन किया गया है। आँखों से धुंधला, विविध वर्ण, रात्रि को न दिखाई देना, चन्द्रमा किंवा नक्षत्रों का एक की अपेक्षा अधिक दिखायी देना आदि तिमिर दोष है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१५ के अन्त में 'युग्मम्' भी लिखा मिलता है।

पाद टिप्पणी :

३१५ (१) प्रवर = प्रवरसेन ने श्रीनगरी में प्रवरसेन नगर स्थापित किया। द्रष्टव्य पादटिप्पणी रा. : ३ : ३३४ ३४१ श्लोक।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१७ में 'आतनुक्षयम्' का पाठभेद 'अतनुक्षयम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१७ (१) कोटरस्थ अग्नि : पुरातन वृक्ष के

प्रातस्तमथ शोचन्तं सदुःखं वीक्ष्य मन्त्रिणः ।
चिन्तानिवर्तनायोचुः पुरप्लोषं मृषैव तत् ॥३१८॥

३१८. प्रातःकाल मन्त्रियों ने दुःख सहित सोच करते (राजा को) देखकर, चिन्ता निवर्तन हेतु, उस मिथ्यापुर दाह को कहा ।

श्रुतेऽप्रनष्टे नगरे निश्शोकोऽभून्महीपतिः ।
स्वप्नान्तर्हारिते पुत्रे प्रबुद्धोऽग्र इव स्थिते ॥३१९॥

३१९. नगर को नष्ट न हुआ सुनकर, राजा उसी प्रकार निःशोक हो गया जैसे स्वप्न में अपहृत पुत्र को प्रबुद्ध होकर, सम्मुख स्थित देखता है ।

कार्यं न जातु तद्वाक्यं यत्क्षीबेण मयोच्यते ।
तान् युक्तकारिणोऽमात्यान् प्रशंसन्निति सोऽब्रवीत् ॥३२०॥

३२०. 'मदमत्त हो मैं जो बात कहूँ, उसे कदापि नहीं करना चाहिए ।' इस प्रकार उचित कार्यकारी, उन अमात्यों की प्रशंसा करते हुए, उसने कहा—

प्रियमनुचितं क्ष्मापण्यस्त्रीक्षणप्रभुरीश्वरो
रमयति यतो धिक्तान्भृत्यान्स्ववृत्तिसुखार्थिनः ।
नृपमपथगं पान्ति प्राणानुपेक्ष्य निजानपि
प्रसभमिह ये तैः पूतेयं महात्मभिरुर्वरी ॥३२१॥

३२१. 'पण्य[१] स्त्री तुल्य भू का क्षण मात्र भोग करने वाले स्वामी को अनुचित प्रिय कार्यों से जो प्रसन्न करते हैं, ऐसे स्ववृत्ति के लिये सुखार्थी भृत्यों को धिक्कार है ! और अपने प्राणों की भी उपेक्षा कर, जो अपथगामी नृत्य की बलात् रक्षा करते हैं, उन महात्माओं से यह पृथ्वी पवित्र है ।'

कोटर में अग्नि रहती है । इसका विश्वास काश्मीरी करते हैं । इसी ओर कल्हण संकेत करता है । इस जन विश्वास की उपमा कल्हण ने अन्तः शून्य जनों के कर्मों से दिया है । वर्नियर अपने संस्मरण में लिखता है—'मैंने देखा कि वृक्ष अग्नि से दग्ध हो गये थे । किन्तु मैं नहीं कह सकता कि वे बिजली गिरने के कारण जल गये थे, अथवा परस्पर संघर्ष के कारण उत्पन्न हुई अग्नि से जल गये थे, जो कि गर्म हवा चलने के कारण वृक्षों के परस्पर रगड़ से पैदा हो जाती है अथवा जैसा वहाँ के निवासी विश्वास करते हैं कि वृक्ष जब पुराने तथा उकठ जाते हैं, तो उनमें सहसा अग्नि उत्पन्न हो जाती है ।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२० में 'न जातु' का 'जातु न' और 'वेण' का पाठभेद 'वेन' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

वह सूक्ति संग्रह का १२० का श्लोक है ।

३२१. (१) पण्य स्त्री : पण्य का अर्थ क्रय-विक्रय योग्य अथवा विकाऊ होता है । पण्यांगना, योषित, विलासिनी, वह स्त्री जो अपने शरीर को विलास क्रीडा, काम तृप्ति आदि के लिये कुछ मुद्राएँ को लेकर, कुछ समय उपभोग करने देती है, उसका भाव पण्य स्त्री

अतीन्द्रमपि माहात्म्यं राज्ञस्तस्याधितिष्ठतः ।
अयमन्योऽपि दोषोऽभूदितरक्षितिपोचितः ॥३२२॥

परिहासपुर में उत्पात :

३२२. माहात्म्य से इन्द्र को भी अतिक्रान्त करने वाले, इस राजा का सामान्य नृपोचित यह एक दोष था।

दत्त्वाऽपि यत्स मध्यस्थं श्रीपरीहासकेशवम् ।
जघान तीक्ष्णपुरुषैस्त्रिग्राम्यां गौडपार्थिवम् ॥३२३॥

३२३. उसने परिहास केशव को मध्यस्थ[१] कर, गौडराज[२] का तीक्ष्ण[३] पुरुषों द्वारा त्रिग्रामी स्थान पर वध करा दिया।

गौडोपजीविनामासीत्सत्त्वमत्यद्भुतं तदा ।
जहुर्ये जीवितं धीराः परोक्षस्य प्रभो नुते ॥३२४॥

३२४. उस समय गौड़वासियों ने अत्यद्भुत पराक्रम (सत्त्व)[१] का परिचय दिया, जिन वीरों ने दिवंगत प्रभु के लिये प्राण त्याग किया।

शत् में आ जाता है। प्रचलित शब्द, रंडी वेश्या, खानगिन है।

यथा—महता पुण्यपण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया= ३ : १, 'विवेककल्पलतिका शास्त्रीषु रज्येतकः। भर्तृहारे : १ : ९०

पादटिप्पणी :

३२३. (१) मध्यस्थ : कल्हण ने (रा० ७ : १५१५) साक्षी शब्द मध्यस्थ के अर्थ में प्रयोग किया है। कोई देवता के सम्मुख, अथवा अग्नि जलाकर उसके सम्मुख, अथवा किसी देव प्रतिमा को मध्य में रखकर, उभय पक्ष देव को साक्षी किंवा मध्यस्थ मानकर प्रतिज्ञा करते हैं। यह रीति अत्यन्त प्राचीन काल से कश्मीर तथा भारत में प्रचलित थी और है। इस प्रकार की प्रतिज्ञा भंग करना भगवान् किंवा देवता के प्रति अपराध माना जाता है।

(२) गौड पार्थिव : वाकपति काश्मीरी का लेखक गौड़ नरेश का नाम गोशल देता है।

(३) तीक्ष्ण : इस शब्द के जानने के लिए बहुत अनुसन्धान कोटा रानी के हत्या के सम्बन्ध में मैंने किया है। तीक्ष्ण शब्द कल्हण ने वधिकों के लिये प्रयोग किया है। श्री स्तीन ने इस शब्द का अर्थ 'एस्सेशिन' घातक तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने 'डिस-पेराडोज़' अर्थात् आततायी किया है।

तीक्ष्ण शब्द का प्रयोग कल्हण ने ६ : १७१; ७ : ६२७, ६२९, ६५५, १०१६, १०४५, ८ : १२८२, १३२६, में किया है। इसका स्वाभाविक भाव 'तीक्ष्णं त्व' शब्द (८ : २०८५) की व्युत्पत्ति से होता है। द्रष्टव्य पाद टिप्पणी जोन : श्लोक ३०५, ५१७ तथा जैन : २ : १७५ लेखक।

(४) त्रिग्रामी : वह वर्तमान त्रिग्राम है। परसपोर परगना में है। लगभग डेढ़ मील उत्तर-पूर्व परिहासपुर मन्दिरों के ध्वन्सावशेषों से होगा। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि कल्हण ने (रा०. ५ : ९३) त्रिगामी पर वितस्ता तथा सिन्धु का संगम, सुरय के वितस्ता की धारा बदलने के पूर्व होना लिखा है। (रा० : ८ : ३३५६) इस स्थान की यात्रा कपाल मोचन तीर्थ यात्रा के साथ जो डिगाम अर्थात् द्विग्राम में था की जाती थी।

पादटिप्पणी :

३२४ (१) सत्त्व : कल्हण ने सत्त्व शब्द का प्रयोग

शारदादर्शनमिषात् कश्मीरान् संप्रविश्य ते ।
मध्यस्थदेवावसथं संहताः शमनष्टयन् ॥३२५॥

३२५. संहत होकर वे, शारदा[1] दर्शन के व्याज से कश्मीरमें प्रवेश कर, मध्यस्थ[2] देव के मन्दिर को घेर लिये ।

दिगन्तरस्थे भूपाले प्रविविक्षूनवेक्ष्य तान् ।
परिहासहरिं चक्रुः पूजकाः पिहितारिम् ॥३२६॥

३२६. जबकि राजा अन्यत्र दिगंतर में था, उस समथ प्रवेशाभिलाषी उन्हें देखकर, पूजकों ने कपाट बन्द कर, परिहास हरि को रक्षित किया ।

किया है । श्री स्तीन ने इस शब्द का अनुवाद 'हिरोइज़्म' अर्थात् वीरता तथा श्री सीताराम रणजीत पण्डित ने 'मोरेल' मनोबल से किया है । मैंने 'सत्त्व' का अनुवाद पराक्रम से किया है । इसमें वीरता तथा मनोबल दोनों भावों का समावेश हो जाता है । कल्हण के सन्दर्भ तथा उत्तरकालीन वर्णनों से प्रतीत होता है कि गौड़ जन गौड़ राजा की हत्या का प्रतिशोध ललितादित्य के परम पूजित परिहास केशव को मूर्ति को नष्ट कर लेना चाहते थे ।

पादटिप्पणी :

३२५ (१) शारदा दर्शन : प्रतीत होता है कि कश्मीर में अन्य काश्मोरियों के प्रवेश पर साधारणतया नियन्त्रण था। कृष्णगंगा उपत्यका में स्थित शारदा अर्थात शारदी तीर्थ की यात्रा एवं दर्शन उस समय तक भारत में प्रचलित थी । कश्मीर का नाम प्राचीन काल में शारदा पीठ था । गौड़ निवासियों ने कश्मीर प्रवेश का बहाना शारदा की यात्रा एवं दर्शन बताया था । यह धार्मिक कार्य था । भारत से यात्री प्रायः शारदा दर्शन एवं यात्रा के लिये जाते थे जैसे आजकल अमरनाथ की यात्रा के लिये जाते हैं । उनपर किसी को सन्देह नहीं था । काश्मीर प्रवेश की अनुमति प्राप्त कर लिये थे ।

(२) मध्यस्थ : हिन्दू होकर भी गौड़ निवासियों ने परिहास केशव का मन्दिर क्यों तोड़ा ? इसके दो कारण थे । राजा ललितादित्य के प्रति प्रतिहिंसा की भावना तो गौड़ यात्रियों में थी ही, साथ ही उन्होंने देखा । जिस परिहास केशव को मध्यस्थ बनाकर, उनके राजा तथा ललितादित्य ने प्रतिज्ञा की थी, उस प्रतिज्ञा के तोड़ने पर भगवान् ने ललितादित्य को दण्ड नही दिया । उस पर कुछ दैवी प्रकोप नहीं हुआ । गौड़ नरेश को षड्यन्त्र का शिकार बनना पड़ा था । भगवान् की मध्यस्थता पर विश्वास कर गौड़नरेश रह गया था । जीवन से हाथ धोया । भगवान् पर विश्वास कर कश्मीर में रह जाने वाले गौड़ राजा की रक्षा भगवान् नहीं कर सके । यह विश्वासघात था यह दैव का अनुचित कार्य था । विदेश में विदेशियों की रक्षा का भार वहाँ के लोगों, तथा राजा पर होता है । गौड़ निवासी इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर मध्यस्थ परिहास केशव की प्रतिमा नष्ट कर दैव को उसके अपराधका दण्ड देना उचित समझे थे । ललितादित्य के सर्वप्रिय उपास्य देव को नष्ट कर, उसके अभिमान, गौरव, शक्ति एवं मान का मर्दन करना चाहते थे । प्रतीत होता है । क्रुद्ध प्रतिहिंसा भाव से जागृत उनकी क्षुब्ध मनोवृत्ति प्रतिमा भंग करने जैसे अनुचित कार्य से उन्हें विरत नहीं कर सकी ।

ते रामस्वामिनं प्राप्य राजतं विक्रमोर्जिताः ।
परिहासहरिभ्रान्त्या चक्रुरुत्पाट्य रेणुशः ॥३२७॥

३२७. विक्रमोर्जित, वे परिहास हरि की भ्रान्ति से, रजतमय राम स्वामी[1] को उत्पाटित कर रेणुशः (धूलवत्) कर डाले ।

तिलं तिलं तं कृत्वा च चिक्षिपुर्दिक्षु सर्वतः ।
नगरान्निर्गतैः सैन्यैर्हन्यमानाः पदे पदे ॥३२८॥

३२८. उन्हें तिल-तिल करके, चारों दिशाओं में निक्षिप्त[1] कर दिया । नगर से निर्गत सैनिकों ने पद-पद पर (उनका) हनन किया ।

श्यामला रक्तसंसिक्तास्तेऽपतन्निहता भुवि ।
अञ्जनाद्रिदृषत्खण्डा धातुस्यन्दोज्ज्वला इव ॥३२९॥

३२९. श्यामल[1] रक्त संसिक्त, वे निहत होकर, भू पर उसी प्रकार पड़े हुए थे, जिस प्रकार अंजनाद्रि[2] का प्रस्तर खण्ड धातु (गैरिक) द्रव से लिप्त हो पड़ा रहता है ।

पादटिप्पणी :

३२७ (१) रामस्वामी : यह वही प्रतिमा थी जिसे ललितादित्य ने भगवान् राम द्वारा निर्मित मन्दिर से लाकर, परिहास केशव के समीप स्थापित कर, उसका नाम रामस्वामी रखा था । गौड़ निवासियों ने भ्रम से इस मन्दिर की रजत प्रतिमा परिहास केशव की समझ कर तोड़ा था । उनका क्रोध इतना प्रबल था, प्रतिहिंसा भावना इतनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी कि रजत प्रतिमा को तोड़-तोड़कर धूल की तरह चूर्ण कर डाला था ।

पादटिप्पणी :

३२८ (१) निक्षिप्त : गौड़ निवासी केवल प्रतिहिंसा भाव से वह कार्य किये थे । अन्यथा रजत प्रतिमा की चान्दी वे स्वयं लेकर, अपने उपयोग में ला सकते थे। उन्होंने धूल बने रामस्वामी की रजत प्रतिमा को तिल तिल चारों तरफ फेंक दिया । प्रतिमा का लेश मात्र चिन्ह किसी रूप में शेष नहीं रह गया ।

पादटिप्पणी :

३२९. (१) श्यामल : गौड़ निवासियों के श्याम वर्ण की ओर कल्हण संकेत करता है । काश्मीरी गौर वर्ण होते हैं । उनकी अपेक्षा बंगाल निवासी श्याम प्रतीत होते हैं । क्षेमेन्द्र ने देशोपदेश अध्याय षष्ठ में बंगाली विद्यार्थियों के श्यामरंग का जो कश्मीर में अध्ययन करने आते थे, वर्णन किया है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है । काश्मीर में सुदूर बंगाल तक से विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आते थे । कश्मीर उस समय अपने अध्ययन, अध्यापन एवं विद्यादान के लिए निः-सन्देह प्रसिद्ध था ।

(२) अंजनाद्रि : अंजन का अर्थ काजल श्यामता, स्याही, सुरमा, अंजन, रात्रि, माया तथा पश्चिम दिशा एवं पश्चिम दिशा के दिग्गज का नाम अंजन है । हाथी का रंग भी सुलेमानी अथवा श्याम होता है । अंजन श्याम रंग के लिए व्यवहृत होता है । अंजनाद्रि एक पर्वत है । इसे कृष्णांजन गिरि कहते

तदीयरुधिरासारैः समभूदुज्ज्वलीकृता ।
स्वामिभक्तिरसामान्या धन्या चेयं वसुन्धरा ॥३३०॥

३३०. उनके रुधिरासार से समुज्ज्वल कृत, यह वसुन्धरा एवं असामान्य स्वामिभक्ति धन्य हुए।

वज्राद्वज्रकृतं भयं विरमति श्रीः पद्मरागाद्भवे-
न्नानाकारमपि प्रशाम्यति विषं गारुत्मतादश्मनः ।
एकैकं क्रियते प्रभावनियमात्कर्मेति रत्नैः परं
पुंरत्नैः पुनरप्रमेयमहिमोन्नद्धैर्न किं साध्यते ॥३३१॥

३३१. वज्र (हीरा) से वज्र[१] (विद्युत-बिजली) कृत भय विरमित होता है, पद्मराग[२] से श्री (वृद्धि) होती है; मरकत मणि[३] से नाना प्रकार का विष शान्त होता है। इस प्रकार रत्न प्रभाव नियम से एक-एक कार्य करते रहते हैं किन्तु अपरिमित महिमोत्पन्न पुरुष रत्न कौन सी सिद्धि नहीं कर सकते ?

क्व दीर्घकाललङ्घ्योऽध्वा शान्ते भक्तिः क्व च प्रभो ।
विधातुरत्यसाध्यं तद् यद् गौडैर्विहितं तदा ॥३३२॥

३३२. कहां दीर्घ काल में लंघनीय मार्ग और कहां दिवंगत प्रभु में भक्ति। उस समय गौडो[१] ने जो किया, वह विधाता के लिये भी असाध्य था।

हैं। एक मत के अनुसार यह वर्तमान सुलेमान पर्वत शृङ्खला हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३१ में 'कर्मेति' का 'कर्मांति', 'कर्मोति' तथा 'पुनर' का पाठभेद 'परम' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १२१ वाँ श्लोक है।

३३१ (१) वज्र : वज्र हिन्दी में हीरा को कहते हैं। हीरा शब्द हीरका का अपभ्रंश है—वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ।' (अमरकोश काण्ड : ३ : १८३) इन्द्र का प्रिय आयुध वज्र है। वज्र दश प्रकार के होते हैं।

(२) पद्मराग मणि : इसका नाम माणिक शोण रत्न, लोहितक है। इसे लाल मणि किंवा रत्न कहते हैं।

(३) मरकत मणि : मतकत का नाम पन्ना, गारुत्मत, अश्मगर्भ एवं हरिन्मणि है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३२ में 'विधातुर' का पाठभेद 'विधातुम' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३३२ (१) गौड़ : कल्हण मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करता है। उन्हें विधाता से भी ऊपर उठा देता है। बंगाल से कश्मीर तक दो सहस्र मीलों का लम्बा मार्ग, नाना प्रकार के कष्टों को झेलते समाप्त कर, कश्मीर केवल स्वामिभक्ति की भावना से आना और स्वामी के नाम पर अपने को मिटा देना वास्तव में अलौकिक कार्य था। गौड़नरेश दिवंगत हो चुका था। वह उन्हें पुरस्कृत नहीं कर सकता था। वे किसी प्रकार का लाभ स्वामी के लिये उत्सर्ग कर इस परिस्थिति में नहीं उठा सकते थे। उनकी सात्त्विक स्वामिभक्ति

लोकोत्तरस्वामिभक्तिप्रभावानि पदे पदे ।
तादृशानि तदाऽभूवन् भृत्यरत्नानि भूभृताम् ॥३३३॥

३३३. उस समय राजाओं के उस प्रकार के लोकोत्तर स्वामिभक्ति प्रभाव को पद-पद-पर प्रदर्शित करने वाले भृत्य[1] रत्न होते थे ।

राज्ञः प्रियो रक्षितोऽभूद् गौडराक्षसविप्लवे ।
रामस्वाम्युपहारेण श्रीपरीहासकेशवः ॥३३४॥

३३४. गौड राक्षसों के विप्लव में राम स्वामी के उपहार द्वारा राजप्रिय परिहास केशव रक्षित हुए ।[1]

अद्यापि दृश्यते शून्यं रामस्वामिसुरास्पदम् ।
ब्रह्माण्डं गौडवीराणां सनाथं यशसा पुनः ॥३३५॥

३३५. राम स्वामी का शून्य मन्दिर[1] एवं गौड वीरों के यश से सनाथ ब्रह्माण्ड आज भी देखा जाता है ।

एवं नानाविधोदन्तैर्वासराः क्ष्मापतेर्ययुः ।
विरलाः स्वपुरे तस्य भूयांसस्तु दिगन्तरे ॥३३६॥

३३६. इस प्रकार बहुविध उदन्तों (वृत्तान्तों) द्वारा, उस राजा के बहुत से दिन, दिगन्तर में एवं विरल दिन, स्वपुर में व्यतीत हुए ।

अत्यन्त श्लाघ्य कही जायगी । कल्हण उनके उत्सर्ग से प्रभावित हो कर यह पद लिखा है ।

पादटिप्पणी :

३३३(१) भृत्य रत्न : कल्हण अपने समकालीन भृत्यों में वीरता, स्वामिभक्ति आदि सद्गुणों के अभाव पर दु:ख प्रकट करता है ।

पादटिप्पणी :

३३४ (१) उपहार : कल्हण पूर्व श्लोक में गौड़-वासियों के स्वामिभक्ति की प्रशंसा करता है परन्तु प्रतिमा भंग को वह राक्षसी कार्य मानता है । उन्हें देवोपम उनके उत्सर्ग के कारण मानता हुआ भी उनके अनुचित कार्य का समर्थन नहीं करता । कल्हण राजतरंगिणी रचना प्रयोजन का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वह एक स्थेय के समान वर्णन करेगा । उसका यह पद उसका ज्वलन्त उदाहरण है । उसने एक स्थेय अर्थात् न्याय कर्ता के समान गौड़ निवासियों के दोनों कार्यों को तुलापर तौल कर अपना स्पष्ट मत प्रकट किया है । कल्हण परिहास केशवकी रक्षा का श्रेय राम स्वामी प्रतिमा को देता हैं जो स्वयं धूल में मिलकर, प्रतिहिंसाग्नि की क्रोधाग्नि में बलि चढ़ाकर, चारों ओर बिखर कर भी परिहास केशव की रक्षा किये थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३५ में 'सुरास्पदम्' का पाठभेद 'पुरास्पदम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३३५ (१) रामस्वामी मन्दिर : यह मन्दिर प्रतिमा विहीन कल्हण के समय तक था । ललितादित्य ने या कश्मीर के किसी अन्य राजा ने इस मन्दिर में प्रतिमा स्थापित करने का पुन: प्रयास नहीं किया । गौड़ निवासियों की कथा कल्हण के समय तक अर्थात् घटना के चार शताब्दी पश्चात् तक लोगों को स्मरण थी । इसी से इस घटना का महत्त्व प्रकट होता है ।

अनन्याक्रान्तपृथिवीसमालोकनकौतुकी ।
अपारं प्रविवेशाथ पुनरेवोत्तरापथम् ॥३३७॥

ललितादित्य का अन्त :

३३७. अन्य से अनाक्रान्त, पृथ्वी देखने का कौतुकी (वह नृपति) पुनः अपार उत्तरापथ[१] में प्रवेश किया।

कर्तुं प्रभावजिज्ञासां प्रहितैर्धनदादिभिः ।
नैर्ऋतैः सह वृत्तान्तास्तस्य ते ते तदाऽभवन् ॥३३८॥

३३८. उस समय उस (राजा) का प्रभाव जानने को अभिलाषा से कुबेरादि देव प्रेषित राक्षसों[१] के साथ वे-वे वृत्तान्त हुए।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३७ में 'अनन्याक्रा' का पाठभेद 'अनन्यक्रा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३३७. (१) उत्तरापथ : हर्षचरित से यह अनुमान निकलता है कि उत्तरापथ का अर्थ पश्चिमी पंजाब का कोई अञ्चल माना जाता था। उत्तरापथ पुरानी मान्यता के अनुसार उत्तरी भारत था जिसमें गंगा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलज) चन्द्रभागा (चिनाव), यमुना, इरावती (रावी)। वितस्ता (झेलम), व्यास (विपासा), कुहू तथा देविका नदियाँ बहती थीं। उत्तरापथ में विहार, बंगाल नहीं सम्मिलित था। उत्तरी पश्चिमी भारत का भूभाग तथा मध्येशिया का समीपवर्ती क्षेत्र और गांधार उत्तरापथ में ही सम्मिलित था।

काव्य मीमांसा के अनुसार उत्तरापथ में शक, केकय, वोक्काण, हूण, बनायुज, कंबोज, वाह्लीक, पह्लव, लिंपक या लम्पक, कुलूत, कीर, तंगण, तुषार, तुरुष्क, वर्वर, हरहुख, हुहुक, सहुड, हंसमार्ग, (मठ) करकंठ आदि पश्चिमोत्तर भारतीय तथा परवर्ती अञ्चल सम्मिलित थे।"

कालान्तर में यह मान्यता हो गयी थी कि दक्षिणापथ नर्मदा के दक्षिण था। भारत का उत्तरापथ एवं दक्षिणापथ विभाजन अति प्राचीन काल से था। काव्य मीमांसा (अः १७) में भारत को पांच भागों में विभक्त किया गया है। दक्षिणापथ को भारत का चौथाई भाग माना गया है।

पादटिप्पणी :

३३८. (१) राक्षस : दश देवयोनि (१) विद्याधर (२) अप्सरस् (३) यक्ष (४) राक्षस (५) गन्धर्व (६) किन्नर (७) पिशाच (८) गुह्यक (९) सिद्ध तथा (१०) भूत हैं इनका एक वर्ग राक्षस है।

राक्षसों के १५ नामों का उल्लेख मिलता है; (१) राक्षस (२) कौणप (३) क्रव्याद् (४) क्रयाद (५) असय (६) आशर (७) रात्रिञ्चल (८) रात्रिचर (९) कुर्बुर (१०) निकषात्म (११) यातुधान (१२) पुण्यजन (१३) नैर्ऋत (१४) यातुधान (१५) रक्षस्। राक्षसों को लंका निवासी कहा गया है—'रक्षांसि मायाविनो लङ्कादिनिवासिनः।'

नाद्यापि या भुवो दृष्टा जाने भानुकरैरपि ।
राज्ञस्तस्य बभूवाज्ञा तत्र स्वैरविहारिणी ।।३३९।।

३३९. आज भी जिन भूमियों को सूर्य किरणों ने भी नहीं देखा, वहाँ उस राजा की आज्ञा[१] स्वैर विहारिणी थी ।

चिरमज्ञातवृत्तान्तैर्मन्त्रिभिः प्रहितस्ततः ।
प्रत्यावृत्तस्तस्य पार्श्वाद् दूतस्तानेवमुक्तवान् ।।३४०।।

३४०. चिर काल वृत्तान्त न ज्ञात होने के कारण, मन्त्रियों द्वारा प्रेषित दूत, राजा के पास से परावृत्त होकर, उनसे इस प्रकार कहा—

इत्यादिशति वः स्वामी कोऽयं मोहो भवादृशाम् ।
क्ष्मामिमां मे प्रविष्टस्य प्रतीक्षध्वे यदागमम् ।।३४१।।

३४१. स्वामी आप लोगों को ऐसा आदेश[१] देते हैं—'आप जैसे लोगों का यह कैसा मोह है, जो कि इस भूमि में प्रविष्ट मेरे आगमन की प्रतीक्षा करते हैं ।

नवं नवं प्रतिदिनं संत्यज्य विजयार्जनम् ।
स्वराष्ट्रं संप्रविष्टस्य किं कार्यं मम पश्यथ ।।३४२।।

३४२. 'प्रति दिन नयी-नयी विजय प्राप्ति त्यागकर, स्वदेश में प्रविष्ट मेरे लिये, कौन (महत्त्व पूर्ण) कार्य आप लोग देख रहे हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३३९ में 'तत्र' का पाठभेद 'तासु' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३४१ (१) आज्ञा : ललितादित्य का वसीयत नामा राजतरंगिरणी ग्रन्थ का एक अद्भुत राजनीति दर्शन एवं सैद्धान्तिक पत्र है । उसमें शासन के कठिनाइयों का वर्णन तथा उनसे उत्पन्न होने वाली समस्याओं के हल का उपाय बताया गया है ।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा रणजीत सीताराम पण्डित एक साथ जेल में थे । वहीं पण्डित जी ने राजतरंगिणी का अनुवाद किया था । पण्डित जवाहरलालजी के वसीयतनामा दिनांक इक्कीस जून सन् १९५४ ई० पर ललितादित्य के वसीयतनामा की शैली की छाप झलकती है । यद्यपि दोनों के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अन्तर है । जैनुल आबदीन बड़शाह ने भी ललितादित्य का अनुकरण करता वसीयत किया था ।

विनिर्गतानां स्वभुवः सरितां सलिलाकरः ।
न निर्व्याजजिगीषूणां दृश्यते ह्यवधिः क्वचित् ॥३४३॥

३४३. 'स्व भूमि से विनिर्गत, नदियों को अवधि सलिलाकर है. किन्तु निर्व्याज विजयाभिलाषियों का अन्त, कहीं नहीं देखा जाता ।

तस्मादाचारसारं वो वक्ष्ये स्वविषयोचितम् ।
राज्यं तदनुसारेण निर्विघ्नं कुरुतानघाः ॥३४४॥

३४४. 'अतएव तुम लोगों के लिये, स्वदेशोचित आचारसार[1] कहूँगा,—तदनुसार निष्कलंक होकर निर्विघ्न राज्य करो ।

अत्रस्थैः सर्वदा रक्ष्यः स्वभेदः प्रभविष्णुभिः ।
चार्वाकाणामिवैषां हि भयं न परलोकतः ॥३४५॥

३४५. 'यहाँ के प्रभविष्णु (प्रभावशाली) लोगों को चाहिए कि सर्वदा स्वभेद की रक्षा करें । क्योंकि चार्वाकों[1] (नास्तिकों) की तरह इन्हें परलोक[2] का भय नहीं रहता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४३ में 'निर्व्याज' का पाठभेद 'निर्व्याजं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

यह सूक्तिसंग्रह १२२ वाँ श्लोक है ।

३४४. (१) आचारसार : राजशास्त्र एवं शासन का उल्लेख श्लोक ३४४-३५३ में किया गया है । उसमें कश्मीर राज्य के परम्परा गत शासन पद्धति का उल्लेख है, जिसका वर्णन आधुनिक लेखक मूरक्राफ्ट (ट्रेवेल्स : २ : २८९) तथा लारेन्स (वैली : ३९९) ने किया है। राजतरंगिणी में वर्णित शासन पद्धति स्पष्टतया दिखाती है कि कश्मीर का वित्तीय तथा शासकीय प्रबन्ध जो अब तक प्रायः उसी प्रकार चलता रहा है, अन्यत्र प्राचीन काल की शासकीय व्यवस्थाओं से प्रभावित है, यद्यपि कुछ लेखक उसे अर्वाचीन मानते हैं ।

पादटिप्पणी :

३४५. (१) चार्वाक : चार्वाक का कल्हण ने स्पष्ट उल्लेख किया है । ललितादित्य के समय में प्रतीत होता है, नास्तिक मत किंवा सिद्धान्त का प्रचार कश्मीर में हो गया था, जिन्हें परलोक का भय नहीं था । वे भौतिकवादी थे । अपने सुख के सामने परलोक सुख की चिन्ता नहीं करते थे । वे ईश्वर, आत्मा, अमृतत्व तथा परलोक में विश्वास नहीं करते थे । अप्रच्छन्न नास्तिकवाद के आचार्य बृहस्पति माने जाते हैं । किन्तु बार्हस्पत्य सूत्र की मूल पुस्तिका नहीं प्राप्त हो सकी है । उसके केवल उद्धृत वाक्य अनेक ग्रन्थों में स्फुट रूप से मिलते हैं । चार्वाक का मत है । पुरुष भौतिक तत्त्वों के मेल का परिणाम है । उनके बिखर जाने पर उसका नाश हो जाता है ।

(२) परलोक शब्द यहाँ श्लिष्ट है । परलोक का अर्थ स्वर्ग तथा दूसरे लोक होते हैं । चार्वाक अनुयायी उपयोगितावादी होते हैं । अवसरवादी होते हैं । उन्हें केवल सुख की कामना होती है । नीति, रीति तथा परम्परा से वे मर्यादित नहीं होते । परलोक का भय न होने कारण, वे निर्भीक होकर, कोई भी अनुचित किंवा उचित कार्य करने के लिये उद्यत रहते हैं । परलोक भय मानव को संयत रखता है । उसे

अपराधं विनाऽप्यत्र दण्डया गह्वरवासिनः ।
ते हि संभृतवित्ताः स्युर्दुर्भेद्या दुर्गसंश्रयाः ॥३४६॥

३४६. 'यहाँ गह्वरवासी अपराध के बिना भी दण्डनीय हैं। क्योंकि दुर्ग[1]संश्रयी वे वित्त शाली होने पर, दुर्भेद्य हो जायँगे।

वर्षोपभोग्यान्यन्नानि क्षेत्रभूसंमिता वृषाः ।
ग्राम्याणां नातिरिच्यन्ते यथा कार्यं तथाऽसकृत् ॥३४७॥

३४७. 'अनेकशः उस प्रकार बराबर वह कार्य करना चाहिए, जिस प्रकार, जिससे ग्रामीणों के पास वर्ष पर्यन्त उपभोग्य अन्न एवं क्षेत्र भूमि परिमाण के अनुरूप ही बैल हों, अधिक नहीं।

अनुचित कार्यों को करने से रोकता है। इसी प्रकार परलोक अर्थात् दूसरे लोकों का भी भय नास्तिकों को नहीं होता। वे किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं। लोक, परलोक का भय न होने पर, मानव स्वेच्छाचारी एवं निर्लज्ज हो जाता है। ललितादित्य इसी ओर लक्ष्य करता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३४६ में 'दुर्भेद्या' का पाठभेद 'दुर्भेदा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३४६ (१) दुर्ग : राजशास्त्र के अनुसार राज्य की प्रकृतियों में एक प्रकृति दुर्ग है। इसका अर्थ दुर्ग अर्थात् किला एवं दुर्गम स्थान भी होता है। ऋग्वेद में दुर्ग का उल्लेख किया गया है। इन्द्र ने दस्युओं के ९६ दुर्ग को ध्वस्त किया था। मनु ने छह प्रकार के दुर्गों का वर्णन किया है। आदिपुराण, कालिका पुराण, महाभारत आदि में छह प्रकार के दुर्ग (१) धनु-दुर्ग या धान्वन इसके चारों ओर निर्जल प्रदेश होता है। (२) मही दुर्ग—इसके चारों ओर ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी भूमि होती है। (३) जल किंवा औदक दुर्ग—इसके चारों ओर जल रहता है। (४) वृक्ष दुर्ग—इसके चारों ओर घने वृक्ष लगे रहते हैं। (५) नर दुर्ग—इसके चारों ओर सेनाओं के शिविर रहते हैं। (६) गिरि दुर्ग या पर्वत दुर्ग—इसके चारों ओर पर्वत तथा यह स्वतः पहाड़ी पर बना होता है। गिरिदुर्ग दक्षिण भारत तथा राजस्थान एवं पहाड़ी इलाकों में ही मिलते हैं। मैदानी इलाकों में जल एवं मही दुर्गों का मिश्रण बनता है। इसके चारों ओर जल की खाई, किलों के प्राकार एवं प्राचीर होता है। इस प्रकार के दुर्ग, उत्तर भारत में बने हैं। प्रायः मैदान के सभी दुर्ग यथा दिल्ली का लाल किला आदि हैं। गिरि दुर्गों में चित्तौर एवं राजस्थान के सभी पहाड़ी दुर्ग एवं चुनार का किला प्रसिद्ध है। चित्तौर आदि दुर्ग इतने विशाल बने हैं कि उनमें खेती-बारी भी हो सकती है और होती है। कश्मीर में हरिपर्वत किंवा सारिका पर्वत पर बना दुर्ग इसी श्रेणी में आता है। महाभारत तथा मनुस्मृति में दुर्ग के अन्दर कोष, सेना, ब्राह्मण, अस्त्र, शस्त्र, शिल्पी, वाहन, तृण, जलाशय एवं अन्नादि का स्थान बनाने का निर्देश है। भारत के दुर्गों का उक्त दृष्टिकोण से ही निर्माण होता था।

(द्रष्टव्य : याज्ञवल्क : १ : ३२१ मनुः ७ : ७१ ७५, कामन्दक : ४ : ६० शुक्र : ४:६, ६१२, ६१३, १ : २१३-२१७ वायु : ८ : १०८, ९४ : ४०, मत्स्यः २१७ : ६-७, ८, अग्नि २२२ : ४-५ विष्णु-धर्मोत्तरः २ : २६ : ६-९, २०-२८, ३ : ३२३ : १६-२१, शान्ति ५६ : ३५; ६९ : ६०; ८६ : ४-१५, सभा : ५ : ३६ विराटः २२ : १६, २५-२६ रामा० : अयो : १०० : ५३; सुन्दर : २ : ५०-५३ कौटिल्य २ : ४, पाणिनि : ७ : ३ : १४।)

अधिकीभूतवित्ता हि वत्सरेणैव ते भृशम्।
भवेयुर्डामराः क्रूरा नृपाज्ञातिक्रमक्षमाः ॥३४८॥

३४८. 'प्रभूतवित्तशाली होकर, वे एक ही वर्ष में अत्यन्त क्रूर एवं राजाज्ञा का अतिक्रमण करने योग्य डामर हो जायँगे।

पादटिप्पणी :

३४८ (१) डामर : इस शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है। वाराहमिहिर ने संहिता में इसका उल्लेख किया है। अलबेरूनी ने किया है। भारत के ईशान दिशा में निम्नलिखित देश थे :

'भेरु, कणस्थराज, पशुपाल, कीर, काश्मीर, शारदा, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध, राष्ट्र, ब्रह्मपुर, दर्व, डामर, बनराज, किरात, चीन, कौनिन्द, भल्ल, पलोल, जटासुर, कुनथ, खश, घोष, कुचिक, एकाचरण, अणु, विश्व, सुवर्णभूमि, अर्व सूदन, नन्द विशथ, पौरव, चिरनिवासन, त्रिनेत्र, पुजाद्रि तथा गन्धर्व (१ : ३०३. अनबेरूनी)

कश्मीर के इतिहास का सम्बन्ध उक्तदेशवासियों में से कुलूत, दर्व अर्थात् दर्वाभिमार, डामर, चीन, खश तथा गान्धार से बहुत रहा है। यहाँ के निवासियों का भी कश्मीर के इतिहास पर प्रभाव पड़ता रहा है।

यद्यपि डामर देश के रूप में वर्णित किया गया है परन्तु कश्मीर के डामरों की कुछ विशेष अवस्था थी, कश्मीर में डामर भूमि स्वामी थे। जमीन्दार थे। वे सामन्त किंवा सरदार थे। ग्रामीण अर्थात् भूमि पर निर्वाह करने वालों का कुलीन वर्ग था। राजपुत्रों के स्तर के नहीं थे। परन्तु विवाह सम्बन्ध राजवंश में होता था। कोई भी व्यक्ति डामर हो सकता था, यदि अपने को सफल कृषक प्रमाणित कर देता था।

कल्हण तथा उसके परवर्ती किसी लेखक ने डामर शब्द की व्याख्या नहीं की है। ललितादित्य ने अपने वसीयतनामा में कहा है कि यदि कृषकों के पास अधिक अन्न तथा सम्पत्ति हो तो वे उपेक्षा करने लगेंगे। राजा अवन्तिवर्मा भूतेश्वर (त० ५ : ४८) देवस्थान में गया तो उसे मालूम हुआ कि धन्वा डामर ने मन्दिर के अग्रहारों पर अधिकार कर लिया हैं। राज मन्त्री शूर का धन्वा पुत्र था। राजाज्ञा उल्लंघन करता रहता था। डामर लक्ष्मणचन्द्रका दुग्गघाट के दुर्ग पर अधिकार था। उसकी विधवा रानी ने उस पर्वतीय दुर्ग को राजा कलश को दे दिया था। कलश के अस्वीकार करने पर, दुर्ग दरदों के हाथो में चला गया। स्थानीय डामरों की सहायता से उस दुर्ग को कलश पुनः हस्तगत करना चाहता था। लहर का सामन्त गर्ग चन्द्र वास्तव में राजा बनाने तथा बिगाड़ने वाला होगया था। इसी प्रकार पृथ्वीहर, शमाला के डामर, टक्क, देवसर, मल्लकोष्टक, आदि डामर कश्मीर के इतिहास के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति रहे हैं। कल्हण ने उन्हें अशिष्ट आदतों तथा शक्ति मिलने पर अत्यन्त खर्चीला होने का वर्णन किया है।

डामर नगरों के बाहर निवास करते थे। कृषकों के समान वेश धारण करते थे। डामर कोष्टक की स्त्री जब राजपूतों की तरह सती हुई तो कल्हण ने उसकी प्रशंसा की है। डामरों की स्त्रियाँ विधवा होने पर आचरण पर विशेष ध्यान नहीं देतो थीं। डामर या राजवंशीय कुटुम्बों के साथ विवाह सम्बन्ध होता था। क्षेमेन्द्र ने समय मांत्रिक तथा लोक प्रकाश में डामरों का वर्णन किया है। डामर समर सिंह के प्रतापपुर अर्थात् वर्तमान तापर के मकान का वर्णन किया गया है। डामर कृषिजीवी कुलीन वर्ग था।

वस्त्रं स्त्रियः कुथा भोज्यमलंकारा हया गृहाः ।
आसाद्यन्ते यदा जातु ग्रामीणैर्नगरोचिताः ॥३४९॥

३४९. 'ग्रामीणों को जब नगरोचित वस्त्र, स्त्रियाँ, कुथ (कालीन), भोज्य, अलंकार, हय, गृह, प्राप्त होंगे ।[1]

मदाद् दुर्गाण्युपेक्ष्यन्ते संरक्ष्याणि यदा नृपैः ।
यदा चानन्तरज्ञत्वं तेषां भृत्येषु दृश्यते ॥३५०॥

३५०. 'जब मदसे नृप संरक्षणीय दुर्गों[1] की उपेक्षा करें और जब उनके भृत्यों में अनन्तर-ज्ञता (विचारहीनता) हो जाय ।

प्रदेशादेकतो रूढा यदा वृत्तिश्च शस्त्रिणाम् ।
अन्योन्योद्वाहसंबन्धैः कायस्थाः संहता यदि ॥३५१॥

३५१. 'जब शस्त्रधारियों (सैनिकों) की वृत्ति एक प्रदेश से सम्पादित हो; यदि कायस्थ परस्पर विवाह सम्बन्धों से संहत हो जाँय ।

डामर शब्द का कल्हण के एक शताब्दी पूर्व में क्षेमेन्द्र ने प्रयोग किया है । उसके पश्चात् सभी पुरावृत्त लेखकों ने इस शब्द का प्रयोग किया है । कश्मीर के ग्रामीण कुलीन वर्ग की तुलना राजपूत कुलीन वर्ग से सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि से नहीं की जा सकती । अन्तर्जातीय विवाह डामरों तथा राजवंशों में होता था । कोई भी डामर हो सकता था । यदि वह सफल कृषक रूप के कुलक की तरह हो जाता था । वह कालान्तर में शक्तिशाली सामन्त किंवा सरदार हो जाता था । जो राजा के लिये कंटक होता था (रा : ७:४९४, ८:७०९; २३३४, २९५३;) ललितादित्य ने इसी ओर लक्ष्य कर अपनी वसीयत नामा में, डामरों से सचेत रहने के लिये सावधान किया है । कल्हण ने ललितादित्य के मुख से अपने समय के डामरों को लक्ष्य कर उनके द्वारा उत्पन्न समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया है । कश्मीर की राजनीति में ग्यारहवीं शताब्दी से ही चौदहवीं शताब्दी के मध्य तक डामरों ने महत्त्वपूर्ण भाग—राजनैतिक एवं सामाजिक उथल पुथल में लिया है । अन्ततोगत्वा कश्मीर में मुसलिम शक्ति स्थापित होने में सहायक और कारण हुए हैं । द्रष्टव्य : परिशिष्ट 'डामर' ।

पादटिप्पणी :

३४९ (१) श्लोक संख्या ३४९–३५२ का अनुवाद सभी अनुवादकों ने 'चक्कलकम्' मानकर एक साथ किया है। परन्तु यह 'चक्कलकम्' है इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । यहाँ प्रत्येक श्लोक का अनुवाद अलग-अलग दिया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५० में 'उपेद्यन्ते' का पाठभेद 'उपेक्षन्ते' मिलता है ।

कर्मस्थानानि वीक्षन्ते क्ष्मापाः कायस्थवद्यदा ।
तदा निस्संशयं ज्ञेयः प्रजाभाग्यविपर्ययः ॥३५२॥

३५२. 'जब क्ष्मापति कायस्थों सदृश कर्म स्थानों को देखने लगें, तब निसन्देह ही प्रजा के भाग्यका विपर्यय[1] जानना चाहिए ।

चेष्टानुसारेणोन्नीय गूढमाशयसंविदम् ।
मयोक्तं हृदये कार्यमन्तरं राजबीजिनाम् ॥३५३॥

३५३. 'राजबीजियों (वंशियों) के चेष्टानुसार, गुप्त आशयको जानकर, मेरे कथनानुसार, अन्तर्हृदय में रखो ।

प्रत्यासत्तिं मदकरटिनो दानगन्धेन वायु-
गर्जोद्भूतिं प्रकटितरुचिश्चञ्चलैवाम्बुदस्य ।
चेष्टा स्पष्टं वदति मतिमन्नैपुणोन्नेयतत्त्वा
जन्तोर्जन्मान्तरपरिचितां निश्चलां चित्तवृत्तिम् ॥३५४॥

३५४. 'वायु, मदगन्ध द्वारा मत्त हाथी के सांनिध्य को; चमक के साथ विद्युत् मेघ गर्जन को; सूचित करता है; इसी प्रकार प्राणी की जन्मान्तर परिचित निश्चल चित्त वृत्ति को चेष्टाएँ सुस्पष्ट रूप से कहती हैं, मतिमान् लोग इस तत्त्व का निपुणता द्वारा अवधारण करते हैं ।

पुत्रः कुवलयादित्यो वज्रादित्यश्च मे समौ ।
भिन्नशीला तयोर्भ्रात्रोर्धीर्द्वैमातुरयोः पुनः ॥३५५॥

३५५. 'मेरे पुत्र कुवलयादित्य एवं वज्रादित्य तुल्य हैं। किन्तु वे वैमात्रेय होने के कारण उन दोनों भ्राताओं की बुद्धि पृथक् पृथक् है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५२ के अन्त में 'चक्कलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३५२ (१) भाग्यविपर्यय = कल्हण, जोनराज, श्रीवर एवं शुक—चारों राजतरंगिणीं के लेखकों ने देश पर विपत्ति का कारण प्रजा का भाग्य विपर्यय माना है । (जोन : ५९७ श्रीवर : १:३ १०५, १:७ २१५; २ : ४१; शुक १ : ११९; २ : ७४, ८८,११४)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५३ में 'गूढ' का 'रूढ' तथा 'माशय' का पाठभेद 'मादाय' और 'मादय' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५४ में 'श्चञ्चलै' का पाठभेद 'श्चञ्चले' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १३३ वाँ श्लोक है ।

ज्यायान् राज्येऽभिषेक्तव्यः स च स्याद्बलवान् यदा ।
तस्याऽज्ञातिक्रमः कार्यो भवद्भिर्नियमात्तदा ॥३५६॥

३५६. 'ज्येष्ठ पुत्र'[1] राज्य पर अभिषिक्त करना चाहिए, किन्तु यदि वह बलवान (उच्छृंखल) हो, तो आप लोगों को नियम से उसकी आज्ञा का अतिक्रमण[2] करना चाहिए ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५६ में 'षेक्तव्यः' का पाठभेद 'षिक्तव्यः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३५६ (१) ज्येष्ठ पुत्र : भारतीय स्मृतियों, एवं परम्परा तथा विधि के अनुसार ज्येष्ठ पुत्र राजसिंहासन पर राजा की मृत्यु के पश्चात् बैठता है । ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र के उत्तराधिकार के पक्ष पर वशिष्ठ ने राम से कहा था—'दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र तुम हो । श्रीराम से तुम्हारी प्रसिद्धि है । नरेश्वर ! अयोध्या का राज्य तुम्हारा है । इसे ग्रहण कर राज्य का प्रतिपालन करो । इक्ष्वाकु वंश में ज्येष्ठ पुत्र ही राजा होता आया है । ज्येष्ठ की उपस्थिति में कनिष्ठ पुत्र राजा नहीं होता । ज्येष्ठ पुत्र का ही राजपद पर अभिषेक होता है । महायशस्वी राम ! रघुवंशियों का जो अपना सनातन कुलधर्म है उसे तुम आज नष्ट मत करो ।' युधिष्ठिर एवं दुर्योधन दोनों ही अपने भ्राताओं के ज्येष्ठ होने के कारण राज्य के अधिकारी हुए थे । अपने ज्येष्ठ पुत्र की उपेक्षा कर राजा प्रतीप ने जब अपने कनिष्ठ पुत्र शांतनु को एवं ययाति ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु को राज्य दिया तो प्रजा ने राजप्रासाद के सम्मुख खड़े होकर प्रतिवाद किया था । राजा ने कारण उपस्थित किया था । शान्तनु के ज्येष्ठ भ्राता कोढी थे अतएव उन्हें उत्तराधिकार से वंचित रखा गया था । पुरु के ज्येष्ठ भ्राता इसलिये उपेक्षित हुए कि उन्होंने अपने पिता राजा ययाति को अपना यौवन देना अस्वीकार किया था । अकारण ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता था ।

(द्रष्टव्य आप० : २ : ६ : १४ : ६; मनु० : ९ । १०५-१०७, १२५, तैत्तिरीय संहिता १२ : २ : ७, याज्ञ १ : १५६, बौधायन, २ : २ : २-५, कौटिल्य : ३ : ६; गौतम : २८ : ५, अयो० ११० : ३५-३७)

आर्यों में चाहे वे ईसाई हों अथवा हिन्दू ज्येष्ठ पुत्र का अधिकार माना गया है । यूरोप के राजवंशों में ज्येष्ठ पुत्र किंवा ज्येष्ठ कन्या को सिंहासन पर बैठने का एक मात्र अधिकार है । उनके अभाव में उनसे छोटा सिंहासन का अधिकारी होता है ।

मुसलमानों में सभी पुत्रों का समान अधिकार माना गया है । उसके कारण भाइयों में राज्य की प्राप्ति के लिए सर्वदा संघर्ष होता रहा है । मुसलिम शासन में इस कारण प्रासादीय षड्यन्त्र एवं रक्तपात व्यापक रूप से मिलता है । भारत में मुसलमान आकर बस गये । यहाँ की परम्परा उन्हें अच्छी लगी । वे ज्येष्ठ पुत्र को बादशाह बनाने पर जोर देते रहे । इसका अनुकरण भी किया जाता रहा है । परन्तु अन्य भाई इसका विरोध करते थे । भाई भाई को, पुत्र पिता को मारता रहा है । उनमें सबसे अधिक रक्तपात उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर हुआ है ।

अवध के तालुक्केदारों में, चाहे वे मुसलिम हों अथवा हिन्दू, ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकार देने का नियम बन गया था । अभी भी उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रथा है कि जब कुटुम्ब में विभाजन अर्थात् अलगा गुजारी होती है तो ज्येष्ठ पुत्र को ज्येष्ठांस अर्थात जेठवासा मिलता है । वह अन्य भाइयों की अपेक्षा अपने पिता की सम्पत्ति में अधिक अंश पाता है । यह अंश स्थान भेद के कारण समरूप नहीं होता । यह प्रथा नवीन हिन्दू विधि के कारण लोप हो रही है ।

(२) अतिक्रमण : महाभारत स्पष्ट कहता है कि यदि राजा अपने कर्तव्य से च्युत हो जाय, प्रजा की सुव्यवस्था एवं सुरक्षा करने मे असमर्थ हो तो उसे पागल कुत्ते के समान मार डालना चाहिए । (पं० १३ : ९६ : ३५) राजा ललितादित्य मन्त्रि-

उत्सृजञ्जीवितं वाऽपि राज्यं वाऽपि स पार्थिवः ।
शोचनीयो न केनापि स्मरतेदं वचो मम ।।३५७।।

३५७. 'मेरी इन बातों का स्मरण रखना कि यदि वह पार्थिव प्राण अथवा राजत्याग[1] कर दे, तो उसके लिए कोई शोक न करे ।

कार्यः कनीयान्न नृपः प्रमादात्क्रियते यदि ।
नोल्लङ्घनीया तस्याज्ञा रक्ष्यश्च विषमोऽपि सः ।।३५८।।

३५८. 'कनिष्ठ पुत्रको नृप नहीं बनाना चाहिए, प्रमाद वश यदि बना भी दिया जाय, तो उसकी आज्ञा का उल्लंघन न किया जाय और विषम (विपरीत) होने पर भी वह रक्षणीय है ।

पौत्रेषु मे कनीयान् यो जयापीडोऽस्ति दारकः ।
पितामहसमो भूया इति वाच्यः स सर्वदा ।।३५९।।

३५९. 'मेरे पौत्रों में जो कनिष्ठ दारक (पुत्र) जयापीड है, उससे 'पितामह के समान बनो' इस प्रकार सर्वदा कहना चाहिए ।'

परिषद् को अधिकार देता है, किस परिस्थिति में राजाज्ञा अस्वीकार कर देनी चाहिए । किस परिस्थिति में राजाज्ञा का अतिक्रमण कर सकते हैं । इस सिद्धान्त का अभी तक अनुकरण किया जाता है । ब्रिटेन के राजा एडवर्ड अष्टम जब श्रीमती सिमसन से विवाह करना चाहते थे तो ब्रिटेन के मन्त्रि मण्डल ने विवाह की सहमति नहीं दी और एडवर्ड अष्टम को राज्य त्याग कर विवाह करना पड़ा ।

पादटिप्पणी :

३५७ (१) प्राण एवं राज्य त्याग : यदि मन्त्रि मण्डल के आज्ञा उल्लंघन अथवा विरोध करने पर राजा प्राण त्याग अर्थात् आत्महत्या कर ले, राज्य त्याग दे, तो उसके लिये शोक करना निरर्थक है । राज व्यवस्था एवं शासन का महत्त्व किसी राजा के जीवन से कहीं अधिक है । ललितादित्य अपने पुत्र के सुख की कामना भी राज्य के हित की दृष्टि से नहीं करता है ।

ललितादित्य देश भक्त था । कश्मीर की हित भावना से ओतप्रोत था । व्यवस्था एवं अनुशासन का कठोरता पूर्वक पालन करता था और उनकी अपेक्षा दूसरों से करता था । उसके उक्त पद से यह भाव प्रकट होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५८ में 'प्रमादात्' का पाठ-भेद 'प्रसादात्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३५८ (१) कनिष्ठ पुत्र : राजा ललितादित्य अनुभवी तथा धर्मभीरु राजा था । वह ज्येष्ठ पुत्र के राज्याधिकार सिद्धान्त को स्वीकार कर कनिष्ठ पुत्र को राजा बनाने का निषेध करता है । तथापि यदि कनिष्ठ पुत्र किसी परिस्थितिमें राजा बन जाय तो अनुशासन व्यवस्था एवं राज्य यन्त्र चलते रहने के लिये स्पष्ट आदेश होता है कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । राज्यसिंहान पर बैठे राजा की आज्ञा पालन करना कर्तव्य है । कनिष्ठ पुत्र को ज्येष्ठ पुत्र की जीवितावस्था में राजा बनाना नीति विरुद्ध माना जाता है ।

भर्तृर्गृहीतनैराश्याः साभिप्रायां प्रणम्य ताम् ।
आनर्चुः पश्चिमामाज्ञां ते बाष्पार्घकणत्यजः ।।३६०।।

३६०. अश्रुजल के अर्घदान पूर्वक भर्ता की साभिप्राय, उस अन्तिम आज्ञा को पूज्य भाव से ग्रहण किया ।

उवाच चङ्कुणो जातु संनिपत्याखिलाः प्रजाः ।
बाष्पैः पतिवियोगाग्नितप्तां सिञ्चन्वसुंधरान् ।।३६१।।

३६१. कदाचित् निखिल प्रजा[1] को एकत्रित कर, चंकुण अश्रुओं द्वारा स्वामी के वियोगानल से संतप्त वसुन्धरा को सिंचित करते हुए कहा—

राज्ये कुवलयापीडो राजपुत्रोऽभिषिच्यताम् ।
सुगृहीताभिधो राजा गतः स सुकृती दिवम् ।।३६२।।

३६२. 'राजपुत्र कुवलयापीड को राज्य पर अभिषिक्त करो क्योंकि वे—पवित्रनामा सुकृती राजा दिवंगत हो गये ।

ससृजे यस्य कृतिनो दैवतैः कोशवृद्धये ।
रससिद्धिरकस्मान्मे यस्मात्साऽस्तमुपागता ।।३६३।।

३६३. 'कृतो जिस राजा के कोष वृद्धि हेतु देवताओंने मुझे रस सिद्धि प्रदान किया था, वह अकस्मात् अस्त हो गयो ।

दूरस्थोऽपि हि भूभृत्स भाग्यशक्त्या कयाचन ।
कार्याणि घटयन्नासीद्दुर्घटान्यपि हेलया ।।३६४।।

३६४. 'दूरस्थ भी वह भूभृत् इसी प्रबल भाग्य शक्ति के कारण हेला (खिलवाड़) में भी दुर्घट कार्यों को भी कर देता था' ।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ३६० में 'साभिप्रायां' का पाठ भेद 'साभिप्रायाः' मिलता है ।

पादटिप्पणीः

३६१. (१) प्रजा : कश्मीर में सभा, पुरोहित परिषद् तथा मन्त्रि परिषद् तीन पुरातन संस्थाएँ थीं । राज्याभिषेक काल में सभा एकत्रित होती थी । चंकुण ने उसी प्राचीन परम्परा का निर्वाह करते हुए कश्मीर की जन किंवा प्रजा सभा समवेत कर राज्य-भिषेक का प्रश्न सभा के सम्मुख उपस्थित किया था । यह प्राचीन प्रथा राज निर्वाचन का एक संस्कार मात्र कश्मीर के राजनीतिक जीवन में रह गया था ।

अम्भोजानि घनाघनव्यवहितोऽप्युल्लाघयत्यंशुमान्
दूरस्थोऽपि पयोधरोऽतिशिशिरस्पर्शं करोत्यातपम् ।
शक्तिः काऽप्यपरिक्षताऽस्ति महतां स्वैरं दविष्ठान्यहो
यन्माहात्म्यवशेन यान्ति घटनां कार्याणि निर्यन्त्रणाम् ॥३६५॥

३६५. मेघाच्छन्न भी सूर्य कमलों को विकसित करते हैं, दूरस्थ भी पयोधर आतप को स्पर्श योग्य सुशीतल कर देते है; आश्चर्य है। इसी प्रकार सज्जनों की कोई अपूर्व अप्रतिहत शक्ति है, जिसके माहात्म्य वश दूरस्थ भी कार्य विना विघ्न के सम्पन्न हो जाते हैं।

सैकादशदिनान् सप्त मासान् षट्त्रिंशतं समाः ।
एवमाह्लाद्य स महीं प्रजाचन्द्रोऽस्तमाययौ ॥३६६॥

३६६. प्रजा चन्द्र वह (ललितादित्य) इस प्रकार छत्तीस वर्ष सात मास एकादश दिन मही को आह्लादित कर अस्त हुआ।[1]

तुषारवर्षैर्बहलैस्तमकाण्डनिपातिभिः ।
आर्याणकाभिधे देशे विपन्नं केचिदूचिरे ॥३६७॥

३६७. कुछ लोग कहते है—'आर्याणक[1] देश में एकाएक अत्यधिक तुषार वृष्टि के कारण (राजा) विपन्न हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६५ में 'रिक्षताऽस्ति' का 'रीक्षितास्ति', 'रीक्षतास्ति', 'रिक्षितास्ति' तथा 'यन्त्रणाम्' का पाठभेद 'यन्त्रणम्' और 'यन्त्राणाम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह श्लोक सूक्ति संग्रह का १२४वाँ श्लोक है।

पादटिप्पणी :

३६६ (१) श्री स्तीन का मत है कि ललितादित्य ने सन् ७०० से ७३६ ई० तक शासन किया था। चीन के तंग वंश के इतिवृत्त से प्रकट होता है कि कश्मीर के राजा मु-तो-पो के यहाँ चीन से राजदूत सन् ७१३-७५५ ई० में आया था। यह दूत भारत किस सन् में आया था चीन में कहीं लिखा अभी तक नहीं मिला है। केवल सम्राट् हुए-नत्संग (सन् ७१३-७५६ ई०) का नाम दिया है। उसके समय दूत भेजा गया था। मु-तो-पी-संज्ञा मुक्तापीड अर्थात् ललितादित्य की ही है। तिब्बत के विरुद्ध चीन से २००,००० सेना प्राप्त करने की प्रार्थना की गयी थी। वह अपनी सेना महापद्मसर (मो-लो-पो-लो-नो-तुंग) अर्थात् उलर लेक पर रखे ताकि चीन और कश्मीर दोनों मिलकर तिब्बत का सामना करने में समर्थ हो सकें।

पादटिप्पणी :

३६७ (१) मूल्यांकन : ललितादित्य भारतीय स्वतन्त्रता की विदेशियों अर्थात् मुसलमानों से रक्षा करने में विशेष योग दान दिया था। हर्ष तथा ललितादित्य के कारण भारत में अरबों का बढ़ाव रुक गया था। मुहम्मद बिन कासिम कश्मीर की सीमा तक आकर लौट गया था। इस बाढ़ के रुकने से अरबों किंवा मुसलमानों की फौज भविष्य की दो शताब्दियों तक भारत में आने का साहस न कर सकी।

हर्ष तथा ललितादित्य दोनों होने चीन से अरबों के विरुद्ध सहायता माँगी थी। वे सिन्ध तथा सुलतान

को केन्द्र बनाकर आगे बढ़ना चाहते थे। चीन ने हर्ष एवं ललितादित्य की सहायता नहीं की। अतएव ललितादित्य एकाकी अरबों की बाढ़ रोकने में समर्थ ही न हो सका बल्कि पश्चिमोत्तर सीमान्त देशों पर जहाँ अरब विजेता फैल चुके थे, विजय यात्रा किया था।

ललितादित्य ने चीन में राजदूत भेजा था। गिलगिट प्रदेश से वह तिब्बत का प्रभाव समाप्त करना चाहता था। उसने तिब्बत के पाँचों मार्गों पर अधिकार कर लिया था। सम्भव है। वह कश्मीर की पूर्वोत्तर सीमा सुदृढ़ कर अरबों से निपटने के लिए चीन से सन्धि करना उसे अभीष्ट था। अपनी स्थिति इस लिए मजबूत करना चाहता था कि तिब्बत की शक्ति तथा आक्रमण का खतरा उसे अकेले न उठाना पड़े। चीन से उसने सम्पर्क स्थापित किया था।

ललितादित्य, उदार, सहिष्णु साधु तथा धार्मिक राजा था। साथ ही वह महान् विजेता, दूर-दर्शी, चतुर राजनीतिज्ञ था। वह आराम करना, राज-सुख में निष्क्रिय पड़े रहना नापसन्द करता था। वह कर्मशील तथा प्रगतिशील शासक था। कश्मीर के राजाओं के लिए आदर्श पथप्रदर्शक था। उसकी दी हुई नींव के कारण भविष्य के ६०० वर्षों तक अरब, पठान, तथा तातारियों के खतरे से कश्मीर बचा रहा जबकि समस्त भारतवर्ष उसमें भुन उठा।

वह भारतीय इतिहास का महान् सेनानी, सुयोग्य सेनापति था। उसने अपने जीवन में, अपनी महान् विजय यात्राओं में, पराजय की छाया तक समीप न आने दिया। पराजय उससे दूर भागती थी। विजय उसकी सहचरी थी। वह उतना ही चतुर शासक था जितना साहसी तथा चतुर रणकुशल प्रमाणित हुआ है। अपने समय का वह अत्यन्त आकर्षक व्यक्ति भारत में रहा है।

कश्मीर का इतिहास न ललितादित्य से पूर्व और न भविष्य में वह गौरव प्राप्त कर सका जितना उस काल में राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पाया था। वह आदर्शवादी उच्चकोटि का नीति निपुण शासक प्रमाणित हुआ है। उसने कश्मीर को तत्कालीन अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में बहुत ऊपर उठा दिया था।

चीन के इतिवृत्त में मुक्तापीड ललितादित्य को मु-तो-पी कहा गया है। बालतिस्तान में उसने अभि-यान किया था। तंग इतिवृत्त में कहा गया है कि मुक्तापीड के दूत ने तिब्बतियों के विरुद्ध चीन सम्राट् से मैत्री स्थापित की थी। सन् ६०० से ७५० ई० तक ६ दूत कश्मीर से चीन में भेजे गये थे।

ललितादित्य ने अरबों को तीन बार हराया था। अरबों का यह कहना था कि वे कश्मीर जीते थे असत्य है। सिन्ध के राजा दाहिर ने सिन्ध विजेता मुहम्मद बिन कासिम को जो पत्र लिखा था उससे स्थिति और स्पष्ट हो जाती है। इस पत्र का उल्लेख चचनामा में है।

—'यदि मैं आपके विरुद्ध कश्मीर के राजा को भेजता जिसके राजद्वार पर भारत के राजा मस्तक नवाते हैं—जिसने भारत विजय किया है, मकरान तथा तूरान जीता है। जिसके विरुद्ध कोई मानव खड़ा नहीं हो सकता।'

चचनामा के उक्त पत्र से स्पष्ट है कि कल्हण वर्णित ललितादित्य की विजय यात्रा का वर्णन सत्य है। ललितादित्य अपने समय का सर्वश्रेष्ठ भारतीय राजा था। उससे यह भी स्पष्ट है कि उसने मकरान तथा तूरान जीता था। अरबों का दावा कश्मीर जीतने का सर्वथा मिथ्या है। ललितादित्य जो स्वयं विदेशों को जीत रहा था। कैसे पराजित हो जाता ?

(२) आर्याणक : ईरान से अर्थ है। ईरान के राजा दारा (डारियस्) के अभिलेखों से ईरान की संज्ञा अर्यण तथा उसकी भाषा की अर्यन से दी गयी है।

राजप्रष्ठः प्रतिष्ठां स रक्षितुं चिरसंचिताम् ।
संकटे क्वापि दहनं प्राविक्षदिति केचन ॥३६८॥

३६८. कुछ लोग कहते हैं—'राजा श्रेष्ठ, वह चिर संचित प्रतिष्ठा की रक्षा हेतु संकट में कहीं अग्नि प्रवेश किया।'[१]

केषांचित्तु मते भूभृद्वीयस्युत्तरापथे ।
सोऽमर्त्यसुलभां भूमिं प्रविष्टः कटकान्वितः ॥३६९॥

३६९. कुछ लोगों के मत में—'सेना सहित वह राजा दूरस्थ उत्तरापथ[१] में देव सुलभ भूमि में प्रवेश किया।'

अत्यद्भुतानि कृत्यानि श्रुतान्यस्य यथा किल ।
विपत्तिरपि भूभर्तुस्तथैवात्यद्भुता श्रुता ॥३७०

३७०. जिस प्रकार इस राजा के अद्‌भुत कृत्य सुने जाते हैं, उसी प्रकार से उसकी अद्‌भुत विपत्ति भी सुनी जाती है।

यातोऽस्तं द्युमणिः पयोधिसलिलं कैश्चित्प्रविष्टोऽपरैः
संप्राप्तो दहनं गतः किल परैर्लोकान्तरं कीर्त्यते ।
जायन्ते महतामहो निरुपमप्रस्थानहेवाकिनां
निस्सामान्यमहत्त्वयोगपिशुना वार्ता विपत्तावपि ॥३७१॥

३७१. अस्त हुए सूर्य को कुछ 'पयोधि सलिल में प्रविष्ट;' अन्य लोग—'दहन को सम्प्राप्त;' एवं दूसरे—'लोकान्तरं गतः' कहते हैं। आश्चर्य है! अनुपम प्रस्थान के उत्कट अभिलाषी महान् जनों के विपत्ति में भी असामान्य महत्त्व सूचक वार्ताएँ प्रचलित हो जाती हैं।

सर्व श्री ट्रॉयर तथा लस्सेन का मत है कि आर्याणक ही यूनानी भौगोलिकों का अरियन है। यह भूभाग पूर्वी ईरान का है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६८ में 'प्रष्ठः' का पाठभेद 'प्रष्ठां' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३६८ (१) कल्हणने तरंग ७: १४२८, १४२९ में मुक्तापीड ललितादित्य की मृत्यु का पुनः उल्लेख किया है।

पादटिप्पणी :

३६९ (१) उत्तरापथः द्रष्टव्य टिप्पणी : १:४: ३३७।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३७१ में 'न्तरं' का 'न्तरे' तथा 'परै' का पाठभेद 'परो' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३७१ (१) यह श्लोक संस्कृत साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका उद्धरण प्रायः मिलता

ततः कुवलयापीडो भेजे कुवलयेशताम् ।
जातः कमलदेव्या यः श्रीमाञ्शक्र इवादितेः ॥३७२॥

कुवलयापीड :

३७२. तदनन्तर अदिति से शक्र के समान कमला देवी से उत्पन्न, श्रीमान् कुवलयापीड पृथ्वीमण्डल का शासक हुआ।[1]

त्यागेन चक्रे विशदां योऽनुरक्तां नृपश्रियम् ।
महोरगस्त्वचमिव स्वभावमलिनामपि ॥३७३॥

३७३. महोरग के त्वचा (केचुल) सदृश जिसने त्याग द्वारा स्वभाव से मलिन भी अनुरक्त[1] राज लक्ष्मी को विशद (निर्मल) कर दिया।

एवं किया जाता है। शब्दों की परिभाषा के लिये कोषों में इस श्लोक को उद्धृत किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३७२ में 'कुवल' का पाठभेद 'भूवल' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३७१ (१) श्री दत्त राजा कुवलयापीड का राज्याभिषेक काल कलि : ३८३४=शक ६५५=लौ० ३८०९ सन् ७३३ ई०; श्री स्तीन लौ० ३८१३ वर्ष २ मास ६ दिन, ट्रायर सन् ७३२ ई०, ७ मास श्री एस० जी० पण्डित सन् ७३२ ई०, श्री कनिंघम ७२९ वर्ष ६ मास, श्री विलसन ७५० वर्ष ८ मास तथा पीर हसन विक्रमी संवत् ७९१ जिसका सन् ७३४ई० होता है। राज्य काल सर्व श्री दत्त स्तीन, पण्डित तथा पीरहसन १ वर्ष १५ दिन देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल १ वर्ष १५ दिन दिया गया है।

आइने अकबरी में नाम कुल्यनुन्द दिया गया है। पीरहसन लिखता है—राजा कुवलयापीड विक्रमी ७९१ में बाप की मसनद खिलाफत पर बैठा। दूसरे भाइयों ने उसकी इताअत में मुआफ़िकत न की। और उमरा और अरकान दौलत खजाने और दफीने खयानत के साथ ले गये। राजा ने उसके इन्तजाम में खूबी के साथ तजसुस और अहतमाम किया। और मेतरशर्मा जो कि उसके नामी वजीरों में एक था। उसे नाफरमानी के जुर्म में गिरफ्तार करके उसके क़तल पर तैय्यार हो गया। लेकिन फिर अपनी जगह पर सोचा कि बज़ीर के मददगारों के कतल किए बगैर हुकूमत का इन्तजाम मजबूत न होगा और एक शख्स के गुनाह के एवज़ में हजारों बेगुनाहों को मारना एक खुदा की वारगान में बड़ा गुनाह है। चूँकि दुनिया की मुस्तआर हक़ूमत का कोई एतबार नहीं है लेहाजा अपने पैदा करने वाले की मरजी में वकीया अयाम को रयाजत में गुज़ारुं और मुरदार दुनिया कुत्तों के लिए छोड़ दूँ। दूसरे दिन वाहे अलाआसवाह फक़ीरी का लिवास पहनकर कोह उस्तरूं में खलूत गजी हो गया और अवनाए जमाना से दहसत की। वज़ीर इस खबर के सुनने से अपने अखलाक और अतबार से बेजार हो गया और प्रयाग के मुकाम यानी शादीपुर के पास अपने आपको व मय अपने रानी गर्क दरया कर लिया। राजा की कुल हुकूमत एक साल और पन्दह दिन थी। (८५)

पादटिप्पणी :

२७३ (१) अनुरक्तः अनुरक्त शब्द यहा श्लिष्ट

भ्रात्रा तुल्यप्रभावेन कंचित्कालं हृतप्रभः ।
स हुताशोष्मणाऽऽक्रान्तः प्रदीप इव नारुचत् ॥३७४॥

३७४. तुल्य प्रभावशाली भ्राता के कारण हृतप्रभ, वह अग्नि की उष्मा से आक्रान्त प्रदीप, तुल्य, कान्तिमान् नहीं हो सका ।

भृङ्गैरिवानुगैर्दानलोभात् पर्यायवृत्तिभिः ।
श्रीर्दुःस्थाऽभूत् तयोरन्तर्मत्तेभकटयोरिव ॥३७५॥

३७५. जिस प्रकार मदजल (दान लोभ) से क्रमशः वृत्ति ग्रहण करने वाले भृंगों द्वारा मत्तगज का (कट) कपोलद्वय श्री हीन हो जाता है उसी प्रकार दान[1] लोभ वश पर्याय से वृत्ति ग्रहण करने वाले अनुचरों द्वारा उन दोनों की अन्ततः श्री हत हो गयी।

अथोभयधनादायिभृत्यचक्रिकया समम् ।
राजा कुवलयापीडो बभञ्जानुजमञ्जसा ॥३७६॥

३७६. राजा कुवलयापीड ने शीघ्र ही दोनों ओर से धनग्राही (प्राप्त करने वाले) भृत्यों की धूर्तता के साथ अनुज को नष्ट कर दिया ।

राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा ततः प्राप्तबलो नृपः ।
दिग्जयायोर्जितक्रान्तिः सोऽभूत्संभृतसाधनः ॥३७७॥

३७७. तदनन्तर राज्य को निष्कंटक करके, बल प्राप्त वह नृप, साधन सम्पन्न होकर, दिग्विजय हेतु सैन्य संग्रह किया ।

एकस्तस्मिन् क्षणे मन्त्री तस्याज्ञामुदलङ्घयत् ।
स्मरन् वा तत्पितुर्वाचं भजन् वा दर्पविक्रियाम् ॥३७८

३७८. उस समय एक मन्त्री उसके पिता की बात को स्मरण कर, अथवा दर्प विक्रिया वश उसकी आज्ञा का उल्लंघन किया ।

है । सर्प तथा सर्प की त्वचा उज्ज्वल चाँदी के समान चमकती है । परन्तु सर्प विषधर है राजा का ऐश्वर्य एवं लक्ष्मी भी अपवित्र है । उसके प्राप्त करने का साधन सर्वदा ठीक नहीं होता । प्रजा के कर से धन मिलता है । स्वयं परिश्रम द्वारा अर्जित नहीं है । राजऐश्वर्य सर्प के केंचुल की तरह चमकता है किन्तु है विष ।

पादटिप्पणी :

३७५ (१) दान : दान शब्द यहाँ श्लिष्ट है । दान का अर्थ दान तथा हाथी के मस्तक से निकलने वाला मदस्राव दोनों होता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३७६ में 'चक्रि' का पाठभेद 'चविक्र' मिलता है ।

प्राप्तायामथ यामिन्यां तल्पे कोपाकुलो नृपः ।
तमाज्ञातिक्रमं ध्यायन्न निद्रां क्षणमप्यगात् ॥३७९॥

३७९. रात्रि में कोपाकुल नृपति तल्प पर, उस आज्ञातिक्रमण का ध्यान करते हुए, क्षण भर भी निद्रा नहीं प्राप्त किया।

एवं कृतागसं हन्तुं सस्पृहस्य तदाश्रयात् ।
बहवः प्रत्यभासन्त वध्यास्तस्योद्यतक्रुधः ॥३८०॥

३८०. इस प्रकार अपराधी को मारने के लिए सस्पृह एवं क्रोधित (नृपति) को उस मंत्री के आश्रय से बहुत से लोग वध्य प्रतीत हुए।

विचारशैलमथितात्तस्य चित्तमहोदधेः ।
प्रकोपकालकूटस्य पश्चाच्छमसुधोदगात् ॥३८१॥

३८१. विचार शैल[1] से मथित. उसके चित्त महोदधि से प्रकोप कालकूट के पश्चात् शान्ति सुधा प्रादुर्भूत हुआ।[1]

दध्यौ सोऽथ गतक्रोधः प्रवृद्धः प्राणिसंक्षयः ।
एतावान् कस्य नु कृते कर्तव्यः प्रत्यभान्मम ॥३८२॥

३८२. क्रोधरहित होने पर उसने विचार किया—'मुझे किसके लिए इतने अधिक प्राणियों का क्षय[1] कर्तव्य प्रतीत हुआ ?'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३७९ में 'मथ' का पाठभेद 'मपि' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८१ में 'विचार' का 'विराग' तथा 'मथितात्' का पाठभेद 'मथिता' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३८१ (१) विचार शैल : यहाँ कल्हण अमृत मन्थन की गाथा ध्यान में रखते हुए उपमा देता है मन्दराचल मथानी बना था। यहाँ मन्दर शैल की उपमा विचार शैल से कल्हण ने दी है।

पादटिप्पणी :

३८२ (१) प्राणि क्षय : राजा को उसी प्रकार का विषाद उत्पन्न हुआ जिस प्रकार अर्जुन को रण भूमि में 'कुल-क्षय' का विचार कर विषाद हुआ था। गीता की भाषा यहाँ पर कल्हण ने दुहरायी है। कल्हण अर्जुन से राजा को ऊपर उठा देता है। अर्जुन को कुल क्षय (गीता १-३८—४०) का भय हुआ था। उससे विषाद एवं वैराग्य हुआ था। यहाँ पर राजा प्राणी संक्षय का विचार कर विकल होता है। कुल के प्रति ममता स्वाभाविक है परन्तु प्राणी मात्रके लिए ममता होना विशाल हृदय, उदारता एवं महानता का परिचायक है। (गीता १:३५)

अकार्याण्यपि पर्याप्य कृत्वाऽपि वृजिनार्जनम् ।
विधीयते हितं यस्य स देहः कस्य सुस्थिरः ॥३८३॥

३८३. जिसके लिये अकरणीय भी करके, प्रचुर पाप अर्जित किया जाता है, वह देह[1] किसका स्थिर रहता है।

कृतघ्नस्यास्य कायस्य हेतोरगलितस्मृतेः ।
हन्तव्याः कस्य पन्थानः प्रतिभान्त्यनपायिनः ॥३८४॥

३८४. 'किस अवगलित स्मृति वाले व्यक्ति को इस कृतघ्न शरीर हेतु अविनश्वर (धर्म) पथ नष्ट करने योग्य प्रतीत होते हैं ?

विदन्ति जन्तवो हन्त पच्यमानस्य नात्मनः ।
अवस्थां कालसूदेन कृतां तां तां क्षणे क्षणे ॥३८५॥

३८५. 'हाय ! कालरूप पाचक प्रतिक्षण प्राणियों के शरीर में अवस्था परिवर्तन करता रहता है फिर भी उनकी समझ में वह बात नहीं आती।

ह्यः पश्यद्भिरकारणस्मितसितं पाथोजकोशाकृति
श्मश्रूद्भेदकठोरमद्य रभसादुत्तप्तताम्रप्रभम् ।
प्रातर्जीर्णवलक्षकेशविकृतं वृद्धाजशीर्षोपमं
वक्त्रं नः परिहस्यते ध्रुवमिदं भूतैश्चिरस्थास्नुभिः ॥३८६॥

३८६. शैशव कमल कोश सदृश मुखमण्डल अनायास हास्य ज्योति से उद्भासित होता है; यौवन में स्मश्रु के उद्भेद से कठिन होकर सहसा उत्तप्त ताम्राभ प्रभा धारण करता है, तत्पश्चात् काल प्रभाव के कारण शुभ्र स्मश्रु एवं दाढ़ी वृद्ध बकरे के मस्तकवत् प्रतीत होता है; चिरस्थायी भूतगण (दीर्घकालीन विद्वान्) यह अवस्था देखकर निश्चय परिहास कहते हैं।

पादटिप्पणी :

यह श्लोक सूक्ति संग्रह का १२७ वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८५ में 'पच्य' का पाठभेद 'पश्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह श्लोक सूक्ति संग्रह का १२८ वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८६ में 'श्मश्रूद्भेद' का 'श्मश्रूद्बोध' तथा 'स्थास्नुभिः' का पाठभेद 'स्थायुभिः' तथा स्थायिभिः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह श्लोक सूक्ति संग्रह का १२९ वाँ श्लोक है।

इत्याद्यनित्यताचिन्तादत्तशान्तिसुखादरः ।
राज्यं संत्यज्य स वनं प्लक्षप्रस्रवणं ययौ ॥३८७॥

३८७. इस प्रकार अनित्यता की चिन्ता के कारण, शान्ति सुख में आदर बुद्धि होकर, वह राज्यत्याग करके प्लक्ष प्रस्रवण वन[1] चला गया।

गच्छ भद्र वनायैव तपस्याधीयतां मनः।
सापायाः क्षणभङ्गिन्य एवंप्राया विभूतयः ॥३८८॥

३८८. "हे भद्र ! वन चल, तपस्या में मन लगा, इस प्रकार की विभूतियाँ विनश्वर एवं क्षण भंगुर हैं।"

तेन संत्यजता राज्यं लिखितेन निजासने।
वैराग्यवासनोत्सेकः श्लोकेनाऽनेन सूचितः ॥३८९॥

३८९. राज त्याग काल में, निज आसन पर लिखित, उसके इस श्लोक से वैराग्य का उद्रेक प्रकट होता है।

अभग्नशमसंवेगलब्धसिद्धिर्नराधिपः ।
श्रीपर्वतादावद्यापि भव्यानामेति दृक्पथम् ॥३९०॥

३९०. अविच्छिन्न शम संवेग द्वारा सिद्धि प्राप्त नराधिप आज भी श्रीपर्वत[1] आदि स्थानों पर भद्र जनों के दृष्टि पथ में आता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८७ में 'सुखादरः' का 'मुखादरः' पाठ द मिलता है।

पादटिप्पणी :

३८७ (१) प्लक्ष प्रस्रवण : एक पाण्डु लिपि के पार्श्व टिप्पणी में प्लक्ष प्रस्रवण के लिए नैमिषारण्य लिखा हुआ है। एक मत है कि यह 'नैमिषारण्य' था किन्तु महाभारत में उल्लेख आता है कि प्लक्षजाता नाम सरस्वती नदी का है। प्लक्ष प्रस्रवण सरस्वती नदी का उद्गम स्थान है। प्लक्ष प्रस्रवण वन भी इसी के समीप होना चाहिए। प्लक्ष प्रस्रवण एक तीर्थ है। (शल्य ५४ :११, कूर्म: २:३७:२९, ब्रह्माण्ड: ३:१२:६९: वायु: ७७:६७। श्रीस्तीन का मत एक पाण्डु लिपि के पार्श्व टिप्पणी पर प्लक्ष प्रस्रवण के लिए नैमिषारण्य लिखे रहने पर आधारित है !

पादटिप्पणी :

यह श्लोक सूक्ति संग्रह का १३० वाँ श्लोक है।

पादटिप्पणी :

३९० (१) श्रीपर्वत: श्रीशैल भी श्रीपर्वत का अपर नाम है। विष्णु पुराण २:१४१ तथा ५ : ११८ तथा रा०:३:२६७ द्रष्टव्य है। सम्भव है कश्मीर में किसी पर्वत का नाम हो परन्तु प्रसिद्ध श्रीपर्वत आन्ध्र प्रदेश के गन्तूर जिला में है। नागार्जुन वहाँ निवास करता था। यह स्थान बौद्धों का पवित्र स्थान था। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि राजा भिक्षु हो गया था और श्रीपर्वत तथा उसके समीप भी निवास करता था।

तथा याते प्रभोः पुत्रे मित्रशर्मा शुचाऽन्वितः ।
वितस्तासिन्धुसंभेदे सभार्यो जीवितं जहौ ॥३९१॥

३९१. इस प्रकार प्रभु पुत्र के चले जाने पर शोकान्वित मित्रशर्मा[1] सभार्या वितस्ता सिन्धु संगम[2] में प्राण त्याग दिया ।

राज्यं समां समासार्धां कृत्वा स वसुधाधिपः ।
निःश्रेयसाप्तिनिश्श्रेणी सुधीः सिद्धिं समासदत् ॥३९२॥

३९२. सुधी वसुधाधिप ने डेढ़ वर्ष आधमास राज्यकर, निश्रेयस की प्राप्ति की ।

वज्रादित्यो बप्पियको ललितादित्य इत्यपि ।
ख्यातोऽथ भूभृदभवद्यन्माता चक्रमर्दिका ॥३९३॥

३९३. अनन्तर वज्रादित्य राजा हुआ जो कि बप्पियक एवं ललितादित्य के नाम से ख्यात था और जिसकी माता चक्रमर्दिका थी ।[1]

पादटिप्पणी :

३९१ (१) मित्रशर्मा राजा के साथ प्राण विसर्जन की प्रथा स्वामिभक्त सेवकों द्वारा जापान में भी पायी जाती है । जापान सम्राट् की मृत्यु पर उसके अत्यन्त स्नेही मित्र किंवा सेनापति सम्राट् का साथ देने के हेतु स्वयं हारा कारी कर लेते थे ।

चीन में राजा के साथ उसके सेवक, रानियाँ, तथा दासियाँ समाधि स्वतः ले लेती थीं । तंग सम्राट् की तुरकिश समाधि पर, खाना ने स्वतः अपना प्राण विसर्जन कर दिया था । शक, तातार तथा शकीय तातारों में भी यह प्रथा प्रचलित थी । केल्टिक ब्रिटेन तथा वैबोलोनिया में स्वामी के साथ दास एवं नोकर गाड़ दिये जाते थे परन्तु भारत तथा कश्मीर में इस प्रकार की प्रथा नहीं थी । राजाओं के साथ सती होने अथवा उसके सेवकों का स्वतः उनके साथ प्राण विसर्जन कर देने के उदाहरण मिलते हैं । इसे करने के लिए कोई वाध्य नहीं था अपनी इच्छा पर निर्भर था ।

(२) संगम : कश्मीर में वितस्ता सिन्धु संगम का वही माहात्म्य है जो प्रयाग संगम का है । यह संगम शादीपुर के समीप है । नीलमत पुराण में संगम शब्द ही दिया गया है । वितस्ता माहात्म्य विजयेश्वर माहात्म्य आदि में इसका उल्लेख मिलता है । यह स्थान शादीपुर किंवा शहावुद्दीनपुर कहा जाता है । नीलमत पुराण (२९९) में प्रयाग शब्द का उल्लेख तीर्थ रूप में किया गया है । वितस्ता माहात्म्य (२१:७४) विजयेश्वर माहात्म्य (२:१७०) । प्राचीन समय में वितस्ता का प्रवाह किस प्रकार था इसका उल्लेख कल्हण ने (रा:५:९७-९८) किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९३ ने 'ललितादित्य' का पाठभेद 'ललितापीड' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३९३ (१) श्रीदत्त राजा वज्रादित्य अपर नाम वाप्पियक ललितादित्य द्वितीय का राज्याभिषेक काल कलि ३८३५ = शक ६५६, लोक ३८१० = सन् ७३४ ही, श्री स्तीन लौक ३८१४ वर्ष २ माह २१ दिन, श्री पण्डित सन् ७३३ ई०, श्रीट्रॉयर सन् ७३३ ई० ७ मास, श्रीकनिंघम सन् ७३० ई० ९ मास, श्रीविलसन ७५१ वर्ष ८ मास, पीर हसन विक्रमी ७९२ जो सन् ७३५ ई० होगा । श्री स्तीन, दत्त; पण्डित, विलसन तथा पीर हसन राज्य काल ७ वर्ष दिया है । राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल ७ वर्ष दिया गया है ।

स क्रूरचरितो भ्रातुः प्रजाह्लादविधायिनः ।
सुधांशोरिव दुर्वासा नूनं विसदृशोऽभवत् ॥३९४॥

३९४. प्रजाह्लाद विधायी भ्राता चन्द्रमा से विपरीत क्रूर चरित दुर्वासा[1] के समान वह भाई से विसदृश था ।

परिहासपुरात् पित्र्यां नानोपकरणावलीम् ।
स जहार दुराचारो भूभृल्लोभवशंवदः ॥३९५॥

३९५. लोभवशंवद, दुराचारी वह भूभृत्, परिहासपुर के पितृ प्रदत्त विविधोपकरण[1] को अपहृत कर लिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९४ में 'नूनं' का पाठभेद 'दूरं' मिलता है ।

पादटिप्पणी:

३९४ (१) दुर्वासा : दुर्वासा नाम उग्र तथा महाक्रोधी व्यक्ति के लिये रूढ़ हो गया है । (मार्क :१७ ९:१६, विष्णु १:९:४:६ । दुर्वासा, दुर्वासस् के जन्म की तीन कथायें पौराणिक ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। एक मत है कि ब्रह्मा के मानस पुत्रों में एक दुर्वासा थे। दूसरा मत है कि अत्रि तथा अनसूया के तीन पुत्रों में एक दुर्वासा थे (भा :४:१: विष्णु :१:२५) अत्रि पुत्रहीन थे । वे पुत्र प्राप्ति हेतु घोर तपस्या करने लगे। उनके मूर्द्धा से प्रखर ज्वाला निकलने लगी । त्रैलोक्य त्रस्त हो गया । ब्रह्मा विष्णु महेश का आगमन हुआ। उन्होंने दुर्वासा को अपने अंशों से तीन पुत्र होने का वर दिया। अत्रि को ब्रह्मा के अंश से सोम, विष्णु के अंश से दत्त एवं रुद्र के अंश से दुर्वासस् का जन्म हुआ । (शिव:शत:१९) तीसरा मत है कि दुर्वासा शंकर के अवतार हैं। शंकर ने त्रिपुर संहार हेतु एक बाण छोड़ा। त्रिपुर संहार अनन्तर वह बाण शंकर की गोद में आकर बालक रूप बैठ गया। उस बालक का नाम दुर्वासा हुआ। (मार्क० १७:९ ११, विष्णु :१ ९:२, अनु :१६०:१४:१५) कालिदास ने शाकुन्तल में शकुंतला के संकट का कारण दुर्वासा का शाप बताया है। क्रुद्ध होकर उग्रप्रवृत्ति का आश्रय लेकर अविलम्ब शाप देना प्रसन्न होकर अचानक वरदान देना दुर्वासा के स्वभाव का स्थायी है भाव इनके अनुग्रह एवं क्रोध की अनेक रोचक कथाएँ पुराणों में वर्णन की गयी हैं ।

दुर्वासा का वर्ण किंचित् पिंगल हरा, दाढ़ी काफी लम्बी, अत्यन्त कृश अतिलम्बा शरीर, चिथड़ाधारी हाथ में विल्व तरु की लकड़ी किंवा लाठी रहती थी तथा तीनों लोकों में स्वच्छन्द विचरण नारद के समान करते थे। और्व ऋषि की कन्या कंदली दुर्वासा की पत्नी थी । वह इतने क्रोधी थे कि एक दिन शाप से अपनी पत्नी को भस्म कर दिया था (वन : २८७:४:६' अनु० १५९ १४ १५' ब्रह्मवै० : ४:२३:२४) इनके अनुग्रह की कथाओं में श्वेतकेतु राजा का यज्ञ, मुग्दल सत्यपरीक्षा, कुन्ती की देवहूती विद्या प्रदान, द्रौपदी लज्जा रक्षण प्रसिद्ध हैं (आदि : १ ११८ वन:२४६, २८९:२० या:९:२४:३२' शिवशत: १९) दुर्वासा की क्रोध की कथाओं में, इन्द्रशाप (विष्णु :१:९' पद्मसृ० : १–४ : २३१–२३३ भा० ९:४ ब्रह्मवै० २:३६ स्कन्द :२:९:८—९) अम्बरीष लक्ष्मण, (वा:उ० १०५' पद्म:उ:२७१) कृष्ण रुक्मिणी, (अनु:२४६, स्कन्द ७:४:२— ३) पाण्डव सत्य परीक्षा, हंस डिम्भक' (ह. व. ३:१११–१२९) काशी में शंकर, (स्कन्द : ८:२:८५) गोमती तट (स्कन्द :७:४:१८) वयु अप्सरा (मार्क० : १) अति प्रसिद्ध एवं रोचक हैं ।

रामायण में दुर्वासा की कथा कुछ विस्तार से है ।

पादटिप्पणी :

३९५ (१) विविधोपकरण : यहाँ कल्हण का

रागिणो भूमिपालस्य भूयस्योऽन्तःपुरस्त्रियः ।
बीजाश्वस्येव वडवास्तास्ताः समभवन्प्रियाः ॥३९६॥

३९६. रागी उस भूपाल के अन्तःपुर में बहुत सी प्रिय स्त्रियाँ थीं, जिस प्रकार बीजाश्व[1] को तत्-तत् बहुत सी वडवायें होती हैं ।

विक्रयेण प्रयच्छन्स म्लेच्छेभ्यः पुरुषान्बहून् ।
म्लेच्छोचितां व्यवहृतिं प्रावर्तयत मण्डले ॥३९७॥

३९७. उसने म्लेच्छों के हाथ बहुत पुरुषों को बेच दिया और मण्डल में म्लेच्छों का व्यवहार प्रवर्तित किया ।[1]

मन्तव्य मन्दिर पर चढ़े पूजा-पाठ शृंगार आदि को सामान दान तथा भूसम्पत्तियों से है ।

पादटिप्पणी :

३९६ (१) बीजाश्व : उस अश्व को कहते हैं जिसके कारण अश्विनियाँ गर्भ धारण करती हैं । एक ही अश्व अनेक अश्विनियों को गर्भ धारण कराने में समर्थ होता है । इस प्रकार के अश्विनियों से घिरे अश्व को बीजाश्व कहते हैं । वडवाभर्ता उच्चैःश्रवा का एक नाम है ।

पादटिप्पणी :

३९७ (१) दास प्रथा : दास प्रथा आर्यों में प्रचलित नहीं थी । कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि मानव क्रय विक्रय म्लेच्छ प्रथा थी । कश्मीर में दासत्व किसी भी रूप में प्रचलित नहीं था ।

चाणक्य ने दासत्व प्रथा को दण्डनीय माना है । उसनेभी म्लेच्छों को छूट दिया है कि वे अपने सन्तानों का क्रय विक्रय कर सकते हैं (अर्थ शास्त्र : १३:१८१) चाणक्य के कथन से भी स्पष्ट होता है कि दास प्रथा भारत में नहीं थी । वह म्लेच्छों में प्रचलित थी । भारत के बाहर से आई थी । चाणक्य कहता है— शूद्रों का अपने सम्बन्धियों द्वारा रेहन रखना तथा बेचना जो जन्म जात दास नहीं थे तथा वयस्क नहीं थे, बल्कि जन्म से ही आर्य थे, १२ पण द्वारा दण्डित होंगे । यदि वैश्य बेचे तो २४ पण, क्षत्रिय बेचे तो ३६ पण तथा ब्राह्मण बेचे तो ४८ पण दण्ड होगा । यदि सम्बन्धियों के अतिरिक्त दूसरा कोई करे, तो वह तीन प्रकार से धन द्वारा तथा फांसी का दण्ड भोक्ता होगा । इसी प्रकार खरीदने वाला तथा खरीद में सहायता देने वाला भी उसी दण्ड का अधिकारी होगा । म्लेच्छों के लिए यह अपराध नहीं होगा यदि वे अपने सन्तानों को बेच दें ।' इससे स्पष्ट होता है कि म्लेच्छ भी अपनी सन्तान के अतिरिक्त दूसरे को नहीं बेच सकते थे । साथ ही चाणक्य के प्रसिद्ध आदेश का उल्लेख मिलता है, 'किन्तु कभी भी कोई आर्य दास नहीं हो सकेंगे । (अर्थशास्त्र : १३: १८१) यूनानी लोगों में दास रखने की प्रथा थी । यूनानियों के सम्पर्क में आनेपर भी भारत ने इस प्रथा को मान्यता नहीं दी । चाणक्य के उल्लेख से स्पष्ट हो जाता है कि म्लेच्छों में यह प्रथा प्रचलित थी । भारत में मुसलिम प्रचलित व्यक्तिगत वर्तमान कानून के समान म्लेच्छों का यह व्यक्तिगत कानून तथा अधिकार उन दिनों मान लिया गया था ।

मुस्लिम काल में दास रखना, खरीदना, बेचना कानूनन जायज़ था । लाखों हिन्दू जो युद्ध में बन्दी बनाये जाते थे बेच दिए जाते थे ।

यह प्रथा कश्मीर में मुसलमान हुए सीमान्त देशों के प्रभाव के कारण आयी थी । मुस्लिम जगत् में अरब देशों से यह प्रथा आयी थी । मुसलमान कश्मीर में आबाद थे । इनमें यह प्रथा प्रचलित थी । वज्रादित्य ने अपनी कार्य सिद्धि हेतु उसे मान लिया ।

सप्ताब्दान्वसुधां भुक्त्वा सोऽतिसंभोगजन्मना ।
जगाम संक्षयं क्ष्माभृत्क्षयरोगेण किल्बिषी ॥३९८॥

३९८. पापी वह क्ष्माभृत् सात वर्ष पृथ्वी का भोग कर, अति सम्भोग जन्य क्षय रोग से नष्ट हो गया।

तस्मान्मञ्जरिकादेव्यां जातो राजा प्रजान्तकः ।
ततः पृथिव्यापीडोऽभूत् समासाश्चतुरः समाः ॥३९९॥

पृथिव्यापीड :[१]

३९९. मंजरिका देवी में उत्पन्न, प्रजा के लिये यमतुल्य, पृथिव्यापीड राजा हुआ। चार वर्ष एक मास जिसने राज किया।

जातो मम्माभिधानायां बप्पियात् सप्त वासरान् ।
संग्रामापीडनामाऽथ तमुत्पाट्याभवन्नृपः ॥४००॥

संग्रामापीड (प्रथम)[१]

४००. बप्पिय से मम्मा नाम्नी देवी में उत्पन्न संग्रामापीड उसे उत्पाटित कर सात दिन के लिये नृपति हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९९ में 'देव्या' का पाठभेद 'देव्या' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३९९ श्रीदत्त राजा पृथिव्यापीड का राज्याभिषेक काल कलि ३८४२=शक ६६३, =लौ० ३८१७ = सन् ७४१ = ख्री, स्तीन लौ० ३८२१ वर्ष २ वर्ष २१ दिन, श्री पण्डित सन् ७४० ई०; श्री ट्रायर सन् ७४० ई० ७ मास, श्री कनिंघम ७३७ वर्ष ११ मास, श्री विलसन ७५८ वर्ष ८ मास, पीर हसन विक्रमी संवत् ७९९ जो सन् ७४२ ई० आता है। सर्व श्री स्तीन पण्डित तथा पीर हसन ४ वर्ष १ 'मास तथा श्री विलसन ४ वर्ष २ मास राज्य काल देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में पृथिव्यापीड तथा संग्रामापीड दोनों का समय मिलाकर ४ वर्ष १ मास ७ दिन दिया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४०० में 'मम्माभि'' का पाठभेद 'मस्साभि' और 'मस्साभि'; 'बप्पियात्'का 'भप्पियात्' 'वाष्पयान्'; 'वासराज' का 'वत्सरान्' तथा 'तमुत्पाटचा' का पाठ भेद 'तमुत्पाद्या' मिलता है।

पाद टिप्पणी :

४०० (१) श्री दत्त राजा संग्रामापीड प्रथम का अभिषेक काल कलि ३८४६ = शब्द ६६७ = लौक ३८२१ = सन् ७४५ देता है, श्री स्तीन लौ० ३८२५ वर्ष ३ मास २१ दिन, श्री विलसन ने सन् ७६२ ई० १० मास, श्री ट्रायर सन् ७४४ ई० ८ मास, श्री कनिंघम ७४१ वर्ष ११ मास तथा पीर हसन राज्याभिषेक काल न देकर श्री स्तीन, के अनुसार केवल ७ दिन तथा विलसन ने ७ वर्ष राज्य काल दिये हैं।

श्री स्तीन ने राज्याभिषेक काल सौ० स० ३८२५ वर्ष ३ मास २१ दिन, श्री एस० पी० पण्डित ने सन् ७४४ ई०, विलसन ने सन् ७६२ ई० १० मास दिया है।

आइने अकबरी : में सुग्रनुन्द नाम दिया है। इसका राज्य काल ७ वर्ष दिया है। वह गलत है।

भ्रातरौ तौ समासाद्य राज्यं नैव व्यराजत ।
हेमन्तशिशिरावाप्य चण्डांशोरिव मण्डलम् ॥४०१॥

४०१. हेमन्त[1] और शिशिर[2] को प्राप्तकर, जिस प्रकार सूर्य मण्डल सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार उन दोनों भाइयों को प्राप्त कर, राज्य मण्डल सुशोभित नहीं हुआ ।

शान्तेऽथ संग्रामापीडे कनीयान् बप्पियात्मजः ।
राजा श्रीमाञ्जयापीडः प्राप राज्यं ततः क्रमात् ॥४०२॥

जयापीड[1] :

४०२. संग्रामापीड के शान्त होने पर, कनिष्ठ वप्पिय पुत्र श्रीमान् राजा जयापीड[1] ने राज्य प्राप्त किया ।

संग्रामापीड द्वितीय जिसका दूसरा नाम पृथिव्यापीड था ७ वर्ष राज्य किया था ।

हसन लिखता है—९ इसके भाई राजा संग्रामापीड ने हकूमत का नक्कारह बजाकर सात दिन फितना व फसाद में गुजारे । आखिरकार अपने भाई जयापीड के हाथ से मारा गया ।

वासरान् का वत्सरान् पाठ मानकर विलसन, ट्रॉयर, लास्सेन, तथा दुर्गा प्रसाद तथा श्री एस० वी० पण्डित ने संग्रामापीड का राज्य काल ७ वर्ष माना है । किन्तु यह कल्हण के जोड़ १३२८ वर्ष से नहीं मिलता । श्री स्तीन ने केवल ७ दिन राज्य काल माना है ।

पादटिप्पणी :

४०१ (१) हेमन्त = आग्रहायण (मार्गशीर्ष) एवं पौष मास ।

(२) शिशिर = माघ एवं फाल्गुन ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४०२ में 'प्राप राज्यं' का पाठ भेद 'प्राप्तराज्यः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४०२ (१) श्री दत्त जयापीड का अभिषेक काल कलि ३८४६ = शक ६६७ = लौ० ३८२१ = सन् ७४५ है । श्री स्तीन लौ० ३८२८ वर्ष ३ मास २८ दिन, श्री पण्डित सन् ६५१, श्री विलसन सन् ७७२ ई० १० मास, श्री ट्रॉयर सन् ७५४ ई० ८ मास, श्री कनिंघम सन् ७५१ वर्ष ११ मास तथा पीर हसन विक्रमी संवत् ८०३ जिसका सन् ७४६ ई० होगा तथा राज्य काल सर्वश्री स्तीन, दत्त तथा विलसन ३१ वर्ष तथा पीर हसन ३४ वर्ष देता है ।

आइने अकबरी में राज्यकाल ३१ वर्ष दिया है । राजतरंगिणी संग्रह में ३१ वर्ष दिया गया है । नाम 'जेतुण्ड' मिलता है । जयापीड का नाम विजयादित्य भी था । जयापीड के अपर नाम की मुद्राएँ बहुत प्राप्त हुई हैं । (कनिंघम : क्वाइंस आफ मिडिवल इण्डिया : ४७ तथा फलक ३ : १४)) ।

जयापीड की तीन मुद्राएँ मिली हैं । एक स्वर्ण मुद्रा है । अन्य दो ताम्र मुद्राएं हैं । बाँदा संग्रह में सुवर्ण मुद्रा सन् १९२७ ई० में मिली है । राजघाट वाराणसी में भी जयापीड की मुद्रा प्राप्त हुई है । उक्त मुद्राएँ श्री प्रताप की मुद्रा के साथ मिली हैं । मुद्राएँ श्री प्रताप की मुद्रा तुल्य है । इनमें केवल एक अन्तर है । 'श्री' एवं 'प्रताप' के मध्य 'ज' शब्द घुसा दिया गया है । वे निम्नलिखित हैं । श्री विनयादित्य की मुद्राएँ केवल मद्रास में मिलती हैं । परन्तु 'जय प्रताप' मुद्रायें उत्तर प्रदेश में प्राप्त हुई हैं ।

स्वर्ण = आसनस्थ लक्ष्मी	दण्डायमान राजा
श्री विनय आदित्य जय	(ति) के (दार)
ताम्र = आसनस्थ लक्ष्मी	दण्डायमान राजा
श्री विनय (आदित्य)	जय (ति) के (दार)
ताम्र = आसनस्थ लक्ष्मो	दण्डायमान राजा
श्री जय	कि (दाद)

पितामहसमो भूयादित्यमात्यवचः स्मरन् ।
जिगीषुः संभृतबलो दिग्जयाय स निर्ययौ ॥४०३॥

४०३. 'पितामह[1] समान हो' इत्यादि अमात्य वचनों का स्मरण करते हुए विजय इच्छा से सैन्य संग्रह कर (जयापीड) दिग्विजय हेतु निर्गत हुआ ।

स्वदेशादेव नयविद्वशं नीतैः समं नृपैः ।
वृद्धान्पप्रच्छ निर्गच्छन् कश्मीरद्वारगोचरान् ॥४०४॥

४०४. नयविद्[1] वह, वश में किये हुए नृपों के साथ अपने देश से निर्गत होते हुए, कश्मीर द्वार[2] पर वृद्धों से पूछा,—

पितामहस्य नः सैन्यं कियन्निर्गच्छतोऽभवत् ।
इति ब्रूताद्य यात्रासु यूयं संख्यातसैनिकाः ॥४०५॥

४०५. 'यात्रा काल में हमारे पितामह के पास कितना सैन्य था ? आप बताइये । आपको सैन्य संख्या ज्ञात है ।'

श्री प्रयागदयाल उन्हें 'जज्ज' की मुद्रा मानते हैं । जज्ज अपने बहनोई श्री जयापीड विनयादित्य की अनुपस्थिति में कश्मीर का राजा बन बैठा था । किन्तु यह सुझाव इसलिये दोषपूर्ण माना गया है कि मुद्रायें कश्मीर के बाहर उत्तर प्रदेश के जिलों में पायी गयी थीं । प्राप्त स्थानों पर जयापीड का किसी प्रकार का अधिकार एवं नियन्त्रण था यह बात प्रमाणित नहीं होती । श्री जयापीड अपने पूर्वज ललितादित्य के समान दिग्विजय के लिये निकला था । जय प्रताप की मुद्रायें, प्रतीत होता है, अपने दिग्विजय काल में उत्तर प्रदेश में दान में दिया था अथवा चलाया था ।

यदि जयापीड विनयादित्य की मुद्रायें उन्हें मान लें तो उनके साथ श्री विनयादित्य लेख के साथ भी मुद्रायें मिलनी चाहिए थीं । जबकि प्रताप मुद्राएँ बांदा तथा राजघाट के संग्रह में मिलती हैं । कल्हण के वर्णन से स्पष्ट होता है । उसने एक कम एक लाख अश्वों का दान प्रचुर दक्षिणा सहित प्रयाग में ब्राह्मणों को दिया था । (सन् : ४१५–१६) यदि पूर्वी उत्तर प्रदेश में जयापीड की मुद्रा मिलती है तो इससे कोई सन्देह नहीं होना चाहिए । उसने 'श्री जयापीड देवस्य' अंकित मुद्रा (सील) गंगा जल पात्र पर मुहर कर दिगन्त में भेजने का आदेश दिया था । यह प्रथा कल्हण के समय तक प्रचलित थी । (रा ४ : ४१७)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४०३ में 'भूयादित्य' का पाठभेद 'भूया इत्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी:

४०३ (१) पितामह = ललितादित्य ।

पादटिप्पणी :

४०४ (१) नयविद् = नीतिज्ञ

(२) द्वार : द्वार कालान्तर में कहा जाने लगा । वह बाहर से पर्वती दर्रों किंवा संकटों द्वारा कश्मीर का संकीर्ण प्रवेश मार्ग है । यहाँ कश्मीर की सुरक्षा निमित्त सैनिक चौकियाँ बनी है । वे उपत्यका के निर्गत तथा वहिर्गत मार्ग है । अतएव उन्हें द्वार कहा जाता था । घर (द्रष्टव्यः टिप्पणियाँ : १:१२२ ३०२ तथा ५: १३७)

अबुल फजल ने आइने अकबरी में लिखा है 'एकदिन उसने वृद्धों से पूछा कि उसकी सेना बड़ी है या ललितादित्य की ?' (पृष्ट ४३६)

कृतस्मितास्तमूचुस्ते किं प्रश्नेनामुना प्रभो ।
वस्तु कश्चिदतिक्रान्तं नानुकर्तुं क्षमोऽधुना ।।४०६।।

४०६. उनलोगों ने मुसकुरा कर, उससे कहा,—'हे प्रभो ! इस प्रश्न से क्या ? अधुना अतिक्रान्त वस्तु का कौन अनुकरण करने में समर्थ है ।

कर्णीरथानां तस्यासीत् सपादं लक्ष्मीशितुः ।
अशीतिस्तु सहस्राणि देवस्याद्य जयोद्यमे ।।४०७।।

४०७. 'उस राजा के सपाद लक्ष कर्णीरथ[1] थे । आज आप के विजयोद्यम में अस्सी हजार हैं ।'

तदाकर्ण्य जयापीडो बहु मेने न निर्जयम् ।
क्षिप्रं क्षितेः संकुचन्त्याः कालस्य बलवत्तया ।।४०८।।

४०८. काल की बलवत्ता के कारण शीघ्रता पूर्वक, पृथिवी के संकुचित होने से, इसे सुनकर जयापीड बहुत पराजय नहीं माना ।

जिगीषोः क्ष्माभुजस्तस्य भावमालोक्य तादृशम् ।
दध्युर्भावज्ञतां वृद्धा ललितादित्यभूपतेः ।।४०९।।

४०९. उस जिगीषु क्ष्माभुज् के उस भाव को देखकर वृद्धों ने ललितादित्य भूपति की भावज्ञता (मनोभाव) को स्मरण किया ।

तस्य दूरप्रयातस्य स्यालो जज्जाभिधो बलात् ।
द्रोहेणाऽऽक्रम्य कश्मीरान् स्वयं भेजे नृपासनम् ।।४१०।।

ज़ज्ज द्वारा राज्य हरण :

४१०. उस (राजा) के दूरगत होने पर, उसका साला जज्ज बलात् द्रोह पूर्वक, कश्मीर पर आक्रमण कर, स्वयं नृपासन पर आरूढ़ हो गया ।

पादटिप्पणी :

४०७ (१) कर्णीरथ = पालकी के अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त किया गया है । कश्मीर में पालकी को 'कत्त' कहते है । कर्णी का अपभ्रंश का बिगड़ा रूप 'कत्त' या 'कट्ट' है । अल्बेरुनी लिखता है—'कश्मीर निवासी सदाचारी हैं । उनके यहाँ वाहन के लिये न तो कोई जानवर है और न हाथी । उनमें कुलीन वर्ग पालकी पर चलते हैं । जिसे कन्धों पर ढोया जाता है' (इण्डियाः १ः २७६) बर्नियर भी यही लिखता है । कश्मीर में परिवहन का साधन शिविका किंवा पालकी है । मुगल काल से गत्त शताब्दी तक यही भार वाहन सामान्यतया प्रयोग में लाया जाता था । वितस्ता में यद्यपि नाव पुरातन काल से भार तथा यात्रा परिवहन का कार्य करती थी । श्रीवर ने कर्णीरथ का प्रयोग शव वाहक शिविका के लिये किया है । (जैनः १ः ७ः २२२) आईने अकबरी में उल्लेख है—'वृद्धों ने उत्तर दिया—आपकी सेना में केवल ८०,००० 'सुकपलें' है किन्तु तुम्हारे पितामह के पास १, २५,००० गाड़ियाँ थीं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१० में 'स्यालो' का 'श्यालो' तथा 'जज्जा' का पाठभेद 'जज्ञां' मिलता है ।

दिने दिने राजसैन्यात् स्वदेशस्मारिणस्ततः ।
सैनिकाः संन्यवर्तन्त स्वामिभक्तिपराङ्मुखाः ॥४११॥

४११. स्वदेश का स्मरण करनेवाले सैनिक, स्वामिभक्ति से पराङ्मुख होकर, प्रतिदिन राज्य सैन्य से परावृत होने लगे ।

प्रख्यापयिष्यन्स्वामेव शक्तिं परिकरं विना ।
निश्चिकाय जयापीडो युक्तां कांचित्तु संविदम् ॥४१२॥

४१२. जयापीड ने परिकर बिना ही, अपनी शक्ति को प्रदर्शित करते हुए किसी युक्त (उचित) संविद् का निश्चय किया ।

अभङ्गुरास्तेऽभिमानास्तस्यैवासन् मनस्विनः ।
अत्यवर्तत यैरेष वैधात्रीरपि वामताः ॥४१३॥

४१३. उस मनस्वी के स्वाभिमान अखण्ड थे, जिनसे वह दैवी प्रतिकूलताओं का भी अतिक्रमण किया ।

स विसृज्य भुवं स्वां स्वां भूपतीननुयात्रिकान् ।
प्रयागमगमत्सैन्यैः परिमेयैर्निजैः समम् ॥४१४॥

४१४. वह अनुगामी भूपतियों को, अपनी भूमि को विर्सजित किया, और अपने परिमित सैन्यों के साथ प्रयाग गया ।

पादटिप्पणी :

४१० (१) जज्ज : श्री स्तीन जज्ज की राज्य प्राप्ति सप्तर्षि ३८२५ वर्ष ३ मास ४८ दिन तथा राज्य काल ३ वर्ष और राजतरंणिणी संग्रह में भी राज्य काल ३ वर्ष दिया गाया है ।

आईने अकबरी में उल्लेख है—'जयापीड अपने राजधानी से बहुत दूर पर विजय कर रहा था । उसका साला जज्ज ने विद्रोह किया । और कश्मीर के उमरा उनके स्त्रियों और बच्चों पर क्या बीतेगी सोचकर उसका साथ दिये ।' (पृष्ठ ४३६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४११ में 'सन्य' का पाठभेद 'स्वान्य' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१३ में 'अत्य' का 'अभ्य' तथा 'वर्तत' का पाठभेद 'वर्तन्त' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४१४ (१) प्रयाग : भारत का वर्तमान नगर इलाहाबाद है । मुसलिम काल में नाम अल्लाहाबाद रख दिया गया था । अल्लाहाबाद का अपभ्रंश इलाहाबाद है । एक मत है कि इलाही के नाम पर इलाहाबाद नाम रखा गया था । एकमत है कि अकबर ने इलाहाबाद किले की जिस समय नींव सन् १५८४ में रखी उसी समय प्रयाग नाम बदलकर इलाहाबाद रख दिया गया । इलाहाबाद अर्थात् प्रयाग के भौगोलिक स्थिति का प्राचीन ज्ञान युवान च्वांग चीनी पर्यटक सन् ६४४ के वर्णन से मिलता है । तत्पश्चात् आठवीं शताब्दी तक उसका इतिहास गर्भ में में छिपा है ।

तत्रावशिष्टानुच्चित्य वाजिनः स मनोजवान् ।
द्विजेभ्यो लक्षमेकोनं प्रददौ भूरिदक्षिणम् ॥४१५॥

४१५. उसने एकोन लाख (एक कम एक लाख) अवशिष्ट अश्वों[1] का संग्रह कर, प्रचुर दक्षिणा सहित, द्विजों को दिया।

संपूर्णमन्यो लक्षं यः प्रदद्यादत्र वाजिनाम् ।
तन्मुद्रयेयं मन्मुद्रा विनिवार्येत्युदीर्य च ॥४१६॥

४१६. 'जो दूसरा कोई यहाँ सम्पूर्ण एक लाख अश्वों को दान करे, वह उस मुद्रा से, मेरे मुद्रा[1] को निवारित कर सकेगा।'

श्रीजयापीडदेवस्येत्यक्षरैरुपलक्षिताम् ।
दिग्देशगामिनो मुद्रां गाङ्गस्य पयसो ददौ ॥४१७॥

४१७. ऐसा कहकर,—श्री जयापीड देवस्य'—इन अक्षरों से उपलक्षित मुद्रा दिग्देशगामी, गंगा के जल (जलपात्र) पर दिया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१५ में 'नुच्चित्य' का पाठभेद 'न्निश्चित्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४१५ (१) अश्व : आईने अकबरी में उल्लेख है कि 'राजा बड़ा उदार था। उसने बनारस में ९९,९९९ घोड़े दान किया और याचकों की भी हर प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति किया।' अबुल फज़ल प्रयाग के स्थान पर बनारस अर्थात् वाराणसी का नाम देता है। (पृष्ठ ४३६)

पादटिप्पणी :

४१६ (१) मुद्रा : गंगाजलपात्र पर सील लगाने के अर्थ में यहाँ मुद्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। उसने यह शर्त लगा दी। जबतक कोई दूसरा एक लाख अश्वों से अधिक दान नहीं करेगा, तबतक 'श्री जयापीड देव' नाम की मुद्रा किंवा सील जल पात्र पर लगती रहेगी।

पादटिप्पणी :

४१७ (१) गंगाजल : अनादि काल से पवित्रता तथा शुद्धता के लिए गंगाजल की ख्याति रही है। भारतीय राजा तथा समृद्धिशाली लोग गंगाजल पीने के लिए मँगाते हैं। सम्राट् अकबर सर्वदा गंगाजल का उपयोग पीने के लिए करता था। इस कार्य के लिए उसके यहाँ एक विभाग ही खुला था। राजधानी से बाहर जानेपर कलशों में गंगाजल उसके पेयहेतु भेजा जाता था। औरंगजेब गंगाजल का प्रयोग करता था। युद्ध तथा यात्रा के समय भी गंगाजल ऊँटों पर चलता था।

मुगल बादशाह अन्य पूर्वकालीन भारतीय राजाओं के समान उत्तम जल के प्रति जागरूक रहते थे। आईने अकबरी में अबुलफजल ने इसका उल्लेख किया है। शाही एक विभाग गंगा जल लाने के लिये था। जिसका नाम 'आवदार-खानेह' था। इस विभाग का काम गंगा जल तथा कश्मीर से बर्फ लाना था। सम्राट् अकबर इस जल को जीवन स्रोत तथा अमृत जल कहता था। उसने इस विभाग को उच्च विश्वस्त कर्मचारियों को सौंपा था। वह अधिक जल नहीं पीता था। तथापि इस जल के प्रयोग की ओर बहुत ध्यान रखता था। घर तथा यात्रा में यही जल पीता था। गंगा तट पर विश्वासपात्र कर्मचारी रखे जाते थे जो ताम्र पात्र में जल भर कर उस पर सील मुहर कर भेजते थे।

तन्मुद्राङ्कं पयः पीत्वा गाङ्गमद्यापि निर्मलम् ।
चित्ते प्रवर्धते तापो भूपानामभिमानिनाम् ॥४१८॥

४१८. उनकी तन्मुद्रांकित निर्मल गंगा पय पानकर, आज भी स्वाभिमानी भूपों[1] का ताप प्रवृद्ध होता है।

भारत में अब भी प्रयाग का गंगाजल ताम्र पात्र में तथा बोतल में सील मोहर कर भारत के कोने-कोने में भेजा जाता है। गंगाजल शीशियों में हिन्दुओं के घर रखा रहता है। अन्तिम काल में मुख में तुलसी दल गंगा जल तथा सुवर्ण डालने की प्रथा है।

प्रयाग तथा काशी का गंगा जल हरद्वार के जल के अभाव में भेजने की प्रथा है। प्रयाग का गंगाजल काशी की अपेक्षा उत्तम शुद्ध माना जाता है। क्योंकि प्रयाग में यमुना का संगम गंगा से होता है। जल में उज्ज्वलता नहीं रह जाती जो प्रयाग के ऊर्ध्व भाग में मिलती है।

प्रयाग में अधोभाग का जल यमुना के मिलने के कारण कम उज्ज्वल रहता है। गंगा की धारा में हरद्वार के पश्चात् प्रयाग में ही वेग दिखायी देता है। उसके पश्चात् वेग नहीं दिखायी देता। प्रयाग तथा हरद्वार के गंगा जल में बालू के कण मिलते हैं। प्रयाग के पश्चात् बालू के कण प्रवाह की मन्द गति के कारण नदी तल में बैठने लगते हैं। काशी पहुँचते पहुँचते, वर्षा एवं शरद ऋतु के पश्चात् बालू नाम मात्र के लिए भी जल में नहीं रह जाता।

गंगा जल में कीटाणु नहीं पड़ते। वह चाहे हरद्वार, प्रयाग एवं काशी का क्यों न हो। परीक्षार्थ मैं स्वयं प्रयाग का गंगा जल एक बोतल में घर ला कर तिथि तथा सन् लिख कर रख दिया था। आठ वर्ष बीत जाने पर भी वह स्वच्छ तथा कीटाणु रहित था। बोतल में निम्न भाग में बालू के कण अवश्य बैठ गये थे।

कल्हण गंगा जल सील मुहर कर भेजने की ओर संकेत करता है। आज कल के समान उन दिनों भी गंगा जल सील मुहर कर भेजा जाता था। जयापीड ने अपने दान एवं पराक्रम से यह कानून बना दिया था कि जो जल प्रयाग से सील-मुहर कर जायगा उस पर 'श्री जयापीड देव' नामांकित मुद्रा लगेगी। कल्हण के समय तक यही बात प्रचलित थी। मुसलमानी शासन स्थापित होने के पश्चात् जब प्रयाग का नाम इलाहाबाद पड़ गया तो मालूम होता है। यह मुद्रा लगाना बन्द हो गया। जल भेजवे वाले स्व मुद्रांकित जल भेजने लगे। इस समय भी ताम्र पात्र का मुख बन्द कर उस पर लाख की सील लगा दी जाती है।

पादटिप्पणी :

४१८ (१) भूप-ताप : कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय अर्थात् बारहवीं शताब्दी तक 'जयापीड' मुद्रांकित गंगाजल पात्र प्रयाग से भेजा जाता था। भारत के हिन्दू राजा इस नाम मुद्रांकित जल का पान करते थे। यह इस बात को स्पष्ट करता है कि जयापीड का प्रताप तथा यश उसकी मृत्यु के पश्चात् लगभग ३५० वर्ष तक अक्षुण्ण बना रहा। प्रयाग से जल भेजने वाले उसके आदेशों का पालन करते रहे। इस प्रकार केवल 'श्री जयापीड' के नामांकित मुद्रा के कारण भारतवर्ष के सुदूर कोने-में कश्मीर तथा उसके राज्य की स्मृति गंगा जल के समान् पवित्र बनी रही। जबकि भारत के अनेक महान राज्य तथा राजा काल के शीतल स्पर्श के कारण विस्मृति सागर में विलीन हो गये।

स्वदेशगमनानुज्ञां सैन्यस्याप्तमुखेन सः ।
दत्त्वा निशायामेकाकी निर्ययौ कटकान्तरात् ।।४१९।।

४१९. विश्वास पात्र (दूत) द्वारा सेना को स्वदेश गमन की आज्ञा देकर वह रात्रि में एकाकी सैन्यमध्य से निकल गया ।[1]

बभ्राम स्थानमन्विष्यन् प्रतापाख्यापनोचितम् ।
मण्डलेषु नरेन्द्राणां पयोदानामिवार्यमा ।।४२०।।

४२०. मेघ मण्डल में सूर्य के समान, वह नृप मण्डल में प्रतापाख्यापनोचित स्थान का अन्वेषण करते हुए भ्रमण किया ।

गौडराजाश्रयं गुप्तं जयन्ताख्येन भूभुजा ।
प्रविवेश क्रमेणाथ नगरं पौण्ड्रवर्धनम् ।।४२१।।

४२१. इस प्रकार क्रम से गौड़ राजाश्रयी. पौण्ड्रवर्धन नगर[1] में प्रवेश किया जो कि जयन्त नामी भूभुज से रक्षित था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४१९ में 'प्तमुखेन' का 'ससुखोथ' 'दत्वा' का पाठभेद 'कृत्वा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४१९ (१) आईने अकबरी में दूसरी बात लिखी गयी है । 'जज्ज का राज लेना सुनकर राजा जयापीड बंगाल चला गया' (पृ० ४३६) ।

पादटिप्पणी :

४२१ (१) पौण्ड्रवर्धन नगर : यह स्थान राजशाही जिला में होना चाहिए । इसका नाम पुण्ड्रवर्धन भी था । गंगा के उत्तर ह्वेनसाँग चीनी पर्यटक ने पौंड्रवर्धन की यात्रा की थी । उसे उसने पुन: न-फ-तन-न लिखा है । (सिपुकी : २:१९४) ।

४२१ (२) जयन्त : राजा जयन्त कौन था पता नहीं चलता । कुछ इतिहासकार इसको जयधर राजा से सम्बन्धित करते हैं। अबुलफजल ने आईने अकबरी में जयधर राजा नाम बंगाल के राजाओं की तालिका में दिया है । किंतु इस समय बंगाल का राजा गोपाल था । वह जयन्त का समकालीन था । एक ही काल में एक ही राज्य के दो राजे नहीं हो सकते । गोपाल पाल वंश का संस्थापक था । गंगा के आधे भाग में उस समय और भी राजे थे । एक मत है । उस समय समस्त बंगाल में ५ राजे थे । उनमें एक जयन्त था । वह सम्भवत: सरदार एवं सामन्त था । जयापीड ने कल्हण के अनुसार बंगाल के पाँच राजाओं को दबाकर अपने श्वसुर जयन्त का राज्य बढ़ाया था । जयापीड इस विजय के पश्चात् पूर्व की ओर और नहीं बढ़ा था ।

प्रतीत होता है कि पौंड्रवर्धन नाम 'पुण्ड्र' लोगों से किसी प्रकार सम्बन्धित था । ह्वेनसाँग के लेख से पता चलता है कि राजशाही जिला में इस स्थान को कहीं होना चाहिए । वास्तव में राजधानी किस स्थान पर थी इसमें विद्वानों को मतभेद है । (कनिंघम एंशियंट ज्योग्रफी ४०४, आर्कियोलिजकल सर्वे रिपोर्ट १५:१०२, ११०;) दिव्यावदान में उल्लेख आता है कि मध्य देश की सीमा पुण्ड्रवर्धन तक बढ़ा दी गयी थी । कंकजोल से हुएन्साँग ने गंगा पार किया था । चम्पा से ६०० ली, १०० मील पूर्व गमन किया । एक मत है कि वर्धमान (बर्दवान) पौंड्र वर्धन है । परन्तु वह अति दक्षिण तथा गंगा के इसी पार पड़ता है । हुएनसाँग के निर्देशित स्थान पर नहीं पड़ता । कनिंघम 'पवना' जो कंकजोल से १०० मिल तथा गंगा के पार उत्तरी तट पर है, अनुमान किया है कि पुण्ड्रवर्धन नगर था । परन्तु वह स्वयं

तस्मिन् सौराज्यरम्याभिः प्रीतः पौरविभूतिभिः ।
लास्यं स द्रष्टुमविशत् कार्त्तिकेयनिकेतनम् ॥४२२॥

४२२. वहाँ सुराज्यरम्य पुरविभूतियों से प्रसन्न, वह नृपति नृत्य दर्शन हेतु कार्तिकेयनिकेतन[1] में प्रवेश किया ।

कहता है कि यह दिशा दक्षिण पूर्व है। पौण्ड्रवर्धन का नाम पुण्यवर्धन माना जाता है। हुएनसांग ने राज्य की सीमा ४००० ली किंवा ६६७ मील लिखा है। यह उस क्षेत्र से मेल खाता है जिसके पश्चिम में महानदी, तथा तीस्ता, ब्रह्मपुत्र पूर्व, तथा गंगा नदी दक्षिण पड़ती है। किंतु कालान्तर में कनिंघम ने पुनः अपना मत बदल दिया। वहपुंड्रवर्धन को बंगाल के बंगारा जिला से मिलाने का प्रयास किया है।

महाभारत में पौंड्र देश का उल्लेख (आदि० : १८६ : १५) मिलता है। वहाँ के राजा द्रौपदी के स्वयंवर में उपस्थित थे। श्रीकृष्ण द्वारा वह देश पराजित किया गया था। (सभा० : ३८ : ३९ द्रोण १९ : १५) वहाँ के राजा ने पाण्डवों के पक्ष से महाभारत में भाग लिया था। (भीष्म० : ५० : ४८) कर्ण ने इस देश को जीता था। (प्रारंभ : ४ : ८) मान्धाता के राज्य में पौण्ड्र जाति के लोग निवास करते थे (शान्ति० : ६५)

पुराणों में उल्लेख मिलता है कि पुण्ड्र जो बलि का पुत्र था। उसी के नाम पर पुण्ड्र जनपद नाम पड़ा था। (वायु० : ९९ : २८-३४) वह एक प्राच्य जनपद था। (मत्स्य : १३४ : ४५) ब्रह्माण्ड : १६ : ५४) किन्तु कल्हण ने नाम 'पौण्ड्रवर्धन' दिया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४२ में 'तस्मि' का 'यस्मि' तथा 'प्रीत' का पाठभेद 'प्रीति' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४२२. (१) कार्तिकेय : कार्तिकेय कम से कम १७ नामों से पुकारे जाते हैं। दक्षिण में उन्हें 'सुब्रह्मण्यम्' कहते हैं। उनका नाम कार्तिकेय के अतिरिक्त महासेन, शरजन्मन्, षडानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, गुह, बाहुलेय, तारकजित्, विशाख, शिखिवाहन, षाण्मातुर, शक्तिधर, कुमार, क्रौञ्चदारण है।

कार्तिकेय की कथा रामायण एवं महाभारत दोनों में दी है। रामायण में कथा है—'अग्नि से व्याप्त होने पर शिव का तेज श्वेत पर्वत के रूप में हो गया। उस समय वहाँ दिव्य सरकण्डा का वन भी प्रकट हो गया। उसी वन में अग्निजनित कार्तिकेय का प्रादुर्भाव हुआ। (बाल० : ३६ : १८-१९) हिमवत पर्वत गंगा द्वार पर स्थापित गर्भ से इनका जन्म हुआ था। कृतिकायें उनके पोषण हेतु देवताओं द्वारा नियुक्त की गयी थीं। एतदर्थ देवताओं ने कार्तिकेय नाम रखा। गर्भ काल में स्कन्दित होने के कारण देवताओं ने उन्हें स्कन्द कहकर पुकारा। छः कृत्तिकाओं का एक साथ अपने षड् मुख से स्तन पान किया था। अतएव इनका नाम षड़ानन रखा गया। एक दिन दूध पान कर इन्होंने दैत्य सेना का संहार किया था। देवताओं ने प्रसन्न होकर इन्हें देवसेनापति पद पर अभिषिक्त किया। (बाल० ३७ : १८—३३) देवी कौसल्या ने राम की वन में रक्षा हेतु कार्तिकेय का आवाहन किया था। (अयो० २ : २५ :)

महाभारत में रामायण से मिलती-जुलती कथा इनके सम्बन्ध में लिखी गयी है। प्राकटच तथा नामकरण की कथा (वन० : २२५ : १६—१८) अनु० ८६ : ५—१४ में लिखी गयी है। इन्होंने कौञ्च पर्वत को विदीर्ण किया था। नाम क्रौञ्चदारण पड़ा था (वन० : २२५ : ३३) (शल्य : ४६ ८३, ८४) मातृकाओं को कार्तिकेय ने माता स्वीकार किया था। (वन २२६-२४) इनके शरीर से विशाख की उत्पत्ति हुई थी। पराजित हुए इन्द्र को देवताओं

भरतानुगमालक्ष्य नृत्तगीतादि शास्त्रवित् ।
ततो देवगृहद्वारशिलामध्यास्त स क्षणम् ॥४२३॥

४२३. वह शास्त्रवेत्ता भरतानुगामी[1] नृत्य गीतादि देखकर, पश्चात् क्षणभर देव गृह की द्वारशिला पर बैठ गया ।

सहित अभय दान दिया था । (वन० २२७ : १६-१८) देवसेना के साथ इनका विवाह हुआ था । इन्द्र ने देव सेनापति पद पर इनका अभिषेक किया था । (वन० २२९ अनु० : ८६:२८) कृत्तिकाओं को माता स्वीकार किया था । (वन० २३०) मातृगणों को भी माता स्वीकार किया या । (वन० २३०-१५) महिषासुर का वध किया था (वन० २३१ : ९६) तारकासुर, महिषासुर त्रिपाद तथा ह्रदोदर का वध किया था । (अनु० : ८५ १६४; ८६ : २९, शल्य० ४६ : ७३-७४) बाणासुर को पराजित किया था । (शल्य० ४६ : ८३-८४) इनके द्वारा तारक के पुत्र तथा उसके कनिष्ठ भ्राता का वध हुआ । (शल्य : ४६ : ९०-९१) इनके जन्म तथा भिन्न नामों के पड़ने का कारण महाभारत में बताया गया है (अनु० ८५ : ६८-२) ।

पादटिप्पणी :

४२३ (१) भरत : भरतमुनि स्वर्ग से नाटचशास्त्र भूलोक में लाये थे । भरतशास्त्र का अर्थ नाटच शास्त्र है । लास्य पार्वती के भावात्मक मधुर तथा ताण्डव शिव के नृत्य को कहते हैं । वह मधुर का ठीक विपरीत है । नाटच संहिता का नाम नाटच शास्त्र है । नाटचशास्त्र के आद्य रचनाकार स्वयं प्रजापति थे । उसे नाटच वेद मानकर विशिष्ट सम्मान नाटच कला को दिया गया है। महादेव द्वारा प्रोक्त नाटचवेद के द्रष्टा शिलाली, कृशाश्व, एवं भरतमुनि हैं । शिलाली एवं कृशाश्व द्वारा प्राणी नाटचशास्त्र प्राप्य नहीं है। नाटचशास्त्र का प्रणयन एक मत है कि कश्मीर में हुआ था । उसपर प्रत्यभिज्ञा दर्शन के छत्तीस मूल तत्त्वों का प्रभाव है। उन तत्त्वों के प्रतीक स्वरूप नाटचशास्त्र में छत्तीस अध्याय हैं। ग्रन्थ दो पाठान्तरों में उपलब्ध है। प्रथम औत्तरीय तथा द्वितीय दाक्षिणात्य पाठ है। पाण्डुलिपियों में ३७ वाँ अध्याय भी कहीं-कहीं प्राप्त होता है। नाटच संहिता रस सिद्धान्त का मौलिक ग्रंथ है । इसके वाक्य आदर के कारण भरत सूत्र कहे जाते हैं । इसे द्वादश साहस्री संहिता भी कहते हैं । इसमें १२००० पद तथा गद्यांश भी है । कालान्तर में यह ग्रन्थ संक्षिप्त हो गया । यह केवल छः सहस्र पदों का ही शेष रह गया । इस संहिता ने 'षट् साहस्री' संज्ञा प्राप्त कर ली ।

वृद्ध भरत का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वृद्ध वशिष्ठ, वृद्ध मनु, आदि के समान वृद्ध शब्द गौरव एवं श्रेष्ठता का बोधक है । वृद्ध का अर्थ परिपूर्ण संहिताकार से लेना उचित होगा । भरतसूत्र के अनेक व्याख्याता हुए हैं । उनमें रीतिवादी व्याख्याता भट्ट उद्भट, पुष्टिवादी भट्ट लोल्लट, अनुमतिवादी शंकुक, मुक्तिवादी भट्ट नायक एवं अभिनव वादी अभिनव गुप्त हुए हैं । उक्त व्याख्याताओं के अतिरिक्त नरक कुट्ट, मातृगुप्त, राहुलक, कीर्तिधर थकली गर्भ, हर्ष देव, एवं श्रीपाद शिष्य भी व्याख्याता हुए हैं । श्रीपाद शिष्य कृत टीका 'भरत तिलक' प्राचीन मानी जाती है । अभिनव गुप्त कृत अभिनव भारती टीका छपी है । नाटचशास्त्र के संगीत अध्याय की व्याख्या बहुत हुई है । उनमें व्याख्याकार भट्ट सुमनसू, भट्टवृद्धि, भट्टपन, एवं भट्ट गोपाल है । भरतमुनि के नाटचशास्त्र का रसभावाध्याय भारतीय मनोविज्ञान का आधार ग्रथ माना गया है । भरतमुनि के मुख्य शिष्य मातंग, दत्तिल, एवं कोहल ने नाटचशास्त्र के आधारपर संगीत पूरक स्वतन्त्र ग्रंथ की रचना की हैं । सदाशिव एवं नन्दिकेश्वर ने नृत्य तथा भट्ट तौतभ आदिने रसमीमांसा

पर रचना की है। कुछ लोगों का मत है कि नाटच-शास्त्र ईसापूर्व द्वितीय शताब्दी की रचना है।

नाटचशास्त्र भारतीय नाटचशास्त्र एवं नाटच प्रयोग शास्त्र का प्रामाणिक ग्रंथ है। भरत के रचित नाटचशास्त्र में 'नन्दि भारत संगीत पुस्तकम्' निर्देश प्राप्त होता है। इस आधार पर अनुमान लगाया गया है। इनका नाम नन्दिभरत भी था। नन्दिभरत की अन्य रचनाएँ अभिनयदर्पण, अभिनयशास्त्र तथा संगीत शास्त्र उपलब्ध है। विष्णु पुराण ने 'गंधर्व वेद' संगीत शास्त्रीय ग्रंथ का भी रचनाकार भरतमुनि को माना है। (विष्णु० : ३ : ६ २७) नटसूत्र पाणिनी काल में थे। (पा : ४ : ३ : ११०) भरत ने इन्हीं नट्सूत्रों का संग्रह एवं विस्तार कर अपने नाटचशास्त्र की रचनाएँ की है। नाटच प्रयोग में अभिनयकर्ता एवं अभिनेताओं के मार्ग दर्शक नट-सूत्र थे।

भरत द्वारा रचित मूल प्रामाणिक नाटचशास्त्र उपलब्ध नहीं है। सांप्रत उपलब्ध नाटचशास्त्र का अधिक भाग प्रक्षिप्त माना गया है। उसे एक नहीं अनेक ग्रंथकारों की रचना कहा गया है। उसमें कुछ श्लोक अनुष्टुभ् तथा कुछ आर्यावृत्त में रचे गये हैं। कुछ भाग गद्य में हैं।

नाटचशास्त्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक कथा है। एक समय इन्द्रसहित देव गण प्रजापति ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित हुए। उनसे प्रार्थना किये। नेत्र एवं श्रोत्र को तृप्ति हेतु किसी कला माध्यम का निर्माण पितामह करें। देवताओं के निवेदन को ब्रह्मा ने स्वीकार किया। ब्रह्मा ने 'नाटचवेद' नामक पाँचवें वेद की रचना की। 'नाटचवेद' के अनुसार प्रथम नाटच प्रयोग का आयोजन इन्द्र के असुरों पर प्राप्त किये विजय के सम्मानार्थ भरतमुनि ने इन्द्र के राजा प्रासाद में किया गया। इस नाटक का कथाविषय देवासुर संग्राम था। उसे देखते ही असुर गण सन्तप्त हो गये। उन्होंने अपनी माया से नाटच प्रयोग में भाग लेने वाले अभिनेताओं की वाणी, स्मृति एवं अभिनय शक्तिपर पाश डालना आरम्भ किया। नाटच प्रयोग में बाधा उपस्थित हो गयी।

ब्रह्मा ने राक्षसों से पूछा। क्यों वे नाट्य अभि, नय में विघ्न उपस्थित करते थे। राक्षसों ने उत्तर दिया भरत मुनि निर्मित नाट्य कृति में राक्षसों का चित्रण देवों की अपेक्षा गिरे हुए खल नायक के रूप में किया गया है। ब्रह्मा ने कहा कि नाट्यवेद की रचना उन्होंने मानव जीवन का साकार रूप दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करने के लिए किया है। इसका उद्देश्य ज्ञान एवं मनोरंजन दोनों को दर्शकों के सम्मुख उपस्थित करना है।

भरत नाट्य शास्त्र में कथा दी गयी है कि किस प्रकार स्वर्ग से नाट्य कला पृथ्वी पर आयी। नाटक के दर्शक ऋषियों का व्यंजना पूर्ण हाव भाव से अभिनय कर्ताओं ने उपहास किया। ऋषि गण क्रुद्ध हो गये। शाप दिये उच्च श्रेणी के कलाकार होने पर भी समाज में निम्न एवं गिरे होकर स्थित होंगे। अपनी स्त्रियों एवं पुत्रों के आधार पर उनका जीवन यापन होगा।' नाटच-शास्त्र गुप्त न हो जाय अतएव यह कला भरत ने अपने पुत्र एवं स्वर्ग की अप्सराओं को सिखाया। उन्हें पृथ्वी पर नाटच का प्रचार करने का आदेश दिया। पृथ्वी पर आने के पूर्व ब्रह्मा ने उन्हें आशीर्वाद दिया—'तुम्हारी कला लोगों की सर्वप्रिय एवं अमर रहेगी।' मत्स्य पुराण (२४ : १-३२) में कथा दी गयी है कि 'लक्ष्मी स्वयंवर नाटच वृत्ति' में उर्वशी लक्ष्मी की भूमिका कर रही थी। उससे त्रुटि हो गयी। भरत ने उसे पृथ्वी पर जाकर पुरुरवस् राजा की पत्नी बनने का शाप दिया।

भरत नाटचशास्त्र में नाटच कृतियों के दश प्रकार माने गये हैं—नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डीम, व्यायोग, समवकार वीथी, उश्रुटठंक, एवं ईहामृग। अग्नि पुराण में भरत नाटचशास्त्र के प्रचुर उद्धरण प्राप्त होते हैं। (३३७-३४१) उसमें नाटच कृतियों के २७ प्रकार दिये गये हैं। नाटच-शास्त्र में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स एवं

तेजोविशेषचकितैर्जनैः परिहृतान्तिकम् ।
नर्तकी कमला नाम कान्तिमन्तं ददर्श तम् ॥४२४॥

४२४. तेज विशेष से चकित, जब लोग उसके समीप से हट गये, तब उस कान्तिमान को, कमला नाम्नी नर्तकी ने देखा ।

असामान्याकृतेः पुंसः सा ददर्श सविस्मया ।
अंसपृष्ठेन धावन्तं करं तस्यान्तरान्तरा ॥४२५॥

४२५. विस्मित वह, असामान्याकृति उस पुरुष का बीच बीच में कन्धे से होकर, धावित होते हाथ को देखी ।

अचिन्तयत्ततो गूढं चरन्नेष भवेद्ध्रुवम् ।
राजा वा राजपुत्रो वा लोकोत्तरकुलोद्भवः ॥४२६॥

४२६. तदनन्तर उसने चिन्तन किया, 'निश्चय ही गुप्त रूप से विचरण करता, यह उच्च-कुलोत्पन्न राजपुत्र अथवा राजा है—

एवं ग्रहीतुमभ्यासः पृष्ठस्थाः पर्णवीटिकाः ।
अंसपृष्ठेन येनायं लसत्पाणिः प्रतिक्षणम् ॥४२७॥

४२७. 'इस प्रकार पृष्ठहस्त पर्णवीटिका[1] लेने का अभ्यास है, जिससे यह अंस (कन्धा) से सुन्दर हाथ प्रतिक्षण करता है ।

अद्भुत आठ रसों का विवरण मिलता है । शांतरस का उसमें अन्तर्भाव नहीं किया गया है । वह विदग्ध काव्य का रस माना जाता है ।

महाकवि भास के काल में भरत का नाटचशास्त्र सुविख्यात था । कालिदास को इसका ज्ञान था । 'विक्रमोर्वशीयम्' में भरत नाटच-निर्देशक के रूप में इन्द्र के राजभवन में प्रवेश करता चित्रित किया गया है। इस नाट्यशास्त्र में भरत के अष्ट रस संबंधी विवरण प्राप्त हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२५ में 'पृष्ठेन' का पाठ भेद 'पृष्ठेथ' मिलता हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४२७ में 'एवं' का 'नूनं' तथा 'ग्रहीत' का पाठ भेद 'गृहीत' तथा 'लसत्पाणि' का पाठभेद 'धावत्पाणि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४२७. (१) पर्णवीटिका : प्रचलित शब्द पान बीड़ा है । पान बीड़ा शब्द पर्ण वीटिका का अपभ्रंश है । पान का संस्कृत नाम ताम्बूल है । पर्ण पत्ता को कहते हैं । पर्ण शब्द का अपभ्रंश पान है । उत्तर भारत में पान बोलते समय 'पान-पत्ता' प्रायः अभ्यास के कारण कहते हैं । पान खाना भारतीय कुलीन वर्ग का एक चिन्ह है । मुसलमानों में 'खर्च पानदान' एक रिवाज हो गया है । जहाँ स्त्रियों के परम्परागत व्यवहार एवं रीति के अनुसार इसका कानून की तरह पालन किया जाता है ।

लोलश्रोत्रपुटो मदोत्कमधुपापातात्ययेऽपि द्विपः
सिंहोऽसत्यपि पृष्ठतः करिकुले व्यावृत्य विप्रेक्षिता ।
मेघौन्मुख्यशमेऽप्यशान्तवदनोद्गीर्णस्वरो बर्हिण-
श्रेष्ठानां विरमेन्न हेतुविगमेऽप्यभ्यासदीर्घा स्थितिः ॥४२८॥

४२८. 'मद्यपान के लिए उत्सुक, मधुपों के अभाव में भी; गजकर्ण पत्र को चंचल रखता है, पीछे गजसमूह के न रहने पर भी सिंह मुड़ मुड़कर देखता है; मेघागमन के अभाव में भी मयूर शान्त वदन से केका ध्वनि करते हैं, हेतु के अपगत होनेपर भी, चेष्टाओं के दीर्घ अभ्यास की स्थिति, विरमित नहीं होती ।"

शास्त्रों में ताम्बूल के साथ पूंगीफल का उल्लेख मिलता है, आसाम आदि स्थानों में जहाँ सुपाड़ी होती है, वहाँ हरी सुपाड़ी के साथ पान खाते हैं। पान खाने के साथ खैर चूना, सोपाड़ी लगाकर खाना यह रिवाज बहुत बाद का मालूम पड़ता है। शास्त्रीय वर्णन पान के साथ केवल सुपाड़ी का आता है। दक्षिण में पान सुपाड़ी तथा चूना लगाकर पान खाते हैं।

वीटिका शब्दका अपभ्रंश बीड़ा है। बीड़ा उठाना किसी कार्य के करने की प्रतिज्ञा करना है। कुछ समय पूर्व देशी रियासतों में प्रथा थी। पान का लगा बीड़ा नहीं दिया जाता था। पान सुपाड़ी खैर चूना अलग रखा रहता था। दरबारी लोग स्वयं लगा कर खाते थे।

काशी और खासकर मेरे घर चार सौ गज दूर पान दरीबा है। मेरे महाल में बरई जाति पान का रोजगार करते हैं उसकी आबादी है। काशी का मघई पान विश्व में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। वह चाँदी के पत्र के समान उज्ज्वल होता है। उसे एक वर्ष तक साधारणतया रखते हैं। यह पान बरई की स्त्रियाँ कमाती हैं। पान का पत्ता प्रतिदिन तथा दो चार दिन बाद देखती है। उनमें जिनको शीघ्र सड़ने का लक्षण मालूम होता है इसे उस गात कहते हैं। उसे निकाल कर दो सौ पत्तोंकी ढोली बनाकर बेच देते हैं। प्रकार पान बीछने और कमाने का काम सर्वदा चलता रहता है। मैं अपनी बाल्यावस्था में अपने पड़ोसी के यहाँ बैठकर शौक के कारण स्वयं पान बनाता था। पुरुष या तो पान की ढोली बनाते हैं। अथवा दुकानों पर पान लगा कर बेचते हैं। चार बीड़ा का एक चौकड़ा होता है। काशी का पान मुख में लाली लाता है। अधर रक्त वर्ण होते हैं। गुणकारी, कफ एवं पित्त नाशक होता है। भोजन के पश्चात् पान खाना पाचन की दृष्टि से उत्तम माना गया है। ज्वर आदि में आयुर्वेद की औषधि पान के रस में देते हैं।

मुसलमानों ने पान खाने के रिवाज को हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अपना कर अपने सामाजिक जीवन का एक अंग बना लिया है। दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में पान खाने का बहुत रिवाज था। थाईलैण्ड में कुछ समय पूर्व प्रत्येक कुलीन महिला अपने साथ पान डब्बा रखती थी। भारत में सर्वत्र पान खाया जाता है। वरमा, नैपाल, श्री लंका में अवधी पान खाने का बहुत प्रचलन है। दक्षिण पूर्व के देशों में पान का रिवाज कम होता जा रहा है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १३१वाँ श्लोक है।

इत्यन्तश्चिन्तयन्ती सा कृत्वा संक्रान्तसंविदम् ।
सखीमभिन्नहृदयां विससर्ज तदन्तिकम् ॥४२९॥

४२९. इस प्रकार मन में सोचती हुई, उसने अभिन्न हृदय (अन्तरंग) सखी को अपना मन्तव्य समझाकर, उसके पास विर्साजत किया ।

प्राग्वत्पृष्ठं गते पाणौ पूगखण्डांस्तयाऽर्पितान् ।
वक्त्रे क्षिपञ् जयापीडः परिवृत्त्य ददर्श ताम् ॥४३०॥

४३०. पूर्ववत् हाथ के पीछे जाने पर, उसके द्वारा अर्पित, पूग[1] खण्ड को मुंह में डालते हुए, जयापीड ने परिवृत्त होकर, उसे देखा।

भ्रूसंज्ञयाऽसि कस्य त्वं पृष्टाया इति सुभ्रुवः ।
ददत्या वीटिकास्तस्या वृत्तान्तमुपलब्धवान् ॥४३१॥

४३१. इस प्रकार भ्रू संकेत से 'कस्य त्वं' (तुम किसकी हो) इस प्रकार प्रश्न करने पर, वीटिका[1]दात्री सुभ्रू से उस (कमला) का वृत्तान्त उपलब्ध किया ।

तया जनितदाक्षिण्यस्तैस्तैर्मधुरभाषितैः ।
सख्याः समाप्तनृत्ताया निन्ये स वसतिं शनैः ॥४३२॥

४३२. उसने उन उन मधुर वचनों द्वारा प्रसन्न उसे, सखी के नृत्य समाप्त होने पर, उसके घर धीरे से ले गयी ।

अग्राम्यपेशलालापा तथा तं सा विलासिनी ।
उपाचरत्पराध्यश्रीः सोऽप्यभूद्विस्मितो यथा ॥४३३॥

४३३. अग्राम्य एवं मधुर आलाप करनेवाली; ऐश्वर्य शालिनी विलासिनी ने, इस प्रकार उसका उपचार किया जिससे वह, बहुत विस्मित हो गया ।

पादटिप्पणी :

४२९ (१) कमला ने अपनी सखी को दूती बनाकर भेजा । कल्हण ने कमला को उपमा मुग्धा श्लोक ४ : ४४८ में कहा है । कमला की सखी सफल दूत प्रमाणित हुई थी । साहित्य दर्पण दूती का लक्षण देता है ।

दूत्याः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी ।
वाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः सवयं तथा ।

दूती का गुण कहा गया है :

कलाकौशल मुत्साही भक्तिश्चित्तज्ञता स्मृतिः ।
माधुर्यं नर्मविज्ञानं वाग्मिता चेति तद् गुणाः ॥

(सा० द० ३ : १३८-१२)

पादटिप्पणी :

४३०. (१) पूग खण्ड : सुपाड़ी का टुकड़ा या डली : मुख में पान रखने के पश्चात् प्रायः लोग इच्छानुसार अधिक सुपाड़ी तथा सुरती अथवा तम्बाकू मुख में डालने के अभ्यस्त होते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३१ में 'ददत्या' का पाठभेद 'ददन्या' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४३१. (१) वीटिका : पान का बीड़ा—इसे दक्षिण में विडा और उत्तर भारत में बीड़ा कहते है । दोनों ही शब्द बीटिका के अपभ्रंश तथा तद्भव हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३२ में 'स' का पाठभेद 'स्व' मिलता है ।

ततः शशाङ्कधवले संजाते रजनीमुखे ।
पाणिनाऽऽलम्ब्य भूपालं शय्यावेश्म विवेश सा ॥४३४॥

४३४. तदनन्तर शशांक धवल रजनीमुख (सायंकाल) होने पर, उसने पाणि से भूपाल को ग्रहण कर, शय्यावेश्म में प्रवेश किया ।

ततः काञ्चनपर्यङ्कशायी मैरेयमत्तया ।
तयाऽर्थितोऽपि शिथिलं विदधे नाधरांशुकम् ॥४३५॥

४३५. तदुपरान्त काञ्चन-पर्यंकशायी उसने मैरेयमत्ता[1] उस (कमला) के प्रार्थना करने पर भी, अधरांशुक[2] (अधोवस्त्र) शिथिल नहीं किया ।

प्रवेशयन्निव बृहद्वक्षस्तां सत्रपां ततः ।
दीर्घबाहुः समाश्लिष्य स शनैरिदमब्रवीत् ॥४३६॥

४३६. दीर्घबाहु वह सलज्जित, उसे अपने बृहद् वक्ष में प्रविष्ट सा करता हुआ, आलिंगन कर शनैः शनैः यह कहा—

न त्वं पद्मपलाशाक्षि न मे हृदयहारिणी ।
किं तु कालानुरोधोऽयं सापराधं करोति माम् ॥४३७॥

४३७. 'हे पद्मपलाशाक्षि ! तुमने मेरे हृदय का हरण नहीं किया, ऐसी बात नहीं है; किन्तु यह कालानुरोध मुझे अपराधी कर रहा है ।

दासस्तवायं कल्याणि गुणैः क्रीतोऽस्त्यकृत्रिमैः ।
अचिराज्ज्ञातवृत्तान्ता ध्रुवं दाक्षिण्यमेष्यसि ॥४३८॥

४३८. 'हे कल्याणि ! तुम्हारे अकृत्रिम गुणों से खरीदा हुआ, तुम्हारा दास हूँ । शीघ्र ही वृत्तान्त ज्ञात होने पर, तुम निश्चय ही प्रसन्न होगी ।

कार्यशेषमनिष्पाद्य सज्जं मानिनि कंचन ।
अभोगे कृतसंकल्पं सुखानां त्वमवेहि माम् ॥४३९॥

४३९. 'हे मानिनि ! बिना सम्पूर्ण कार्य सम्पादन किये, सुखों का भोग न करने का संकल्प मैंने किया है तुम जानो ।'

पादटिप्पणी :

४३५ (१) मैरेय : गुड़ और धौ के फूलों की बनी हुई मदिरा विशेष है । प्राचीन काल में बहुत पी जाती थी । इसका अर्थ मार (काम) को पैदा करने वाला होता है । एक अर्थ इसका और होता है 'मिरा' स्थान में बनने वाली मदिरा ।

(२) अधरांशुक = कटि के नीचे पहनने वाले वस्त्र 'अधोवस्त्र' को कहते हैं, कुट्टनीमतम् में 'सहज अंशुक' शब्द का प्रयोग किया गया है । (श्लोक १०५४)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३८ में 'वायं' का 'वाये' तथा ज्ञात' का पाठभेद 'ज्जात' मिलता है ।

तामेवमुक्त्वा पर्यङ्कं साङ्गुलीयेन पाणिना ।
वादयन्निव निःश्वस्य श्लोकमेतं पपाठ सः ॥४४०॥

४४०. उसने उससे इस प्रकार कहकर, अङ्गुलीयक[1] युक्त पाणि से पर्यंक बजाते हुए, निःश्वास लेकर, यह श्लोक पढ़ा—

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः ।
अनाक्रम्य जगत्कृत्स्नं नो संध्यां भजते रविः ॥४४१॥

४४१. ''बिना विजयाभिलाषा पूर्ण किये; मनस्वी के लिए स्त्रीविषयिणी चिन्ता कैसी क्योंकि सूर्य सम्पूर्ण जगत् आक्रान्त किये बिना, संध्या का सेवन नहीं करता।''

श्लोकेनात्मगतं तेन पठितेन महीभुजा ।
सा कलाकुशलाऽज्ञासीन्महान्तं कंचिदेव तम् ॥४४२॥

४४२. राजा के पढ़े, उस श्लोक से कला कुशल, उस (नर्तकी) ने आत्मगत, उसे कोई महान् पुरुष माना ।

गन्तुकामं च तं प्रातर्नृपं प्रणयिनी बलात् ।
अर्थयित्वा चिरं कालमप्रस्थानमयाचत ॥४४३॥

४४३. प्रातः काल जब कि नृपति जाना चाहता था, तब प्रणयिनी ने उसे बलात् प्रार्थना करके चिरकाल यावत् न जाने की याचना की ।

एकदा वन्दितुं संध्यां प्रयातः सरितस्तटम् ।
चिरायातो गृहं तस्या ददर्श भृशविह्वलम् ॥४४४॥

४४४. एक दिन संध्या[1] वन्दन हेतु सरिता तट पर गया और विलम्ब से गृह लौटने पर उस (कमला) को बहुत विह्वल देखा ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४० में 'वादयन्निव' का पाठभेद 'कथयन्निव' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४०. (१) अंगुलीयक : कश्मीर में अंगूठी के लिये अंगुलीयक शब्द बहुत प्रचलित था । लोक प्रकाश में क्षेमेन्द्र ने आभूषणों की तालिका में अंगुलीयक का भी उल्लेख किया है । (पृष्ठ ७)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४१ में 'त्कृत्स्नं' का पाठभेद 'च्चित्र' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १३२ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४३ में 'चिरं' का पाठभेद 'मितं' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४४ में 'सरितस्तटम्' का 'स सरित्तटम्' तथा 'विह्वलम्' का पाठभेद 'विह्वलाम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४४. (१) सन्ध्या वन्दन : त्रैकालिक सन्ध्या

किमेतदिति पृष्टाऽथ तमूचे सा शुचिस्मिता ।
सिंहोऽत्र सुमहान् रात्रौ निपत्याहन्ति देहिनः ॥४४५॥

४४५. 'यह क्या[१]' यह पूछने पर उस शुचिस्मिता (कमला) ने उससे कहा--'यहाँ एक सुमहान् सिंह रात्रि में प्राणियों को आक्रान्त कर मार डालता है—

नरनागाश्वसंहारः कृतस्तेन दिने दिने ।
त्वय्यभूवं चिरायाते तद्भयेन समाकुला ॥४४६॥

४४६. 'वह प्रति दिन नर, नाग, अश्व संहार करता है, तुम्हारे विलम्ब से आने के कारण हमलोग उस भय से आकुल थे ।

राजानो राजपुत्रा वा तद्भयेन विसूत्रिताः ।
गृहेभ्यो नात्र निर्यान्ति प्रवृत्ते क्षणदाक्षणे ॥४४७॥

४४७. 'यहाँ उस (सिंह) के भय से विश्रृङ्खलित राजा एवं राज पुत्र रात्रि काल होने पर गृहों से नहीं निकलते हैं'

तामिति ब्रुवतीं मुग्धां निषिध्य च विहस्य च ।
सव्रीड इव तां रात्रिं जयापीडोऽत्यवाहयत् ॥४४८॥

४४८. इस प्रकार कहते, उस मुग्धा[१] को जयापीड ने सहास निषिद्ध कर और सलज्जित रात्रि व्यतीत किया ।

प्रातः मध्याह्न तथा संध्या काल की जाती है । प्रातः काल, रात्रि तथा दिन के सन्धिकाल; मध्याह्न में पूर्वाह्न तथा उत्तराह्न के सन्धि काल तथा सन्ध्या समय दिवस तथा रात्रि के सन्धि काल में सन्ध्या करने का विधान है । सन्ध्या प्रत्येक व्यक्ति के लिये विहित किया गया है । संध्या वन्दन प्रायः जलाशय के तट पर स्नान, मार्जनादि करने के पश्चात् किया जाता है । यहाँ पर सन्ध्या वन्दन करने के लिये राजा का सरिता तटपर जाना स्वाभाविक था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४६ में 'त्वय्यभूवं' का पाठभेद 'त्वया दूरं' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४४८ में 'ब्रुवतीं' का पाठभेद 'ब्रुवतां' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४८ (१) मुग्धा की परिभाषा की गयी है—

प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा ।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा
॥ सा० द० : ३:५० ॥

स्वकीया नायिका का एक भेद है । मुग्ध शब्द का अर्थ है—सरल, भ्रमित, विभ्रान्त, स्तब्ध एवं विमूढ़, इस नायिका में नवयौवन का स्फुरण आरम्भ ही हुआ रहता है । भानुदत्त ने परिभाषा की है—'तत्राङ्कुरितयौवना मुग्धा' (रसमंजरी) रसार्णव में दूसरी परिभाषा दी गयी है—

'नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि'

मुग्धा की एक और परिभाषा मिलती है—

मुग्धा नववधूस्तत्र नवयौवनभूषिता ।
नवानङ्गरहस्येऽपि लज्जा प्राप रतिर्यथा ॥

अपरेद्युर्दिनापाये निर्गतो नगरान्तरात् ।
सिंहागमप्रतीक्षोऽभून्महावटतरोरधः ॥४४९॥

४४९. दूसरे दिन सायंकाल नगरान्तर से निकल कर महावट[1] वृक्ष के नीचे सिंहागमन की प्रतीक्षा किया।

अदृश्यत ततो दूरादुत्फुल्लबकुलच्छविः ।
अट्टहासः कृतान्तस्य संचारीव मृगाधिपः ॥४५०॥

४५०. तदनन्तर दूरसे कृतान्त (यम) के संचारी अट्टहास तुल्य, उत्फुल्ल बकुल[1] तुल्य, कान्तिवान् मृगाधिप दिखायी दिया।

अध्वनाऽन्येन यान्तं तमथ मन्थरगामिनम् ।
राजसिंहो नदन् सिंहं समाह्वयत हेलया ॥४५१॥

४५१ मन्थरगतिसे अन्य मार्ग से जाते हुए उस सिंह को राजा ने सिंहनाद करते हुए हेला से ललकारा।

स्तब्धश्रोत्रो व्यात्तवक्त्रः कम्प्रकूर्चः प्रदीप्तदृक् ।
उदस्तपूर्वकायस्तं सगर्जः समुपाद्रवत् ॥४५२॥

४५२. कानों को खड़ाकर, मुख फैलाकर, कूर्च को कम्पित कर प्रदीप्तनेत्र गर्जन सहित, पूर्वाङ्ग उठाकर उस (राजा) के ऊपर टूटा।[1]

पादटिप्पणी :

४४९. (१) महावट : दक्षिण तथा पश्चिम भारत में वट को वड़ तथा उत्तर भारत में बरगद या वट कहते हैं। महावट का अर्थ विशाल बटवृक्ष है।

पादटिप्पणी :

४५०. (१) बकुल : उत्तर भारत में बकुल को मौलसिरी, मौसरी कहते हैं। शिव के प्रिय पुष्पों में मौलसिरी है। वे उसकी माला धारण करते हैं। मौलसिरी का नाम ही शिव है। उसकी सुगन्ध भी तो मीठी होती है। मौलसरी दो प्रकार की होती है। एक वर्ष पर्यन्त फूलती रहती है। दूसरी वर्षा ऋतु में खूब फूलती है। इसकी दातुन या दतुवन को वज्र-दन्ती कहते हैं। इसकी दतुवन करने पर दाँत वज्र के समान मजबूत तथा व्याधिरहित हो जाते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५१ में 'राजसिंहो' का पाठभेद 'राजसिंहं' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४५२ में 'कम्प्र' का पाठभेद 'कम्प' मिलता है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १३३ वाँ श्लोक हैं।

४५२. (१) कल्हण ने आक्रमण के लिये तत्पर सिंह की मुद्रा का सजीव चित्रांकन किया है। कल्हण ने या तो स्वयं शिकार किया था, अथवा शिकार करते देखा था अथवा किसी चतुर शिकारी से सिंह के शिकार का वर्णन सुना था। अन्यथा इतना स्वाभाविक वर्णन करना कठिन हैं।

तस्य न्यस्याननबिले कफोणिं पततः क्रुधा ।
क्षिप्रकारी जयापीडो वक्षः क्षुरिकयाऽभिनत् ॥४५३॥

४५३. क्षिप्रकारी जयापीड ने क्रोध से आक्रमण करते, उस (सिंह) के आनन बिल में[१] केहुनी रख कर क्षुरिका से वक्ष विदीर्ण कर दिया ।

शोणितं जग्धगन्धेभसिन्दूराभं विमुञ्चता ।
एकप्रहारभिन्नेन तेनात्यज्यत जीवितम् ॥४५४॥

४५४. एक (ही) प्रहार से भिन्न हो भुक्तगन्धगज के समान सिन्दूराभ शोणित विमुञ्चित करते हुए उसने जीवितोत्सर्ग कर दिया ।

आमुक्तव्रणपट्टः स कफोणिमथ गोपयन् ।
प्रविश्य नर्तकीवेश्म निशि सुष्वाप पूर्ववत् ॥४५५॥

४५५. उसने व्रण पर वस्त्र की पट्टी बाँधकर, कफोणि (केहुनी) को छिपाते हुए, रात्रि में नर्तकी गृह में प्रवेश कर, पूर्ववत् शयन किया ।

प्रभातायां विभावर्यां श्रुत्वा सिंहं हतं नृपः ।
प्रहृष्टः कौतुकाद् द्रष्टुं जयन्तो निर्ययौ स्वयम् ॥४५६॥

४५६. रात्रिगत होने पर प्रातः काल सिंह को हत सुनकर, प्रसन्न राजा जयन्त[१] कौतुक वश स्वयं देखने के लिये आया ।

पादटिप्पणी:

४५३. (१) आनन बिल : मुख के भीतरी भाग से यहाँ तात्पर्य है । वर्णन से प्रतीत होता है कि जयापीड ने अपनी केहुनी मुख में दाँत के पीछे वाले भाग में रखकर सिंह पर आक्रमण छुरिका से किया था । यदि दाँतों के बीच उसका हाथ आ जाता तो वह सिंह का स्वतः शिकार बन जाता और कंकण उसके हाथ से निकल कर मुख में न रह जाता । दाँतों के आघात से हाथ और कंकण दोनों टूट जाते । कंकण मुख में रह जाना उसी समय सम्भव हो सकता है, जब सिंह मर कर गिरने लगा होगा । राजा ने वेग से ही अपना हाथ सिंह के मुख से निकाल लिया होगा । ताकि स्वयं गिरने से बच जाय । आहत सिंह अत्यन्त भयंकर प्रतिहिंसक हो जाता है । राजा सिंह को आहत कर स्वयं हाथ खींचकर, अपनी रक्षा करने के लिये पैंतरा बदल कर, खड़ा हो गया होगा । क्योंकि मरणासन्न आहत सिंह मरने के पूर्व नाद करता उछल कर साँस तोड़ता है ।

पादटिप्पणी :

४५६. (१) जयन्त = अभी तक प्राप्य ऐतिहासिक सामग्री से जयन्त का कुछ पता नहीं चलता । केवल राजतरंगिणी में ही गौड़ नरेश जयन्त का नाम मिलता है । सम्भव है भविष्य के ऐतिहासिक अनुसन्धानों से जयन्त के जीवन तथा गौड़राज पर कुछ प्रकाश पड़ जाय ।

स दृष्ट्वा तं महाकायमेकप्रहृतिसंहृतम् ।
साश्चर्यो निश्चयान्मेने प्रहर्तारममानुषम् ॥४५७॥

४५७. वह (जयन्त) उस महाकाय (सिंह) को एक प्रहार से हत देखकर, आश्चर्य पूर्वक प्रहर्ता को अमानुष निश्चय किया ।

तस्य दन्तान्तराल्लब्धं केयूरं पार्श्वगार्पितम् ।
श्रीजयापीडनामाङ्कं ददर्शाऽथ सविस्मयः ॥४५८॥

४५८. उस (सिंह) के दन्त मध्य से प्राप्त एवं जयापीड नाम से अङ्कित[1] केयूर को जिसे कि अनुचर ने अर्पित किया था विस्मय पूर्वक उसने देखा—

स्यात्कुतोऽत्र स भूपाल इति ब्रुवति पार्थिवे ।
जयापीडागमाशङ्कि पुरमासीद्भयाकुलम् ॥४५९॥

४५९. 'वह भूपाल यहाँ कैसे होंगे ?' इस प्रकार पार्थिव [जयन्त] के कहने पर जयापीडके आगमन की आशंका से वह पुर भयाकुल हो गया ।

ततः पौरान् विमृश्यैवं जयन्तः क्षितिपोऽब्रवीत् ।
प्रहर्षावसरे मूढाः कस्माद्वो भयसंभवः ॥४६०॥

४६०. तदनन्तर राजा जयन्त ने इस प्रकार विचार कर, पुरवासियों से कहा—'मूढ़ ! तुम लोगों को हर्ष के अवसर पर भय किससे ?'

श्रूयते हि जयापीडो राजा भुजबलोर्जितः ।
केनापि हेतुना भ्राम्यन्नेकाक्येव दिगन्तरे ॥४६१॥

४६१. 'सुना जाता है, भुजबल से ऊर्जस्वी राजा जयापीड, किसी कारण से एकाकी, दिगन्तर में भ्रमण कर रहे हैं ।

राजपुत्रः कल्लट इत्युक्त्वा, कल्याणदेव्यसौ ।
तस्मै नियमिता दातुं निष्पुत्रेण सुता मया ॥४६२॥

४६२. 'उन्होंने अपना परिचय राजपुत्र कल्लट[1] कहकर दिया है । पुत्र रहित मैंने अपनी कल्याण देवी को उसे प्रदान करने का निश्चय किया है ।

पादटिप्पणी :

४५८. (१) अङ्कित = आज कल के समान उस सुदूर प्राचीन काल में आभूषणों—मुख्यतया अँगूठी कंकणादि—पर नाम अङ्कित करने की प्रथा प्रचलित थी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६० में 'भयसंभवः' का पाठभेद 'भयमागतम्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४६२ में 'इत्युक्त्वा' का पाठभेद 'इत्युक्ता' तथा 'सुता' का 'सता' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४६२. (१) कल्लट = यह बनावटी नाम जया-

सोऽन्वेष्यश्चेत्स्वयं प्राप्तस्तद्रत्नाहरणेच्छया ।
रत्नद्वीपं प्रतिष्ठासोर्निधानासादनं गृहात् ।।४६३।।

४६३. 'अन्वेष्य, यदि वह स्वयं प्राप्त हो गया है, तो यह रत्न प्राप्त इच्छा से रत्न द्वीप में ही रत्नप्राप्ति तुल्य है ।

अस्मिन्नेव पुरे तेन भाव्यं भुवनशासिना ।
ब्रूयादेनं ममाऽन्विष्य योऽस्मै दद्यामभीप्सितम् ।।४६४।।

४६४. 'भुवन शासक, वह इसी पुर में है, जो अन्वेषण कर उसे मुझे सूचित करे, उसे अभीप्सित प्रदान करूँगा ।'

वाचि सम्प्रत्ययाः पौरा भूपतेः सत्यवादिनः ।
अन्विष्य कमलावासवर्तिनं तं न्यवेदयत् ।।४६५।।

४६५. सत्यवादी भूपति के वचन में विश्वास रखनेवाले नागरिक कमलागृहवर्ती, उसे खोजकर राजा से निवेदन किये ।

सामात्यान्तःपुरोऽभ्येत्य प्रयत्नेन प्रसाद्य तम् ।
ततः स्ववेश्म नृपतिर्निनाय विहितोत्सवः ।।४६६।।

४६६. अमात्यों एवं अन्तःपुर स्त्रियों के सहित नृपति पास जाकर सयत्न उसे प्रसन्न कर उत्सवपूर्वक अपने घर ले आया ।

कल्याणदेव्यास्तेनाथ कल्याणाभिनिवेशिना ।
राजलक्ष्म्या व्यपास्ताया इव सोऽजिग्रहत्करम् ।।४६७।।

४६७. उस (जयन्त) ने कल्याणाभिनिवेशी, उस नृपति को राज्यलक्ष्मी तुल्य कल्याण देवी का कर ग्रहण कराया ।

पीड ने अपना व्यक्तित्व छिपाने के लिये रखा था । इस नाम के किसी और राजवंशी व्यक्ति का उल्लेख राजतरंगिणी में नहीं मिलता ।

पाठभेद

श्लोक संख्या ४६४ में 'ममा' का पाठभेद 'समा' 'सम' तथा 'न्विष्य' का 'न्वेष्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४६७. (१) कल्याण देवी राजा जयन्त की कन्या थी । उसका विवाह राजा जयापीड के साथ हुआ था । (रा० ४ : ४६२) उसने कल्याणपुर की स्थापना की थीं । (रा० : ४:४८३) महाप्रतिहार पीड पद पर विभूषित की गयी थी । (रा० ४:४८५) राजा संग्रामापीड की माता थी । पृथ्विव्यापीड के पश्चात् संग्रामापीड कश्मीर का राजा हुआ था ।

व्यधाद्विनाऽपि सामग्रीं तत्र शक्तिं प्रकाशयन् ।
पञ्च गौडाधिपाञ्जित्वा श्वशुरं तदधीश्वरम् ॥४६८॥

४६८. वहाँ बिना सामग्री के शक्ति प्रदर्शित करते हुए, वह पंच गौड़ नरेशों को जीतकर, उनका स्वामी स्वसुर [जयन्त] को बना दिया ।

गतशेषं प्रभुत्यक्तं सैन्यं संवाहयन्स्थितः ।
मित्रशर्मात्मजो देवशर्माऽमात्यस्तमाययौ ॥४६९॥

४६९. अवशेष एवं प्रभु त्यक्त सैन्य को संरक्षित करनेवाला मित्रशर्मा का पुत्र अमात्यदेव शर्मा उस (जयापीड) के समीप आया ।

निजदेशं प्रति ततः स प्रतस्थे तदर्थितः ।
अग्रे जयश्रियं कुर्वन् पश्चात्ते च सुलोचने ॥४७०॥

४७०. उसके प्रार्थना पर आगे जयश्री पश्चात् दोनों सुलोचनाओं को करके, वह अपने देश को प्रस्थान किया ।

पादटिप्पणी :

४८६. (१) पंचगौड़ : ब्राह्मणों के पंचगौड़ तथा पंच द्राविड़ दो मुख्य वर्ग हैं। पांच भेद होने के कारण पंच गौड़ तथा पंच द्राविड शब्द बन गया है। (स्कन्द : सै : खं : उत्त. १)। कुछ तन्त्र ग्रंथों में वंग से लेकर भुवनेश्वर तक की सीमा गौड़ देश में मानी गयी है। (शक्ति संगम तन्त्र) एक मत और है। विन्ध्य को मध्य की सीमा मानकर विन्ध्य के उत्तर भारत को गौड देश कहा गया है। गौड़ ब्राह्मण, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में पाये जाते हैं, पंच गौड़ में सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कल के ब्राह्मणों का समावेश होता है। इनमें भी अनेक उपभेद हैं। (स्क : सं० ख : उ० ५) आधुनिक काल में गौड़ ब्राह्मणों के केवल गौड़, आदि गौड़, गुजरगौड़ अनेक भेद मिलते हैं। दधीचि पुत्र पिप्पलायन के बारह पुत्र थे। इनके नामपर गौड़ ब्राह्मणों के बारह गोत्र हुए ।

कान्यकुब्ज ब्राह्मणो के सनाढ्य, सरवरिया, आदि भेद प्रसिद्ध हैं। सारस्वत ब्राह्मणों के गौण सारस्वत, कोंकणी सारस्वत, काश्मीरी सारस्वत आदि भेद प्रचलित हैं ।

काश्मीरी सारस्वत ब्राह्मणों में कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा एवं लौगाक्षि सूत्र प्रचलित है। (वन० ८२; पद्म स्व : खं : ३)। द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : जैन : १:१:२५

पाठभेद

श्लोक संख्या ४७० में 'ते च' का पाठभेद 'तेऽथ' मिलता है ।

सिंहासनं जिताादाजौ कन्यकुब्जमहीभुजः ।
स राज्यककुदं राजा जहारोदारपौरुषः ॥४७१॥

४७१. उदार पौरुष वह राजा युद्ध में विजित कान्यकुब्जेश्वर[1] से राज्यचिन्ह सिंहासन[2] का हरण कर लिया ।

तस्मिन् प्रविष्टे स्वभुवं स्फूर्जदूर्जितविक्रमे ।
सैन्यैः समं समित्सज्जैर् जज्जो योद्धुं विनिर्ययौ ॥४७२॥

४७२. उस ऊर्ज्वस्वित् विक्रमशाली के अपनी भूमि में प्रवेश[1] करने पर, जज्ज युद्ध हेतु सुसज्जित सैन्य के साथ संग्राम के लिये निकल पड़ा ।

शुष्कलेत्राभिधे ग्रामे तेन सार्धं सुदारुणः ।
जयापीडस्य संग्रामः सुबहूनि दिनान्यभूत् ॥४७३॥

४७३. शुष्कलेत्र[1] नामक ग्राम में उसके साथ जयापीड का बहुत दिनों तक दारुण संग्राम हुआ ।

पाठभेद

श्लोक संख्यां ४७१ में 'दाजौ' का पाठभेद 'दादौ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४७१. (१) कान्यकुब्जेश्वर : जयापीड के युद्ध का समय कल्हण ने नहीं दिया है । घटना क्रम से यदि गणना की जाय तो कान्यकुब्ज विजय के पश्चात् जयापीड का कश्मीर में प्रवेश हुआ था । जज्ज केवल तीन वर्ष तक राजा था । जज्ज ने राज्य का अपहरण किया था । जयापीड के युद्ध में श्रीदेव चाण्डाल द्वारा मारा गया था । वह समय श्री स्तीन के अनुसार सप्तर्षि ३८२८ वर्ष ३ मास २८ दिन होता है । डा० आर० एस० त्रिपाठी का यह मत है कि कान्यकुब्जेश्वर वज्रायुध (सन् ७७० ई०) अथवा इन्द्रायुध (सन् ७८३–७८४ ई०) होंगे ठीक नहीं बैठता । क्योंकि वह काल स० ७५२ ई० होता है । यदि श्रीदत्त की काल गणना मान ली जाय तब भी सन् ७४५ ई० आता है । जब कि वज्रायुध तथा इन्द्रायुध राजा भी नहीं हुए थे । वज्रायुध का समय कर्पूर मंजरी के लेखक राजशेखर के आधार पर और इन्द्रायुध का समय जैनधर्मीय हरिवंश पुराण के आधार पर दशवी शताब्दी निश्चित किया गया है ।

(२) सिंहासन : इस सिंहासन का पुनर्लेख कल्हण ने तरंग ८ श्लोक ८१ में किया है ।

पादटिप्पणी :

४७२ (१) प्रवेश : आईने अकबरी में उल्लेख मिलता है कि उसने बंगाल देश की सेना की सहायता से पुनः राज्य प्राप्त किया और जज्ज युद्ध में मारा गया । आईने अकबरी का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त एवं भ्रामक है । कल्हण का वर्णन ही मान्य है । क्योंकि अबुलफजल ने राजतरंगिणी के गलत परशियन अनुवाद पर अपना वर्णन आधारित किया है । अकबर जब कश्मीर आया तो उसे राजतरंगिणी भेंट की गयी थी और उसने उसके अनुवाद की आज्ञा दी थी । (पृष्ठ : ४३६)

पादटिप्पणी :

४७३. (१) शुष्कलेत्र : हुख लित्तर ग्राम है । पूर्वकाल में हुखलेत्रो तथा हकलित्री भी कहते थे । दुन्त परगना में है । द्रष्टव्य: पाद टिप्पणी: राज० १:१०२ ।

अनुरक्तप्रजो राजा जज्जराज्यासहिष्णुभिः ।
युधि सोऽन्वीयमानोऽभूद् ग्राम्याटविकमण्डलैः ॥४७४॥

४७४. जज्ज राज्य के असहिष्णु ग्रामीण, एवं अटवीवासी जंगली जनमण्डली ने युद्ध में उस प्रजानुरक्त राजा (जयापीड) का अनुगमन किया ।

साहायकाय राज्ञोऽहं यामीत्युक्त्वार्थिताशनः ।
मातुर्हसन्त्या जज्जस्य प्रतिज्ञायाऽऽययौ वधम् ॥४७५॥

४७५. 'मैं राजा की सहायता के लिये जा रहा हूँ'—यह कहकर भोजनप्रार्थी (श्रीदेव) हँसती हुई माता से जज्ज वध की प्रतिज्ञा करके आया ।

श्रीदेवो ग्रामचण्डालः प्राप्तो ग्राम्यैः समं युधि ।
कोऽत्र जज्ज इति भ्राम्यन् योधान्पप्रच्छ सर्वतः ॥४७६॥

४७६. युद्ध में ग्रामीणों के साथ चारों ओर भ्रमण करते हुए श्रीदेव [1] ग्राम चाण्डाल भी आया और—'यहाँ जज्ज कौन है ?' योद्धाओं से पूछने लगा ।

तृष्णार्तं स्वर्णभृङ्गारात् पिबन्तं वारि तस्य ते ।
रणमध्ये हयारूढं तं दूरात्समदर्शयन् ॥४७७॥

४७७. दूर से उन लोगों ने श्रीदेव को रण मध्य हयारूढ़ एवं तृष्णार्त उस (जज्ज) को दिखाया जो कि स्वर्ण पात्र से जल पी रहा था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४७४ में 'सोऽन्वीयमानो' का पाठ भेद 'सोऽन्विष्यमानो' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४७५ में 'र्थिताशनः' का पाठभेद 'हिताशनः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४७६. (१) श्रीदेव चाण्डाल : यहाँ पर चाण्डाल शब्द निम्न श्रेणी के ग्रामीण व्यक्तियों के लिये प्रयोग किया गया है । इस वर्ग से गाँव के चौकीदार कश्मीर में बहुत समय तक लिए जाते रहते हैं । उन्हें कश्मीरी भाषा में 'दुम्ब' कहते हैं । संस्कृत शब्द 'डोम्ब' का अपभ्रंश है । लारेन्स ने लिखा है कि ग्राम का यह वर्ग अन्यनिम्न वर्गीय ग्रामीणों से अधिक चतुर स्वभावतः होते हैं । (वैली, ३११) श्री देव नाम से स्पष्ट होता है । उन दिनों चाण्डलों का नाम कुलीनों के समान श्रोतप्रिय तथा अच्छा रखा जाता था । कश्मीर में जाति बन्धन संकुचित नहीं था । निम्न वर्ण हेय नहीं समझे जाते थे ।

भ्रमयन्क्षेपणीयं स क्षिप्त्वाऽश्मानं तदानने ।
सोऽयं हतो मया जज्ज इत्यमोघक्रियोऽनदत् ॥४७८॥

४७८. अमोघ क्रियाशील वह क्षेपणीय प्रस्तर[1] को घुमाते हुए उसके मुख पर फेंककर, 'इस जज्ज को मैंने मार डाला'—ऐसा नाद किया ।

अश्मसंरुग्णभीमास्यं मुमूर्षुं पतितं हयात् ।
विवेष्टमानं मेदिन्यां जज्जं त्यक्त्वा ययुर्निजाः ॥४७९॥

४७९. हयसे निपतित, प्रस्तर घात से विकृत मुख, पृथ्वी पर लोटते हुए, उस मुमूर्षु जज्ज को त्याग कर आत्मीयजन चले गये ।

स समर्थाहितापातचिन्तासततदुःस्थितः ।
द्रोहार्जितेन राज्येन त्रिभिर्वर्षैर्व्ययुज्यत ॥४८०॥

४८०. समर्थ शत्रु की आक्रमण की चिन्ता से निरन्तर दुःखी, वह तीन वर्ष के पश्चात् द्रोहार्जित राज्य से वियुक्त हो गया ।

न्यासापहाराद्वणिजां वेश्यानां कामिवञ्चनात् ।
द्रोहाच्चोपनता राज्ञाम् अस्थिरा एव संपदः ॥४८१॥

४८१. न्यासापहारी वणिकों, कामियों की वंचनाओं से प्राप्त वेश्याओं, एवं द्रोह से अर्जित राजाओं की सम्पत्तियां अस्थिर होती हैं ।

हते जज्जे जयापीडः प्रत्यावृत्य निजां श्रियम् ।
जग्राह दोष्णा भूभारं कृत्येन च सतां मनः ॥४८२॥

४८२. जज्ज के निहत होनेपर जयापीड ने निजश्री को परावृत्त कर, बाहु से पृथ्वी भार को और कृत्य से सज्जनों का मन ग्रहण किया ।

पादटिप्पणी :

४७८. (१) क्षेपणीय प्रस्तर : यह पूर्वी उत्तर प्रदेश में ढेलवास कहा जाता है । रस्सी में एक चमड़े का टुकड़ा लगा रहता है । उसे फंदा कहते हैं । उसपर ढेला, चक्का किंवा प्रस्तर रख कर तेजी से घुमाकर निशाना पर फेंका जाता है । इस प्रकार के क्षेपणीय प्रस्तर का उल्लेख यहूदी, ईसाई तथा मुसलिम इतिहासकारों की गाथाओं में भी मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४७९ में 'संरुग्ण' का पाठभेद 'संहर' तथा 'विवेष्ट' का 'विचेष्ट' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८० में 'जितेन' का पाठभेद 'ज्जितेन' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८१ में 'च्चोपनता' का पाठभेद 'च्चोपहता' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

सूक्तिसंग्रह का १३४ वाँ श्लोक है ।

प्रपेदे यत्र कल्याणं स विरोधिवधान्नृपः ।
देशे कल्याणपुरकृत्तत्र कल्याणदेव्यभूत् ॥४८३॥

४८३. उस नृप ने जिस स्थान पर शत्रु बध से कल्याण प्राप्त किया था, उसी स्थलपर (देश में) कल्याण देवो ने कल्याणपुर[1] का स्थापन किया।

राजा मह्लाणपुरकृच्चक्रे विपुलकेशवम् ।
कमला सा स्वनाम्नाऽपि कमलाख्यं पुरं व्यधात् ॥४८४॥

४८४. मल्लाणपुर[1] निर्माता राजा ने विपुल केशव[2] की स्थापना की। कमला देवी ने भी अपने नाम से कमलापुर[3] बसाया।

महाप्रतीहारपीडाधिकारं प्रतिपद्य सः ।
कल्याणदेवीं दाक्षिण्यादकरोदधिकोन्नताम् ॥४८५॥

४८५. उस (राजा) ने कमला देवी को महाप्रतीहारपीडा नामक अधिकार प्रदत्त कर अधिक उन्नत बना दिया।

पादटिप्पणी :

४८३ (१) कल्याणपुर : सुक्रू परगना में वर्तमान कलमपोर ग्राम है। सुपयान तथा श्रीनगर मार्ग मध्य स्थित है। उसका उल्लेख बार-बार कल्हण ने तरंग ८ में किया है। कल्याणपुर ही कलमपोर ग्राम है। (रा० : ८ : २८१४) श्रीवर ने इसका उल्लेख जैनराज तरंगिणी में (४ : ४६२, ५००) किया है। इसका पाठ कल्यान भी मिलता है। इसमें दाम ग्राम का उल्लेख किया गया है। जो वर्तमान द्राम ग्राम है। द्राम ग्राम कलमपोर ग्राम से दो मील उत्तर पश्चिम स्थित है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८४ में 'विपुलके' का पाठभेद 'मरलके' तथा 'सा' का 'स्वा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४८४ (१) मल्हाणपुर : वितस्ता अर्थात् झेलम नदी के वाम तटपर स्थित वर्तमान ग्राम मलरो या मलुर या मलेरा है।

(२) विपुल केशव : स्थान का अभी तक पता नहीं लगा है।

(३) कमलापुर : यह गाँव कलयपुर है। कमलापुर का पाठभेद कमलपुर मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८५ में 'पीडाधि' का पाठभेद 'पणाधि' तथा 'प्रतिपद्य' का 'प्रतिपाद्य' एवं 'देवी' का 'देवी' और 'कोन्नताम्' का 'कोन्नतिम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४८५ (१) महाप्रतीहारपीडा : इस उपाधि का उल्लेख कल्हण ने (त० : ४ : १४२) किया है। राज्यभवन की मुख्य प्रबन्धक किंवा व्यवस्थापिका के लिये इस शब्द का प्रयोग किया जाता था।

उत्पत्तिभूमौ देशेऽस्मिन् दूरदूरतिरोहिता ।
कश्यपेन वितस्तेव तेन विद्याऽवतारिता ।।४८६।।

४८६. उसने उत्पत्ति भूमि इस देश से दूर-दूर तिरोहित (चली गयी) विद्याओं को उसी प्रकार अवतरित किया जिस प्रकार कश्यप[१] ने वितस्ता को ।

वचोमूर्खोऽयमित्येव कस्मैचिद् वदते स्फुटम् ।
सर्वज्ञानं ददच्चक्रे सर्वान् विद्याभियोगिनः ।।४८७।।

४८७: 'यह मूर्ख है' ऐसी बात स्पष्ट रूप से कहते हुए, किसी को सर्वज्ञान प्रदान करते हुए (नृप ने) सबको विद्याभियोगी बनाया ।[१]

देशान्तरादागमय्य व्याचक्षाणान् क्षमापतिः ।
प्रावर्तयत विच्छिन्नं महाभाष्यं स्वमण्डले ।।४८८।।

४८८. क्षमापति ने देशान्तर से सुदक्ष विद्वानों को स्वमण्डल में लाकर, विच्छिन्न महाभाष्य[१] को प्रवर्तित किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८६ में 'हिता' का पाठभेद 'हितौ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८६ (१) कश्यप : गाथा है कि शूलघात (रा० ४ : ३०१) से भगवान् शंकर ने वितस्ता का अवतरण किया तो वह कई बार पापियों के स्पर्श के कारण लुप्त हो गयी थी । कश्यप इस दैवी नदी से प्रार्थना कर पुनः उसे कश्मीर में नवीन स्रोत से बहने के लिये लाये । यह कथा वितस्ता माहात्म्य में सविस्तार वर्णन की गयी है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८७ में 'सर्वज्ञानं ददच्चक्रे' का पाठभेद 'सर्वज्ञानान्ददशचक्रे' 'नासहृद्वहुधश्चक्रे' नामहृद्वहृदच्चक्रे' तथा 'भियोगिनः' का 'वियोगिनः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८७ (१) श्रोस्तीन ने पादटिप्पणी में लिखा है कि इस पद का अर्थ स्पष्ट नहीं होता । तृतीय पद से आरम्भ होने वाला पद भ्रष्ट है । 'सर्वं ज्ञानानान् ददद्' के कारण पद ठीक नहीं प्रतीत होता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८८ में 'व्याचक्षाणान्' का पाठ भेद 'व्याचक्षाणः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८८ (१) महाभाष्य : राजा अभिमन्यु के काल में चन्द्राचार्य आदि महापण्डितों ने लुप्तप्राय व्याकरण का पुनः प्रचार किया । चन्द्राचार्य ने अपने नाम पर उसका नाम चान्द्र व्याकरण रखा । क्षीर स्वामी ने अनेक व्याकरण ग्रन्थों तथा अमरकोष की टीका की है । अल्बेरूनी ने आठ श्रेष्ठ व्याकरणविदों में चन्द्राचार्य का भी उल्लेख किया है । क्षीरस्वामी का नाम नहीं दिया है । कश्मीर में दन्त कथा है कि क्षीरस्वामी ईश्वरस्वामी के पुत्र थे । अल्बेरूनी लिखता है—'व्याकरण तथा छन्दविद्या अन्य विद्याओं की सहायक हैं । हिन्दुओं की दृष्टि में इन दोनों में व्याकरण का प्रथम स्थान है । जिसके द्वारा पुरातन शैली तथा प्रांजलता दोनों को उन्होंने लिखने

क्षीराभिधाच्छब्दविद्योपाध्यायात् संभृतश्रुतः ।
बुधैः सह ययौ वृद्धिं स जयापीडपण्डितः ॥४८९॥

४८९. संभृतश्रुत शब्दशास्त्रवेत्ता उस क्षीर नामक उपाध्याय से अध्ययन कर विद्वानों के साथ जयापीड पण्डित प्रबुद्ध हो गया ।

भूपतेरात्मना स्पर्धां चक्षमे न स कस्यचित् ।
आत्मनस्तु बुधैः स्पर्धां शुद्धधीर्बह्वमन्यत ॥४९०॥

४९०. उस शुद्धधी ने अपने साथ किसी भूपति की स्पर्धा को क्षमा नहीं किया । और विद्वानों के साथ अपनी स्पर्धा का आदर किया ।

तावत्पण्डितशब्देऽभूद्राजशब्दादपि प्रथा ।
तैस्तैर्दोषैर्न तु म्लानिं कालान्तरवदाययौ ॥४९१॥

४९१. उस समय तक 'राजा' शब्द की अपेक्षा 'पण्डित' शब्द की अधिक ख्याति थी । कालान्तर के समान उन-उन दोषों के कारण भी उसमें ग्लानि नहीं आयी ।

एवं पढ़ने में प्राप्त किया है । हम मुसलमान उसमें से कुछ सीख नहीं सकते । क्योंकि वह उसी मूल की शाखा है जो हमारे पहुँच के बाहर है । मेरे कहने का अर्थ स्वयं साहित्य से है ।'

उग्रभूति के प्रकरण में वह लिखता है—'हमारे समय के राजा शाह जयपाल के पुत्र शाह आनन्द पाल का गुरु था । उसने अपना व्याकरण लिखकर कश्मीर भेजा । कश्मीर के लोग रूढ़िवादी होते हैं । अतएव उन्होंने व्याकरण को मान्यता नहीं दी । उग्रभूति ने राजा आनन्दपाल से शिकायत की । राजा ने उत्तर दिया । वह ऐसी योजना बनाएगा कि लोग वह व्याकरण पढ़ने लगेंगे । उसने २ लाख दिरहम कश्मीर भेजा । उसने प्रसारित करा दिया कि जो उसके गुरु का व्याकरण पढ़ेगा उसे धन की सहायता दी जायगी । फलस्वरूप इस व्याकरण के अध्ययन के लिये लोग दौड़ पड़े । व्याकरण की प्रतिलिपियाँ बनने लगीं । पुस्तक का कश्मीर तथा बाहर प्रचार हो गया । (अल्बेरूनी : १ : १३५-१३६) ।

पादटिप्पणी :

४८९ (१) क्षीर : क्षीर अर्थात् क्षीर स्वामी जयापीड के व्याकरण अध्यापक थे । इन्होंने अमरकोष पर टीका लिखी है । धातुपाठ एवं पाणिनि व्याकरण से सम्बन्धित कुछ ग्रन्थों की रचना की है । कश्मीर पण्डितों में प्रचलित परम्परा के अनुसार क्षीर ही क्षीर स्वामी थे । उनके पिता का नाम ईश्वर स्वामी था । विलसन ने भी यही सुझाव दिया है (एस्से : ५५) यह परम्परा बहुत प्राचीन समय से चली आ रही है । राजानक आनन्द ने वंशस्तुति जिसे उसने नैषध चरित (सन् १६५४ ई० रचना) में दिया है, उसमें उल्लेख है कि कश्मीर के राजानक वंश ने महान् व्याकरणाचार्य क्षीरस्वामी कल्लट उवट तथा मम्मट को उत्पन्न किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९० में 'भूपतेरात्मना' का पाठभेद 'भूपतिरात्मनाः' तथा 'स्पर्धां' का 'सार्धः' मिलता है ।

नृपतौ विद्वदायत्ते राजसांमुख्यकाङ्क्षिभिः ।
गृहा बभूवुर्विदुषां व्याप्ताः सेवागतैर्नृपैः ॥४९२॥

४९२. राजा के विद्वज्जनाधीन होने के कारण राजदर्शनाकांक्षी आगत नृपों से विद्वानों के गृह व्याप्त रहते थे।

समग्रहीत्तथा राजा सोऽन्विष्य निखिलान् बुधान् ।
विद्वद्भिक्षमभवद् यथाऽन्यनृपमण्डले ॥४९३॥

४९३. उस राजा ने निखिल विद्वानों का अन्वेषण कर. इस प्रकार संग्रह किया जिससे अन्य नृप मण्डल में विद्वानों का दुर्भिक्ष (नितरां अभाव) हो गया।

अध्यक्षो भक्तशालायां शुक्रदन्तस्य मन्त्रिणः ।
विद्वत्तया थक्कियाख्यस्तेन स्वीकृत्य वर्धितः ॥४९४॥

४९४. मन्त्री शुक्रदन्त के भक्तशाला[1] के अध्यक्ष थक्किय को विद्वत्ता के कारण स्वीकृत कर वर्धित किया।

विद्वान् दीनारलक्षेण प्रत्यहं कृतवेतनः ।
भट्टोऽभूद् उद्भटस्तस्य भूमिभर्तुः सभापतिः ॥४९५॥

४९५. प्रतिदिन एक लक्ष दीनार[1] वेतन प्राप्त करनेवाला विद्वान् भट्ट उद्भट[2] उस राजा का सभापति[3] था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९२ में 'राज' का पाठभेद 'राज्य' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९३ में 'ष्य नि' का पाठभेद 'ष्यन्नि' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९४ में 'थक्कि' का पाठभेद 'थाक्व' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४९४ (१) भक्तशाला : भक्तशाला प्रतीत होता है उस स्थान के लिये प्रयुक्त किया गया है, जहाँ खाद्यपदार्थ नियमित रूप से दान में दिया जाता है। धर्म भक्त तथा अक्षयिणी शब्दों (रा. १ : ३४७) का प्रयोग भक्तशाला के ही अर्थ में कल्हण ने किया है। रा० ४ : २४३ भी द्रष्टव्य है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या में 'उद्भट' का 'भट्टोद्भट्ट' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४९५ (१) दीनार : तत्कालीन प्रचलित काश्मीरी मुद्रा। जयापीड ने ताम्र दीनार चलाया था। द्रष्टव्य टिप्पणी रा० ४:६:१६

(२) भट्ट उद्भट : सभापति थे। इनका समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं नवमी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। वह अलंकारवादी आचार्य थे। उनके लिखे काव्यालंकार सार संग्रह में अलंकार तथा तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। प्रोफेसर व्हूलर को प्राप्त हुआ था। (व्हूलरः रिपोर्ट : ३५) भट्ट उद्भट निस्सन्देह अलंकार शास्त्रवेत्ता तथा लेखक थे। यह धातु पाठ के कर्ता

स दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम् ।
कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात् ।।४९६।।

४९६. 'कुट्टनी मत'[१] ग्रन्थ प्रणेता दामोदर गुप्त नामक कवि को बलि[२] के शुक्राचार्य[३] के समान उसने अपना मुख्य सचिव बनाया।

थे। (कु० : पद ३) कल्हण ने (रा० ८ : २२२) उद्भट के शब्दों का प्रयोग किया है। यदि वह व्यक्तिवाचक संज्ञा मानी जाय तो उद्भट का ही नाम वंश के संदर्भ में होना चाहिए अन्यथा इसका अर्थ अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् होगा। भट्ट शब्द कश्मीर में बहुत प्रचलित है। ब्राह्मणों की एक शाखा भट्ट जाति थी। काश्मीरी मुसलमान या हिंदू जो आजकल वट लिखते हैं, वे पूर्वकाल में यह ब्राह्मण ही थे।

(३) सभापति : सभा का सभापति कश्मीर में होता था। सभा के सदस्यों को सभ्य किंवा सभासद् कहते थे। सभापति का पद अत्यन्त पुरातन काल से प्रचलित है। (वाजसनेयी संहिता १६ : २४; तैत्तिरीय संहिता ४ : ५ : ३ : २, काठक संहिता १७ : १३)।

सभापति शब्द शतरुद्रिय मन्त्रों में रुद्र के लिये प्रयोग किया गया है। का० सं० १६ : २४ : तैत्ति० ४ : ५ : ३ : २; का० स० १७ : १३ सभासद् वैदिक साहित्य में आया है। उसे कुछ विद्वान् सभापति किंवा सभा प्रमुख मानते हैं। (ऋ० १० : ७१ : १०; अवे० ५ : ३१ : ६-७ : १२ : १ : २; ८ १० : ५; १२ : १ : ५, १९ : ५५ : ६; तै० स० १ : ७ : ६ : ७ मै०स० : ४ : ७ : ४ वाज० ३ : ४५ १६ : २४ २० : १७; तै० ब्रा० : १ : १ : १० श० ब्रा० २ : ३ : २ : ३; ५ : ३ : १; १० कौ. ब्रा० : ७ । ९) सभा शब्द वैदिक साहित्य में सभा स्थान तथा सभा दोनों के लिये आता है। (ऋ० ६ : २८ : ६; ८ : ४; ९; १० : ३४ : ६) सभाभवन का उपयोग जब सभा नहीं होती थी तो अक्ष क्रीडा के लिये किया जाता था। (ऋ० १० : ३४ : ६; अवे. ५:३१ : ६, १२:३ ४६)अक्ष क्रीडक को सभास्थाणु कहा गया है। (का०सं०: ३:४५:२०:१७' मै० स०: १:८:३:१) अनेक विषयों पर विचार विमर्श होता था। (ऋ० ६:२८:६) राजा सभा में जाता था। (छा० उ० ५:३:६:८:१४ तै० ब्रा० :१:१:१०:३. तै० सं० : ३:४:८:६, श० ब्रा० :३:३:४:१४) सभा का उल्लेख पुराणों में भी मिलता है। (ब्रह्माण्ड : २:२५:१०१, वायु :३२:२, ९:१०५:९६:९२)

सभासद् = सभा में उपस्थित रह कर विधि सम्बन्धी विषयों पर निर्णय देने वाले सदस्यों को सभासद् कहा गया है। सभाचर शब्द भी वैदिक साहित्य में आया है। (का०सं० ३०:६, तै० ब्रा०:३:४:२:१) सभा पाल सभा भवन के रक्षक को कहते थे। (तै० ब्रा :३:७:४:६) पुराणों में सभासद् का उल्लेख है। वे राज्य की न्याय सभा के सदस्य होते थे। उनका कार्य अपराधियों के दोषों की परीक्षा एवं उचित दण्ड देना होता था। सभासद् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य हो सकते थे। (मत्स्य : २१४:३५, विष्णु :२:२४:२५)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९६ में 'कारिणम्' का पाठभेद 'कारणम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४९६ (१) कुट्टनी मत : प्रोफेसर पिटर्सन ने इस काव्य को काम्बे मन्दिर पुस्तकालय से खोज निकाला था। उसके पूर्व लुप्त प्राय था। काव्यमाला सीरीज बम्बई से प्रकाशित हुआ था। (पीटरसन रिपोर्ट ऑन दी सर्च ऑफ संस्कृत मैनस्क्रिप्टस् १८८३–१८८४ : २३)

कुट्टनी स्त्रियों का शील नाश करने वाली हैं। वेश्या के लिये कुट्टनी आवश्यक मानी गयी है। कुट्टनी प्रौढ़ स्त्री होती है—पूर्वं चेटी, ततो बेटी, पश्चाद् भवति कुट्टनी। सर्वोपायपरिक्षीणा वृद्धवेश्या तपस्विनी (गणिका वृत्त संग्रह : ३०१) कुट्टनीमतम्

का उल्लेख सन् १८८३ के पूर्व काव्य प्रकाश ७ : २०२, ८ : ६७; ९ : ८०; सुभाषितावली १०७१, पञ्चतन्त्र ४ : २०, १ : १३५, १ : १३९, आदि में मिलता था। यह ग्रन्थ लुप्त था। सन् १८८३ ई० में डा० पीटर्सन को संस्कृत पुस्तकों के अन्वेषण करते समय यह ग्रन्थ ताडपत्र पर लिखा प्राप्त हुआ था। यह पूर्ण प्रतिलिपि नहीं थी। पुस्तक पर नाम 'सम्भलीमतम्' लिखा था। (संस्कृत पुस्तक की खोज पीटर्सन : रिपोर्ट : बम्बई विभाग : १८८३, १८८४ पृष्ठ २३) सन् १८८६ ई० में महामहोपाध्याय पण्डित दुर्गाप्रसाद शास्त्री ने दो हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त कीं। उनपर 'कुट्टनीमतम्' नाम अंकित था। सन् १८८७ ई० में इन अधूरी प्रतियों का काव्यमाला गुच्छक तीन में प्रकाशन किया गया। सन् १८९७-९८ ई० में महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री को नेपाल यात्रा के समय इसकी एक प्रति प्राप्त हुई। यह प्रति सबसे प्राचीन थी। कुट्टनी तथा सम्भली दोनों ही शब्द समानार्थक हैं। राजतरंगिणी में कल्हण ने इसका उल्लेख किया है। उसमें इसका काल निर्णय होता है। जयापीड के मंत्री पं० दामोदर गुप्त थे।

कुट्टनीमतम् में उच्च समाज के चित्रण के साथ निम्न समाज का भी चित्रण मिलता है। जयापीड के समय हुए अनेक कवियों में केवल यही रचना प्राप्त है। काव्य लिखने का उद्देश्य रचनाकार ने स्वयं लिखा है--जो व्यक्ति इस काव्य को सुनता है इसके अनुसार अनुसरण करता है वह कभी वेश्या, धूर्त एवं कुट्टनियों से ठगा नहीं जाता (श्लोक १०५९) दामोदर गुप्त के समकालीन भट्ट उद्भट तथा मनोरथ थे। क्षेमेन्द्र ने औचित्यविचारचर्चा में इनका पद्य उद्धृत किया है। अलंकार सूत्र के रचयिता पंडित वामन भी थे। समय सन् ७७९ से ८१३ ई० तक जो जयापीड का राज्य काल है दिया जा सकता है। कुट्टनीमतम् के अन्त में दी गयी पुष्पिका से दमोदर गुप्त का कुछ परिचय मिलता है—इति श्री काश्मीर महामण्डल महीमण्डन राज जयापीड मन्त्रि प्रवर दामोदर गुप्त कवि विरचित कुट्टनीमतम् समाप्तम्'। वल्लभ देवकी सुभाषितावली में इनके रचित चार श्लोक मिलते हैं। काव्य सरल है। समास छोटे हैं। कहीं कहीं अप्रसिद्ध स्थानीय शब्दों का समावेश पदों में किया गया है। शब्द रचना सुगम है। शैली सरल है। शृंगार रसप्रधान ग्रन्थ है। भारतीय वेश्या साहित्य का अनुपम ग्रन्थ है। कामशास्त्र पर वात्स्यायन, बाभ्रव्य, धेनुक, दत्तक, आदिने लिखा है। वेश्याओं की शिक्षा पर क्षेमेन्द्र ने समयमातृका लिखी थी। उसने नर्म माला में वेश्याओं का चित्र भी चित्रण किया है। कुट्टनीमतम् की श्रेणी में शृंगारदीपिका, रतिमंजरी, अनंगरंग, रतिरहस्य, रतिशास्त्र, पंचसायक आदि रचनायें आती हैं। प्राचीन काल में कश्मीर के अतिरिक्त काशी एवं पाटलिपुत्र संस्कृत अध्ययन, अध्यापन के केन्द्र थे। दत्तक ने पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में एक ग्रन्थ की रचना की थी। पाटलिपुत्र का नाम कुसुमपुर भी था। कुसुमपुर का उल्लेख मुद्राराक्षस में किया गया है। (द्रष्टव्य : कुट्टनीमतम् : इण्डोलॉजिकल बुक हाउस वाराणसी)

(२) बलि : बलि वैरोचन नाम से प्रसिद्ध है। विरोचन का पुत्र तथा भक्त प्रह्लाद का पौत्र था। माता का नाम देवी था। (आ० : ४९ : २०; स० : ९ : १२, शान्ति० : २१८ : १, अनु० : ९८; भाग० : ६ : १८, ८ : १३; वामन० : २३ : ७७) स्कन्द पुराण में माता का नाम सुरुचि दिया गया है। विरोचन का पुत्र होने के कारण 'वैरोचन' अथवा 'वैरोचनि' नाम प्राप्त किया था। (भाग० : ८ : २०; मत्स्य० : १६ : ४०;) उसकी दूसरी पत्नी का नाम अशना था। (भाग० : ६ : १८ : १७, विष्णु० : १ : २१ : २) उससे बाण प्रभृति सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। (भाग० : ६ : १८ : १७; आदि० : ६५:२०) भागवत में इसकी एक पत्नी कोटरा का निर्देश प्राप्त है। उसे बाणासुर की माता कहा गया है। (भाग० : १० : ६३ : ३०) बलि की मुख्य कन्यायें शकुनी

तथा पूतना थीं। (वायु० : ६७ : ८३,८३; ब्रह्माण्ड० ३ : ५ : ४२ - ४४) बलि विश्व के सप्त चिरंजीवियों में एक है। अन्य चिरंजीवी अश्वत्थामा, व्यास, हनूमान, विभीषण, कृपाचार्य तथा परशुराम हैं। बलि दैत्यराज था। (वामन० : २३) तथापि वह आदर्श, सत्यशील एवं परम विष्णुभक्त था। (ब्रह्म० : ७३; कूर्म०: १: १७; वामन०: ७७–९२) एक समय विष्णु ने स्वर्ग कुछ समय के लिये त्याग दिया था। अवसर पाकर शुक्राचार्य ने देवों पर आक्रमण कर दिया। देवता लोग पलायन कर गये। (सभा०: ३८ : २९) तत्पश्चात् बलि ने पितामह प्रह्लाद को स्वर्ग में आमन्त्रित किया। प्रह्लाद ने बलि का स्वर्ग में राज्याभिषेक भी कराया। प्रह्लाद ने उसे उपदेश देते हुए कहा—'सर्वदा धर्म की विजय होती है। धर्म से तुम राज्य करो।' बलि ने धर्मराज्य द्वारा कीर्ति त्रिखण्ड में सम्पादित की (वामन० ७५)।

समुद्रमंथन बलि तथा देवताओंने मिलकर किया। (भा० : ८ : ६; स्कन्द० : १.१ : ९) दैत्यों के पास संजीवनी विद्या थी। उससे वे जीवित हो जाते थे। देवताओं ने अमृत मंथन इसलिये किया कि उन्हें अमृत प्राप्त हो जाय और वे भी असुरों के समान मृत्युभय से दूर हो जायँ। यह आयोजन चाक्षुष मन्वन्तर में हुआ था। उस समय मैत्रद्रुम इन्द्र राज्य कर रहे थे। (भा० : ८:८; विष्णु० : १ : ९; मत्स्य० : २५०-२५१) समुद्रमंथन एकादशी के दिन आरम्भ होकर द्वादशी के दिन समाप्त हुआ। अमृत उत्पन्न हुआ। उससे ही तुलसी का निर्माण हुआ। (पद्म० : ब्र० : ९ : १०) समुद्रमंथन से असुरों को कुछ प्राप्त नहीं हुआ। वे क्रुद्ध हुए। बलि ने इस देवासुर संग्राम में मयासुर द्वारा निर्मित 'वैहानस' विमान का प्रयोग इन्द्र के विरुद्ध किया। इन्द्र हार रहा था। उसकी शोचनीय स्थिति देखकर विष्णु ने बलि के मायावी जाल को काट कर फेंक दिया। इन्द्र ने बलि पर वज्र प्रहार किया। बलि मर गया। नारद के आदेश पर बलि का शव अस्ताचल ले जाया गया। वहाँ शुक्राचार्य के स्पर्श एवं मन्त्र से वह पुनः जीवित हो गया (भा० : ११ : ४६–४८)।

शुक्राचार्य ने बलि से विश्वजित् यज्ञ करवाया। इसने एक शत अश्वमेध यज्ञ किया (भा० : ८ : १५ : ३४)। विश्वजित् यज्ञ के पश्चात् यज्ञदेव ने प्रसन्न होकर इन्द्र के समान दिव्य रथ, सुवर्णमय धनुष, दो अक्षय तूणीर, एवं दिव्य कवच दिया। पितामह प्रह्लाद ने कभी न सूखने वाली माला दी। शुक्राचार्य ने दिव्य शंख तथा ब्रह्मा ने भी एक माला दी (शा० : २१६ : २३)। बलि के राज्य में ब्राह्मण एवं देव सुख से वंचित थे। देवों की प्रार्थना पर भगवान् ने वामन अवतार लेने का संकल्प किया (ब्रह्म० : ७३; बाल० : २६ : ६-९)।

बलि की राजव्यवस्था शिथिल होने लगी। उसका कारण जानने के लिये प्रह्लाद के पास गया। प्रह्लाद ने उत्तर दिया—भगवान् विष्णु वामन अवतार हेतु अदिति के गर्भ में स्थित हो गये हैं। तुम्हारा राज इसलिये दिन प्रतिदिन रसातल को जा रहा है (रा० :बा० २९ : ४-२१)। बलि ने अहंकार से कहा—'उन पराजित से हमारे राक्षस बली हैं।' प्रह्लाद ने क्रोधित होकर शाप दिया—'तुम्हारा राज्य नष्ट होगा।' बलि क्षमा माँगने लगा। प्रह्लाद ने कहा—'विष्णु की शरण जाओ ' (वामन० : ७७; वन० : २८ : ३-४)।

भृगुकच्छ (भड़ौंच) नर्मदा के उत्तरी तट पर बलि अश्वमेध यज्ञ कर रहा था। ब्राह्मण बालक रूप से भगवान् विष्णु ने उसके यज्ञ में प्रवेश किया। बलि ने वामन का सत्कार किया। कुछ माँगने के लिये कहा (भा० ८, १८ : २०-२१)। वामन ने तीन पग भूमि माँगी। शुक्राचार्य रहस्य समझ गये। बलि को दान देने से विरत करने लगे। बोले—'वह वामन अवतार विष्णु हैं।' बलि ने गुरु वाणी की उपेक्षा करते हुए कहा—'परमेश्वर स्वयं मेरे द्वार

पर अतिथि स्वरूप आये हैं तो मैं उसे अवश्य वांछित वस्तु दूँगा (वामन० ९१)।' शुक्राचार्य अपनी उपेक्षा पर क्रोधित हो उठे। शाप दिया—'तुम्हारा ऐश्वर्य एवं राज्य नष्ट हो जायगा।' वामन ने बलि तथा उसके पूर्वजों का यशगान करते हुए दान लेना स्वीकार किया और बलि ने मन्त्र पढ़ते हुए अर्घ्य दिया। वामन ने एक पद से पृथ्वी, द्वितीय पद से स्वर्गलोक अपना विशाल रूप प्रकट करते हुए नाप लिया। प्रश्न किया—'तीसरा पद कहा नापूँ ?' बलि के राक्षस मन्त्री इस प्रकार अपने राजा का ठगा जाना देखकर क्रुद्ध हो गये। आक्रमण करने पर उद्यत हुए। बलि ने उन्हें रोका। वरुण ने भगवान् विष्णु की इच्छा जानकर वरुण पाश से बलिको बाँध लिया (वामन०: ९२; वा० ६१ : २४, सभा : ३८ : २९)। बलि को शुक्राचार्य ने तीसरा पद दान करने से रोका। बलि नहीं माना। शुक्राचार्य अर्घ्यदान पात्र में बैठ गये ताकि अर्घ्यदान के लिये जल न निकल सके। टोंटी से जल निकलता न देखकर कुशा के अग्र-भाग को टोंटी में डाला। शुक्राचार्य की एक आँख उससे फूट गयी। इस समय से शुक्राचार्य एकाक्ष हो गये (नारद०: १ : ११)। वामन ने कहा—'बलि! तुमने तीसरे पग की भूमि नहीं दी। वचन का पालन नहीं किया।' बलि ने कहा—'यह मेरा मस्तक है। इसे आप नाप लीजिए।' (पद्म०: पा० : ५३) बलि की दयनीय स्थिति देखकर उसका स्त्री विंध्या-बली बलि के उद्धार के लिये भगवान् की प्रार्थना करने लगी। भगवान् ने वर दिया 'तुम पाताल में निवास करो। मैं तुम्हारा द्वारपाल हूँगा। सुदर्शन चक्र तुम्हारी रक्षा करेगा। सावर्णि मन्वन्तर में तुम इन्द्र होगे।'

यह घटना सत्ययुग के पूर्व काल की है। दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा का था। वामन ने बलि को वरदान दिया—यह पुण्य दिन बलि प्रतिपदा के नाम से प्रसिद्ध होगा (भविष्योत्तर० : १४० : ५४ पद्म० उ० : १३४ : ५३)। इस दिन लोग तुम्हारी पूजा करेंगे (स्कन्द० : २४ : १०)।' वामन ने वरुण पाश से बलि को मुक्त कर दिया। बलि पाताल चला गया। शुक्राचार्य को वामन ने आदेश दिया कि वे यज्ञ को पूरा करें (भा०:८: १५-२३; वामन०:३१; ब्रह्म०: ७३)। इस प्रकार पृथ्वी तथा स्वर्ग को दैत्यों से भगवान् ने मुक्त किया (स्कंद : ७ : २ : १९)। यह कथा अत्यन्त प्राचीन है। इसका उल्लेख पतंजलि के महाभाष्य में किया गया है। (पा० सू० ३ : १ : २६)

बलि एवं रावण की कथा वाल्मीकीय रामायण में दी गयी है। रावण बलि के पास पहुँचा उससे कहा—'मैं तुम्हें विष्णु से मुक्त कराने आया हूँ।' बलि ने कहा—'द्वारपाल रूप में विष्णु वहाँ स्थित हैं। उन्होंने पूर्वकाल में अनेक बार दानवों से पृथ्वी को मुक्त किया था। अच्छा—वह कुण्डल तो उठा लाओ (उत्तर० : २३ क ३४-५७)।' रावण कुण्डल उठा न सका। लज्जित होकर बेहोश हो गया। बलि रावण को होश में लाकर कहा—'वह कुण्डल हमारे पितामह हिरण्यकशिपु धारण करते थे। तुम उसे उठा न सके। उसी हिरण्यकशिपु का विष्णु ने वध किया था।' बलि ने विष्णु की महत्ता का रावण से वर्णन किया था। (उत्तर० २३ क ७८-८६) आनन्द रामा-यण में एक कथा और दी गयी है। रावण बलि के पास गया। बलि अपनी स्त्रियों के साथ पासा खेल रहा था। एक पासा उछलकर दूर गिर गया। बलि ने पासा उठाने के लिये कहा। रावण पासा उठा नहीं सका। स्त्रियाँ हँसने लगी। रावण लज्जित होकर भाग गया (आ० रा० सार : १३)।

महाभारत में बलि एवं वामन कथा का संक्षिप्त विवरण (वन० २७२ : ६३-६९) मिलता है। इन्द्र के प्रश्नों का उत्तर (शान्ति०: २२५ : ३०-३२) काल की प्रबलता का (शान्ति०: २२४) वर्णन किया है। अश्रद्धा पूर्वक दिये दानों को ब्रह्मा ने बलि का भाग निश्चय कर दिया है। (अनु०: ९० : २०) पुष्प, धूप, और दीप दान के विषय में शुक्राचार्य से अनेक प्रश्न बलि ने किया था (अनु० : ९८ : १५)।

(३) शुक्राचार्य : भृगु ऋषि एवं हिरण्यकशिपु की

कन्या दिव्या का पुत्र था। महाभारत (अनु०: ८५ : १२९) के अनुसार भृगु के सात पुत्रों में एक थे। पौराणिक साहित्य में इन्हें कवि का भी पुत्र कहा गया है। पैतृक नाम इन्हें 'काव्य' प्राप्त था। इनकी दो पत्नियों का उल्लेख मिलता है। पितृकन्या गो एवं इन्द्रकन्या जयन्ती दोनों इनकी पत्नियाँ थीं। जयन्ती से इनको देवयानी कन्या थी। देवयानो का विवाह ययाति राजा से हुआ था। गो से चार पुत्र--त्वष्ट्र, वरुत्रिन, शण्ड, तथा मर्क थे। शुक्राचार्य दैत्यों के गुरु, आचार्य, उपाध्याय, पुरोहित एवं याजक कहे गये हैं। वामन को त्रिपाद भूमि देने के लिये बलि झारी से अर्घ्य देने लगे तो वह उसकी टोंटी में बैठ गये। बलि कुशा से झारी की टोंटी साफ करने लगे। कुशाग्र से शुक्राचार्य की एक आँख फूट गयी थी। यह एकाक्ष हो गये थे (नारद० १ : ११)।

शुक्र तथा अंगिरस पुत्र जीव दोनों अंगिरस शिष्य थे। विद्यादान के समय अंगिरस पक्षपात करने लगे। शुक्र ने अंगिरस का शिष्यत्व त्याग दिया। शिवाराधना करने लगे। शिव ने मृतसंजीवनी विद्या शुक्राचार्य को दी। इस विद्या के कारण देवासुर संग्रामों में असुरों को विजय मिलने लगी थी। वह संजीवनी विद्या बृहस्पति पुत्र कच ने शुक्राचार्य से प्राप्त की। कच से वह विद्या देवगुरु बृहस्पति तथा उनसे समस्त देवपक्ष ने प्राप्त की। इस प्रकार असुरों का अजेयत्व विनष्ट हो गया। लिंग पुराण (३ : ५०) में उसे अघोर ऋषि का पुत्र कहा गया है। इन्होंने हिरण्याक्ष को निग्रह विधि बताया था।

बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र की रचना शुक्राचार्य ने की थी। इसमें १००० अध्याय थे। अन्य आचार्यों ने इसे कालान्तर में संक्षिप्त कर दिया (शा० : ९१-९२)। कौटिल्य ने उशना का उल्लेख प्राचीन अर्थशास्त्र वेत्ता आचार्यों में किया है।

रामायण में शुक्राचार्य की कथा दी गयी है। इनका नामान्तर उशनस या उशना भी है। इनकी कन्या देवयानी थी उसके पति ययाति ने उसका अपमान किया। देवयानी ने पिता शुक्र का स्मरण किया। शुक्र ने कन्या के पास आकर उसका समाचार पूछा। कन्या के अपमान से दुःखी होकर इन्होंने ययाति को जराजीर्ण होने का शाप दिया (उत्तर० ५८ : ९-२४; ५९ : २१)। राजा दण्ड ने शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया था (उत्तर० ७९ : १८)। कन्या अरजा के साथ बलात्कार करने के कारण राजा दण्ड को राज्य सहित नष्ट हो जाने का शाप दिया (उत्तर०: ७ : ८०)। अपने आश्रमवासियों को दण्ड का राज्य त्याग देने का आदेश दिया। अरजा को उसी आश्रम में रहकर अपराध निवृत्ति की प्रतीक्षा करने के लिये कहा। दण्ड का राज्य क्षेत्र स्वयं त्याग दिया था (उत्तर० :८१ : १-१७)।

महाभारत में शुक्राचार्य की कथा अधिक विस्तार से दी गयी है। वह ग्रह होकर तीनों लोकों के जीवन रक्षा के लिए वृष्टि, अनावृष्टि, भय एवं अभय उत्पन्न करते हैं। ब्रह्मा की प्रेरणा से समस्त लोकों का चक्कर लगाते हैं। यह योग के आचार्य तथा दैत्य पुरोहित एवं गुरु हुए हैं (आदि०:६५ : ३६, ६६ : ४२-४३)। बृहस्पति के साथ इनकी स्पर्धा थी। मृत्यु संजीवनी विद्या से वह दानवों को जीवित करते थे (आदि० : ७६:६-७)। कच एवं देवयानी तथा संजीवनी प्राप्त करने की कथा आदि पर्व अध्याय ७६ में दी गयी है। मदिरा पान को ब्रह्महत्या के समान इन्होंने घोषित किया था। देवयानी–शर्मिष्ठा एवं ययाति की कथा आदि पर्व अध्याय ७८,७९,८०,८१,८३ में वर्णन की गयी है। इनका निवास स्थान दैत्यों के साथ मेरु पर्वत पर है। समस्त रत्न एवं रत्नमय पर्वत शुक्राचार्य के नियन्त्रण में हैं। कुबेर इनसे धन का चतुर्थ भाग लेकर उसे उपयोग में लाते हैं (भीष्म० : ६ : २२-२३)। शुक्राचार्य महाराज पृथु के पुरोहित हुए थे (शान्ति० : ५९ : ११०)। शिव के लिंग से निर्गत होने के कारण इनका शुक्र नाम पड़ा था। पार्वती ने इन्हें अपना पुत्र स्वीकार किया था (शा० २८९ : ३२-३५)। तण्डि

मनोरथः शङ्खदन्तश्चटकः संधिमांस्तथा।
बभूवुः कवयस्तस्य वामनाद्याश्च मन्त्रिणः ॥४९७॥

४९७. इसी प्रकार मनोरथ[1], शंखदत्त, चटक, सन्धिमान[2], एवं वामनादि[3] कवि उसके मन्त्री हुए थे।

ने इन्हें शिवसहस्रनाम का उपदेश दिया था। तत्पश्चात् शुक्र ने उसका उपदेश गौतम को दिया था (अनु० : १७:१७७)। महाभारत में शुक्राचार्य का नामान्तर—भार्गव, भार्गव दायाद, भृगुश्रेष्ठ, भृगूद्वह, भृगुकुलोद्वह, भृगुनन्दन, भृगुसूनु, कविपुत्र, काव्य, उशना, कवि आदि है। गीता में भगवान् ने कवियों में उशना कवि को सर्व श्रेष्ठ माना हैं।

पादटिप्पणी :

४९७ (१) मनोरथ : वल्लभदेव की सुभाषितावली में मनोरथ कवि के पदों का उद्धरण मिलता है।

(२) शंखदत्त, चटक, सन्धिमान की साहित्यिक कृति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

(३) वामन : वामन ने 'काव्यालंकारसूत्र' लिखा है। यह रीति को काव्य की आत्मा मानते थे। जयापीड के मंत्री वामन को ही संस्कृत विद्वानों का एक मत पाणिनि व्याकरण की काशिका वृत्ति का एक लेखक मानता है। प्रोफेसर बुहलर ने कश्मीर की एक परम्परा का उल्लेख किया है। गत शताब्दी में प्रचलित थी। इसी वामन को काशिका वृत्ति का लेखक मानती थी। दूसरी ओर विल्सन ने यह सुझाव दिया है कि वामन काव्यालंकरवृत्ति का लेखक था। (विल्सन : एक्से० : ५५) प्रोफेसर एम० मुलर ने इस विषय पर विचार किया है (इण्डिया : २३९)।

काशिका वृत्ति पाणिनि की अष्टाध्यायी पर ७ वीं शताब्दी में लिखी गयी प्रसिद्ध वृत्ति है। इसका नाम काशिका वृत्ति रखा गया था। इसमें अनेक सूत्रों की वृत्तियां, उनके उदाहरण, पूर्वकालीन आचार्यों की वृत्तियाँ से दिये गये हैं। महाभाष्य का प्रतिपादन करते हुए उससे भिन्न मत का भी प्रतिपादन किया गया है। पुरातन वृत्तिकारों के मतों तथा उनके नामों को जानने का यह एक वहुत बड़ा साधन है। अनेक वृत्तियाँ लुप्त हो गयी हैं। किन्तु इस वृत्ति में उनके उद्धरणों से उनका पता चलता है। उनसे ऐतिहासिक तथ्यों की समुपलब्धि हुई है। अन्य प्रकार से होना सम्भव नहीं था। इसमें गणपाठ दिया है। जिसका प्राचीन वृत्ति ग्रन्थों में अभाव खटकता है। काशिका के प्रकाशक बालशास्त्री का मत है कि काशिका का रचनाकार बौद्ध था क्योंकि उसने मंगलाचरण नहीं लिखा है एवं सूत्रों में परिवर्तन किया है। काशिका वृत्ति जयादित्य एवं वामन की संयुक्त कृति है। चीनी पर्यटक इत्सिग (सन् ६९० ई०) तथा भाषावृत्ति—अर्थवृत्ति के लेखक सृष्टिधराचार्य ने काशिका वृत्ति को जयादित्य एवं वामन की रचना कहा है। अनेक पुरातन विद्वानों ने काशिका वृत्ति का उद्धरण देते हुए जयादित्य एवं वामन दोनों का उल्लेख किया है। प्रौढ़ मनोरमा की शब्दरत्न व्याख्या में प्रथम से पंचम तक जयादित्य विरचित तथा अन्त के तीन अध्याय वामन की रचना कहा गया है। काशिका वृत्ति के अनेक व्याख्याकार हुए हैं। उनमें जिनेन्द्रबुद्धि, इन्दुमित्र, महान्यासकार, विद्यासागर मुनि, हरदत्त मिश्र, वृत्तिरत्नाकर एवं चिकित्साकार प्रमुख हैं।

स स्वप्ने पश्चिमाशायां लक्षयन्नुदयं रवेः ।
देशे धर्मोत्तराचार्यं प्रविष्टं साध्वमन्यत ॥४९८॥

४९८. स्वप्न में उसने पश्चिम दिशा में सूर्योदय[1] देखकर निश्चय किया (इस) देश में किसी उत्कृष्ट धर्माचार्य ने प्रवेश किया है ।

सचेताः संस्तवव्यक्तविवेक्तृत्वो बभूव सः ।
भावानां भुज्यमानानामास्वादान्तरविन्नृपः ॥४९९॥

४९९. उपभुक्त होते भावों के आस्वाद भेद को जानने वाला, सचेता वह नृपति, परिचय के कारण सुस्पष्ट विवेचनशील हो गया था ।

अपश्यद्भिर्महास्वादान् भावान् स्वाद्वविवेकिभिः ।
किं ज्ञेयमशनादन्यत् क्ष्मापैरन्धैरिवोक्षभिः ॥५००॥

५००. दिव्य आस्वादमय भावों को न देखने वाले स्वाद मात्र विवेकी नृपति के लिए अन्धे वृषभ तुल्य भोजन के अतिरिक्त अन्य क्या ज्ञातव्य है ?

आरूढस्य चितां कृतानुमरणोद्योगप्रियालिङ्गनं
पुण्ड्रेक्षुद्रवपानमुल्बणमहामोहप्रलुप्तस्मृतेः ।
वीतासोरवतंसमाल्यवलयामोदश्च यादृग्भवेद्-
भावानां सुभगः स्वभावमहिमा निश्चेतसस्तादृशः ॥५०१॥

५०१. चितारूढ़ (पुरुष) के लिये सती होती प्रिया का आलिंगन, तीव्र महामोह के कारण लुप्त स्मृति वाले (व्यक्ति) के लिये पुण्ड्र इक्षु[1] (ईख) रस का पान, एवं गत प्राण के लिये अलंकार, माला, वलय (कंकण) आमोदादि का जो महत्त्व होता है, उसी प्रकार निर्बोध के लिये वही महत्त्व भावों के सुभग एवं स्वाभाविक महिमा का है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९८ में 'स स्वप्ने' का पाठ भेद 'सुस्वप्नं' 'सुस्वप्ने' 'स स्वप्नं; 'देशे' का 'देशं' तथा 'चार्यं' का 'चार्य' 'चार्ये' एवं 'प्रविष्टं' का 'प्रविष्टे' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४९८ (१) पश्चिम दिशा में सूर्योदय : एक अनुमान लगाया गया है कि वह पद पश्चिम से आने वाले चीनी बौद्ध यात्री हुयेन्त्सांग को लक्ष्य करता है । हुयेन्त्सांग का शाब्दिक अर्थ धर्माचार्य है । कल्हण ने 'धर्मोत्तराचार्य' शब्द का प्रयोग किया है । चीनी तथा संस्कृत दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४९९ में 'सचेताः' का 'सचेतः' तथा 'विवेक्तृत्वो' का पाठभेद 'विवक्तृत्वो' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०० में 'स्वाद्ववि' का पाठभेद 'स्वादुवि' तथा 'रन्धै' का 'रन्यै' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

वह सूक्तिसंग्रह का १३५ वाँ श्लोक है ।

५०१ (१) पुण्ड्र इक्षु : लाल जाति की ईख जिसे हिन्दी में पौढ़ा कहते हैं । पौढ़ा में ईख की

मन्त्रविक्रमयोस्तस्य द्वयोर्दर्पणयोरिव ।
एकैव बिम्बिता मूर्तिः सहस्रगुणतां ययौ ॥५०२॥

५०२. दो दर्पण तुल्य मन्त्र[1] एवं विक्रम[2] के प्रतिबिम्ब में उसकी एक ही मूर्ति सहस्रधा हो गयी थी ।

आंकुर्वन् विगुणामाज्ञां लङ्केन्द्रात्पञ्च राक्षसान् ।
तेनाऽऽनयेति जगदे दूतो जातु पुरः स्थितः ॥५०३॥

५०३. एक समय उसने सम्मुख स्थित स्वीकारोक्तिवाही दूत को—'लंकेन्द्रे[1] से 'पाँच राक्षसों को लाओ' ऐसी विगुण[2] आज्ञा दी ।

अपेक्षा रस अधिक और मधुर होता है । गड़ेरी इसी की बनायी जाती है । पुण्ड्र शब्द का अपभ्रंश पौढ़ा है ।

कल्हण ने अन्य कश्मीरियों के समान भोजन में विशेष रुचि दिखायी है । कश्मीरी पाकशास्त्र प्रवीण होते हैं । स्वादिष्ट पकवान बनाने का उन्हें गर्व है । मैं स्वयं अपने अनुभव से बता सकता हूँ । काश्मीरी भोजन अपने ढंग का निराला होता है । कश्मीर में शाकाहारी की अपेक्षा आमिष भोजन अच्छा बनता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०२ में 'बिम्बिता' का पाठभेद 'विदिता' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५०२ (१) मन्त्र : तीन शक्तियाँ--उत्साह, प्रभु (प्रभाव) तथा मन्त्र हैं । मन्त्र शक्ति को ज्ञान बल कहा गया है । कौटिल्य ने प्रभु शक्ति को उत्साह शक्ति से, तथा मन्त्र शक्ति को प्रभु शक्ति से महत्तर माना है । कामन्दक ने छः उपायों में यथोचित नीति का निर्धारण माना है । कोश एवं सैन्य बल प्रभु शक्ति का द्योतक है । शक्तिशाली की क्रियाशीलता ही उत्साह शक्ति का परिचायक है (१५ : ३२ तथा १३ : ४१-५९) ।

(२) विक्रम : उत्साह शक्ति को विक्रम, बल माना गया है । याज्ञवल्क्य का मत है कि राज्य मन्त्र पर निर्भर है (१ : ३४३) । कौटिल्य का मत है कि मन्त्र की शक्ति अस्त्र-शस्त्र की शक्ति से भी अमोघ है (१० : ६) । महाभारत एवं रामायण मन्त्र को विजय का मूल मानते हैं (सभा० : ५ : २७; अयो० १०० : १६) । मन्त्र के पाँच तत्त्व माने गये हैं-कार्य के प्रारम्भ का उपाय, मनुष्य एवं प्रचुर सम्पत्ति, देश काल विभाग, विनिपात-प्रतीकार एवं कार्य सिद्धि ।

वाल्मीकि ने (अयोध्या : १०० : १६) 'मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव—' स्पष्ट कहा है । इसी वाक्य को महाभारत में दुहराया गया है—'विजयो मन्त्रमूलो हि राज्ञां भवति भारत' (सभा० : ५ : २७) । महाभारत में राघव सम्बोधन के स्थान पर भारत अर्थात् अर्जुन रख दिया गया है । अर्थशास्त्र में (१ : १५) मन्त्र के पाँच अंग माने गये हैं—(१) कर्मणामारम्भोपायः (२) पुरुष द्रव्य सम्पत् (३) देश काल विभागः (४) विनिपातप्रतिकारः (५) कार्यसिद्धिरिति ।

द्रष्टव्य : टिप्पणी रा० : ४ : ५९९ द्रष्टव्य पाद टिप्पणी जैन० : राज० : ३ : १५०, तथा जोन० : राज० : श्लोक ७७७ तथा १७७, २६०, ५१५ एवं ५९१ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०३ में 'लङ्केन्द्रात्प' का पाठभेद 'लङ्केन्द्रान्प' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५०३ (१) लंकेन्द्र : श्री रणजीत सीताराम

सांधिविग्रहिकः सोऽथ गच्छन्पोताच्च्युतोऽम्बुधौ ।
ग्राप पारं तिमिग्रासं तिमिमुत्पाट्य निर्गतः ॥५०४॥

५०४. वह सान्धि-विग्रहिक[1] जाते हुए, पोत से समुद्र में गिर (च्युत हो) गया । और तिमि मत्स्य[2] का ग्रास बन गया । पुनः (उस) तिमि को उत्पाटित कर, निर्गत होकर (सागर) पार किया ।

प्रियमर्त्यो रामभक्त्या नृपाज्ञालेखदायिनम् ।
स्वदेशमनयद्दत्तैः रक्षोभिस्तं विभीषणः ॥५०५॥

५०५. रामभक्ति के कारण मृत्युशीलों (मानवों) के प्रिय, विभीषण नृप को आज्ञापत्र देने वाला वह दूत प्रदत्त पाँच राक्षसों के साथ स्वदेश लौटा ।

पंडित इस पद की टिप्पणी में लिखते हैं कि लंका साधारणतया सिलोन कहा जाता है । लोगों का यही विश्वास है । यह वास्तव में काल्पनिक द्वीप है । और सिलोन नहीं है जिसे सिंहल कहते हैं ।

(२) विगुण : गुण शून्य किंवा विपरीत, विचारहीन किंवा अनुचित आज्ञा से यहाँ अभिप्राय है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०४ में 'ग्रहिकः' का पाठ भेद 'ग्रहकः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५०४ (१) सान्धिविग्रहिक : षाड्गुण्य सन्धि, विग्रह, आसन, यान, संश्रय तथा द्वैधीभाव के संचालन में राजा का सान्धिविग्रहिक मुख्य परामर्श दाता होता था । इसका कार्य प्रधानतया आधुनिक युग के राष्ट्रमन्त्री तुल्य होता था (विष्णुधर्मोत्तर : २ : २४:१७, शान्ति पर्व : ८५ : ३० याज्ञ०: मिता०: १ : ३२०, गुप्त इन्सक्रिप्सन : १ : पृष्ठ १५ समुद्र गुप्त प्रशस्ति) । उसे अनेक भाषाओं का ज्ञाता एवं नीति कुशल होना आवश्यक है । वह युद्ध में राजा के साथ गमन करता था । चन्द्रगुप्त द्वितीय के शिलालेख उदयगिरि से पता चलता है कि उसका सचिव वीरसेन जो सान्धि-विग्रहिक था, चन्द्रगुप्त के साथ मालवा के युद्ध में गया था (अर्थशास्त्र : कौटिल्य : ६ : ९८-९९, अग्नि० : ९ : २३४-२४०, मनुस्मृति : ७ : १५९-१८०; मत्स्य० : २१४: १६; फ्लीट : गुप्त इन्सक्रिप्सन पृ० ३५-३६) ।

कौटिल्य ने छः गुणों की व्याख्या की है । उनमें (१) सन्धि अर्थात् ऐक्य स्थापित करना, (२) विग्रह—विरोध कर लेना, (३) आसन—उदासीनता का भाव, (४) यान—आक्रमण के लिये तैयारी, (५) संश्रय—किसी शक्तिशाली राजा का आश्रय लेना आजकल के शब्दों में किसी शक्ति के प्रभाव क्षेत्र में आ जाना तथा (६) द्वैधीभाव—एक राजा से सन्धि कर दूसरे से शत्रुता कर लेना । कौटिल्य का मत है कि पड़ोसी राजा से हीन होने पर सन्धि कर लेना चाहिए । उन्नतिशील राजा को पड़ोसी से शत्रुता करनी चाहिए । परस्पर एक दूसरे राजा की हानि करने की सामर्थ्य न होने पर उदासीन होकर बैठ रहना अच्छा है । शक्तिशाली होने पर अपने से दुर्बल पर आक्रमण कर देना उचित है । शक्तिहीन राजा को शक्तिशाली का आश्रय लेना चाहिए तथा मित्र द्वारा जिसकी कार्य सिद्धि न हो वह द्वैधीभाव रख सकता है ।

(२) तिमि मत्स्य :—समुद्री विशाल काय मत्स्य । कम से कम यह इतनी बड़ी होती है कि जिसमें पूरे मनुष्य का शरीर उसके अन्दर में समा जाता है । तिमिंगिल मत्स्य का अर्थ होता है वह बड़ी मछली जो छोटी मछली को खा जाती है । तिमि मछली को भी खा जाने वाला मत्स्य तिमिंगिल कहा गया है । यह सम्भवतः ह्वेल मछली की श्रेणी में आएगा ।

पादटिप्पणी :

५०५ (१) विभीषण : रावण, सीता, विभीषण, मन्दोदरी आदि के सम्बन्ध में वे धारणाएँ नहीं

दूतं वित्तैः पूरयित्वा सरोऽगाधं च राक्षसैः ।
चक्रे जयपुरं कोट्टं त्रिविष्टपसमं नृपः ॥५०६॥

५०६. दूत को वित्त से एवं (उन) राक्षसों से अगाध सर को परिपूरित एवं स्वर्ग तुल्य जयपुर[1] कोट निर्मित किया ।

बुद्धत्रयं महाकारं विहारं च विधाय सः ।
नगरान्तर्जयादेवी पुण्यकर्मा स निर्ममे ॥५०७॥

५०७. उस पुण्यकर्मा ने बुद्ध की महाकार प्रतिमा एवं विहार निर्मित कर नगर के भीतर जयादेवी[1] की स्थापना की ।

हैं जो वाल्मीकि रामायण में मिलती हैं । काश्मीरी रामायण में सीता को मन्दोदरी की पुत्री माना गया है । पुलस्त्य ने एक बक्स नदी में बहते चले जाते देखा । उसमें उसने एक मरी स्त्री तथा जीवित बच्ची देखा । उसे घर लाकर बड़ा किया । वह बढ़ी तो पुलस्त्य ने उसका राक्षसी रूप देखा । विश्रवस से विवाह होने पर रावण, खर, सूर्पणखा तत्पश्चात् कुम्भकर्ण पुत्र हुए । पुलस्त्य उनका रूप देखकर भय-भीत हो गये । वे अग्नि में कूद पड़े, तत्पश्चात् विभी-षण तथा वैश्रवण पुत्र उत्पन्न हुए । मलय रामायण में मन्दोदरी को दशरथ की स्त्री माना गया है । मलय रामायण में भी सीता को मन्दोदरी की पुत्री माना गया है । जावा रामायण में भी सीता को मन्दोदरी तथा रावण की पुत्री माना है । काश्मीरी रामायण में विभीषण का चित्रण वाल्मीकि रामायण के कुछ विपरीत है । विभीषण ने रावण को कुमार्ग से हटाने का असफल प्रयास किया । रावण ने विभीषण को निष्कासित कर दिया । विभीषण के कारण संजीवनी बूटी से लक्ष्मण ने जीवन लाभ किया । युद्ध विजय के लिये होते रावण के यज्ञ में विघ्न डालकर उसे नष्ट किया गया । रावण की मृत्यु पर विभीषण लंका का राजा हुआ । (श्री रामावतार चरित्र : काश्मीरी रामायण कलकत्ता : १९३०)

(२) राक्षस : दैत्य एवं निशाचर के अर्थ में एक जाति मानी जाती थी । आठ विवाहों में राक्षस एक प्रकार का विवाह है । इसमें कन्या के लिए उभय पक्ष में युद्ध होता था । ज्योतिष सम्बन्धी एक योग विशेष है । साठ संवत्सरों में उनचासवां संवत्सर है । पारा और गंधक के योग से बना एक रस का नाम है । यहाँ पर राक्षस का अर्थ लंका के निवासियों से लगाया गया है; वे विभीषण की प्रजा थे ।

पादटिप्पणी :

५०६ (१) जयपुर कोट : डाक्टर बुहलर ने सन् १८७५ ई० में जयपुर तथा द्वारका स्थान निर्धारण हेतु यात्रा की थी । अन्दर कोट ग्राम के समीप जयपुर के ध्वंसावशेष खोजने में समर्थ हुए थे । यह स्थान सम्बल झील पर है । (रिपोर्ट : १३) इस समय सम्बल में वितस्ता पर पुल बँधा है । जयापीड कोट का उल्लेख जोनराज ने किया है । (श्लोक : ९४३) जयपुर कोट तथा जयापीडपुर कोट एक ही कोट है । जयापीडपुर तथा जयपुर भी इसी प्रकार एक ही स्थान है । द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : जोन : श्लोक ३००, ३५७, ७८६; श्रीवर १ : ३ : ३४; ४ :५४० और द्रष्टव्य कल्हण : ४ : ५१२ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५०७ में 'बुद्ध' का पाठभेद 'पुर' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५०७ (१) जयादेवी : जयापीड ने अपने नाम पर जयपुर तथा नगर की अधिष्ठात्री जयादेवी की स्थापना की थी । अन्दरकोट के समीप देवी का स्थान था । द्रष्टव्य पाद टिप्पणी जोन : श्लोक ४३० ।

तत्पुरे चतुरात्मा च शेषशायी च केशवः ।
विष्णुलोकस्थितिं त्यक्त्वा ध्रुवं बध्नाति संनिधिम् ॥५०८॥

५०८. चतुरात्मा[1] एवं शेषशायी केशव[2] ने विष्णुलोक[3] की स्थिति त्याग कर उसके पुर में सर्वदा संनिधि प्राप्त किया ।

अन्यत्कर्मान्तरं किंचित्कारयित्वा स राक्षसान् ।
व्यधात्कारुभिरेवाम्भ इति शंसन्ति केचन ॥५०९॥

५०९. कुछ लोग यह कहते हैं कि उसने राक्षसों द्वारा कोई अन्य कार्य और जल को कारुओं (शिल्पियों) से पूरित कराया ।

स हि स्वप्ने जलान्तर्मे कुरु द्वारवतीमिति ।
उक्तः कंसारिणा चक्रे विनिर्माणं तथाविधम् ॥५१०॥

५१०. स्वप्न में कंसारि (कृष्ण) के यह कहने पर—"मेरे लिए जल के भीतर द्वारावती[1] निर्मित करो ।" उसने उस प्रकार का निर्माण कराया ।

पादटिप्पणी :

५०८ (१) चतुरात्मा : वैष्णव सम्प्रदाय विष्णु की उपासना चार रूपों में करता है,—संकर्षण, अनिरुद्ध, वासुदेव, तथा प्रद्युम्न । (विष्णु०: ५.१६; मार०: ४:४३ रा० ५:२५) चतुरात्मा विष्णु की मूर्ति अवन्तिपुर में मिली है । वह चतुर्मुखी है । मूर्ति खड़ी है ।

(२) केशव : भगवान् ने स्वयं महाभारत में केशव शब्द की व्युत्पत्ति की है —'जगत् को तपाने वाले, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा की जो किरणें प्रकाशित होती हैं, वे सब मेरा केश कहलाती हैं । उस केश से युक्त होने के कारण सर्वज्ञ द्विज श्रेष्ठ मुझे केशव कहते हैं । अर्जुन ! इस प्रकार मेरा केशव नाम सम्पूर्ण देवताओं और महात्मा ऋषियों के लिये वरदायक है ।' (शान्ति : ३४१:४८ ४९) विष्णु की चौबीस प्रकार की मूर्तियों में एक प्रकार केशव की मूर्ति है ।

पादटिप्पणी :

५१०. (१) द्वारावती : जल में एक ही द्वीप पर बसाया गया था । डाक्टर बुहलर ने जयपुर तथा द्वारावती को अन्दर कोट (अभ्यन्तर कोट) के समीप सम्वल झील के पास बताया है ।

अन्दरकोट उस ग्राम का नाम है, जो एक द्वीप पर सम्बल झील से उठता है, और कुछ नीची पतली पट्टी पर है । यह भूखण्ड वितस्ता को झील से अलग करता है । द्वीप पर अनेक मन्दिरों के ध्वंसावशेष पड़े हैं । गाँव में अबतक परम्परा प्रचलित है । वे जपापीड के निर्माण हैं । यहाँ पर जो परम्परा इन ध्वसावशेषो के सम्बन्ध में प्रचलित है उसका समर्थन वहाँ आने पर अनेक बार मिला है, साथ ही साथ श्रीनगर के पण्डितों में यही बात प्रचलित है कि अन्दरकोट .जयापीड की राजधानी था । (बुहलर रिपोर्ट: १३)

राजानक रत्नकण्ठ की राजतरंगिणी की पुरातन प्रतिलिपि (श्लोक ४:५११) के हाशिया पर लिखा है कि अभ्यन्तर कोट ही अन्दरकोट है । इसका एक प्रमाण यह भी है कि जोनराज तथा श्रीवर के समय में भी यह स्थान जयापीडपुरा किंवा जयपुरा नाम से विख्यात था । (जोनः ३००,३५७, ७८६; श्रीवरः १:३:३३,३७,४४;४:५३५)

कल्हण के वर्णन (राः ४:५११) से प्रतीत होता है कि उसके समय में भी जलीय नगर को वाह्य

श्रीद्वारवत्यधिष्ठानं बाह्यं कोट्टं तथा ह्यसौ ।
अभ्यन्तरं जयपुरं ब्रूतेऽद्याप्यखिलो जनः ॥५११॥

५११. आज भी सभी लोग श्री द्वारावती[1] अधिष्ठान को बाह्य तथा जयपुर[2] को अभ्यन्तर कोट कहते हैं।

मन्त्री पञ्चमहाशब्दभाजनं जगतीभुजः ।
तस्मिन् जयपुरे कोट्टे जयदत्तो व्यधान्मठम् ॥५१२॥

५१२. उस जगतीभुज का पंचमहाशब्द भाजन मंत्री जयदत्त ने उस जयपुर[1] कोट में मठ बनवाया।

कोट और जयपुर को अभ्यन्तर कोट कहते थे। यह अबतक अन्दर कोट नाम से प्रसिद्ध है। कल्हण के समय में उसका यही अर्थ था। बाह्य कोट प्रोफेसर बुहलर ने 'बहिर कूट' नाम से पहचाना था, जिसका ज्ञान उन्हें उनके काश्मीरी सहायकों द्वारा हुआ था। (बुहलरः रिपोर्ट : १५) यह नाम उस गाँव के लिये कहा जाता था, जो उक्त द्वीप पर आबाद था।

पीरहसन लिखता है—अन्दरकोट के मग़रिब की जानिब अजीबो-गरीब महलात और मनादिर तामीर कराये और उन्हें द्वारका के नाम से मौसूम किया। इस वक्त उसे 'सब्ज़ कोट' कहते है। (पृष्ठ ८८)

मूल द्वारिका के सम्बन्ध में गाथा है कि वह समुद्र में विलीन हो गयी। ओखा बन्दरगाह के उस पार वेट द्वारिका है। यह द्वीप पर बसी है। यहाँ सूर्य कुण्ड भग्नावस्था में पड़ा है। प्राचीन निर्माण है। वह स्थान रमणीय है। द्वीपपर भगवान् कृष्ण का मन्दिर है। द्वीप पर ही एक बहुत बड़ा कूप है। मुलसिम मछुओं को बहुत आबादी है। बाजार में यात्रियों के दैनिक उपयागी सामग्री की दुकानें हैं। ओखा तट से नावों तथा मोटरबोट से वेट अथवा भेद द्वारिका जाते हैं। ओखा प्राकृतिक बन्दरगाह है। भारतीय नवपरिवहन मण्डल के अध्यक्ष होने के कारण मैं यहाँ कई बार गया हूँ।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५११ में 'बाह्यं' का पाठ भेद 'राज्यं' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५११ (१) **द्वारावती अधिष्ठान** : अधिष्ठान का अर्थ निवास स्थान, वासस्थान, नगर तथा राजधानी है। पुराधिष्ठान श्रीनगर के समीप काश्मीर की राजधानी अशोक द्वारा निर्मित श्री नगरी के पूर्व था। कल्हण ने द्वारावती के साथ अधिष्ठान शब्द का प्रयोग किया है। जयपुर तथा द्वारावती दोनों नगर थे। द्वारावती अधिष्ठान का अर्थ द्वारावती राजधानी है। जपापीड ने एक नवीन राजधानी अशोक, प्रवरसेन, ललितादित्य के समान बनाने की कल्पना की थी। वह उसके नाम पर बने नगर जयपुर के समीप था। परिहासपुर के समान द्वारावती को भी उसने राजधानी का रूप दिया था, अन्यथा द्वारावती के साथ अधिष्ठान के प्रयोग का कुछ अर्थ नहीं होगा।

(२) अभ्यन्तर : अन्दरकोट।

पादटिप्पणी :

५१२ (१) पंचमहाशब्द : अट्ठारह कर्म स्थानों का वर्णन कल्हण ने किया है। (रा०:१:१२०) उसमें केवल एक महाप्रतिहार का उल्लेख किया है। (रा० : ४ : ४८५) पंचमहाशब्द में (१) महा

राजक्षत्तुः प्रमोदस्य जामाता मथुरापतेः ।
आचाभिधो व्यरचयच्छुचिराऽऽचेश्वरं हरम् ॥५१३॥

५१३. मथुरा[1] पति प्रमोद के जामाता तथा राजा के क्षत्ता[2] (द्वारपाल-प्रतिहार) आच ने पवित्र अचेश्वर हर की स्थापना की ।

प्रतिहार (२) महासान्धि-विग्रहिक (३) महाश्वशाल (४) महासाधन भाग तथा (५) महाभाण्डागार है। (शुक्र०: २ : ६९ ७७, ८४, ८७, ८८-१०५)

(२) जयपुर : वितस्ता नदी के वाम तट में अधोभाग की ओर शादीपर से ५ मिल चलने पर अन्दरकोट ग्राम मिलता है और एक बड़ा ग्राम सुम्बल है । इससे एक मील मार्ग के समीप ही अन्दरकोट अर्थात् जयापीड की राजधानी जयपुर है । यह कच्छ भूमि के मध्य है । गाथा है । जल सुखाने के लिए लंका से राक्षसों की सेवा राजा ने ली थी । सुम्बल के मुख्य भूस्थल से अब भी एक पुल द्वारा वर्षा में यहाँ से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है । यहाँ हिन्दू मन्दिर तथा बौद्ध विहारों का कुछ पता नहीं चलता, जिन्हें जयापीड ने निर्माण कराया था। यहाँ की सभी वस्तुएँ नष्ट हो गयी हैं या कर दी गयी हैं । बड़े शिलाखण्डों की एक ढेरी लगी है । उसे ही कहा जाता है कि पूर्व काल में केशव का मन्दिर था । सीढ़ियों पर कुछ खण्डित अंगभंग मूतियाँ दिखाई देती हैं । ललितासनीय चतुर्बाहु विष्णु की एक प्रतिमा मिली है । विष्णु के समीप एक नारी मूर्ति है । वह सम्भवतः सेविका दिखाई गयी है । भगवान् का वामपद एक चरणपादुका पर स्थित है । ऊपरी एक हाथ में वज्र तथा दूसरा हाथ अभय मुद्रा में उठा है । मूर्ति अत्यधिक अलंकृत है । मन्दारमाला कण्ठ में है । सिहासन के नीचे मूर्तियों के कुछ आकार हैं । उन्हें पहचानना कठिन है । ऊपरी दिहली पर बनी आकृतियों में भगवान् अपनी दो पत्नियों के मध्य बैठे हैं ।

शादीपुर से गुरेज जानेवाली सड़क वितस्ता के समानान्तर चलती है । कश्मीर से १६ मील पर सम्बल है । यहाँ वितस्तापर पुल है । सम्बल ग्राम के दोनों तटों की आबादी जोड़ता है । नदी के पार पर्वतमाला है । अर्थात् वितस्ता के दक्षिण तटपर पर्वत श्रेणी मिलती है तथा वाम तटपर शाली से पूर्ण खेत है । शादीपुर से सम्बल की ओर बढ़ने पर लालपुर तथा वादीपुर के मध्य कुछ ऊँचे ढूहे सड़क के बाई तरफ मिलते हैं । उनपर कुछ पत्थर बिखरे पड़े हैं । अधिकतर कब्रिस्तान के काम में ले लिये गये हैं ।

प्राचीन ध्वंसावशेष अब नहीं मिलते । समय ने पलटा खाया है । जो कुछ बचा था, उसे भी लोग अपने निजी कार्यों में लगा लिए हैं ।

सम्बल पुल से एक फर्लांग आगे गुरेज सड़क के दक्षिण तरफ नन्दकेश्वर भैरव का मन्दिर है । तीन चार कोठरियों का धर्मशाला बना है । स्थान चहार दिवारी से घिरा है । लम्बा चौड़ा स्थान है । चिनार के वृक्ष लगे हैं । भैरव का स्थान एक छोटे घेरे में है । एक चिनार का पुराना वृक्ष है । उसके नीचे सटाकर चार प्राचीन काल की कहीं से पड़ी हुई मूर्तियाँ लाकर रखी गयी हैं । उन पर सिन्दूर लगा है । मध्य में एक शिवलिंग है । दो साधु यहाँ मिले । वे दूर दक्षिण रामेश्वर से आए थे । उनकी शिकायत थी । यहाँ कुछ खाने को नहीं मिलता । कारण सभी आबादी मुसलमानों की है ।

सम्बल का रूप अब बदल गया है । यहाँ अस्पताल, ब्लाक का केन्द्र, टेनरी स्कूल खोल दिये गये हैं । वह जीता जागता शहर हो गया है । बहुत लोगों से यहाँ के ध्वंसावशेष तथा प्राचीनता के विषय में पूछा, कोई कुछ नहीं बता सका ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१३ में 'मथुरा' का पाठभेद 'मधुरा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१३.(१) मथुरा : मथुरा सप्तपुरियों में एक है। उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर है। पश्चिम में राजस्थान, पूर्व एवं उत्तर में अलीगढ़, दक्षिण में आगरा जिले हैं। इसका वर्तमान क्षेत्रफल १४६७ वर्गमील है। यमुना नदी इसे दो भागों में बाँट देती है। यमुना के पूर्व का भाग समृद्धिशाली है। इसमें कूप, नहरों तथा नदी से भी सिंचाई होती है। मथुरा का मध्यभाग अत्यन्त पवित्र क्षेत्र माना जाता है। इसमें मथुरानगर, वृन्दावन, गोकुल, महावन, गोवर्धन, नन्दगाव, बरसाना आदि पवित्र तीर्थ स्थान हैं। इसकी जनसंख्या इस समय १०, ७१, २७९ सन् १९६० की गणना के अनुसार है। मथुरा नगर आगरा से ३० मील उत्तर दिशा में स्थित है। इसकी जनसंख्या १,२५,२५८ सन् १९६० ई० की जनगणना के अनुसार है। अन्नकूट यहाँ का प्रसिद्ध स्थान है। इसमें १४ से अधिक प्रसिद्ध मन्दिर तथा ३३ से अधिक घाट यमुना तट पर बने हैं। विश्राम घाट प्रसिद्ध है। नदी में कच्छप बहुत होते हैं। स्नान में असुविधा पैदा करते हैं। बरसाना की होली प्रसिद्ध है। नन्दगाँव मथुरा नगर से २४ मील दूर स्थित है।

इक्ष्वाकुवंशीय भगवान् रामचन्द्र के कनिष्ठ भ्राता शत्रुघ्न ने मधुवन में मधुनामक दैत्यपुत्र लवण का बध कर, मथुरापुरी की स्थापना की थी। (भाग० : ९ : ११ : ४४ ब्रह्माण्ड० : ३ : ६३ : १८६; वायु० : ८८ : १८५-१८६) किन्तु विष्णुपुराण में कथा कुछ और ही दी गई है। उसके अनुसार यमुना तट पर 'मधु' एक पवित्र स्थान था। वहाँ मधुदैत्य निवास करता था। मधुवन के नाम से वह स्थान लोक में प्रसिद्ध हो गया। मधु के बध के पश्चात् स्थान का नाम मथुरा हो गया (विष्णु० : १ : १२ : २-४) ब्रह्माण्ड पुराण में मथुरा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। (३ : ४९ : ४६) भागवत पुराण में एक स्थल पर मथुरा के लिये मधुपुरी का सम्बोधन किया गया है। (१० : १ : १०) मथुरा ब्रज में जमुना के दक्षिण तट पर स्थित है।

शत्रुघ्न पुत्र सुबाहु तथा शूरसेन ने पर्याप्त समय तक मथुरा में शासन किये थे। (भाग० : ९ : ११ : १३; ब्रह्माण्ड० : ३ : ६३ : १८७; वायु० : ८८ : १८६) शूरसेन का नाम भागवत में श्रुतसेन दिया गया है। इसी पुराण में वर्णन मिलता है कि यदुपति शूरसेन मथुरापुरी में रहते हुए, मथुरा तथा शूरसेन विषयों पर शासन किये थे। उस समय से भावी यदुवंशियों की राजधानी मथुरा हुई। (भाग० : १० : १ : २७–२८) युधिष्ठिर ने मथुरा में अनिरुद्ध के पुत्र वज्र को शूरसेन का राजा बनाया था। (भाग० : १ : १५ : ३९) वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराणों में मथुरापुरी में सात नाग वंश के राजाओं के शासन करने का उल्लेख मिलता है। (वायु० : ९९ : ३८३; ब्रह्माण्ड० : ३ : ७४ : १९४) मगधराज जरासंध ने तैंतीस अक्षौहिणी सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण किया था। (हरिवंश० : १६५ : ३) राक्षसों ने भी मथुरा पर आक्रमण किया था। राक्षसों के आक्रमणों के भय के कारण, वृष्णि, अन्धक, आदि यदुवंशियों ने मथुरा त्यागकर, द्वारावती अर्थात् द्वारका को अपनी राजधानी बनायी थी। (हरिवंश० : ३७) ललितविस्तार के अनुसार कहा जा सकता है कि मथुरा की गणना भारतवर्ष की प्रसिद्ध नगरियों में थी और शूरसेनों का राजा सुबाहु था। लंका के प्राचीन अभिलेखों से प्रकट होता है कि राजा साधिन के पुत्र तथा पौत्र मथुरा के शासक थे। छट जातक की कथा है कि उत्तरी मथुरा में महासागर राजा ने राज्य किया था। उसके दो पुत्र सगर तथा उपसागर थे। ग्रीक पुरातत्त्ववेत्ताओं ने मथुरा को शूरसेनों की राजधानी स्वीकार किया है। (एन्शिएण्ट ज्योग्रेफी : कनिंघम : ४२९) बुद्धगया के प्राप्त अभिलेखों से पता चलता है कि ब्रह्ममित्र मथुरा का राजा था। अहिच्छत्र के राजा इन्द्रमित्र का वह सम्भवतः समकालीन था। शत्रुघ्न पुत्र शूरसेन तथा यदुपति शूरसेन भिन्न व्यक्ति हैं। यदुपति शूरसेन यदुवंशी थे (भाग० : ९ : २४ : २७-२८; १० : १ : २९) शूरसेन एक मत है कि कृष्ण के पितामह थे। भगवान् कृष्ण का दूसरा नाम हैं मथुरानाथ (ब्रह्माण्ड० :

पुनः संभृतसामग्र्यो दिग्जयाय विनिर्ययौ ।
बलैर्जलधिवेलाद्रीन् द्राघयन्नलघुद्विपैः ॥५१४॥

५१४. पुनः (युद्ध) सामग्री संग्रह कर विशाल काय गजों से जलधि तट को विस्तृत करता हुआ, वह दिग्विजय हेतु निकल पड़ा ।

संप्रविष्टाऽपि पूर्वाब्धिमविच्छिन्ना हिमाचले ।
भगीरथस्य गङ्गेव रेजे तस्यानुगा चमूः ॥५१५॥

५१५. पूर्व सागर[1] में प्रविष्ट उसकी अनुगामिनी सेना हिमालय पर भगीरथ[2] की गंगा तुल्य सुशोभित हुई ।

---

३ : ३६ : ३१) बौद्धों के समय, आचार्य उपगुप्त ने इसे बौद्ध धर्म का केन्द्र बनाया था । यह जैनियों का तीर्थ स्थान है । उनके उन्नीसवें तीर्थंकर मल्लि-नाथ का जन्म मथुरा में हुआ था । मौर्य साम्राज्य के पश्चात् मथुरा में यूनानी, पारसी, शक एवं क्षत्रियों का प्रभाव हो गया । मथुरा का राजा कंस था । श्रीकृष्ण तथा बलराम की कर्मभूमि रही है जरासध ने गिरि-वज्र से एक गदा फेंका था । वह मथुरा के गदावसान स्थान पर आकर गिरा था । (सभा० १९ : २३-२४) मथुरा के मल्ल अर्थात् कुश्ती लड़नेवाले प्रसिद्ध होते थे । (शान्ति० : १०१ : ५) श्री नारायण ने कंसवध के लिये श्रीकृष्ण का अवतार लिया था । (शांति० : ३३९ : ८९-९०) मथुरा में अम्बरीष टीला, सप्तर्षि टीला, बलि टीला, कंस टीला, ध्रुवघाट, विश्राम घाट, कृष्ण गंगा घाट, सोमघाट, रामटीला, जन्म स्थान आदि महत्त्वपूर्ण पौराणिक स्थान हैं ।

सन् १०१७-१०१८ में महमूद गजबी ने मथुरा के मन्दिरों को नष्ट किया था । सन् १५०० ई० में सिकन्दर लोदी ने पुनः मन्दिरों तथा मूर्तियों को भंग किया था । सन् १६६९-७० ई० में औरंगजेब ने मथुरा के मन्दिरों को नष्ट किया था। अन्तिम सर्वनाश मथुरा का सन् १७५७ में अहमद शाह दुर्रानी ने किया था । मथुरा जेल के फाँसी घर में ६ मास मैं स्वयं सन् १९३० में नमक सत्याग्रह के सम्बन्ध में बन्दी रह चुका हूं ।

(२) प्रमोद : मथुरा में उस समय हिन्दूराज था । इतिहास में प्रमोद का नाम अन्वेषण का विषय है । कल्हण के वर्णन से स्पष्ट होता है । कश्मीर का वैवाहिक सम्बन्ध काश्मीर के बाहर भी था । राजा प्रमोद ने अपनी कन्या का विवाह आच से किया था । वह राजा नहीं था । इससे प्रतीत होता है । उन दिनों कश्मीर के मन्त्रियों तक का कितना सम्मान था । उनसे मथुरा के राजा अपनी कन्या का सम्बन्ध करने में गर्व का अनुभव करते थे ।

(३) क्षत्ता : द्वारपाल । क्षत्ता का अर्थ स्तीन ने चैम्बरलेन अथवा कंचुकी किया है । क्षत्ता चम्बाराज्य में परगना के शासक को कहते हैं— मनु ने क्षत्तृ (१० : १६) को एक रत्नों में रखा है । याज्ञवल्क्य ने क्षत्रिय स्त्री एवं शूद्र पुरुष की सन्तान को क्षत्र लिखा है । वे ही सम्भवतः द्वारपाल होते थे । (याज्ञ० : १ : ९४)

पाठभेद

श्लोक संख्या ५१५ में 'पूर्वाब्धि' का पाठभेद 'पूर्वाद्रि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१५. (१) पूर्व सागर : बंगाल की खाड़ी ।

(२) भगीरथ : भगीरथ की कथा रामायण, पुराण तथा महाभारत में दी गई है । इक्ष्वाकु वंशीय

असमंजस के प्रपौत्र, अंशुमान के पौत्र तथा राजा दिलीप के पुत्र थे। इनके पुत्र का नाम श्रुत था। प्रपितामह असमंजस के पिता सगर थे। उनके साठ हजार पुत्र थे। वे कपिल मुनि के शाप के कारण भस्म हो गये थे। तत्पश्चात् कपिल मुनि ने पितरों के उद्धार के लिए अंशुमान तथा दिलीप से बताया कि यदि गंगा का अवतरण पृथ्वी पर हो जाय तो पितरों की मुक्ति होगी। सगर, अंशुमान तथा दिलीप का प्रयास असफल रहा।

भगीरथ ने गंगावतरण के लिये घोर तप किया। गंगा प्रसन्न हुई। पृथ्वी पर आने के लिए उद्यत हो गयी। गंगा के वेग को रोकने की समस्या थी। भगीरथ ने शंकर की आराधना आरम्भ की। शंकर तपस्या से प्रसन्न हो गये। गंगा के वेग को अपनी जटा पर रोके। शंकर ने अपनी जटा का एक बाल तोड़कर गंगा को पृथ्वी पर उतारा।

गंगा का वह क्षीण प्रवाह 'अलकनन्दा' नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् गंगा वेग से उसी ओर चलीं जिस ओर भगीरथ चलने लगे। कपिलाश्रम के स्थान पर गंगा जल के स्पर्श से पितरों की मुक्ति हो गयी। भगीरथ की गंगा ज्येष्ठ कन्या मानी गयी। उसके नाम पर उसका नाम 'भागीरथी' हो गया। (म० व० : १०७; वा० : रा० : बा० : १:४२-४४; भा० : ९ : ९ : २-१३; वायु० : ४७ : ३७; ८८ : १६८; ब्रह्माण्ड० : २ : १८ : २३-४२; विष्णु० : ४ : ४ : १७; ह, वं० १ : १५-१६; नारद : १ : १५; ब्रह्मवै० : १ : १०; १ : ४४.५)

पद्मपुराण में कथा है कि गंगा स्वर्ग से उतरकर शंकर की जटाओं में उलझ कर रह गयीं। राजा सगर ने गंगा को मुक्त करने का निवेदन किया। (पद्म० : उ० २१) सगर का नाम गंगावतरण में जोड़ना प्रक्षिप्त मालूम पड़ता है क्योंकि सगर भगीरथ के चार पीढ़ी पूर्व हुए थे।

रामायण में कथा विस्तार के साथ दी गयी है। गंगा को भूतल पर लाने के लिए भगीरथ ने गोकर्ण नामक तीर्थ में दीर्घकाल तक तपस्या की थी। दोनों हाथ उठाकर पंचाग्नि का सेवन करते थे। इन्द्रियनिग्रह करते हुए एक मास अनशन तथा दूसरे मास क्रम से आहार ग्रहण करते थे। एक सहस्र वर्ष तक तपस्या की थी। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर इनसे वर मांगने के लिए कहा। उन्होंने वर माँगा कि गंगा के द्वारा सगर पुत्रों की भस्म राशि शान्त और उन्हें एक पुत्र हो ताकि वंश परम्परा टूटने न पाये। ब्रह्मा ने वर देकर उन्हें शंकर को प्रसन्न करने के लिए कहा। वे गंगा के वेग को रोक सकने में समर्थ थे। (बाल० : ४२ : ७-२६) ब्रह्मा से वर मिलने के पश्चात् भगीरथ ने पृथ्वी पर केवल एक अँगूठे पर खड़े होकर एक वर्ष तपस्या की। शंकर प्रसन्न हो गये। गंगा का वेग अपनी जटा से रोकने का वचन दिया। गंगा इनकी जटा में उलझ गयीं। भगीरथ ने पुनः घोर तपस्या कर शंकर से गंगा को मुक्त करने के लिए निवेदन किया। शंकर ने गंगा को बिन्दु सरोवर में विसर्जित कर दिया। उस समय गंगा की सप्त धाराओं में एक धारा भगीरथ के रथ का अनुकरण करती चली। महात्मा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगा की धारा के कारण यज्ञ मण्डप बह गया। जह्नु गंगा को पी गये। उनसे सबने प्रार्थना की। उन्होंने अपने कर्ण छिद्रों से गंगाजी को निकाल दिया। गंगा भगीरथ के रथ के पीछे चलने लगी। (बा० ४३ : १-४१) गंगा को साथ लेकर, समुद्र तट गये, वहाँ से रसातल में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने भगीरथ के परिश्रम की प्रशंसा की। उनके देव लोक लौट जाने पर गंगा जल से सगर के पुत्रों का विधिवत तर्पण किया। तत्पश्चात् यह पुनः राज्य करने लगे। गंगा त्रिपथगा, दिव्या तथा भागीरथी तीनों नाम से प्रसिद्ध हुई। (बा० ४४ : १–१८) भगीरथ के पुत्र का नाम ककुत्स्थ था। ककुत्स्थ के पुत्र रघु थे। रघु के पुत्र प्रवृद्ध थे। (बा: ७०:३९)

रामायण के समान ही भगीरथ की कथा महा-

सार्धं प्रचण्डैश्चण्डालैरटन्तः कटकाद्बहिः ।
तस्यासन् यामिका रात्रौ मुम्मुनिप्रमुखा नृपाः ॥५१६॥

५१६. प्रचण्ड चाण्डालों के साथ रात्रि में कटक के बाहर चिल्लाते हुए, मुम्मुनि[1] प्रमुख नृप उसके यामिक थे ।

भारत में दी गयी है । उसमें उनके माहात्म्य का अधिक वर्णन किया गया है । अनशन व्रत को ब्रह्म-लोक में पहुँचने का साधन बताया है । इन्होंने अपनी कन्या कौत्सको दान कर दी थी । कोहल ऋषि को एक लाख सवत्सा गो दान करने के कारण इन्हें उत्तम लोक की प्राप्ति हुई थी । भगवान् नारद ने सोलह श्रेष्ठ राजाओं में भगीरथ की गणना की है । (वन० : २५:१२, १०७; ६९; १०८; १०९: १–२, १८–१९; सभा० ८ : १२; द्रोण० : ६०; शान्ति० : २९ : ६३–७०; अनु० ७६ : २५; १०३ : ८–४२; १–१३७) भागीरथी के तट पर भगीरथ ने अनेक घाटो का निर्माण कराया था ।

वैदिक वाङ्मय में निर्दिष्ट भगीरथ ऐक्ष्वाकु एवं यह सम्भवतः एक ही व्यक्ति थे । कुछ विद्वानों का अनुमान है । (जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ४:६: १:२)

आधुनिक विद्वानों एवं अभियन्ताओं का मत है । भगीरथ की कथा रूपात्मक है । पूर्वकाल में गंगा पूर्व से उत्तर की ओर तिब्वत में बहती थी । उत्तरी भारत में जलाभाव के कारण अकाल पड़ जाता था । इसके लिये भगीरथ के पूर्वजों ने प्रयत्न किया कि गंगा के प्रवाह को बदलकर उसे दक्षिण वाहिनी बनाया जाय । किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली । भगीरथ ने गंगा की धारा मोड़कर दक्षिणवाहिनी बनाया । उत्तर प्रदेश का पश्चिमी भाग उनके जल से हराभरा हो गया । सगर के साठ हजार पुत्र उसकी प्रजा के प्रतीक थे । गंगा की नहरें हरिद्वार से निकलकर कानपुर तक आयी है । गंगा को भी एक बड़ी नहर के रूप में निकालना बताया गया है । अनेक नहरें मरम्मत के अभाव में नदियों का रूप धारण कर लेती हैं । काशी में चन्द्रप्रभा नदी, नहर थी । परन्तु अब वह छोटी नदी का रूप ले ली है । सम्भवतः यही बात गंगा के सम्बन्ध में हुई होगी ।

कालिदास ने भी पूर्व सागर का उल्लेख रघुवंश में दिग्विजय के प्रसंग में किया है ।

स सेनां महतीं कर्षन्पूर्वसागरगामिनीम् ।
बभौ हरजटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥

—रघुवंशः ४:३२

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१६ में 'मुम्मु' का पाठभेद 'सुम्मु' 'रम्मु' 'सुस्म' तथा 'सम्मु' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१६. (१) मुम्मुनि : मूलतः तुर्क अथवा मुगल सरदार थे । इनका मूल निवास स्थान तुखार, (बदखशा) तथा भौट्ट (लद्दाख) के मध्य था । कल्हण ने इस (तरंग ३ : ३३२; ४ : १६७; ८ : १०९०, २१९७) शब्द का प्रयोग किया है । श्री रणजीत सीताराम पण्डित का मत है 'यह एक राजपुत्र का नाम था जो विदेश से नौकरी की खोज में राजा सस्सुल के यहाँ आया था । मुम्मुनि मूलतः 'तुर्की-मंगोल' पदवी थी, जिसका प्रयोग काश्मीर की सीमा पर होता था—जैसा कि मुम्मुनि को श्लोक रा० ४ : १६७ में तुखार और भौट्ट के मध्य रखा गया है, (बदखशा तथा लद्दाख) ।

नामान्यद् विनयादित्य इति प्रख्यापयन्नृपः ।
पूर्वाशां विनयादित्यपुरेणालंकृतां व्यधात् ॥५१७॥

५१७. 'विनयादित्य' इस अन्य नाम को प्रख्यापित करते हुए, नृप ने पूर्व दिशा को विनयादित्यपुर[1] से अलंकृत किया ।

अत्युत्सेकेन सहसा साहसाध्यवसायिनाम् ।
श्रीरारोहति संदेहं महतामपि भूभृताम् ॥५१८॥

५१८. अति गर्व से, सहसा[1] साहसी कार्य करने वाले, महान् भी भूभृतों की श्री संदेह पर आरोहण करती है ।

भीमसेनाभिधानस्य स दुर्गं पूर्वदिक्पतेः ।
निःशब्दो व्रतिभिः सार्धं व्रतिलिङ्गी विवेश यत् ॥५१९॥

५१९. उसने व्रती के भेष में व्रतियों के साथ पूर्वदिक्पति भीमसेन[1] के दुर्ग में निःशब्द प्रवेश किया ।

तं रन्ध्रावेषिणं तत्र परिज्ञाय चिरस्थितः ।
भ्राता जज्जस्य सिद्धाख्यो गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥५२०॥

५२०. वहाँ चिर काल से स्थित जज्ज-भ्राता सिद्ध ने उस रन्ध्रान्वेषी[1] राजा को पहचान कर, राजा से निवेदन किया ।

पादटिप्पणी :

५१७ (१) विनयादित्यपुर : इस नगर का अभी तक कुछ पता नहीं चला है । जयापीड की समस्त प्राप्य मुद्राओं में विनयादित्य का नाम अंकित मिलता है । जयापीड का अपर नाम विनयादित्य था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१८ में 'अत्युत्से' का पाठभेद 'अभ्युत्से' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१८ (१) साहसी : हिताहित का विना विचार किये किंवा देखे कर्म करने वाले को कहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५१९ में 'दिक्पतेः' का पाठभेद 'भूपतेः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१९ (१) भीमसेन : अभी तक इतिहास से भीमसेन का पूर्ण परिचयादि प्राप्त नहीं हो सका है । पूर्व में किस प्रदेश, अंचल तथा नगर का राजा था, सम्भावना यही है कि वह गौड किंवा उसके किसी अंचल का राजा था ।

पादटिप्पणी :

५२० (१) रन्ध्र : यह शब्द राजनीति में शत्रु किंवा विरोधियों के कमजोर तथा दुर्बल स्थानों लिये प्रयोग किया गया है । शत्रु के दुर्बल स्थान को खोजकर उसके द्वारा आक्रमण किया जाता है । (मृच्छकटिक : ८ : ५७) राजा भी दुर्बल स्थान खोज रहा था । प्राचीन काल में इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता रहा है—'रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः' (शकन्तुला : ६;) रन्ध्रान्वेषणदक्षाणां

भूपतिं भीमसेनोऽथ राजाऽकस्माद्वबन्ध तम् ।
नहुषाजगरो भीममिव भीमपराक्रमम् ॥५२१॥

५२१. जिस प्रकार भीम पराक्रमी भीम को अजगर रूप में नहुष[1] ने बाँधा था, उसी प्रकार भूपति भीमसेन ने अति पराक्रमी राजा को बाँध लिया ।

द्विषामामिषतां ययौ (रघुवंश : १२ : ११, १५ : १७; १७ : ३१)

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५२१ में 'तिं भी' का पाठभेद 'तिभी' मिलता है ।

पादटिप्पणी

५२१ (१) नहुष : प्रतिष्ठान (प्रयाग) देश का विख्यात सम्राट् था । वैवस्वत मनु की कन्या इला के साथ उसका विवाह हुआ था । यह पुरुरवस् ऐल राजा का पौत्र, आयु राजा का पुत्र एवं ययाति राजा का पिता था । (लिंग :१:६६:५९—६०; कूर्मः १: २२, ३–४) वह चार भाई-क्षत्रवृद्ध (वृद्धशर्मन्) रंभ, रजि एवं अनेनस् (विपाप्मन्) थे। (वायु०, ९२ : १–२ ब्रह्म० : ११ : १–२; आ०:७५:२७–२८) दानव राजा राहु किंवा स्वर्भानु की कन्या प्रभावती (स्वर्भानवी) का विवाह इसके पिता आयु से हुआ था । उसी का पुत्र था । (ह० वं०:१:२८:१, आ० ७०:२३) पद्म पुराण के अनुसार आयु की पत्नी इन्दुमती से दत्तात्रेय भगवान् की कृपा से जन्म ग्रहण किया था । (पद्म० : भू:१०५) वायु पुराण के अनुसार आयु की पत्नी विरजा से उत्पन्न हुआ था । (वायु० ९८: ब्रह्म०: १२:३४) सुस्वधा पितरों की कन्या विरजा से इसे ६ पुत्र—यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति, तथा कृति थे । ययाति राज्य का उत्तराधिकारी हुआ था । (विष्णु०: ४:१०:११; भाग० ९:१७:१; १८:१=२; वायु०: ९२:२; ९३:१२–१३; आ० ७५:३०–३२) महाभारत के अनुसार कृत ध्रुव इनका पुत्र माना गया है । (आ० ७५:३०—३१) ।

पद्म पुराण के अनुसार दत्त की कृपा से आयु राजा की पत्नी इन्दुमती गर्भवती हुई । हुण्ड राक्षस की कन्या नन्दन वन में क्रीडा हेतु गयी थी । वहाँ उसने सिद्ध एवं चारणों से सुना कि उसके पिता की मृत्यु आयुपुत्र नहुष के द्वारा होने वाली थी। उसने यह बात अपने पिता हुण्ड से कही । हुण्ड एक अमंगल दासी के शरीर में प्रविष्ट हो गया । नहुष का जन्म होते ही रात्रि काल में अपने निवास स्थान में उठा लाया । अपनी विपुला भार्या से कहा कि नहुष उसका शत्रु था । उसका मांस बनाकर उसे खिला दे । विपुला ने बालक को रसोइए को दे दिया । रसोइया ने दया कर नहुष को वसिष्ठ के यहाँ रख दिया । हरिण का मांस बनाकर हुंड को खिला दिया ।

वसिष्ठ ने दिव्य दृष्टि से नहुष का पूर्व वृत्तान्त जान लिया । बालक का नाम नहुष रखा । ऋषि ने नहुष का उपनयन किया । वेद एवं धनुर्विद्या की शिक्षा दी । वसिष्ठ के आदेश पर हुंड पर आक्रमण कर नहुष ने उसका वध किया । अशोक सुन्दरी से इसने विवाह किया । उसके साथ अपनी राजधानी प्रतिष्ठान लौट आया । (पद्म०: भू: १०५–११७) च्यवन ऋषि मछुओं के जाल में फँस गये । नहुष ने मछुओं को लाखों गाय देकर च्यवन को मुक्त कराया । (शा० २६०:६; अनु० ५१:४–२५, ४४)

इन्द्रने त्रिशिर ब्राह्मण की हत्या की थो। ब्रह्महत्या उनके पीछे लग गयी । इन्द्र पद खाली हो गया । समस्त देवताओं ने अपनो तपस्या का बल नहुष को देकर उसे इन्द्र बनाया। उसे वरदान दिया । तुम जिसकी ओर देखोगे उसके तेज का हरण हो जायगा । (आ० : ७०:२७ उ० : ११:९,) कालान्तर में उसमें 'देवेन्द्र हूँ' तामसी अहंकार भाव उत्पन्न हुआ । वह मतिभ्रष्ट एवं विषय लंपट हो गया । शची पर आसक्त होकर काम वासना तृप्त करनी चाही । (आ० ७५–२९–३० उ० ११:१८–१९) इन्द्राणी

अपनी रक्षा के लिये देवगुरु बृहस्पति के पास गयी। बृहस्पति के सुझाव पर इन्द्राणी ने कुछ अवकाश माँगा। शची ने इन्द्र को ढूँढ़ निकाला। उनसे समस्त वृत्तान्त कहा। इन्द्र ने उससे कहा—'नहुष के पास जाकर कहो, यदि सप्तर्षियों द्वारा उठायी गयी पालकी पर बैठकर, मुझसे मिलने आओ तो तुम्हारा वरण करूँगी।' नहुष ने इन्द्राणी की शर्त मान ली (उ० १३:७) सप्तर्षियों द्वारा ढोई जाती पालकी पर वह शची से मिलने चला। (उ० १५:२२) पालकी तेज चलाने के लिए सप्तर्षियों में अगस्त्य पर पाद प्रहार किया और बोला—'सर्प-सर्प,' (शीघ्र चलो)। अगस्त्य ने शाप दिया—'तू दश हजार वर्ष पृथिवी पर सर्प हो कर रहेगा।' नहुष तत्काल सर्प हो गया। पालकी से बाहर गिरने लगा। (उ० : १०:१५–१८) अगस्त्य को उसकी स्थिति पर दया आयी। पुनः क्षमा किया—'पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर तुझे सर्प योनि से मुक्त करेगा' (उ० ११:१७; अनु० १५६–१५७; भा० ६:१८:२—३; दे० भा० : ६:७—८; विष्णु० १:२४; आ० : ७५:२७—२९)

नहुष ने ऋषियों की ओर देखकर, उनकी शक्ति क्यों नहीं हरण कर लिया, इसका स्पष्टीकरण किया गया है। भृगु ऋषि के कारण नहुष का पतन हुआ था। अगस्त्य की जटा में भृगु छिपकर बैठ गये थे।

सरस्वती तट पर द्वैतवन में पाण्डव वनवास कर रहे थे। भीमसेन मृगया के लिए निकला था। यमुना गिरि पर घूमते-घूमते उसने एक गुफा के मुख पर एक विचित्र अजगर देखा। भीम को देखते ही अजगर झपट कर उसे बाँध लिया। भीम को अपने दशसहस्र नाग बल पर गर्व था। उसे आश्चर्य हुआ। उसने सर्प का परिचय पूछा। नहुष ने सब वृत्तान्त बताया। इसी समय युधिष्ठिर चारिका करते उस स्थान पर पहुँच गये। भीम को अजगर द्वारा पकड़ा देख चकित हुए। जिज्ञासा की। नहुष ने उत्तर दिया—'मैं तुम्हारा पूर्वज हूँ। यदि मेरे प्रश्न का उत्तर दोगे तो भीमसेन को मुक्त कर दूँगा।' युधिष्ठिर उत्तर देने के लिए तैयार हो गये। प्रथम प्रश्न नहुष ने किया—'ब्राह्मण कौन है?' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'सत्य, दान, क्षमा सच्छीलत्व तथा इन्द्रिय दमन जिसके पास है, वही मानव ब्राह्मण है।' सर्प नहुष ने दूसरा प्रश्न किया—'पृथ्वी में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान क्या है?' युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—'ब्रह्म ज्ञान सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है।' सर्प ने भीमसेन को मुक्त कर दिया। उसका भी उद्धार हो गया। (वन० : १७५–१७८; १७८ : २८, १७९ : १० २४; १८० : से १८१ : ४३)

अधिकांश पुराण तथा महाभारत के अनुसार नहुष के छः पुत्र थे। किन्तु कूर्म एवं पद्म के मतसे केवल पाँच पुत्र थे। (कूर्म० : १ : २२; पद्म. सृ : १२) मत्स्य एवं अग्नि पुराणों में पुत्रों की संख्या सात दी गयी है। (मत्स्य० : २४ : ५०; अग्नि० २७४)। यती नहुष का ज्येष्ठ पुत्र था। ययाति नहुष के प्रतिष्ठान का राजा हुआ। 'पुरुरवा वंश' उसके पश्चात् ययाति वंश नामसे प्रसिद्ध हुआ। संयाति-उत्तर आयु में परिव्राजक बन गया। इसका अपर नाम शर्याति था। (पद्म०: सृ०:१२, अग्नि० २७४) आयाति किंवा अयति के लिए 'उद्भव' नामान्तर प्राप्त है। (मत्स्य०: २४ : ५०, पद्म०: सृ०:१२, अग्नि० २७४) अश्वक के अपर नाम पार्श्वक, (ब्रह्म० : १२) अन्धक (लिंग० १ : ६६) वियति (विष्णु० : ४ :१०, भाग० ९ : १८ : १, पद्म० सृ० : १२) है। वियाति (मत्स्य०:२४) अपर नाम विजाति (लिंग० : १ : ६६ सुयाति (हं. वं. १ : ३० : २, ब्रह्म० : १२) कृति (विष्णु० ४ : १०, भा. ९ : १८ : १) ध्रुव (आ० ७० : २८) प्राप्त है। मेघ जाति (मत्स्य० : २४:५७ इसका नामान्तर मेघ बालक प्राप्त है। (अग्नि० २७४)

रामायण के अनुसार वृत्रवध के पश्चात् इन्द्र के अभाव में इन्द्र का आसन ग्रहण किया था। (उत्तर० ५६ : २७–२८) महाभारत में उल्लेख आता है कि इन्हें आयुसे खड्ग की प्राप्ति हुई थी। (शा : १६६ : ४८–५०) ऋषियों पर किए गए अत्याचारों का

तस्मिन् वीरे तथा बद्धे धुर्ये पुरुषकारिणाम् ।
पौरुषद्वेषिणा जाने दैवेनोन्नमितं शिरः ॥५२२॥

५२२. पुरुषार्थियों में अग्रणी, उस वीर के इस प्रकार बाध्य होने पर, पराक्रम द्वेषी दैव ने उन्नमित किया।

जयापीडस्त्वसंमूढो व्यसनेऽप्यतिदारुणे ।
तांस्तान् संचिन्तयन्नासीदुपायानुदयोन्मुखः ॥५२३॥

५२३. उदयोन्मुख जयापीड अति दारुण व्यसन (बन्धन) में भी, बिना बिमूढ़ हुए, मुक्ति के तत् तत् उपयोग का चिन्तन करता था।

अत्रान्तरे नरपतेः पौराणामतिदुस्तरा ।
लूतामयकृता व्यापदुदपद्यत मण्डले ॥५२४॥

५२४. इसी बीच में नरपति (भीमसेन) के मण्डल में, पुरवासियों के मध्य, अति दुस्तर 'लूता'[1] रोग कृत विपत्ति उत्पन्न हुई।

आमयः स्पर्शसंचारी तत्र व्यापादकश्च सः ।
देशदोषादतो जन्तुर्लूताव्याप्तो विवर्ज्यते ॥५२५॥

५२५. वह रोग स्पर्श संचारी[1] (संक्रामक) एवं व्यापादक (मृत्युकर) था। अतएव देश दोष से लूता व्याधि ग्रस्त प्राणी पृथक् कर दिया जाता था।

वर्णन (अनु० : ९९ : १०-१२ में) मिलता है। मांस भक्षण निषेध से इन्हें तत्त्व ज्ञान प्राप्त हुआ था। (अनु० : ११५ : ५०) नहुष के पराक्रम का वर्णन (भा० ७५ । १५, २९-३० में) किया गया है।

पादटिप्पणी :

५२२ (१) दैव=कल्हण ने पुरुषार्थ एवं भाग्य को एक दूसरे का विरोधी माना है। पुरुषार्थ श्रेष्ठ है अथवा दैवाधीन रहना इस प्रसंग में अनेक कथानक भारतीय वाङ्मय में मिलते हैं। दैव सर्वदा पुरुषार्थियों के चरित्र से घृणा करता है। वह उन्हें अपना स्पर्धी मानता है। द्रष्टव्य : पादटिप्पणी जोन : श्लोक ५९७, श्रीवर : १ : ३ : १०५, १ : ७ : २१५, २ : ४१, कल्हण ४ : ६२०, २७ फ : १ : ११९, २ : ७४, ८८, १४४

पादटिप्पणी :

५२४ (१) लूता : कश्मीर में 'लोत' कहते हैं। राजतरंगिणी में इस व्याधि का बहुत वर्णन मिलता है। इसका शाब्दिक अर्थ मकड़ी होता है। मकड़ी के शरीर पर चढ़ने एवं उसके मूत्र स्पर्श से शरीर में व्रण निकल आते हैं। इस प्रकार की बीमारी की संज्ञा लूता रोग से दी गई है। फुल्ल रक्त वर्ण पिटक के आकार का विस्तृत संचारी चर्म रोग विशेष लूता कहा जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५२५ में 'स्पर्शसं' का पाठभेद 'सर्गसं' 'सर्वसं' 'स्पर्धसं' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५२५ (१) संचारो व्याधि : मुझे अच्छी तरह याद है कि आज से ५० वर्ष पूर्व जब हैजा, प्लेग तथा अन्य संक्रामक बीमारियाँ फैलती थीं तो, लोग गाँव छोड़कर खेतों में झोपड़ियाँ लगा कर रहते थे। आधुनिक विज्ञान के कारण संक्रामक

तदाकर्ण्य जयापीडो जातोपायप्रयुक्तधीः ।
स्वभृत्येनोपयुक्तानि द्रव्याण्यानीतवान् रहः ॥५२६॥

५२६. यह सुनकर, जयापीड को मुक्ति प्रद उपाय ज्ञात हुआ और उसने अपने भृत्य द्वारा गुप्तरूप से उपयुक्त द्रव्य मँगवाया ।

तैः पित्तोद्रेचकैर्भुक्तैर्ज्वलत्पित्तोऽवहज्ज्वरम् ।
वज्रवृक्षपयश्चाङ्गे क्षिप्त्वा सपिटकोऽभवत् ॥५२७॥

५२७. इन पित्तोद्रेकी वस्तुओं को खाने से पित्तग्रस्त हो गया और अंग में वज्र[1] वृक्ष का क्षीर लगाकर पिटक (फोफला) युक्त (आक्रान्त) हो गया ।

तं लूताव्याप्तमाकर्ण्य विपक्षो रक्षिणां मुखात् ।
विपत्स्यते ध्रुवमिति ध्यात्वा देशाद्बहिर्व्यधात् ॥५२८॥

५२८. विपक्षी (नृप) ने रक्षकों के मुख से उसे लूताग्रस्त सुनकर, 'निश्चय ही मृत हो जायगा' ऐसा विचार कर, देश से बाहर निकाल दिया ।

एवं स्वमतिमाहात्म्यात्संतीर्णो विपदर्णवात् ।
व्याप्तव्योमाऽग्रहीद् दुर्गं यशश्च परिपन्थिनः ॥५२९॥

५२९. इस प्रकार अपनी बुद्धि के माहात्म्य के कारण, विपत्ति सागर पार करते ही, शत्रु का गगनचुम्बी दुर्ग एवं यश गृहीत कर लिया ।

यः सर्वकालमबुधैः परिहस्यमानो
मूलाङ्कुराद्यपि न जातु पुरस्करोति ।
व्यापत्सु शास्त्रविटपी स फलं प्रसूय
पुंसः किलैकपद एव लुनात्यलक्ष्मीम् ॥५३०॥

५३०. सर्वदा अबुध (मूर्ख) जनों का परिहास पात्र, जो (शास्त्र वृक्ष) कदाचित् मूल अंकुर आदि प्रकट नहीं करता है, वही शास्त्र विटपी आपत्तियों में सुफल प्रसूत कर. पुरुष के दारिद्रय को सहसा निश्चय ही दूर कर देता है ।

बीमारियाँ अब नहीं होतीं । गत पचास वर्षों से गृहों से निकल कर आबादी से दूर रहने का क्रम समाप्त हो गया है । जंगलों में अभी भी यह प्रथा प्रचलित है ।

पादटिप्पणी :

५२७ (१) वज्र वृक्ष : सेहुड़ का वृक्ष है । अर्क अर्थात् मदार के वृक्ष की तरह इसे खोद देने से दूध निकलता है । रस अथवा दूध यदि शरीर पर लग जाता है तो फफोला निकल कर घाव हो जाता है । सेहुड़ की झाड़ी खेतों के डाड़ों या मिट्टी की चहारदिवारी पर लगाते हैं, राजस्थान में इसे थूहर कहते हैं । संस्कृत में वज्र वृक्ष का एक नाम कोकिलाक्ष भी दिया गया है ।

पादटिप्पणी :

यह सूक्ति संग्रह का १३६ वाँ श्लोक है ।

तमैच्छदभिसधातुं विद्याविक्रमसंयुतः ।
मायाव्यरमुडिर्नाम राजा नेपालपालकः ॥५३१॥

५३१. विद्या एवं विक्रम से युक्त नेपाल पालक मायावी नृप 'अरमुडि'[1] उसे षड्यन्त्र का लक्ष्य बनाना चाहा ।

अकृतप्रणतिस्तस्य प्रविष्टस्य स्वमण्डलम् ।
अग्रात्सुदूरमध्वानं ससैन्योऽपससार सः ॥५३२॥

५३२. उसने (नेपाल नरेश) के मण्डल में (युद्धहेतु) प्रविष्ट (जयापीड) की अधीनता न स्वीकार कर ससैन्य सम्मुख से सुदूर चला गया ।

जिगीषोस्तस्य तु तथा तत्तत्पार्थिवनिर्जयः ।
पृथक्प्रयत्ननिर्वर्त्यो नाभूत्तदनुसारिणः ॥५३३॥

५३३. उसका (अरमुडी) का अनुसरण करते हुए, उस जिगीषु ने विना पृथक् प्रयास (यत्न) किये तत् तत् पार्थिवो को विजित कर लिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्याा ५३१ में 'व्यरमुडि' का पाठ भेद 'व्यारमुडि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५३१ (१) अरमुडी : नेपाल के राजवंश की तालिका में यह नाम नहीं मिलता । (प्रिन्सेप : इण्डियन एण्टीक्विटीज : २ : २६८; राइट : हिस्टरी आफ नेपाल : ३१२) अरमुडी तिब्बती शब्द है । ललितादित्य के समय में तिब्बत शक्तिशाली हो गया था । तिब्बत की उस समय नेपाल और उसके कुछ भाग पर प्रभु सत्ता थी । 'लोग तोल' की शिव देवी के शिला से स्पष्ट होता है कि अरमुडी का किसी प्रकार का अधिकार था । इस समय कश्मीर तथा तिब्बत के बीच मित्रता नहीं थी ।

लद्दाख के पुरावृत्ताख्यान से पता चलता है कि तिब्बती राजा खी-श्रोण-इदे-बसन (सन् ७५५-७९७ ई०) भारत तक विजय करता चला आया था । एक दूसरे नवीं शताब्दी के तिब्बती लेख से पता चलता है कि उसके पुत्र ने जम्बू द्वीप के एक बड़े भाग को जीत लिया था । एक दूसरे राजा ल-प-सन (सन् ८१७-८३६ ई०) ने भारत पर गंगासागर तक विजय किया था ।

अरमुडी तिब्बती सेनापति भी हो सकता है । सम्भव है, जयापीड की दिग्विजय रोकने के लिए तिब्बत से भेजा गया हो । नेपाल तिब्बत के संरक्षण में था । काल गण्डिका नदी, जिसके तट पर संघर्ष हुआ था । वास्तव में वह काल गण्डकी नदी है । वह गण्डक की ७ शाखाओं में सबसे पश्चिमी शाखा है । यह शाखा तिब्बत की प्राकृतिक सीमा है । वहाँ से तिब्बत पर होने वाला आक्रमण रोका जा सकता है ।

नेपाल में जनश्रुति अभी तक प्रचलित है कि जयापीड ने नेपाल पर आक्रमण किया था । नेपाल उपत्यका में कभी मुसलिम अथवा ईसाई सेना नहीं पहुँच सकी है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३२ में 'अग्रात्' का पाठभेद 'अगात्' मिलता है ।

मग्नं क्वापि क्वचिद् दृश्यं प्रतिदेशं स वैरिणम् ।
श्येनः कपोतं कक्ष्यान्तरिवाऽन्विष्यञ्जगाम सः ॥५३४॥

५३४. जिस प्रकार श्येन (बाज) कपोत को खोजते हुए, प्रत्येक ओर (कक्ष्यान्त) में जाता है, उसी प्रकार कहीं अदृश्य कहीं दृश्य, उस बैरी का अन्वेषण करते हुए, वह प्रत्येक देश में गया।

ततो निःशेषितापाये तस्मिन् कुर्वन्स दिग्जयम् ।
आसन्नाब्धेस्तटे सिन्धोः समुपावेशयद्बलम् ॥५३५॥

५३५. तदनन्तर उसके भागने का मार्ग समाप्त हो जानेपर, उस (जयापीड) ने भी दिग्विजय करते हुए, (वहीं) समुद्र के निकट नदी तटपर, सेना शिविर लगाया ।

प्रतस्थे दिवसैर्द्वित्रैरथ पूर्वार्णवोन्मुखः ।
कर्षन्वेलानिलस्पर्शोत्सृष्टध्वजपटाश्रमूः ॥५३६॥

५३६. दो तीन दिन पश्चात् पूर्वार्णव को प्रस्थानोन्मुख (उसने) सागर तटवर्ती वायु स्पर्श से लहराती; ध्वजा से युक्त सेना के साथ प्रस्थान किया ।

ततस्तस्मिन् सरित्पारे दक्षिणस्मिन क्षमापतेः ।
तस्थावरमुडिः सैन्यं स्वच्छत्राङ्कं प्रकाशयन् ॥५३७॥

५३७. वहाँ से राजा के दक्षिण (भाग) में उस नदी के पार, अपने छत्र चिन्ह को प्रकाशित करते हुए, अरमुडि ने सैन्य को स्थित किया ।

भूरिभेरीरवोद्गारि प्रबलं वीक्ष्य तद्बलम् ।
प्रजज्वाल जयापीडः पीतसर्पिरिवानलः ॥५३८॥

५३८. प्रचुर भेरी नाद करने वाले उस (अरमुडी) के प्रबल सैन्य को देखकर, घृत पान से अग्नि तुल्य जयापीड (क्रोध से) प्रज्वलित हो उठा ।

स जानुदघ्नं निर्विघ्नं पश्यन्नग्रे सरिज्जलम् ।
अपूर्वत्वादभूमिज्ञः क्रुद्धस्ततुं व्यगाहत ॥५३९॥

५३९. क्रुद्ध उस नृपति के सम्मुख बाधा रहित, जानुपर्यन्त सरिता जल देखकर, पार करने के लिये अपूर्व परिचित (उस नदी) में प्रवेश किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४३४ में 'न्विष्यन्' का पाठभेद 'न्वेष्यन्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३७ में 'तस्थावरमुडिः' का पाठभेद 'तस्थावुरमुडिः' 'तस्थावरपुडिः' तथा 'तस्थावरमुडिः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३९ में 'स्ततुं' का पाठभेद 'स्तंत्र' मिलता है ।

मध्यं प्राप्ते नृपे पूर्णा वेलया वर्धमानया ।
अकालेऽभूदगाधाम्भाः साऽर्णवाभ्यर्णगा सरित् ॥५४०॥

५४०. नृप के मध्य पहुँचने पर, वर्द्धमान वेला से पूर्ण वह समुद्र समीपवर्ती नदी अनवसर में ही अगाध[1] हो गयी।

नरनागाश्वबहुलं तया सैन्यं महीपतेः ।
प्रवृद्धया प्लाव्यमानं क्षणात्संक्षयमाययौ ॥५४१॥

५४१. प्रवृद्ध प्रवाह के कारण महीपति की पार करती हुई नर, नाग, अश्व, बहुल सेना क्षण में ही नष्ट हो गयी।

नृपतिर्वीचिसंमर्दभ्रंशिताभरणांशुकः ।
बाहुभ्यां लहरीश्छिन्दञ्जलैर्दूरमनीयत ॥५४२॥

५४२. प्रबल लहरों से नृप के आभरण एवं वस्त्र (अंशुक) गिर गये और वह बाहुओं से तरंगों को पार करते हुए, जल वेग द्वारा दूर चला गया।

एकस्य करुणाक्रन्दैः सैन्यस्यान्यस्य गर्जितैः ।
सरित्तरङ्गघोषैश्च बभूवुस्तुमुला दिशः ॥५४३॥

५४३, एक सैन्य के करुण क्रन्दनों से तथा अन्य के गर्जितों (आनन्द ध्वनि) एवं नदी के तरंग घोषों से. दिशायें तुमुल हो गयीं।

क्षिप्रकारी सदृतिभिः संनद्धैः सरितोऽन्तरात् ।
स चाकृष्य जयापीडं बबन्ध विहितोत्सवः ॥५४४॥

५४४. क्षिप्रकारी वह दृति (मशक) से सन्नद्ध पुरुषों द्वारा सरितान्तर से, जयापीड को पकड़वाकर, बाँध दिया और उत्सव मनाया।

पाठ भेद :

श्लोक संख्या ५४० में 'गाधाम्भाः' का पाठ 'गाधाम्भः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५४० (१) अगाध = बोर, बंगाल की नदियों में निश्चित समय पर बोरटाइड आता है। मैंने इसे स्वयं देखा है। जल कई फिट उठ जाता है और वेग से नदी की ऊर्ध्व दिशा में चलता है। घाटों से स्टीमर एवं नावें हटाकर सुरक्षित स्थान में बाँध दी जाती हैं। टाइड आने के पहले बिल्कुल शान्ति तथा किसी प्रकार का उद्वेग जल में नहीं मालूम होता। यह इतनी शीघ्रता से अचानक आता और बढ़ता है कि न जानने वाला खतरा में पड़ जाता है, इसी प्रकार के बोर में जयापीड मालूम होता है पड़ गया था।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५४१ में 'तया' का पाठभेद 'तथा' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५४२ में 'मर्द' का पाठ भेद 'मर्म' 'मर्तृ' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५४४(१) दृति :जलोत्तरणार्थं दृति को कश्मीर में 'श्नाहा' कहते हैं। दृति अर्थात् मशक बनाने के लिए महिष का चमड़ा प्रयोग में लाया जाता है। महिष से ही मशक शब्द बना है। चमड़ा को चारों तरफ सी देते हैं। एक तरफ गरदन अथवा पैर के पास से

दैवास्याम्बुमुचश्च नास्ति नियमः कोऽप्यानुकूल्यं प्रति
व्यञ्जन् यः प्रियमुत्कटं घटयते जन्तोः क्षणादप्रियम् ।
क्षिप्रं दीर्घनिदाघवासरविपत्संतापनिर्वापणं
प्रादुष्कृत्य वनस्पतेः प्रकुरुते विद्युद्विसर्गं च यः ॥५४५॥

५४५. दैव[1] तथा अम्बुद[2] के अनुकूल होने का कोई नियम नहीं है। क्योंकि दैव प्राणी का अतिप्रिय करते हुए, अप्रिय कर देता है। (मेघ) वनस्पति के दीर्घ निदाघ (ग्रीष्म) दिनों के विपत्ति रूप संताप का शमन कर शीघ्र ही विद्युत् पात कर देता है।

स कालगण्डिकातीराश्रयात्युच्चाश्मवेश्मनि ।
निचिक्षेप जयापीडमाप्तानां रक्षिणां करे ॥५४६॥

५४६. उस (अरमुडि) ने, विश्वस्त रक्षकों की देखरेख में काल गण्डिका[1] तीरपर अत्युच्च पाषाण वेश्म में जयापीड को रख दिया।

हवा भर देते हैं, मशक फूल जाती है। पानी पर तैरते लगती है। इसी का आश्रय लेकर नदी पार किया जाता है। जूट के बोरों के प्रचलन के पूर्व मशक में ही हींग आदि भर कर व्यापारके लिए भेजा जाता था। कश्मीर तथा उत्तर, पश्चिम भारत ईरान ईराक आदि स्थानों में अब भी मशक द्वारा नदी पार किया जाता है। गिलगित क्षेत्र में सिन्धु नदी पार करने के लिए इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। पंजाब में सतलज नदी पार करने के लिए यह प्रयोग में लाया जाता रहा है। भारत के नदियों पर पुल बन जाने तथा नावों की अधिकता के कारण इसका प्रयोग नगण्य हो गया है।

दृति का उल्लेख पुनः इस तरंग के ५६९, ५७७ तथा रा : ८ : ११२९ में किया गया है।

पादटिप्पणी :

यह सूक्तिसंग्रह का १३७ वाँ श्लोक है।

५४५. १, दैव–अम्बुद : दैव कब अनुकूल अथवा प्रतिकूल हो जायगा, इसका कोई निश्चित क्रम नहीं रहता। व्यक्ति उन्नति करता जाता है, कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि वह गिरेगा परन्तु ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ अचानक घटती हैं कि वह गिर जाता है। समुद्र तथा सरिताओं के सम्बन्ध में यही बात कही जाती है। उनका विश्वास करना कठिन होता है। समुद्र शान्त रहता है। नाविक विश्वास के साथ नाव चलाता जाता है। परन्तु अचानक घटाएँ उमड़ आती हैं, अथवा प्रबल वायु चलने लगती है। नाविक तूफान में फँस जाता है, जिसकी कल्पना कुछ समय पूर्व वह कर भी नहीं सकता था। वही अवस्था नदी की है। नदी पर विश्वास करना कठिन होता है, क्योंकि सुदूर वर्षा के कारण अचानक बाढ़ आ जाती है। जल प्लावन का दृश्य फैल जाता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५४६ में 'पीडमाप्तानां' का पाठ भेद 'पीडं सप्तानां' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५४६ (१) गण्डकी : श्री एम० ए० ट्रोयर ने काल गण्डिका नदी को गण्डकी या गण्डक माना है। उन्होंने राजतरंगिणी के द्वितीय भाग के श्लोक ५४६ पर टिप्पणी लिखते समय सन् १८४० ई० में ही स्थिर किया था कि कल्हण वर्णित काल गण्डिका नेपाल से निकलने वाली गण्डकी है। श्री स्तीन ने भी यही मत प्रकट किया है कि काल गण्डिका ही गण्डकी नदी है। वह पश्चिमी नैपाल के जल को ग्रहण करती है। उसके ऊर्ध्व भाग को अब भी काली नदी कहते हैं। काली तथा गण्डक एक ही नदी के

तथा काश्मीरिको राजा निमग्नो व्यसने पुनः ।
स किंकर्तव्यतामूढः शुचा गूढमदह्यत ॥५४७॥

५४७. इस प्रकार विपत्ति में निमग्न, वह कश्मीर का राजा किंकर्तव्य विमूढ हो, शोक से भीतर दग्ध होने लगा ।

कलावत्सु शशाङ्कोऽपि तेजस्विष्वर्यमाऽपि तम् ।
न ददर्श यथा श्रीमान् स ररक्ष तथा नृपः ॥५४८॥

५४८. उस धीमान् नृप ने उसकी इस प्रकार सुरक्षा की, जिससे कलावन्तों[१] में शशांक एवं तेजस्वियों में अर्यमा[२] (सूर्य) भी (उसे) नहीं देख सकते थे ।

अपश्यन्निर्गतः किंचिदालोकन्यस्तलोचनः ।
आसन्नां तटिनीमासीदुपायांश्च स चिन्तयन् ॥५४९॥

५४९. कुछ निर्गत हो आलोक[१] पर नेत्र न्यस्त कर आसन्न तटिनी को देखा—और (मुक्ति) उपायों का चिन्तन करने लगा ।

अवस्थावेदकास्तत्र ग्रथिताः पृथिवीभुजा ।
आर्द्रान्तःकरणैः श्लोकाः स्मर्यन्तेऽद्यापि सूरिभिः ॥५५०॥

५५०. वहाँ पृथिवीभुज द्वारा निर्मित अवस्था सूचक श्लोकों[१] का स्मरण आज भी आर्द्र अन्तःकरण हृदय विद्वान् करते हैं ।

दो भाग होकर कालगण्डिका कही जाने लगी । अल्बेरूनी ने भी गण्डकी नदी का उल्लेख किया है । (अल्बेरूनी : इण्डिया : भाग २ अध्याय २५) विदेह अखण्ड गण्डिका अर्थात् गण्डक नदी के तट से चम्पा अरण्य (चम्पारन) तक विस्तृत था । विदेह को तिरभुक्त अथवा तैरभुक्ति कहा जाता है । आजकल उसे तिरहुत कहते हैं । पुरानी बी० एन० डब्लू रेलवे का नाम बदलकर अवध तिरहुत रेलवे रखा गया था । आजकल इस रेलवे का नाम नार्थ-इस्टर्न अथवा पूर्वोत्तर रेलवे हो गया है ।

पादटिप्पणी :

५४८ (१) कला : चन्द्रमा की कला का निर्देश किया गया है । भावार्थ है कि न कला अर्थात् कौशल और न शक्ति का प्रवेश बन्दीगृह में हो सकता था । सूर्य एवं चन्द्रमा की किरणें जिस प्रकार बन्दी गृह में प्रवेश नहीं कर सकती थीं उसी प्रकार किसी कला एवं शक्ति से उसे वहाँ से मुक्त करना कठिन था ।

(२) अर्यमा : द्वादश आदित्यों में एक अर्यमा है । वैदिक साहित्य में अर्यमन् एक वैदिक देवता है । उनकी गणना आदित्यों में की गयी है । (ऋ० : २ : २७ : १, तै० ब्रा० : १ : १ : ९ : १) अर्यमा का उल्लेख मित्र के साथ प्रायः किया जाता है । (ऋ० : १ : २६ : ४)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५४९ में 'अपश्यन्निर्ग' का पाठभेद 'अपश्यन् निर्ग' तथा 'र्गतः' का 'र्गतं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५४९ (१) आलोक : यहाँ अभिप्राय रोशनदान से है । जिसके द्वारा अथवा जिस पर आँख रखकर बाहर देखा जाता है । इसे वातायन कहते हैं । आलोक का अर्थ प्रकाश या रोशनी होता है । (द्रष्टव्य पादटिप्पणी रा० : ४:५६८)

पादटिप्पणी :

५५० (१) श्लोक : वल्लभदेव की सुभाषितावली में जयापीड का एक श्लोक संग्रहीत है । इसे

तथा तस्मिन् स्थिते मानी देवशर्मैव मन्त्रिषु।
चिन्तयन्स्वामिसंमानमनिशं पर्यतप्यत ॥५५१॥

५५१. उसके इस प्रकार स्थित होने पर मन्त्रियों में मानी देवशर्मा[1] ही स्वामी के सम्मान की चिन्ता करते हुए, रात्रिदिन सन्तप्त रहता था।

भर्तुः स्वदेहत्यागेन स हितं कर्तुमुद्यतः।
दूतैररमुडेश्चक्रे प्रियवाग्भिः प्रलोभनम् ॥५५२॥

५५२. स्वदेह त्याग पूर्वक भी, स्वामी का हित करने को उद्यत, वह मधुर भाषी, (मंत्री) दूतों द्वारा अरमुडि को प्रलोभित किया।

जयापीडश्रिया साकं राज्यं कश्मीरमण्डले।
दास्यामि तुभ्यमित्यस्य दूतैः स श्राविवतोऽभवत् ॥५५३॥

५५३. दूतों द्वारा उसे सुनाया (कहा)—'जयापीड की सम्पत्ति के साथ कश्मीर मण्डल का राज्य तुम्हें प्रदान करूँगा।'

प्राप्तेषु प्रतिदूतेषु पूर्णायामथ संविदि।
गृहीतकटको मन्त्री नेपालविषयं ययौ ॥५५४॥

५५४. (स्वीकृति के साथ) प्रति दूतों के प्राप्त होने तथा संविद पूर्ण हो जाने पर सेना लेकर (वह) मंत्री नेपाल[1] विषय[2] (देश) गया।

प्रकट होता है कि जयापीड कवि था। (पीटरसन तथा दुर्गा प्रसाद को राज तरंगिणी संस्करण द्रष्टव्य है।)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५५१ में 'स्थिते' का पाठभेद 'स्थितो' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५५१ (१) देवशर्मा—देवशर्मा के त्याग की कहानी कल्हण के पश्चात् लगभग तीन सौ वर्ष तक लोगों को स्मरण थो। जोनराज (श्लोकः ४०३) देवशर्मा तथा उसके वंश का श्रद्धा भक्ति के साथ उल्लेख उसके वंशज कोटशर्मा के त्याग के प्रसंग में करता है। सुलतान शहाबुद्दीन (सन् १३५५–१३७३ ई०) ने कोटशर्मा को राजवैभव दिया था परन्तु उसने उनका त्याग कर वनगमन किया था। द्रष्टव्य रा० : ५८३, ७ : १३७,) जोनराज ने भी देव शर्मा के त्याग की प्रशंसा की है। द्रष्टव्य पादटिप्पणीः जोनः राज०: श्लोक ४०३।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५५२ में 'ररमुडेश्चक्रे' का पाठ भेद 'रारमुडेश्चक्रे' तथा 'ग्भिः प्रलो' का 'ग्भिर्विलो' मिलता है।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५५३ में 'कश्मी' का 'काश्मी' तथा 'मण्डले' का 'मण्डलम्, पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

५५४ (१) नेपाल : स्कन्द पुराण में देशों की तालिका में नेपाल का पाँचवाँ स्थान तथा उसके ग्रामों की संख्या एक लाख दी गयी है। शक्ति संगम तन्त्र (५ : ३५) में नेपाल को जटेश्वर तथा योगिनीपुर के मध्य रखा गया है। जटेश्वर के विषय में विद्वानों का मत है कि वह जल्नेश्वर होना चाहिए। यह जलपाई

गुड़ी जिला का प्रसिद्ध शिव मन्दिर है। योगिनीपुर वर्तमान दिल्ली है। नेपाल देश महाभारत काल में इसी नाम से विख्यात था। कर्ण ने दिग्विजय के समय उसे जीता था। (वन० २५४ : ७) वर्तमान नेपाल का क्षेत्रफल ५४५६३ वर्गमील तथा जनसंख्या ९७,५३,३७८ सन् १९६१ की जन-गणना के अनुसार है। नेपाल के पूर्व पश्चिमी बंगाल, दक्षिण उत्तर प्रदेश एवं बिहार, पश्चिम उत्तर प्रदेश तथा उत्तर तिब्बत है। हिमालय की ५०० मील लम्बी श्रृखंला में नेपाल स्थित है। नेपाल पूर्व से पश्चिम ५३० मील लम्बा तथा उत्तर से दक्षिण १५६ मील चौड़ा है। नेपाल दो प्राकृतिक क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है। दक्षिण का तराई क्षेत्र नेपाल के क्षेत्रफल का एक चौथाई है। दूसरा पर्वतीय क्षेत्र है। यह उत्तर में तिब्बत तक विस्तृत है। विश्व की सबसे ऊँची चोटी माउण्ट एवरेस्ट २९.२४१ फिट ऊँची है। कांचनजुंगा २८१४०; मकालू २७,७९०; धौलागिर २६८००; गोसाईं थान २६३०५; मनसालू २६६९८, हिमालचुली २५८०१, तथा गौरी शंकर शिखर २३४४० फीट ऊंची है। नदियों का चार वर्गों मे वर्गीकरण किया जा सकता है। काली (शारदा), सरजू, कुरनाली, पूर्वी सरजू तथा राप्ती प्रथम वर्ग मे आंती है। नैपाल से निकलकर दक्षिण बहती उत्तर प्रदेश के मैदानों को सींचती हैं। आगे बढ़कर सब मिलती घाघरा का रूप धारण कर गंगा में मिल जाती हैं। सप्तगंडकी नदी दूसरे वर्ग में आती हैं। धौलागिर तथा गोसाईंस्थान शिखरों के मध्य बहती त्रिवेणी घाटपर गंडक का रूप धारण करती हैं। तीसरे वर्ग में बड़ी गंडक, छोटी गंडक, राप्ती, वागमती तथा कुमला नदियां है। नेपाल उपत्यका का उनसे जल निःसरण होता है। चौथे वर्ग की नदियों को सप्तकोशी कहते हैं। गोसाईं थान तथा कंचनजुंगा उपत्यका मध्य बहती सब कोशी नदी में परिणत हो जाती है। गंगा में मिलती हैं। नेपाल की राजधानी काठमाण्डू है। समुद्रकी सतह से ४७०० फिट ऊँचाई पर स्थित है। जनसंख्या १२९५१० (१९६१ की जन-गणना) है। नगर के चारों ओर ९००० से १००००, फुट ऊँचे पर्वत हैं। नेपाल में साक्षरों की संख्या केवल ६ प्रतिशत है। साक्षरता क्रमशः बढ़ रही है।

नेपाल शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में अनेक धारणाएँ प्रचलित हैं। 'ने' मुनि द्वारा पालित होनेके कारण इसे नेपाल कहते हैं। एक मत है तिब्बती लोग नेपाल को 'नेपा' कहते हैं। 'नेपाल' शब्द का प्रयोग महाभारत तत्पश्चात् कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में किया है। नेपाल के उत्तरी अंचल में भोटिया, तामाङ, लिंबू, शेरपा, मगर, किरात, नेवार, गुसङ् सुनुवार जातियां आबाद हैं। भीतरी तराई क्षेत्र में, धिमाल, थारु, मैचे, दनवार, जातियों का आधिक्य है। ठाकुर, खस, आदि क्षत्रिय तथा ब्राह्मणों की संख्या नेपाल में यत्र-तत्र बिखरी बहुत मिलती है।

प्राचीन काल में नेपाल राज्य का सूत्र क्रमशः गुप्त, किरात, सोम, लिच्छवी एवं सूर्य वंशी राजाओं के हाथों में था। नेपाल के किरात वंशी राजा स्थुंको; सोम वंशी लिच्छवी राजा मानदेव, तथा राजा अंशुवर्मा का काल गौरव पूर्ण रहा है। लिच्छवी काल नेपाल का स्वर्ण युग कहा जाता है। भाषा संस्कृत थी। नेपाली कला सुदूर चीन तक फैली थी। कश्मीर के समान हिन्दू तथा बौद्ध धर्म समान रूप से नैपाल में प्रचलित थे। स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन था। सन् ८८० ई० में लिच्छवी राज्य के अवसान होने पर नुवाकोरे ठकुरी राज वंश का अभ्युदय हुआ था। यह अनेक इकाइयों मे विभाजित हो गया था। मल्ल राजाओं का उदय होने लगा था सन् १३५० ई. में बंगाल के शासक शमशुद्दीन इलियास ने नेपाल पर आक्रमण किया था। सभी व्यवस्थायें विश्रृखंलित हो गयी थीं। सन् १४८० ई० में राजा अर्जुन देव को उनके मन्त्रियों ने अपदस्थ कर स्थितिमल्लको राज सिंहासन पर बैठाया। उन्होंने राज व्यवस्था सुव्यवस्थित की। राजा यक्षमल्ल ने केन्द्रीय शासन सुदृढ़ करने का प्रयास किया। किन्तु उनके पश्चात् नेपाल पुनः अनेक इकाइयों में बिखर गया। राजा

स कालगण्डिकासिन्धोरर्वाचि कटकं तटे।
स्थापयित्वा परं पारं ययौ मितपरिच्छदः ॥५५५॥

५५५. वह कटक (सेना) को कालगण्डिका नदी के समीप (अपर) तटपर स्थापित कर, मित परिकरों के साथ पार गया।

सामन्तैरग्रमायातैस्तं सभां संप्रवेशितम्।
सत्कृत्याऽरमुडिः प्रह्वं न्यवेशयत विष्टरे ॥५५६॥

५५६. अग्रागत सामन्तों[1] द्वारा सभा में प्रविष्ट, विनत उसे अरमुडि ने सत्कृत कर, विष्टर (आसन) पर उपवेशित किया।

पृथ्वीपतिशाह के काल में बंगाल के शासक ने गुर्गिन खां के नेतृत्व में नेपाल आक्रमणार्थ पचास हजार सैनिक भेजा। मुसलिम सेना मकवान में शिविर डालकर पड़ गयी। गोरखा जवानों ने मुसलिम सेना को काट डाला। शेष सैनिक प्राण रक्षा भय से पलायन कर गये।

गोरखा राजा पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाल का एकीकरण किया। गोरखा सेना ने सन् १७९० ई० में नेपाल पर आक्रमण किया। चीन ने सन् १७९१ मे तिब्बत का पक्ष लेकर नेपाल में अपनी सेना का प्रवेश करा दिया और सन् १७९२ ई० में गोरखों के साथ सन्धि हो गयी। सन् १८१४ ई० में सीमा विवाद के आड़ में ब्रिटेन ने नेपाल के विरुद्ध युद्ध घोषणा कर दी। सन् १८१६ ई० में नेपाल ने अपनी कुछ भूमि अंग्रेजों को देकर सन्धि कर ली। काठमाण्डू में वृटिश रेसीडेन्सी खुल गयी। सन् १८५७ ई० के स्वाधीनता संग्राम में नेपाल ने अंग्रेजों को १२००० सैनिकों से सहायता की। आगामी १०३ वर्षों तक नाम के लिए नेपाल के राजा जो पाँच सरकार कहे जाते थे राजा थे। वास्तविक सत्ता राणाओं अर्थात् तीन सरकार के हाथों में थी। भारत की आजादी के पश्चात् सन् १९४६ में तत्कालीन अंग्रेजी भारत सरकार ने राणाओं के निमन्त्रण पर एक शिष्ट मंडल नेपाल भेजा जो वहाँ जाकर वैधानिक सुधार के लिये सुझाव दें। इस मंडल में सर्व श्री श्रीप्रकाश, (काशी) स्वर्गीय डा० रामउग्रह सिंह (जौनपुर) तथा मैं था। उस समय नेपाल ने सुधार का सुझाव नहीं माना। कालान्तर में नेपाल कांग्रेस के आन्दोलन पर नेपाल में राणाशाही का अन्त हुआ। नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के साथ पाँच सरकार के हाथों में सत्ता आयी। नेपाल कांग्रेस के प्रायः सभी नेता हमारे सहयोगी तथा मित्र थे। कुछ हमारे साथ जेल में भी राजनीतिक कैदी के रूप में रह चुके थे। द्रष्टव्य : लेखक की पुस्तक 'जाग्रत नेपाल'।

(२) विषय : विषय शब्द राज्य, अथवा देश और कभी कभी जिला के लिये प्रयोग किया गया है। विषय कभी मण्डल के अन्तर्गत और कभी विषय के अन्तर्गत मंडल और कभी कभी विषय एवं मण्डल समानार्थक माने गये है।

अमरकोश के अनुसार देश, राष्ट्र, विषय, एवं जनपद शब्द पर्यायवाची हैं। कभी कभी देश का उपविभाग भी विषय माना गया है। प्राचीन मान्यता के अनुसार एक देश में १०० ग्राम, मण्डल में ४ देश, खण्ड में १०० मण्डल, तथा पृथ्वी के ९ खण्ड होते हैं। कश्मीर में कालान्तर में विषय कभी जिला, राज्य, क्षेत्र, कभी मंण्डल के अन्तर्गत विषय और कभी विषय और मण्डल समानार्थक मान लिये जाते रहे हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५५६ में 'स्त' का पाठभेद 'स्तां' तथा 'मुडि !' का 'मुडे' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५५६ (१) सामन्त : माण्डलिक करद अथवा राजा से लघु करद और कभी मन्त्री के रूप में सामन्त शब्द का प्रयोग किया जाता रहा है। ताल्लुकेदार, जागीरदार आदि इस श्रेणी में आते हैं।

प्राचीन काल में प्रभु राज्य (सोवरेनस्टेट) तथा सामन्त राज्य (फ्यूडल स्टेस्ट) थे। उस समय प्राचीन भारत में सामंत किंवा अर्धस्वतंत्र राज्यों की संख्या अधिक थी। विजेता भी सामन्त राज्यों की सत्ता कायम रहने देते थे। प्रादेशिक शासक आनुवंशिक होने लगे और महाराज, सामंत, महासामंत, एवं मण्डलेश्वर उपाधियाँ धारण करने लगे, तो वे भी सामन्त राज्य वर्ग में आ गये थे। दक्षिण में यादवों एवं चालुक्य राज्य में यह जानना कठिन हो गया था। महामण्डलेश्वर उपाधि धारी व्यक्ति सामंत था अथवा सामंत उपाधिधारी प्रादेशिक शासक था। एरण के राजा मातृविष्णु राजा सुरश्मिचन्द्र के सामंत थे। सुरश्मिचन्द्र स्वयं बुध गुप्त के सामंत थे। राष्ट्र कूट सम्राट् तृतीय गोविन्द का भतीजा तृतीय कक्क उनके सामंत की हैसियत से गुजरात का प्रशासक था। उसके भी सामंत की हैसियत से सालुकिक वंश का श्री बुध वर्ष सिहिरिका पर शासन करता था। सामंतों के भी प्रभेद थे। प्रमुख सामन्त को छत्र, चामर, पालकी, हाथी, तथा सिंहासन पर बैठने का अधिकार था। उन्हें पंच वाद्य—शृंग, शंख, मेरी, जयघण्ट एवं रमट बजाने का अधिकार प्राप्त था। वह अधिकार वर्तमान काल के तोपों की सलामी के समान कम सामंतों को प्राप्त था। सामंतों के नियन्त्रण हेतु भारतीय सम्राटों के यहां अधिकारी रहते थे। सामंत इन अधिकारी किंवा प्रतिनिधियों का आदर सम्राट् के समान करते थे। इनका काम बृटिश कालीन पोलिटिकल रेजिडेण्ट के समान था जो भारतीय राजाओं के राज्य में रहते थे। सामंत भी अपना प्रतिनिधि आदि सम्राट् अथवा राजा के दरबार में रखता था। सामंत के दान पत्रों पर सर्व प्रथम सम्राट् का नाम तथा वंश गौरव देना आवश्यक था। सामान्यतः मुद्रा टंकणित नहीं करा सकते थे। सामंत राज दरबार में उत्सव आदि के अतिरिक्त अन्य समयों पर भी उपस्थित रहते थे। अनेक सम्राटों के शिलालेखों में अनेक सामंतों का भी उल्लेख मिलता है। सम्राट् किंवा राजा को निर्धारित कर देना पड़ता था। सम्राट् को मांडलिक कार्यों के समय सामन्त भेट करते थे। पराजित राजा सामंत रूप में शासन करते थे।

सामन्तों को राजा के लिये सेना भी रखनी पड़ती थी। युद्ध में सामंत राजा की ओर से अपनी सेना के साथ सक्रिय भाग लेते थे। राजा की ओर से युद्ध के लिये भी भेजे जाते थे। सामंत अपने अधिकारियों या प्रतिष्ठित व्यक्तियों को जागीर तथा जमीन विना राजा की आज्ञा के भी दे सकते थे। कुछ स्थान पर सामन्तों के गांव आदि दान के पूर्व राजा की आज्ञा लेना पड़ता था। सामंत सम्राट् की ओर से ताम्र पत्रों पर हस्ताक्षर भी करते थे। युद्ध में पराजित होने पर सामन्तों को स्थिति दयनीय हो हो जाती थी। उनकी जागीर तथा पद तक छिन जाता था। उनके स्थान पर दूसरा सामंत प्रतिष्ठित किया जाता था। उनकी सेना, घोड़ा, हाथी तथा जागीर जप्त कर ली जाती थी। राजा किंवा सम्राट् के दुर्बल होने पर वे अपनी स्वतन्त्रता भी घोषित कर देते थे। पराजित राजाओं को करद सामंत रूप में रहने दिया जाता था।

शुक्र के अनुसार एक शत ग्रामों का प्रशासक सामन्त, तथा राजा द्वारा नियुक्त, शत ग्रामों का अधिकारी अनुसामन्त, दश गाँवों का अधिकारी नायक कहा जाता था। वेलगाम में यह पदवी गत शताब्दी तक चलती रही है। द्रष्टव्य : बम्बई गजोटियर भाग ३१ : पृष्ठ ३५४ वेलगाम। सन् १९५९ के अमीना फलक, शंकर गण (ई. आई : ९ : ४२९७) तथा मधुवन हर्ष के फलक (ई. आई. ७: १५८) तथा ई. आई : ६ : २९८) बुद्धराज के फलक

अध्वश्रान्त इति क्षिप्रं प्रतिमुक्तः क्षमाभुजा।
तद्विसृष्टोपचारस्तन्निनायावसथे दिनम् ॥५५७॥

५५७. 'मार्ग से परिश्रान्त (अध्व श्रान्त-पथिश्रान्त) है,—यह जानकर (कहकर) क्षमाभुज (अरमुडि) ने उसे शीघ्र ही विसर्जित किया और वह नृप प्रदत्त उपचार प्राप्त कर, वह दिन गृह (स्वस्थान) पर व्यतीत किया।

स चाऽरमुडिभूभृच्च पीतकोशौ परस्परम्।
आसातां निर्जनेऽन्येद्युः कर्तव्यकृतनिश्चयौ ॥५५८॥

५५८. दूसरे दिन उस मन्त्री तथा भूभृत् (अरमुडि) ने एकान्त वास कर निर्जन स्थान में परस्पर कोश[१] पान पूर्वक कर्तव्य निश्चय किया।

सन् ६०९-१० ई. में सामन्त का उल्लेख किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५५७ में 'मुक्तः' का पाठभेद 'क्षिप्तः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५५७ (१) कल्हण जहां अच्छा आदर होता है वहाँ आदर सूचक शब्दों का योजन करता है, अन्यथा वह साधारण शब्दों का ही प्रयोग करता है।

पाठभेद

श्लोक संख्या ५५८ में 'आसातां' का पाठ भेद 'आसता' मिलता है।

पादटिप्पणी

५५८. (१) पीत कोश : 'पीत' का अर्थ अभिमन्त्रित जल पान है। कोश का अर्थ 'दिव्य' अर्थात् सत्य परीक्षा है। पीतकोश का अर्थ व्रीहिका अथवा सपथ होता है। पीत कोश का अर्थ अभिमन्त्रित जल पान कर सत्यता पूर्वक किसी बातकी सपथ या कसम खाना है। नव प्रकार की सौगन्धियों में कोश पान एक प्रकार का सौगन्ध है।

स्मृतियों में सौगन्ध किंवा सपथ खाने की प्रक्रिया दी गयी है। (याज्ञवल्क्य स्मृतिः २:११२; नारद स्मृति: २:३१६; विष्णु०: १४)

सौगन्ध किसी बात को करने की प्रक्रिया है। एक दूसरे पर विश्वास किया जाता है। इस प्रकार सौगन्ध लेने का उल्लेख राजतरंगिणियों में किया गया है। (रा०:५:३२६, ४२२; ६:२११, ७:८, ७५, ४९२, ७४६; ८:२८०, २०९१, २२२२, २२-३७, ३००६)

इस सौगन्ध की प्रक्रिया निम्न प्रकार से होती हैं। देव मूर्ति को स्नान कराया जाता है। जो व्यक्ति सौगन्ध लेना चाहता है। वह भगवान् का अभिषिक्त जलपान करता है यदि किसी समय निर्धारित समय के अन्दर निकट सम्बन्धी दुर्घटना ग्रस्त होता है, अथवा उस पर आपत्ति आती है, तो यह सौगन्ध लेने वाले के अपराध का प्रमाण माना जाता है। यह प्रायः दो शत्रुओं के सन्धि करने पर परस्पर लिया जाता है, कि भविष्य में वे किस प्रकार व्यवहार करेंगे। सौगन्ध लेने वाला सौगन्ध की गोपनीयता का निर्वाह करता है। तरंग ८:३००६ में कोशपान का पुनः उल्लेख किया गया है। जो सौगन्ध खाना चाहते हैं उनके लिये एक संस्कार विहित किया गया है। सौगन्ध लेने वाला अपना दोनों पैर एक के ऊपर दूसरा रक्त छिड़के भेंड़ के चमड़े पर रखता है। तत्पश्चात् सौगन्ध खाने की प्रथा का पालन किया जाता हैं।

कोश एक प्रकार की दिव्य विधि भी थी। न्यायाधीश शोध्यसे 'सत्येन माभिरक्ष, (याज्ञ०:२:१०८,

नृपपृचेऽथ सचिवो जयापीडार्जितं धनम् ।
अस्ति सैन्ये तदाप्तानां तस्य वा विदितं च तत् ॥५५९॥

५५९. सचिव ने नृप से कहा—'जपापीड अर्जित धन सेना में है, किन्तु (उस) घनको वह (जपापीड) तथा उसके विश्वस्त ही जानते हैं ।

दानेन भविता मोक्षस्तवेत्युक्त्वा विमोहयन् ।
तस्मात्तं प्रष्टुमिच्छामि क्व वसु न्यस्तमित्यहम् ॥५६०॥

५६०. 'दान द्वारा तुम्हारा मोक्ष होगा'—ऐसा कह कर, विमोहित करते हुए, मैं उससे पूछना चाहता हूँ—'धन कहाँ न्यस्त है ?'

अत एव मया सैन्यं संहतं न प्रवेशितम् ।
यदेतन्मध्यगाः शक्या न बद्धुं न्यासधारिणः ॥५६१॥

५६१. 'अतएव मैंने संहत सैन्य में नहीं प्रवेश किया क्योंकि उन (सेना) के मध्य[१] रहते न्यासधारियों को बान्धना अशक्य है ।

तस्मादेकैकमाहूय तेषु बद्धेषु सैनिकाः ।
कोपमज्ञातहृदया न यास्यन्ति विवक्षवः ॥५६२॥

५६२. 'इसलिये एक एक को आहूत कर बद्ध करने पर, (हम लोगों के) भाव को न जानने के कारण, बोलने के इच्छुक, सैनिक क्रुद्ध न होंगे ।'

मन्त्र के साथ पवित्र जल का आह्वान करता है' और उस जल को तीन बार अपने हाथ से पान कराता है। याज्ञवल्क्य (२:११३) विष्णु धर्म सूत्र (१४-४-५) तथा नारद (४:३३०) के मत से कोश दिव्य के चौदह दिनों के उपरान्त यदि शोध्य पर राजा की व्यवस्था किंवा देवों को कोप के कारण कोई विपत्ति नहीं आती, अथवा स्त्री, पुत्र असाध्य बीमारी अथवा मृत्यु नहीं प्राप्त करते, सम्पत्ति नाश नहीं होती, तो अपराधी अर्थात् दिव्य करने वाले को निर्दोष मान लिया जाता हैं। कोश पान केवल निर्दोष सिद्ध हेतु ही नहीं किया जाता था। दूसरों के सामने अपनी सत्यता, सद्विचार, सत्पक्ष के लिये भी किया जाता था ।

मध्ययुग में कसम खाने का आम रिवाज था। कोश पान, अस्त्र शस्त्र तथा धार्मिक ग्रन्थ किंवा किसी देव के संमुख उसे साक्षी मानकर सपथ खाते थे। अनेक देशों में यह प्रथा वर्तमान थी और है। सौगन्ध का उद्देश्य होता था कि वचन का पालन अथवा उठाये हुए कार्य को किसी भी संकट या परिस्थिति में पूरा किया जाय । प्रतिज्ञा का उद्देश्य आन्तरिक पवित्रता के साथ ही साथ बाहरी विश्वास भी प्राप्त करना था। बाह्य अनुज्ञा कमजोर एवं सन्देहास्पद कार्यों तथा बातों के लिये प्रायः ली जाती थी। यह बाह्य अनुज्ञा धार्मिक कृत्य की तरह सम्पूर्ण जगत् में माना एवं किया जाता है ।

पादटिप्पणी :

५६१ (१) मध्य : एकत्रित सेना के मध्य स्थित है ।

एवं विमोहितात्तस्मात् प्राज्ञोऽनुज्ञां स लब्धवान् ।
बद्धस्य प्रययौ पार्श्वं जयापीडमहीभुजः ॥५६३॥

५६३. इस प्रकार बुद्धिमान उस (देव शर्मा) ने विमोहित, उस राजा से आज्ञा प्राप्त कर ली और बद्ध महीभुज जयापीड के समीप गया[1] ।

तदालोकनजं शोकं गोपयन् धैर्यसागरः ।
गृहं तन्निर्जनं कृत्वा क्षिप्रं पप्रच्छ तं नृपम् ॥५६४॥

५६४. उस धैर्य सागर (मन्त्री) ने उसे (जयापीडको) देखने से उत्पन्न शोक छिपाते हुए, गृह को निर्जन कर शीघ्र ही उस नृप से पूछा—

अपि त्वया निजं तेजो भित्तिभूतं न हारितम् ।
तस्मिन् हि सति सिध्यन्ति साहसाहसालेख्यकल्पना ॥५६५॥

५६५. 'आपने आधार भूत स्वतेज रूप भित्ति[1] को तो नहीं नष्ट कर दिया है। क्योंकि उसके रहने पर ही साहस रूपी आलेख्य (चित्र) (की) कल्पनाएँ सिद्ध होती हैं।'

स तं बभाषे निश्शस्त्रो मन्त्रिन्नेवं व्यवस्थितः ।
अद्भुतं कर्म किं कुर्यां ध्रियमाणेन तेजसा ॥५६६॥

५६६. वह (जयापीड) उस (मन्त्री) से कहा—'मन्त्रिन् ! इस प्रकार निःशस्त्र स्थिति में (मैं) ध्रियमाण (रक्षित) तेज से कौन अद्भुत कर्म कर सकता हूँ ?'

मन्त्री तमूचे तेजश्चेद्राजन्न निसृतं तव ।
जानीहि तत्क्षणेनैव लङ्घितं विपदर्णवम् ॥५६७॥

५६७. मन्त्री ने उससे कहा—'राजन्, यदि तुम्हारा तेज निर्गत नहीं हुआ है, तो विपत्ति सागर क्षण में ही पार हुआ जानो।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५६३ में 'ऽनुज्ञां' का पाठभेद 'ऽप्याज्ञां' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५६३ (१) जयापीड का यह छूटना रिचार्ड लियो की कहानी से मिलता है ।

पाठभेदः

श्लोक संख्या ५६४ 'गोपयन्' का पाठभेद 'दर्शयन्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५६५ (१) भित्ति : भित्ति का साधारण अर्थ भीत या दीवाल होता है । भित्ति वह पदार्थ होता है, जिसपर चित्र बनाया जाता है। भित्ति चित्र का अर्थ दीवाल पर अंकित चित्र है। यहाँ पर कल्हण ने इसी अर्थ में भित्ति शब्द का प्रयोग किया है। चित्र तभी तैयार हो सकेगा, जब उसके लिए किसी प्रकार की भित्ति होगी । उसी पर रेखाओं तथा रंगों को भरकर चित्र बनाया जाता है। इसी प्रकार कल्हण ने यहाँ भित्ति को तेज माना है। तेज ही मानव की वह भित्ति है, जिसके द्वारा वह अपनी कल्पना साकार करता है। सृष्टि के पाँच मूल तत्त्व में एक तेज है, अन्य चार—पृथ्वी, अप् (जल), वायु, एवं आकाश हैं। साहस की आत्मा तेज है। बिना तेज कोई भी साहस के कार्य नहीं हो सकता।

अपि वातायनादस्मात् पतित्वा निम्नगाम्भसि ।
पारं गन्तुं समर्थोऽसि सैन्यं ह्यत्र निजं तव ॥५६८॥

५६८. 'क्या इस वातायन से नदी जल में निपतित होकर, पार जाने में समर्थ हैं ? वहाँ आपका सैन्य है ।'

राजा जगाद तं नास्मात् पतित्वोत्थीयतेऽम्भसः ।
विना दृतिं दृतिश्चात्र दूरपाताद्विदीर्यते ॥५६९॥

५६९. राजा ने उससे कहा—'बिना दृति (मसक) के निपतित होकर, इस जल से निकलना असम्भव है । और यहां दूर से गिरने के कारण दृति भी विदीर्ण हो जायगी ।

तस्मान्नायमुपायोऽत्र न च नाम विमानितः ।
बहु मन्ये तनुत्यागमनिर्मथ्यापकारिणम् ॥५७०॥

५७०. 'अतएव यह उपाय यहाँ ठीक नहीं है । अपमानित मैं बिना अपकारी का निर्मथन (मर्दन) किए, शरीर त्याग (भी) उचित नहीं मानता हूँ ।''

ततो निश्चित्य सोऽमात्यस्तमवादीन्महीपते ।
बहिः केनाप्युपायेन वहेस्त्वं नालिकाद्वयम् ॥५७१॥

५७१. तदनन्तर उस अमात्य ने निश्चय कर उससे कहा—'महीपते ! तुम किसी भी उपाय से दो घड़ी (नालिका द्वय, दण्ड द्वय) बाहर व्यतीत करो ।'

प्रविश्यैकाकिनैवाऽथ द्रष्टव्यः संभृतो मया ।
सरिदुत्तरणोपायः सोऽनुष्ठेयोऽप्यशङ्कितम् ॥५७२॥

५७२. '(तदनन्तर) प्रवेश कर देखोगे कि एकाकी मैंने सरिता संतरण का उपाय ठीक कर दिया है, और निशङ्क होकर वह उपयोग के योग्य है ।'

श्रुत्वेति निर्गतो गत्वा पायुक्षालनवेश्म सः ।
सविलम्बं बहिर्वेलां तदुक्तामत्यवाहयत् ॥५७३॥

५७३. यह सुनकर, वह (राजा) निर्गत हुआ । और पायुक्षालन वेश्म[1] में जाकर, तदुक्त दीर्घ काल बाहर व्यतीत किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५७१ में 'ततो' का पाठभेद 'इति' 'वहेस्त्वं' का 'वहस्त्वं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५७१ (१) नालिका : चौबीस मिनट की एक नालिका होती है । नालिका द्वय का अर्थ घटिका द्वय भी किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५७३ में 'पायु' का पाठभेद 'पाप' मिलता है,

पादटिप्पणी :

५७३ (१) पायुक्षालन वेश्म : इसका शाब्दिक अर्थ आबदस्त लेने अर्थात् मल मूत्र त्याग के पचाश्त् पानी छुने तथा हाथ पैर धोने का स्थान है

एकाकी संप्रविष्टोऽथ तं ददर्श च्युतं क्षितौ।
विपन्नं गलमुद्बध्य दृढया चेलचीरया ॥५७४॥

५७४. एकाकी प्रवेश कर नृप ने देखा—दृढ़ वस्त्र खण्ड से गला बाँधकर विपन्न (मृत) अवस्था में (देवशर्मा) पड़ा है।

सद्यो व्यापादिततनुः श्वासापूरितविग्रहः।
अभेद्योऽहं तव दृतिर्मामारुह्य तरापगाम् ॥५७५॥

५७५. 'सद्यः शरीर व्यापादित कर, श्वासपूर्ण विग्रह (देह) से मैं तुम्हारे लिए अभेद्य[1] दृति होता हूँ। उसपर (मुझ पर) आरूढ़ होकर नदी पार करो।

आरोढुरुरुबन्धाय स्वोर्वोरुष्णीषपट्टिका।
बद्धा मया तां प्रविश्य क्षिप्रमेव पताम्भसि ॥५७६॥

५७६. 'आरोहण कर्ता के (तुम्हारे) ऊरु द्वय के बन्धन हेतु मैंने अपने ऊरु में, उष्णीष पट्टिका बाँध दी है। उसमें प्रविष्ट कर, शीघ्र ही जल में कूद पड़ो।'

नखनिर्भिन्नगात्रास्रलिखितामिति संविदम्।
दृष्ट्वा चावाचयत्कण्ठनिबद्धांशुकपल्लवे ॥५७७॥

५७७. नख निर्भिन्न गात्र (शरीर) के रुधिर से कण्ठ में निबद्ध अशुंक पल्लव (वस्त्र के कोने) पर लिखित यह संविद (सन्देश) देखकर पढ़ा।

विस्मयस्नेहयोः पश्चात्पूर्वं स सरितस्ततः।
प्रवाहे पतितो राजा परं पारं समासदत् ॥५७८॥

५७८. तदनन्तर वह राजा विस्मय एवं स्नेह के पश्चात् नदी प्रवाह में कूदकर, (निपतित होकर) दूसरे तट पर (अपर पार) पहुँचा।

आजकल लेवेटोरी जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसी प्रकार उन दिनों पायुक्षालन शब्द का प्रयोग होता था।

पादटिप्पणी :

५७५ (१) अभेद्य : दृति से भी मैं अभेद्य हूँ। अर्थात् मशक से भी दृढ़ हूँ।

पीर हसन एक दूसरा ही किस्सा लिखता है—'लेहाजा वज़ीर बा तदबीर ने अपने जिस्म से खाल उतारी और हवा से भरी हुई मशक मौक़ा पर मुहया की। (पृष्ठ : ८९) पर यह असम्भव है। खाल उतारते वक्त आदमी खुद मर जायेगा। अपनी ख़ाल ख़ुद कोई उतार कर मशक नहीं बना सकता। खाल उतार कर हवा भरने की नौबत ही नहीं आ सकती। पीर हसन किसी आधार ग्रन्थ का नाम नहीं देता।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५७६ में 'आरोढुरूरु' का पाठ भेद 'आरोढुरूढ' तथा 'आरूढ रूढ' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५७७ (१) श्लोक : संख्या ५७५, ५७६, ५७७ कुछ संस्करणों में 'तिलकम्' माना गया है। किन्तु यहाँ अनुवाद प्रत्येक श्लोक का अलग अलग दिया गया है।

प्राप्तसैन्यः प्रविश्याथ क्षणेनैव निनाय सः ।
तमशेषं सभूपालं नेपालविषयं क्षयम् ॥५७९॥

५७९. सेना में प्रवेश कर, उसने क्षण में ही भूपाल (अरमुडि) सहित उस सम्पूर्ण नेपाल विषय (देश) को नष्ट कर दिया ।

रक्षिणोऽपि न यावत्तमजानन् बन्धनाच्च्युतम् ।
तावदेव कथाशेषं विषयं तं चकार सः ॥५८०॥

५८०. उसे बन्धन मुक्त हुआ, रक्षकों ने जब तक नहीं जाना, तब तक उसने उस विषय (देश) की कथा शेष कर दिया ।

नृत्यत्कबन्धः स्वर्गस्त्रीमुक्तस्रक्तूर्यघषोवान् ।
भूपतेर्बन्धनान्मोक्षे बभूव समरोत्सवः ॥५८१॥

५८१. भूपति के बन्धनमुक्त होने के उपलक्ष में समरोत्सव हुआ, जिसमें कबन्धों ने नृत्य किया, स्वर्ग स्त्रियों ने माल्यार्पण तथा तूर्य घोष किया ।

दावानलोल्बणभुवो गिरयो निदाघे
यत्रैव दूरमितरे परिवर्जनीयाः ।
तत्रैव संभवति सान्द्रहिमद्रवार्द्र-
श्चित्रं तुषारशिखरी नितरां निषेव्यः ॥५८२॥

५८२. जिस निदाघ[1] काल में, जहाँ दावानल से तप्त भूमि वाले अन्य पर्वत दूर से ही वर्जनीय हो जाते हैं, आश्चर्य है ?—वही सान्द्र[2] हिम द्रव द्वारा आर्द्र तुषार शिखरी (हिमालय) नितरां निःषेव्य हो जाता है ।

पादटिप्पणी :

५८१ (१) कबन्ध : कबन्ध का मुख छाती में होता है। यह शिर विरहित प्राणी है। राक्षस योनि है। इसका बध मतंग ऋषि आश्रम के समीप श्री रामचन्द्र ने वनवास में किया था ! (बाल १ : ५५–५६;) कबन्ध की कथा रामायण में दी गयी है। (बाल : ३ : २१, अरण्य : ६९ : २६–४६, ७० : १–१६, ७१ : १–३४, ७२ : १–२७; ७३ : १=४६) रामायण की कथा पुनः महाभारत में दुहराई गयी है। (सभा : ३८ : २९, वन० २७९ : ३०–४३) वेद में शिथिर कवन्ध अर्थात् नमनीय धड़ के अर्थ में आया है !

गाथा प्रचलित है कि वीरों का मुण्ड छिन्न हो जाने पर उनका धड़ लड़ता रहता है। इस गाथा का मूल अनार्य है । राजस्थान तथा विन्ध्य पर्वत के भीलों में इस प्रकार की कहानी-किस्से बहुत प्रचलित है। काठियावाड़ में चाम्पराज-वाला के गीत में इस प्रकार की गाथा का उल्लेख किया गया है ।

पादटिप्पणी :

५८२ (१) निदाघ काल : ग्रीष्मकाल या ग्रीष्मऋतु—गरमी का समय ।

(२) सान्द्र : घन-ठोस । दुर्वणभित्तिरिह सान्द्र सुवासवर्णा'—(शिशुपाल वध : ४ : २८, ६४; ९ : १५; रघुवंश : ७ : ४१, ऋतु संहार: १:२०) सान्द्र का अर्थ प्रचुर, विपुल अत्यधिक भी होता है– 'सान्द्रानन्दक्षुभितहृदयप्रसवेणेव सिक्तः, के । (उत्तर रामचरित : ६ : २२) ।

जज्जादीनां क्षणे यत्र जन्म स्वामिद्रुहामभूत् ।
तत्रैव मन्त्रिणश्चित्रं कृतिनो देवशर्मणः ॥५८३॥

५८३. जिस काल में स्वामी द्रोही जज्ज आदि का जन्म हुआ था, आश्चर्य है !—उसी समय कृती मन्त्री देवशर्मा का जन्म हुआ था।

नाभूद्विसदृशः सूनुः स पितुर्मित्रशर्मणः ।
तमोमयो भास्वरस्य भानोरिव शनैश्चरः ॥५८४॥

५८४. भास्वर[1] भानु के पुत्र तमोमय शनैश्चर[2] तुल्य वह पुत्र (देवशर्मा) पिता मित्रशर्मा से विसदृश नहीं हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५८३ में 'क्षणे' का पाठभेद 'क्षणं' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५८४ में 'द्विसदृशः' का पाठभेद 'द्विसदृशः' तथा 'भास्वरस्य' का 'भासुरस्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५८४ (१) यह सूक्ति संग्रह का १३८वाँ श्लोक है।

(२) शनिः पाप ग्रह है। नव ग्रहों में प्रमुख है। (मत्स्य० : ९३ : ४४) इसका शनैश्चर नामान्तर है। इसका रथ लोहा निर्मित है। उस रथ पर समस्त ग्रह मण्डल का परिभ्रमण तीस मास में पूरा करता है। (भा० : ५ : २२ : १६) वह छाया देवी तथा विवस्वत् (मार्तण्ड) का पुत्र है (भा० : ६ : ६ : ४१, विष्णु०: १ : ८ : ११) इसके भ्राता का नाम सावर्णि है। (विष्णु धर्म० : १ : १०६) पिता सूर्य की आज्ञा से ग्रह हो गया है। कालिका पुराण में सूर्य पुत्र कहा गया है। सती की मृत्यु के पश्चात् शिव के नेत्रों से शोक के जो आँसू गिरे, उसी के कारण इसका कृष्ण वर्ण हो गया। (कालि० १८) कालान्तर में लोगों को त्रस्त करने लगा। अतएव शिव ने मेषादि राशि इसके आधीन कर दिया और उसकी पूजा करनेवालों को सुख समृद्धि प्रदान करने की आज्ञा दी। (स्कन्द० : ५ : १५०) शिव एवं त्रिपुर के युद्ध में शिव के रथ पर आरूढ़ होकर नरकासुर से युद्ध किया था। (भा० : ८ : १० ३३) एक समय पिप्पल एवं अश्वत्थ अगस्त्य ऋषि को अत्यधिक त्रस्त करने लगे थे। उनका बध शनि ने किया था। (ब्रह्म : ११८)

ज्योतिष के अनुसार शनि जिस समय रोहिणी नक्षत्र को पीड़ित करता है, तो वह काल पृथ्वी लोक के लिए अशुभ-योग माना जाता है (उ० १४३:८) रोहिणी नक्षत्र का देवता प्रजापति है। शनि के द्वारा रोहिणी का शकट भेद होने पर, उसका दुष्परिणाम प्रजापति पर होकर, समस्त पृथ्वी लोक का क्षय होता है (भीष्म : २ : ३२) महाराज दशरथ के राज्य काल में इस प्रकार का योग लगा था। उस समय दशरण ने शनि से युद्ध कर, रोहिणी शकट भेदन से शनि को परास्त किया था। भावी युग में शनि ही मनु होगें (शान्ति : ३४९ : ५५) नित्य स्मरणीय देवताओं में शनैश्चर ग्रह का भी नाम आता है। (अनु० : १६५ : १७)

ऋतुस्नाता इसकी पत्नी मित्र की पुत्री ने इसके पत्नीगमन न करने के कारण इसको शाप दिया था 'जिसकी ओर दृष्टिपात करोगे वह भस्म हो जायगा' बाल गणेश की ओर दृष्टिपात किया तो उनका मस्तक छिन्न होकर गोलोक में जाकर गिरा था। विश्वामित्र के पचास पुत्र इनके शाप के कारण म्लेच्छ हो गये थे।

शनि ग्रह का व्यास ७२,००० मील है। पृथ्वी से ७०० गुनी वस्तु का समावेश शनि में हो सकता है। पृथ्वी से लगभग ९५ गुना भारी है। शनि का

रक्षारत्नोपमे तस्मिन् सचिवेऽस्तमुपागते ।
प्राप्तामपि श्रियं मेने नृपतिर्हारितामिव ॥५८५॥

५८५. उस नृपति ने रक्षा रत्न सदृश उस सचिव के अस्त हो जाने पर, प्राप्त भी लक्ष्मी को अपहृत तुल्य माना।

तस्य दिग्विजयस्यान्ते मानम्लानिर्विनिर्ययौ ।
मानसात् पृथिवीभर्तुर्नामात्योपक्रिया पुनः ॥५८६॥

५८६. दिग्विजय के अन्त में उस पृथ्वीभर्ता के मन से मान म्लानि (अपमान, ग्लानि) निकल गयी, किन्तु अमात्य का उपकार नहीं निर्गत हुआ ।

चित्रं जितवतस्तस्य स्त्रीराज्ये मण्डलं महत् ।
इन्द्रियग्रामविजयं बह्वमन्यन्त भूभुजः ॥५८७॥

५८७. आश्चर्य है !—स्त्री राज्य में महामण्डल के विजेता, उस राजा के इन्द्रिय समूह विजय की ही लोगों ने प्रशंसा की ।

कर्णश्रीपटमाबध्य स्त्रीराज्यान्निर्जिताद्धृतम् ।
धर्माधिकरणाख्यं च कर्मस्थानं विनिर्ममे ॥५८८॥

५८८. उसने विजित स्त्री[1] राज्य से लाए कर्ण[1]श्री पट को निवद्ध कर, धर्माधिकरण नामक कर्म स्थान निश्चित किया ।

का घनत्व अन्य ग्रहों की अपेक्षा कम है। यदि पर्याप्त जल राशि मिले तो वह उस पर तैरता रह सकता है। ताप १५० से० है। शनि तल पर पृथ्वी जैसा जीवन सम्भव नहीं है। ग्रह होने के कारण सूर्य की परिक्रमा करता हैं। लगभग ६ मील प्रति सेकेण्ड अर्थात् ३६० मील प्रति मिनट इसकी परिक्रमा गति है। लगभग २९॥ वर्ष में सूर्य की एक परिक्रमा करता है।

भागवत में विवरण प्राप्त है कि वह तीस मास या वर्ष में परिक्रमा करते हैं। यह तीस शब्द महत्त्व पूर्ण है। पूर्व कालीन भारतीय ज्योतिषविद बिना आधुनिक उपकरणों के लगभग इसकी गति की गणना कर चुके थे। शनि की सबसे बड़ी विशेषता उसकी बलय है। इसके कारण इसे ज्योतिष विज्ञान में असाधारण स्थान प्राप्त है। मैंने आस्ट्रेलिया की वेध-शाला से शनि ग्रह को देखा था। वह ग्रहों में अत्यन्त सुन्दर दिखायी पड़ता है। मध्य में शनि का मुख्य ग्रह है उसके चारों ओर मेखला तुल्य है। इस बलय किंवा मेखला का बाह्य व्यास १,७००० मील है। किन्तु इसकी मोटाई १० मील से कुछ अधिक ही है। वलय अत्यन्त पतले हैं। वह ऐसा ही मालूम होता है जैसे कि एक वृत्ताकार रिंग में गेदा रखा है। वलय असंख्य लघु पिण्डों से बने हैं। वे उपग्रहों के समान शनि की परिक्रमा करते हैं।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५८६ में 'मान' का पाठभेद 'सा न' मिलता है

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५८७ में 'भूभुजः' का पाठभेद 'भू-भुजा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

५८७. (१) स्त्री = यहाँ पर स्त्री का दो अर्थ है। स्त्री राज्य विजय किंवा काम विजय।

पादटिप्पणी

५८८. (१) कर्ण श्रीपट = सर्व श्री ट्रोयर स्तीन तथा पण्डित तथा अन्य अनुवादकों ने कर्ण को नाम वाचक शब्द माना है। उसे कुन्ती पुत्र कर्ण लिखा है। श्री पण्डित ने पट का अर्थ झण्डा = फ्लैग तथा

द्वितीयं चलगञ्जाख्यं कर्मस्थानमपि व्यधात् ।
उपयुक्तं प्रयाणेषु गञ्जे दूरस्थिते निजे ॥५८९॥

५८९. निज कोशागार दूर स्थित होने के कारण प्रयाण (युद्ध यात्रा) के लिए उपयुक्त 'चलगंज' (चलकोश) कर्म स्थान की स्थापना की ।

किमन्यत्तद्भुजावासनिवासिन्या जयश्रियः ।
चत्वारोऽम्बुधयोऽभूवन् विलासमणिदर्पणाः ॥५९०॥

६९०. और क्या—? जब कि उसके भुजावास निवासिनी जयश्री के लिए चारों समुद्र[1] विलासमणि दर्पण हुए थे ।

श्री स्तीन ने राजकीय वस्त्र किया है। स्तीन ने टिप्पणी दी है कि निश्चित रूप से इसका अर्थ नहीं किया जा सकता । श्रीपट का एक अर्थ है पट्ट जिसपर कुछ चित्र एवं वाक्य चित्रितरहते हैं। महाभारत के कौरव, पाण्डव युद्ध के कर्ण से भी तात्पर्य लगाया जा सकता है। कर्ण वंग का राजा था । उस देश से सम्बन्ध होने के कारण उसके नाम पर कर्णश्री पट रख दिया गया होगा । श्री पण्डित ने इस पर कोई टिप्पणी नहीं दी है । कर्ण का झण्डा यदि मान ले तो अर्थ बैठता नहीं ।

कर्ण का अर्थ कान तथा दो की संख्या होती है । कर्ण राधापुत्र तथा महादानी के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है ।

श्रीपट का अर्थ होगा सुन्दर वस्त्र। कर्णश्रीपट का शाब्दिक अर्थ होता है दो सुन्दर वस्त्र या कर्ण का सुन्दर वस्त्र । पर पूर्वापर विचार करने से प्रकट होता है कि इसे न्यायालय में रखा गया था । इसका सम्बन्ध न्याय से था अथवा यदि चित्रित वस्त्र मान लिया जाय तो सुभाषित लिखे वस्त्र से होता है । पट शब्द रेशमी वस्त्र के लिए भी प्रयोग किया जाता है । सम्भव है पट दो वैनर रहे होंगे जो न्यायालय में न्यायाध्यक्ष के दोनों ओर दीवार में लगा दिये गये हों, अथवा अच्छे स्थान पर लगा दिये गये हों जहाँ वे लोगों का ध्यान आकर्षित कर सकें ।

पादटिप्पणी

५८९ (१) चलगंज = गंज संस्कृत शब्द है । इसका अर्थ खजाना रत्नों की खान, खान, भंडार, मण्डी तथा बाजार आदि होता है । चल संस्कृत शब्द है । चल-गंज का अर्थ होता है चलता खजाना । खजाना स्थायी रहता है । उसे ट्रेजरी कहते हैं । सेना गतिशील रहती है । प्रयाण करती है । उसके साथ कोष किंवा खजाना आर्थिक सुविधा के लिये रखना आवश्यक होता है । युद्ध यात्रा के समय चल कोष रखने के अर्थ में चलगंज शब्द का प्रयोग किया गया है । गंज शब्द नामों के साथ लगाया जाता है । जैसे चेतगंज, राबर्टगंज, मामूरगंज, पहाड़गंज यहाँ पर यह आबादी तथा बाजार के अर्थ में प्रयोग किया गया है । गंज शब्द अनाज की मंडी के अर्थ में भी प्रयोग किया जाता है ।

विल्हण ने 'गंज धाम' शब्द का प्रयोग किया है । यहाँ पर गंजधाम का अर्थ अन्नागार है ।

यत्रान्तक्षितिपगृहिणीशङ्करागारपार्श्वे,
तत्तुङ्गिम्ना त्रिभुवनमनोरञ्जनं गञ्जधाम ।
श्रुत्वा श्रुत्वा रुतमविरतं यत्र पारावतानां
दक्षाः कण्ठध्वनिषु शनकैः पौरकन्या भवन्ति ।

(१८:२६)

पादटिप्पणी :

५९० (१) समुद्रः—कल्हण ने यहाँ कुल चार समुद्रों का उल्लेख किया है । चारों समुद्र का प्रयोग कर कल्हण प्रकट करना चाहता है कि राजा चारो ओर समुद्र से वेष्ठित पृथ्वी का शासक था पौराणिक मान्यता है कि समुद्र सात हैं—लवंग, इक्षु, दुग्ध, दधि, सुरा, घृत एवंम हासमुद्र ।

पुनः प्रविश्य कश्मीरान स भूपैः परिवारितः ।
चिराय बुभुजे राजा विजयोपार्जितां श्रियम् ॥५९१॥

५९१. पुनः वह राजा भूपों से परिवारित होकर, कश्मीर में प्रवेश कर, चिरकाल तक विजयोपार्जित श्री का उपभोग किया।

महापद्मनाग[1] की कथा :

तं कदाचिन्नृपं स्वप्ने सर्वाशाविजयोर्जितम् ।
पुमान् दिव्याकृतिः कोऽपि व्याजहार कृताञ्जलिः ॥५९२॥

५९२. सभी दिशाओं में विजय प्राप्त कर लेने पर, कदाचित् स्वप्न में उस (नृप) से कोई दिव्याकृति पुरुष अञ्जलिबद्ध कहा—

सुखं त्वद्विषये राजन् वसन्नस्मि सबान्धवः ।
नागेन्द्रोऽहं महापद्मनामा त्वां शरणं श्रितः ॥५९३॥

५९३. 'हे ! राजन् ! आपके विषय (देश) में सबान्धव सुख पूर्वक निवास करता हूँ। मैं महापद्म[1] नामक नागेन्द्र आपका शरणागत हूँ।

पादटिप्पणी :

५९३ (१) महापद्म : महापद्म सर ऊलर लेक का नाम है। महापद्म नाग महापद्मसर का इष्ट देव है। नीलमत पुराण में इसका उल्लेख है। कल्हण ने इसका पुनः उल्लेख (रा : ५ : ६८, १०३, १०४, ८ : ११८, ३१२८) किया है, किस प्रकार नील नाग ने महापद्म नाग से रक्षा की थी। कश्मीर उपत्यका वनिहाल मूल वेरीनाग से आरम्भ होकर महापद्म नाग में समाप्त होती है। चीनी इतिवृत्त में भी इस कथा का वर्णन मिलता है।

नीलमत पुराण में महापद्मसर के पुण्य का वर्णन ९९४–९५, १५५१ महापद्म सर का ११५७–११५९ दिया गया है। महापद्म वर्णन में महापद्म प्रार्थना श्लोक ११३३–११३८ तक है। महापद्म प्रबोधना श्लोक ११२९–११४४, महापद्मकृत विश्वगश्व श्वछलना वर्णन ११४५—११५२ तथा महापद्म प्रवेश वर्णन श्लोक ११५३—११५९ तक है। (जादू संस्करण : लाहौर प्रकाशन)।

नील मत के अनुसार ऊलरलेक अर्थात् महापद्म सर की संक्षिप्त कथा है—एक दुष्ट नाग षड्ंगुल था। बह ६ उगलियों का था। वह आस पास की स्त्रियों को उठा ले जाता था। नील नाग ने उसे बहुत दूर किसी एक पर्वत पर निर्वासित कर दिया। सर का जल सूख गया। हरी भरी भूमि निकल आई। उस भूमि पर चन्द्रपुर नगर बस गया। किसी समय महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि उस स्थान पर आए। नगर के राजा से रुष्ट हो गए। जलप्लावन द्वारा नाश का शाप दिया।

कालान्तर में एक प्रमुख नाग महापद्म ने नील नाग से अपने आवास निमित्त किसी स्थान के लिए प्रार्थना की। नील नाग ने उसे चन्द्रपुर में निवास करने के लिए कहा।

महापद्म नाग विश्वगश्व राजा के चन्द्रपुरी नगर में गया। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया। अपने तथा अपने कुटुम्ब के रहने के लिए स्थान मागा। राजा ने उसकी प्रार्थना स्वीकार ली। तुरन्त नाग ने अपना छद्म वेश त्याग दिया। उसने राजा से कहा—ऋषि दुर्वासा के शाप के कारण समस्त नगर एक जलमय सरोवर हो जाने वाला है। अतएव नगर तुरन्त अपनी प्रजा के साथ त्याग दीजिए। राजा ने नगर त्यागकर वहाँ से दो योजन पर विश्वगश्व नगर बसाया।

द्राविडो मान्त्रिकः कश्चिन्मामितो नेतुमुद्यतः ।
जलाकाङ्क्षिणि वित्तेन विक्रेतुं मरुमण्डले ॥५९४॥

५९४. 'मरुमण्डल में जलाकांक्षी के हाथ, वित्त से बेचने के लिए, द्रविड[1] देशीय मान्त्रिक मुझे यहाँ से ले जाने के लिए उद्यत है ।

जहाँगीर ने अपनी आत्म कथा में लिखा है—'जैनुल आबदीन के बनवाए अनेक गृह प्रासाद के ध्वंसावशेष मिलते हैं । इनमें एक उलर झील के बीच में है। जिसका घेरा तीन चार कोस में है । इसे जैन लंका कहते हैं । इसके निर्माण में बहुत प्रयत्न करना पड़ा था । इस झील का पानी बहुत गहरा है । पहले नावों पर पत्थर लादकर ले आये और जहाँ प्रासाद बना है, वहाँ सब छोड़ दिया । उसका कोई फल नहीं निकला । तब सहस्रों नावें पत्थरों से लदी हुई, वहाँ डुबा दी गयीं । और बड़े परिश्रम से जल के ऊपर सौ गज लम्बी और सौ गज चौड़ी भूमि निकली। इस पर एक प्रासाद तथा एक मसजिद बनी। जिससे अच्छी इमारत अन्यत्र नहीं देखने में आयी । वह नाव से बहुधा इस स्थान पर आता और ईश्वर का ध्यान करता । इसने कितने चालीसा इस स्थान में बिताया है ।' (पृष्ठ १७०)

कैप्टन नाइट अपनी पुस्तक डायरी आफ ए पेडस्ट्रियन ८ जुलाई, १८६० में लिखता है—द्वीप पर हम उसकी हरी जलीय पतली घास (सेवार) जो उलर लेक के जल स्तर पर मीलों तक चारों ओर फैला था, लाँघते हुए नाव से पहुँचे । यह शहतूत के वन से भरा था । उन पर जंगली अंगूर की वेलें चढ़ी थीं । उनके बीच में एक पुरानी मसजिद का ध्वन्सावशेष था । काले पत्थर की एक शिला थी । उस पर अरबी के लेख अलंकृत रूप से खुदे थे । उससे मालूम होता था कि जिस उपेक्षित अवस्था में वह इस समय पड़ा था, वह पहले इस दशा में नहीं था । द्वीप पर बहुत से अलंकृत स्तम्भों के टुकड़े तथा शिला खण्ड पड़े थे । उनसे मालूम होता था कि वे किसी पुराने मन्दिर के भग्नावशेष हैं ।

पादटिप्पणी :

५९४ (१) द्रविड—द्राविड । रामायण में द्राविड का उल्लेख दशरथ ने कैकयी को अपने राज्य की सीमा बताते हुए किया है। द्राविड देश राजा दशरथ के आधीन था । (अयो० : १० : ३८-४०) महाभारत में द्रविड का उल्लेख एक दक्षिण भारतीय जनपद के रूप में किया गया है (सभा०: ३ : ७१) द्राविड का एक जाति के रूप में उल्लेख किया गया है । (अनु० : ३३ : २२-२३) ऋग्वेद में द्रविड शब्द मिलता है (ऋ० : ४ : २३, ४, ९ : १०९ :९ ४ : ५ : ११; १० : ७० : ७; अ० १८ : ३२१) किन्तु इस स्थल पर धन के लिए द्रविण शब्द का प्रयोग किया गया है । अन्य पदार्थों के साथ द्रविण प्राप्ति के लिए प्रार्थना की गयी है । द्रविड, द्राविण तथा द्रविण शब्दों में यही अन्तर है ।

स्कन्ध पुराण (सै० : खं : उत्त०) के अनुसार विन्ध्य प्रदेश के दक्षिण में स्थित भारत द्राविड देश माना जाता है । पंच द्राविड ब्राह्मणों का क्षेत्र महाराष्ट्र गुर्जर तथा कन्या कुमारी से मद्रास, मैसूर एवं आन्ध्र प्रदेश हैं । द्रविड ब्राह्मणों में पाँच भेद होने के कारण पंच द्रविड शब्द प्रचलित हो गया है । पंच द्रविड वर्ग में, कर्णाट, तेलंग, गुर्जर, महाराष्ट्र, तथा द्रविड ब्राह्मण हैं । ब्राह्मणों में यह भेद उनके प्रदेश के आधार पर बना है । ट्रोयर के समय सन् १८४० में द्राविड देश की संज्ञा मद्रास से कारोमण्डल तट तथा कुमारी अन्तरीप तक विस्तृत भूखण्ड के लिए दी जाती थी । (द्रष्टव्यः राजतरंगिणी फ्रेंच अनुवाद भाग २ : टिप्पणी श्लोक ५८७)

मनु अनुसार (१० : २२, ४३-४४) द्रविण क्षत्री थे ।

तस्माच्चेत्पासि मां तत्ते स्वर्णधातुसुवं गिरिम्।
स्वदेशे दर्शयिष्यामि स्फीतोपकृतिकारिणः ॥५९५॥

५९५. 'अतएव यदि मेरी रक्षा करते हैं, तो उपकारकारी आपको अपने देश में स्वर्ण धातु उत्पादक, गिरि दिखाऊँगा'

राजा स्वप्ने निशम्येति दिक्षु संप्रेषितैश्चरैः।
कुतोऽपि प्राप्तमानीय तं पप्रच्छ चिकीर्षितम् ॥५९६॥

५९६. राजा स्वप्न में इस प्रकार सुनकर, दिशाओं में संप्रेषित, दूतों द्वारा कहीं से प्राप्त, उसे लाकर अभिप्राय पूछा।

दत्ताभयः स नागोक्तं यथावत्सर्वमुक्तवान्।
सविस्मयेन भूभर्त्रा स्वयं भूयोऽप्यपृच्छयत ॥५९७॥

५९७. अभय प्राप्त उसने नागोक्त बातें यथावत् सब कहीं। राजा भी विस्मित होकर पुनः स्वयं पूछा—

भूरियोजनविस्तीर्णात् सरसोऽभ्यन्तरात्त्वया।
नागः प्रभावोत्कृष्टः स निष्क्रष्टुं शक्यते कथम् ॥५९८॥

५९८. 'बहुत योजन विस्तृत, सर (महापद्म-उलर लेक) भीतर से उत्कृष्ट प्रभावशाली, उस नाग को तुम किस प्रकार निकालने में समर्थ होगे ?'

स तं व्यजिज्ञपद्राजन्नचिन्त्या मन्त्रशक्तयः।
ताश्चेद्दिदृक्षसे क्षिप्रमेत्याश्चर्यं विलोक्यताम् ॥५९९॥

५९९. उसने कहा—'राजन् ! मन्त्र[1] की शक्तियाँ अचिन्त्य होती हैं। उन्हें यदि देखने की अभिलाषा है, तो देखिए—शीघ्र ही आश्चर्य प्रकट होता है।'

किन्तु कालान्तर में वे शूद्र हो गये थे। (द्रष्टव्य उद्योग० : १६० : १०२ द्रोण० : ९३ : ४३।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५९६ में 'संप्रेषितै' का पाठ भेद 'संप्रेरितै' मिलता है।

पादटिप्पणी

५९९ (१) मन्त्र—ऋग्वेद एवं परवर्ती काल में सूक्त या ऋचा की संज्ञा मन्त्र से दी गयी है। मनन का परिणाम होने के कारण उसे मन्त्र कहा गया है। (ऋ०: १ : ३१ : १३; १ : ४० ; ५; १ : ६७ : ४; १ : ७४ : १; १ : १५२ : २; २ : ३५ : २; अ०: १५ : २ : १, १९ : ५४ : ३; तै० सं: १ : ४ ४: १; १ : ५ : ५ : १) ब्राह्मणों में ऋचाओं के अतिरिक्त यज्ञ सम्बन्धी गद्य के यजुषों को भी मन्त्र कहा गया है। अधिकांश इनमें से बहुत प्राचीन हैं। (ऐ०ब्रा: ५ : १४ : २३; ६ : १; कौ० ब्रा० २६:३: ५; छा०उ० ७:१ : ३; 'ब्रह्म वै मन्त्रः' श०ब्रा०: ७ : १:१ ५; 'वाग् वै मन्त्रः, श०ब्रा०: ६ : ४ : १ : ७) मन्त्रकृत् का अर्थ मन्त्र कर्ता कवि होता है (ऋ०:

अथानुगम्यमानः स राज्ञा प्राप्तः सरोऽन्तिकम् ।
अभिमन्त्र्योज्झितैर्बाणैर्बद्धाशोऽशोषयज्जलम् ॥६००॥

६००. वह सर (महापद्मसर) के निकट गया। राजा ने उसका अनुगमन किया। वहाँ मान्त्रिक ने दिशाओं को बाँधकर[१], अभिमंत्रित कर, त्यक्त बाणों से जल[२] को शोषित कर लिया।

११४ : २; ऐ० ब्रा० ६ : १ : १; पं०वि०ब्रा० १३ : ३ : २४; तै०आ० ४ : १)। पुराणों में मन्त्र इस अर्थ के अतिरिक्त परामर्श मन्त्रणा के लिये भी आया है। राजा को चाहिए कि राज्य सम्बन्धी मन्त्रियों के साथ गुप्त रूप से मन्त्रणा करे। (मत्स्य : २१९, अग्नि० : २३५ : ९)

पादटिप्पणी :

६०० (१) बद्धाशा शब्द का प्रयोग कल्हण ने मान्त्रिक के प्रसंग में किया है। इसका अर्थ आशा बद्ध अर्थात् विश्वास पूर्वक, दृढ़ विश्वास है।

दिग्बन्ध अर्थात् दिशाओं को भूत प्रेत की बाधाओं से बाँध देने के अर्थ में प्रयोग होता है। तान्त्रिक संस्कार है। इसका उल्लेख राजानक तक्षक वर्त की 'नित्य रचना पद्धति' तथा राघवानन्द की पद्धति 'रत्नमाला' में उल्लेख है।

(२) जल : जल सुखाने की क्रिया का वर्णन महाभारत में मिलता है। द्रष्टव्य : द्रोण : २१० : २५।

उलर लेक के सम्बन्ध में बर्नियेर ने यात्रा द्वितीय आवृति सन् १९१६ में नोट के साथ कुछ ज्ञातव्य बातें दी गयी हैं। उनका वहाँ उल्लेख अच्छा होगा।

उलर में मछलियाँ बहुत हैं। इल्स जाति की मछलियाँ अधिक हैं। इसपर बत्तख बहुत रहते हैं। जंगली हंस भी रहते हैं। जल के अन्य पक्षियों का यह आश्रय है। यहाँ सूबेदार जाड़ा में आते हैं जबकि पक्षियाँ यहाँ अधिक संख्या में रहती हैं। उस समय शिकार खेलने की विशेष सुविधा रहती है। इस झील के मध्य में एक कुटी है। उसमें एक छोटा नाग है। कहा जाता है कि यह जमीन पर तैरता है। फकीर वहाँ सारा जीवन व्यतीत करता है। वह स्थान कभी नहीं त्यागता। इस स्थान के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की जनश्रुतियाँ हैं। उनपर विश्वास करना कठिन है। कहा जाता है कि कश्मीर के एक पुराने राजा ने शहतीरों को बांधकर उसपर यह स्थान बनाया था। वितस्ता नदी जो बारहमूला की ओर जाती है, इस सरोवर के बीच से जाती है।

वरनियर की पुस्तक के सम्पादक इस स्थान पर २२ सितम्बर सन् १८७४ में आए थे। वहाँ उलर लेक पर उन्हें 'लंका' द्वीप के मसजिद के ध्वंसावशेष के समीप लेकमें एक पत्थर काला स्लेट का मिला था। उसपर फारसीमें आलेख थे। उसका अनुवाद मेजर एच. एम. जरेट ने किया था। उसपर हिज्री सन् ८४७ लिखा था, जो सन् १४४३-१४४४ ईसवी सन् होता है। वह आलेख जेनुल आबदीन अर्थात् बड़शाह के समय का था।।

उलर लेक के आसपास एक जनश्रुति प्रचलित है कि उलर लेक के स्थान पर एक नगर पहले था। उनका राजा सुद्रसेन, सुरेन्द्र किंवा सुरेन्द्रसेन था। उसके अत्याचार के कारण सर का पानी ऊपर उठा और राजा प्रजा तथा नगर सबको जल प्लावित कर दिया। कहा जाता है कि जाड़ा में जब पानी घट जाता है तो डूबे हुए मन्दिरों को जल से निकलता देखा जा सकता है। जैनुल आबदीन एक भारवाही नौका बनवाया। उसे वहाँ डुबा दिया। उसपर ईंटा और पत्थर की नींव पर उसने मसजिद बनवाया। उसका नाम लंका रखा।

इसकी रचना के लिये दो स्वर्ण प्रतिमाएँ जो पनडुब्बे उसी लेक से निकाल कर लाये थे उनके सोने

राजाऽपश्यत्ततः पङ्के लुठन्तं मानुषाननम् ।
वितस्तिदेश्यमुरगं भूरिह्रस्वोरगान्वितम् ॥६०१॥

६०१. तदनन्तर पंक में लुंठित होते, मुखाकृति एक वितस्ति (बालिश-बित्ता) प्रमाण सर्पको राजाने देखा; जिसके पीछे बहुत से छोटे छोटे सर्प थे ।

मन्त्रसंकोचितं राजन् गृह्णाम्यमुमिति ब्रुवन् ।
मा ग्रहीरिति भूपेन सोऽभिधाय न्यषिध्यत ॥६०२॥

६०२. 'राजन् ! मन्त्र से संकोचित इसे मैं ग्रहण करता हूँ।' मान्त्रिक के कहने पर, 'मत ग्रहण करो ।' कह कर, राजा ने उसे निषेध किया ।

तूर्णं राजाज्ञया तेन मन्त्रवीर्येऽथ संहृते ।
सरोऽभूत्प्रागवस्थं तत्पुनर्व्याप्तदिगन्तरम् ॥६०३॥

६०३. राजा की उस आज्ञा से, शीघ्र ही मंत्र प्रभाव से, संहृत होने पर, पुनः दिगन्तर व्याप्त वह सरोवर पूर्वावस्था को प्राप्त किया ।

द्राविडं द्रविणं दत्त्वा विसृज्याचिन्तयन्नृपः ।
दद्यान्नाद्याप्यसौ नागः कथं स्वर्णाकरं गिरिम् ॥६०४॥

६०४. राजा ने द्राविड[1] को द्रविण[2] (धन) प्रदान कर विसर्जित किया और सोचा— 'आज भी वह नाग स्वर्णाकर गिरि क्यों नहीं दे रहा है ।'

के मूल्य पर बनाई गयी थी । निर्माण के पश्चात् बादशाह ने बहुत बड़ा मेला लगवाया और दावत दी जिसमें गरीबों को बहुत धन बांटा गया था । उसके सम्बन्ध में कविताएं लिखी गयी थीं जो उक्त शिलाखंड पर खुदी थीं । यह अहमद अल्लामा काश्मीरी की रचना थीं ।

अब्दुल कादिर अर्ल बदायुनी (सन् १५९४ ई०) इतिहासकार अपने मुन्तखवउत्तवारीख में लिखता है—जैनुल आबदीन ने एक जरीब पत्थर उलर लेक में फेंक दिया । वहाँपर उसने पत्थर का बहुत भव्य तथा विशाल सिंहासन बनवाया जैसा कि भारत के किसी सूबे में नहीं था । (लोका अनुवाद : भाग २ : पृष्ठ ३९८ कलकत्ता : सन् १८८४ ई०)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६०२ में 'भिधाय' का पाठभेद 'भ्यधाय' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६०३ में 'तेन' का पाठभेद 'याते' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६०४ (१) द्राविड : द्राविड शब्द द्रविड देश निवासी मान्त्रिक शब्द के लिए प्रयुक्त किया गया है । द्राविड का प्रयोग द्रविड भी होता है । द्रविड देशोत्पन्न व्यक्ति के लिए द्राविड शब्द का प्रयोग किया गया है, द्रविड शब्द अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित रहा है । द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : कल्हण : राज० : ४ : ५९४ :

(२) द्रविण : सोना, या धन होता है ।

ध्यायन्तमेव तं स्वप्ने ततः प्रोवाच पन्नगः ।
केनोपकारेण गिरिः स्वर्णसूस्तव दर्श्यते ॥६०५॥

६०५. तदनन्तर उसके ध्यान करते ही स्वप्न में पन्नग ने कहा,—'किस उपकार से स्वर्ण-सू पर्वत तुम्हें दिखाऊँ ?'

[१]स्वदेशोऽयं विदेशोऽयमिति बुद्धेः प्रवर्तकः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां स्थित्यभ्यासः शरीरिणाम् ॥६०६॥

६०६. 'प्राणियों के आवास अभ्यास के कारण अन्वय व्यतिरेक से, यह स्वदेश है, यह विदेश, यह बुद्धि हो जाती है ।

शरणं त्वामहमगामवमानभयात् पुनः ।
शरण्येन सता तत्तु भवतैव प्रदर्शितम् ॥६०७॥

६०७. 'अपमान भय के कारण मैं आपकी शरण गया था । किन्तु रक्षक होते हुए भी, आपने उसे (अपमान) प्रदर्शित किया (है) ।

उदन्वानिव योऽक्षोभ्यो ज्ञायते संश्रितैः प्रभुः ।
का ह्रीस्ततोऽन्या सोऽन्यैर्यत्तेषामग्रेऽभिभूयते ॥६०८॥

६०८. 'जिस प्रभु को आश्रित जन समुद्र तुल्य अक्षोभ्य जानते हैं, वही यदि, उन (आश्रितों) के सम्मुख दूसरों द्वारा अभिभूत (तिरस्कृत) होता है, तो उसके अतिरिक्त लज्जा क्या होगी ।

याभिरन्याभिभूताभिरीक्षितस्त्रातुमक्षमः ।
तासां केनाभिमानेन स्त्रीणां द्रक्ष्याम्यहं मुखम् ॥६०९॥

६०९. 'अन्य द्वारा अभिभूत जिन स्त्रियों ने रक्षा करने में मुझे असमर्थ देखा है, उन स्त्रियों को मैं, किस अभिमान से मुख दिखाऊँगा ?

ये कारणसधर्माणो व्यामूढस्य भवाम ते ।
विडम्ब्यमानाः क्रीडायै ते वयं प्राकृता इव ॥६१०॥

६१०. 'कारण[१] भेद से सधर्मी भी हम लोग व्यामूढ़ आपके द्वारा क्रीडा के लिए प्राकृत जन तुल्य विडम्बित हुए हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६०५ में 'स्तव दर्श्यते' का पाठभेद 'दृश्यते तव' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६०६(१) सूक्ति संग्रह का १४० वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६०८ में 'भूयते' का पाठभेद 'भूतये' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१० में 'ये कारण' का पाठभेद 'येऽकारण' मिलता है ।

[1]अथवा श्रीमदान्धानामप्रेक्षापूर्वकारिणाम् ।
यत्किंचनविधायित्वं पार्थिवानां किमद्भुतम् ॥६११॥

६११. 'अथवा ठीक ही है, श्री से मदान्ध अविवेक पूर्ण कार्य करने वाले राजाओं का (यत्किंचन विधायिता) मनमाना कार्य करना कोई आश्चर्य नहीं है ।

[1]मन्यन्ते क्ष्माभुजः क्रीडामुन्नतानां विमाननाम् ।
यावज्जीवं तु सश्वासं मरणं तां विदन्ति ते ॥६१२॥

६१२. 'नृपति उन्नतों का अपमान करना क्रीडा (खेल) मानते हैं किन्तु उस अपमान को वे यावज्जीवन श्वास सहित मरण जानते हैं ।

[1]उपेक्ष्यपक्षे भूपानां मानः स्वार्थस्य सिद्धये ।
स तु प्राणानुपेक्ष्यापि ग्राह्यपक्षे मनस्विनाम् ॥६१३॥

६१३. राजाओं के लिए स्वाभिमान स्वार्थ सिद्धि में उपेक्षणीय[2] हो जाता है । किन्तु मनस्वियों के लिए स्वाभिमान प्राणों की उपेक्षा करके भी ग्राह्य होता है ।

[1]महतो येऽवमन्यन्ते घटन्ते च विमानितैः ।
मानस्वरूपाभिज्ञत्वं तेषां केनानुमीयते ॥६१४॥

६१४. बड़ों का जो अपमान करते हैं और अपमानितों का साथ करते हैं, उसके स्वाभिमान का कौन अनुमान कर सकता है ?

पादटिप्पणी :

६१० (१) कारण : इस शब्द का प्रयोग पुनः तरंग ७ : ६६१ में कल्हण ने किया है । कारण शैवशास्त्र के अनुसार पंचदेव—ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर एवं सदाशिव हैं। कल्हण ने पुनः कारण शब्द का प्रयोग रा० : ७ : ६६१ में किया है । उस स्थल के 'कारण' प्रयोग से इस श्लोक का अर्थ और स्पष्ट हो जाता है ।

पादटिप्पणी :

६११(१) सूक्ति संग्रह का १४१ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१२ में 'विमाननाम्' का पाठभेद 'विमानिनाम्' तथा 'विदन्ति' का 'विशन्ति' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६१२(१) सूक्ति संग्रह का १४२ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६१३ 'उपेक्ष्य' के लिए पार्श्व टिप्पणी में 'त्याज्य' लिखा मिला है ।

पादटिप्पणी :

६१३(१) सूक्ति संग्रह का १४३ वां श्लोक है ।

(२) उपेक्षणीय : इसका अर्थ त्याज्य भी किया जा सकता है ।

भवन्त इव तत्रापि न वयं व्यर्थदर्शनाः।
ताम्रधातुरसस्यन्दी दर्श्यते तद्गिरिस्तव ॥६१५॥

६१५. फिर भी आप लोगों की तरह हम लोगों का दर्शन व्यर्थ नहीं हो जाता है, अतएव ताम्रधातुस्यन्दी (स्रावी) गिरि तुम्हें दिखाता हूँ।'

इत्युक्त्वा संविदं तस्मै स्वप्न एव स तां ददौ।
यया प्रबुद्धः प्रत्यूषे प्राप ताम्राकरं गिरिम् ॥६१६॥

६१६. ऐसा कहकर उस नागराज ने स्वप्न में (जयापीड को) वह ज्ञान दिया, जिससे प्रत्यूष काल में प्रबुद्ध होकर, ताम्राकर[1] पर्वत प्राप्त किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१४ में 'मान' का पाठभेद 'मनः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

६१४ (१) सूक्ति संग्रह का १४४ वां श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१६ में 'यया' का पाठभेद 'यथा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

६१६ (१) ताम्रपर्वत : जयापीड की ताम्र-मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। उनका उल्लेख भी रा० ४:४०२ में किया गया है। जयापीड के पश्चात् कश्मीर के शंकर वर्मा, गोपाल वर्मा, रानी सुगन्धा, पार्थ, निर्जित वर्मा, चक्रवर्मा, उम्मतावन्ति वर्मा, यशस्कर, पर्वगुप्त, क्षेमगुप्त, क्षेमगुप्त दिद्दा, अभिमन्यु गुप्त, नन्द गुप्त, त्रिभुवन गुप्त, भीमगुप्त, रानी दिद्दा, संग्रामराज, अनन्त, कलश, हर्ष, उच्चल, सल्हण, सुस्सल, जयसिंह, गुल्हण, प्रमाणुक वन्तिदेव, जगदेव, राजदेव, राजाओं की मुद्राएँ अबतक मिली हैं। वे सब ताम्रमुद्राएँ हैं। विग्रहराज की मुद्रा स्वर्ण की मिली है। वह कश्मीर का राजा नहीं था। लोहर का राजा था। रानी दिद्दा का भतीजा था। (रा० ६:३३५) एक विग्रह का कश्मीर में और उल्लेख मिलता है वह सुस्सल का पुत्र था। (रा० ८ : १९३६) विग्रह कश्मीर का राजा नहीं हुआ था। शंकर वर्मा तथा हर्ष की भी स्वर्णमुद्राएँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त सब मुद्राएँ ताम्र की ही प्राप्त हुई हैं। हर्ष ने वहाँ से लूट मार कर स्वर्ण एकत्रित किया था। उसी से प्रतीत होता है उसने मुद्रा टंकणित कराया था। ताम्राकर मिलने के पश्चात् शंकर वर्मा (सन् ८८३ : ९०२ ई०) विजय करता कश्मीर के बाहर गुजरात तक पहुँच गया था। तत्पश्चात् जनता को त्रस्त कर, धन संग्रह करने लगा। शंकर वर्मा को सुवर्ण की जो प्राप्ति हुई थी उसमें स्वर्णमुद्रा टंकणित कराया था। राजा हर्ष (सन् १०८९ : ११०१) ने भी कश्मीर के बाहर सैनिक अभियान किया था। राजपुरी को जीता था। इसके अतिरिक्त मन्दिरों के लूट से धन संग्रह किया था। प्राप्त स्वर्ण से स्वर्ण मुद्रा टंकणित कराया था। कश्मीर में जयापीड के समय खानों से ताम्र निकालने का कार्य प्रारम्भ हुआ था। जयापीड को सुवर्ण पर्वत के स्थान पर ताम्रगिरि बताया गया था। वहाँ से ताम्र लाकर जयापीड ने एक नून शत कोटि दीनार टंकणित कराया था। जयापीड के पश्चात् कल्हण के समय तक ताम्रमुद्रा ही भविष्य के राजाओं ने टंकणित करवायी थी। शंकर वर्मा तथा हर्ष अपवाद थे। क्योंकि उन्होंने अर्जित स्वर्ण से मुद्रा टंकणित कराया था। यद्यपि उन्होंने भी ताम्र मुद्रा भी टंकणित कराया था। क्रम से आने वाले ६ शताब्दियों तक सभी राजाओं ने ताम्र' मुद्रा टंकणित करायी थी। क्योंकि कश्मीर में ताम्र सुलभ था।

स तस्मात् क्रमराज्यस्थात् ताम्रमाकृष्य निर्ममे ।
शतं दीन्नारकोटीनामेकोनं स्वाभिधाङ्कितम् ॥६१७॥

६१७. उस राजा ने क्रम राजस्थ,[1] उस ताम्र (गिरि) से ताम्र[2] लाकर, स्वनामांकित, एक न्यून शतकोटि दीनार[3] निर्मित कराया ।

पूर्णं कोटिशतं कुर्याद् यः स मां निर्जयेदिति ।
दर्पभङ्गाय भूपानां समयं स्थापयन्नृपः ॥६१८॥

६१८. जो शत कोटि दीनार पूर्ण (टंकित) करे वह मुझे विजित करेगा, यह प्रतिबन्ध नृप ने राजाओं के दर्प भंग हेतु लगाया ।

समस्या इव स क्ष्माभृत् सामशेषैर्विचेष्टितैः ।
चिक्षेप तुल्यनिर्माणकुण्ठत्वायेति भूभृताम् ॥६१९॥

६१९. उस क्षमाभृत ने अवशिष्ट कार्यों द्वारा राजाओं का तुल्य निर्माण कुंठित करने के लिए समस्या सदृश (इसे) रख दिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६१७ में 'दीन्नार' का पाठभेद 'दीनार' मिलता है ।

६१७ (१) क्रमराज्य : वर्तमान कम या कामराज है । आईने अकबरी के अनुसार परगना उत्तर, लोलाब, हमल, मच्छीपुर, कमराज में सम्मिलित थे । सर्व श्री मूरक्राफ्ट तथा वैरन हुगेल ने परगना उत्तर, हमल, और मच्छीपुर को कमराज में सम्मिलित किया है । कमराज की सीमा बदलती रही है ।

(२) ताम्र : जयापीड का अपर नाम विनयादित्य है । ताम्रमुद्राओं पर विनयादित्य टंकणित है । ताम्रमुद्रायें उसके समय की प्राप्त हुई हैं । कल्हण का वर्णन कि ताम्र मिला तथा प्रचुर ताम्र मुद्राएँ टंकणित कराई । इन मुद्राओं की प्राप्ति से वर्णन की प्रामाणिकता सिद्ध होती है ।

पादटिप्पणी :

(३) दीनार : दीनार शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है । यह शब्द पश्चिम में प्रयुक्त शब्द दिनेरियस का समानार्थक है । संस्कृत में स्वर्ण मुद्रा के लिए दीनार शब्द का प्रयोग किया गया है । दीनार कहीं कहीं साधारणतया विना किसी संख्या के रुपयों की तरह वर्णित किया गया है । कहीं मुद्रा तथा कहीं द्रव्य रूप में भी वर्णन आया है । हर्ष के समय में दीनार स्वर्ण रजत तथा ताम्र की भी टंकणित होती थी । कश्मीर में कौड़ी सबसे निम्नकोटि का विनियम का साधन था । कौड़ी के पश्चात् शाली अर्थात् धान देकर चीजें बदलते थे ।

हिन्दूकाल में निम्नलिखत प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित थी :

द्वादश बाहगनी = १२ दीनार
पंच विंशति (प्रत्तसर) = २५ दीनार
शत (हात) सहस्र = १०० दीनार
सहस्र (शासुन) = १००० दीनार
लक्ष (लाख) = १००००० दीनार
कोटि = १००००००० दीनार

अब्दुलफजल ने कश्मीर मुद्राओं का वर्णन किया है :

२ बरहगी = १ पुन्तश अर्थात् २५ दीनार
४ पुन्तुश = हाथ (शत)
१० हाथ = शशुन (सहस्र)
१०० ससुन = १ लाख

पादटिप्पणी :

६१९ (१) समस्या : श्रीवर ने भी समस्या की उपमा दी है जैन : १ : ३ २० कल्हण ने समस्या की उपमा रा : ४ : ४६ में भी दी है ।

अथाकस्मान्महीपालः प्रजाभाग्यविपर्ययैः ।
त्यक्त्वा पैतामहं मार्गं ययौ पित्र्येण सोऽध्वना ॥६२०॥

६२०. उस महीपाल ने प्रजा भाग्य विपर्यय से पितामह का मार्ग त्याग, पिता के मार्ग का अनुकरण किया ।

किं दिग्जयादिभिः क्लेशैः स्वदेशादर्ज्यतां धनम् ।
इत्यर्थ्यमानः कायस्थैः स्वमण्डलमदण्डयत् ॥६२१॥

६२१. 'दिग्विजयादि क्लेशों से क्या लाभ ? अपने देश से धन अर्जित करें ।' इस प्रकार कायस्थों के निवेदन पर, अपने मण्डल को दण्डित (पीड़ित[१]) किया ।

पादटिप्पणीः

६२० (१) भाग्य विपर्यय : जोनराज ने भी भाग्य विपर्यय सिद्धान्त को स्वीकार किया है। (श्लोक: ५९७) श्रीवर ने भी भाग्यविपर्यय सिद्धान्त का समर्थन स्थान स्थान पर किया है। (जैन : १ : ३, १७५, १ : ७ : २१५, २ : ४१ रा० : ४ : ६२०) महाभारत में पुरुषार्थ एवं भाग्य (दैव) के विषय में स्थान स्थान पर चर्चा की गयी है। कुछ स्थानों पर भाग्य पर अधिक जोर दिया गया है। (आदि० : १ : २४६, २४७, ८९ : ७–१०, सभा० : ४६ : १६, ४७ : ३६; ५८ : १४, वन० : १७९ : २७-२८, उद्योग० : ८ : ५२, ४० : ३२, १५९ : ४, १८६ : आश्रमवासिक : १० : २९) मध्यम मार्ग का निर्देश करते हुए इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि सांसारिक कार्यों में पुरुषकार एवं दैव दोनों की आवश्यकता है। (सभा० : १६ : १२, आदि० १२३ : २१; उद्योग० ७९ : ९-६; शान्ति० : ५६ : १४–१५; सौप्तिक० : २ : ३) कुछ स्थलों पर प्रयत्न को अधिक बल दिया गया है और कहा गया है कि भाग्य पर आश्रित होकर नहीं बैठ रहना चाहिए। (द्रोण० : १५३ : २७, शान्ति० : २७ : ३२, ५८ : १३-१६; १५३ : ५०; अनुशासन० : ६ : १; सौप्तिक० : २ : १२–१३; २३–२४;) याज्ञवल्क्य का मत है कि किसी योजना की सफलता दैव एवं मानवीय प्रयत्न दोनों पर निर्भर है। किन्तु भाग्य मानव के गत जीवन का कोई प्रतिफल है। जिस प्रकार एक पहिया से रथ नहीं चलता उसी प्रकार भाग्य एवं कर्म बिना दोनों के फल प्राप्ति सम्भव नहीं है। (याज्ञ० १ : ३४९; एवं ३५१ मनु० : ७ : २०५) मत्स्य पुराण ने मानवीय प्रयत्न को उत्तम माना है। (मत्स्य० २२१ : २) कहा गया है, प्रयत्न हीन जन ग्रहस्थिति पर निर्भर रहते हैं, जो दृढ़ प्रतिज्ञ एवं व्यवसायी हैं, उनके लिये कुछ भी करना असम्भव नहीं है (शुक्र० : १४८–४६; मेधा—मनु० : ४ : १३७)।

पादटिप्पणी

६२१. (१) दण्डित : पीरहसन राजा के क्रूर होने तथा अपनी पूर्व नीति बदलने का विचित्र कारण जामुत्वारीख के आधार पर देता है–'हिन्दुस्तान के इरादा के वक्त राजा जयापीड की रानी मन्दिर के दर्शन के लिए जाती थी। अचानक एक बरहमनजादा उसके हुस्न व जमाल पर आशिक हो गया और मजनू की तरह पहाड़ और जंगल में दरद व सोज़ के साथ रात बसर करता था। आखिरकार मौत के करीब पहुँच गया। उसकी माँ अन्दरूनी जलन से वाक़िफ हो गयी। और मक्र व हीला के साथ ख़ुद को उसकी माशूका के घर में दाखिल करके राजा की रानी के साथ हमज़ारी और उन्स पैदा कर लिया। एक दिन आज़िजी और इन्कसारी से रानी के सामने इज़हार किया कि इस शिकस्ता दिला को ख़ुदा ताला के एक लड़का अता किया था और अब वह बिस्तर मरग पर पड़ा हुआ है। उसका इलाज तुम्हारे क़बज़ा अख़्तियार

शिवदासादिभिर्लुब्धैर्धनस्थानाधिकारिभिः ।
प्रविवर्धितवित्तेच्छः सोऽभूल्लोभवशंवदः ॥६२२॥

६२२. धनस्थानाधिकारी शिवदासादि[1] लोभियों ने उसकी धनाकांक्षा बढ़ा दी और वह लोभ का वशंवद हो गया।

में हैं। अगर जान की अमान पाऊँ तो उसकी तफ़सील और क़ैफियत में मशगूल हूँ। रानी उसकी अजज़ो ज़ारी पर नज़र करके उसके मक़सूद सुनने पर कायल हो गयी। जब हक़ीक़त हाल पर मुत्तला हो गयी तो अपने बरहमन से तामिय और माये के तौर पर पूछा कि अगर कोई शख्स निज की हालत में पहुँच गया हो और दूसरा आदमी उसका इलाज़ करदे और वह इलाज़ हकीक़त गुनाह कबीरा हो उसका बदला अज़ सूये मज़हब किस तरह अदा हो सकता है ? बरहमन ने जवाब दिया कि उसका बदला नज़र और ख़ैरात करना है।

"इस क़लाम के मज़मून के मुताबिक़ रानी ने उस बुढ़िया को तजवीज़ दी कि अपने लड़के को मुखफ़ी तौर पर महल में पहुँचा दे। और किसी को भी इस राज़ का वाक़िफ न करे। उस बुढ़िया ने अपने मजनून को फौरन ले ली कि हरमसरा में पहुँचा दिया। रानी ने कमाल दस्तानी और मिहरबानी ख़ुद को उमदः पोशाक और बे शुमार ज़र व ज़ेवरात से आरास्ता करके और अपने आशिक को कमाल दिलेरी से बगल खींचकर इश्क व इशरत और कामरानी में रात गुज़ार दी और अपने उस दीवाना को वसाला की जो शदारों से हमेशा की ज़िन्दगीबख्श दी। उसके रुख़षत हो जाने के बाद गुनाहों को दूर करने की फ़िकर में पड़कर उसी बरहमन के पास आकर हक़ीक़त हाल बयान की। बरहमन ने कहा कि गुनाह कबीरा का कुफ़ारह सिवाय अपने वजूद ख़ाकी के जलाने के अदा नहीं हो सकता। क्योंकि इस जैसे बुरे अफ़आत के लिये नज़र और ख़ैरात क़ाफी नहीं है। उसके बाद उस मरदाना सिफ़त औरत ने अपने घर के सहन में सन्दल की लकड़ी का ढेर जमा करके और फुरसत के वक्त रोशन करके ख़ुद को आग के दरमियान जलाकर हमेशा की ज़िन्दगी हासिल कर ली। और यह बात शहर में मशहूर हो गयी। जिससे हर आदमी उसकी बुलन्द पर अशअश करता था। कुछ अरसा के बाद जम के मरतबा वाला राजा मुल्कों की तसख़ीर से फारिग़ होकर अपने वतन की तरफ लौटा। आयान और आरकान दौलत ने मसलहत वक्त की बिना पर रानी के इस्तक़बाल की सबब हुक्मरानी और नागहानी मौत ज़ाहिर किया। लेकिन मशहूर किस्सा छिपा नहीं रहता।' पृ० ९०)।

पीरहसन के अनुसार राजा एक दिन घोर अंधकार में घूमता एक सुनार के यहाँ रानी के सम्बन्ध में गाना सुना। सुनते ही प्रतिहिंसा की आग से जल उठा। दूसरे दिन गानेवालों को सुनार की दुकान से बुलाकर गाना सुना और ब्राह्मण पुत्र तथा ब्राह्मणी दोनों तथा राजप्रसाद में जो इस घटना को जानते थे और उसे बताये नहीं थे उन्हें भी मार डाला। इसी प्रकार उसने ज्योतिषियों वेदपाठियों आदि ब्राह्मणों का वध करा दिया। जनता को कष्ट देने लगा था। शास्त्रों एवं ग्रंथों को एकत्रित करके उन्हें मार्ग में डलवा दिया। उसे मिट्टी से पाटकर उस पर बान्ध बनवा दिया। उसे इस समम 'मोस्थो' कहते हैं। वह स्थान तूलमूल के मार्ग में पड़ता है। चार वर्षों तक उत्पाटन का क्रम जारी रहा। ब्राह्मणों की जागीर छीन ली। ब्राह्मण लोग भाग गये। इनमें से निन्नानबे आदमी चन्द्रभागा में डूब मरे, (पृष्ठ : ९–९१) यह सब कोरी कल्पना है। ब्राह्मणों पर अत्याचार, देश त्याग, उनका वध, शास्त्रों को नष्ट कर, उन पर पुल बनवाना यह सब सिकन्दर बुत शिकन ने जो अत्याचार किया था, उसी को जयापीड के साथ जोड़ दिया गया है।

दण्ड : द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा : ४ : ९८

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२२ में 'धिकारिभिः' का पाठभेद 'कारादिभिः' मिलता है।

काश्मीरिकाणामुत्पन्नं निजाज्ञाव्यवधायकम् ।
कायस्थवक्त्रप्रेक्षित्वं ततः प्रभृति भूभृताम् ॥६२३॥

६२३. उसी समय से काश्मीरी राजा निज आज्ञा व्यवधायक कायस्थों[1] के मुखापेक्षी हो गये।[1]

पादटिप्पणी :

६२२. (१) शिवदास = इसका उल्लेख पुनः नहीं मिलता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२३ में 'काश्मीरिका' का पाठ-भेद 'काश्मीरका' तथा 'भूभृताम्' का 'भूभृतात्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६२३ (१) कायस्थ : क्षेमेन्द्र जो कल्हण के लगभग एक शताब्दी पूर्व हुआ था और जिसका उल्लेख भी कल्हण ने किया है 'नर्ममाला, में व्यंगात्मक वर्णन करता है—'कायस्थ दैत्यों के वित्त मन्त्री के अवतार हैं। वे दिविर है। जबकि उनके स्वामी राक्षसों का भगवान् विष्णु ने संहार किया, तो कायस्थ आकाश में कारुणिक रुदन किये। उनके रुदन को देखकर कलि को दया आ गयी। और उन्हें राक्षसों की जीविका हीन होने पर एक कलम थमा दिया। एक तेज तलवार, देवता ब्राह्मण तथा पुण्यात्माओं को भयभीत करने के लिए दिया कि उन्हें दास बना लिया जाय। उसका जन्म इसी लिये हुआ है कि वह मन्दिरों में विप्लव उत्पन्न करें और नमक तथा गोचर का अनुदान कम कर दे ।

'कायस्थ के जीवन का उद्देश्य गृहकृत्याधिपति अथवा गृहकृत्यमहत्तम पद प्राप्त करना होता है। वह प्रशासकीय, सैनिक तथा धर्मार्थ विभागों पर नियन्त्रण करना चाहता है। उसके अन्दर ७ अधि-शासी तथा आठ अर्दली काम करते हैं।

क्षेमेन्द्र ने कायस्थों को पाखण्डी चित्रित किया है—'अपने कार्यालय में जाने के पूर्व वह अपने अनु-चरों के साथ शिव मन्दिर में जाता है। वह भक्ति विह्वल होकर स्तुतिगान करता है और उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो जाती है। वह इस प्रकार व्यवहार करता है, मानो वह देवता का महान् भक्त है। उसकी पिशाच प्रवृत्ति इस प्रवंचनापूर्ण भक्ति के प्रदर्शन समय भी वहीं छिपी रहती है। वह इस समय भी पूछता रहता है। उसके कारण कितने ब्राह्मण भूखे रह गये हैं। वह क्रूर कर्म करने का उस समय योजना बनाता रहता है। वह मेष की खाल ओढ़े भेड़िया रहता है। वह अपने अन्तर्गत सेवक मन मुताबिक रखता है।

'परिपालक सूबेदार होता है। कायस्थ अपने चक्रिकों अथवा पिशुनों से सुनकर एक सूबेदार को हटाकर दूसरा नियुक्त कराता है। पूर्वकाल में क्रूरकर्मी, घमंडी, झूठे, घोर घूसखोर जो होते थे वे ही इस पद के लिये उपयुक्त माने जाते थे ।

'कायस्थ जब परिपालक पद पर नियुक्त होता है, तो वह मन्दिरों तथा ग्रामों को लूटता है। ग्रामीणों तथा उनके बालकों को भयभीत करता है। ग्रामीणों की कुमारियों को कामुक वेश में छोड़ देता है। उसके गौरवपूर्ण कार्यों की तालिका में हत्या तथा वे सब जघन्य अपराध होते हैं, जैसे कुलीनों, ब्राह्मण एवं गो हत्या होती है। परिपालक होने के पूर्व फटा पुराना वस्त्र पहने रहता है और मुख्य क्लर्क या बाबू होने के पश्चात् वह आशातीत रूप से धनी हो जाता है।

'उसकी स्त्री भी पहले एक धोती मात्र से अपना शरीर ढकती थी। उसके कानों में मिट्टी की बालियाँ, तथा सर ढकने के लिये टोकरी होती थी। किन्तु कायस्थ की पत्नी होते ही बहुमूल्य वस्तु रानियों के समान, पहनती हैं।

'कायस्थ जब कार्य से कहीं कैम्प लगाता था, तो उसके साथ बर्छा, पीकदान, घण्टा, छाता, घडा,

ताम्रपात्र, ताम्रथाली, जूता, मशक, आफिस के लिए बस्ता, दो यज्ञ पात्र-श्रुक तथा श्रुवा, रुद्राक्ष की माला, कलम, कलमदान, दर्पण, स्नानपट्ट, बक्स, कुछ टोपियाँ, खड़ाऊ, पत्रा, शब्दकोश, तलवार, लाल कम्बल, यज्ञोपवीत, सूत और सूई, कलम बनाने का चाकू, लाख में रखा कवच, बाल बनाने का छूरा, योगपट्ट, पूजा के लिये स्तुति ग्रंथ, गंगाजी की मिट्टी, विल्वपत्र, पहना हुआ वस्त्र, जिसे उधार पर लिया गया है, होता है। उसे ग्रामीण 'बुड्ढा मछुआ' कहते हैं, जो गावों में ग्राम्य मत्स्य का शिकार खेलने आता था। वह गाँव वालों को गाली देकर अपमान करता है। जरा चोट लगने पर गायों को बाँध देता है, जब तक कि वे मर नहीं जातीं। वह जायदादों के जब्त करने, जेल में रखने, बेंत मारने तथा मकानों को नष्ट करने तथा उत्पीड़क कार्यों को अपना खेल मानता है।

'जब वह दौरे पर रहता है, तो अपने घर बेगारों से प्राप्त घी, शहद, नगद रुपया, काली मिर्च, आदी, नमक, दाल, कम्बल, मोरका जूता, शिकार में मारी गयी चिड़ियाँ, कमल का गुच्छा, अंगूर, शराब का बर्तन, अखरोट, खाट, लकड़ी की चौकी, पीतल, ताम्र, लौह बर्तन तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ घर भेजता रहता है।

'जब उच्च अधिकारी से किसी अपराधी का अपराध तथा सजा माफ़ करने का आदेश पत्र आता है, यदि उसके सीमा क्षेत्र का होता, तो अपनी श्रेष्ठता तथा शक्ति प्रदर्शन करने के लिए निम्न अधिकारियों तथा ग्रामीणों के सम्मुख उपेक्षा पूर्वक आदेश पत्र फाड़कर फेंक देता है। कोई उच्च अधिकारी उसके गाँव या दौरा पर आता था तो वह अपनी गरीबी एवं दीनता दिखाने के लिये विना नमक का भोजन तथा केवल दो पल दाल खाता था यद्यपि अन्य समय वह राजाओं के समान भोजन कर अपनी पेटपूजा करता था।'

क्षेमेन्द्र कायस्थों के व्यक्तिगत जीवन का भी सजीव चित्रण करता है। वह लिखता है 'कायस्थ की पत्नी जो अपने पति के राजसेवा प्राप्त करने के पूर्व घोर कष्ट पूर्ण जीवन व्यतीत करती थी, वह अब बड़ी गर्वीली हो गयी है। उपेक्षणीय दृष्टि से अपने पड़ोसियों को देखती है। रानियों की तरह जम्हाई लेती है। बहुमूल्य आभूषण, उसके कोमल शरीर पर भार मालूम पड़ते हैं। वह सर्वदा दर्पण लिये रहती है। वह स्वर्ण तथा रजत पात्रों में पीती और खाती है। उसके बच्चों को पढ़ाने के लिये शिक्षक मासिक वेतन पर नियुक्त किया जाता है। शिक्षक विना रुचि के पढ़ाता है। जब बच्चे उससे सन्देहात्मक स्थलों के विषय में कुछ पूछते हैं, तो शिक्षक क्रोधित हो जाता है। वह अपने सीने पिरोने, दवा आदि बनाने में इसे हस्तक्षेप समझता है। वह तख्तों पर सबक लिख कर उन्हें उलझा देता है, ताकि उसके काम में दखल न दें।

'कायस्थ स्त्री की आचरणहीनता ज्यों-ज्यों उसके पास धन बढ़ता जाता है, बढ़ती जाती है। विदेशी मठ का दीक्षिक की निगाह उस पर पड़ती है। कोई श्रमणिका उनके मध्य कुट्टनी का काम करती है। कोई दुराचारी उसे फुसलाता है। पति का साथ उसके लिये लकड़ी में घुन की तरह लगता है। वह प्रात: काल उठते ही प्रार्थना करती है। उसका पति सर्वदा दौरा पर चला जाया करे। जब पति घर पर रह जाता है, तो वह किसी बीमारी का बहाना बना कर पड़ जाती है। उसके पति की नींद हराम हो जाती है। वह अपना परिश्रम, आराम तथा धन उसकी बीमारी में लगा देता है। वह एक ज्योतिषी तथा वैद्य के पास पहुँच जाता है।

क्षेमेन्द्र कायस्थों की अन्तिम अवस्था का करुणापूर्ण वर्णन करता है—'नियोगी उसकी शिकायत परिपालक से करता है कि गृहकृत्याधिकारी कायस्थ राज्य की सम्पत्ति लेकर भाग गया है। परिपालक उसे पकड़ कर, जेल में बन्द कर देने का आदेश देता

मन्त्रस्तस्य महीभर्तुर्योऽभूत्तत्तन्नृपग्रहे ।
वास्तव्यबन्धचिन्तायां स एव स्थैर्यमाययौ ॥६२४॥

६२४. उस राजा की जो मन्त्रणा तत् तत् नृपों के निग्रह में होती थी, वही मन्त्रणा नागरिकों की बन्धन चिन्ता में स्थायी हो गयी ।

यत्सतां प्रशमाधायि पापस्योपदिदेश तत् ।
जयापीडस्य पाण्डित्यं प्रजापीडनशौण्डताम् ॥६२५॥

६२५. जयापीडका जो पाण्डित्य सज्जनों के लिये शान्तिप्रद था, उस पापी को उस पाण्डित्य ने प्रजापीडन की पटुता प्रदान की ।

स सौदास इवानेकलोकप्राणापहारकृत् ।
अस्तुत्यकृत्यसौहित्यं स्वप्नेऽपि न समाययौ ॥६२६॥

६२६. उसने सौदास[1] (कल्माषपाद) सदृश अनेक लोगों का प्राण हरण किया और उसे निन्दित कृत्योंसे स्वप्न में भी तृप्ति नहीं हुई ।

है । वह अविलम्ब जान बचाने के लिये छिप जाता है । किन्तु सैनिक उसके निवासस्थान पर पहुँचकर, उसे बेड़ी पहना देते हैं । वह राजा के सम्मुख उपस्थित किया जाता है । राजा उसे सख्त कैद की सजा देता है । उसकी सब सम्पत्ति जप्त कर ली जाती है । वह यद्यपि अपनी बहन वेश्या की चालाकी से छूट जाता है, परन्तु उसका कष्ट दिन पर दिन इतना बढ़ता जाता है कि उसकी मृत्यु हो जाती है ।' (नर्ममाला तथा भूमिका मधुसूदन शास्त्री कौरला पृष्ठ ११-१७)

कायस्थ उस समय कोई जाति नहीं थी, जैसे आजकल हो गयी है । कायस्थ का सरल अर्थ नौकरशाही का प्रत्येक व्यक्ति था । कायस्थों में गृहकृत्याधिपति, परिपालक, नियोगी, मार्गेश, गजाधिप, नगराधिप, शौल्लिक, अधिकरण लेखक, अश्वघास कायस्थ, ग्राम कायस्थ, नगर ग्राम एवं गंज दिविर तथा वे सभी राजकर्मचारी ऊँचे से नीचे पद तक के आ जाते थे, जो नौकरी करते थे । वे प्रशासन के अतिरिक्त वित्तीय अर्थात् माल का भी काम करते थे । किसी एक जाति का व्यक्ति आज कल के समान कायस्थ नहीं होता था । उसमें ब्राह्मण क्षत्री आदि सब वर्ग के लोग थे । वह जातिवाचक न होकर कर्मवाचक था । माली तक कायस्थ हो सकता था । निम्नपद पर काम करता अपनी तरक्की कर ऊँचे पद पर जा सकता था । कायस्थ अपना वेतन राजकीय कोश से पाता था ।

राजतरंगिणी के प्रथम तीन तरंगों में कायस्थों का उल्लेख नहीं है । चतुर्थ तरंग में विशेष वर्ग रूप में कल्हण द्वारा वे चित्रित किये गये हैं । कल्हण तथा क्षेमेन्द्र के वर्णनों से पता चलता है कि क्रमशः कायस्थों का वर्ग बढ़ता गया और प्रशासन और जन जीवन में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करने लगा था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२५ में 'शमाधायि' का पाठभेद 'शमादायि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६२६ (१) सौदास : श्री ट्रोयर ने सौदास की उपमा यम से दी है । सुदास के पुत्रों का सामूहिक नाम सौदास है ।

सुदास का पुत्र सौदास कल्माषपाद था । वैदिक साहित्य में सौदास का उल्लेख मिलता है । बहुवचन

में यह शब्द सुदास के वंशजों का बोध कराता है। इन्होंने वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को अग्नि में डाल दिया का (जै० ब्रा० २:३९०) वसिष्ठ ने अपने पुत्र की हत्या का प्रतिशोध लेने का प्रयास किया। इसमें वह सफल हुए थे (तै०स० ७ : ४ : १, कौ०ब्रा० ४ : ८; पं० वि० ब्रा० ४ : ७ : ३)

रामायण में उल्लेख मिलता है। रघु के पुत्र कल्माषपाद थे। उन्हींका अपर नाम सौदास था। शाप के कारण कुछ वर्षों के लिये नरमांसभक्षी राक्षस हो गये थे। (अयो० ११० : २६) कल्माषपाद को कोशलाधिपति मित्रसह एवं सौदास नामांतर प्राप्त थे। (आ० १६८; वायु० ८८ : १७६; लिंग० १:६६, ब्रह्म० : ८; ह० वं० : १ : १५) मत्स्य एवं अग्नि पुराण में इनको ऋतुपर्ण का पुत्र कहा गया है। (मत्स्य० : १२ अग्नि० २७३)

कल्माषपाद नाम प्राप्त होने की कथा पुराण तथा रामायण में मिलती है। एक समय यह मृगया हेतु अरण्य में गया। दो सिंह देखा। वे परस्पर मित्र थे। भाई थे। (रा. उ० : ६५ ; भा० ९.९) रेवा तथा नर्मदा तट पर मृगया करते समय इसने एक सिंह का मैथुनासक्त जोड़ा देखा। उसमें मादा को इसने हत कर दिया। सिंहनी मरते मरते महाकाय हो गयी। (नारद० : १ : ९) सिंह ने राक्षस रूप धारण कर प्रतिशोध लेने की घोषणा की। तत्पश्चात् लुप्त हो गया।

कल्माषपाद ने एक समय अश्वमेध यज्ञ आरम्भ किया। वसिष्ठ ऋषि यज्ञ काल में कल्माषपाद के साथ थे। यज्ञ समाप्ति के दिन वसिष्ठ स्नान संध्या के लिये ले गये। उक्त राक्षस ने संध्या का सुअवसर देखकर वसिष्ठ का रूप धारण कर लिया। राजा से कहा—'यज्ञ समाप्त हो गया है। मुझे मांस युक्त भोजन दो।' राजा ने आचारियों को आज्ञा दी। मांस पकवान बनवाया जाय। राजाज्ञा सुनकर आचारी स्तब्ध हो गयी। मांस बनाने का साहस नहीं हुआ। राक्षस ने आचारी का रूप धारण कर लिया राजा को मानव मांस बनाकर दिया। वसिष्ठ के आने पर राजा ने मांस पकवानों के साथ परोसा। नर मांस है। वसिष्ठ जान गये क्रुद्ध हुए। राजा ने व्याकुल होकर कहा—'आपने ही मुझे यह आज्ञा दी थी।' वसिष्ठ ने अन्तर्दृष्टि से बात जान ली। पुनः बोले—'शाप वृथा नहीं होगा। तुम बारह वर्षों तक नरमांस भक्षक रहोगे।' क्रुद्ध होकर राजा ने वसिष्ठ को शाप देने के लिये जल लिया। राजा की स्त्री ने गुरु को शाप देने से रोका। वह जल कहीं पड़ने पर नाश का कारण होता, अतएव राजा ने जल अपने पैर पर डाल दिया। क्रोधानल से जल इतना तप्त था कि पाद पर पड़ते ही वे काले हो गये। उस समय से वह कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ। (रा०उ० ६५; भा० ९, १८-३५ नारद०: १:८-९; पद्म०: उ०: १३२) एक दूसरी कथा और मिलती है। वसिष्ठ पुत्र शक्ति से इसकी मुलाकात उस समय हुई, जब वह मृगया से लौट रहा था। मार्ग संकीर्ण था। राजा ने मार्ग देने के लिये शक्ति से कहा। शक्ति ने कहा मार्ग ब्राह्मणों का है। उन्हें गमन को प्राथमिकता होती है। राजा क्रुद्ध हो गया। उसे चाबुक से पीटा। शक्ति ने उसे शाप दिया—'तुम नर मांस भक्षक होगे।' (आ० १७५ : २-२१) राजा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया। विश्वामित्र एवं वसिष्ठ में मनोमालिन्य बढ़ गया। विश्वामित्र ने राजा से कहा—'तुमने जिसे पीटा था, वह वसिष्ठ पुत्र शक्ति था।' राजा चिन्तित हुआ। शक्ति के समीप उश्शाप के लिये गया। विश्वामित्र ने राजा के शरीर में रुधिर नामक राक्षस को प्रवेश करने की आज्ञा दी (लिंग० १ : ६४)

राजा एक दिन वन में भ्रमण कर रहा था। एक क्षुधाक्रान्त ब्राह्मण भी वहाँ भ्रमण कर रहा था। राजा से उसने मांस भोजन की याचना की। भोजन देने का आश्वासन देकर राजा उसे राजभवन ले आया। वह भोजन भूल गया। सो गया। मध्य रात्रि हुई। अकस्मात् उसे ब्राह्मण की याचना स्मरण हुई। आचारी

को मांस युक्त भोजन बनाने की आज्ञा दी। मांस नहीं था। सुनकर राजा ने मानव मांस बनाकर ब्राह्मण को देने की आज्ञा दी। तपस्वी ब्राह्मण ने मांस अभोज्य देखा। उसने शाप दिया—'तुम नर मांस भक्षक होगे।' उक्त घटनायें नैमिषारण्य में घटी थीं। (वायु० १ : २ ; आ० १, ५ : ३१)

अनन्तर शक्ति से कल्माषपाद की भेंट हुई। उसने कहा—'तुमने मुझे अयोग्य शाप दिया है। अतः मैं तुम्हीं से नर मांस भक्षण आरम्भ करता हूँ, शक्ति को वह खा गया।

साथ ही विश्वामित्र द्वारा अपने शरीर में स्थित राक्षस के कारण, वसिष्ठ के एक शत पुत्रों को भी भक्षण कर गया। (आ० १६६-१६; : १७५ : ४०-४२ अनु० : ३; ब्रह्माण्ड० १ : १२) एक समय वह नर्मदा तटपर वनमें भ्रमण कर रहा था। वहाँ उसने एक ब्राह्मण दम्पति को क्रीडारत देखा। कल्माषपाद उनमें से ब्राह्मण को खा गया। ब्राह्मणी ने उसे शाप दिया—'स्त्री समागम करते ही तुम मृत हो जाओगे।' अनन्तर ब्राह्मणी सती हो गयी। (नारद०: १ : ९; आ०, १८१ : १६-२१ भा० ९.९., १८-३५; स्कन्द० ३ : ३ : २) उसने ब्राह्मणी को उलटा शाप दिया 'तुम पुत्र सहित पिशाची बनोगी।' वसिष्ठ ने इसे उश्शाप दिया था—'शरीर पर गंगा जल पड़ने पर तुम राक्षस योनि से मुक्त होगे?' कालान्तर में पिशाची तथा राक्षस कल्माषपाद एक अश्वत्थ वृक्ष के नीचे मिले। वहाँ कल्माषपाद तथा सोमदत्त ब्रह्मराक्षस से गुरु विषयक संवाद हुआ। तत्पश्चात् दोनों के पाप क्षय हो गये। उसी समय एक कलिंग देशीय मुनि गंगा जल लेकर उनके पास से निकला था। इनकी प्रार्थना पर मुनि ने पिशाची एवं ब्रह्मराक्षस दोनों पर गङ्गा जल छिड़का। दोनों मुक्त हो गये। कल्माषपाद अपनी दशापर शोक करने लगा। आकाशवाणी हुई—'शोक वृथा है। तुम्हारी भी मुक्ति होगी।' कल्माषपाद काशी आया। वहाँ छः मास तक गङ्गा स्नान करता रहा। वह पाप मुक्त हो गया। वसिष्ठ ने ससम्मान इसका राज्याभिषेक किया। अनन्तर गौतम ऋषि की अनुज्ञा से गोकर्ण क्षेत्र में पहुँच कर, मुक्त होकर, शिव लोक गया। (स्कन्द० : ३ : ३ : २) नारद० १ : ८-९) पद्म में उल्लेख मिलता है कि साभ्रमती में स्नान करने के कारण इसे मुक्ति मिली थी। (पद्म० : उ० : ६ : १३२)।

कल्माषपाद की स्त्री का नाम मदयंती था। वह अरण्य में इसके साथ रहती थी। (आ० : १७३ : ५-६ ; शा० २३४ : २० अनु०: १३७-३८) यह दिन के छठवें प्रहर में आहार करता था। उस समय मदयंती उसके सम्मुख नहीं आती थी। अहिल्या के आदेश पर गौतम शिष्य उत्तंक मदयंती से कुण्डल माँगने आया। कल्माषपाद उसे खाने दौड़ा। उत्तंक ने कहा—'मैं अपना काम समाप्त कर पुनः तुम्हारे भोजन हेतु लौट आऊँगा।' कल्माषपाद ने पूछा—'तुम्हारा क्या प्रयोजन है?' उत्तंक ने अपना प्रयोजन बताया। कल्माषपाद उसे मदयंती के पास जाने दिया। मदयंती ने विश्वास के लिए उत्तंक से पति का कोई चिन्ह मांगा। उत्तंक कल्माषपाद से चिन्ह लेकर आया। चिन्ह प्राप्त होते ही मदयंती ने कुण्डल उतार कर दे दिया। कल्माषपाद ने उत्तंक को प्रतिज्ञा से मुक्त कर दिया। (आश्व०: ५७ : १-१८; ५८ : ४-१६) सती ब्राह्मणी के शाप के कारण कल्माषपाद प्रजोत्पादन नहीं कर सकता था। वसिष्ठ द्वारा अपनी पत्नी में गर्भधारण कराया। उससे पुत्र अश्मक ने जन्म लिया। (आ० १ ११३:२१-२२, १६८ : २१-२५ ; १७६ : २३, ४ ; शा० २२६ : ३०; अनु०: १३७ : १८ वा०: सु० २४; वायु० ८८। १७७) इस का सर्वकर्मा नामक पुत्र था (मत्स्य०: १२ ;) शा. १४९ : ७६-७३) वसिष्ठ के साथ गौ माहात्म्य के सम्बन्ध में इसका संवाद हुआ था। गौ दान किया था। उससे सद्गति मिली थी। (अनु० : ७८ : ८०)

[1]कुर्मः किल्बिषमेतदेव हृदये कृत्वेति कौतूहलात्
स्वैरिण्यः क्षितिपाश्च धिक्चपलतां क्रौर्यं च कुर्युः सकृत् ।
पापाक्रान्तधियो भवन्त्यथ तथा नान्त्यान्स्पृशन्त्योऽपि ता
दूयन्ते न च ते यथा स्वपितरौ घ्नन्तोऽपि शान्तत्रपाः ॥६२७॥

६२७. 'यही पाप[2] करूँगा' यह हृदय में रखकर, कौतूहल वश स्वैरिणी[3] स्त्रियां एक बार चपलता और नृपति गण एक बार क्रूरता करते हैं, पश्चात् पापाक्रान्त बुद्धि वाले होकर, स्वैरिणी स्त्रियां अन्तिम वर्ग चाण्डाल स्पर्श करने में, निर्लज्ज नृपति अपने माता-पिता का भी वध करने में, कष्ट नहीं पाते ।

लोभाभ्यासात्तथा क्रौर्यं स ययौ वत्सरत्रयम् ।
सह कार्षकभागेन यथाऽहार्षीच्छरत्फलम् ॥६२८॥

६२८. लोभ के अभ्यास वश वह इतना क्रूर हो गया कि तीन वर्ष तक कृषकों के भाग[1] सहित शारदीय फल (शालि) अपहृत कर लिया ।

पाठ भेद :

श्लोक संख्या ६२७ में 'तथा' का पाठ भेद 'यथा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६२७ (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १४५वां श्लोक है ।

(२) पाप : पाप के आकर्षण से एक बार पाप करने पर पाप न करने का संकोच, लज्जा, बन्धन किंवा प्रतिज्ञा टूट जाती है । मनुष्य हर बार वही निश्चय करता है कि एक बार और कर लूँ फिर नहीं करूँगा । इसी प्रकार विचार करता वह पहले करना आरम्भ करता है और उसका अभ्यस्त हो जाता है । पहली बार हत्या, अपराध, पाप या क्रूरता करने में संकोच होगा । ग्लानि होती है, लज्जा का अनुभव होता है । किन्तु एक बार कर लेने पर मर्यादा टूट जाती है । व्यसन का रूप ले लेता है । दैनिक कर्मों में जैसा कर्म बन जाता है । उन्हें करने का मानव अभ्यस्त हो जाता है । आत्म ध्वनि, जो अनुचित कार्य करने से मनुष्य को रोकती है, उसकी भी आवाज बन्द हो जाती है । कल्हण ने यहाँ बड़ी अच्छी उपमा स्वैरिणी स्त्रियों से दी है । वह मोह, प्रेम, किंवा आकर्षण, काम वे किंवा परिस्थितियों के कारण एक बार परपुरुष का साथ करती है । वह पुरुष प्रायः प्रेमी अथवा कामासक्त होता है । उस साथ ये स्वैरिणी को रस मिलता है । वह इस प्राप्ति के लिये बार-बार उत्सुक होती है । उसके समागम की सीमा एक पुरुष की सीमा तोड़कर अनेक पुरुष से होने लगती है । समान वय, समान रूप समान सामाजिक स्तर वाले पुरुषों के साथ प्रारम्भ में सम्पर्क स्थापित होता है । काम पिपासा के साथ सम्पर्क बढ़ता जाता है । सीमा बढ़ती जाती है । फिर कोई बन्धन नहीं रहता । वह प्रेम, स्नेह, शरीर का आकर्षण न रह कर केवल काम पिपासा रह जाती है । व्यसन हो जाता है । उस व्यसन की पूर्ति ब्राह्मण या चाण्डाल कोई भी कर सकता है, जहाँ से उसे तृप्ति मिलती है, वहीं स्वैरिणी का स्थान हो जाता है । लोक-लाज, सामाजिक बन्धन, ऊँच, नीच सब उदात्त भावनाओं कर अवसान हो जाता है । यही बात कामी पुरुषों के लिये भी लागू होती है । द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० ४ : १०४ ।

(३) वैरिणी = स्वेच्छाचारी निरंकुश = अनियन्त्रित स्त्रियाँ ।

लुब्धत्वध्वस्तधीर्भूभृत् स्वल्पवित्तलवप्रदान् ।
सर्वस्वहारिणो मेने कायस्थान् हितकारिणः ॥६२९॥

६२९. लोभ से ध्वस्तधी भूभृत् (अपहृत) वित्त का लव मात्र प्रदान करने वाले सर्वस्व-हारी कायस्थों को हितकारी मानता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६२८ में 'कार्षक' का पाठभेद 'कर्षिक' मिलता है।

पादटिप्पणी

६२८ (१) भाग : भाग तथा बलि एवं कर में अन्तर है। राजा का उत्पत्ति का जो भाग अथवा हिस्सा होता था उसे भाग कहा जाता था। अर्थशास्त्र में लवण भाग, उदक भाग का उल्लेख किया गया है।

कश्मीर में कृषि उत्पादन का निश्चित भाग राजकरके रूप में लिया जाता था। हिन्दू शासन पद्धति स्मृतियों तथा चाणक्य के अर्थशास्त्र पर यह करव्यवस्था आधारित थी। कल्हण वर्णन करता है—राजा अपने राजकीय भाग के साथ ही साथ कृषकों के भाग जो शारदीय शालि अर्थात् धान की उपज के होता था, उसे भी ले लिया। कृषकों के प्रति क्रूरता की यह चरम सीमा थी। कश्मीर में शाली की उपज पर ही जनता का जीवन निर्भर था। शाली बेचकर ही कृषक जीवनोपयोगी वस्तु खरीदते थे। वही उनके आयका एक मात्र साधन था। राजा ने उस साधन से भी उन्हें वंचित कर दिया था। वे भूखों, निर्धन होने के लिये बाध्य हो गये थे।

भाग शब्द महत्त्व रखता है। भूमिकर हिन्दूराज में अन्न के रूप में लिया जाता था। उसे 'भाग' या 'कर' कहते थे। इसका 'उद्रंग' नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में दिया गया है। यह खेती की उपज का एक भाग था। उपज के अनुपातानुसार निश्चित प्रतिशत भाग भूमि-कर रूप में लिया जाता था। इसके अनुपात के लिये स्मृतियों में कोई एक निश्चित नियम नहीं निर्धारित किया गया था। उल्लेख मिलता है छ से ३३ प्रति-शत उपज का भाग कर में लिया जाता था। मनु ने छ, आठ, बारह, एवं सोलह तक भाग कर लेने का आदेश दिया है। भाग के अनुपात का यह अन्तर भूमि की उपज के ऊपर निर्भर होता था। साधारणतया भारत में ६ प्रतिशत भाग कर लिया जाता था। उनके वसूल करनेवालों का नाम ही 'षष्ठाधिकृत' पड़ गया था। (मनु०: ८ : १३०; गौतम०: १०, २४, २७; शुक्र०: ४ : २ : ११५; ४ : २ : १६-१९) अर्थशास्त्र एवं यूनानी लेखकों के उद्धरण से पता चलता है कि मौर्य शासन-काल में १५ प्रतिशत भाग कर लिया जाता था। भगवान् बुद्ध के जन्म स्थान लुम्बिनी में विशेष रियाअत कर आठ प्रतिशत कर दिया गया था (लुम्बिनी शिलालेख) भूमिकर किंवा भागकर का प्रमाण समय समय पर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहा है।

भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र वह प्रथा प्रचलित थी कि राजा कृषकों से अपना भाग वस्तु रूप में प्राप्त करता था। रुमिनदेई (लुम्बिनी) तथा जूनागढ़ के रुद्रदमन के अभिलेख के 'बलि' तथा 'भाग' में अन्तर है। अनेक प्राचीन लेखों में कर का उल्लेख मिलता है। 'भाग' और 'कर' एक नहीं है। अर्थशास्त्र में राजा के भाग को 'लवण्य भाग' 'उदक भाग' 'खनिज भाग' कहते थे। इसी प्रकार 'कृषक भाग' है।

पादटिप्पणी :

६२९ (१) लव–टुकड़ा–ग्राम–कण–थोड़ा–यहाँ पर ग्रास किंवा स्वल्प के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इस अर्थ में प्रायः समास के अन्त में इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। कालिदास ने भी मेघदूत तथा रघुवंश में इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है।

[1]सामुद्रास्तिमयो नृपाश्च सदृशा एके हृतादम्भसः
स्वस्मादेव कणान् घनस्य जहतो जानन्ति ये दातृताम् ।
सर्वस्मात्स्फुटलुण्ठिताद्वितरतो लेशान्किलान्येऽपि ये
दुष्कायस्थकुलस्य हन्त कलयन्त्यन्तर्हिताधायिताम् ॥६३०॥

६३०. समुद्र स्थित तिमि[1] मत्स्य तथा नृपों का स्वभाव एक जैसा होता है; समुद्र से अपरिमित जल राशि सोखकर, वर्षा में कुछ ज्ल बिन्दु समुद्र में निपतित कर्ता मेघ को, तिमि मत्स्य उपकारी मानता है; ठीक इसी प्रकार प्रजा को लूटकर कुछ धन राजकोष में जमा करने के पश्चात् शेष धन पचा जाने वाले राज्य कर्मचारी कायस्थ राजा को प्रिय लगते हैं ।

सर्वकालं ब्राह्मणानामहो धैर्यमकुण्ठितम् ।
निस्त्रिंशस्य बभूवुर्ये तस्यापि परिपन्थिनः ॥६३१॥

६३१. 'ब्राह्मणों का सर्व कालिक अकुंठित धैर्य्य धन्य है, जो उस क्रूर के परिपन्थी[1] हुए ।

देशान्तरं प्रयातेभ्यो ये शेषास्ते व्यरंसिषुः ।
विक्रोशन्तो न मरणाद्धरणान्नापि पार्थिवः ॥६३२॥

६३२. देशान्तर जाने से अवशिष्ट (ब्राह्मण) हा-हाकार करते हुए मरने लगे और पार्थिव उसी प्रकार हरण करता रहा ।[1]

पाठभेदः

श्लोक संख्या ६३० में 'सदृशा एके' का पाठ भेद 'सदृशादेके' 'हृताद' का 'हृतान' तथा 'ताद्वि' का तान्वि' मिलता है ।

पादटिप्पणी

६३० (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का वह १४६ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी

(२) तिमि-नृप—कल्हण ने तिमि मत्स्य एवं नृपों के स्वभाव की तुलना की है । मछली ओर छोर हीन महासमुद्र में विहार करता है । परन्तु वह समुद्र के उपकार का ध्यान न कर उस मेघ को उपकारी मानता है जो कुछ बूँद जल आकाश से गिराता है । मत्स्य उस जल को प्राप्त कर मेघ को अपना उपकारी मानता है । राजा समस्त देश की सम्पत्ति एवं राज्य का स्वामी होता है । वह राष्ट्र किंवा राज्य का उपकार न मानकर उन कायस्थों को मानता है जो स्वयं सम्पत्ति संचय कर कुछ राजकोश में जमा कर देते हैं ।

कल्हण ने तिमि मत्स्य का उल्लेख (रा० : ४ : ५०४) में किया है ।

पादटिप्पणी :

६३१ (१) परिपन्थी—विरोधी=शत्रु । इस अर्थ में संस्कृत कवियों ने इस शब्द का प्रयोग किया है—अर्थ परिपंथी महान् रातिः (मुद्रा० : ५) नाभ विष्यमहं तत्र यदि तत्परिपन्थिनी-मातंगलीला : ९ : ५० ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६३२ में 'शन्तो न मर' का पाठ भेद 'शन्तोऽनुमर' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६३२ (१) उक्त श्लोक में स्वतः आत्महत्या

विप्राणां शतमेकोनमेकाहेन विपद्यते ।
निवेद्यमेतदित्यूचे क्रौर्याक्रान्तोऽथ पार्थिवः ॥६३३॥

६३३. 'एक दिन में निन्नानवें विप्र मारे जाय तो सूचित करना चाहिए'—इस प्रकार क्रौर्य ग्रस्त उस पार्थिव ने कहा ।

विपर्यस्तचरित्रस्य तस्य क्रूरस्य भूपतेः ।
एवं स्तुतिविपर्यासः काव्येष्वपि बुधैः कृतः ॥६३४॥

६३४. उस कूर नृप के इस प्रकार विपर्यस्त चरित्र होने पर, कवियों ने काव्यों में भी उसकी स्तुति में विपर्यास कर दिया ।

नितान्तं कृतकृत्यस्य गुणवृद्धिविधायिनः ।
श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥६३५॥

६३५. 'नितान्त कृत[2] कृत्य कर्ता एवं गुणा वृद्धि का विधान करनेवाले देव जयापीड एवं पाणिनि में क्या अन्तर है[1] ।

किंवा प्रायोपवेशन करने की ओर कल्हण ने संकेत किया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६३३ में 'काहेन वि' का पाठभेद 'काहे चेद्वि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६३५ (१) कृत = वृद्धि : कृत मूल शब्द कृ (हिंसायाम्) तथा वृद्धि वर्ध (छेदने) से निकलता है । राजा के प्रतिकूल भाव प्रकट करने के लिए कल्हण ने इसका प्रयोग किया है । श्लोक ६३५–६३६, प्रत्येक में तीन अर्थ हैं । ६३५ पाणिनि, ६३६ जयापीड की प्रशंसा तथा ६३७ में जयापीड के लिए धिक्कार है ।

(२) पाणिनि = माता का दाक्षी तथा गुरु का नाम उपवर्ष था । उनका जन्म काबुल-सिन्धु संगम के समीप शलातुर ग्राम में हुआ था । आज कल उसे लदुर कहा जाता है । पाणिनि के पूर्व शब्द-विद्या के अनेक आचार्य हो चुके थे । पाणिनि ने उनका गम्भीर अध्ययन किया था । संस्कृत भाषा का गौरव तथा जगत् के व्याकरणों का शिरमौर पाणिनि का शब्दशास्त्र 'अष्टाध्यायी' है । ग्रन्थ में आठ अध्याय तथा लगभग चार सहस्र सूत्र हैं । तत्कालीन तक्षशिला, पुष्कलावती, उत्तर दरद तथा दक्षिण सिन्ध (सौवीर)—इस क्षेत्र के निवासियों के संविधान तथा उनकी जातियों की सूची पाणिनि ने बनायी थी । जिसका आज कल बड़ा ऐतिहासिक महत्त्व है । यह प्रदेश ग्रामणीय क्षेत्र कहा जाता था । पाणिनि ने जनपदों की भी तालिका दी है । वक्षु नदी के ऊपरी भाग में स्थित कम्बोज जनपद, पश्चिम सौराष्ट्र, पूर्व आसाम प्रदेश की सूरमा घाटी, तथा दक्षिण में गोदावरी तटीय अश्मक अर्थात् पैठण जनपद था । अष्टाध्यायी में जातियों का वर्णन मिलता है, उसमें तत्कालीन प्रचलित मुद्राओं का भी उल्लेख है । पाणिनि बुद्ध के मज्झिम पटिपदा किंवा मध्यमार्ग के अनुयायी थे । पाणिनि मांगलिक आचार्य हैं । पाणिनि की सूत्रों की शैली अत्यन्त संक्षिप्त है । उनका जन्म सूत्र युग में हुआ था । एक मत यह है कि वे ईसा से सातवीं अथवा पाँचवीं या चौथी शती पूर्व हुए थे । उनके काल के समय का निश्चित मत अभी स्थिर नहीं हुआ है । इतना निर्विवाद है कि वे चौथी सदी ईसा से पूर्व हुए थे ।

भाष्यव्याख्याक्षणे श्लोकैर्वैचक्षण्यहृतैः कृतः ।
सोऽयं तस्य विपर्यासो बुधैरेवं प्रवर्तितः ॥६३६॥

६३६. उसकी विचक्षणता से मुग्ध विद्वानों द्वारा भाष्य[1] व्याख्या के अवसर पर निर्मित श्लोक जिसका विपर्यास इस प्रकार है, प्रवर्तित किया—[1]

कृतविप्रोपसर्गस्य भूतनिष्ठाविधायिनः ।
श्रीजयापीडदेवस्य पाणिनेश्च किमन्तरम् ॥६३७॥

६३७. 'विप्रों का नाश एवं प्राणियों की हत्या करने वाले जयापीड देव तथा वि, प्र[1] आदि उपसर्ग तथा भूत काल में निष्ठा[2] प्रत्यय का विधान करने वाले पाणिनि में क्या अन्तर है ।

तूलमूल्यापहर्ता च चन्द्रभागातटे स्थितः ।
विप्राणां शतमेकोनमश्रृणोत्तज्जले मृतम् ॥६३८॥

६३८. तूलमूल[1] का अपहरण करने वाले चन्द्रभागा[2] पुलिन स्थित नृपति ने सुना—'एक न्यून शत विप्र उस नदी जल में मर गये ।'

पाठभेदः

श्लोक संख्या ६३६ में 'श्लोकैर्वै' का पाठ भेद 'श्लोको वै'' 'वैचक्षण्यहृतैः' का 'वैलक्षण्यहतैः' 'विपर्यासो' का 'विपर्यास' 'रेव' का 'रेवं' तथा 'प्रवर्तितः' 'विवर्तितः' मिलता है ।

पादटिप्पणीः

६३६ (१) भाष्य : स्तीन का मत है। द्वितीय उद्धरण किसी महाभाष्य की वृत्ति से लिया गया है । और यह उसका संयोजन है । जिसका काव्य से पहले उद्धरण दिया गया है । श्री ट्रोयर का भी यही सुझाव है ।

पाठभेदः

'निष्ठा' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'निष्ठा शब्द इह नाशवाची' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणीः

६३७ (१) वि : प्र : श्लोक ६३७ में उपसर्ग शब्द पहले समानार्थक उपसर्जन भाव में लिया जाना चाहिये । उक्त श्लोक मंख कोश में उद्धृत किया गया है ।

श्लोक ६३५-६३७ में तीनों उपाधियों किंवा विशेषणों के तीन अर्थ निकलते हैं । पाणिनि के सम्बन्ध में उसके अष्टाध्यायी व्याकरण की चर्चा है । दूसरा तथा तीसरा जयापीड की स्तुति तथा उपहास भाव में प्रयोग किया गया है । अलंकार शास्त्र के अनुसार व्याजस्तुति है । (काव्य प्रकाश : ११ : ११२)

(२) निष्ठा = निष्ठा शब्द यहाँ नाशवाची है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६३८ में 'तूलमूल्या' का पाठभेद 'तूलमूला' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६३८ (१) तूलमूला—तूलमूल ग्राम में एक बड़ा जलस्रोत है । यह श्रीनगर से १४ मिल उत्तर पड़ता है । जल का रंग बदलता रहता है । उसे देवी का प्रादुर्भाव मानते हैं । श्रीनगर के समीप होने के कारण अधिक यहाँ की यात्रा होती है ।

अबूफजल ने तूलमूल तथा उसकी कछार भूमि की यात्रा की थी । तूलमूल से अढ़ाई मील पूर्व दूदर

ततोऽग्रहारहरणादेव प्रविरतोऽभवत् ।
वास्तव्यानां हृतां भूमिं न तु निश्शेषतो जहौ ॥६३९॥

६३९. उसी समय से अग्रहार ग्रहण करने से विरत होगया किन्तु वास्तव्यों[१] की अपहृत भूमि को पूर्ण रूपेण नहीं त्यागा ।

अथ विज्ञप्तिसमये तूलमूल्यौकसो द्विजाः ।
चुक्रुशुर्जातु सस्याग्रे प्रतीहारकराहताः ॥६४०॥

६४०. कदाचित् तूलमूल निवासी द्विज विज्ञप्तिकाल[१] में प्रतिहारियों के हाथ से आहत होकर उसके सम्मुख क्रन्दन किया ।

होम अर्थात् दुग्धाश्रय है । सिन्धु की मुख्य धारा पर स्थित है । यहाँ सिन्धु में नाव चल सकती है ।

तूलमूल क्षीरभवानी का स्थान है । कश्मीर में तीर्थ यात्रा के लिए अत्यन्त पवित्र स्थान माना जाता है । रुद्रमाला तन्त्र के कवच का यहां पाठ किया जाता है । राजा जयापीड ने इस स्थान पर चढ़ाए हुए अग्रहारों को ले लिया था ।

माहात्म्य की गाथा है कि देवी लंका पति रावण के यहां थी । वहां से हनुमान जी देवी को इस स्थान पर उठाकर लाए थे । रामायण में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता । कश्मीर में मुसलिम शासन होने के पश्चात् हिन्दुओं का यहां आना जाना बन्द हो गया था । लोग इस तीर्थ स्थान को भूल गये थे । लगभग ३५० वर्ष पूर्व कृष्ण पंडित तपिलू इसको पुनः प्रकाश में लाये हैं ।

देवी के पूजा निमित्त दूध, चावल, तथा चीनी जलस्रोत में डाला जाता है । एक बार सन् १८६७ में दिवान नरसिंह दयाल कुण्ड तथा जलस्रोत को साफ करवाया था । परन्तु उसी के पश्चात् हैजा फैला । लोगों में धारणा व्याप्त हो गयी । देवी क्रुद्ध हो गयी थी । कुण्ड के जल में जो भी वस्तुएँ छोड़ी जाती थीं वे जमती गयीं । फल स्वरूप जलस्रोत का जल आना क्षीण हो गया । श्री पं० विधलाल धर ने साहस कर जमे हुए कूड़ा करकट साफ कराया । सफाई में मन्दिर तथा अनेक प्रतिमाएँ मिली । श्वेत अलंकृत पत्थर लगभग ९ फिट लम्बे तथा ३ फीट चौड़े मिले ।

जल स्रोत के मध्य में स्वर्गीय राजा प्रताप सिंह ने एक छोटा मारबल का मन्दिर निर्माण कराया है ।

(२) चन्द्रभागा = चन्द्रभागा नाम की दो नदियों का वर्णन राजतरंगिणी में मिलता है । एक प्रसिद्ध चन्द्रभागा (चनाव) नदी है । वह कश्मीर के दक्षिण पूर्व में बहती है । यहाँ पर जिस चन्द्रभागा नदी का वर्णन किया है, वह प्रसिद्ध चनाव नदी नहीं है । यह सिन्ध नदी की एक शाखा है । तूलमूल के समीप बहती है (रा० ३ : ४६७; ८ : ५५४, ६२६)

नीलमत के श्लोकों में वर्णित चन्द्रभागा नदी यही है । चन्द्रभागा का वर्णन गंगा अर्थात् सिन्ध नदी के तुरन्त बाद ही किया गया है । सिन्ध नदी वितस्ता में मिलती है । उसकी सहायक नदी है ।

पादटिप्पणी

६३९ (१) वास्तव्य = निवासी = प्रजा: पुरेऽस्य वास्तव्यकुटुम्बिता ययुः (शि० : १ : ६६) नाना-दिगंतवास्तव्यो महाजनसमाजः (मातंगलीला : १)

पाठभेद

श्लोक संख्या ६४० में 'ल्यौकसो' का पाठभेद 'लौकसो' मिलता है ।

मनुमान्धातृरामाद्या बभूवुः प्रवरा नृपाः ।
अन्वभावि तदग्रेऽपि ब्राह्मणैर्न विमानना ।।६४१।।

६४१. मनु[१], मान्धाता[२], राम[३] आदि श्रेष्ठ (महान्) नृप हुए किन्तु उनके सम्मुख भी ब्राह्मणों ने ऐसे अपमान का अनुभव नहीं किया ।

पादटिप्पणी :

६४० (१) विज्ञप्तिकाल : राजा का दैनिक कर्तव्य तथा राजधर्म का वर्णन नीलमत पुराण (832 से 839=१००२ से १०११) में किया गया है ।

इसमें राजा को—'समागतेन द्रष्टव्यो व्यवहारस्तथा समः' (833 = १००३) स्पष्ट निर्देश किया गया है कि प्रति दिन वह सभा में जाकर व्यवहार आदि को देखे । यह उसका नित्य का कार्य था । उसका कर्तव्य एवं धर्म माना जाता था । यह सभा दरबार आमके समान थी । जहाँ कोई भी जाकर प्रार्थनापत्र राजा को दे सकता था । किसी प्रकार की बाधा राजा के सम्मुख पहुँचने में नहीं होती थी । विज्ञप्ति का काल कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि प्रार्थना पत्र देने का काल निश्चित था । इसी काल में द्विज सभा में राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ था ।

पादटिप्पणी :

६४१ (१) मनु आदि पुरुष हैं । मानव सृष्टि के प्रवर्तक हैं । मानव जाति के पिता हैं । (ऋ०: १: ८० : १६; ११४ : २; २ : ३३ : १३; ८ : ६३ : १, अ० १४ : २ : ४१, तै० सं० २ : १ : ५ : ६) चौदह मन्वन्तर होता है । प्रत्येक मन्वन्तर के मनु भिन्न हैं । प्रत्येक मन्वन्तर का राजा मनु होता है । उसकी सहायता के लिये सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, अवतार एवं मनुपुत्र होते हैं । सप्तर्षि का कार्य प्रजा उत्पत्ति है । प्रजा पालन मनु एवं उसके पुत्र गण भूपाल बनकर करते हैं । भूपालों की देवतागण सहायता देते हैं । भूपालों के मार्ग में पड़ने वाली बाधाओं का इन्द्र निवारण करते हैं । इन्द्र के निर्बल होने पर स्वयं भगवान् अवतार लेकर भूपालों के कष्टों को दूर करते हैं । मनु चौदह हुए हैं ।

स्वायम्भुव मनु प्रथम मनु थे । वर्तमान मनु का नाम वैवस्वत है । ये सातवें मनु हैं शेष ६ मनु भविष्य में होने वाले हैं । स्वायम्भुव मनु ब्रह्मा के प्रथम पुत्र हैं । पृथ्वी के प्रथम सम्राट् हैं । उनकी पत्नी का नाम शतरूपा है । उससे प्रियव्रत एवं उत्तानपाद दो पुत्र और आकूती, देवहूती, तथा प्रसूती तीन कन्याएँ हुई थीं । (भाग० : ११ : १४ : ४३ : १२ : २५-२६) स्वायंभुव मनु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को समस्त पृथ्वी मण्डल का साम्राज्य दे दिया था । (भा० ५ : १ : २२) प्रियव्रत के दश पुत्रों ने सप्तद्वीपा वसुन्धरा का शासन किया था । (ब्रह्मांड : २ : १४ : ४)

प्रत्येक मन्वन्तर के विभिन्न मनु हैं । स्वायंभुव मन्वन्तर के मनु स्वायंभुव हैं । उनके सप्तर्षियों का नाम—अंगीरस, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि तथा वशिष्ठ है । उनके देवगणों का तीन भेद—जित अजित एवं जिताजित हैं ।

प्रत्येक गण में बारह देव थे । (ब्रह्माण्ड : २ : १३) इन देवों में तुषित नामक बारह देवों का एक और गण था । (भा० : ४ : १ : ८) । इस मन्वन्तर के इन्द्र विश्वभुज थे । भागवत पुराण के मतानुसार यज्ञ थे । इन्द्राणी दक्षिणा थी । (भा० : ८ : १ ६) इस मन्वन्तर के अवतार विष्णु एवं भागवत के मतानुसार यज्ञ एवं कपिल थे ।

स्वायंभुव मन्वन्तर के पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष मनुओं का मन्वन्तर हुआ था । वर्तमान मन्वन्तर वैवस्वत मनुका है । उनके

सप्तर्षि हैं—अत्रि, कश्यप, गौतम, जमदग्नि, भरद्वाज, वशिष्ठ एवं विश्वामित्र। अंगिरस् (दस) अश्विनी (द्वय) आदित्य (द्वादश) भृगदेव (दस) मरुत् (उन्चास) रुद्र (ग्यारह) वसु (आठ) विश्वदेव (दस) एवं साध्य (बारह) हैं। इन्द्र का नाम उर्जस्वित् अपरनाम पुरंदर एवं महाबल है। अवतार वामन है। पुत्र—अरिष्ट, इक्ष्वाकु, इल, करूष, कुशनाभ, धृष्ट, नभ, नृग, पृषध्र, प्रांशु, वसुमत् एवं शर्याति हैं।

रामायण के अनुसार विवस्वान् के पुत्र एवं इक्ष्वाकु के पिता हैं। (बा० : ७० : २०-२१) राम ने उस भूखण्ड का अवलोकन किया था जिसे मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था (अ० ४९ : १३) इक्ष्वाकु ने अयोध्या नगरी की स्थापना की थी। (अ० ७१ : १७) अपने पुत्र को राजसिंहासन देते समय दण्ड के प्रति पूर्ण विशेष जागरूक रहने का उपदेश दिया था। (उ० : ७९ : ५–११)

मनु विन्दु सरोवर के तट पर सर्वदा स्थित रहते हैं। (भीष्म० : ७ : ४६) मनु मानवों के आदि राजा थे। उन्होंने (शान्ति० : ६७ : २१-२२)। धर्मशास्त्र का निर्माण किया है। (शान्ति० : ३३५ : ४४–४५) वैवस्वत मनु तथा मत्स्यावतार की कथा महाभारत (वन० : १८७) में दी गयी है। त्रेता युग के आरम्भ में सूर्य ने मनु और मनु ने सम्पूर्ण जगत् के कल्याण के लिये अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु को धर्मोपदेश दिया था। मनु आदर्श राजा हैं। उन्होंने राजधर्म का उपदेश ही नहीं दिया था बल्कि शास्त्रानुसार न्याय पूर्वक आदर्श राज्य किया था। कल्हण के इस पद में मनु आदर्श एवं महान् राजा थे। इसे ब्राह्मणों के मुख से कहलवाया है।

(२) मान्धाता : ऋग्वेद में इनका निर्देश अनेक बार प्राप्त है। उन्हें सर्वत्र 'मान्धातृ' कहा गया है। मान्धातृ का शाब्दिक अर्थ पवित्र व्यक्ति होता है। (ऋ० : १ : ११२ : १३; ८ : ३९ : ८; १० २ : २) उन्हें एक स्थानपर अंगिरस् के समान पवित्र माना गया है। (ऋ० : ८ : ४० : १२) ऋग्वेद में एक स्थान पर एक दूसरे मान्धातृ का उल्लेख आया है वे अश्विनीकुमारों के मित्र कहे गये हैं। (ऋ० : १ : ११२ : १३) गोपथ ब्राह्मण में मान्धातृ यौवनाश्व का उल्लेख मिलता है। युवनाश्व के वंशज थे। एक सम्राट् थे। (गो० ब्रा० : १ : २ : १०)

पुराणों के अनुसार मान्धाता इक्ष्वाकु वंशीय थे। वंश पीढ़ी की क्रमसंख्या १८ वीं थी। पिता युवनाश्व के कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। (विष्णु पुराण : ४ : २ : ४८) उनके पुत्र, पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा मुचुकुन्द थे। मान्धाता चक्रवर्ती राजा थे। उनका सप्त द्वीपों में राज्य था। (विष्णु० : ४ : २ : १६–२०; ब्रह्माण्ड० : ३ : ६३ : ६७–७२; भाग० : ९ : २५–२८)

इनकी माता का नाम गौरी था। वह पौरव राजा मतिनार की कन्या थी। उनको यौवनाश्व तथा 'गौरिक' मानक नाम प्राप्त हुआ था। (वायु० : ८८ : ६६–६७)

यावत् सूर्य उदेतिस्म यावच्च संप्रतिष्ठति। सर्वं तद् यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते। (विष्णु० ४ २ : १९)

रामायण के अनुसार मान्धाता युवनाश्व के पुत्र थे। सुसन्धि के पिता थे। (बा० ७० : २४–२५) यह न्यायप्रिय थे। एक श्रमण को पाप करने के कारण कठोर दण्ड दिया था। (कि० : १८, ३५) अयोध्या के राजा थे। समस्त पृथ्वी का विजय किया था। (उ० ६७ : ५–६) देवलोक पर राज्य करने की कल्पना करने लगे। इन्द्र ने प्रश्न किया—'विना समस्त पृथ्वी जय किये किस प्रकार देवलोक पर राज्य करना चाहते हैं? मान्धाता ने उत्तर दिया—'पृथ्वीपर कहाँ मेरा राज्य नहीं है?' इन्द्रने उत्तर दिया—'मधु वन में मधु पुत्र लवणासुर उनके आज्ञा की अवहेलना करता है।' मान्धाता लवणासुर से युद्ध करने के लिये गये। लवणासुर ने शूल द्वारा

समस्त सेना सहित इनको भस्म कर दिया : (उ० ६७ : ५–२२)

महाभारत में मान्धाता की कथा तथा उनके नामकरण का कारण दिया गया है। (वन : १२६ : ३०–४४) वैष्णव यज्ञ द्वारा उत्तम लोक को प्राप्त किया था। (वन० २५७ : ५-६) राजधर्म के सम्बन्ध में इन्द्ररूप धारी विष्णु के साथ इनका संवाद प्रसिद्ध है। (शान्ति० : ६४ ÷ १६–३०; ६५;) अंगिरा पुत्र उतथ्य ने इनको राजधर्म का उपदेश दिया था। वह उतथ्य गीता नाम से प्रसिद्ध है। (शान्ति० : ९०-९१) दण्ड की उत्पत्ति एवं उसके रूप आदि की इन्होंने अंग नरेश वसुहोम से जिज्ञासा की थी। (शान्ति० : १२२ : १२–१३) समस्त पृथ्वी मान्धाता ने एक दिन में जीत ली थी। (शान्ति० : १२४ : १६) मांस भक्षण का निषेध किया था। (अनु० : ११५ : ६१)

मान्धाता को सम्राट्, दानवीर, धर्मात्मा तथा एक सौ अश्वमेध यज्ञकर्ता कहा गया है। पौरव एवं कान्यकुब्ज राज्य जीता था। उत्तर पश्चिम स्थित द्रुह्य एवं आनव राजाओंपर विजय प्राप्त की थी। यादव राज इनके सम्बन्धी थे। पश्चिम भारत स्थित हैहय राजाओं को परास्त किया था।

इनके पिता युवनाश्व को एक शत पत्नियाँ थीं। उसके पुत्र नहीं था। उसने पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ किया। एक दिन यज्ञ के पश्चात् सब लोग खा पीकर सो गये। वह रात्रि में उठा। प्यास लगी थी। यज्ञ मण्डप में हविर्भाग युक्त पेय पदार्थ अर्थात् पृषदाज्य रखा था। उसे ऋषियों ने उसकी पत्नियों को गर्भवती होने के लिये देयहेतु रखा था। राजा उस जल को पी गया। गर्भ रह गया। कालान्तर में ऋषियों ने कुक्षिभेदन कर उदर से बालक को निकाला। वहाँ इन्द्र आवे। उन्होंने कहा 'मां धाता' अर्थात् इसका पोषण मैं करूँगा। इन्द्र ने अपनी उंगली इसे चूसने के लिये दिये। इस लिये इसका नाम मान्धाता पड़ा था। (ब० ११६; शान्ति० : २९ : ४७–८६; दे. भा. ७ : ९--१०) अपने तप एवं सामर्थ्य ने 'अजगव' नामक धनुष तथा अन्य दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। अंगार, मरुत्, गय तथा बृहद्रथ आदि को युद्ध में परास्त किया था। द्रुह्य राज वंश के बभ्रु राजा के साथ चौदह मास तक निरन्तर युद्ध करता रहा। अनन्तर उसे पराजित किया। उसका बध कर दिया। (वायु० : १९ : ८७) दस्युयों से प्रजा की रक्षा के कारण उसे त्रसदस्यु नाम प्राप्त हुआ था।

प्रजापालक, दया एवं कर्तव्य भावना इसमें चरम सीमा तक थी। एक बार अकाल पड़ा। प्रजा पीड़ा से व्याकुल हो गयी। ऋषियों से अकाल का कारण पूछा। बताया गया 'उसके राज्य में एक वृषल तप कर रहा था। उसके वध के पश्चात् अकाल समाप्त हो जायगा।' उसने एक तपस्वी का वध उचित नहीं समझा। दुर्भिक्ष की समाप्ति हेतु पद्म एकादशी व्रत आरम्भ किया। वर्षा हुई। अकाल समाप्त हुआ।। (पद्म० : उ० ५७) उसने वरूथिनी एकादशी का भी व्रत किया था। (पद्म० : उ० ४८) मान्धाता क्षत्रिय था। अपनी तपस्या के कारण ब्राह्मण बन गया था। (वायु० : ९१ : ११४)।

मान्धाता का विवाह यादव राजा शशबिन्दु की कन्या बिन्दुमती से हुआ था। बिन्दुमती की माता नाम चैत्ररथी था। मुचुकुन्द, अम्बरीष, पुरुकुत्स नामक उससे पुत्र हुए थे। (वायु० : ८८ : ७०-७२)

पद्म पुराण के अनुसार मान्धाता के चार पुत्र— पुरुकुत्स, धर्मसेतु, मुचुकुन्द तथा शक्रमित्र थे। इसे पचास कन्याएँ थीं। उनका विवाह सौभरि ऋषि के साथ हुआ था। इसकी बहन कावेरी कान्यकुब्ज नरेश जह्नु के साथ ब्याही गयी थी। पुरुकुत्स इसके पश्चात् अयोध्या का राजा हुआ। उसने अपने पिता का राज्य और बढ़ाया। उसने नर्मदा तट निवासी नाग कन्या नर्मदा से विवाह किया था। नागों के शत्रु मौनेय गन्धर्व को परास्त किया था। मान्धाता

[1]सेन्द्रं स्वर्गं सशैलां क्ष्मां सनागेन्द्रं रसातलम् ।
निर्दग्धुं हि क्षणेनैव विप्राः शक्ताः प्रकोपिताः ॥६४२॥

६४२. 'क्रुद्ध विप्र क्षण भर में ही इन्द्र सहित स्वर्ग, सशैल पृथ्वी, सनागेन्द्र[2] पाताल को निर्दग्ध करने में समर्थ है।'

तदाकर्ण्यास्त सामन्तत्यक्तपृष्ठः क्षमापतिः ।
उल्लासितैकभ्रूलेखो दर्पाद्वचनमब्रवीत् ॥६४३॥

६४३. यह सुनकर, सामन्तों से त्यक्त क्षमापाति एक भ्रूलेखा (भौ) को उठाकर, दर्प पूर्वक बोला—

'[1]भिक्षाकणभुजां कोऽयं शठानां वो मदज्वरः ।
येनर्षय इव ब्रूथ प्रभावाख्यापकं वचः' ॥६४४॥

६४४. 'भिक्षा कणभोगी शठ तुम लोगों का यह कैसा मद ज्वर है, जिसके कारण ऋषियों तुल्य प्रभाव पूर्ण बात बोलते हो ?'

भीमभ्रूभङ्गभीतेषु तेषु तूष्णीं स्थितेष्वथ ।
इट्टिलाख्यस्तमाह स्म ब्रह्मतेजोनिधिर्द्विजः ॥६४५॥

६४५. उसके भयंकर भ्रूभंग से भयभीत होकर, उन विप्रों के तूष्णीभूत होकर स्थित होने पर, ब्रह्मतेजोनिधि 'इट्टिल' नामक विप्र बोला—

राजन् युगानुरूप्येण भावाभावानुवर्तिनः ।
शासितुस्तेऽनुसारेण न कस्मादृषयो वयम् ॥६४६॥

६४६. 'हे राजन् ! युगानुरूप (विवेक के) भाव एवं अभाव[1] के राजा अनुवर्ती जिस प्रकार आप राजा हैं उसी प्रकार हमलोग ऋषि क्यों नहीं हैं ?'

का तृतीय पुत्र मुचुकुन्द पराक्रमी था। उसने नर्मदा तट पर ऋक्ष एवं पारियात्र पर्वतों के मध्य नगर की स्थापना की थी। वही नगर कालान्तर में माहिष्मती नगरी नाम से प्रख्यात हुआ।

(३) राम : अयोध्यापति इक्ष्वाकु वंशीय दशरथ नन्दन, सीतापति श्री राजाराम से मतलब है।

पादटिप्पणी :

६४२. (१) राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १४७वाँ श्लोक है।

(२) नागेन्द्र = नागों का इन्द्र अर्थात् शेष नाग। शेषनाग का विशेषण है।

६४३ (१) भ्रूलेखा = कालिदास ने भी भ्रूलेखा उपमा का प्रयोग किया है—कान्तिर्भ्रुवोरायतलेखयोर्या—(कुमारसम्भव : १ : ४७) यहाँ पर अभिप्राय है कि उसने आँख की भौं को कुटिल अथवा सिकोड़ कर अथवा लौकिक भाषा प्रयोग में त्योरी चढ़ाकर सगर्व कहा।

पादटिप्पणी :

६४४. (१) सूक्ति संग्रह का यह १४८वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

६४६ (१) भाव एवं अभाव = भूपानुवर्ती

आह स्म विश्वामित्रो वा वसिष्ठो वा तपोनिधिः।
त्वमगस्त्योऽथवा किं स्या इति दर्पेण तं नृपः ॥६४७॥

६४७. नृप ने उससे दर्प पूर्वक कहा, 'क्या तुम तपोनिधि विश्वामित्र[1] अथवा वसिष्ठ[2] (अथवा) अगस्त्य हो[3]?'

विप्र—वह अन्य प्रकार से है—यह भी एक अर्थ किया जाता है।

पादटिप्पणी :

१. विश्वामित्र : शास्त्रोक्त ऋषि विश्वामित्र है। नीलमत पुराण में विश्वामित्र नामक एक नदी का उल्लेख आया है। इस नदी का पता नहीं चल सका है कि किस नाम से इस समय काश्मीर में प्रख्यात है। एक मत है यह नदी उद्द के पास कहीं है। कुम्भा वसुन्दः पुण्योदः पुण्योदा देविका तथा। नित्यमेव तथा पुण्यो विश्वामित्रो महानदः॥ १३९९ नीलमत १०८ = १५०-१५१। ऊद नदी वर्तमान जम्मू में बहने वाली ऊम्म नदी है। पाणिनि ने इसे उद्ध्य (३।१।११५) कहा है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उल्लेख आता है। रावी के दक्षिण तट पर मिल जाती है। रावी नदीका नाम इरावती था। इसके लिए उद्ध्येरावति शब्द का प्रयोग किया गया है। मिलनेवाली नदी के नाम से समास बनाकर नदी की संज्ञा रखी जाती थी। बर्ह नामक नदी जम्मू में उम्म से १५ मील पश्चिम बहती गुरुदासपुर में रावी में मिलती है। रावी में मिलने के कारण उसका भी नाम मिध्येरावति दिया गया है।

विश्वामित्र का जन्म कान्यकुब्ज के सुविख्यात अमावसु वंश में हुआ था। कुशिक राजा के पौत्र तथा गाधि के पुत्र थे। इनका जन्म नाम विश्वरथ था। विश्वामित्र नाम ब्राह्मण होने के पश्चात् प्राप्त हुआ था। कुशिक राजा अपने पिता इषीरथ के समान प्रजाहित दक्ष था। कुशिक ने पुत्र प्राप्ति कामना से तप किया। इन्द्र ने स्वयं गाथिन नाम धारण कर कुशिक के पुत्र रूप में जन्म लिया। गाधि रूपधारी इन्द्र से विश्वामित्र का जन्म हुआ। विश्वामित्र का वंश क्रम—इषीरथ,—कुशिक, गाथिन तथा विश्वामित्र है। किन्तु रामायण में—प्रजापति--कुश कुशनाभ,–गाथिन एवं विश्वामित्र दिया गया है। (बा. बा. ५१) पुराण में इसे कुशिक पुत्र कहा गया है। (वायु० ९१ : ९३) विश्वामित्र की पितामही कुशिक पत्नी का नाम पौरकुत्सी था। वह अयोध्या के राजा पुरुकुत्स की कन्या थी। इनकी बहन का नाम सत्यवती था। उसका विवाह ऋचीक भार्गव ऋषि से हुआ था। सत्यवती के पुत्र का नाम जमदग्नि था। जमदग्नि के पुत्र भगवान् परशुराम थे। परशुराम को जामदग्न्य कहा गया है। विश्वामित्र गाथिन के रचे अनेक सूत्र ऋग्वेद में प्राप्त हैं। (ऋ० ३ : १-१२; २४; २५; २६; २७-३२;)

राज्य प्राप्ति के पश्चात् विश्वामित्र को ब्राह्मण बनने की इच्छा हुई। सरस्वती तट 'रुषंगुतीर्थ' पर तपस्या करने लगे। (श० ३८ : २२-३४; ४१ : २३०७; व. रा. बा. ५१-५६) वायु पुराण के अनुसार सागरानूपप्रदेश में तपस्या किया था। (वायु : ९१:९२-९३) घोर तपस्या के कारण विश्वामित्र को ब्राह्मणत्व प्राप्त हो गया। (का. सं. १६ : १९, मै.सं.२ : ७ : १९; तै. सं. २ : २ : १ : २; ऐ. ब्रा. ६ : १८ : १; कौ. ब्रा. १५ : १; जै. उ. ब्रा : २ : ३ : १३; ऐ. आ० २ : २ : ३; बृ. उ. २ : २ : ४) विश्वामित्र और वसिष्ठ का विरोध तथा उनके पारस्परिक कलह एवं संघर्ष की कथा वाल्मीकि रामायण और महाभारत में विस्तार के साथ दी गयी है वसिष्ठ की नन्दिनी गाय विश्वामित्र चाहते थे। वसिष्ठ गाय का त्याग नहीं कर सके। विश्वामित्र ने सेना बल से राजशक्ति से क्षत्रिय शक्ति से गाय लेना चाहा। किन्तु

उस धेनु से उत्पन्न शक, यवन, पल्हव, वर्वर एवं किरात जाति ने विश्वामित्र को ससैन्य परास्त कर दिया। विश्वामित्र ने वसिष्ठ को हराने के लिये अनेकानेक अस्त्र एवं शस्त्रों का सम्पादन किया। परन्तु असफल रहे। उन्हें ब्रह्मबल का परिचय मिला। क्षात्रबल ब्रह्मबल के सम्मुख दुर्बल सिद्ध हुआ। वसिष्ठ के समान ब्रह्मबल प्राप्त करने के लिये कौशिकी नदी तथा रुषुंग तीर्थ पर तपस्या किया। (वन० ८५:९:१२; बा. रा. बा. ५१-५६, मार्क० ८-९)।

ब्राह्मणत्व प्राप्ति के पश्चात् विश्वामित्र ने अपनी पत्नी एवं पुत्र को कोशल देश स्थित एक आश्रम में रख दिया। सागरानूप पर तपस्या करने चले गये। कोशल में अकाल पड़ा। पत्नी तथा पुत्र भूखों मरने लगे। अन्न प्राप्त हेतु अपने पुत्र के गले में रस्सी बाँध कर बाजार में बेचने के आपत्प्रसंग का वर्णन है। इस घटना के पश्चात् पुत्र का नाम गालव पड़ गया। उस समय सत्यव्रत (त्रिशंकु) ने विश्वामित्र की पत्नी एवं पुत्र की रक्षा की। बारह वर्ष पश्चात् तपस्या कर विश्वामित्र लौटे। त्रिशंकु के उपकार के प्रति कृतज्ञता प्रकट की। वसिष्ठ ने त्रिशंकु को अयोध्या के सिंहासन से पदच्युत कर दिया। विश्वामित्र ने अपनी शक्ति द्वारा उसे पुनः अयोध्या के सिंहासन पर बैठाया। त्रिशंकु ने वसिष्ठ को पुरोहित पद से हटा दिया। विश्वामित्र को अपना पुरोहित बनाया।

सत्यव्रत का पुत्र हरिश्चन्द्र था। सत्यव्रत त्रिशंकु की अनुपस्थिति में वसिष्ठ ने हरिश्चन्द्र का पालन-पोषण किया था। हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ किया। विश्वामित्र को दक्षिणा देना अस्वीकार कर दिया। विश्वामित्र ने अपमान का अनुभव किया। पुरोहित पद त्याग कर पुष्कर जी में तपस्या करने चले गये। विश्वामित्र की ब्राह्मणत्व प्राप्ति की कथा वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड (६२-६६) तथा स्कन्द पुराण (६: १: १६७,-१६८) में दी गयी है। ब्रह्मर्षि पद प्राप्त करने के पश्चात् इन्द्र के साथ सोमपान करने का उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ था। (आ० : ६९, ५०,-ऐ० आ० २: २: ३; सां: आ: १:५)।

ब्रह्मर्षि प्रद प्राप्ति की कथा पुराण, रामायण तथा महाभारत में मिलती है। रुषुंग तीर्थ में तपस्या के कारण ब्राह्मणत्व तथा शुनःशेप के संरक्षण के पश्चात् कौशिकी नदी तट पर तपस्या के कारण ब्रह्मर्षि पद मिला था। (वा० बा: ६२-६६; स्कन्द: ६: १: १६७,-१६८) महाभारत के अनुसार एक समय धर्मऋषि इनके समीप पधारे। धर्म के लिये भात बनाने लगे। भात पकने के पूर्व ऋषि चले गये। विश्वामित्र एकशत वर्ष तक ऋषि की राह देखते स्थिर खड़े रहे। धर्म ने आकर इनकी प्रशंसा की। ब्रह्मर्षि पद दिया। (उ०: १०४:१७,-१८) भविष्य पुराण के अनुसार देहान्तर न करते हुए भी प्रतिपदा का व्रत रखने के कारण इनको ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हुई थी। (भवि० ब्राह्मः १६) हिरण्या नदी के संगम पर स्नान करने के कारण इन्हें शिव लोक मिला था। (पद्म उ. १४०)।

विश्वामित्र का आश्रम सरस्वती नदी के पश्चिम तटपर कुरुक्षेत्र में स्थाणु तीर्थ के सम्मुख था। (श० ४१ : ४-३७) उनका दूसरा आश्रम ताटका वन वर्तमान बक्सर जिला शाहाबाद, बिहार में था। महाभारत के अनुसार कौशिकी नदी (कोशी) नदी के तटपर उत्तर बिहार में था। (आ० ६५:३०) इनके अतिरिक्त देव कुण्ड (वेदगर्भ पुरी) एवं विश्वामित्री नदी के तटपर भी उनके आश्रम थे।

विश्वामित्र के एकशत पुत्र थे। शुनःशेष को अपना पुत्र बनाकर उसे ज्येष्ठ पुत्र माना था। अपने पुत्रों को उसका ज्येष्ठ पद स्वीकार करने की आज्ञा दी। प्रथम पचास पुत्रों ने पिता का आदेश अमान्य कर दिया। विश्वामित्र ने अन्ध्र, पुण्ड्र, शबर, पुलिन्द, मूतिव आदि बन जाने का उन्हें शाप दिया। (ऐ. ब्रा : ७ : १८) उक्त शाप के कारण विश्वामित्र शाखा उनके हीन कुलीन पुत्रों की बनी। 'कुशिक शाखा' उनके प्रियपात्र आज्ञाकारी पुत्रों की

हुई। विश्वामित्र की पत्नियाँ (१) रेणु (२) शालावली, (३) सांकृति (४) माधवी (५) दृषद्वती थीं। (ह. व. १ : ३२, ब्रह्मः १०; वायु : ९१ : ९९-१०३) विश्वामित्र कुलोत्पन्न २९ गोत्र हुए थे। ब्रह्म पुराण के तेरहवें अध्याय में ध्यान जाप्य, सांकृत तथा दसवें अध्याय में पार्थिव एवं सांस्कृत का नाम नहीं मिलता। इनके गोत्रों के त्रिप्रवरान्वित, एवं द्विप्रवरान्वित दो मुख्य भेद हैं।

ऋग्वेद के नदी सूक्त में विपाशा एवं शतद्रु नदियों के संगम पर मार्ग देने की प्रार्थना की गयी है—(१) (ऋ० ३ : ३३) ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्नलिखित वैदिक मन्त्रों के प्रणयन का श्रेय विश्वामित्र को दिया गया है। संपात ऋचाएँ (ऐ. ब्रा. ६ : १८) (२) रोहित कुलीय साममंत्र (पं० ब्र० १४ : ३ : १३) नव अध्यायों की विश्वामित्र स्मृति उनकी रचना है। मद्रास राज्य सरकार ने इसे प्रकाशित किया है। रामायण में विश्वामित्र की कथा, भगवान् रामचन्द्र का राक्षस वध हेतु माँगना, दशरथ का अस्वीकार करना, इनका उग्र क्रोध, दशरथ का वसिष्ठ के कहने पर पुनः राम-लक्ष्मण को इनके साथ कर देना, वन में ताटका वध, राम का सिद्ध्याश्रम में प्रवेश, यज्ञ की रक्षा, मिथिला प्रस्थान, मार्ग, में सगर भगीरथ गंगावतरण समुद्र मन्थन देवासुर संग्राम की कथा, राजा सुमति का परिचय, गौतम इन्द्र कथा प्रसंग, मिथिला यज्ञ मण्डप में प्रवेश, जनक का स्वागत, वसिष्ठ कामधेनु कथा वर्णन, वसिष्ठ से पराजित होकर दक्षिण दिशा में तप हेतु प्रस्थान, ब्रह्मा का उन्हें राजर्षि मानना, पुनः घोर तपस्या, त्रिशंकु को यज्ञ द्वारा सशरीर स्वर्ग भेजना, त्रिशंकु का अधर में लटक जाना, पुष्करजी में तपस्या, शुनःशेप की रक्षा, ऋषि एवं महर्षि पद की प्राप्ति, मेनका द्वारा तप भंग, हिमालय पर ब्रह्मर्षि पद के लिये पुनः तपस्या, रम्भा को शाप, धनुष भंग, राम-सीता विवाह, भरत एवं शत्रुघ्न के लिये कुशध्वज को कन्याओं का वरण, राम का मरीचि के आश्रम की रावण से रक्षा, मरीचि की राम प्रशंसा, तारा-लक्ष्मण संवाद, श्रीराम के अयोध्या लौटने और सप्तर्षियों के साथ इनका आगमन आदि विस्तार के साथ दी गयी है (बाल० ३-७६; अयो० ११८; अरण्य; ३८, किष्कि० ३५, उ० १, ५)।

महाभारत में भी रामायण से मिलती जुलती कथा का वर्णन मिलता है। (आदि ७१ : २०, २७, ३९, ७२:१-९, १३२:५१; १७४:३-४८; १७५:२१, ४१, वनः ८७:१३, १५, ११; ११०:२०; २२६: १३, १६; उद्योगः १०६:८-२१; २७, ११३:२०-२१; ११९ : १७; १८, द्रोणः १९० : ३५-४०, शल्यः ४० : १२-३०; ४२ : ३८-३९; ४९ : ३०, शा० १४१ : १३, १४, ९१, ९९; २०८ : ३३-३४, अनु० ३, १८ : १६; २६ : ५, ९३ : ४३; ६३, ९२, १२४-१२६, ९४ : ३३; १२६ : ३५-३७; मौसलः १ : १५-२१;)।

(२) वसिष्ठ : वेद, पुराण, रामायण तथा महाभारत में वसिष्ठ सम्बन्धी प्रचुर साहित्य प्राप्त है। वसिष्ठ ब्रह्मा के दस मानस पुत्रों में एक थे। ब्रह्मा के प्राण वायु से उत्पन्न हुए थे। दक्ष प्रजापति की कन्या उर्जा इनकी पत्नी थी। (भा० ३ : १२ : २३) अरुन्धती भी इनकी एक और पत्नी थी। वह कर्दम प्रजापति की आठवीं कन्या थी। इनके अतिरिक्त शतरूपा भी इनकी एक पत्नी थी। इनकी ही वह 'अयोनिसंभवा' कन्या थी। उर्जा से पुंडरिका कन्या तथा दक्ष, गर्त, ऊर्ध्वबाहु, सवन, पवन, सुतपस्, एवं शंकु पुत्र थे। भागवत में उर्जा के पुत्र सत्यकेतु आदि बताये गये हैं। (भा० ४ : १ : ४१) पुंडरिका का विवाह प्राण से हुआ था। शतरूपा से वीर नामक पुत्र हुआ था। वीर का विवाह कर्दम प्रजापति की कन्या काम्या से हुआ था। उससे उसको प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुए थे। उत्तानपाद को अत्रि ऋषि ने दत्तक लिया था। (ह० वं० १:२)

वसिष्ठ नामक सुविख्यात ब्राह्मण वंश के मूल

पुरुष यही थे। वसिष्ठ कुल में प्रसिद्ध-वसिष्ठ देवराज, वसिष्ठ आपव, वसिष्ठ अथर्वनिधि, वसिष्ठ श्रेष्ठ भाज, वसिष्ठ अथर्वनिधि (द्वितीय) वसिष्ठ (दशरथ का समकालीन), वसिष्ठ मैत्रावरुण, वसिष्ठ शक्ति, वसिष्ठ सुवर्चस, वसिष्ठ (मुचुकुंद-राजा का समकालीन), वसिष्ठ, (हस्तिनापुर के हस्तिन राजा का समकालीन) तथा वसिष्ठ धर्म-शास्त्रकार।

वसिष्ठ वंश की तीन शाखायें प्रसिद्ध हैं—अरुंधती शाखा; घृताची शाखा (ब्रह्माण्ड: ३ : ८० : ९०-१००; वायु : ७१ : ८३-९०, लिंग : १ : ६३ : ७८-९२; कूर्म० १ : १९; मत्स्य : २००) व्याघ्री शाखा। (अनु. ५३ : ३०-३२)—वशिष्ठ कुल के गोत्रकार एकप्रवरात्मक एवं त्रिप्रवरात्मक है। वसिष्ठ कुल के मन्त्रकारों की नामावली (वायु : ५९ : १०५-१०६, मत्स्य : १४५ : १०९-११०; ब्रह्माण्ड : २ : ३२ : ११५-११६) प्राप्त है। लगभग १५ प्रसिद्ध वसिष्ठ ऋषियों का उल्लेख भारतीय वाङ्मय में मिलता है। ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं के प्रणयनकर्ता वसिष्ठ माने जाते हैं। वे ऋचाएँ निद्रासूक्त (ऋ : ७ : ५५) महामृत्युजंय (ऋ : ७ : ५९ : १२) राक्षोघ्न' सूक्त (ऋ: ७ : १०४) तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त 'एकोन-पंचाशद्रात्रयाग' (तै. स. ७ : ४ : ७) स्तोम याग' तै : स : ३ : ५ : २ मन्त्रों के प्रवर्तक वसिष्ठ माने गये हैं।

वसिष्ठ का आश्रम विपाशा नदी के तट पर 'वसिष्ठ शिला' में था। गोपथ ब्राह्मण (१ : २ : ८) के अनुसार इनका कृष्णशिला नामक एक अन्य आश्रम भी था। अपनी तपस्या के कारण वसिष्ठ पृथ्वी के समस्त लोगों के पुरोहित हो गये थे। (गो. ब्रा. १ : २ : १३) विपाशा नदी के नामकरण की एक कथा है। विश्वामित्र के क्रोध के कारण वशिष्ठ के एक शत पुत्रों का नाश हो गया। वसिष्ठ जीवन से विरक्त हो गये। नदी में शोकाभिभूत आत्महत्या करने गये। अतएव नदी का विपाशा नाम दिया गया। (वन. १३० : ८-९) नदी ने वसिष्ठ को पाशमुक्त किया था। शतद्रु (सतलज) नदी के नाम-करण की भी एक कथा मिलती है। वसिष्ठ व्याकुल होकर नदी में कूद पड़े। नदी उसे अग्नि के समान तेजस्वी जानकर शत धाराओं में फूटकर भाग चली। शतधा विद्रुत होने के कारण नाम 'शतद्रु' पड़ा। (आ० : १६७ : ९) : वसिष्ठ ने पक्षवर्धिनी एकादशी का व्रत किया था। (पद्म : उ० : ३६) वकुल संगम पर परमेश्वर की सेवा की थी। (पद्म : उ. १३९)—इन्द्रप्रस्थ के सप्त तीर्थ के प्रभाव के कारण वसिष्ठ को महापवित्र पुत्र उत्पन्न हुए थे। (पद्म. उ. २२२) ब्रह्मदेव के पुष्कर क्षेत्र यज्ञ में वसिष्ठ होतृगणों के ऋत्विज् थे। (पद्म: सृ: २४) भीष्म पंचक व्रत भी किया था। (पद्म पु.१२४)।

वसिष्ठ की कथा रामायण में विस्तार के साथ दी गयी है। राजा दशरथ के ऋत्विज् थे। (बाल: ७ : ४) कामधेनु के प्रसंग को लेकर विश्वामित्र और वसिष्ठ में वैमनस्य एवं शत्रुता का बीजारोपण हुआ था। अनन्तर वसिष्ठ ने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया था। विश्वामित्र ने सृष्टि परम्परा के अनुसार इक्ष्वाकु कुल परम्परा का वर्णन किया है। ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का उत्तरा-धिकारी होता है इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। (अयो० २ : ११०) वसिष्ठ रघुवंश के गुरु थे। भगवान् राम के जन्म से लेकर महाप्रस्थान तक उनके साथ थे और प्रत्येक कार्यों में उचित सलाह देते थे। (बाल: ७ : ४; ८ : ६; १३ : १-२, ६, १७,—३०, ३५-४१, : १४ : ५१; १८ : २०-२५ २१ : ५-२१, २२; ५२; ५३ : ११-२६; ५४ : ९-१६; ५५ : २५-२८, ५६ : १३-२१; ७, : १२; ५८ : १-१०; ६५ : २२-२३; ६५ : २५; ६८ : १४, ६९ : ४; १०; ७० : १६-४५; ७१ : १-२१; ७२ : १-१६; ७३ : १२-२२; ७४ : १०-१३, १६, ७७ : २; अयो० ३ : ३-७; ५ : १-२२, १४ : २६-४२, ६८; ७६ : १-३७ १२;-७७ : २१-२३; ८१ : ९-

१३, ८२ : ४-८; ९० : ३;४,६,८;९९ :२; १०० : ९; १०४ : १, २७–२८; ११०, १११ : १–११; ११३ : २, ९–१३; ११५ : ४–६; १०; १२० : ६१, उत्तर : ५१ : २–४, ५५ : ८–११, १३, १७-२०, ५६ : ५-७०; ५७ : ७-९; ६५ : १८-२१, २६-३६; ७४ : २; ४, ५, ९१ : २-८; १०६ : ७-११; १०९ : ३;)

भारतीय साहित्य में शत्रुत्व के लिये वसिष्ठ-विश्वामित्र की शत्रुता उसी प्रकार प्रसिद्ध है जिस प्रकार इन्द्र-मरुत, कौरव-पाण्डव, द्रोण-द्रुपद, परशुराम-कार्तवीर्य एवं बालि-सुग्रीव की है।

(३) अगस्त्य : वैदिक साहित्य में अगस्त्य मैत्रावरुण के पुत्र माने गये हैं (ऋ० ७ : ३३ : १३) वे एक मान थे। (ऋ : ७ : ३३ : १० : १३) अतएव मान्य तथा, मान्यार्य उनके पैतृक नाम हैं। (ऋ० : १ : १६५; : १५१, १६६, १६७, १६८; १०; १ : १६५ : १४; १ : १७७ : ५; १ : १८४ : ४; १ : १८९ : ८; १ : ११७ : ११;) अगस्त्य का नाम सुमेधस भी था। अगस्त्य लोपामुद्रा का वार्तालाप मिलता है। (ऋ० १ : १६५ : १४, १५, १६६ : १५;) ऋग्वेद (१ : १७९) में मिलता है—इनकी पत्नी का नाम लोपामुद्रा है (ऋ : १ : १७९ : ४) प्रारम्भ में अगस्त्य विरक्त थे पितरों के आदेश पर विदर्भराज निमि की कन्या लोपामुद्रा से विवाह किया था। लोपामुद्रा को इध्मवाह नाम से प्रसिद्ध दृढ़स्यु नामक पुत्र था। (बा. बा : ९७ : २३-२४) उसका नामान्तर दृढ़द्युम्न इन्द्रबाहु मिलना है। (मत्स्य १४५ : १४) पुलस्त्य, पुलह तथा क्रतु अगस्त्य गोत्रीय नहीं थे। तथापि इनकी सन्तति अगस्त्य गोत्रीय मानी जाती है। वैवस्वत मन्वन्तर का क्रतु निपुत्रिक होने के कारण अगस्त्य पुत्र इध्मवाह को दत्तक लिया था। पुलह की संतति राक्षस थी। उसने अगस्त्य दृढ़स्यु को दत्तक लिया था। पौलस्त्य ने भी इसी प्रकार अगस्त्य पुत्र को दत्तक लिया था। (मत्स्य २०२ : ८ : १२) ब्रह्माण्ड पुराण में अप, दृढायु, तथा विध्वबाट नामक पुत्रों का वर्णन मिलता है। (२ : ३२ : ११९) अगस्त्य की गोत्र परम्परा को ही अगस्त्य वंश कहा गया है। (मत्स्य : २०२ : ६) राजा नेमि ने लोपामुद्रा के साथ अगस्त्य को राज्य भी दिया था। (अनु : १३ : ११) काशी के नृप प्रतर्दन का पोता तथा वत्स का पुत्र अलर्क ने लोपामुद्रा की कृपा से दीर्घायु प्राप्त किया था। (वायु : ९२ : ६७; ब्रह्माण्ड ३१ : ५३) अगस्त्य अश्विनी कुमारों के सहायक रूप में दिखायी देते हैं और विश्वला की उतरी टांग ठीक करते हैं। (ऋ : १ : ११७ : ११) अगस्त्य का नाम ऋग्वेद में एक लम्बी तालिका में आया है। (ऋ : ७ : ५ : २६) अन्य स्थान पर अपनी बहन के पुत्रों को 'नद्भ्यः' संकेत करते हुए उद्दिष्ट है। (ऋ: १० : ६० : ६) अथर्ववेद में उनका सम्बन्ध अभिचार कर्म से दिखाया गया है। (ऋ: ३ : ३२ : ३; ४ : ३७ : १) उनका ऋग्वेद के यातु सूक्त से (ऋ : १ : १९१) सम्बन्ध स्थापित किया गया है। अथर्ववेद के ऋषियों की लम्बी तालिका में अगस्त्य का भी नाम दिया गया है (अ० १८ : ३ : १५) गोपथ ब्राह्मण (२ : ८) में अगस्त्य तीर्थ का भी उल्लेख मिलता है। बृहद्देवता (५ : १३४) में कथा मिलती है। मित्रावरुण का रेतस् उर्वशी को देखकर कमल पत्र पर स्खलित हो गया। उसी से वसिष्ठ एवं अगस्त्य उत्पन्न हुए। यही कारण है। अगस्त्य को वसिष्ठ का भ्राता कहा जाता है। पुराणों में अगस्त्य की कथा रुचिकर उपाख्यान के रूप में दी गयी है। समुद्र में छिपे असुर इन्द्रादि को त्रस्त करने लगे। देवताओं ने अगस्त्य को समुद्र सोखने के लिये कहा। समुद्र के प्राणियों के नाश की सम्भावना से इन्होंने समुद्र सोखना उचित नहीं समझा। इन्द्र ने इन्हें शाप दिया। उस शाप के कारण मित्रावरुण के वीर्य से यह कुम्भ से उत्पन्न हुए। अतएव इन्हें कुंभयोनि नाम प्राप्त हुआ। (मत्स्य : ६१ : २०१, पद्म : ८ : २२ : २२; वन, ९६; द्रो: १३२; १८५; शा० ३४४; ब्रह्माण्ड : ३ : ३५) राज कन्या होने के

कारण लोपामुद्रा की सम्पत्ति में रुचि थी। किन्तु सम्पत्ति प्राप्ति में अपने तप का व्यय करना अगस्त्य ने उचित नहीं समझा। लोपामुद्रा की तीव्र प्रेरणा के कारण श्रुतावर्त, ब्रन्ध्यश्व तथा त्रसदस्यु तीन राजाओं से सम्पत्ति प्राप्त करने का असफल प्रयास किया। त्रसदस्यु ने इल्वल की अपार सम्पत्ति का वर्णन अगस्त्य से किया। अगस्त्य उक्त तीनों राजाओं के साथ इल्वल के पास गये। अपने अतुल सामर्थ्य से इल्वल की सम्पत्ति प्राप्तकर लोपामुद्रा को संतुष्ट किया। समुद्रस्थ कालकेय लोगों को त्रस्त करते थे। अगस्त्य ने उनका अत्याचार देखकर समुद्र का प्राशन कर लिया। कालकेय नष्ट हो गये। समुद्र अपने उदर में हजम कर गये। (पद्म: सृ : १९ : १८६; वन १०३) अगस्त्य ने भद्राश्वको गीता सुनाया था। (वराह : ३५) अपने भोजन हेतु कमल कल्क न खाकर एक भूखे चण्डाल को दे दिया था। (पद्म: सृ: १९)

अगस्त्य का सम्बन्ध प्रायः दक्षिण से मिलता है। दक्षिण भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में अगस्य की पूजा होती थी। वहाँ सर्व प्रिय देवता हैं। (ब्रह्म : ८४ : ११८ : २) उनका मन्दिर जावा इत्यादि में है। मत्स्य पुराण में अगस्त्य को लंकावासी कहा गया है (मत्स्य : ६१ : ५१) अगस्त्य को दक्षिण का स्वामी तथा विजेता माना गया है (ब्रह्म : ११८ : १५९) अगस्त्य का आश्रम दक्षिण मलय पर्वत पर था। (मत्स्य : ६१ : ३७; पद्म : सृ : २२; किष्कि : ४१ : १५-१६) पाण्ड्य तथा महानदी के समीपस्थ महेन्द्र से भी अगस्त्य का सम्बन्ध जोड़ा गया है। (किष्कि० ४१) एक अगस्त्याश्रम नासिक के समीप है। (वन : ९४ : १) दक्षिण से अगस्त्य का अत्यधिक सम्बन्ध मिलता है। तथापि उत्तर में गंगा, यमुना तथा प्रयाग के प्रसंग में इनके नामों का उल्लेख किया गया है। (मत्स्य : १०३; आ० २३५ : २; वन : ९५ : ११) विन्ध्यांचल पर्वत बड़ा ऊँचा था। उससे दक्षिण की यात्रा दुर्गम हो गयी थी। अगस्त्य दक्षिण की ओर प्रस्थान किये। विन्ध्याचल ने नमकर प्रणाम किया। उसे इसी प्रकार रहने का आशीर्वाद देकर के दक्षिण चले गये। उस समय से विन्ध्य पर्वत नीचा हो गया है। अगस्त्य तारा भाद्र-पद मास में दक्षिण दिशा में उदित होता है। इसके उदय होने के पश्चात् जल निर्दोष हो जाता है। (मत्स्य : ६१)

अगस्त्य अनेक ग्रन्थों के रचनाकार कहे गये हैं—(१) वराह पुराण में पशुपालोपाख्यान अगस्त-गीता, (२) पंचरात्र की अगस्त्य संहिता, (३) स्कन्द पुराण की अगस्त्य संहिता, शिव संहिता, भास्कर संहिता का द्वैध निर्णय तन्त्र। (ब्रह्म वै : २ : १६)।

रामायण में अगस्त्य की कथा बहुत लम्बी दी गयी है। वे अपने भ्राताओं के साथ दण्डकारण्य में निवास करते थे। (वा० १ : ४२) अगस्त्य ने शाप देकर ताटकापति सुन्द को मार डाला। उसकी मृत्यु पर ताटका एवं उसके पुत्र मारीच ने अगस्त्य पर आक्रमण किया। अगस्त्य ने दोनों को राक्षस बना दिया। (वा : २५ : १०-१३) अगस्त श्राद्ध में शाकरूपधारी वातापी को खाकर पचा गये। उससे इल्वल के आक्रमण करने पर भस्म कर दिया। (अरण्य : ११ : ६१-६७) विन्ध्य पर्वत सूर्य का मार्गावरोध करने के लिये ऊँचा होने लगा था। अगस्त्य के कहने पर नम्र होकर नत हो गया। (अरण्य : ११ : ८७) रामायण में अगस्त के आश्रमों का उल्लेख किया गया है। वे मलय पर्वत (किष्कि० : ४१ : २२ ; ४१ : १५-१६) महेन्द्र (किष्कि० : ४१ : २२) कुञ्जर पर्वत (किष्कि० : ४१ : ३४-३५) थे। राम को आदित्य हृदय स्तोत्र अगस्त्य ने रावण विजय के लिये बनाया था। (युद्ध : १०५ : १-२७) अगस्त्य को धर्मवेत्ता कहा गया है। (उत्तर : ८२ : ८) उत्तर काण्ड में राम के आग्रह पर मेघनाद, विश्रवा, लंका में राक्षसों का निवास, प्रारम्भिक लंका के राक्षस वंश, रावण की तपस्या, वर प्राप्ति, रावणादि का विवाह, मेघनाद जन्म, कुम्भकर्ण, कुबेर, रावण का

ज्वलन्निव ततः स्फूर्जत्तेजोदुष्प्रेक्ष्यविग्रहः ।
स फणीवोत्फणस्ताम्यन् कोपान्नृपतिमब्रवीत् ॥६४८॥

६४८. तदनन्तर वह प्रज्वलित सा होता हुआ, स्फूर्जित तेज से दुष्प्रेक्ष्य विग्रह युक्त होकर, फण उठाये क्रोधित सर्प तुल्य तमतमाते हुए, सकोप नृपति से बोला—

भवान् यत्र हरिश्चन्द्रस्त्रिशङ्कुर्नहुषोऽपि वा ।
विश्वामित्रमुखेभ्योऽहं तत्रैको भवितुं क्षमः ॥६४९॥

६४९. जहाँ आप हरिश्चन्द्र[1], त्रिशंकु[2] अथवा नहुष[3] है, वहाँ हम भी, विश्वामित्र प्रमुख ऋषियों में एक होने योग्य है ।'

यक्षों पर आक्रमण, मणिभद्र तथा कुबेर पराजय, पुष्पक विमान अपहरण, नन्दीश्वर द्वारा रावण को शाप, शंकर द्वारा रावण का भंग, चन्द्रहास खंग की प्राप्ति, वेदवती का अग्नि प्रवेश तथा उसका शाप, सीता रूप में पुनर्जन्म, रावण द्वारा मरुत् की पराजय, देवताओं द्वारा मयूरादि पक्षियों को वरदान, रावण द्वारा अनरण्य का वध, अनरण्य का रावण को शाप, रावण का यमलोक पर आक्रमण, यम-रावण युद्ध, रावण की विजय, रावण द्वारा कालकेयों का वध, वरुण पुत्रों का पराजय, निवात कवचों से मैत्री, नर्मदा तट पर माहिष्मती नगरी में रावण की शिवपूजा, हनुमान का जन्म, उन पर इन्द्र का वज्र प्रहार, आदि का वर्णन अगस्त्य ने किया था । अगस्त्य की उत्पत्ति, राम के प्रश्न पर उन्हें दिये गये आभूषण का अगस्त्य द्वारा वर्णन, त्रेता युग में शव भक्षी एक पुरुष का वर्णन, राजा श्वेत का दुःखद वृत्तान्त, दान का महत्त्व, राजा दण्ड की कथा, आदि की विस्तार पूर्वक उत्तर काण्ड में कथा कही गयी है ।

महाभारत में संक्षेप में अगस्त्य की कथा दी गयी है । इसमें नहुष के प्रसंग की कथा का विशेष वर्णन किया गया है । (शान्तिः ३४२ : ५१ ; २४४, आदि : १३८ : ९, वन, ९६ : १९, २१; ९७ : ७-२५; ९८ : ४, ९, १५; ९९ : ६, १२, २५; १०३ : १५-१८; १०४ : १२-१३; १७, ५ : ३-६; १६१ : ६०-६२, उद्योग : १७ ; अनु० ९४: ९-१३; ९९ : १६-२१; १०० : १८-१९, ११५ : १३)

पादटिप्पणी

६४९. (१) हरिश्चन्द्र = हरिश्चन्द्र वैधस त्रैशंकव इक्ष्वाकुवंशीय राजा का उल्लेख भारतीय वाङ्मय में मिलता है । उनका नाम सर्वप्रिय है । उनका सत्य के लिये अपूर्व त्याग प्रसिद्ध है । हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र थे । माता का नाम सत्यवती था । (स : ११ : १३९; वसिष्ठ गुरु तथा शैव्या किंवा तारामती इनकी धर्म पत्नी थी । (दे० या० : ७ : १८) वैदिक साहित्य में हरिश्चन्द्र को वैधस' अर्थात् विघस राजा का वंशज कहा गया है । वरुण देवता को अपने रोहित नामक पुत्र को बलि रूप में प्रदान करने को इनके आश्वासन का अस्पष्ट निर्देश प्राप्त है । ऐतरेय ब्राह्मण में हरिश्चन्द्र की कथा विस्तार के साथ दी गयी है । (ऐ : ब्रा : ७ : १४ : २ ; सा, श्रौः १५ : १७) पुराणों में हरिश्चन्द्र को इक्ष्वाकु वंशीय कहा है । उसके पिता का नाम सत्यव्रत था तथा सम्राट् शब्द से उसका सम्बोधन किया है । उसके पुत्र का नाम रोहित किंवा रोहिताश्व दिया है । (या० : ९७ ७-२३ ; ब्राह्मण : ३ : ६३ : ११५)

महाभारत में हरिश्चन्द्र की कथा कुछ विस्तार से दी गयी है । (सभा १२ : १०) वह शक्तिशाली तथा समस्त भूपालों के सम्राट् थे । भूमण्डल के राजा आज्ञाकारी थे । जैत्ररथ पर आरूढ़ होकर शस्त्रों के प्रताप से सप्त द्वीपों पर विजय प्राप्त किया था ।

राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया था। राजसूय के कारण इनको इन्द्र सभा में स्थान मिला था। याचकों को उनकी याचना का पाँच गुना देते थे। (सभा : ११ : ५२-७०; १२ : ११-१८) मांस भक्षण का निषेध किया है। (अनु० : ११५ : ६१)

हरिश्चन्द्र के पुरोहित प्रारम्भ में विश्वामित्र थे। इनके पिता के भी पुरोहित विश्वामित्र थे। राजसूय यज्ञ के समय वसिष्ठ देवराज की प्रेरणा से विश्वामित्र को पौरोहित्य पद से हटा दिया। विश्वामित्र ने अपमान का अनुभव किया। पौरोहित्य पद त्याग दिया। वसिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुनः पुरोहित हो गये। विश्वामित्र क्रुद्ध होकर, हरिश्चन्द्र के विरोधी हो गये।

पौराणिक साहित्य में इस विरोध की रोचक कथा दी गयी है। उस कथा के आधार पर हरिश्चन्द्र नाटक की रचना हुई है। यह नाटक अत्यन्त प्रेक्ष्य एवं सर्वप्रिय भारत में हो गया है। हरिश्चन्द्र की ख्याति सर्वसाधारण में सत्यवादी नाम से है। हरिश्चन्द्र को सत्यनिष्ठ होने के कारण त्रस्त करने की अनेक कथाओं की कालान्तर में कल्पना की गयी। (मार्क० : ८-९) ब्रह्म पुराण के अनुसार विश्वामित्र की दक्षिणा पूर्ति के लिये हरिश्चन्द्र ने स्वयं को, अपनी स्त्री तारामती तथा पुत्र रोहित को बेचा था। उन्होंने तारामती एवं रोहित को एक वृद्ध ब्राह्मण तथा स्वयं अपना शरीर एक स्मशानाधिकारी चांडाल के हाथ बेच दिया था। स्मशान में चांडाल की ओर से स्मशान शुल्क वसूल करते थे। विश्वामित्र ने अपनी माया से रोहित को सर्पदंश करा दिया। रोहित मर गया। पुत्र शोक विह्वला होकर यह तथा इनकी पत्नी अग्नि प्रवेश के लिये तत्पर हो गये। किन्तु वसिष्ठ एवं देवताओं ने उसको इस आपत्प्रसंग से रक्षा की। उसने अपना विगत वैभव एवं राज्य पुनः प्राप्त किया। (ब्रह्म : १०४; मार्क० : ७-८) प्रचलित कथा है। शैय्या से बिना कर लिये हरिश्चन्द्र ने रोहिताश्व का मृत्यु संस्कार नहीं करने दिया। यह घटना काशी में हुई थी। काशी में हरिश्चन्द्र चांडाल अर्थात् डोम के हाथ बिके थे। पुरातन स्मशान का नाम हरिश्चन्द्र घाट है। यहाँ पर मैंने महात्मा गान्धी का भस्म प्रवाह शास्त्रीय विधि से किया था। काशी में डोमों की एक शाखा अपने को 'हरिचन्दी' अर्थात् हरिश्चन्द्री कहती है। स्मशान पर तारा हरिश्चन्द्र तथा रोहिताश्व का इस घटना की स्मृति में रेखा चित्र बना है। यहाँ के डोम अपने को डोम न कहकर हरिचन्दी अर्थात् हरिश्चन्द्र से अपनी वंश परम्परा जोड़ते हैं। उन्हें काशी में डोम राजा कहा जाता है।

हरिश्चन्द्र के सम्बन्ध में एक और कथा प्रचलित है। हरिश्चन्द्र निःसंतान थे। वरुण की कृपा प्रसाद से इनको रोहित पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। इन्होंने वरुण को आश्वासन दिया था कि बड़ा होने पर पुत्र की बलि उन्हें चढ़ा देंगे। हरिश्चन्द्र अपनी बात का पालन न कर सके। रोहित वन में चला गया। वरुण की कोप दृष्टि के कारण हरिश्चन्द्र को 'वरुण व्याधि' अर्थात् जलोदर हो गया। यह पता चलते ही रोहित अरण्य से लौट आया। रोहित के स्थान पर शुनःशेप को यज्ञबलि के लिये प्रस्तुत किया। विश्वामित्र ने शुनःशेप की रक्षा की। उसे अपना पुत्र बना लिया।

हरिश्चन्द्र इक्ष्वाकु वंश की ३३ वीं पीढ़ी में हुए थे। उनके समकालीन ऋषियों में मधुच्छंदस, ऋषभ, रेणु, अष्टक, कति (कत), गालव, विश्वामित्र, शुनःशेप एवं वसिष्ठ देवराज प्रमुख थे।

हरिश्चन्द्र के पुत्र बलि की कथा पुरातन बाइबिल वर्णित इब्राहीम की कथा से मिलती है। इब्राहीम अपने पुत्र की बलि ईश्वर के नाम पर डोम आफ रॉक यरुशलम में करने के लिये ज्यों ही तत्पर हुए ईश्वर ने उन्हें पुत्र बलि से रोक लिया।

(२) त्रिशंकु—भारतीय वाङ्मय में दो त्रिशंकुओं का उल्लेख मिलता है। एक का उल्लेख ऋषिरूप (तै: उ० १ : १०) में मिलता है। वेदानुवचन कहता है—'मैं संसार को हिलाने वाला हूँ। मेरे सम्मुख सब कुछ तुच्छ है। मैं साकार हुआ, पावित्र्य हूँ। मैं सूर्य स्थित अमर तत्त्व हूँ। मैं अमूल्य तत्त्व हूँ। मैं अमूल्य द्रव्यनिधि हूँ। मैं ज्ञान युक्त हूँ। अमर हूँ। अभय हूँ।'

निःसन्देह उक्त त्रिशंकु तथा पुराण, रामायण, महाभारत वर्णित राजा त्रिशंकु से भिन्न व्यक्ति है। कल्हण का तात्पर्य यहाँ पर अयोध्यापति राजा त्रिशंकु से है।

पुराणों के अनुसार त्रिशंकु इक्ष्वाकु वंशीय था। उसका विवाह केकय वंशजा सत्यरथा से हुआ था। त्रय्यारुण का पुत्र था। उसका पुत्र हरिश्चन्द्र था। वह त्रैशंकु नाम से विख्यात हुआ (ह: व: १३१३) रामायण (उत्तर : ७० : १४) में त्रिशंकु के पुत्र का नाम धुन्धुमार दिया गया है।—उसका मूल नाम सत्यव्रत था। विदर्भ राज कन्या का बलात् अपहरण किया था। इस अनुचित कार्य से रुष्ट होकर, पिता ने उसे 'अपध्वंस' कह कर त्याग दिया। वन में श्वपाकों के साथ रहने का आदेश दिया। वसिष्ठ ने भी उसे ग्रहण नहीं किया। सत्यव्रत के अधर्म के कारण राज्य में द्वादश वर्ष अवर्षण हुआ। घोर अकाल पड़ा। उस समय विश्वामित्र अपने परिवार को वन में रखकर सागरानूप में तप कर रहे थे। इस विपत्ति काल में सत्यव्रत ने विश्वामित्र के परिवार का पालन किया। विश्वामित्र की पत्नी में अपने मझले पुत्र को एक शत गायों को लेकर बेच दिया। सत्यव्रत ने उसे छुड़ा लिया। सत्यव्रत बड़ी निष्ठा से विश्वामित्र के परिवार की रक्षा वन पशुओं को मारकर करने लगा। सत्यव्रत राज्य पुनः प्राप्त करे, वसिष्ठ ने इसका कोई प्रयास नहीं किया। सत्यव्रत वसिष्ठ से अन्यमनस्क हो गया। एक दिन मांस के अभाव में सत्यव्रत ने वसिष्ठ की कामधेनु को मार कर उसका मांस स्वयं खाया तथा विश्वामित्र के परिवार को खिलाया। वसिष्ठ ने उसे तीन श्राप दिया। पाप—पिता को असंन्तुष्ट करना, गुरु गाय का बध, बिना प्रोक्षण किये मांस भक्षण के कारण उसे तीन शंकु होंगे। दूसरे स्थान पर तीन पापों में गोवध, स्त्री हरण तथा पिता का क्रोध कहा गया है। उसे तीन शंकु हो गये। अतएव उसका नाम सत्यव्रत से त्रिशंकु हो गया। कामधेनु वध के कारण वसिष्ठ ने उसे पिशाच होने का शाप दिया।

विश्वामित्र तपश्चर्या समाप्त कर लौटे। उन्हें अपने परिवार की विपन्नावस्था तथा सत्यव्रत के उपकार की बात ज्ञात हुई। त्रिशंकु का आभार प्रदर्शन किया। त्रिशंकु को राज्य प्राप्त कराने का विचार किया। बारह वर्ष पश्चात् त्रिशंकु राज्य पद पर अभिषिक्त किया गया। विश्वामित्र ने उसका गुरु बनना स्वीकार किया। त्रिशंकु के हेतु विन्ध्य पर्वत के समीप नदी तट पर यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के पश्चात् त्रिशंकु नदी में अवभृथ स्नान किया। सशरीर स्वर्ग चला गया। वसिष्ठ के कहने पर, देवताओं ने उसे स्वर्ग से उलटे शिर नीचे गिरा दिया। विश्वामित्र ने अपने तपोबल से उसे अधर में ही रोक लिया। वह आकाश में लटकता रह गया। (वायु : ८८ : ७८–११४, ११७, ११८, विष्णु : ४ : ३ : १३–१३–१५, ब्रह्माण्ड : ३ : ६३ : ७७, ११५, ब्रह्म : १५ : ९७–१०६, ६ : २४; भाग० : ९ : ७ : ५–७)

कुछ ग्रन्थों में इसके पिता का नाम निबंधन दिया गया है। (ब्रह्म० ८, ९७, ह० व० : १ : १२; पद्म० : सृ० : ८ : दे० भा० ७ : १०) वसिष्ठ एवं विश्वामित्र के मनोमालिन्य एवं संघर्ष का कारण त्रिशंकु था। इस संघर्ष के कारण त्रिशंकु का जीवन चरित नाटयपूर्ण रुचिमय बन गया है। देवी भागवत में कथा दी गयी है। त्रिशंकु ने एक ब्राह्मणी विवाहिता स्त्री का अपहरण किया। त्रिशंकु ने घोषित किया। वह दोषरहित था। सप्तपदी के पूर्व अपहरण किया था। वसिष्ठ ने तर्क समुचित न मानकर उसका राज्य निर्वासन उसके पिता से कहकर करवा दिया। पिता स्वयं दूसरे पुत्र की कामना से वन में तपस्या करने चला गया। राजविहीन अयोध्या की व्यवस्था बिगड़ गयी। वसिष्ठ ने इसे कामधेनु वध के कारण पिशाच होने का शाप दिया था। देवी की कृपा से त्रिशंकु का पिशाचत्व नष्ट हो गया। तत्पश्चात् पिता ने इसे पुनः राजसिंहासन पर बैठाया। (दे० : भा० : ७ : १२)।

हरिवंश में कथा है। विश्वामित्र ने त्रिशंकु के

उपकारों के कारण उससे वर माँगने के लिये कहा। उसने सदेह स्वर्ग जाने का वर मांगा। (ह० वं० : १ : १३) विश्वामित्र ने यज्ञ का आयोजन किया। वसिष्ठ के अतिरिक्त अन्य ऋषियों ने यज्ञ में भाग लिया। वसिष्ठ पुत्रों ने सन्देश भेजा—'जहाँ यज्ञ कराने वाला चाण्डाल, उपाध्याय क्षत्रिय है, वहाँ यज्ञ में कौन भाग लेगा?' विश्वामित्र क्रुद्ध हो गये। वसिष्ठ को शाप दिया—'अगले जन्म में वह चांडाल के घर में होगा।'

वाल्मीकि रामायण में त्रिशंकु को सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय कहा गया है। (बाल० ५७ : १०–११) वह कथा अन्य स्थलों में वर्णित कथा से कुछ भिन्न है। उसने गुरु वसिष्ठ से अपना विचार कहा। वसिष्ठ ने कहा—'यह कार्य करने में अशक्य है।' वसिष्ठ के अस्वीकार करने पर त्रिशंकु गुरुपुत्रों के पास दक्षिण दिशा गया। वे वहाँ तपस्या कर रहे थे। उनसे निवेदन किया—'शरणागत हूँ। मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। आप लोग प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ का आयोजन करें।' गुरु पुत्र क्रोधित होकर बोले—'दुर्बुद्धे! सत्यवादी गुरु ने जब अस्वीकार कर दिया और करने में अशक्यता प्रकट की तो उसे हम कैसे कर सकते हैं?' त्रिशंकु ने पुनः निवेदन किया। किन्तु वसिष्ठ पुत्रों ने अस्वीकार किया। त्रिशंकु ने कहा—'ऐसी स्थिति में मैं किसी और की शरण में जाऊँगा।' त्रिशंकु की बात सुनते ही वसिष्ठ पुत्रों ने शाप दिया—'तू चाण्डाल हो जा।'

रात्रि आते ही त्रिशंकु चाण्डाल हो गया। शरीर का वर्ण नीला हो गया। वस्त्र नीला हो गया। रुक्ष हो गया। सर के केश छोटे छोटे हो गये। शरीर में चिता भस्म जैसे लग गयी। अंगों में लौह आभूषण पड़ गये। राजा के साथ आये मन्त्री तथा पार्षद गण साथ त्याग कर भाग गये। त्रिशंकु त्रस्त मन विश्वामित्र की शरण गया। विश्वामित्र यज्ञ कराने के लिये उद्यत हो गये। अपने पुत्रों को यज्ञ का आयोजन करने के लिये कहा। शिष्यों को ऋषियों आदि को आमन्त्रित करने के लिये भेजा। वसिष्ठ पुत्रों ने कहा—'जिसका याजक क्षत्री है, यज्ञकर्ता चांडाल है, उसके यज्ञ में देवर्षि, महात्मा गण हविष्य भोजन किस प्रकार ग्रहण कर सकेंगे। चांडाल का अन्न खाकर विश्वामित्र पालित ब्राह्मण किस प्रकार स्वर्ग गमन कर सकेंगे?' विश्वामित्र ने शिष्यों से वसिष्ठ पुत्रों की बात सुनी। उन्हें शाप दिया—'भस्मीभूत होकर वे मुष्टिक चाडांल नामक जाति में जन्मग्रहण करेंगे।'

यज्ञ आरम्भ हुआ। परन्तु देवताओं का आगमन विश्वामित्र के आवाहन पर यज्ञ भाग ग्रहण करने हेतु नहीं हुआ। विश्वामित्र क्रोधित हो उठे। श्रुवा उठकर त्रिशंकु से बोले—'राजन्! तुम मेरे तप बल से स्वर्ग सशरीर जाओगे।' त्रिशंकु स्वर्ग पहुँच गये। उन्हें देखते ही इन्द्र ने कहा—'तुम्हारे लिये स्वर्ग में स्थान नहीं है। तू उलटे मुख पृथ्वी पर लौट जा।' त्रिशंकु 'त्राहि त्राहि' करते नीचे गिरा। विश्वामित्र क्रोधित होकर बोले—'राजन्! वहीं ठहर जा, ठहर जा।' त्रिशंकु अधर में लटक गया। विश्वामित्र ने ऋषियों के मध्य ही प्रजापति के समान दक्षिण मार्ग के लिये नवीन सप्तर्षियों की सृष्टि की। नवीन नक्षत्रों का निर्माण किया। उन्होंने दूसरे इन्द्र एवं स्वर्ग लोक की कल्पना की। नूतन देवताओं का सृजन आरम्भ कर दिया। ऋषि एवं देवतागण नवीन सृष्टि रचना से अत्यन्त चिन्तित हुए। उन्होंने विश्वामित्र से अपने कार्य से विरत होने के लिए निवेदन किया। देवताओं ने स्वीकार किया। त्रिशंकु स्वर्ग सुख का उपभोग करेंगे। नक्षत्रों एवं सृष्टियों का विश्वामित्र द्वारा जो निर्माण हुआ था, वे यथावत् रहेंगे। त्रिशंकु की स्थिति देवताओं तुल्य होगी। सभी नक्षत्र कृतार्थ एवं यशस्वी नृपश्रेष्ठ त्रिशंकु का स्वर्गीय पुरुष की भाँति अनुसरण करेंगे। (वा० वाः ५७–६० सर्ग; स्कन्द पुराण ५ : ६ : २ : ७) में कथा है कि ब्रह्मा स्वयं आये और विश्वामित्र की सृष्टि अक्षय रखने का वचन दिया। त्रिशंकु साथ सत्य लोक गये। महाभारत (आदिः ७१; सभाः १२) में यह कथा संक्षेप में दी गयी है।

विहस्योवाच तं राजा विश्वामित्रादिकोपतः ।
हरिश्चन्द्रादयो नष्टास्त्वयि क्रुद्धे तु किं भवेत् ॥६५०॥

६५०. राजा ने हँसकर उससे कहा,—'विश्वामित्र आदि के कोप से हरिश्चन्द्रादि नष्ट हो गये, किन्तु तुम्हारे क्रुद्ध होने से क्या होगा ?'

पाणिना ताडयन्नुर्वीं ततः क्रुद्धोऽभ्यधाद् द्विजः ।
मयि क्रुद्धे क्षणादेव ब्रह्मदण्डः पतेन्न किम् ॥६५१॥

६५१. तदनन्तर, क्रुद्ध द्विज हाथ से पृथ्वी पर आघात करते हुए, बोला—'मेरे क्रुद्ध होने पर क्षण में ही क्या ब्रह्म दण्ड[1] नहीं गिरेगा ?'

तच्छ्रुत्वा विहसन् राजा कोपाद्ब्राह्मणमब्रवीत् ।
पततु ब्रह्मदण्डोऽसौ किमद्यापि विलम्बते ॥६५२॥

६५२. यह सुनकर हँसते हुए राजा ने क्रोध पूर्वक ब्राह्मण[1] से कहा—'वह ब्रह्मदण्ड गिरे, अभी आज भी, क्यों विलम्ब हो रहा है ?'

त्रिशंकु तारा प्राचीन भारतीय खगोलविदों के अनुसार पृथ्वी से तीन शंकु अर्थात् तीस महापद्म मील दूर स्थित है ।

सत्यव्रत किंवा त्रिशंकु इक्ष्वाकुवंश की ३२ वीं पीढ़ीं में थे । उनके समकालीन वसिष्ठ वंश-ऋषि का नाम देवराज, भार्गव वंशीय ऋषि जमदग्नि, अजीगर्त, तथा अन्य ऋषि विश्वामित्र थे ।

पादटिप्पणी :

६५० (१) हरिश्चन्द्र = त्रिशंकु का पुरोहित विश्वामित्र ही हरिश्चन्द्र का सर्वप्रथम पुरोहित था । राजसूय यज्ञ के समय हरिश्चन्द्र के कारण विश्वामित्र को अपमान का कष्ट उठाना पड़ा। हरिश्चन्द्र ने राजसूय यज्ञ में विश्वामित्र को दक्षिणा देना अस्वीकार कर दिया । अपमान का अनुभव कर विश्वामित्र पुरोहित पद त्यागकर पुष्कर तीर्थ में तपस्या करने चला गया । विश्वामित्र के विरोध के कारण हरिश्चन्द्र को राज्य त्याग कर नाना प्रकार का कष्ट उठाना पड़ा था ।

पादटिप्पणी :

६५१ (१) ब्रह्मदण्ड : ब्रह्मदण्ड का अर्थ ब्राह्मण का अभिशाप होता है । भगवान् बुद्ध ने छन्न भिक्षुओं के लिये ब्रह्मदण्ड का विधान किया था ।

"कतमो पन भन्ते ! ब्रह्मदण्डोति ?"

"छन्नो आनन्द !! भिक्खुयं इच्छेय्य, तं वदेय्य, वदि सो भिक्खूहि नेव वत्तब्बो न ओवदितब्बो, न अनुसासितब्बोति ।"

'भन्ते ! ब्रह्मदण्ड क्या है ?'

'आनन्द ! छन्न भिक्षु, जो चाहे, सो कहे, भिक्षुओं को उससे न बोलना चाहिए, न उपदेश, न अनुशासन करना चाहिए ।"

(महापरिनिब्बान सुत्तं १६०)

पादटिप्पणी :

६५२ (१) ब्राह्मण = इट्ठिल तथा राजा का संवाद ब्राह्मणों के कुसंस्कार तथा उनका गर्व दिखाता है । इस प्रकार का संवाद यूरोप के साहित्य में पादड़ियों एवं राजा तथा सामन्तों में बहुत हुए हैं । दोनों एक दूसरे पर अपनी प्रधानता दिखाने का प्रयास करते रहे हैं । उन्हें पढ़कर वशिष्ठ एवं राजा विश्वामित्र का संवाद स्मरण हो जाता है ।

नन्वयं पतितो जाल्मेत्यथ विप्रेण भाषिते ।
राज्ञः कनकदण्डोऽङ्के वितानस्खलितोऽपतत् ॥६५३॥

६५३. 'हे जाल्म[1] ! यह गिरा ।'—इस प्रकार विप्र के कहते ही राजा के अंग पर वितान से स्खलित होकर स्वर्ण दण्ड गिरा ।'

कृतव्रणः स तेनाङ्के विसर्पक्लिन्नविग्रहः ।
कीर्यमाणक्रिमिकुलः क्रकचैश्चारितैरभूत् ॥६५४॥

६५४. उसके अंग में व्रण और शरीर में फैलता हुआ घाव, कृमि कुल से आकीर्ण हो गया, जिस कारण क्रकच (आरी) से काटा गया ।

अनुभाव्य व्यथां भाविनिरयक्लेशवर्णिकाम् ।
गणरात्रेण तं प्राणाः काङ्क्षितापगमा जहुः ॥६५५॥

६५५. भावी नारकीय क्लेश सूचक व्यथा का अनेक रात्रियों तक अनुभव करके, आकांक्षित प्राणों ने ही उसे त्याग दिया ।

ब्रह्मदण्डकृतं दण्डं भुक्त्वा दण्डधराधिपः ।
अकाण्डदण्डस्रष्टाऽथ ययौ दण्डधरान्तिकम् ॥६५६॥

६५६. अकाण्ड दण्ड दाता वह दण्डधराधिप[1], ब्रह्मदण्ड कृत दण्ड का भोग करके, दण्डधर[2] (यम) के निकट प्राण किया ।

पादटिप्पणी :

६५३ (१) जाल्म का अर्थ निष्ठुर, नृशंस, पामर, मूर्ख होता है । जाल्मक गुरु ब्राह्मण या मित्र के साथ द्वेष करने वाले को कहते हैं । इसका भाव नीच किंवा अधम शब्द में लक्षित होता है ।

—अपि ज्ञायते कतमेन दिग्भावेन गतः स जाल्म इति । (विक्रम : १)

पीर हसन लिखता है—'एक बरहमन ने हाथ उठाकर उस पर लानत कही । फिलहाल खेमा का सतून लुढ़क गया, जिससे उसका पाँव मजरूह हो गया । और ज़ख़्म नासूर तक पहुँच गया । कीड़े तकलीफ़ पहुँचाते थे । आख़िरकार इसी तक़लीफ के साथ जान से गुज़र गया' (पृष्ठ : ९२) ।

पादटिप्पणी :

६५६—सूक्ति संग्रह का १४९ वां श्लोक है ।

(१) दण्डधराधिप = राजा ।—श्रमनुदं मनुदण्डधरान्वयम्—रघु० : ९ : ३ । दण्डाधिप, दण्डनाथ, दण्डपति का अर्थ भिन्न है । इन शब्दों का अर्थ सेना के पदाधिकारियों से सम्बद्ध है ।

(२) दण्डधर = यम के चौदह नाम— (१) धर्मराज, (२) पितृपति, (३) समवर्तिन्, (४) परेत-राज, (५) कृतान्त, (६) यमुनाभ्रातृ, (७) शमन, (८) यमराज, (९) यम, (१०) काल, (११) दण्ड-धर, (१२) श्राद्धदेव, (१३) वैवस्वत तथा (१४) अन्तक है । यम पापियों को उनके कर्म अनुसार न्याय-पूर्वक दण्ड देते हैं, अतएव दण्डधर नाम से उनकी संज्ञा दी गयी है । कौटिल्य दण्ड तथा उसकी व्यवस्था को अत्यधिक महत्त्व देता है—

अप्रणीतो हि मात्स्यन्यायमुद्भावयति :
बलीयानबलं हि ग्रसते दण्डधराभावे ॥
(कौटिल्य : १ : ४.)

भगवद्गीता में कृष्ण ने दण्ड के सम्बन्ध में जो

तस्यानियतचित्तस्य त्रिंशतं परिवत्सरान् ।
एवं प्रतापिनः सैकान् भूभोगो भूपतेरभूत् ॥६५७॥

६५७. इस प्रकार इस अनियमित चित्त वाले प्रतापी भूपति ने इकतीस वर्ष पृथ्वी का भोग किया।

तथा भूभृन्मत्स्या द्रविणकलुषाम्भःकृततृषः
स्थितिं स्वामुज्झन्तो विदधति कुमार्गानुसरणम् ।
क्रियन्ते कार्तान्तानुगविकृतकैवर्तनिवहै-
र्यथा ह्येतेऽकस्मात् स्थिरनिरयजालप्रणयिनः ॥६५८॥

६५८. भूभृत् द्रव्य के, मत्स्य, कलुषित, जल के प्यासे होकर, अपनी मर्यादा त्यागकर, कुमार्ग (पृथ्वी) का अनुसरण करते हैं। जिससे अकस्मात् ये दोनों यमदूत एवं कैवर्त[1] (केवट मांझी) समूहों से स्थायी नरक तथा जल के प्रणयी बना दिये जाते हैं।

कहा है वही अभिप्राय कल्हण ने प्रकट किया है।

दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥
(गी० : १० : ३८)

शान्तिपर्व में दण्डनीति को ही राजधर्म कहा गया है :

दण्डेन नीयते चेदं दण्डं नयति तत् पुनः ।
दण्डनीतिरिति ख्याता त्रींल्लोकानभिवर्तते ॥
(शान्ति० : ५९ : ७८)

कौटिल्य ने दण्ड ही को सबका मूल माना है :
आन्वीक्षिकी त्रयी वार्तानां योगक्षेमसाधनो दण्डः ।
तस्य नीतिः दण्डनीतिः ॥ (अर्थ : १ : ४)

जैन मान्यता के अनुसार दण्ड तीन प्रकार अर्थात् त्रिविध होता है। मन, वचन एवं काय भेद के आधार पर उनका विभाजन किया गया है। राग द्वेष एवं मोह के कारण भी दंड का त्रिविध रूप माना गया है।
(चारित्र सार : ९९ : ५)

द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा : ४ : १०५.

पादटिप्पणी :

६५८—सूक्ति संग्रह का यह १५० वां श्लोक है।

(१) स्थिति = इस पद में स्थिति श्लिष्ट है। मछली के लिये स्थिति का अर्थ स्थान किंवा पृथ्वी है। राजा के लिये स्थिति का अर्थ राजा का शासकीय स्थायित्व है।

(२) कैवर्त = मनु ने कैवर्तों को भार्गव पिता एवं अयोगवी माता से उत्पन्न एक वर्ण शंकर जाति माना है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में कैवर्तों की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता तथा वैश्य माता से लिखी है। इसी शब्द का अपभ्रंश केवट शब्द है। उनका मूल चाहे जो रहा हो। कल्हण का अर्थ यहाँ पर मछुए किंवा मांझी से है, जो मछली मारने का कार्य करते हैं। अमरकोशकार ने दास एवं धीवर जाति में उनकी गणना की है।

आसाम में कैवर्त शूद्र वर्ग में है। मेधातिथि ने मनु पर लिखते हुए मत प्रकट किया है कि कैवर्त वह शंकर जाति है। (१० : ४) मनु ने लिखा है (१० : ३४) कैवर्त जाति अयोगव स्त्री द्वारा निषाद से उत्पन्न सन्तान को कहते हैं। उनकी जीविका नौका चलाना है। शंकराचार्य वेदान्त सूत्र (२ : ३ : ४३) के सन्दर्भ में लिखते हैं कि दास तथा कैवर्त एक ही हैं। जातक ग्रन्थों में मछुए, जो जाल लेकर मछली मारते हैं, उन्हें केवट कहा है। केवट हिन्दी भाषा में मल्लाह को कहते हैं।

कृतपापं तमुद्दिश्य विपन्नममृतप्रभा ।
मृतोद्धाराय तन्माता व्यधत्तामृतकेशवम् ॥६५९॥

६५९. विपन्न उस पापी को उद्देश्य बनाकर, उसकी माता अमृतप्रभा ने मृत के उद्धार हेतु अमृत केशव[1] की प्रतिष्ठा की।

ललितापीड :

ललितापीडनामाऽभूत्ततो वसुमतीपतिः ।
देव्यां दुर्गाभिधायां यो जयापीडादजायत ॥६६०॥

६६०. अनन्तर दुर्गा देवी नाम्नी देवी में उत्पन्न जयापीड का पुत्र ललितापीड वसुमती पति हुआ।

आसाम में कैवर्तों की गणना अनुसूचित अर्थात् हरिजन जाति में की जाती है। मनु पर लिखते (१० : ४) मेधातिथि ने कैवर्तों को शंकर जाति माना है।

पादटिप्पणी :

६५९ (१) अमृत केशव = स्थान का पता नहीं चलता।

पादटिप्पणी :

६६०—श्री दत्त ललिता पीड का अभिषेक काल कलि० ३८७७=शक, ६९८=लौ० ३८५२=सन् ७७६ श्री स्तीन लौ० ३८५९ वर्ष. ३ मास २८ दिन, सी. एम. सन् ७२६ ई० श्री पण्डित सन् ७८५, श्री विलसन सन् ८०३ ई० १० मास, श्री ट्रोयर सन् ७८५ ई० ८ मास, २० दिन, श्री कनिंघम सन् ७८२ ई० ११ मास, डाइनोस्टिक हिस्टोरी ऑफ इण्डिया में सन् ७८३ ई०, पीर हसन विक्रमी ८३८ सम्वत् जिसका सन् ७८१ ई०, त्रिवेद सन् ७६८ ई० = शक ६९० देते हैं। राज्यकाल सर्व श्री ट्रोयर दत्त स्तीन, पंडित विलसन तथा आइने अकबरी १२ वर्ष एवं पीर हसन ११ वर्ष ९ मास देता है। राजतरंगिणी संग्रह में ललितापीड एवं संग्रामपीड का संयुक्त राजकाल १२ वर्ष दिया गया है।

आइने अकबरी : लुल्तनुंन्ड नाम दिया गया है। आइने अकबरी के अनुसार वह बुरे लोगों तथा आलसी और विदूषकों के साथ में पड़ गया। उसने बुद्धिमानों और अनुभवी लोगों को बहुत कष्ट दिया। उसके वजीरों ने उसे अच्छी सलाह देने की कोशिश की, किन्तु उसने कुछ ख्याल नहीं किया। आखिर उसे राज्य त्याग कर जाना पड़ा। अबुलफजल की राज्य त्याग करने की बात ठीक नहीं है।

कल्हण राजत्याग की बात नहीं करता। अबुलफजल ने आइने अकबरी में सुनी सुनायी बात के आधार पर उसका राज्य त्यागना लिखा है। (आइने अकबरी पृष्ठ = ४३२)

हसन लिखता है—'राजा ललितापीड फरज़न्द जयापीड ने विक्रमी ८३८ में हकूमत का ताज सर पर रख कर ऐश व इशरत और खवाहिशात नफ़सानी में मशगूल हो गया। एक मयफरोश की लड़की जयादेवी को अपनी हम वस्तरी के लिये पसन्द करके, उसके हुस्न व जमाल पर आशिक था। कमीने व रजील आदमियों के साथ दोस्ती व मुहब्बत रखता था। इस वजह से उसके इन्तज़ाम सल्तनत में खलल पड़ गया। मौज़ा सोनापारह और मनला पूरह आबाद करके बरहमनों की जागीर में बख्श दिये। ग्यारह साल और नौ महीने हकूमत करके मर गया।' (पृष्ठ ९२)

समसामयिक घटनाएँ :

६६०. ध्रुव निरूपम पुत्र कृष्ण प्रथम राष्ट्रकूट का अभिषेक (सन् ७८०-७९३ ई०), कन्स्टनटाइन षष्ठ सम्राट् हुआ, अहमद इब्नहनवल का जन्म। तेह-त्सुंग-तुंग वंशीय चीन सम्राट् था। अलमकनअ या अलमकन्न खुरासान का एक राज्यहरणकर्ता था।

बभूव रागिणो राज्ये राज्यकार्याण्यपश्यतः ।
यस्य वाराङ्गनाभोज्यं राज्यं दुर्नयदूषितम् ॥ ६६१ ॥

६६१. राज कार्य न देखने वाले, रागी के राज्य में दुर्नय (कुनीति) दूषित जिसका राज्य वारांगनाओं का भोग बन गया।

दैवी शक्तिमान होने का दावा करता था अलमेहदी खलीफा बगदाद ने उसके विरुद्ध सेना भेजी। वह एक दुर्ग में अपने कुटुम्ब के साथ आत्मदाह कर लिया और कहा कि पुनः जन्म ग्रहण करेगा। ईरान पूर्वीय रोमन साम्राज्य का शासक हुआ। युंग सुंग कोरिया का राजा हुआ। सन् ७८१ में पंचतन्त्र का पहेलवी से अरबी में अनुवाद अब्दुल्ला विन हवाज़ ने किया। सन् ७८२ ई० में धर्मेन्द्र वर्मा शैलेन्द्र साम्राज्य (दक्षिण पूर्व एशिया) के राजा का गुरु गौड़देशीय कुमार घोष हुआ। प्रज्ञा श्रमण ने चीन की यात्रा की। महायान बुद्ध शत पारमिता सूत्र का चीनी भाषा में अनुवाद किया। जापान में स्त्रियाँ राज्याधिकार से वर्जित की गयीं। जापान सन् ७८३ ई० का सम्राट् कुम्मू हुआ। सन् ७८३ ई० में इन्द्रायुध राजा हुआ। ध्रुव राष्ट्रकूट का राजा हुआ। जय वाराह सौराष्ट्र का राजा था। उमर अल मकसूस का काल। वत्सराज ने प्रतिहार वंश स्थापित किया। जिनसेन ने वर्धमानपुर में हरिवंश पुराण पूर्ण किया। हादी खलीफा (७८३-७८६ ई०) हुआ। चीन में चाय व्यापार पर एकाधिकार का प्रयास किया गया। सन् ७८४ ई० में ओफ्फा के डाइक्सो ने मरसिया तथा वेला मध्य सीमा निर्धारण किया। जापान की राजधानी अस्थायी रूप से नागाओका हटायी गयी। सन् ७८५ ई० में उदय या दप्पुल श्री लंका का राजा (सन् ७८५-७९० ई०) हुआ। विडकुण्डी सेक्सन ड्यूक ने ईसाई धर्म ग्रहण किया। कुआंग सिन कोरिया का राजा हुआ। सेक्सोनो में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। मुनलट पगान का राजा हुआ। सन् ७८६ में हारू रशीद (सन् ७८६--८०९ ई०) अब्बासी खलीफा हुए। काबुल पर द्वितीय बार आक्रमण का आदेश खलीफा ने दिया। इन्द्र वर्मा चम्पा के पंचम वंश का राजा हुआ। सन् ७८७ ई० जावा ने चम्पा पर आक्रमण किया। चीन के सम्राट् ने बगदाद के खलीफा से सन्धि की। चीन ने कुछ भारतीय राजाओं से तिब्बत के विरुद्ध सन्धि की। ब्रिटेन पर डेनिश आक्रमण आरम्भ हुआ। ओफ्फा ने आर्च विशप शिप लोच फील्ड में स्थापित किया। इदरीस ने स्वतन्त्र राज्य मोरक्को में स्थापित किया। सन् ७८८ ई० में शिवकुमार (द्वितीय) पश्चिमी गंग का राजा हुआ। (सन् ७८८--८१२ ई०) श्री शंकराचार्य का जन्म (सन् ७८८--८२० ई०)। कन्स्टन टाइन प्रथम स्काट राजा हुआ। सन् ७९० ई० ध्रुव राजा राष्ट्रकूट उत्तर विजय कर दक्षिण आया। महेन्द्र (तृतीय) शिला मेघ वर्ण लंका का राजा हुआ (सन् ७९०--७९४ ई०)। सन् ७९० में ओफ्फा ने सन्त अलवन का अबे स्थापित किया। इशहाक इब्न सुलेमान सिन्ध का सूबेदार हुआ। विश्वरूप पारसियों का प्रथम अग्निमन्दिर संजन काठियावाड़ में स्थापित हुआ। याज्ञवल्क्य स्मृति का भाषा किया। सन् ७९२ में महायान सम्प्रदाय की शास्त्रार्थ में तिब्बत की विजय हुई। सन् ७९३ चम्पा के राजा इन्द्रवर्मा ने चीन सम्राट् को भेंट भेजा। गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट का राजा हुआ। (सन् ७९३--८१४ ई०)। ओफ्फा ने पूर्वीय आंगलिया पर अधिकार किया। सन् ७९४ ई० में नागभट्ट तथा राष्ट्रकूट में सन्धि, बगदाद में राजकीय कागज का कारखाना खुला। सन् ७९४--७९५ ई० अग्रबोधि (अष्टम) लंका का राजा हुआ (सन् ७९४--८०५ ई०। सन् ७९५ ई० संग्रामपीड (द्वितीय) = पृथिव्यापीड काश्मीर का राजा हुआ।

पादटिप्पणी :

६६१ (१) वारांगना = स्त्री शब्द के साथ

दुष्कृतेनार्जितं वित्तं पित्रा निरयभागिना ।
यश्चारणादिषु न्यस्यन्ननुरूपं व्ययं व्यधात् ॥ ६६२ ॥

६६२. नरकभागी पिता को दुष्कृति द्वारा अर्जित धन, जिसने चारण[1] आदि को प्रदान कर अनुरूप व्यय किया ।

'वार' लगाने पर स्त्री शब्द पण्यस्त्री, रूपाजीवा, गणिका, वेश्या, पतुरिया आदि के अर्थ में लिया जाता है । वारनारी वारवधू आदि भी कहते हैं । यद्यपि वारांगना का अर्थ, नारी, युवती, योषिता, वनिता, विलासिनी, सुन्दरी भी होता है परन्तु यहाँ वारांगना शब्द प्रथम वर्ग पण्यस्त्री आदि के अर्थ में ही प्रयोग किया गया है ।

पादटिप्पणी :

६६२. सूक्ति संग्रह का यह १५१ वां श्लोक है ।

(१) चारण = चारण का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है—'नर्तकानां नटानां चारणानां तथैव च—' (नी. ८ : ६) चारण जाति काश्मीर में निवास करती थी । नील मत ने स्पष्ट उल्लेख किया है—'सिद्धचारणसेवितम् ।' (नी. २३) चारण सिद्धों के समान एक मानव वर्ग था । समाज में उनकी पुराण काल से ही स्थिति थी । कल्हण के उल्लेख से प्रकट होता है कि काश्मीर में यह जाति पुरा काल से निवास करती थी । चारण शब्द के उल्लेख से इतिहास पर प्रकाश पड़ता है । चारण जाति काश्मीर में थी । इससे स्पष्ट होता है; धुर उत्तर काश्मीर से लेकर दक्षिण तक चारण जाति का अस्तित्व था । समाज में सम्मान था । चारणों को राजा ने धन दिया । इसकी प्रशंसा कल्हण करता है । इस व्यय को उचित माना है ।

चारण की उत्पत्ति दैवी कही गयी है । भागवत पुराण के अनुसार चारण वास्तव में स्वर्गीय देवता है । (भा० : ३ : २७-२८) ब्रह्मा ने चारणों का कर्तव्य देवताओं की स्तुति करना निर्धारित किया है । (भा० २४९ : ३५) चारणों का मूल निवास स्थान सुमेरु था । उन्होंने मेरु त्याग कर आर्यावर्त के हिमालय भू भाग में निवास स्थान बनाया था । (बाल० : १७ : ९, ५७ : १८; अरण्य : ५४ : १०; सुन्दर : ५५ : २९, उत्तर : ४ : ४) रामायण के अनुसार चारण हिमालय पर्वत पर निवास करते थे । (बाल० : ४८: ३) रामायण में अलौकिक देवता के रूप में चित्रित किये गये हैं ।

चारणों पर रामायण द्वारा बहुत प्रकाश पड़ता है । ब्रह्मा ने चारणों को आदेश दिया था । राम की सहायता हेतु वे वानर सन्तान उत्पन्न करें । (बाल० : १७ : ९) रामायण से उनका कर्तव्य प्रकट होता है । चारणों का काम वन्दना करना था । सम्भव है । इनका प्रारम्भिक कार्य देवताओं की वन्दना एवं स्तुति करना था । कालान्तर में राजाओं तथा विशिष्ट पुरुषों की भी वन्दना आरम्भ कर दिये थे । भारत में भाट जाति के समान चारण जाति भी निवास करती है । मुसलिम काल में मन्दिरों के विनाश पश्चात् उत्तर भारत में मन्दिरों की व्यवस्था नष्ट हो गयी । सेवा पूजा बन्द हो गयी । देवदासी प्रथा का लोप हो गया । देवदासी, चारण, बन्दी आदि राजस्थान उड़ीसा तथा दक्षिण में मन्दिरों तथा राजदरबारों में सीमित हो गये । आज यह प्रथा लुप्त हो गयी है ।

चारण भी देव वन्दना के स्थान पर राजाओं की स्तुति एवं वन्दना जीविकोपार्जन के लिये करने लगे । उनकी वाणी देवताओं के स्थान पर राजाओं की स्तुति करने लगी ।

ब्रह्मपुराण के अनुसार चारणों को भूमि पर निवसित करने वाले महाराज पृथु थे । उन्होंने चारणों को दक्षिण तैलंग देश में बसाया । वहाँ चारण गण देवताओं की स्तुति त्याग कर राजवंश, राजपूत्रों एवं राजाओं की स्तुति करने लगे थे । (ब्रह्म० : भूमि ;

२८ : ८८) इसी स्थान से उनके भारत में फैलने की बात कही गयी है। महाभारत युद्ध के पश्चात् अनेक स्थानों पर चारण वंश का लोप हो गया। केवल राजस्थान, कच्छ, गुजरात, मालवा, जहाँ अनेकानेक राजवंश थे, वहीं वे शेष रह गये।

कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है। चारण जाति काश्मीर में थी। चारणों के इतिहास पर कल्हण के इस उल्लेख से यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। चारणों के देवता एवं मानुष दो वर्ग हो गये थे। देवताओं की स्तुति करनेवालों से ही मनुष्यों की स्तुति करनेवालों का अलग होकर एक चारण वर्ग बन गया। जैन धर्म सूत्र ग्रन्थ महावीर स्वामी कृत पन्नवण्णा सूत्र में मानुष चारण का प्रसंग मिलता है। जैन मान्यता के अनुसार चारणकूट सुमेरु पर्वत नन्दन वनादि के दक्षिण स्थित था। इससे प्रकट होता है। आज से ढाई हजार पूर्व मानुष चारण वर्ग ख्याति प्राप्त कर गया था।

राजस्थान में चारण एक मान्य जाति मानी जाती रही है। कर्नल टाड के समय मेवाड़ तथा राजस्थान में चारणों का सम्मान होता था। उनकी प्रतिष्ठा थी। सन् १९०१ ई० की जन गणना के प्रसंग में कैप्टन श्री वेनरमैन ने टिप्पणी की है 'चारण पवित्र एवं प्राचीन जाति है। उनका वर्णन रामायण एवं महाभारत में किया गया है। वे राजपूतों के कवि हैं। वे अपनी उत्पत्ति देवताओं से बताते हैं। राजदूत उनके साथ सर्वदा सम्मान पूर्वक व्यवहार करते हैं। वे विश्वास पात्र माने जाते हैं। समाज में स्थान ऊँचा है। उन्हें 'वारहट' लौकिक भाषा में कहा जाता है।'

रामायण में युद्ध के समय इनकी उपस्थिति का प्रमाण मिलता है। वे राजा की विजय हेतु प्रार्थना करते थे। (अरण्य : २३ : २६-२८) खर का वध होने पर चारणों ने हर्ष प्रकट करते हुए, राम की स्तुति की थी। (अरण्य : ३० : २९-३३) चारण दक्षिणापथ में उन दिनों भी रहते थे। पुराण की गाथा का समर्थन रामायण से मिलता है। रावण ने चारणों को समुद्र तटवर्ती प्रान्तों में निवास करते हुए देखा था। (अरण्य० : ३५ : १५) रामायण में चारणों के शोण तटपर निवास करने का भी उल्लेख मिलता है। सुग्रीव ने सीता के अन्वेषण के लिये, पूर्व दिशा में वानरों को भेजते हुए, श्री राम से इस अंचल का भी वर्णन किया था। सुदर्शन सरोवर के तटपर भी चारणों के निवास का उल्लेख सुग्रीव ने किया है (किष्कि० ४० : ३४-४६)। दक्षिण दिशा के स्थानों का परिचय देते हुए, सुग्रीव ने सीता अन्वेषण के लिये प्रमुख वानरों को भेजा था। उस प्रसंग में महेन्द्र पर्वत, तथा लंका लाँघकर पुष्पितक पर्वत का वर्णन किया है। वहाँ चारण रहते थे। (किष्कि० : ४१ : २३, २८) भगवान् राम की सेना समुद्र पार कर गयी, तो चारणों ने भगवान् राम की स्तुति तथा अभिनन्दन किया था। (युद्ध० : २२ : ८९) इसी प्रकार मेघनाद इन्द्रजीत ने लक्ष्मण के साथ भयंकर युद्ध आरम्भ किया तो चारण कल्याण हेतु प्रार्थना करने लगे। (युद्ध० : ८९ : ३८) इस प्राचीन काल में चारण जाति धुर उत्तर काश्मीर से लंका तक फैली थी।

मध्य युग तथा आधुनिक काल में चारणों की वह स्थिति नहीं रही, जो प्राचीन काल में थी। सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न तथा भारत में विदेशी मुसलिम एवं अंग्रेजी शासन स्थापित होने पर, भारत में एक विचित्र परिस्थिति उत्पन्न हो गयी। चारण जाति भी छिन्न-भिन्न हो गयी। मुसलिम बादशाह सूबेदार, नवाब, तालुक्केदार, जमीन्दारों के दरबारों में चारणोंका महत्त्व नहीं रह गया। जहाँ भी कहीं हिन्दू राजा शेष रह गये थे, वहाँ अपना अस्तित्व कायम रखने में वे सफल हुए। मारवाड़ में निवसित चारण मारू तथा कच्छ के कच्छा कहे जाने लगे। गुजरात के चारणों ने अपना कर्म त्याग दिया है। परन्तु मारवाड़ के मारू अब भी अपना अस्तित्व रखते हैं। चारण लोग चारण गीत एवं ख्याति गाने लगे थे। उनका उल्लेख वीर काव्यों में मिलता है। अर्वाचीन लेखक उनका काल आठवीं शताब्दी से मानते

बन्धकीबन्धुभावेन प्राप्तराजगृहाश्रयाः ।
तं पौंश्चलीयविद्यानामन्तरङ्गं व्यधुर्विटाः ॥ ६६३ ॥

६६३. वेश्याओं के बन्धु होने के कारण विट[1] राजगृह में आश्रय प्राप्त कर, उसे पौंश्चलीय विद्यों का मर्मज्ञ कर दिया ।

केशान् स्त्रीदशनच्छिन्नान् वक्षस्तन्नखलाञ्छितम् ।
वपुषो मण्डनां मेने किरीटकटकोज्झितः ॥ ६६४ ॥

६६४. उसने किरीट कटक त्याग, परस्त्री दशन से छिन्न भिन्न केशों एवं उनके नख से क्षत वक्ष को ही शरीर का आभूषण माना ।

है। परन्तु इनका अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन काल से है, इसमें सन्देह नहीं है। सौराष्ट्र में बारहवीं शताब्दी में राजा जयसिंह के समय भी चारणों का उल्लेख मिलता है। पन्द्रहवीं शताब्दी में राजस्थान के प्रायः सभी राजपूत राज्यों में चारणों को सम्मानित स्थान प्राप्त था। राजा उनका तथा उनके काव्य का सम्मान करते थे। उनको जीविका के लिये जागीर देते थे। चारण हिन्दू हैं। उनकी कुलदेवी करणी है। बीकानेर के समीप देवी का मन्दिर है। चारण 'चयमाताजी' सम्बोधन कर वार्तालाप करते हैं। माता की पूजा करते हैं। चारणों ने काव्य रचनाएँ की हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में वंश भास्कर जैसे ग्रन्थों की रचना का श्रेय उन्हें प्राप्त है। डिंगल तथा गीत रचना शैली चारणों की विशेषता है। मारू चारणों को बहुत छंद कण्ठस्थ रहते हैं। चारण कर्म का प्रायः लोप होता जा रहा है।

पादटिप्पणी :

६६३ (१) विट—कामुक, कामी, वेश्याप्रेमी, वेश्या रखने वाले व्यक्ति को विट कहते हैं। यह काम तन्त्रकला में पटु, नायक एवं नायिका का सन्देस वाहक, कितव, धूर्त तथा वेश्याध्यक्ष होता है। इसका सम्पर्क पण्यस्त्री से रहता है। काश्मीर में दो प्रकार के विटों का उल्लेख मिलता है। ग्राम तथा नगर विट। दोनों का वर्णन किया गया है। विट का लक्षण कहा गया है :

वेश्योपचारकुशली मधुरो दक्षिणः कविः ।
ऊहापोहक्षमो वाग्मी चतुरश्च विटो भवेत् ॥
(साहित्य दर्पणः २४:१०४)

कुट्टनीमतम् में ग्राम विट का रूप वर्णन किया गया है।

'बहलोशीरविलिप्तस्थित-
जूटकलापमल्लिकामाल्यः ।
पामरनार्या दृष्टः
स्मरोऽहमिति मन्यते विटो ग्राम्यः ।' (८६६)

क्षेमेन्द्र ने काल विलास में विट के सन्दर्भ में लिखा है :

भक्षितनिजबहुविभवाः
परविभवक्षयण-दीक्षिताः पश्चात् ।
अनिशं वेश्यावेशः स्तुतिमुखा विटाश्चिन्त्याः ॥

काश्मीर में विटों की भी एक समिति होती थी। उनका भी अनुशासन था। कुट्टनीमतम् से इस पर प्रकाश पड़ता है।

उषितामपरेण समं वृद्धविटानां पुरः पराजित्य ।
त्याजयति स्म भुजंगः कश्चिद् गणिकां द्विगुणा-
भोटीम् ॥ ३४२ ॥

किसी समय एक गणिका ने एक से पहले मूल्य लेकर दूसरे के साथ समय व्यतीत किया। इसका विवाद वृद्ध विटों से किया गया। विटों ने निर्णय दिया कि गणिका दण्ड स्वरूप दूना मूल्य प्रथम व्यक्ति को दे। काश्मीर में विट, गणिका आदि के लिये भी अनुशासन था। नियम था। व्यवस्था थी।

यो यो वेश्याकथाऽभिज्ञो यो यो नर्मविचक्षणः ।
स स तत्प्रियतां लेभे न शूरो न च पण्डितः ॥ ६६५ ॥

६६५. जो-जो व्यक्ति वेश्याकथा विज्ञ तथा नर्म विचक्षण होते थे, वे-वे उसकी प्रियपात्रता प्राप्त किये, न कि सूर एवं पण्डित ।

अतृप्तः स्त्रीभिरल्पाभिरुग्ररागः स पार्थिवः ।
जडं मेने जयापीडं स्त्रीराज्यान्निर्गतं जितात् ॥ ६६६ ॥

६६६. अल्प स्त्रियों से अतृप्त, उग्र रागी, वह पार्थिव विजित स्त्री राज्य से निर्गत जयापीड को जड़ माना ।

दिङ्निर्जयव्यसनिनः पूर्वभूपाञ्जहास सः ।
गणिकाभोगसुखितः स्वसामयिकमध्यगः ॥ ६६७ ॥

६६७. गणिका भोग से सुखी अपने अनुवर्तियों के मध्य रहने वाला वह, दिग्विजय व्यसनी पूर्व भूपों का उपहास करता था ।

अनुशासन भंग का पण्य स्त्री, वेश्या, गणिका तथा विट को दण्ड मिलता था ।

(२) पौंश्चलीय विद्या—वेश्या किंवा कुलटापन में प्रवीण बनाने वाली विद्या से यहाँ तात्पर्य है ।

पादटिप्पणी :

६६५ (१) नर्म, कामकेलि = विलास = क्रीडा= लम्पट अर्थ में प्रयुक्त होता है । क्षेमेन्द्र ने 'नर्म' पर ही 'नर्म माला' प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा है । गीत गोविन्द में भी इस शब्द का प्रयोग किया है—जितसमले विमले परिकर्मय नर्म जनकमलकं मुखे—(गीत १२)

पादटिपणी :

६६६ (१) स्त्रीराज्य = द्रष्टव्य : रा० : ४ : ५८८ । स्त्रीराज्य का वर्णन विल्हण करता है । वह स्त्रीराज्य का भूगोल भी देता है । काश्मीर के उत्तर बालुकार्णव है । तत्पश्चात् स्त्रीराज्य नामक देश विशेष है ।

अश्वैः कृत्वा पवनगतिभिर्लङ्घनं बालुकाब्धे-
र्यः स्त्रीराज्यं व्यजयत जयापीडतुल्यप्रभावः ।
(विक्रमांक : १८ : ५७)

महाभारत में भी स्त्रीराज्य का वर्णन मिलता है ।
हारहूणांश्च चीनांश्च तुषारान् सैन्धवांस्तथा ।
जागुडान् रामठान् मुण्डान् स्त्रीराज्यमथ तङ्गणान् ॥
॥ ५९ : २५ ॥

श्लोक २६ में केकय एवं काश्मीर का उल्लेख किया गया है । प्रसंग वर्णन से प्रकट होता है कि स्त्रीराज्य की स्थिति उत्तर में थी । महाभारत तथा विल्हण का वर्णन मिलता है । वह स्त्रीराज्य की स्थिति स्पष्ट करता है ।

पाद टिप्पणी :

६६७ (१) उपहास : उपहास में किसी व्यक्ति, वस्तु, रीति या पद्धति की उपहास पूर्वक निन्दा का समावेश होता है । क्षुद्र या हास्यास्पद आलम्बन को आधार बनाकर, उसी के माध्यम से किसी गम्भीर तथ्य अथवा प्रसिद्ध व्यक्ति की हँसी की जाती है । एक प्रकार से अपमान करना होता है । रघुवंश में कालिदास ने व्यक्त किया है—

फलमस्योपहासस्य सद्यः प्राप्स्यसि पश्य माम् ।
मृग्या परिभवो व्याघ्र्यामित्यवेहि त्वया कृतम् ॥
—रघु० : १२ ; ३७ ।

संकोचकारिणो वृद्धान् नर्मोक्तियोद्वेज्य वारयन् ।
तस्माद्विटजनो लेभे संप्रीतात्पारितोषिकम् ॥ ६६८ ॥

६६८. संकोच उत्पन्न करने वाले वृद्धों को नर्मोक्तियों से उद्वेजित कर, वारित करने वाले विट[1] जन प्रसन्न उस नृप से पारितोषिक प्राप्त करते थे ।

अट्टचेट इव स्पष्टपरिहासविचक्षणः ।
सोऽलज्जयन्मन्त्रिवृद्धानास्थाने गणिकासखः ॥ ६६९ ॥

६६९. विट सदृश सुस्पष्ट परिहास[1] में दक्ष गणिकासखा वह (नृप) आस्थान (सभा स्थान) में वृद्ध मन्त्रियों को लज्जित करता था ।

बन्धकीपादमुद्राङ्कं चारु प्रावरणादि सः ।
गौरवार्हान् दुराचारः सचिवान् पर्यधापयत् ॥ ६७० ॥

६७०. वह दुराचारी गौरव योग्य सचिवों को वेश्याचरण चिन्हित सुन्दर वस्त्र[1] आदि प्रदान करता था । (पहनने को देता था)

मानी मनोरथो मन्त्री परं परिजहार तम् ।
अशक्नुवन् यमयितुं मध्यपातपराङ्मुखः ॥ ६७१ ॥

६७१. स्वाभिमानी मन्त्री मनोरथ ने उसका नियमन करने में असमर्थ होकर, उसके (कार्यों) बीच हस्तक्षेप न कर, उसका परित्याग कर दिया ।

पादटिप्पणी :

६६८ (१) विट = द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : ४ : ६६३; ६ : १५३, शुक : १ : २८, श्रीवर : १ : ७ : १९० ।

पादटिप्पणी :

६६९ (१) परिहास : उपहास एवं परिहास में अन्तर है । परिहास में इस प्रकार का कार्य किया जाता है 'जिससे हास उत्पन्न होता है ।' सोइ कृत्य परिहास तिय जासो होय निहाल (भानुः)—त्वराप्रस्तावोऽयं न खलु परिहासस्य विषयः (मातंग लीलाः ६ : १४)। परिहासाश्चित्राः सततमभवन् येन भवतः (वेणी : ३ : १४)

पादटिप्पणी :

६७० (१) वस्त्र : अत्यन्त कामासक्त जन वेश्याओं के वस्त्रों को लेने में अभिमान का गौरव करते हैं । उसे हृदय से लगाकर रखते हैं । उसे देखकर वेश्या के रूप एवं स्मृति की कल्पना करते हैं । कुट्टनीमतम् में दामोदर गुप्त ने इसी ओर लक्ष्य किया है—

'क्व च पण्यस्त्रीगात्रस्पृष्टाम्बरधारणेषु—
—बहुमान : ॥४१९॥

मिहिरकुल सिंहलाधिपति के चरण अंकित वस्त्र को देखकर क्षुब्ध हो उठा था । श्री लंका पर अपमान का बोध कर, आक्रमण किया था। उस समय जनता का चरित्र बल उन्नत था । इस समय सामाजिक स्तर गिर गया था । वेश्या के चरण चिह्नित सुन्दर वस्त्रों को राजा सचिवों को देने में संकोच करता था । जो वस्तु, जो कर्म, जो आचरण समाज में अनुचित माने जाते थे, आचार की दृष्टि से वर्जित थे उन्हें ही राजा खुल कर करता था । द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० : ४ : १८० ।

कुकृत्यं योगवाहित्वं वैधुर्यं द्रोहवृत्तिता ।
दुर्वृत्तस्य प्रभोरन्यत्परिहारान्न भेषजम् ॥ ६७२ ॥

६७२. कुकृत्य, अयोग्यता, नैराश्य, द्रोह वृत्ति वाले दुराचारी प्रभु के परित्याग के अतिरिक्त अन्य औषधि नहीं है ।

सुवर्णपार्श्वं विप्रेभ्यो दधत् फलपुरं तथा ।
भूभृत् स लोचनोत्सं च द्वादशाब्दानभूद्विभुः ॥ ६७३ ॥

६७३. उस भूपति ने सुवर्ण पार्श्व[1] तथा फलपुर[2] एवं लोचनोत्स[3] विप्रों को दिया और बारह वर्ष पृथ्वीपति रहा ।

संग्रामापीड (द्वितीय) १

कल्याणदेव्यां संजातो जयापीडमहीभुजः ।
संग्रामापीडनामाऽथ बभूव भुवनेश्वरः ॥६७४॥

६७४. कल्याण[1] देवी में उत्पन्न जयापीड महीपति का पुत्र संग्रामापीड भुवनेश्वर हुआ ।

पादटिप्पणी :

६७२. सूक्ति संग्रह का यह १५२ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

६७३ (१) सुवर्ण पार्श्व = सुनपाह । पीर हसन ने नाम सोनापारा दिया है । यह वर्तमान सुनपाह ग्राम है । वीरू परगना में है । यहाँ प्राचीन ध्वन्सावशेष महत्त्व के नहीं मिलते । वीरू परगना दुत्त परगना के पश्चिम में है । पीर पन्तशल की तरफ पड़ता है । बहुरूपा का अपभ्रंश वीरू है । बहुरूप नाम यहाँ के एक जलस्रोत के कारण पड़ा है । यह जल वीरू ग्राम में स्थित है । इसका उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है ।

सहस्रधारो द्युतिमान्विभूतिः कवडाशरौ ।
शवलो बहुरूपश्च भद्राश्वश्चोत्तरीयकः ॥

नी० ९२८ = १०९४, १०९५

× × ×

वराहं च नृसिंहं च बहुरूपं वरप्रदम् ।
सप्तर्षीणां तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा ॥

११५९ = १३७०, १३७१

× × ×

बहुरूपे नरः स्नात्वा विष्णुलोके महीयते ।
बहुरूपे च कथितं फलमेतन्नरोत्तम ॥

१३३७ = १५५२, १५५३

अबुलफजल ने आइने अकबरी में वीरू के विषय में लिखा है । उसे विरवा नाम दिया है । यहाँ के जलस्रोत के लिए कहा है कि उसके जल में कुष्ट को आराम करने की अद्भुत शक्ति है ।

(२) फलपुर = द्रष्टव्य : टिप्पणी : रा० : ४ : १८४ तथा ५ : ९९ ।

(३) लोचनोत्स = यह नाम तथा सुवर्ण पार्श्व का कल्हण ने केवल एक बार यहीं पर उल्लेख किया है । लोचनोत्स स्थान का पता नहीं चलता ।

पादटिप्पणी :

श्रीदत्त राजा संग्रामापीड का अभिषेक काल कलि ३८८९ = शक ७१० लौ० ३८६४ = सन् ७८८, श्री स्तीन लौ० ३८७१ वर्ष ३ मास २८ दिन, श्री पण्डित सन् ७९७, श्री विल्सन सन् ८१५ ई० १० मास, श्री ट्रोयर सन् ७९७ वर्ष ८ मास २० दिन, श्री कनिंघम सन् ७९४ ई० ११ मास, डाइनेस्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया में सन् ७९५ ई० तथा पीर

पृथिव्यापीड इत्यन्यन्नाम बिभ्रत्स भूपतिः।
समाप्तिं सप्तभिर्वर्षैः साम्राज्यस्य समासदत् ॥६७५॥

६७५. उस भूपति ने अपना दूसरा नाम पृथिव्यापीड रखा। सात वर्ष राज्य करने के उपरान्त समाप्त हो गया।

हसन विक्रमी संवत् ८५० = सन् ७९३ ई० देता है, त्रिवेद सन् ७८३ ई० = शक ७०२ देते हैं। तथा राज्य काल सर्वश्री ट्रायर, दत्त, स्तीन, पण्डित, विलसन तथा पीरहसन ७ वर्ष देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में ललितापीड तथा संग्रामापीड का संयुक्त राज्यकाल १२ वर्ष दिया गया है।

आइने अकबरी में सुग्रमनुन्ड दिया है। राज्यकाल ३९ वर्ष दिया गया है। यह गलत है। पीर-हसन लिखता है—उसके भाई राजा संग्रामापीड ने विक्रमी संवत् ८५० में राजगद्दी का ताज सर पर रख कर हकूमत की दुलहिन को सात साल ज्यों त्यों करके गुजार दिया।

समसामयिक घटनाएँ :

लीयो (तृतीय) पोप हुआ। उद्र के राजा ने स्वहस्ताक्षर से बौद्ध ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ चीन सम्राट् ती-त्सिंग को भेजी। गोविन्द राष्ट्रकूट राजा ने दक्षिण पर अधिकार किया। चार्ल्स मेन ने एक्स-ल-चपेल को राजधानी बनाया सन् ७९६ ई० में दक्षिण-दन्तवर्मा वज्रवेध वर्मा पल्लव राजा हुआ। (सन् ७९६-८४७ ई०)। चार्लमेन तथा ओफ्फा में व्यावसायिक इकरारनामा हुआ। सेन बुल्फ (सन् ७९६-८२१) प्रुसा का राजा हुआ।

सन् ७९७ ई० मु-ने-त्सन-यो तिब्बत का राजा हुआ। सन् ७९८ ई० मु-रत्री-त्सन-यो तिब्बत का राजा हुआ। सन् ७९८--८०४ ई०। सेन बुल्फ ने केण्ट को दबाया। ७९९ विष्णुवर्धन (चतुर्थ) वेंगी की मृत्यु। विजयादित्य (द्वितीय) वेंगी का राजा हुआ। चुन ओंग सिल्ला (कोरिया) का राजा हुआ। विजयादित्य (द्वितीय) पूर्वीय चालुक्यों का राजा बन गया। (सन् ७९९-८४७ ई०)। स्वतन्त्र अघलविड वंश का टचूनीशिया में राज्य बना। सन् ८०० ई० कर्क राष्ट्रकूट पथरीवंश का राजा हुआ। दाउद इब्न मज दी = इब्न हातिम मुहल्लबी को खलीफा हारुन रशीद ने सिन्ध का सूबेदार बनाया। (हि० १८४)। सम्राट् चार्लमेन का पश्चिम यूरोप के सम्राट् रूप में पोप लियो ने अभिषेक किया। दाउद बिन दाउद सिन्ध का सूबेदार हुआ। दुर्गा सिंह व्याकरणविद् का समय। गोविन्द (द्वितीय) राष्ट्रकूट का उत्तर में सैनिक अभियान। शकली गर्भ कवि का सम्भावित काल। चित्रवाहन (द्वितीय) अलूखेदा तथा कामरूप में प्रालम्भ वंश कामरूप (सन् ८००--१००० ई०)। चरक-संहिता का अरबी में अनुवाद का सम्भावित काल। विश्वरूप याज्ञवल्क्य स्मृति का टीकाकार (सन् ८००--८२५ ई०) चीन में पेपर करेन्सी अर्थात् कागजी मुद्रा का प्रचलन। चन्देल मूर्तिकला खजुराहो का समय। (सन् ८००--१२०४ ई०) नागभट्ट (द्वितीय) पुत्र वत्सराज का स्थिति काल। राजा धर्मपाल मगध का सम्भावित काल। थियोफेन्स कनफेसर क्रोनिकलर (सन् ८००--८१३ ई०) का समय। चार्लमेन होली रोमन सम्राट् हुआ। (सन् ८००--८१४ ई०) इगवर्ट वेस्सेक्स का राजा इंगलैण्ड का प्रथम राजा हुआ (सन् ८००--८३६ ई०) सन् ८०१ ई० पारसी जाति (इरानियन) शरणार्थियों का ड्यू में आगमन। हरि-वर्मा चम्पा का राजा हुआ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६७५ में 'भूपतिः' का पाठभेद 'पार्थिवः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

६७५ (१) नाम = प्राचीन भारतीय प्रथा है कि राजा इच्छानुसार अभिषेक के समय दूसरा नाम

चिप्पट जयापीड (बृहस्पति)

श्रीचिप्पटजयापीडो बृहस्पत्यपराभिधः ।
ललितापीडजो राजा शिशुर्देश्यस्ततोऽभवत् ॥६७६॥

६७६. तदनन्तर ललितापीड का शिशु पुत्र चिप्पट[१] जयापीड अपर नाम बृहस्पति बाल्यावस्था में नृप हुआ।

रख लेते थे। इसकी संज्ञा 'अभिषेक नाम' से दी जाती थी। काश्मीर के मुसलमान सुल्तान भी राज्यारोहण के समय दूसरा नाम रख लेते थे। सुमेर, वेबलोन तथा हिट्टी राजा भी अभिषेक नाम इच्छानुसार रखते थे। इस प्रकार नाम रखने से कभी-कभी व्यक्तियों के विषय में शंका हो जाती है।

पादटिप्पणी :

६७६. (१) श्रीदत्त चिप्पट जयापीड अपर नाम बृहस्पति का राज्याभिषेक काल कलि ३८९६ = शक ७१७ = लौ० ३८७१ सन् ७९५ ई०, श्रीस्तीन लौ० ३८७८ वर्ष ३ मास २८ दिन, श्री पंडित सन् ८०४ ई०, श्री विल्सन सन् ८२२ ई० १० मास, श्री ट्रोयर सन् ८०४ ई० ८ मास २० दिन, श्री कनिंघम सन् ८०१ ई० ११ मास, डाइनोस्टिक हिस्टोरी आफ इन्डिया में सन् ८०२ ई०, पीरहसन विक्रमी संवत् ८५७ = सन् ८०० ई०, त्रिवेद सन् ७८७ ई० = शक ७०९ देते हैं। तथा राज्यकाल सर्वश्री ट्रोयर दत्त, स्तीन, पंडित, विल्सन तथा पीरहसन १२ वर्ष लिखते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल नहीं दिया गया है।

आइने अकबरी में नाम त्रिसपुत तथा राज्यकाल १२ वर्ष दिया है।

हसन लिखता है—राजा चिप्पट जयापीड फरजन्द ललतापीड की जयादेवी के पेट से वजूद में आया था। और उसके खालू पाँच भाई थे। उत्तपल, कल्यान, मंम और दम। पाँचों भाइयों ने अमूर मूमलकत में दखील होकर पहले राजाओं की जमीनें और खजाने खाली कर दिये और फौज और रईयत की तबाही कर दी। और मूमलकत के इन्तजाम में खलल डाल कर फितने बुलन्द कर दिये। चिप्पट जयापीड को १२ साल के हकूमत के बाद माजूल करके उसके भाई को सल्तनत के लिये उठाया। (पृष्ठ ९२)

सामयिक घटनाएँ—

सन् ८०२ ई० में जयवर्मा कम्बुज (कम्बोडिया) का राजा हुआ। राष्ट्रकूट के गोविन्द (तृतीय) ने पल्लव, पाण्ड्य, केरल तथा गंग प्रसंध को पराजित किया। सन् ८०२ ई० में राष्ट्रकूट के गोविन्द (तृतीय) ने विजयादित्य को पराजित किया। तथा भीम सालुक्की को वेंगी के सिंहासन पर बैठाया। चीन सम्राट् के यहाँ प्यू राजा ने दूत भेजा। स्वखिम हनित पुत्र मुनलन वगान (वर्मा) का राजा हुआ। (सन् ८०२-८२९ ई०) फ्रेन्क्स जाति फलैण्डर्स में आबाद हुई। जय वर्मा (द्वितीय) ऐंगकोर राजतन्त्र कम्बुज का राजा हुआ। (सन् ८०२-८५० ई०) नाइफोर्स (प्रथम) पूर्वीय सम्राट् हुआ। (सन् ८०२-८११) जरमनी में चार्लमैन के आदेश से जातीय विधि संहिता लिपिबद्ध की गयी। प्यू राजा ने चीन सम्राट् के यहाँ दूत मण्डल भेजा। वाकेगेस का आयर्लैण्ड पर प्रभाव। क्रुम वलगेरिया का राजा हुआ।

रत्नाकर कश्मीर राज के सभा पण्डित का सम्भावित काल (७७९-८१३ ई०) सन् ८०३ ई० में चम्पा के राजा ने चीन के जिला हो-आन तथा अही ले लिया। सन् ८०३ ई० तिब्बत के राजा गंग-द्वर या तिब्बत राजा का जन्म। बौद्ध धर्म का मध्य तिब्बत में दमन। हरी वर्मा (प्रथम) चम्पा के पंचम वंश का राजा हुआ। (पृष्ठ ३-८१७) सन् ८०४ ई० गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट का काञ्ची पर आक्र-

रागग्रहगृहीतस्य ललितापीडभूपतेः ।
वेश्यायां कल्यपाल्यां यो जयादेव्यामजायत ॥६७७॥

६७७. राग ग्रह से गृहीत, नृप ललितापीड कल्यपाली[1] (कलारिन-कलवारिन) जया देवी नाम्नी वेश्या में उत्पन्न हुआ था ।

उप्पाख्यस्याऽऽखुवग्रामकल्यापालस्य तां सुताम् ।
रूपलुब्धोऽवरुद्धात्वमनैषीत् स हि भूपतिः ॥६७८॥

६७८. आखुवं[1] ग्राम के उप्प नामक कल्यपाल[2] (कलवार-कलाल) को उस सुता के रूप से लुब्ध होकर उस भूपति ने अन्तःपुर में अवरुद्ध[3] तुल्य रख लिया था ।

मण । रल-य-चन तिब्बत का राजा (सन् ८०४-८१६ ई०) राजानक लक्षमण, राजानक वंश कीर गाँव त्रिगर्त का स्थिति काल । सन् ८०५ ई. रब्बी–उत्सुंग-इदे-ब्रस्तन तिब्बत राज का जन्म (सन् ८०५-८२१ ई.) चीन सम्राट् सुन-त्सुङ्ग का समय । दप्पुला (द्वितीय) श्रीलंका का राजा (८०९ ?), सन् ८०६ ई. हारुन रशीद खलीफा की मृत्यु । शिनगोन जापानी बौद्ध सम्प्रदाय का उदय । हेन-त्सुङ्ग चीन सम्राट्, योग राजा अनहिलवाड़ा सन् ८०७ ई. गोविन्द (तृतीय) लाट देश चापोटक किंवा चावड़ा राजा से जीत कर भ्राता इन्द्र को राजा बनाया । जिसने गुजरात में राष्ट्रकूट शाखा स्थापित किया । कक्क का समय, लोम्बार्ड के यहूदियों ने इटली में बैंक की स्थापना की । सन् ८०८ ई. राधनपुर दान का उल्लेख सन् ८०९ ई. माणिक भारतीय वैद्य हारुन रशीद के यहाँ उसकी अन्तिम बीमारी के समय गया । (हि० १९३) ओन सुङ्ग कोरिया के सिल्ला राज्य का राजा । अमीन खलीफा (सन् ८०९) सन् ८१० ई० में देवपाल राजा हुआ । सन् ८१०-८५० ई० में धर्मपाल बंगाल के राजा ने कन्नौज के राजा को पदच्युत कर दूसरे को बैठाया । क्रुम बलगेरिया ने सम्राट नीरो फोरस को पराजित कर मरवा डाला । हलायुध का स्थिति काल । (सन् ८११ ई.) मामून पूर्वी अंचल का खलीफा हुआ । सन् ८१२ वरीदा फलक का समय । इन्द्रायुध की मगध राज द्वारा पराजय ।

पादटिप्पणी :

६७७. (१) कल्पकाल = कलपाल = कलवार = जायसवाल आधुनिक कलवार, कलार, कलाल, कलवाल किंवा जायसवाल जाति है । मुसलिम हो जाने के पश्चात् भी कल्यपाल अथवा कलवाल जाति शराब बनाने का काम करती थी । धर्म परिवर्तन के साथ उन्होंने अपना कर्म नहीं छोड़ा था । राज्य सरकार ने जब शराब बनाने का कार्य स्वतः आरम्भ कर दिया तो काश्मीर की कलवाल जाति का यह पेशा समाप्त हो गया ।

मंख ने अपने कोश में कल्यपाल जाति का उल्लेख कल्य अर्थात् सुरा के सन्दर्भ में किया है ।

पादटिप्पणी :

६७८. (१) आखुवा : इस ग्राम का अभी तक पता नहीं चला है ।

(२) कल्यपाल = कलवाल काश्मीरी भाषा में कहते हैं । उसका काम सुरा बनाना होता था ।

(३) अवरुद्ध : अवरुद्ध स्त्री का उल्लेख अनेक स्थानों पर कल्हण ने (त० ७ : १०४, ७२४, ७२७, ८५८, १४६१; ८ : २१०, ९६६ तथा १९-३६) किया है ।

पद्मोत्पलककल्याणमम्मधर्म्मैः स मातुलैः ।
बालकः पाल्यमानोऽभूत् पृथिवीभोगभागिभिः ॥६७९॥

६७९. पृथ्वीभोगभागी पद्म, उत्पलक, कल्याण, मम्म, धर्म मातुलों द्वारा वह बालक पालित हुआ ।

सर्बत्र ही इनका रखेली, रखनी, सुरैतिन, प्रेमिका, प्रेयसी, उपपत्नी के अर्थ में प्रयोग किया गया है । यह स्त्रियाँ प्रायः विधवा, अथवा निम्न जाति की होती थीं । जिनका कानूनन विवाह नहीं किया जा सकता था । स्त्री रखने की आम प्रथा कुलीनों में गत शताब्दी तक प्रचलित थी । कुलीनता की एक निशानी मानी जाती थी। मैंने अपनी बाल्यावस्था में इस प्रथा को प्रचलित पाया था । इस प्रथा का अब लोप हो गया है ।' तरंग० ७ : ८५८ तथा ८ : १९३८ में उल्लेख मिलता है । किंपण्य, किंवा वेश्या को अवरुद्ध स्त्री के समान राज्य अन्तःपुर में रख लिया जाता था । राजा भिक्षाचर ने एक उच्चकुलीन स्त्री को अवरुद्ध स्त्री के समान रख लिया था । (रा० ८ : ९६६)

क्षेमेन्द्र ने समयमातृका में (२ : २१, २४, ३ : ३०; ८ : ११०) इस शब्द का प्रयोग किया है । काश्मीरी शब्द उरुद्ज है जिसका प्रयोग अवरुद्ध स्त्री के अर्थ में हिन्दू तथा मुसलमान दोनों काश्मीर में करते हैं । उसका मूल शब्द अवरुद्धिका है । (त० ७ : ७२५, ८५०) यदि कोई मनुष्य काश्मीर में परित्यक्त या विधवा स्त्री को रखता है तो उसे 'उरु' कहते हैं । यह अवरुद्ध का अपभ्रंश है । अवरुद्धा को उरद्धा काश्मीरी भाषा में कहते हैं । द्रष्टव्य : रा० : ४ : २८६

अवरुद्ध स्त्री के सम्बन्ध में आधुनिक काल में बहुत मुकदमे उनके अधिकार कर्तव्य तथा उनकी स्थिति किंवा पद के सम्बन्ध में हुए हैं । उन्होंने अपने रखने वाले पुरुष की मृत्यु के पश्चात् उसकी सम्पत्ति अथवा उसके उत्तराधिकारियों से अपने जीवन निर्वाह के लिये अधिकार प्रकट किया है । परन्तु यह अधिकार उस अवरुद्ध स्त्री को प्राप्त होता है, जो केवल दिवंगत पुरुष के साथ ही एक मात्र सम्बन्ध रखती थी । उसे यह अधिकार उसी समय मिलता था, जब वह पुरुष की मृत्यु के पश्चात् भी अपना आचरण शुद्ध रखती थी और किसी पर पुरुष के साथ नहीं जाती थी । वह पुरुष के जीवन काल में उसके कुटुम्ब के साथ कुटुम्ब के सदस्य के समान रहती है । अवरुद्ध स्त्री अपने पति की जीविता अवस्था में दूसरे पुरुष की रखैल होकर, रह सकती थी परन्तु इस स्थिति में उसका यौन सम्बन्ध केवल अपने प्रेमी पुरुष के साथ जीवन तथा मरण के पश्चात् हो सकता हैं । अवरुद्ध स्त्री, वेश्या, स्वैरिणी तथा पण्यस्त्रियों की स्थिति में अन्तर है । अवरुद्ध स्त्री केवल अपने उपपति के साथ रह सकती है । उसका आदेश उसे मानना होगा । वह किसी दूसरे पुरुष से सम्बन्ध नहीं रख सकती । अवरुद्ध, भुजिष्या, तथा स्वैरिणी तीन वर्गों में वर्गीकरण किया गया है ।

जिन अनुवादकों ने अवरुद्ध स्त्री को पत्नी तथा रानी लिखा है, उन्होंने गलती की है । कल्हण ने रानी, राजमहिषी तथा अवरुद्ध स्त्रियों में स्पष्ट भेद किया है । शंकर बर्मा के प्रसंग में कल्हण तीन रानियों के सती होने का उल्लेख करता है । (रा० : ५ : २२६) यहाँ पर वह अवरुद्ध स्त्री का उल्लेख नहीं करता । द्रष्टव्य : रा० : ६ : २८६ तथा अवरोध वधू : रा० : ६ : १०७

तस्य पञ्च महाशब्दान् ज्यायान् उत्पलकोऽग्रहीत् ।
अन्ये जगृहिरेऽन्यानि कर्मस्थानानि मातुलाः ॥ ६८०॥

६८०. उसके पंच महाशब्दों[1] को ज्येष्ठ उत्पलक ने ग्रहण किया और अन्य कर्म स्थानों को अपर मातुलों ने लिया ।

आयत्तीकृतसाम्राज्यैर्भ्रातृभिर्वन्दिताज्ञया ।
भूभृज्जनन्या विदधे जयादेव्या जयेश्वरः ॥६८१॥

६८१. भूभृत्-जननी जयादेवी जिसकी आज्ञा का पालन, आयत्तीकृत, (आधीन) करने वाले भ्राता करते थे, जयेश्वर[1] की प्रतिष्ठा किया ।

राज्ञां कृपणवित्तैर्यत् प्रविष्टैर्दूष्यते धनम् ।
अचिरान्नीयते शान्तिमपूर्वैः कैश्चिदेव तत् ॥६८२॥

६८२. राजाओं का जो धन कृपण[1] अधिकारियों के प्रवेश से दूषित हो जाता है, वह धन शीघ्र ही कतिपय परवर्तियों द्वारा समाप्त कर दिया जाती है ।[2]

टिप्पणी :

६८० (१) पंच महाशब्द—वह एक उपाधि थी जो युवराज तथा बड़े अधिकारी जैसे महामन्त्री इत्यादि को दी जाती थी । पंच शब्द अर्थात् पांच प्रकार के वाद्य बजाने का अधिकार होता था । दक्षिण में पंचमहाशब्द के स्थान पर पंच महानिनाद पदवी थी। पांच पदवियों से जब किसी का आदर किया जाता था, तो उत्तर भारत में उसे पंच महाशब्द कहा जाता था, क्योंकि प्रत्येक पदवी महाशब्द से आरम्भ होती थी । पंच महाशब्द में--महाप्रतिहार, महांसाधिविग्रह, महाश्वशाला, महाभाण्डागार तथा महासाधन भाग थे । (शुक्रनीति ६९-७७ तथा २, २७९; २ : ८४-८७ तथा १०५, रा:० ४ : ४८५, ५१२ तथा ६८०)

(२) कर्म स्थान = ललितादित्य के पूर्व केवल १८ कर्म स्थान थे । ललितादित्य ने उनमें ५ कर्म स्थान और जोड़कर सबकी संख्या २३ कर दी थी । उसे भाषा में कारख़ान कहते थे । द्रष्टव्य : रा० ४ : १४१

पादटिप्पणी :

६८१ (१) जयेश्वर = इस स्थान का पता नहीं लग सका है ।

पादटिप्पणी :

६८२. राजतरंगिणी सूक्ति संग्रह का यह १५३ वाँ श्लोक है ।

(१) कृपण = कृपणों का धन अपवित्र कहा गया है । वह दुर्भाग्यदायक होता है । कल्हण ने इसी भाव का उल्लेख पुनः तरंग ८ : ५६५, ५६६, में किया है । कृपण अधिकारी का तात्पर्य विवेक शून्य, अधम एवं दुष्ट राजकीय अधिकारियों से है । कालिदास ने भी इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है—

कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनेषु । (मेघ : ५)

—द्रष्टव्य : भर्तृ : २ : ४९; ३ : १७; भग: २ : ४९; मुद्रा : २ : १८,

जयापीडस्य यत्किंचित्सूनुना हि व्ययीकृतम् ।
सूनुस्यालैरशेषं तत्तैः क्रमेण हृतं वसु ॥६८३॥

६८३. जयापीड को सम्पत्ति का यत्किंचित् उसके पुत्र (ललितापीड) ने व्यय किया और अशेष (पूर्ण) धन पुत्र के उन श्यालों ने क्रम से अपहृत कर लिया ?[1]

भगिनीभगसौभाग्यसंभवैर्विभवैः कृताः ।
ते भङ्गुराणां भोगानां भोक्तारो भाग्यभागिनः ॥६८४॥

६८४. भगिनी, भग, सौभाग्य सम्भव विभवों से वे भाग्यभागी हुए एवं भंगुर भोगों के भोक्ता हुए ।

निरङ्कुशं चेष्टमानाः शनकैस्त्यक्तशैशवात् ।
ते स्वस्त्रीयान्नृपान्नाशमकुलीनाः शशङ्किरे ॥६८५॥

६८५. निरंकुश चेष्टाकारी अकुलीन, वे धीरे धीरे शैशव के त्यागकर्ता, भगिनी पुत्र से, नाश की शंका करने लगे ।

अथाभिचारक्रियया मिथः संमन्त्र्य पापिभिः ।
राज्येच्छया तैः स्वस्त्रीयः स्वामी च स नृपो हतः ॥६८६॥

६८६. उन पापियों ने राज्येच्छा से परस्पर मन्त्रणा करके, अभिचार[1] क्रिया द्वारा भगिनी-पुत्र को जो कि स्वामी एवं नृप था मार डाला ।

भुक्तक्षितौ द्वादशाब्दांस्तस्मिन् व्यापादिते तथा ।
नैच्छन्नेकस्य ते राज्यं परस्परमहंकृताः ॥६८७॥

६८७. उसके द्वादश वर्ष तक पृथ्वो का भोग कर, उस प्रकार व्यापादित होने पर, वे परस्पर अहंकृत होकर, किसी एक का राज्य नहीं चाहे ।

तेषामाक्रान्तदेशानां नाममात्रमहीपतीन् ।
तांस्तान् कर्तुमसाम्मत्याद् विरोधोऽन्योन्यमुद्ययौ ॥६८८॥

६८८. तत्-तत् (कुलीन) जनों को नाम मात्र का महीपति करने के लिये, देश पर अधिकार करने वाले, उन लोगों की असम्मति के कारण, परस्पर विरोध बढ़ गया ।

पादटिप्पणी :

६८३ (१) इस पद की तुलना रा० त० ८ : १९५२ के श्लोक से की जा सकती है ।

पादटिप्पणी :

६८६ (१) अभिचार = श्येन याग नामक कर्म, जो शत्रु नाश के लिए किया जाता है । मारणदि प्रयोग की अभिचार संज्ञा दी गई है । द्रष्टव्य : रा० : ४ : ११४, ५ : २४०,

अजितापीड:

अथ मेघावलीदेव्यां जातो बप्पियभूपतेः ।
ज्येष्ठोऽप्यचाक्रिकतया योऽभूद्राज्यविवर्जितः ॥६८९॥

६८९. वप्पिय[1] भूपति से मेघावलो देवी में उत्पन्न त्रिभुवनापीड ज्येष्ठ पुत्र अचाक्रिक (कूटनीति तथा तिकड़म रहित) होने के कारण राजप्राप्ति से वंचित था।

पादटिप्पणी :

६८९ (१) श्री दत्त अजितापीड का अभिषेक काल कलि ३९१४ = शक ७३५ लौ० ३८८९ = सन् ७९५ ई. श्री स्तीन लौ. ३८८९ श्री पण्डित सन् ८१६ सी. एम. डफ सन् ८१३ ई. श्री बिलसन सन् ८३४ ई. १० मास, श्री ट्रोयर सन् ८१६ ई. ८ मास २० दिन = लौ. ३८८९. श्री कनिंघम सन् ८१३ ई. ११ मास तथा डाइनोस्टिक हिस्टोरी आफ इण्डिया में सन् ८१३ ई. पीरहसन विक्रमी संवत् ८६९ सन् ८१२ है; त्रिवेद सन् ७९९ ई. = शक ७२१ देते हैं। तथा राज्य काल सर्व श्री ट्रोयर, दत्त, विल्सन, आइने अकबरी ३६ वर्ष, स्तीन तथा पीर हसन ३९ वर्ष देते हैं। श्री पण्डित अजितापीड अनंगापीड तथा उत्पलापीड का कुल राज्यकाल ४१ वर्ष एक साथ देते हैं।

समसामयिक घटनाएँ :

लियो पंचम आरमीनियन पूर्वीय रोमन सम्राट् हुआ। (सन् ८१३-८२० ई.) शंकु खुमान चित्तौड़ का स्थिति काल (सन् ८१३-८४३ ई.) शंकुक कवि का सम्भावित काल (सन् ८१३-८५० ई.) किन्हीं अरब दार्शनिक का स्थिति काल (सन् ८१३-८७०)।

सन् ८१३ ई० में अल ममनून खलीफा हुआ। नसर ने सिन्ध में दाऊद के विरुद्ध विद्रोह किया। मूसा वरम की सिन्ध के सूबेदार। गोविन्द तृतीय राष्ट्रकूट को मृत्यु। सन् ८१४ ई० अमोघवर्ष राष्ट्रकूट का राजा हुआ। (सन् ८१४-८७२ ई.) चार्लमेन की मृत्यु। लुई-ले-डिवोनियर फ्रान्स का कोलो विजियन राजा हुआ। जिनसेन जैन कवि। बलगेरिया का शासक ओमुर तुंग (सन् ८१४-८३० ई.) लुई (प्रथम) पायस होली रोमन सम्राट्। (सन् ८१४-८४० ई.) सन् ८१५ ई० श्री मार श्री वल्लभ पांडय राजा (सन् ८१५-८६२ ई.) प्रवाल राष्ट्रकूट पथरी वंश का राजा। चम्पा के अभिलेख का समय। चीन की पराजय। स्टोफेन पोप हुआ। रव्री-उत्संग-इदे-ब्रस्तन तिब्बत का राजा हुआ। कर्पदी शिलाहार उत्तरी कोंकण का समय। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष का काल। वलहर अरबी लेखक का काल। सन् ८१६ ई० परिहारों की राजधानी कन्नौज हुई। पोप स्टीफेन पंचम हुआ। वाबक ने पैगम्बर होने का दावा किया। वशीर इब्न दाउद सिन्ध का सूबेदार (हि० २००)। कोवो दैशी ने क्योटो के दक्षिण में बौद्ध मन्दिर की स्थापना की सन् ८१७ ई., पसकल (प्रथम) पोप हुआ। रल-प-चन तिब्बत का राजा हुआ, (सन् ८११ ई.—८३६ ई.)। राजमल्ल, प्रथम पश्चिमी गंग का राजा हुआ। (सन् ८१७–८५३ ई.)। घस्सन इब्न उब्बद को खलीफा मासून ने खुरासान का समरकन्द का नहू को शाश तथा इस्फंजाब को यहया जो सब असद समी समनी के पुत्र थे। उनके क्षेत्र पर अधिकार दिया। (हि० २०४)। शंकराचार्य एवं मण्डन मिश्र के शास्त्रार्थ का सम्भावित काल। फोटियस भाषाशास्त्री का समय। हिसाम इब्न अल कालवी इराकी इतिहासकार का समय। हरज्जर राजा कामरूप की राजधानी हारुप्पेश्वर हुई। सन् ८२० ई. में विक्रान्त वर्मा (तृतीय) चम्पा का राजा हुआ, (सन् ८२०-८६० ई.) खुरासान में ताहिर वंश की स्थापना। ताहिर को खुरासान का सूबेदार अलमामून ने बनाया। एक मत है कि मामून के राज्य का सिन्ध इस समय एक भाग हो गया था। (हि. २०५)। माइकेल (द्वितीय) पूर्वीय रोमन सम्राट् हुआ। सन् ८२० ई.

में अमोघवर्ष राष्ट्रकूट का राजा हुआ। वोरुवदर जावा में काम हुआ। मु-त्सुङ्ग चीन सम्राट् हुआ। वाचस्पति मिश्र (सन् ८२०-९०० ई.) का सम्भावित काल। अग्रबोधि (नवम) श्री लंका का राजा हुआ। (सन् ८२१ ई.—८२४ ई.)। सन् ८२१-८२२ ई. में चीन तिब्बत सन्धि हुई। सेन उल्फ की मृत्यु। यु-त्सुङ्ग चीन सम्राट् हुआ। थियोफिलुस पूर्वीय रोमन सम्राट् हुआ। सन् ८२२ ई. में तल्हाह को खलीफा मामून ने खुरासान का सूबेदार बनाया (हि. २०७)। अब्दुर्रहमान (द्वितीय) कोजेवा का खलीफा हुआ। (सन् ८२२-८५५ ई.) शंकुक कवि का स्थिति काल (सन् ८२८-८५० ई.) सन्. ८२४ ई. कोल्लत्र मलयालम संवत् का आरम्भ (सन् ८२४-८२५ ई.)। ड्यूजिनियस (द्वितीय) पोप हुआ। सेनासिला मेघ-वर्ण श्री लंका का राजा हुआ। सन् ८२४ ई.–८४४ ई.)। पारसी शरणार्थी संजान में आबाद हुए। नाथ मुनि विशिष्टाद्वैतवादी का समय (सन् ८२४-९२४?) सन् ८२५ ई. में किंग-त्सुङ्ग चीन का सम्राट् हुआ। मेधातिथि की मनुस्मृति पर टीका का सम्भावित समय (सन् ८२५-९०० ई.) अघुल वाइड्स ट्यूनीशिया ने सिसली विजय आरम्भ किया। कृष्ण उपेन्द्र परमार राज मालवा (धार) थमल पेगू का संस्थापक (सन् ८२५-८३७ ई.) इंगवर्ट ने कैण्ट विजय किया। सन् ८२६ ई. में हाजिव इब्न सालिह सिन्ध का सूबेदार हुआ। सो-जोग कोरिया में सिल्ला राज्य। अरबों ने क्रीट लिया। चीन सम्राट् का शासन काल। सन् ८२७ ई० में वेलेण्टाइन पोप हुआ। वेने-त्सुङ्ग चीन सम्राट्। मामून खलीफा ने अब्दुल्ला पुत्र ताहिर को खुरासान तत्पश्चात् फारस का शासक बनाया। (हि० २१२) सन् ८२७ ई. में घस्सान अब्बाद सिन्ध का सूबेदार; इंगबर्ट इंगलैंड का प्रथम राजा हुआ। ग्रिगोरी (चतुर्थ) पोप हुआ। हिन्दुओं ने सिन्ध से मुसलमानों को निकाला। वशीर-इब्नदाउद सिन्ध के सूबेदार ने विद्रोह किया। जिसे घस्सान इब्न उब्बाद ने दबाकर मूसा इब्न यहया को उसके स्थान पर सूबेदार बनाया। (हि० २१३) डेनमार्क में ईसाई धर्म का प्रवेश हेराल्ड द्वारा हुआ। हिन्दुओं ने सिन्ध से अरब शासकों को निकाला। ताहिर वंश का शासन स्थापित किया (सन् ८२८–८३७) सन् ८२९ ई. में हर्जरा वर्मा का राज्य हुआ। थियोसेफीलसे पूर्वीय रोमन सम्राट् हुआ। मूर्ति पूजकों के दमन का यूरोप में आरम्भ। काक गरुंग मध्य जावा का राजा। हकेलू पगान का शासन। सन् ८३० ई. में अमोघवर्ष राष्ट्रकूट ने वज्रादित्य वेगी को पराजित किया। करक्का राष्ट्रकूट वंशीय गुजरात की मृत्यु। नान-चाओ (मिथिला राष्ट्र) ने प्यू पर आक्रमण किया। जयक का प्रथम अधिकार पक्ष। देवपाल पालवंशीय राजा का काल। मलोमिर वलगेरिया का राजा। सन् ८३२ ई. में अमरान 'विनमूसा' सिन्ध का सूबेदार हुआ। सन् ८३३ ई. में नागा-वलोक (नागा भट्ट) (द्वितीय) की मृत्यु तथा पुत्र रामदेव या रामभद्र कन्नौज का प्रतिहार राजा हुआ। उसकी स्त्री अप्प देवी थी। मामून खलीफा की मृत्यु और पुत्र मोत-सिन खलीफा हुआ। यह प्रथम खलीफा है जिसने अपने नाम के साथ विल्लाह शब्द जोड़ा है। (सन् ८३३–८४२ ई.) तुर्कों की राज सत्ता का प्रसार (सन् ८३३–८४२ ई.)। लुई प्रथम अपने पुत्र द्वारा अपदस्थ किया गया। (२० जून सन् ८३३ ई.) रामभद्र पुत्र नाग भट्ट राजा हुआ। (सन् ८३४-८४० ई.) डेन्स ने इंगलैण्ड पर आक्रमण किया। लुई प्रथम अपने पुत्र द्वारा पुनः पदस्थ किया गया। थेलउल्फ इंगलैण्ड का राजा हुआ। (सन् ८३६–८३८ ई.) चे-युङ्ग कोरिया सिल्ला राज्य का राजा हुआ। स्मरना की स्थापना। मिहिर भोज का ताम्रपत्र स्थान वरह जि० कानपुर उत्तरप्रदेश वि० ८९३ = ८३६ ई. कार्तिक सुदी ५ संस्कृत उत्तरी ब्राह्मी। सन् ८३६ ई. में मूसा की मृत्यु और उसके पुत्र अमरान

सोऽयं त्रिभुवनापीडो जयादेव्यामजीजनत् ।
राजानमजितापीडं तं बलादुत्पलो व्यधात् ॥६९०॥

६९०. वप्पिय का जयादेवी में उत्पन्न पुत्र अजितापीड था। उत्पल ने बलात् उसे नृप बना दिया।

को खलीफा मुत्तसिम विल्लाह ने सिन्ध का सूबेदार बनाया (हि० २२१)। मिहिर भोज प्रतिहार या आदि वाराह पुत्र रामभद्र कन्नौज का राजा हुआ। उसकी रानी कुमार भट्टिका देवी थी। सन् ८३७ ई. में हैदरविन-कौस सिन्ध का सूबेदार हुआ। ताहिर वंशीय शासक अब्दुल्ला (सन् ८३८-८४४ ई.) विमल भ्राता कमल पेगू का मोन शासक। (सन् ८३७-८५४ ई.) सन् ८३८ ई. में इथेला उल्फ इंगलैण्ड का राजा हुआ। तबरी इरानी इतिहासकार (सन् ८३८-९२३ ई.) अरबों ने मर्सलीज़ लूटा। इचेल उल्फ इङ्गलैण्ड का राजा हुआ। वालपुत्र देव स्वर्ण दीप के राजा ने नालन्दा में एक विहार की स्थापना की। सन् ८४० ई. चार्ल्स-वाल्ड फ्रांस का राजा हुआ। लूथर (प्रथम) होली रोमन सम्राट् हुआ। राजा मिहिर भोज गुर्जर प्रतिहार ने आदि वाराह की उपाधि धारण की। (सन् ८४०-८९० ई.) केपोंग–ओंग कोरिया के सिल्ला राज्य का राजा हुआ। (सन् ८४० ई.) चीन में तंग वंश का शासन सन् ८४१ ई. में लक्षमण राज, दहल मण्डल का राजा हुआ। (सन् ८४१-८४२ ई.) वाचस्पति ने न्याय सूत्र अनुक्रमणिका की रचना की। वु-त्सुङ्ग चीन का सम्राट् हुआ। बोथेयर अपने भ्राता फोण्टीनो द्वारा पराजित किया गया। सन् ८४२ ई. में चण्ड-महासेन चाहमान शाखा का धवलपुर में राज्य। व-त्सुङ्ग-के-तंग वंशीय चीन सम्राट्। ग्लगदर-मर तिब्बत राज की हत्या। राज्य का विघटन। माइकेल (तृतीय) पूर्वीय रोमन सम्राट्। सन् ८४३ ई. में लुई पापस की मृत्यु तथा कार्लो की विजय, साम्राज्य टुकड़ों में बँटा। जिनसेन लिखित आदिपुराण का काल। (सन् ८४३-८६८ ई.) सन् ८४४ ई. सेन द्वितीय लंका का राजा हुआ। (सन् ८४४-८७९ ई.) सरजियस द्वितीय पोप। ध्रुव (प्रथम) राष्ट्रकूट राज की अमोघवर्ष गुजरात के साथ हुए युद्ध में मृत्यु। ताहिर वंशीय ताहिर द्वितीय (सन् ८४४-८५१ ई.) सन् ८४५ ई. में कोक्कल कलचुरी का राजा (सन् ८४५-८८० ई.) पुल शक्ति। पुल कदर्पी शिलाहार वंश उत्तरी कोंकण का राजा। लेविश जर्मन ने जर्मनी प्राप्त किया। (सन् ८४३-८७६) पैन वया वन्धुओं का पगाल में राज्यकाल। सन् ८४७ ई. में विजयादित्य पूर्व चालुक्य की मृत्यु। (सन् ८४६-८७८ ई.) हसन अस्करी इमाम अली वंश का ग्यारहवां इमाम। अरबों ने रोम लूटा। लेबिस ने मोदविया राजा को पराजित किया। मुतवक्किल खलीफा हुआ। सुआन-त्सुङ्ग चीन सम्राट् हुआ। तेल्लारेंरिण्डा नन्दि वर्मा कम्पवर्मा उत्तर कालीन पल्लव राजा हुए। (सन् ८४७-८७२ ई०)। सन्त लियो चतुर्थ पोप हुआ। पगाल नगर की स्थापना। विष्णु वर्धन पंचम पूर्वीय चालुक्य राजा। विजयादित्य (तृतीय) पूर्व चालुक्य राजा (सन् ८४८-८९२ ई.) अल्फ्रेड दी ग्रेट इंगलैन्ड का राजा हुआ। सन् ८४९ ई. में पाणप्पा ने पगान (वर्मा) की स्थापना की।

पादटिप्पणी :

६९० (१) जयादेवी : यह जयादेवी उत्पल, पद्म, आदि की वहन से भिन्न दूसरी महिला थी।

शेडादिगणनास्थाननिष्यन्दोत्थान्नृपाय ते ।
पञ्चमाद् गणनास्थानादशनाच्छादने ददुः ॥६९१॥

६९१. उन लोगों ने नृप के लिये शेडादि गणना स्थान के लाभ से प्राप्त पाँचवें गणना स्थान से अशन वसन दिया ।

एकसंभाषणात् खेदं यात्स्वन्येषु दिने दिने ।
पञ्च तुल्यमुखान्यैच्छद् दुःस्थो राजा तदाश्रितः ॥६९२॥

६९२. दिनोंदिन एक के साथ बात करने से, अन्य के खिन्न होने के कारण, उनके आश्रित होकर, राजा दुःखस्थिति का अनुभव करने लगा और पाँचों को तुल्यमुख चाहता था ।

ते राजन्यजितापीडे राज्योत्पत्त्यपहारिणः ।
पुरदेवगृहादीनां प्रतिष्ठाकर्म चक्रिरे ॥६९३॥

६९३. अजितापीड के राजा रहते, राज्यलाभ का अपहरण करने वाले, उन लोगों ने नगर मन्दिर आदि प्रतिष्ठा कर्म किये ।

सापत्यास्ते बुभुजिरे राज्यं स्वामिविवर्जितम् ।
निर्जने महिषं शान्तं मिथः सेर्ष्या वृका इव ॥६९४॥

६९४. निर्जन में मृत महिष का भक्षण, जिस प्रकार परस्पर ईर्ष्यापूर्वक व्याघ्र करते हैं, उसी प्रकार अपत्य सहित वे स्वामी रहित राज का भोग किये ।

पादटिप्पणी :

६९१ (१) गणना स्थान = सेडा गणना स्थान के अतिरिक्त अन्य चार गणना स्थान—सलस्थल : नामेल्याणक, मिठान् तथा नवग्रामादि थे । सेडा शब्द पुनः (राज० : ८ : ५७६) राजस्थान की तरह प्रयोग किया गया है । प्रतीत होता है । राजकीय अर्थ सम्बन्धी विभाग किंवा स्थान था । गणना स्थान आजकल के एकाउण्ट आफिस के समान था ।

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने शेडा की न तो व्याख्या की है न उसका अनुवाद देकर मूल शब्द शेडा ही लिख दिया है । स्तीन के मत से पद का अर्थ स्पष्ट नहीं होता । श्री ट्रोयर ने भी इस पर टिप्पणी लिखी है । भाग २ : श्लोक : टिप्पणी : ६९१ ।

श्री एस. सी. राय ने सेडा की व्याख्या की है—करकोट राज्य के अन्तिम चरण में अजितापीड राजा भोजन तथा वस्त्र एकाउन्ट (लेखा-गणना) आफिस से प्राप्त करता था । जो अन्य चार एकाउन्ट आफिसों से अधिक हुए धन को प्राप्त करता था । उसे सेडो कहते थे । (१४०)

इस मत के समर्थन में कोई प्रमाण उपस्थित नहीं किया गया है । केवल उक्त श्लोक का हवाला दे दिया गया है ।

पादटिप्पणी :

६९२ (१) तुल्य = प्रायः सभी अनुवादकों ने 'तुल्यमुखं न चैच्छद्' पाठ को ठीक मानकर 'पाँचों को समान नहीं चाहता था' इस प्रकार अनुवाद किया है ।

पादटिप्पणी :

६९४ (१) अपत्य = अष्टाध्यायी में अपत्य का

उत्पलेनोत्पलस्वामी तथोत्पलपुरं कृतम् ।
पद्मस्य पद्मस्वाम्याऽऽस्ते कृतिः पद्मपुरं तथा ॥६९५॥

६९५. उत्पल ने उत्पलस्वामी[1] का प्रतिष्ठा कर्म तथा उत्पलपुर[2] का निर्माण किया। पद्म ने पद्मपुर[3] तथा पद्मस्वामी मन्दिर स्थापित किया।

अर्थ—अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् (पा० : ४ : २ : ६२) दिया गया है। एक ही कुटुम्ब अथवा कुल से यहाँ तात्पर्य है।

पादटिप्पणी :

६९५ (१) उत्पल स्वामी : उत्पलपुर में मन्दिरों के अनेक ध्वन्सावशेष मिलते हैं। उन्हीं में कोई मन्दिर उत्पल स्वामी का होना चाहिए।

(२) उत्पलपुर : राजानक रत्नकंठ द्वारा वर्णित उत्पलपुर यही है। क्षेत्रपाल पद्धति में उत्पलपुर में भैरव के स्थान का वर्णन मिलता है। उसके द्वारा वितस्ता तटीय काकपुर ही उसका वर्तमान नाम है। यदि वह ठीक मान लिया जाय, तो उत्पलस्वामी का मन्दिर यहीं होना चाहिए। जोनराज ने उत्पलपुर का उल्लेख किया है। (श्लोक ३२२ तथा ८५९) किन्तु कल्हण एवं जोनराज ने स्थान का भौगोलिक परिचय नहीं दिया है। अतएव स्थान का साधिकार पता लगाना कठिन है। क्षेत्रपाल पद्धति जिसके लेखक राजानक रत्नकंठ है, जिसकी एक प्रति श्री स्तीन को पं० जगमोहन, लाहौर के पास देखने को मिली थी, उस पांडुलिपि के अन्त में लिखा था कि उत्पलपुर ही, काकपुर स्थान है। वितस्ता तट पर वर्तमान ग्राम कोकपोर है।

नीलमत पुराण में एक उत्पलावती नदी का उल्लेख मिलता है। किन्तु उसका कोई सम्बन्ध उत्पलनगर से नहीं मालूम होता। (नील० : १२ = १३३, १३४)

(३) पद्मपुर : वर्तमान पामपुर है। यहाँ मैं सन् १९६० तथा १९६५ ई० में आ चुका हूँ। यह स्थान खप्रू से लगभग ४ मील दक्षिण पश्चिम है। पामपुर, रुद्रपुर, खप्रू, वुपन फैक्टरी होती हुई एक नवीन सड़क बनायी गयी है। पामपुर केसर की कृषि के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ से श्रीनगर सीमान्त तक का भूखंड बादाम तथा केसर की उपज के लिये प्रसिद्ध है। भूमि भूरी है। सूखी है। यहाँ के करेवा पर एक स्कूल बना है। श्री गान्धी आश्रम के ऊनी वस्त्र का उत्पादन केन्द्र है। श्री गान्धी आश्रम की स्थापना काशी में सन् १९२१ में हुई थी। मैं भी संस्थापिका में से एक था और स्कूल का अध्ययन त्यागकर तत्कालीन असहयोग आन्दोलन में सम्मिलित होकर जेल गया था। आज गान्धी आश्रम एक विशाल व्यापारिक तथा खद्दर उत्पादन का प्रतिष्ठान हो गया है। इसकी शाखायें बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा काश्मीर तक फैली हैं। पामपुर में विकास कार्यालय है। सड़क पर बहुत बड़ी ईदगाह है। राजकीय गो-संवर्धन केन्द्र है।

पामपुर सड़क के समीप मन्दिरों के ध्वन्सावशेष बिखरे हैं। शेख बाबा साहब की मजार है। ग्राम के मध्य एक सरोवर है। यहाँ जल किसी स्रोत प्रणाली से आता है। प्रसिद्ध कवयित्री देवी लल्लेश्वरी की माता मरने लगी तो लल्लेश्वरी ने पूछा—'त्राग चाहिये अथवा नाग।' सास ने उत्तर दिया 'त्राग'। त्राग तड़ाग संस्कृत शब्द का अपभ्रंश है। लल्लेश्वरी ने अपनी सास का अन्तिम संस्कार यहीं त्राग किंवा तड़ाग पर किया था। सरोवर किसी समय निर्मल रहा होगा परन्तु इस समय गाँव के मध्य होने के कारण गन्दा है।

वाइन ने पर्यटन संस्मरण में पामपुर का वर्णन किया है। (ट्रैवेल : २ ३१) जनरल कनिंघम ने आबादी के मध्य मन्दिर का ध्वन्सावशेष देखा था। वह श्रीनगर से दक्षिण पश्चिम आठ मिल वितस्ता

वधूर्व्यधत्त पद्मस्य गुणादेवी गुणोज्ज्वला ।
मठमेकमधिष्ठाने द्वितीयं विजयेश्वरे ॥६९६॥

६९६. पद्म की स्त्री गुणों से उज्ज्वल गुणादेवी ने अधिष्ठान[1] में एक तथा विजयेश्वर[2] में दूसरा मठ बनवाया ।

के दक्षिण तट पर श्रीनगर एवं अवन्तिपुर के मध्य स्थित है । (कनिंघमः जे० ए० एस० बीः २७४, २९० सन् १८४८ ई०) पद्मपुर का उल्लेख कल्हण ने (रा० : ६ ; २२२) पुनः किया है । तरंग सात एवं आठ में अपेक्षा कृत अधिक उल्लेख मिलता है ।

पद्मपुर मन्दिर की भव्यता का वर्णन पढ़ा था । मैंने गाँव में चक्कर लगाया । विशाल ध्वन्सावशेष यहाँ नहीं मिले । सड़क के बाँये तरफ एक ऊँचे करेवा के दक्षिण तरफ मन्दिर का ध्वन्सावशेष दिखायी दिया । वह करेवा कब्रिस्तान में परिणत कर दिया गया है । उसके सम्मुख तथा टीले से नीचे गाँव में जाने वाली सड़क पर एक जियारत है । उसमें मन्दिरों के अलंकृत स्तम्भ तथा शिला खण्ड लगे हैं । यह जियारत भव्य नहीं है । छोटी है । उससे कुछ और आगे बढ़ने पर एक और ध्वन्सावशेष मिलता है । दोनों ध्वन्सावशेषों के मध्य ज़ियारत है । यदि दोनों ध्वन्सावशेष एक ही मन्दिर के भाग हैं और जियारत को मन्दिर का गर्भ गृह मान लें तो मानना पड़ेगा कि मन्दिर वास्तव में विशाल निर्माण था । इसका आकार मार्तण्ड मन्दिर के समकक्ष नहीं तो कुछ ही छोटा रहा होगा । आबादी घनी है । मन्दिरों के पत्थर आदि ज़ियारतो, मस्जिदों, कब्रों एवं मज़ारों में खूब लगे मिलते हैं । समस्त ग्राम में मैंने मकानों में लगे तथा यत्र-तत्र पड़े पत्थरों को देखा । शेख बाबा साहब तथा ख्वाजा मसजिद में बहुत अलंकृत पत्थर लगे हैं । मैंने यहाँ मन्दिर का आमलक तथा देवता का अधिष्ठान भी पड़ा देखा । उन्हें एकत्रित कर एक चौतरा बना लिया गया है । उस पर शहतूत का एक वृक्ष लगा है । जहाँगीर अपनी आत्म कथा में पामपुर का वर्णन करता है—

'२७ वीं इलाही महीने मिह्र को सोमवार की रात्रि जब एक प्रहर सात घड़ी बीत गये थे तब शाही झण्डे शुभ साइत में प्रसन्नता के साथ हिन्दुस्तान की ओर लौटने के लिए उठाए गये । केशर इस समय खिल गया था । इसलिए नगर के पास से पामपुर ग्राम को कूच किया । सारे कश्मीर में केवल इस स्थान में केशर होता है । गुरुवार ३० वीं को इसी केसर के खेत में मदिरोत्सव मनाया गया । क्यारियों की क्यारियाँ तथा खेतों पर खेत फूले हुए थे । यहाँ की हवा से मस्तिष्क सुगन्धित हो जाता है । इसकी डंठल भूमि में लगी रहती है । इसके पुष्प में चार रंग होते हैं । इसका रंग बैगनो होता है । वह चंपा के फूल के बराबर होता है और इसके मध्य से केशर के तीन तार निकलते हैं । ये फूल बोते हैं । अच्छे वर्ष में चार सौ मन वर्तमान तौल से होता है । जो खुरासानी तौल से तीन हजार दो मन होता है । यहाँ की प्रथा है कि आधा शासक का केसर होता है । आधा कृषक लेता है । दस रुपए में एक सेर बिकता है । कभी कभी बाजार की दर घट बढ़ जाती है । यह भी वहाँ की प्रथा है कि ये फूलों को तोड़कर लाते हैं । और जैसा प्राचीन काल से चला आता है । उसका आधा तौल कम मजदूरी में लेते हैं । कश्मीर में नमक नहीं होता । यह हिन्दुस्तान से लाया जाता है । कश्मीर की अन्य विशिष्ट वस्तुएँ कलंगी के पर तथा शिकारी पक्षी होते हैं ।' पृ० ६८७

पादटिप्पणी :

६९६ (१) अधिष्ठान = राजधानी = प्रशासकीय केन्द्र = नगरपुर = मुख्य नगर = पड़रेथन स्थान ही प्राचीन पुराधिष्ठान है । यहाँ पर इस समय इतनी अधिक आबादी हो गयी है कि प्राचीन ध्वन्सावशेषों

धर्मो धर्मोद्यमी हेतुर् धर्मस्वामिविनिर्मितेः ।
कल्याणवर्मा सत्कर्मा कल्याणस्वामिकेशवे ॥६९७॥

६९७. धर्मोद्यमी धर्म धर्मस्वामी[1] के निर्माण का हेतु हुआ। सत्कर्मशील कल्याण वर्मा ने कल्याण स्वामी[2] की स्थापना की।

दीनाराणां सहस्राणि पञ्चोपकरणं कृती ।
एकैकस्याः सुधीर्धेनोः कृत्वा मम्मो महाधनः ॥६९८॥

६९८. बुद्धिमान् एवं महाधनी कृती मम्म ने प्रत्येक धेनु के साथ पाँच हजार दीनार प्रदान किया।[1]

पञ्चाशीतिसहस्राणि गवां दत्त्वा प्रकल्पयन् ।
कुम्भप्रतिष्ठासंभारं यो मम्मस्वामिनं व्यधात् ॥६९९॥

६९९. जिसने पचासी हजार गोदान करके, कुम्भप्रतिष्ठा[1] सम्भार के साथ मम्म स्वामी[2] की प्रतिष्ठा की।

तस्यैकस्यैव सामग्र्यां कः संख्यां कर्तुमर्हति ।
भ्रातृणां किं पुनस्तेषां सर्वेषां भूरिसंपदाम् ॥७००॥

७००. एकाकी उसके ही (दान) सामग्री की संख्या (गणना) कौन कर सकता है—पुनः उन प्रचुर सम्पत्तिशाली भ्राताओं की बात ही क्या ?

का पता लगाना कठिन हो गया है। गुणादेवी ने वहीं पर मठ बनवाया था। मुगल काल में तथा आज से दो सौ वर्ष पूर्व जिन यात्रियों ने काश्मीर की यात्रा की थी उन्हें श्रीनगर तथा पड़रेथन जो श्रीनगर का ही भाग है ध्वन्सावशेषों का विशाल नगर प्रतीत होता था।

(२) विजयेश्वर = विजवेहरा—विजब्रोर

६९७ (१) धर्म स्वामी : इस मन्दिर का पुनः उल्लेख नहीं मिलता। स्थान का पता नहीं चलता।

(२) कल्याण स्वामो : स्थान का पता नहीं चलता।

पादटिप्पणी :

६९८ (१) कल्हण ने (रा० : ३ : १६३) उल्लेख किया है कि मम्म ने अपने मन्दिर पर देवोत्तर चढ़ाने के लिये मातृगुप्त स्वामी पर जो देवोत्तर ग्राम आदि लगे और चढ़े थे उन्हें ले लिया उन्हीं अपहृत सम्पत्ति से प्रतीत होता है, मम्म ने दानादि पुण्य कर्म किये थे।

पादटिप्पणी :

६९९ (१) कुम्भ प्रतिष्ठा = कलश प्रतिष्ठा : कुम्भ प्रतिष्ठा का पुनः उल्लेख कल्हण ने (रा० : ७ : ६९९) किया है। यह एक यज्ञ उत्सव होता था। उसमें कुम्भ किंवा कलश एवं दूर्वा ग्रास का प्रयोग किया जाता था। दूर्वा स्त्रियाँ अपने जूड़ों में लगाती थीं। कुमारसम्भव में कालिदास ने स्त्रियों की जूड़ा में दूर्वा लगाने का वर्णन किया है।

धूपोष्मणा व्याजितमार्द्रभावं
केशान्तमन्तः कुसुमं तदीयम् ।
पर्याक्षिपत्काचिदुदारबन्धं
दूर्वावता पाण्डु मधूकदाम्ना ॥ कुमारस० ७ : १४

(२) मम्म स्वामी = यह मन्दिर कहाँ पर था। पता नहीं लग सका है।

द्रोहार्जिताऽस्तु वा लक्ष्मीः सुकृतोपार्जिताऽथवा ।
सर्वेषां स्पृहणीयैव तेषां दातृतया तया ॥७०१॥

७०१. द्रोह से अथवा सुकृति से उपार्जित लक्ष्मी, उन सबकी उस दातृता के कारण स्पृहणीय हो गयी थी ।

कृता देवगृहास्तैर्ये तत्पार्श्वेऽन्यसुरास्पदैः ।
दिङ्मातङ्गसमीपस्थकलभौपम्यमाश्रितम् ॥७०२॥

७०२. उन लोगों ने जिन मन्दिरों का निर्माण कराया था, उनके पार्श्वस्थ अन्य देव गृह दिग्मातंग (दिग्गज) समीपस्थ कलभ[1] (हस्तिशावक) तुल्य लग रहे थे ।

एकोननवते वर्षे स्वस्त्रीये शान्तिमागते ।
निर्विघ्नभोगास्तेऽभूवन् षड्विंशाब्दात्ययावधि ॥७०३॥

७०३. नवासी[1] वें वर्ष स्वस्त्रीय (भगिनीपुत्र चिप्पट जयापीड) के दिवंगत होने पर वे (उन लोगों ने) छब्बीस[2] वें वर्ष समाप्ति पर्यन्त निर्विघ्न भोग किये ।[3]

अथ मम्मोत्पलकयोरुदभूद्दारुणो रणः ।
रुद्धप्रवाहा यत्रासीद् वितस्ता सुभटैर्हतैः ॥७०४॥

७०४. अनन्तर मम्म और उत्पलक में दारुण रण हुआ, जिसमें निहत सुभटों से वितस्ता का प्रवाह रुद्ध हो गया था ।

पादटिप्पणी :

७०१ सूक्ति संग्रह का यह १५४ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

७०२ (१) कलभ = पशु शावक भी कलभ का अर्थ होता है । किन्तु दिग्मातंग का अर्थ होगा जवान हाथी । वह हाथी भी अर्थ होता है जो पृथ्वी को सम्हालने के लिये चारों दिशाओं में में स्थित रहते है । दिग्गज के समीप जैसे हाथी का बच्चा अति लघु मालूम पड़ता है, उसी प्रकार विशाल मन्दिरों के पार्श्व में बने अन्य देवगृह अति लघु दिखायी पड़ते थे । ननु कलभेन यूथपतेरनुकृतम्-मालविकाग्निमित्र : ५

पादटिप्पण :

७०३ (१) नवासीवें वर्ष = सप्तर्षि ३८८९ = सन् ८१३-८१४ ई० कलि = ३९२४ वर्ष

(२) छबीसवें वर्ष = सप्तर्षिः ३९२६ वर्ष = सन् ८५०-८५१ ई० = कलि ३९५१ वर्ष ।

(३) काल गणना = इस पद से कल्हण ठीक सुनिश्चित तिथि देना आरम्भ करता है । लौकिक संवत् का प्रयोग सर्वत्र किया है । लौकिक संवत् को सप्तर्षि संवत् भी कहते हैं । वही संवत् गणना काश्मीर तथा समीपवर्ती पर्वतीय क्षेत्रों में प्रचलित है । काश्मीरी परम्परा के अनुसार वह संवत् चैत्र सुदी एक कलियुग के २५ वें वर्ष से आरम्भ होता है । यह समय ईशा पूर्व ३०७६-७५ वर्ष होता है । काश्मीरी रीति के अनुसार संवत् में शताब्दी का प्रयोग नहीं करते और न उसे लिखते हैं । यही रिवाज शेष भारत तथा समस्त विश्व में इस समय भी प्रचलित है । सन् १९७० ई० के स्थान पर केवल ७० ही लिखते हैं । ईस्वी सन् जनवरी तथा सप्तर्षि चैत्र से आरम्भ होती है ।

कविर्बुधमनस्सिन्धुशशाङ्कः शङ्कुकाभिधः ।
यमुद्दिश्याकरोत्काव्यं भुवनाभ्युदयाभिधम् ॥७०५॥

७०५. कविबुध मनस्सिन्धुशशांक शंकुक[1] ने जिसे (रणको) उद्देश्य कर 'भुवनाभ्युदय' काव्य की रचना की ।

मम्मसूनुर्यशोवर्मा संग्रामाग्रे व्यपाहरत् ।
स यत्र तेजः शूराणां नक्षत्राणामिवार्यमा ॥७०६॥

७०६. मम्मतनय यशोवर्मा ने संग्राम के सम्मुख शूरों का तेज उसी प्रकार अपहृत कर लिया, जिस प्रकार नक्षत्रों का तेज अर्यमा[1] (सूर्य) अपहृत कर लेता है ।

पादटिप्पणी

७०५ (१) शंकुक : शंकुक का कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है । वल्लभदेव की सुभाषितावली तथा सारंगधर में उसकी कुछ कविताएँ संग्रहीत हैं । मम्मट के काव्य प्रकाश में उसका उल्लेख मिलता है । यह काश्मीर का प्रसिद्ध आलंकारिक है । इसके मत रस निरूपण का काव्य प्रकाश के चतुर्थ उल्लास में श्री मम्मटाचार्य ने निरूपण किया है । उसका मत प्रमाण स्वरूप उल्लास चार काव्य प्रकाश में दिया गया है । शंकुक भरत नाटच शास्त्र की व्याख्याता है । उसकी व्याख्या उपलब्ध नहीं है । अभिनव भारती में उसका उल्लेख प्राप्त है । भरत के रस सूत्र पर इसकी व्याख्या है । इस व्याख्या की 'अनुमति वाद' नाम से ख्याति है । भट्ट लोल्लट के उत्पत्तिवाद तथा सहृदयों में रसानुभव न मानने वाले सिद्धान्त के खण्डन कर्ताओं में सर्वप्रथम है । स्वतः न्यायशास्त्र का विद्वान् था । भुवनाभ्युदय काव्य में इसने मम्म तथा उत्पल के लोमहर्षण पूर्ण युद्ध का वर्णन किया है । इस युद्ध में हतप्राणियों के शवों से वितस्ता पट गयी थी । उसका प्रवाह अवरुद्ध हो गया था । इसका काल सन् ८५० ई० के समीप है । सारंगधर पद्धति तथा जल्हण की सूक्ति मुक्तावली में शंकुक को मयूर का पुत्र कहा गया है । सम्राट् विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक शंकुक का उल्लेख मिलता है । वह भी भरत नाटच शास्त्र का व्याख्याता था । किन्तु दोनों भिन्न व्यक्ति हैं । दोनों के काल में शताब्दियों का अन्तर है । एक का कार्यक्षेत्र उत्तर काश्मीर तथा दूसरे का अवन्तिका था। मम्मट के काव्य प्रकाश में उसका उल्लेख मिलता है।

चित्र तुरगादि न्याय की इनकी विवेचना के अनुसार नट सच्चे नहीं हैं, बल्कि चित्रित अश्व के समान है । जिस प्रकार चित्रित चित्र को देखकर अश्वादि का अनुभव होता है, उसी प्रकार सहृदयों को नट के अभिनयात्मक रूप को देखकर होता है । रस की स्थिति शंकुक ने सहृदयों एवं समाजियों में माना है । रस का आस्वाद अनुमान द्वारा अनुमेय किंवा अनुमति गम्य स्वीकार किया है ।

पादटिप्पणी :

७०६ (१) अर्यमा = वैदिक देवता है । बारह आदित्यों में एक है । (ऋ० : २ : २७ : १; तै० : ब्रा० : १ : १ : ९ : १, अर्यमन् का उल्लेख अन्य देवों मुख्यतया मित्र-वरुण के साथ हुआ है । (ऋ० : १ : २६ : ४; अ० बे० : ३ : ५ : ५; तै० ब्रा० : ३ : १ : १ : ९; श०ब्रा०: ५ : ३ : १ : २) आदित्य एवं मित्र के समान अन्य देवों के स्नेही हैं । संस्कारों में उनका उल्लेख प्राप्य है । कश्यप तथा अदिति के पुत्र हैं । (आदि० : ६५ : १५; शान्ति० : २०८ : १५) पितृगणों में इनकी गणना होती है । वैशाख मास में प्रकाशित होते हैं । इनकी तीन सौ किरणें हैं । (भवि० : ब्राह्म० : ७ : ७८; भा० : १२ : ११ : ३४) भगवान् श्री राम के वन जाने के समय माता कौशल्या ने बन में राम की रक्षा के लिये

अनंगापीड :

अथोत्पाट्याऽजितापीडं संगामापीडसंभवः ।
अनङ्गापीडनामाऽभूत् कृतो मम्मादिभिर्नृपः ॥७०७॥

७०७. मम्म आदि ने अजितापीड को उत्पाटित कर, संग्रामापीड के पुत्र (संभूत) अनङ्गापीड को नृपति बनाया ।

मम्मोत्साहाऽसहिष्णुत्वात् संभृतामर्षवैकृतः ।
तस्य राज्यं द्विषन्नासीत् सुखवर्मोत्पलात्मजः ॥७०८॥

७०८. मम्म के प्रभुत्व का असहिष्णु होने के कारण संचित अमर्ष से विकृत उत्पल पुत्र सुखवर्मा उसके राज्य से द्वेष रखता था ।

अर्यमा का आवाहन किया था । (वा० अयो० २५ : ८) अर्यमा अर्थात् सूर्य के उदय होते ही नक्षत्र एवं ग्रहों का तेज उसके तेज में लीन हो जाता है । रात्रि में सूर्य के अभाव में नक्षत्र पुनः अपना प्रकाश फैलाते हैं ।

पादटिप्पणी :

७०७. श्री दत्त राजा अनंगापीड का राज्याभिषेक काल कलि ३९५० = शक ७७१ = लौ० ३९२५ = सन् ८४९ ई०, श्री स्तीन लौ० ३९२६, सी. एम. डफ. सन् ८५० ई०, श्री विल्सन ८७० वर्ष १० मास, श्री ट्रोयर सन् ८५२ वर्ष ८ मास २० दिन = लौकिक वर्ष ३९२५, श्री कनिंघम सन् ८४९ वर्ष १० मास, डाइनोस्टिक हिस्टोरी आफ इण्डिया में सन् ८५० ई०, पीर हसन विक्रमी संवत ९०६ = सन् ८४९ ई०, त्रिवेद सन् ८२५ = शक ७४७ देते हैं । तथा राज्यकाल सर्वश्री ट्रोयर, दत्त, स्तीन, विल्सन, एवं पीरहसन ३ वर्ष देते हैं । राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल ३ वर्ष दिया गया है ।

हसन लिखता है—राजा अनंगापीड मम्म की इमदाद से विक्रमी ९०६ में तख्त पर बैठा । सुखवर्मा पिसर उत्पल उसकी मुखालिफत करता था । तीन साल के अरसा के बाद हकूमत से माजूल हुआ ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ८५० ई०—परकेसी विजिपालम चोलदेव का समय (सन् ८५०-८७१ ई०) ब्राह्मण साही की काबुल में कल्लर द्वारा स्थापना । ओलक तथा इमुण्ड नारवे के राजा । (सन् ८५०--८८२ ई०) जयवर्मा तृतीय एगकोर राज्यतन्त्र का राजा । (सन् ८५०--८७७ ई०) धन्यालोक आनन्दवर्धन की रचना इस समय के पूर्व की मानी गयी है । विग्रहपाल राजा का समय । मतंग संगीतज्ञ द्वारा प्रचलित द्वादश मूर्च्छना पद्धति का काल । अबूबकर मुहम्मद इब्न जकरिया ने चिकित्सा शास्त्र पर अरबी में ग्रन्थ लिखा । शिव स्वामी का सम्भावित रचना काल (सन् ८५०--८८५ ई०) । सन् ८५१ ई० सुलेमान सौदागर का समय (हि० २३७) । मुहम्मद अब्दुला ताहिर वंश का काल । रुरिक नोवो ग्रोड का राजा हुआ । कर्पदी (द्वितीय) पुत्र पुलशक्ति शिलाहार वंश उत्तरी कोकण । डेन्स ने केण्टबरी लिया और लण्डन फूँका । सन् ८५२ ई० वोरिस बलगोरिया का प्रथम ईसाई राजा हुआ । जयमाल राजा का स्थिति काल (कामरूप) । मुहम्मद प्रथम खलीफा कोरडोवा का हुआ । (सन् ८५२--८८६ ई०) बलगेरिया का शासक बोरिस प्रथम हुआ (सन् ८५२–८८८ ई०) सन् ८५३ ई० में नीतिराज पश्चिमी गंग का राजा हुआ । पृथ्वीपति (प्रथम) भी वहाँ का राजा हुआ ।

उत्पलापीड :

वर्षत्रयणोत्पलके ततः प्रलयमागते ।
स चकारोत्पलापीडमजितापीडजं नृपम् ॥७०९॥

७०९. (तदनन्तर) तीन वर्ष पश्चात् उत्पलक के गत होने पर, उस (सुखवर्मा) ने अजितापीडात्मज उत्पलापीड[1] को नृप बनाया ।

तेषामाश्वयुजीराजसदृशानां महीभुजाम् ।
भूत्वाऽपि भृत्याः कृतिनः विभूतिं केऽपि लेभिरे ॥७१०॥

७१०. आश्विनी पूर्णिमा के शशांक सदृश स्वल्पकाल स्थायी उन महीभुजों के कतिपय भृत्य कृती (क्रियाशील) होकर विभूति प्राप्त किये ।[1]

पादटिप्पणी :

७०९ (१) श्री दत्त राजा उत्पलापीड का राज्याभिषेक काल कलि ३९५३=शक ७७४=लौ० ३९२८= सन् ८५२ ई. श्रीस्तीन लौ० ३९२९, सी. एम. उफ सन् ८५३ ई. श्री विल्सन सन् ८७३ ई. १० मास, श्री ट्रोयर सन् ८५५ ई. ८ मास २० दिन = लौकिक ३९२८, श्री कनिंघम ८४९ ई. १० मास, डाइनोस्टिक हिस्टोरी आफ इण्डिया में सन् ८५३ ई. त्रिवेद सन् ८२८ ई. = शक ७५० देते हैं । पीरहसन विक्रमी संवत् ९१० सन् = ८५३ ई. तथा राज्यकाल सर्व श्री ट्रोयर दत्त तथा पीरहसन ३ वर्ष तथा सर्व श्री स्तीन तथा विल्सन तथा आइने अकबरी २ वर्ष देती है । राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल १५ वर्ष दिया गया है ।

आइने अकबरी में नाम अतबलनुन्ड दिया गया है ।

पीरहसन लिखता है—राजा उत्पलापीड विक्रमी संवत् ९१० में इस मुल्क की हकूमत पर मसलत हुआ । उसके वजीर ने रत्नस्वामी का मन्दिर आबाद किया । दो साल हकूमत में गुजार कर शश के हाथ से मारा गया । और कारकोट वंशी राजाओं की सल्तनत इख्तिताम को पहुँचीं । सत्तरह राजाओं की सल्तनत दो सौ चौवन साल और ६ महीने थी । तरंग चहारम तमाम हुआ (९६) ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ८५३ ई. नीति राज पश्चिमी गंग (सन् ८५३-८७३ ई.) तत्पश्चात् पृथ्वीपति (प्रथम) पश्चिमी गंग का राजा हुआ । सन् ८५४ ई. में जय वर्मा (द्वितीय) कम्बुज की मृत्यु तथा जय वर्मा तृतीय राजा हुआ । (सन् ८५४–८७७ ई.) विग्रहपाल (प्रथम) राजा हुआ । नारायण पाल राजा बंगाल (सन् ८५४-९०८ ई.) अथ भतीजा विमल पेगू (वरमा) का राजा हुआ । विक्रान्त वर्मा तृतीय चम्पा का राजा ।

पादटिप्पणी :

७१० (१) इस श्लोक में उपमा नीलमत की एक कथा से दी गयी है । काश्यप के शाप के कारण काश्मीर में प्रतिवर्ष ६ मास मनुष्य तथा ६ मास पिशाच रहते थे । पिशाच मानवों को बाध्य कर देते थे कि आश्वयुज की पूर्णमासी से चैत्र मास तक वे काश्मीर को त्याग दें । जिस प्रकार प्रति वर्ष पिशाच एवं मानव आते जाते रहे हैं, उसी प्रकार कल्हण उपमा देता है कि काश्मीर में राजा भी शीघ्रता पूर्वक एक के पश्चात् दूसरे सिंहासन पर बैठते और त्याग करते थे । मानव पूर्व काल में प्रत्येक वर्ष आश्वयुज पूर्णिमा को काश्मीर का त्याग कर देते थे । इस प्राचीन प्रथा से सम्बन्धित एक रिवाज काश्मीर में आश्वयुज का प्रचलित हो गया था । इस दिन लोग

सांधिविग्रहिकस्तस्य रत्नो नाम विभूतिभाक् ।
तस्मिन् कालेऽपि यश्चक्रे रत्नस्वामिसुरास्पदम् ॥७११॥

७११. उसके ऐश्वर्यशाली सान्धिविग्रहिक 'रत्न' जिसने उस समय भी रत्नस्वामी[१] देवालय स्थापित किया।

भेजुर्दार्वाभिसारादीन् देशानुत्तम्भ्य भूपताम् ।
विमलाश्वा ग्रामभुजो नराद्या व्यवहारिणः ॥७१२॥

७१२. विमल अश्व वाले ग्रामभोजी नर आदि व्यवहारियों (व्यवसायियों) ने दर्वाभिसार[१] आदि देशों का प्रभुत्व प्राप्त किया।

उत्सव विचित्र ढंग से मनाते हैं। एक दूसरे पर कीचड़ फेंकते हैं। उत्साह पूर्वक परिहास करते हैं। ताकि पिशाच घरों में प्रवेश न कर सकें। वह रिवाज इस समय लोग भूल गये हैं। कल्हण ने इसका उल्लेख आश्वयुजक गाली नाम से तरंग ७ : १५५१ में किया है। अल्बेरूनी ने नोलमत से मिलते जुलते इस प्रथा का वर्णन किया है। वह लिखता है 'उत्सव १५ आश्वयुज को मनाया जाता है। जब कि वह रेवती नक्षत्र पर अन्तिम बार स्थित रहता है। उत्सव में लोग एक दूसरे से Rangl करते हैं। तथा पशुओं के साथ खेलते हैं। इस उत्सव को 'पुहाई' कहते हैं। सम्भव है कि यह पिशाच से सम्बन्धित किंवा पिशाच का अपभ्रंश हो।

सुमव्यं तं तथा रात्रि द्वितीयस्याम् अनन्तरम् ।
कर्दमेनानुलिप्तांगैः क्रीडितव्यं तथा नरैः :
389 = ४९६, ४९७

सुहृदः कर्दमे नापि लेपयद्भिरितस्ततः ।
कामार्थवादिभिः सर्वैस्तल्लिगार्थप्रबोधकैः ॥
390 = ४९७, ४९८

गर्तृगम्यविशेषैश्च विविधैश्च सुभाषितैः ।
अश्लीलानि वदमानैश्च आक्रोशद्भिस्तथा द्विज ॥
391 = ४९८, ४९९

पादटिप्पणी :

७११ (१) रत्नस्वामी : इस स्थान का पता नहीं चलता। राजतरंगिणी से नहीं स्पष्ट होता कि यह देवस्थान कहाँ पर था।

पादटिप्पणी

७१२ (१) दर्वाभिसार = दर्व एवं अभिसार दो जनपद थे उनका सम्मिलित नाम दर्वाभिसार है। उनका उल्लेख प्रायः त्रिगर्त के साथ मिलता है। अभिसार का उल्लेख बृहत् संहिता में वाराह मिहिर ने किया है। अभिसार प्रदेश चनाव और झेलम का मध्यवर्ती भाग था। दर्व एव अभिसार दो भिन्न भिन्न जनपद थे। दोनों से पर्वताश्रयी प्रदेश हैं। एक मत है कि पूँछ और नैशेरा क्षेत्र जो चनाव और झेलम के मध्य हैं वही दर्वाभिसार है। दोनों प्रदेशों की सीमाएँ बदलती रही हैं। भिन्न भिन्न काल के लेखकों ने भिन्न परिभाषायें दी हैं। राजौरी का राज्य दर्वाभिसार में सम्मिलित था। महाभारत में इसका उल्लेख मिलता है। (भीष्म : ९ : ५४) पुराणों में भी उल्लेख मिलता है। (मत्स्य : ११४ : ५६; वायु : ४५ : १ ३६)

श्री मोहिपुल हसन ने अपनी रचना काश्मीर अण्डर सुलतान में पृष्ठ १९२ के सम्मुख पृष्ठ पर काश्मीर का मान चित्र दिया है। उसमें दर्व को सिन्ध नदी के पूर्व शारदी से लेकर करनाव तक दिखाया है दक्षिण में झेलम नदी उत्तर में शारदा तथा पूर्व-काश्मीर, पश्चिम सिन्ध नदी तथा दक्षिण में झेलम नदी है। द्रव के विषय में लिखते हैं कि वह वर्तमान नाम किशनगंगा उपत्यका का है। वह शारदी के

राज्ञां कार्कोटवंश्यानां क्षीणप्रायमभूत् कुलम् ।
वंशस्तूत्पलकुल्यानां भुवि वैपुल्यमाययौ ।।७१३।।

७१३. कर्कोट वंशीय राजाओं का कुल क्षीणप्राय हो गया और उत्पल वंश पृथ्वी पर विस्तृत हुआ ।

सामर्थ्योपनतप्रायपार्थिवत्वो व्यपद्यत ।
विद्वेषात् सुखवर्माऽथ शुष्काख्येन स्वबन्धुना ।।७१४।।

७१४. सामर्थ्य से प्रभुत्व प्राप्तकर्ता सुखवर्मा को द्वेषवश स्वबन्धु शुष्क ने मार डाला ।

ततः शूराभिधो मन्त्री सुखवर्मात्मजेऽकरोत् ।
राज्ययोग्योऽयमित्यास्थां सगुणेऽवन्तिवर्मणि ।।७१५।।

७१५. तदनन्तर शूर नामक मन्त्री ने सुखवर्मा के पुत्र गुणी अवन्तिवर्मा में—'यह राज्य के योग्य है—ऐसी आस्था प्रकट की ।'

अवन्तिवर्मा :

एकत्रिंशे स वर्षेऽथ प्रजाविप्लवशान्तये ।
विनिवार्योत्पलापीडं तमेव नृपतिं व्यधात् ।।७१६।।

७१६. उसने इकतीसवें[1] वर्ष में प्रजा विप्लव शान्ति हेतु उत्पलापीड को (राज्य) च्युत कर[2], उसी (अवन्तिवर्मा) को नृपति बनाया ।

यत्कृते विफलक्लेशा आसन् पितृपितामहाः ।
पौत्रेण हेलया प्राप्ता सा सिद्धिः पुण्यकर्मणा ।।७१७।।

७१७. जिसके लिये पितृ एवं पितामह का क्लेश (परिश्रम) विफल हो गया था उस सिद्धि को पुत्र ने पुण्य कर्म से हेला में ही (अनायास) प्राप्त कर लिया ।

नीचे करनाव तक था। उसका प्राचीन नाम दुरन्द था, जिसे परशियन हरहू कहते थे। (पृष्ठ : ११२)

पादटिप्पणी

७१६ (१) श्री स्तीन ने राज्याभिषेककाल सप्तर्षि ३९३१ वर्ष १० = सन् ८५५-८५६ ई० पण्डित ने सन् ८५७ ई०, विल्सन ने सन् ८७५ वर्ष १० मास, ट्रॉयर ने ८५७ वर्ष ८ मास तथा कनिंघम ने ८५४ वर्ष ११ मास, पीरहसन विक्रमी ९१२, तथा श्री दत्त सप्तर्षि ३९३१ = सन् ८५५ ई० देते हैं ।

(२) राज्यच्युत = वाकियाते काश्मीरी के अनुसार उत्पलापीड़ हिजरी सन् २०९ में राज्यच्युत किया गया था ।

पादटिप्पणी :

७१७ सूक्ति संग्रह का यह १५५ वां श्लोक है ।

कुम्भाः पयोनिधिपयोहरणप्रवृत्ता
नित्यं वहन्ति किल ये विफलश्रमत्वम् ।
चित्रं क्षणादिह तदेकसमुद्भवेन
संदर्शिता निखिलवारिधिपानलीला ॥७१८॥

७१८. पयोनिधि-पयहरण में प्रवृत्त कुम्भ नित्य विफल श्रम होते हैं। आश्चर्य है—उस एक घट से समुद्भूत (अगस्त्य कुम्भज) ने क्षण में ही निखिल वारिधि पान[1] कर लीला दिखा दी।

अभृत तदनु मूर्ध्नि राजलक्ष्मी-
घटितकटाक्षकृतादिपट्टबन्धे ।
कनकघटमुखान्नवाभिषेकं
झटिति पतन्तमवन्तिवर्मदेवः ॥७१९॥

७१९. तत्पश्चात् अवन्तिवर्मा ने शीघ्र ही राजलक्ष्मी कटाक्षकृत आदि पट्टबन्ध वाले मूर्धा (शिखर) पर कनक घट मुख से निपतित अभिषेक[1] धारण किया।

पादटिप्पणी :

७१८ सूक्ति संग्रह का यह १५६ वां श्लोक है।

(१) वारिधि पान = पुराणों में अगस्त्य के समुद्र पान की कथा रोचक शैली में दी गयी है। अगस्त्य ने समुद्र का जल चुल्लू में भरकर पान किया था। इसके कारण इनका नाम समुद्रचुलूक तथा पीताब्धि पड़ गया था। दक्षिण भारत चले गये। उस समय से वे उत्तर में नहीं लौटे। दक्षिण भारत तथा दक्षिण पूर्व एशिया में अगस्त्य की अत्यधिक मान्यता है। मेरी समझ से उसका एक कारण अगस्त्य तारा का दक्षिण में अधिक दिखायी देना है। यह भादो मास में सिंह के सूर्य के सत्तरह अंश पर उदय होता है। तारा का रंग कुछ पीला लिये श्वेत होता है। दक्षिण की ओर उदित होता है। उत्तर निवासियों को अपेक्षाकृत कम दृष्टि गोचर होता है। यह तारा लुब्धक से पैतीस अंश दक्षिण पड़ता है। आकाश के स्थिर तारों में लुब्धक के अतिरिक्त कोई अन्य तारा इतना प्रकाशमान नहीं होता। द्रष्टव्य पादटिप्पणी अगस्त्य : ४ : ६४७।

पादटिप्पणी :

७१९ (१) अभिषेक = अभिषेक द्वारा राजा में दैवत्य भाव का प्रवेश प्रतिमाओं की प्राण प्रतिष्ठा के समान होता है, भारतीय पुराणशास्त्रों की वही मान्यता है। अभिषेक के सम्बन्ध में पुराणों तथा स्मृतियों में भिन्न भिन्न प्रक्रियाएँ दी गयी हैं। उनमें एकरूपता नहीं है। सुवर्ण कलश जल से अभिषेक किया जाता था, यह मान्यता सर्व सम्मत थी। द्रष्टव्य (ऐतरेय ब्राह्मण : ३९ : ३,—६) तैत्तिरीय संहिताः २ : ७ : १५-१७; अथर्ववेद : १ : ३०, १९; ७ : ८५ : १; ७ : ८६ : १, ७ : १७१ : १; ७ : ४५; ११ : ४; रामाः युद्धः १३१; रघुवंशः १७ : १०; सभा पर्व : ३३; शान्ति पर्व : ४० : ९—१३, आदिपर्व : ४४, ८५, १०१; पञ्चतन्त्र ३ ; ७६, अग्नि : २१८, ३१९, विष्णु धर्मोत्तर २ : १९; २२; २ : १८ ; २—४; १६२, मनुः ७ : २१७—२२०; कामन्दकः ७ : ८; मत्स्यपुराणः २१९ : १०, कौटिल्यः १ : १७;

संप्राप्तावुपदेष्टुमिन्दुतपनावुक्तं स्ववंशोद्भवै-
र्भूपालैर्नवराज्यतन्त्रमिव स श्रोत्रद्वये धारयन् ।
राजा मण्डनकुण्डलद्वयमिषात्स्वच्छातपत्रच्छला-
ल्लक्ष्मीविष्टरपुण्डरीकघटितच्छायोदयो दिद्युते ।।७२०।।

७२०. उस नृप ने कर्ण युगल में भूषण कुण्डल द्वय के व्याज से स्ववंशीय नृपों द्वारा उक्त नव राज्यतन्त्र का उपदेश करने के लिये, आगत चन्द्र सूर्य को धारण करते हुए, वह राजा स्वच्छातपत्र (छत्र) के छल से, लक्ष्मो के विष्टर (कमल) पुण्डरीक कृत छाया में, शोभायमान होने लगा ।[1]

पादटिप्पणी :

७२० सूक्ति संग्रह का यह १५७ वां श्लोक है ।

(१) सोम वंश : भारत के मुख्य राजवंश अपनी वंश परम्परा सूर्य एवं सोम से सम्बन्धित करते हैं । यहाँ पर राजा के दोनों कुण्डलों को सूर्य एवं सोम से उपमा देकर कल्हण ने इस ओर संकेत किया है । नवीन वंश के प्रथम राजा होने के कारण उक्त वंशों की परम्परा भी उसे प्राप्त हुई ।

यह पद राजा के दैवत्य राजवंश के सिद्धान्त को उद्दिष्ट करता है । सूर्य तथा सोम वंशीय राजाओं की तालिकायें रामायण, पुराण तथा महाभारत में दी गयी हैं। इसी प्रकार की परम्परा जापान में है। जहाँ जापान सम्राट् मिकाडो सूर्य वंशज माना जाता है ।

सोम वंश (चन्द्र वंश) = पुराणों में वर्णित अत्यधिक इतिहास सोम वंशी राजाओं का है। प्रारम्भ में सूर्य वंशीय राजाओं के इतिहास एवं कथानकों का बाहुल्य है । उत्तर कालीन इतिहास में सूर्य वंशीय राजाओं का इतिहास अयोध्या, विदेह एवं वैशाली राज्यों तक ही सीमित रह गया था । उत्तर कालीन काल में केवल मान्धातृ एवं सगर दो ही सूर्य वंशीय राजा हुए हैं, जिनका राज्य उत्तर भारत में विस्तृत था । इक्ष्वाकु पुराणों की मान्यता के अनुसार इस वंश के आदि पुरुष थे । पुराणानुसार कश्यप के पुत्र सूर्य थे । सूर्य के पुत्र वैवस्वत मनु थे । मनु के पुत्र इक्ष्वाकु थे। इक्ष्वाकु त्रेता युग में अयोध्या के राजा थे । दाशरथी राम सूर्य वंशी थे । भाग. : ९ : १० : ३ ।

उत्तर भारत, उत्तर पश्चिम, एवं दक्षिण भारत पर सोमवंशी राजाओं का ही आधिपत्य था । सोम वंश अनेक उपवंशों में विभाजित हो गया था । इनमें पौर वंश का राज्य ब्रह्मावर्त अर्थात् यमुना-गंगा मध्य, हस्तिनापुर, पांचाल, चेदि, वत्स, करूष, मगध एवं मत्स्यादि राज, यादव शाखा में पश्चिम राजस्थान, से पूर्व उत्तर यमुना नदी तक विस्तृत था । अनुशाखा का राज्य पंजाब में था । उनमें सिन्धु, सौवीर, कैकेय, मद्र, वाहीक, शिवि, अम्बष्ठ प्रमुख थे । इनकी एक दूसरी शाखा का राज्य पूर्व विहार, बंगाल एवं उत्कल में था । उनमें अंग, वंग, पुण्ड्र, सुह्म एवं कलिंग मुख्य थे । द्रुह्यु वंश का राज्य गान्धार किंवा भारत की पश्चिमोत्तर सीमा म्लेच्छ देश तक विस्तृत था । तुर्वसु वंश के राज्य का उत्तर भारत में अस्तित्व नहीं था । दक्षिण भारत में पाण्डय, चोल, एवं केरल राज वंश इसी के अन्तर्गत थे । काश्य शाखा का राज्य काशि देश में था ।

बुध का इला पत्नी द्वारा उत्पन्न पुत्र पुरुरवा ऐल सोमवंश का संस्थापक माना जाता है । इसका राज्य प्रतिष्ठान (झूंसी) प्रयाग में था । पुरुरवस् के आयु एवं अमावसु नामक दो पुत्रों के पुत्र एवं पौत्रों में राज्य विभाजित हो गया था । अमावसु शाखा कान्यकुब्ज में राज्य करती थी । आयु के अनेनस्, नहुष, क्षत्रवृद्ध, रम्भ एवं रजि चार पुत्र थे । अनेनस् ने आयु नामक स्वतंत्र राज्यवंश स्थापित किया था । आयु के अन्य पुत्रों ने पुरु राज वंश स्थापित

किये थे। उनमें क्षत्रवृद्ध, यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु, पुरु वंश था। पुरु वंश आयु राजा के पौत्र पुरु द्वारा स्थापित किया गया था। यदु वंश की उपशाखायें (१) सहस्रजित तथा (२) क्रोष्टु थीं। सहस्रजित के वंशज हैहय सामूहिक नाम प्राप्त किये थे। क्रोष्टु के वंशजों ने यादव सामूहिक नाम प्राप्त किया। अनु-वंश की उपशाखायें (१) उशीनर तथा (२) तितुक्ष थीं। उशीनर शाखा में सौवीर, केकय, मद्रकादि प्रमुख थे। तितुक्ष वंश में अंग-वंग आदि अनेक शाखायें थीं। पुरुवंश की उपशाखायें (१) अजमीढ़ तथा (२) द्विमीढ़ थीं। अजमीढ़ में हस्तिनापुर के कुरु, उत्तर पांचाल की नील शाखायें प्रसिद्ध थीं। द्विमीढ़ शाखा भरतवंशोत्पन्न द्विमीढ़ द्वारा स्थापित की गयी थी। सोम वंश की अनेक शाखायें कालान्तर में स्थापित होती गयीं उनमें अजमीढ़, अनु, अनेनस्, अंधक, अमावसु, मानव, आयु, उशीनर, ऋक्ष, ऐल, करूष, काश्य, कुकुर, कशांव, कृष्ण, क्रोष्टु, क्षत्रवृद्ध, चेदि (चैद्य), जह्नु, ज्यामघ, तितिक्षु, तुर्वसु, द्रुह्य, द्विमीढ़, नील, पुरुरवस्, पुरु, प्रतिक्षत्र, बलिय, बभ्रु, भजमान, भरत, भोज, मगध, यदु (यादव), रजि, रम्भ, वसुदेव, वासव, विदूरथ, विष्णु, वृष्णि, सहस्रजित, सात्वत, एवं हैहय वंश प्रसिद्ध हैं। (वायु : ९३: १०३ : ९९-४७२; ब्रह्माण्ड: ३ : ६८ : १०५,

(२) सूर्य वंश = मनु वैवस्वत द्वारा सूर्य वंश की स्थापना हुई थी। मनु के नव पुत्र थे। पाँच पुत्र तथा एक पौत्र वंशकर ने स्वतन्त्र राज्य वंश स्थापित किया था। मनु पुत्र इक्ष्वाकु ने इक्ष्वाकु वंश अयोध्या में, इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने निमिवंश विदेह में, मनु पुत्र नाम निदिष्ट ने दिष्ट वंश वैशाली में, शर्याति ने आनर्त में शर्यात वंश, नृग ने नृग वंश तथा नरिष्यन्त ने नरिष्यंत वंश स्थापित किये थे। इक्ष्वाकु वंश में (१) भागवत के अनुसार ८८ (२) वायु के अनुसार ९१ (३) विष्णु के अनुसार ९३ (४) मत्स्य पुराण के अनुसार ६७ राजा हुए है। ामावली पूर्ण नहीं मिलती। भागवत में नामावली कुछ पूर्ण तथा ब्रह्म, हरिवंश, एवं मत्स्य पुराणों में नामावली अपूर्ण है। (वायु : ८८ : ८-११ ब्रह्माण्ड ३ : ६३; ८–११; ब्रह्म : ७ : ४५–४८; शिव : ७ : ६० : ३३–३५; मत्स्य : १२ : २६–२८;–५७; पद्म : पाः ८ : १३०–१३३; लिंग : १ : ६५ ३१–३२)

दिष्ट वंश को कई पुराणों में वैशाल राजवंश की संज्ञा दी गयी है। (ब्रह्माण्ड ३ : ६१, ३१८; वायुः ८६ : ३–२३, लिंग : १ : ६६ ५३, मार्क० : ११०–१३३; मत्स्य० : १२ : २६-२८, ५७; पद्म०: पा० : ८ : १३०–१३३; लिंग० : १ : ६५ : ३१–३२; विष्णु० : ४ : १ : १६; गरुड० : १३८ : ५-१३; भा० : ९ : २ : २३; वा० : बा० : ४७:११; आश्व० : ४ : ४) इस वंश के विशाल राजा ने वैशाली नगरी स्थापित की थी। उसी समय से वंश का नाम विशाल पड़ गया।

निमिवंश की राजधानी मिथिला थी। (ब्रह्माण्ड : ३ : ६४ : १; वायु० : ८९ : १–२३; विष्णु० : ४ : ५ : ११-१४; गरुड० : १ : १३८ : ४४-५८; भा० : ९) 'जनक' इस वंश के राजाओं की उपाधि थी। इनकी अन्य उपाधियाँ 'विदेह' तथा 'निमि' थीं। सुविख्यात राजा इस वंश का सीरध्वज जनक था। उसके भ्राता का नाम कुशध्वज था। (ब्रह्माण्ड० : ३ : ६४ : १८-१९; वायु० : ८९ : १८; वा०बा० : ७० : २-३) भागवत में विष्णु० : ६ : ६ : ७–१०४, ४ : २४ : ५४; कुशध्वज को सीरध्वज राजा का पुत्र माना गया है। वैदिक साहित्य में निमि वंश का निर्देश प्राप्त है।

नभग वंश का राज्य गंगा की अन्तर्वेदी (दो-आबा) में था। सोम वंशी ऐल राजाओं के कारण यह वंश राज्यविहीन हो गया। इस वंश के लोग वर्णान्तर करके अंगिरस् गोत्रीय रथीतर ब्राह्मण बन गये। अंबरीष, विरूप, रथीतर इस वंश के प्रमुख राजा थे।

नरिष्यन्त वंश क्षत्रिय धर्म त्याग कर ब्राह्मण ह

इति श्रीकाश्मीरकमहामात्यचण्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां चतुर्थस्तरङ्गः ॥

समाशतद्वये षष्टियुते मासेषु षट्सु च । निर्दशाहेषु कार्कोटवंशे सप्तदशाभवन् ॥

श्री काश्मीर के महामात्य चप्पक प्रभु के पुत्र कल्हण कृत राजतरंगिणी में चतुर्थ तरंग समाप्त हुआ।[1]

गया। इनमें चित्रसेन, दक्ष, अग्निवेश्य प्रमुख राजा हुए थे। वे अग्निवेश्यायन नाम से प्रसिद्ध हुए थे। (भा० : ९ : २ : १९-२२; वायु० : ८६ : १२-२१)

नृग वंश का निर्देश भागवत पुराण में मिलता है। इस वंश में सुमति, वसु, ओघवत, नामक राजा प्रमुख हुए थे। (भा० : ९ : २ : १७-१३)

शर्याति वंश की राजधानी कुशस्थली थी। इस वंश के संस्थापक शर्याति राजा की कन्या का नाम सुकन्या था। उसका विवाह च्यवन मुनि से हुआ था। (भा० : ९ : ३; ह० वं० : १ : १० : ३१-३३; वायु० : ८६ : २३-३०; ब्रह्माण्ड०: ३ : ६१ : १८-२०; ६१ : १, ४; ब्रह्म० : ७ : २७ : २९)

पादटिप्पणी :

(१) अनेक प्रतियों तथा राजतरंगिणी संग्रह में निम्नलिखित श्लोक इति पाठ के पश्चात् मिलता है। श्री ट्रोयर की प्रति (सन् १८४०) में यह मूल का ही भाग मानकर मुद्रित किया गया है।

समाशतद्वये षष्टियुते मासेषु षट्सु च।
निर्दशाहेषु कार्कोटवंशे सप्तदशाभवन् ॥

दो शत साठ वर्ष तथा छः मास में कर्कोट वंश में १७ राजा हुए।

राजतरंगिणी संग्रह में कर्कोट वंश के राजाओं को संख्या १७, राज्य वर्ष २६०, मास ५ तथा दिन २० दिया गया है।

प्रत्येक तरंग के अन्त में मूल राजतरंगिणी के प्रतिलिपिकार ने एक श्लोक जोड़ दिया है। इनमें वर्णित वर्ष गणनायें कल्हण की वर्ष गणना से नहीं मिलतीं। विद्वानों ने इस श्लोक को कल्हण कृत नहीं माना है।

उक्त श्लोक में तरंग चार में वर्णित राजाओं के समस्त राज्य काल की गणना का संक्षिप्त सार दिया गया है। इसके अनुसार संग्रामापीड का राज्य काल (रा० : ४ : ४००) सात वर्ष होता है। वास्तव में सात दिन होना चाहिए। सात वर्ष राज्यकाल जोड़ने से कल्हण की काल गणना के विपरीत पड़ती है। राजानक रत्नकण्ठ की पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि में पूना भण्डारकर रिसर्च इन्स्टीटयूट में श्लोक संख्या ७२० के पश्चात् इस तरंग की श्लोक संख्या ७१६ तथा राजाओं की संख्या १७ दी गयी है। राजाओं की संख्या ठीक है। श्लोक गणना ७१६ गलती से लिख दिया गया है। वह ७२० होना चाहिए। श्री ट्रोयर संस्करण में श्लोक संख्या ७१९ तथा कलकत्ता संस्करण में ७२० दी गयी है। कर्कोट वंश के राजाओं का कुल राज्यकाल २५४ वर्ष ५ मास ७ दिन होता है। यहाँ राज्यकाल २६० वर्ष ६ मास दिया गया है। यदि उसमें से २५४ वर्ष ५ मास ७ दिन घटा दिया जाय तो ६ वर्ष २३ दिन होता है। यह स्पष्टतया गलत है। श्लोक प्रक्षिप्त है।

आइने अकबरी में टेबुल ५ के नीचे लिखा है—
१७ राजा, राज्य काल २५७ वर्ण ५ मास २० दिन।

रघुनाथ सिंह, जन्मस्थान पंचक्रोशी अन्तर्गत वरुणा नदी के तीर रामेश्वर स्थान समीपस्थ ग्राम खेवली तथा निवासी मुहल्ला घीहट्टा (औरंगाबाद) काशी नगरी वाराणसी क्षेत्र ने श्री कल्हण पण्डितकृत राजतरंगिणी के तरंग चार का अनुवाद एवं भाष्य कलि० ५०७२ = लौ० ५०४७ = विक्रम संवत् २०२८ = सन् १९७१ ई० = शक १८९३ हिजरी १३९१–१३९२, फसली १३७८--७९ बंगला सन् १३७८–१३७९ समाप्त किया।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

पञ्चमस्तरङ्गः

●

उत्पल वंश

●

लौकिक संवत् : ३९३१—४०१५

सन् ईसवी : ८५५-५६—९३९

उत्पलवंश

क्रम	नाम राजा	श्लोक सं०	राज्याभिषेक लौ०	= सन् ई०	मासादि	राज्यकाल
१.	अवन्ति वर्मा	२	३९३१	= ८५५-५६		
२.	शंकर वर्मा	११८	३९५९	= ८८३	आषाढ़ सुदी ३.	
३.	गोपाल वर्मा	२२८	३९७७	= ९०२	फाल्गुन वदी ७.	
४.	संकट	२४२	३९७९	= ९०४		
५.	सुगन्धा	२४३	३९७९	= ९०४		
६.	पार्थ	२५५	३९८१	= ९०६		
७.	निर्जित वर्मा (पंगु)	२८७	३९९७	= ९२१	पौष.	
८.	चक्रवर्मा	२८८	३९९८	= ९२३	माघ.	
९.	शूरवर्मा (प्रथम)	२९२	४००९	= ९३३		१ वर्ष
१०.	पार्थ (पुनः)	२९५	४०१०	= ९३४		
११.	चक्रवर्मा (पुनः)	२९७	४०११	= ९३५	आषाढ़.	
१२.	शम्भु वर्धन	३०४	४०११	= ९३५	पौष.	
१३.	चक्रवर्मा (पुनः)	३४८	४०१२	= ९३६	चैत्र सुदी ८.	
१४.	उम्मत्तावन्ती	४१४	४०१३	= ९३७	ज्येष्ठ सुदी ८.	
१५.	शूरवर्मा (द्वितीय)	४४९	४०१५	= ९३९	आषाढ़.	

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

पञ्चमस्तरङ्गः

कऽप्येतेषु रुचिः कचेषु फणिनां पुंस्कोकिलस्येव ते
गोभिः कण्ठतटस्य हृष्यति पुरो दृक्पश्य चक्षुःश्रुतेः ।
संधानेऽभिनवे मिथो भगवतोर्जिह्वापृथक्स्पन्दिनी
भिन्नार्थां सदृशाक्षरामपि वदन्त्येवं गिरं पातु वः ॥ १ ॥

१. "आपकी सर्पों के इन बन्धनों में कोई विशेष रुचि है, सामने देखिये—पुंस्कोकिल[१] सदृश कण्ठ तट के किरणों (कान्तियों) से चक्षुःश्रवा[२] का नेत्र हर्षित हो रहा है।"

इस प्रकार परस्पर अभिनव-सन्धान में पृथक् स्पन्दित एवं सदृशाक्षर होने पर भी भिन्नार्थ-गर्भित वाणी बोलने वाली पार्वती एवं शंकर की जिह्वा आप लोगों की रक्षा करे।[१]

पाठभेद :

५ श्लोक १ में 'स्पन्दिनी' का पाठभेद 'स्पर्धिनी' मिलता है।

पादटिप्पणी :

इसका एक अर्थ यह भी होगा—

अथवा तुम्हारे इन केशों में सर्पों के समान कोई अनिर्वचनीय कान्ति है, सामने देखो—तुम्हारे पुंस्कोकिल सदृश कण्ठध्वनियों से चक्षुश्रवा का नेत्र प्रफुल्लित हो रहा है।

श्लोक में सुन्दर श्लेष की योजना की गयी है। शंकर के प्रति पार्वती की उक्ति में ही पार्वती के प्रति शंकर की उक्ति सन्निविष्ट है। इस प्रकार दोनों अर्थ विना विशेष मन्थन के ही सुस्पष्ट हो जाते हैं।

१ यह सूक्ति संग्रह का १५८ वाँ श्लोक है।

(१) कोकिल = शिव के कण्ठ की उपमा कोकिल से दी गयी है। शिव का कण्ठ हलाहल पान करने के पश्चात् नीला हो गया था। उनका नाम नीलकण्ठ पड़ गया। वसन्त आगमन का कौकिल की कूक से पता चल जाता है। सर्प भी वसन्त आगमन काल से जागृत होकर कोकिल की मधुर कूक को सुनने लगता है।

(२) चक्षु श्रवा = सर्प : सर्प को कान नहीं होता मान्यता है। सर्प चक्षु से सुनते हैं। अतएव सर्प का अपर नाम चक्षुश्रवा हो गया है। सर्प संगीत प्रिय होते हैं। वे अपने नेत्रों से सुनते हैं। संगीत सुनकर वे मस्त हो जाते हैं। वे फण फैलाकर झूमने लगते हैं। सपेरा अपनी तुम्बी जब बजाता है तो सर्प सावधान होकर गेडुली मारकर बैठ जाता है। वह फण उठा तथा फैलाकर ध्यान से सुनता है। मदारी प्राय: तुम्बी बजाकर सर्प को मोहित करते हैं।

मेरे मित्र श्रीरमेश चन्द्र दे हैं। पांड़े होली बंगाली

अवन्तिवर्मा (सन् ८५५-५६—८८३ ई०) :

अवन्तिवर्मा साम्राज्यं प्राप्य पाटितकण्टकः ।
चकार चरितैश्चित्रं सतां कण्टकितं वपुः ॥ २ ॥

२. साम्राज्य प्राप्त कर अवन्तिवर्मा ने कण्टक उत्पाटित कर दिया और आश्चर्य है (स्व) चरितों से सज्जनों का शरीर कंटकित[1] (रोमाञ्चित) किया ।

टोला के निवासी हैं । काशी का प्रतिष्ठित बंगाली परिवार है । उनके दादा के भाई महेश चन्द्र सरकार थे । वह पांड़ेहौली समीपस्थ मदनपुरा मुहल्ला में रहते थे । वे अपने समय के चतुर वीणावादक थे । उनकी वीणा सुनने पूज्यवर श्रीराम कृष्ण परमहंस काशी पधारे थे । वीणा सुनते सुनते उन्हें समाधि लग गयी थी ।

यह बात लगभग एक सौ वर्ष पुरानी है । सरकार महाशय एक दिन अपनी कोठरी में बैठकर वीणा बजा रहे थे । दरवाजा कुछ उढकाया था । सरकार महाशय बीड़ा बजाने में तन्मय थे । एक सर्प उनके सम्मुख आकर संगीत सुनने लगा । उनका हाथ जहाँ रुकता था । वहाँ वह फूत्कार करता था । सरकार महाशय वीणा रोक नहीं सकते थे । क्योंकि उन्हें अपने जीवन का भय हो गया था । जबतक वीणा बजती रहती, तबतक सर्प शान्त झूमता सुनता था । बन्द होते ही, वह बेचैन होकर फूत्कार करने लगता था । सरकार महाशय थकने लगे । किन्तु वीणा बजाना बन्द होते ही सर्प दंश का भय था । किवाड़ भी उढकाया हुआ था । संयोग से सरकार महाशय ने संगीत राग में ही चेला को संकेत किया कि उनका जीवन खतरे में है । वह किवाड़ खोल दे । किवाड़ खुला । खुलते ही सरकार महाशय कोठरी के बाहर भाग गये । सर्प वीण रुकता देखकर, क्रोधित होकर, वीणा से लिपट गया । प्राणी विज्ञान शास्त्रज्ञों का भी यही मत है सर्प को कान नहीं होता । वे सुनने का कार्य आँख से लेते हैं ।

पादटिप्पणी :

२ (१) श्रीदत्त राजा अवन्तिवर्मा का राज्याभिषेक काल कलि ३९५६ = शक ७७७ = लौ० ३९३१ = सन् ८५५ ई०, श्रीस्तीन लौ० ३९३१ = सन् ८५५-८५६ ई. श्री विल्सन सन् ८७५ ई. १० मास, २० दिन, सी. एम. डफ सन् ८५५ ई., श्री पण्डित सन् ८५७ ई., श्री ट्रोयर सन् ८५७ ई. ८ मास, लौकिक ३९३०, श्री कनिंघम लौ० ३९३१ = सन् ८५४ ई. डाईनेस्टिक हिस्टॉरी आफ इण्डिया में सन् ८५६ ई. पीर हसन विक्रमी संवत् ९१२ सन् ८५५ ई. त्रिवेद सन् ८४३ = शक ७६५ देते हैं तथा राज्यकाल सर्व श्री ट्रोयर २९ वर्ष, दत्त २८ वर्ष, श्री पण्डित २७ वर्ष ४ मास १८ दिन एवं पीर हसन ३७ वर्ष देता है ।

आईने अकबरी में नाम अदुन्त तथा राज्यकाल ३८ वर्ष, ३ मास ३ दिन देता है । राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल २७ वर्ष दिया गया है ।

२ (१) कंटक = यह शब्द यहाँ पर श्लिष्ट है । कंटक का अर्थ शत्रु तथा रोमांच दोनों होता है । रोमांचित होने पर काँटों के समान रोयें खड़े हो जाते हैं । 'प्रीतिकण्टकितत्वच्'—कुमार सम्भव : ६ : १५. यहाँ पर विरोधाभास अलङ्कार है—जो व्यक्ति कण्टकोत्पाटन कर्त्ता है, वही फिर कंटकित क्यों और कैसे करेगा, कंटकित का रोमाञ्चित अर्थ कर देने पर विरोध का परिहार हो जाता है ।

अवन्ति वर्मा की मुद्रा नहीं मिली है परन्तु श्री कनिंघम ने अवन्तिवर्मा को ही आदित वर्मा मानने का अनुमान किया है । मुद्रा के मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'आदि' पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'नजित्' टंकित है ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ८५५ ई० में वेनडिक्ट तृतीय पोप हुआ । अवन्तिवर्मा काश्मीर का राजा हुआ । शिव स्वामी महाकवि का स्थिति काल । सन् ८५७ ई० में नारा-

यणपाल राजा हुआ। जयसिंह सूरि ने प्रकृति भाष्य उपदेश माला पर लिखा। इथेल वाल्ड इंगलैण्ड का राजा हुआ। सन् ८५८ ई० में निकोलस (प्रथम) पोप हुआ। सन् ८६० ई० में अमोघवर्ष तथा गुजरात राष्ट्रकूट शाखा मध्य संघर्ष की समाप्ति। चन्द्र वलब्बी देवी कन्या अमोघवर्ष का विवाह गंगराजवुतुंग से हुआ। इन्द्रवर्मा (द्वितीय) चम्पा का राजा हुआ। (सन् ८६०--८९५ ई०)। भृगु वंश की स्थापना। (सन् ८६०--९८५ ई०) इथेलवर्ट इंगलैण्ड का राजा हुआ। ई-त्सुंग-चीन का सम्राट् हुआ। सन् ८६१ ई० में प्रवाल राष्ट्रकूट ने मध्यप्रदेश पर शासन किया। मुत्तसिर खलीफा हुआ। याकूबलेथ सीस्तान का सिपहसालार हुआ। सन् ८६२ ई० में प्यू राजदूत चीन गया। वरगुण-वर्मा पाण्ड्य का राजा हुआ। (सन् ८६२--८८० ई०) भोज का उल्लेख, देवगढ़ शिलालेख में, सन् ८६५ ई० में रूसी जहाजी बेड़े ने कुस्तुनतुनिया के लिये खतरा पैदा किया। याकूब इ लैथ सफरी ने अमीर सालिह को मार कर सिजिस्तान पर अधिकार किया। सन् ८६६ ई० में इथेल रोड (प्रथम) इंगलैंड का राजा हुआ। तिब्बती राजवंश पश्चिमी तिब्बत चला गया। तिब्बत की शक्ति समाप्त प्राय, सन् ८६७ ई. में एड्रियन (प्रथम) पोप हुआ। सन् ८६८ ई. विक्रमादित्य प्रथम बाण का राजा हुआ। (सन् ८६८-८९० ई.)। सन् ८७० ई. हिन्दूशाही वंश का राजा समन्त या सामन्द हुआ। मोतमिद खलीफा हुआ। अमर खुरासान का सूबेदार हुआ। याकूब इब्नलेथ जबुलिस्तान, वुस्त, जमीने दावर, गजनी, तुर्किस्तान वलख को दबाकर काबुल की तरफ बढ़ा। तत्पश्चात् हेरात, वदगैस, वुशंज या फुशंज, जाम और वखरुज लिया। जयादित्य (द्वितीय) विजयपुर मलकेतु वंशीय तथा पश्चिमी गंग में रायमल्ल द्वितीय का राज्यकाल। (सन् ८७०-९०७ ई.) सन् ८७१ ई. में खलीफा मुत्तमिद ने याकूबलेथ सफ्फारी को सिन्ध में सूबेदार नियुक्त किया। मुल्तान तथा मनसेहरा में अरब सत्ता स्थापित हुई। खुरासान में ताहिर स्वतंत्र हुआ। याकूबबिन लेथ वलख तथा तोखरिस्तान के खलीफा द्वारा सूबेदार बनाया गया। तुर्किस्तान का बौद्ध राजा याकूबबिन लेथ से परास्त हुआ। बौद्ध राज्य परम्परा के स्थान पर मुसलिम राज्य परम्परा की स्थापना। आदित्य प्रथम चोल (सन् ८१७-९०७ ई.)। सन् ८७२ ई. में याकूबबिन लेथ सफरी राज्य का सूबेदार नियुक्त हुआ। सन् ८७२ ई. सफरी वंश की खुरासान में ताहिर वंश को समाप्त कर स्थापना हुई। (सन् ८७२-९०३ ई.) इङ्गलैण्ड का अल्फ्रेड दी ग्रेट राजा हुआ। ग्राण्ड ड्यूक रुरिक (कीव) रूस का राजा हुआ। जॉन अष्टम पोप हुआ। आदित्य (प्रथम) चोल राजा हुआ। सिन्ध सफरी वंश के राज्य का एक भाग बन गया। नृपतुंग वर्मा पल्लव राजा हुआ। (सन् ८७२-९१३ ई.) सन् ८७४ ई. में गणक द्वितीय सैन्धव राजा हुआ। ही-त्सुङ्ग चीन सम्राट् हुआ। समनी वंश की स्थापना हुई। सन् ८७४ ई. याकूबी अरब लेखक ने कम्बुज आदि के विषय में लिखा। याकूबबिन लेथ खलीफा के विरुद्ध युद्ध किया। उसकी सूबेदारी समाप्त हुई। कोक्कल (प्रथम) कलचुरी, चेदि राजा पृथ्वी वर्मा पुत्र मर्दं रट्ट सामन्त सौदन्ती का स्थिति काल, सन् ८७६ ई. में याकूबबिन लेथ हेरात, करमान तथा फर पर विजय प्राप्त किया। भोज का उल्लेख, ग्वालियर शिला लेख, सन् ८७७ ई., इन्द्रवर्मा कम्बुज का राजा हुआ। लुई द्वितीय फ्रांस का राजा हुआ। सन् ८७८ ई. में बाण तथा वैदुम्बों ने पश्चिमी गंग तथा नीलम्बो को सोरमाती के युद्ध में पराजित किया। अमोघवर्ष (द्वितीय) राष्ट्रकूट राज की मृत्यु तथा कृष्णा (द्वितीय) राजा हुआ। (सन् ८७८--९१४ ई०) अमरू बिन लेथ खुरासान का सूबेदार हुआ। सन् ८७९ नेवारी संवत् का आरम्भ सन् ८७९। अमर बिन लेथ ने हिन्दू तीर्थ शाही राज्यान्तर्गत सकबन्द नष्ट तथा इराक पर आक्रमण किया। लौटने पर शौवाल चौदह (हि० २६५) को मर गया। अमर बिनलेथ के अधीन कर्दधान, खुरासान, इस्फहान, सिजिस्तान, किरमान तथा सिन्ध था।

आसतां क्षितिपामात्यौ तौ द्वावपि परस्परम् ।
आज्ञादाने परिवृढौ भृत्यावाज्ञापरिग्रहे ॥ ३ ॥

३. वे दोनों नृप तथा अमात्य, परस्पर आज्ञा देने और आज्ञा ग्रहण करते समय स्वामी एवं भृत्य हो जाते थे ।

कृतज्ञः क्षान्तिमान् क्ष्माभृत् मन्त्री भक्तः स्मयोज्झितः ।
अभङ्गुरोऽयं संयोगः सुकृतैर्जातु दृश्यते ॥ ४ ॥

४. कृतज्ञ, क्षमाशील, क्ष्माभृत् एवं भक्त तथा अहंकार शून्य, मन्त्री का अभंगुर (स्थायी) यह संयोग कदाचित् सुकृतों से प्राप्त होता है ।

विवेक्ता प्राप्तराज्यः स क्ष्माभृद्वीक्ष्य नृपश्रियम् ।
अविलुप्तस्मृतिर्धीमानन्तरेवमचिन्तयत् ॥ ५ ॥

५. विवेकी, धीमान्, वह स्मृतिशील नृपति, राज्य प्राप्त कर, राज्य लक्ष्मी को देख कर, अन्तःकरण में इस प्रकार चिन्तन किया—

गोभुजां वल्लभा लक्ष्मीर्मातङ्गोत्सङ्गलालिता ।
सेयं स्पृहां समुत्पाद्य दूषयत्युन्नतात्मनः ॥ ६ ॥

६. 'गोभुजों (राजा) की वल्लभा एवं मातंग के उत्संग में लालित[1] यह लक्ष्मी स्पृहा उत्पन्न करके, उन्नतात्माओं को दूषित करती है ।

मुतजिद पुत्र मुबफिक खिलाफत के पूर्वीय अंचल का सूबेदार बनाया गया । राजा उदय (द्वितीय) लंका (सन् ८७९-८९० ई०) । राघवदेव नैपाल का राज्य काल (सन् ८७९-९२६ ई०) । लुई तृतीय फ्रांस का राजा हुआ । ग्राण्ड ड्यूक आलेग रूस में राजा हुआ सन् ८८० ई० में । उद्योतन आचार्य का समय । पल्लवों ने कुम्भकोनम निकटस्थ श्री पुरवियम में पाण्ड्यों को पराजित किया । मारसिंह (द्वितीय) पश्चिमी गंग का राजा हुआ । (सन् ८८०-९०० ई०) । परान्तक वीर-नारायण पाण्ड्य का राजा हुआ । (सन् ८८०-६०० ई०) अल्पतगीन का जन्म (हि० २६१) नासिर (प्रथम) समनानी का आज़ाद हुआ गुलाम । सन् ८८२ ई० में मार्टिन (द्वितीय) पोप हुआ । सन् ८८२-८८३ ई० भोज का उल्लेख पेहोवा शिलालेख में, सन् ८८३ ई० में अवन्तिवर्मा की मृत्यु आषाढ़ शुक्ल तृतीया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३ में 'दाने' का पाठभेद 'धाने' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४. यह सूक्तिसंग्रह का १५९ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

६ सूक्ति संग्रह का १६० वाँ श्लोक है ।

(१) मातंगोत्संग लालित = मातंग का अर्थ हाथी तथा चाण्डाल दोनों होता है । इसका एक अर्थ यह भी होता है । जो निम्न श्रेणी के मनुष्यों के पलथियो पर विहार करता है । मातंग के उत्संग से लालित अर्थात् मातंग के पृष्ठ पर, लालित का भाव है । वह धन के साथ पैदा हुआ था । अंग्रेजी

स नास्ति कश्चित्प्रथमं यः प्रदर्श्यानुकूलताम् ।
सन्ताप्यते न चरमं नीचप्रीत्येव नाऽनया ॥ ७ ॥

७. 'ऐसा कोई नहीं है, जिसे प्रथमतः अनुकूलता दिखाकर, पश्चात् नीच प्रीति तुल्य इस लक्ष्मी ने संतप्त न किया हो ?[1]

चपलाभिः प्रवृद्धेयं स्ववेंश्याभिः सहाम्बुधौ ।
तदेकचारिणीवृत्तमनया शिक्षितं कुतः ॥ ८ ॥

८. 'यह चपल स्वर्गवेश्याओं[1] के साथ, अम्बुधि[2] में प्रवृद्ध हुई, तथापि इसने एकचारिणी वृत्ति कहाँ से सीखा ?

निस्स्नेहा नान्वगात्कांश्चित् सुचिरं संस्तुताऽप्यसौ ।
परलोकाध्वगान् भूपानपाथेयानबान्धवान् ॥ ९ ॥

९. 'स्नेह रहित, सुपरिचित (संस्तुत) भी, इस (लक्ष्मी) ने परलोक के पथिक, पाथेय एवं बन्धु रहित, किन्हीं भूपतिओं का अनुगमन[1] नहीं किया ।

शब्द—बोर्न विद सिलवर स्पून—के भाव को प्रकट करता है, अर्थात् अत्यन्त धनाढ्य एवं श्रीसम्पन्न घर में जन्म लिया व्यक्ति ।

कल्हण का लक्ष्मी के प्रति वैराग्य वर्णन योग वासिष्ठ में राम द्वारा लक्ष्मी की निन्दा से मिलता है। द्रष्टव्य : योगवासिष्ठ : २ वैराग्य प्रकरण (सर्ग : ३-३१, तथा योग वासिष्ठ कथा : पृष्ठ ३६, ३७)

उक्त पद का भावार्थ होगा—लक्ष्मी दुर्दमनीय कामना उत्पादन कर, महात्मागणों को दूषित करती रहती है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७ में 'कूलताम्' का पाठ भेद 'कूल्यताम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७ सूक्ति संग्रह का १६१ वाँ श्लोक है ।

(१) अमृत मन्थन की ओर यह पद लक्ष्य करता है । सुर एवं असुरों द्वारा अमृत मन्थन किया गया था । उससे चौदह रत्नों में लक्ष्मी तथा अप्सरा निकली थी । अमृत मन्थन से अमृत एवं विष दोनों निकले थे । विष पान के कारण शंकर का नाम नीलकण्ठ पड़ गया था ।

उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—उस लक्ष्मी का कृपा पात्र होने पर, दुःखानल में दग्ध होने वाला व्यक्ति संसार में विरल होगा ।

पादटिप्पणी :

८ सूक्ति संग्रह का १६२ वाँ श्लोक है ।

(१) वेश्या : वेश्या के आचरण उनके व्यवहार आदि का वर्णन काश्मीरी कवि दामोदरगुप्त कुट्टनीमतम् में विस्तार से करता है। द्रष्टव्य : श्लोक : ३०२–३४२ : क्षेमेन्द्र कहता है—वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् । वित्तं विनाऽपि वेत्ति स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ।

(२) अम्बुध := कल्हण समुद्र मन्थन की ओर लक्ष्य करता है। चौदह रत्नों में लक्ष्मी तथा अप्सरा दोनों निकली थीं। वेश्या का अर्थ समुद्र से निकली अप्सरा से लगाना चाहिए। (मत्स्य० : १ : ९; २४९ : १४; वायु० : २३ : ९०, ५२ : ३७; ९२ : ९; विष्णु० : १ : ९ : ८०-१११)

पादटिप्पणी :

९ सूक्ति संग्रह का १६३ वाँ श्लोक है ।

(१) अनुगमन : सती स्त्रियाँ अपने

हेमभोजनभाण्डादि भाण्डागारे यदर्जितम् ।
कस्मादस्य न नाथास्ते लोकान्तरगता नृपाः ॥ १० ॥

१०. 'भाण्डागार में अर्जित जो स्वर्ण भोजनपात्रादि रहते हैं, उनके स्वामी लोकान्तरगत, वे नृप क्यों नहीं होते ?

अन्योच्छिष्टेषु पात्रेषु भुक्त्वैतेषु महीभुजः ।
कस्मान्न लज्जामवहञ्शौचचिन्तां न वा दधुः ॥ ११ ॥

११. 'अन्य उच्छिष्ट इन पात्रों में खाकर, नृपति लज्जित क्यों नहीं हुए; अथवा उन्हें शोच चिन्ता (पवित्रता विचार) क्यों नहीं हुई ?

स्थूलेषु राजतस्थालकपालेष्ववलोकितैः ।
प्रेतभूपालनामाङ्कैः शङ्का कस्य न जायते ॥ १२ ॥

१२. 'स्थूल राजत (चान्दी) स्थाल (थाल) कपाल पर (लिखित), मृत भूपालों का नाम देखकर किसे शंका[१] नहीं होती ?

कृष्टाः प्रविष्टे ये कालपाशे कण्ठान्मुमूर्षताम् ।
अशस्ता अपवित्राश्च ते हाराः कस्य हारिणः ॥ १३ ॥

१३. 'काल पाश प्रविष्ट, मुमुर्षुओं के कण्ठ से आकृष्ट, अप्रशस्त एवं अपवित्र वे हार (आभूषण), किसके लिये रुचिकर होंगे ?

पति का अनुगमन करती हैं। पति के साथ चिता पर सती होती हैं। लक्ष्मीपति अर्थात् राजा का एक सती स्त्री तुल्य लक्ष्मी कभी नहीं अनुगम करती जब स्वर्ग का पथिक राजा पाथेय एवं बन्धु रहित एकाकी प्रयाण करता है। राजा लक्ष्मी की रक्षा, संचय एवं वृद्धि के लिये, सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। उसके लिये संघर्ष करते हैं। प्राणोत्सर्ग करते हैं। इतना त्याग करने पर भी लक्ष्मी अपने पालक, रक्षक का कभी विपत्ति काल में साथ नहीं देती। द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० : ४ : ९८

उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—दीर्घकाल तक एक साथ रहने पर भी यह निर्मम लक्ष्मी परलोकगामी निर्बान्धिव पाथेय शून्य राजाओं का अनुगमन नहीं करती।

पादटिप्पणी :

१० (१) इस श्लोक का भावार्थ होगा परलोक गत राजा गण भाण्डार स्थित, भोग्य वस्तु बहुमूल्य द्रव्यादि, एवं स्वर्ण राशि के क्यों अधिकारी नहीं हो जाते ?

पादटिप्पणी :

११ सूक्ति संग्रह का १६४ वां श्लोक हैं।

(१) उक्त श्लोक का भावार्थ होगा (पूर्व) के राजाओं के जूठे बरतनों में बाद के हुए राजा लोग निर्लज्ज होकर कैसे भोजन करते हैं ?

पादटिप्पणी :

१२. (१) शंका = यहाँ 'शंका' का अर्थ मूढ़ कल्पना मूलक भय कहा जा सकता है। काश्मीरी ब्राह्मण इस शब्द का प्रयोग इसी भाव में अब भी करते हैं। राजा अपने जीवन काल में रजत थाली आदि पर अपना नाम खुदवाते हैं। परन्तु राजा की मृत्यु पर, जब वे धातु, दूसरों के मूर्ध पर रखे जाते

सन्दूष्य बाष्पैर्दुःखोष्णैस्त्यक्तान् पूर्वैर्मुमूर्षुभिः ।
स्पृशन्नेतानलङ्कारान् न कस्सङ्कोचमाप्नुयात् ॥ १४ ॥

१४. दुःख के उष्ण वाष्पों द्वारा संदूषित कर, पूर्व मुमूर्षुओं द्वारा परित्यक्त, इन अलंकारों का स्पर्श करते हुए, किसे संकोच नहीं होगा ?

या वारिराशिसलिलान्तरसन्निधान-
संसेवयाऽपि सततं मलिनैव लक्ष्मीः ।
पात्रेषु रोरशिखिभागिषु सा विमुक्ता
वैमल्यमेति हरिणीव हुताशशौचा ॥ १५ ॥

१५. 'जो लक्ष्मी निरंतर वारिधि के सलिल मध्य सन्निधान प्राप्त कर भी मलिन ही रहती है वहाँ दारिद्रय (रोर)[1] अग्नि ग्रस्त पात्र में पड़कर अग्नि द्वारा शुद्ध हरिणी[2] तुल्य विमल हो जाती (वैमल्य प्राप्त करती) है ।'

इति निर्ध्याय नृपतिर्नीत्वा स्वर्णादि चूर्णताम् ।
निजैरञ्जलिभिः प्रादाद् द्विजन्मभ्यः करम्भकम् ॥ १६ ॥

१६. ऐसा सोचकर, नृपति ने स्वर्ण आदि विचूर्णित करके, अपनी अंजलियों से विप्रों को करम्भक[1] प्रदान किया ।

है तो राजा की स्मृति दिलाकर, किसके मन में यह शंका नहीं उत्पन्न करते कि लक्ष्मी किसी की नही है । मृत्यु सब का वियोग कर देती है ।

पाठ भेद :

श्लोक सं० १५ में 'रोर शिखि' के लिये 'रोरः दारिद्रचं' तथा 'शौचा' के लिये 'शौचे' लिखा तथा पार्श्व टिप्पणी में मृग शौच के लिये लिखा मिलता है—'अग्नि शौचानां मृगाणां अग्निना लोमशुद्धिः अग्निशौचवसनवत्' तथा 'हुताशेनाग्निना शौच' शुद्धिर्यस्याः सा हुताशशौचा । हरिणी मृगी इव यथा सा अग्नौ प्रक्षिप्तदेहा सती शुद्धलोमा भवति तद्वत् ।

पादटिप्पणी :

१५ सूक्ति संग्रह का १६५ वां श्लोक है ।

(१) रोर शब्द का अर्थ गरीबी है। मंख पर भाष्य लिखते समय जोनराज ने अर्थ अभाव किया है । मंख ने श्रीकण्ठ चरित तथा जोनराज ने उस पर भाष्य करते हुए 'रोर' का अर्थ अभाव दिया है । धनाभाव का अर्थ दारिद्रच होता है ।

(२) हरिणा : प्रसिद्धि है कि हरिणी अग्नि-में प्रच्छिप्त शरीर होने से शुद्धलोमा हो जाती है । इसे अग्निशौच कहते हैं । इसी प्रकार की उपमा (रा० : ६ : ३६४, ८ : ३०२४) में कल्हण ने दी है । ब्रह्मवैवर्त पुराण (४ : १५३, ६ : ७०, ९९, ८ : २४) द्रष्टव्य है ।

उक्त श्लोक का भावार्थ होगा—समुद्र के अगाध जल में रहने पर भी यह समुद्रकन्या लक्ष्मी सर्वदा मल दूषित रहती है । किन्तु अग्नि में आहुति दिये गये के समान जब वह उपयुक्त पात्र को अर्पित की जाती है तो उस समय अग्नि प्रवेश द्वारा शुद्धा हरिणी के समान निर्मलता प्राप्त करती है ।

पाठभेदः

श्लोक सं० १६ में 'स्वर्णादि' के लिये आदि शब्देन भौक्तिकादेः परिग्रह' तथा 'करम्भक' के लिये 'हेम्वलं' एवं 'करम्ब' व्यामिश्रं खिचड़ इति भाषया' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणि :

१६ (१) करम्भक = करम्भक का अर्थ कीचड़

साधु भूपेति वक्तव्ये हर्षान्निर्गौरवं द्विजः ।
साध्ववन्तिन्निति वदन्नेकः प्रापाञ्जलीन् बहून् ॥ १७ ॥

१७. एक विप्र ने 'साधु भूप'[१] ऐसा कहने के स्थान पर, हर्ष से गौरव रहित 'साधु अवन्तिन्' कहते हुए बहुत अंजलियाँ प्राप्त कीं ।

लक्ष्मीं कृत्वाऽर्थिसात्कृत्स्नां कृतिनाऽवन्तिवर्मणा ।
विभूतिश्चामरच्छत्रमात्रशेषा व्यधीयत ॥ १८ ॥

१८. कृती अवन्तिवर्मा ने समग्र लक्ष्मी याचकाधीन कर विभूति चामर एवं छत्र मात्र शेष रखा ।

अनन्तसंपत्संपन्नभूरिगोत्रजविप्लवे ।
राजश्रीर्दुर्जरा तस्य नवत्वे भूभुजोऽभवत् ॥ १९ ॥

१९. अनन्त सम्पति से सम्पन्न, प्रचुर बन्धुओं के विप्लव (गोत्र विप्लव) के कारण आदि से उस राजा की राजश्री दुर्जरा[१] हो गयी ।

विप्लुतान्समरे भ्रातॄन् भ्रातृव्यांश्च विजित्य सः ।
चकार भूरिभिर्वारैः राज्यं विगतकण्टकम् ॥ २० ॥

२०. उसने समर में द्वेषी भाइयों एवं भ्रातृपुत्रों को अनेकशः[१] विजित कर, राज्य कंटक रहित कर दिया ।

तथा भोज्य पदार्थ दोनों होता है । यहाँ पर अर्थ भोज्य पदार्थ है । जिस खिचड़ी में दही मिला रहता है उसे व्यामिश्र खिचड़ी तथा काश्मीरी भाषा में खिचड़ू कहते हैं । दही में सना सत्तू भी करम्भक कहा जाता है। यव कूटकर तथा भूसी निकाल कर पीसा जाता है । इसे पूर्वीय उत्तरप्रदेश में 'गूरी' कहते है। उसका सत्तू बना कर दही तथा नमक के साथ खाया जाता है । काश्मीर में दाल तथा चावल मिलाकर खिचड़ी बनायी जाती है । कुछ पर्वों पर ब्राह्मणों को यह अभी तक दान में दिया जाता है । (रा० : त० : ३ : २५६; तथा ८ : ८११; तुलनीय है ।) महापुराणों के अनुसार करम्भक एक व्यक्ति था। शकुनिक पुत्र तथा देवरात का पिता था । (ब्रह्मा० : ३ : ७० : ४४ मत्स्य : ४४ : ४२, वायु : (९५ : ४३) हृदीक के दस पुत्रों में एक का नाम करम्भक था । (मत्स्य : ४४ : ८२) यहाँ पर खिचड़ी के अर्थ में ही इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।

पादटिप्पणी :

१९ (१) दुर्जरा = शब्द श्लिष्ट है । दुर्जरा का अर्थ चिरयुवा तथा सहज में न पचने वाला खाद्य पदार्थ एवं मालकंगनी किंवा ज्योतिष्मती लता होता है ।

इस पद का एक अर्थ यह भी हो सकता है— 'राजा का राजगौरव कष्टों के कारण भी अपनी अम्लानता में विलीन नहीं हुआ ।'

राज्यं निष्पाद्य निर्विघ्नमथ वात्सल्यपेशलः ।
विभज्य बन्धुभृत्येषु बुभुजे पार्थिवः श्रियम् ॥ २१ ॥

२१. वात्सल्य पेशल पार्थिव राज्य निर्विघ्न निष्पादित करके, तथा बन्धुओं एवं भृत्यों में विभक्त करके, राज्य लक्ष्मी का भोग किया ।

भ्राता द्वैमातुरस्तेन शूरवर्माभिधः सुधीः ।
ज्ञातिप्रियेण वितते यावराज्येऽभ्यषिच्यत ॥ २२ ॥

२२. उस बन्धु प्रिय (नृप) ने द्वैमातुर सुधी शूरवर्मा को (विस्तृत) युवराज[1] पद पर अभिषिक्त किया ।

पादटिप्पणी :

२२ (१) युवराज = राजा के भविष्यत् उत्तराधिकारी को युवराज नाम से अभिहित किया गया है । युवराज शब्द का अर्थ राज्य का उत्तराधिकारी अथवा अंग्रेजी शब्द क्राउन प्रिन्स होता है । कौटिल्य ने १८ तीर्थों में युवराज को भी एक तीर्थ माना है । (अर्थशास्त्र : १ : १२) युवराज तथा कुमार में अन्तर है । कुमार व्यक्ति युवराज से कनिष्ठ होता था । बृहद् संहिता (७ : २—४) में रानी, युवराज, सेनापति एवं दण्डनायक एक ही स्तर के अधिकारी थे, जहाँ तक दण्डाधिकार का सम्बन्ध था । युवराज को भट्टारक की पदवी मिलती थी । काश्मीर में शाहमीर वंशीय सुल्तानों ने भी युवराजों को नियुक्त किया । रामायण में श्री राम के लिये दशरथ ने इसी शब्द का प्रयोग किया है ।

यौवराज्ये नियोक्तास्मि प्रातः पुरुषपुङ्गवम् ।
(अयो० : २ : १२)

× ×

यन्मे ज्येष्ठं प्रियं पुत्रं यौवराज्यस्थमिच्छथ
(अयो० : ३ : २)

यौवराज पद पर अभिषेक भी किया जाता था ।

स रामं युवराजानमभिषिश्चस्व पार्थिवम् ।
(अयो० : ३ २१)

× ×

अभिषेकाय रामस्य यत् कर्म सपरिच्छदम् ।
(अयो० : ३ : ६)

श्व एव पुष्यो भविता श्वोऽभिषेच्यस्तु मे सुतः ।
रामो राजीवपत्राक्षो युवराज इति प्रभुः
॥ अयो० ४ : २ ॥

राम के अभिषेक की जो प्रक्रिया दी गयी है, उसके अनुसार राम को अपनी पत्नी के साथ अभिषेक दिवस के पूर्व उपवास व्रत रखना था । पुरोहित वसिष्ठ ने उपवास व्रत की दीक्षा दी थी । पुरोहित के व्रत दीक्षा देने के पश्चात् राम ने स्नान किया । पत्नी सहित नारायण की उपासना की । हविष्य पात्र को शिरसा नमन किया । हविष्य की आहुति अग्नि में दी । शेष हविष्य का भक्षण किया । विष्णु मन्दिर में कुश संस्तर पर पत्नी सहित शयन किया । प्रातः काल सन्ध्योपासना की । जप करने लगे । रेशमी वस्त्र धारण किया । ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन कराया । तत्पश्चात् व्रत रखा । (अयो० : सर्ग : ४) वैदिक साहित्य में भी युवराज के अभिषेक का प्रमाण मिलता है । (कौशिक सूत्र : १७ : ११--३४) महाभारत में युवराज रूप में भीम के अभिषेक का उल्लेख मिलता है । (शान्तिः ४१) काश्मीर के हिन्दू राजा तथा मुसलिम राजा एवं सुल्तानों ने अपने भाइयों तथा अन्य सम्बन्धियों को भी युवराज बनाया था ।

युवराज पद के लिये वय की कोई निश्चित अवधि नहीं होती थी । राम २५ वर्ष, भरत ४० वर्ष, में युवराज पद पर प्रतिष्ठित हुए थे । अंगद पिता बाली की मृत्यु के पश्चात् सुग्रीव के युवराज हुए थे । महाभारत में इसी प्रकार

खाधूयाहस्तिकर्णाख्यावग्रहारौ प्रदाय यः ।
शूरवर्मस्वामिनं च गोकुलं च विनिर्ममे ॥ २३ ॥

२३. जिसने खाधूया[1] एवं हस्तिकर्ण[2] अग्रहार प्रदान कर, शूरवर्मस्वामी[3] तथा गोकुल[3] निर्मित किया ।

संपूर्णः पूर्णमहिमा मर्त्यमाहात्म्यमन्दिरम् ।
पञ्चहस्ताप्रदश्चक्रे मठं सुकृतकर्मठः ॥ २४ ॥

२४. सम्पूर्ण पूर्ण महिमा "पञ्चहस्त"[1] का प्रदाता सुकृत-कर्मठ (शूरवर्मा) ने मर्त्य-माहात्म्य-मन्दिर मठ का निर्माण किया ।

युधिष्ठिर, भीष्म, भीम तथा सत्यव्रत के युवराज होने का उल्लेख मिलता है । युवराज का कार्य राजा के कार्यों में सहायता देना था । द्रष्टव्य : पादटिप्पणी जोन० : ३२९, ४८५, ६८८, ७३२ जैन : १ : २ : ५, १ : ३ : १७, ३ : ११, रा०: ५ : १३०

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३ में 'खाधूय' के लिये 'धुधखोहा' 'हस्तिकर्ण' के लिये 'व्याघ्राश्रये बागहासे' तथा 'प्रदाय' के लिये 'विधाय' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३ (१) खाधूया : एक मत है कि धुधखोह स्थान है ।

(२) हस्तिकर्ण : यह व्याघ्राश्रय के समीप स्थान था । व्याघ्राश्रय वर्तमान वगहोम ग्राम है । ग्राम दच्छिन पोर परगना में है । वितस्ता के दक्षिण तट से बहुत दूर नहीं है । ग्राम में एक निर्झर किंवा नाग (झरना) है । आज भी इसको हस्तिकर्ण नाग कहते हैं । इसका विजयेश्वर माहात्म्य, (११ : १८२) अमरेश्वर माहात्म्य (१ : ९); तथा तीर्थों में उल्लेख मिलता है । हरचरितचिन्तामणि (१४ : ४३), नीलमत (श्लोक ९८५) श्रीवर वर्णित हस्तिकर्ण प्रतीत होता है । श्रीनगर के पश्चिम दिशा में था । (जैन : १ : ५ : ५५) इसका वर्णन श्रीवर ने (१ : ४०१) मारी सरिता अथवा महासरित् के प्रसंग में किया है । यह कोई दूसरा स्थान भी हो सकता है ।

हस्तिकर्णाविभौ नागौ द्वौ हस्तिवामनावुभौ ।
महेशौ द्वौ वराहौ द्वौ कोपनादौ च पन्नगौ ॥
नी. : ८२५ = १०५५-५६ ।

(३) शूरवर्मा स्वामी = मन्दिर के स्थान का निश्चित पता नहीं चलता ।

(४) गोकुल : तरंग ८ : १४३६ में शूरवर्मा के गोकुल की ओर कल्हण ने पुनः संकेत किया है । तरंग ५ : ४६१ तथा तरंग ८ : ९०० में इसी प्रकार के भवन का उल्लेख किया गया है । श्लोक ८ : २४३७ से प्रतीत होता है कि प्रत्येक गोकुल के साथ कुछ गोचर भूमि भी रहती थी । गोकुल शब्द गो-समूह, गोशाला, खरिका आदि के लिये प्रयोग किया जाता है । गोकुल ग्राम मथुरा में है । भगवान श्री कृष्ण का बाल्यावस्था में क्रीड़ा क्षेत्र रहा है । इस ग्राम की एक तीर्थ के रूप में यात्रा की जाती है । ग्राम मथुरा से पूर्व दक्षिण की दिशा में सम्भवतः छः मील जमुना नदी के पार स्थित था । उसे आज कल महावन कहते हैं । मथुरा आधुनिक काल में जिस गोकुल स्थान की संज्ञा दी जाती है, वह नवीन एवं प्राचीन से भिन्न है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४ में 'सम्पूर्णः पूर्णमहिमा' का पाठ भेद 'सम्पूर्णपुण्यमहिमा' तथा 'मर्त्यमा' का पाठ भेद 'मन्त्रमा' एवं 'पञ्चहस्त' के लिये 'पाञ्चथ' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४ (१) पंचहस्त : नवम मनु दक्ष सावर्णि के

भ्राता व्यधत्त नृपतेरपरः समराभिधः ।
केशवं चतुरात्मानं समरस्वामिनं तथा ॥ २५ ॥

२५. नृपति के अपर भ्राता समर ने चतुरात्मा केशव[1] तथा समर स्वामी[2] की स्थापना की ।

द्वौ शूरावरजौ धीरविन्नपाख्यौ निजाख्यया ।
व्यधत्तां विबुधावासौ द्वावन्यौ गणनापती ॥ २६ ॥

२६. शूर के कनिष्ठ भ्राता के दो पुत्र धीर एवं विन्नप, जो गणनापति थे स्वनाम से दो अन्य देव मन्दिर (विबुधा बास) बनवाये ।

एक पुत्र का नाम है। (विष्णु : ३ : २ : २४) दिवसर परगना में वर्तमान ग्राम पांजथ है । इसके समीप एक बड़ा जलस्रोत है। वह पवित्र माना जाता है । समीपस्थ हिन्दू लोग यहाँ की यात्रा करते थे । कथा है कि वितस्ता का मूल स्रोत वही है। नील मत पुराण में उसे पंचहस्त नाग कहा गया है। (नी. २५५, ९०८, ९२४, १२९३) हरचरित चिंतामणि (१२ : २२) में भी इसका उल्लेख है । इस समय ग्राम के समीप कोई प्राचीन ध्वन्सावशेष नहीं मिलता जिससे पता चल सके कि मूल मठ किस स्थान पर था । पंजथ ग्राम देवसरस परगना में है। पंचहस्त का नीलमत पुराण में वितस्ता वचन प्रसंग में उल्लेख किया गया है :

रसातलं जगामाशु पुनस्तामेव कश्यपः ।
प्रसाद्योन्योचयामास पञ्चहस्तसमीपतः ॥
255 = ३४५-३४६

पञ्चहस्तस्य नागस्य भुवनान्ताम् विनिर्गताम् ।
गव्यूतिमात्रमायातां कृतघ्नस्तं ददर्श वै ॥
256 = ३४६-३४७

एक सुन्दर उपत्यका पंजथ अर्थात् पंचहस्त के दक्षिण पड़ती है। उपत्यका का मुख्य ग्राम रुजुल है ।

पादभेद :

श्लोक सं० २५ में 'समर स्वामिनं' के लिये 'शाल्यानग्रामे' समरभोग्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२५ (१) चतुरात्मा केशव : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा : ४ : ५०८ : विष्णु भगवान् का एक नाम है :

(१) समरस्वामी = वितस्ता के वाम तट के समीप समरवुग ग्राम में हैं। इसी के समीप शाल्यान ग्राम है। श्री स्तीन ने इस ग्राम की यात्रा सितम्बर सन् १८९१ ई. में की थी । उन्हें वहाँ पर ध्वन्सावशेष नहीं मिला था । केवल कुछ गढ़े पत्थर उस स्थान पर मिले थे। जहाँ किसी समय नदी पार हेतु इस गाँव से उस पार पाण्डुचक गाँव पहुँचने के लिये पुल बना था। समरस्वामी के मन्दिर का पुनः उल्लेख कल्हण ने (रा० : ७ : ११०५) राजा हर्ष के प्रसंग में किया है ।

एक समर का उल्लेख नील मत में भी मिलता है। समर वहाँ पर नाम है । सम्भवः है समर ने पुरातन देव स्थान पर अपने नाम से मन्दिर प्रतिष्ठा की हो :

इदृक्षश्चाप्यदृक्षश्च इहादृगमिताशनः ।
कृतिना प्रस कृद्क्ष समरश्च महायशाः ॥
नी० 720 = ७४१.

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६ में 'विन्नपाख्यौ' का पाठभेद 'वित्रपाख्यौ' तथा 'विन्निपाख्यौ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६ (१) विबुधावास : विबुधावास का शाब्दिक अर्थ इन्द्र किंवा चन्द्रमा का आवास होता है।

भूत्वा वातूलताच्छन्नप्रभावानुभवौ भुवि ।
गतौ सविग्रहावेव हरावासाग्र्यसभ्यताम् ॥ २७ ॥

२७. अपर वातूलता (उन्मत्तता) के कारण आच्छन्न प्रभाव तथा अनुभाव वाले होकर, सशरीर दोनों ने हरावास (शिवलोक) में अग्र सभ्यता (सभा सदस्यता) प्राप्त किया ।

राजदौवारिकः श्रीमान् शूरस्यासीन्महोदयः ।
महोदयस्वामिनो यः प्रतिष्ठां समपादयत् ॥ २८ ॥

२८. शूर का राजदौवारिक श्रीमान् महोदय था, जिसने महोदय स्वामी की प्रतिष्ठा सम्पादित की ।

रामटाख्यमुपाध्यायं ख्यातव्याकरणश्रमम् ।
व्याख्यातृपदकं चक्रे स तस्मिन् सुरमन्दिरे ॥ २९ ॥

२९. (महोदय ने) उस सुर मन्दिर में व्याकरण के ख्यात श्रमी रामट नामक उपाध्याय को व्याख्याता पद दिया ।

विबुधावास बुद्धिमान् किंवा विद्वानों का आवास भी होता है । अपने नाम पर आवासों को बनाया था इससे प्रतीत होता है । वे देवस्थान थे । किन्तु पण्डितों किंवा विद्वानों ने आवास अपने नामों पर बनवाया होगा । इसका अनुमान एवं सम्भावना की जा सकती है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २७ में 'वातूलता' के लिये 'इमौ वातूला वुन्मत्ताविति स्वस्य तद्भावमिव विधाय लोकविषये गोपितनिज प्रभावावित्यर्थः, तथा श्लोक के अन्त में 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २८ में 'महोदय स्वामी' के लिये 'मडवाश्रमे' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२८ (१) महोदयस्वामी : यह देव स्थान मडवाश्रम स्थान पर था । मडवाश्रम का स्थान वितस्ता माहात्म्य (५ : ३६) के आधार पर निश्चित किया जा सकता है । यह एक बड़ा वर्तमान ग्राम मरहोम है । वितस्ता के वाम तट पर स्थित है । यहाँ पर कोई ध्वन्सावशेष नहीं मिलता । यहाँ एक पवित्र जलस्रोत है । उसकी यात्रा अमरनाथ की यात्रा के समय की जाती है । इसका पुनः उल्लेख किसी राजतरंगिणी में नहीं मिलता ।

महोदय प्राचीन काल में कन्नौज का नाम था । भगवान् रामचन्द्र ने महोदय में वामन का मन्दिर निर्माण कराया था । (पद्म पुराण : सृष्टि खण्ड : अध्याय ३५ तथा उत्तर खण्ड : अध्याय ५३)

पादटिप्पणी :

२९ (१) रामट = इनके किसी ग्रन्थ का पता अब तक नहीं चल सका है । इनका पुनः उल्लेख कल्हण ने नहीं किया है । पुराणों में रामठ एक जाति का पता लगता है । रामट एवं रामठ दोनों पाठ भेद पुराणों में मिलता है । रामट इसी जाति के थे या नहीं, कुछ नहीं कहा जा सकता । (शान्ति : ६५ : १४-१५, सभा : ३२ : १२, वन : २१ : २५) यह जाति लेवी के अनुसार गजनी और वरवन के मध्य रहती थी । महाभारत के अनुसार यह जाति पश्चिम रहती थी । गजनी भी भारत के पश्चिम ही पड़ता है ।

अमात्येन महीभर्तुः श्रीप्रभाकरवर्मणा ।
कृतं प्रभाकरस्वामिनाम्नो विष्णोर्निकेतनम् ।। ३० ।।

३०. महीपति के अमात्य श्री प्रभाकर वर्मा ने प्रभाकर स्वामी[1] नामक विष्णु निकेतन निर्मित किया।

आयातेन शुकैः सार्धं दत्ता गृहशुकेन यः।
मुक्ताः प्राप्य प्रतिष्ठायां चक्रे ख्यातां शुकावलीम् ।। ३१ ।।

३१. आगत गृह शुक के साथ शुकों द्वारा प्रदत्त मुक्ताओं को मन्दिर प्रतिष्ठा के समय प्राप्तकर जिसने शुकावली[1] निर्मित किया।

विच्छिन्नप्रसरा विद्या भूयः शूरेण मन्त्रिणा।
सत्कृत्य विदुषः सभ्यान् देशेऽस्मिन्नवतारिता ।। ३२ ।।

३२. मन्त्री शूर ने सभ्य (सभायोग्य) विद्वानों को सत्कृत करके विच्छिन्न प्रसार वाली विद्या को इस देश (काश्मीर) में पुनः अवतरित किया।

युग्यैः क्षितिभुजां योग्यैरुह्यमाना महर्द्धयः।
बुधाः प्रवृद्धसत्कारा विविशुर्भूपतेः सभाम् ।। ३३ ।।

३३. प्रचुर सत्कार प्राप्तकर्ता समृद्धिशाली विद्वान् राजाओं के योग्य वाहनों पर आरूढ़ होकर, नृप सभा में प्रवेश करते थे।

पादटिप्पणी :

३० (१) प्रभाकर स्वामी : इस मन्दिर तथा स्थान का पता नहीं चलता। इस मन्दिर तथा स्थान का पुनः उल्लेख कल्हण तथा अन्य राजतरंगिणीकारों ने नहीं किया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१ में 'ख्यातां शुका' का 'ख्यान-शुका' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१ (१) शुकावली : भारत में शुक पालने की आम रिवाज है। लोहे के पिजड़ों में शुक किंवा सुगा, तोता या सूआ रखे जाते हैं। उन्हें राम-राम, कृष्ण-कृष्ण पढ़ाया जाता है। वे कुछ अभ्यास के पश्चात् मानव वाणी तुल्य उच्चारण करने लगते हैं। कहीं-कहीं उन्हें मन्त्र भी रटाया जाता है। तोता का रटना प्रसिद्ध है। वे जो रट लेते हैं, उसे दुहराते हैं। घरों में उन्हें राम-कृष्ण आदि ईश्वर एवं देवताओं के नाम इसीलिये रटाये जाते हैं कि वे भगवान् का नाम लेते रहें। भगवान् के नाम से मकान गूँजता रहे। घर में पवित्रता का वातावरण बना रहे। किसी-किसी घर में चार पाँच पिजड़े शुकों के रहते हैं। एक या दो रखना तो सामान्य बात है। लोग घर छोड़ कर, जाने लगते हैं तो शुकों के पिजड़े साथ लेते जाते हैं। इसी प्रथा का कल्हण ने रा० : ८ : ८० में उल्लेख किया है। राजा हर्ष इसी शुकावली को उठा ले गया था। कालान्तर में उच्चल शुकावली को त्रिभुवन स्वामी के मन्दिर को सजाने के लिये उठा ले गया था। (रा० : ८ : ८०) शुकावली मन्दिरों के सजाने के काम में लायी जाती थी। अनेक मन्दिरों में आजकल भी शुक तथा अन्य पक्षियाँ पिजड़ों में तथा सीखचों पर पैर में जंजीर लगा कर टाँगे जाते हैं। उन्हें दर्शक यात्री फलादि खिलाते हैं। उन्हें राम-राम, शिव-शिव रटाया जाता है। मन्दिरों में इस प्रकार की शिक्षित शुकावली प्रातःकाल कलरव के समय भगवान् का नाम लेती थी।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दनवर्धनः ।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ॥ ३४ ॥

३४. अवन्ति वर्मा के राज्य में मुक्ताकण[1], शिवस्वामी[2], कवि आनन्द वर्धन[3] तथा रत्नाकर[4] प्रसिद्धि प्राप्त किये ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४ में 'कविरानन्दवर्द्धनः' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'आनन्दवर्द्धनः ध्वनिग्रन्थकारः' और 'रत्नाकर' के लिये 'रत्नाकरः हरविजयकारः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३४ (१) मुक्ताकण : क्षेमेन्द्र ने अपने प्रबन्ध ग्रन्थों में मुक्ताकण के पदों का उद्धरण दिया है ।

(२) शिवस्वामी : क्षेमेन्द्र ने अपने ग्रन्थ कविकण्ठाभरण में शिवस्वामी के पदों का उद्धरण दिया है । सूक्तिसंग्रहों में शिवस्वामी के पदों का उद्धरण मिलता है । महाकवि शिवस्वामी काश्मीर निवासी थे । शैवमतावलम्बी थे । बौद्धाचार्य चन्द्रमित्र की प्रेरणा पर इन्होंने एक अवदान का अलंकृत महाकाव्य रूप में गुम्फित किया है। यह ग्रन्थ लोप हो गया है । उसके उद्धरण अन्य ग्रन्थों में मिलते हैं । सुभाषित ग्रन्थों में इनकी रचनाएँ मिलती हैं । सूक्ति, सौन्दर्य भाव, अवलोकनीय काव्य, एवं उनमें अलंकारों का चमत्कार है । उनकी प्रभा अनुशीलन के साथ वृद्धि करती जाती है । आनन्दवर्धन तथा रत्नाकर शिवस्वामी समकालीन थे । कवि मम्मट ने ध्वनि के उदाहरण के लिये इनके श्लोक—उल्लास्यकालकरवालमहाम्बुवाहम्'—का उद्धरण दिया है । शिवस्वामी यमक कवि हैं । इनकी काव्य प्रतिभा सरस शब्दों के गुम्फन में प्रकट होती है । काव्य सुन्दर तथा मुग्धकारी है । बौद्ध साहित्य में 'कप्फिण' आख्यान प्रसिद्ध है । कप्फिण दक्षिण देश, लीलावती के राजा थे । इस महान् प्रतिभाशाली कवि ने शैव मतावलम्बी होते हुए भी अपने से भिन्न धर्म के एक आख्यान में अपनी प्रतिभा शक्ति द्वारा जीवन ला दिया है । संस्कृत साहित्य में शिवस्वामी का ग्रन्थ एक रत्न है । शिवस्वामी ने रघुवंशकार (कालिदास) भर्तृमेण्ठ, तथा दण्डी को अपना उपजीव्य मानने में संकोच नहीं किया है ।

विदितबहुव्यथार्थश्चित्रकाव्योपदेष्टा
यमककविरगम्यश्चारु, सन्दानमानी ।
अनुकृतरघुकारोऽभ्यस्तमेण्ठप्रचारो ।
जयति कविरुदारो दण्डि दण्डः शिवाङ्कः ॥

—२०

(३) आनन्दवर्धन : 'ध्वन्यालोक' काव्य शास्त्र नियामक ग्रन्थ के प्रणेता आनन्दवर्धन थे । इनके विषय में निम्नलिखित श्लोक प्रसिद्ध है :

ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना ।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः ॥

(रसगंगाधर)

क्षेमेन्द्र ने आनन्दवर्धन (ध्वन्या : ३ : ८०) का उल्लेख 'औचित्यविचारचर्चा' में किया है । (श्लोक ५०)

व्याकरण शास्त्र के प्रणेताओं में जो स्थान पतंजलि एवं उनके महाभाष्य का है, वही स्थान अलंकार शास्त्र में आनन्दवर्धन एवं ध्वन्या लोक का है। ध्वन्यालोक को काव्यालोक एवं सहृदय लोक भी कहते हैं । ध्वन्यालोक के अतिरिक्त आनन्दवर्धनाचार्य ने देवी शतक, अर्जुन चरित महाकाव्य, विषम बाण लीला, तत्त्वालोक एवं विनिश्चय टीका विवृत्ति की रचना की है ।

ध्वन्यालोक नवीन युग का उत्पादक ग्रन्थ है । अलंकार शास्त्र में उसका वही स्थान है, जो वेदान्त में वेदान्त सूत्रों का । इसके प्रत्येक पृष्ठ पर ग्रन्थकार की मौलिकता, सूक्ष्म विवेचन शक्ति, तथा गूढ़ विषयग्राहिता का परिचय मिलता है । रस गंगाधर का

आस्थाने कृतमन्दारो वन्दी शूरस्य मन्त्रिणः ।
संकल्पस्मृतिमाधातुभिमामार्यां सदाऽपठत् ॥ ३५ ॥

३५. मन्त्री शूर का बन्दी कृतमन्दार सभा (आस्थान) में संकल्प स्मृति हेतु, इस आर्या[1] को पढ़ा करता था—

मत सर्वथा ठीक है कि ध्वनिकार ने साहित्य शास्त्र के मार्ग को परिष्कृत बना दिया ।

(४) रत्नाकर : हर विजय काव्य का रचनाकार है । प्रोफेसर व्हूलर ने इस काव्य को काश्मीर में प्राप्त किया था । अनन्तर यह ग्रन्थ काव्यमाला सिरीज़ बम्बई से प्रकाशित किया गया है । इति पाठ से प्रकट होता है । इनका पूरा नाम राजानक रत्नाकर बागीश्वर था । हरविजय काव्य विस्तार एवं गुण की दृष्टि से श्रेष्ठ माना जाता है । उसमें काव्य का लालित्य अपूर्व है । हरविजय काव्य रत्नाकर ने बृहस्पति अर्थात् चिप्पट जयापीड के समय लिखा था । (रा० : ४ : ७०३) अवन्ति वर्मा के राज्य प्राप्ति के ४२ वर्ष पूर्व रत्नाकर दिवंगत हो चुके थे । बाल बृहस्पति इनकी उपाधि थी । हरविजय में ५० सर्ग तथा ४३२१ पद्य हैं । काव्य लालित्य एवं गुणों के कारण ग्रन्थ अद्वितीय है । महाकवि माघ के समकालीन थे । माघ की उन दिनों विशेष ख्याति थी । माघ वैष्णव तथा रत्नाकर शैव थे । माघ ने अपने ग्रन्थ को—'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु' और रत्नाकर ने—'चन्द्रार्धचूलचरिताश्रय चारु' कहा है । माघ में वैष्णव एवं रत्नाकर में शैव विचारधारा है । महाकवि माघ रत्नाकर की तुलना में काव्य-प्रतिभा प्रदर्शन में हतप्रभ लगते हैं । रत्नाकर का आध्यात्मिक ज्ञान बहुमुखीय था । क्षेमेन्द्र ने वसन्त तिलक वृत्त की प्रशंसा करते लिखा है—

वसन्त-तिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसंगिनी ।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्याननकानने ॥
—सुवृत्त तिलक

संस्कृत विद्वान् एवं आलोचक इस काव्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं । रत्नाकर स्वयं अपने काव्य के विषय में लिखता है :

हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां
शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे
अपि शिशुरकविः कविप्रभावात्
भवति कविश्च महाकविः क्रमेण ॥

क्षेमेन्द्र ने रत्नाकर का उल्लेख सुवृत्त तिलक (२ : २१ तथा ३ : १९) में किया है ।

पादटिप्पणी :

३५ (१) आर्या : एक छन्द का नाम है । श्रुतबोध में इसकी परिभाषा दी गयी है । प्रथम तथा तृतीय चरण में १२ मात्राएँ तथा द्वितीय चरण में १८ तथा चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ होती हैं । ह्रस्व स्वर की एक मात्रा तथा दीर्घ को दो मात्रायें गिनी जाती हैं । आर्या की परिभाषा की गयी है—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश सार्या ॥
—श्रु० : ४ ।

गोवर्धन की समस्त 'आर्या सप्तशती' आर्या छन्द में लिखी गयी है । मालविकाग्निमित्र का निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है :

प्रतिपक्षेणापि पतिं सेवन्ते भर्तृवत्सलाः साध्व्यः ।
अन्यसरितां शतानि हि समुद्रगाः प्रापयन्त्यब्धिम् ॥
—५ : १९ ।

'अयमवसर उपकृतये प्रकृतिचला यावदस्ति सम्पदियम् ।
विपदि सदाऽभ्युदयिन्यां पुनरुपकर्तुं कुतोऽवसरः' ॥ ३६ ॥

३६. 'प्रकृतिचंचला यह सम्पत्ति जब तक है, तब तक उपकार के लिये यह अवसर (प्राप्त) है। सदा अभ्युदय प्राप्त करने वाली विपत्ति आने पर, पुनः उपकार के लिये अवसर कहाँ से प्राप्त होगा ?'[1]

कृतः सुरेश्वरीक्षेत्रे बहुगेहविधायिना ।
शिवयोर्मिश्रयोस्तेन प्रासादः सोऽव्ययस्थितिः ॥ ३७ ॥

३७. बहु गृह निर्माता उसने सुरेश्वरी क्षेत्र में अर्धनारीश्वर[2] का सुदृढ़ प्रासाद निर्मित किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३६ में 'सदाभ्यु' का पाठभेद 'समाभ्यु' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३६—सूक्ति संग्रह का १६६ वां श्लोक है।

(१) कल्हण का यह प्रसिद्ध श्लोक है। उदार दान देने के लिये सभा तथा समितियों में इसे प्रायः पढ़ा जाता है।

पादटिप्पणी :

३७ (१) सुरेश्वरी = सुरेश्वरी जो मूलतः देवी दुर्गा है। एक ऊँची बलुई भूमि ईशावर ग्राम से ऊपर निशात बाग के पश्चात् डल लेक के पूर्वीय भाग को घेरती है। वहाँ देवी की पूजा होती है। यहाँ प्राचीन मन्दिरों के बहुत अलंकृत शिला खण्ड आस पास बिखरे पड़े हैं। इस ऊँची भूमि के ऊपर एक प्राकृतिक चट्टान है। उसे दुर्गा पति महादेव का रूप माना जाता है। रुरु असुर के वध की कथा सुरेश्वरी माहात्म्य में मिलतो है। शिव तथा देवी का निवास स्थान था। माहात्म्य में यात्रा मार्ग का विस्तृत वर्णन है। यात्रा शतधारा स्थान से आरम्भ होती है। यह स्थान ईशावर गाँव के बिल्कुल समीप है। दूसरा स्थान सुरेश्वरी क्षेत्र कहा जाता है।

सुरेश्वरी क्षेत्र का उल्लेख कल्हण ने पुनः रा. ६ : १४७ में किया है। जोनराज ने (जोन : श्लोक ५२, ८७३) तथा श्रीवर ने (जैन राजतरंगिणी : १ : ४२६) में सुरेश्वरी क्षेत्र को सुरेश्वरी नाम से (५ : ४१; ८ : ५०६, ७४४, २३४४) लिखा है। श्रीवर ने भी यही (१ : ४१९, ४२६) किया है। जिसमें वर्णन किया गया है कि सुरेश्वरी डल लेक के पूर्वीय तट पर ईशेश्वर अर्थात् ईशावर के समीप है। क्षेमेन्द्र के समयमातृका (२ : २९) में शतधारा जल स्रोत के साथ सुरेश्वरी का उल्लेख किया गया है। मृत्यु के समय इस स्थान पर प्राण त्यागने की बात से प्रमाणित होता है कि इस स्थान को कितना पवित्र माना जाता रहा है। (रा. ६ : १४७; ८ : २३-४४, २४१८) शर्वावतार के पंचम अध्याय में इस विषय का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। सुरेश्वरी तीर्थ का उल्लेख नीलमत पुराण में किया गया है। (श्लोक = 611 = ७३२)

(२) अर्धनारीश्वर : श्रीकाणे द्वारा प्रस्तुत तीर्थ सूची में अर्धनारीश्वर का उल्लेख नहीं मिलता। (१४००-१५०५) अर्धनारीश्वर का मन्दिर कल्हण के समय तक सुरेश्वरी क्षेत्र में मौजूद था। (रा. : ८ : ३३६५) कल्हण प्रतीत होता है। अर्धनारीश्वर के भाव से इतना प्रभावित था कि उसने राजतरंगिणी में अर्धनारीश्वर की ही स्तुति प्रत्येक तरंगों के मंगलाचरणों में की है। इस मन्दिर के देवस्थान का निश्चित रूप से पता लगाना कठिन है।

शूरेश्वरं प्रतिष्ठाप्य स्ववेश्मेव समुन्नतम् ।
चक्रे शूरमठं धीमान् स भोगाय तपस्विनाम् ॥ ३८ ॥

३८. उस बुद्धिमान् ने स्व वेश्म तुल्य समुन्नत 'सुरेश्वर'[1] को प्रतिष्ठित कर, तपस्वियों के भोग हेतु शूरमठ[2] निर्मित किया।

स्वकृते पत्तनवरे तेन शूरपुराभिधे ।
क्रमवर्तप्रदेशस्थो ढक्कोऽभूद्विनिवेशितः ॥ ३९ ॥

३९. उसने क्रमवर्त प्रदेश स्थित ढक्क[2] को स्वकृत पत्तनवर शूरपुर[3] में निवेशित किया।

यद्यपि जलस्रोत के समीप अलंकृत शिलाखण्ड मिलते हैं। वे ईशावर के मकानों में भी लगे दिखाई देते हैं। स्तीन का मत है कि 'सोव्यवस्थिति' शब्द तरंग ७ : ९५२, ८ : २४९; २४०१, ३३१६ में मिलता है। वहाँ पर यह शब्द सर्वदा मन्दिर के अग्रहार किंवा देवोत्तर के लिये प्रयोग किया गया है। उससे सुझाव मिलता है। यहाँ पर 'सव्यवास्थिति' शब्द ही होना चाहिए। जिसका अर्थ से होता है— 'मन्दिर को देवोत्तर दिया गया था।' एक पुरातन काल की कलाकृति नदी के लगभग ३३० फिट ऊपर दक्षिण तट पर मिली थी। वह एक बड़ा शिला खण्ड है। उसमें तीन प्रतिमा स्थान सुन्दरता पूर्वक अलंकृत शिलाखण्ड में बनाये गये हैं। वह काश्मीर शैली के मन्दिर की रचना को प्रकट करते हैं। इस समय भी हूरपुर चुंगी स्थान के साथ ही साथ भरापुरा गाँव है। यह पूर्व काल में एक बड़ा नगर था। वह उपत्यका के मैदानी क्षेत्र में तीन मिल सुपिमान की दिशा में 'पादपावन' तक फैला था। वर्तमान गाँव के नीचे नदी के दोनों किनारों पर पुरानी आबादी के निशान बहुत दूर तक फैले मिलते हैं।

पौराणिक मान्यता है कि शक्ति की उपासना के कारण शिव का रूप अर्धनारीश्वर हो गया था। (ब्रह्मा० : २ : २७ : ९८; ४ : ५ : ३०; ४४ : ४८) मत्स्य : ६० : २५; १९२ : २८; २६० : १—१०,) पुराण में अर्धनारीश्वर के वस्त्रादि का विवरण दिया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३८ में 'शूरेश्वरम्' के लिये 'शुरपुरे' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३८ (१) सुरेश्वर : एकादश रुद्र में एक रुद्र है। (शान्ति. २०८ : १९) शूरपुर में शूरेश्वर का मन्दिर निर्माण किया गया था। शूरपुर वर्तमान हुरपुर ग्राम है। यहाँ पर मुगलों द्वारा निर्मित सराय तथा एक मसजिद में खण्डित मन्दिरों के अलंकृत शिलाखण्ड लगे हैं। नीलमत पुराण में शूरेश्वर का उल्लेख मिलता है।

माल्ये वने गौतमेशं विश्वामित्रेश्वरं तथा ।
सोनासिकं वसिष्ठेशं माखरेशं सुरेश्वरम् ॥
996 = ११६७

(२) शूरमठ : प्रतीत होता है कि शूरमठ राजधानी में था। (रा० : ६ : २२३, ७ : २६; ६ : २४३) इसके निश्चित स्थान का पता नहीं चलता।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३९ में 'क्रमवर्तप्रदेशस्थो' के लिये 'कामेलजकोट्टस्थ' तथा 'ढक्क' के लिये 'द्रङ्ग' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३९ (१) क्रमवर्त : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा. : ३ : २२७। कालान्तर में क्रमवर्त का नाम मुसलिम काल में कमलेन कोट हो गया था।

(२) ढक्क : द्रंग, द्वार का अपभ्रंश ढक्क है। यह सुरक्षा चौकी अथवा पहरा का स्थान था। श्री

सुरेश्वरीप्राङ्गणतश्चक्रे भूतेश्वरं हरम् ।
मठं शूरमठान्तश्च शूरजो रत्नवर्धनः ॥ ४० ॥

४०. शूर पुत्र रत्नवर्धन ने सुरेश्वरी प्रांगण[1] के समीप शूरमठ के अन्दर ही भूतेश्वर हर का मठ निर्मित किया ।

काव्यदेव्यभिधा शूरवधूः शुद्धान्वया व्यधात् ।
सदाशिवं सुरेश्वर्यां काव्यदेवीश्वराभिधम् ॥ ४१ ॥

४१. शूर की वधू शुद्ध वंशीया काव्य देवी ने 'सुरेश्वरी (क्षेत्र) में सदाशिव[1] काव्यदेवीश्वर की प्रतिष्ठा की ।

स्तीन ने सितम्बर सन् १८०१ ई. में यहाँ की यात्रा की थी । स्थान का पता हूरपुर (शूरपुर) में लगाया था—'यहाँ पर लगभग सवा मील की भूमि हूरपुर के ऊपर है, जहाँ कि उपत्यका की भूमि का स्तर एक खड्ड के रूप में पहाड़ी बाहुमूल के कारण बन गया है । स्थानीय लोगों में जनश्रुति प्रचलित है कि प्राचीन समय में इस स्थान पर एक प्राकार तथा द्वार स्थित था । उस द्वार से वह मार्ग बन्द होता था, जो रामब्यार नदी के दक्षिण पश्चिम तट से पीर पन्तसल दर्रे की ओर जाती थी । यह स्थान जो उस समय जंगली घास-फूस से भरा पड़ा था, उसे अब भी गाँव वाले इलाही दरवाजा कहते हैं । वहाँ के वर्तमान मुकद्दम का पिता जो काफी वृद्ध था, बताया कि उसके युवावस्था में उस स्थान को 'द्रं' (द्रंग) कहते थे ।' (स्तीन : पृष्ठ १९०) प्राचीन स्थानों में यहाँ प्राचीन मुद्रायें प्रायः मिल जाती हैं । प्राकार का चिह्न अभी भी घने घास-फूस के नीचे दिखायी पड़ता है ।

द्रंग की परिभाषा वाचस्पति ने की है । वहाँ द्रंग का अर्थ बड़े ग्राम से लगाया गया है । काश्मीरी द्रंग की परिभाषा सर्वथा भिन्न है :

कर्वटादधमो द्रंगः पत्तनादुत्तमश्च सः ।
उद्रंगश्च निवेशश्च स एव द्रंग इत्यपि ॥

कुट्टनीमतम् में भी द्रंग का उल्लेख मिलता है :

अभ्यन्तरव्ययार्थं न विलब्धो यो मया महोद्रंगः ।
तत्रापि तेऽनुबन्धो जाने किं करोमीति ॥ ९३६ ॥

(३) शूरपुर : वर्तमान हूरपोर शोपयान के समीप है । वहाँ बाजार स्थापित किया गया, जो सम्भवतः पर्यटकों, व्यापारियों, यात्रियों आदि की सुविधा के लिये आजकल के इम्पोरियम अर्थात् वाणिज्य केन्द्र के समान था । उसे प्राचीन काल में पण्यशाला आपण तथा पण्य वीथी भी कहते थे ।

पादटिप्पणी :

४० (१) सुरेश्वरी प्रांगण : श्री स्तीन सुरेश्वरी प्रांगण का अर्थ डल लेक तट स्थित इशावर का स्थान लगाते हैं ।—'ऊँची बलुयी भूमि की परिस्थिति, जहाँ वास्तव में सुरेश्वरी की पूजा होती थी, डल के भूमि स्तर से तीन हजार फिट ऊँची है, पथरोली खड़ी ऊँचाई, वहाँ तक पहुँचाती है, वह इस अनुमान को दूर कर देती है कि वहाँ अथवा इसके पड़ोस में कोई भवन निर्माण कभी किया गया था ।' (स्तीन पृष्ठ : १९१)

पादटिप्पणी :

४१ (१) सदाशिव = महादेव, शिव, शंकर । विलसन ने लिखा है कि सदाशिव का मन्दिर शूरपुर में निर्माण हुआ था जिसका नाम कालान्तर में ढक्क हो गया था । (हिन्दू हिस्टोरी आफ काश्मीर : पृष्ठ : ३ : ५८; सन् १८२५ ई. पृष्ठ १–११९ एशियाटिक रिसर्चेज : सिरामपुर भाग १५ : इसे पृष्ठ पर टिप्पणी

निर्मत्सरोऽवन्तिवर्मा सोदरेभ्योऽनपायिनीम् ।
शूराय च सपुत्राय नृपतिप्रक्रियां ददौ ॥ ४२ ॥

४२. निर्मत्सर अवन्तिवर्मा ने सहोदरों एवं सपुत्र शूर को स्थायी नृपति प्रक्रिया प्रदान की ।

छन्दानुवर्ती भूपालो दैवतस्येव मन्त्रिणः ।
आ बाल्याद् वैष्णवोऽप्यासीच्छैवतामुपदर्शयन् ॥ ४३ ॥

४३. देवता तुल्य मन्त्री का छन्दानुवर्ती भूपाल, बाल्यकाल से वैष्णव होते हुए भी, शैवता (शिवभक्ति) प्रकट करता था ।

क्षेत्रे विश्वैकसाराख्ये मृतानामपवर्गदे ।
भूरिभोगास्पदं राज्ञा तेनाऽवन्तिपुरं कृतम् ॥ ४४ ॥

४४. उस राजा ने मृतकों के मुक्तिप्रद विश्वैकसार[1] क्षेत्र में भूरि भोगास्पद अवन्तिपुर[2] निर्मित किया ।

की गयी है कि वह वर्तमान ढक्क नहीं है । काश्मीर में झेलमपर विजोरे के दक्षिण-पश्चिम में एक स्थान है । इस समय वह काश्मीर में सम्मिलित नहीं है बल्कि काश्मीर के ठीक बाहर सदा एक स्वतन्त्र राज्य है ।

पादटिप्पणी :

४३ (१) काश्मीर का तत्कालीन प्रचलित मत शैव था । राजा यद्यपि मत से वैष्णव था, तथापि शैव भाव प्रजा की तुष्टि के लिये प्रकट करता था । श्लोक १२५ में राजा का मानसिक भाव प्रकट होता है । अन्तिम अवस्था में वह भगवद्गीता श्रवण करता था । विष्णु का ध्यान करते हुए प्राण विसर्जन किया था । (रा. : ५ : १२५)

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४ में 'विश्वैकसाराख्ये' के लिये 'विश्वैकसाराख्ये भारसो इतिग्रामे' तथा 'राज्ञा' का पाठभेद 'राजा' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४ (१) विश्वैकसार : वर्तमान भारसो ग्राम है । उसे वरुस भी कहते हैं । यह श्रीनगर से सत्तरह मील बनिहाल सड़क पर है । एक मत है कि भारसो विश्वैकसार का अपभ्रंश है । यह अवन्तिपुर से तीन मील अधोभाग में वितस्ता के दक्षिण तट पर गुरुपुर ग्राम के दूसरी तरफ है । श्री स्तीन ने इस स्थान की यात्रा सितम्बर सन् १८९१ ई० में की थी । यहाँ पर उन्हें एक सुन्दर शिवलिंग पाँच फिट ऊँचा एक छोटे जलस्रोत, जिसे रुद्रगंगा कहते थे, में मिला था । अमरनाथ की यात्रा में लोग इस स्थान की यात्रा करते थे ।

(२) अवन्तिपुर : वन्तियोर । मैंने अपनी प्रथम काश्मीर यात्रा में इस भग्नावशेष को देखा था । बनिहाल से श्रीनगर प्रस्थान करने पर, बनिहाल श्रीनगर राजपथ पर, यह स्थान मिलता है । मेरे साथ एक मुस्लिम अधिकारी थे । उस स्थान पर पहुँचते ही ठहरने के लिये कहा । उन्होंने बड़े गर्व से बताया यह अवन्तिपुर है । उनका संस्कृत उच्चारण सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ । काश्मीर के मुसलमानों का संस्कृत तथा तद्भव शब्दों का उच्चारण शेष भारत के मुसलमानों से शुद्ध होता है ।

यह स्थान वर्तमान ग्राम वन्तपुर में है । वन्तपुर शब्द अवन्तिपुर का अपभ्रंश है । ऊलर परगना में

वितस्ता के दक्षिण तट पर स्थित है। मेरे समान ही जितने भी यात्री बनिहाल द्वारा काश्मीर जाते हैं, यह ध्वन्सावशेष सबका ध्यान आकर्षित करता है। काशी विश्वनाथ मन्दिर के ध्वन्सावशेष के समान हिन्दू हृदय पर गहरी छाप छोड़ता है। काशी विश्वनाथ के टूटे मन्दिर को देखकर, जैसे आदमी कुछ गम्भीर होकर, आगे बढ़ जाता है, वही प्रतिक्रिया यहाँ होती है। क्योंकि पर्यटक किंवा यात्री काश्मीर में प्रथम ध्वन्सावशेष बनिहाल से आने पर यही देखता हैं। यूरोपीय यात्री, पर्यटक तथा पुरातत्व प्रेमियों का ध्यान इन ध्वन्सावशेषों ने आर्कषित किया है। (पेरिस्टर जरनी फ्रॉम बंगाल = इंगलैण्ड २ : ७ तथा मूर क्राफ्ट ट्रेवेन्स : २ : २४४)

विल्सन ने प्रथम बार कल्हण वर्णित अवन्तिपुर से इस स्थान को सम्बन्धित किया था। श्रीनगर के पण्डितों में प्रचलित परम्परा के अनुसार भी यही स्थान अवन्तिपुर है। कल्हण ने जो भौगोलिक वर्णन किया है, उसके अनुसार भी यही स्थान प्रमाणित होता है। (रा०: ७ : १३६६; ८ : ९७०, ११४४, १४७४, १५०२) श्रीवर ने भी (जैन० राजतरंगिणी : १ : ४ : ४, ३ : ४) इसका उल्लेख किया है। द्रष्टव्य : जोन० राज० : पादटिप्पणी श्लोक ३३१।

अवन्तिपुर में दो मन्दिरों के टूटे खण्डहर हैं। कनिंघम ने उनका वर्णन (जै० ए. एस. बी. सन् १८४८ पृष्ठ २७५) किया है। कोल भी इस स्थान से प्रभावित हुआ था। उसने भी उनका वर्णन (ऐन्शियण्ट बिल्डिंग्स, पृष्ठ २५) किया है। कनिंघम ने दोनों मन्दिरों की कल्हण वर्णित अवन्तीश्वर तथा अवन्तिस्वामी से अलग-अलग पहचान की है। वांतपोर ग्राम स्थित मन्दिर को वह अवन्ति स्वामी तथा उससे बड़े मन्दिर, जो उक्त मन्दिर से आध मिल उत्तर-पश्चिम पड़ता है और जौब्रार ग्राम के समीप है, अवन्तीश्वर लिखा है। इस मन्दिर को राजा अवन्तिवर्मा ने अपने राज्याभिषेक के पश्चात् निर्माण कराया था। दोनों मन्दिरों का गर्भगृह पूर्णतया नष्ट कर दिया गया है। इस समय बड़े शिलाखण्डों का ढेर मात्र रह गया है। अतएव कनिंघम का अनुमान ठीक है। कौन किसका मन्दिर है, कहना कठिन है। उन्होंने अपना अनुमान मन्दिरों की विशालता को मानकर ही लगाया है। विशपकोल ने लघु मन्दिर के प्रांगण में खनन कार्य सन् १८६० ई० में करवाया था। किन्तु उससे इतिहास पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ा और न कोई नवीन बात मालूम हुई। (जै. ए. एस. बी. १८६५ पृष्ठ १२१)।

राजा कलश ने (सन् १०८१–१०८९ ई०) अवन्तिवर्मा स्वामी मन्दिर पर चढ़े देवोत्तर सम्पत्ति को ले लिया था। (रा० ७ : ५७०) इसका प्रांगण सैनिक मोर्चा के रूप में परिणत कर दिया गया था। यह घटना राजा जयसिंह के राज्याभिषेक के तुरन्त पश्चात् हुई थी। राजकीय सेना भास के सेनापतित्व में वहाँ पड़ी थी। होल्डा ऊलर परगना के डामरों ने अवन्तिपुर घेर लिया था। (रा० ८ : १४२९) अवन्तिपुर राजा अवन्तिवर्मा के पश्चात् तक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। यहाँ अनेक घटनायें जिनका सन्दर्भ कल्हण के वर्णनों में मिलता है, होती रही हैं। जोनराज ने भी इस स्थान को महत्त्वपूर्ण माना है। उसके वर्णन (श्लोक ३२१, ३३०, ८६५) तथा श्रीवर के (१ : ३३८; ३ : ४२) उल्लेख से यह पता चलता है कि स्थान कितना महत्वपूर्ण था। क्षेमेन्द्र ने समयमातृका (२ : ७६) में अवन्तिपुर का उल्लेख किया है। प्राचीन काल के नगर का पता प्राचीन निर्माणों के बिखरे ध्वंसावशेषों में लगता है। वे पहाड़ी श्रेणी के उठान के साथ ही साथ पूर्व की ओर वर्तमान वन्तिपुर से दो मील तक जाते हैं। अवन्ति स्वामी तथा अवन्तीश्वर के मन्दिरों को सिकन्दर बुतशिकन ने नष्ट किया था।

अवन्तीपुर के खनन कार्य में कुछ मूर्तियाँ मिली हैं। कुछ मूर्तियाँ अभी भी मन्दिर के ध्वंसावशेष तथा शिलाखण्डों में देखी जा सकती हैं। मूर्ति कला

अवन्तिस्वामिनं तत्र प्राग्राज्याधिगमात्कृती ।
विधाय प्राप्तसाम्राज्यश्चक्रेऽवन्तीश्वरं तदा ॥४५॥

४५. (इस) कृति ने राज्य प्राप्ति के पूर्व वहाँ अवन्ति स्वामी[1] की स्थापना की थी। साम्राज्य प्राप्तकर अवन्तीश्वर[2] की प्रतिष्ठा की।

देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी अपनी शैली है। उष्कर, परिहासपुर, पेन्डरेथन शैली से सर्वथा भिन्न है। उन पर मध्ययुगीय काल की छाप दिखाई पड़ती है। बौद्ध कालीन ध्यानमुद्रा, विचारशील मुद्रा, आध्यात्मिक मुद्रा के स्थान पर, बहुदेव पूजा तथा बहुदेव मूर्ति की प्रचुरता दिखाई पड़ती है।

प्रताप सिंह संग्रहालय में A १२१ विष्णु की मूर्ति विचित्र मालूम पड़ेगी। उसमें ४ मुख उत्कीर्ण किया गया। सम्मुख मानव, दाहिनी ओर सिंह, बांई ओर वराह तथा पृष्ठ भाग में राक्षस मुख है। नरसिंह की मूर्ति, प्रह्लाद की भक्ति, राक्षसों से उसकी रक्षा, वराह द्वारा राक्षसों से पृथ्वी उद्धार तथा पृष्ठ भाग में राक्षस दिखाकर प्रमाणित किया गया है कि राक्षस परास्त कर दिये गये हैं। इस प्रकार की मूर्ति काश्मीर की विशेषता है। हमने अभी तक अन्य स्थानों पर इस प्रकार की एक ही में सम्मिलित मनुष्य, सिंह, वराह तथा राक्षस की मूर्ति नहीं देखी है। यह खनित मूर्ति चतुर्भुज है। वामभाग में चामर धारिणी हैं। दक्षिण बाहु भाग खण्डित है। मूर्ति की मुखाकृति गान्धार शैली की नहीं है। परिहासपुर की मुखाकृति की शैली से मिलती है।

मूर्ति Ac 44 मस्तक विहीन है। बाहु तथा मस्तक खण्डित है। इसमें चामरधारिणी के हाथ में चँवर के स्थान पर पंखा है। यह मूर्ति विष्णु की अन्य मूर्तियों से उत्तम है। कण्ठ से पाद स्थान तक रक्षित है उससे पता चलता है कि उस समय भगवान् के शृंगार तथा वेशभूषा की कैसी कल्पना की गयी थी।

अर्धनारीश्वर की मूर्ति Ac 2 अद्भुत है। वह कटि तक ही शेष है। ऊपर का हिस्सा खण्डित है अतएव कटि प्रदेश से पादमूल तक का उसमें रूप मिलता है। वाम हस्त कटिप्रदेश तक बच गया है। उसमें कंगन, कंकण, चूड़ियाँ आदि और कर में जल पात्र है। जलपात्र के नीचे स्वामि कार्तिकेय की मूर्ति है। यह भाग पार्वती का है। दक्षिण भाग शिव अर्थात् नर रूप दिखाया गया है। उसके नीचे गणेश की मूर्ति तथा गणेश के कुछ ऊपर नन्दी की मूर्ति है। इससे स्पष्ट होता है कि शिव अपने वाहन नन्दी के साथ हैं। वाम पाद अलंकृत है और दक्षिण पाद शिव अर्थात् नर का रूप होने के कारण अलंकार विहीन है। गणेश के हाथ में मोदक पात्र है। उसमें उनका सूड़ मोदक खा रहा है। कार्तिकेय के हाथ में वज्र तथा बाण पूर्ण तूणीर है।

शिव की त्रिमूर्ति Ac 8 है। इसके पैर की ठेहुनी से पादमूल तक अधोभाग खण्डित हो गया है। मध्यमुख में ही दो कान बने हैं। धोती तथा उत्तरीय धारण किए हैं। वाम भुजा में सम्भवतः त्रिशूल था जो टूट गया है। परन्तु त्रिशूल में बाँस के पोर की तरह गाँठें पड़ी हैं। भगवान् दत्तात्रेय के भी मुख की कल्पना की गयी है। एलिफेन्टा में भी त्रिमूर्ति है। परन्तु दोनों की कल्पना में बहुत अन्तर है। इस मूर्ति की मुखाकृति से बुद्ध मूर्ति की ध्यान तथा शान्ति मुद्रा प्रकट होती है।

एक त्रिमुख मूर्ति का मुख भाग संग्रहालय में है। यह Ac 9 है। इसमें भी तीन मुखों में कान केवल दो हैं। मस्तक के केश मूर्धा पर जटा की तरह कलात्मक रूप से बाँधे गये हैं।

पादटिप्पणी :

४५ (१) अवन्ति स्वामी : यहाँ पर अवन्ति व्यक्ति वाचक संज्ञा है। परन्तु प्राचीन काल में उज्जैन का नाम आवन्ती या अवन्ति है। यह सोलह

जनपदों में एक जनपद भी कहा गया है। (सभा० ३८ : २९ दीपवंश ५७) अवन्ती की संज्ञा देश से भी दी गयी है। (शक्ति संगम तन्त्र : ३ : ८ : १६; ५५) अवन्ती एक नदी का भी नाम है। महो से निकलकर चम्बल में गिरती है। सप्तपुरियों में एक है। यहाँ अवन्ती वाचक अवन्तिवर्मा के मन्दिर के ध्वंसावशेष का खनन कार्य सन् १९१५ ई० में श्री दयाराम साहनी ने कराया था। वे उस समय काश्मीर पुरातत्त्व विभाग के प्रधान थे। उनके तत्त्वावधान में खनन कार्य हुआ था। श्री रणजीत सीताराम पण्डित खनन कार्य के समय उपस्थित थे। श्री साहनी का अवन्तिपुर मन्दिर शीर्षक लेख ए. एस. आर. सन् १९१२ ई० में द्रष्टव्य है। श्रीनगर से १८ मील पर मन्दिर का भव्य ध्वंसावशेष दर्शक पर गहरी छाप छोड़ता है। जौवरोर ग्राम के बाहर अवन्तिपुर से आध मिल अधोभाग में अवन्तीश्वर का भग्न मन्दिर है। अवन्ति स्वामी का मन्दिर अधिक अलंकृत है। वह अधिक सुरक्षित आध मिल इससे ऊर्ध्व भाग में स्थित है।

अवन्ति स्वामी तथा अवन्तीश्वर दो भिन्न मन्दिर है। उन्हें एक में नहीं मिलाना चाहिए। अवन्ति स्वामी का मन्दिर राजा अवन्तिवर्मा के युवावस्था का महान् निर्माण है। उस समय वह राजा नहीं हुआ था।

अपनी भव्यता, विशालता, योजना, तथा परिकल्पना के लिए, अद्वितीय माना जाता है। अवन्तीश्वर मन्दिर से आध मील और आगे है। उस पर मिट्टी तथा कंकड़ पत्थर १५ फुट ऊँचे जम गए थे। उसके अस्तित्व का पता खनन कार्य के पश्चात् ही लगा।

मैं इसे तीन बार देख चुका हूँ। यह अद्भुत भवन रचना है। श्रीनगर से १८½ मिल दूर श्रीनगर बनिहाल सड़क पर है। स्तम्भ मालाओं से परिवेष्ठित है। प्रांगण शिला से ढका है। प्रांगण १७४ फुट लम्बा तथा १४८ फिट ८ इन्च चौड़ा आयताकार है। मुख्य मन्दिर दोहरे अधिष्ठान पर स्थित है। परिवेष्ठित स्तम्भावली सृष्टि है। केवल पश्चिम के तरफ के स्तम्भ अलंकृत हैं।

इस मन्दिर में कीर्तिमुख, चामरधारिणी, अभय मुद्रा में राजा की मूर्ति, उसकी दो रानियों की मूर्तियाँ, दिहली के गवाक्ष में गंगा, नर, नारी की पंक्ति तथा प्रवेश द्वार से मुख्य देवस्थान के मध्य एक सोपानीय अधिष्ठान है। यह गरुड़ का स्थान था। विष्णु मन्दिर में गरुड़ तथा गरुड़ध्वज शिवमन्दिर के नन्दी तथा त्रिशूल तुल्य बनाया जाता था।

केन्द्रीय मन्दिर ३३ फिट वर्गाकार है। उसके चारों कोनों पर चार छोटे मन्दिर तथा बाहर दूर पर चार और छोटे मन्दिरों के पीठ स्थान हैं। मुख्य अर्थात् केन्द्रीय तथा अन्य मन्दिरों के अधो भाग ही शेष रह गए हैं। मुख्य मन्दिर के पीठ प्रदेश के दो मन्दिरों के मध्य उनके समीप ही दो मन्दिरों के अधोभाग हैं। अपनी पूर्व गरिमा में यह मन्दिर अपूर्व रहा होगा। इसकी निर्माण शैली कम्बोडिया के एगकोर वाद की याद दिलाती है। मन्दिर में बनी लक्ष्मी की मूर्तियाँ मिली हैं। इस मन्दिर का सर्वप्रथम फोटो कर्नल श्री कोल ने लिया था। अवन्ती स्वामी से अवन्तीश्वर का मन्दिर विशाल है। कोल ने दोनों मन्दिरों को शिव का माना है। यह गलत है। अवन्ति स्वामी विष्णु तथा अवन्तीश्वर शिव के मन्दिर हैं। यह बात दोनों मन्दिरों के खनन कार्य पश्चात् निश्चित हो गई है। कोल ने अपने चित्र में अवन्ति स्वामी का मन्दिर फलक २०-६८ पर दिया है। इस फोटो में समीप ही वितस्ता नदी की धारा दिखाई पड़ती है। जिस समय का फोटो है उस समय मन्दिर का प्रांगण मलबे से दबा था अतएव उसका आज का रूप उस समय प्रकट नहीं था। फोटो २२-८८ में द्वार का चित्र दिया है। द्वार में रेखाएँ काश्मीर शैली के अनुसार खुदी हुई स्पष्ट दिखाई देती हैं। ऊपरी देहली पर अलंकृत तथा मूर्तिमय शिलाखण्ड हैं। मन्दिर द्वार फोटो से स्पष्ट प्रकट होता है कि मलबे से दबा है।

फोटो २१–६८ तोरण द्वार का भग्नावशेष है। मन्दिर की स्तम्भावली द्वार के दोनों पार्श्वों से आयताकार प्रांगण के चारों तरफ जाती है। मन्दिर का तोरण द्वार पश्चिम मुख है। द्वार विशाल था। यह आधुनिक फाटकों जैसा था जिसके मध्य में देहली होती है। दोनों तरफ छायादार बरामदा होता है। ऊपर मिखर अथवा बाजा बजाने के लिए कोठरी या बरामदा होता है।

अवन्ती स्वामी का मन्दिर आयताकार है। पूर्व-पश्चिम प्रांगण के घेरे में २५ स्तम्भ दक्षिण तथा २५ उत्तर लगे हैं। दक्षिण उत्तर २५, पूर्व ओर १७ तथा पश्चिम दिशा में १४ हैं। बड़े स्तम्भ लगे हैं। स्तम्भ सभी अलंकृत है। किसी पर हंस की मूर्ति बनी है। किसी पर कमल है। कोई केवल अलंकृत है। स्तम्भावली में लगे छोटे खम्भों के Deum में देवता, गन्धर्व, यक्ष, सारस तथा मनुष्य की आकृतियाँ खोदी हुई हैं। स्तम्भों के मध्य देवताओं की मूर्तियाँ रखने के लिए कोष्ठ बने हैं। मन्दिर के तोरण द्वार बाहरी तरफ पार्श्व में तथा सम्मुख दिवालों में मन्दिराकृति गवाक्ष में देवताओं की मूर्तियाँ हैं। तोरण द्वार के सम्मुख भाग पर अनेक मन्दिराकृति गवाक्ष बने हैं। उनमें मूर्तियाँ हैं। मूर्तियाँ सभी खण्डित कर दी गई हैं।

(२) अवन्तीश्वर = यह मन्दिर जौवरोर ग्राम के अवन्तीपुर से आध मिल दूर पर स्थित है। मन्दिर पूरी तरह नष्ट कर दिया गया है। यह एक प्रांगण में पत्थर के प्राकार वेष्ठित स्थान में स्थित है। अलंकृत स्तम्भावली प्रश्चिम ओर है। द्वार इसी दिवाल के मध्य से है। मन्दिर का अधिष्ठान ५७ फिट ४ इंच है। वह १० फिट ऊँचा है। शिव का वाद्य डमरू, सिंह, हाथो आदि मूर्तियाँ यहाँ मिलेंगी।

अवन्तीश्वर के मन्दिर का फोटो कर्नल कोल की पुस्तक में २५–६८ है। जिस काल का फोटो लिया गया है जो लगभग १०० वर्ष पूर्व का है मन्दिर के मध्यवर्ती विशाल मन्दिर के कुछ स्तम्भ, प्रांगण के स्वम्भावलोक आकार मात्र शेष था। अन्यथा सभी कुछ मलबे के नीचे दबे थे।

अवन्तीश्वर का मन्दिर भी आयताकार है। मध्य में कुछ पूर्व हटकर विशाल अठपहला मन्दिर बना है। इसके चारों तरफ द्वार, उनकी सीढ़ियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। सीढ़ियों के मध्य परिहासपुर, उष्कर, शंकराचार्य मन्दिर की तरह अधिष्ठान कोणीय बनाये गये हैं। मन्दिर का द्वार पश्चिम की ओर है। मन्दिर विष्णु का नहीं परन्तु शिव का है। तोरण द्वार की फोटो श्री कोल की पुस्तक में २३–६८ तथा २७–६८ है। तोरण द्वार देखने ही से प्रतीत होता है कि मन्दिर कितना विशाल तथा भव्य रहा है। इसका तोरणद्वार अवन्तिस्वामी के तोरण द्वार से विशाल है। तोरण द्वार के भीतर बगल वाले दिवालों तथा बाहर दिवालों पर मन्दिरों के गवाक्ष बने हैं। उनमें देवताओं की मूर्तियाँ थीं। मूर्ति खण्डित कर दी गई हैं।

मन्दिर का प्रांगण विस्तृत है। प्रांगण के चारों ओर स्तम्भावलियाँ हैं। पूर्व पश्चिम दोनों तरफ २६ तथा उत्तर दक्षिण पूर्व की ओर २३ और पश्चिम की तरफ १८ हैं। तोरण द्वार के दोनों पार्श्व में ९ स्तम्भावली हैं। पूर्व की तरफ द्वार नहीं है अत एव उस तरफ दक्षिण से उत्तर तक केवल स्तम्भावलियाँ हैं। दोनों स्तम्भों के मध्य देवता के रखने का स्थान बना था।

सर अलेक्जेण्डर कनिंघम का मत है इन महान् विशाल मन्दिरों को नष्ट करने के लिए सिकन्दर बुतशिकन ने तैमूर लंग से बारूद लिया था। इनका मानवीय साधनों से नष्ट करना कठिन था अतएव बारूद से वे उड़ा दिए गये।

त्रिपुरेश्वरभूतेशविजयेशेषु भूभृता ।
स्नानद्रोण्या रुप्यमय्या तेन पीठत्रयं कृतम् ॥४६॥

४६. उस भूभृत् ने त्रिपुरेश्वर[1], भूतेश तथा विजयेश में रौप्य मयी स्नानद्रोणी[2] के साथ तीन पीठ बनवाया ।

पादटिप्पणी :

४६ (१) त्रिपुरेश्वर = त्रिपुर असुर का वध करने के कारण शिव का नाम त्रिपुरारी पड़ गया था । शिव का ही एक नाम त्रिपुरेश्वर है । (कर्ण : अ. ३३-३४) (मत्स्य : १७९ : ३८; २५९ : ११) त्रिपुरेश्वर का स्थान वर्तमान ग्राम त्रिफर है । डल से लगभग तीन मिल दूर होगा । सर्वावतार अध्याय चार में शिव ज्येष्ठ किंवा ज्येष्ठेश्वर एक माहात्म्य है इसका नाम त्रिपुर वध के आधार पर रखा गया है । महादेव पर्वत पर शिव का स्थान माना गया है । वह आज भी महादेव शिखर नाम से प्रसिद्ध है । वह शिखर त्रिफर के पूर्व ऊपर उठता है । वहाँ की यात्रा आज भी की जाती है । महासरित् वर्तमान मार नदी है । आराह नदी पर त्रिफर पड़ता है । आराह नदी डल लेक में जल लाने वाली मुख्य नदी है । (सर्वावतार : ४ : १२९) महासरित् का स्रोत महासर अथवा मारसूर है । वहाँ से वास्तव में नदी निकलती है । आराह नदी कल्हण वर्णित पर्वतीय नदी अर है । त्रिपुरेश्वर का वर्णन जोनराज ने भी किया है । (श्लोक : ६०१.)

श्रीवर ने (१ : ५ : १५, ३५) डल लेक का वर्णन करते हुए लिखा है कि तिलप्रस्था नदी त्रिपुरेश्वर से डल में आकर मिलती है । तिलप्रस्था नदी का उल्लेख श्रीवर ने (१ : ४२१, ४ : ५५; ६१,) सुरेश्वरी माहात्म्य में किया है । यह आराह नदी की शाखा नदी है । जो कि कुछ दूर पर त्रिफर गाँव के नीचे शालीमार शाखा को अलग करती अधिक पश्चिम ओर बहती डल लेक में गिरती है। ५ : ४६९ सर्वावतार में भी तिलप्रस्था का उल्लेख मिलता है । (४-५५-५६) त्रिफर उत्तर-पूर्व उस पर्वत मूल में पड़ता है जिसपर सुरेश्वरी तीर्थ है । नीलमत पुराण में त्रिपुरेश का उल्लेख किया गया है । महादेव पर्वत तथा सुरेश्वरी के मध्य है । त्रिपुरेश ही त्रिफर है । श्री स्तीन ने लिखा है कि साहिबराम को इस स्थान का परिचय था । उसका उल्लेख उन्होंने अपने तीर्थों में डल के समीपवर्ती तीर्थों, गंगा तथा त्रिपुरेश्वर ग्राम की यात्रा के प्रसंग में किया है । श्री स्तीन को ईशावर में एक पुरोहित ने बताया था कि एक छोटी स्रोतस्विनी जो 'आराह पथ' में त्रिफर के समीप महादेव पर्वत के ढाल से निकल कर मिलती है उसे, स्थानीय लोग गंगा कहते थे । पुराना विजयेश्वर माहात्म्य स्पष्ट लिखता है कि त्रिपुरेश की पूजा सुरेश्वरी में होती थी । काश्मीर के पण्डितों में त्रिपुरेश की तीर्थ यात्रा अब प्रचलित नहीं है । प्राचीन समय में वह बड़ा पवित्र स्थान माना जाता था । कल्हण राजतरंगिणी में बार-बार लिखता है कि उसपर अग्रहार तथा देवोत्तर चढ़ाया जाता था । (रा० ७ : १५१, ५२६, ९५६) राजा अवन्तिवर्मा अपनी मृत्यु आसन्न काल में वहीं पर आ गया था । (रा० : ५ : १२३) वह भिखारियों एवं भिक्षुकों का प्रिय स्थान था । (रा० : ६ : १३५) इसकी यह स्थिति मुसलिम काल तक बनी रही । वह शाह जैनुल आबदीन के यहाँ एक अन्नसत्र खुलवाया था जहाँ भिक्षुओं को भोजन मिलता था । कल्हण के समय तक इस तीर्थ स्थान की मान्यता थी । त्रिपुरेश्वर का उल्लेख नीलमत पुराण में मिलता है । (नी. १३२०)

(२) स्नानद्रोणी : काश्मीर तथा अन्य भारतीय मन्दिरों में देव प्रतिमा तथा लिंग अलंकृत पीठ अथवा भद्र पीठ पर स्थापित किया जाता था । इस

शूरस्यापि नरेन्द्रं तं ध्यायतः स्वाधिदैवतम् ।
तत्प्रियार्थमुपेक्ष्योऽभूद्धर्मः प्राणाः सुतोऽपि वा ॥४७॥

४७. अपने अधिदैवत उस नरेन्द्र के ध्यान करते, शूर के लिये भी उसके (अभीष्ट) प्रिय हेतु धर्म, प्राण एवं पुत्र भी उपेक्षणीय हो गये ।

शूर का भूतेश्वर में निर्णय :

तथा चाऽर्चयितुं जातु यातो भूतेश्वरं नृपः ।
विभवानुगुणे स्वस्मिन् पूजोपकरणेऽर्पिते ॥४८॥

४८. कदाचित् नृप भूतेश्वर की अर्चना के लिये गया । वहाँ अपने वैभव के अनुरूप पूजोपकरण (पूजा सामग्री) अर्पित करने पर[1]—

ददर्श पीठे देवस्य पूजकैरुपपादितम् ।
वन्यमुत्पलशाकाख्यं तिक्तशाकमवस्थितम् ॥४९॥

४९. देवता के पीठ पर पूजकों द्वारा उपपादित, वन्य उत्पलशाक[1] एवं तिक्त शाक उपस्थित देखा ।

प्रकार के भद्रपीठ भूतेश्वर, जनस्थान तथा पाटन में देखे जा सकते हैं । मूर्तियों को भंग करने के पश्चात् भद्रपीठ भी भंग अथवा अपने स्थान से उठाकर फेंक दिया जाता था ।

प्रतिमा तथा लिंग के अभिषेक जल प्रवाह के लिये भद्रपीठ पर जल द्रोणी बनी रहती है । शिव लिंग अर्घा में बना रहता है । जल स्नान द्रोणी से गिरकर बाहर मकर किंवा मत्स्य मुखाकार अलंकृत शिलाकृति जल प्रणाली से गिरता है । यहाँ पर श्रद्धालु दर्शक चरणामृत ग्रहण करते हैं । उक्त प्रकार से बाहर कुण्ड में गिरता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ४८ में 'जातु' का पाठभेद 'जातो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८ (१) पीर हसन गलत लिखता है कि राजा विजयेश्वर के मन्दिर में गया था। भूतेश्वर को पीर हसन विजयेश्वर समझ लेता है । वह लिखता है—'कहते हैं कि इलाका वैजवारह शूरवर्मा के कब्जे में था। और इसके मातबर बुतखाना के महन्तों को तकलीफें पहुँचाते थे चुनांचः गल्ला मुमकिन न होने के वायस वह लोग साग के खाने पर कनाअत करते थे । एक दिन राजा नामदार पूजा की तक़रीब पर विजयेश्वरी के मन्दिर आया । बुतखाना के महन्तों को देखा कि महादेव के लिंग पर जंगली साग ला रखते हैं । राजा इस हाल के देखने से जगह की हक़ीकत से वाक़िफ हुआ । और उसी वक्त शूरवर्मा को हाज़िर करके इस कसूर के जहूर से फौरन तलवार के घाट उतार दिया । (पृष्ठ : ९५)

पोरहसन का वर्णन नितान्त भ्रामक है । शूर वर्मा को राजा ने नहीं मारा था । बलिक शूरवर्मा ने अपने पुत्र को मारा था । स्थान भी विजयेश्वर न होकर भूतेश्वर था । पीरहसन ने कोई आधार नहीं उपस्थित किया है । उसकी बात की प्रामाणिकता क्या है ।

पादटिप्पणी :

४९ (१) उत्पलशाक : यह शाक गरीबों का

तत्रस्थाः क्ष्माभुजा पृष्टास्तन्निवेदनकारणम् ।
व्यजिज्ञपन् क्षितिन्यस्तजानुप्राञ्जलयस्ततः ॥५०॥

५०. राजा के उसे अर्पित करने का कारण पूछने पर, वहाँ उपस्थित लोग करबद्ध, पृथ्वी पर जानुन्यस्त करके, बोले—

डामरो धन्वनामाऽस्ति लहरे विषये बली ।
शूरस्य मन्त्रिणो देव सेवको यः सुतोपमः ॥५१॥

५१. 'हे देव ! लहर[1] विषय[2] (प्रदेश) में मन्त्री शूर का सुतोपम बली सेवक धन्व[3] नामक डामर[4] है ।

भोजन है । काश्मीरी में उपल-हाक कहते हैं । यह पर्वतों के ढाल पर ७ हजार से ११ हजार फिट की ऊँचाई पर होता है । ग्रामीण लोग इसकी पत्ती एकत्रित करते हैं ।

वह शाक भूतेश्वर मन्दिर के समीपस्थ पर्वत पर मिलता है । शाक का कड़वापन उबालने के पश्चात् नष्ट हो जाता है । गाथा है कि वहाँ के पर्वत निवासी ऋषियों का प्राचीन काल में खाद्य पदार्थ था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५१ में 'लहरे' के लिये 'लार इति प्रसिद्धे राष्ट्रे' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५१ (१) लहर = वर्तमान जिला लार है । इसमें प्रायः वह सभी क्षेत्र आ जाता है, जिसमें सिन्ध नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ बहती, उस क्षेत्र का जल ग्रहण करती हैं । सेण्ट पीटर्सबर्ग के कोश में लार को लहर ही माना गया है । कल्हण ने राजतरंगिणी में लहर का जो भौगोलिक वर्णन किया है उससे भी यह लार प्रमाणित होता है । (रा० : ७ : ९११, १३८०; ८ : ४३७, ७२९, ७९३, ११२८; जोन० : १६७; श्रीवर : १ : ५ : १२ : ४ : ३४७; शुक० : १८४, २३१)

(२) विषय = लोकप्रकाश में भी लहर को विषय माना गया है । लहर विषय में गान्धर्व बल का भी उल्लेख किया गया है । गन्दरबल अर्थात् गान्धर्व बल सिन्ध नदी पर है ।

विषय का अर्थ परगना साधारणतया लगाया जाता है । पूर्वकाल में वे जिला जितने बड़े होते थे । परन्तु कालान्तर में प्रशासकीय छोटे भागों में बाँट दिये गये । उनका नाम परगना पड़ गया । मुगल काल से परगना शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ था । एक मत है । यह शब्द 'पुरगणा' का अपभ्रंश है । दूसरा मत है । प्रतिजागर्णक शब्द का ही अर्थ परगना है ।

(३) धन्व : श्री वामजायी ने लिखा है कि वह मन्त्री शूर का मित्र था (पृष्ठ १२३) । किन्तु स्पष्ट उल्लेख है कि सेवक था ।

(४) डामर = प्रथम बार डामर शब्द का उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है । डामर लोग शनैःशनैः प्रबल हो रहे थे । कल्हण के इस वर्णन से स्पष्ट होता है। कर्कोट वंश के दुर्बल राजाओं के समय में भूमिधर अथवा जमींदारों की शक्ति मध्ययुगीय यूरोपीय क्यूडल लार्डों के समान बढ़ने लगी थी । द्रष्टव्य : परिशिष्ट 'डामर'

कल्हण के एक शताब्दी पूर्व क्षेमेन्द्र ने भी समर सिंह डामर का उल्लेख किया है । इससे प्रकट होता है । डामर शब्द बहुत पहले से प्रचलित था । (समय मातृका : २ : २१)

हृतेषु तेन ग्रामेषु निरवग्रहशक्तिना ।
निवेद्यमेतदेवाऽस्मै भूतेशाय निवेद्यते ॥५२॥

५२. 'अप्रतिहत शक्तिशाली उस (भूतेश) के ग्रामों के अपहरण कर लेने पर; इस भूतेश को यही निवेदित किया जाता है ।'

अकाण्डशूलजनितां पार्थिवः कथयन् व्यथाम् ।
श्रुतमश्रुतवत्कृत्वा त्यक्तपूजोऽथ निर्ययौ ॥५३॥

५३. सुना अनसुना सदृश करके, नृपति अकाण्ड (अनवसर) में शूल जनित व्यथा कहते हुए, पूजा त्यागकर निर्गत हो गया ।

पूजां संत्यज्य गमनं शूलं चाऽऽकस्मिकं प्रभोः ।
सहेतुकं विदञ् शूरो वृत्तान्तान्वेषकोऽभवत् ॥५४॥

५४. प्रभु के पूजा त्यागकर जाने तथा आकस्मिक शूल को सहेतुक जानकर, (मन्त्री) शूर वृत्तान्त अन्वेषण करने लगा ।

ज्ञाततत्त्वस्ततस्तूर्णं भूतेशाभ्यर्णवर्तिनः ।
क्रुद्धः स मातृचक्रस्य भैरवस्याऽविशद् गृहम् ॥५५॥

५५. तदनन्तर तत्त्व जानकर, क्रुद्ध वह शीघ्र भूतेश[१] निकटवर्ती मातृचक्रस्थ, भैरव[२] गृह में प्रविष्ट हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५५ में 'स' के लिये 'शूर' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५५ (१) भूतेश : कर्नल कौल के नकशा में द्वितीय मन्दिर और पूर्वीय मन्दिर समूह के मध्य एक विशाल मन्दिर का ध्वंसावशेष है । (कौल. ई. एन्शियेण्ट बिल्डिग प्लान ६ प्लेट ६ तथा ७) इसी मन्दिर को शिव भूतेश मन्दिर होने का अनुमान किया गया है । कल्हण के प्रसंग वर्णन से प्रकट होता है कि यह मन्दिर भैरव मन्दिर के समीप था ।

(२) भैरव मन्दिर : विशप कोर्ट ने दो नक्शा भूतेश्वर का अपने नोट के साथ दिया है । (जे. ए. एस. बी. १८६६ पृष्ठ : १०१-१०९) उसमें उन्होंने मन्दिरों को दो वर्गों में विभाजित किया है । दोनों वर्गों में दो सौ गज का अन्तर है । दूसरे वर्ग को विशप ने पूर्वीय वर्ग मन्दिर कहा है । पूर्वीय मन्दिर वर्ग के पीछे उत्तर-पूर्व के कोने पर एक आयताकार सरोवर है । अत्यन्त प्राचीन शिलाखण्डों से इसके तट वेष्ठित हैं । निर्मल जल से भरा है । इसे इस समय नरन् नाग कहते हैं । स्तीन का मत है कि वह सरोवर सोदर तीर्थ है । उसका वर्णन कल्हण तथा नीलमत दोनों ने किया है । वहाँ पर अन्य कोई दूसरा सरोवर नहीं है । जहाँ धन्व का मृत शरीर फेंका जाता ।

नरन्नाग के पश्चिम बीस गज दूरी पर पूर्वीय

निषिद्धजनबाहुल्याद्भूत्वा विरलपार्श्वगः ।
प्राहिणोद् धन्वमानेतुं ततो दूतान् पुनः पुनः ॥५६॥

५६. विरल पार्श्वगों के अतिरिक्त (लोगों को हटाकर) धन्व को लाने के लिये, बार-बार दूतों को भेजा ।

स क्षितिं पत्तिपृतनासंमर्देन प्रकम्पयन् ।
अप्रकम्पतनुः प्राप क्रूरः शूरान्तिकं शनैः ॥५७॥

५७. वह क्रूर निर्भय होकर, पदाति[1] सैन्य संमर्द से पृथ्वी को प्रकम्पित करता हुआ, शूर के समक्ष उपस्थित हुआ ।

तस्य प्रविष्टमात्रस्य शस्त्रिणः शूरचोदिताः ।
मुण्डं सजीवितस्यैव चिच्छिदुर्भैरवाग्रतः ॥५८॥

५८. प्रवेश करते ही उस जीवित (धन्व) का मुण्ड भैरव सम्मुख शूर प्रेरित शस्त्रधारियों ने काट डाला ।

आसन्ने सरसि क्षिप्त्वा रुधिरोद्गारि तद्वपुः ।
क्ष्मापतेः क्षालितामर्षो धीरः शूरो विनिर्ययौ ॥५९॥

५९. रुधिरोद्गारि, उसका शरीर समोपवर्ती सरसी[1] में फेंक कर, राजा का अमर्ष क्षालित कर्ता धीर शूर चला गया ।

मन्दिर वर्ग है । वहाँ एक छोटे मन्दिर का ध्वंसावशेष है । यह विशप के नकशा में 'के' चिह्नित है । मन्दिर का ध्वंसावशेष पहाड़ से जल के साथ आती मिट्टी के कारण ढक गया है । पहाड़ मन्दिर के ठीक पीछे से उठता है । श्री स्तीन का मत है । यह मन्दिर अन्य मन्दिर समूहों से बाहर एकांकी नरन् नाग के समीप है । अतएव कल्हण वर्णित भैरव मन्दिर यही है । भैरव मन्दिर में मातृचक्र भी था । वहाँ बलि दी जाती थी । बलि देने के कारण यह मन्दिर अन्य मन्दिर वर्ग के बाहर निर्माण किया गया था । क्योंकि शिव मन्दिर में बलि नहीं दी जाती । मांसबलि के कारण मालूम होता है यह मन्दिर अन्य मन्दिर समूहों से दूर बनवाया गया था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५६ में 'बाहुल्याद्भूत्वा' का पाठभेद 'बाहुल्यो भूत्वा' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५७ में 'पुरः' का पाठभेद 'शनैः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

५७ (१) पृतना : इसका अनुवाद मैंने पदाति सैनिक किया है। श्री सीताराम पण्डित ने 'रेजिमेंट' तथा श्री स्तीन ने 'हॉस्ट ऑफ फुट शोलजर्स' किया है । प्राचीन मान्यता के अनुसार पृतना सेना का एक प्रभाग होता है । उसमें २४३ हाथी, २०३ रथ, ७२९ अश्व, १२१५ पैदल सैनिक होते थे । मैंने भूतेश्वर की कई बार यात्रा की है । आजकल सड़क बन गयी है । उस समय वहाँ रथ का आना असम्भव था । पृतना का प्राचीन अर्थ यहाँ लगाना ठीक नहीं है ।

पाठभेद 'पुरः' को ठीक मानकर अनुवाद किया गया है ।

पादटिप्पणी :

५९ (१) सरसी : भूतेश्वर के समीप मुझे

तस्य श्रुत्वा शिरश्छिन्नं स्वपुत्रस्येव मन्त्रिणा ।
क्षीणमन्युः क्षितिपतिः सवैलक्ष्य इवाऽभवत् ॥६०॥

६०. स्वपुत्र तुल्य उसके शिर को मन्त्री द्वारा छिन्न किया गया सुनकर, क्षीणमन्यु (क्रोधरहित) क्षितिपति सलज्ज सदृश हो गया ।

शूरोऽथ पृष्टकुशलो निर्व्यथोऽस्मीति भाषिणम् ।
उत्थाप्य तल्पात्तं देवं पूजाशेषमकारयत् ॥६१॥

६१. कुशल पूछकर शूर ने 'व्यथा रहित हूँ' यह कहने वाले उसे (राजा को) तल्प से उठाकर, देव का अवशिष्ट पूजा कराया ।

इत्थं समस्तकृत्येषु भावज्ञः स महीपतेः ।
अनुक्त्वैव हितं तत्तत्प्राणांस्त्यक्त्वाऽप्यसाधयत् ॥६२॥

६२. इस प्रकार समस्त कृत्यों में महीपति का भावज्ञ वह (मन्त्री) बिना कहे ही तत् तत् हित कार्य प्राणोत्सर्ग करके भी करता था ।

केवल एक ही लघु सरोवर दिखायो दिया । वह मन्दिर के दाहिने ओर कोने पर है । उसे सोम तीर्थ या नारायन नाग भी कहते हैं । श्रीनगर समीपस्थ सुदरबल में दो सरोवर निरन्तर चलते जलस्रोत से भरते रहते हैं । उन्हें सोदर तीर्थ का दूसरा रूप माना जाता है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण तक वहाँ अनेक यात्री यात्रा करने के लिये आते थे । वह पन्द्रह फिट लम्बा केवल एक पत्थर का ही बना है । (जे. ए. एम. बंगाल सन् १९२७ ई० पृष्ठ २७३) । यदि वहाँ कोई और लघु सरोवर अर्थात् सरसी रहा होगा, तो वह या तो भठ गया है, अथवा उसके अस्तित्व का लोप हो चुका है । कनकवाहिनी नदी भूतेश्वर के वाम भाग पर्वत मूल का स्पर्श करती बहती है । सरसी का अर्थ कृत्रिम अर्थात् बनवाया हुआ सरोवर होता है । जिसमें कमल उगते हैं । सोदर तीर्थ अर्थात् सरसी मानव कृत सरोवर है । उसे शिला खण्डों से वेष्टित किया गया है । पूर्वकाल में वहाँ लघुस्रोत बहता था । उस स्रोत को बाँधकर सरसी तथा उसका घाट बना दिया गया है । कल्हण भूतेश्वर की अपने पिता के साथ कई बार यात्रा किया था । उसे वहाँ के कण-कण का ज्ञान था । उसका यह वर्णन प्रस्तुत वस्तुस्थिति से मिलता है । इसी सरसी में धन्व का शरीर मन्दिर से तत्काल निकाल कर फेंक दिया गया होगा । उसने अपने पुत्र के विधिवत् दाह तथा क्रिया कर्म का भी विचार नहीं किया । सम्भव है । क्रोध शान्त होने पर क्रिया कर्म उसने अथवा दूसरे ने किया होगा । क्योंकि समीपस्थ कंकनी नदी में धन्व का शव फेंक दिया जाता, तो उसका मिलना कठिन था । शव भूतेश्वर स्थान से कंकनी नदी में गिरते समय ऊँचाई से गिरने के कारण टूट फूट कर लोथड़ा मात्र रह जाता । जो बचता भी वह नदी की प्रबल धारा में बह जाता । उसके अस्तित्व का पता न लगता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६० में 'क्षीण' का पाठभेद 'क्षण' मिलता है ।

परस्परमनुत्पन्नमन्युकालुष्यदूषणौ ।
न दृष्टौ न श्रुतौ वाऽन्यौ तादृशौ राजमन्त्रिणौ ॥६३॥

६३. परस्पर उत्पन्न क्रोध एवं कालुष्य से न दूषित होने वाले ऐसे अन्य राजा और मन्त्री न देखे गये और न सुने गये।

श्रीमेघवाहनस्येव साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः ।
अशेषप्राणिनामासीदमारो दश वत्सरान् ॥६४॥

६४. श्री मेघवाहन[1] के सदृश अवन्तिवर्मा के साम्राज्य में दश वर्षों तक अशेष (सम्पूर्ण) प्राणियों की हत्या निषिद्ध थी।

जलं जहद्भिः शिशिरं तटानेत्याऽकुतोभयैः ।
तत्कालं सेवितः पृष्ठे पाठीनैः शरदातपः ॥६५॥

६५. शीतल (शिशिर) जल त्याग कर निर्भय पाठीन[1] (मत्स्य) तटों पर आकर उस समय पृष्ठ (पीठ) पर शरद् आतप सेवन करते थे।

अनुग्रहाय लोकानां भट्टश्रीकल्लटादयः ।
अवन्तिवर्मणः काले सिद्धा भुवमवातरन् ॥६६॥

६६. अवन्तिवर्मा के समय लोक अनुग्रह हेतु भट्ट श्री कल्लट[1] आदि सिद्ध[2] पृथ्वी पर अवतरित हुए।

पादटिप्पणी :

६३. सूक्ति संग्रह का १६७ वाँ श्लोक है।

पादटिप्पणी :

६४ (१) मेघवाहन : द्रष्टव्य रा० : ३ : २-९६। इसका काल श्रीस्तीन ने सप्तर्षि ३०८८ वर्ष = सन् १२ ईस्वी रखा है।

पादटिप्पणी :

६५ (१) पाठीन : किरातार्जुनीय में पाठीन शब्द का उल्लेख किया गया है। (४ : ५) पाठीन का एक नाम सहस्रदंष्ट्र भी है। यह एक प्रकार की मछली होती है इसका खाना विहित किया गया है। (१ : १७८) मनु ने श्राद्ध में मछली प्रयोग की अनुमति दी है (मनु : ५ : १६) काश्मीरी पण्डित श्राद्ध में प्रयोग होने वाली मछली को 'रामगद' कहते हैं। यह छोटी मछली होती है। श्री विलसन ने उल्लेख किया है कि बहुत शीत जल हो जाने पर यह झीलों तथा दलदलों में चली जाती है। (वैली. पृष्ठ १५८) राजा की महत्ता वर्णन हेतु कल्हण ने इस पद को लिखा है। शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। उसी कहावत के आधार पर मछलियों का निर्भय होकर जल के बाहर निकलना और मछली भोज्य प्रिय होने पर भी काश्मीरियों का उन्हें न मारना, राजा के राज्य नियंत्रण एवं न्याय भावना का प्रतीक है।

पादटिप्पणी :

६६ (१) भट्ट कल्लट : यह काश्मीरी ब्राह्मण थे। इनके गुरु का नाम वसुगुप्त था। वसुगुप्त विरचित ग्रन्थ का नाम 'स्पन्द कारिका' है। भट्ट कल्लट ने 'स्पन्द कारिका' पर 'स्पंद सर्वस्व' नामक टीका की रचना की है। क्षेमेन्द्र ने भट्ट कल्लट का उल्लेख

चरित्रे बहुवक्तव्ये येषामेकस्य पावनः ।
अयं प्रासङ्गिकः कश्चिद् वृत्तान्तो वर्णयिष्यते ॥६७॥

६७. जिनके बहु वक्तव्य चरित्र के रहने पर भी, एक का पावन एवं प्रासंगिक कुछ वृत्तान्त वर्णित किया जायगा।

सुय्य चरित

देशः प्रबलतोयोऽयं महापद्मसरोजलैः ।
कूलिनीभिश्च शबलः स्वल्पोत्पत्तिः सदाऽभवत् ॥६८॥

६८. यह देश महापद्मसर[1] के जलसे तोय बहुल एवं नदियों से शबल (कई भागों में विभक्त) होने से सदा स्वल्प उत्पत्ति वाला रहता था।

ललितादित्यभूभर्तुरुद्योगेन बलीयसा ।
किञ्चिदाकृष्टसलिलः प्रापोत्पत्तिं मनाक्ततः ॥६९॥

६९. राजा ललितादित्य के महान् उद्योग से, कुछ जल निकल जाने से, वहाँ थोड़ी उत्पत्ति होने लगी।

जयापीडे क्रमाद्याते स्वल्पवीर्येषु राजसु ।
सलिलोपप्लवैरासीत् पुनरेवावृता क्षितिः ॥७०॥

७०. राजा जयापीड के दिवंगत होने के पश्चात् क्रम से स्वल्प वीर्य (अल्प पराक्रमी) राजाओं के होने पर, पुनः पृथ्वी जल उपद्रव आवृत (ग्रस्त) हो गयी।

'कविकण्ठाभरण' (२ : १, ५ : १) तथा 'औचित्य विचार चर्चा' में काल औचित्य में किया है।

(२) सिद्ध : अंतर्दृष्टि प्राप्त सन्त, ऋषि या महात्मा। व्यास की गणना सिद्ध व्यक्तियों में है। कल्हण ने राजा सिद्ध को भी सिद्ध लिखा है। उसे सदेह सिद्ध माना है। (रा० : १ : २८५) अर्ध दिव्य प्राणी जो अत्यंत पवित्र और पुण्यात्मा होते हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

दश देवयोनियों में एक देवयोनि है। मानवों में जिसकी साधना पूर्ण हो जाती है, उसे सिद्ध मानते हैं। कुमारसंभव में सिद्धों के विषय में कालिदास ने लिखा है :

आमेखलं संचरतां घनानां,
छायामधः सानुगतां निषेव्य ।
उद्वेजिता वृष्टिभिराश्रयन्ते
श्रृङ्गाणि यस्यातपवन्ति सिद्धाः ॥ १ : ५॥

अलौकिक शक्ति से संपन्न व्यक्ति को सिद्ध कहते हैं। सिद्ध पुरुष उसे कहते हैं, जिसे योगादि में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सिद्धियाँ आठ हैं।

बौद्धों के वज्रयान सम्प्रदाय में चौरासी सिद्ध पुरुषों का उल्लेख मिलता है। वे सातवीं से नवीं शताब्दी के मध्य हुए थे। लूइया से भालिया तक के चौरासी सिद्धों का नाम उनकी जाति, स्थान, स्थिति और उनके कुछ समकालीन व्यक्तियों का नाम भी मिलता है। मत्स्येन्द्र नाथ को एक मत लुइया मानता है। (आई. एच. क्यू : ३१ : ३६२—३७५)

पादटिप्पणी :

६८ (१) महापद्मसर : ऊलर लेक।

पादटिप्पणी :

७० (१) वीर्य : शब्द का शाब्दिक अर्थ पुरुषत्व है। यह संस्कृत तथा लैटिन शब्द वीर का तद्भव

दीन्नाराणां दशशती पञ्चाशत्यधिकाऽभवत् ।
धान्यखारीक्रये हेतुर्देशे दुर्भिक्षविक्षते ।।७१।।

७१. दुर्भिक्ष विपन्न देश में खारी[1] धान्य क्रय हेतु दश शत पचास दीनार[2] व्यय होते थे ।

है। श्लोक ७० से १२० तक सुय्य इञ्जिनीयर (अभियन्ता) के जल निर्गत योजना का अद्‌भुत वर्णन किया गया है। इस योजना के सफल होने पर; दो सौ दीनार प्रति खारी का मूल्य गिरकर, छत्तीस दीनार प्रति खारी रह गया था।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७१ में 'पञ्चाशत्यधि' का पाठभेद 'पञ्चाशदधि' तथा 'खारी' का 'खारे' मिलता है।

पादटिप्पणी :

७१ (१) खारी : खारी तौल अफगानिस्तान तथा ईरान में भी गत शताब्दी तक प्रचलित था। उसे खरवार कहते थे। काबुल में ५५९ केजी तथा ईरान में २९४ केजी का होता था। खारी तौल का उल्लेख ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलता है। यह सोम के एक माप का सूचक है। (ऋ० : ४ : ३२ : १७) पाणिनि को भी खारी तौल का ज्ञान था। काश्मीर की यह तौल अबतक प्रचलित है। यद्यपि नगरों में किलो आदि तौल प्रचलित हो गयी है। परशियन शब्द खरवार इसी शब्द खारी का अपभ्रंश है। खरवार का अर्थ होता है, एक खर अर्थात् गदहे का भार। अबुल फजल ने भी इस तौल का आईने अकबरी में उल्लेख किया है। (२ : ३६६) लोक प्रकाश में क्षेमेन्द्र ने उसे खारी या खारिका लिखा है। अकबर के समय से बर्तमान तौल के प्रचलन के पूर्व, खारी के तौल में काश्मीर में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। श्री ट्रोयर ने ९३३.००५ ग्राम का एक खारी इस श्लोक के अनुवाद की टिप्पणी में दिया है। लोरेन्स (वैली० : २४३) मूरक्राफ्ट (ट्रेवेल० : २ : १३५); के अनुसार खार (खारवार) उन्नीस सौ बोस पल के बराबर भार का होता था। पल साढ़े तीन तोला का होता था। खार १७७ : १२९/१७५ पौण्ड का होता था। किन्तु श्री वामजायी ने उसे १९२ पौण्ड तौल का लिखा है। कोई प्रमाण नहीं दिया है। (पृष्ठ : १२५) खार १६ त्रस्व में विभाजित होता था।

(२) दीनार : विलसन का मत है कि दीनार संभवतः ताम्र के थे। त्रस्व चार मनुथ अबुल फजल वर्णित मन के बराबर होता था। तीस पल का मनुथ और आठ सेर का पल होता था। काश्मीर में पिछली शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक सरकारी तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन अन्न के खारी तौल के आधार पर दिया जाता था। इस प्रकार खारी का मुद्रा के मूल्य में भी प्रयोग होता था। लोक प्रकाश में इस प्रकार के खारी का बहुत प्रयोग मिलता है। उसे व्रह दिन्नार खारी तथा स्वर्ण खारिका लिखा गया है। वह अबुल फजल के 'खर-वार' उथा 'खारवार नगद' के भेद को प्रकट करता हैं। 'खार' शब्द शाली भूमि के माप के लिये सुदूर पूर्वकाल से प्रयोग किया जाता रहा है। जिसमें एक 'खारी' बीज एक 'खार' भूमि में बोने के लिये दिया जाता था। लोक प्रकाश में इसकी संज्ञा भूमि खारी से दी गयी है। पाणिनि ने इसे 'खारिका' लिखा है। (५ : १ : ४५ लारेन्स वैली : २४३) कल्हण (रा० : ५ : ११६) सुय्य की जल योजना के पूर्व अच्छी फसल के समय दो सौ दीनार एक खारी शाली का मूल्य देता है। सुय्य के जल योजना के पश्चात् एक खारी का मूल्य छत्तीस दीनार हो गया था। राजा हर्ष के समय अकाल काल में एक खारी शाली का मूल्य पांच सौ दीनार था। (रा० : ८ : १२२०) काश्मीर में अकाल के समय श्रीवर (१ : २ : २५) तथा शुक (२: ९२) ने क्रमशः पन्द्रह सौ तथा दस हजार दीनार एक खारी का मूल्य बताया है।

अवन्तिवर्मणः पुण्यैर्जन्तूज्जीवयितुं ततः ।
स्वयमन्नपतिः श्रीमान्सुय्यः क्षितिमवातरत् ॥७२॥

७२. तदनन्तर अवन्तिवर्मा के पुण्यों से प्राणियों को जीवित करने के लिये स्वयं अन्न-पति[1] श्रीमान् सुय्य पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए ।

प्राचीन काल में चार सेर का एक आढक, आठ आढक का एक द्रोण, तीन द्रोण का एक खारी, आठ द्रोण का एक वाह, मुट्ठी भर का एक निकुंच, पाँच भर का एक कुडव तथा एक सेर का एक प्रस्थ विल्सन ने दो कुडव, दो पेक, एक तथा दो तिहाई गैलन या लगभग तीन चौथाई माप दिया है। (एशियाटिक रिसर्चेज़ : ५ ५८ सन् १८२५ अमर : २ : वैश्य वर्ग : ८८) ।

पादटिप्पणी :

७२ (१) अन्नपति—अन्नपति का अर्थ अन्न का स्वामी होता है अन्नपति सूर्य, अग्नि तथा शिव माने गये हैं। अन्नपति शब्द उस देवता के लिये प्रयोग किया जाता है, जिसके कारण अच्छी कृषि होती है। शुक ने अन्नराज (२ : ९९) का उल्लेख किया है। वहाँ वर्णन किया गया है कि वह दुर्भिक्ष असुर से युद्ध कर रहे थे। काश्मीर के गीतों तथा उक्तियों में 'शुचिराज' का नाम अच्छी कृषी के देने वाले के रूप में आता है। शुचिराज शब्द संस्कृत सुभिक्षराज का अपभ्रंश है।

श्लोक ७२–१२० तक सुय्य की जल योजना का वर्णन है। जिसके पूर्ण होने पर अन्न का भाव सस्ता हो गया था। (रा:० ५ : ११६)

(२) सुय्य : सुय्य के नाम पर सन् १९६१ में काश्मीर सरकार ने जल, मिट्टी निकालने के लिए सुय्य ड्रेजर खरीदा है। इस कार्य का उद्घाटन ऊलर लेक में पं० जवाहरलाल द्वारा हुआ था।

सुय्य ने झेलम का प्रवाह परिवर्तित कर दिया था। सिन्ध नदी-झेलम का संगम शादीपुर ग्राम के समीप है। झेलम की पुरानी धारा दक्षिण तरफ मालिकपुर ग्राम की तरफ थी। वहाँ वह एक उपत्य-का में मिलती है। वहाँ का बदरीहेल नाला झेलम का वास्तविक पुराना स्रोत था। बदरी हेल नाला के ऊपर ऊँची समभूमि पर ललितादित्य की प्राचीन राजधानी प्राचीन परिहासपुर था। उस समय परि-हासपुर झेलम के तट पर था। परन्तु इस समय झेलम से लगभग दो मिल दूर स्थित है।

राजा जयापीड द्वारा आठवीं शताब्दी में स्थापित जयपुर राजधानी वर्तमान अन्तरकोट ग्राम स्थान पर बनायी गयी थी। वह सम्पोल से बहुत दूर नहीं है। वह भी जयापीड के समय झेलम के तट पर थी। झेलम के तट पर सुख ने बयालीस मील लम्बा बांध बनवाया था। ऊलर लेक से जल नदी में न आए इसलिए एक बाँध का भी निर्माण कराया था। इस योजना से नीची जमीन में कृषी योग्य भूमि ऊलर लेक के दक्षिण जिसके मध्य में झेलम की पुरानी धारा थी। निकल आयी थी। इस क्षेत्र में ग्राम भी आबाद किए गए। ग्रामों के चारों तरफ दीवाल बनाई गयी ताकि जलसे उनकी रक्षा की जा सके। इस दीवाल को कुण्डल कहते हैं। इस प्रकार के गाँव ऊलर लेक के दक्षिण दिखाई पड़ते है। उनका नाम आज भी उत्सकुण्डल, मरकुण्डल आदि है।

यस्याविज्ञातसंभूतेस्तुर्ये कालेऽपि निश्चितम् ।
अयोनिजत्वं कृतिनश्चरितैर्भुवनाद्भुतैः ॥७३॥

७३. उस कृती का जन्म अज्ञात था किन्तु भुवनाद्भुत चरित्रों से चतुर्थ युग (कलि) में भी उसका अयोनित्व निश्चित हुआ।

पुरा रथ्यारजःपुञ्जं संमार्जन्ती पिधानवत् ।
सुय्याभिधाना चण्डाली मृद्भाण्डं प्राप नूतनम् ॥७४॥

७४. सुय्या नाम्नी चाण्डाली ने जो कि रथ्या पर रजःपुंज सम्मार्जित कर रही थी, ढका हुआ, नूतन मृत्तिका पात्र प्राप्त किया।

तस्मिन्पिधानमुद्धृत्य साऽपश्यन्मध्यशायिनम् ।
बालं कमलपत्राक्षं धयन्तं स्वकराङ्गुलीः ॥७५॥

७५. उसने पिधान हटाकर. उसमें देखा—'एक कमलपत्राक्ष बालक अपनी करांगुलियों का पान करते हुए, मध्य में सोया है।'

मात्रा कयापि त्यक्तोऽसौ सुन्दरो मन्दभाग्यया ।
अथेति चिन्तयन्त्यासीत्सा स्नेहात्प्रस्नुतस्तनी ॥७६॥

७६. किसी मन्दभागिनी माता ने इस सुन्दर बालक को त्याग दिया है, यह सोचते हुए, स्नेह से उसके स्तन प्रस्नुत हो उठे (स्तन से दुग्ध क्षरित हो उठा)।

अदूषयन्त्या स्पर्शेन धात्र्याः शूद्रस्त्रियो गृहे ।
तया विहितवृत्तिः स शिशुर्वृद्धिमनीयत ॥७७॥

७७. उसने स्पर्श से बिना दूषित किये धात्री शूद्र स्त्री के गृहवृत्ति का प्रबन्ध कर, उस शिशु को प्रवर्धित किया।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७३ में 'स्तुर्ये' के लिये 'चतुर्थे युगे' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

७३ (१) युग : कृत (सत), त्रेता, द्वापर, तथा कलियुग। कृत युग १७,२८,००० वर्ष, त्रेता १,९६,०००, द्वापर ८,६४,००० कलि ४,३२,००० वर्ष मान है। ८,६४,००,००० वर्षो का ब्रह्मा का एक दिन एवं रात होता है। सत्ययुग में मनुष्य का जीवन काल ४०००, त्रेता में ३००० वर्ष, द्वापर में २००० वर्ष परन्तु कलियुग में कुछ समय निश्चित नहीं है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७४ में 'सुय्याभि' का पाठभेद 'पूयाभि' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७७ में 'यन्त्या' का पाठभेद 'यन्त्याः' मिलता है।

स सुय्यनामा मतिमान्प्रवृद्धः शिक्षिताक्षरः ।
कस्याप्यासीद्गृहपतेरर्भकाध्यापको गृहे ॥७८॥

७८. सुय्य नाम से अभिहित वह प्रवृद्ध शिक्षिताक्षर और किसी गृहपति के गृह में बाल अध्यापक हो गया ।

व्रतस्नानादिनियमैस्तं सतां हृदयंगमम् ।
गोष्ठीषु विशदप्रज्ञं विदग्धाः पर्यवारयन् ॥७९॥

७९. व्रत स्नानादि नियमों से सज्जनों के लिये हृदयंगम विमल बुद्धि, उसे गोष्ठी में विदग्ध (जन) घेरे रहते थे ।

तेषां कथाव्यवस्थासु निन्दतां जलविप्लवम् ।
धीरस्ति मे निरर्थस्तु किं कुर्यामिति सोऽब्रवीत् ॥८०॥

८०. जलविप्लव की निन्दा करते हुए उन लोगों की कथा गोष्ठी में कहा—(इसे दूर करने की)—'मुझे बुद्धि है, किन्तु अर्थहीन (मैं) क्या करूँ ?'

पादटिप्पणी :

८० : सूक्ति संग्रह का १६८ वां श्लोक हैं ।

(१) जल विप्लव : वितस्ता नदी में बाढ़ आई थी उस समय मैं संगम स्थान पर पहुँचा था । यह स्थान श्रीनगर से लगभग १२ मिल दूर है । गुरेज ६२ मिल दूर है । काश्मीर में १९४७ के पूर्व यहाँ के लिए कच्ची सड़क थी । श्रीनगर से लगभग ५ मिल दूर पर बारहमूला श्रीनगर सड़कसे गुरेज के लिए सड़क फूटती है । यह सड़क पक्की अलकतरा की बन गई है । नवीन है । इसके दोनों ओर विलों के वृक्ष लगाए गये हैं जो बढ़ जाने पर सुन्दर वृक्षावली की शोभा बढ़ाएगें क्योंकि श्रीनगर बारहमूला की सड़क पर सफेदा वृक्षों की अवली है वह विश्व की एक अनुपम छटा उपस्थित करती है । विलों के बढ़ जाने पर वह सड़क भी अपनी दृश्यावली में लिए प्रसिद्ध होगी ।

वितस्ता सिन्धु संगमपर पहुँचने के लिए इसी सड़क से शादीपुर ग्राम पहुँचना चाहिए । वहाँ नावें मिलती हैं । उनसे पार जाना बहुत सरल है। शादीपुर के पास एक छोटी सड़क दाहिने तरफ़ मिलेगी उसस वितस्ता घाट की सीढ़ियों तक पहुँचा जा सकता है ।

यहाँ पर पहले नोर नाला पर झूलन पुल था । उसके स्तम्भ अभी तक खड़े हैं । पुल के दोनों खम्भों के बीच मिट्टी के बाँध से बाँध दिया गया है। इसलिए नाला का जल अब वितस्ता में नहीं जाता बल्कि उसे फेर दिया गया है । नाला उत्तर पश्चिम से बहता आता है ।

स्तीन ने जब इस स्थान को देखा था उस समय और आज में अन्तर है । प्रायः तत्कालीन दृश्य बदल गया है । नाव से उस पार पहुँचने पर प्राचीन मन्दिर अथवा उनके ध्वन्सावशेष संगम पर नहीं मिलते । संगम स्थान पर जल के मध्य एक खुला शिव लिंग चिनार वृक्ष के नीचे ऊँचाई पर बना है । वह चौकोर चौतरा है । चिनार मैं समझता हूँ २ सौ वर्ष पुराना होगा तट पर २ मन्दिर हैं । एक पूर्णतया नवीन सन् १९४९ में बना है । इसे ऋषी भट्ट सुम्बली ने निर्माण कराया है। मन्दिर बहुत छोटा है उसमें शिव लिंग है । ग्राम में पांच चार ब्राह्मणों की आबादी है । मन्दिर के तटपर चिनार के वृक्ष लगे हैं । शादीपुर वाले तट तथा सिन्धु नदी के तटों पर विलों के पेड़ों के बगीचे हैं ।

उन्मत्तस्येव वदतस्तस्य तन्नियमाद्वचः ।
निशम्य भूभृच्चारेभ्यश्चिरमासीत्सविस्मयः ॥८१॥

८१. उस नियम से प्रमत्त के समान कहते हुए; उसकी बात गुप्तचरों से सुनकर, भूभृत् चिरकाल विस्मित रहा।

ततस्तमानीय नृपः किं ब्रूष इति पृष्टवान् ।
धीरस्तीत्यादि राजाग्रेऽप्यवोचत्सोप्यसंभ्रमः ॥८२॥

८२. तदनन्तर नृप उसे लाकर (बुलाकर), इस प्रकार पूछा—'क्या कहते हो[१]' राजा के समक्ष भी उसने निर्भयता पूर्वक कहा—'बुद्धि है इत्यादि'—

वातूलोऽसाविति निजैरुक्तोऽप्यथ महीपतिः ।
धियं दिदृक्षुर्विदधे तस्यायत्तं निजं धनम् ॥८३॥

८३. 'यह वातूल है'—ऐसा लोगों के कहने पर भी महीपति ने बुद्धि देखने की इच्छा से, उसके आधीन अपना धन किया (उसे अभीप्सित धन प्रदान किया)।

वितस्ता-संशोधन

कोशाद्दीन्नारभाण्डानि बहून्यादाय हेलया ।
ययौ मडवराज्यं स नावमारुह्य रंहसा ॥८४॥

८४. वह हेला पूर्वक कोश से दीनारों के बहुत (से) भाण्ड लेकर, जल्दी से नाव पर आरूढ़ होकर, मडव राज्य[१] गया।

मैंने यहाँ के पण्डित से बहुत पूछा कि पुराने खड़हर आदि कहाँ हैं। परन्तु वह बताने में असमर्थ रहा। केवल एक ऊँचा ढूहा पर एक मन्दिर का ध्वन्सावशेष मिलता है। वह चौकोर चबूतरा है। कोई मूर्ति नहीं है। उसके मध्य में एक शहतूत का पेड़ लग गया है। मन्दिर के बाहर उसके अहाता में गाँव वालों ने पाखाना बनवा लिया है। तट से इस मन्दिर अथवा ध्वंस स्थान तक जाने के लिए दो खेतों के बीच ४ फिट चौड़ा मार्ग छूटा है। उसमें गाँव वालों ने इतना मल किया था कि जाना कठिन हो गया था। यह स्थान श्री श्यामलाल दर के नाम से कागजों में इन्दराज है। चारों तरफ मुस्लिम आबादी है। दाह संस्कार के पश्चात् यहाँ हिन्दू अस्थि विसर्जन करने आते हैं और स्थान को प्रयाग तुल्य पवित्र मानते हैं। यहाँ प्राचीन वर्णित योगीश्वर का मन्दिर तथा उसका अश्मावशेष नहीं मिलता। कुछ दूर उत्तर गयपूर स्थान है जिसे गया तीर्थ कहते हैं। स्थान का जो भी कुछ गौरव पूर्व काल में रहा अब कुछ शेष नहीं है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ८२ में 'संभ्रमः' का पाठ भेद 'संभवः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

८४ (१) मडव राज्य : वर्तमान मराज क्षेत्र है। क्षेमेन्द्र ने भी लोक प्रकाश में 'मराज' नाम का उल्लेख किया है—'मध्यं मराजमित्युक्तं ग्रामपञ्चसहस्रकम् ।' (पृष्ठ ७७)

काश्मीर में नावें परिवहन तथा यात्रा की बहुत बड़ी साधन थीं जिस प्रकार आज है। नाव की

ग्रामे तत्र प्रवृद्धाम्बुनिमग्ने नन्दकाभिधे ।
एकं निक्षिप्य दीन्नारभाण्डं व्यावर्तत द्रुतम् ॥८५॥

८५. वहाँ प्रवृद्ध जल में निमग्न नन्दकारण्य[1] ग्राम में एक दीनार भाण्ड निक्षिप्त कर द्रुत गति से परावृत हुआ ।

सत्यं वातूल एवासौ सभ्येष्वपि वदत्स्वपि ।
वार्तां निशम्य तां राजा तन्निष्ठान्वेषकोऽभवत् ॥८६॥

८६. 'वास्तव में वह वातूल ही है' सभ्यों के कहने पर भी उस वार्ता को सुनकर राजा उसकी निष्ठा की खोज करने लगा ।

क्रमराज्यं स संप्राप्य देशे यक्षदराभिधे ।
अञ्जलिभ्यां निचिक्षेप दीन्नारान्सलिलान्तरे ॥८७॥

८७. उसने क्रम राज्य[1] पहुँच कर, यक्षदर[2] अभिध (नामक) देश में सलिल मध्य अंजलियों से दीनार निक्षिप्त किये ।

यात्राओं का इतिहास में प्रचुर प्रमाण मिलता है । द्रष्टव्य : रा० ७ : ३४, ७१४, १६२८) ।

पादटिप्पणी :

८५ (१) नन्दक : इसका उल्लेख पुनः (रा० : ५ : १०८) किया गया है । पुराणों की मान्यता के अनुसार कश्यपवंशी प्रधान नाग था । जिसका निवास तृतीय तल में था । (ब्रह्मा० : २ : २० : ३०) श्री कृष्ण के खड्ग का भी नाम है । भगवान् विष्णु ने जरासंध के मथुरा आक्रमण काल में श्रीकृष्ण को दिया था (भाग० : १० : ११) ब्रह्मा के चार शिष्यों में एक का नाम नंदक था । (वायु० : २२ : १६) द्रष्टव्य : उद्योग : १०३ : ११ आदि : १८५ : ३; भीष्म ६४ : १५ अनु० : १४७ : १५) यह यहाँ स्थानवाचक शब्द है । इस स्थान का ठीक पता नहीं चलता । नाम साम्यता के कारण इसे नंदी नहर से सम्बन्धित किया जा सकता है । विसाऊ (विशोका) नदी से यह नहर निकलती हैं । कैमुह ग्राम के ऊपर से जाती है । कैमुह ग्राम तक विशोका से नावें चल सकती हैं । अनंत नाग एवं व्रजबोर के समीप विशाऊ एवं वितस्ता की मध्यवर्ती भूमि खण्ड को सींचती है । दोनों नदियों के मध्यवर्ती ग्राम निचली भूमि में है । बाढ़ से रक्षा करने के लिये उनपर ऊँचा बाँध बाँधा गया है । श्रीवमजाई का मत है कि यह नंदी ग्राम विशाऊ नदी पर है । उन्होंने कोई प्रमाण नहीं उपस्थित किया है । वह यह भी लिखते हैं कि जिस पात्र में मुद्रा धन रखकर छोड़ा था । वहाँ का पानी निकल जाने पर वह पात्र दिखायी पड़ने लगा था । (पृष्ठ : १२४) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ८७ में 'दराभिधे' के लिये 'द्यार-गलाख्ये' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८७ (१) क्रम राज्य : वर्तमान कमराज है ।

(२) यक्षदर : वर्तमान द्यारगुल है । यह स्थान खादनपार ग्राम जो नादरमूला के तीन मिल अधो-भाग में है । वहाँ पर एक चट्टानी बाहुमूल है । उसे दयारगुल कहते हैं । वितस्ता के भीतर चला जाता है । वह पर्वत शृंखला का अन्तिम बहिर्वेशन कहा जायगा । वहाँ से वह दक्षिण पूर्व काजी नाग शिखर से नीचा होता चलता है । वितस्ता के दक्षिण तट से संकीर्ण मार्ग बारहमूला से मुजफ्फराबाद

यत्र तीरद्वयालम्बिशैलनिर्लुठिताः शिलाः ।
चक्रुर्वितस्तां निष्पीड्य पयः प्रतिपथोन्मुखम् ॥८८॥

८८. जहाँ पर दोनों ओर तटवर्ती शैल से निलुण्ठित, शिलाओं ने वितस्ता को अवरुद्ध कर, जल प्रतिपथोन्मुख (विपरीतोन्मुख) कर दिया था ।

दुर्भिक्षोपहता ग्राम्या दीन्नारान्वेषिणस्तदा ।
शिलाः प्रवाहादुद्धृत्य वितस्तां समशोधयन् ॥८९॥

८९. दुर्भिक्ष पीड़ित एवं दीनारान्वेषी ग्रामीणों ने प्रवाह से शिलाओं को उद्धृत कर, वितस्ता को संशोधित कर दिया ।

एवं दिनानि द्वित्राणि पयो युक्त्या विकृष्य तत् ।
वितस्तामेकतः स्थानात्कर्मकृद्भिरबन्धयत् ॥९०॥

९०. इस प्रकार दो तीन दिनों में युक्ति पूर्वक, वह जल निकाल कर, कर्मकारों द्वारा एक स्थान पर, वितस्ता को बँधवा दिया ।

जाता था । वितस्ता जल के नीचे एक चट्टान कुछ ऊपर उठी, द्यारगुल के उन्नत भूमि के मूल से जाती है । यहाँ से वितस्ता की धारा प्रथम बार वेगवती होती है । इसके पश्चात् वितस्ता पर्वतीय खड्डों में होकर ध्वनि करते बहने लगती है और नाव चलना समाप्त हो जाता है । वह उछलती कूदती श्वेत फेनिल रूप धारण करती पाकिस्तान में चली जाती है । खादनपार से बारहमूला तक नावें चलती हैं । जल स्थिर प्रवाह रहित रहता है । यदि बारहमूला तथा खादनपार मध्य नदी का तल खोद दिया जाय अथवा वहाँ एकत्रित हुई बालू मिट्टी तथा कंकण, पत्थर हटा दिये जाँय, तो नदी का स्तर नीचा हो जायगा । वितस्ता का जल वेग से निकलने लगेगा । जल निकलने पर अनन्त नाग से बारहमूला तक का जल स्तर निम्न हो जायगा । सुय्य की जल निकालने की योजना में नदी के अधोभाग में यक्षधर या द्यारगुल अन्तिम केन्द्र स्थान माना जायगा ।

यक्षदर का अर्थ यक्ष की दरार भी लगाया गया है । दर का अर्थ दरवाजा किंवा द्वार भी होता है । गुल समान वाचक अर्थ गल भी होता है । गल का अर्थ दरवाजा किंवा द्वार अथवा खुलता प्रवेश, द्वार का अर्थ विवर होता है । पर्वतीय क्षेत्रों में गली शब्द संकीर्ण पर्वतीय मार्ग अथवा दर्रों के लिये व्यवहृत किया जाता है । गोर गली, छोटी गली पीर पन्तसल पर्वत माला के दर्रों के लिये व्यवहृत किया गया है । गुल एवं गली संस्कृत शब्द गल अर्थात् कण्ठ का अपभ्रंश है । दुर्गा गलिका (रा० : २ : ४) । दुर्ग गलिका आदि इसके उदाहरण हैं । द्यार का अर्थ मुद्रा होता है । वह संस्कृत शब्द दीनार का समानार्थक है । गल शब्द यहाँ कण्ठ की उपमा स्वरूप प्रयोग किया गया है । यदि वितस्ता का शरीर उपत्यका में विस्तृत हैं तो उसका कण्ठ या गला वही स्थान है । कण्ठ से जल जैसे मुख द्वारा छोड़ा जाता है उसी प्रकार वितस्ता की धारा यहाँ से संकीर्ण फूत्कार सदृश फेनिल होती अग्रसर होती है ।

पाषाणसेतुबन्धेन सुय्येनाद्भुतकर्मणा ।
सप्ताहमभवद्बद्धा निखिला नीलजा सरित् ॥९१॥

९१. अद्भुतकर्मा सुय्य ने पाषाणमय सेतु[1] बन्धन द्वारा एक सप्ताह में निखिल नीलजा[2] सरिता को बाँध दिया।

अधः प्रवाहं संशोध्य लुठदश्मप्रतिक्रियाम् ।
कृत्वा बद्धैः शिलाबन्धैः सेतुबन्धमपाटयत् ॥९२॥

९२. अध:प्रवाह संशोधन पूर्वक निबद्ध शिलाबन्धों से लुण्ठित होते पत्थरों की प्रतिक्रिया करके सेतु बन्ध उत्पाटित[1] कर दिया।

चिरकालनिरोधेन सोत्कण्ठेवाम्बुधिं प्रति ।
ततः प्रावर्तत जवाद्गन्तुं सागरगामिनी ॥९३॥

९३. चिरकालीन निरोध के कारण, अम्बुधि के प्रति समुत्कण्ठित सी, सागरगामिनी (वितस्ता), सवेग प्रवाहित होने लगी।

जम्बालाङ्का स्फुरन्मीना भूर्बभौ सलिलोज्झिता ।
व्यक्तकार्ष्ण्या सनक्षत्रा निर्मेघेव नभःस्थली ॥९४॥

९४. जम्बाल[1] अंकित एवं स्फुरित मीन वाली सलिलत्यक्ता तथा व्यक्त कालिमामयी भूमि नक्षत्र सहित मेघरहित नभस्थली तुल्य शोभित हुई।

पादटिप्पणी :

९१ (१) सेतुबंधन : प्राचीन काल से ही सेतुबंधन अर्थात् बाँध बनाकर जल की गति नियन्त्रित रखने के लिये जल द्वार बनाया जाता रहा है। (द्रष्टव्य : ५ : १०३, १३० : २३८०)

(२) नीलजा : नील नाग से उत्पन्न सरिता अर्थात् वितस्ता। (द्रष्टव्य पादटिप्पणी रा० : १ : २८)

पादटिप्पणी :

९२ (१) अपाटयत् : उत्पाटित इसका अनुवाद श्री स्तीन ने हटा देना तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने खोल देना लगाया है। श्री ट्रोयर ने भी इस शब्द पर टिप्पणी लिखी है। यहाँ अनुवाद मूल के अति निकट उत्पाटित शब्द से किया गया है। सेतुबन्ध जो निर्माण रचना की सुविधा के लिये लगाया गया था उसे कार्य पूरा होने पर उखाड़ अथवा तोड़ दिया।

पादटिप्पणी :

९४ (१) जम्बाल : पंक, कीचड़, काई तथा सेवार के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यहाँ अर्थ पंक किंवा कीचड़ से है। पानी निकल जानेपर कीचड़ में उज्ज्वल चमकती छोटी छोटी मछलियाँ उछलने लगती हैं। कल्हण ने पंकज किंवा कीचड़ की काली भूमि से नभ-स्थली तथा चमकते नक्षत्रों की तुलना उज्ज्वल चमकती मछलियों से दी है।

श्रीट्रोयर ने उक्त श्लोक की तुलना कालिदास के मेघदूत के श्लोक संख्या ४१ से की है। यद्यपि संख्या उन्होंने वहाँ ३९ दिया है, किन्तु श्लोक एक ही हैं।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥

यत्र यत्र विवेदौघवेधं सलिलविप्लवे ।
तत्र तत्र वितस्तायाः प्रवाहान्नूतनान्व्यधात् ॥९५॥

९५. सलिल विप्लव में जहाँ जहाँ ओघवेध (प्रवाह वेध) जाना, वहाँ वितस्ता के नूतन प्रवाह (नदी गर्भ) बना दिये ।

मूलस्रोतोग्र्यनिष्ठ्यूतभूरिस्रोता बभौ सरित् ।
एकभोगाश्रयानेकफणेवासितपन्नगी ॥९६॥

९६. मूल स्रोत के अग्र से निकले भूरि स्रोतों वाली (शाखा विशिष्ट) (वह) सरित् एक शरीराश्रित अनेक फणोंवाली काली पन्नगी तुल्य शोभित हुई ।

सिन्धु वितस्ता संगम परिवर्तन :

वामेन सिन्धुस्त्रिग्राम्या वितस्ता दक्षिणेन तु ।
यान्त्यौ ये समगंसातां प्राग्वैन्यस्वामिनोऽन्तिके ॥९७॥

९७. त्रिगामी के वाम भाग से सिन्धु[1] एवं दक्षिण से वितस्ता जाती हुई दोनों पहले वैन्य स्वामी[2] के समीप संगम[3] प्राप्त करती थीं ।

सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी ।
तोषोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूविक्लवास्ताः ॥४१॥

पादटिप्पणी :

९७ (१) त्रिगामी : त्रिगामी लारपरगना में है।

(२) सिन्ध : सिन्ध महानद तथा सिन्ध नदी के कारण बड़ा भ्रम उत्पन्न होता रहता है । काश्मीरी में दोनों नदियों में भिन्नता दिखाने के लिये सिन्ध महानद को बड़ा सिन्ध कहते हैं । हरचरित चिन्तामणि में इसे वृद्धसिन्धु कहते हैं । वृद्ध का अर्थ बड़ा होता है । (१२ ; ४५)

(३) वैन्य स्वामी : इस मन्दिर का कौन निर्माता था लिखना कठिन है । परन्तु इतना स्पष्ट है कि मन्दिर कल्हण काल तक वर्तमान था । गाथा है कि राजा वैन्यादित्य ने इसका निर्माण कराया था। वैन्यादित्य का वर्णन कल्हण ने राजतरंगिणी में नहीं किया है । किसने इस मन्दिर का निर्माण कराया था इस पर भी प्रकाश नहीं डालता । काश्मीरी लोगों में वैन्यादित्य राजा की स्मृति आज तक बनी है । वे उसे एक गुणी राजा मानते हैं ।

नीलमत पुराण में वैन्य का उल्लेख मिलता है ।

वैन्येन पृथुना पूर्वं मगधेषु प्रतिष्ठितम् ।
दृष्टेनाप्नोति हि फलं पुण्डरीकस्य मानवः ॥११
63 = १३७४-१३७५॥

मलिकपुर की आबादी के पीछे दक्षिण दिशा में एक ध्वन्सावशेष प्राकार का दिखाई देगा । यह प्राचीन मन्दिर का अधिष्ठान था । इसमें सैय्यद अहमद किरमानी की छोटी सी ज़ियारत है । इसमें अलंकृत मन्दिर के शिलाखण्ड लगे हैं । पूर्व से पश्चिम प्राकार ६८ फिट लम्बा होगा । इस प्राकार के अन्दर स्तीन को जब वह १८९१ में आए थे तो अनेक लिंग, स्तम्भ तथा लिंग के अधिष्ठान आदि मिले थे । स्तीन के मतानुसार यही वैन्य स्वामी का मन्दिर था । वह मन्दिर ऊँची जमीन पर बना था । यह मलिकपुर में है । कल्हण ने उसका होना फूलपुर में बताया है ।

(४) संगम : वितस्ता महात्म में संगम को प्रयाग कहा गया है । वितस्ता सिन्धु संगम शादीपुर गाँव के दूसरी तरफ है । श्रीनगर से १० मील पर स्थित है । शादीपुर शहाबुद्दीनपुर का अपभ्रंश है । शहा-

वर्ततेऽद्य महानद्योः कल्पापायेप्यनत्ययः ।
संगमो नगरोपान्ते स सुय्योपक्रमस्तयोः ॥९८॥

९८. सुय्य के उपक्रमानुसार कल्प क्षय में भी अनश्वर उन दोनों नदियों का वह संगम आज नगर के समीप है ।

अद्याप्यास्तां फलपुरपरिहासपुरस्थितौ ।
विष्णुस्वामी संगमस्य वैन्यस्वामी च तीरयोः ॥९९॥

९९. संगम के दोनों तटपर फलपुर[1] एवं परिहासपुर[2] स्थित विष्णु[3] स्वामी एवं वैन्य स्वामी[4] आज भी हैं ।

सुन्दरीभवनाभ्यर्णप्राप्तस्याद्यतनस्य तु ।
योगशायी हृषीकेशः सुय्यस्याभ्यर्चितस्तटे ॥१००॥

१००. किन्तु सुन्दरी भवन के समीप आज भी तट पर सुय्य अभ्यर्चित योगशायी हृषीकेश विष्णु है ।

वुद्दीन सन् १३५४ में १३७३ ई० तक काश्मीर का बादशाह था । उसने अपने नाम से संगम पर नगर बसाया था । सुय्य के कार्य के पूर्व संगम कहाँ था यह कल्हण के त्रिगामी तथा वैन्य स्वामी के मन्दिर से पता चलता है । प्राचीन त्रिगामी ग्राम वितस्ता के वाम तटपर था । वह शादीपुर से सवा मिल दक्षिण पश्चिम है ।

सुय्य ने नदियों के संगम के जल को नियन्त्रित किया था । विष्णु योगशायी का मन्दिर वितस्ता के पूर्वीय तटपर संगम के पास तारान बाग के समीप है । डोंगरा काल में श्रीनगर के पण्डितराज काकदर यहाँ पर एक मन्दिर बनवाना चाहते थे । स्थानीय समीपवर्ती गया तीर्थ के पुरोहित केवल इतना बता सके थे कि यहाँ विष्णु का मन्दिर था । प्राचीन मन्दिर का प्राकार मिलता है । नवीन मन्दिर में अवन्तिवर्मा के समय का सामान लगाने का प्रयास किया गया है । नीलमत पुराण में उल्लेख है—

गंगा सिन्धु विजनेया वितस्ता यमुना तथा ।
स प्रयागसमो देशस्तयोर्यात्रा तु संगमः ॥

पाठभेद :

श्लोक सं० ९९ में 'अद्याप्या' का पाठभेद 'अध्यप्या' तथा 'अधप्या' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

९९ (१) फूलपुर : आईने अकबरी के अनुसार यह वर्तमान ग्राम शहाबुद्दीनपुर है । यह वितस्ता सिन्धु संगम पर है । फलपुर वितस्ता के पश्चिम-दक्षिण तथा परिहासपुर के उत्तर है । प्राचीन वितस्ता-सिन्धु संगम के दोनों ओर विष्णु स्वामी तथा वैन्य स्वामी के मन्दिर थे । वे कल्हण के समय तक स्थित थे ।

(२) परिहासपुर : द्रष्टव्य : परिशिष्ट : 'परिहासपुर' जोन० : राजतरंगिणी : तथा पादटिप्पणी : रा० : ४ : १९४. क्षेमेन्द्र ने परिहासपुर का उल्लेख किया है । (समयमातृका : २ : ३)

(३) विष्णु स्वामी : यह मन्दिर फलपुर में था । यह मन्दिर पुराने वितस्ता सिन्धु संगम की दूसरी तरफ था ।

(४) वैन्य स्वामी : यह मन्दिर परिहासपुर में था । पुराणों के अनुसार वैन्य राजा पृथु का एक नाम था (भाग : ४ : २३ : १९ : २८)

पादटिप्पणी :

१०० (१) योगशायी हृषीकेश : यह मन्दिर

दृश्यन्तेऽद्यापि सरितां पूर्वस्रोतस्तटोद्भवाः ।
निषादाकृष्टनौरज्जुरेखाङ्का जीर्णपादपाः ।।१०१।।

१०१. सरिताओं के पूर्व स्रोतों के तटोद्भूत जीर्ण पादप निषादों[1] द्वारा निबद्ध, नौका रज्जुओं से रेखांकित आज भी है।

सिन्धु-वितस्ता संगम पर वितस्ता के पूर्व तथा सिन्धु के उत्तर था।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०१ में 'द्भवाः' का 'द्भवः' पाठ-भेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

१०१. (१) निषाद : वर्तमान 'हाजी माजी' = मुस्लिम मल्लाह = विलसन ने उन्हें निम्न जाति का ग्रामीण माना है। (६०) सन् १८११ ई० में लगभग एक शताब्दी पूर्व उनकी जन संख्या चौंतीस हजार थी। पुराण वर्णित निषाद जाति की उत्पत्ति के विषय में अनेक कथायें मिलती हैं। अग्निपुराण के अनुसार एक समय राजा वेणु की जाँघ मथी गयी थी। उसमें से श्याम वर्ण एक मनुष्य निकला। वही निषाद वंश का आदि पुरुष था। मनु के अनुसार ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता से उत्पन्न जाति निषाद हुई। मिताक्षरा में यह जाति क्रूर एवं पापी मानी गयी है। महाभारत के अनुसार यह एक लघु राष्ट्र था। (भीष्म. : ९ : ५१) निषाध को पारियात्र से संबन्धित किया गया है। एक मत है कि निषध नलपुर वर्तमान नरपार जिला शिवपुरी मध्यप्रदेश के निवासी थे। अनुमान लगाया गया है कि रामायण वर्णित शृंगवेरपुर इस राज्य का नगर था। संगीत के सात स्वरो में अन्तिम स्वर जिसका संक्षिप्त रूप 'नी' है। संगीत दर्पण के अनुसार इस स्वर की उत्पत्ति असुर वंश से हुई है। इस स्वर की जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्म स्थान, पुष्कर द्वीप ऋषि तुंवरू, देवता सूर्य एवं छंद जगती है। करुण रस इसके लिये विशेष उपयोगी है। इसका कूट तान ५०४० है। इसका वार शनीवार है। समय रात्रि के अन्त की दो घड़ी चौंतीस पल हैं। इसका स्वरूप गणेश तुल्य माना गया है।

इस जाति का पेशा शिकार, मछली तथा नाव खेना है। काश्मीरी भाषा में उन्हें हांजी कहते हैं। उन्हें मांजी तथा भारत के अन्य स्थानों में माझी मल्लाह, अथवा मछुवा कहते हैं। समाज में उनका स्थान कृषकों से भी नीचा है। हांजी नाव के अतिरिक्त मछली मारने का काम करते हैं। वेद में 'पंच जना' का उल्लेख है। आयु मन्यव के अनुसार चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य एवं शूद्र के अतिरिक्त पांचवाँ वर्ण निषाद था।

निरुक्त के अनुसार निषाद उन्हें इसलिये कहा जाता था कि उनमें पाप का निवास रहता था। यास्क के समय उनकी आदिवासियों में गिनती होने लगी थी। बौधायन धर्मशास्त्र (१ : ९ : ३, २ : २ : ३३) मनु (१० : ८) अनुशासन (४८ : ५) याज्ञः (१ : ९१)। निषाद अनुलोम जाति है। ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता से उनकी उत्पत्ति मानी गयी है। निषाद ही का एक दूसरा नाम परिशव है। मनु ने पारशव शब्द की व्युत्पत्ति दिया हैं। 'पार्व' तथा 'शव' से मिलकर पारशव शब्द बना है। पार का अर्थ नदी पार उतरना होता है। शव का अर्थ लाश है। अर्थात् यह जीवित रहते भी मृतक तुल्य हैं। गौतम ने निषाद एवं पारशव में भेद किया है। (४ : १४) निषाद को उसने ब्राह्मण पिता तथा वैश्य माता तथा पारशव को ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता की सन्तान माना है। नारद तथा उसानास ने निषाद को भंगी पिता

स्फुरत्तरङ्गजिह्वाः स नदीर्मार्गमजिग्रहत् ।
तास्ताः स्वेच्छानुसारेण मान्त्रिकः पन्नगीरिव ॥१०२॥

१०२. स्फुरित होते तरंग रूपी जिह्वा से युक्त तत् तत् नदियों को उसने स्वेच्छानुसार उसी प्रकार मार्ग ग्रहण कराया, जिस प्रकार यान्त्रिक पन्नगी को।

बद्ध्वा शैलमयान्सेतून्वितस्तां सप्तयोजनीम् ।
महापद्मसरोवारि स चकार नियन्त्रितम् ॥१०३॥

१०३. उसने सप्त योजन[1] पर्यन्त वितस्ता को पाषाण मय सेतुओं[2] से बाँधकर, महापद्म सरोवर का जल नियन्त्रित किया।

तथा शूद्र माता की सन्तान माना है। नारद ने पारशव को ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता को सन्तान माना है। उसनस ने उनका कर्म मछली मारना लिखा है। वे भद्रकाली के उपासक होते हैं। शैव आगम का उध्ययन करते हैं। वाद्य बजाते हैं। निषाद लोग ब्राह्मण पिता तथा शूद्र माता से उत्पन्न होते हैं। उनका काम जंगलों में शिकार कर, माँस बेचना होता है।

शान्ति पर्व में उनके शरीर का वर्णन किया गया है। उनके नेत्र रक्त वर्ण तथा केश काले होते हैं (शान्ति० : ५९ : ९६-९७) रामायण में गुह का उल्लेख आया है। उसे निषादों का राजा कहा गया है। (अयोध्या० ५० : ३३) हर्ष चरित में बाण दो पार्शव वन्धु चन्दसेन तथा मातृसेन का वर्णन करता है। तिप्परा ताम्र पत्र में लोकनाथ ने (सन् ६५० ई०) राजा के मामा केशव को पारशव लिखा है। वायु पुराण में उल्लेख मिलता है कि निषाद श्याम वर्ण तथा नाटे कद के होते हैं। राजा वेणु के वाम हस्त से उनकी उत्पत्ति हुई है और वे विन्ध्य पर्वत में निवास करते हैं। भागवत में निषादों के शरीर का वर्णन किया गया है। निषाद कौआ के समान श्याम वर्ण, नाटा कद, दबी नाक, लाल नेत्र तथा केश युक्त, पर्वत तथा वनों में निवास करते हैं। (वायु० : २ : १ : १२०–१२१, भा० ४ : १४ : ४३)

पुराण की मान्यता के अनुसार यह एक अनार्य जाति है। राजा वेन की जंघा मथी गयी तो उसमें से एक नाटा तथा काला व्यक्ति प्रकट हुआ। वह अत्यन्त व्याकुल था। उसे व्याकुल देखकर अत्रि मुनि ने कहा 'निषीद' अर्थात् बैठ जाओ। (भा० : ४ : १४ : ४५–४६ विष्णु० : १३ : ३५–३६) और एक कथा मिलती है। प्रजापति निषाद ने एक सहस्र देव वर्षों तक कठिन तपस्या की। तपत्रस्त देखकर इनके पिता ब्रह्मा ने कहा। 'निषीद' बैठ जाओ। अतः निषाद नाम पड़ा (वायु० : २१ : ४३) निषाद नाम का एक भारतीय जनपद भी था। (भीष्म० : ९ : ५१)

(२) रज्जुरेखा : घाट किंवा तटपर नावें डोरियों या रस्सियों से बाँध दी जाती है। विल्सन ने अनुमान लगाया है कि रज्जु अर्थात् डोरी या रस्सी का तात्पर्य झूला सेतु की डोरियों या रस्सों से लगाया जा सकता है। (पृष्ठ ६०) वृक्ष सबसे अधिक बाँधने के लिये सुविधा की दृष्टि से उपयोगी होते हैं। बड़ी-बड़ी नावें आज भी नदियों के तटपर वृक्षों से बाँध दी जाती हैं। यही काम लंगर तथा खूँटा गाड़कर लिया जाता है। जहाँ वृक्ष, लँगर एवं खूँटा का अभाव होता है, वहाँ शिला खण्ड डोरियों में बाँधकर तटपर रख दिये जाते हैं अथवा लँगर की तरह उन्हें जल में छोड़ दिया जाता है। कल्हण यहाँ पर वृक्षों में नावों की रस्सियों के बाँधने से रगड़ के कारण उत्पन्न हुए चिह्न की ओर लक्ष्य करता है। किसी भी नदी के तटपर जहाँ नावें वृक्षों के तनों से बाँध दी जाती है, इस प्रकार के चिह्न पड़ जाते हैं।

पादटिप्पणी :

१०३ (१) योजन : एकमत से योजन की

महापद्मसरःकुण्डाद्वितस्ता येन योजिता ।
जवान्निर्याति कोदण्डयन्त्रादिषुरिवाध्वना ।।१०४।।

१०४. जिससे संयुक्त होकर, वितस्ता महापद्म सर कुण्ड से उसी प्रकार मार्ग पर सवेग जाती है, जिस प्रकार धनुष से (छूटा) बाण[1] ।

लम्बाई ४००० हाथ मानी जाती थी। दूसरा मत है कि ८ मिल किंवा चार कोस का योजन होता है। तीसरा मत है कि योजन नव मील का होता है। प्राचीन मान्यता के अनुसार २४ अंगुल का एक हस्त; ९६ अंगुल का एक धनु०, २००० धनु० की एक गव्यूती : तथा ८००० धनु का योजन होता था। दूसरे मत के अनुसार ४ हस्त का एक धनु; २००० धनु का एक क्रोश, ४ क्रोश की एक गव्यूती; होती है। चार क्रोश का ही योजन माना गया है। एक क्रोश दो मील का होता है।

(२) सेतु। यहाँ पर बाँध का अर्थ है। कल्हण ने स्थान का नाम नहीं दिया है। किस स्थान से किस स्थान तक पाषाण मय सेतु सुय्य ने निर्माण कराया था। महापद्म सर जल को नियन्त्रित कर दिया था। इस उल्लेख से प्रकट होता है। बान्ध महापद्म सर (ऊलर लेक) के ऊर्ध्व दिशा में बाँधा गया था। सात योजन बान्ध ऊलर लेक के ऊर्ध्व दिशा में बाँधा गया था। श्री ड्रयू ने अनुमान लगाया है। ऊलर लेक से खानवल तक जहाँ नाव सुविधापूर्वक चल सकती है, पाषाण सेतु किंवा वान्ध का निर्माण वितस्ता की धारा नियन्त्रित करने के लिये तटों पर किया गया था। यह लम्बाई बावन मील होगी। जो सात योजन परिमाण इतना हो जाती है। मैं वितस्ता तट पर भ्रमण कर चुका हूँ। आज भी बाँध बाँधे नये मिलते हैं। उनसे जल उफन कर तटीय क्षेत्रों को डुबोता नहीं। बाँध पुराना है। उनकी मरम्मत समय-समय पर की जाती है।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०४ में 'र्याति' का पाठभेद 'र्यान्ति' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१०४ (१) वाण : कल्हण ने उत्तम उपमा दी है। बाँध न रहने पर वितस्ता का जल अनियन्त्रित रहने के कारण दोनों ओर तटों पर फैल जाता था। धारा में गति किंवा वेग नहीं दिखायी पड़ता था और न जल आता था। जल बढ़ते ही वह तटीय तालों, स्रोतस्विनियों, कुल्याओं, सरोवरों को भरता, भूमि पर फैल कर, विशाल सागर समान लगता था। परन्तु दोनों तटों पर पाषाण बाँध बनवा देने के पश्चात् जल एवं धारा नियन्त्रित हो गयी थी। वह बाहर न फैलकर दोनों तटों पर बने बाँधों के बीच सवेग प्रवाहित होने लगी। जैसे आजकल नियन्त्रित नहरों का जल सवेग चलता रहता है। धारा में छूटे वाण के समान तीव्रता आने का दो परिणाम हुआ। पहला फल तो जल प्लावन से क्षेत्र तथा भूमि बच गयी। नदी का जल दोनों तटों पर फैलने नहीं लगा। दूसरा फल हुआ कि धारा की तीव्रता के कारण नदी का गर्भ जो बालू, कंकड़, पत्थर आ जाने के कारण पट कर नदी का पेटा अथवा तल ऊपर उठा देता था, वह स्वतः साफ होने लगा। नदी छिछली न होकर, गहरी हो गयी और पर्याप्त जल खींचती ऊलर लेक में मिलती थी।

कोदण्ड यन्त्र शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। कोदण्ड निस्सन्देह धनुष होता है। यन्त्र मानो धनुष के बनावट के कारण उसे यन्त्र की उपमा कल्हण ने दी है। मध्य काश्मीर युग में धनुषाकार तुल्य एक क्षेपण आयुध होता था। उससे बाण या उस पर रख कर, बाण सदृश अस्त्र द्रुत गति से छूटता था।

विलसन ने कुण्ड का तात्पर्य नील नाग अथवा

उद्धृत्य सलिलादुर्वीमेवमादिवराहवत् ।
अनेकजनसंकीर्णान्ग्रामान्नानाविधान्व्यधात् ॥१०५॥

१०५. उस प्रकार आदि वराह सदृश सलिल से पृथ्वी का उद्धार कर अनेक जनाकीर्ण नाना विध ग्राम निर्मित किया।

पालीभिरम्भः संरोध्य यान्कुण्डसदृशान्व्यधात् ।
कुण्डलानीति सर्वान्नसमृद्धान्ब्रुवते जनः ॥१०६॥

१०६. पालियों से जल निरुद्ध कर, कुण्ड सदृश जिन्हें निर्मित किया था सर्वान्न समृद्ध उन्हें (आज) लोग कुण्डल कहते हैं।

वेरी नाग कुण्ड से लगाते हैं। जो वितस्ता का उद्गम माना जाता है। विल्सन से फोरस्टर को उद्धृत किया है। (भाग २ : पृष्ठ ४) फोरस्टर का मत है कि जहाँगीर ने कुण्ड बनवाया था। किन्तु अबुलफजल ने स्वयं वीर नाग को देखकर लिखा है—'वीसर वेहूत नदी का उद्गम स्थान है। यह कुण्ड एक जरीब होगा। उससे जल अद्भुत वेग से शोर करता निकलता है। स्रोत को वीरनाग कहते हैं। इसमें चारो ओर पत्थर लगे हैं और पूर्व की ओर मन्दिर है।' (आइने अकबरी : २ : १५५)

पादटिप्पणी :

१०५ (१) आदि वाराह : कल्हण सुय्य की उपमा आदि वाराह से देता है। भगवान् ने वाराह रूप धारण कर, पृथ्वी का समुद्र से उद्धार किया था। जलविहीन पृथ्वी जलाकीर्ण हो गयी थी। गाँव आबाद हो गये थे। खेती होने लगी थी। समृद्धि चारों ओर दिखायी पड़ने लगी थी। यही रूप सुय्य की योजना के कारण परिलक्षित होने लगा। जल में डूबी रहने वाली भूमि ऊपर निकल आयी। निर्जन स्थान जनाकीर्ण हो गया। गाँव आबाद हो गये। चहल-पहल दिखायी पड़ने लगी।

पादटिप्पणी :

१०६ (१) कुण्डल : कान में पहने जाने वाले आभूषण को कुण्डल कहते हैं। कुण्डल वृत्ताकार, मकराकृत अनेक प्रकार के होते हैं। हरवान में निकली मिट्टी की मूर्तियों के कानों में बड़े-बड़े कुण्डल अर्थात् बालियाँ झूलती दिखायी गयी हैं। यह शब्द महत्त्वपूर्ण है। मैं मेवाड़ में हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड सरकारी संस्थान का अध्यक्ष बना तो भ्रमण किया। उदयपुर से अहमदाबाद जाने वाले राजपथ पर कुण्डल लिखा मुझे मिला। वे पहाड़ी गाँव थे। मुझे काश्मीर की याद आ गयी। काश्मीर में जल की बाढ़ से रोककर के ग्राम 'कुण्ड' के समान बनाये गये थे। इस प्रकार के नवीन निकले गाँवों को जहाँ खूब कृषि तथा उपज होती थी ग्रामीण कुण्डल कहने लगे।

ऊलरलेक के दक्षिण दलदलीय भूमि कृत्रिम बान्धों से घेर कर ग्रामों तथा उपजाऊ खेतों में परिणत कर दी गयी है। उनका रूप कुण्ड जैसा लगता है। इस प्रकार दो गाँव उत्तसकुण्डल, मर कुण्ड, वितत्सा के वाम तट के समीप ही हैं। वे अपना पुराना नाम रक्षित रखे हैं। शुय्य की योजना के सफल प्रमाण हैं। कल्हण ने सुय्य कुण्डल का उल्लेख (रा० : ५ : १२०) किया है। जोनराज ने सुय्य कुण्डल (जोन० ९४४) तथा जैन कुण्डल का उल्लेख (जोन० ९५०) किया है। गोल किंवा वृत्ताकार वस्तु के लिये काश्मीर में अब भी कुण्डल शब्द का प्रयोग किया जाता है। कांगड़ी के भीतर रखे हुए मृत्तिका पात्र को कुण्डल कहते हैं।

कुण्डल कूट, कुण्डलगिर, कुण्डलपुर, कुण्डल द्वीप कुण्डला आदि नाम प्रचलित हैं। कुण्डल गिर

उत्खातकीलनिवहान्नद्योऽद्यापि शरत्कृशाः ।
व्यञ्जन्ति जलगन्धेभबन्धनस्तम्भसंनिभान् ।।१०७।।

१०७. आज भी शरद् (में) कृश नदियाँ जलीय गजों के बन्धन स्तम्भ सन्निभ उत्खात-कील निबहों को व्यंजित करती हैं।

दीन्नारभाण्डानौज्झीत्स यदगाधजलान्तरे ।
नन्दके निर्गतजले स्थलान्तात्तदलभ्यत ।।१०८।।

१०८. उसने अगाध जल मध्य जिन दीनार भाण्डों को उज्झित किया (छोड़ा) था, वह नन्दक (ग्राम) का जल निर्गत हो जाने पर, स्थल से संप्राप्त हुआ।

सुय्य की सिंचाई व्यवस्था :

अदेवमातृकान्ग्रामान्परीक्ष्य विविधाः क्षितीः ।
संविभेजे विभक्तेन नादेयेन स वारिणा ।।१०९।।

१०९. विविध भूमियों की परीक्षा[1] करके अपर्याप्त वृष्टि वाले (अदेवमातृका)[2] ग्रामों में विभक्त नादेय जल[3] पहुँचाया।

कुण्डलाकार पर्वत है। उसी कारण कुण्डलगिर नाम पड़ा है। काश्मीर में गोली बालियाँ कान में पहनी जाती थीं। यह आम रिवाज प्राचीन काल में था और अब भी है। हरवान से निकले मिट्टी की पकी टाइल्स पर एक सुन्दर पुष्ट स्त्री के कानों में गोली बालियाँ पहनी दिखायी गयी हैं। कुण्डल वृत्ताकार होता है। यहाँ पर भूमि में बने कुंड भी वृत्ताकार होते हैं। यही कारण है कि इस प्रकार के स्थानों का नाम काश्मीर तथा मेवाड़ दोनों स्थानों पर कुण्डल मिलता है।

पादटिप्पणी :

१०७ भावार्थ : शरद काल में नदी का जल जब घट जाता था, उस समय जल से ऊपर निकले नदियों में गड़े खड़े खम्बे जल हाथियों के बान्धने वाले खूटों की तरह लग रहे थे।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०८ में 'भाण्डानौ' का पाठभेद 'भाण्डान्नौ' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१०८ (१) नन्दक ग्राम = पीरहसन एक दूसरा किस्सा लिखता है—शदीद जलजला वाका हुआ। खादनपार से पहाड़ का एक टुकड़ा लुढ़क गया। और दरयाये बेहुत के पानी को रोक कर, वेज-वारह की हद्द तक सैलाव कर दिया। राजा ने पानी को निकालने और सूराख को खोदने के लिये सुय दाना का जो उसके वज़ीर वज़रा में से था भेजा। उसकी हुए हुस्न तदवीर से आदमियों ने पत्थर पानी की निकलने के जगह से निकाल लिये। यहाँ तक कि सैलाव चला गया।' (पृष्ठ ९४) पीरहसन ने किसी आधार ग्रन्थ का नाम नहीं दिया है। उसका यह वर्णन अविश्वसनीय है। खादनपार स्थान मैंने स्वयं कई बार देखा है। वहाँ यदि पहाड़ टूटकर गिर जाय तो साधारण आदमियों से वह नहीं हटाया जा सकता।

पादटिप्पणी :

१०९ (१) भूमि परीक्षा = आधुनिक काल के समान उस समय भी भू परीक्षा की व्यवस्था सुय्य ने प्रचलित की था। स्वायल टेस्टिंग आजकल सरकारी विभाग कृषि योजना से सम्बन्धित है। इस-राइल में जहाँ अधिक भूमि मरुस्थल है, जल का अत्यन्त अभाव है। वहाँ पर भू परीक्षण विशेष विषय

असिञ्चच जलैर्ग्रामान्ग्रामान्मृदमुपाहृताम् ।
या यावता क्षणेनागाच्छोषं तां तावता हृदि ॥११०॥

११०. ग्राम ग्राम में आनीत (उपहृत—लायी गयी) मृत्तिका अभिसिंचित किया—जो (मिट्टी) जितने समय में शुष्क हुई उसे उतने समय में—

कालेन मत्वा सेकार्हां प्रतिग्रामं जलस्रुतेः ।
परिमाणं विभागं च परिकल्प्य निरत्ययम् ॥१११॥

१११. सेक योग्य हृदय में निश्चित कर, प्रतिग्राम के लिये जल का सुरक्षित परिमाण एवं विभाग परिकल्पित करके—

बन गया है। ओस से भी कितना जल किस फसल के लिये प्राप्त किया जा सकता है, इसका भी परीक्षण कर लिया गया है। मैं अपनी इसराइल यात्रा में वहाँ के वैज्ञानिकों के कार्य से बहुत प्रभावित हुआ था। वहाँ यहाँ तक किया गया है कि कुछ पौधों के चारों ओर पत्थर के ढोंके रख देते हैं। उनसे नमी पौधों मे पहुँच कर उन्हें जीवन दान देती है। सुय्य ने भी सब प्रकार की भूमि का कहाँ कितने जल की आवश्यकता है और कितने दिन पश्चात् होगी, इसका परीक्षण पुराने ढंग से किया था।

(२) अदेवमान्तृका : वर्षा जल पर ही जो भूमि उपज के लिये केवल निर्भर रहती है, उसे देव मातृका तथा जहाँ सिचाई पर खेती निर्भर रहती है उसे अदेवमातृका कहते हैं।

(३) जल : शाली उपज के लिये पर्याप्त जल की आवश्यकता होती है। प्राचीनकाल से ही शाली के उत्पादन के लिये पर्वतों की ढालुआ भूमि पर बने सीढ़ी नुमा खेतों, पर्वत के मूल में समथर बनाई भूमि, तथा अन्य क्षेत्रों में, पर्वत मूल से निकलने वाली स्रोतस्विनियों अथवा ऊपर से आते निर्झर के जल को नियन्त्रित कर नहरों का जाल बना दिया गया था। लारेन्स ने अपनी पुस्तक 'वैली' में इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला है (पृष्ठ ३२३) अनेक नहरें तथा उपनहरें जो लिदर, अरपट, सिन्ध तथा अन्य स्रोतस्विनियों से निकाली गयी हैं, वे सूखे मैप में दिखायी गयी है। प्राचीन काल में एक एक इंच भूमि जोती गयी थी। वहाँ जल पहुँचाने की व्यवस्था थी। परन्तु मध्य युग में राजनीतिक उथल-पुथल तथा धर्म परिवर्तन, सामाजिक ढाँचा बिगड़ने के साथ पुरानी परम्परा एवं व्यवस्थाओं के प्रति उदासीनता तथा उपेक्षा होने के कारण जल योजनाएँ उपेक्षित हो गयीं। मन्दिर भंग करने, लोगों को धर्म विशेष में परिवर्तित करने के उन्माद में रचनात्मक कार्य पीछे पड़ गये। मार्ग से पानी लाने की व्यवस्थायें सर्वथा बन्द हो गयी, जिनसे बर्फ गलने के कारण जल आता था। पुरानी नहरें स्वर्ण मणि कुल्या (सुनमन कोल) नन्दि कुल्या आदि वन्द हो गयी। तोष मैदान तथा ग्रतवथ स्थान जो वूलर तथा सिन्ध उपत्यका के मध्य में थे, उनकी सिंचाई व्यवस्था विशृंखलित हो गयी। स्वाधीनता मिलने के पश्चात् पुरानी नहरों, कुल्याओं तथा कुण्डों का पुनः जीर्णोद्धार किया गया है। उनका उपयोग इस समय व्यापक रूप से किया जा रहा है। काश्मीर में शताब्दियों के पश्चात् पुनः समृद्धि के दर्शन हुए हैं।

चकार चानूलाद्याभिः सिन्धुभिः सर्वतो दिशः ।
सत्फलोदारकेदारसंपत्संपन्नविभ्रमाः ॥ तिलकम् ॥११२॥

११२. अनूला[1] आदि सिन्धुओं से सभी दिशाओं को सत्फल में सुन्दर केदार[2] सम्पत्ति सम्पन्न विभ्रम (शोभा) युक्त कर दिया ।

न कश्यपेनोपकृतं न यत्संकर्षणेन वा ।
हेलया मण्डलेऽमुष्मिंस्तत्सुय्येन सुकर्मणा ॥११३॥

११३. इस मण्डल में कश्यप[1] एवं संकर्षण[2] (बलभद्र) जो उपकार न कर सके, उसे हेला में ही सुय्य ने सुकर्म द्वारा कर दिया ।

पादटिप्पणी :

११२ (१) अनूला : श्री स्तीन का मत है कि शब्द अनूला होना चाहिए। इस नाम की नदी का उल्लेख वितस्ता माहात्म्य में है। वह आदि पुराण से लिया गया है । नील मत पुराण (नोः० १३४८) में इसका नाम 'समूला' स्तीन के मतानुसार दिया गया है । वाराह क्षेत्र माहात्म्य से नाम 'सरला' नदी दिया गया है । इस सरिता का परिचय अथवा उसे अभी तक नहीं पहचाना गया है। अनुसन्धान का विषय है।

(२) केदार-जल पूर्ण खेत : जिस खेत में धान बोया या रोपा जाता है, उसे केदार या क्यारी कहते है । धान के खेतों के लिये क्यारी शब्द पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में प्रचलित है । किसी (वृक्ष) के नीचे भूमि पर बना थाला भी होता है । जिसमें जल एकत्र होकर रुक जाता है ।

पादटिप्पणी :

११३ सूक्ति संग्रह का १६९ वाँ श्लोक है ।

(१) कश्यप : संकर्षण मुनि के कारण काश्मीर उपत्यका का जल बह गया था। उपजाऊ भूमि निकल आयी थी। किन्तु नील मत पुराण (१६५ श्लोक) के अनुसार अनन्त (शेष) के कारण सतीसर का जल निकल गया था। पुराणों में संकर्षण शेष नाग के अवतार माने गये हैं। गाथा है कि हल द्वारा वारह मूला के समीप पर्वत पर आघात करने के कारण जल मार्ग बन गया और सतीसर का जल वितस्ता की धारा से बह निकला। सतीसर की भूमि सूख गयी। वह जनाकीर्ण एवं ग्रामों से भर गया। (विष्णु० : २ : २११ तथा ५ : १२.)

(२) संकर्षण : शेषावतार विष्णु : अनन्त नाग। नील मत पुराण सतीसर से जल निकालने की कथा का संबन्ध 'अनन्त' से जोड़ता है—रुद्र नौबन्धन शिखर, हरि दक्षिणी शिखर, ब्रह्मा उत्तर शिखर पर आये। उनका अनुगमन देव और असुरों ने भी किया। इस प्रकार पर्वत पर आकर जनार्दन ने जलोद्भव असुर को मारने की दृष्टि से अनन्त से कहा—अपने हल से हिमालय को आज विदारित कर, सतीसर को जल हीन कर दो।'—अनन्त ने विश्व के सर्वश्रेष्ठ हिमालय का विदारण अपने हल से किया। पर्वत विदारित होते ही वेग पूर्वक जल बाहर निकल चला।—(नीलमत : १६४—१६९) काश्मीर उपत्यका में शस्य श्यामल भूमि निकल आयी। (द्रष्टव्य : भाग : १० : २ : ८, १२)

भूमेर्जलादुद्धरणं द्विजक्षेत्रे तथार्पणम् ।
सेतुबन्धोऽश्मभिस्तोये यमनं कालियस्य च ॥११४॥

११४. जल से भूमि का उद्धार[1], द्विज क्षेत्र में उस प्रकार अर्पण[2], जल में पाषाण मय सेतु बन्धन[3], तथा कालिय (नाग)[4] का नियमन—

चतुर्षु सिद्धमिति यद्विष्णोः सत्कर्मजन्मसु ।
सुय्यस्य तत्पुण्यराशेरेकस्मिन्नेव जन्मनि ॥ युग्मम् ॥११५॥

११५. जो सत्कर्म विष्णु के चार जन्मों में सिद्ध हुए, वह (सत्कर्म) पुण्यराशि सुय्य के एक ही जन्म में सिद्ध हुए।

यस्मिन्महासुभिक्षेषु दीन्नाराणां शतद्वयी ।
धान्यखारेः प्राप्तिहेतुरासर्गादभवत्पुरा ॥११६॥

११६. जिस (काश्मीर मण्डल) में सृष्टि के प्रारम्भ से उत्तम सुभिक्ष[1] होने पर भी एक खारी[2] धान्य प्राप्ति के लिये २०० दीनार (शतद्वय) व्यय होते थे—

टिप्पणी :

११४ सूक्ति संग्रह का १७० वाँ श्लोक हैं।

(१) उद्धार : वाराह अवतार द्वारा भगवान् ने जल से पृथ्वी का उद्धार किया था।

(२) अर्पण : परशुराम अवतार धारण कर भगवान् ने क्षत्रियों का संहार कर द्विजों को पृथ्वी अर्पण किया था। (भाग० : १ : ३ : २०, २ : ७ : २२, ६ : १५ : १३, १० : ४० : २०, शान्ति० : ४९ । ३१, ३२ आदि : २ : ४, ६४ : ४, १२९ : ६२; वन : ११६ : १८, ११७ : ९)

(३) बन्धन : रामावतार धारण कर भगवान् ने सेतु बन्ध रामेश्वर में समुद्र पर पाषाणमय सेतु बँधवाया था। ज्येष्ठ शुक्ल १० बुधवार हस्त नक्षत्र गदकरण, आनन्द तथा व्यतीपात योग कन्याराशि चन्द्रमा तथा वृष के सूर्य में इसकी स्थापना हुई थी। (लंका : २२ : १८२, वन : २८३ : ४३-४५)

(५) कालिय नियमन : कृष्णावतार धारण कर भगवान् ने कालिय नाग का नियमन किया था। इसकी उपमा महापद्म नाग अर्थात् ऊलर लेक का नियन्त्रण कर किया गया है। (भाग० : ५ : २४ : २९, वायु० : ५० : १८; ६९, ७२; आदि : ३५ : ६, सभा ३८ : ३९)

जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी कथा प्रसंग में कालिय नाग को महापद्म नाग के साथ महापद्म सर में निवास करते लिखा है। (जोन० : ९३४ श्लोक) ध्यानेश्वर माहात्म्य में कालिय नाग की पूजा उल्लोलसर (ऊलर लेक) में होना लिखा गया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११५ में 'सिद्धमिति' का पाठभेद 'यत्सिद्ध' तथा श्लोक के अन्त में 'युग्मम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

११५. सूक्ति संग्रह का १७१ वाँ श्लोक हैं।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११६ में 'खारेः' का पाठभेद 'खारी' मिलता है।

पादटिप्पणी :

११६ (१) सुभिक्ष : जोनराज ने सुय्य के सुभिक्ष का उल्लेख (८७५ श्लोक) किया है— 'सुभिक्षं सुय्यराजेन पूर्वमङ्कुरितं किल ।'

(२) खारी : विल्सन ने खारी को अबुलफजल वर्णित खरवार माना हैं। उसके अनुसार काश्मीर में

ततः प्रभृति तत्रैव चित्रं कश्मीरमण्डले ।
षट्त्रिंशता धान्यखारेर्दीनारैरुदितः क्रयः ॥११७॥

११७. आश्चर्य है—उसी काश्मीर मण्डल में उस समय से एक खारी धान्य का क्रय छत्तीस दीनारों में हो गया ।

निर्गताया महापद्मसलिलात्स्वर्गसंनिभम् ।
बितस्तायास्तटे चक्रे स्वनामाङ्कं स पत्तनम् ॥११८॥

११८. उसने महापद्म[1] सर से निर्गत (स्थान) वितस्ता तट पर अपने नाम पर एक स्वर्गोपम पत्तन[2] निर्मित किया ।

सब चीज़ का माप या तौल खारी से होती थी । गणित मान्यता के अनुसार ४ प्रस्थ का एक आढक, ४ आढक का १ द्रोण; १६ द्रोण की एक खारी और २० खारी का १ वाह होता है । प्राचीन मान्यता के अनुसार १६ द्रोण के बराबर अन्न का माप खारी माना जाता था । कुछ स्थानों पर ४ द्रोण का एक खारी माना जाता रहा है । अबुलफजल कहता है कि गाँव की मालगुजारी की गणना करते समय उनतीस दाम की खारी मानी गयी थी । (आइने अकबरी : २ : १६१) द्रष्टव्य : पाद रा० : ५ : ७१ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११७ में 'द्वादश दीनाराणां बाहगन्ये इति काश्मीरदेशभाषया परिगणने षटत्रिंशद्दीनाराः त्रिवाहगन्य इति ज्ञेयाः' पार्श्व टिप्पणी में लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११७ (१) दीनार : काश्मीर में १२ दीनार का एक वाहगनी और ३६ दीनार का त्रिवाहगनी होता था । द्रष्टव्य : परिशिष्ट 'च'

पाठभेद :

श्लोक सं० ११८ में 'निर्गताया' का पाठभेद 'निर्गता वा' तथा पार्श्वटिप्पणी में 'सुय्यपुराख्यम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११८ (१) महापद्मसर : महापद्मसर के संबंध में जोनराज ने एक गाथा जैनुल आबदीन बड़शाह काश्मार के व्याज से कहा है । उसे यहाँ लिखना अच्छा होगा । ऊलर-लेक का पुराना नाम महापद्मसर था । उल्लोल अर्थात् ऊँची तरंगों का ही अपभ्रंश ऊलर है । ऊँची तरंगों का सर यह अर्थ ऊलर लेक का होता है ।

जोनराज कहता है कि बड़शाह एक चिरस्मरणीय स्मारक निर्माण कराना चाहता था । वह इस प्रकार का निर्माण कराना चाहता था जैसा कि किसी राजा अथवा बादशाह ने न किया था । अनेक विचारों के पश्चात् निश्चय किया गया कि ऊलर लेक में एक द्वीप बनाया जाय । कार्य गुरुतर होने के कारण अपने समय के बुद्धिमानों को उसने सलाह के लिए आमन्त्रित किया ।

उन लोगों ने राजा को उत्साहित करते हुए कहा—जिस स्थान पर सर है वहीं एक नगर था । नगर का देवता महापद्म नाग था । समृद्धि तथा शान्ति के कारण नागरिक आराम तलब तथा दुर्व्यसनी हो गए । वे इतने दुर्गुणी हो गए थे उनका सुधार होना कठिन था । महापद्म ने नगर को ही नष्ट कर देने का विचार किया ।

नागरिकों में एक कुम्भकार था । महापद्म उसकी रक्षा करना चाहता था । उसने स्वप्न द्वारा कुम्भकार को सचेत किया । प्रातःकाल कुम्भकार ने नागरिकों से स्वप्न की बात प्रकट की । नागरिक उस पर हँसने लगे । कुम्भकार ने ज्योंही नगर का त्याग

किया जल बढ़ने लगा। किंचित् काल में ही नगर जलमग्न हो गया। जोनराज कितना करुण दृश्य खींचता है।

'भयातुर शिशु जो अपनी माता के पास खड़े थे, देखा कि जल माता के चरण का स्पर्श करने लगा। वे अपनी मां के पाँवों पर चढ़ गए। पानी और बढ़ा तो माँ की गोद में आ गए। और बढ़ने पर माँ के वक्षस्थल से चिपट गए। और पानी बढ़ने पर माँ के कन्धों पर कूदकर बैठ गए। और अन्त में और बढ़ने पर माँ के शिर पर बैठ गए। जलप्लावन का जल महिलाओं से इस प्रकार मिलने लगा मानो प्रेमी अपनी उस प्रेमिका का आलिंगन कर रहा हो जो भावावेश में कम्पित हो उठती हैं।

प्रतिहिंसा शान्त होने पर नाग उस सर में रहने लगा। नागपति वास्तव में कालिय नाग था। फणपर भगवान् कृष्ण के खड़ा होने के कारण कमलतुल्य चिह्न लग गया। लोगों ने कहा कि बादशाह हरि के अवतार हैं अतएव इस कार्य में सफलता होगी।

'महापद्मसरः पुण्यं हिरण्या यत्र गच्छति।
अश्वमेधफलं तत्र पौर्णामास्यां विशेषतः॥
336 = १५५१

× × ×

महापद्मसरस्तच्च योजनायामविस्तृतम्।
सुपुण्यं रमणीयं च सतां हृदयनन्दनम्॥
986 = ११५७

× × ×

महापद्मप्रभावेन दुष्टग्राहविवर्जितम्।
तत्रास्ते स सुखी नागः कुटुम्बपरिवारितः॥
987 = ११५८

× × ×

महापद्मसरस्यैष कथितः सम्भवो मया।
किमन्यत्तव राजेन्द्र कथयामि वदस्व तत्॥
988 = ११५९

× × ×

महापद्मस्य सरसः पुण्ये कूले तथोत्तरे।
नृसिंहमपरं दृष्ट्वा वह्निष्टोमफलं लभेत्॥
1153 = १३६४, १३६५

× × ×

वाजपेयमवाप्नोति महापद्मसरस्यपि।
हिरण्या वै नदी पुण्या हरमुण्डाद्विनिस्सृता॥
स्नातस्तस्यामवाप्नोति अग्निष्टोमफलं नरः॥
1335 = १५५०

(२) पत्तन: सुय्यपुर से यहाँ तात्पर्य है। यह वर्तमान ग्राम सोपुर है। कल्हण के वर्णन से यह नगर तथा इसका स्थान मिलता है। कल्हण के अनुसार वितस्ता के दोनों तटों पर सोपुर आबाद था। वितस्ता के उस स्थान से जहाँ ऊलरलेक का त्याग करती है उससे एक मिल अधोभाग में सोपुर है। वहाँ इस समय भी है। वहाँ के निवासी पण्डित इसके प्राचीन नाम सुय्यपुर से परिचित हैं। प्रोफेसर बुहलर इस स्थान के पहचान को मानते हैं परन्तु जनरल कनिंघम ने सोपोर को शूरपुर माना है। (कनि० एंशियेण्ट ज्योग्रेफी: ९९) शूरपुर का उल्लेख कल्हण ने पुनः (रा०: ८: ३१२८) महापद्म सर के सन्दर्भ में किया है। श्री जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी (३४०, ८६८) में सुय्यपुर का उल्लेख किया है। श्रीवर ने (३: १८१) सुल्तान हसन शाह के नवीन भवन के सन्दर्भ में सुय्यपुर का उल्लेख किया है। इस स्थान को मूरक्राफ्ट, बुहलर, वाइन, तथा लारेन्स ने पूर्व काल में देखा था। उन्हें वहाँ कोई प्राचीनता का चिह्न नहीं मिला था। सन् १८९१ ई० में सोपुर की आबादी ८००० थी। यह एक बढ़ता हुआ नगर है। इस समय यहाँ पर आधुनिक शहर के सभी प्रसाधन एवं लक्षण दिखायी देंगे। बड़शाह जैनुल आबदीन शोपोर के दोनों तरफ की आबादी को मिलाने के लिये सन् १४६० ई० में पुल निर्माण कराया था। सोपोर के पास उसके प्राचीन नाम के अतिरिक्त अतीत की स्मृति साक्षी स्वरूप और कुछ नहीं रह गया है। (मूरक्राफ्ट ट्रेवेल्स: २: २३०;

स्वकृता स्थापिता तेन सरसि व्याप्तदिक्तटे ।
आसंसारं स्थिताऽमारमर्यादा झषपक्षिणाम् ॥११९॥

११९. उसने दिगन्तव्यापी सरोवर तटपर प्रलय पर्यन्त के लिये झष और पक्षियों की अमार (अहिंसा) मर्यादा स्थापित की ।

सुय्याकुण्डलनामानं ग्रामं कृत्वा द्विजातिसात् ।
सुय्यामुद्दिश्य तन्नाम्ना सुय्यासेतुं स निर्ममे ॥१२०॥

१२०. सुय्या[1]कुण्डल[2] नामक ग्राम विप्राधीन करके, सुय्या को उद्देश्य बनाकर उस नाम से उसने सुय्यासेतु निर्मित किया ।

हुगेल : काश्मीर : १ : ३५३; आई. एन. सी. ई. हैण्डबुक : २२०, बुहलर रिपोर्ट : पृष्ठ ११)

प्राचीन मान्यता के अनुसार पचास गाँवों का एक पत्तन तथा चार सौ गाँवों का एक कर्वट होता था । वाचस्पति ने पत्तन की परिभाषा की है :

कर्वटादधमो द्रंगः पत्तनादुत्तमश्च सः ।
उद्रंगश्च निवेशश्च स एव द्रंग इत्यपि ॥

पाठभेद :

श्लोक सं० ११९ में 'स्थितामार' का पाठभेद 'स्थिरासार' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११९ (१) अमार मर्यादा : यहाँ पद्मसर अर्थात् ऊलर लेक पक्षियों का शिकार खेलने वालों के लिये सर्वप्रिय आदर्श स्थान है । शीत ऋतु में यहाँ कलहंस तथा अन्य जलकुक्कुट ऊलर लेक में झुण्ड के झुण्ड आते हैं । उनका शिकार नाविक तथा अन्य लोग व्यापार करने के लिये करते हैं । सर मछलियों से भरा है । समीपस्थ ग्रामीणों का मुख्य कारबार मछली मारना तथा उनसे जीविका चलाना है । सुय्य ने प्राणियों का यह विनाश देखकर यहाँ पर जीव हिंसा राजकीय आज्ञा से बन्द करवा दिया था । (मूरक्राफ्ट : ट्रेवेल्स : २ : २२७; वाइन : ट्रेवेल्स २ : १५६; लारेन्स वैली : १२८, १५७)

जोनराज बड़शाह जैनुल आबदीन के समय भी इसी प्रकार की हिंसा निषेधाज्ञा का उल्लेख करता है । (९५३; द्रष्टव्य : रा० : ३ : ५; तथा ५ : ६४) इसी प्रकार की हिंसा निषेध आज्ञा काश्मीर में डोगरा राज्य स्थापित होने के पश्चात् घोषित की गयी थी और वितस्ता में हत्या करना दण्डनीय ठहराया गया था ।

मैंने आस्ट्रेलिया, जापान तथा अन्य यूरोपीय देशों में वर्ड की सैकच्युरी बना हुआ देखा । वहाँ पर पक्षी हत्या नहीं की जाती । पक्षियाँ आती हैं । स्वच्छन्द विहार करती हैं । आस्ट्रेलिया में एक स्थान पर मैंने देखा कि पक्षियाँ देखने वाले के शरीर पर निर्भय होकर बैठ जाती हैं । इस प्रकार के सैकच्युरियों का संघटन पक्षियों की रक्षा तथा उनके वंश का लोप न हो जाय इसलिये किया जाता है । सुय्य जो अपने समय का कुशल सुधारक था । उसने जल व्यवस्था के सुधार के साथ ही साथ आधुनिक युग के समान पक्षी रक्षण व्यवस्था को ओर भी ध्यान दिया था । भारत में काशी में शेर, गुजरात में गिरि सिंह आदि की हत्या न करने के लिये स्थान रक्षित कर दिये गये हैं । इसी प्रकार की व्यवस्था सुय्य ने पक्षियों की रक्षा के लिये उस समय की थी । आज भी भारत में अनेक स्थान मुख्यतया तीर्थ स्थानों, पवित्र सरोवर तटों, वनों में राजाज्ञा से प्राणिहिंसा बन्द कर दी गयी है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १२० में 'सुय्याकु' का पाठभेद 'सुय्यक' तथा 'सुय्या' का 'सय्या' मिलता है ।

पादटिप्पणी

१२० (१) सुय्या = सुय्य की माता का नाम सुय्या था ।

तेनोद्‌धृतासु सलिलाद्भूषु ग्रामाः सहस्रशः ।
अवन्तिवर्मप्रमुखैर्जयस्थलमुखाः कृताः ॥१२१॥

१२१. उसके द्वारा सलिल समुद्धरितभूमियों पर अवन्तिवर्मा प्रमुख नृपों ने जयस्थल[1] आदि सहस्रों ग्राम निर्मित किये।

ईदृशैर्धर्म्यवृत्तान्तैः प्रवर्तितकृतोदयः ।
अवन्तिदेवः पातिस्म मान्धातेव वसुंधराम् ॥१२२॥

१२२. इस प्रकार धर्म्य (धर्मानुकूल) वृत्तान्तों से कृतयुग[1] प्रवर्तित कर अवन्तिदेव मान्धाता[2] सदृश वसुन्धरा की रक्षा करता था।

अवन्तिवर्मा का अन्त :

प्राणप्रयाणसोद्योगरोगग्रस्तस्ततो ययौ ।
क्षेत्रं स त्रिपुरेशाद्रिनिष्ठज्येष्ठेश्वराश्रितम् ॥१२३॥

१२३. तदनन्तर प्राणान्तक रोग ग्रस्त होकर, वह त्रिपुरेश[1] पर्वत स्थित ज्येष्ठेश्वर[2] आश्रित क्षेत्र गया।

---

(२) सुय्या कुण्डल : इस ग्राम का अस्तित्व इसी नाम से जोनराज के समय तक था। उसने इसका उल्लेख किया है। जोनराज से पता चलता है कि यह स्थान ऊलर लेक के तट पर था—

उल्लोलस्यान्तभागेषु सुय्यकुण्डलकादयः ।
दृश्यन्ते बह्वो ग्रामा विशालसदनाङ्किताः ॥
—जोन० रा० : ९४५

पाठभेद :

श्लोक सं० १२१ में 'जयस्थल' के लिये 'जिथन' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१२१ (१) जयस्थल : जिथन ग्राम है। इसका निश्चित पता नहीं लगता। जयस्थल एवं जिथन दोनों ही नाम के ग्राम अथवा उनके तद्भव अथवा अपभ्रंश शब्दों का भी पता अभी तक नहीं लग सका है।

पादटिप्पणी

१२२. (१) कृतयुग : सतयुग। द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० ४ : ११३।

(२) मान्धाता : द्रष्टव्य पादटिप्पणी रा० : ४ : ६४१।

पादटिप्पणी :

१२३ (१) त्रिपुरेश : द्रष्टव्य : पादटिप्पणी, रा० : ५ : ४६।

(२) ज्येष्ठेश्वर : सर्वावतार के उल्लेख से पता चलता है कि ज्येष्ठेश्वर नाम से शिव की पूजा त्रिपुरेश में भी होती थी। कल्हण ने यहाँ सतर्कता से कार्य लिया है। ज्येष्ठेश्वर का ख्यात मन्दिर अन्य स्थान पर था अतएव दोनों में भिन्नता दिखाने के लिये कल्हण त्रिपुरेश शब्द ज्येष्ठेश्वर के पूर्व रख दिया है। त्रिपुरेश का ज्येष्ठेश्वर लिंग अन्य ज्येष्ठेश्वर लिंगों से भिन्न था। (रा० : १ : ११३, १२४)। कल्हण के वर्णन से प्रकट नहीं होता कि ज्येष्ठेश्वर का देवस्थान त्रिपुरेश पर्वत शिखर अथवा मूल में अथवा त्रिफर ग्राम के समीप था।

आत्मनस्तत्र निश्चित्य विपत्तिं चिरगोपिताम् ।
प्राणान्ते प्राञ्जलिः शूरो वैष्णवत्वमदर्शयत् ॥१२४॥

१२४. चिरगोपित विपत्ति का निश्चित जानकर, मृत्यु के समय प्राञ्जलि (करबद्ध) होकर, उस शूर ने वैष्णवत्व दिखा दिया ।

तेनान्ते भगवद्गीताः शृण्वता भावितात्मना ।
ध्यायता वैष्णवं धाम निरमुच्यत जीवितम् ॥१२५॥

१२५. अन्त में भावितात्मा उसने भगवद्गीता का श्रवण, वैष्णव धाम का ध्यान करते हुए, प्राणोत्सर्ग कर दिया ।

आषाढशुक्लपक्षस्य तृतीयस्यां क्षमापतिः ।
वर्षे एकोनषष्ठे स क्ष्मावृषोऽस्तमुपाययौ ॥१२६॥

१२६. उनसठवें वर्ष आषाढ़ शुक्ल तृतीया (लौकिक संवत् ३९५९) को वह क्ष्मावृष क्षमापति अस्त हो गया ।

तस्मिन्प्रशान्ते प्रत्येकं विभवोत्सिक्तचेतसाम् ।
तुल्यमुत्पलवंश्यानां राज्येच्छा भूयसामभूत् ॥१२७॥

१२७. उसके प्रशान्त हो जाने पर, उत्पलवंशीय अनेकों विभवोत्सिक्तचेता में, प्रत्येक की समान रूपेण राज्य प्राप्ति की इच्छा हुई ।

शंकर वर्मा (सन् ८८३—९०२ ई०) :

ततश्चक्रे प्रतीहारः प्रयत्नाद्रत्नवर्धनः ।
नृपं शंकरवर्माणमवन्तिनृपतेः सुतम् ॥१२८॥

१२८. तदनन्तर रत्नवर्धन प्रतीहार[1] ने प्रयत्न से अवन्ति नृपति पुत्र शंकर वर्मा को नृप बनाया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १२४ में 'गोपिताम्' का पाठभेद 'गोपितम्' तथा 'शूरो' का 'शूर' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१२४ श्रीदुर्गाप्रसाद के पाठभेद के अनुसार अर्थ होगा—

वहाँ अपनी मृत्यु निश्चित जानकर वे मृत्यु के समय प्राञ्जलि (करबद्ध) होकर शूर (मन्त्री) को चिरगोपित वैष्णवत्व दिखा दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १२६ में 'क्षमापतिः' का पाठभेद 'पतेः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१२६ (१) उनसठवें वर्ष : सप्तर्षि ३९५९ वर्ष = कलि० ३९८४ वर्ष = सन् ८८३ ई०, विक्रमी ९४९ = शक० ८०५ = आषाढ़ शुक्ल तृतीया ।

पादटिप्पणी :

१२८ कल्हण राज्याभिषेक काल सप्तर्षि किंवा

लौकिक संबत् ३९५९; सर्व श्रोदत्त कलि ३९८४ = शक ८०५ = सप्तर्षि लौकिक ३९५९ = सन् ८८५ ई०; सी. एम. डफ. सन् ८८३ ई०; विल्सन लौकिक ३९५९ = सन् ९०४ ई० १ मास; स्तीन; लौ० ३९५९–आषाढ़ सुदी २ = सन् ८८३ ई०; एस. पी. पण्डित. सन् ८८४ ई०; ट्रोयर सन् ८८६ ई० ८ मास २० दिन लौकिक ३९५९; कनिंघम सन् ८८३ वर्ष २ मास; डाइनास्टिक हिस्टोरी ऑफ इण्डिया में सन् ८८३ ई०; त्रिवेद सन् ८७० ई० = शक ७९२ देते हैं। पीर हसन विक्रमी संवत् ८४९ = सन् ८९२ ई० तथा राज्यकाल १८ वर्ष ८ मास; एस. पी. पण्डित १८ वर्ष ७ मास १९ दिन; स्तीन राज्य-काल नहीं देते। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल १८ वर्ष तथा पीर हसन १८ वर्ष ८ मास देता है।

शंकर वर्मा की एक ताम्र मुद्रा मिली है। मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा संगर एवं पृष्ठ भाग दण्डायमान राजा एवं 'वर्मा' टंकित है। मल्ल शतक एवं पद्म मंजरी कोश उसके समय की रच-नाएँ हैं।

(१) प्रतीहार : मान्यता है कि प्रतीहार मध्येशिया की एक जाति है। भारत के सीमास्थित उत्तर-पश्चिमी दर्रा से भारत में प्रवेश किये थे। या तो वे हूणों के साथ भारतवर्ष में प्रवेश किये अथवा अलग उनके पश्चात् उनका आगमन हुआ।

प्रतिहार जाति अपने को लक्ष्मण की वंशज मानती है। उनका कहना है कि भगवान् राम के लक्ष्मण द्वारपाल किंवा प्रतिहारी थे अतएव लक्ष्मण वंशजों का नाम प्रतिहार पड़ गया। वे इसमें गौरव का अनुभव करते हैं। राजशेखर कवि ने अपने संरक्षक राजा महेन्द्रपाल को 'रघुकुल तिलक' लिखा है जिससे प्रकट होता है कि प्रतिहार अपनी वंश परम्परा रघुकुल से जोड़ते हैं जिस कुल में लक्ष्मण हुए थे। अबतक यही ज्ञात हुआ है कि मन्दिर जोधपुर में वे आबाद थे। वहाँ हरिश्चन्द्र का कुल राज्य करता था। वहाँ से एक शाखा दक्षिण चलकर उज्जैन पर अपना अधिकार स्थापित कर ली। प्रतिहार वंश के प्रसिद्ध राजा नागभट्ट (सन् ८०५-८३३ ई०) मिहिरभोज (सन् ८३६-८८५ ई०) तथा महेन्द्र पाल (सन् ८८५-९१० ई०) हुए थे। द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : जोनराज : ३०, १९८, २१६; जैन : राज : १ : १ : ८८, १५१; १ : ७ : २०२; शुक राज : १ : १८, ३०, ४६, १९६, २१६। मुस्लिम हो जाने पर प्रतिहार नाम पदर हो गया था।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ८८४ ई० में एड्रियन (तृतीय) पोप तथा चार्ल्स तृतीय फ्रांस का राजा हुआ। सन् ८८५ ई० में मिहिर भोज प्रतिहार राज की मृत्यु तथा उसका पुत्र महेन्द्र पाल कन्नौज का राजा हुआ। उसकी रानियाँ देहांग देवी तथा माहि देवी थीं। स्टीफेन (पंचम) पोप हुआ। सन् ८८६ ई० में अग्गुग (चतुर्थ) सैन्धव राजा हुआ। गुणक विजयादित्य की पूर्वीय चालुक्य में राज समाप्ति। सन् ८८८ ई० इसमाइल समनानी अपने भाई नासिर से बुखारा के समीप अलग हो गया। समझौता हुआ कि नासिर समरकन्द और इसराइल बुखारा में नासिर के अन्त-र्गत शासन करे। (हि० २७५)। चाउ-त्सुंग-चीन का सम्राट् हुआ। सन् ८९० ई० में काश्यप सिंह बोधि (चतुर्थ) श्रीलंका (८९०–९०७ ई०) का अभिलेख। सन् ८९१ ई० में फरमोसस पोप हुआ। सन् ८९२ ई० भीम (प्रथम) चालुक्य का शासन काल (सन् ८९२–९२२ ई०)। मोतजिद खलीफा हुआ। इसमाइल समनानी नासिर समनानी का उत्तराधिकार पाया। सन् ८९३ ई० महेन्द्र पाल (प्रथम) प्रतिहार का उल्लेख अभिलेखों में मिलता है। बाल वर्मा चालुक्य पिता अवन्ति वर्मा से राज्य प्राप्त किया। आदित्य (प्रथम) चोलराज ने पल्लव राज अपराजित को पराजित किया। सन् ८९६ ई० जयसिंह वर्मा चम्पा का राजा हुआ। (सन् ८९६–९०५ ई०)। सन् ८९७ ई० में स्टीफेन पोप हुआ। जेल में मारा गया। रोमनेस विरोधी पोप हुआ। सन् ८९८ ई० थियोडोर (द्वितीय) पोप हुआ।

कर्णपो विन्नपामात्यस्तनूजं शूरवर्मणः।
तद्द्वेषात्सुखवर्माख्यं यौवराज्येऽप्ययोजयत् ॥१२९॥

१२९. विन्नप[1] के अमात्य[2] कर्णप ने उसके विद्वेष से शूरवर्मा पुत्र सुखवर्मा को युवराज[3] बनाया।

अतस्तयोरभूद्वैरं क्षितीशयुवराजयोः।
यस्मिन्क्षणे क्षणे राज्यमासीद्दोलामिवाश्रयत् ॥१३०॥

१३०. अतएव उन दोनों क्षितीश एवं युवराज में वैर हुआ—जिसमें प्रतिक्षण राज्य दोले[1] तुल्य (दौलायमान) रहा।

चार्ल्स फ्रांस का राजा हुआ। बलितुंग (धर्मादिय महाशम्भु) का ज्ञात काल। (सन् ८९८–९१० ई०)। सन् ८९९ ई० अवनि वर्मा करद राजा के रूप में प्रतिहार राजा के आधीन शासन करता था। सन् ९०० ई० में राजशेखर कवि का सम्भावित काल। शिवकर देव का तलचर फलक के अनुसार समय। यशोवर्मा कम्बुज राजा की मृत्यु। मारवर्मा राजसिंह (द्वितीय) (सन् ९००–९२० ई०) पाण्डच, हर्ष चन्देल (सन् ९००–९२५ ई०) तथा पृथ्वीपति (द्वितीय) (सन् ९०० ९४० ई०) पश्चिमी गंग का समय। तोरमान = कमलुक = कमलू = कमल = हिन्दूशाही राजा हुआ। मुग्ध तुंग प्रसिद्ध धवल पुत्र कोक्कल प्रथम कलचुरी चेदि राजा तथा राजा जयमल प्रालम्भ वंशीय राजा हुआ। भट्टनायक कवि का स्थिति काल। अमर सूबेदार खुरासान, तुर्किस्तान, हिन्द आदि का नियुक्त हुआ। चन्द्रिका कवि का सम्भावित-काल। (सन् ९०१–९०२ ई०) समनी राज्य इसमाइल पुत्र अहमद के आधीन हुआ। सफरी वंश विजित हुआ। सन् ९०२ ई० में शंकर वर्मा काश्मीर राज की मृत्यु फाल्गुन कृष्ण सप्तमी। इब्न अलफकीह का स्थिति काल।

पाठभेद :

श्लोक सं. १२९ में 'पामात्य' का पाठभेद 'पापत्व' तथा 'शूरवर्मणः' के लिये 'अवन्तिवर्मभ्रातुः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१२९ (१) विन्नप : शूर के कनिष्ठ भ्राता के दो पुत्र धीर तथा विन्नप ने अपने नामों से मन्दिरों का निर्माण कराया था। (रा० : ५ : २६) विन्नप का उल्लेख पुनः नहीं मिलता।

(२) अमात्य : मन्त्री, जिलाधीश, सर्वाधिकारी, आदि अनेक अर्थ अमात्य के किये जाते हैं। अमात्य सभा का अर्थ मन्त्रि परिषद है। अमात्य शब्द की परिभाषा समय-समय पर बदलती रही है। राज्य के सात अंगों में एक अमात्य माना गया है। इसका अर्थ इस भाव में मन्त्री होता है। अमात्य शब्द अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद (४ : ४ : १) में इस शब्द का मूल पाया जाता है। इस शब्द का उल्लेख ऋग्वेद (७ : १५ : ३) में मिलता है। इस स्थल पर वह विशेषण के रूप में प्रयुक्त किया गया है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२ : १० : २५ : १०) में अमात्य शब्द मन्त्री के अर्थ में प्रयोग किया गया है।

रामायण में सुमन्त्र को अमात्य एवं सर्वश्रेष्ठ मन्त्री कहा गया है। (बाल : ८ : ४) अयोध्या काण्ड में अमात्य एवं मन्त्री में अन्तर बताया गया है। (१ : २ : १७) कौटिल्य भी अमात्य एवं मन्त्री के अन्तर पर प्रकाश डाला है। (१ : ८) कौटिल्य ने मन्त्रियों की अपेक्षा अमात्य को उच्च अधिकारी माना है। कौटिल्य एवं कामन्दक मन्त्रि परिषद् में १२ अमात्य, बार्हस्पत्यों ने १६, औशनसों ने २० का होना लिखा है। विशेष द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : जोनराज : श्लोक २३६।

पादटिप्पणी :

१३० (१) युवराज : सुखवर्मा पुत्र शूरवर्मा।

शिवशक्त्यादयो वीराः स्वामिकार्योज्झितासवः ।
यत्राभूवन्स्वसत्त्वस्य परीक्षाक्षणलाभिनः ॥१३१॥

१३१. उसी समय अपने सत्त्व का परीक्षा क्षण लाभ करने वाले, शिवशक्ति[1] आदि वीर हुए, जिन्होंने स्वामिकार्य हित प्राणोत्सर्ग किया।

कुर्वतां स्वामिशत्रूणां दानमानप्रतिश्रवम् ।
सत्त्वैकाग्र्यान्न ते यस्मादानुकूल्यमशिश्रयन् ॥१३२॥

१३२. सत्त्वाधिक्य के कारण उन लोगों ने दान मान का प्रतिश्रव करने वाले, स्वामिशत्रुओं की अनुकूलता का आश्रय नहीं लिया।

पिण्डस्पृहां परित्यज्याहंकृताः शिक्षिताः क्वचित् ।
तावन्न वीततमसः श्ववृत्तिमनुजीविनः ॥१३३॥

१३३. तब तक अनुजीवी (भृत्य) स्व वृत्ति पिण्ड स्पृहा[1] त्याग कर, स्वाभिमानी शिक्षित एवं तमोगुण रहित होते थे।

कथंचिदथ निर्जित्य युवराजं महौजसम् ।
प्राज्यः स्वविजयोंकारश्चक्रे शंकरवर्मणा ॥१३४॥

१३४. शंकरवर्मा ने कथंचित् महान् ओजस्वी युवराज[1] को विजित कर, प्रचुर स्व विजय का ओंकार प्रसारित किया।

---

(२) दोल : पालना–झूला–झलुआ। दोल शब्द का पुन: प्रयोग कल्हण ने रा० : ६ : ५९ में किया है। राजा तथा युवराज के परस्पर वैमनस्य के कारण राजलक्ष्मी झूले की तरह कभी राजा की ओर जाती और कभी युवराज की तरफ लौटती थी।

पादटिप्पणी :

१३१ (१) शिवशक्ति : श्री लास्सेन ने नाम शिवभक्ति दिया है।

पादटिप्पणी :

१३३ (१) पिण्ड स्पृहा : पद लिप्सा का यहाँ अर्थ होता है। अंग्रेजी कहावत—मक्खन रोटी की चिन्ता न कर स्वाभिमान प्रिय होना पिण्डस्पृहा त्याग कहा जाता है। पिण्डपात शब्द बौद्ध जगत् में भोजन भिक्षा माँगने के लिये रूढ़ हो गया है। पिण्ड का अर्थ भोज्य पदार्थ होता है। श्राद्ध में पिण्ड दान दिया जाता है। वह चावल, दूध में पकाकर सूखी खीर तुल्य पिण्ड अर्थात् गोला बना लिया जाता है। अनेक स्थानों पर यह प्रथा है कि श्राद्धादि पर पिण्ड दान के पश्चात् पिण्ड ब्राह्मण को खिलाते हैं। क्षेमेन्द्र ने भी पिण्ड शब्द का प्रयोग भोजन के अर्थ में ही किया है। नर्ममाला : (३ : १०१) देशोपदेश (१ : ७)

पाठभेद :

श्लोक सं० १३४ में 'युवराज' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'सुखवर्माणम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१३४ (१) युवराज : सुखवर्मा।

सम्राट्समरवर्माद्यैर्वितीर्णसमरोऽसकृत् ।
कीर्तिं श्रिया प्रणयिनीं लब्धयाऽधिविवेद सः ॥१३५॥

१३५. समरवर्मा आदि से अनेकशः समरकर्ता, वह सम्राट् प्राप्त लक्ष्मी की अपेक्षा, कीर्ति[1] को अधिक प्रिय मानता था।

दिग्विजय :

अथ निर्जित्य दायादाँल्लब्ध्वा लक्ष्मीं क्षितीश्वरः ।
जिष्णुर्दिग्विजयं कर्तुं श्रीमानासीन्महोद्यमः ॥१३६॥

१३६. अनन्तर जिगीषु श्रीमान् क्षितीश्वर ने दायादों के विजय पूर्वक, धन प्राप्त कर, दिग्विजय हेतु महान् उद्योग किया।

तस्य कालबलाद्देशे प्रक्षीणजनसंपदि ।
लक्षाणि नव पत्तीनां द्वारान्निष्क्रामतोऽभवन् ॥१३७॥

१३७. काल बल से देश में जन धन क्षीण होने पर भी द्वार[1] से निष्क्रमण करते, उसके साथ नव लक्ष[2] पदाति (सैनिक) थे।

स्वपुरस्योपकण्ठेऽपि योऽभूत्कुण्ठितशासनः ।
स एव रत्नोत्तंसेषु राज्ञामाज्ञां न्यवेशयत् ॥१३८॥

१३८. अपने पुर के समीप जो कुण्ठित[1] शासन रहता था, उसी ने राजाओं के रत्नाभूषणों (मुकुटों) पर आज्ञा निवेशित किया।

पादटिप्पणी :

१३५ (१) कीर्ति : राजा का चरित्र चित्रण कल्हण करता है। राजा लक्ष्मी किंवा सम्पत्ति की अपेक्षा कीर्ति को अधिक पसन्द करता था। धर्म की तेरह पत्नियों में से एक पत्नी थी। प्रजापति दक्ष की साठ कन्याओं में एक थी। (ब्रह्मा : २ : ९ : ४०; आदि : ६६ : १४, वन : ३७ : ३३, विष्णु : १ : ७ : २३, ३१)

पादटिप्पणी :

१३७ (१) द्वार : पीर पंजाल द्वार द्वारा राजा सेना सहित काश्मीर से निर्गत हुआ था। द्वार : द्रष्टव्य : रा० १ : १२२, २०३ तथा ४ : ४०४)

(२) नव लक्ष : पीर हसन सेना की संख्या एक लाख अश्वारोही, नव लाख पैदल सैनिक तथा तीन सौ हाथी देता है। नव लक्ष का पुनः उल्लेख (रा० : ५ : १४३) में किया गया है।

पादटिप्पणी :

१३८ (१) कुण्ठित : जिस राजा का शासन अपनी राजधानी की सीमा पर ही उल्लंघित किंवा उपेक्षणीय था उसी की आज्ञा उसके दिग्विजय काल में बाहरी राजाओं ने शिरोधार्य की।

गच्छन्नाम्नायविच्छेदसंप्रदायः ककुब्जये ।
स्वप्रज्ञया समुन्नीतो राज्ञा शंकरवर्मणा ॥१३९॥

१३९. राजा शंकरवर्मा ने अपनी बुद्धि से दिग्विजय वर्णन के विच्छिन्न होते, सम्प्रदाय[1] को पुनरुज्जीवित किया ।

तत्सेना नरनाथानां पृतनाभिः पदे पदे ।
कुलापगेव कुल्याभिर्विशन्तीभिरवर्ध्यत ॥१४०॥

१४०. उसकी विशाल सेना में प्रति पद पर, नरनाथों की सेनायें, उसी प्रकार मिलने लगीं, जिस प्रकार महानदी में कुल्यायें ।

दार्वाभिसारराजेन त्रस्यता समुपाश्रिताः ।
अद्रिद्रोण्यो न वाहिन्यस्तत्सेनानादमादधुः ॥१४१॥

१४१. उसके सैन्य नादको त्रस्त एवं अद्रि द्रोणियों में आश्रय लेते दार्वाभिसार[1] की सेनाओं ने नहीं अपितु अद्रिद्रोणियों ने धारण किया ।

जनोल्बणैर्हरिगणैर्गृह्णन्हरिगणं क्षणात् ।
अनासादितदुर्गं स चक्रे दुर्गान्तरातिथिम् ॥१४२॥

१४२. वेगोद्धत अश्वरोहियों द्वारा राजा हरिगण[1] को अपने दुर्ग में आश्रय लेने के पूर्व दूसरे दुर्ग में अतिथि बना दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १३९ में 'विच्छेद' का पाठभेद 'विच्छेदं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३९ (१) सम्प्रदाय : यहाँ पर परम्परा अर्थ है । राजा शंकरवर्मा का यह काश्मीरियों का अन्तिम दिग्विजय है । इसके पश्चात् मुसलिम काश्मीरी सुलतान शहाबुद्दीन ने ससैन्य बाहर जाकर कुछ स्थानों को जीता था । जैनुल आबदीन के समय कुछ निकल गये स्थानों को जीतने के लिये काश्मीरी सेना एक बार पुनः बाहर निकली थी ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १४१ में 'दार्वाभिसार' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'दर्वाभिसारः दानगलो इति भाषया' 'राजेन' के लिये 'नरवाहननाम्ना', 'त्रस्यता' के लिये 'भ्राम्यता' तथा 'वाहिन्य' के लिये 'दार्वाभिसारनृपस्य सेनाः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४१ (१) दार्वाभिसार : द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० : १ : १८०; जैन० राज० : १ : ५ : २२ तथा रा० : ४ : ७१२; ५ : २०९, ७ : १२८२; ८ : १५३१

पादटिप्पणी :

१४२ (१) हरिगण : हरिगण का कहीं अन्यत्र उल्लेख नहीं आया है । यह दार्वाभिसार के राजा का नाम नहीं हो सकता है । (रा० : ५ : २०९) दार्वाभिसार के राजा का नाम नरवाहन दिया गया है । श्री ट्रोयर तथा जोगेशचन्द्र पन्त ने इस पद के हरिगण का अनुवाद 'सिंहगण' से किया है । श्रीस्तीन

गुजरात विजय :

लक्षाणि नव पत्तीनां वारणानां शतत्रयी ।
लक्षं च वाजिनामासीद्यस्य सेनापुरःसरम् ॥१४३॥

१४३. जिसके सैन्य समक्ष नव लक्ष पदाति, तीन सौ हाथी एवं एक लक्ष अश्व थे[1]—

स गुर्जरजयव्यग्रः स्वपराभवशङ्किनम् ।
त्रैगर्तं पृथिवीचन्द्रं निन्ये तमसि हास्यताम् ॥१४४॥

१४४. गुर्जर[1] विजय हेतु व्यग्र उसने स्वपराभव शंकित त्रिगर्त[2] के पृथ्वी चन्द्र को उसके अज्ञान (तमस्) में उपहास्य बना दिया ।

ने मत प्रकट किया है कि इस पद का अर्थ स्पष्ट नहीं होता । श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने मूल हरिगण शब्द अनुवाद में दे दिया है । इसकी कोई टीका या परिभाषा नहीं की है ।

पादटिप्पणी :

१४३ (१) सैन्य : पीर हसन ने इसी श्लोक के आधार पर सैन्य शक्ति एवं संख्या दी है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १४४ में 'गुर्जर' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'गूर्जरेति अत्र गूर्जरः लघुगोज्यराद इति प्रसिद्धो देशः' तथा 'त्रैगर्तं' के लिये 'त्रिगर्तो नगरकोट्टः तदधीशः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४४ (१) गुर्जर : पंजाब का गुजरात जिला है । चिनाव अर्थात् चन्द्रभागा नदी के पश्चिम तट से पाँच मील दूर पर स्थित है । वर्तमान गुजरात प्रदेश से यहाँ तात्पर्य नहीं है । लघुगोज्यराद अर्थात् लघु गुजरात का उल्लेख मिलता है । यह महागुजरात प्रदेश से भिन्न कर देता है । झेलम तथा चेनाव के ऊपरी दोआबा से लेकर भीमवर के पर्वत मूल तक क्षेत्र गुर्जर किंवा गुजरात कहा जाता था । इसी नाम से काश्मीर में प्रसिद्ध था । कल्हण ने (रा० : ५ : १५०) इस प्रदेश में टक्क देश को भी सम्मिलित किया है । हुएन्त्सांग के अनुसार यह क्षेत्र चिनाव के पूर्व पड़ता है । (सि-यू-चीन १६४ तथा लाइफ : ७२) प्रायः देखा गया है कि राजधानी के नाम पर राज्य किंवा देश का नाम पड़ जाता था । रणजीत सिंह के समय में लाहौर का अर्थ समस्त पंजाब प्रदेश से लगाया जाता था । प्राचीन काल में भी यही बात प्रचलित थी । काशी समस्त काशी राज्य की राजधानी थी । काशी राजधानी तथा देश दोनों के लिये व्यवहृत किया जाता था । अयोध्या एवं मथुरा नगर थे । राजधानी थे । परन्तु उनके नाम से अयोध्या तथा मथुरा राज्य किंवा प्रदेशों का बोध होता था । पंजाब का गुजरात जिला गुर्जर शब्द का अपभ्रंश है । जिस प्रकार गुजरात राज्य किंवा प्रदेश का प्राचीन नाम गुर्जर है । कुछ विद्वानों का मत है कि पंजाब के गुर्जर हूणवंशी थे । (कनिंघम : एन्शिएण्ट ज्योग्रेफी : १७९)

गुर्जर का वर्णन विल्हण कवि ने विक्रमांक देवचरित में किया है । किन्तु वहाँ पर गुर्जर का अर्थ गुजरात से है । क्योंकि सोमनाथ का उसी प्रसंग में वर्णन किया गया है । सोमनाथ का मन्दिर विल्हण के समय प्रसिद्ध था । वह महमूद गजनी द्वारा नष्ट किया गया था । (विक्रमांक : १८ : ९७)

आईने अकबरी में उल्लेख है कि राजा ने गुजरात विजय किया था । (द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० : ५ : १४९)

(२) त्रिगर्त : विल्सन ने त्रिगर्त को लाहौर का भाग माना है (६१) त्रिगर्त का अर्वाचीन नाम

पुत्रं भुवनचन्द्राख्यं नीविं प्रागेव दत्तवान् ।
स ह्यभूत्प्रणतिं कर्तुं तस्याभ्यर्णमुपागतः ॥१४५॥

१४५. (उसने) पुत्र भुवनचन्द्र को नीवि[1] रूप में पूर्व में ही दे दिया पुनः वह प्रणति हेतु उसके समीप गया।

कांगड़ा है। 'त्रिगर्त नगरकोट' के उल्लेख से प्रकट होता है कि नगरकोट वर्तमान कोट कांगड़ा है। यह कांगड़ा प्रदेश का मुख्य स्थान है। महमूद गजनी के समय से नगरकोट का नाम कोट कांगड़ा परशियन इतिहासकारों ने प्रायः लिखा है। प्रसिद्ध किला है। (अल्बेरुनी : इण्डिया : २ : ११; कनिंघम : आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्ट : ५ : १५५) राजधानी का संस्कृत नाम सुशर्मापुर किंवा सुशर्मा नगर था। बैजनाथ प्रशस्ति में इसका उल्लेख है। (इपिग्राफिक इण्डिया : १ : १०३ नोट; २ : ४८३) जनरल कनिंघम ने इस पर विस्तार के साथ विचार 'क्वाइन्स आफ मिडीवल इण्डिया' के प्रसंग में किया है। (पृष्ठ १००) उसमें उसने दिखाया है कि कांगड़ा के राजाओं की वंशावली में पृथ्वीचन्द्र तथा भुवनचन्द्र के नामों का उल्लेख नहीं मिलता। किन्तु अन्तिम शब्द 'चन्द्र' सभी राजाओं के अन्त में मिलता है। उसने वंशावली का जो राजवंशों से उसे अवलोकनार्थ दी गयी थी, उल्लेख किया है। कनिंघम ने वंशावलियों का जो उद्धरण दिया है वह प्रामाणिक है। कांगड़ा के कटोच राजागण चन्द्रवंश के हैं। इससे यह भी प्रकट होता है। इन्द्रचन्द्र (रा० : ७ : १५०) का उल्लेख कल्हण ने आगे चल कर किया है। वह इसी वंश के थे। शंकर वर्मा का अभियान वास्तव में त्रिगर्त तक पहुँचा था, जैसा कि लासन (इण्डि०सर्वे अल्तर थमस कुण्ड : ३ : १०२७) कल्हण के लेख से नहीं प्रकट होता। कांगड़ा दार्वाभिसार से बहुत पूर्व पड़ता है। कल्हण वर्णन करता है कि दार्वाभिसार गुजरात होता राजा सिन्ध उपत्यका के उत्तरी भाग में प्रवेश किया था।

विल्हण के वर्णन से प्राचीन त्रिगर्त का स्थान और स्पष्ट होकर सन्देह का स्थान नहीं रह जाता जहाँ चम्बा (चम्पा), लोहर, दार्वाभिसार, भर्तुल प्रदेश का उल्लेख किया है। उक्त सभी स्थान पंजाब के उत्तरीय पर्वतीय प्रदेश हैं। अतएव त्रिगर्त ही वर्तमान कांगड़ा प्रदेश है।

चम्पासीम्नि क्षितिपतिकथा धाम्नि दार्वाभिसारे
त्रैगर्तीषु क्षितिषु भवने भर्तुलक्षोणिभर्तुः।
क्रोडाशैलीकृतहिमगिरेर्हासभीतेव यस्य
भ्राम्यत्याज्ञा सुकृतवसतेर्भूः प्रतापोदयानाम् ॥
(विक्रमांक० : १८ : ३८)

द्रष्टव्य : वायु० : ४५ : १३६, मत्स्य० : ११४ : ५६, आदि० : १५५ : २, भीष्म० : ५१ : ७, सभा० : २७ : १८, ५२ : १४, वन० : २७१ : १२-१४, १८-२२, २८, विराट : अध्याय ३०-३२;

पाठभेद :

श्लोक सं० १४५ में 'नीवि' के लिये पार्श्व टिप्पणी पर 'नीविः। नेय इति देश भाषया' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१४५ (१) नीवि : नीवी का मैंने यहाँ अर्थ अरिप्रतिभू = दुश्मन का जामिन = बन्धक किया है। जिसका साधारण अर्थ सशरीर जामिन किंवा बन्धक रखना किया है। कल्हण ने इसी अर्थ में इस शब्द का पुनः प्रयोग (रा:० ७ : १४७४, ८ : ८३९, १२५९, २२१६) तथा शुक ने (श्लोक २५०) में किया है। नीवि का दैशिक शब्द नेय है। दुर्बल राजा जब सवल राजा के पास अपना प्रतिनिधि किंवा किसी को जामिन रूप में रख कर सन्धि अथवा मैत्री कर मस्तक झुका लेता है तो उसे नीवि कहते हैं। काश्मीरी भाषा में नीवि को 'नेय' कहते हैं।

अथर्व वेद में नीवि का प्रयोग भीतर पहनने वाले वस्त्र के रूप में किया गया है। (८ : २ : १६) परन्तु वह अर्थ यहाँ अभिप्रेत नहीं है।

अथ तत्कटकं भ्राम्यद्भूरिमण्डलनायकम् ।
वीक्ष्य संमुखमायान्तं महार्णवमिवोल्बणम् ॥१४६॥

१४६. भ्रमण करते, प्रचुर मण्डल नायकों से युक्त, सम्मुख आते महासागर तुल्य, भयंकर उसके कटक को देखा ।

समागमक्षणे यस्माच्छङ्कमानः स्वबन्धनम् ।
पलाय्य प्रययौ दूरं निर्वाणौजोविजृम्भितः ॥१४७॥

१४७. समागम काल में अपने बन्धन की आशंका से ओज हीन (वह) भागकर दूर चला गया ।

यमप्रतिमसौन्दर्यमद्याप्याहुः पुराविदः ।
तमेवाद्राक्षुरुत्त्रस्ता नृपाः कालमिवोल्बणम् ॥१४८॥

१४८. पुराविद् (आज भी) जिसे अप्रतिम[1] सुन्दर कहते हैं, उसे ही त्रस्त नृप काल सदृश भयंकर देखते थे ।

उच्चखानालखानस्य संख्ये गुर्जरभूभुजः ।
बद्धमूलां क्षणाल्लक्ष्मीं शुचं दीर्घामरोपयत् ॥१४९॥

१४९. युद्ध में उसने गुर्जर[1] नृपति अलखान[2] की बद्ध मूल लक्ष्मी को क्षण में उत्खनित कर दीर्घ शोक स्थापित कर दिया ।

पादटिप्पणी :

१४८ (१) अप्रतिम : कल्हण के समय पुराविद् कहते थे कि शंकरवर्मा अप्रतिम सुन्दर व्यक्ति था । कल्हण के समय तक राजा शंकरवर्मा की सुन्दरता की बात याद थी । कल्हण ने वर्णन का आधार भी बता दिया है कि उसे पुराविदों से यह बात ज्ञात हुई थी । कल्हण तरंगिणी स्रोत वर्णन में अपने स्रोतों का उल्लेख किया है । परम्परा भी एक स्रोत है ।

पादटिप्पणी :

१४९ (१) गुर्जर : आइने अकबरी में उल्लेख है कि राजा ने गुजरात विजय की । (पृष्ठ : ४३७) विन्सेण्ट स्मिथ के मतानुसार गुर्जर हूण वंशीय थे। वह कहता है—हूणों का प्रायः पुस्तकों तथा गुर्जर मुद्राओं के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है । गुर्जर का नाम आज भी गूजर रूप में प्रचलित है । यह जाति उत्तर पश्चिम भारत (पाकिस्तान सहित) में खूब फैली है। प्रारम्भिक गूर्जर प्रतीत होता है कि प्रवासी थे। उनका श्वेत हूणों से निकट तथा रक्तसम्बन्ध था। उन्होंने राजस्थान में एक बड़े राज्य की स्थापना की थी। उसकी राजधानी भीलमाल किंवा श्री माल थी । वह स्थान आबू से तीस मील उत्तर पश्चिम है । कालान्तर में भीलमाल के गुर्जर प्रतिहार राजाओं ने कन्नौज विजय किया और उत्तर भारत में श्रेष्ठ शक्ति हो गये । (स्मिथ : अरली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३२१)

गुर्जर किंवा गूजर जाति यमुना नदी तट, सहारनपुर, जगाधरी, बुन्देलखण्ड, ग्वालियर, गुजरात, खिड़ी, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश, दक्षिणी पंजाब, टेहरी, गढ़वाल, और जौसोर बॉबर की पहाड़ियों में

निवास करती है। इनका मुख्य उद्यम पशु पालन है। जाट, गूजर एवं अहीर एक ही वर्ग की जातियाँ उनमें मिलती समताओं के कारण प्रतीत होती हैं। गूजर हिन्दू तथा मुसलमान दोनों होते हैं किन्तु उनके सामाजिक रीति रिवाज मिलते है। दोनों में गोत्र बहिर्विवाह होते हैं। उनके गोत्र राजपूतों के तोमर भट्ठी, रावल, राठी के समान होते है। वे अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं। मातुल तथा सपिंड गोत्र में विवाह वर्जित माना जाता है। उन्नीसवी शताब्दी तक मुस्लिम पूर्वकालीन अरबों तथा राजपूतों के समान कन्या उत्पन्न होते ही मार देते थे। बहु-पतित्व की प्रथा भी कहीं कहीं पायी जाती थी। किन्तु आधुनिक काल में यह सब कुप्रथायें समाप्त हो गयी हैं। ज्येष्ठ भ्राता की विधवा पत्नी से विवाह और सन्तानोत्पत्ति की प्रथा प्रचलित है। परन्तु यह प्रथा भी नई रोशनी में परिवर्तित होती जा रही है। विधवा विवाह तथा विवाह विच्छेद को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। गूजरों में यह धारणा हो गयी है कि वे सोम वंशीय किंवा चन्द्रवंशीय क्षत्रिय हैं। उनमें क्षत्रियों के समान रीतियों तथा रिवाजों का प्रचलन व्याप्त हो गया है। मुस्लिम गूजर मेरठ तथा अवध में अधिक है। काश्मीर में मुस्लिम गूजर है। वहाँ हिन्दू गूजर शायद ही कहीं मिल जाय। मुस्लिम गूजरों की सामाजिक प्रथायें हिन्दू गूजरों से मिलती हैं। अवध के गूजर गाजी मियां की मज़ार पर बहराइच में मलीदा चढ़ाते हैं। तथापि नागपंचमी तथा होली जैसे हिन्दुओं के त्योहार भी मनाते हैं। परन्तु यह अब बन्द होता जा रहा है। मुस्लिम सुधारवादी आन्दोलन के कारण हिन्दू रीति रिवाज तथा प्रथायें समाप्त होती जा रही हैं। मुस्लिम गूजर शुक्रवार को पितरों के लिये भोजन दान देते हैं। पहले हिंदुओं की तरह स्पर्शास्पर्श का ध्यान रखते थे। हिन्दुओं में छूआछूत का भेद मिटने के कारण उनमें भी स्पर्शास्पर्श का भाव मिटता जा रहा है।

गुर्जरों की क्षत्रिय पदीय जाति गुर्जर प्रतिहार नाम से प्रसिद्ध हुई। जोधपुर के समीप मंदौर केन्द्र से आकर उन्होंने मालवा तथा कन्नौज के समीपवर्ती क्षेत्रों पर अधिकार कर लिया था। छठवीं शताब्दी के कर्ण वंश का शासन राजस्थान के गुर्जर प्रदेश में था। उड्ड नामक राजकुमार ने दक्षिण गुर्जर में भड़ौंच का राज्य स्थापित किया था। भड़ौंच का कर्णवंश ने अपनी वंशावली गुर्जर राजवंश से जोड़ी है। गुर्जरों का प्रथम बार भारतीय साहित्य में बाणभट्ट (सातवीं शताब्दी) ने हर्ष चरित में उल्लेख किया है। गुर्जर प्रदेश एवं जाति दोनों का वाचक है। सातवीं शताब्दी के एक शिला लेख से प्रकट होता है कि गुर्जरों का प्रदेश मालवा सीमावर्ती था। नवीं तथा दशवीं शताब्दी के अरबभूगोल लेखकों ने जुर्ज किंवा जुज्र प्रदेश का उल्लेख किया है। मत है कि यह गुर्जर का अरबी अपभ्रंश है। नवीं तथा दशवीं शताब्दी के शिला लेखों से प्रकाश पड़ता है। जोधपुर, जयपुर, अलवर एवं उत्तरी मेवाड़ का अंचल गुर्जर प्रदेश में था। अलवर के राजा मथन देव को गुर्जर प्रतिहारान्वय अर्थात् गुर्जर का प्रतिहार वंश कहा गया है। प्रतिहार वंश की एक शाखा छठवीं शताब्दी के मध्य से नवीं शताब्दी के मध्य तक जोधपुर में राज्य करती थी जो प्राचीन गुर्जर प्रदेश में था। अलबेरूनी (सन् १०३० ई०) ने गुजरात का उल्लेख किया है। उसमें अलवर, जयपुर राज्यों के कुछ भाग एवं नहरवल अर्थात् अनहिल्ल पट्टन सम्मिलित था। ग्यारहवीं शताब्दी तक गुजरात गुर्जर, गुर्जरात्र नाम से प्रसिद्ध था। अट्ठारहवीं शताब्दी में उत्तर प्रदेश का सहारनपुर जिला गुजरात के नाम से अभिहित होता था। इस समय ग्वालियर का एक जिला गुर्जर गढ़ कहा जाता है। गुजरात जिला, गूजर खान एवं गुजरान वाला स्थान पंजाब में है। सातवीं शताब्दी के मध्यवर्ती काल में गुहिल वंश, जयपुर एवं उदयपुर कुछ भागों पर शासन करता था। वह प्राचीन गुर्जर राज्य का भाग माना जाता था। इस राजवंश के बारह राजाओं का नाम ज्ञात है—उनमें पहला राजा भर्तृ पट्ट तथा अन्तिम राजा

तस्मै दत्त्वा टक्कदेशं विनयादङ्गुलीमिव ।
स्वशरीरमिवापासीन्मण्डलं गुर्जराधिपः ॥१५०॥

१५०. गुर्जराधिप ने विनय पूर्वक उसे टक्क देश[1] प्रदान कर, मंडल की उसी प्रकार रक्षा की, जैसे अंगुलि[2] दान कर, शरीर की रक्षा की जाती है।

का नाम बालादित्य था। बालादित्य का काल दशवीं शताब्दी का मध्य माना जाता है। उस काल के प्राप्त अभिलेखों में गुर्जरेश्वर एवं गुर्जर इतिहासज्ञों का मत है कि इसी वंश के लिये प्रयुक्त हुआ है। मालवा के प्रतिहार वंश की आधीनता गुहिल वंश ने आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्वीकार कर ली थी। इसके फलस्वरूप वत्सराज के पुत्र नाग भट्ट द्वितीय का उल्लेख एक राष्ट्रकूट अभिलेख में गुर्जरेश्वर पति रूप में प्राप्त हुआ है।

मैंने राजस्थान का अत्यधिक भ्रमण किया है। मेवाड़ और मुख्यतः उदयपुर के लोग गुजराती बोल और समझ लेते हैं। जोधपुर की भी यही अवस्था है। पढ़े लिखे गुजराती भाषा समझ लेते हैं। दक्षिणी पश्चिमी राजस्थान में गुजराती भाषा का प्रभाव प्रगट है। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन काल तथा इतिहास का वह तथ्य सत्य है कि गुर्जर का शासन राजस्थान के भागों पर था।

यहाँ पर गुर्जर का अभिप्राय पंजाब के गुजरात जिला से लगाना चाहिए। गुजरात तथा गुजरान वाला जिला दोनों ही प्राचीन गुर्जरों से सम्बन्धित हैं और उनका नाम ही गुर्जरों पर आधारित है। पिट्टो के अभिलेख से पता चलता है कि पंजाब का करनाल जिला भी गुर्जर में था। (इपिग्राफिक इण्डिका : १ : २४५–२४८)

(२) अलखान : अलीखान। विल्सन (हिन्दू हिस्टोरी (पृष्ट : ६५) ने ध्यान आकर्षित किया है कि अलखान नाम काश्मीरी एवं भारतीय नहीं अपितु मुस्लिम नाम वाचक है। दशवीं शताब्दी के समीप मुसलमान लोग मुलतान तक अस्थायी रूप से पहुँच गये थे। (हरिनौद मेम्बायर : २१२ पृष्ठ) गुजरात पर उस समय तक मुसलमानों का अधिकार नहीं हुआ था परन्तु वे गुजरात लेने के प्रयास में थे। यहाँ गुजरात से पंजाब के गुजरात जिला का अभिप्राय है। इस प्रकार का अनुमान लगाना सम्भवतः उचित नहीं होगा क्योंकि कल्हण ने पुनः वर्णन किया है कि अलखान उदभाण्डपुर में लल्लिय शशि के अन्तर्गत था। काबुल का हिन्दू राजवंश का संस्थापक लल्लिय था। उसका शासन समस्त उत्तरी पंजाब पर महमूद गजनी आक्रमण के पूर्व था। उसके कारण मुस्लिम शक्ति भारत में प्रवेश नहीं कर सकी थी।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १५० में 'टंकदेशं' के लिये पार्श्व टिप्पणी में लिखा गया है—तक्कदेशः अट्कि नदी तटे शकरदो नाम भुट्टदेशाद्दूरं वर्तमानो योजनविंशतिकेन।'

पादटिप्पणी :

१५० (१) टक्कदेश : टक्क जाति को कुछ विद्वान् तूरानी जाति मानते हैं। टक्क टक्का तथा तक्षक को एक ही शब्द का पर्याय माना गया है।

(२) चीनी पर्यटक युवान क्वांग ने टक्क देश को तेश तथा उसकी राजधानी सरकल या स्याल कोट लिखा है। टक्कदेश चन्द्रभागा अर्थात् चनाव के पूर्व सीमावर्ती पर्वतीय प्रदेश को कहते हैं। ह्वेनत्सांग वर्णित 'त्सेह-किय' से टक्क प्रदेश जोड़ा जाता है। इसके प्रदेश के पूर्व में व्यास नदी विपासा पश्चिम में सिन्धु नदी थी। इसकी राजधानी सकल अर्थात् स्यालकोट के समीप थी। कुछ लोगों का मत है कि सांकल रावी तथा चनाव के मध्य था। टक्क जाति ह्वेनत्सांग के समय में उत्तरी पंजाब के अंचल पर

हृतं भोजाधिराजेन स साम्राज्यमदापयत् ।
प्रतीहारतया भृत्यीभूते थक्कियकान्वये ॥१५१॥

१५१. उसने थक्किय[1] वंशीय प्रतीहार भृत्य को भोजराज[2] द्वारा अपहृत (उसका) साम्राज्य दिलाया ।

शासन करती थी । अल्बेरूनी ने टकिशर पीर पंजाल के दक्षिणी भाग को कहा है । लोहर पर्वत माला पड़ोस में है । कुछ इतिहासकारों ने सांकल को स्याल-कोट मानने में शंका प्रकट किया है । टक्क का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने किया है । (समयमातृका : ६ : १५)

शाकल मद्रदेश की राजधानी था । वाहीक की राजधानी होने का भी उल्लेख मिलता है । हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में टक्क को वाहीक माना है । टक्क जाति उत्तरी पंजाब में हुएन्त्सांग के समय में शक्तिशाली थी । नवीं शताब्दी में टक्क की शक्ति दुर्बल हो गयी थी । कनिंघम ने टक्क को टकिशर से सम्बन्धित किया है । अल्बेरूनी के अनुसार यह क्षेत्र पीर पंतसल पर्वत श्रेणी के दक्षिण और लौहावर (लाहौर) के समीप तक था । टक्की लिपि भी किसी समय प्रचलित थी । इसे टाकी और टक्की भी कहते हैं । पंजाबी भाषा डोगरी के लिखने में प्रयुक्त होती थी । ग्रियर्सन के मतानुसार शारदा तथा लेडा लिपि की बहन एवं बुलर इसे शारदा से निकली उसकी पुत्री मानते हैं । स्वरों की इस लिपि में कमी है । टक्क देश को अटक नदी के तट पर तथा पंजाब गजेटियर में टक्क देश को झेलम और सिन्ध के मध्य माना है । दूसरा मत है कि झेलम और चनाव के मध्य टक्क देश था । उसे गुजरात राज्य के अन्तर्गत माना गया है । एक समय टक्क जाति पंजाब पर शासन करती थी । कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि टक्क हूण वंशीय थे । काश्मीर में ब्राह्मणों की एक उपजाति 'टक्कर' है । टक्क से इनका सम्बन्ध था कि नहीं अनुसन्धान का विषय हैं । अटक नदी का यहाँ तात्पर्य सिन्धु नदी से है । यदि पार्श्व टिप्पणी-कार का मत मान लिया जाय तो यह 'अकरद्' अर्थात् स्कर्ड वर्तमान अचल है । भोट्ट देश अर्थात् लद्दाख से स्कर्द पश्चिम ओर पड़ता है । लद्दाख से उसकी दी हुई दूरी भी लगभग ठीक ही है । टक्क देश का उल्लेख कल्हण ने पुनः (रा० : ७ : ५२०, १००१, १०६४ तथा ८ : १०९१) किया है ।

(२) अंगुलि दान : काश्मीर तथा समस्त भारत में यह प्रथा प्रचलित थी । काश्मीर में यह प्रथा थी कि जब जीवन का खतरा शत्रु से होता था तो एक उँगली कटा कर अपने प्राण की रक्षा करते थे (रा० : ८ : १५९४, १७३८, २२७२ तथा ३३००) प्राचीन रोम में यह प्रथा अगुष्ठ दान रूप में प्रचलित थी । रोम में जो सेना में नहीं जाना चाहता था वह मार्स अर्थात् मंगल के मन्दिर में जाकर अपना अँगूठा कटा देता था । महाभारत काल में द्रोणाचार्य ने एकलव्य से अँगूठा कटवाकर अँगूठे की गुरुदक्षिणा ली थी । इसका अर्थ होता था सैनिक कर्म से विमुक्ति । शरणागत होना तथा धनुष चलाने अथवा शस्त्र धारण करने के अयोग्य अपने शरीर को बना देना । अपने शरीर की रक्षा एक उँगली कटा कर जिस प्रकार की जाती है उसी प्रकार गुर्जर नरेश ने टक्क देश देकर समस्त देश की रक्षा की थी । द्रष्टव्य : रा० : ८ : १५९४

पादटिप्पणी :

१५१ (१) थक्किय : यह शब्द पुनः राज-तरंगिणी में नहीं आया है । रा० : ४ : ४९४ में पण्डित थक्किय का उल्लेख है ।

(२) भोज : भोज जनरल कनिंघम के मत से स्वतंत्र राजा था । उसका उल्लेख देवगढ़ शिलालेख सन् ८०२ में मिलता है । इसी प्रकार भोज अधिराज का उल्लेख सन् ८८२-८८३ ई०

दरत्तुरुष्काधिपयोर्यः केसरिवराहयोः ।
हिमवद्विन्ध्ययोरासीदार्यावर्त इवान्तरे ॥ १५२ ॥

१५२. दरद[1] एवं तुरुष्क[2] अधिपतियों के मध्य जो सिंह एवं वाराह तुल्य उसी प्रकार स्थित था जैसे विन्ध्य एवं हिमालय के मध्य आर्यावर्त[3] —

पेहोआ अभिलेख तथा सन् ८७६ ई० ग्वालियर के शिलालेख में मिलता है। सियोदोनी अभिलेख जिसका सम्पादन श्री कील होर्न ने किया है। उसका मत है कि उसे कान्यकुब्ज का राजा मान लेना चाहिए। (आर्कियो० : सर्वे ऑफ इण्डिया : २ : २२५; १० : १०१; इपिग्राफिक इण्डिया १ : १५५, १७०, १८६) श्री फ्लीट : इण्डियन एण्टीक्वेरी ५ : ११०) पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि भोजराज शंकरवर्मा के पश्चात् हुआ था। विलसन का मत है कि भोज के अर्ध शताब्दी पूर्व शंकरवर्मा हुआ था जो समय इतिहासकार उसका रखते हैं (६१)। इसे परिहार राजा मिहिर भोज (सन् ८३६–८८५ ई०) मान लिया जाय तो काल में व्यतिक्रम नहीं होता। क्योंकि शंकर वर्मा का काल सन् ८८३ से ९०२ ई० है। श्रोस्तीन ने भी भोज के विषय में सन्देह उत्पन्न किया है। उनका मत है कि सन् ८६२–८८३ ई० के मध्य कन्नौज शासक भोज को इससे मिलाया जाता है किन्तु यह परिचय सन्देहात्मक है। आधुनिक अनुसन्धानों से भोज का सम्भावित मृत्यु काल सन् ८८५ ई० होता है। उसका सम्भावित राज्यारोहण समय सन् ८३६ ई० है। उसका राज्य कालिंजर, गुजरात तथा मध्य एवं पूर्वीय राजस्थान तक विस्तृत था। भोज की शक्ति सन् ८८० ई० तक बढ़ती गयी जबकि उसे कलचुरी के कोक्कलराज ने पराजित किया। पाल, राष्ट्रकूट एवं कल्चुरी राज्यों के कारण उसकी विस्तारवादी योजना पर रुकावट आ गयी थी। उसे खेतक (कैरा जिला) तथा मालवा से भी हाथ धोना पड़ा। भोज का राज्य उत्तर पश्चिम में पंजाब तक फैला था। शंकर वर्मा का दिग्विजय उसके राज्यप्राप्ति सन् ८८३ ई० के पश्चात् ही आरम्भ होता है। भोज अत्यन्त प्रतिभाशील था। उसने अनेक राजाओं को अपने आधीन किया था परन्तु उसके उत्तरार्ध जीवन में गिरावट आ गयी थी। उसे पराजित होना पड़ा था। सम्भव है कि राजा शंकर वर्मा जो दिग्विजय के लिये निकला था उससे भोज युद्ध न कर थक्किय वंशीय प्रतिहार भृत्य का राज्य वापस दिला दिया होगा।

पादटिप्पणी :

१५२ (१) दरद : द्रष्टव्य : परिशिष्ट 'घ' दरद : राज० : खण्ड : १ : पृष्ठ १२३। बिलसन के मत से दरद काश्मीर के उत्तर पश्चिम रहते थे।(६१)

(२) तुरुष्क : द्रष्टव्य : पादटिप्पणी रा० : १ : १७० तथा जोन० : राज० : श्लोक ६४७। विलसन का मत है कि तुरुष्क काश्मीर के दक्षिण-पूर्व रहते थे। वे लोग गजनी के सूबेदार थे। गजनी उस समय बुखारा के समनियन सुल्तानों के अधीन थी। यह उपमा इस प्रकार ठीक बैठती है (६२)।

(३) आर्यावर्त : आर्यावर्त की सीमा बदलती रही है। वैदिक कालीन आर्यावर्त आज का नहीं है। कल्हण के समय आर्यावर्त मध्य देश समझा जाने लगा था। आर्यावर्त के उत्तर हिमालय, दक्षिण विन्ध्याचल, पूर्व बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर एक सामान्य परिभाषा आर्यावर्त की मानी गयी है। इसका अर्थ उत्तर भारत होता है। स्मृतियों के अनुसार विन्ध्य तथा हिमालय का मध्यवर्ती भूभाग आर्यावर्त माना गया है। (मनु० : २ : २१–२३), महाभारत में आर्यावर्त का उल्लेख मात्र है उसकी सीमा नहीं दी गयी है। (शान्ति० : ३२५ : १५)

ऋग्वेद में आर्य जाति का निवास स्थान सप्त-

उदभाण्डपुरे तस्थुर्यदीये निर्भया नृपा।
पक्षच्छेदव्यथात्रस्ता महार्णव इवाद्रयः ॥१५३॥

१५३. जिसके उदभाण्डपुर[1] में निर्भय होकर, नृप उसी प्रकार आश्रय प्राप्त किये थे; जिस प्रकार पक्षच्छेद[2] की व्यथा से त्रस्त पर्वत महार्णव में।

नक्षत्रेष्विव भूपेषु नभसीवोत्तरापथे।
यस्यैव विपुला ख्यातिर्मार्तण्डस्येव मण्डलम् ॥१५४॥

१५४. उत्तरापथ के[1] राजाओं में उसकी विपुल ख्याति उसी प्रकार थी जिस प्रकार आकाश के नक्षत्रों में मार्तंड[2] मण्डल की।

सिन्धु प्रदेश माना गया है। (१० : ७५) नदी सूक्त में आर्य देश में प्रवाहित नदियाँ—कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम), गोमती (गोमेल), सिन्धु, परुष्णी (रावी), शतद्रु (सतलज), वितस्ता, सरस्वती, यमुना तथा गंगा हैं। उपनिषद् काल में पंजाब से मिथिला तक का भू-भाग आर्य देश माना गया है। वसिष्ठ धर्मसूत्र (१ : ८--९) में आर्यावर्त की सीमा दी गयी है—पश्चिम सरस्वती के लुप्त होने का स्थान; पूर्व—कालकवन (प्रयाग), दक्षिण—-विन्ध्याचल पर्वत, उत्तर हिमालय। विष्णु पुराण में भारतवर्ष की सीमा दी गयी है : उत्तर— हिमालय, दक्षिण—समुद्र, (२ : ३ : १) आजकल भारतवर्ष का ही बोध आर्यावर्त से होने लगा है। विद्वानों में प्रायः मतैक्य है कि मनुस्मृति का मध्य देश तथा आर्यावर्त समान है। प्रयाग को ही मध्य देश की पूर्वीय सीमा माना गया है जो आर्यावर्त की पूर्वीय सीमा से मिलता है। द्रष्टव्य बौधायन धर्मसूत्र : १ : १ : २ : ९ ब्रह्माण्ड० : २ : १६ : ४९, १८ : ४७, ३१ : ८३, ४ : १६ : १७; मत्स्य० : १२१ : ४६, १४४ : ५७; सभा० : ४४ : ८, २७ : २०, वन० : १७७ : १२, उद्योग० : ४ : १५, भीष्म० : ९ : ६७, ५१ : १६, द्रोण० : ७० : ११, १२१ : ४२--४३, अनु० : ३५ : १७-१८।

दरदों की भाषा दरदी कही जाती है पामीर तथा पश्चिमोत्तर पंजाब की मध्यवर्ती आर्य कुल की भाषा है। इसे पैशाची संस्कृत की संज्ञा भी दी गयी है। दरद संस्कृत शब्द है। उसका अर्थ पर्वत होता है। दरद लिपि ललितविस्तर के अनुसार ६४ लिपियों में एक है।

पादटिप्पणी :

१५३ (१) उदभाण्डपुर : वर्तमान ओहिन्द। अल्बेरूनी के अनुसार कन्धार के शाही वंश की राजधानी था। सिन्धु तथा काबुल नदी के संगम पर यह नगर आबाद था। यह सिन्धु नदी के पश्चिम अटक के समीप है। यहाँ पर प्राचीन ध्वन्सावशेषों पर मकान तथा उनकी सामग्रियों द्वारा निर्मित मुसलमानी भवन मिलेंगे। उदभाण्ड का अर्थ जलकलश होता है। चीनी वर्णन से मालूम होता है कि आठवीं शताब्दी के मध्य उदपान अर्थात्—वर्तमान स्वात अपने पड़ोसी पर्वतों के साथ गान्धार के साथ मिला था। उस पर शाही वंश का राज्य था। यहाँ के हिन्दू राज्य के समाप्ति के साथ ही समस्त भारत मुसलमानों के लिए खुल गया। जिसकी पूर्णाहुति भारत विभाजन में पूर्ण हुई।

(२) पक्षच्छेद व्यथा त्रस्त-पर्वत : पुराणों में कथा आती है कि पूर्व काल में पर्वत उड़ते थे। उनके कारण विनाश होता था। इन्द्र ने पर्वतों का उड़ने वाला पंख काट दिया। पंख कटने पर पर्वतों का उड़ना बन्द हो गया। उन्होंने समुद्र में जाकर शरण ली।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५४ में 'विपुला ख्यातिर्मा' का पाठभेद 'विपुलख्यातिमा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१५४ (१) उत्तरापथ : द्रष्टव्य टिप्पणी रा० ;

स श्रीमाँल्लल्लियः शाहिरलखानाश्रयः क्रुधा ।
निराकरिष्णोः साम्राज्यात्तस्य सेवां न लब्धवान् ॥ १५५ ॥

१५५. वह अलखाना[1]श्रयी श्रीमान् लल्लिय[2] शाही ; क्रोध से अपदस्थ करने के इच्छुक उसकी सेवा (का अवसर) नहीं प्राप्त कर सका ।

---

४ : ३३७; भा० : ९ : २ : २६, ब्रह्मा० : ६ : ६३ : १०, वायु० : ८८ : १०, शान्ति० : २०७ : ४३ ।

(२) मार्तण्ड मण्डल : सौर मण्डल । द्रष्टव्य : मत्स्य० : १५ : १६ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५५ में 'मांल्लल्लियः' का पाठभेद 'ल्लल्लियः' तथा 'रिष्णोः' का 'रिष्णुः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५५ (१) अलखान : द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ५ : १४९ ।

(२) लल्लियशाही : लल्लिय ब्राह्मण था । उसने काबुल के तुर्क शाही राजाओं को पराजित कर वहाँ पर सन् ८७० ई० तक राज्य किया था । जब याकूब-ए-लइस अरब जनरल ने काबुल पर अधिकार कर लिया । तत्पश्चात् राजधानी ओहिन्द बनायी गयी । वह वंश सन् १०२१ तक राज्य किया । यह वंश हिन्दूशाही वंश कहा गया । काश्मीर के राजा ने लल्लिय अर्थात् कल्लर पर आक्रमण किया था । परन्तु इस आक्रमण से विशेष लाभ न हो सका । उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके ही एक वंशज सामन्त द्वारा राज्य हड़प लिया गया । अफगानिस्तान में कुछ मुद्राएँ श्री सामन्त नाम की प्राप्त हुई हैं । यह सम्भवतः इसी के काल की हैं । शंकर वर्मा का एक मन्त्री प्रभाकर था । वह शंकर वर्मा के पुत्र गोपाल वर्मा का मन्त्री हुआ । उदभाण्डपुर पर आक्रमण किया था । विद्रोही सामन्त को हराकर तोरमान को राज्य सिंहासन पर बैठाया था । उसने तोरमान का नाम बदल कर कमलुक रख दिया ।

अलबेरूनी ने कमलुक को कमालू लिखा है । उसके उत्तराधिकारी ने एक शिलालेख में कल अथवा कमल वर्मन लिखा है । इतिहासकार मुहम्मद औफ (सन् १२११ ई०) ने उसे हिन्दुस्तान का राय अर्थात् राजा नाम से सम्बोधित किया है ।

जबुलिस्तान का गवर्नर फर्दघान था । वह अमर विन लैथ (सन् ८७०—९०० ई०) के अन्दर था । अमर अपने भाई सफारिद का उत्तराधिकारी हुआ था । उसने शाही राज्य के अन्तर्गत हिन्दू तीर्थस्थान सकाबन्द को नष्ट कर दिया था ।

कमलुक मन्दिर नष्ट किए जाने से बिगड़ उठा था । उसने बदला लेने के लिए एक बड़ी सेना एकत्रित की । किन्तु जब उसे मालूम हुआ कि मुस्लिम फौज ने बहुत जमाव किया है तो आक्रमण न कर सका ।

वैहकी (सन् १०५९ ई०) के कथनानुसार सकाबन्द का मन्दिर भारत अफगानिस्तान के मार्ग पर एक दर्रा में स्थित था । यह स्थान जलालाबाद अर्थात् नगरहार के समीप था । अलबेरूनी के अनुसार शाही वंश के निम्नलिखित राजा हुए थे ।

लल्लिय	सन्	८८०—९००	ई०
सामन्त	,,	९००—९२०	,,
कमलुक (कमल)	,,	९२०—९४०	,,
भीमदेव	,,	९४०—९६०	,,
जयपाल	,,	९६०—९८०	,,
आनन्द पाल	,,	९८०—१०००	,,
त्रिलोचन पाल	,,	१०००—१०२१	,,

अलबेरूनी १ : २३७ तथा ३८४

अलबेरूनी वर्णित कल्लर ही लल्लिय शाही है । वह कहता है—कनिष्क के उत्तराधिकारी गण काबुल

पर राज्य करते थे। उस समय अन्तिम राजा लगतूरमान तथा उसका वजीर एक ब्राह्मण कल्लर था। कल्लर को छिपा खजाना मिल गया। उसका प्रभाव तथा शक्ति दोनों बढ़ गया।

तिब्बत वंशीय राजा लगतूरमान के हाथों से राजसत्ता निकलने लगी। कल्लर ने राजा को बन्दी बना लिया। स्वयं राजा बन गया। उसके पश्चात् काबुल पर ब्राह्मण सामन्त, कमलू भीम, जयपाल, आनन्दपाल और त्रिलोचन पाल ने राज्य किया। अन्तिम राजा त्रिलोचन पाल सन् १०२१ ई० में तथा उसका पुत्र भीम पाँच वर्ष पश्चात् मार डाले गये।

अरब फारस जीतते हुए बलख, वामियान, तथा काबुल विजय किया तो उन्हें तुर्कीशाही वंश का एक राजा राज्य करता हुआ मिला। उसे उन्होंने काबुल शाह कहा। वह जाति का तुर्क तथा धर्म उसका बौद्ध था। यह राज वंश बाम्हन शाही नाम से भी प्रसिद्ध था।

लल्लिय जो राजा का मन्त्री था उसने उदभाण्ड-पुर (ओहिन्द) में शाही राज वंश की स्थापना की। सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर अटक से १५ मिल ऊपर इस नगर का भग्नावशेष मिलता है। उस समय बलख तथा वामियान बौद्ध धर्म तथा भारतीय संस्कृति के प्रधान केन्द्र थे। वे फारस तथा चीन के मार्ग पर पड़ते थे।

अरबों का जब अभ्युदय हुआ तो वे मध्य एशिया में पहुँचे। वहाँ के लोग मुसलमान बना लिए गए। सभी देवस्थान नष्ट कर दिए गए। दसवीं शताब्दी के आरम्भ में फारस का 'समन' सरदार जो मुसलमान हो गया था उसका अधिकार वक्षु अर्थात् आमूदरया, फारस तथा अफगानिस्तान के एक भाग पर हो गया था।

सन् ८७० ई० में सफारिद याकूब इब्न लेथ ने लल्लिय शाही पर अधिकार कर लिया था। इस वंश ने सिन्धु तट उदभाण्डपुर में अपनी राजधानी स्थापित की थी। यह राज्य तुरुष्क अर्थात् काबुल दरद देश अर्थात् काश्मीर की कृष्ण गंगा की उपत्यका के मध्य स्थित था।

नव मुस्लिम 'समन' सरदार का राज्य उसके एक तुर्की गुलाम ने दबा लिया। गुलाम को उसका शासन करने के लिए नियुक्त किया था। एक तुर्की गुलाम अलप्तगीन ने गजनी में अपना राज्य स्थापित किया। उसका उत्तराधिकारी उसका गुलाम बलक्त-गीन हुआ। अलप्तगीन का एक दूसरा गुलाम सुबुक्त-गीन सन् ९७७ ई० में गजनी के आसन पर बैठा। उसने सन् ९८८ ई० में काबुल जीत लिया। (लम्पक) शाही राजा जयपाल ने जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

शाही शासन काल में एक चीन का पर्यटक की ए-३०० भिक्षुओं के साथ गिलगिट के मार्ग से गान्धार आया। उसका मूल निवास स्थान कान्सू प्रदेश अर्थात् उत्तरी पश्चिमी चीन में था। उसने सन् ९६० ई० में यात्रा निमित्त प्रस्थान किया था। आनन्द पाल यद्यपि मुस्लिम आक्रमण से त्रस्त था परन्तु गुण ग्राह-कता में वह किसी से कम नहीं था। उसके शत्रुओं ने भी यह बात मुक्त कण्ठ से स्वीकार की है।

कल्हण ने राजतरंगिणी के सप्तम सर्ग के ४७–६० श्लोकों में त्रिलोचन पाल के साथ हुए महमूद गजनी के संघर्ष का जो काश्मीर के दक्षिण तौसी नदी तट पर हुआ था वर्णन करता है। इस संघर्ष के कारण शाही राजा ने लम्पक (लगमान) तथा नग्रहार (जलालाबाद) खो दिया था। राजा के उदभाण्डपुर में पराजित हो जाने के पश्चात् भारत का द्वार केवल महमूद गजनी के लिए ही नहीं सदा और सर्वदा के लिए मुसलमान आक्रामकों के लिए खुल गया।

अलबेरूनी स्वयं दुःख प्रकट करते लिखता है कि शाही वंश में कोई बच नहीं गया। यह कहना ही पड़ेगा कि उन राजाओं ने महत्त्वपूर्ण तथा अच्छा कार्य करने से कभी मुख नहीं मोड़ा। वे उत्तम भावनाओं तथा चरित्र के प्रतीक थे।

शंकरपुर स्थापना :

एवं दिग्विजयं कृत्वा प्राप्तः स निजमण्डलम् ।
प्रदेशे पञ्चसत्राख्ये स्वनाम्ना विदधे पुरम् ॥१५६॥

१५६. इस प्रकार दिग्विजय[1] कर अपने मण्डल पहुँचकर उसने पंचसत्र[2] नामक प्रदेश (स्थान) में अपने नाम से पुर[3] निर्मित किया ।

---

१. शंकर पुर : वर्तमान पाटन है। (समयमातृका : २ : १३) श्रीनगर बारहमूला सड़क पर श्रीनगर से १७ मिल दूर यह स्थान है। यहाँ २ मन्दिरों के भग्नावशेष हैं। दोनों पाटन में हैं। तीसरा छोटा मन्दिर बड़े मन्दिर से १०० गज दूर था। मन्दिरों के निर्माण निमित्त शिला खण्ड परिहासपुर से लाये गये थे।

पाटन का अर्थ नगर तथा पत्तन होता है। अमर कोष पुरवर्ग २ : १ में नगर, पुर, पुरी, नगरी, पत्तन, पुटभेदन, स्थानीय निगम एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं। पाटन शब्द पत्तन का अपभ्रंश मालूम होता है। पाटन शब्द का अर्थ संस्कृत में तोड़ना तथा नष्ट करना होता है। पतंजलि द्वारा वर्णित पाटन प्रस्थ वाहीक का सम्भवतः एक नगर था। यूनानियों ने सिन्ध हैदराबाद के लिए पटल शब्द का प्रयोग किया है।

मैं वहाँ दूसरी बार १६ सितम्बर १९६२ को गया था। गाँव बहुत बड़ा है। सुगन्धेश मन्दिर के भग्नावशेष के पास पाकिस्तानी बाढ़ रोकने के लिए भारतीय सैनिकों की छावनी पड़ी थी। शंकर वर्मा ने अपने नाम से नगर बसाया था। शंकरपुर नाम रखा था। लोग शंकर नाम भूल गए परन्तु पुर शब्द के अर्थ में पाटन नाम प्रचलित है। पाटन तथा पत्तन शब्द पुर किंवा नगर के लिए प्रयुक्त किया जाता है। कल्हण तथा क्षेमेन्द्र दोनों ने इस नगर का वर्णन किया है। दोनों विशाल मन्दिर शंकर वर्मा तथा उसकी रानी सुगन्धा द्वारा निर्माण कराए गये थे।

परिहासपुर नगर की ख्याति कम करने तथा अपने नाम पर बसे नगर की ख्याति वृद्धि निमित्त शंकर वर्मा ने परिहासपुर नगर से पत्थर तथा निर्माण सामग्री लायी थी। यह असम्भव नहीं प्रतीत होता क्योंकि पाटन तथा परिहासपुर में केवल ७ मिल का अन्तर है।

पटन नगर मुख्य सड़क पर होने के कारण इस समय भी एक बड़े ग्राम के रूप में जीवित है। कल्हण के समय में भी यह बड़ा ग्राम था। व्यापार का एक केन्द्र था।

पटन का एक परगना के रूप में आइने अकबरी में अबुलफजल ने उल्लेख किया है। अकबर के मन्त्री राजा टोडरमल ने यहाँ अपना कैम्प लगाया था। काश्मीर उपत्यका के परगनों के स्थानों का बँटवारा कर रहे थे तो इस स्थान को भूल गये। अतएव पटन एक और परगना बना दिया गया। कालान्तर में तिलगाँव अर्थात् तिलगाम परगना का पटन एक मुख्य स्थान हो गया। पूर्वकालीन सेटलमेण्ट में यह तहसील का हेड क्वार्टर हो गया।

पम्वसर पटन के पूर्व गोन्ड इब्राहीम तथा अदिन नदी तक है उसे कल्हण ने 'पम्पासर' लिखा है। प्रतीत होता है कि राजा हर्ष ने पम्पासर के जल का नियन्त्रण कृषी निमित्त किया था।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५६ में 'स' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'शङ्कर वर्मा' तथा 'स्वनाम्ना' के लिये 'शङ्कर पोर' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१५६ (१) दिग्विजय : पीर हसन के अनु-

तस्य श्रीस्वामिराजस्य तनयोदक्पथप्रभोः ।
पूर्णिमेव क्षपाबन्धोः सुगन्धाख्याऽभवत्प्रिया ।।१५७।।

१५७. क्षपा (रात्रि) बन्धु (शशि) प्रिया पूर्णिमा सदृश उत्तरपथेश्वर श्री स्वामिराज[1] की तनया सुगन्धा उसकी प्रिया थी ।

तया समं पुरवरे सुरराजोपमो नृपः ।
तस्मिञ्शंकरगौरीशसुगन्धेशौ विनिर्ममे ।।१५८।।

१५८. इन्द्रोपम उस नृप ने श्रेष्ठ उस पुर में उस स्त्री के साथ शंकर गौरीश एवं सुगन्धेश[2] का निर्माण किया ।

सार पंजाब पर मुसख्खर (जीत) करके बम्बर के राजा को कैद कर लिया । और नगरकोट के राजा पृथ्वीचन्द के कान में (पुरस्कार) अताअत का हलका डाल दिया । अली खाँ वाली गुजरात को राजा ने अपने मुल्क पर काबिज़ रहने दिया । सिन्ध के रास्ता से खुरासान गया और काबुल, गजनी, और हेरात से लेकर हिन्दूकुश तक बहुत से मुल्क और शहर फतह कर लिये । पीरहसन यह भी लिखता है कि राजा बदखशाँ और गिलगित के मार्ग से काश्मीर लौट आया । (९६)

(२) पञ्चसत्र : यह वर्तमान पाटन या पटन है । श्लोक० : ५ : २१३ से प्रमाणित होता है । शंकर वर्मा के नाम से स्थापित हुआ था । पीरहसन लिखता है कि पंज शहर की ज़मीन पर शंकर ने पटन नामी शहर आबाद किया । (पृष्ठ : ९६) कालान्तर में केवल पाटन या पटन नाम से विख्यात हो गया ।

(३) पुर : शंकरपुर या शंकरपोर है । जनरल कनिंघम को उनके सहयोगी ब्राह्मण ने यही पहचान दी थी। (जे. ए. एस. बी : १८४८ पृष्ठ २८) श्री पाण्डित साहिबराम भी अपने तीर्थों में शंकर वर्मापुर का उल्लेख करते हैं। नगर का मूल नाम शंकरपुर था । यह बात क्षेमेन्द्र के समयमातृका से भी प्रकट होती है (समयमातृका २ : १३) शंकरपोर शुद्ध संस्कृत नाम का काश्मीरीकरण है । पीर हसन लिखता है कि पंज शहर की जमीन पर शंकर पत्तन वर्तमान नामी शहर आबाद किया । (पृष्ठ ९६) ग्राम शंकरपोर जो जिला शाहाबाद में है उसे गलती से शंकरपुर पहचान लिया है । इस समय पटन में पंचसत्र तथा शंकरपुर दोनों ही नामों का स्थानीय लोगों को ज्ञान नहीं है ।

आइने अकबरी में उल्लेख है कि राजा ने सिन्ध तत्पश्चात् दक्षिण विजय किया था । शंकरपुर द्रष्टव्य टिप्पणी श्लोक रा० : ५ : १५५ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५७ में 'तस्य' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'शङ्करवर्मण': तथा 'तनयो' के लिये 'कन्या' लिखा गया है ।

पादटिप्पणी :

१५७ (१) स्वामिराज : अनुमान लगाया गया है कि स्वामिराज दरद देश अथवा किसी पड़ोस के क्षेत्र का राजा था । दरद देश काश्मीर के उत्तर पड़ता है । इस समय तक मुसलमानों का प्रवेश दरदादि देशों में नहीं हुआ था । वहाँ के राजा हिन्दू थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५८ में 'गौरीश' का पाठभेद 'गौरेश' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५८ (१) शंकरगौरीश्वर : शंकरपुर

अथवा पाटन में दो मन्दिरों के विशाल भग्नावशेष आज पड़े हैं। वही शंकर गौरीश्वर तथ सुगन्धेश मन्दिर थे। पाटन में वह सबसे बड़ा मन्दिर है। राजा ने स्वयं इसका निर्माण कराया था। मैं यहाँ पहुँचा तो वृष्टि हो रही थी। सैनिकों का कैम्प मन्दिर से कुछ दूर पर पड़ा था। मैं एक रावटी में ठहर गया। पानी बन्द होने पर ध्वन्सावशेष पर पहुँचा। मन्दिर का गर्भ गृह १७ फीट वर्गाकार है। काश्मीर के अन्य विशाल मन्दिरों के समान इसका प्रांगण स्तम्भावली से वेष्ठित नहीं है। शिव का मन्दिर है। वहाँ गणेश की मूर्ति भी है। शैली मार्तण्ड मन्दिर से मिलती है। मन्दिर का द्वार पूर्व दिशा की ओर है। दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर बन्द है। किन्तु तीनों ही दिशाओं में मन्दिराकार रचनाएँ हैं। मन्दिर की मेखला भूमि में हैं। मुख्य द्वार पर सीढ़ियाँ समाप्त कर पहुँचा जाता है। मन्दिर द्वार के प्रवेश भाग के वाम दिशा की दिवाल में मन्दिराकार रचना है। मूर्तियाँ इतनी विकृत कर दी गयी है कि उन्हें पहचानना कठिन है। मन्दिर देवता के वाम तथा दक्षिण भाग में कटि प्रदेश तक ऊँचो उपासक तथा उपासिकाओं की मूर्तियाँ बनी हैं। वे भी अत्यन्त विकृत कर दी गयी हैं। इसके ऊपर त्रिभुजाकार स्थान में गणेश की प्रतिमा स्पष्ट दिखायी पड़ती है।

बारहमूला जानेवाली सड़क की वाम दिशा में यह मन्दिर है। सड़क से प्रायः सटा है। मन्दिर के शिलाखण्ड बिखरे अभी तक पड़े है। छोटी शिला ग्रामीण ज़ियारतों, कब्रिस्तानों तथा मसजिदों में लगाने के लिये उठा ले गये हैं। एक मुसलमान सज्जन मन्दिर के प्रांगण में फाटक लगा लिये थे। खोलकर अन्दर पहुँचा था। हिन्दू स्थानों को दखल करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति काश्मीर के मुसलमानों में है। क्योंकि दूर स्थानों में उन्हें कोई देखने वाला भी नहीं होता।

मन्दिर के शिलाखण्ड विशाल हैं। मन्दिर के चारों ओर प्राकार स्तम्भावली सहित काश्मीर के बड़े मन्दिरों की शैली पर था, इसका मुझे कोई चिह्न नहीं मिला। यदि रहा भी होगा तो वह गिर गया है क्योंकि मन्दिर के समीप तक का स्थान कृषक ग्रामीण अपने कार्यों में लाने लगे हैं। केवल पश्चिम दिशा में कुछ प्राकार का चिन्ह मिलता है।

(२) सुगन्धेश : यह मन्दिर १२ फिट ७ इंच वर्गाकार है। इसका अधिष्ठान दोहरा है। मन्दिर केवल एक तरफ खुला है। मन्दिर के प्रांगण में पहुँचने के लिये पूर्वीय प्राकार के मध्य में दीवाल में स्तम्भावली लगी थी। इस मन्दिर की विशेषता यह है कि लोहे के क्लेम्प (बन्द) दो पत्थरों के जोड़ों को बाँध रखने के लिये लगाये गये हैं। मन्दिर स्थान के पृष्ठ भाग में ऊँची भूमि है। स्तम्भावली लोप हो चुकी है। मुख्य प्रवेश द्वार तथा मन्दिर के मध्य चौकोर अधिष्ठान देवता के वाहन अथवा ध्वज प्रतिष्ठा हेतु बना है। शिला खण्ड बिखरे पड़े है। मन्दिर अपनी छाप दर्शकों पर छोड़ता है।

मन्दिर भव्य है। यह मन्दिर उत्तर दक्षिण तथा पश्चिम से बन्द है। तीनों दिशाओं की बाहरी दिवालों पर काश्मीरी शैली के मन्दिराकार बने हैं। मन्दिर का ऊपरी जहाँ से आरम्भ होता है दक्षिणी भाग ठीक अवस्था में है। स्तम्भों तथा पत्थरों पर की गई कलात्मक कृति देखी जा सकती है।

इस मन्दिर की मेखला दिखाई पड़ती है। मन्दिर के पूर्व इसके तोरण द्वार का भग्नावशेष है। पूर्वीय मन्दिर के द्वार से पूर्व की ओर ६० फिट दूर पर दिवाल अथवा परिक्रमा का चिन्ह अभी तक वर्तमान है। मन्दिर के पूर्व तथा दक्षिण तरफ दिवाल का खण्डित भाग दिखायी देता है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है। मन्दिर १३२ फिट लम्बा और लगभग इतना ही चौड़ा रहा होगा।

मन्दिर के पूर्वीय द्वार तथा तोरण द्वार के मध्य में खम्भों के अधिष्ठान बने हैं जिन पर यक्षों किंवा गन्धर्वों की चारों ओर चार मूर्तियाँ बनी हैं। खम्बा गोला तथा चौपहला है। इन खम्बों से अनुमान होता है कि मन्दिर के वर्तमान दिवाल के साथ मार्तण्ड शैली की स्तम्भावली बनी होगी। यहीं पर एक

द्विजस्तयोर्नायकाख्यो गौरीशसुरसद्मनोः ।
चातुर्विद्यः कृतस्तेन वाग्देवीकुलमन्दिरम् ॥१५९॥

१५९. उसने गौरीश एवं सुगन्धेश देव मन्दिरों में चातुर्विद्य वाग्देवी के कुल मन्दिर द्विज नायक को नियुक्त किया ।

परकाव्येन कवयः परद्रव्येण चेश्वराः ।
निर्लोठितेन स्वकृतिं पुष्णन्त्यद्यतने क्षणे ॥१६०॥

१६०. अद्यतन समय (आजकल) पर के काव्य में कवि एवं पर के द्रव्य में नृप काव्य एवं धन के अपहरण द्वारा अपनी कृति सुन्दर बनाते हैं ।

स्वल्पसत्त्वो नरपतिः स्वपुरख्यापनाय सः ।
सारापहारमकरोत्परिहासपुरस्य यत् ॥१६१॥

१६१. स्वल्प स्वत्व नृप ने स्वपुर की ख्याति हेतु परिहासपुर का सारभूत अपहृत कर लिया ।

शिलाखण्ड जो देहली पर है मेरी छड़ी से साढ़े चार छड़ी लम्बी तथा डेढ़ छड़ी मोटी तथा इतनी ही चौड़ी थी । इतना बड़ा शिलाखण्ड उठाकर देहली पर कैसे मानवीय श्रम से रखा गया होगा स्मरण कर आश्चर्य होता है । कल्हण ने 'यन्त्र' का वर्णन किया है । सम्भव है इसी यन्त्र से इन्हें उठाया और रखा गया होगा ।

सुगन्धेश मन्दिर के दक्षिण पूर्व की ओर तोरण द्वार और मन्दिर के मध्य एक और मन्दिर प्रांगण में बना है । बहुत से मन्दिरों में चारों दिशाओं में चार मन्दिर बने मिलते हैं ।

तोरण द्वार के बाहर पूरब तथा उत्तर के कोण पर एक मन्दिर के अधिष्ठान का चिन्ह मिलता है । इस स्थान पर कबरें गाड़ दी गयी हैं । सुगन्धेश के समीप जहाँ भी कुछ स्थान मिला है वहाँ कबरें गाड़ दी गयी हैं । कहना न होगा कि कबरिस्थान के मध्य जैसे ध्वस्त मन्दिर पुरातन गाथा गाता कबरिस्थान की शोभा बढ़ा रहा है ।

कल्हण के वर्णन से स्पष्ट होता है कि राजा शंकर वर्मा ने परिहासपुर के मन्दिरों के शिलाखण्डों को लाकर इन मन्दिरों का निर्माण कराया था ।

सुगन्धा महाभारत के अनुसार एक तीर्थ है । वहाँ जाकर मानव स्वर्ग लोक में प्रतिष्ठित होता है । (वन० : २४ : १०, ८४ : ३६) देवी भागवत के अनुसार एक देवी का नाम है जो माधव वन में है । सुगन्धा एक अप्सरा का भी नाम है (आदि० : १२२ : ६३)

पादटिप्पणी :

१५९ (१) नायक : भट्ट नायक अलंकार शास्त्र के लेखक थे । अभिनव गुप्त तथा उत्तर कालीन काश्मीरी लेखकों ने भट्ट नायक का उद्धरण दिया है ।

पादटिप्पणी :

१६०. सूक्ति संग्रह का १७२ वां श्लोक है ।

ख्यातिहेतुः पट्टवानं पशूनां क्रयविक्रयौ ।
इत्यादि यत्पत्तनेऽस्ति तत्तस्मिन्हि पुरेऽभवत् ॥१६२॥

१६२. ख्याति हेतु पट्टवान,[1] एवं पशुओं का क्रय विक्रय जो उस नगर (परिहासपुर) में था, वह उसके पत्तन[2] में हो गया।

राज्यप्रदेन नृपते रत्नवर्धनमन्त्रिणा ।
श्रीरत्नवर्धनेशाख्यो व्यधीयत सदाशिवः ॥१६३॥

१६३. नृप को राज्य प्रदान कर्ता मंत्री रत्नवर्धन ने श्री रत्नवर्धनेश नामक सदाशिव की प्रतिष्ठा की।

चित्रं नृपद्विपाः पूतमूर्तयः कीर्तिनिर्झरैः ।
भवन्ति व्यसनासक्तिपांसुस्नानमलीमसाः ॥१६४॥

१६४. आश्चर्य है : नृप रूपी गज, कीर्ति रूपी निर्झर से पवित्र मूर्ति होकर, भी व्यसन आसक्त रूपी पांसु स्नान से मलीमस हो जाते हैं।

पादटिप्णी :

१६२ (१) पट्टवान : इसका अर्थ सभी अनुवादकों ने वस्त्र बुनना अथवा बुनकारी शिल्प किया है। पट्टांशुक-महीन वस्त्र; रेशमी, ऊनी सभी प्रकार की बुनकारी से यहां तात्पर्य है।

पट्टू काश्मीरी ऊनी कपड़ा कोट, ओवरकोट आदि बनाने के काम भी आता है। पट्टू शब्द का मूल यह ही है। क्षेमेन्द्र ने लोकप्रकाश में योग पट्ट, पूजा पट्ट, कम्बली पट्ट, आदि का उल्लेख किया है। (लोकप्रकाश : पृष्ठ : ५१)

(२) पत्तन : यहाँ पत्तन से अर्थ, शंकर वर्मा के नगर से है। कल्हण का वर्णन कि नगर में ऊनी वस्त्र निर्माण तथा पशुओं आदि के क्रय विक्रय के कारण पत्तन की प्रसिद्धि हो गयी। पत्तन आज भी समृद्धि पूर्ण नगर है। ऊनी वस्त्र, पशु आदि का बड़ा बाजार है। तहसील का केन्द्र है।

पादटिप्पणी :

१६३ (१) रत्नवर्धनेश : इस स्थान का निश्चित प्रामाणिक पता नहीं मिला है। पाटन या पटन डाक बंगला से उत्तर खनन में एक वापी मिली है। यह स्थान प्राचीन ध्वन्सावशेष से लगभग १०० गज पश्चिम है, यानी तीन आयताकार सरोवर में रक्षित रखा गया है। मध्य सरोवर में लघुआकार का एक मन्दिर है। शिखर के अतिरिक्त इसका सब कुछ रक्षितावस्था में है। उसके चारों ओर द्वार हैं। शिव का मन्दिर है। सम्भव है कि यही स्थान रत्नवर्धनेश मन्दिर का रहा हो।

पादटिप्पणी :

१६४. सूक्ति संग्रह का १७३ वां श्लोक है।

आर्थिक शोषण :

अथ क्रमेण नृपतिर्लोभाभ्यासेन भूयसा ।
आधीयमानचित्तोऽभूत्प्रजापीडनपण्डितः ॥१६५॥

१६५. क्रम से प्रचुर लोभाभ्यास का वशीभूत नृपति, प्रजापीडन[१] में पण्डित हो गया ।

आरब्धैर्व्यसनैर्भूम्ना क्षीणकोशः क्षणे क्षणे ।
देवादीनां स सर्वस्वं जहारायासयुक्तिभिः ॥१६६॥

१६६. प्रभूत प्रारब्ध व्यसनों के कारण, प्रतिक्षण क्षीणकोश हो कर, उसने यत्न पूर्वक युक्तियों से देव आदि की सम्पति अपहृत कर ली ।

कर्मस्थाने पुरगृहग्रामादिधनहारिणा ।
तेनाट्टपतिभागाख्यगृहकृत्याभिधे कृते ॥१६७॥

१६७. गृह ग्राम पुर आदि का धनापहारी उस नृप ने अट्टपति[१] भाग एवं गृह कृत्य कर्म स्थान स्थापित किये ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६५ में 'आधीयमान' का, पाठभेद 'आधेयमान' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६५ (१) प्रजापीड़क : आइने अकबरी में उल्लेख किया गया है कि प्रारम्भ में वह न्याय पूर्ण राज्य करता था परन्तु जीवन के अन्तिम चरण में निर्दयी हो गया था । (पृष्ठ : ४३७)

पादटिप्पणी :

१६७ (१) अट्टपति : अट्ट का अर्थ हाट, बाजार, मार्केट होता है । बाजार तथा भूमि का यह राजकीय भाग कर था । इसका शाब्दिक अर्थ होगा हाट या बाजार पति जो बाजार से स्वामी अर्थात् राजा का भाग वसूल करता था । कल्हण के शासकीय प्रबन्ध का वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्री लारेन्स के 'वैली' के सत्तरहवें अध्याय का अध्ययन करना आवश्यक है । (पष्ठ ३९९) रा० : १०८८, ११०७;८ : ४,२२२; २५१३, के अध्ययन से पता चलता है कि करों की व्यापक व्यवस्था काश्मीर में थी । उनसे जनता पीड़ित रहती थी । अत्यन्त प्राचीन काल से डोंगरा शासन के अन्त तक काश्मीर में बाजार के सामानों पर अनेक प्रकार के विभिन्न कर राज का एकाधिकारत्व (मोनो बोली) तथा बेगार प्रथा जारी थी । बेगार प्रथा भारतीय ग्रामों में स्वाधीनता के पूर्व तक प्रचलित थी । अब भी नगरों से दूरवर्ती ग्रामों में यह प्रथा किसी न किसी रूप में प्रचलित है यद्यपि वर्तमान सुधारवादी कार्यों के कारण इसका शीघ्रता पूर्वक लोप होता जा रहा है । उन्नीसवीं शताब्दी में करों की क्या व्यवस्था थी इस पर लारेन्स का वैली ग्रन्थ यथेष्ट प्रकाश डालता है । (वैली : पृष्ठ : २३६) उसमें विविध प्रकार की दुकानों पर प्रत्यक्ष तथा अन्य वस्तुओं पर कर लगाये गये थे । यह प्रथा अकबर के समय में भी प्रचलित मिलती है । आइने अकबरी (२ : ३६६) इस पर विस्तार के साथ प्रकाश डालती है । इस प्रकार करों को वसूल करने के लिये अट्टपति भाग कर्म स्थान बनाया गया था । गृह कृत्य कर्म स्थान का वर्णन रा० : ५ : १७६ में किया गया है । गृह कार्य जैसे विवाह, यज्ञोपवीत आदि के समय राज्य कर लगता था । इस प्रकार

धूपचन्दनतैलादिविक्रयोत्थं समाददे ।
द्रविणं देववेश्मभ्यः क्रयमूल्यकलाच्छलात् ॥ १६८॥

१६८. देव गृहों से धूप, चन्दन, तैल आदि के विक्रय (से) प्राप्त द्रव्य, क्रय मूल्य (वृद्धि) के व्याज से यत्न पूर्वक ग्रहण करने लगा । [1]

प्रत्यवेक्षां मुखे दत्त्वा विभक्तैरधिकारिभिः ।
चतुःषष्टिं सुरगृहान्मुमोषेतरदञ्जसा ॥१६९॥ [1]

१६९. नियुक्त अधिकारियों द्वारा प्रत्यवेक्षा प्रदान कर, शीघ्र चौसठ देवगृह[2] अपहृत कर लिया ।

ग्रामान्देवगृहग्राह्यान् राजा प्रतिकरेण सः ।
स्वयं स्वीकृत्य चोत्पत्तिं क्ष्मां कार्षक इव व्यधात् ॥१७०॥[1]

१७०. वह प्रतिकर[2] द्वारा ग्रामों, देवगृह ग्राह्यों एवं उत्पत्ति को स्वयं अपनाकर उसी प्रकार हो गया जिस प्रकार पृथ्वी को अपनाकर कृषक ।

के करों का उल्लेख कल्हण ने (रा० ८ : १७२८) किया है। गृह कृत्याधिकार का पुनः उल्लेख (रा० : ७ : ४२ में) किया गया है ।

(२) गृहकृत्य : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ५ : १७६ इसका वर्णन क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला में किया है (नर्ममाला : १ : ३२, ३ : ८८) उसने गृहकृत्याधिपति नामक प्रथम परिहास लिखा है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६८ 'नतैला' का पाठभेद 'नचेला' 'मूल्य' का 'मूल्ये' तथा 'लात्' का 'कलाल.भ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६८ (१) काश्मीर में मन्दिरों के आय का ग्रहण राजा करने लगा । यह प्रथम उदाहरण है । मध्य युग में इस प्रकार के अनेक उदाहरण यूरोपीय देशों के चर्चों पर लगी सम्पत्ति हरण की घटनाओं के मिलते हैं । भारत में आज भी अनेक देवस्थानों पर सम्पत्ति का निज उपयोग पण्डे, पुजारी तथा मन्दिरों के स्वामी करते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६९ में 'मुमोषेत, का पाठ भेद 'मुमोचेत' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१६९. (१) इस श्लोक का भावार्थ होगा 'विशेष पर्यवेक्षकों के व्याज से नियुक्त अधिकारियों द्वारा छल से चौंसठ देव मन्दिरों का सर्वस्व हरण कर लिया ।

(२) देवगृह : यह सब देव गृह पूर्ववर्ती राजाओं तथा उनके वंशजों द्वारा स्थापित किये गये थे । इस प्रकार के देवस्थान डोंगरा राज में राज्य नियन्त्रण में थे ।

भारत के लिये यह चाहे असाधारण बात मानी जायगी परन्तु मध्य युग में यूरोपीय देशों में देवार्पित सम्पत्ति हरण कर लेना साधारण बातें थीं । उनका इतिहासअत्यन्त रक्त रंजित है। चर्च एवं स्टेट का संघर्ष शताब्दियों तक यूरोप तथा पश्चिमी देशों में चलता रहा है ।

पादटिप्पणी :

१७० (१) इस श्लोक का भावार्थ होगा ;

तुलां कृत्वां त्रिभागोनां वर्षदेयां स पर्षदे ।
भुक्तिकम्बलमूल्यादिदम्भादभ्यधिकं ददौ ॥१७१॥

१७१. परिषद्[1] का वार्षिक देव तुला प्रमाण में त्रिभाग न्यून करके, भोजन, कम्बल, आदि का मूल्य अधिक प्रदान करने का उसने दम्भ किया ।

दिगन्तरस्थो ग्रामीणानूढभारानानागतान् ।
तद्देशार्घैर्भारमूल्यं वर्षमेकदण्डयत् ॥१७२॥

१७२. दिगन्तर में गये इसने भारवाही ग्रामीणों के न आनेपर तद्देशीय भारमूलानुसार एक वर्ष को मूल्य (परिमाण) से दण्डित किया ।

'राजा ने कृषकों के समान वास्तविक निर्दिष्ट प्रतिकर देकर मन्दिरों पर चढ़े ग्रामों में स्वयं कृषि करने लगा ।'

प्रतिकर मालगुजारी या भूमिकर के लिये प्रयोग किया जाता है जिससे किसी प्रकार की आय कर द्वारा नहीं होती । यह एक प्रकार की क्षति पूर्ति भी थी जो माफी जमीन से हटे भूमि मालिकों को राज्य देता था ।

(२) प्रतिकर : क्षतिपूर्ति से यहां भाव लगाना चाहिए । जिस भूमि से मालगुजारी आदि वसूल नहीं होती उसी पर प्रतिकर कहा गया है । यह एक प्रकार की क्षति पूर्ति थी जो राज्य माफी जमीन पर से हटे लोगों को देता था । ग्रामों आदि की आय राज्य लेता था । उसके बदले में क्षति पूर्ति के तौर पर निश्चित रकम मन्दिरों आदि को देता था । महाराज गुलाब सिंह ने मुगल, पठानों एवं सिखों द्वारा दी गयी जागीर आदि जब्त कर ली थी और उसके एवज में निश्चित रुपया राज्य कोश से दिया जाता था । स्वाधीनता के पश्चात् भारतीय जमींन्दार, तालुक्केदारी आदि प्रथा का अन्त हो गया तो प्रदेशीय राज्य सरकारों ने हरजाना स्वरूप बाण्ड दिये थे ।

राजा देवोत्तर भूमि अधिकार में कर कृषि करने लगा । यह प्रथा प्राचीन थी । इस प्रकार की कृषि डोंगरा काल तक होती रही है उसे खुदकाश्त काश्मीर में कहते थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७१ में 'भुक्ति' का पाठभेद 'भुक्त' तथा 'दम्भाद' का 'दम्भा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७१ (१) पर्षद् : इस श्लोक का अनुवाद कई प्रकार से अनुवादकों ने किया है । 'पर्षद्' शब्द का कुछ अनुवादकों ने अर्थ मन्दिरों पर चढ़ी द्विज परिषद् की सम्पत्ति तथा कुछ ने पर्षद् का अर्थ पार्षद अर्थात् राज्य कर्मचारी लगाया है । श्लोक का भाव होता है—तुला अर्थात् तराजू के तौल में तृतीयांश कम करके उसने पर्षद को भोजन, कम्बल आदि कम दिया परंतु अभिमान यह किया कि उसने तौल में अधिक दिया है ।

निश्चित कृषि उत्पादन किंवा अन्न देने में राज्य अधिक लाभ उठाने लगा । क्योंकि राज्याधिकारियों के लिये कम तौलना तथा अन्य तिकड़म करके पाने वाले साधारण लोगों को धोखा देना सरल था । काश्मीर में मालगुजारी स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ पहले तक वस्तु अर्थात् उपज में ली जाती थी । इस प्रथा का उल्लेख अबुल फजल आइने अकबरी में करता है । प्राचीन हिन्दू राज्य में यह प्रथा प्रचलित थी । राजकीय कार्यों में अधिकारियों एवं कर वसूल करने वालों में जो स्वाभाविक भ्रष्टाचार व्याप्त रहता है उससे काश्मीर अछूता नहीं था । लारेन्स ने (वैली : पृष्ठ ४४०) इसका वर्णन किया है ।

पर्षद् का एक अर्थ कारपोरेशन अर्थात् संस्थान

वर्षेऽपरस्मिन्निखिलान्भारमूल्यं निरागसः ।
तथैव संख्यया ग्राम्यान्प्रतिग्राममदण्डयत् ।।१७३।।

१७३. दूसरे वर्ष प्रत्येक ग्राम के निरपराधी निखिल ग्रामीणों को उसी (प्रमाण) संख्या से भार मूल दण्ड दिया ।

बेगार प्रथा का आरम्भ

इत्येषा रूढभारोढिः प्रथमं तेन पातिता ।
दारिद्र्यदूती ग्रामाणां या त्रयोदशधा स्थिता ।।१७४।।

१७४. सर्व प्रथम उसके द्वारा प्रचलित ग्रामों की दारिद्र्य दूती यह रूढ़ भारोढि[1] (बेगार) तेरह प्रकार की हुई ।

स्कन्दकग्रामकायस्थमासवृत्त्यादिसंग्रहैः ।
अन्यैश्च विविधायासैर्व्यधाद्ग्रामान्स निर्धनान् ।।१७५।।

१७५. उसने स्कन्दक[1] एवं ग्राम कायस्थों[2] के मासिक वेतन आदि संग्रहों तथा अन्य विविध यत्नों द्वारा ग्रामों को निर्धन बना दिया ।

भी लगाया गया है । द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० : ५, ४६६ तथा ४ : २०५ ।

पाद टिप्पणी :

(१) भारोढ़ि : श्लोक संख्या १७२ से १७४ तक कल्हण काश्मीर में बेगार का वर्णन करता है । स्वाधीनता के पूर्व कर बेगार प्रथा काश्मीर में भारत के अन्य भागों के समान प्रचलित थी । सड़कों तथा सुगम भार वाहन साधनों के अभाव में मानव द्वारा ही भार वहन का कार्य अन्य साधनों की अपेक्षा अधिक लिया जाता था। रूढ़ भारोढि का पुनः उल्लेख (रा० : ८ : २.५१३ तथा ७ : १०८८) कल्हण ने किया है । (द्रष्टव्य लॉरेन्स : वैली : ४१४)

शंकर वर्मा पहला राजा नहीं था जिसने बेगार प्रथा प्रचलित की थी । यह प्रथा पूर्वकाल से प्रचलित थी । उसे उसने नियमित रूप दिया । जो लोग बेगार करने नहीं आते थे उनके लिये दण्ड की व्यवस्था की थी । प्रथम बार कार्य न करने पर जितना बेगार का भाड़ा होता था उससे अधिक जुर्माना लगाया जाता था । यदि वह दूसरी बार नहीं आता था तो समस्त गाँव पर हर्जाना या जुर्माना लगाया जाता था । कल्हण ने तेरह प्रकार के लगने वालों करों का उल्लेख नहीं किया है । रूढभारोढि का पुनः वर्णन कल्हण (रा० : ७ : १०८८ में) किया है । केवल मन्दिरों के पुरोहित ही रूढ़-भारोढ़ि की सीमा से बाहर थे ।

पादटिप्पणियाँ :

१७५ (१) स्कन्दक : इस शब्द का उल्लेख क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला में किया है । (२ : ९८) इस शब्द का अर्थ एवं इस कर्म स्थान का निश्चित पता नहीं चलता । क्षेमेन्द्र के समय मात्रिका में स्कन्दक शब्द का प्रयोग किया गया है । गाँव का मुखिया अर्थात् वर्तमान मुकद्दम तुल्य था । लम्बरदार भी उसे कह सकते हैं । वह मालगुजारी सरकार को देने के लिये गाँव की तरफ से उत्तरदायी था । वह ग्राम शासन का एक महत्त्वपूर्ण यन्त्र था । (वैली : ४४) यह शब्द स्कन्धक अथवा स्कन्धावार भी हो सकता है । (रा० : १ : ६०)

मध्य युग तथा आधुनिक काल में कायस्थ जाति विवादास्पद विषय रही है । बंगाल उच्च न्यायालय

तुलापहारोपचयग्रामदण्डादिसंग्रहैः ।
इत्येष तेन संवाहो गृहकृत्ये प्रवर्तितः ।।१७६।।

१७६. तुलापहार की वृद्धि एवं ग्राम दण्ड आदि के संग्रहों से वह गृहकृत्य[1] प्रवर्तित करता था ।

का एक निर्णय हुआ है उसमें कायस्थ शूद्र माना गया है। और यहाँ तक कहा गया कि कायस्थ डोम कन्या से विवाह कर सकते थे। पटना तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालयों ने कायस्थों को द्विज माना है न कि शूद्र। कायस्थ शब्द गौतम आपस्तव बौधायन एवं वशिष्ठ एवं मनुस्मृति में नहीं मिलता। 'विष्णु धर्मोत्तरसूत्र' में कायस्थों का उल्लेख मिलता है। सबसे अधिक उल्लेख राजतरंगिणी में मिलता है। याज्ञवल्क्य स्मृति में उल्लेख आता है कि राजा को कायस्थों से जनता की रक्षा करनी चाहिए। (१ : ३२२) मिताक्षरा कायस्थों को चतुर लेखकों तथा हिसाब किताब रखने वालों के साथ ही साथ राजा का प्रियपात्र मानती है। उशनस कायस्थ को एक जाति मानता है और उनके पक्ष में अच्छे विचार नहीं प्रकट करता।

वेद व्यास स्मृति कायस्थों को शूद्र वर्ग में गोप, वणिक्, किरात, मालाकार, नापित, कुम्भकार आदि के साथ रखती है। (१ : १०-११) सुमन्तु लिखता है लेखकों का भोजन ब्राह्मणों को तेलियों आदि जातियों समान नहीं ग्रहण करना चाहिए। मृच्छकटिका नाटक में श्रेष्ठी तथा कायस्थ न्यायकर्ता ही रखे गये हैं। (अंक : ९) काश्मीर में कायस्थ एक कर्म था। उसमें किसी जाति का व्यक्ति हो सकता था। ब्राह्मण भी कायस्थ का कार्य करते थे। उनका निश्चित कार्य क्या था लिखना कठिन है। उनका उल्लेख धारावर्ष के दान पत्र शक ७०२ (ई० आई : २४ : १७६ गोविन्द चतुर्थ का काम्बे पत्र शक ८५२ (ई० आई : ७ : २६ पृष्ठ ४०) कौथेम फलक विक्रमादित्य पंचम शक ९३० (आई० ए० १६ पी० १५ पृष्ठ २४ पर)

(२) ग्राम कायस्थ : ग्राम कायस्थ पटवारी थे। वे कृषकों की खसरा खाता, खतौनी तथा कर तथा खेतों का हिसाब रखते थे। (वैली : ४४०, ४४६)

स्वाधीनता के पूर्व काश्मीर में पटवारी तथा कानूनगो कर भी गाँवों पर लगाये जाते थे। प्रत्येक कृषक अपने अनुपात के अनुसार निश्चित कर देता था। इसके अतिरिक्त रहाइस कर भी लगता था। (वैली : ४१५) मुगलों मुसलिम शासन के सुदूर पूर्व काल से ग्राम की कर व्यवस्था काश्मीर में संघटित थी। उनमें अधिकारी नियुक्त रहते थे। उनका कार्य ग्राम के कार्यों को नियमित रूप से देखना तथा प्रबन्ध करना था। (वेली : १९७)

पादटिप्पणियाँ :

१७६ (१) गृहकृत्य : इस विभाग की स्थापना राजा ने मेन्य कर तथा शुल्क राजकीय गृहकार्य हेतु किया था। क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला में एक कठोर उपहासात्मक वर्णन राजकीय अधिकारियों के विषय में लिखा है। प्रतीत होता है गृहकृत्य विभाग का क्षेमेन्द्र के समय तक अस्तित्व का। उसने लिखा है कि कायस्थों की सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा गृहकृत्य विभाग का महत्तम बनने की होती थी। यह विभाग क्षेमेन्द्र के समय में सेना, प्रशासकीय तथा धर्मोत्तर सम्पत्तियों का नियन्त्रण करता था। महत्तम के अन्तर्गत आठ प्रबन्ध अधिकारी तथा आठ सेवक काम करते थे।

गृह सम्बन्धी कार्यों पर गृहकृत्य लगाया जाता था जैसे विवाह, यज्ञोपवीत, आदि । रा० : ८ :

व्यधत्त पञ्च दिविरान्स तस्मिन्भिन्नकर्मणि ।
षष्ठं तथा गञ्जवरं शकचं लवटाभिधम् ॥१७७॥

१७७. उसने उस भिन्न कर्म पर पांच दिविर[1] तथा छठवे शकच[2], लवट[3] नामक गंञ्जवर (कोषाध्यक्ष) को नियुक्त किया ।

१४२८ में 'मंगल दण्ड' शब्द का प्रयोग किया गया है। यह मंगल कार्यों पर एक प्रकार का कर था। गृहकृत्याधिकारी का उल्लोख रा० : ७ ४२ में कल्हण ने किया है। गृहकृत्य का अलग कार्य स्थान किंवा विभागीय कार्यालय वह व्याक कर था जो राज्य भर में लगाया गया था अन्यथा केन्द्र में गृहकृत्याधिकारी रखने का कोई अर्थ नहीं निकलता (द्रष्टव्य : घोषाल : हिन्दू : रिविन्यू सिस्टम : पृष्ठ २५०)

इस राजा के पश्चात् होने वाले राजाओं ने बहुत करों को छोड़ दिया था। तथापि विभाग कायम रहा। उसमें कुछ करों की वसूली होती थी।

राजा चक्रवर्मा के राज्य काल के समय पुनः गृहकृत्य का उल्लेख मिलता है। राजा ने शम्भु वर्धन जो उसका प्रिय पात्र था इस विभाग का अधिकारी बनाया था। (रा० : ५ : ३०१) इससे प्रकट होता है कि इस अधिकारी की नियुक्ति राजा स्वयं करता था।

क्षेमेन्द्र के वर्णन से प्रतीत होता है कि उसके समय गृहकृत्याधिकारी का पद बहुत महत्वपूर्ण हो गया था। प्रत्येक माल के अधिकारी की यह आकाक्षां रहती थी कि वह इस पद पर आसीन हो जाय। (नर्ममाला : १ : ९७ : १२७) सभी गृह-विभाग सम्बन्धी व्यय, मन्दिरों को अनुदान, ब्राह्मणों को दान, गरीबों तथा अभ्यागतों को सहायता, पशुओं के चारों, राजकीय कर्मचारियों का वेतन उसकी आज्ञा से होता था।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७७ में 'दिविरान्स' का पाठ भेद 'शिविरान्स' मिलता है।

पादटिप्पणियाँ :

१७७ (१) दिविर : क्षेमेन्द्र ने नर्ममाला में दिविर, गंज दिविर, ग्राम दिविर आदि के सम्बन्ध में लिखा है (१ : ७७) कल्हण ने दिविर का उल्लेख ७ : १११, ११९, ८ : १ १, में किया है। प्रोफेसर बुहलर ने (इण्ड एण्ट ६ : १०) दिविर शब्द पर टिप्पणी दी है। लोक प्रकाश के उदाहरण से प्रकट होता है कि लिपिक तथा हिसाब रखने का कार्य दिविर करते थे। लोक प्रकाश (५१) में कई प्रकार के दिविरों का उल्लेख किया गया है— गंज दिविर, नगर दिविर, ग्राम दिविर, खवाशा दिविर। दिविर शब्द परशियन है। उसका अर्थ लेखक होता है।

दिविर लोग कायस्थों से भिन्न थे। एक प्रकार के क्लर्क थे। यह परशियन दविर तुल्य थे। राजतरंगिणी में दिविर तथा कायस्थों में भेद किया गया है। गुप्त आये लेख महाराज जयनाथ गुप्त संवत् १७७ में एक दाना सर्व वाधा दिविर का नाम उल्लेख किया है। द्रष्टव्य : रा० : ७ : ११९,–८ : १३१

(२) **शकच** : इस शब्द का अर्थ तथा पद स्पष्ट नहीं होता। प्रतीत होता है एक प्रकार के बोझा ढोने वाले।

(३) **लवट** : लवट का उल्लेख कल्हण ने पुनः (रा० : ५ : २०५; ८ २६३) में किया है। इसका अर्थ भारिक अर्थात् बोझा ढोने वाला होता है।

(४) **गंजवर** : शब्द इरानी 'गंजवर' है। इसका अर्थ खजांची होता है। लोक प्रकाश में अधिकारियों एवं कर्मचारियों की तालिका में कोष्ठाधिपति

तथा गंजाधिपति दिया गया है। गंजवर गंज संबंधित अधिकारी होता था।

यह शब्द खजान्ची के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। मूल शब्द इरानी है। काश्मीरी ब्राह्मणों का गंजू नाम सम्भवतः गंजवर अथवा गंजाधिप से निकला है। अथवा उसका अपभ्रंश है। पश्चिमोत्तर भारत के कुछ भूखण्डों पर (सन् ५२२–४८६ ई०) दारियस इरानी सम्राट् के अधिकार के कारण उस समय कुछ प्रशासकीय शब्द पश्चिमोत्तर भारत में प्रचलित हो गए थे। यह शब्द काश्मीर में शाही राज्य के सम्पर्क से आया होगा। उत्तरी भारत में गंज शब्द बाजार के लिए प्रयुक्त किया जाता है। दिविर शब्द भी इरानी है। इरानी शब्द काश्मीर में काबुल तथा पश्चिमोत्तर भारत के प्रभाव के कारण प्रचलित हो गये थे। महाक्षत्रप सौदास के अभिलेख मथुरा में गंजवर का उल्लेख मिलता है। (ई० आई० : ९ : फलक २४७) पृ० : १७७ दिविर।

क्षेमेन्द्र ने दिविरों का वर्ग उनका कर्तृत्व आदि रूप से नर्ममाला में लिखा है। उसके अनुसार गंज दिविर, ग्राम दिविर तथा स्थान दिविर एवं जीवन दिविर होते थे।

गंज दिविर परिपालक (सूबेदार) के अधीन कार्य करता था। वह अर्थ विभाग का पर्यवेक्षक होता था। उसका नियन्त्रण राजकोश पर भी होता था। वह महत्त्वपूर्ण कायस्थ अधिकारी होता था। उसका कार्य परिपालक के सम्मुख हिसाब किताब रखना होता था। वह छह मास की आय साढ़े चार लाख दिखाता है। वह Reteem chmet नीति का बड़ा समर्थक होता है। ब्राह्मणों के भूमि अनुदान को कम करता है। वह मन्दिरों को चलाने के लिये लगे धन में कमी करने का सर्वदा उपाय सोचता है। वह अपने पद के आत्म श्लाघा में जिसके कारण वह दूसरे अधिकारियों को दरिद्र बना देता है जो उसके बेईमानी के कार्यों का पूर्व काल में किसी समय विरोध किये रहते थे। और उसकी उन नीतियों का पर्दाफाश करते थे जिनके कारण वह धन चूसकर अमीर बनता था।

वह उन अधिकारियों की सहायता के लिये दौड़ पड़ता है जो मन्दिर अथवा राज्य की सम्पत्ति हड़प कर जाते थे। मन्दिरों के भण्डार को पुराना कह-कर बेचना तथा नवीन सामग्री भण्डार धान आदि चाहिए बहाना बनाकर खरीद कर खरीद और बेंच से स्वयं रुपया बनाता है। वह मन्दिर के भण्डार को बेच देता है और बहाना बनाता है कि चूहा उसे खा गये।

गंज दिविर महत्त्वपूर्ण कायस्थ कर्मी होता है। वह अपने स्वामी परिपालक के सम्मुख हिसाब किताब रखता है। वह सर्वत्र Releen of met करने की नीति का समर्थन करता है। वह ब्राह्मणों तथा मन्दिरों की माफी भूमि पर आघात करता है तथा मन्दिरों के अनुदानों को काटता है।

ग्रामदिविर : ग्राम दिविर ग्रामों के पटवारी होते थे। नियोगी का कार्य ग्रामों में पटवारियों को नियुक्त एवं उन्हें कार्य मुक्त करना होता है। ग्राम दिविर ही वर्तमान काल के पटवारी हैं। ग्राम दिविर हस्ताक्षर एवं कागजों में जाल बनाने में निपुण होता था। वह सरकारी कागजों से महत्त्वपूर्ण कागजों को निकालकर अर्थ अर्जन प्रवृत्ति के कारण वहाँ दूसरा कागज रखकर न्याय को अन्याय एवं अन्याय को न्याय धन प्राप्ति के लिये करता है।

स्थान दिविर : स्थानदिविर भी होता था। वह अदालतों के अहलमद तथा पेशकार के समान अदालती कागज़ों को लिखता तथा पढ़ता था। क्षेमेन्द्र ने उनका चरित्र बड़ा ही खराब चित्रित किया है। वे अपने दामादों पर भी दया नहीं करते थे यदि वे किसी फौजदारी के मामलों में फँस जाते थे। वे वेश्याओं के मकानों में प्रायः जाया करते थे। वे रात्रि में मद पान कर वहाँ व्यतीत करते थे। प्रातः वे ऐसे मुअक्किल का मुख देखना चाहते थे जो उन्हें अधिक से अधिक घूस दे सकता था। अदालत में जाने

आत्मनो निरयं मूढः सोऽङ्गीकृत्येत्युपक्रियाम् ।
भाविनामकरोद्राज्ञां पापी यद्वा नियोगिनाम् ॥१७८॥

१७८. उस पापी मूढ़ ने भावी नृपों एवं नियोगियों (सेवकों) का उपकार (अंगीकृत) कर अपना नरक (मार्ग) प्रशस्त किया ।

निमित्तं मण्डलेऽमुष्मिन्सविद्यानामनादरे ।
राज्ञां प्रतापहानौ च नान्यः शंकरवर्मणः ॥१७९॥

१७९. उस मण्डल में सविद्यों (विद्वानों) के अनादर एवं राजाओं के प्रताप हानि का कारण शंकर वर्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं हुआ ।

मुख्येन गुणिनां राज्ञा धनहान्या प्रथापहाः ।
मूर्खेण येन कायस्था दास्याः पुत्राः प्रवर्तिताः ॥१८०॥

१८०. जिस मूर्ख राजा ने मुख्य रूप से गुणियों के धन हानि द्वारा प्रथा(प्रसिद्धि-अ)पहारी दासीपुत्र कायस्थों को प्रवर्तित किया (बढ़ाया) ।

तथा कायस्थभोज्या भूर्जाता तत्प्रत्यवेक्षया ।
यथा संजायतेऽवर्णं हरणादिव भूभुजाम् ॥१८१॥

१८१. राजा कायस्थों के इस प्रकार आधीन हो गया कि वह परस्वहारी कहलाकर निन्दित होने लगा ।

गोपाल वर्मा का प्रत्यादेश :

तस्मिन्घोरे प्रजादुःखे कृपार्द्रः पृथिवीपतिम् ।
पुत्रो गोपालवर्माख्यः कदाचिदिदमब्रवीत् ॥१८२॥

१८२. उस घोर प्रजा-दुःख पर कृपार्द्र होकर पुत्र गोपाल वर्मा ने किसी समय पृथ्वीपति से कहा—

के समय वह झाड़ू देने वाले दाहिनी तरफ पसन्द करते थे न कि ब्राह्मण के । वे अपने साथियों की उन्नति भी बर्दास्त नहीं करते थे ।

जीवन दिविर : क्षेमेन्द्र ने जीवन दिविर की उपमा कापालिक से दी है । जीवन दिविर का अभिप्राय मालूम होता है कि मृतकों की गणना अथवा लेखा जोखा रखने वाले थे । मृतक कर्म से उनकी जीविका चलती थी । आज कल के फौती लिखने वाले के समान वह स्थान था । वह राजप्रिय होता है । वह कितने ही हत्यारों को बचा लेता था । उसकी उपमा काल एवं पक्षाघात रोग से भी दी गयी है । (नर्म माला : २०--२८) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७८ में 'पापी यद्वा' का पाठ भेद 'पापीयस्त्वा' मिलता है । तथा 'नियोगि' का 'वियोगि' मिलता हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १८१ 'तेवर्ण' के लिये 'अपयशः' पाश्र्व टिप्पणी में लिखा है ।

प्रदातुस्तात भवतः पूर्वं न्यासीकृतः स्थितः ।
वरो यः सत्यसंधस्य सोऽधुना प्राथ्र्यते मया ॥१८३॥

१८३. तात ! सत्यसंध !! दाता !!! आपके पास पूर्व दत्त जो वर न्यास[1] रूप में स्थित है, उसे अब मैं माँगता हूँ ।

कायस्थप्ररणादेतैर्देवेनाद्य प्रवर्तितैः ।
आयासैः श्वासशेषैव प्राणवृत्तिः शरीरिणाम् ॥१८४॥

१८४. 'कायस्थों की प्रेरणा से देव द्वारा प्रवर्तित कष्टकर इन (करों) से प्राणियों के प्राण वृत्ति में श्वासमात्र अवशेष है ।

न च नामास्ति तातस्य काचिल्लोकद्वयोचिता ।
मनागपि हितप्राप्तिरेतया जनपीडया ॥१८५॥

१८५. 'तात के उस जन पीड़ा से लोकद्वयोचित[1] स्वल्प भी किसी हित की प्राप्ति नहीं है ।

अदृष्टविषयां वार्तां गहनां विवृणोति कः ।
दृष्टेऽप्यनिष्टादन्यन्न कर्मणानेन दृश्यते ॥१८६॥

१८६. अदृष्ट विषयक गहन वार्ता कौन करे ? प्रत्यक्ष में भी इस कर्म से अनिष्ट के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं दिखायी दे रहा है ।

पादटिप्पणी :

१८३ (१) न्यास : कैकेयी ने भी न्यास रूप वर राजा दशरथ के पास रख छोड़ा था कि समयानुसार वह माँग लेगी और राजा उसे देगा । (अयोध्या : ९ : ११--१७) वही बात यहाँ पर भी मालूम होती है । पुत्र के पिता ने प्रसन्न होकर वर माँगने के लिये कहा होगा । पुत्र ने राजा पिता के पास यह कहकर रहने दिया होगा कि आवश्यकता पड़ने पर वह माँग लेगा ।

याज्ञवल्क्य ने सुरक्षा के निमित्त रखे गये धरोहर को न्यास माना है । एक व्यक्ति द्वारा तीसरे को देने के लिये दूसरे के दिये गये सामान को निक्षेप कहा गया है । (याज्ञ० २ : ६९)

निक्षेप के अन्तर्गत न्यास आता है । निक्षेप, उपनिधि एवं न्यास कभी कभी समानार्थक हैं । न्यास एवं निक्षेप उपनिधि से भिन्न है । उपनिधि में धरोहर रखने वाला विना वस्तु गिने केवल सीलमुहर कर रख देता है । निक्षेप में धरोहर गिनकर और सहेज कर रखा जाता है । न्यास खुला धरोहर रखा जाता है । उसे सब लोग जान सकते हैं । निक्षेप वह धरोहर है जो कलाकार को कोई वस्तु बनाने के लिये दिया जाता है । स्वर्णकार को दिया सोना निक्षेप है । न्यास खुला धरोहर सुरक्षा की दृष्टि से रखा जाता है । निक्षेप वह वस्तु है जो दूसरे को दी जाती है कि वह तीसरे को लौटा दी जाय । उपनिधि हर प्रकार के Solnes के लिये एक सामान्य शब्द है ।

पादटिप्पणी :

१८५. (१) लोकद्वय : लोक एवं परलोक से तात्पर्य है ।

एकतो व्याधिदुर्भिक्षप्रमुखा विपदोऽखिलाः ।
प्रजानामेकतस्त्वेका लुब्धता वसुधापतेः ॥१८७॥

१८७. 'एक ओर प्रजाओं में व्याधि, दुर्भिक्ष प्रमुख[1] अखिल विपत्तियाँ हैं और एक ओर वसुधापति की लुब्धता !

भूभुजोऽभ्यस्तलोभस्य श्रीः कैश्चिन्नाभिनन्द्यते ।
अकालकुसुमस्येव फलसंभावनोज्झिता ॥१८८॥

१८८. 'फल की सम्भावना से रहित अकाल के कुसुमतुल्य लोभाभ्यासी भूभुजों की श्री का अभिनन्दन कोई नहीं करता ।

दानं च सूनृता सूक्तिर्विश्वसंवननं प्रभोः ।
लोभः पूर्वं तयोरेव विनाशाय महोद्यमः ॥१८९॥

१८९. 'प्रभो ! दान एवं सत्य वाणी (सूनृता-मधुर वाणी) विश्व प्रतिष्ठा का मूल है। किन्तु लोभ उन दोनों के विनाश के लिये महोद्यम है ।

प्रतापमायतिं शोभां हेमन्ताहस्य वारिदः ।
स्मृतिशेषां करोत्येव लोभश्च पृथिवीभुजाम् ॥१९०॥

१९०. 'वारिद हेमन्त[1] दिवस का प्रताप आयति (विस्तार) एवं शोभा की स्मृति शेष कर देता है और लोभ पृथ्वीपतियों के प्रताप आयति[2] (भविष्य) एवं शोभा को नष्ट कर देता है ।

पादटिप्पणी :

१८७ (१) प्रमुख : कल्हण का प्रमुख शब्द अर्थ पूर्ण है। काश्मीर मण्डल उस समय के सभी विपत्तियों से व्याप्त हो गया था। विशेष रूप अर्थात् प्रमुख रूप से कल्हण ने व्याधि एवं दुर्भिक्ष का उल्लेख किया है। व्याधि में अनेक प्रकार की बीमारी तथा दुर्भिक्ष में भुखमरी, अकाल, फसलों का नष्ट होना आदि है।

पादटिप्पणी :

१८८. सूक्तिसंग्रह का १७४ वाँ श्लोक है।

पादटिप्पणी :

१८९. सूक्ति संग्रह का १७५ वां श्लोक है।

पादटिप्पणियाँ :

१९०. सूक्ति संग्रह का १७६ वाँ श्लोक है।

१९० (१) हेमन्त : मार्गशीर्ष एवं पौष मास हेमन्त ऋतु है। इसके अन्तिम चरण का सूर्य मित्र है। हेमन्त में मेघाच्छन्न आकाश शीत बढ़ा देता है। वह समय अत्यन्त कष्टदायक काश्मीर में होता है।

(२) आयति : वह शब्द इस पद में श्लिष्ट है।

दायादा व्ययभीरुतापरिहृतारब्धैर्भवन्त्युन्नता
भृत्याः प्रत्युपकारकातरमतेः कुर्युर्न केऽपि प्रियम् ।
राशीभूतधनस्य जीवितहृतौ शश्वद्यतेरन्निजा
भूभर्तुः क्रियते द्विषेव रभसाल्लोभेन किं नाप्रियम् ॥१९१॥

१९१. 'व्ययभीरुता के कारण आरब्ध (प्रारम्भ) परित्यागकर्ता के दायाद उन्नत हो जाते हैं। प्रत्युपकाररहितमति नृप के भृत्य (उसका) कोई प्रिय कार्य नहीं करते हैं। धनसंग्रही के आत्मीयजन निरन्तर प्राणापहरण का यत्न करते हैं। (इस प्रकार) शत्रु सदृश लोभ राजा का कौन-सा अप्रिय नहीं करता है।

राजसंवाहनामायं नवायासो जनासुहृत् ।
तदेष लोभप्रभवः प्रजानाथ निवार्यताम् ॥१९२॥

१९२. 'हे प्रजानाथ ! लोभप्रभूत 'राज संवाह[1]' नामक यह जन अकल्याणकारी नवीन आयास (कर) वारित कर दीजिए।'

श्रुत्वेति राजपुत्रस्य सौजन्येनोज्ज्वलं वचः ।
स्मितधौताधरो राजा शनैर्वचनमब्रवीत् ॥१९२॥

१९३. राजपुत्र का सौजन्य समुज्ज्वल वचन सुनकर स्मित[1] से अधर धौत कर नृपति ने धीरे से कहा—

तवाकृत्यविसंवादि वचः सौजन्यपेशलम् ।
स्मारयत्यद्य मामेतच्चित्तवृत्तिं पुरातनीम् ॥१९४॥

१९४. 'आकृति अनुरूप, सौजन्य पेशल तुम्हारी बातें आज मुझे पुरातन (पुरानी) चित्त-वृत्ति का स्मरण कराती हैं।

कुमारभावे पूर्वं मे तवेवार्द्रान्तरात्मनः ।
प्रजावत्सलता वत्स पर्याप्ता पर्यवर्धत ॥१९५॥

१९५. 'वत्स ! पहले बाल्यकाल में तुम्हारे सदृश आर्द्रान्तरात्मा मेरी भी प्रजावत्सलता पर्याप्त प्रवृद्ध हुई।

पादटिप्पणी :

१९१. सूक्ति संग्रह का १७७ वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

१९२. (१) राजसंवाह : 'राजभार' या 'राजस्व'।

पादटिप्पणी :

१९३. (१) स्मित : गीतगोविन्द में भी वही भाव प्रकट किया गया है।

गतवति सखिवृन्देऽमन्दत्रपाभरनिर्भरस्मर।
शरवशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधरम् ॥ १२ : १

सोऽहं घर्मे महद्वर्म शीते दत्त्वाच्छमंशुकम् ।
पदातिरपपादत्रः पित्रा संचारितोऽभवम् ॥१९६॥

१९६. (वही) घर्मकाल (गर्मी) में वर्म तथा शीत से स्वच्छ अंशुक परिधारित (धारण) कर बिना पदत्राण (उपानह) के पैदल मैं पिता द्वारा संचारित होता था ।

मृगव्यादौ हयैः सार्धमटन्तं कण्टकक्षतम् ।
अन्तर्बाष्पं मां विलोक्य तमसूयिषुरग्रगाः ॥१९७॥

१९७. 'मृगया आदि में अश्वों के साथ भ्रमण करते एवं कण्टकक्षत होकर अश्रुपूर्ण मुझे देखकर अग्रगामी (लोग) उनकी निन्दा करते थे ।

स तानुवाच सामान्यो भूत्वाहं राज्यमाप्तवान् ।
काले काले सेवकानां जाने सेवापरिश्रमम् ॥१९८॥

१९८. 'वे पिताजी उन लोगों से कहते थे—सामान्य होकर मैंने राज्य प्राप्त किया है। अतः समय समय पर सेवकों का सेवा परिश्रम जानता हूँ ।

ईदृग्दुःखमयं भुक्त्वा ज्ञास्यत्यन्यव्यथां ध्रुवम् ।
प्राप्तैश्वर्यो भवेन्मूढो गर्भेश्वरतयान्यथा ॥१९९॥

१९९. 'इस प्रकार वह दुःख भोग कर यह निश्चय ही दूसरों की व्यथा जानेगा । अन्यथा गर्भेश्वर[1] (गर्भ से राजा) होने से ऐश्वर्य प्राप्त कर मूढ़ हो जायगा ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९६ 'दत्त्वाच्छमं' का पाठ भेद 'दत्वोश्चमं' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९७ में 'टन्तं' का पाठभेद 'टन्तः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१९९. सूक्ति संग्रह का १७८ वां श्लोक है ।

(१) गर्भेश्वर : जन्मजात धनी, जन्मजात राजा किंवा रईस अर्थ होता है । कोई राजा चुना जाता है । कोई अपने पौरुष से राज्य प्राप्त कर राजा होता है, कोई उत्तराधिकार में सम्बन्धी या गोद ले लेने के कारण होता है और कोई राजा का पुत्र होने के कारण गर्भ से ही राजा हो जाता है ।

नेपाल में सन् १९४६ में तत्कालीन बृटिश सरकार द्वारा एक शिष्ट मण्डल नेपाल विधान बनाने के लिये गया था । स्वर्गीय श्री श्रीप्रकाश जी के साथ मैं भी उस शिष्ट मण्डल में था । वहाँ मैंने देखा कि राणा का लड़का जन्मते ही जनरल मेजर, जनरल, कर्नल, अपने उत्तराधिकार के पद गौरव के अनुसार जन्मजात से किंवा गर्भ काल से ही हो जाता था । कल्हण इसी ओर संकेत करता है ।

उपायैरीदृशैर्योऽहं कृतः पित्रा सुशिक्षितः ।
तेनापि प्राप्तराज्येन मयैवं पीडिताः प्रजाः ॥२००॥

२००. 'पिता ने इस प्रकार के उपायों से मुझे सुशिक्षित किया—फिर भी राज्य प्राप्त कर, मैंने इस प्रकार प्रजाओं को पीड़ित किया ।

गर्भवासव्यथां जातः शरीरी विस्मरेद्यथा ।
प्राप्तराज्यस्तथा राजा नियतं पूर्वचिन्तनम् ॥२०१॥

२०१. 'जिस प्रकार देहधारी (प्राणी) उत्पन्न होकर, गर्भवास व्यथा विस्मृत कर देता है, उसी प्रकार राजा राज्य प्राप्त कर, नियत पूर्व चिन्तन को भूल जाता है ।

त्वयैव तस्मादेकोऽद्य वरो मह्यं प्रदीयताम् ।
प्राप्तराज्यः प्रजापीडां मा कार्षीस्त्वमतोऽधिकाम् ॥२०२॥

२०२. 'अतएव आज तुम्हीं मुझे एक वर प्रदान करो—राज्य प्राप्त कर, तुम इससे अधिक प्रजा पीड़न मत करना ।'

सासूयमिति तेनोक्तः कृतान्योन्यस्मितैर्विटैः ।
राजाप्तैर्वीक्षितश्चासीत्कुमारो ह्रीनताननः ॥२०३॥

२०३. इस प्रकार तिरस्कार पूर्वक उस (नृप) के कहने पर, कुमार लज्जा से नतानन हो गया और राजा के विश्वस्त विट परस्पर सस्मित होकर देखने लगे ।

त्यागभीरुतया तस्मिन्गुणिसङ्गपराङ्मुखे ।
आसेवन्तावरा वृत्तीः कवयो भल्लटादयः ॥२०४॥

२०४. त्यागभीरुता के कारण गुणियों के संसर्ग से पराङ्मुख उसके समय भल्लट[1] आदि कवियों ने अवर (निम्न) वृत्ति ग्रहण की ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २०० 'क्षितः' का पाठ भेद 'क्षिताः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २०१ में 'चिन्तनम्' का पाठभेद 'चिन्तितम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२०१. सूक्ति संग्रह का १७९ वां श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

२०४ (१) भल्लट : क्षेमेन्द्र ने भल्लट का उल्लेख औचित्य विचार चर्चा में किया है । 'भल्लट शतक' के रचनाकार हैं । केवल एक यही कृति प्राप्त है । मुक्तक पदों में काव्य है । अन्य अलंकारों के साथ इनके पदों में अन्योक्ति की बहुलता है । सरस, अनुपम, सरल पदों के साथ ही साथ उपदेश का सुन्दर पुट पाक पदों में हैं । आनन्द-वर्धन, अभिनव गुप्त, क्षेमेन्द्र, मम्मट इनके पदों का काव्य दृष्टान्त रूप में बारम्बार अपनी रचनाओं में उद्धरण दिया है । भल्लट संस्कृत कवियों में श्रुति मुकुटधर कहे गये हैं ।

निर्वेतनाः सुकवयो भारिको लवटस्त्वभूत् ।
प्रसादात्तस्य दीन्नारसहस्रद्वयवेतनः ॥२०५॥

२०५. उसके सुकवि विना वेतन के थे। और उसकी कृपा से भारिक 'लवट'[1] दो हजार दीनार वेतन प्राप्त करता था।

कल्यपालकुले जन्म तत्तेनैव प्रमाणितम् ।
क्षीवोचितापभ्रंशोक्तेर्दैवी वाग्यस्य नाभवत् ॥२०६॥

२०६. मद्यपोचित अपभ्रंश[1] भाषाभाषी, वह देववाणी[2] (संस्कृत) नहीं बोल सकता था, अतः उसी ने कल्यपाल कुल में (अपना) जन्म प्रमाणित किया।

इनका कोश प्रसिद्ध है। उसका नाम 'मंजरी' है।

पादटिप्पणी :

२०५ (१) लवट : लवट का उल्लेख कल्हण ने (रा० : ५ : १७७) कोषाध्यक्ष गंजवर के रूप में किया है। उक्त पद में लवट को भारिक कहा गया है। भारिक का सरल अर्थ भार वहन करने वाला होता है। दोनों लवट भिन्न व्यक्ति एक ही नाम के हो सकते हैं। कोषाध्यक्ष लवट को व्यंग से भारवाहक कल्हण लिख सकता है। क्योंकि वह रुपयों का भार ढोता था।

कल्हण के वर्णन से नहीं स्पष्ट होता है। कितने समय के लिये दो सहस्र दीनार वेतन स्वरूप प्राप्त करता था। पूर्व में (रा० : ४ : ४९५) जहाँ वेतन शब्द का प्रयोग किया गया है उससे प्रतीत होता है कि यह दैनिक वेतन था। कल्हण ने वेतन शब्द दैनिक दिये जाने वाले वेतन के ही लिये प्रयोग (रा० : ७ : १४५) किया है। काश्मीरी दीनार में दो सहस्र दीनार बहुत अधिक वेतन नहीं कहा जायगा। क्योंकि दीनार प्रायः उस समय ताम्र का होता था।

पादटिप्पणी :

२०६ (१) अपभ्रंश : प्राकृत एवं आधुनिक भाषाओं के मध्यवर्ती काल में अपभ्रंश भाषा प्रचलित थी। अपभ्रंश भारतीय आर्य भाषा मध्यकाल की अन्तिम अवस्था है। अपभ्रंश कवियों ने अपने काव्य को 'भासा' 'देशी भाषा' 'गम्मिल भासा' (ग्रामीण भाषा) कहा है। संस्कृत अलंकार एवं व्याकरण ग्रन्थों में इस भाषा को 'अपभ्रंश' किंवा 'अपभ्रष्ट' की संज्ञा दी गई है। दण्डी (सातवीं शताब्दी) ने स्पष्ट लिखा है। व्याकरण में संस्कृत से इतर शब्दों को अपभ्रंश नाम से अभिहित किया जाता था। आभीर आदि बोलियाँ दण्डी के मत से अपभ्रंश भाषा थीं। लोक बोलियों पर आधारित थीं। अपभ्रंश के सम्बन्ध में दो मत परस्पर विरोधी मिलते हैं। रुद्रट के काव्यालंकार के टीकाकार (ग्यारहवीं शताब्दी) नेमि साधु अपभ्रंश को प्राकृत मानते हैं। दूसरी ओर भामह (छठवीं शताब्दी) तथा दण्डी (सातवीं शताब्दी) अपभ्रंश की स्थिति प्राकृत से भिन्न मानते हैं। अपभ्रंश भाषा का विकास लगभग छः शताब्दियों में हुआ है। भरत (तृतीय शताब्दी) ने अपभ्रंश को शबर, आभीर, गुर्जर, आदि की भाषा माना है। चण्ड (छठवीं शताब्दी) ने 'प्राकृत लक्षणम्' में इसको विभाषा कहा है। बलभी के राजा ध्रुवसेन द्वितीय ने एक ताम्रपट में संस्कृत एवं प्राकृत के साथ अपने पिता को अपभ्रंश रचना में निपुण बताया है। काव्यमीमांसाकार राजशेखर (दशवीं शताब्दी) ने अपभ्रंश भाषा को राज सभा में सम्मान पूर्ण स्थान दिया है। पुरुषोत्तम (ग्यारहवीं शताब्दी) टीकाकार ने शिष्ट वर्ग की भाषा अपभ्रंश

वेष्टितश्मश्रुरुष्णीषो घ्राणस्याग्रे प्रदेशिनी।
ध्यानैकाग्रा दृगित्यासीत्सुखराजस्य मन्त्रिणः ॥२०७॥

२०७. उष्णीष वेष्टित श्मश्रु, घ्राण[१] (नाक) के अग्रभाग पर प्रदेशिनी, (तर्जनी) ध्यान में एकाग्र दृष्टि, इस प्रकार मन्त्री सुखराज था।

माना है। आचार्य हेमचन्द्र ने अपभ्रंश व्याकरण लेखक सम्मान दिया है।

भरत के समय (तृतीय शताब्दी) यह पश्चिमोत्तर भारत की भाषा थी। राजशेखर (दशमी शताब्दी) के काल में यह पंजाब, राजस्थान, गुजरात, एवं समस्त पश्चिमी भारत की भाषा थी। अपभ्रंश साहित्य की प्राप्त रचनाओं में अधिकांश जैन काव्य हैं। जैनियों के अतिरिक्त बौद्ध सिद्धों ने भी अपभ्रंश काव्य रचनाएँ की हैं।

कल्हण ने यहाँ अपभ्रंश शब्द का प्रयोग राजा की अशिक्षा दिखाने के लिये किया है। काश्मीर जहाँ महिलाएँ तक संस्कृत में संवाद एवं भाषण करती थीं, वहाँ देश का राजा संस्कृत नहीं बोल सकता था इस पर कल्हण दुःख प्रकट करता है। देश का राजा संस्कृत अर्थात् विद्वानों एवं कुलीनों किंवा शिष्ट जनों की भाषा नहीं बोल सकता था लज्जा का विषय था। कल्हण कहता है। यह प्रमाणित करता था। वह वास्तव में कल्यपाल कुलोत्पन्न था। इससे एक बात और प्रकट होती थी। काश्मीर में निम्न वर्ग संस्कृत में सम्भाषण नहीं कर सकता था। काश्मीर के निम्नवर्ग की भाषा अपभ्रंश थी। उस समय पश्चिमोत्तर, सीमान्त पंजाब तथा पश्चिम भारत में अपभ्रंश भाषा का प्रचार था। बोल चाल की भाषा थी। कल्यपाल तथा निम्न वर्ग व्यापारी वर्ग था। काश्मीर के बाहर आने जाने और निम्नस्तरीय लोगों के साथ समाज में मिलने-जुलने के कारण अपभ्रंश में बात करने का उन्हें अभ्यास पड़ गया था।

प्राचीन इटली में भी यही बात प्रचलित थी। इटली में कुलीन वर्ग लैटिन बोलता था। वरनाकुलर साधारण जन की भाषा थी। वर्न शब्द इटली में घर पैदा हुए दासों के लिये प्रयुक्त किया गया है।

देववाणी : संस्कृत देववाणी है। नागरी लिपि नगर में प्रचलित लिपि थी। अतएव इसका नाम नागरी पड़ा। आजकल कुछ लोग नागरी और हिन्दी को समानार्थक मान लेते हैं। यह भ्रम है। नागरी अन्तर्राष्ट्रीय लिपि है। नेपाल, फिजी आदि स्थानों में लिखी जाती है। भारत में महाराष्ट्री भी इसी लिपि में लिखी जाती है। हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र यथा बिहार, उत्तर प्रदेश, हरियाना, हिमाचल, जम्मू, राजस्थान तथा मध्य प्रदेश में भिन्न लिपियाँ चलती थीं। इन्होंने अब नागरी को लिपि तथा भाषा हिन्दी मान ली है। यद्यपि स्थानीय भाषाओं में अभी भी अन्तर है। राजस्थानी, डोंगरी, मैथिल, पर्वतीय बोल चाल की भाषा भिन्न है। नागरी लिपि में संस्कृत लिखी जाती है। इसलिये उसे देवनागरी कहते हैं। पुरातन संस्कृत नाटकों के संवादों से प्रकट होता है कि शिक्षित समाज संस्कृत बोलता था। महिलायें तथा अन्य लोग विविध प्राकृत भाषा बोलते थे।

काश्मीर की स्त्रियाँ संस्कृत बोलती थीं। विल्हण ने विक्रमांक देव चरित लिखा है। उसने अपनी मातृभूमि काश्मीर का वर्णन करते हुए, गर्व से लिखा है। काश्मीर की महिलाएँ संस्कृत में बातचीत करती थीं। इससे स्पष्ट होता है। ग्यारहवीं शताब्दी तक भारत के पण्डित तथा शिक्षित समाज की स्त्रियाँ विभिन्न प्राकृत में बातचीत करती थीं। किन्तु काश्मीर की स्त्रियां संस्कृत भाषण करती थीं। यह उनकी बोल-चाल की भाषा थी।

पाठभेद :

श्लोक सं० २०७ में 'सुखराजस्य' का पाठ भेद 'सुखरागस्य' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२०७ (१) **घ्राण** : इस पद से प्रकट

योऽयमार्योचितो वेषो दुर्नयासेविनः प्रभोः ।
छन्दानुवृत्त्या स प्राप नटस्येव विडम्बनाम् ॥२०८॥युग्मम् ॥

२०८. यह जो आर्योचित वेष था—वह दुर्नयसेवी प्रभु के कारण नट की विडम्बना सदृश लगता था ।

सोऽनुगैः सह निर्द्रोहं जघान द्रोहशङ्कया ।
शूरं दार्वाभिसारेशं शवर्यां नरवाहनम् ॥२०९॥

२०९. उसने द्रोह की आशंका से रात्रि में निर्द्रोही एवं शूर दार्वाभिसार[1] पति नरवाहन[2] को अनुचरों सहित मार डाला ।

प्रजाभिशापे पतिते नृपस्योन्मार्गवर्तिनः ।
त्रिंशद्विंशाः सुतास्तस्य व्यपद्यन्तामयं विना ॥२१०॥

२१०. प्रजाओं के अभिशाप के कारण कुपथगामी उस नृप के बीस-तीस[1] पुत्र बिना बीमारी काल कवलित हो गये ।

होता है कि राजा के सम्मुख तथा सभ्य समाज एवं राजसभा में, किस प्रकार काश्मीर में बात करने की प्रथा थी । आधुनिक जापान में महिलाओं में प्रथा प्रचलित है । जब वे अपरिचितों से बातें करती हैं तो शील के कारण अपनी नासिका के सम्मुख हाथ कर लेती हैं । भारत में भी स्त्रियों में यह प्रथा प्रचलित है । वह शील प्रदर्शन की भावना से हाथ मुख के सामने कर लेती हैं । काशी में अपनी बाल्यावस्था में प्रायः मैं देखता था । कुलीन स्त्रियाँ मुख पर सम्मुख हाथ का आड़ लगा लिया करती थीं । मुसलिम समाज में भी स्त्रियां मुख पर हाथ रखकर पर्दा की दृष्टि से पुरुषों से बाते करती थीं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २०८ में श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२०९ (१) दार्वाभिसार : द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : रा० १ : १८०, ५ : १४१ ।

(२) नरवाहन : लोहर वंश की वंशावली के अनुसार नरवाहन दार्वाभिसार के राजा का पुत्र था । (रा० : ७ : १२८२) शंकर वर्मा के अधिपति काल में दार्वाभिसार का राजा नरवाहन भयभीत होकर पर्वतों में पलायन कर गया था, यह स्पष्ट नहीं होता कि किस प्रकार राजा के अधीनता स्वीकार करने उसके पास आ गया था ? नरवाहन शब्द कुबेर का एक नाम है (मत्स्य : १७४ : १८) ।

पादटिप्पणी :

२१० (१) त्रिंशद्विंशा : श्री स्तीन तथा पण्डित ने इसका अनुवाद तीस या बीस किया है । यह तीस और बीस जोड़कर पचास नहीं हो सकता । बीस-पचीस; चार-पाँच, दश-बीस जैसे कहने का मुहावरा है । उसी अर्थ में कल्हण ने प्रतीत होता है यहां बीस-तीस मुहावरा का प्रयोग किया है । कल्हण ने इसी मुहावरे बीस-तीस का प्रयोग पुनः (रा० : ८ : १२६) किया है ।

वंशः श्रीर्जीवितं दारा नामापि पृथिवीभुजाम् ।
क्षणादेव क्षयं याति प्रजाविप्रियकारिणाम् ॥२११॥

२११. प्रजा के अप्रियवाही राजाओं का वंश, लक्ष्मी, प्राण, स्त्री तथा नाम भी क्षण में ही नष्ट हो जाते हैं।

इत्युक्तं वक्ष्यते चाग्रे व्यक्तमेतत्तु चिन्त्यताम् ।
प्रनष्टं तस्य नामापि यथा क्रूरेण कर्मणा ॥२१२॥

२१२. ऐसा कहा गया कहा है और आगे कहा जायगा—स्पष्ट रूप से इस पर विचार करें, जैसा कि क्रूर कर्म के कारण उसका नाम भी नष्ट हो गया।

नाम्ना पत्तनमित्येव प्ररुयातं स्वपुरं कृतम् ।
कस्यान्यस्याभिधाध्वंसि यथा शंकरवर्मणः ॥२१३॥

२१३. शंकर वर्मा के नाम से बनाये गये प्रख्यात अपने नगर से उसका नाम लुप्त होकर पत्तन[1] मात्र रह गया। ऐसा किस अन्य राजा का हुआ ?

स्वस्रीयः सुखराजस्य तेन द्वाराधिपः कृतः ।
वीरानकाभिधे स्थाने प्रमादादासदद्वधम् ॥२१४॥

२१४. उसने सुखराज के भगिनीपुत्र को द्वाराधिप[1] बनाया और प्रमाद वश वीरानक नामक स्थान पर वह वध को प्राप्त हुआ।

पादटिप्पणी :

२११. सूक्ति संग्रह का २११ वाँ श्लोक है।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१३ में 'पत्तन' के लिये 'पट्टन' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१३ (१) पत्तन : कल्हण यहाँ स्पष्ट कर देता है कि शंकरपुर का नाम उसके समय में ही पत्तन मात्र शेष रह गया था। शंकरपुर ही पट्टन या पाटन है। इसमें सन्देह कल्हण के इस वर्णन से नहीं रह जाता।

प्राचीन मान्यता के अनुसार पचास गाँव का एक पत्तन तथा चार सौ गांव का कर्वट होता था। क्षेमेन्द्र ने भी शंकरपुर का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१४ में 'वीरानकाभिधे' के लिये 'द्वारविद्यायां वीराणकं' तथा 'दासदद्वधम्' के लिये 'सुखराजस्वस्रीयः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२४१ (१) द्वाराधिप : द्वाराधिप का शाब्दिक अर्थ द्वार का स्वामी किंवा अधिपति होता है। द्वारपति, द्वारेश, द्वाराधीश्वर, द्वारनायक, द्वाराधिकारी सभी शब्द द्वारपति के पर्यायवाची हैं। उनका प्रयोग सम्पूर्ण राजतरंगिणी में किया गया है। श्रीदत्त ने द्वार को एक प्रदेश माना है। यह ठीक नहीं है। कल्हण के उद्धरणों तथा वर्णनों से स्पष्ट हो जाता है।

द्वारपति काश्मीर के संकट किंवा दर्रों का रक्षक होता था। द्वार का अर्थ फाटक होता है। काश्मीर में बाहर से आने वाले दर्रे काश्मीर उपत्यका के द्वार का कार्य करते थे। उनके बन्द कर देने पर काश्मीर स्वयं एक दुर्ग के समान रक्षित हो जाता था। सुरक्षा व्यवस्था में द्वारपति का पद सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। इन द्वारों के कारण काश्मीर को घेर कर खड़ी पर्वतमालायें प्राकार का कार्य करती थीं। द्वार उस प्राकार में फाटक थे। उनकी रक्षा मार्ग से काश्मीर की रक्षा हो जाती थी। द्वारों की रक्षा पर काश्मीर उपत्यका की रक्षा निर्भर थी। उनकी रक्षा का भार अनुभवी सैनिक योद्धा को दी जाती थी। कल्हण (रा० : ८ : ४२२) वर्णन करता है। द्वारपति का पद अनुभवी, सैन्य शास्त्र में पटु, साहसी एवं कठिनाई झेलने वाले योद्धा को दिया जाता था। द्वारपति का वीर होना तथा देश के लिये उत्सर्ग करना उसका गुण माना जाता था। कल्हण (रा० : ७ : २१७) उल्लेख करता है। किस प्रकार द्वाराधिप खसों से वीरतापूर्वक युद्ध करता हुआ वीर गति प्राप्त किया था। उसके पास कुछ सैनिक थे। परन्तु पीछे हटने की अपेक्षा राजपूतों के समान लड़कर मर जाना श्रेयस्कर समझा। खस लोग काश्मीर के दक्षिण तथा पश्चिमीय क्षेत्रों के निवासी थे। वे लड़ाकू पड़ोसी थे (रा० : १ : ३१७) कन्दर्प द्वारपति राजपुरी एवं सीमा स्थित समीपवर्ती क्षेत्रों के समर अभियान में सहर्ष भाग लेता था। (रा० : ७ : ५७६, ९७१) उसके उत्तराधिकारी ने भी उसके कार्य को पूर्ववत् जारी रखा। धनसे सैनिकों का संग्रह कर शक्ति बनाये रखा था। (रा० : ७ : ५९९) तत्पश्चात् कन्दर्प पुनः जब द्वारपति का कार्य भार सम्हाला तो भुवनराज छद्मिक राज्याकांक्षी को हटाने में सफल हुआ था। (रा० : ७ : ९६६ तथा ७ : ५८१) उसने द्वार का मार्ग अवरुद्ध कर विजय मल्ल को दरद देश में भागने से रोक लिया था। (रा० : ७ : ९१२) मल्ल राजवंश का एक व्यक्ति था। वह अस्थायी रूप से द्वारपति का पद कलश राजा के समय में ग्रहण किया था। उसने पड़ोसी सामन्तों तथा उरशा पर आक्रमण किया था। (रा० : ७ : ११७२) तरंग आठ के आद्योपान्त तक देखा जाता है। द्वारपति का सैनिक कार्य क्षेत्र सीमान्त स्थित उपद्रव ग्रस्त क्षेत्रों में था। (रा० : ८ : ५७४, ५९२, ७४६, १००५, १९२७, २२८१, २५०३) कल्हण के वर्णन से स्पष्ट होता है कि द्वारपति पद का स्थानान्तर बहुत जल्दी जल्दी होता था। द्वारपति के किंचित् मात्र शिथिलता के कारण सम्पूर्ण काश्मीर मण्डल पर विपत्ति आ सकती थी। सीमान्त स्थित विदेशी सर्वदा काश्मीर प्रवेश के लिये उत्साहित एवं इच्छुक रहते थे। अवसर मिलते ही सरलता पूर्वक प्रवेश कर काश्मीर की स्वाधीनता नष्ट कर सकते थे। (रा० : ७ : ५७८, ५९७; ८ : ६३३, २३५४) द्वारपति एक समय केवल एक ही व्यक्ति हो सकता था। हिन्दू भारत में मार्गेश अर्थात् मार्ग की रक्षा करने वाले सेनानायक तथा काश्मीर के द्वारपति के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों में अन्तर है। मार्गेश को मार्गप, अध्वप, अध्वेश, कहते थे। इन लोगों का उल्लेख बहुवचन में आया है। उससे प्रकट होता है कि एक ही समय कई मार्गेश होते थे। भिन्न भिन्न मार्गों के लिये भिन्न भिन्न मार्गेश नियुक्त थे। उनका कार्य मार्गों की रक्षा करना होता था। श्रीवर ने उनका उल्लेख किया है (श्रीवर : मार्गेश, : ३ : ४५७, ४६२, ४ : १३६, १५३, २२४, ४७६; मार्गपति : ४४४, ४५४, ४६१, ४६३, ४८८, तथा ४ : १४४, ३५३) श्रीशुक चतुर्थ राजतरंगिणी में (१ : २०१, २१२, २२२, २२५, २४६; २ : ५, ९, १४, १९, २५, ३५, ४०, ४२, ५६, ५७, ८३, ११३, १२५, १२९, १३० १७० मार्गप १ : २०९, २ : ६, ९, ७५ अध्वप : १ : २३९, मार्गेश्वर २ : ३०) श्रीवर तथा शुक ने मार्गेश को मुस्लिम काल के मलिक अधिकारी के समान माना है। मुस्लिम काल में वे लोग जागीरदार थे।

जागीर की आमदनी से सेना रखते थे। युद्ध

तत्कोपात्स स्वयं राजा दत्तयात्रो मदोर्जितः ।
वीरानकं समुन्मूल्य प्रविवेशोत्तरापथम् ॥२१५॥

२१५. इस क्रोध से मदोन्मत्त राजा स्वयं प्रयाण किया और वीरानक[1] को समुन्मूलित कर उत्तरापथ[2] में प्रवेश किया ।

सिन्धुकूलाश्रयान्देशाञ्जित्वा भूरीन्भयातुरैः ।
कृतानतिर्महीपालैः प्रत्यावृत्तोऽभवत्ततः ॥२१६॥

२१६. सिन्धु[1] कूलवर्ती बहुत देशों[2] को जीतकर भयातुर महीपालों को अधिकृत कर वहाँ से (राजा) परावृत हुआ ।

के समय बादशाह की सहायता करते थे । (हुगेल : काश्मीर : १ : ३४७; २ : १६७) मलिक लोगों का सिख आक्रमण काल तक अस्तित्व था । उनका कार्य कल्हण वर्णित द्रंगाधिप तुल्य था । वे मार्ग विशेष के अधिकारी थे : (रा० : ८ : १५७७; २८०३ तथा ७ : ११७२) द्वारपति का स्थान प्रधान मन्त्री किंवा (सर्वाधिकार) कम्पन (सेनापति) प्रधान न्यायाधीश (राजस्थान) के समान पदाग्र किंवा समकक्ष था । (रा० : ७ : ३६४, ८८७; ८ : ५७३, १९६४,) द्वारपति का पद मण्डलेश अर्थात् वर्तमान भारतीय राज्यपालों के पदों की अपेक्षा ऊँचा था (रा० : ७ : ११७८) द्वारपति पद के लिये प्रायः द्वार शब्द का प्रयोग किया गया है । (रा० : ७ : ३६४, ५७८, ५९५, ८८७, ११७८, ८ : २१ १७९, ४५१, १६३०, १६३४, १६६४) द्वार कार्य का संक्षिप्त शब्द 'द्वार' कल्हण ने प्रयोग किया है । (रा० : ७ : ११७७ : ८ : २९३७९०) द्वाराधिकार शब्द का भी प्रयोग मिलता है । (रा० : ७ : २१६)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१५ में 'मदोर्जितः' का पाठभेद 'मदोज्झितः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२१५ (१) वीरानक : खसों का स्थान था । वर्तमान ग्राम वीरन है । काश्मीर की सीमा पर था । वतस्ता के वाम तट पर था । वह एक मील दक्षिण-पूर्व पूछ गाँव के है । यह प्रसिद्ध पूछ स्थान नहीं है । बुलियास से कुछ ऊपर है । उन्नीसवीं शताब्दी तक भूमिस्वामी उपत्यका के वाम पार्श्व में कुछ दूर वीरन ग्राम के ऊपर और नीचे खस जाति थी । खस का ही अपभ्रंश खख है । यह बुलियास अर्थात् प्राचीन वोल्यस्क के ठीक दूसरी तरफ है । वोल्यस्क काश्मीर का सीमावर्ती क्षेत्र है । कल्हण के वर्णन (रा० : ८ : ४०९) से प्रकट होता है । काश्मीर की सीमा पर खसों की आबादी के समीप वह स्थान है । श्री स्तीन ने इस स्थान का पता कल्हण के वर्णनों के आधार पर लगाया है । उनकी टिप्पणी (रा० ५ : २१४) द्रष्टव्य है । गजेटियर—हजारा जिला ।

(२) उत्तरापथ : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ४ : ३०६ । विदैउद्दीन का मत है कि यहाँ उत्तर से अभिप्राय खुरासान पर किये आक्रमण से है क्योंकि मुसलमानों ने अपना साम्राज्य पंजाब तक फैला लिया था ।

पादटिप्पणी :

२१६ (१) सिन्धु : विलसन का मत है कि महानद सिन्धु से यहाँ अभिप्राय है क्योंकि काश्मीरी सिन्धु नदी उसके अधिकार में ही थी ।

(२) देश : श्री ट्रोयर का मत है कि ऊपरी सिन्धु नदी की उपत्यका तथा तिब्बत के मध्यवर्ती देश से यहाँ तात्पर्य है । पीर हसन लिखता है—राजा शुमाल की तरफ कूच करके दरियाये सिन्ध तक पहुँच गया । (पृष्ठ ९६)

उरशां विशतस्तस्य वास्तव्यैरौरशैः समम् ।
निकेतहेतोः सैन्यानामकस्मादुदभूत्कलिः ॥२१७॥

२१७. उसके उरशा[1] में प्रवेश करते समय आवास हेतु उरशा निवासियों के साथ सैनिकों का अकस्मात् कलह हो गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २१७ में 'उर' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'उडू' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१७ (१) उरशा : पाणिनि ने उरशा गण का उल्लेख किया है। (४ : २८२) सिन्धु तथा वितस्ता अर्थात् झेलम नदी के ऊर्ध्वभागीय मध्यवर्ती क्षेत्र को उरशा की संज्ञा दी गयी है। प्लोतेमी ने भी उरशा क्षेत्र को 'विदसपेस' वितस्ता सिन्ध नदियों के मध्यवर्ती अंचल को रखा है। उसे 'वरस रिजिओ' लिखा है। चीनी पर्यटक उसे उलसी लिखे हैं। साधारणतया प्राचीन उरशा पाकिस्तान के सीमान्त पश्चिमोत्तर देश का हजारा जिला है। अबूफजल वर्णित पखली अंचल उरशा में है। इसमें वे सब पर्वतीय क्षेत्र आ जाते हैं जो सिन्ध नदी तथा काश्मीर के मध्य पड़ते हैं। उसकी दक्षिणी सीमा अटक तक पहुँचती है। इस समय इसके प्रसिद्ध नगर, उत्तर-पूर्व मनसेरा, मध्य नौशेरा; दक्षिण पश्चिम किशनगढ़ अथवा हरीपुर है।

'ओरसस' जाति एक मत के अनुसार उरशा की रहने वाली थी। 'ओरसस' लोगों को इसी मत के अनुसार रूसी कहा जाता है। पूर्व काल में रूस को 'उरुस' कहते थे। सिकन्दर के आक्रमण काल में उरशा का राजा अर्सकेस था। शंकर वर्मा के अभियान वर्णन से पता चलता है कि उरशा की राजधानी कहीं मानसहर तथा अबोटाबाद के मध्य में थी। कल्हण ने उरुशा से अत्युग्रपुर का उल्लेख किया है। वह स्थान वर्तमान अग्रोर है। हजारा जिला के सीमा पर काले पहाड़ के समीप है। मुसलिम काल में यह अंचल पखली कहा जाता था। (आइने-अकबरी ७-२ : ३९०)।

हुएन्त्सांग ने इसे वू-ल-शी की राजधानी बताया है। यह काश्मीर के उत्तर पश्चिम है। काश्मीर राज्य के अन्तर्गत है। (सि-यू-की : १ : १४७; लाइफ : ६८)

विलसन का कथन है कि औरसस अर्थात् उरशा के निवासी कौन थे, सरलता पूर्वक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। पूर्व में रूसियों को उरुस कहते हैं। वे नहीं हो सकते। क्योंकि इस समय वे दूसरी ओर लगे थे। सन्तोष जनक उदाहरणों के अभाव में वह सुझाव देने का यत्न करता है कि उलूश और उरशा शब्दों में सम्बन्ध मालूम होता है। उलूश लोग तारतारी कबीला और अफगान जाति के थे।

विद्वानों का मत है। महाभारत वर्णित उरगा ही उरशा है। यहां का राजा रोचमान था। उसे अर्जुन ने परास्त किया था। वह उत्तर भारत की एक पर्वतीय राजधानी था (सभा० : २० : १९)

कनिंघम का मत है—"काश्मीर के जिला मुजफ्फराबाद के पश्चिम धन्तवार जिला का यह रश स्थान है। मुगल समय का पखली क्षेत्र उरशा ही था। जिसमें सिन्ध नदी तथा काश्मीर का मध्यवर्ती सभी भूखण्ड आ जाता था। वह दक्षिण में अटक की सीमा तक पहुंच जाता था। उसके उत्तर पूर्व, मानसेरा, नव शहर मध्य, कृष्णगढ़ किंवा हरीपुर दक्षिण पश्चिम में था। हुएन्त्सांग के समय में राजधानी तक्षशिला से तीन सौ अथवा पांच सौ मील दूर थी। हुएन्त्सांग के इस संक्षिप्त वर्णन से राजधानी स्थान का निश्चय करना कठिन हो जाता है। सम्भव है। राजधानी मंगली रही हो। स्थानीय लोग

गिरिश्रृङ्गाधिरूढेन श्वपाकेन निपातितः।
वेगवाही शरस्तस्य प्रमादादविशद्गलम् ॥२१८॥

२१८. गिरि श्रृंग पर अधिरूढ़ श्वपाक[1] के द्वारा छोड़ा गया वेगवाही शर (असावधान राजा के) प्रमाद से उसके गले में प्रवेश कर गया।

बताते हैं। जिले की यही राजधानी प्राचीन काल में थी। यह स्थान नौशहरा तथा मानसेरा के मध्य और तक्षशिला से लगभग पचास मील उत्तर-पूर्व है।' (कनिंघम : एशियण्ट ज्योग्रेफी : ८८ संस्करण १९६३)।

हुएन्त्सांग के अनुसार उरशा की परिधि दो सहस्र ली अर्थात् तीन सौ तैंतीस मील थी। हुए-न्त्सांग का कथन ठीक प्रतीत होता है। कुन्हर नदी के मूल स्रोत से गण्डगढ़ पहाड़ तक लम्बाई एक सौ मील के लगभग होगी। चौड़ाई सिन्ध नदी से झेलम अर्थात् वितस्ता तक लगभग पचपन मील हैं। काश्मीर से उसकी दूरी एक सहस्र ली हुएन्त्सांग ने लिखा है। लगभग एक सौ सड़सठ मील होता है। वह दूरी राजधानी को नौशहरा के समीप रखता है यह स्थान इस नाप के कुछ मील के अन्दर आ जाता हैं। कल्हण ने उरशा के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है। उससे प्रकट होता है। काश्मीर एवं उरशा का निकट सम्बन्ध था। इसकी पुष्टि ह्रुएन्त्सांग करता है। यह सम्बन्ध दोनों क्षेत्रों का कल्हण के समय तक बना रहा।

राजा कलश के समय उरशा पर काश्मीर सेना का अधिकार हो गया था। सेना कृष्णगंगा पार कर पहुंची थी। (रा० : ७ : ५८५) पाकिस्तान हिन्दुस्तान विभाजन के पूर्व काश्मीर से सीधा मार्ग जिला हजारा के लिये वितस्ता नदी मुजफ्फराबाद से पारकर जाता था। उरशा का राजा अभय मुंग का पुत्र था। अनन्तर वह अन्य अधीनस्थ राजाओं के साथ राजा कलश की सभा में उपस्थित हुआ था। (रा० : ७ : ५८९) अभय की कन्या का विवाह राजा हर्ष के पुत्र भोज के साथ हुआ था (रा० : ८ : १६) उरशा के राजा ने राजा सुस्सल को कर दिया था (रा० : ८ : ५७४) राजा जयसिंह की उरशा के राजा पर विजय कल्हण के काल में हुई थी। (रा० : ८ : ३४०२)। रा० : ५ : २२५ से पता चलता है कि काश्मीरी सेना को बोलस्यका पहुंचने में छह दिन लगे थे। जिस स्थान पर शंकर वर्मा घायल हुआ था। बोलस्यका स्थान वर्तमान बुलिसा है। यह वितस्ता के दक्षिण तटपर कथयी से चार मिल अधोभाग में है। बीसवीं शताब्दी तक वहां से छह दिन चलकर अवोटाबाद पहुंचा जाता था। वह हजारा जिला का प्रशासकीय केन्द्र है। (ड्न्यू : जम्मू : ५२८) मुजफ्फराबाद, गढ़ी हबीबुल्ला, और मनसहरा होकर काश्मीर से पश्चिमी क्षेत्र में पहुंचने का वह सबसे सरल मार्ग उन दिनों था। निष्कर्ष निकलता है। उरशा के लोगों के साथ संघर्ष अवोटाबाद के किसी पर्वतीय स्थान में हुआ था। मंगली राजधानी अवोटाबाद तथा मानसहरा के मार्ग पर पड़ता था।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१८ में 'शरस्तस्य' का पाठभेद 'शिरस्तस्य' तथा 'प्रमादाद' का 'प्रसादाद' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१८ (१) श्वपाक : डोम-डोम्ब। वेद व्यास (१ : १२-१३) ने उन्हें अन्त्यज माना है। गण कुलालादि में उसका उल्लेख किया गया है (पाणिनि : ४ : ३ : ११४) बौधायन धर्मशास्त्र (१ : ९ : १२) के अनुसार तथा कौटिल्य (३ : ७) के अनुसार उग्र पुरुष तथा क्षत्र उपजाति की स्त्री के द्वारा उनकी उत्पत्ति हुई है। मनु (१० : १९) के अनुसार भंगी पुरुष तथा उग्र स्त्री के द्वारा उनकी

मुमूर्षुराप्तान्कटकं संरक्ष्य नयतेति सः ।
उक्त्वा कर्णीरथारूढः स्थानात्तस्माद्विनिर्ययौ ॥२१९॥

२१९. मुमूर्ष उसने आप्तों को—'कटक सुरक्षा पूर्वक ले चलो'—यह कहकर, कर्णीरथ[1] (पालकी) पर आरूढ़ होकर, उस स्थान से चला गया ।

हीनदर्शनसामर्थ्यः परिज्ञाय शनैर्गिरा ।
क्रन्दन्त्या वपुरालिङ्ग्य स्थितायाः क्षामभाषितः ॥२२०॥

२२०. दर्शन सामर्थ्य रहित (वह) शरीर आलिंगित कर स्थित एवं क्रन्दन करती हुई, सुगन्धा को वाणी से जानकर, दुर्बल कण्ठ से कहा—

पुत्रं गोपालवर्माख्यं न्यासीकृत्य च रक्षितुम् ।
शिशुदेश्यं महादेव्याः सुगन्धाया अबान्धवम् ॥२२१॥

२२१. 'अबान्धव शिशु पुत्र गोपाल वर्मा रक्षा हेतु तुम्हारे हाथ में न्यास है ।'

उत्पत्ति हुई है। वैखानश के अनुसार (१० : १५) चाण्डाल पुरुष तथा ब्राह्मण स्त्री और उशानश (११) उन्हें चाण्डाल पुरुष तथा वैश्य स्त्री के द्वारा उत्पन्न मानता है, उनके अनुसार (१० : ५१-५६) चाण्डाल तथा श्वपाक समानकर्मी थे। वे एक ही नियम सूत्रों से बन्धे थे। उशानश लिखता है कि श्वपाक कुत्तों का मांस खाते थे और कुत्ते ही उनकी सम्पत्ति थे। वैखानश कहता है कि वे वही परिधान तथा चिन्ह राजाज्ञा से धारण करते थे, जो चाण्डाल करते थे। (मनुः ५१० : ५५) वे नगरों का कूड़ा करकट साफ करते थे। स्मशान के समीप रहते थे। वे लावारिश मनुष्यों की अन्तिम क्रिया करते थे।

श्वपाक फाँसी देने का काम करते थे। फाँसी पाये व्यक्ति का वस्त्रादि लेते थे। वे फूटे बरतनों में भोजन करते थे। वे कुत्तों का मांस खाते थे तथा खाल या खाल किंवा चमड़े से बने सैनिक उपकरणों का व्यापार करते थे। भगवद् गीता में उन्हें कुत्तों के स्तर पर रखा गया है (५ : १८) मारकण्डेय पुराण में चाण्डाल तथा श्वपाक में भेद नहीं माना गया है। जाति विवेक में वे महर तथा दक्षिण के मंग के समकक्ष माने गये है।

पीर हसन लिखता है—वापसी के वक्त में पहाड़ के दर्रों के दरमियान भाइयों के इशारा से दुश्मनों का एक तीर उसके गले में छोड़ा गया और वहाँ ही जान से गुजर गया (पृष्ठ ९६)।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१९ में 'रथारूढः' का पाठ भेद 'रूढ़ान्स्था' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२१९ (१) कर्णीरथ : द्रष्टव्य टिप्पणी : जैन : राजतरंगिणी : १ : ७ : २२१। कर्णीरथ का यहां अर्थ शिविका या पालकी है। श्रीवर ने कर्णीरथ का वर्णन सुलतानों के शव यात्रा के सन्दर्भ में किया है। जहाँ उसका अर्थ ताबूत होता है। श्रीवर कर्णीरथ का प्रयोग सुल्तानों की शव यात्रा के प्रसंग में करता है। सुल्तानों का शव कर्णीरथ में रखकर कब्रिस्तान तक ले जाते थे। द्रष्टव्य १ : ७ २२)

पाठभेद :

श्लोक सं० २२० में 'लिंग्य' का पाठ भेद 'लिंग्या' मिलता है।

शंकर वर्मा का देहावसान :

फाल्गुने कृष्णसप्तम्यां वत्सरे सप्तसप्ततौ ।
उत्खायमानविशिखो मार्ग एव व्यपद्यत ॥ २२२॥ तिलकम् ॥

२२२. लौकिक वत्सर ७७[1] (सन् ९०२ ई०) फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को बाण निकालते समय मार्ग में ही (राजा) मर गया ।

सुखराजादयः सैन्यं रक्षन्तः परभूमिषु ।
वृत्तान्तैर्गोपयन्तस्तं यान्त एवाभवन्पथि ॥२२३॥

२२३. सुखराज आदि सैन्य की रक्षा करते हुए, शत्रु भूमि पर उसके मृत्यु वृत्तान्त को गुप्त रखते हुए, मार्ग पर चलते रहे ।

तं यन्त्रसूत्रैस्ते मूर्ध्नो नम्रतोन्नम्रतावहैः ।
प्रतिप्रणामं प्राप्तानां सामन्तानामकारयन् ॥२२४॥

२२४. वे लोग शिर को ऊंचा नीचा करने वाले यन्त्र सूत्रों[1] द्वारा उससे समागत सामन्तों का प्रति प्रणाम कराते थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२२ में श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२२ (१) सतहत्तर वर्षः सप्तर्षि ३९७७ : सन् ९०२ ई० ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२३ में 'सुखराजदयः' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'यन्त्रिणः' तथा 'वृत्तान्तैर्गो' का पाठ भेद 'वृतात्तं गो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२४ (१) यन्त्र सूत्र : चंगस में जहांगीर की मृत्यु हो गयी । काश्मीर से लौट रहा था । उसे एक पालकी में सुला दिया गया । उसकी मृत्यु लाहौर पहुंचने तक गोपनीय रखी गयी । उसका मस्तक और शिर आगत लोगों के विश्वास के लिये उठाने आदि का उपाय सूत्र द्वारा किया गया । जहाँगीर काश्मीर में मरा था । प्रतीत होता है किसी काश्मीरी मुल्ला किंवा हकीम अथवा किसी काश्मीरी ने जो राज-तरंगिणी पढ़ा था यह उपाय तत्कालीन लोगों को बताया होगा । जहाँगीर की अँतड़ी निकालकर चंगस में दफन कर दी गई थी ताकि उसके कारण समस्त शरीर सड़ न जाय । शरीर लाहौर लाकर दफन किया गया ।

चंगस मैं गया हूँ । मुगलों के समय का बाजार बना है । मुगल शैली की कुछ इमारतें हैं । बाजार तथा इमारतें गिर रही हैं । स्थान उजाड़ वाटिका हो गया है ? जहांगीर की अँतड़ी एक इमारत के चबूतरे में एक ओर गाड़ी गयी थी । उसे कब्र की शकल दे दी गयी थी । स्थान अपने गौरव काल में जनाकीर्ण था । प्राकृतिक दृष्टि से भी सुन्दर है ।

षड्भिर्दिनैर्निजे स्थाने प्राप्ते बोल्यासकाभिधे ।
चक्रिरे गतसंत्रासास्ततस्तस्यान्तसत्क्रियाम् ॥२२५॥

२२५. छः दिनों[1] में वहाँ से बोल्यासक[2] नामक निज स्थान पर पहुँचकर, सन्त्रास रहित वे लोग उसकी अन्तिम सत्क्रिया किये ।

तिस्रः सुरेन्द्रवत्याद्या राज्ञ्यो राजानमन्वयुः ।
वेलावित्तः कृतज्ञश्च जयसिंहाह्वयः कृती ॥२२६॥

२२६. सुरेन्द्रवती आदि तीन रानियाँ तथा कृतज्ञ बेलावित्त[1] एवं कृती जयसिंह राजा का अनुगमन[2] किये (चितारूढ़ हुए) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२५ 'बोल्यासकाभिधे' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'बारहमूलसमीपे द्वारवत्यां' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२५ (१) **छह दिन** : विलसन लिखता है कि आक्रमण छोटे तिब्बत तक ही सीमित था । क्योंकि वे आगे नहीं जा सके । काश्मीर की सीमा पर छह दिन में पहुँच गये । यहाँ छह पड़ाव से तात्पर्य है ।

(२) **बोल्यसक** : वराहमूल के समीप द्वारवती था । द्वारवती वर्तमान द्वारवाड़ी स्थान है । द्वारबाडी वितस्ता उपत्यका के उस भाग को कहते हैं, जो ऊपर मुजफ्फराबाद से कुछ दूर बुलियस गाँव के बाद तक पड़ता है । वह प्राचीन द्वारावती है । वितस्ता के दक्षिण तटपर मुजफ्फराबाद से काश्मीर आने वाले पुराने मार्ग पर पड़ता है । बेलियास नाम से स्थानीय लोगों में प्रसिद्ध है । काश्मीरी लोग जो उपत्यका के अधोभाग बारहमूला के पश्चात् कथाई तथा हत्तियन तथा अन्य स्थानों में आबाद हैं, वे प्रायः बोल्यासक नाम का उच्चारण करते है । बुलियास नाम उस उपत्यका का भी है, जो गाँव के उत्तर ओर खुलती है । इस श्लोक के वर्णन से प्रकट होता है कि हिन्दू राज्य के समय काश्मीर राज्य का अधिकार उपत्यका से इस स्थान तक विस्तृत था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२६ 'वेलावित्तः' का पाठभेद 'वालावित्तः' तथा 'बालाविभुः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२६ (१) **वेलावित्त** : वेलावित्त शब्द का अर्थ अनिश्चित है । इसका उल्लेख (रा० : ६ : ७३, १०६, १२७) कल्हण ने राजा के एक अधिकारी तथा दरबारी के रूप में किया है । कल्हण ने (रा० : ६ : १०६) वेलावित्त का उल्लेख राजा के मित्र, सम्बन्धी तथा राज्य अधिकारियों के साथ किया है । रानी दिद्दा के प्रिय एक वेलावित्त का उल्लेख (रा० : ६ : ३२४) किया गया है । प्रसाद वित्त अर्थ में इस शब्द को लिया जा सकता है । द्रष्टव्य : (टिप्पणी : ६ : ७३ रा० : ७ : २५)

(२) **अनुगमन** : विलसन लिखता है कि प्रारम्भिक पर्यटकों ने दक्षिण में इस प्रकार के सामूहिक चितारोहण की घटना अनेक स्थानों में देखी थी । शास्त्र उन्हें इस प्रकार चितारोहण करने का निर्देश नहीं करता । शोक तथा बीमारी के कारण स्वतः प्राण देने की घटनायें हैं । इस प्रकार की अनेक घटनायें मिलती हैं । स्वयं प्राणोत्सर्ग करना इस समय प्रयाग (इलाहाबाद) के अतिरिक्त सब स्थानों पर वर्जित है । (६३)

द्वौ लाडो वज्रसारश्च तं भृत्यावनुजग्मतुः ।
इति षड्भिश्चितारूढैः सहसाक्रियताग्निसात् ॥२२७॥

२२७. लाड तथा वज्रसार नामक दो भृत्यों ने उसका अनुगमन किया। इस प्रकार चितारूढ़[1] छः व्यक्तियों ने सहसा अग्निसात् कर लिया ।

गोपाल वर्मा (सन् ९०२–९०४ ई०) :

ततो जुगोप गोपालवर्मा धार्मिकतोज्ज्वलः ।
सुगन्धया पाल्यमानः सत्यसंधो वसुंधराम् ॥२२८॥

२२८. तदुपरान्त सुगन्धा द्वारा पाल्यमान धार्मिकतोज्ज्वल एवं सत्यसन्ध गोपाल वर्मा वसुन्धरा का पालन करने लगा[1] ।

पादटिप्पणी :

२२७ (१) चितारूढ़ : राजा के साथ छह व्यक्तियों का सामूहिक रूप से चितारूढ़ होना अपने ढंग का एक ही उदाहरण है। उदयपुर (राजस्थान) में होड़ावर स्थान में मेवाड़ के राणाओं की समाधियाँ किंवा छतरियां बनी हैं। एकलिंग जी के आकार की मूर्तियाँ समाधि केन्द्र में स्थापित की गयी हैं। जिस समय सती प्रथा प्रचलित थी, उस समय जितनी रानियाँ राजा के साथ सती होती थीं, उतने की आकृति शिवलिंग के पास हीं एक दूसरे पाषाण खण्ड पर बना दी जाती थी। उससे प्रकट होता था। किस राणा के साथ कितनी महिलायें सती हुई थीं। वह प्रथा मिश्र तथा चीन में थी। वहाँ राजा के साथ सेवक आदि समाधिस्थ कर दिये जाते थे। चीन में राजा के साथ उसके सेवक अश्व मारकर तथा साथ ही साथ उसके अस्त्र शस्त्र भी उसी के साथ गाड़ दिये जाते थे। मिश्र के पिरामेड में फरोहा की समाधि के साथ रानियाँ भी प्राणोत्सर्ग कर जाती थीं ।

पादटिप्पणी :

२२८ (१) श्री कल्हण लौ० ३९७७ फाल्गुन कृष्ण सप्तमी, श्री पन्त कलि ४००३ शक ८२४ लौ० ३९७८ सन् ९०२; श्री स्तीन लौ० ३९७७ = सन् ९०२; सी० एम० एफ० सन् ९०२ ई०, श्री विलसन लौ० ३९७७ = सन् ९२२ ई० ९ मास, श्री ट्रॉयर सन् ९०४ ई० ८ मास २० दि० लौकिक ३९७७; श्री कनिंघम लौ० ३९७७ = सन् ९०१ ई० १० मास; डाइनॉस्टिक हिस्टॉरी आफ इण्डिया सन् ९०२ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् ९६८, त्रिवेद ८८८ ई० = शक ८१० देते हैं। तथा राज्य काल २ वर्ष एक माह तथा सर्व श्री ट्रोयर, दत्त, स्तीन, विलसन, पण्डित तथा आइने अकबरी २ वर्ष एवं पीर हसन २ वर्ष १ मास देता है। गोपाल वर्मा की एक मुद्रा प्राप्त हुई है। उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'गोपाल' एवं पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'वर्मा' टंकित है।

आइने अकबरी में नाम गोपाल वर्मा लिखा गया है। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल २ वर्ष दिया गया है।

सम सामयिक घटनाएं :

सन् ९०३ ई० में लियो (चतुर्थ) क्रिस्टफर पोप हुआ। बुखारा में सामानी वंश का राज्य शफ्फारी वंश को हटाकर स्थापित हुआ ।

मध्ये लालितकादीनां दुर्वृत्तानां वसन्नपि ।
अनतिक्रान्तबाल्योऽपि दुःसंस्कारान्न सोऽग्रहीत् ।।२२९।।

२२९. क्रीड़ासक्त (कामुक) लालितकादि (सेवकों) के मध्य रहकर भी उस बालक ने दुःसंस्कारों को ग्रहण नहीं किया ।

भूपालजननी भोगैर्वैधव्येऽधिकमुन्मदा ।
सा प्रभाकरदेवाख्यमचीकमत मन्त्रिणम् ।।२३०।।

२३०. वैधव्य में भोगों से अधिक उन्मत्त वह भूपालजननी प्रभाकरदेव नामक मन्त्री की प्रणय कामना करने लगी ।

तया निर्भरसंभोगप्रीतया स व्यधीयत ।
सौभाग्यपदशृङ्गारमौलिचक्रत्रयाङ्कितः ।।२३१।।

२३१. निर्भर संभोग से प्रसन्न उसे (प्रभाकरदेव को) सौभाग्य, पद, शृंगार तीन मुकुट चन्द्रकों से विभूषित किया ।

कोशाध्यक्षेण रागिण्यास्तस्या लुण्ठितसंपदा ।
उदभाण्डपुरे तेन शाहिराज्यं व्यजीयत ।।२३२।।

२३२. उस रागिणी की सम्पत्ति लुण्ठित कर, उस कोशाध्यक्ष ने उदभाण्डपुर[1] का शाही राज्य विजय किया ।

आज्ञातिक्रमिणः शाहेः कृत्वा कमलुकाभिधाम् ।
तोरमाणाय स प्रादाद्राज्यं लल्लियसूनवे ।।२३३।।

२३३. उसने आज्ञा अतिक्रमणकारी, शाही का राज्य, लल्लिय पुत्र तोरमाण[1] को कमलुक नाम रखकर प्रदान किया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२९ में 'लालितकादीनां' का पाठ भेद 'लालितकाः पदातयः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३० (१) मन्त्री : प्रभाकर वर्धन मन्त्री तथा कोशाध्यक्ष भी था । श्लोक (रा० : ५ : २३२) से स्पष्ट हो जाता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३२ में 'व्यजीयत' का पाठभेद 'व्यधीयत' तथा 'उदभाण्डपुरे' का 'उदाभाण्ड' और पार्श्व टिप्पणी में 'हैभङ्ग' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३२ (१) उदभाण्डपुर : द्रष्टव्य : रा० : ५ : १५३ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३३ में 'धाम्' का 'धम्' तथा 'तोरमाणाय' का पाठ भेद 'तोमराणाय' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३३ (१) तोरमाण : तोरमाण अपर नाम कमलुक था । यह तोरमाण कल्हण वर्णित (रा० :

प्रत्यावृत्तोऽथ नगरं विवेश विजयोर्जितः ।
शौर्यशृङ्गारवसतौ साभिमानः स्वविग्रहे ।।२३४।।

२३४. विजयोर्जित शौर्य एवं शृंगार का अधिष्ठान, स्वशरीर पर स्वाभिमानी, प्रत्यावृत्त होकर, नगर में प्रवेश किया ।

स राजजननीजारः साहंकारो जयार्जनात् ।
मानक्षतिमधिक्षेपैर्वीराणां व्यधितान्वहम् ।।२३५।।

२३५. जयार्जन से साहंकारो वह राजमाता का जार[1] प्रतिदिन अधिक्षेपों से वीरों की मान क्षति करने लगा ।

---

३ : १०२) से सर्वथा भिन्न व्यक्ति है । सम्भवतः अलबेरुनी के हिन्दू शाही वंश की तालिका का तृतीय राजा है । (अल्बेरुनी इण्डिया : २ : १३) 'जमयुल हिकायत' के अनुसार कमलू हिन्दुस्तान का राय (राजा) था । (इलियट हिस्टोरी : २ : १७२, ४२३) वह अमरु बिन लइस (सन् ८७८-९०७ ई०) खुरासान के सूबेदार का समकालीन था, यह समय कल्हण के समय से मिलता है । इस समय शाही राजा के विरुद्ध काश्मीर राजा ने सैनिक अभियान कर कमलुक को राज्य प्रदान किया था । कमलुक किसके पश्चात् राजा हुआ इसका कल्हण पता नहीं देता । शाही वंश का द्वितीय राजा सामन्त था । अलबेरुनी की तालिका से मालूम होता है । तोरमाण नाम का मूल कुछ विद्वानों ने तुर्की माना है । किन्तु अलबेरुनी ने राज वंश को ब्राह्मण लिखा है । एक मत है । इस वंश ने एक पुराने तुर्की वंश को हटाकर राज्य प्राप्त किया था । सम्भव है उनकी परम्परा का अनुकरण कर उनके अनुरूप नामादि रखा होगा ।

(२) **कमलुक :** अल्बेरुनी वर्णित यह शाह वंशीय राजा था । (अल्बेरुनी १ : १०१) हिन्दू शाही वंश का राज्य काबुल तथा गान्धार में मुहम्मद गजनी के पूर्व था । अल्बेरुनी के अनुसार यह वंश तुर्की शाही वंश का उत्तराधिकारी हुआ था । तुर्की शाही वंश का हिन्दू राज्य साठ पीढ़ियों तक काबुल में कायम था । शाही वंश का अन्तिम राजा लग तूरमान को उसके ब्राह्मण वजीर ने राज्य च्युत कर हिन्दू शाही वंश का संस्थापक बना । 'काबुल में ब्राह्मण शाही, या हिन्दू शाही अथवा काबुल रायन शाही नामक वंश की स्थापना हुई । यहां के एक राजा रतिब्रल का पता सन् ८७१ ई० में चलता है । ब्राह्मण शाहान का पहला राजा कल्लर था । उसका उत्तराधिकारी सत्त देव हुआ । उसकी मुद्राओं पर 'श्री सामन्तदेव' टंकणित मिलता है । उसके काल में वाकू बिन लेठ ने काबुल पर आक्रमण किया । सामन्तदेव काबुल त्याग कर गरदेज को अपनी राजधानी बनाया । (आर्याना : पृष्ठः ५७)

अल्बेरुनी उसे कल्लर कहता है । कल्लर को कल्हण वर्णित राज तरंगिणी का लल्लिय शाही माना गया है । वही लल्लिय कमलुक का पिता था । कमलुक ही अल्बेरुनी वर्णित कल्लर है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३५ में 'जारः साहङ्कारो' का 'जननीसङ्गात्साभिमानो' तथा 'मान' का 'मनाः' का पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३५ (१) **जार :** जार शब्द उपपति, प्रेमी के लिये राजतरंगिणी में बहुत प्रयोग किया गया है । 'रथकारं स्वकां भार्यां सजारां शिरसावहत् ।' (पंच-तन्त्र : ४ : ५४) क्षेमेन्द्र के समय जार शब्द प्रचलित था । उसने 'जारगुरु' 'जारोतत्व' आदि का उल्लेख किया है । (नर्ममाला : २ : ५४, देशोपदेश : २ : ३२) ।

क्षुद्रेण कामिना वेश्यावेश्मनीव नृपास्पदे ।
तेनावृते संप्रवेशो नाभूदन्यस्य कस्यचित् ॥२३६॥

२३६. उस क्षुद्र कामी से आक्रान्त, वेश्या वेश्म सदृश, नृपास्पद में किसी अन्य का प्रवेश नहीं होता था ।

शनैर्विज्ञातवार्तस्य धनमानापहारकृत् ।
सोऽभूदक्षिगतोत्यर्थं राज्ञो गोपालवर्मणः ॥२३७॥

२३७. वह धनमानापहारी, क्रमशः वार्ता ज्ञात होने पर, राजा गोपाल वर्मा की आँखों में गड़ गया ।

विद्यते यन्न गञ्जेऽस्मिंस्तत्सर्वं शाहिविग्रहे ।
गतमित्यब्रवीद्भूपं स कोशगणनोद्यतम् ॥२३८॥

२३८. 'इस गंज[1] में जो धन नहीं है, वह सब शाहि विग्रह में समाप्त हो गया यह कोश गणना के लिये उद्यत भूप से उसने कहा ।

अथ गञ्जाधिपो राजभीतः खार्खोदवेदिनम् ।
रामदेवाह्वयं बन्धुमभिचारमकारयत् ॥२३९॥

२३९. राजभीत गंजाधिप[1] ने खार्खोद[2] वेत्ता बन्धु रामदेव[3] से अभिचार कराया ।

तयाऽभिचारक्रियया भुक्तभूर्वत्सरद्वयम् ।
गोपालवर्मनृपतिर्जातदाहो व्यपद्यत ॥२४०॥

२४०. उस अभिचार[1] क्रिया से जातदाह राजा गोपाल वर्मा दो वर्ष[2] भू का समुपभोग कर मर गया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३७ में 'मानाऽप' का पाठभेद 'मालाप' मिलता है ।

पाठभेद :

'यन्न' का 'यन्त्र' तथा कोश का पाठभेद 'शोक' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३८ (१) गंज : खजाना ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३९ में 'गञ्जाधिपः' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'प्रभाकरः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३९ (१) गंजाधिप : गंज का अर्थ कोश होता है । गंजाधिप, फारसी शब्द गजावर का समानार्थक है । द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ५ : १७७

(२) खार्खोद : द्रष्टव्य : रा० : ४ : ९४ ।

(३) रामदेव : प्रभाकर वर्धन का सम्बन्धी तथा राजा यशस्कर के चाचा का पिता था । (रा० : ६ : ९१) इसने राज दण्ड भय से आत्म हत्या कर ली थी । (रा० : ५ : २४१) ।

पादटिप्पणी :

२४० (१) अभिचार : द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ४ : ११४ तथा ४ : ६८६ : द्रष्टव्य क्षेमेन्द्र : समयमातृका : ४ ९, ।

(२) दो वर्ष : पीरहसन दो वर्ष एक मास देता है । (पृष्ठ : ९७) ।

व्यक्तीभूतकुकर्मा स राजदण्डभयाकुलः ।
रामदेवोऽवधीत्पापः स्वयमेव स्वविग्रहम् ॥२४१॥

२४१. कुकर्म के व्यक्त होने पर राजदण्ड[१] भय से आकुल वह पापी रामदेव स्वयमेवः स्वविग्रह का वध कर दिया (आत्महत्या कर लिया)।

रथ्यागृहीतो गोपालवर्मभ्राताऽथ संकटः ।
बभूव प्राप्तराज्यः स दशभिर्दिवसैर्व्यसुः ॥२४२॥

संकट वर्मा (सन् ९०४ ई०)

२४२. गोपाल वर्मा के भाई संकट वर्मा को रथ्या[१] से लाकर राज्य दिया गया। वह दस दिन में मर गया।

अथ वंशक्षये वृत्ते राज्ञः शंकरवर्मणः ।
प्रजाप्रार्थनया राज्यं सुगन्धा विदधे स्वयम् ॥२४३॥

सुगन्धा (सन् ९०४-९०६)

२४३. अनन्तर राजा शंकर वर्मा का वंश क्षय होने पर, प्रजा की प्रार्थना पर सुगन्धा स्वयं राज्य[१] प्रबन्ध करने लगी।

पादटिप्पणी :

२४१ (१) राजदण्ड : राजा का प्रशासन किंवा राज्याधिकार भी राजदण्ड का अर्थ होता है। दण्डनीति को राजशास्त्र कुछ पुराकालीन लेखकों ने माना है। राजा द्वारा प्रदत्त दण्ड राजदण्ड कहा जाता है। सब प्रकार के दण्ड जो राज्य की तरफ से दिया जाता है, चाहे वह न्यायालय की आज्ञा से दिया जाय अथवा राजा या राज्याधिकारियों के आदेश से, सबको राजदण्ड कहते हैं।

गौतम ने 'दण्ड' को 'दम्' धातु से निकाला है (९ : २८) दम् का अर्थ निवारण किंवा रोकना होता है। दण्ड प्रतिकरात्मक सुधारात्मक दोनों प्रकार का होता था। (मनु० ८ : ३५ वसिष्ठः १९ : ४५) बृहस्पति ने दण्ड की चार विधियां बतायी हैं। उपदेश, फटकार, शारीरिक एवं अर्थदण्ड।

पादटिप्पणी :

२४२ श्री दत्त राजा संकट का राज्याभिषेषक काल कलि ४००५ = शक ९२४ = लौकिक ३९८० = सन् ९०४ ई०, सी० एम० एफ०, सन् ९०४ ई०, श्री स्तीन ३९७९ = सन् ९०४ ई०; श्री ट्रोयर सन् ९०६ ई० ८ मास २० दिन = लौकिक ३९७७; श्री कनिंघम ३९७९ = सन् ९०३ ई० १० मास; डाइनास्टिक हिस्टोरी आफ इण्डिया सन् ९०४ ई०; त्रिवेद सन् ८९० ई० = शक ८१२ देते हैं। सर्व श्री पीरहसन, विलसन एवं एस० पण्डित सिंहासनारोहण काल नहीं देते। राज्य काल सभी कल्हण एवं आइने अकबरी सहित १० दिन देते हैं। आइने अकबरी में नाम संगुत तथा राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल २० दिन दिया गया है।

२४२ (१) रथ्या : मार्ग को रथ्या कहते हैं। सड़क, राजमार्ग, मुख्य सड़क आदि इस परिभाषा में आते हैं। भूयो भूपः 'सविध नगरी रथ्यया पर्यटन्तम्।' मातंग लीला : १ : १४।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९०४ ई० में सागियस (तृतीय) पोप हुआ। शैलेन्द्र साम्राज्य का दूत मण्डल चीन गया। रूसी जहाजी बेड़ा कुस्तुनतुनिया से बाहर गया। जयक सैन्धव राजा का ज्ञात समय (सन् ९०४-९१५) ई० संकट वर्मा काश्मीर का राजा हुआ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४३ में 'सुगन्धा' के लिये पार्श्व

गोपालपुरगोपालपटगोपालकेशवान् ।
सा पुरं च स्वनामाङ्कं विदधे धर्मवृद्धये ॥२४४॥

२४४. उसने धर्म वृद्धि के लिये गोपालपुर[1], गोपाल मठ[2], गोपाल केशव एवं स्व नामांकित नगर स्थापित किया।

टिप्पणी में 'गोपालवर्मसंकटयोर्माता सुगन्धा' तथा 'गोपालवर्ममाता' तथा 'स्त्रयम्' के लिये 'पुरम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२४३ श्री दत्त रानी सुगन्धा का राज्यप्राप्ति काल कलि ४००५ = शक ८२६ लौकिक ३९८० = सन् ९०४ ई०; श्री स्तीन लौकिक ३९७९ = सन् ९०४ ई०; श्री पण्डित सन् ९०४; सी० एम० एफ० सन् ९०४ ई०; श्री विल्सन लौकिक ३९७९ = ९०४ ई० ९ मास; श्री ट्रोयर सन् ९०६ ई० ९ मास; लौकिक ३९७९; श्री कनिंघम लौकिक ३९७९ सन् ९०३ ई० १० मास; डाइनास्टिक हिस्टारी आफ़ इण्डिया सन् ९०२ ई०; श्री पीर हसन विक्रमी संवत् ९७० = ९१३ ई०; त्रिवेद सन् ८९१ ई० = शक ८१३ देते हैं। तथा सर्व श्री ट्रोयर, दत्त, स्तीन, विल्सन, पण्डित, आइने अकबरी तथा पीर हसन राज्यकाल २ वर्ष देते हैं। आइने अकबरी में नाम रान्नी सौगन्धा दिया गया है। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल २ वर्ष दिया गया है। सुगन्धा की एक ताम्र मुद्रा मिलती है। मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा दूसरी ओर दण्डायमान राजा की मूर्ति खुदी है। लक्ष्मी के दक्षिण पार्श्व में 'सुग' तथा वाम पार्श्व में 'श्री' लिखा है। राजा की तरफ 'देव्या' टंकणित है।

(१) राज्य प्रबन्ध : काश्मीर में विधवा रानियों ने शासन का कार्य किया है। पहला उदाहरण रानी यशोवती का है जिसके पति की मृत्यु पर भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं रानी का राज्याभिषेक करवाया था। उस समय से विधवा रानियों का शासन अशुभ नहीं माना जाता था। काश्मीर में वह परम्परा पवित्र मानी जाती थी। कहीं अन्य स्थान पर विधवा रानी का राज्यग्रहण स्वतः अपने अधिकार के द्वारा ग्रहण करने का प्रमाण नहीं मिलता। दिवंगत राजा का सबसे निकट का सपिण्ड ही राज्य ग्रहण करता था। पुत्र किंवा सन्तान के अभाव में राजा का दत्तक पुत्र किंवा जिसे वह अपना उत्तराधिकारी बनाता था वह राज्य करता था। पश्चिमी ईसाई देशों में कन्या अपने पिता के राज्य की उत्तराधिकारी होती रही है। ब्रिटेन की रानी एलिजाबेथ प्रथम रानी एन तथा एलिजाबेथ द्वितीय इसकी ज्वलन्त उदाहरण हैं। किन्तु वहाँ भी दिवंगत राजा की विधवा रानी राज्य सिंहासन पर नहीं बैठती थी। उत्तराधिकार राजा के निकटवर्ती सम्बन्धी को जाता था।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९०५ ई० में भद्रवर्मा चम्पा का राजा हुआ। चाओ-सु-अन-ती-चीन सम्राट् हुआ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४४ में 'गोपालपुर' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'गुरीपुरम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२४४ (१) गोपालपुर : गूरपूर। छोटा ग्राम वस्तरवन पहाड़ के दूसरी तरफ है। वितस्ता के वाम तटपर अवन्तीपुर के अधोभाग में है। यहाँ प्राचीन ध्वन्सावशेष नहीं मिलते। गुरपोर एक स्थान रनवोर जिला श्रीनगर में भी है। कल्हण ने (रा० : ८:१४७१) एक और गोपालपुर का उल्लेख किया है। वह स्थान काश्मीर उपत्यका के बाहर राजपुरी अर्थात् राजौरी में है। गोपालपुर के डूगरसीह राजा का नाम श्रीवर (१ : ६ : १४) ने दिया है। इस दूर के राजा ने बड़शाह जैनुल आबदीन को भेंट भेजा था। श्रीवर वर्णित गोपालपुर काश्मीर के बाहर का स्थान ग्वालि-

गोपालवर्मणो जाया नन्दाऽनिन्द्यान्वयोद्भवा ।
शिशुरप्यभवन्नन्दामठकेशवधारिणी ॥२४५॥

२४५. शिशु होने पर भी गोपाल वर्मा की अनिन्द्य कुलोद्भवा पत्नी नन्दा ने नन्दा मठ[1] एवं केशव निर्मित किया ।

अन्तर्वत्न्याः क्षणे तस्मिन्पत्न्या गोपालवर्मणः ।
जयलक्ष्म्यां बबन्धास्थां श्वश्रूः संतानकङ्क्षिणी ॥२४६॥

२४६. उस समय गोपाल वर्मा की अन्य पत्नी जयलक्ष्मी से सन्तान कामिनी श्वश्रू (सास) सन्तान की आशा करने लगी ।

तस्यां विपन्नापत्यायां प्रसवान्तेऽतिदुःखिता ।
साभूदन्वयिने राज्यं कस्मैचिद्दातुमुद्यता ॥२४७॥

२४७. प्रसवानन्तर उसके अपत्य[1] के विपन्न होने पर अति दुःखी वह किसी भी स्ववंशीय को राज्य देने के लिये उद्यत हो गयो ।

तन्त्रियों का उदय :

तस्मिन् काले महीपालनिग्रहानुग्रहक्षमम् ।
तत्र तन्त्रिपदातीनां कृतसंहत्यभूत्कुलम् ॥२४८॥

२४८. उसी समय वहाँ राजाओं पर निग्रहानुग्रह करने में समर्थ तन्त्रि[1] पदातियों का कुल समूह बद्ध हुआ ।

यर है । (जैन : राज० : १:६ : १४) ।

(२) गोपाल मठ, गोपाल केशव, स्वनामांकित (सुगन्धपुर :) का पता नहीं लगता । वे किस स्थान पर थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४५ में 'नन्दामठ' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'नन्दीमठ' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४५ (१) नन्दामठ : नन्दा मठ ही नन्दीमठ था । वह नन्दमर होना चाहिये । क्योंकि मठों के लिये मर शब्द का प्रयोग किया जाने लगा था, यथा—दिद्दामठ—दिदमर : भट्टारक मठ—ब्रदमर आदि ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४६ में 'अन्तर्वन्त्याः' का पाठभेद 'अन्तर्वत्न्यां' 'पत्न्यां' को 'पत्न्यां' तथा 'जयलक्ष्म्यां' का 'जयलक्ष्म्या' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४७ (१) अपत्य : एक ही कुल में उत्पन्न पुत्र, पौत्रादि यथा—अपत्यं पौत्रप्रभृति गोत्रम् पाः ४ : २ : ६२; ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४८ में 'निग्रहा' का पाठभेद 'विग्रहा' 'तन्त्रि' का 'तत्र' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४८ (१) तन्त्री : तन्त्रियों का अत्यधिक उल्लेख इसके समय के पश्चात् काश्मीर के इतिहास

ततः समाश्रितैकाङ्गा स्वयं संवत्सरद्वयम् ।
सुगन्धा विदधे राज्यं सा मित्रत्वेन तन्त्रिणाम् ॥२४९॥

२४९. तदनन्तर एकांगों[1] के समाश्रित होकर सुगन्धा ने स्वयं तन्त्रियों की मित्रता से दो वर्ष राज्य किया।

में मिलने लगता है। वे एक सैनिक वर्ग में संघटित हो गये थे। तन्त्री के सम्बन्ध में विलसन ने एक नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उसका मत है कि तन्त्री तथा एकांग पेशेवर गैर काश्मीरी सैनिक वर्ग था। तन्त्री को तत्री या ततर अनुमान करता है। उनके विषय में कहा जाता है कि कन्नौज के राजा के दुन्दिका द्वारा आर्कषित होकर भारत आये थे। उनकी एक स्थान पर तुलना वेश्या के समान की गयी है जो धन के अतिरिक्त और किसी बात का ख्याल नहीं करती। तन्त्रियों की शक्ति पार्थ के उत्तराधिकारी तथा, शंकरवर्धन की चक्रवर्मण के द्वारा पराजय होने के पश्चात् (सन् ९०६-९३० ई०) बहुत बढ़ गई थी। (रा० : ५ : २४९-३४०) प्राचीन रोमन साम्राज्य के प्रेटोरियन गार्डस् से उनकी तुलना की जा सकती है। पदाति सैनिकों में वे प्रायः भरती होते थे। वहाँ अपना संघटन बना लिया था। अश्वरोहियों से वे भिन्न थे (रा० : ७ : १५१३ : ३७५, ९३२, ९३७) और राजा के अंगरक्षक रूप में कार्य करते थे (रा० : ८ : ३०३) तन्त्रियों का नाम अब भी ट्रारवल क्षेत्र में 'क्राम' नाम से ख्यात है। तान्त्र काश्मीर के अधिकांश मुसलिम कृषकों में पाये जाते हैं। क्राम में अनेक भेदभाव पहले थे। वे लोप हो गये हैं। किसी अन्य ग्रामीण मुसलमानों तथा तान्त्र में किसी प्रकार का भेद रीति-रिवाजों में नहीं मालूम होता। तान्त्र जाति की मूल विशेषतायें क्या थीं। उनका भी अब पता नहीं चलता। अपने मूलरूप एवं परम्परा को भूल गये हैं। लारेन्स = (वैली : ३०६) ने उनके विषय में लिखा है—उनके विवाह सम्बन्ध में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। तान्त्र जाति का कोई मुसलमान या तो तान्त्र क्राम से अथवा ग्राम के किसी लड़की से विवाह कर सकता है। केवल एक ही प्रतिबन्ध है। वह ग्रामीण कृषक वर्ग की होनी चाहिए। सन् ९१८ से ९३६ ई० तक तन्त्री अधिकारियों का प्राबल्य था।

काश्मीर में स्वाधीनता के पश्चात् सामाजिक परम्परा, रीतिरिवाज, रहन-सहन तथा वेषभूषा में अत्यधिक परिवर्तन हो गया है। पश्चिमी सभ्यता का प्रवेश हो चुका है। पर्यटकों के लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष आने तथा उनके सम्पर्क के कारण पुराना काश्मीर बदल गया है। आज से पचास वर्ष पूर्व का काश्मीर अब कहानी मात्र रह गया है। श्रीवर ने तन्त्रियों का उल्लेख किया है जो मुसलमान हो गये थे। (१ : १ ९४, १३३)

पाठभेद :

श्लोक सं० २४९ में 'सा' का पाठभेद 'स' एवं 'तन्त्रिणाम्' का 'मन्त्रिणाम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२४९ (१) एकांग : एकांग का वास्तविक रूप क्या था निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। वे एक प्रकार के सैनिक थे। कल्हण के तरंग पाँच तथा सात के वर्णनों से यही प्रकट होता है। राजतरंगिणी के अतिरिक्त और ऐतिहासिक ग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं मिलता। पाश्चात्य लेखक ट्रायर आदि का मत है कि वे राजकीय अंगरक्षक थे। उनका उल्लेख सामन्तों, मन्त्रियों, तन्त्रियों तथा कायस्थों के साथ किया गया है। वे राजसभा तथा राजकार्यों को प्रभावित करते चित्रित किये गये हैं। (रा० : ५ : ३४२, ४४६, ६ : ९१, १३२) वे उन तन्त्रियों के विषय में राजद्वार पर युद्ध करते दिखाये गये हैं जो कि राजसिंहासन के दूसरे अधिकारी का समर्थन करते थे। वे रानी दिद्दा के समर्थन में हथियार उठाये थे।

योग्याय दातुं साम्राज्यं कस्मैचित्सा किलैकदा ।
मन्त्राय मन्त्रिसामन्तांस्तन्त्र्यैकाङ्गानढौकयत् ।।२५०।।

२५०. एक बार उसने किसी योग्य को राज्य देने की मन्त्रणा के लिये मन्त्री, सामन्त, तन्त्री एवं एकांगों को बुलाया ।

(रा० : ५ : २८९, ६ : २४४) वे राजा अनन्तदेव की रक्षा दूसरे राज्यप्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति से किये थे । (रा० : ७ १५५-१६२) अक्षपटल के समीप राजा हर्ष एकांगोंको एकत्रित कर निर्णायक युद्ध करने का प्रयास करता दिखाई देता है । (रा० : ५ : ३०१, ७ : १६०४) कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि एकांगों का संघटन सैनिक था । उनका काम आजकल कौ पुलिस मुख्यतः पुलिस कान्सटेबुल के समान था । स्वाधीनता पूर्वकालीन काश्मीर के पलटन निजामत से उनकी तुलना की जा सकती है । पलटन निजामत का संघटन प्रशासकीय अधिकारियों तथा कर वसूल करने वालों की सहायता के लिए किया गया था । (लारेन्स = वैली : ४०२) कण्टिनेण्टल यूरोप के गेण्डरमेन्स से एकांगों की समानता की जा सकती है।

विलसन ने एकांगों का मूल ढूँढ़ने का प्रयास किया है । उसका मत है कि तन्त्री और एकांग तातार और अफगानी थे जो सर्वदा अपनी सैनिक वृत्ति भारतीय राजाओं के हाथों बेचते रहे हैं। एकांगों को वह अफगानी होने का अनुमान करता है । निस्सन्देह भारत में मुसलिम काल तथा उसके पूर्व भी अफगानी भारतीय सेना में भरती होते थे । अंग्रेजों के समय पठानों का एक सैनिक वर्ग ही था । अफगानिन्तान के निवासी पठान कहे जाते थे । 'एका' का अर्थ 'एक' होता है । अंग का अर्थ शरीर के अवयव होते हैं । उसका शाब्दिक अर्थ होगा । सेना जो एक शरीर के समान अर्थात् एक अंग के समान लड़ती थी ।

'इलफिन्सटॉन का मत है कि अफगान शब्द का मूल अनिश्चित है । सम्भवतः यह आधुनिक शब्द हैं । अफगानियों को स्वयं इसका ज्ञान फारसी भाषा के द्वारा हुआ है । फारसी में इसका कोई भी अर्थ नहीं निकलता । उन्होंने स्वयं इसे कहीं और स्थान से लिया है ।

सूदूरपूर्व काल में कहा जाता है कि अफगान घोर प्रदेश मे रहते थे । नवीं शताब्दी में वे अफगानिस्तान के उत्तर पूर्व अंचल में रहने लगे थे । और वहाँ से डामरों द्वारा उद्वासित कर दिये गये थे जो कि काश्मीर की सीमा पर नवीं शताब्दी में आबाद थे ।

मैंने अफगानिस्तान तथा समीपवर्ती अंचलों की यात्रा की है । ताशकन्द भी गया हूँ । अफगान शब्द प्रथम बार अहमद शाह दुर्रानी के समय प्रकाश में आया । यह समय सन् १७४७—१७७३ ई० है । (आर्यन या एन्शिएण्ट अफगानिस्तान प्रकाशन : काबुल पृष्ठ १)

एकांग डोगरा काल में पत्तन निजाम अर्थात् आर्मी कन्टिकलरी अथवा आर्म पुलिस के समान था । तकरी निस्सन्देह पदातिन अर्थात् पेंदल सिपाही थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५० में 'न्तांस्त' का पाठभेद 'न्तांत्तन्त्रै' मिलता है ।

अवन्तिवर्मवंशान्ते नप्तारं शूरवर्मणः ।
गग्गायाः स्वकुटुम्बिन्याः संजातं सुखवर्मणा ॥२५१॥

२५१. अवन्तिवर्मा का वंश समाप्त होने के कारण, स्वकुटिम्बिनी गग्गा से सुखवर्मा द्वारा उत्पन्न शूरवर्मा के नाती—

अनुव्रतो मे संबन्धिस्नेहादेवं भवेदिति ।
राज्ये निर्जितवर्माख्यं कर्तुं तस्या मनोऽभवत् ॥२५२॥ युग्मम्॥

२५२. निर्जितवर्मा को सम्बन्धी प्रेम के कारण—'मेरा अनुगमन करेगा' इस विचार से राज्य पर स्थापित करने की उसकी अभिलाषा हुई ।

तया तदुक्तं विषयव्यसनित्वेन जागरात् ।
रात्रौ दिवाशयतया योऽप्यनुत्थानदूषितः ॥२५३॥

२५३. उसके उक्त बात कहने पर—'विषयव्यसनी होने से रात्रि जागरण एवं दिन में सोने के कारण जो उठने में भी असमर्थ है—

नाम पङ्गुरिति प्राप राज्ये का तस्य योग्यता ।
इत्युदीर्याभवन्घ्नन्तो यावत्केचन मन्त्रिणः ॥२५४॥

२५४. 'पंगु नामक है, उसमें राज्य की कौन योग्यता है ?'—ऐसा कहकर, जबतक कुछ मन्त्रियों ने विरोध किया—

पार्थ (सन् ९०६-९२१ ई०)

संहतैर्भेदनिर्यातैस्तावन्निर्जितवर्मजः ।
दशवर्षः कृतो राजा पार्थस्तन्त्रिपदातिभिः ॥२५५॥ तिलकम्॥

२५५. तबतक भेद रहित एवं संहत तन्त्रि पदातियों ने निर्जितवर्मा के दश वर्षीय पुत्र पार्थ को राजा बना दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५१ में 'गग्गायां' का पाठभेद 'गंगायाः' तथा 'गर्गायाः' मिलता है !

पाठभेद :

श्लोक सं० २५२ में श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठटिप्पणी :

२५२ (२) सम्बन्धी = निर्जितवर्मा शूरवर्मा का एक पुत्र था ।

पाठभेद :

श्लोक सं २५३ में 'व्यसनित्वेन' का पाठभेद 'व्यसनत्वेन' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५४ में 'पङ्गु' के लिये पार्श्व टिप्पणी मे 'निर्जितवर्मा' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५५ में श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४००७ = शक ८२८ = लौकिक ३९८२ = सन् ९२६ ई०, सी० एम० एफ़० सन् ९०६ ई०, श्री स्तीन लौकिक ३९८१ = सन् ९०६ ई०, श्री पण्डित सन् ९०७ ई०; श्री विल्सन लौकिक ३९८१ = सन् ९२६ ई० वर्ष ९ मास; श्री ट्रोयर सन् ९०८ ई० ९ मास लौकिक

३९८१; श्री कनिंघम लौ० ३९८९ = ९०५ वर्ष १० मास; डाइनांस्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया सन् ९६० ई०; त्रिवेद सन् ९०० ई०; पीर हसन विक्रमी संवत् ९७२ = ९१५ ई० तथा राज्य काल ट्रोयर १६ वर्ष, श्री दत्त १५ वर्ष १० मास, श्री पण्डित १५ वर्ष ९ मास १३ दिन, श्री विलसन १५ वर्ष, तथा पीर हसन १५ वर्ष ९ मास देते हैं। आइने अकबरी में नाम बरतेह तथा राज्यकाल १५ वर्ष २० दिन दिया गया है। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल १५ वर्ष दिया गया है। पार्थ की एक ताम्रमुद्रा प्राप्त हुई है। मुख्य भाग पर आसनस्थ 'लक्ष्मी' और 'पार्थ' तथा पृष्ठ भाग पर 'दण्डायमान राजा' तथा 'वर्म' टंकणित है।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९०७ ई० महेन्द्रपाल का अन्तिम ज्ञात समय, मनसुहरा में कुरेशी हब्बारी का राज्य, परान्तक (प्रथम) चोल का राजा हुआ। (सन् ९०७–९५३ ई०) इसमाइल समनानी की १४ सफर (हि० २९५ ई०) में मृत्यु तथा उसका पुत्र अबू नासिर अहमद उत्तराधिकारी हुआ। ताई-त्सु चीन का सम्राट् हुआ। काश्यप (पंचम) अभय शिला मेघवर्मा श्रीलंका का राज्य काल (सन् ९०७-९१७ ई०)। नीतिवर्मा (द्वितीय)। पश्चिमी गंग का राज्य काल (सन् ९०७-९३५ ई०)। चीन में पांच वंशों का शासन (सन् ९०७ ई० से ९५९ ई०)। सन् ९०८ ई० नारायण पाल वंश राजा की मृत्यु। अनस्तेसियस (तृतीय) पोप हुआ। सन् ९१० ई० निर्भयराज प्रतिहार की मृत्यु। भोज (द्वितीय) महेन्द्रपाल एवं देहांग देवी का पुत्र प्रतिहार कन्नौज का राजा हुआ। सन् ९११ ई० इन्द्र में वर्मा तृतीय चम्पा का राजा हुआ। (सन् ९११-९७१ ई०) सन् ९१२ ई० में महिपाल प्रतिहार कन्नौज का राजा हुआ। अबुलकासिम अबैदुल्ला इब्न अहमद इब्न खुरदादमीह, खलीफा मुतमिद का सलाहकार तथा भारत भूगोल लेखक की मृत्यु। सन् ९१३ ई० में लण्डोनियस पोप हुआ। मो-तीचीन सम्राट हुआ। ग्राण्डड्यूक इगोर रूस, का स्थिति काल। नासिर (द्वितीय) सामानी वंश (सन् ९१३-९४३ ई०)। सन् ९१४ ई० इन्द्र (तृतीय) अपने पिता राष्ट्रकूट राज कृष्णा की मृत्यु के पश्चात् राजा हुआ। मन्सूर पुत्र इशहाक खुरासान तथा निशायूर में विद्रोह नासिर (द्वितीय) के विरुद्ध किया, और उससे हुसेन अली सूबेदार हिरात में मिल गया। मन्सूर की मृत्यु हो गयी और हुसेन अली ने फिर भी विद्रोह जारी रखा। (हि० ३०२)। इन्द्र तृतीय ने तुला पुरुष संस्कार किया। धरणी वाराह छाप = छव दास = छवोत्कट्स शासक हुआ। सुगन्धा काश्मीर रानी वैशाख मास में लौटी, बन्दी हुई, तथा मारी गयी। सन् ९१५ ई० दक्षोत्तम मतराम (जावा) का राजा हुआ। चोल ने बेल्लोर युद्ध में पाण्डच एवं सिहालियों को पराजित किया। परान्तक चोल ने रेनाण्डू के वैदुम्बों को पराजित किया। परान्तक चोल ने पश्चिमी गंग राजा पृथ्वीपति (द्वितीय) की सहायता से वाणों को उत्पाटित किया। अलमसूदी का भारत आगमन (सन् ९१५-९१६ ई०)। शिव गुप्त दक्षिण कोशल सोम वंश संस्थापक का सम्भाव्य काल (सन् ९१५-९५३ ई०)। सन् ९१६ ई० अबूजैद हसन अरब लेखक ने शैलेन्द्र एवं श्रीविजय के साम्राज्यों के विषय में लिखा। राष्ट्रकूट ने कन्नौज को नष्ट किया। सन् ९१८ ई० दप्पुल चतुर्थ लंका का राजा। अमोघवर्ष (द्वितीय) पुत्र इन्द्र (तृतीय) का एक मत से स्थिति काल। गोविन्द (चतुर्थ) पुत्र इन्द्र (तृतीय) राष्ट्रकूट राजा एक मत से। सन् ९२० ई० चोल ने पाण्ड्य-राज राज सिंह (द्वितीय) को निष्कासित किया। नाथ मुनि अपर नाम रंग नाथाचार्य न्याय तत्त्व के लेखक की मृत्यु। सन् ९२१ ई० पार्थ काश्मीर राजा पौष मास में राज्य च्युत।

ते गङ्गाधिपवाक्यानां सुगन्धोपाटनात्कृतम् ।
प्रायश्चित्तममन्यन्त मानक्षतिविधायिनाम् ॥२५६॥

२५६. उन लोगों ने सुगन्धा को पदच्युत करने से मान क्षति विधायी गंजाधिप[1] की बातों का प्रायश्चित्त होना माना।

सा राजधान्याः साम्राज्यपरिभ्रष्टा विनिययौ ।
कृताधिकारा हारस्य पतितैर्बाष्पबिन्दुभिः ॥२५७॥

२५७. साम्राज्य परिभ्रष्ट अधिकार रहित (सुगन्धा) निपतित अश्रुबिन्दुओं का हार[1] धारण कर राजधानी से निकल गयी।

शरणं प्रत्यभाद्भृत्यो यो यस्तस्याः क्रमागतः ।
तं तमैक्षिष्ट निर्यान्ती विपक्षैः सह संगतम् ॥२५८॥

२५८. जो जो क्रमागत भृत्य उसकी शरण थे, जाती हुई उन उन लोगों को, उसने विपक्षियों के साथ देखा।

सुगन्धा की प्रत्यावृत्ति (सन् ९१४ ई०)

वर्षे एकान्ननवते संभूयैकाङ्गसैनिकाः ।
गत्वा सुगन्धामानिन्युः पुनर्हुष्कपुरस्थिताम् ॥२५९॥

२५९. नवासीवें वर्ष एकांग सैनिक संगठित होकर पुनः हुष्कपुर[2] स्थित सुगन्धा को जाकर ले आये।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५६ में 'ते' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'कोट्टरक्षाः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२५६. (१) गंजाधिप = गंज का अर्थ खजाना होता है। गंजाधिप का अर्थ खजांची होगा। काश्मीर में ब्राह्मणों की एक उपजाति खजांची है। वे वंश परम्परा से खजाने का काम करने के कारण खजांची कहे जाने लगे। फारसी में गंजावर कहते हैं। किन्तु कुछ पाण्डुलिपियों में पार्श्व टिप्पणी में गंजाधिप की परिभाषा कोटरक्षक रूप में दी गयी है। द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ५ : २३९ द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : नर्म माला : १ : ८३-९६

पाठभेद :

श्लोक सं० २५७ में 'राज' का पाठभेद 'राज्य' तथा 'कृता' का 'हृता' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२५७. (१) हार : यह राज पद के माला किंवा हार की ओर उद्देश किंवा संकेत करता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५९ में 'एकोन' 'एकान्न' का पाठभेद तथा पार्श्व टिप्पणी में 'हुष्कपुर' के लिये 'वराहमूले' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२५९. (१) नवासीवें = सप्तर्षि ३९८९ = सन् ९१४ ई० = विक्रमी ९७० = शक ८३५ = कलि गताब्द = ४०१४

(२) हुष्कपुर = बारहमूला के समीप उसकुर गाँव है। द्रष्टव्य : पादटिप्पणी : 'रा० : १ : १६८;

तामापतन्तीमाकर्ण्य पार्थानुग्रङ्का मदात् ।
चैत्रान्ते तन्त्रिणः सर्वे निर्ययुः समरोन्मुखाः ।।२६०।।

२६०. चैत्रान्त में पार्थानुगामी, समरोन्मुख मद से सब तन्त्री, उसे आती हुई सुनकर, समर हेतु निकल पड़े ।

ते जित्वा नवते वर्षे वैसाखे भिन्नसंहतीन् ।
एकाङ्गन्व्यूढसंहातान्बबन्धुस्तां पलायिताम् ।।२६१।।

२६१. नब्बेवें[1] वर्ष के वैसाख में दृढ़ समूह उन लोगोंने (छिन्न) भिन्न संहत एकांगों को जीतकर, पलायित सुगन्धा को बाँध लिया ।

सुगन्धा की मृत्यु :

निष्पालकविहारान्तस्तैर्बद्धा सा व्यपद्यत ।
अनित्यपतनोच्छ्राया विचित्रा भाग्यवृत्तयः ।।२६२।।

२६२. उनके द्वारा बद्ध वह निष्पालक[1] विहार के अन्दर मर[2] गयी । अनित्य पतन एवं उन्नति वाली भाग्य।वृत्तियाँ विचित्र होती हैं ।

---

४ : १८८; ६ : १८६ : ७ : १३११, ८ : ३९०, ७१९, ८२२;

पादटिप्पणी :

२६१ (१) नब्बे वर्ष : सप्तर्षि ३९९० वर्ष = सन् ९१४ ई० = विक्रमी ९७१ = शक ८३६ = कलि गताब्द : ४०१५ ।

पादटिप्पणी :

२६२ (१) निष्पालक बिहार : बिहार किस स्थान पर था पता नहीं चलता । इसका उल्लेख पुनः कहीं नहीं मिलता । निष्पालक का अर्थ पालक अथवा रक्षक हीन होता है । यह विहार प्रतीत होता है सर्वदा खुला रहता था । उसका कोई रक्षक अथवा पालक नहीं था । स्थान का पता नहीं चलता । इसका पुनः कहीं उल्लेख नहीं मिलता ।

(२) मृत्यु : पीर हसन लिखता है—इन्हीं दिनों में सुगन्धा रानी जेलखाना में इन्तकाल कर गयी । (पृष्ठ ९८) विल्सन लिखता है कि रानी सुगन्धा बंदी बनाकर निष्पालक विहार में मार डाली गयी । (६५) श्री स्तीन ने अनुवाद किया है 'बन्दी बनाये जाने के पश्चात् उन लोगों ने उसकी हत्या कर दी ।' वह अनुवाद गलत है । श्रीपण्डित ने अनुवाद किया है कि वह बिहार में मर गयी । श्रीहरिलाल चट्टोपाध्याय (संस्करण वंगान्द १३१९ वर्ष) ने भी लिखा है—ताहार निश्पालक विहारे राज्ञी के हत्या करिल । श्रीअजय कुमार मुखोपाध्याय की बंगला राजतरंगिणी अनुवाद सन् १९७१ ई० में प्रकाशित हुआ है—उसमें भी लिखा गया है—'ताहार निष्पालक विहारे राज्ञीर हत्या करिल ।' श्रीरामतेज शास्त्री ने अनुवाद किया है—सुगन्धा देवी का निष्पालक विहार में देहान्त हो गया । (संस्करण १९६० काशी) । श्रीगोपीकृष्ण शास्त्री (उज्जैन) ने अनुवाद किया है—उनलोगों के द्वारा बाँधी गयी रानी सुगन्धा की निष्पालक विहार के अन्दर मृत्यु हो गयी ।' (संस्करण विक्रमी १९९८ काशी) मराठी अनुवाद श्रीलेले (पूना संस्करण सन् १९२९ ई०) में लिखा है—तिला पकडून निष्पालक विहारांत कैद केलें व बुढें तिला । तेथेचें मारून राकले । बंगला तथा मराठी अनुवाद श्लोकानुसार नहीं हैं । जिन अनुवादकों ने मूल संस्कृत न देखकर केवल श्रीस्तीन के आधार पर अनुवाद किया है उन्होंने भूल की है । सुगन्धा की हत्या नहीं

अस्मिन्धनजनक्षण्यनिमित्तं मण्डलोत्तमे ।
सर्वतोदिक्कमुत्तस्थावथानर्थपरंपरा ॥२६३॥

२६३. इस उत्तम मण्डल के सर्वतोमुखी विनाश निमित्त अनर्थों की परम्परा उपस्थित हुई।

जनकः पालको भूत्वा पङ्गुर्बालस्य भूपतेः ।
सामात्योऽपीडयन्लोकमुत्कोचग्रहतत्परः ॥२६४॥

२६४. पंगु (निजित वर्मा) बालक भूपति का पिता पालक बनकर, अमात्य सहित उत्कोच (घूस) ग्रहण में तत्पर होकर, लोक को पीड़ित करने लगा।

भूभुजो ग्रामकायस्था इवान्योन्यविपाटनम् ।
दत्ताधिकाधिकोत्कोचा विदधुस्तन्त्रिसेवया ॥२६५॥

२६५. ग्राम कायस्थों[1] के समान भूभुजों ने अधिकाधिक उत्कोच (घूस) लेकर तन्त्रियों की सेवा से अन्योन्य का विपाटन किया।

यद्राजैः कन्यकुब्जाद्या विलब्धास्तत्र मण्डले ।
तन्त्रिणां हुण्डिकादानाद् भूभुजां जीविकाऽभवत् ॥२६६॥

२६६. जिस देश के राजाओं ने कान्यकुब्जाति देशों को प्राप्त कर लिया था उसी मण्डल में तन्त्रियों को हुण्डी[1] देकर भूभुजों की जीविका चलने लगी।

की गयी थी। वह कारागार में मर गयी। कल्हण स्वयं इसे स्पष्ट नहीं करता कि वह किस प्रकार मरी थी। उसकी मृत्यु सन् ९१४ ई० में हुई थी।

पाठभेद :

श्लोक सं० २६४ में 'पङ्गु' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'निर्जित वर्मा' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२६५ (१) ग्रामकायस्थ : विषयपतियों को शासन सम्बन्धी कार्यों में नगर श्रेष्ठी, सार्थवहा, प्रथम कुलिक तथा प्रथम कायस्थ (सचिव) चार सम्मतिदाता पुरातन परम्परा के अनुसार होते थे। विषयपतियों के प्रमुख कार्यालय को अधिष्ठान कहा जाता था। उनके न्यायालय किंवा कचहरी को अधिकरण कहते थे। ग्राम कायस्थ ग्राम कत्रलिपिक होता था। वह वर्तमान काल के पटवारी तुल्य होता था। वह ग्राम व्यवस्था के लिखने पढ़ने का काम करता था। द्रष्टव्य; पदि टिप्पणी : ५ : १७५।

पाठभेद :

श्लोक सं० २६६ में 'यद्राजैः' का पाठभेद 'यद्राज्यैः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२६६ (१) हुण्डिका : अनेक प्रकार की हुण्डियों का वर्णन क्षेमेन्द्र लोक प्रकाश में किया है।

इसका पुनः उल्लेख कल्हण ने (राः ५ : ७२५ ३०२) किया है। हुण्डी लेनदेन व्यवहार में आज भी भारतीय व्यापारी तथा बंकों में चलती है। हुण्डी को अंग्रेजी में विल आफ एक्सचेंज कहते हैं। वह प्राचीन हुण्डी का वर्तमान परिष्कृत रूप है। प्राचीन काल में हुण्डी का सरल तरीका था। उसे आदेश कहते थे। हुण्डी लिखने वाला एक तीसरे व्यक्ति के नाम आदेश देता था कि हुण्डी गृहीता को तुरन्त लिखित द्रव्य हुण्डी भेजने वाले की तरफ से दे दें।

विष्णुः पुराणाधिष्ठाने मेरुवर्धनमन्त्रिणा ।
श्रीमेरुवर्धनस्वामिनामा येन व्यधीयत ॥२६७॥

२६७. जिस मेरुवर्धन मन्त्री ने पुराणाधिष्ठान[1] में श्री मेरु[2]वर्धन स्वामी नामक विष्णु की प्रतिष्ठा की ।

हुण्डी का एक और प्रकार था । उसे अनवधि कहते थे । कात्यायन ने इस प्रथा का उल्लेख किया है ।

लेख प्रकाश में दीनार हुण्डिका, धान्य हुण्डिका, यवगोधूम हुण्डिका, सेव्य या सेव्य हुण्डिका, क्रियाकार हुण्डिका, गोटिका नाम हुण्डिका का उल्लेख किया है । (पृष्ठ : १३)

पाठभेद :

श्लोक सं० २६७ में 'पुराणाधिष्ठाने' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'पायट्ठन इति प्रसिद्धे ग्रामे' तथा 'मन्त्रिणा' के लिये 'पङ्गुश्वशुरेण' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६७ (१) **पुराणाधिष्ठान** : पुराणाधिष्ठान का अर्थ पुरानी राजधानी है । सम्राट् अशोक ने काश्मीर की नवीन राजधानी श्रीनगर में स्थापित की थी । पुराणाधिष्ठान अर्थात् पण्डरेथन काश्मीर की प्राचीन राजधानी अशोक पूर्व थी । कालान्तर में राजा प्रवरसेन द्वितीय ने अशोक के लगभग आठ सौ वर्ष पश्चात् वितस्ता के अधोभाग में कुछ आगे बढ़कर काश्मीर की नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर स्थापित किया । इस समय का श्रीनगर पुराणाधिष्ठान अशोक का श्रीनगर तथा प्रवरसेनपुर तीनों मिलकर एक हो गया है । (रा०: ३ : ९९) मूरक्राफ्ट : ट्रेवेल : २ : २४० हुगेल काश्मीर : १ : २६०, वारेन ट्रेवेल २ : ३८) जे०ए० एस०बी० १८४८ : २८३, काल एन्शिएण्ट विल्डिंग । पण्डरेथन स्थान श्रीनगर अनन्त नाग रोड पर श्रीनगर से तीन मील स्थित है ।

पुराणाधिष्ठान का नाम 'पायट्ठन' हुआ । तत्पश्चात् पण्डरेथन हो गया । दोनों ही शहर पुराणाधिष्ठान के अपभ्रंश हैं । ह्वेनसांग ने अपने पर्यटन संस्मरण में इसी नाम से सम्बोधित किया है । पण्डरेथन में खनन कार्य हुआ है । यहाँ बहुत प्राचीन मूर्तियाँ तथा अलंकृत शिलाखण्ड मिला है । दो स्तूप मिले हैं । पहला पुरातत्त्व के कागज पत्रों में संख्या 'ए' है । यह गढ़े हुए पत्थरों का बनाया गया था । प्राकार से घिरा था । इस समय उसके अधिष्ठान का भाग ही शेष रह गया है । दक्षिण प्राकार में प्रवेश द्वार बना है । स्तूप पर बाहरी ओर लगाये पत्थर गिर गये हैं । स्तूप ७२ वर्ग फीट में है । इस समय केवल चिन्ह मात्र शेष है ।

पश्चिम वाला स्तूप इस प्रकार गिराकर नष्ट कर दिया गया है कि इसमें कुछ पत्थरों के अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं रह गया है । यहाँ खनन कार्य में एक बोधिसत्त्व की मूर्ति मिली है । यहाँ कदे आदम इन्द्राणी, चामुण्डा, बाराही, अष्टमातृका की भी मूर्तियाँ मिली हैं । यहाँ पर मुसलमानों ने एक चबूतरा बना लिया है । उस पर स्तम्भ का मूर्धा लगा है । उसमें दो पक्षियाँ बनायी गयी हैं । वे अपने बीच में रखे अंगूर को खा रही हैं । पत्थर की गढ़ाई का काम अत्यन्त सुन्दर तथा कलापूर्ण है ।

(२) **मेरुवर्धन** : यह मन्दिर पण्डरेथन में श्रीनगर अनन्त नाग सड़क के वाम पार्श्व में बिलो के बगीचों के पृष्ठभाग में अच्छी अवस्था में स्थित है । इसे पण्डरेथन का मन्दिर कहते हैं । मण्डप शैली है । यह मन्दिर सत्तरह फीट ९ इंच वर्गाकार में है । चारों ओर से खुला है । जनरल कनिंघम तथा कोवी ने इसे मेरुवर्धन स्वामी का मन्दिर कहा है । परन्तु यह देखने से शिव मन्दिर प्रतीत होता है । उत्तरी द्वार पर लकुलीश की मूर्ति है । मन्दिर के गर्भगृह के अधिष्ठान पर केवल शिवलिंग रखने मात्र का स्थान है । विष्णु मन्दिर में विष्णु की मूर्ति पूर्व

तदात्मजाः क्षणे तस्मिन्गहनद्रोहचाक्रिकाः ।
चक्रुर्निगूढराज्येच्छाः प्रजायासैर्धनार्जनम् ॥२६८॥ युग्मम् ।

२६८. उस समय महान् द्रोह एवं षड्यन्त्रकारी[1] (चाक्रिक) तथा गुप्त रूप से राज्य प्राप्ति, के इच्छुक उसके पुत्र प्रजापीड़न पूर्वक धनार्जन किये ।

किंवा उत्तराभिमुख होती है । शिवमन्दिर का द्वार पश्चिम एवं दक्षिण दिशा की ओर होता है । काशी विश्वनाथ का वर्तमान मन्दिर रानी अहिल्या बाई का निर्माण है । उसका भी मुख्य द्वार दक्षिण की ओर है । यद्यपि मुख्य मन्दिर के गर्भगृह का द्वार चारों दिशाओं की ओर है । विष्णु प्रतिमा खड़ी रहती है । पीठ की तरफ द्वार नहीं होता । क्योंकि पीठ की तरफ से दर्शन नहीं हो सकता । शिवलिंग गोलाकार होता है उसका दर्शन किसी ओर से किया जा सकता है । एक मत है कि यह मन्दिर रिल्हणेश्वर का है । उसका निर्माण राजा जयसिंह के मन्त्री रिल्हण ने सम्भवतः सन् ११३५ ई० में कराया था । (रा० : ८ : २४०८ तथा २४०९)

मेरु शब्द मेरु पर्वत का वाचक है । मेरु पर्वत देवताओं का पवित्र आवास माना जाता है । मेरु का देवता के रूप पूजा करने का उल्लेख मिलता है । मेरुवर्धन मन्त्री द्वारा निर्मित मेरु मन्दिर अपने नाम पर स्थापित मन्दिर हो सकता है अथवा प्राचीन मेरु के देवस्थान पर मन्दिर का निर्माण मेरुवर्धन ने करवाया होगा ।

नीलमत पुराण में मेरु देवस्थान का उल्लेख मिलता है । इससे प्रकट होता है कि प्राचीन काल से ही मेरु की देवता स्वरूप पूजा होती थी ।
मेरुदेवस्थान !

भूर्जस्वामीं महास्वामीं शतशृंगगदाधरं ।
मेरोर्भुवनपार्श्वे च भृगुस्वामीजनार्दनम् ॥

1156 = १३६८, १३६८

मेरु का नाग रूप में उल्लेख ।

मम पूजा च कर्तव्या स्थानं नागस्य चाप्यथ ।
फलपत्रे प्रदातव्ये नगे मेरुद्भवे तथा ॥

462 = ५८०, ८८१

पर्वतों की तालिका में मेरु पर्वत का नाम नीलमत रखता है :

श्वेतश्च शृंगवान्मेरुर्माल्यवान् गन्धमादनः ।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शूक्तिमान ऋक्षवानपि ॥

35 = ५६, ५७

हिमवान् हेमकूटश्च निषधो नीलपर्वतः ।
श्वेतश्च शृंगवान् मेरुर्माल्यवान् गन्धमादनः ॥

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६८ में 'तदात्मजाः' के लिये टिप्पणी में 'निर्जितवर्मजाः तदात्मजाः चक्रवर्मा शूरवर्मा शम्भुवर्धनः शङ्करवर्धनः मेरुवर्धनपुत्राः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६८ (१) चाक्रिक : अर्थ तिकड़मी, षड्यन्त्रकारीं कपटाचारी एवं दुरभिसन्धि करने वाला होता है । क्षेमेन्द्र ने चाक्रिक का अर्थ, गुप्तचर किया है । इसका प्रयोग प्रायः कल्हण करता है । इस शब्द का मूल चक्रिका है । (रा० ४ : ३७६; ५ : २८०, २९६, ६ : २७२; ८ : २८९, ३७५, ५८६,) मंख के कोश में भी यह शब्द मिलता है । चक्र मिलन शब्द का उल्लेख कल्हण (रा० ८ : २७३०) ने किया है

चक्रिक का अर्थ अमरकोश के अनुसार घण्टा बजाने वाला होता है । श्री स्वामी का मत है कि चक्रिक राजा के आगमन की सूचना घण्टा बजाकर देता है । कुछ वैतालिक तुल्य मानते हैं । अपरार्क ने शंख एवं सुमन्तु का उदाहरण देते हुए लिखा है कि चक्रिक एवं तैलिक विभिन्न जातियाँ हैं ।

साधं सुगन्धादित्येन गूढं शंकरवर्धनः ।
तेषां ज्येष्ठो बद्धसख्यो मुमोष नृपमन्दिरम् ॥२६९॥

२६९. उनमें ज्येष्ठ शंकरवर्धन सुगन्धादित्य[1] के साथ गुप्त रूप से मैत्री करके नृप मन्दिर को परिमुषित करने लगा ।

क्षीणप्रजे क्षणे तस्मिन्क्षारपात इव क्षते ।
उदीपः प्लाविताशेषशरच्छालिरजृम्भत ॥२७०॥

२७०. प्रजा के उस क्षीण क्षण में क्षत पर क्षार[1] पात तुल्य सम्पूर्ण शरद शालि को प्लावित करने वाला उदीप[2] (बाढ़) आया ।

खार्यां सहस्रक्रेयायां दुर्लभे भोजनेऽभवत् ।
वर्षे त्रिनवते घोरे दुर्भिक्षेण जनक्षयः ॥२७१॥

भीषण दुभिक्षः (सन् ९१७–९१८)

२७१. तिरानबे[1] घोर वत्सर में एक सहस्र (दीनार) खारी[2] का मूल्य होने पर तथा भोजन दुर्लभ हो जाने पर दुभिक्ष से जन क्षय हुआ ।

शवैश्चिरप्रविष्टाम्बुसंसेकोच्छूनविग्रहैः ।
वितस्ता सर्वतश्छन्ना दुर्लक्ष्यसलिलाऽभवत् ॥२७२॥

२७२. चिर काल से प्रविष्ट जल सेंक से उच्छून (फूला) विग्रह वाले शवों से सर्वतः आच्छादित वितस्ता का सलिल दुर्लक्ष हो गया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६९ में 'सुगन्धादित्येन' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'मन्त्रिणा' तथा 'बद्धसख्यो' के लिये 'सुगन्धादित्येन सह' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६९ (१) सुगन्धादित्य : मन्त्री था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७० में 'उदीपः' का पाठभेद 'उद्वीपः' तथा पार्श्वटिप्पणी में काश्मीरी शब्द 'प्योपो' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७० (१) क्षारपात : कटे पर नमक किंवा जले पर नमक छिड़कना मुहावरा में इसका भाव आ जाता है ।

(२) उदीप : बाढ़—जलप्लावन होता है । इसे 'प्योपो' काश्मीर में कहते थे ।

पादटिप्पणी :

२७१ (१) तिरानबे : सप्तर्षि ३९९३ वर्ष = सन् ९१७-९१८ ई० = विक्रमी ९७४ = शक ८३९ = कलि गताब्द ४०१८ ।

(२) खारी : द्रष्टव्य : पाद टिप्पणी : ५ : ७९ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७२ में 'दुर्लक्ष्य' का पाठ भेद 'दुर्लक्ष' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७२ (१) उच्छून : फूला हुआ यहाँ अर्थ अभि-

विश्वतोऽस्थिमये जाते नैविड्याद्क्षितिमण्डले ।
सर्वभूतभयादायि श्मशानैक्यमजायत ॥२७३॥

२७३. चारों ओर क्षिति मण्डल के गहन रूप में अस्थिमय हो जाने पर सभी भूतों को भयप्रद स्मशान ऐक्य हो गया ।

महार्हधान्यसंभारविक्रयप्राप्तसंपदः ।
मन्त्रिणः क्ष्मापतेः प्रापुस्तन्त्रिणश्च घनाढ्यताम् ॥२७४॥

२७४. बहुमूल्य धान्य संभार के विक्रय से सम्पत्ति प्राप्त कर राजा के मन्त्री एवं तन्त्री धनाढ्य हो गये ।

आधेयः क्ष्माभुजः सोऽभून्मन्त्री यस्तादृशीः प्रजाः ।
विक्रीय वाहयन्नासीत्तन्त्रिणां हुण्डिकाधनम् ॥२७५॥

२७५. जो उस प्रकार की (विपन्न) प्रजाओं से तन्त्रियों की हुण्डी धन[1] बेचकर लाभ प्राप्त करने में समर्थ होता, वही राजा का मन्त्री बनता ।

अटव्यां वृष्टिसंपाते वातवर्षैरुपद्रुतम् ।
बहिः सर्वं जनं पश्यन्कश्चित्प्राप्तोष्णमन्दिरः ॥२७६॥

२७६. अटवी में वृष्टि सम्पात होने पर, वात एवं वर्षा से विपद्ग्रस्त सब लोगों को बाहर देखते हुए, उष्ण (गृह) मन्दिर में बैठा कोई कायर (व्यक्ति) जैसे अपने सुख को अच्छा मानता है ।

प्रेत है । जल में शव फूल कर जल स्तर पर आ जाता है । मृत व्यक्ति का शव जल में पड़ने पर प्रथम नीचे बैठ जाता है । कुछ समय पश्चात् वह फूल जाता है । फूलने पर ऊपर उठकर जल स्तर पर तैरने लगता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७४ में 'महार्ह' का पाठ भेद 'महार्घ' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७५ में 'आधेयः' पाठ भेद 'आदेयः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७५ (१) हुण्डी धन : श्री स्तीन का अनुमान है कि गावों को रेहन रखकर, तन्त्रियों को वेतन देने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७६ में 'वृष्टि' का पाठ भेद 'दृष्टि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७६ (१) उष्ण मन्दिर : उष्ण मन्दिर हमाम के अर्थ में प्रयोग किया गया है । काश्मीरियों का शीत ऋतु में यह प्रिय स्थान होता है । द्रष्टव्य : (रा० १ : ४०)

यथा तथा जनं दुःस्थं वीक्ष्य कापुरुषश्चिरम् ।
राजधानीस्थितः पङ्गुः स्वसुखं बह्वमन्यत ।।२७७।। युग्मम्।।

२७७. उसी प्रकार चिरकाल तक लोगों को उस प्रकार दुःख (विपत्ति) में देखकर, राजधानी में स्थित, कायर (वह) पंगु अपने सुख को बहुत ठीक माना ।

तुञ्जीनचन्द्रापीडादिप्रजापालप्रियाः प्रजाः ।
एवं तस्मिन्क्षणे नीताः संक्षयं राजराक्षसैः ।।२७८।।

२७८. तुंजीन[1], चन्द्रापीड[2] आदि प्रजापालकों को उस समय राजराक्षसों ने इस प्रकार नष्ट कर दिया ।

प्रापुश्चिरमवस्थानं पार्थिवा न तदा क्वचित् ।
धारासंपातसंभूता बुद्बुदा इव दुर्दिने ।।२७९।।

२७९. वर्षा काल में धारा सम्पात में बुदबुद सदृश, नृपतियों ने उस समय कहीं चिर स्थिति नहीं प्राप्त की ।

पार्थः पितरमुत्पाट्य कदाचित्प्राभवत्स्वयम् ।
कदाचित्स तमुत्पाट्य तन्त्रिचक्रिकयाऽभ्यभूत् ।।२८०।।

२८०. कदाचित् पार्थ पिता को उत्पाटित कर स्वयं, और कदाचित् वह पिता तन्त्रियों के षड्यन्त्र से उसे उत्पाटित कर, प्रभु बन जाते थे ।

अप्रीणयत्पङ्गुवधूवडवामण्डलं युवा ।
सुगन्धादित्यबीजाश्वो व्यवायविधिसेवया ।।२८१।।

२८१. युवा सुगन्धादित्य[1] रूपी बीजाश्व ने व्यवाय[2] (रमणी-रमण) सेवा विधि से, पंगु वधू रूप, वडवा मण्डल को प्रसन्न किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २७७ में श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७८ (१) यह पद तुंजीन प्रथम (रा० २ : ११-६१) चन्द्रापीड रा० ४ : ४५-११८ त (रा० २ : ११ एवं श्लोक ४ : ४५ से तुलनीय है ।

तुंजीन : काश्मीर का राजा था। काश्मीर में दो तुंजीन नामक राजा हुए हैं। दूसरे तुंजीन का नाम श्रेष्ठसेन था । प्रथम तुंजीन सप्तर्षि २९६० से २९९६ तक राज्य किया था (रा० २ : ११-६१) वह जलौक का पुत्र था। दूसरा तुंजीन मेघवाहन का पुत्र था । उसने सप्तर्षि ३१२२ से ३१६२ तक राज्य किया था । (रा० ३ : ९७-१०३) कल्हण का तात्पर्य यहाँ तुंजीन प्रथम से है ।

(२) चन्द्रापीड : काश्मीर का प्रतिभाशाली राजा था। उसका पूरा नाम चन्द्रापीड विनयादित्य था। कर्कोट वंश का तृतीय राजा सप्तर्षि ३७६३ से ३७७२ तक राज्य किया था। द्रष्टव्य रा० ४ : ४५-११९ क्षेमेन्द्र : देशोपदेश : ७ : ३६ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८१ में 'सुगन्धादित्य' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'मन्त्री' तथा 'व्यवाय' के लिये 'व्यवायः मैथुनम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२८१ (१) सुगन्धादित्य : द्रष्टव्य : रा० : ५ : २६९.

राज्ञ्या बप्पटदेव्याः स निर्दयैः सुरतोत्सवैः ।
खण्डयामास कण्डूतिं साप्यस्यार्थेषणां धनैः ।।२८२।।

२८२. वह रानी वप्पट देवी के कण्डूयन[1] को निर्दय सुरतोत्सवों द्वारा तथा वह (रानी) इसकी वित्तेच्छा को धनों के द्वारा खण्डित (दूर) करती थी ।

भगिनीभगसौभाग्यबद्धराज्याः स्वयं ददुः ।
यां पङ्गवे मनोज्ञाङ्गीं मेरुवर्धनसूनवः ।।२८३।।

२८३. भगिनी भग सौभाग्य से राज्य प्राप्त करने वाले, स्वयं मेरुवर्धनपुत्रों ने मनोज्ञांगी (मृगावती) जिसे पंगु को प्रदान किया ।

सुगन्धादित्यमौत्सुक्यात्साऽपि देवी मृगावती ।
स्वयं संबुभुजेऽभ्यर्थ्य कान्ता कामितकामिनी ।।२८४।।

२८४. कामित कामिनी कान्ता, उस देवी मृगावती उत्सुकता पूर्वक स्वयं अभ्यर्थना कर, सुगन्धादित्य से सम्भोग करती थी ।

पर्यायेणाभवद्भृत्यः स तयोर्भोगवृद्धये ।
दरिद्रयोषितोरेकं भुक्तिपात्रमिवान्वहम् ।।२८५।।

२८५. दरिद्र की दो[2] स्त्रियों के मध्य एक भोजन पात्र तुल्य, वह भृत्य पर्याय (क्रम) से दोनों की भोग वृद्धि के लिये हुआ ।

---

(२) व्यवाय : मैथुन ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८२ में 'राज्ञ्यः' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'चक्रवर्ममातुः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२८२ (१) कण्डूयन : कण्डूयन शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है । आलिंगन में कामिनी के शरीर को दबा अथवा मसल देने एवं गुदगुदी पैदा कर देने के प्रसंग में प्रयोग किया जाता है । दोनों का सम्बन्ध रति से है । पहले अर्थ में रघुवंश में कालिदास ने प्रयोग किया है— 'कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च' (२-५) तथा इसी अर्थ में पंचतन्त्र में प्रयोग है । (१ : ७१) द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : नर्ममाला : ३ : ४४ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २८५ में 'तयोर्भोग' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'तयोर्बप्पटदेवीमृगावत्योः पंगुपत्न्योः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२८५ (१) दो : कल्हण ने तयोः शब्द का प्रयोग किया है । तात्पर्य राजा की दो रानियों वप्पट देवी तथा मृगावती से है । राजा निर्जित वर्मा की दोनों रानियाँ थीं ।

पुत्रयो राज्यलाभाय स्पर्धयाऽऽभ्यां स्वमन्त्रिणे ।
दत्ता निधुवनश्रद्धा धनदानैः सदक्षिणा ॥२८६॥

२८६. (अपने) पुत्रों के राजलाभ हेतु इन दोनों रानियों ने स्पर्धा पूर्वक अपने मन्त्री को धन दान एवं दक्षिणा[1] सहित सुरतोत्सव प्रदान किया ।

निर्जित वर्मा पंगु (सन् ९२१–९२३ ई) :

अथ पार्थं समुत्पाट्य तत्पिता पङ्गुराश्रितः ।
तन्त्रिभिः सप्तनवते वर्षे पौषेऽभिषेचितः ॥२८७॥

२८७. सत्तानबे वत्सर के पौष में तन्त्रियों ने पार्थ को राज्यच्चुत कर उसके पिता आश्रित पंगु को अभिषिक्त किया ।[1]

चक्रवर्मा (सन् ९२३–९३३ ई०)

माघेऽष्टानवते वर्षे सोऽभिषिच्य शिशुं सुतम् ।
चक्रवर्माभिधं राज्ये क्षीणपुण्यो व्यपद्यत ॥२८८॥

२८८. वत्सर अट्ठानबे माघ मास में वह क्षीण पुण्य (पंगु) शिशु पुत्र चक्र वर्मा[1] को राज्य पर अभिषिक्त कर मर गया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २८६ में 'धनदानैः' का पाठभेद 'धनधान्यैः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२८६ (१) सदक्षिणा—शब्दों के भाव से श्राद्ध की ओर संकेत किया गया है, जहाँ श्राद्ध के साथ दक्षिणा भी दी जाती है । इसका व्यंगार्थ होता है कि धन दान के साथ सुरत अर्थात् रति सुख की दक्षिणा भी दी अथवा उन रानियों का सुरति सुख से श्राद्ध करते हुए धन दान की दक्षिणा भी प्राप्त की । दक्षिणा सर्वदा मुद्रा धन में दी जाती है ।

पादटिप्पणी :

श्री कल्हण राज्याभिषेक काल लौकिक ३९९७ वर्ष पौष मास, श्रीदत्त कलि ४०२२ = शक ८४३ = लौकिक ३९९७ = सन् ९२१ ई०, सी० एम० डफ० सन् ९२१ ई०, श्री विलसन लौकिक ३९९६ = सन् ९४१ ई० ९ मास, श्रीस्तीन ३९९७ = पौष मास = सन् ९२१ ई०, श्रीपण्डित सन् ९२३ ई०, श्री ट्रोयर सन् ९२४ ई० ९ मास, लौकिक ३९९७; श्री कनिंघम लौ० ३९९७ = सन् ९२० ई० १० मास, पीर हसन विक्रमी संवत् ९८८ सन् ९३१ ई०; त्रिवेद सन् ९९२ ई० शक ८१४ ई० देते हैं । डाइनास्टिक हिस्टॉरी सन् ९२१ ई०, राज्यकाल श्रीदत्त, पण्डित १ वर्ष १ मास तथा पीर हसन १ वर्ष देता है ।

निर्जित वर्मा की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है । एक तरफ आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'निर्जि', तथा दूसरी तरफ दण्डायमान राजा एवं वर्मा टंकणित है ।

आइने अकबरी में नाम नरजेत वर्मा तथा राज्य काल १ वर्ष दिया गया है । राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल ८ वर्ष दिया गया है ।

सम सामायिक घटनाएँ :—

अबू हुसेन नासिर पुत्र अहमद समनानी सफरी वंश के अहमद को सिजिस्तान का सूबेदार नियुक्त किया । सन् ९२२ ई० अम्म (प्रथम) पूर्व चालुक्य (सन् ९२२-९२९ ई०) राजा था ।

पादटिप्पणी :

२८८ (१) चक्रवर्मा : राजा का राज्या-

पैतृकं वाञ्छतो राज्यं पार्थस्यानुचरा व्यधुः ।
एकाङ्गैः सह संग्रामं तत्र तन्त्रिपदातयः ॥२८९॥

२८९ वहां पैतृक राज्याभिलाषी, पार्थ के अनुचर,[१] तन्त्रि पदातियों ने एकांगों के साथ संग्राम किये ।

भिषेक काल कल्हण लौकिक संवत् ३९९८, सर्वश्री दत्त कलि ४०२३ ई० शक ८४४ = लौ० ३९९८ = सन् ९२२ ई०; ट्रॉयर : सन् ९२५ ई० ९ मास = लौकिक ३९९८ कनिंघम लौ० ३९९८ = सन् ९२१ ई० १० मास, सी० एम० डफ सन् ९२३ ई० विलसन सन् ९४२ ई० ९ मास लौ० सं० ३९९७; स्तीन सन् ९२३ ई० माघ लौ० ३९९८ श्री० एस० पी० पण्डित सन् ९२४ ई० डाइनोस्टिक हिस्टॉरी आफ इण्डिया सन् ९२३ ई० पीर हसन विक्रमी संवत् ९८९ = सन् ९३२ ई० तथा राज्यकाल सर्वश्री ट्रोयर विलसन तथा श्रीदत्त १० वर्ष एस० पी० पण्डित ने ११ वर्ष, और पीर हसन ने १० वर्ष ३ मास दिया है । आइने अकबरी ने नाम जिक्कर वर्मा तथा राज्य काल १० वर्ष ५ मास दिया है । राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल १४ वर्ष दिया गया है ।

चक्रवर्मा की एक मुद्रा मिली है । उसके मुख्य भाग पर 'आसनस्थ लक्ष्मी' 'च' तथा पृष्ठ भाग पर 'र्म देव' टंकित है ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९२३ ई० रोडल फ्रांस का राजा, तथा ७-८ च्वंगत्सुंग चीन सम्राट् हुआ । सन् ९२५ ई० में हर्ष वर्मा अपर नाम लक्ष्मण वर्मा पुत्र हर्ष चन्देल राजा हुआ । भट्ट मुकुल का सम्भावित काल । बल वर्मा प्रालम्भ वंश का राजा; केयूर वंश युवराज देव पुत्र मुग्ध तुंगकलचुरी चेदिराज, प्रतिहारेन्दु राज का सम्भावित काल । (सन् ९२५ ई० ९५०) । सन् ९२६ ई० मित्र-त्सुंग चीन सम्राट् तंग वंश पश्चात् हुआ । सन् ९२७ ई० गोविन्द चतुर्थ (सन् ९२७ ई०) राजा राष्ट्रकूट का मान्य समय । (सन् ९२७ = ९३६ ई०) । सन् ९२८ ई० मतराम साम्राज्य जावा की समाप्ति । जियरिद वंश का उदय । लियो (षष्ठ) पोप हुआ । सन् ९२९ ई० ताल-विक्रमादित्य (द्वितीय) तथा भीम (द्वितीय) पूर्वीय चालुक्य के राजा हुए । कन्थिक विजयादित्य पूर्वीय चालुक्य अम्म के पश्चात् राजा हुए । स्टीफेन (सप्तम) पोप हुआ । सन् ९३० ई० उदय (द्वितीय) लंका का राजा भीम (द्वितीय) के पश्चात् हुआ । मल्ल अथवा युद्ध मल्ल पूर्वीय चालुक्य का राजा हुआ । (सन् ९३०-९३६ ई०) सन् ९३१ ई० विनायक-पाल प्रतिहार राजा कन्नौज जोन (एकादश) पोप हुआ । अबू-जकरिया यहिया पुत्र अहमद पुत्र इसमाइल समनानी शावासी ने हिरात ले लिया और करातगीन जो अबू इब्राहिम समनानी का गुलाम था हिरात देकर समरकन्द लौट गया । सन् ९३२ ई० गुंजाल ने लघु मानस की रचना की । सन् ९३३ ई० चक्रवर्मा काश्मीरराज राज-च्युत हुआ ।

पादटिप्पणी :

२८९ (१) अनुचरा : अनुचर शब्द के प्रयोग से तन्त्रियों को कल्हण ने पार्थ का अनुगामी किंवा साथी बना दिया है । पीर हसन ने कौम नयायक तथा अंगी लिखा है । उसका तात्पर्य नयायक में तन्त्री तथा अंगी से एकागों का है । (पृष्ठ ९९)

मातुर्बप्पटदेव्याः स कंचित्कालं शिशुर्नृपः ।
मातामह्याः क्षिल्लिकायाः पाल्यस्त्वासीत्समा दश ॥२९०॥

२९०. वह शिशु नृपति, कुछ समय माता बप्पटदेवी तथा दश वर्ष तक, मातामही क्षिल्लिका के पालन में रहा ।

बाल्यादव्यक्तदौःशील्ये तस्मिंस्तत्पालनं तयोः ।
निर्दोषमासीदण्डस्थफणिलालनसंनिभम् ॥२९१॥

२९१. अण्डस्थ सर्प पालन सदृश, बालकपन के कारण, अप्रकट दुःशीलता युक्त उस बालक का पालन पोषण माता तथा मातामही की ओर से निर्दोष था ।

शूरवर्मा (प्रथम) (सन् ९३३–९३४ ई) :

जातः पङ्गोर्मृगावत्यां नवमेऽब्देऽथ तन्त्रिभिः ।
चक्रवर्माणमुत्पाटच शूरवर्मा नृपः कृतः ॥२९२॥

२९२. नवम वर्ष तन्त्रियों ने चक्र वर्मा को च्युत कर मृगावती[1] में उत्पन्न पुंग पुत्र शूर वर्मा को नृप बनाया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९० में 'क्षिल्लि' का पाठ भेद 'क्षल्लि' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९२ में 'पङ्गोर्मृगावत्यां' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'मेरुवर्धनपुत्र्यां' तथा 'तन्त्रिभिः' का पाठभेद 'मन्त्रिभिः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२९२. राज्याभिषेक काल कल्हण लौकिक संवत् ४००९ तथा सर्व श्री दत्त, ट्रॉयर सन् ९३६ ई० ९ मास = लौकिक ४००९, कनिंघम लौ० ४००९ = सन् ९३६ ई० १० मास, सी० एम०, डफ सन् ९३३ ई०, विल्सन सन् ९५२ ई० ९ मास, दत्त कलिगताब्द ४०३४ = सप्तर्षि ४००९ = शक = ८५५ सन् ९३३ ई०, स्तीन सप्तर्षि ४००९ सन् = ९३३ ई०, एस० पी० पण्डित सप्तर्षि ४००९ = सन् ९३५ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् ९९९, डाइनेस्टिक हिस्टरी आफ इण्डिया में सन् ९३३ ई० तथा सर्व श्री विल्सन, स्तीन, पीर हसन, राजतरंगिणी संग्रह, आइने अकबरी एवं पण्डित ने राज्यकाल एक वर्ष दिया है । ट्रायर, पीर हसन ने नाम शेर वर्मा दिया है ।

समसामयिक घटनाएं :

सन् ९३३ ई० देवसेन ने न्यायचक्र की रचना की । मन्सूर पुत्र अली हिरात का सूबेदार हुआ । सेन (तृतीय) लंका का राजा हुआ । (सन् ९३३–९४२ ई०) सन् ९३४ ई० शूरवर्मा काश्मीर राज राजच्युत हुआ ।

निःस्नेहा मातुलामात्याः प्रययुः स्वार्थतत्पराः ।
अदत्त्वा तन्त्रिणां देयं तस्योत्पाटनहेतुताम् ॥२९३॥

२९३. निःस्नेह एवं स्वार्थतत्पर मातुल एवं मन्त्री तन्त्रियों का देय न देने के कारण उसके उत्पाटन हेतू बने ।

अदुर्वृत्तोऽपि स क्ष्माभृद्दिना भूरिधनार्पणम् ।
गुणवानिव वेश्यानां तन्त्रिणां नाभवत्प्रियः ॥२९४॥

२९४. अदुर्वृत्त भी वह नृपति प्रचुर धनार्पण न करने से वेश्याओं के लिये गुणी व्यक्ति के तुल्य, तन्त्रियों को प्रिय नहीं हुआ ।

पार्थ (द्वितीय बार) (सन् ९३४–९३५ ई) :

वर्षे गते तमुत्पाट्य पृष्टोत्पत्तितया नृपम् ।
बह्वर्थदं पुनः पार्थं व्यधुस्तन्त्रिपदातयः ॥२९५॥

२९५. वर्ष गत होने पर, उसे च्युत कर के, तन्त्रि पदातियों ने लाभोत्पत्ति के कारण, पुनः प्रचुर धनप्रद पार्थ[1] को नृप बनाया ।

अभूत्साम्बवती वेश्या साम्बेश्वरविधायिनी ।
पार्थप्रिया तन्त्रिचक्रसंग्रहे ज्ञातचक्रिका ॥२९६॥

२९६. तन्त्रिचक्र को नियन्त्रित करने की नीति ज्ञाता, पार्थ की प्रिया, वेश्या साम्बवती ने साम्बेश्वर की प्रतिष्ठा की ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९३ में 'तत्पराः' का पाठभेद 'तत्परः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२९५. पार्थ की पुनः पदप्राप्तिकाल कल्हण लौकिक संवत् ४०१०, सर्वश्री टोयर सन् ९३७ ई० ९ मास = लौकिक ४०१०, कनिंघम सन् ९३२ ई० १० मास; विल्सन लौकिक संवत् ४००८ = सन् = ९५३ ई० ९ मास; स्तीन लौकिक ४०१० = सन् ९३४ ई० तथा एस. पी. पण्डित सन् ९३६ ई०; राज्यकाल सर्व श्री ट्रोयर १ वर्ष, विल्सन ६ मास, तथा एस. पी. पण्डित ने ५ मास दिया है ।

आइने अकबरी ने राज्य काल १ वर्ष ४ मास दिया है। नाम वरतेह दिया है। राजतरंगिणी संग्रह में पार्थ के द्वितीय बार का राज्य काल नहीं दिया गया है ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९३४ ई० अमोघवर्ष या वद्दिग (तृतीय) पुत्र कृष्णा (द्वितीय) राष्ट्रकूट राजा का समय । मी–नी–ती तथा पी–ती तंग वंश के पश्चात् क्रमशः सम्राट् हुए, अलप्तगीन ने गजनी विजय किया । अली लावक भाग गया । सन् ९३५ ई० में पार्थ काश्मीर राज राजच्युत हुआ । शिवगुप्त का पुत्र जनमेजय महाभव तुंग (प्रथम) अपर नाम धर्म कन्दर्प पिता की मृत्यु के पश्चात् राजा हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९६ में 'साम्बेश्वर' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'साम्बोरण ग्रामे' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२९६ (१) साम्बेश्वरः : इसका कालान्तर

चक्रवर्मा-पुनः पद प्राप्ति (सन् ९३५ ई) :

कालापेक्षी चक्रवर्मा ततोऽप्यैच्छद्धनं बहु ।
एकादशाब्दस्याषाढे कृतो भूयोऽपि तन्त्रिभिः ॥२९७॥

२९७. कालापेक्षी चक्रवर्मा[1] उससे अधिक धन देकर एकादश वर्ष के आषाढ़ में पुनः तन्त्रियों द्वारा नृप बना ।

पार्थादीन्यैः[1] समुत्पाट्य भुक्तं चक्रिकया पुरा ।
तैस्तैः स्थानैश्च ये तेभ्यो[2] जीवनाद्युपलेभिरे ॥२९८॥

२९८. जिन लोगों ने षड्यन्त्र द्वारा पहले पार्थ आदि नृपों को च्युत कर, भोग किया और जिन्होंने तत्तत् स्थानों द्वारा उनसे जीविका आदि प्राप्त की ।

में नाम साम्बोरण पड़ गया था । वर्तमान 'सोम्बर' ग्राम है । छोटा गाँव, वितस्ता के दक्षिण तट पर है । इस गाँव में प्राचीन ध्वन्सावशेष कोई अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है ।

(२) तन्त्रि-चक्र : राजाओं की प्रिया तथा वेश्याओं किंवा दरबारी महिलाओं ने राजनीति के उलट फेर में हाथ बटाया तथा देश की राजनीति को प्रभावित किया है । प्राचीन काल से परोक्ष रूप से महिलायें तथा दरबारी यह करते आये हैं और आज भी करते हैं । राजा किंवा राजन्य वर्ग अपनी दुर्बलताओं के कारण उनके चक्र के शिकार अनायास बन जाते हैं तथा कभी कभी देश को खतरे में डाल देते हैं ।

पादटिप्पणी :

२९७. चक्रवर्मा राजा को पुनः पद प्राप्ति, कल्हण लौकिक संवत् ४०११ आषाढ़, सर्वश्री दत्त कलि ४०३६ = शक ८५७ लौकिक ४०११ = सन् ९३५ ई०; ट्रोयर सन् ९३८ ई० ९ मास, कनिंघम लौ० ४०११ सन् ९३३ ई० ४ मास, विलसन ९५४ ई० ३ मास, लौकिक ४००८ वर्ष ६ मास = तथा स्तीन सन् ९३५ ई० = लौकिक ४०११ आषाढ़ तथा एस० पी० पण्डित सन् ९३६ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १००१ तथा राज्यकाल सर्व श्री विलसन, पीर हसन, ट्रोयर ६ मास, एस० पी० पण्डित ने १ वर्ष ११ मास २३ दिन दिया है ।

आइने अकबरी में राज्य काल ६ मास तथा नाम जिक्कर वर्मा दिया गया है ।

राज तरंगिणी संग्रह में चक्रवर्मा के द्वितीय राज्य काल का समय नहीं दिया गया है ।

चक्रवर्मा की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है । मुद्रा के एक तरफ आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'च' (क) तथा दूसरी तरफ दण्डायमान राजा एवं (ब) र्म देव टंकणित है ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९३५ ई० भीम चालुक्य (द्वितीय) का राज्य काल (सन् ९३५-९४६) ई० । जनमेजय महाभव तुंग (प्रथम) पुत्र दक्षिण कोशल सोमवंशीय शिवगुप्त का पुत्र राजा हुआ । उसका अपर नाम धर्म कन्दर्प था । (सन् ९३५-९७० ई०) चक्र वर्मा काश्मीर राजा पौष मास में भागा एवं राजच्युत हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २९८ में 'यैः' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'अत्र सर्वत्र यच्छब्देन मेरुवर्धनपुत्रपरामर्शः' तथा 'तेभ्यो' का पाठ भेद 'पार्थादिभ्यः' मिलता है ।

पिता भ्राता च यैरस्य राज्यादुत्पाटितोऽभवत् ।
संबन्धिभ्योऽपि यैर्द्रुग्धं कन्यां दत्त्वेतरेतरम् ॥२९९॥

२९९. जिन लोगों ने इनके पिता[1] और भ्राता को राज्य से उत्पाटित कर दिया था, तथा जिन लोगों ने परस्पर कन्या प्रदान कर सम्बन्धियों से भी द्रोह कर लिया था।

अकरोद् दृष्टदोषाणां तेषामेव स नष्टधीः ।
मेरुवर्धनपुत्राणामधिकारसमर्पणम् ॥३००॥ तिलकम् ॥

३००. नष्ट बुद्धि उसने जिनका दोष देख लिया था, इन्हीं मेरुवर्धन के पुत्रों को अधिकार समर्पित किया।

कृतोऽक्षपटलाधीशस्तेन शंकरवर्धनः ।
गृहकृत्येऽप्यसत्कृत्यो दाम्भिकः शंभुवर्धनः ॥३०१॥

३०१. उसने शंकरवर्धन को अक्षपटलाधीश[1] तथा दुराचारी एवं दांभिक शम्भुवर्धन को गृहकृत्य[2] पर (गृहकृत्याधिकारी) नियुक्त किया।

पादटिप्पणियाँ :

२९८ (१) यै : इस शब्द का यहाँ तथा सर्वत्र प्रयोग मेरुवर्धन के पुत्रों के लिये किया गया है।

(२) तेभ्यः श्लोक में तेभ्यः शब्द का प्रयोग पार्थादि राजाओं के लिये किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९९ में 'पिता' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'पङ्गु', 'भ्राता' के लिये 'पार्थः शूरवमी वा' 'यैरस्य' के लिये 'चक्रवर्मणः' 'कन्या' के लिये 'मृगावती' एवं 'दत्त्वेतरेतरं' के लिये 'पंगवे' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२९९ (१) पिता : उक्त श्लोक में पिता का पंगु राजा, भ्राता का पार्थ, अस्य का चक्रवर्मा एवं शूरवर्मा, कन्या का मृगावती एवं दत्वा का पंगु को देकर अर्थ लगाना चाहिए।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३०० में इस श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३०१ (१) अक्षपटल शब्द का निश्चित अर्थ स्पष्ट नहीं है। ट्रोयर आदि ने अक्ष का अर्थ मुकदमा लगाया है। (५ : ३८९) अक्षपटल का न्यायालय किंवा अदालत अर्थ में प्रयोग किया गया है। अट्टल शब्द अक्षपटलाधीश के लिये प्रयुक्त होता था। राजतरंगिणी के वर्णन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पट्टोपाध्याय द्वारा भूमि का दान किंवा अनुदान अक्षपटल कार्यालय में लिखा जाता था। (रा० : ५ : ३९८) अक्षपटलाधीश की नियुक्ति स्वयं राजा करता था। (१ : ५ : ३०१) एकांग अधिकारी इस कार्यालय द्वारा नियुक्त किये जाते तथा वेतन पाते थे। (रा० : ७ : १६२, १६०४, १६०९) भट्टहारक अक्षपटल शब्द की परिभाषा गणनाधिपति स्थान करते हैं। अनुमान लगाया गया है कि दफ्तरी निजामत अर्थात् एकाउण्टेण्ट जनरल अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया गया है। वह उन्नीसवीं शताब्दी तक पलटन निजामत के अन्तर्गत था। पलटन निजामत पूर्वकालीन एकांकों

पौषे तस्यैव वर्षस्य धनाभावात्स तन्त्रिणाम् ।
अदत्तहुण्डिकादेयः पलायिष्ट भयाकुलः ॥३०२॥

३०२. उसी वर्ष पौष[1] में धनाभाव के कारण, तन्त्रियों का हुण्डिका देय न देने से भय भीत होकर, वह पलायित हो गया ।

स्थिते मडवराज्यान्तस्तस्मिञ्शंकरवर्धनः ।
राज्यार्थी तन्त्रिणां दूतं प्राहिणोच्छंभुवर्धनम् ॥३०३॥

३०३. उसके मडव राज्य[1] में स्थित रहते, राज्यार्थी शंकरवर्धन ने तन्त्रियों के पास (शम्भुवर्धन को) दूत बना कर भेजा ।

शम्भुवर्धन (सन् ९३५–९३६) :

आवर्जितैः स निखिलैरधिकोत्कोचचर्चया ।
वञ्चयित्वाग्रजं राज्ये तैः स्वमेवाभ्यषेचयत् ॥३०४॥

३०४. उसने अधिक उत्कोच चर्चा से आकृष्ट, उन सभी (तन्त्रियों) के सहयोग से, बड़े भाई की वंचना कर स्वयं अपना अभिषेक करा लिया ।

की ही छाया डोगरा काल तक चली आयी थी । (द्रष्टव्य : रा० : ५ : २४)

पाँच गणना स्थानों का उल्लेख (रा० : ४ : ६९१) किया गया है, उनके विषय में अनुमान किया जा सकता है कि वे अक्षपटल के अन्तर्गत काम करत थे । एक शिलालेख से पता चलता है कि— 'महा अक्षपटलाधिकरणाधिकृत,'—एक अधिकारी था भूमि का जो राजदानपत्र जारी करता था । (इपिग्राफिका इण्डिया : १ : ७३) अक्षपटलीय शब्द लोक प्रकाश में नाना प्रकार के पारिभाषिक शब्दों में एक शब्द दिया गया है ।

कौटिल्य ने अक्षपटल का उल्लेख किया है ।

गणनापति के स्थान को अक्षपटल कहा जाता था । उसे भाषा में 'अट्टल' कहते थे । आय व्यय का वार्षिक दिन आषाढ़ की पूर्णिमा माना जाता था । महाअक्षपटलाधिकरणाधिकृत प्रधान लिपिकार या लेखक होता था । अक्षपटलिक रिकार्ड कीपर अर्थात् लेखा कागज पत्र रखने वाला, वर्तमान मुहाफिज़ खाना के अधिकारी तुल्य होता था ।

(२) गृह कृत्य : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ५ : १७६

पादटिप्पणी :

३०२ (१) पौष : चान्द्रसौर पौष मास लौकिक संवत् ४०११ वर्ष = १४ नवम्बर सन् ९३५ ई० से आरम्भ हुआ था ।

पादटिप्पणी :

३०३ (१) मडवराज्य : मराज = द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ५ : ८४

पादटिप्पणी :

३०४. सर्वश्री दत्त, स्तीन ने शम्भुवर्धन का अभिषेक काल लौकिक ४०११ = सन् ९३५ ई० पौष दिया है । किन्तु श्री स्तीन ने एपिन्डिक्स एक पृष्ठ १३७ पर शम्भुवर्धन का नाम राजाओं की तालिका में नहीं दिया है । वहाँ पर शंकरवर्धन का नाम दिया गया है । विलसन ने शम्भुवर्धन का नाम राजाओं की तालिका में नहीं दिया है । (क्रनिलाजिकल टेबुल पंचम) श्री एस० पी० पण्डित ने शंकर-वर्धन एवं शम्भुवर्धन दोनों का नाम राजाओं

तीर्थस्थितः स्वकुलजांस्तिमिरत्ति भुङ्क्ते
मौनी बकस्तिमिमुपेत्य वनान्तवासी।
व्याधो निहन्ति तु बकं प्रभवन्ति ते ते
पात्राण्युपर्युपरि वञ्चनचञ्चुतायाः ॥३०५॥

३०५. तीर्थ स्थित तिमि (मत्स्य) स्ववंश को खाता है। वक निकट जाकर तिमि को खाता है। वनान्तवासी व्याध वक का बध करता है। इस प्रकार वंचना में निपुण पात्रों को अधिकाधिक वे (एक दूसरे को) प्रभावित करते हैं !

भ्रष्टश्रीश्चक्रवर्माऽथ निशि श्रीढक्कवासिनः।
एकदा डामराग्र्यस्य संग्रामस्याविशद्गृहम् ॥३०६॥

३०६. एक समय भ्रष्टश्री चक्रवर्मा रात्रि में श्री ढक्कवासी[1] डामर श्रेष्ठ संग्राम के घर में प्रवेश किया।

की तालिका में नहीं दिया है। (पृष्ठ ५८६)। श्री स्तीन ने शंकरवर्धन का राज्यकाल सन् ९३५ ई० तदनुसार लौकिक संवत् ४०११ पौष राज्याभिषेक काल दिया है। किन्तु राजतरंगिणी के तरंग ५ श्लोक ३०४ के पार्श्व में शम्भुवर्धन सन् ९३५–९३६ ई० श्री स्तीन ने लिखा है। विलसन ने भी उक्त तालिका में शंकरवर्धन नाम देकर राज्याभिषेक काल लौकिक संवत् ४००९ सन् ९५५ ई० ९ मास, श्री ट्रोयर शंकरवर्धन का अभिषेक-काल सन् ९३९ ई० ३ मास लोकिक ४०१२, कनिंघम लौ० ४०११ सन् ९३३ ई० १० मास, डाइनास्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया में सन् ९३५ ई०; त्रिवेद सन् ९२९ ई० = शक ८५१ देते हैं। सी०-एम-डफ० सन् ९३६ ई० तथा राज्यकाल श्री विलसन १ वर्ष ६ मास, पीरहसन ने ३ मास २० दिन और ट्रोयर ने ४ मास दिया है।

आइने अकबरी ने नाम सुकन वर्मा राज्य काल ३ वर्ष दिया है। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल तथा नाम नहीं दिया गया है।

समसामयिक घटनाएं :

गोविन्द (चतुर्थ) राष्ट्रकूट सिंहासन से अमोघ वर्ष (तृतीय) को हटाकर राज्य प्राप्त किया। (मान्य समय) लियो सप्तम पोप हुआ। लुई (चतुर्थ) फ्रांस का राजा। सन्० ९३६ ई० शंकर वर्धन का तंत्रियों सहित चैत्र शुक्ल अष्टमी को प्रस्थान।

पाठभेद :

'चञ्चु' का पाठ भेद 'चुञ्चु' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३०५ सूक्ति संग्रह का १८१ वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

३०६ (१) श्री ढक्क : श्री ढक्क किस स्थान पर था पता नहीं चलता। ढक्क के विषय में टि० रा० : ५ : ३९ तथा श्री ट्रोयर पादटिप्पणी (रा० : ५ : ३०५) द्रष्टव्य है : श्री सीताराम पण्डित ने श्री ढक्क का नाम न तो अनुवाद में दिया है और न यही स्पष्ट किया है कि श्री ढक्क क्या है ? श्रीस्तीन ने इसे स्थानवाचक शब्द मानकर अनुवाद किया है। श्री शब्द सर्वदा नाम वाचक शब्दों के पूर्व लगाया जाता है। दक्षिण पूर्व एशिया में भी नामवाचक शब्द के पश्चात् श्री लगाते हैं यथा वेनिती श्री। विलसन ने उसे स्थानवाचक नाम माना है। उनका मत है कि काश्मीर में ही यह स्थान शूरपुर के

ज्ञात्वा कान्तिविशेषेण राजानं स कृताञ्जलिः।
प्रणम्य ग्राहयामास संभ्रमान्निजमासनम् ॥३०७॥

३०७. उसने कान्ति विशेष से राजा को पहचान कर अंजलि बद्ध प्रणाम करके सादर निजासन ग्रहण कराया।

राज्यभ्रंशादिवृत्तान्तमुक्त्वा साहायकार्थिनम्।
तं विपत्पेशलं प्रह्वो विचिन्त्योवाच डामरः ॥३०८॥

३०८. राज्य भ्रंश आदि वृत्तान्त कहकर साहाय्य प्रार्थी एवं विपत्ति पेशल विनम्र उस राजा से सोचकर नम्रता पूर्वक डामर ने कहा—

तन्त्रिणां वा तृणानां वा राजन्का गणना रणे।
त्वत्सेवनार्थं सामर्थ्यं कस्मिन्न मम कर्मणि ॥३०९॥

३०९. 'हे राजन्! रण में तन्त्रियों अथवा तृणों की क्या गणना? तुम्हारी सेवा में किस कार्य में मेरा सामर्थ्य नहीं है?

प्राप्तोत्साहः पुनर्नूनमस्मानेव हनिष्यसि।
विस्मरन्त्युपकारं हि कृतकार्या महीभुजः ॥३१०॥

३१०. 'उत्साह[1] प्राप्त कर पुनः निश्चय ही हम लोगों का नाश करोगे। क्योंकि कृतकृत्य महीभुज उपकार भूल जाते हैं।

समीप था। (विलसन : ६६) क्षेमेन्द्र ने ढक्क गृह का उल्लेख किया है। यहाँ पर सम्भवतः किसी व्यापारी के निवास के लिए प्रयोग किया गया है (देशोपदेश : ६ : ४०७)

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१० में 'स्मानेव' का पाठभेद 'स्मान्नेव' मिलता है।

३१० (१) उत्साह : स्तीन ने इसका अनुवाद 'पावर' किया है। उत्साह, प्रभु, मन्त्र तीन प्रकार की शक्तियाँ राज्य शास्त्र के अनुसार मानी गयी हैं। ज्ञानबल-मन्त्र शक्ति है। कोश एवं दण्डबल प्रभु शक्ति है। विक्रम बल उत्साह शक्ति है। कौटिल्य ने (६ : १) मन्त्र शक्ति को ज्ञान बल, प्रभु शक्ति को कोषबल एवं उत्साह शक्ति को विक्रम बल माना है। प्रभु शक्ति को उत्साह शक्ति तथा मन्त्र शक्ति को प्रभु शक्ति से महत्तर माना है। शक्तिशाली की क्रियाशीलता ही उत्साह शक्ति का परिचायक है। (कामन्दक : १३ ४१--५८ १५ : ३२, दशकुमारचरित : ८, अग्निपुराण : २४१ : १; मानसोल्लास : २ : ८--१०)

ऊर्ध्वारोहे य आलम्बहेतुर्भूभृच्छिनत्ति तम् ।
कुठारिकस्तरुस्कन्धमिवाधोगमनोन्मुखः ॥३११॥

३११. 'ऊर्ध्वारोहण में अवलम्ब हेतु तरुस्कन्ध का जिस प्रकार अधोगमनोन्मुख कुठारिक उच्छेद करता है, उसी प्रकार नृप भी अपने राज्य प्राप्ति के सहायकों का भी उच्छेद कर देता है।

धीधैर्यादिप्रकर्षेण येनोपक्रियते नृपः ।
प्राप्तोदयः स तेनैव शङ्कयं वेत्त्युपकारिणम् ॥३१२॥

३१२. 'जिस बुद्धि एवं धैर्य प्रकर्ष[1] से राजा उपकृत होता है, राज्य प्राप्तकर, वह (नृप) उसी के कारण उपकारी को सशंक दृष्टि से देखता है।

अस्मिन्स्थिते विपदभूदिति संचिन्त्य वर्ज्यते ।
मूढैः परिवृढैरापत्सेवको मङ्गलेच्छुभिः ॥३१३॥

३१३. 'मूढ़ नृपति इसी के रहते (यह) विपत्ति आयी' यह सोचकर, आपत्ति कालीन सेवकों का त्याग कर देते हैं।

संपद्यापत्सहायस्य विस्मृतोपक्रिया नृपाः ।
मध्ये प्रमादस्खलितमुत्पन्नं हृदि कुर्वते ॥३१४॥

३१४. 'सम्पत्ति (समृद्धि) में आपत्ति के सहायक का उपकार भूलकर, नृपति प्रमाद से बीच में आने वाले को हृदयंगत कर लेते हैं।

आमयार्तिरिपुत्रासक्षुदादौ दृष्टवैकृतान् ।
लब्धोदया ह्रीभयेन क्ष्मापा घ्नन्त्यनुयायिनः ॥३१५॥

३१५. 'रोग, पीड़ा, रिपु त्रास, क्षुधा आदि से विकृति द्रष्टा 'अनुयायियों' को उदय प्राप्त कर नृपति लज्जा भय से नष्ट कर देते हैं।

पादटिप्पणी :

३११. सूक्ति संग्रह का १८२ वां श्लोक है।

३११. (१) श्रीस्तीन ने ३११ से ३२३ तक के श्लोकों का अनुवाद नहीं दिया है। लकड़हारा जिन शाखाओं का सहारा लेकर वृक्षपर चढ़ता है और शाखाओं को काटता है वह उतरते समय उन्हीं शाखाओं को काट देता है जिनका सहारा लेकर वृक्ष पर चढ़ता है। इसी प्रकार राजा जिन सहयोगियों के कारण राज्य प्राप्त करता है, उन्नति प्राप्त करता है, उन्हें ही वह कालान्तर में नष्ट कर देता है।

पादटिप्पणी :

३१२. सूक्ति संग्रह का १८३ वां श्लोक है।

३१२ (१) प्रकर्ष : श्रेष्ठता = प्रमुखता = सर्वोपरिता = 'वपुःप्रकर्षादजयद् गुरुं (रघुवंश : ३ : ३४;) वर्णप्रकर्षे सति— (कुमार संभव ३ : २८)

राज्ञः सतोऽपि नाश्वासो यस्येभस्येव कर्णयोः ।
अविशुद्धप्रकृतयो ध्वनन्ति मधुपा इव ॥३१६॥

३१६. 'सद् नृपति भी विश्वास योग्य नहीं होते, क्योंकि जिस प्रकार अविशुद्ध प्रकृति[1] (मलिन) भ्रमर गज के कानों में ध्वनि करते हैं, उसी प्रकार अविशुद्ध प्रकृति (खल जन) जिसके कानों को भरते रहते हैं ।

दिवसे संनिधानेन पिशुनप्रेरणा प्रभोः ।
ईर्ष्यालुना स्वैरिणीव रक्षितुं यदि पार्यते ॥३१७॥

३१७. 'ईर्ष्यालु से स्वैरिणी[1] के समान पिशुन की प्रेरणा यदि दिन में स्वामी के सन्निधान से बचायी जा सके—

राजन् रजन्युपाध्यायो देवी यच्छिक्षयेद्रहः ।
तत्र प्रजागरः कर्तुमसर्वज्ञैर्न शक्यते ॥३१८॥

३१८. हे राजन् ! रात्रि कालीन गुरु (उपाध्याय) देवी एकान्त में जो शिक्षा देती है उससे असर्वज्ञ पुरुष सावधान नहीं रह सकता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१६ में 'अविशुद्ध' के लिये 'कुटिलाः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३१६. सूक्ति संग्रह का १८४ वाँ श्लोक है ।

३१६ (१) अविशुद्ध प्रकृति : जिनकी प्रकृति शुद्ध नहीं होती, वे अविशुद्ध प्रकृति कहे जाते हैं । भावार्थ होता है कि इस प्रकार के व्यक्ति राजा के के कानों में भुनभुनाया करते हैं । अनेक प्रकार की पिशुनता पूर्ण बातें कर राजा का मन दूषित करते हैं । उनके भुनभुनाने की उपमा कल्हण ने हाथी के कानों में मलिन भौंरों के गूँजने से दी है । भौंरा का रंग काला होता है । अविशुद्ध प्रकृति जनों का मन निर्मल नहीं काला होता है । कलुषित होता है ।

पादटिप्पणी :

३१७ (१) स्वैरिणी : अर्थ स्वेच्छाचारी 'अनियन्त्रित' कुलटा, निरंकुश, असती स्त्री होता है । कुट्टनी मतम् में स्वैरिणी के विषय में उल्लेख है—

उपनयति रतिमहोत्सवमाराधितदेवताविशेषाणाम् ।
वचनमपि प्रेमार्द्रं स्वैरिण्याः श्रवणमेति पुण्यवताम् ॥ ८५७ ॥

स्वैरिणी की परिभाषा दी गयी है—

पतिव्रता चैकपत्नी द्वितीया कुलटा स्मृता ।
तृतीया वृषली ज्ञेया चतुर्थी पुंश्चली स्मृता ॥
वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुंगी च सप्तमेऽष्टमे ।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या साऽस्पृश्या सर्वजातिषु ॥

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

पादटिप्पणी :

३१८ (१) रानी का राज्याभिषेक भी राजा के साथ होता था । वह अर्धांगिनी थी । हिन्दू परम्परा के अनुसार कोई भी संस्कार एवं कृत्य तब तक नहीं माना जाता था, जबतक पत्नी पति के साथ सम्मिलित नहीं होती थी । भगवान् राम ने सीता के अभाव में सीता की स्वर्ण प्रतिमा के साथ अपना यज्ञ किया था । रानी सर्वदा राज्य संचालन एवं व्यवस्था में एक शक्ति मानी जाती रही है । वह राजा को

कथंचिदह्नि हृदये कुशलैर्विनिवेशिता ।
शिक्षा गौरखरेणेव राज्ञा विस्मार्यते निशि ॥३१९॥

३१९. 'दिन में कथंचित् हृदय में कुशल व्यक्तियों द्वारा दी गयी शिक्षा गौरखर (श्वेत गदहा) तुल्य राजा रात्रि में विस्मृत कर देते हैं ।

न के लोभं समुत्पाद्य जिह्वया स्निग्धदीर्घया ।
पिपीलका इव ग्रस्ताः क्ष्मापालैः शल्यकैरिव ॥३२०॥

३२०. 'जिस प्रकार शल्यक[1] (साही) पिपीलिका (चींटी) को ग्रसित कर लेता है, उसी प्रकार क्ष्मापाल लोभ पैदा करके स्निग्ध एवं दीर्घ जिह्वा से किसे नहीं ग्रस लेते ?

जानाति हन्तुं हन्तव्यमासन्नं न तु दूरगम् ।
एको वकः परः सत्यं द्रोहवृत्तिर्महीपतिः ॥३२१॥

३२१. 'निकटवर्ती का हनन करना चाहिये न कि दूरस्थ का, वस्तुतः उस सत्य को एक वक[1] तथा दूसरा द्रोहवृत्ति महीपति ही जानता है ।

मन्त्रणा देती थी । संकट उपस्थित होने पर वह राजा के साथ युद्ध क्षेत्र में जाती थी । वहाँ राजा की सक्रिय सहायता करती थी । राजा दशरथ तथा कैकेयी का उदाहरण इस सन्दर्भ में अति लोक प्रिय है । काश्मीर में भी इस प्रकार के उदाहरण हैं । रानी यशोवती अपने पति काश्मीरराज दामोदर के साथ गान्धार में भगवान् श्री कृष्ण के साथ हुए युद्ध में गयी थी । पति की मृत्यु के पश्चात् उसने मन्त्रियों सहित कार्य भार सम्हाला था । संकट उपस्थित होने पर रानी राज्य का शासन सूत्र राजा के अभाव में किंवा विशेष परिस्थिति में सम्हालती थी । शासन का नियन्त्रण, संचालन एवं पर्यवेक्षण करती थी । काश्मीर में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं । द्रष्टव्य रा० : ७ : २६३-२६५; ८ : १८२३

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१९ में 'गौरखर' का पाठभेद 'गोरखर' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३१९. सूक्ति संग्रह का १८५ वां श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२० में 'लोभं' का पाठ भेद 'भोगं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३२०. सूक्ति संग्रह का १८६ वां श्लोक है ।

३२० (१) शल्यक : शरीर में चुभने वाले पदार्थ के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है । शल्यक का अर्थ नेजा, सलाख तथा साही जानवर होता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२१ में 'परः' का पाठ भेद 'परं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३२१. सूक्ति संग्रह का १८७ वां श्लोक है ।

३२१ (१) वक : बगुला समीपस्थ मछलियों को मारता है । दूरकी मछलियां उससे बची रहती हैं । बकुला तट पर खड़ा रहता है । जैसे ही मछलियां समीप आती हैं उनका शिकार करता है ।

न नाम कण्टकाकीर्णः कौटिल्यं लक्ष्यतां नयेत् ।
कालापेक्षी क्षितिपतिः शरीरमिव जाहकः ॥३२२॥

३२२. 'जिस प्रकार जाहक अपने ¹शरीर को प्रकट नहीं करता है, उसी प्रकार कण्टकाकीर्ण कालापेक्षी क्षितिपति (अपने) कौटिल्य को परिलक्षित नहीं करता है ।

नमन्नपि हरिर्हन्यादाश्लिष्यन्नपि पन्नगः ।
विहसन्नपि वेतालः स्तुवन्नपि महीपतिः ॥३२३॥

३२३. 'नम्र होता हुआ भी सिंह, आलिंगन करता हुआ भी सर्प, विहँसता वैताल तथा स्तुति करता हुआ भी महीपति मार डालता है ?

अद्रोहवृत्त्या तस्मात्त्वं द्रक्ष्यस्यस्मान्सदा यदि ।
ससैन्यस्ते तदेषोऽहं प्रातरेव पुरःसरः ॥३२४॥

३२४. 'यदि तुम सदा हम लोगों को अद्रोही वृत्ति से देखो (देखने का वचन दो), तो प्रातः ही ससैन्य मैं तुम्हारे सम्मुख हूँगा ।

मनु ने वक वृत्ति के विषय में लिखा है :—

शठो मिथ्याविनीश्च वकव्रतचरो द्विजः ।

मनु : ४ : १९६

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२२ में 'जाहक' का पाठभेद 'जार्यक' तथा पार्श्व टिप्पणी में लिखा मिलता है—

'जार्यको धूकमार्जारखटाकैरण्डकासु चेति विश्वः'

पादटिप्पणी :

३२२ (१) जाहक : इसका अर्थ कोशकारों ने जोंक, खार, ऊदविलाव, खेखर, गन्ध, मार्जार तथा मुश्क बिलाव किया है । मैं समझता हूँ कि यहाँ जाहक से तात्पर्य साही जन्तु से है । साही के शरीर पर काँटा होता है । वह दबा रहता है । देखने में वह सुन्दर लगता है । किन्तु जब वह काँटा खड़ा कर लेता है तो उसका पूर्व रूप बदल जाता है । उसका सुन्दर रूप भयंकर रूप में लगता है । कल्हण कण्टक तथा कौटिल्य दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । साही के शरीर पर काँटा होता है । और कथा प्रचलित है कि यदि शाही का काँटा घर में रख लिया जाय तो कौटिल्पता उत्पन्न होकर घर में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है । कण्टक एवं कौटिल्य दोनों शब्दों के प्रयोग से जाहक का अर्थ साही जन्तु ही प्रतीत होता है । मेरा केवल यह अनुमान ही है ।

पादटिप्पणी :

३२३. सूक्ति संग्रह का १८८ वां श्लोक है ।

३२३ (१) इस श्लोक का भाव निम्नलिखित रामायण के पद में प्रकट हो जाता है—

स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजंगमः ।
पालयन्नपि भूपालः प्रहसन्नपि दुर्जनः ॥

(अयो० : २८ : ३५)

तदाकर्ण्याब्रवीद्राजा लज्जास्मितसिताधरः ।
स्वात्मेव यूयं संरक्ष्या मम पूर्वोपकारिणः ॥३२५॥

३२५.. यह सुनकर लज्जा स्मित से धवलित अधर, राजा ने कहा—'मेरे पूर्वोपकारी तुम लोग अपनी आत्मा के समान रक्षणीय हो।'

ततो निक्षिप्य चरणं रक्ताक्ते मेषचर्मणि ।
कोशं चक्रतुरन्योन्यं सखड्गौ नृपडामरौ ॥३२६॥

३२६. तदनन्तर खड्ग सहित नृप और डामर रक्ताक्त मेष चर्म पर, चरण रख कर, परस्पर कोश पान किये।

अथ संघटितासंख्यचण्डडामरमण्डलः ।
चक्रवर्माऽकरोद्यात्रां प्रत्यूषे नगरोन्मुखः ॥३२७॥

३२७. प्रत्यूष में असंख्य प्रचण्ड डामर मण्डल सघंटित करके, नगरोन्मुख चक्रवर्मा ने प्रयाण किया।

शम्भुवर्धन द्वारा तन्त्रि विजय (सन् ९३६ ई)

तस्मिन्क्षणे पुरस्कृत्य योद्धुं शंकरवर्धनम् ।
विनिर्ययुः सिताष्टम्यां चैत्रे तन्त्रिपदातयः ॥३२८॥

३२८. उस समय चैत्र शुक्ल अष्टमी[१] को युद्ध के लिये शंकरवर्धन को अग्रसर करके तन्त्रि पदाति निकले पड़े।

कालानुवृत्तिप्रच्छन्नं तेषां संभावनोज्झितम् ।
स तत्वरे पुरस्कर्तुं चक्रवर्मा स्वविक्रमम् ॥३२९॥

३२९. उनकी सम्भावना से परे तथा काल क्रम से प्रच्छन्न, अपने पराक्रम को प्रदर्शित करने के लिये उस चक्रवर्मा ने शीघ्रता की।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२६ में 'दिव्यमित्यर्थः। 'उभौ मैत्री सम्बन्धार्थं रक्ताक्ते मेषचर्मणि परस्परं पादप्रक्षेपं कुरुत इति शपथसम्प्रदायः दिव्ये च कोशः पुष्पादि-कुड्मलासिपिधानयोरिति मङ्खः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३२६ (१) कोशपान : प्राचीन कालीन स्केण्डेनेवियन देशों के लोगों के समान क्षत्रियों में गम्भीरता से विधिपूर्वक शपथ ग्रहण की प्रथा थी। यह द उस प्रथा की प्रक्रिया तथा रूप प्रस्तुत करता है। पाद प्रक्षेप मैत्री सम्बन्ध के लिये रक्तरंजित परस्पर करते हैं। यह सपथ की प्राचीन परम्परा है। ब्राह्मण में विधि पूर्वक सपथ लेने की प्रथा पवित्र जल के साथ की जाती थी। प्राचीन यूनान राज्य में थीव्स के सामन्त गण भी सपथ लेकर परस्पर संघटित होते थे।

पादटिप्पणी :

३२८ (१) अष्टमी = सप्तर्षि ४०१२ = सन् ९३६ ई० = संवत् ९९३ = शक = ८५८ चैत्र शुक्ल अष्टमी।

अथ प्रवृत्ते संग्रामे घोरे पद्मपुराद्बहिः ।
जघान प्रेरितहयः पूर्वं शंकरवर्धनम् ॥३३०॥

३३०. पद्मपुर के बाहर घोर संग्राम प्रारम्भ होने पर, सर्व प्रथम घोड़ा बढ़ा कर, शंकर वर्धन को हत किया ।

हते सेनाधिपे तत्र शतधा तन्त्रिवाहिनी ।
प्रययौ पवनाघातप्रेरिता नौरिवार्णवे ॥३३१॥

३३१. वहाँ सेनापति के हत होने पर तन्त्रिवाहिनी—समुद्र में पवन आघात से प्रेरित नौका सदृश शतधा (विच्छिन्न) हो गयी ।

पृष्ठानुसरणोद्युक्तो नृपस्तेषामपाहरत् ।
गतिं तुरगवेगेन शिरःश्रेणिं तथासिना ॥३३२॥

३३२. पृष्ठानुसरण हेतु उद्यत नृपति ने तुरग वेग से उनकी गति का, असि से शिरःश्रेणी का, अपहरण कर लिया ।

भ्रमतः समरे बभ्रुर्वीरपट्टाञ्चलच्छटाः ।
चक्रवर्ममृगेन्द्रस्य सटापटलविभ्रमम् ॥३३३॥

३३३. समर में संचरण करते, चक्रवर्मा मृगेन्द्र की वीरवस्त्रांचलच्छटासटी (सिंह अयाल) समूह के समान सुशोभित हो रही थी ।

पादटिप्पणी :

३३० (१) पद्मपुर : द्रष्टव्य पाद टिप्पणी: रा० : ४ : ३९५.

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३१ में 'प्रेरिता' का पाठ भेद 'विशीर्णा' मिलता है ।

पादटिप्णी :

३३१ (१) समुद्र : कल्हण की यह उपमा इस बात को प्रमाणित करती है कि उसने समुद्र का दर्शन किया था । वह समुद्र तटपर रहकर समुद्र की क्रिया प्रतिक्रियाओं को देखा था । यह वर्णन वही कर सकता है जो समुद्र तटपर खड़े होकर जहाजों को तूफान में फँसकर यत्र तत्र अनियन्त्रित जाते देखा होगा । द्रष्टव्य भूमिका : समुद्र ज्ञान : (खण्ड : १ : १३)

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३२ में 'सरणोद्यु' का पाठ भेद 'सारणो' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३३ में 'बभ्रु' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'अधारयत्' तथा 'च्छटा' के लिये शिरस्त्र-बन्धनार्थे दत्तो यो वीरपट्टः डोपट्ट' इति प्रसिद्धः तस्य अञ्चलच्छटा : फीता इति प्रसिद्धाः लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३३३ (१) वीरवस्त्राञ्चल : शिर पर बाँधने का वस्त्र जिसे दुपट्टा कहते हैं । उसे साफा भी कहते हैं । उसका अंचल चक्रवर्मा के ग्रीवा पर

किमन्यत्पञ्चषाण्यासन्सहस्राणि रणाङ्गने ।
पतितानि क्षणादेव हतानां तत्र तन्त्रिणाम् ॥३३४॥

३३४. और क्या कहा जाय, उस रण प्रांगण में क्षण में ही पाँच छः सहस्र निहत तन्त्री गिर गये ।

तन्त्रिणो रणसंरम्भपरिश्रान्ताः क्षमातले ।
गृध्रपक्षकृतच्छाये शायिताश्चक्रवर्मणा ॥३३५॥

३३५. चक्रवर्मा ने रण संरम्भ से परिश्रान्त तन्त्रियों को पृथ्वी तल पर गृध्र[1] पक्ष द्वारा कृत (किये गये) छाया से शायित कर दिया ।

विशुद्धवंश्यैर्गुणिभिर्निहतैः संश्रितैः समम् ।
अभूषयद्वीरशय्यां शूरः शंकरवर्धनः ॥३३६॥

३३६. विशुद्ध वंशीय, गुणी,[1] निहत, आश्रितों के साथ शूर शंकरवर्धन ने वीर शय्या[2] सुशोभित की ।

उदयं संहता एव संहता एव च क्षयम् ।
प्रयान्तः स्पृहणीयत्वं तन्त्रिणः कस्य नागमन् ॥३३७॥

३३७. उनके संहत (साथ) ही उदय तथा संहत हो अस्त होते तन्त्री किसे स्पृहणीय नहीं हुए ?

उसी प्रकार लहराता सुन्दर लगता जैसे सिंह के दौड़ते समय उसकी ग्रीवा पर लहराती घनी अयाल ।

(२) सटा—विध्मन्तमुद्धृतसटाः प्रति हन्तु मीष—रघुवंशः ९ : ६० सटा सिंह के अयाल, खड़े शूकर के बाल तथा साधु की जटा के लिये भी प्रयोग किया जाता है ।

पादटिप्पणी :

३३५ (१) गृध्र : रण में मनुष्य मांस लोलुप गृध्र मँडराने लगे, उनके पंखों की छाया में तन्त्रियों के शव जैसे परिश्रम से श्रान्त होकर छाया में विश्रान्ति कर रहे थे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३६ में 'हतै': का पाठ भेद 'हतः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३३६ (१) वंश-गुण : यहाँ पर बाँस तथा गुण अर्थात् तन्तु की ओर संकेत किया गया है, जिससे चारपाई बनती है ।

(२) वीरशय्या : क्षत्रियों के लिये वीर-शय्या का अर्थ युद्ध स्थल में आघात एवं प्रत्याघात के कारण प्राण विसर्जन कर भूमि पर शयन करना होता है । घर में चारपाई पर पड़े-पड़े, मरना क्षत्रियों के लिये अशोभनीय माना गया है । युद्ध भूमि में दिवंगत होने का अर्थ स्वर्ग प्राप्ति है । रणभूमि ही वीरों की वीरशय्या होती है । शंकरवर्धन की शय्या चारपाई पर नहीं लगी, बल्कि वह वीर भोग्य वसुन्धरा को ही अपनी शय्या बनाया । द्रष्टव्य : ७ : १३६४; ८ : २३३०.

माननीयानघृष्यांश्च महावंश्यान्महीपतीन् ।
अहीनिव खिलीकृत्य भिक्षयन्तः क्षणे क्षणे ॥३३८॥

३३८. माननीय, अधृष्ट, (दुर्जय) एवं महावंशीय महीपतियों को सर्पों के सदृश खिलीकृत (निःसार—नष्ट प्राय) करके प्रति क्षण याचना करते थे ।

अनयन्क्रीडया व्रीडां माद्यन्तो जीविकाकृते ।
प्रागाहितुण्डिकाः क्रूरा इव ये गर्ह्यवृत्तयः ॥३३९॥

३३९. जीविका के लिए मतवाले निन्दनीय वृत्ति वाले क्रूर जो तन्त्री सपेरे की तरह क्रीड़ा द्वारा उन्हें लज्जित करते थे ।

ते तन्त्रिणः क्षणाद्दग्धा गूढवैरविषाग्निना ।
विमाननाविविग्नेन चक्रवर्ममहाहिना ॥३४०॥ तिलकम् ॥

३४०. उन तन्त्रियों के अपमान से खिन्न, चक्रवर्मा महासर्प ने गुप्त वैर विषाग्नि से क्षण भर में दग्ध कर दिया ।

अथ द्वितीये दिवसे भग्नानामपि तन्त्रिणाम् ।
वीरः संघटनां यावदकरोच्छंभुवर्धनः ॥३४१॥

३४१. दूसरे दिन शम्भुवर्धन भग्न भी तन्त्रियों[1] का जब तक संघटन कर रहा था ।

तावन्मिलितसामन्तसचिवैकाङ्गलालितः ।
सैन्यैर्नानापथायातैर्नदद्भिर्व्याप्तदिक्पथः ॥३४२॥

३४२. तब तक सम्मिलित सामन्त[1], सचिव,[2] एकांगों[3] से मिलकर, नाना पथों से आगत, नाद करते, सैन्यों के साथ, दिक् मार्गों को व्याप्त कर दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४० में 'माननाविविग्ने' का पाठभेद 'मानेनाविविग्ने' है तथा श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४१ में 'संघटना' का पाठभेद 'संघट्टनं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३४१ (१) तन्त्री : द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० : ५ : २४८

पादटिप्पणी :

३४२ (१) सामन्त : द्रष्टव्य पादटिप्पणी रा० : ४ : ५५६; बंगाल में एक जाति की एक उपजाति सामन्त कही जाती है ।

(२) सचिव : आजकल वेतनभोगी प्रशासकीय सिक्रेटरी को सचिव कहते हैं । प्राचीनकाल में सचिव मन्त्री के समानार्थक अथवा सलाहकार रूप में प्रयुक्त होता था । ऐतरेय ब्राह्मण में सचिव शब्द का प्रयोग किया गया है। (३ : २० : १) राजा के साथी मन्त्री को सचिव कहा गया है । इन्द्र के सचिव मरुतों का उल्लेख किया गया है । यह जर्मन शब्द

बलान्मध्येऽश्ववाराणां नृत्यतेवाग्र्यवाजिना ।
बल्गाङ्केनोद्वहँल्लम्बं शिरस्त्रं वामपाणिना ।।३४३।।

३४३. उत्तम अश्वारूढ़ वह बलात् अश्वारोहियों के मध्य नृत्य करते, बल्गांकित वाम पाणि से झुके हुए, शिरस्त्राण को सम्हालते ऊपर उठा रहा था ।

सस्वेदेतरहस्ताग्रवेष्टनोल्लासनस्पृशः ।
खड्गस्य विम्बतार्कस्य भाभिर्द्योतितकुण्डलः ।।३४४।।

३४४. स्वेदयुक्त दूसरे हाथ (दक्षिण बाहु) में वेष्टनोल्लासन से सूर्य प्रतिबिम्बित खड्ग की कान्तियों से कुण्डल शोभित हो उठे ।

कवचोत्सेधसंरब्धकण्ठायासेन ताम्यता ।
बद्धभ्रुकुटिबन्धेन वदनेन भयावहः ।।३४५।।

३४५. उत्सेध (उभड़े-उठे) कवच के कसाव से पीड़ित कण्ठ के कारण तमतमाता एवं कुटिल भृकुटी युक्त वदन भयावह था ।

तर्जयन्कृतहुंकाराँल्लुण्ठकाँल्लुण्ठितापणान् ।
शिरोऽक्षिसंज्ञया त्रस्तवास्तव्यकृतसान्त्वनः ।।३४६।।

३४६. आपणों (वटजारों) को लुण्ठित करने वाले हुँकारी लुण्ठकों को तर्जित करते हुए, शिर एवं नेत्रों के संकेत से त्रस्त, वास्तव्यों (निवासियों) को सान्त्वना प्रदान किया ।

कोम्स तथा इङ्गलिश शब्द गेसिथ के समकक्ष प्रतीत होता है ।

कामन्दक ने सचिव तथा अमात्य शब्द समानार्थक माना है । (४ : २५, २७; १३ : २४, ६४) रुद्रदामन के शिलालेख (सन् १५० ई०) में सचिव का वर्गीकरण किया गया है । एक वर्ग राज्य किंवा राजा को सम्मति देने वाला होता था । दूसरा वर्ग निर्णीत बातों को कार्यान्वित करता है । दूसरे वर्ग में वर्तमान काल के सचिवों को रखा जा सकता है । अमरकोशकार ने लिखा है—अमात्य जो धीसचिव किंवा मति सचिव हैं उन्हें अमात्य और जो मन्त्री नहीं है उन्हें कर्म सचिव कहा जाता है । शान्ति पर्व में उल्लेख मिलता है कि राजा को ३७ सचिव रखना चाहिए । उनमें ४ विद्वान् एवं साहसी ब्राह्मण, ८ वीर क्षत्रिय, २१ धनी वैश्य, ३ शूद्र एवं १ पुराणों में पारंगत सूत होना चाहिए । (शान्ति : ८५ : ७-९) मराठा काल में पन्त सचिव होते थे । उनका काम आय व्यय निरीक्षण एवं सबसे बड़ा अंकक था ।

(३) एकांग : द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ५ : २४९

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४४ में 'सस्वेदेतर' का पाठभेद 'स वामेतर' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४५ में 'संरब्ध' का पाठभेद 'संरुद्ध' 'बद्धभ्रुकु' का 'वक्रभु' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४६ में 'ल्लुण्ठि' का पाठभेद 'ल्लुब्धका' मिलता है ।

भेरीरवैः श्रुतिं भिन्दन्पौराशीर्घोषरोधिभिः ।
संग्रामजयशोभाङ्कश्चक्रवर्माऽविशत्पुरम् ॥३४७॥ कुलकम् ॥

३४७. पुरवासियों के आशीर्वाद घोष के अवरोधी भेरी ध्वनि से कर्ण भेदन करते हुए, संग्राम जय से शोभित, चक्रवर्मा ने नगर प्रवेश किया।

चक्रवर्मा तृतीय बार (सन् ९३६ ई०) :

तस्मिन्सिंहासनं प्राज्यमाक्रामति जयोर्जिते ।
बद्ध्वा कुतश्चिदानिन्ये भूभटः शंभुवर्धनम् ॥३४८॥

३४८. (जयोर्जित) विजय से तेजस्वी, उसके पूर्णरूपेण सिंहासनारूढ़ होने पर, भूभट कहीं से शम्भुवर्धन को बाँध कर लाया।

राज्ञः पुरस्तात्तं शस्त्रपातभीमीलितेक्षणम् ।
भक्तिं प्रदर्शयन्पापश्चण्डाल इव सोऽवधीत् ॥३४९॥

३४९. राजा के सामने शस्त्र संपात भय से निमीलित नेत्र उस (शम्भुवर्धन) का उस (भूभट) पापी ने राजभक्ति प्रदर्शन हेतु चाण्डाल के समान वध कर दिया।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४८ में 'क्रामति' का पाठभेद 'क्राम्यति' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३४८. तृतीय बार राज्याभिषेक काल कल्हण ने लौकिक संवत् ४०१२ चैत्र सुदी ८ तथा सर्व श्री ट्रोयर सन् ९३९ ई० ७ मास = लौकिक ४०१२; कनिंघम सन् ९३५ ई० ४ मास; विलसन सन् ९५६ ई० ३ मास = लौकिक संवत् ४०१० वर्ष ६ मास; स्तीन लौकिक ४०१२ चैत्र सुदी ३ = सन् ९३६ ई० श्री दत्त कलि ४०३६ = शक, ८५७ = लौकिक ४०११ = सन् ९३५ ई०; पण्डित सन् ९३६ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १००२, सन् = ९४५ ई०; डाइनास्टिक हिस्टारी ऑफ इण्डिया सन् ९३६ ई०; तथा राज्यकाल सर्व श्री दत्त १ वर्ष ५ मास, पण्डित १ वर्ष ११ मास २३ दिन, पीर हसन १ वर्ष १ मास, विलसन १ वर्ष ४ मास, और ट्रोयर ४ मास देते हैं।

आइने अकबरी राज्यकाल ३ वर्ष देती है। राजतरंगिणी संग्रह में चक्रवर्मा के तृतीय राज्यकाल का समय और राज्यक्रम में नाम नहीं दिया गया है।

समसामयिक घटनाएँ :—

शम्भुवर्धन बन्दी काश्मीरराज की हत्या। ओटो (प्रथम) जर्मनी का राजा हुआ। पारसी आबादी संजान में आबाद हुई। अमोघवर्ष (तृतीय) राष्ट्रकूट का राजा हुआ। (सन् ९३६--९३९ ई०) उ-त्सुंग त्सिन वंश के पश्चात् चीन सम्राट् हुआ। मुहम्मद पुत्र हसन पुत्र इशहाश जो हिरात का का सूबेदार था, मन्सूर का उत्तराधिकारी हुआ। उसी वर्ष अबुल अब्बास पुत्र अल जर्राह हिरात के विरुद्ध अभियान कर मुहम्मद पुत्र हसन को पकड़ कर वल्कातिगीन के पास जुरजान भेजा। सन् ९३७ ई० चक्रवर्मा काश्मीरराज की हत्या ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी को हुई।

पादटिप्पणी :

३४९ (१) भारतीय राजशास्त्र के अनुसार भयभीत तथा आत्म समर्पण एवं बन्दी बनाया गया

उज्झतां धर्ममर्यादां भृत्यानां जनकोपमान् ।
हन्तुं नरेन्द्रान्द्रोहेण प्रारंभः शंभुवर्धनः ॥३५०॥

३५०. शम्भुवर्धन ने ही धर्म मर्यादा[1] त्यागने वाले भृत्यों द्वारा द्रोह[2] से जनकोपम (पिसदृश) नरेन्द्रों का वध प्रारम्भ कर दिया था ।

प्राप्य निष्कण्टकं राज्यं चक्रवर्मनृपः क्रमात् ।
अजायत धृतोत्सेको नृशंसविषमक्रियः ॥३५१॥

३५१. नृपति चक्रवर्मा ने निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर, क्रमशः अभिमानी नृशंस एवं विषम क्रिया किया ।

स्वविक्रमकथास्तोत्ररोमन्थप्रियताहृतः ।
सोऽभवद्विटवन्द्यादिचाटुकारविधेयधीः ॥३५२॥

३५२. वह अपनी विक्रम कथा स्तुति की पुनरुक्ति से प्रसन्न एवं विट, बन्दी, आदि चाटुकारों द्वारा बुद्धि ग्रहण करने लगा ।

सैनिक तक नहीं मारा जाता था । शम्भुवर्धन तो राजा था । आज भी यही परम्परा है । युद्ध बन्दी की हत्या नहीं की जाती ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३५० में 'वर्धनः' का पाठभेद 'वर्धनात्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३५० (१) मर्यादा : शम्भुवर्धन राजा था । राजा, ब्राह्मण तथा गाय सनातन काल से अवध्य माने जाते हैं । इसी मर्यादा की ओर कल्हण संकेत करता है ।

जो स्वयं राजा नहीं है वह दूसरे राजा को मार नहीं सकता । (बौधायन धर्म सूत्र : १ : १० : १०-१२) भीष्म पर्व में युद्ध सम्बन्धी कुछ नियमों का उल्लेख किया गया है—दूसरे से लड़ते हुए योद्धा से युद्ध नहीं करना चाहिए । जो पीठ दिखा दे, जो बिना कवच हो, जिसने अस्त्र, आयुध, साथी खो दिया है, जिन्होंने हाथ जोड़ दिया है, मुख में तिनका रख लिया है, जिनके केश बिखर गये हैं, जो सोया हो, जिसका कवच हट गया हो, जो नंगा या बिना आयुध के है अथवा जिसका आयुध टूट गया है, दुःखित है, भयभीत है, चारण, बन्दी, भाट तथा दूत अवध्य माने गये हैं ।

काश्मीर में प्रथम बार युद्ध की इस मर्यादा का उल्लंघन किया गया जिसका परिणाम हुआ कि, नौकर, चाकर जो राजा की सेवा करते थे वे राजाओं की हत्या करने लगे ।

द्रष्टव्य : शान्ति : ९५ : ११-१४ : ९६ : ३०, ९८ : ४८-४९ : २९७ : ४; भीष्म : १ : २७-३२, आपस्तम्ब धर्मसूत्र : २ : ५ : १० : १२; गौतम : १० : १७-१८; याज्ञ० १ : ३२६; मनु० ७ : ९०-९३, १० : ५६; द्रोण : १४३ : ८, कर्ण : ९० : १११-११३, सौप्तिक : ५ : ११-१२; ६ : २१-२३, वृद्ध हारीत : ७ : २२६, बृहत्पाराशर : १०; शुक्र : ४ : ७ : ३५४-३६२; रा० युद्ध : १८ : २७-२८ ।

(२) द्रोह : यहाँ द्रोह का अर्थ वंशगत किंवा दाय सम्बन्धी कलह है । उत्तराधिकार के लिये परस्पर शत्रुता, घात-प्रतिघात, षड्यन्त्रादि करना आदि कुल द्रोह में आ जाता है ।

आत्मानं दैवतमिव स्तुतिमोहितचेतसः ।
जानतः प्राभवंस्तस्य विवेकविगुणाः क्रियाः ।।३५३।।

३५३. स्तुति मोहित चेतस् होकर, अपने को देव तुल्य मानते हुए, उसके अविवेक पूर्ण कार्य (प्रारम्भ) होने लगे ।

रंग डोम्ब :

तस्मिन्प्रसङ्गे रंगाख्यः प्रख्यातो डोम्बगायनः ।
वैदेशिकोऽभवद्राज्ञा वितीर्णावसरो बहिः ।।३५४।।

३५४. उसी प्रसंग में राजा ने रंग नामक प्रख्यात विदेशी डोम्ब[1] गायक को बाहर (बाह्याली) गाने का अवसर प्रदान किया ।

प्राप्तान्सचिवसामन्तान्विन्यस्यन्तो यथाक्रमम् ।
प्रतीहारा नृपस्याग्रमनयन्त विविक्तताम् ।।३५५।।

३५५. समागत सचिव सामन्तों को यथा क्रम बैठाते हुए, प्रतीहारियों ने नृप का अग्र भाग रिक्त रखा ।

विबभौ धवलोष्णीषा सभा दीपप्रभोज्ज्वला ।
शेषशय्येव मणिभिः कृतालोका फणोद्भवैः ।।३५६।।

३५६. दीपक प्रभा से समुज्ज्वल धवल उष्णीषों से युक्त, सभा फणोद्भूत मणियों से प्रकाशित शेष सदृश सुशोभित हुई ।

पादटिप्पणी :

३५४ (१) डोम्ब : अल्बेरूनी ने डोम्ब अर्थात् डोम जाति के विषय में लिखा है । इसी समय अर्थात् नवीं शताब्दी में अरब लेखक इब्न खुर्दाज्वा ने भारत की डोम्ब (जम्ब) जाति का उल्लेख किया है । उनका पेशा संगीत, वाद्य एवं नृत्य था । (अल्बेरूनी १ : १०) अल्बेरूनी ने लिखा है कि डोम बाँसुरी बजाते हैं । गाते हैं ।

काश्मीर में डोम अर्थात् डूम भारतीय डोमों के समान जरायमपेशा और केवल स्मशान में काम करने वाले नहीं थे । उनकी अपनी एक जाति थी । मुसलिम धर्म स्वीकार करने पर वे गाँवों के चौकीदार होते थे और हैं । काश्मीरी डूम अपनी वंश परम्परा काश्मीर के राजाओं से जोड़ते हैं । (लारेन्स वैली आफ काश्मीर, पृष्ठ : ३११)

क्षीर स्वामी के अनुसार डोम तथा श्वपच एक ही हैं । अपरार्क ने पराशर का उद्धरण देते हुए लिखा है कि श्वपाक, डोम तथा चाण्डालों का स्तर एक ही है ।

पादटिप्पणी :

३५५ (१) प्रतिहारी : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ५ : १२८ ।

कृतावरोधधम्मिल्लामालान्दोलनकेलिभिः ।
प्रदोषपवनैश्चक्रे शिशिरैर्घ्राणतर्पणम् ॥३५७॥

३५७ : राजरानियों के केशपाशस्थ मालान्दोलन में केलिकारी शीतल रात्रि (प्रदोष) कालीन पवन ने घ्राण तर्पण किया।

जातगीतदिदृक्षाणां गवाक्षावलयो बभुः ।
आसवामोदिभिर्वक्त्रैरवरोधमृगीदृशाम् ॥३५८॥

३५८. गीत देखने की उत्सुक अन्तःपुर की मृगनयनी स्त्रियों के मदिरा गन्ध से युक्त बदनों से गवाक्ष वलय शोभित होने लगे।

हारकङ्कणकेयूरपारिहार्यादिशोभिना ।
स्ववृन्देनानुयातोऽथ प्राविशड्डोम्बगायनः ॥३५९॥

३५९. हार, कंकण केयूर, अन्य पारिहार्यादि से शोभित सुवृन्द से अनुगामी डोम्ब प्रविष्ट हुआ।

हंसी नागलता चास्य सुते ललितलोचने ।
चक्रतुः कौतुकोद्ग्रीवां सभां चित्रार्पितामिव ॥३६०॥

३६०. इसकी दो ललितलोचनी कन्याएँ हंसी एवं नागलता ने (अपने) कौतुक द्वारा उद्ग्रीव (गर्दन ऊपर उठाये) सभा को चित्रार्पित[1] तुल्य कर दिया।

तयोर्विलासवलितैश्चलितापाङ्गविभ्रमैः ।
द्वितीयपुष्पप्रकरो व्यकीर्यत सभांतरे ॥३६१॥

३६१. उन दोनों के विलास वलित तथा चलित, अपांग विभ्रमों ने सभा मध्य, द्वितीय पुष्प प्रकर (समूह) विकीर्ण किया।

गायनैर्जय जीवेति कृतकोलाहलैरभूत् ।
सदः सशब्दं कुर्वद्भिस्तत्तन्नृपगुणग्रहम् ॥३६२॥

३६२. गायनों से 'जय, जीव,' इस प्रकार कोलाहल तथा तत् तत् नृप गुण गान करने वालों से वह सभा शब्दायमान हो गयी थी।

पादटिप्पणी :

३६० (१) चित्रार्पित : कालिदास ने भी चित्रार्पित उपमा का प्रयोग किया है :

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तुर्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे
॥ रघु० : २ : ३१ ॥

पादटिप्पणी :

३६१ (१) श्री स्तीन ने ३६१-३८६ श्लोकों का अनुवाद नहीं दिया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६२ में 'स्तत्तन्नृप' का पाठभेद 'स्तस्तन्नृप' मिलता है।

भुक्तोत्तरोचितोदञ्चत्पञ्चमस्थानचारिणः ।
वंशे रागविशेषस्य दत्ते स्थाने ततः शनैः ।।३६३।।

३६३. आलाप के अनन्तर उचित प्रकार से बढ़ाये (आरोह) जाते पंचमस्थान (पंचम· स्वर) के राग विशेष का वासुरियों द्वारा स्वर मिलाये जाने पर शनै शनैः—

अविक्रियशिरःकम्पभ्रूनेत्रभ्रमशोभितः ।
अभिन्न इव गायन्योर्गीतध्वनिरजृम्भत ।।३६४।।

३६४. विकार रहित, शिर कम्पन, भ्रू नेत्र संचालन से शोभित, गायन करती, दोनों बालाओं की गीत[1] ध्वनि, अभिन्न सदृश समुत्थित हुई ।

अथ ताम्बूलरोमंथत्यागनिश्चलमूर्तिना ।
जातं राजकुरङ्गेण प्रमोदास्पन्ददृष्टिना ।।३६५।।

३६५. ताम्बूल रोमन्थ (चर्वण) के त्याग से, निश्चल मूर्ति राजा की प्रमोद से, अस्पन्दित दृष्टि, कुंरग[1] की तरह हो रही थी ?

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६३ में 'स्थाने' का पाठभेद 'ताने' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६४ में 'गायन्योर्गी' का पाठभेद : 'गायन्त्योर्गी' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६४ (१) गीत : गीत की परिभाषा की गयी है ।

यस्या पादे प्रथमे द्वादशमात्रास्तथा तृतीयेऽपि ।
अष्टादश द्वितीयान्तिमयोर्गीतिर्हि गायकप्रीत्यै ।।

सामवेद में गीतों के अनेक रूप तथा साधन हैं । गायक इच्छानुसार किसी एक का अवलम्बन कर सकता है । गीत वैदिक तथा लौकिक दो प्रकार के होते हैं । शास्त्रीय आधार पर लौकिक गीत के दो विभेद हैं उन्हें मार्ग तथा देशी कहते हैं । शास्त्र निरूपित परम्परा का निर्वाह मार्ग में किया जाता है । इसके लिये नाटच शास्त्र कर्ता भरत को प्रमाण माना गया है । भगवान् शंकर इसके आद्य आचार्य हैं । साहित्य में जिसे गीत कहते हैं उसका सम्बन्ध देशी गीतों के भेद से है । जब कई व्यक्ति मिलकर गाते हैं तो वह समवेत गीत का रूप ले लेता है । चर्चरी और बेलि समवेत गीत के रूप हैं ।

पादटिप्पणी :

३६५. (१) कुरंग : यहाँ पर उपमा भारतीय मृगया खेलने वाले के वाद्य यन्त्र से दी गयी है । अल्बेरूनी लिखता है : "मैं स्वयं साक्षी हूँ कि मृगों के शिकार में वे (भारतीय) अपने हाथ से उन्हें पकड़ लेते हैं । एक हिन्दू ने यहां तक कहा कि, बिना मृग को पकड़े अपने आगे लाकर सीधे भोजनालय में भेज सकता हूँ । जहाँ तक मैं विश्वास करता हूँ । मैंने मालूम किया है कि पशुओं को धीरे-धीरे अनवरत रूप से एक ही स्वर संयोग का अभ्यासी बनाने के उपाय मात्र पर निर्भर है । हमारे यहाँ के लोग भी बारह सिंगे का शिकार करने में जो मृग

गायन्त्यौ भावमालक्ष्य तस्य स्निग्धमगायताम् ।
अधिकोद्रेचिताभिख्यं विलासस्मितविभ्रमैः ॥३६६॥

३६६. गायिका युगल ने उस राजा के भाव[1] को लक्ष्य कर अधिक हस्त उत्थान पूर्वक, विलास[2] स्थित विभ्रम[3] युक्त, स्निग्ध गीत आरम्भ किमा ।

राज्ञस्तयोश्च संसक्तचित्तयोरितरेतरम् ।
दृग्व्यापारैः स्वसंवेद्यैः संलाप इव पप्रथे ॥३६७॥

३६७. राजा एवं संसक्त चित्त, उन दोनों बालाओं के, स्व संवेद्य दृष्टि व्यापारों से, परस्पर संलाप सा आरम्भ हो गया ।

नृपं हारितचित्तं तं विज्ञायैकः प्रियो विटः ।
ततः प्रसङ्गे प्रोवाच प्रीतिवृद्धिकरं वचः ॥३६८॥

३६८. तदनन्तर एक प्रिय विट राजा का चित्त अवहृत जानकर, प्रसंग वश, प्रीति वर्धक बचन कहा—

से अधिक जंगली होता है, यही उपाय करते हैं । वे जब पशुओं को विश्राम करते देखते हैं तो उनके चतुर्दिक् एक घेरा बनाकर घूमने लगते हैं । और साथ ही एक ही स्वर में इतनी देर तक गाते रहते हैं, जबतक कि वे जन्तु उस स्वर के अभ्यासी नहीं हो जाते । तब वे अपने घेरेको अधिक से अधिक संकीर्ण करते जाते हैं । जबतक कि वे पूर्व विश्राम में लेटे हुए उन जन्तुओं के इतने निकट नहीं आ जाते कि वहाँ से उनपर वार किया जा सके । (अल्वेरूनी : १ : १९५ ग्यारहवीं सदी का भारत : पृष्ठ '५४०)

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६६ में 'भावमालक्ष्य' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'आशयं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६६ (१) भाव : साहित्य दर्पण में भाव की परिभाषा की गयी है—

निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमाविक्रिया (३ : ३७)

वास्तव में भाव मानसिक अवस्थाओं का व्यंजक प्रदर्शन है । भावों से रसों की उत्पत्ति होती है । (नाट्य शास्त्र: ६ : ३८)

(२) विलास : विलास की परिभाषा की गयी है :

यथा स्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम् ।
विशेषस्तु विलासः स्यादिष्टसंदर्शनादिना ॥
(साहित्य दर्पण: ३: ९९)

(३) विभ्रम : परिभाषा की गयी है :

क्रोधः स्मितं च कुसुमाभरणादियाञ्चा
तद्वर्जनं च सहसैव विमण्डनं च ॥
आक्षिप्य कान्तवचनं लपनं सखीभि-
र्निष्कारणाश्रितगतेन स विभ्रमः स्यात् ॥
नागर सर्वस्व : १३ : १३.

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६८ में 'ततः' का पाठभेद 'तत्र' मिलता है ।

देव गीतमिदं यातं संप्राप्यैते मनोरमे ।
कर्पूरपारीपतितं मैरेयमिव हारिताम् ।।३६९।।

३६९. 'देव ! यह गीत इन दोनों मनोरमाओं को प्राप्तकर, कर्पूर पारी में निहित, मैरेय सदृश हृदयहारी हो गया है ।

गायन्योर्मार्जितामेतां रागाद्दन्तचतुष्किकाम् ।
अनयोः प्रतिमाव्याजाच्चुम्बतीव निशाकरः ।।३७०।।

३७०. 'गान करती, इन दोनों कामिनियों के मार्जित दन्तचतुष्किका[1] का निशाकर, प्रतिमा के व्याज से मानों राग[2] से चुम्बन कर रहा है ।

करन्यस्तकपोलान्तमुद्गायन्त्यांविमे ध्रुवम् ।
कटाक्षैः कुरुतो व्योम्नि वैमानिकविमोहनम् ।।३७१।।

३७१ 'कपोलान्त न्यस्त कर, गाती ये दोनों निश्चय ही कटाक्षों से, व्योमस्थ (आकाश के) वैमानिकों[1] को मोहित कर रही हैं ।

पाठभेद :

'हारिताम्' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'हरति मन इति हारी तस्य भावः तत्ता तां यातमिति सम्बन्धः' लिखा मिलता है ।

३६९ (१) कर्पूर पारी : पारी का अर्थ पान पात्र होता है । श्री सीता राम पण्डित ने अर्थ 'जुवेल ग्रास' अर्थात् 'रत्नगिलास' किया है । श्री गोपी कृष्ण द्विवेदी ने 'कर्पूर प्याली' रामतेज शास्त्री ने 'कर्पूर की थाली' हरिलाल चट्टोपाध्याय ने 'कर्पूर पात्र' श्री लेले ने 'कापूराच्या पारीत' कर्पूर की माला बनती है । कर्पूर का खिलौना बनता है । कर्पूर उज्ज्वल किंवा गौर वर्ण होता है । मैरेय का रंग हल्का सुनहला होता है । पतला कर्पूर पात्र पार दर्शी होता है जैसे शीशा के पात्र में रखी मैरेय लगती है । गीत की उपमा मैरेय तथा मनोरमाओं की उपमा कर्पूर पारी अर्थात् पात्र से दिया है । यद्यपि 'जुवेल ग्लास' अर्थात् पात्र लिया जा सकता है । परन्तु अच्छा कर्पूर पान पात्र ही अर्थ लगाना होगा ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३७० में 'गान्ययोर्मा' का पाठभेद 'गायन्त्यो', 'रागाद' का 'क्रमाद्' तथा 'चतुष्किकाम्' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'दन्तपंक्तिचतुष्टयं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३७० (१) दन्तचतुष्किका : अर्थ चौघड या दन्तपंक्ति होता है ।

(२) राग : क्षेमेन्द्र ने अस्सी प्रकार के रागों का उल्लेख समयमातृका में किया है जो उस समय प्रचलित थे ।

३७१ (१) वैमानिकः = देवयान आसीन = गगन बिहारी, आधुनिक वायुयानों के आविष्कार के पूर्व भारत, चीन तथा यूनान में वैमानिक सम्बन्धी अनेक कल्पनाएँ प्रचलित थीं । उन्होंने विमान की कल्पना की थी । वायुयान आकाशीय रथ भारतीय परम्परा के अनुसार था । इच्छानुसार आकाशगामी हो जाता था । भगवान् रामचन्द्र लंका से पुष्पक विमान द्वारा आकाशमार्ग से अयोध्या पहुँचे थे । संस्कृत में अनेक नाटक हैं जो विमान एवं उड्डयन का वर्णन एवं उल्लेख करते हैं । कादम्बरी में वैमानिक का

जानत्या स्वाश्रयां चर्चामनयोरेकयावयोः ।
असूयास्मितगर्भोऽयं कटाक्षः पश्य पातितः ॥३७२॥

३७२. 'हम दोनों की चर्चा को अपने से सम्बधित जानकर, देखिये—उनमें से एक असूया-स्मित मिश्रित, (गर्भित) यह कटाक्ष पात कर रही है ।

गायन्त्येकानतमुखी कर्णव्यालोलकुण्डला ।
विपरीतरतोद्रेककृतारम्भेव शोभते ॥३७३॥

३७३. 'नत मुख गान करती, एक लोल कर्ण कुण्डलों वाली, विपरीत रतोद्रेकारम्भ करती सी, शोभित हो रही हे ।[1]

सफलं तस्य तारुण्यमीदृश्यो निर्जने स्त्रियः ।
औत्सुक्याद्विरहे यस्य गायन्त्येवंविधैः स्वरैः ॥३७४॥

३७४. 'उसका तारुण्य सफल है, जिसके विरह में निर्जन स्थान पर, ऐसी स्त्रियां उत्सुकता पूर्वक, इस प्रकार के स्वर में गाती हैं ।

उपपत्तिपरित्यक्तशास्त्रानुष्ठानमोहितैः ।
एकसार्थप्रयातेभ्यः कथमेको विवर्ज्यते ॥३७५॥

३७५. ('युक्ति) प्रमाण रहित, शास्त्रानुष्ठानमोहित जन, एक साथ चलने वाली में से-एक का साथ क्यों त्याग देते हैं ?[1]

उल्लेख किया गया है । वह आकाशीय परिवहन विधि तथा नियमों के उल्लंधन करने के कारण नष्ट हो गया था । वैमानिक का उल्लेख कल्हण (रा० : ५ : ३७१ : ८ : १९७, तथा १२९५) करता है । भारत में विमान शैली के मन्दिरों का निर्माण होता था । उस शैली के अनेक मन्दिर उदयपुर, राजस्थान, मध्य प्रदेश आदि स्थानों में भग्न किंवा अर्धभग्न अवस्था में विद्यमान है । मुसलिम काल में मन्दिर भंग के उन्माद में उत्तरी भारत के प्रायः सभी मन्दिर खण्डित किंवा नष्ट कर दिये गये थे । काश्मीर में तो एक भी प्राचीन मन्दिर अपनी पूर्वावस्था में नहीं बचा है ।

पादटिप्पणी :

३७३ (१) उक्त पद में वात्स्यायन के काम सूत्र के आसन की ओर लक्ष्य किया गया है । (काम सूत्र : २ : ८ ; रा : ८ : २८३५)

गीत गोविन्द में विपरीत रति की उपमा दी है :
उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके ।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके ॥५५॥

पादटिप्पणी :

३७५ (१) मोहित : वक्रोक्ति उक्त पद में है । अस्पृश्य महिला के प्रति स्पर्शास्पर्श का भेद केवल इस लिये नहीं मानना चाहिए कि कुछ लोग जो शास्त्र का अनुकरण कर कुतर्क युक्त दुराग्रह के कारण उसे मानते हैं ।

नेत्रस्य रूपं श्रोत्रस्य ध्वनिं संस्पृशतो न चेत् ।
तदङ्गस्यान्यकान्ताङ्गं स्पृशतो दुष्कृतं कुतः ।।३७६।।

३७६. 'यदि रूप का संस्पर्श करते नेत्र को, ध्वनि का संस्पर्श करने श्रोत्र को, दुष्कृत नहीं लगता, तो अन्य कान्ता का स्पर्श करते अंग को, दुष्कृत कैसे लग सकता है ?'

अभिलाषाङ्कुरः सिक्त इव तैर्विटभाषितैः ।
राज्ञः स्वभावलोलस्य शतशाखत्वमाययौ ।।३७७।।

३७७. स्वभाव चपल राजा के अभिलाषांकुर उन विटों के वचनों से सिक्त होकर शत शाखा युक्त हो गये ।

ये विस्तारितवर्णसंकररुचः संदर्श्य गोत्रान्तकृद्-
बद्धावस्थितिचापलङ्घनमलं पार्श्वे ध्वनन्त्युद्धताः ।
नीयन्ते विपथात्रपातपरतां लब्धोदयैस्तैः क्षणात्
सिंहा वारिधरैरमी च रभसाद्भूपालसिंहा विटैः ।।३७८।।

३७८. वर्णसंकर रुचि विस्तारित करने वाले, उद्धत मेघ[1] या विट[2] इन्द्रधनुष का लङ्घन या कुलक्षयकारी चापल्य दिखाकर, पार्श्व में अत्यधिक ध्वनि करते हैं, उदय प्राप्त कर मेघ क्षण भर में तेजी से सिंहों को तथा विट जन भूपाल सिंहों को कुपथगामी बना देते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३७६ में 'तदङ्गस्या' के लिये पार्श-टिप्पणी में 'त्वगिन्द्रियस्य' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३७८ में 'ये' के लिये 'वारिधराः विटाश्च' तथा 'वर्णसंकर' के लिये 'वर्णाः नीलपीताद्याः ब्राह्मणाद्याश्च,' तथा 'गोत्रान्तकृद्' के लिये 'गोत्रान्तकृति इन्द्रे बद्धा अवस्थितिर्येन स चासौ चापः धनुः इन्द्रचापः तस्य लङ्घनम् । गोत्रान्तकृद्भिः कुलक्षयकारिभिः पापिभिः बद्धा स्थितिर्यस्य । तत् चपलं प्रदर्श्य ध्वनन्ति इति घनं निविडं इति चापलविशेषणं, तथा 'नीयन्ते' का पाठभेद 'गीयन्ते' 'विपथाव' का 'कुपथाव' तथा 'साद्भू' के लिये 'तरसाभू' लिखे मिलते हैं ।

पादटिप्पणी :

३७८. सूक्ति संग्रह का १८९ वाँ श्लोक है ।

(१) मेघ : इन्द्रधनुष की चपलता

(२) विट : कुल नाश की चपलता ।

श्लोक में ये शब्द वारिधर एवं विट के लिये प्रयोग किये गये हैं ।

वर्ण : वर्ण शब्द श्लिष्ट है । वर्ण का अर्थ पीतादि वर्ण तथा ब्राह्मण आदि चार वर्ण होता है ।

इन्द्र की उपमा गोत्रभिद् से दी गयी है । कुल क्षयकारी पापियों की जिसमें स्थिति होती है, वे अपने चापल्य प्रकट करते हैं । कुल क्षय करते हैं ।

उक्त पद में श्लिष्ट शब्दों द्वारा विटों के अनेक कार्यों के विषय उपमा दी गयी है ।

वस्तु क्षणादनुपपन्युपपत्तियुक्तं कृत्वा जडान्यदि विमोहयितुं समर्थाः ।
न स्युर्विटा अथ कुतर्कपथस्थिताश्च नित्योद्वसेषु निरयेषु मृगाश्चरेयुः ।।३७९।।

३७९. क्षण में ही उपपत्ति रहित, वस्तु को उपपत्ति युक्त करके, यदि जड़ता से मोहित करने में समर्थ, कुतर्क पथ स्थित विट न होते, तो निरयों (नरकों) में मृग[1] चरते ।

संतोष्य हारकेयूरकुण्डलैडोम्बमण्डलम् ।
अमार्गत्यागराधेयः शुद्धान्तमगमन्नृपः ।।३८०।।

३८०. अमार्ग (अपात्र) त्याग में राधेय[1] (कर्ण) वह नृप, हार, केयूर, कुण्डलों से डोम मण्डल को संतुष्ट कर, शुद्धान्त (अन्तः पुर) में गया ।

क्रान्तोऽस्याः क्षितिवल्लभोऽयमभिधेत्युर्वीपतेरेकतो
ब्रूतेऽसावतिचण्डताण्डवयुतं डोम्बः स्वनामान्यतः ।
मध्ये यत्किमपीति गीतरचना काव्यं यदेतद्विदो
यल्लक्ष्मीं क्षपयन्ति तान्धिगबुधान्कीर्त्यर्थिनः पार्थिवान् ।।३८१।।

३८१. 'एक तरफ यह क्षितिवल्लभ इसका कान्त है',—इस प्रकार पृथ्वीपति का नाम (डोम) कहता, और दूसरी तरफ वह अत्यन्त चण्ड ताण्डव करते (स्वयं) अपना नाम कहता। इस प्रकार बीच में जो कुछ भी ऊटपटांग गीत रचना को काव्य मानने वाले कवि जिन राजाओं का धन अपहृत करते हैं, उन यशोभिलाषी मूढ़ राजाओं जो धिक्कार है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३७९ में 'नित्योद्वसेषु' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'नित्यशून्येषु' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३७९ सूक्ति संग्रह का १९० वाँ श्लोक है ।

(१) मृग : शून्य हो जाते या उनमें मृग चरने लगते । अथवा उजाड़ हो जाय और उसमें मृग चरने लगे ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३८० में 'अमार्गत्यागः' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'अपात्रत्यागे कर्णः' लिखा गया है।

पादटिप्पणी :

३८० (१) राधेय : कर्ण : कर्ण जो दानी कर्ण के नाम से प्रसिद्ध था उस नाम का प्रयोग न कर राधेय शब्द उसकी जग में हीनता दिखाने के लिये कल्हण ने किया है। कर्ण सूतपुत्र राधेय कहा जाता है। वह अज्ञात कुल गोत्र होने के कारण, राधा द्वारा पालित होने के कारण कुलीन नहीं माना जाता है । महाभारत इस प्रकार के उपाख्यानों से भरा पड़ा है जहाँ कर्ण को अपनी जाति के कारण अपमानित होना पड़ा है। आदि० : ११० : २४ उद्योग : १४१ : ५-६ । वन : ३०९ : १०

पादटिप्पणी :

३८१. सूक्ति संग्रह का १९१ वां श्लोक है ।

(१) 'क्षितिवल्लभोऽयं' के लिये—'अयं क्षितिवल्लभः राजा अस्याः कस्याश्चित्कान्तः अस्यां विषये अयं राजा लग्नः इत्यभिधा कथितमेकतः, 'एकतो' के लिये 'डोम्बेनोच्चारिता उर्वीपतेः अभिधा नामधेयम् एकतः इत्यस्ति इति कथमिति कान्तोऽस्या

वेश्यानुरागस्य महेन्द्रचापधाम्नो हरिद्रारसरञ्जनस्य ।
उपाङ्गगीतस्य च हारिणोऽपि सौन्दर्यमस्थैर्यहतप्रकर्षम् ।।३८२।।

३८२. हृदयहारी वेश्यानुराग, महेन्द्रचाप (इन्द्रधनुष) की कान्ति, हरिद्रारस रंजन, उपांग[1] गीत का सौन्दर्य, अस्थिरता के कारण, हत प्रकर्ष (शक्ति) होता है।

दर्शनाभ्याससंवृद्धचक्षूरागः क्षमापतिः ।
विना श्वपाककन्ये ते न पुनः प्राप निर्वृतिम् ।।३८३।।

३८३, दर्शनाभ्यास से प्रवृद्ध, चक्षुराग क्षमापति, उन दोनों चाण्डाल कन्याओं के बिना पुनः निवृत्ति प्राप्त नहीं किया।

गायन्त्यौ शयनोपान्ते शनैर्विहितचुम्बनम् ।
नृपं रतिसुखाभिज्ञं तं हठात्ते प्रचक्रतुः ।।३८४।।

३८४. शयन के निकट गान करती, कन्याओं ने नृप का चुम्बन कर, उसे हठात् रति सुख भिज्ञ कर दिया।

समागमेन नव्येन द्वयोर्वैयात्यशोभिना ।
चक्रे क्षपितसामर्थ्यः स लज्जोद्वहनाक्षमः ।।३८५।।

३८५. उन दोनों के प्रगल्भताशोभी, अभिनव समागम से क्षीण समर्थ, वह (नृप) लज्जा बहन में असमर्थ हो गया।

रत्यन्तसुलभोद्भेदैर्निःसृतैः स्वेदबिन्दुभिः ।
भाग्योष्मसंक्षयजडं वपुस्तस्य व्यधीयत ।।३८६।।

३८६. अत्यन्त सुलभोद्‌भेद निस्सृत स्वेद बिन्दुओं से उसका शरीर भाग्योष्म संक्षय के कारण जड़ हो गया।

इति' 'सावतिचण्ड' के लिये 'उर्वीपतिः'। 'यत्किमपीति' के लिये यत्किञ्चिदालजालप्रायं लौकिकं गीतं। तस्य रचना एव काव्यं'; 'यदेतद्विदो' के लिये 'एतद् गीति-रचना काव्यं विदन्ति एतद्विदः'; 'यल्लक्ष्मीं': के लिये 'येषां पार्थिवानां लक्ष्मीः यल्लक्ष्मीः तां' तथा 'क्षपयन्ति' के लिये पार्श्वटिप्पणी 'अपहरन्ति' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३८२. सूक्ति संग्रह का १९१ वां श्लोक है।

(१) उपांग : वैदिक साहित्य में चार ग्रन्थ समूह (१) पुराण (२) न्याय (३) मीमांस एवं (४) धर्मशास्त्र ये उपांग माने जाते है। उपांग ढोल जैसे एक वाद्य के लिये भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु यहाँ उपांग का अर्थ निम्न कोटि प्रकार के गीत से है। निम्नकोटि का गीत तभी तक अच्छा लगता है, जब तक वह सुना जाता है। उसके बन्द होते ही उस गीत का आकर्षण किंवा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। उसका प्रभाव स्थायी न होकर क्षणिक एवं अस्थायी होता है।

रागान्धेन कृता हंसी महादेवी महीभुजा ।
भेजे राजवधूमध्ये वालव्यजनवीजनम् ॥३८७॥

३८७. रागान्ध महीभुज द्वारा महादेवी[1] बनायी गयी, हंसी ने राजवधूमध्य, बाल[2] व्यजन का विजन प्राप्त किया ।

तस्या यैर्भुक्तमुच्छिष्टं ते यथा चक्रवर्मणः ।
नृपान्तराणामन्येषामप्यभूवन्सभासदः ॥३८८॥

३८८. उसका उच्छिष्ट जिन लोगों ने खाया, वे जिस प्रकार चक्रवर्मा के सभासद् थे, उसी प्रकार अन्य नृपान्तरों के हुए ।

मन्त्रिणामक्षपटलप्रख्यमुख्याधिकारदा ।
प्रवृद्धिहेतुतां प्राप डोम्बसेवनचक्रिका ॥३८९॥

३८९. अक्षपटल[2] सदृश मुख्याधिकारी पद, डोम्ब सेवन चक्रिका[2], मन्त्रियों के प्रवृद्धि में हेतु हुई ।

मौर्ख्यात्सचिवतां केचिच्छ्वपाका न व्यधुः स्वयम् ।
केचित्त्वकुर्वन्नीतिज्ञा राजकार्याणि मन्त्रिवत् ॥३९०॥

३९०. कतिपय श्वपाक मूर्खता के कारण स्वयं सचिवता नहीं किये और कुछ नीतिज्ञ मन्त्रियों के समान राजकार्य करने लगे ।

पादटिप्पणी :

३८७ (१) महादेवी : रानी = यह गलती से राजा की प्रथम अथवा मुख्य पत्नी मान ली जाती है । मूलतः यह सम्राटों की पत्नी तत्पश्चात् सामन्तों की पत्नी के लिये प्रयुक्त होने लगा ।

(२) वाल व्यजन : कल्हण वहाँ चामर शब्द जो राजचिन्ह का प्रतीक है उसका प्रयोग न कर बाल की हवा प्राप्त किया है। कल्हण ने अपनी मनःस्थिति प्रकट की है । वह चाण्डली या डुम्ब कन्या को राजपद पर चामर आदि राजचिन्ह देना अनुचित तथा धर्मविरुद्ध मानता है ? अतएव उसने चामर शब्द का प्रयोग न कर बाल का पंखा प्रयोग किया है । सभी अनुवादकों ने बाल व्यजन का अनुवाद चमर या चामर किया है । वे कल्हण के आन्तरिक भाव को नहीं समझ सके ।

पादटिप्पणी :

३८८ (१) नृपान्तर : दरबारी तथा राज कृपा प्राप्त इच्छुक लोग केवल चक्रवर्मा के ही काल में जूठा खाने वाले नहीं हुए, परन्तु भविष्य के राजाओं के समय भी यह परम्परा चल निकली । कल्हण तत्कालीन समाज के पतन की ओर संकेत करता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३८९ में 'अक्षपटल' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'गणनार्थं गणनाधिपतिस्थानस्य अक्षपटलस्य अट्टले = इति भाषया नाम शिष्टदेश इति केचित् ।' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३८९ (१) अक्षपटल : काश्मीरी भाषा में 'अट्टल' कहते थे । द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ५ : ३०१ ।

मन्त्रिणस्तस्करा राज्ञी श्वपाकी श्वपचाः प्रियाः ।
किं न लोकोत्तरमभूद्भूपतेश्चक्रवर्मणः ॥३९१॥

३९१. जिस भूपति चक्रवर्मा के चोर मन्त्री, श्वपाकी रानी, स्वपच प्रिय थे, उसका क्या लोकोत्तर नहीं था ?

ऋतुस्नातार्तवाङ्कानि श्वपाकी स्वांशुकान्यदात् ।
तदाच्छादनदृप्तेच्छा मन्त्रिणः प्राविशन्सभाम् ॥३९२॥

३९२. ऋतु स्नाता, श्वपाकी आर्तवांकित अपने अंशुकों को देती थी, जिन्हें धारण कर, मन्त्री सगर्व सभा प्रवेश करते थे ।

कैश्चित्क्षितिभुजा वैरमङ्गीकृत्यापि तत्क्षणम् ।
यैर्नाशि श्वपचोच्छिष्टं तेऽभूवन्सोमपैः समाः ॥३९३॥

३९३. कतिपय लोग, जिन्होंने क्षितिभुज से बैर अंगीकार करके भी, उस समय श्वपचो-
-च्छिष्ट भोजन नहीं किया वे सोमपायी तुल्य हुए ।

मण्डलेऽस्मिन्प्रभावोग्रा न देवा न्यवसन्ध्रुवम् ।
तद्वेश्मानि तदा नो चेच्छ्वपाकी प्राविशेत्कथम् ॥३९४॥

३९४. उस समय इस मण्डल में प्रभावशाली देव, निश्चय ही निवास नहीं करते थे, अन्यथा श्वपाकी उनके वेश्म[1] में कैसे प्रवेश करती ?

---

(२) चक्रिका : दुरभिसन्धि ।

पादटिप्पणो :

३९१ सूक्ति संग्रह का १९२ वां श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३९२ में 'र्तवा' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'रंजः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३९३ (१) उच्छिष्ट भोजन : स्मृतियों ने बचे हुए अर्थात् उच्छिष्ट खाद्य पदार्थ का भोजन निषेध किया है । (मनुः ४ : २११, विष्णु : २ : १०)

(२) सामप = जिन लोगों ने राजा के कोप की चिन्ता न करते हुए उच्छिष्ट भोजन नहीं किया, वे सोमपान करने वाले ऋत्विजों से कम श्रेष्ठ नहीं थे । कल्हण ने उनकी तुलना सोमपान करने वाले पवित्र ऋत्विजों से की है ।

इस प्रकार के मनुष्यों के विषय में मनु ने कहा है :

यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः ।
स पर्यायेण यातीमान् नरकानेक विंशतम्
(मु० : ४ : ८)

पादटिप्पणो :

३९४ (१) देव वेश्म : कल्हण के इस वर्णन से प्रकट होता है कि उसके समय डोम्ब तथा अन्त्यजों का मन्दिर प्रवेश निषेध था, क्योंकि अस्पृश्य के प्रवेश एवं उनके स्पर्श से देव प्रतिमा अशुद्ध हो जाती थी । और उसमें देवता का निवास लोप हो जाता था । हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन के समय काशी विश्वनाथ के मन्दिर में प्रवेश के पूर्व ब्राह्मणों ने जल कुम्भ में देवता के प्राण उतार लिये थे । काशी विश्वनाथ की दूसरी स्थापना की गयी परन्तु वह

तां रणस्वामिनं द्रष्टुं तिलद्वादश्यहे गताम् ।
सामन्तेभ्यः साभिमाना नान्वयुर्डामराः परम् ॥३९५॥

३९५. सामन्तों से भी अधिक[1] स्वाभिमानी केवल डामरों ने, तिल द्वादशी[2] के दिन, रण स्वामी[3] के दर्शन हेतु गयी, (हंसी) का अनुगमन नहीं किया ।

राजकौटुम्ब्यदृप्तानां डोम्बानां निर्गता मुखात् ।
राज्ञामिवाज्ञा दुर्लङ्घ्या न केनाप्युदलङ्घ्यत ॥३९६॥

३९५. राज कौटुम्ब से दृप्त (अहंकारी) डोम्बों के मुख से निर्गत, राजाज्ञा सदृश दुर्लंघ्य आज्ञा का, उल्लंघन कोई नहीं करता था ।

राज्ञा प्रदत्ते रङ्गाय हेलुग्रामेऽग्रहारवत् ।
लिलेख पट्टोपाध्यायो न यदा दानपट्टकम् ॥३९७॥

३९७. राजा द्वारा रंग को अग्रहार सदृश हेलू ग्राम प्रदान किये जाने पर, जब पट्टोपाध्याय[1] ने दान पट्ट नहीं लिखा—

विश्वनाथ मन्दिर न तो सर्व प्रिय हुआ और न चल सका ।

इसी प्रकार की एक दूसरी घटना महाराष्ट्र के प्रसिद्ध विट्ठल मन्दिर पण्ढरपुर के सम्बन्ध में हुई । आज से बीस वर्ष पूर्व हरिजन मन्दिर प्रवेश के समय भगवान् विट्ठल का प्राण एक ताम्रपात्र में रख लिया गया । मन्दिर की मूर्ति प्राण विहीन होने के कारण पत्थर मात्र मान ली गयी और हरिजन प्रवेश के कारण विट्ठल भगवान् को मूर्ति अपवित्र नहीं हुई क्योंकि उसमें प्राण था ही नहीं । यात्रियों तथा सनातनियों से कहा गया वे पात्र की पूजा किया करें । कुछ दिनों तक तो पुजारियों को कुछ धन प्राप्त होता रहा परन्तु वह कम होता गया और प्राण न रहते हुए भी मन्दिर में दर्शनार्थ दर्शनार्थी जाने लगे । मन्दिर बहिष्कार आन्दोलन असफल हो गया । (डेलीस्टेट्स मैन : १९. ९. ७१)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३९५ में 'परम्' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'केवलं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३९५ (१) परम् : इस शब्द का यहाँ भावार्थ 'केवल' होगा ।

(२) तिल द्वादशी : यह पर्व माघ कृष्ण द्वादशी को मनाया जाता है, जब तिल द्वारा पूजा की जाती है । नीलमत पुराण तिल द्वादशी का उल्लेख करता है । उस दिन ६ प्रकार से तिल द्वारा पर्व संस्कार किया जाता है । इसी से काश्मीरी शब्द इस पर्व के लिये 'सत्तिला' है ।

ब्रह्म पुराण में तिल द्वादशी का माहात्म्य दिया गया है । यह व्रत षट्तिला के समान है । इसमें तिल जल से स्नान किया जाता है । तिल से विष्णु का पूजन किया जाता है । तिल तेल का दीपक जलाया जाता है । तिलों का नैवेद्य लगता है । तिल का हवन होता है। तिल का दान तथा तिल का भोजन किया जाता है। इस व्रत के कारण स्वाभाविक आगन्तुक, कायान्तर एवं सांसर्गिक सम्पूर्ण व्याधि दूर होती और सुख मिलता है । (द्रष्टव्य : ऋ० : १० : ९०,)

(३) रण स्वामी : रणस्वामी मन्दिर के लिये द्रष्टव्य टिप्पणी (रा० : ३ : ४५४)

पाठभेद :

श्लोक सं० ३९७ में 'हेलु' का 'हलु' तथा पार्श्व टिप्पणी में 'रङ्गस्य हेलुः दत्ता' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३९७ (१) पट्टोपाध्याय : आज कल के

तदाक्षपटलं गत्वा रङ्गः कोपात्तमब्रवीत् ।
रङ्गस्स हेलु दिण्णेति दासीसुत न लिख्यते ।।३९८।।

३९८. तब अक्षपटल जाकर, क्रोध पूर्वक रंग ने उससे कहा,—'दासी पुत्र ! रंग को हेलू[1] (ग्राम) दिया गया' ऐसा क्यों नहीं लिखते ?

लिलेख सोऽथ संत्रासाद्रङ्गभ्रूभङ्गतर्जितः ।
को न राजनि दुर्वृत्ते भवेन्नीतिव्यतिक्रमः ।।३९९।।

३९९. रंग के भ्रूभंग से तर्जित, उसने संत्रास से (लेख) लिख दिया। राजा के दुर्वृत्त होने पर, कौन नीति व्यतिक्रम नहीं हो जाती ?

अन्त्यागमनपापस्य पापः पृच्छन्स निष्कृतिम् ।
विटैर्हास्यावहान्येव प्रायश्चित्तानि कारितः ।।४००।।

४००. चाण्डाली गमन जन्य पाप का प्रायश्चित्त पूछने पर, उन विटों ने उस पापी (राजा) से हास्यास्पद प्रायश्चित्त कराये।

हिमेनैव हिमं शम्येद्दुष्कृतेनैव दुष्कृतम् ।
सोऽनुशिष्टो विटैरेवं दधत्पामरसारताम् ।।४०१।।

४०१. 'हिम से ही हिम[1] एवं दुष्कृत से ही दुष्कृत प्रशमित होता है'—इस प्रकार विटों[2] द्वारा अनुशासित होकर, उसने पामर सारता ग्रहण किया।

तरह दस्तावेज लेखक अथवा अरायजनवीस किंवा कातिब के समान थे। इस वर्णन से स्पष्ट है कि स्पृश्यों के प्रति किस प्रकार की भावना उस समय थी। वे अन्त्यज के साथ ही सामाजिक जीवन में कोई भाग भी नहीं ले सकते थे। पट्टोपाध्याय का राज्यादेश के होते हुए भी दानपत्र न लिखना सामाजिक बहिष्कार की ओर संकेत करता है। राजा तथा उसके साथियों को जो डोम के समर्थक थे प्रतीत होता है कि कुलीन वर्ग ने सामाजिक बहिष्कार तथा तत्सम्बम्धी राज्या-देशों का उल्लंघन आरम्भ कर दिया था।

पादटिप्पणी :

३९८ (१) हेलू : शुद्ध संस्कृत शब्द 'रंगस्य हेलू दिण्णेति' का 'रंगस्य हेलुः दत्ता' होगा। डोम को असंस्कृत एवं हीन प्रमाणित करने के लिये असंस्कृत शब्द का प्रयोग किया गया है। काश्मीरी शब्द 'रंगस हेलू द्युन' होगा। कल्हण ने तत्कालीन सर्वसाधारण प्रचलित शब्द को इस श्लोक में रख दिया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३९९ में 'को' का पाठभेद 'के', तथा 'भवेन्नी' का 'भवन्ती' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४०१ में 'दधत्पामरसारताम्' का पाठभेद 'दधर्षापरमातरमित्यन्यादर्शे' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४०१ (१) हिम : 'सिन छु गालान प्रानिस सिनस' अर्थात् 'ताजा बर्फ पुराने बर्फ को पिघला देता है', इस उक्ति को कल्हण ने उक्त पद में लिखा है।

(२) विट : द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ४ : ६६३ क्षेमेन्द्र : देशोपदेश : ५ : १—२८।

पवित्रास्पर्शतोऽस्पृश्यास्पशपापं जिहीर्षुणा ।
तेनादूष्यत विप्रस्य योषिन्मासोपवासिनः ॥४०२॥

४०२. पवित्रा के स्पर्श से अपवित्रता स्पर्श (जन्य) पाप दूर करने की इच्छा से, उस (राजा) ने मासोपवासी (एक मास उपवास करती) विप्र की पत्नी को दूषित किया ।

ततोऽपि पापिनोऽभूवन्केऽपि तस्मिन्क्षणे द्विजाः ।
यस्मादप्यग्रहारान्ये जगृहुर्गृहभोजिनः ॥४०३॥

४०३. उससे भी अधिक पापी एवं तद्गृह भोजी, कतिपय द्विज उस समय थे, जिन्होंने उससे भी अग्रहारों को लिया ।

चक्रे चक्रमठं सोऽपि पापः पाशुपताश्रयम् ।
तस्मिन्हतेऽर्धनिष्पन्नं तद्वधूर्यमयोजयत् ॥४०४॥

४०४. उस पापी ने भी पाशुपतों[1] के आश्रय हेतु चक्र मठ[2] स्थापित किया । उसके मरने पर अर्ध निष्पन्न जिस मठ को, उसकी स्त्री ने पूर्ण किया ।

पूर्वोपकारान्विस्मृत्य डामरान्स निरागसः ।
नृपतिः श्वपचाकामी विश्वस्तांश्छद्मनाऽवधीत् ॥४०५॥

४०५. वह श्वपाकी पति नृपति, पूर्व कृत उपकारों को भूलकर, निरपराध एवं विश्वस्त डामरों का छल पूर्वक बध कर दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४०४ में 'र्यमयो का पाठभेद 'र्यदयो' तथा पार्श्व टिप्पणी में 'मठं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४०४ (१) पाशुपत : शिव द्वारा कथित तन्त्रशास्त्र है । अथर्व वेद का एक उपनिषद् है । पाशुपत दर्शन को नकुलीश पाशुपत दर्शन कहते हैं । इस दर्शन में प्राणि मात्र की संज्ञा पशु से दी गयी है । प्राणियों के अधीश्वर शिव हैं । पशुपति कार्यों के कारण हैं । मुक्ति का वर्गीकरण किया गया है । दुःखों का अन्त मुक्ति है । निवृति मुक्ति परमेश्वर प्राप्ति मुक्ति है । परमैश्वर्य मुक्ति है । दृक् शक्ति द्वारा विषयों का ज्ञान होता है, वस्तुओं का ज्ञान होता है । ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् क्रिया शक्ति सिद्ध होती है । प्रत्यक्ष, आगम तथा अनुमान तीनों प्रमाणों को मान्यता वह दर्शन देता है । धमर्थि साधक कार्य को विधि कहा जाता है । विधि की प्राप्ति व्रत और द्वार द्वारा होती है । भस्मस्नान, भस्मशयन, जप, प्रदक्षिणा उपहार आदि व्रत हैं । शिव नाम के साथ नृत्य, संगीतादि उपहार हैं । द्वार में, क्राथन, स्पंदन, मंदन, शृंगारण, अवितत्करण, तथा अवितद् भाषण है । सुप्त न होने पर भी सुप्त तुल्य लक्षण प्रदर्शन को क्राथन कहते हैं । भगवान् पशुपति का मन्दिर काठमाण्डू में है । यहाँ की यात्रा मैं कर चुका हूँ । उस समय मैं तत्कालीन ब्रिटिश सरकार द्वारा लोकतन्त्रीय संविधान बनाने के लिये भेजा गया था । द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : १ : १७ तथा : ब्रह्म० : २ : २७ ११६, १२८, ३ : ३२ : ५ वायु : १ : १३५; ३० : २९५, मत्स्य : १८२ : १२

(२) चक्रमठ : कल्हण ने इस मठ का पुनः कहीं उल्लेख नहीं किया है । यह मठ किस स्थान पर था पता नहीं चलता ।

हन्तुं व्याजेन विश्वस्ताः केचिड्डामरतस्कराः ।
तस्थुस्तस्यान्तिके द्रोहच्छिद्रानेहःप्रतीक्षिणः ॥४०६॥

४०६. द्रोहावसर की प्रतीक्षा करने वाले, विश्वस्त कतिपय डामर-तस्कर, व्याजपूर्वक (उसे) मारने के लिये, उसके समीप स्थित (कटिबद्ध) हो गये ।

श्वपाकीशयनावासासन्नावस्करमन्दिरे ।
शौचस्थितं तं निःशस्त्रं ते रात्रौ प्रापुरेकदा ॥४०७॥

४०७. एक समय रात्रि में उन (डामरों) ने श्वपाकी शयनागार समीपवर्ती शौच गृह में शौच हेतु स्थित, निःशस्त्र उस (राजा) को पाया ।

अथ तः प्राप्तसमयैरकस्मात्तस्य सर्वतः ।
क्षिप्रं न्यपात्यताशेषशातशस्त्रपरंपरा ॥४०८॥

४०८. समय (अवसर) पाकर, उन लोगों ने अकस्मात् शीघ्र उसको चारों ओर तीक्ष्ण[1] शस्त्र परम्परा निपात किया ।

सुप्तस्तटाद्ध्रदे भ्रष्ट इव निद्रालसेक्षणः ।
प्रबुद्धः शस्त्रपातैः स व्यमुचद्भैरवान् रवान् ॥४०९॥

४०९. तट से, तड़ाग में गिरे प्रसुप्त सदृश, निद्रालसेक्षण[1] वह, शस्त्रपातों से प्रबुद्ध होकर, भैरव रव किया ।

निःशस्त्रः शस्त्रमन्विष्यन्क्षरत्क्षतजनिर्झरः ।
अनुद्रुतोऽरिभिर्धावञ्छय्यावेश्म विवेश तत् ॥४१०॥

४१०. जिसके घाव से रक्त क्षरित हो रहे थे; वह शस्त्र अन्वेषण करने, शय्या वेश्म में प्रवेश किया, और उसके पीछे शत्रु भी दौड़े ।

अप्राप्तहेतिं क्रन्दन्त्या श्वपाक्यालिङ्गिताङ्गकम् ।
तत्कुचोत्सङ्गलग्नाङ्गं जघ्नुस्तेऽनुप्रविश्य तम् ॥४११॥

४११. शस्त्र न प्राप्तकर, क्रन्दन करती श्वपाकी से आलिंगित एवं उसके कुचोत्संग से संलग्नांग, उसे उन लोगों ने अनुप्रवेश[1] कर, मार डाला ।

पादटिप्पणी :

४०८ (१) तीक्षण का अर्थ यहाँ बधिकों से लगाना चाहिये । जोनराज ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है । शाहमीर ने कोटारानी की हत्या के लिये तीक्ष्णों को दे दिया था ।

पादटिप्पणी :

४०० (१) निद्रालसेक्षण : निद्रा द्वारा अलसाये नेत्रों वाला राजा से यहाँ अर्थ अभिप्रेत है ।

पादटिप्पणी :

४११ (१) अनुप्रवेश : राजा प्राण भय से रक्षा

स्वैरेव प्रेरिता दारैस्ते तस्य नृपतेः किल।
मुमूर्षोर्जानुनी स्वैरं शिलया समचूर्णयन् ॥४१२॥

४१२. उन लोगों ने राजदाराओं से प्रेरित होकर मुमूषु उस नृप के दोनों जानु को शिला से संचूर्णित कर दिया।

त्रयोदशाब्दे ज्यैष्ठस्य शुक्लाष्टम्यां क्षपाक्षणे।
श्वपाकभोग्यः स श्वेवावस्करे तस्करैर्हतः ॥४१३॥

४१३. संवत् तेरह ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी को रात्रि काल में श्वपाक भोग्य वह (राजा) श्वान सदृश अवस्कर में तस्करों द्वारा मारा गया।

हेतु कातर होकर भागा। वह श्वपाकी से लिपट गया। वह श्वपाकी से इस कातर स्थिति में उसी सहायता की अपेक्षा रखता था जैसे डूबता तिनके का सहारा लेता है। उसने सोचा होगा। वह प्रहार से बच जायगा। राजा इस भयंकर मरणासन्न स्थिति में प्राण रक्षा की आशा प्रिया श्वपाकी से ही लगाया था। जिस प्रकार एक शिशु भयभीत होकर अपनी मां से लिपट जाता है, उसी प्रकार राजा श्वपाकी से लिपट गया था। उसी में छिप जाना चाहता था। हत्यारों को राजा की इस करुण स्थिति पर करुणा नहीं आयी। भागते राजा का शयन कक्ष में प्रवेश कर निर्मम हत्या कर दिये।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४१२ में 'शिलया' का पाठभेद 'शिलायां' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४१२ (१) चूर्ण : कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है। राजा की अन्य रानियाँ, श्वपाकी के राज प्रासाद में रख लेने के कारण, राजा से रुष्ट थीं। प्रतिहिंसा भावना से जल उठी थीं। उस प्रतिहिंसाग्नि में अपने सुहाग का भी ध्यान नहीं किया। पति की अत्यन्त क्रूर हत्या करने के लिये हत्यारों को प्रेरित करने लगी थीं। मृत्यु के पश्चात् भी महादेव स्वरूप राजा के जानुओं को पत्थर से कूट कूट कर तोड़ दिया गया। क्रूरता की सभी सीमाएँ पार कर दी गयीं। राजा के लिये राजप्रासाद में किसी की सहानुभूति शेष नहीं रह गयी थी। विश्व में इस प्रकार लोम-हर्षण नृशंस हत्या का कम उदाहरण मिलता है। राजा अपनी ही रानियों किंवा पत्नियों की प्रतिहिंसा का शिकार बन गया। राजा के जिन जानुओं पर रानियाँ बैठी थीं, स्पर्श सुख से प्रसन्न हुई थीं, उन्हें ही श्वपाकी की सम्पत्ति समझ कर, उन्हें नष्ट होते देखकर प्रसन्न हो उठीं कल्हण। प्रतिहिंसा की सौतियाँ डाह का सजीव चित्रण किया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४१३ में 'ज्यैष्ठस्य' का पाठ भेद 'ज्येष्ठस्य' मिलता।

पादटिप्पणी :

४१३ (१) तेरह : सप्तर्षि ४०१३ = सन् ९३७ ई० = विक्रमी ९९३ = शक ८५८; कलि गताब्द ४०३८ ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी।

(२) अवस्कर : विष्टा = मल। राजा पर आक्रमण तस्करों अथवा हत्याकारियों ने अकस्मात् शौचगृह में किया था। राजा सम्भवतः मलमूत्र पूर्णतया त्याग नहीं सका का, शौचगृह में मल मूत्र त्याग ही कर रहा था। अकस्मात् उसपर आक्रमण कर दिया गया। अतएव उसके शरीर में मल मूत्र लगा ही था। शरीर अपवित्र था। उसी अशुचि अवस्था में उसकी जीवन लीला समाप्त कर दी गयी थी। द्रष्टव्य: क्षेमेन्द्र : नर्ममाला : ३ : ७४ : ७१

उन्मत्तावन्ति : (सन् ९३७-९३९)

उन्मत्तावन्तिनामाथ पार्थसूनुर्दुराशयः ।
अभ्यषिच्यत वैधेयैः सचिवैः शर्वटादिभिः ।।४१४।।

४१४. शर्वदादि मूर्ख सचिवों ने पार्थ के दुराशय पुत्र उन्मत्तावन्ति को अभिषिक्त किया ।

श्वपाकीकामुके पापे निहिते निशि तस्करैः ।
प्रजानां पाप्मना सोऽभूत्पापात्पापतरो नृपः ।।४१५।।

४१५. पापी श्वपाकीकामुक के रात्रि में तस्करों द्वारा मारे जाने पर प्रजाओं के पाप के कारण पापी से भी पापी वह राजा हो गया ।

स्थगिता तत्कथापापस्पर्शभीत्या सरस्वती ।
कथंचित्त्रस्नुरश्वेव सेयं प्रस्थाप्यते मया ।।४१६।।

४१६. उसकी कथा के पाप स्पर्श भय से सरस्वती स्थगित हो गयी है। उसे मैं त्रस्नुरश्वा (भयाकुल घोड़ी) सदृश कथंचित् अग्रसर कर रहा हूँ ।

आसीत्पितृकुलं तस्य भक्ष्यं दुर्नृपरक्षसः ।
और्वाभिधस्य हव्याशविशेषस्येव जीवनम् ।।४१७।।

४१७. जिस प्रकार (जलोत्पन्न) वड़वाग्नि[1] का भक्ष्य जल होता है, उसी प्रकार पितृकुल, उस दुष्ट राक्षस (राजा) का भक्ष्य हुआ ।

पादटिप्पणी :

४१४. सर्वश्री कल्हण अभिषेक काल ४०१३ ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी; दत्त कलि ४०३८=शक ८५९=लौकिक ४०१३ = सन् ९३७ ई०, स्तीन लौकिक ४०१३ ज्येष्ठ सुदी ८ = सन् ९३७ ई०; सी० एम० डफ० सन् ९३७ ई०; विल्सन लौकिक संवत् ४०११ वर्ष १० मास = सन् ९५७ ई० ७ मास; एस० पी० पण्डित सन् ९३८ ई०; ट्रॉयर सन् ९३९ ई० ११ मास = लौ० ४०१३; डाइनांस्टिक हिस्टरी आफ इण्डिया, सन् ९३७ ई०; त्रिवेद सन् ९३२ ई० शक ८५४; कनिंघम लौ० ४०१३ सन् ९३६ ई० ८ मास; पीर हसन विक्रमी संवत् १००४, तथा राज्य काल सर्व श्री ट्रोयर एवं दत्त २ वर्ष, विलसन २ वर्ष २ मास. पण्डित २ वर्ष ७ दिन; पीरहसन १ वर्ष १ मास, तथा आईने अकबरी २ वर्ष २ मास देती हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल २ वर्ष दिया गया है।

उन्मत्तावन्ति वर्मा की एक ताम्र-मुद्रा मिली हैं । मुद्रा के मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी 'श्री' और पृष्ठ भाग पर 'उन्मा' टंकणित हैं ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९३७ ई० वुतुंग (द्वितीय) ने राजमल्ल को पश्चिमी गंग से राजच्युत किया । स्वयं राजा बन गया । उद्योतन की मृत्यु । सन् ९३८ ई० अमीर नासिर (द्वितीय) समनानी ने मुहम्मद पुत्र अल-जिहानी को वजीर नियुक्त किया । सन् ९३९ ई० उन्मत्तावन्ति काश्मीर राज की आषाढ़ मास में मृत्यु ।

पादटिप्पणी :

४१६. सूक्ति संग्रह का १९३ वां श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

४१७ (१) बड़वाग्नि : समुद्र में रहने वाली अग्नि । कालिका पुराण के अनुसार कामदेव को भस्म करने के लिये शिव के क्रोध से अग्नि उत्पन्न हुई

तस्यासंष्टक्कराघातसटांकारकरोटिकाः ।
घ्राणस्कन्दादिवाद्यज्ञाः सभायां मुख्यमन्त्रिणः ।।४१८।।

४१८. टक्कराघात से चुटकी बजाने वाले, घ्राण, (नाक) कन्धा (काँख) आदि वाद्य को जानने वाले, मुख्य मन्त्री इसकी सभा में थे ।

तेऽमात्याश्चारणत्वेन निर्लज्जास्तमरञ्जयन् ।
कालान्तरेण यैरेव भूमिपालैर्भविष्यते ।।४१९।।

४१९. निर्लज्ज वे अमात्य चारण[1] क्रिया द्वारा उसे प्रसन्न करते थे, जो कि कालान्तर में भूमिपाल होंगे ।

पर्वगुप्त का उत्थान :

पर्वगुप्तोऽभवत्तस्य सर्वेभ्योऽप्यधिकं प्रियः ।
आस्थाने नर्तनं कुर्वन्नपाकृतकटीपटः ।।४२०।।

४२० कटीपट दूर (नग्न (हो) कर आस्थान[1] में नर्तन कर्ता पर्वगुप्त उसका सबसे अधिक प्रिय हो गया ।

थी । उसे लोक कल्याणार्थ ब्रह्मा ने समुद्र को दे दिया था । इस अग्नि को बड़वामुख भी कहते हैं । दूसरा मत है कि और्व महर्षिने क्रोध पूर्वक समस्त लोकों के विनाश का संकल्प कर लिया । उनके पितरों ने उन्हें बहुत समझाया और अग्नि समुद्र में स्थापित करने के लिये कहा । महर्षि ने उसे समुद्र में डाल दिया । वही अग्नि घोड़ी की मुखाकृति बनाकर समुद्र का जल पीती रहती है । घोड़ी के समान मुख होने के कारण इसका नाम बड़वाग्नि रखा गया है । (आदि० : २१ : १६; १७९ २१-२२, वन : २१९ : २० सौप्तिक : १८ : २१ : रामा० किष्कि० : ४ : ४०, ४६-४७)

पादटिप्पणी :

४१८ (१) टक्करा : उक्त पद में टक्करा व्यक्तिवाचक संज्ञा नहीं है । काश्मीरी पाण्डुलिपियों में स्कन्द शब्द स्कन्ध जिसका अर्थ कन्धा होता है प्रयोग किया गया है । अनुमान है इसका एक अर्थ नाक छिड़कना भी होता था ।

पादटिप्पणी :

४१९ (१) चारण : मनु (१२ : १४) के अनुसार चारण घूमने फिरने वाला, नट, गवैया, नर्तक, भाड़, भाट होते हैं । शकुन्तला (२ : १४) में उन्हें स्वर्गीय गायक एवं गन्धर्व की संज्ञा दी गयी है । (भा० : २ : १ : ३६ : ६ : १४; ४ : २० : ३५ ५ : १ : ८ ब्रह्म : २ : ५ : १०, २३ : ३ : ५ : १६ : १० : ३७, वायु : २३ : १९१; ३४ : २१; ३५ : १९, ५८; ४७ : ४६ ७२ : ३५; अथर्ववेद में चारण विद्या का वर्णन मिलता है । आजकल राजस्थान की वह एक जाति है । उन्हें बन्दीजन, वंश कीर्ति गायक एवं भाट कहते हैं । इनका व्यवसाय राजाओं का गुण वर्णन तथा गाना बजाना है । कल्हण का अभिप्राय मन्त्रियों के उन कार्यों से है जो अपना कार्य त्याग कर राजा का मनोविनोद आदि करते थे । पंच महल तथा थाना क्षेत्र में चारणों द्वारा प्रयुक्त बोली को चारिणी कहते हैं । द्रष्टव्य : पाद टिप्पणी रा० : ४ : ६६२

पादटिप्पणी :

४२० (१) आस्थान = दरबार = सभागृह =

आ तन्त्रिविप्लवाद्दृष्ट्वा कीटप्रायान्महीपतीन् ।
पर्वगुप्तः सर्वदाऽभूद्राज्यावाप्तिकृतोद्यमः ॥४२१॥

४२१. तन्त्रि विप्लव के समय से महीपतियों को कीट प्राय देखकर पर्वगुप्त सर्वदा राज्य प्राप्ति हेतु उद्यम कर रहा था ।

तदा निगूढराज्येच्छः सख्यं मुख्यैः स मन्त्रिभिः ।
पीतकोशैः प्रविदधे पञ्चभिर्भूभटादिभिः ॥४२२॥

४२२. उस समय राज्य की इच्छा गुप्त रखकर, उसने कोश पान पूर्वक भूभट आदि पांच मुख्य मन्त्रियों के साथ मित्रता की ।

भूभटः शर्वटश्छोजः कुमुदः सोऽमृताकरः ।
पर्वगुप्तेन संबन्धं चक्रिरे कोशपीथिनः ॥४२३॥

४२३. भूभट, शर्वट, छोज, कुमुद और अमृताकर, कोशपीथियों ने पर्वगुप्त के साथ सम्बन्ध किया ।

गवाक्षासरसि प्राप्तश्रीजलोवागलद्द्विजः ।
संग्रामडामरगृहे यो रक्कः ख्यातपौरुषः ॥४२४॥

४२४. संग्राम डामर के गृह (स्थित) ख्यात पौरुष[1], विद्वान् द्विज रक्क ने गवाक्षासर[2] सलिल में जिस श्री[3] को प्राप्त किया ।

सभाभवन = द्रष्टव्यः क्षेमेन्द्रः नर्ममाला : २ : ११७, १२०, १२१, १२९, समयमातृक : ६ : २६,

पादटिप्पणो :

४२२ (१) कोशपान : द्रष्टव्यः पादटिप्पणीः रा० : ४ : ५५८, ६ : २११, २३८ तथा ५ : ३२६,

पादटिप्पणी :

४२४ (१) जलोवागलद : एक मत है कि बागल ब्राह्मणों की एक उपजाति थी । श्री स्तीन का मत है कि 'जलोऽबालगद' शब्द होना चाहिये जिसका अर्थ निवास अथवा रहना होता है । द्रष्टव्य रा० : ७ : १२३२

(२) गवाक्षासर : यह सर कहाँ पर है तथा किस सर का नाम गवाक्षासर है निश्चित कुछ कहना कठिन है । नीलमत पुराण में एक देवी गवाक्षी का उल्लेख तीर्थों के प्रसंग में किया गया है । नीलमत से भी पता नहीं चलता कि इस सर का क्या स्थान है तथा किस सर किंवा सरोवर के लिये इसका उल्लेख किया गया है । गवाक्षासर के समीप ही गवाक्ष देवी के स्थान होने की अधिक सम्भावना की जा सकती है ।

भद्रेश्वरीं गौतमेशीं देवीं कालशिलामपि ।
तथोद्योगश्रियं नाम्नीं गवाक्षीम् चण्डिकामपि ॥

—नी० 1014 = ११

(१) श्री : भेदगिरि में सरस्वती के अवतरण समान यहाँ भी गवाक्षासर से श्री देवी के अवतरण की कल्पना की गयी है । (द्रष्टव्य रा० : १ : ३५)

पदादिमात्रो भूपेन दृष्टशौर्यः स संयुगे।
महोदरो महाकायः प्रापितो मुख्यमन्त्रिताम् ॥४२५॥

४२५. संग्राम में उस महोदर महाकाय पदाति मात्र के शौर्य को देखकर, भूपति ने मुख्य-मन्त्रित्व प्रदान किया।

यादृशी तेन ददृशे देवी श्रीः सरसोऽन्तरे।
तादृग्रक्कजयादेवीत्यभिधानेन निर्ममे ॥४२६॥

४२६. जिस प्रकार की श्री देवी को सर में देखा था, उस प्रकार—'रक्क जयादेवी' इस नाम से प्रतिमा निर्मित किया।

राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा धूर्तेनापजिहीर्षुणा।
प्रेरितः पर्वगुप्तेन भूभृच्चक्रे कुलक्षयम् ॥४२७॥

४२७. राज्य निष्कंटक कर अपहरण करने का अभिलाषी, धूर्त पर्वगुप्त द्वारा प्रेरित, भूपति ने कुल क्षय किया।

पार्थ की हत्या

तेन लुण्ठितसर्वस्वः पार्थस्तस्थौ कलत्रवान्।
श्रीजयेन्द्रविहारान्तः श्रमणैर्दत्तभोजनः ॥४२८॥

४२८. उसके सर्वस्व लूट लेने पर सपत्नीक पार्थ श्रमणों से भोजन प्राप्त कर, जयेन्द्र बिहार[1] में रहने लगा।

शिशूञ्शंकरवर्मादीन्भ्रातृन्द्वारान्निरोध्य सः।
तत्र स्थितानानशनैरुत्क्रान्तासूनकारयत् ॥४२९॥

४२९. उसने वहाँ स्थित शंकरवर्मा आदि शिशु भ्राताओं को द्वार के अन्दर निरुद्ध (बन्दा) कर अनशनों द्वारा गतप्राण कर दिया।

उद्यतः पितरं तन्तुं मन्त्रिणोऽनुमतप्रदान्।
बद्धपट्टान्व्यधाद्बद्धनिगडानितरान्पुनः ॥४३०॥

४३०. पितृहत्या के लिये उद्यत उसने अनुमति[1] प्रदान कर्ता मन्त्रियों को 'बद्ध पट्ट' तथा इतरों को 'बद्ध निगड' (वेणी) किया।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४२५ उक्त पद के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४२६ 'तादृग्रक्क' का पाठ भेद 'ताव-द्रक्क' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४२८ (१) जयेन्द्रबिहार : टिप्पणी (रा० : ३ : ३५५ द्रष्टव्य है।

पादटिप्पणी :

४३० (१) अनुमति : यह एक उदाहरण

एकदा मन्त्रिसामन्ततन्त्रिकायस्थसैनिकाः ।
पार्थं तदाज्ञामासाद्य निशायां पर्यवेष्टयन् ।।४३१।।

४३१. एक समय मन्त्री, सामन्त, तन्त्री, कायस्थ एवं सैनिक उस (राजा) की आज्ञा प्राप्त कर, पार्थ को परिवेष्टित कर लिये ।

म्लानक्षीणाम्बरां पत्नीं रुद्धद्वारां निपात्य ते ।
आलिङ्ग्यमानां क्रन्दद्भिस्तर्णकैरिव दारकैः ।।४३२।।

४३२. वत्स (बछड़ा) सदृश क्रन्दन करते शिशुओं से आलिंग्यमान (चिपटे) द्वार अवरुद्ध करने वाली म्लान एवं क्षीणाम्बरा (पार्थ) पत्नी को वे गिराकर—

केशानालम्ब्य कर्षन्तः शर्करोत्पाटिताङ्गकम् ।
विपन्नं गोकुलाद्दान्तमिव निर्हृत्य तं गृहात् ।।४३३।।

४३३. केश पकड़ कर खींचते हुए, (उन लोगों ने) कंकड़ से उत्पाटित (छिले) अंग वाले विपन्न (उस नृप) को गोकुल (गोशाला) से मृत बैल तुल्य गृह से निकाल कर—

क्षुत्क्षामरूक्षं क्रन्दन्तं निजघ्नुर्नग्नविग्रहम् ।
चण्डाला इव निःशस्त्रं कुमुदाद्या नृपप्रियाः ।।४३४।।

४३४. चाण्डाल[1] सदृश, कुमुद आदि नृप प्रिय लोगों ने क्षुत् क्षाम (क्षुधा-क्षीण) निःशस्त्र क्रन्दन करते नग्न शरीर उसे (पार्थ को) मार डाला ।

है । राजा की शक्ति नियन्त्रित थी । स्वेच्छाचारी नहीं था । उसके अधिकार धर्मशास्त्र, स्मृतियों एवं परम्पराओं से मर्यादित थे । मन्त्रियों की अनुमति इन परिस्थितियों में अनिवार्य मानी गयी है । तथापि राजा मन्त्रियों की अनुमति मानने के लिये बाध्य नहीं था । विधिवत् उसकी प्रभु शक्ति सर्वोपरि थी । (रा० ७ : १०४२-१०४३)

(२) पट्ट : यहाँ उस रंगीन वस्त्र से तात्पर्य है जो साफा या पगड़ी या शिरोवेष्टन के काम में आता है । पट्ट का अर्थ रेशमी वस्त्र, किरीट तथा मुकुट भी होता है । (रत्नावली : १ : ४ भर्तृ : ३१७४ तथा कादम्बरीः १७)

पाठभेद :

श्लोक सं० ४३२ 'निपात्य' का पाठ भेद 'निपत्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४३३ (१) शर्करोत्पाटित : कल्हण ने यहाँ अत्यन्त क्रूर एवं मर्मस्पर्शी वर्णन किया है । क्रूरता की सभी सीमाएँ पार कर मानव हिंस्र हो सकता है, यह उसका एक उदाहरण है । शर्करा का अर्थ कँकड़ीला, बंजरीदार भूमि होता है । एक दिन जिस राजा के केशयुक्त मूर्धा पर अभिषिक्त जल पड़ा था, तूर्यनाद के साथ जयजयकार हुआ था, उसके मूर्धा केश को पकड़ कर, राजा ही के मुखापेक्षी भृत्य खींचने लगे थे । राजा का शरीर कंकड़ीली जमीन पर बिखरे कंकड़ की रगड़ से छिल गया था । राजा नंगा था । कातर था । कष्ट से चिल्ला रहा था । उसके छिले शरीर से, क्षत शरीर से रक्त रिस रहा था । उसे मृत बैल की तरह घसीट कर, घर से निकाल दिया गया ।

पादटिप्पणी :

४३४ (१) चाण्डाल : हत्या किंवा वध कार्य चाण्डाल करते थे । अतएव कल्हण बधिकों की उपमा चाण्डाल से देता है । श्रीवर के वर्णन के अनुसार

पितरं निहतं श्रुत्वा राजा संजातकौतुकः ।
प्रातः स्वसचिवैः सार्धं गत्वा हृष्टोऽथ दृष्टवान् ॥४३५॥

४३५. पिता को निहत सुनकर, प्रसन्न राजा कौतूहल वश प्रातः अपने मन्त्रियों के साथ जाकर देखा—

अत्राङ्गेऽस्य प्रहारोऽयं मद्दत्त इति वादिनः ।
तस्याग्रे राजपुरुषाः शशंसुर्निजविक्रमम् ॥४३६॥

४३६. उसके समक्ष—'इसके (इस) अंग पर यह प्रहार मैंने किया है''—(उस प्रकार कहते) ऐसा कहकर, राजपुरुषों ने अपना पराक्रम (वर्णित किया) कहा ।

न्यक्कृत्य स्वीकृतो राज्ञा तदा तद्रञ्जनोद्यतः ।
अचूचुदत्पर्वगुप्तो देवगुप्ताभिधं सुतम् ॥४३७॥

४३७. राजा द्वारा (पहले) धिक्कृत होकर, (पुनः) अनुगृहीत उस समय उस (नृप) को प्रसन्न करने के लिये उद्यत पर्वगुप्त ने देवगुप्त नामक पुत्र को प्रेरित किया ।

मुसलिम काल में भी डोम अथवा चाण्डाल को लावारिस मुर्दा उठाने, फेंकने, अथवा गाड़ने के लिये दिया जाता था । स्मृतिकारों के अनुसार चाण्डाल प्रतिलोम जाति थी । ब्राह्मण माता तथा शूद्र पिता से उनकी उत्पत्ति मानी गयी है । (मनु० १० : २२, याज्ञ० १ : ९३, औशनस : ४८ : ११) मनु ने चाण्डालों को मनुष्यों का सबसे निम्न वर्ग माना है । उनकी गणना चारों वर्ण के बाहर की गयी है । उन्हें सर्व धर्म बहिष्कृत कहा गया है । (याज्ञ० : १ : १०३) ग्राम शूकर एवं कुक्कुट कहकर उनका सम्बोधन किया गया है । वेदव्यास ने चाण्डालों का वर्गीकरण किया है—(१) शूद्र पिता एवं ब्राह्मण माता की सन्तान, (२) अविवाहित की सन्तान तथा (३) सगोत्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान । यम ने दूसरा वर्गीकरण किया है—(१) संन्यासी यदि संन्यास धर्म त्याग कर पुनः गृहस्थ हो जाता है, तो उसकी सन्तान, (२) सगोत्र स्त्री से उत्पन्न सन्तान तथा (३) शूद्र पिता तथा ब्राह्मण माता की सन्तान ।

मनु के अनुसार चाण्डाल का निवास स्थान ग्राम से बाहर होना चाहिए । उनके द्वारा उपयोग किये गये पात्रों का दूसरों द्वारा व्यवहार करना वर्जित माना गया है । उनका पशुधन कुत्ता और गदहा है । उनका वस्त्र कफन है । टूटे बर्तन में भोजन, लौह आभूषण तथा निरन्तर घुमन्तू होना चाहिए । नगर तथा ग्राम में प्रवेश वर्जित है । सम्बन्धियों के अभाव में मृत का शव वे उठा सकते हैं । राजाज्ञा से वे अपराधियों को फाँसी लगाते हैं । वे फाँसी प्राप्त मृतक व्यक्ति का वस्त्र, आभूषण तथा चारपाई प्राप्त कर सकते हैं । उशनस का मत है । उनका आभूषण सीसा तथा लोहा का होना चाहिए । वे राजाज्ञा से अपराधियों का वध करते थे । बाजार तथा नगर के समीप आने की सूचना चाण्डाल लकड़ी बजाकर देते थे ।

पार्थस्य निहतस्याङ्गे सोऽक्षिपत्क्षुरिकां ततः ।
रञ्जितो येन भूपालो जातहासोऽभवच्चिरम् ॥४३८॥

४३८. तदनन्तर निहत पार्थ के अंग में क्षुरिका घुसेड़ दिया, जिससे प्रसन्न होकर, राजा देर तक हँसता रहा ।

डामरैर्लुण्ठितो देशः प्रणाशे चक्रवर्मणः ।
उत्थाप्य पापान्कायस्थांस्तेन भूयोऽपि दण्डितः ॥४३९॥

४३९. चक्रवर्मा की मृत्यु के उपरान्त, डामरों द्वारा लुण्ठित देश को, पापी कायस्थों को, प्रोत्साहित कर, पुनः दण्डित किया ।

संप्रेरितः कुसचिवैः शस्त्राभ्यासं चकार सः ।
पाटयन्क्षुरिकाघातैः कोटवीस्तनकोटरम् ॥४४०॥

४४०. कुसचिवों द्वारा प्रेरित होकर, क्षुरिका धातों से, नग्न स्त्रियों के स्तन कोटर (मध्य) को चीरते हुए, वह शस्त्र का अभ्यास करता था ।

गर्भिणीनां च जठरं गर्भान्द्रष्टुमपाटयत् ।
काठिन्यस्य परीक्षार्थमङ्गं कर्मकृतामपि ॥४४१॥

४४१. गर्भ देखने के लिये गर्भिणियों का जठर (गर्भाशय) तथा काठिन्य (सहन) की परीक्षा हेतु श्रमिकों का अंग चीर देता ।

प्रतिग्रहाग्रहाद्घोराद्यद्वा वधभयाद्द्विजाः ।
प्रत्यगृह्णन्नग्रहारांस्तस्मादपि नृपाधमात् ॥४४२॥

४४२. दान लेने के उत्कट आग्रह से, अथवा बध भय से, द्विजों ने उस नृपाधम से भी अग्रहारों को लिया ।

क्रूरपापानुरूपेण क्षयरोगेण पार्थिवः ।
ततोऽनुबाध्यमानोऽभूदपर्यन्तव्यथातुरः ॥४४३॥

४४३. तदनन्तर क्रूर पाप के अनुरूप, क्षयरोग से पीड़ित होता, पार्थिव अन्त में व्यथातुर हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४० में 'कोटवी' का पाठभेद 'कौटवी' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४२ में 'द्विजाः' का पाठभेद 'द्विजः' मिलता है ।

व्यथया तस्य तादृश्या प्रजा एव न केवलम् ।
तुतुषुर्निजशुद्धान्तमहिष्योऽपि चतुर्दश ॥४४४॥

४४४. उसकी उस व्यथा को देखकर, केवल प्रजा ही नहीं अपितु शुद्धान्त (अन्तःपुर) की चौदह रानियाँ भी सन्तुष्ट हुईं।

अथान्तःपुरदासीभिर्यः कुतश्चिदुपाहृतः ।
क्षितिपालात्प्रजातोऽयमिति प्रख्यापितो मृषा ॥४४५॥

४४५. अन्तःपुर की दासियों ने कहीं से लाकर—'यह क्षितिपाल से उत्पन्न हुआ है'—ऐसा मिथ्या ही जिसे प्रख्यात किया।

तं शिशुं शूरवर्माख्यं विनिवेश्य नृपासने ।
हस्ते निक्षिप्य सामन्तसचिवैकाङ्गतन्त्रिणाम् ॥४४६॥

४४६. शूरवर्मा नामक उस शिशु को नृपासन पर आसीन कर, तथा सामन्त, सचिव, एकांग एवं तन्त्रियों के हाथ निक्षिप्त (सौंप) कर—

कम्पनाधिपतेर्बद्धद्वेषः कमलवर्द्धनात् ।
बिभ्यन्मडवराज्यस्थाड्डामरोत्पाटनक्षमात् ॥४४७॥

४४७. मडव राज्य स्थित एवं डामरों का उत्पाटन करने में समर्थ, कम्पनाधिपति[1] कमलवर्धन से द्वेष रखने वाला वह भयभीत होता हुआ—

पादटिप्पणी :

४४५ (१) अज्ञात बच्चों को लाकर राज्य सिंहासन पर बैठा देना यह सामान्य प्रथा विश्व के सभी देशों में प्रचलित थी। (द्रष्टव्य : रा० : ७ : ४२७; ४३४, ४३८)

पादटिप्पणी :

४४७ (१) कम्पन : कम्पन, कम्पना तथा कम्पनाधिपति शब्द सभी भाष्यकारों के अनुसार विलसन से लेकर अब तक एक भूखण्ड के लिये प्रयोग किया गया है। यह परगना के समान एक भूखण्डीय इकाई थी। यह क्षेत्र काश्मीर में अथवा उसके बाहर था। कम्पनाधिपति, कम्पनाधिप, कम्पनाधीश, कम्पनापति, कम्पनेश आदि पद उस क्षेत्र के राज्यपाल किंवा गवर्नर के लिये प्रयुक्त होता रहा है। श्री ट्रोयर ने कम्पन शब्द चीनी पर्यटकों के कि-पि-न शब्द के आधार पर कुभा किंवा काबुल नदी की उपत्यका को माना है। (ट्रोयर : ३ : ५६९) श्री लास्सेन ने इस क्षेत्र को महाभारत वर्णित कम्पन नदी से सम्बन्धित किया है जिसे वह पूर्वी काबुलिस्तान कहते हैं (लास्सेन : ३ : १०४९) राजतरंगिणी के बाहर किसी और ग्रन्थ में कम्पन देश किंवा क्षेत्र का उल्लेख नहीं मिलता। इसका भी कोई साक्ष्य नहीं मिलता कि यह शब्द किसी स्थान के लिये प्रयुक्त होता था।

राजतरंगिणी के वर्णन से प्रकट होता है। कम्पन शब्द सेना के लिये तथा कम्पनेश, कम्पनाधिप, कम्पनाधिपति आदि शब्द सेनापति के लिये प्रयोग किया जाता था। जहाँ पर नपुंसक तथा पुलिंग शब्द में इसका प्रयोग किया गया है, वहाँ उसका सरल अर्थ तथा भाव सेना से लगता है। (रा० : ७ : ३६५;

आसन्ननिरयप्राप्तिः पितृहा पार्थिवाधमः ।
शुचौ पञ्चदशाब्दस्य प्रजापुण्यैः क्षयं ययौ ।।चक्कलकम् ।।४४८।।

४४८. निकट (भविष्य) में नरक प्राप्त करता एवं पितृ हन्ता वह पार्थिवाधम पन्द्रह अब्द के (लौ० ४०) १५ आषाढ़ (ग्रीष्म) में प्रजा[1] के पुण्यों से क्षय हुआ ।

शूरवर्मा द्वितीय (सन् ९३९ ई०)

पितृघातिसुतो राजा जयस्वामिविरोचनम् ।
आषाढशुक्लसप्तम्यां शिशुर्द्रष्टुं विनिर्ययौ ।।४४९।।

४४९. आषाढ़ शुक्ल सप्तमी को पितृ घाती का पुत्र शिशु नृपति जय स्वामी विरोचन[२] के के दर्शन हेतु निकला ।

१३१९; ८ : ५७५) कहीं कहीं यह शब्द द्वार तथा राजस्थान जैसे महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी के साथ प्रयुक्त किया गया है । उससे प्रकट होता है । यह पद द्वार-पति तथा राजस्थान जैसे महत्त्वपूर्ण पदों के समकक्ष था । (रा० : ५ : २१४, ६, २५९; ७ : ८८७; ८ : १८०, १०४६, १६२४, १९८२) उन पदों में जहाँ कम्पनेश तथा कम्पनाधिपति का उल्लेख किया गया है, (रा० : १३६२–१३६६) उनसे बहुत कुछ इस शब्द के अर्थ पर प्रकाश पड़ता है । जिस समय राज्याकांक्षी उच्चल तथा उसके सम्बन्धियों का दबाव राजा हर्ष पर पड़ने लगा तो कोई राजा हर्ष के 'कम्पन' का नेतृत्व लेने के लिये उद्यत नहीं हुआ । अन्तन्तोगत्वा चन्दराज ने नेतृत्व करना स्वीकार किया और राजसैनिकों का नेतृत्व किया । उस समय वहाँ उसे सेनापति नाम की संज्ञा दी गयी है । उसकी उपमा कौरव-पाण्डव के युद्ध से दी गयी है । चन्द्रराज ने शत्रु की जिस सेना को परास्त किया था, उसे विपक्ष कम्पनेश कहा गया है । राजा कम्पनेश के सैनिक शिविर को और सेना भेजकर शक्तिशाली बनाता है (रा० : ८ : १६७६) इसी प्रकार (रा० ८ : ६८८) एक प्रपात स्वभ्र के कारण विद्रोही सेनापति की मृत्यु हो गयी तो उसे परिहासपूर्वक कम्पनेश स्वभ्र कहा गया है । राजतरंगिणी के वर्णनों से निष्कर्ष निकलता है कि आक्रामक, अभियान तथा घेरा डालने वाली सेना के नेता को कम्पनेश कहते थे । (रा० : ७ २२१, २६७, ५७९; ८ : ५०९, ५९९, ६२७, ६५२, ६६९, ६९८, १०३९, १५१०, १५८०, १६७४, १८४०, २०९९, २१९०, २२०५)

लोक प्रकाश में राज्य के मुख्य अधिकारियों में कम्पनापति का स्थान द्वारपति तथा अश्वपति के मध्य रखा गया है । (रा० : ५ : ३१४) किसी प्रकाशित कोश में कम्पन पद या क्षेत्र का उल्लेख नहीं मिलता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४८ में 'प्राप्तिः' का पाठभेद 'प्राप्तेः' मिलता है । उक्त पद के पश्चात् 'चक्कलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४८ (१) पन्द्रह : सप्तर्षि ४०१५ = सन् ९३९ ई = विक्रमी ९९६ = शक ८६१ ।

(२) **प्रजा पुण्य** : द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ४ : ६२०, जोनराज : ५९; जैन : राज : १ : ३ : १०५; १ : ७ : २१५ २ : ४१, शुक : राजः १' ११९, २ : ७४, ८८, १४३.

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४९ में 'आषाढ' का पाठभेद अषाढे' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४४९ सर्वश्री कल्हण राज्याभिषेक काल लौकिक

संवत् ४०१५ आषाढ़ शुक्ल सप्तमी, दत्त कलि ४०-४० = शक ८६१, लौकिक ४०१५ = सन् ९३५ ई०, स्तीन लौकिक ४०१५, आषाढ़ = सन् ९३९ ई०, सी. एम. एफ. सन् ९३९ ई०, विलसन लौकिक ४०१४= सन् ९५९ ई० ९ मास; ट्रोयर सन् ९४१ ई० ११ मास = लौकिक ४०१५, कनिंघम लौ०, ४०१५ = ९३९ ई० १० मास, डाइनास्टिक हिस्टरी ऑफ इण्डिया सन् ९३९ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १००६ = सन् ९४९ ई० तथा राजकाल विलसन तथा आइने अकबरी ६ मास, ट्रोयर २ मास, पीर हसन १ मास देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल तथा राजक्रम में नाम का उल्लेख नहीं हैं।

(१) **जयस्वामी** : वह मन्दिर सम्भवतः वही है जिसका उल्लेख रा० : ३ : ३५० में किया गया है

(२) **विरोचन** : सूर्य की पूजा वैदिक काल से प्रचलित है। काश्मीर में सूर्य पूजा प्रथा इरानी एवं मध्येशिया प्रभाव के कारण जोर पकड़ गयी। सूर्य पूजा मार्तण्ड मन्दिर स्थापन काल से अधिक लोकप्रिय हो गयी। राजा कलश सूर्य उपासक था। यद्यपि वह काश्मीर में सनातन धर्म को स्थापित करना चाहता था। इस परिस्थिति से प्रकट होता है। सूर्य पूजा का व्यापक प्रचार काश्मीर में था। सूर्य पूजा काश्मीर में मुसलिम धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् भी शेष हिन्दुओं में प्रचलित थी। मिर्जा हैदर दुघलोत ने तारीखे रशीदी में लिखा है। काश्मीर में अनेक धर्म विरोधी (इसलाम विरोधी) सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनमें एक 'नूरबख्शी थे।' इन सम्प्रदायों के पूर्व काश्मीर में सूर्य पूजकों का एक सम्प्रदाय था। उन्हें 'शम्माशिन' कहते थे। उनका विश्वास था। सूर्य की किरणों का अस्तित्व उनके धर्म पवित्रता विश्वास के कारण था। उनका अस्तित्व सूर्य की किरणों के कारण था। यदि उनका विश्वास अपवित्र हो जाय तो सूर्यं के अस्तित्व का लोप हो जायगा। यदि सूर्य का उदय नहीं होगा तो वे जीवित न हो रह इस प्रकार उनके अस्तित्व का आधार सूर्य है। उनके बिना वह संस्थित नहीं रह सकता था। सूर्य की जब उपस्थिति दिन में होती है तो वे धार्मिकता के साथ रह सकते हैं। रात्रि होती है, । सूर्य उन्हें देख नहीं सकता उन्हें ज्ञान नहीं होता है। वे क्या करते हैं। उनका नैतिक उत्तरदायित्व, कर्मों के प्रति समाप्त हो जाता है। वह सम्प्रदाय अपने को शमशुद्दीनी कहता है। वह नाम उन्हें स्वर्ग से मिला है। काश्मीरियों ने इनका संक्षिप्त शम्मासी कर दिया है।' (आइने अकबरी में उद्धृत : २ : ३५३ नोट) सूर्योपासना का इतिहास वैदिक काल से मिलता है। मिश्र में तो वह एक प्रकार से राजधर्म था। सम्राट् अकबर का भी झुकाव इस तरफ था। काश्मीर से सूर्योपासना का पुनरुत्थान मग्गी लोगों के कारण हुआ हो। मार्तण्ड अर्थात् सूर्य मन्दिर की स्थापना, तथा राजा कलश का इस ओर विशेष झुकाव इस बात को प्रमाणित करता है कि जनता में सूर्योपासना प्रचलित थी। सूर्य की उपासना काश्मीर में लोगों के मुसलिम धर्मग्रहण कर लेने के बाद तक प्रचलित थी। नूरबख्शी सम्प्रदाय इनमें से एक था। नूर प्रकाशपुंज किंवा ज्योति को कहते हैं। नूर बख्शने वाला अर्थात् प्रकाश देने वाला सूर्य था। नूरबख्शियों के पूर्व काश्मीर में शम्मसिन सम्प्रदाय प्रचलित था। यह सम्प्रदाय कालान्तर में शमसुद्दीन कहलाने लगा। आइने अकबरी में इसे शमसी कहा गया है।

मुलतान अर्थात् मूलस्थान में सूर्य का मन्दिर था। यहाँ नरसिंह भगवान् का भी मन्दिर था। जनश्रुति है कि मुलतान के सूर्य मन्दिर की स्थापना पारसियों ने की थी। औरंगजेब के समय तक वह मन्दिर था जिसे उसने नष्ट किया।

अलबेरूनी कहता है कि मुलतान सूर्य मन्दिर में जो ब्राह्मण पूजा करते थे उन्हें मग तथा मग्गी कहा जाता था। सहित्यगेन की जो मुद्राएँ काबुल के दक्षिण पूर्व मुलतान तथा बलूचिस्तान में मिली हैं उनसे प्रकट होता है कि पश्चिमी तुर्किस्तान के तुर्कों ने सूर्योपासना

नवा विरेजे राजश्रीर्बालस्य पृथिवीपतेः ।
कृपाणवेणिललिता छत्रचामरहासिनी ॥४५०॥

४५०. (उस समय) बालक पृथ्वीपति की कृपाण रूपी वेणी से ललित, छत्र-चामर रूप हास्य युक्त, राज्य लक्ष्मी शोभित हुई।

का प्रचार किया था न कि उसके मूल प्रवर्तक इरानी लोगों ने। इसी प्रकार पश्चिमी तुर्कों के वंशजों ने भी इसलाम कबूल करने पर इसलाम का प्रचार किया था। अरबों के कारण उक्त क्षेत्रों में जो इसलाम नहीं आया था।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९९३ ई० में स्टीफेन पोप अमोघवर्ष राष्ट्रकूट राजा की मृत्यु कृष्णा (तृतीय) राजा, तथा मम्मट राष्ट्रकूट हस्तिकुण्ड वंशीय राजा हुआ सन् ९४० ई० में भीम पाल हिन्दू शाही राजा हुआ। पृथ्वी पति (द्वितीय) पश्चिमी गंग की मृत्यु। सन् ९४१ ई० रूसी जहाजी बेड़े में कुस्तुनतुनिया के लिये खतरा उत्पन्न किया। हेरंबपाल गुजरात प्रतिहार राजा हुआ। हर्षवर्मा ने कम्बुज में पिता जयवर्मा (चतुर्थ) से राज्य प्राप्त किया। पम्पा ने आदि पुराण की तथा पम्पा भारत की रचना की। सन् ९४२ ई० में मूलराज गुजरात का राजा हुआ। पद्मकीर्ति ने पासनाह चरियु की रचना की। आतृपट्ट गुहिल राजा हुआ उदय (द्वितीय) श्रीलंका का राजा हुआ। मूलराज चालुक्य का राजा हुआ। इब्न-मुहल्हाल इतिहासकार चीन राजदूत के साथ बुखारा दरबार में गया। एक मत है कि उसने भारत में उत्तरी सोकण (सिमूर) की यात्रा की। मुहब्बद अबुल कासिम इब्न हौकल भौगोलिक बगदाद से भारत के लिये प्रस्थान किया। सन् ९४३ ई० कृष्णा (तृतीय) राष्ट्रकूट तथा वुतुंग गंग ने काञ्ची और तंजोर पर अधिकार किया। त्सिन वंश के पश्चात् चु-हुत्ती चीन का सम्राट् हुआ। महेन्द्र पाल (द्वितीय) प्रतिहार महिपाल का पुत्र कन्नौज का राजा हुआ। अबुल हसन नासिर (द्वितीय) समनानी की मृत्यु। करातिगीन हिरात की सूबेदारी से हटाया गया। और इब्राहिम पुत्र सिमजूर उनके स्थान पर नियुक्त हुआ। खालिफ अपने पिता अहमद सफर का उत्तराधिकारी सीस्तान में हुआ। सन् ९४४ ई० राजेन्द्र वर्मा कम्बुज राजा ने यशोधरपुर को पुनः राजधानी तनाया। अब्दुल पुत्र अश्कान ख्वारिज़म शाह ने नूह (प्रथम) के विरुद्ध असफल विद्रोह किया। इब्राहिम पुत्र सिमजूर ने अबुल फजल अजीज पुत्र मुहम्मद सिजीजी को हिरात का नायब सूबेदार बनाया। सन् ९४५ ई० में अम्म (द्वितीय) राजमहेन्द्र पूर्व चालुक्य ने राजमहेन्द्री या राजमहेन्द्रपुर की स्थापना किया। (सन् ९४५-९७० ई०)। सन् ९४६ ई० अम्म (द्वितीय) पिता चालुक्य भीम के पश्चात् हुआ। सन् ९४७ ई० में सिन्दोक के सम्बन्ध में जावा में अन्तिम उल्लेख मिलता है।

पादटिप्पणी :

४५० (१) वेणी : वेणी की उपमा कृपाण तथा हास्य की उपमा छत्र एवं चामर से दी गयी है। श्री स्तीन तथा पण्डित ने श्लोकों का भिन्न अर्थ लगाकर अनुवाद किया है। श्री ट्रोयर ने 'छत्र चामर हासिनी' पर टिप्पणी लिखी है। स्तीन तथा पण्डित ने किसी प्रकार की पादटिप्पणी नहीं दी है। कल्हण ने अपनी कवित्व शक्ति का परिचय उक्त उपमाओं द्वारा दिया है।

प्रकट होता है। बालक राजा के केश वेणी तुल्य गुँथे थे। मुण्डन संस्कार के पूर्व, आज भी उत्तरी भारत में प्रथा है। बालक के बाल बालिकाओं की वेणी के समान गुँथ देते हैं। बालक राजा का बाल भी वेणी की तरह गुँथा था। वह राजा मुण्डन संस्कार के पूर्व ही बन गया था।

कमलवर्धन का विद्रोह :

अत्रान्तरे जवायातैश्चारैरावेदितश्रुतः ।
सामन्तैर्नगरोपान्तं प्राप्तः कमलवर्धनः ॥४५१॥

४५१. इसी बीच सवेग आये गुप्तचरों का निवेदन सुनकर, सामन्तों के साथ कमलवर्धन नगर उपान्त (सीमा) पर आ गया ।

एकाङ्गतन्त्रिसामन्तस्यालहारकसादिभिः ।
नगरं प्रविशञ्श्रान्तः समं सैन्यैररुध्यत ॥४५२॥

४५२. सेना के साथ नगर में प्रवेश करते, श्रान्त उसे, एकांग, तन्त्री, सामन्त, स्यालहारक[1] अश्वारोहियों ने निरुद्ध कर दिया ।

विरुद्धडामरानीकान्युद्ध्वा मार्गेषु निर्गतः ।
श्रान्तोऽप्यसौ वैरिसेनामजयद्विक्रमोर्जितः ॥४५३॥

४५३. मार्ग में विरुद्ध डामर सैन्यगणों से युद्ध करके, निर्गत एवं विक्रमोर्जित उसने श्रान्त होते हुए भी, शत्रु सेना को जीत लिया ।

तीक्ष्ण कृपाण कृष्ण से नील वर्ण हो जाती है । लोह वर्ण ही कुछ कृष्ण वर्ण होता है । यद्यपि लोहा के वर्ण के लिये लोहित शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

चामर का वर्ण श्वेत होता है । राजा पर छत्र श्वेत लगता था । बालक जब हंसता था तो उसकी उज्ज्वल दन्त पंक्तियाँ परिलक्षित होती थीं । चामर एवं छत्र राज गौरव एवं प्रसन्नता के प्रतीक हैं । प्रसन्न वदन मानव ही हँसता है । इस प्रसन्न हास्य की उज्ज्वल चामर एवं छत्र से उपमा देकर कल्हण ने अपनी विचक्षण कवि कल्पना प्रकट की है ।

श्वेत छत्र शास्त्रीय मान्यता के अनुसार सरस्वती पर और विविध एवं मुख्यतया स्वर्ण वर्ण छत्र राजा पर लगता था । श्वेत छत्र अर्थात् श्वेत हास्य से सरस्वती एवं नील किंवा कृष्ण वर्ण छत्र लक्ष्मी पर लगता है । वेणी की नीलिमा तथा हास्य का श्वेत वर्ण दोनों को बालक राजा के साथ सम्बन्धित कर कल्हण ने सरस्वती एवं लक्ष्मी दोनों का कृपा पात्र राजा को बताया है ।

पादटिप्पणी :

४५१. (१) उपान्त : किनारा = छोर = सिरा । नगरकी सीमा स्थित बाहरी स्थान । कालिदास ने उपान्त शब्द का प्रयोग किया है । रघुवंश ७ : ५०, कुमार : ३ : ६९; ७ : ३२.

पादटिप्पणी :

४५२ (१) स्यालहारक : श्री स्तीन ने अनुमान किया है कि स्यालहारक एक स्थानीय नाम है । उन्होंने सन्देह के कारण स्यालहारक का अनुवाद नहीं किया । श्री सीताराम रणजीत पण्डित ने स्यालहारक शब्द नामवाचक यथावत् रख दिया है । स्यालहारक शब्द अश्वारोही का विशेषण है । स्याल किंवा श्याल का अर्थ शृगाल, सियार होता है । हारक का अर्थ हरण ग्रहण, तथा लूटना आदि है । स्यालहारक का शाब्दिक अर्थ स्यालों के हरण एवं ग्रहण करने वाले अश्वारोहियों से हो सकता है । रात्रि काल में सियार फसल नष्ट कर देते हैं । फसल खराब हो जाती हैं । उन्हें भगाने वाले अश्वारोहियों से स्यालहारक का अर्थ लगाया जा सकता है ।

सहस्रमश्ववाराणां विद्राव्य तुरगैर्मितैः ।
राजधानीमसंरुद्धः प्रविवेश ततः क्षणात् ।।४५४।।

४५४. मित तुरगों द्वारा, सहस्रों अश्वारोहियों को तितर बितर कर के वहाँ से क्षण में बिना अवरुद्ध हुए, राजधानी में प्रवेश किया ।

शूरवर्मा राज्य च्युत

तं लब्धजयमाकर्ण्य सैन्यैस्त्यक्तं पलायितैः ।
एकाकिनं क्वाप्यनयज्जननी शिशु भूपतिम् ।।४५५।।

४५५. उस (कमलवर्धन) का विजय लाभ सुनकर पलायित सैनिकों द्वारा त्यक्त, एकाकी शिशु भूपति को जननी कहीं अन्यत्र ले गयी ।

प्राक्कर्मभिर्मोहितो वा प्रेरितो वा कुमन्त्रिभिः ।
नाभूत्सिंहासनारूढो मूढः कमलवर्धनः ।।४५६।।

४५६. पूर्व कर्मों अथवा कुमन्त्रियों द्वारा प्रेरित होकर, मूढ़ कमलवर्धन सिंहासनारूढ़ नहीं हुआ ।

तदानीं स्वगृहान्यातो राज्यकामोऽन्यवासरे ।
संघट्टयन्द्विजान्सर्वानचूचुददनीतिवित् ।।४५७।।

४५७. वह उस समय घर जाकर, दूसरे दिन अनीतिवित् उसने, राज्य की कामना से, सब द्विजों को एकत्र कर प्रेरित किया ।

प्रौढं शक्तं च कुरुत क्ष्मापं कंचित्स्वदेशजम् ।
मामेव कुर्युः सामर्थ्यादिति मूढः स चिन्तयन् ।।४५८।।

४५८. 'किसी प्रौढ़ एवं समर्थ स्वदेशीय को नृप नियुक्त करो''—सामर्थ्य के कारण मुझे ही नियुक्त करेंगे, ऐसा वह मूढ़ सोच रहा था ।

एकाकिनीं रहः क्षीवां लब्ध्वा दुर्लभयोषितम् ।
अप्रौढोऽनुपभुज्याऽन्यदिने दूत्यार्थयेत यः ।।४५९।।

४५९. एकान्त में एकाकिनी एवं मत्त दुर्लभ योषिता को प्राप्तकर जो अप्रौढ़ (अकुशल) भोग न कर दूसरे दिन दूती द्वारा प्रार्थना करता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४५७ में 'संघट्टय' का पाठभेद 'संघटय्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४५९ (१) योषितः = तरुणी स्त्री ।

विभूतिं रभसावाप्तां यश्च संत्यज्य तत्क्षणम् ।
नीत्या कामयतेऽन्येद्युः शोच्यस्ताभ्यां परोऽस्ति कः ॥ युग्मम् ॥४६०॥

४६०. और जो तत्क्षण हठात् प्राप्त विभूति का त्याग कर, अन्य दिन नीति पूर्वक प्राप्त करना चाहता है—इन दोनों से अधिक शोचनीय कौन है ?

अथोत्पलकुले छिन्ने स्थूलकम्बलवाहिनः ।
अशृङ्गोक्षनिभा विप्राः समगंसत गोकुले ॥ ४६१॥

४६१. उत्पल कुल के नष्ट (छिन्न)[1] हो जाने पर, शृंग रहित, बैल सदृश कम्बलधारी विप्र गोकुल में एकत्रित हुए ।

धूमनिर्दग्धकूर्चानां राज्ञस्तांस्तांश्चिकीर्षताम् ।
राज्यव्यवस्थोपन्यासस्तेषां चिरमवर्धत ॥ ४६२॥

४६२. राजा का राज व्यवस्था विषयक प्रस्ताव, धूम दग्ध कूर्चा[1] (लम्बी दाढ़ी) वाले तथा उन्हें उन्हें करने के अभिलाषी, उन लोगों के मध्य चिरकाल तक बढ़ता गया (लटका रहा) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४६० में श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४६१ में 'अथोत्पलकुले च्छिन्ने' के लिये पार्श्वटिप्पणी में—'उत्पलो नाम कल्यपालः तेन चिप्पटजयापीडं स्वस्त्रीयं निहत्याभिचारक्रियया स्वकीयभ्रातुः पुत्रः अजितापीडः राज्ये स्थापितः । ततः प्रभृति कल्यपालकुलराज्यं । उन्मत्तावन्ति पर्यन्तं प्राप्य कल्यपालकुलस्य च्छेदः । अत एवोक्तं उत्पन्नकुले च्छिन्ने इति' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४६१ (१) छिन्न : ललितापीड की एक रखेली कल्यपाली जयादेवी थी । उसके पिता का नाम उप्प था । उसका पुत्र चिप्पट जयापीड अपर नाम बृहस्पति था । कल्यपाली के पद्म, उत्पलक, कल्याण, सम्य एवं धर्म्य भ्राता थे । 'चिप्पट' जयापीड के राजा होने पर उत्पल के हाथों में सत्ता केन्द्रित हो गयी । कल्यपाल सम्बन्धियों ने अभिचार क्रिया द्वारा चिप्पट जयापीड की हत्या करा दी । जया देवी का पुत्र अजितापीड को उत्पल कल्यपाल ने जबर्दस्ती राजा बना दिया । इस प्रकार कालान्तर में कर्कोट वंश छिन्न होकर राज्य कल्यपाल उत्पल वंश में चला गया ।

(२) गोकुल : इस शब्द का प्रयोग कल्हण ने प्रायः गौशाला अथवा गायों के निवास करने आदि के सन्दर्भ में किया है । गोकुल के निर्माण का उल्लेख रा० : ५ : २३ तथा गोकुल का उल्लेख रा० : ८ : ९०० में किया गया है । जहाँ ब्राह्मण प्रायोपवेशन करने के लिये एकत्रित हुए थे ।

गोकुल ब्रज मण्डल में एक प्राचीन ग्राम है । भगवान् कृष्ण ने वहाँ अपना बाल्य काल व्यतीत किया था । मथुरा के पूर्व दक्षिण मथुरा नगर के पार पड़ता है । इन्हें आज कल महावन कहते हैं । (भा० : २ : ७ : ३१, विष्णुः ५ : १ : ७४, ५ : ७, ११ : १३) महाभारत में अधिक गौओं के रहने के स्थान को गोकुल कहते थे । (सभा : ३८ कर्ण : ५ : ३८)

पादटिप्पणी :

४६२ (१) दग्धकूर्चा : ब्राह्मणों की लम्बी

वैमत्येन मिथस्तेषां नान्यः कोऽप्यभ्यषिच्यत ।
कूर्चा भाषणनिष्ठ्यूतैः स्वकूर्चष्ठीवनैः परम् ॥४६३॥

४६३. उनके परस्पर वैमत्य के कारण, अन्य कोई भी अभिषिक्त नहीं हुआ। केवल रुक्ष भाषण से, निःसृत थूक (ष्ठीवन) से, अपनी दाढ़ी ही अभिषिक्त किये।

राज्यार्हान्वेषिभिर्विप्रैः प्राप्तः स्वस्मृतिक्लृप्तये ।
अवार्यतेष्टकाघातैर्मुग्धः कमलवर्धनः ॥४६४॥

४६४. राज्य के योग्य व्यक्ति के अन्वेषी विप्रों ने अपनी स्मृति की सफलता हेतु पहुँचे, मुग्ध कमल वर्धन को इष्टका (ईंटों के) घातों से भगा दिया।

पञ्चषाणि दिनान्येव यावत्तस्थुर्द्विजातयः ।
काहलाकांस्यतालादिवाद्यकोलाहलाकुलम् ॥४६५॥

४६५. पाँच छह दिनों तक द्विजाति (निर्णय बिना) स्थित रहे। काहला[1], कांस्य, ताल आदि वाद्य कोलाहल से व्याप्त—

दाढ़ी यज्ञीय धूम स्पर्श से जली अर्थात् भूरी या रंगीन हो गयी थी। कल्हण ने व्यंग पूर्वक यज्ञ धूम से रंगी न लिखकर, जली दाढ़ी लिख दिया है। दाढ़ी काँगड़ी के धूम से भी झुलस जाती है। काँगड़ी को संस्कृत में हसन्तिका कहते हैं। काष्ठ अंगारिका एवं हसन्तिका का अर्थ एक ही है। काँगड़ी शब्द काष्ठ अंगारिक का अपभ्रंश है।

हिमागमे यत्र गृहेषु योषितां
ज्वलद्गहच्छिद्रसखी हसन्तिका।
विभाति जेतुं मदनेन शूलिनं
धृता ततिर्वह्निमयीव चक्षुषाम् ॥
—श्रीकण्ठचरित : ८ : २९.

काँगड़ी शीतकालमें गले में लटका ली जाती है। उसकी अग्नि से कुछ धुआं निकलता रहता है। वह हृदयस्थल पर स्थित रहती है। लम्बी दाढ़ी भी छाती तक लटकती है। काँगड़ी के धुआं से दाढ़ी झुलस जाती है। काश्मीर में गरीब ग्रामीण काँगड़ी के साथ सो भी जाते हैं।

यह अनशन राजा भिक्षाचर के विरुद्ध किया गया था। यहाँ पर कल्हण ने ब्राह्मणों को बिना सींग का बैल कहा है। वितस्ता वर्णन के सम्बन्ध में नील-मत में एक स्थान पर गोकुल का वर्णन मिलता है कि गोकुलों के हम्भारव से वितस्ता का कुल निनादित रहता था। इसका अर्थ यही लगाया जा सकता है कि वितस्ता के तटपर गायें रहती थीं। गायों के निवास स्थान को गोकुल किंवा गोशाला कहा जाता है। गोकुल मथुरा में ग्राम है जिससे भगवान श्रीकृष्ण के जीवन की अनेक गाथाएं सम्बन्धित हैं।

गोकुलारावबहुला हम्भारवनिनादितम् ।
मत्स्यकच्छपसम्बन्धां सतीर्थ्यां कामदायिनीम् ॥
अमृतस्वादसलिलां नृणां दृष्टि मनोहराम् ॥
१३८६ = १६०४-१६०५

पाठभेद :

श्लोक सं० ४६३ 'कूर्चा' का पाठ भेद 'रूक्षभा' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ६६४ में 'प्राप्तः' का पाठभेद 'प्राप्तैः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

४६५. उक्त श्लोक द्वारा कल्हण ने तत्कालीन

उत्पताकध्वजच्छत्रशोभि युग्यार्पितासनम् ।
अशेषं पारिषद्यानां तावत्तत्रामिलद्बलम् ।।४६६।।

४६६. तथा ऊपर उठाये, पताका, ध्वज एवं छत्र से शोभायमान, युग्य[१] पर आसीन पारिषद्यों[२] का अशेष (सम्पूर्ण) बल, तब तक वहाँ आ मिला।

स्वपत्नीं बन्धकीभूतामिवान्यवशवर्तिनीम् ।
वीक्ष्य राजश्रियं शोचन्नासीत्कमलवर्धनः ।।४६७।।

४६७. बन्धकी[1]भूत (आचरण भ्रष्ट) स्वपत्नी सदृश, अन्य वशवर्तिनी राज्यश्री को देख कर, कमलवर्धन शोकान्वित हो रहा था।

पितृघातिवधूश्छन्नपुत्रराज्यार्थिनी ततः ।
प्राहिणोद्राजपुरुषान्पार्श्वं प्रायोपवेशिनाम् ।।४६८।।

४६८. तदनन्तर प्रच्छन्न पुत्र के लिये राज्यार्थिनी पितृघाती की वधू ने प्रायोपवेशियों के पास राजपुरुषों को भेजा।

पिशाचकपुरग्रामे वीरदेवाभिधस्य यः ।
कुटुम्बिनः कामदेवनामा सूनुरजायत ।।४६९।।

४६९. पिशाचकपुर ग्राम में वीर देव नामक गृहस्थ का कामदेव नामक जो पुत्र था।

ब्राह्मणों का सजीव व्यंगात्मक चित्रण किया है।

(१) काहला = बड़ा सैनिक ढोल

(२) कांस्यताल = झाँझ

पादटिप्पणी :

४६६ (१) युग्य : इसका अर्थ साज सामग्री से सन्नद्ध, जुता हुआ होता है। 'अश्वयुग्यो रथ :' का प्रयोग प्रायः मिलता है। जिसका अर्थ जुता हुआ या खींचने वाला पशु विशेष यथा रथ का घोड़ा होता है। 'हरियुग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः'—रघुवंश : १२ : ८४.। द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : समयमातृका : ७ : ३८

(२) पारिषद्य : द्रष्टव्य टिप्पणी : २ : १३२. तथा रा० : प्रथम खण्ड क. पृष्ठ. तथा द्रष्टव्य : रा० : ८ : ७०९, ९०० ।

पादटिप्पणी :

४६७ (१) बन्धकी : असती स्त्री : आचरण भ्रष्ट स्त्री : वेश्या : वारांगना आदि अर्थ होता है। —न मे त्वया कौमारबन्धक्या प्रयोजनम्। मांतग लीला : ७ : वेणी : २. बलाद् धृतोऽसि बन्धकी धाष्टर्चम्—कादम्बरी : २३७ द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : देशविदेश : ४ : २१, समयमातृका : ५ : १

पादटिप्पणी :

४६९ (१) पिशाचकपुर : ग्राम का पता नहीं चलता। इसका पुनः उल्लेख नहीं मिलता। नाम पिशाचपुर ही था परन्तु काश्मीर में नामों के पश्चात् 'क' जोड़ देने की प्रथा बहुत प्राचीन है। वह अबतक चली आती है। यह काश्मीरी उच्चारण है।

स शिक्षिताक्षरो लब्ध्वा मेरुवर्धनमन्दिरे ।
बालाध्यापकतां स्नानशीलादिगुणभूषितः ।।४७०।।

४७०. सुशिक्षित एवं स्नान, शील आदि गुणों से भूषित, वह मेरुवर्धन मन्दिर में बालकों का अध्यापन कार्य प्राप्त कर—

क्रमाद्गञ्जाधिकार्यासीदथ तस्यात्मजः शनैः ।
लेभे गञ्जाधिकारित्वं राज्ञः शंकरवर्मणः ।।४७१।।

४७१. क्रम से राजा शंकर वर्मा का गंजाधिकारी हो गया था । उसका पुत्र (तदुपरान्त) शनैः शनैः गंजाधिकारित्व प्राप्त किया ।

यः प्रभाकरदेवोऽपि सुगन्धाच्छन्नकामुकः ।
लक्ष्म्या सरस्वतीद्वेषाद्देशविप्लवतोऽथ वा ।।४७२।।

४७२. वह प्रभाकर देव भी जो कि सुगन्धा का प्रच्छन्न कामुक हो गया । लक्ष्मी से सरस्वती के द्वेष के कारण अथवा देश विप्लव के कारण—

पादटिप्पणी :

४७० (१) मेरुवर्धन मन्दिर : द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० : ५ : २६७ ।

पादटिप्पणी :

४७१ (१) गंजाधिकारी : कोशाध्यक्ष—खजांची = फारसी गंजावर ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४७२ में 'वा' का पाठभेद 'तो गतः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४७२ (१) लक्ष्मी-सरस्वती : कालिदास ने भी रघुवंश में यह भाव प्रकट किया है । अज के स्वयंवर में सखी इन्दुमती से अज का वरण करने के लिये इस लिये कहती है कि यद्यपि सरस्वती तथा लक्ष्मी में कभी मेल नहीं होता परन्तु अज में दोनों का सम्बन्ध है ।

निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि तयोस्तृतीया । (रघु० ६ : २९)

कल्हण ने लक्ष्मी एवं सरस्वती को परस्पर विरोधी बताया है । सरस्वती का वाहन हंस है । हंस संत एवं साधु जन का प्रतीक है । वह निष्कलंक श्वेत वर्ण है ।

लक्ष्मी का वाहन उल्लू है । उल्लू के नेत्र रात्रि में उन्मीलित होते हैं । निशाचर है । रात्रि में विचरण करता है । अन्धकार प्रिय है । वृक्षों के अन्ध कोटरों में निवास करता है । हंस विपरीत प्रवृत्ति है । भास्वर दिन में विचरण करता है । निर्मल जल प्रिय है । हरित, सुन्दर, पवित्र जलाशय तट पर विश्राम करता है । उत्फुल्ल कमल मध्य विचरता है । मिश्रित दुग्ध एवं जल से शुद्ध दुग्ध पी कर जल त्याग देता है । नीर क्षीर विवेकी है । उल्लू हिंसक है । प्राणी हत्या करता है । रात्रि में उसकी बोली भयकारक होती है । कुरूप होता है । देखकर डर लगता है । उसकी वाणी अशुद्ध है ।

हंस देखकर मन प्रसन्न होता है । हंसों का किलोल सरोवर में देखते बनता है । हंस शुभ का प्रतीक है । उल्लू को दिन में दिखायी नहीं पड़ता । वह रात्रि के अन्धकार में मिलकर एकाकार हो जाता है । वह

विद्वान्यशस्करो नाम तत्पुत्रोऽत्यन्तदुर्गतः ।
सख्या फल्गुणकाख्येन समं देशान्तरं गतः ॥४७३॥

४७३. उस प्रभाकर देव का पुत्र अत्यन्त दुर्गत एवं विद्वान् यशस्कर, फल्गुणक के साथ देशान्तर चला गया ।

सुस्वप्नदर्शनैः पीठदेव्याशीर्भिश्च हर्षुलः ।
तस्मिन्प्रसङ्गे सोत्साहः प्रत्यावृत्तो निजां भुवम् ॥४७४॥

४७४. उस समय सुस्वप्न दर्शनों एवं पीठ देवियों के आशीर्वाद से प्रसन्न एवं उत्साह युक्त होकर, अपनी भूमि को प्रत्यावृत्त हुआ ।

पितृघातिवधूदूतैर्यातैर्बोधयितुं द्विजान् ।
मध्ये गृहीतो वाग्मित्वात्प्रविवेश तदन्तिकम् ॥४७५॥कुलकम्॥

४७५. द्विजों को बोधित करने के लिये, जाते हुए, पितृघाती की बधू के दूतों ने वाग्मी होने के कारण मध्य ही (उसे) गृहीत कर, उन (विप्रों) के पास प्रविष्ट किया (प्रवेश कराया) ।

समूह में नहीं रहता । उसे एकाकी जीवन पसन्द है । उल्लू अशुभ का सूचक है । लक्ष्मी एवं सरस्वती की भी यही दशा है । लक्ष्मी को स्वर्ण प्रिय है । स्वर्ण कलश उनके करों की शोभा बढ़ाता है । सरस्वती के करों में पुस्तक एवं वीणा है । पुस्तक मानवीय चिन्तन, मानवीय विकाश का प्रतीक है । वीणा झंकार से मन झंकृत हो उठता है । कालिदास ने रघुवंश में इन्दुमती के स्वयंवर का सुन्दर चित्रण चित्रित किया है । इन्दुमती की सखी स्वयंवर में भाग लेने वाले राजपुत्रों का परिचय इन्दुमती को देती चलती है । जब वह अज के समीप पहुँचती है तो अज का परिचय देती है 'उनमें परस्पर विरोधी लक्ष्मी एवं सरस्वती दोनों ने आश्रय लिया है । इन्दुमती को सलाह देती है । अज का वरण करो ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४७३ में 'फल्गुणका' का पाठभेद 'फल्गुनका' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४७४ (१) पीठदेवी : एक मत है । पीठ देवी का अर्थ देवी दुर्गा किंवा सती के पीठ स्थान से है । सती का शरीर ५१ भागों में विभक्त होकर भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर स्थित हो गया था । जहाँ जहाँ अंग गया देवी के उन अंगों के आधार पर पीठों के स्थानों का नामकरण हो गया । (विष्णु : ४ : २६१) काश्मीर का प्राचीन नाम शारदा पीठ है । सम्भव है । पीठ शब्द से शारदा पीठ और देवी से काश्मीर की देवियों का सम्बोधन कल्हण ने किया है ।

पुराणों की मान्यता के अनुसार पीठ उस स्थान को कहते हैं जहाँ दक्ष कन्या सती का कोई न कोई अंग गिरा था । प्रत्येक अंग के नाम पर प्रत्येक पीठ का नामकरण हुआ है । पुराणों के अनुसार पीठ की संख्या निश्चित है । एक मत है कि ७७ पीठों में ५१ महापीठ तथा ३६ उप पीठ हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४७५ में उक्त पद के पश्चात् कुलकम् लिखा मिलता है ।

दृष्ट्वैव तं दैववशादैकमत्यस्पृशो द्विजाः ।
ध्वनिं राजाऽयमेवास्त्वित्युच्चकैरुदचारयन् ॥४७६॥

४७६. दैव वश उसे देखते ही, एकमत होकर, द्विजों ने 'यही राजा[1] हो' ऐसी उच्च ध्वनि की ।

अथाभ्यषिच्यत क्षिप्रं विप्रैरेत्य यशस्करः ।
क्ष्माधृतिप्रौढसामर्थ्यः सानुमानिव तोयदैः ॥४७७॥

४७७. क्ष्माधृति में प्रौढ़ सामर्थ्यशाली यशस्कर को शीघ्र आकर, विप्रों ने उसी प्रकार अभिषिक्त[1] किया, जिस प्रकार मेघ पर्वत को ।

पादटिप्पणी :

४७६ (१) राजा का निर्वाचन : राजा के निर्वाचन की प्रथा प्राचीन है । वेदों में मिलती है । (अथर्व वेद : ६ : ६७–८८; ऋग्वेद : १० : ११३) राजा के निर्वाचन का सिद्धान्त वैदिक काल में अधिक मान्य था । तत्पश्चात् यह पद वंश परम्परानुगत होने लगा । उत्तर वैदिक काल में भी राजा के निर्वाचन का उदाहरण मिलता है । मेगस्थनीज लिखता है—'स्वयंभू, बुद्ध, और क्रतु के उपरान्त राज्यारोहण प्रायः वंशानुगत हो गया था । तथापि जिस वंश में राजा उत्तराधिकारी नहीं रह जाता था, वहाँ राजा का निर्वाचन योग्यता अनुसार किया जाता था । (एम० सी० क्रिण्डल : मेगस्थनीज एण्ड अर्रियन : २००)

बौद्ध जातक तथा महावंश में राजा के निर्वाचन के अनेक उदाहरण मिलते हैं (जातक : १ : ३९९; महावस्तु : खण्ड : २ : ७०) तैत्तिरीय ब्राह्मण में निर्वाचित राजा के लिये राजन्य शब्द प्रयोग किया गया है ।

बंगाल के पाल वंशीय राजाओं के समय तक, इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य प्राप्त कर, अभिषिक्त होने के उदाहरण मिलते हैं । गोपाल ने अपने शिला लेख में लिखा है—'निर्वाचन सिद्धान्त के अनुसार उसे अभिषिक्त होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । मात्स्य न्याय शमनार्थ प्रजा ने उसका निर्वाचन किया था ।' रुद्रदामन अपने शिलालेख में लिखता है 'सर्व वर्णों द्वारा उसका राज पद के लिये निर्वाचन हुआ था ।' छत्रपति महाराज शिवाजी भी निर्वाचित राजा तुल्य राजा हुए थे ।

सम्राट् के निर्वाचन का भी उदाहरण मिलता है । ऐतरेय ब्राह्मण तथा शुक्लयजुर्वेद के उल्लेखों में (१५ : १२) इसका आभास मिलता है । सम्राट् का निर्वाचन राजा लोग सुरक्षा एवं आपत्ति किंवा संकट कालीन स्थिति में करते थे । जरासंध इसी प्रकार सम्राट् निर्वाचित हुआ था । (सभा : १९; आदि : १०० : ७) यद्यपि आगे चलकर जरासंध निरंकुश हो गया था ।

राजा का निर्वाचन आजन्म के लिये होने का उदाहरण वैदिक काल में मिलता है । (अथर्व : ३ : ४ : ७) निर्वाचित किंवा वंशपरम्परा गत राज्य प्राप्त राजा भी राज्य च्युत होता था । (शुक्लयजुर्वेद १९, २१,) राज्य च्युत राजा को सौत्रामणि यज्ञ करना पड़ता था । शुक्लयजुर्वेद तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी राज्य च्युत राजा के लिये सौत्रामणि यज्ञ का विधान विहित है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४७७ में 'सामर्थ्यः' के लिये पार्श्व टिप्पणीमें—'क्ष्मायाः भूमेः धृतिः धारणं तस्मिन् प्रौढसामर्थ्यं यस्य सः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४७७ (१) अभिषेक : राजा के लिये अभिषेक महत्त्व पूर्ण पवित्र संस्कार माना जाता है । अभिषेक

द्वारा राजा को राज्य करने की विधि पूर्वक मान्यता प्राप्त होती है। मध्ययुगीय ग्रन्थों में अनेक विधियों का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में इन्द्र का महाभिषेक वर्णित है। वहीं यह भी वर्णन मिलता है कि किस प्रकार दक्षिण में सात्वत राजा गण भोज कहे जाने लगे। पूर्व देशीय राजा सम्राट्, पश्चिम के स्वराट्, तथा उत्तर के राजा अभिषेक के पश्चात् विराट् कहे जाते थे। (रा० : ७ : १५-१७)

तैत्तिरीय संहिता में अभिषेक संस्कार का वर्णन है—व्याघ्र चर्म पर राजा बैठाया जाता है। जवाकुंर एवं दूर्वादल युक्त जल से राजा का अभिषेक किया जाता था। राजा रथारूढ़ होता था। सूर्य की ओर देखकर प्रजा की ओर देखता था। तत्पश्चात् राजा का क्षौर कर्म होता था। उसके शरीर पर घृत मिश्रित दूध मला जाता था। नीतिमयूख, राजनीति प्रकाश, राजधर्म कौस्तुभ तथा गोपथ ब्राह्मण में और प्रक्रिया दी गयी है। सामग्रियाँ—१६ कलश, १६ वितक फल, बलमीक मिट्टी, छाँटा हुआ अन्न, सब प्रकार के रस, बीज, अन्न, सुवर्ण, रजत एवं मिट्टी के चार कलश, तथा उन कलशों में गम्भीर जलाशय का जल भरा जाता था। कलशों को वेदी पर रखकर, उनमें एक एक बेल डाल दिया जाता था। उनमें कोरा अन्न तथा छाँटे हुए अन्न डालते थे। सुवर्ण, रजत, ताम्र एवं मृत्तिका कलश में उक्त सामग्री डालते समय विभिन्न मन्त्रों का उच्चारण किया जाता था। गण जल कलश उठाते थे। पुरोहित कलश जल से अभिषेक करता था। (अथर्व० : १ : २१, ७ : ८५ : १ ; ७ : ८६ : १, ७ : ११७ : १, २ : २६, ७ : ४१, ११ : ४ : १७ : १ : १०; १७ : ११ : ३४ बौधायन गृह्यसूत्र १ : २३ याज्ञ० : १ : ३०९) रामायण, महाभारत में अभिषेक संस्कार का वर्णन मिलता है। (युद्धकाण्ड : १३१ अयोध्याः १५, शान्ति : ४० : ९—१३; सभा : ३३, आदि : ४४, ८५, १०१, अग्निपुराण, (२१८-२१९, तथा विष्णु धर्मोत्तर पुराण में अभिषेक संस्कार की भिन्न भिन्न प्रक्रियाएँ दी गयी हैं। द्रष्टव्य वायु : ९३, : ७६-८७, ९९ : ४५१.।

जबतक अभिषेक नहीं होता था तबतक राजा को कानूनी दृष्टि से शासन किंवा राज्य का अधिकार नहीं प्राप्त होता था। शासक को धर्म पूर्वक शासन करने की शपथ लेनी पड़ती थी। मुकुट बन्धन या मुकुट धारण करने के पूर्व अभिषेक होना आवश्यक था। हिन्दू राजनीति में अनभिषिक्त राजा बहुत ही उपेक्षणीय व्यक्ति माना जाता था। उससे लोग घृणा करते थे।

राज्याभिषेक लिए आयु निश्चित थी। खारवेल के शिलालेख से प्रकट होता है। निर्वाचित राजा का जब तक २४ वाँ वर्ष समाप्त नहीं होता, तब तक राज्याभिषेक नहीं होता था। जैन साहित्य से उदाहरण मिलता है। विक्रम का राज्याभिषेक २५ वें वर्ष में हुआ था। उपनिषद् काल में श्वेतकेतु के सम्बन्ध में कहा गया है। विद्याध्ययन समाप्त करने पर उसे पद प्राप्त हुआ था। खारवेल के कथन का समर्थन बृहस्पति सूत्र (१. ८९) से भी मिलता है कि २५ वर्ष तथा विद्याध्ययन करने के पश्चात् अभिषेक करने का शास्त्रों का विधान था।

राज्यारोहण और अभिषेक : राज्यारोहण २५ वर्ष की कम आयु में भी हो सकता था। परन्तु अभिषेक का समय शास्त्र सम्मत होना उचित माना गया था। अशोक के समय में इसका उदाहरण मिलता है। उसके पौत्र दशरथ का अभिषेक राज्यारोहण के चार वर्ष पश्चात् हुआ था। इसका वर्णन वह स्वयं अपने शिलालेख में करता है। राज्यारोहण का अर्थ राज्य प्राप्तकर सिंहासन पर बैठना है। राज्याभिषेक का अर्थ उस राज्यारोहण पर धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा वैधानिक मुहर लगाना है। इसीलिए वशिष्ठ के धर्मसूत्र के अनुसार राजा की मृत्यु तथा राजा के अभिषेक के मध्यवर्ती काल का सूद नहीं लेला चाहिए (२ : ४९)

धर्मशास्त्र के अनुसार राजा को विधिवत् शासक होने के लिए राज्याभिषेक कराना आवश्यक था। रुद्रदामन कहा करता था—'मैं निर्वाचित होकर

राजा हुआ हूं। मैंने राज्याभिषेक सम्बन्धी प्रतिज्ञा या शपथ लेकर यह उत्तरदायित्व ग्रहण किया है।'

ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार राज्यारोहण के समय राजा काठ के सिंहासन अर्थात् आसन्दी पर आरूढ़ होता था। उसपर प्रायः व्याघ्र चर्म बिछा रहता था। उस समय कहा जाता था—'हे राजन्, तू पूर्व में आरोहण कर, वसंत ऋतु और ब्राह्मण तेरी उस बहुमूल्य कोष की रक्षा करें। तू दक्षिण में आरोहण कर क्षत्र तेरी बहुमूल्य कोष की रक्षा करें। तू पश्चिम में आरोहण कर विश तेरी उस बहुमूल्य कोष की रक्षा करें। तू उत्तर में आरोहण कर फल तेरी उस बहुमूल्य कोष की रक्षा करें।'

यहाँ फल शब्द शूद्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार चारों वर्णों को राजा की रक्षा करने का आह्वान किया गया है। उसका अभिषेक सब दिशाओं के लिए किया गया है। (ऐतरेयब्राह्मण ८ : १५; शान्ति पर्व ३९ : २, ४, १३ - १४ तथा १०३ : ३२,)

सिंहासन पर आरूढ़ होने पर निर्वाचित राजा सुवर्ण के पत्तर पर पद रखता था। उस पत्तर में एक सौ अथवा ९ छिद्र होते थे। उसी पत्तर के छिद्र द्वारा पुरोहित राजा के मूर्धा पर जल का अभिषेक करता था। निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण किया जाता था।

सोमस्व त्वा द्युम्ने नाभिषिञ्चाम्यग्ने भ्राजिसा सूर्यस्य वर्चसा इन्द्रस्येन्द्रियेण।
क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यतिदिधून् पाहि ॥ २ ॥
इमं देवा असपत्नं सुवध्वं महते क्षत्राय
महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥
इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वो-
ऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा ॥

—शुक्लयजुर्वेद ९ : ५ : ४०; १० : ५ : १७-१८।

'सोम के वैभव से मैं तुझे अभिसिंचित करता हूँ। अग्नि के तेज से, सूर्य के प्रताप से, इन्द्र के बल से, मैं तुझे अभिसिंचित करता हूँ। तू क्षत्रपतियों का क्षत्र रक्षक हो।'

'हे देवताओ, अमुक पुरुष तथा अमुक स्त्री के पुत्र और अमुक विश् या प्रजा के स्वामी को तुम क्षात्र धर्म के लिये, महत्ता के लिये, विशाल राष्ट्रीय शासन के लिये और इन्द्र के बल के लिये अनुपम बनाओ। हे प्रजावर्ग के लोगो, यह व्यक्ति तुम्हारा राजा है। यह इन ब्राह्मणों का सोम है। (अनुवाद : हिन्दू राजतन्त्र भाग २ : ४४ ५०, ५१)

साम्राज्याभिषेक : ऐतरेय ब्राह्मण से पता चलता है कि प्राची दिशा के शासकों ने अपना साम्राज्याभिषेक कराया था। प्राची अर्थात् मगध इस साम्राज्य राजपद्धति का केन्द्र था।

शुक्ल यजुर्वेद (१५ : १२) से ज्ञात होता है कि पश्चिम में भी यह प्रथा प्रचलित थी। अनभिषिक्त शब्द का प्रयोग भारत में उन राजाओं किंवा शासकों के लिए किया जाता था जो विदेश से आकर भारत में निवास करने लगे थे।

वैदिक काल में राज्याभिषेक के समय ग्रामीण उपस्थित रहता था। अभिषेक के समय व्यापारी तथा वणिकों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति का प्रमाण मिलता है।

राजा के अभिषेक के लिए श्रुतियों में तीन यज्ञों के करने का उल्लेख है। प्रथम राजसूय यज्ञ है। इसके द्वारा वह राजपद का अधिकारी होता है। वाजपेय यज्ञ द्वारा वह राजर्षि किंवा राजधर्माधिकारी पद का अधिकारी होता है। तृतीय यज्ञ सर्वमेध था। इसके द्वारा वह विश्व पर शासन करने का अधिकारी हो जाता था। (तैत्तिरीय ब्राह्मण : १ : ३ : २ : २ ३ :) एक के पश्चात् दूसरा यज्ञ करने का क्रम था। सर्वमेध करने का अधिकार केवल सम्राट् को था। (शतपथ ब्राह्मण १९ : ७ : १) राजसूय यज्ञ करने पर ही राजा अपने पद का अधिकारी होता था। (शतपथ ब्राह्मण ५ : १ : १ : १२)

राज्याभिषेक के समय राजा प्रतिज्ञा करता था :

दग्धं वेणुवनं परस्परमहासंघर्षजेनाग्निना
तन्मूलोद्धृतिरम्भसा क्षणधृतोद्रेकेण संपादिता ।
वात्यावेगविपाटितं विटपिनं प्राप्तं कुतश्चिद्दृढां
रूढिं नेतुमहो महाद्रिकुहरे धात्रा न किं सूत्रितम् ॥४७८॥

४७८. पारस्परिक महासंघर्ष जन्य अग्नि से वेणु वन दग्ध होता है। क्षण मात्र के लिये प्रचुर वृष्टि उसका मूलोत्पाटन कर देता है। वात्या वेग से निपटित होकर कहीं से प्राप्त विटप को महाद्रि कुहर में दृढ़ मूल करने के लिये अहो ! विधाता ने क्या नहीं सूत्रित कर दिया।

भृत्यप्रेरणया वंशं पार्थजः स्वं न चेद्दहेत् ।
तत्पुत्रोत्पाटनं कुर्यान्न चेत्कमलवर्धनः ॥४७९॥

४७९. यदि पार्थ पुत्र भृत्यों की प्रेरणा से अपने वंश[1] को दग्ध न करता और यदि कमलवर्धन उसके पुत्र का उत्पाटन न करता—

अनुच्चकुलजातस्य दरिद्रस्याटतः क्षितिम् ।
तद्यशस्करदेवस्य राज्यप्राप्तिः कथं भवेत् ॥४८०॥

४८०. तो अनुच्च कुलोत्पन्न पृथ्वी पर घूमते, दरिद्र यशस्कर देव को राज्य की प्राप्ति कैसे होती ?

रात्रि में मेरा जन्म हुआ है। रात्रि में मैं मरूँ। यदि मैं तुम्हें पीड़ित करूँ तो मैं अपने समस्त शुभ कर्मों अपने स्वर्ग, जीवन तथा अपने वंश से वंचित हूँ। (ऐतरेय ब्राह्मण ८ : १५)।

राज्याभिषेक एक तथा कई पीढ़ियों के लिए भी करने की प्रथा मिलती है। यदि निर्वाचित राजा को जीवनपर्यन्त के लिए राज्याभिषेक किया जाय तो व्याहृति के केवल पहले शब्दांश 'भूः' का उच्चारण करना चाहिए। यदि दो पीढ़ी के लिए हो तो दो शब्दांशों 'भूर्भुवः', तथा तीन पीढ़ी के लिए अभीष्ट हो तो 'भूभुर्वः स्वः' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। (ऐतरेय ब्राह्मण ८ : ७) खारवेल के शिलालेख में एक पीढ़ी के लिए राज्याभिषेक की प्रथा उस समय प्रचलित थी; महाभारत काल में भी किंचित् परिवर्धन तथा संशोधन के (J. B. O. R-S. 3 : 4) यही प्रथा प्रचलित थी। (सभा पर्व : १३ : ४ २६, २९) रामायण काल में प्रायः वेदोक्त प्रथा प्रचलित थी। (वाल्मीकि रामायण अयोध्या काल १४ : ५)।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४७८ में 'ह' का पाठभेद 'हं' तथा 'सूत्रितम्' के लिये 'दैवेन किं सूत्रितमित्यादर्शान्तरे पाठः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

४७८ सूक्ति संग्रह का १९४ वां श्लोक है।

४७८ (१) क्षमाधर : राजा पृथ्वी को धारण करता है। अतएव उसे क्षमाधर कहते हैं। क्षमाधर पर्वत भी कहा जाता है। राजा एवं पर्वत दोनों पृथ्वी के आधार किंवा धारण करने वाले हैं।

पादटिप्पणी :

४७९ (१) वंश : द्रष्टव्य : राज० : ५ : २५५-२९७।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४८० में 'जातस्य' के लिये पार्श्व टिप्पणी में—'नीचकुलोत्पन्नस्य' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

४८० (१) अनुच्च कुल : नीचकुलोत्पन्न।

पद्भ्यां व्रजन्निरनुगो ददृशे जनेन यस्तत्क्षणं निखिललोकसमानमूर्तिः ।
साम्राज्यरम्यममुमीक्षितुमास्त नारीदृङ्नीरजस्तबकितो नरनाथमार्गः ॥४८१॥

४८१. उस समय लोगों ने बिना अनुगामी के और सब लोगों के समान मूर्ति, जिसे पैदल जाते हुए देखा था, साम्राज्य से सुशोभित उसे ही देखने के लिये रमणियों के नेत्र कमल से राजमार्ग स्तबकित (पुष्प गुच्छ युक्त) हो गया था ।

नृपतिवसतिं प्रत्यागच्छन्यशस्करभूपतिः
पुरमृगदृशामाशीर्मध्ये वचोऽपि विवक्षितम् ।
स्तिमितवलितापाङ्गं शृण्वन्निमीलदहंकृतिः
कृतपरिकरस्तज्ज्ञैर्यज्ञे प्रजापरिपालने ॥४८२॥

४८२. राज प्रासाद में जाते तथा बीच में पुर की मृगनयनी स्त्रियों के आशीर्वचनों को विवक्षित, शान्त एवं वलित अपांग करके, श्रवण करते, अहंकार निमीलित किये, नृपति यशस्कर को उसे जानने वालों ने प्रजा परिपालन हेतु कृतपरिकर समझा (माना या जाना) ।

प्रतिमितरविदीपोद्भासिशुभ्रातपत्रप्रचयरजतपात्रासूत्रितारात्रिकाश्रीः ।
अथ मुखरितमाशीर्मङ्गलैरङ्गनानामवनिहरिणधामा राजधाम प्रपेदे ॥४८३॥

४८३. प्रतिबिम्बित सूर्य रूप दीप से शोभायमान उज्ज्वल आतपत्र (छत्र), समूह रूप रजत पात्र में सुसज्जित आरती[1] की शोभा से युक्त भूचन्द्र अंगना[2]ओं के आशीर्मंगलों से मुखरित, भवन में प्रवेश किया (पहुँचा) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४८१ में 'मूर्तिः' का पाठभेद 'कीर्तिः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४८३ में 'राजधाम' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'अवनौ भूमौ हरिणधामा चन्द्रः' तथा 'राजासनं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८३. सूक्ति संग्रह का १९५ वां श्लोक है ।

४८३ (१) **आरती** : यह एक उत्सव होता है । इस पर्व के दिन प्रतिमा के मुख मण्डल के चारों ओर मृत्तिका दीप जला कर रखा अथवा लटकाया जाता है । दक्षिण के मन्दिरों में प्रतिमा के चारों ओर मूर्ति प्रस्तर में ही दीप रखने के लिये धातु के दीप दान गाड़ दिये जाते हैं । उसी पर उत्सव के दिन और कहीं कहीं सर्वदा दीप जलते रहते हैं । दक्षिण में दीप लटकाये भी जाते हैं । उनमें चार, पाँच, छह या अधिक वृत्ताकार, अर्धवृत्ताकार, लम्बा तथा बेड़ा, दीप रखा जाता है उसे दाक्षिणात्य भाषा में 'तूक विलक' कहते हैं । इस प्रकार का संस्कार काश्मीर तथा पंजाब में विवाह के समय भी किया जाता है । दीप जलाकर वर के चारों ओर रख दिया जाता है । आधुनिक काल में यह प्रथा लुप्त होती जा रही है । द्रष्टव्यः रा० ७ : ९२५

(२) **अंगना** : प्रशस्त अंग वाली सुन्दर स्त्री को अंगना कहते हैं ।

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचण्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां पञ्चमस्तरङ्गः ॥ ५ ॥

त्र्यधिकायां समाशीतौ मासेषु च चतुर्ष्वगात् । कल्यपालाष्टकं रथ्याहृतस्त्रीसचिवा अपि ॥

श्री काश्मीर के महामात्य चम्पक प्रभु के पुत्र कल्हण कृत राजतरंगिणी में पंचम तरंग समाप्त हुआ ।

पाठभेद :

'काश्मीरक' का पाठभेद 'काश्मीरिक' 'चण्पक' का 'चम्पक' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

(१) सभी पाण्डुलिपियों के नीचे इतिपाठ के नीचे तथा राज तरंगिणी संग्रह में निम्नलिखित श्लोक मिलता है :

त्र्यधिकायां समाशीतौ मासेषु च चतुर्ष्वगात् ।
कल्यपालाष्टकं रथ्याऽऽहृतस्त्री सचिवा अपि ।

'तिरासी वर्षों में एवं चार मास में कल्यपाल वंश के आठ, एक रथ्या (अर्थात् सड़क से लाकर) एक स्त्री तथा एक सचिव ने शासन किया । राजतरंगिणी संग्रह में राजाओं की संख्या ११ तथा उनका राज्य काल ८३ वर्ष ४ मास दिया गया है । राजा अवन्तिवर्मा एवं राजा यशस्कर के मध्य हुए राजाओं का संयुक्त काल उक्त श्लोक की गणना से मिलता है । मास की गणना ठीक नहीं कही जा सकती क्योंकि राजा अवन्तिवर्मा के अभिषेक का मास अज्ञात है । कल्यपाल आठ राजा उत्पलवर्मा के वंशज हैं ।

रथ्या से पकड़कर राजा बनाया गया व्यक्ति संकट है । स्त्री रानी सुगन्धा है । सचिव शम्भु वर्धन है । आइने अकबरी टेबुल ६ के नीचे इसके राजा तथा उनके काले की गणना की गयी है—१५ राजा, ८९ वर्ष १ मास तथा १७ दिन राज्य किये ।

रघुनाथ सिंह, पुत्र बटुकनाथ सिंह, जन्मस्थान पंचक्रोशी अन्तर्गत वरुणा तीर स्थित ग्राम खेवली रामेश्वर स्थान समीप तथा निवासी मुहल्ला घीहहा (औरंगाबाद) काशी नगरी वाराणसी ने कल्हण कृत राजतरंगिणी अनुवाद एवं भाष्य सन् १९७२ में लिखकर समाप्त किया ।

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

षष्ठस्तरङ्गः

•

लौकिक संवत् ४०१५-४०७९

सन् ईस्वी ९३९-१००३

षष्ठ तरंग के राजा

क्रम	नाम राजा	श्लोक सं०	लौ० सं० =	सन् ई०	राज्यारोहण
१.	यशस्कर देव	२	४०१५ =	९३९	आषाढ़ सुदी
२.	वरंत	९०	४०२४ =	९४८	
३.	संग्राम देव	११५	४०२४ =	९४८	भाद्रपद वदी ३.
४.	पर्वगुप्त	१२९	४०२४ =	९४९	फाल्गुन वदी १०.
५.	क्षेमगुप्त	१५०	४०२६ =	९५०	आषाढ़ वदी १३.
६.	अभिमन्यु	१८८	४०३४ =	९५८	पौष सुदी ९.
७.	नन्दिगुप्त	२९३	४०४८ =	९७२	कार्तिक सुदी ३.
८.	त्रिभुवन	३१२	४०४९ =	९७३	मार्गशीर्ष सुदी १२.
९.	भीमगुप्त	३१३	४०५१ =	९७५	मार्गशीर्ष सुदी ५.
१०.	दिद्दा	३३२	४०५६ =	९८०।१	

•

अथ

श्री कल्हणकृतायां राजतरङ्गिण्याम्

षष्ठस्तरङ्गः

नेदं पर्णसमीरणाशनतपोमाहात्म्यमुक्षोरगौ
पश्यैतावत एव संप्रति कृतौ तन्मात्रवृत्ती बहिः ।
प्रेम्णैवार्धमिदं चराचरगुरोः प्रापेयमात्मस्तुतीरेवं
देववधूमुखाच्छ्रुतिसुखाः शृण्वन्त्यपर्णावतात् ॥१॥

१. 'यह पर्ण एवं समीरण भक्षण का माहात्म्य नहीं है। देखो—केवल पर्ण एवं समीरण-भक्षी वृषभ तथा सर्प अब भी बहिर्योग में ही है।

'प्रेम से ही चराचर गुरु का यह देहार्ध प्राप्त किया है' देवांगनाओं के मुख से ऐसी श्रुति सुखकर आत्मप्रशंसा श्रवण करती, अपर्णा (पार्वती) रक्षा करे।

इच्छन्नलङ्घनीयत्वमथ कक्ष्यां विलङ्घयन् ।
प्रतीहारान्द्विजा दूरं वार्यन्तामिति सोऽन्वशात् ॥२॥

२. कक्ष्या लंघन करते हुए, उसने अलंङ्घयीयता प्राप्त करने की इच्छा से 'द्विजों को दूर बरित करो' प्रतीहारो को ऐसी आज्ञा दिया।

पाठभेद :

श्लोक सं० १ में 'वृत्ती' के लिए 'पर्णबालजीवनौ' तथा 'बहि' के लिये 'एतौ चराचरगुरुणा बहिः कृतौ इत्यन्वयः' पार्श्व टिप्पणी तथा 'सुखाः' का पाठ भेद 'सुखाच्छृण्व' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१. सूक्ति संग्रह का १९६ वां श्लोक है।

ओम् श्रीगणेशाय नमः; श्रीगणेशाय नमः; ओम् कल्हण ने गणेश की वन्दना कर कोई भी तरंग आरम्भ नहीं किया है। अतएव यह लिपिकों द्वारा उनकी श्रद्धा भक्ति तथा पुरातन परम्परा का निर्वाह करते हुए लिखा गया है।

पादटिप्पणी :

२ सर्वश्री दत्त यशस्कर का अभिषेक काल कलि ४०४९ = शक ८६१ = लौ० ४०१५ = सन् ९३९ ई०, स्तीन लौकिक ४०१५ आषाढ़ सुदी; सी० एम० डफ ८५५ ई०; विलसन—लौकिक ४०१५ वर्ष ६ मास = सन् ९६० ई० ३ मास; ट्रोयर सन् ९४२ ई० = लौकिक ४०१५; कनिंघम लौ० ४०१५ सन् ९३९ ई०; एस० पी० पण्डित सन् ९४० ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १००६ = सन् ९४९ ई०, त्रिवेद

वेत्रिवित्रास्यमानांस्तु तान्कृताञ्जलिरब्रवीत् ।
राज्यप्रदाश्च पूज्याश्च यूयं नो दैवतैः समाः ॥३॥

३. वेत्रियों[1] द्वारा त्रस्त होते, उन विप्रों से कृतांजलि कहा, 'राज प्रद पूज्य आपलोग हमारे लिये देवताओं के समान हैं।'

राज्यदानाभिमानेन वर्तिष्यत मदोद्धताः ।
यत्कार्यकालादन्यत्र नागन्तव्यं मदन्तिकम् ॥४॥

४. 'राज्य दान के अभिमान से मदोद्धत होकर व्यवहार करेंगे—अतः कार्य काल के अतिरिक्त अन्य समय मेरे निकट नहीं आना चाहिये।'

तदाकर्ण्याखिलो लोकस्तमधृष्यममन्यत ।
व्यस्मरत्सहसंवाससंभूतमपि लाघवम् ॥५॥

५. यह श्रवण कर, सबलोग उसे धृष्ट मान लिये और साथ रहने में हुए, लाघव को भी विस्मृत कर दिये।

खिलीभूताः पूर्वराजव्यवस्थाः प्रतिभाबलात् ।
उन्नीतवान्स सुकविः प्राक्कविप्रक्रिया इव ॥६॥

६. खिलीभूत[1] (नष्ट अनभ्यस्त) पूर्व नृप व्यवस्थाओं को उसने प्रतिभा बल से उसी प्रकार उन्नत किया, किस प्रकार सुकवि प्राचीन कवि प्रक्रियाओं को समुन्नत करता है।

सन् ९३४ ई० शक = ८५६ ई० देते है। सर्वश्री, ट्रोयर, स्तीन, विलसन, पण्डित ९ वर्ष तथा पीरहसन ९ वर्ष ९ मास राज्यकाल देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल ९ वर्ष दिया गया है।

आइने अकबरी में नाम जस्सगीरदेव दिया गया है। राज्यकाल ९ वर्ष तथा उसके सम्बन्ध में लिखा है कि वह एक कृषक था।

योगवशिष्ठ = योगवाशिष्ठकार ने काश्मीर में राजा यशस्कर का उल्लेख भविष्यत काल कारक में किया है। मेरा मत है कि योगवाशिष्ठ चाहे कोई प्राचीन ग्रन्थ रहा हो परन्तु उसका नवीन अर्थात् वर्तमान संस्करण राजा यशस्कर के समय में किया गया है। योगवाशिष्ठ में राजा यशस्कर तथा राजा सिन्धुराज केवल दो भारतीय राजाओं का नाम होने वाले राजाओं के रूप में आया है। अतएव इनसे स्पष्ट है कि योगवाशिष्ठ राजा यशस्कर के समय में लिखा गया है। यशस्कर ऐतिहासिक पुरुष है। और कल्हण ने जो कुछ लिखा हैं उसने साधार-ग्रन्थों के आधार पर लिखा है। यह इस बात का प्रमाण है। यशस्कर के सन्दर्भ में मैंने योगवाशिष्ठ का काल निर्णय तथा लेखन स्थान निश्चय किया है। जिसका वर्णन अन्य पुस्तक में करूँगा।

(योगवाशिष्ठ स्थिति प्रकरण स्वर्ग ३२ श्लोक १६.)

यशस्कर की एक ताम्र मुद्रा मिली है। मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व में 'यश' तथा दक्षिण पार्श्व में 'शंकर' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा देव टंकणित है।

पादटिप्पणी :

३ (१) वेत्रि : वेत्रधारी द्वारपाल।

पादटिप्पणी :

६ (१) खिलीभूत : कल्हण ने प्रयोग तरंग

अचौराऽभूत्तथा भूमिर्यथा रात्रौ वणिक्पथाः ।
अतिष्ठन्विवृतद्वारा मार्गाश्चाविघ्नताध्वगाः ॥७॥

७. भूमि उस प्रकार चौर रहित हो गयी कि, वणिक् पथ द्वार अनावृत रहते थे। और मार्ग में भी पथिकों को भय नहीं रहता था[१]।

प्रत्यवेक्षापरे तस्मिन्नासीत्सर्वापहारिणाम् ।
कृष्यध्यक्षत्वमुत्सृज्य कृत्यं नान्यन्नियोगिनाम् ॥८॥

८. उसके सर्वत्र दृष्टि रखने के कारण सर्वस्व हरण करने वाले नियोगियों के लिये कृषि के देख भाल के अतिरिक्त दूसरा कोई कार्य नहीं (रह गया) था।

ग्राम्याः कृषिपराधीना नापश्यन्राजमन्दिरम् ।
विप्राः स्वाध्यायसंसक्ता नाकुर्वञ्शस्त्रधारणम् ॥९॥

९. कृषि कार्य में लीन ग्रामीण, राजमन्दिर नहीं देखते थे। स्वाध्याय में निरत विप्र, शस्त्र धारण नहीं करते थे।

न विप्रगुरवः साम गायन्तो मदिरां पपुः ।
न तापसाः पुत्रदारपशुधान्यान्यढौकयन् ॥१०॥

१०. साम गान करते गुरु[१], मदिरा पान नहीं करते थे। तपस्वी (तापस) पुत्र, दार, पशु तथा धान्य का संग्रह नहीं करते थे।

---

३ श्लोक १३४ में 'खिलीकृत' शब्द का प्रयोग किया है।

खिलीभूते विमानानां तदापातभयात्पथि।
--कुमारसम्भवः ११ : १४, ८७

पादटिप्पणी :

७ (१) पीर हसन लिखता है—डाकुओं का उसके खौफ से पत्ता पानी होता था। और अहल हरफा और सौदागरात के वक्त अपनी दुकानों के तख्ते बन्द नहीं करते थे। और अहल गहर दरवाजे खुले रखते थे। ताजिरों को उसके दरबार में याररावी दुश्वार थी। और सरकशों और फितनागरों को खेती बाड़ी के काम में मशगूल रख दिया। शराबनोशी और कमारबाजी मुतलिकन ममनू कर दी। और बरहमनों के लिये सिवाय पढ़ने के कोई और शगल न छोड़ा। और हकपरस्तों को रोजीना मुकर्रर हो जाने के वायश अहल व अयाल की फिकर से आजाद कर दिया। हीलागर फकीरों ने लोगों से फरेवबाजी बन्द कर दी और औरतों को अपने खाविन्दों की ताबेदारी के लिये मजबूर किया। मुसाहब, वजीर, नजूमी, तबीब, मुन्शी और अदालती को सह बख्ता और गलतियों के लिये डराया, धमकाया और बरहमनों को परवशिश और अता से फारिग अलवाल करके तालीम व तदरीस में मशगूल किया। और हर जगह मदरसे मुसाफिरखाने और सफाखाने आबाद किये और उनके मुसारिफ में लाखों रुपये सर्क किये। 'अमन व अमान का किसी को मदाखिलत और मुजाहमत नहीं पहुंचती थी।' (१०१--१०२)

पादटिप्पणी :

१० सूक्ति संग्रह का १९८ वां श्लोक है।

१० (१) गुरु : तान्त्रिक क्रिया, पूजा एवं

न मूर्खगुरवो मत्स्यापूपयागविधायिनः ।
चक्रिरे स्वकृतैर्ग्रन्थैस्तर्कागमपरीक्षणम् ।।११।।

११. मत्स्य एवं अपूप याग[1] विधायी मूर्ख गुरु स्वप्रणीत ग्रन्थों से अथवा तर्क द्वारा आगम (वेद) की परीक्षा नहीं करते थे ।

संस्कार में पुरोहित तुल्य कार्य करने वाले के लिये गुरु शब्द का यहाँ प्रयोग किया गया है । द्रष्टव्य : रा० : ७ : २७, ८ : ५२३ ।

गुरु शब्द काश्मीर में पंडित तथा अन्य स्थानों में पुरोहितों के लिये भी प्रयुक्त किया जाता है । प्रकट होता है राजा यशस्कर के समय में मदिरा का सेवन ब्राह्मण पुरोहितों में पूजा आदि संस्कार के समय बन्द कर दिया गया था । निस्सन्देह उसके पूर्व मुख्यतया तान्त्रिक कर्मों में मदिरा का प्रयोग किया जाता था । द्रष्टव्य : रा० : ८ : १८६३, क्षेमेन्द्र : नर्ममाला : ३ : १—२०

काश्मीरी ब्राह्मणोंमें आजकल तीन वर्ग है—उन्हें (१) गुरु (२) कारकुन तथा (३) रोहरू कहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११ में 'मूर्खगु' का पाठ भेद 'मूर्खा गु' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११ सूक्तिः संग्रह का १९९ वां श्लोक है ।

११ (१) मत्स्यापूपयाग : यह एक प्रकार की तान्त्रिक क्रिया थी । तान्त्रिक संस्कार था अब भी काश्मीर के लोग इसे जानते हैं । तान्त्रिक श्राद्ध के पंचम अध्याय में मृति तत्त्वानुसरण में वर्णित है । इस श्राद्ध में मछली तथा पूआ दिया जाता है ।

कल्हण अपने समय गुरुओं के स्वप्रणीत ग्रन्थों की ओर ध्यान दिलाता उन्हें मूर्ख पदवी से विभूषित करता है । वेद अपौरुषेय माना जाता है । उस पर आलोचना एवं सन्देह करना अनुचित माना गया है । वेद के सम्बन्ध में सन्देह किंवा उस पर तर्क करना कल्हण की दृष्टि में उचित नहीं था । काश्मीर के वाचभट्ट वैदिक तथा तान्त्रिक अर्थो का अपनी अलग अलग व्याख्या तथा पद्धति का अनुकरण करते हैं । यह स्थिति सर्वदा से भारत के मत मतान्तरों की वृद्धि के कारण रही है । कल्हण उसी विवाद की ओर ध्यान आकर्षित करता उसे उचित नहीं मानता ।

इस तरंग में कल्हण ने तन्त्र का अत्यधिक उल्लेख किया है । काश्मीर में, शैव, वैष्णव एवं बौद्ध धर्मों के स्थान पर तन्त्रों का प्रचार बढ़ रहा था । तान्त्रिकों का मत है । कलियुग में वैदिक मन्त्रों, जपों तथा यज्ञों से कोई फल प्राप्त नहीं होता । सफलता एवं कार्य सिद्धि के लिये इस युग में तन्त्र शास्त्रों में वर्णित मन्त्रों एवं साधनाओं द्वारा इष्ट की प्राप्ति होती है । इस शास्त्र की क्रियायें गुप्त रखी जाती हैं । पहले दीक्षित होने पर ही उन्हें प्रकट किया जाता है । मारण, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण, एवं अन्य सिद्धियों के लिये तन्त्रों के मन्त्र तथा साधनों का आश्रय लिया जाता है । इसके मन्त्र प्रायः एकाक्षरी हुआ करते हैं । पंचमकार तथा चक्रपूजा प्रसिद्ध है । पंचमकार की सेवा के साथ धोबिन, तेलिन आदि स्त्रियों को नग्न कर उनकी पूजा करते हैं ।

हुएन्त्सांग में इस मत का प्रचार काश्मीर में होना नहीं कहता । कल्हण का वर्णन सत्य प्रतीत होता है कि सातवीं शताब्दी के पश्चात् आठवीं शताब्दी में अंकुरित होकर दशवीं शताब्दी तक अपने नग्न रूप में फैल गया था । बौद्धों में भी तन्त्रों का प्रचार हो गया था । काश्मीर के हिन्दू तथा बौद्ध दोनों के जीवन में तन्त्र ने प्रवेश कर लिया था । हिन्दू तान्त्रिकों की दृष्टि में वे उपनेत्र है । उनका प्रचार चीन तथा तिब्बत में विशेष रूप से हुआ था ।

नादृश्यन्त च गेहिन्यो गुरुदीक्षोत्थदेवताः ।
कुर्वाणा भर्तृशीलश्रीनिषेधं मूर्धधूननैः ॥१२॥

१२. गृहिणी स्त्रियाँ गुरु दीक्षा[१] से देवत्व की भावना करके शिरःकम्पनों[२] द्वारा भर्ता के शील श्री का निषेध नहीं करती थीं ।

कार्तान्तिको भिषक्सभ्यो गुरुर्मन्त्री पुरोहितः ।
दूतः स्थेयो लेखको वा न तदाऽभूदपण्डितः ॥१३॥

१३. ज्योतिषी, वैद्य, सभ्य, गुरु, मन्त्री, पुरोहित, दूत, स्थेय[१] अथवा लेखक उस समय अपण्डित नहीं होते थे ।

पादटिप्पणी :

१२ सूक्ति संग्रह का २०० वाँ श्लोक है ।

१२ (१) गुरुदीक्षा : एक तान्त्रिक संस्कार है । पुरुष तथा स्त्री दोनों गुरु दीक्षा लेकर शिष्य तत्पश्चात् गुरु बन जाते थे । नर-नारी दोनों तान्त्रिक गुरु होते थे । स्त्रियाँ भी तान्त्रिक गुरु होती थीं । इष्टदेव के साथ गुरु का नाम भी इनके नाम के साथ जोड़ लिया जाता था । उनकी पूजा भी उनके शिष्य करते थे ।

इस दीक्षा का वर्णन राघवानन्द की पद्धति रत्न माला में दी गयी है । (जम्मू पाण्डुलिपि : संख्या ५२९३) गुरु दीक्षा तथा अन्य तान्त्रिक कार्यों में गुरु तथा आध्यात्मिक पूर्ववर्ती गुरुजनों की पूजा क्रिया करने वाला उनका नाम देवताओं के नाम के साथ लेता था । कल्हण का मत स्त्रियों के गुरु होने के विपरीत प्रतीत होता है ।

(२) शिरःकम्पन : आजकल भी निम्न श्रेणी की जातियों में स्त्रियाँ देवी किंवा देवता के सम्मुख हुबुआती है । वे केश खोलकर हाथ पैर पटकती, कण्ठ हिलाती नाना प्रकार का उच्चारण करती हैं । इसे किसी पर देवी देवता का आना किंवा चढ़ना कहते हैं । मुसलमान स्त्रियाँ मजारों के सम्मुख हबुआती हैं ।

श्लोक ११ एवं १२ में कल्हण उन लेखकों के ऊपर व्यंगात्मक आलोचना करता है जो असनातनी विचारों पर लिख कर वैदिक एवं शास्त्रीय परम्पराओं का विरोध करते थे ।

क्षेमेन्द्र ने गुरु का व्यंगात्मक चित्रण नर्ममाला में किया है । गुरु केवल कायस्थों का ही धार्मिक गुरु नहीं होता बल्कि उसकी विधवा बहन का भी गुरु होता है । वह वेश्याओं का भी गुरु होता जो उसके पास आकर अपनी सुन्दरता एवं शरीर रक्षा के लिये कवच आदि लेती हैं । वृद्ध महाजन उसके पास वाजीकरण औषधि के लिये प्रायः आता रहता है । वह ग्रामीण नापित या शल्यहृत एवं निम्नकोटि का चक्षुर वैद्य होता है ।

—नर्ममाला : ३ : १--२०; ४६--९६ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १३ में 'स्थेयो' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'विवादपरिनिर्णेता स्थेयः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३ (१) स्थेय : विवाद किंवा मुकदमों का निर्णय करने वाला न्यायाधीश ।

प्रायोपवेशाधिकृतैर्बोधितेन महीभृता ।
प्रायोपविष्टो विकटं प्रापितः कश्चिदब्रवीत् ॥१४॥

१४. प्रायोपवेशाधिकारियों के कहने पर, राजा ने उपवास करने वाले को निकट बुलाया और उपवासकर्ता उसने राजा से कहा—

अहमाढ्योऽभवं पूर्वं वास्तव्योऽत्र महीपते ।
निष्किंचनत्वं शनकैरगच्छं दैवयोगतः ॥१५॥

१५. 'हे महीपते ! पहले मैं यहीं का निवासी धनिक था ! दैव योग से धीरे-धीरे निष्कि-ञ्चन हो गया ।

उत्तमर्णैः पीडितस्य प्रवृद्धर्णस्य तस्य मे ।
निश्चयोऽभूदृणं छित्वा परिभ्रान्तुं दिगन्तरे ॥१६॥

१६. 'ऋण अधिक हो गया, ऋणदाताओं द्वारा पीडित होकर, मैंने ऋण देकर, दिगन्तर में परिभ्रमण करने का निश्चय किया ।

अथ विक्रीय सर्वस्वमृणं शोधयता मया ।
महाधनाय वणिजे विक्रीतं निजमंदिरम् ॥१७॥

१७. 'सर्वस्व विक्रय कर ऋण शोधन[१] करते हुए, मैंने महाधनी वणिक् के हाथ अपना गृह बेच दिया ।

पाठभेद :

'प्रायो' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'मृतावनशने प्रायो बाहुल्ये सदृशे त्रिषु इति कोशः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

श्लोक १४ से ४१ राजा के स्वयं विवाद सुनने और निर्णय देने का उदाहरण है ।

१४ (१) प्रायोपवेशन : शाब्दिक अर्थ होता है कि संकल्प लेकर मृत्यु पर्यन्त अनशन पर बैठ जाना । किसी के दरवाजा पर किसी कार्य की पूर्ति के लिये अन्न जल त्याग कर बैठ जाना अब भी प्रच-लित है । उसे 'धरना' कहते हैं । आजकल के इंगि-लिश शब्द हँगर-स्ट्राइक में इसके भाव का समावेश हो जाता है। काश्मीर में अनशन एवं प्रायोपवेश इतना साधारण हो गया था कि उसके लिये एक राज्या-धिकारी की नियुक्ति की गयी थी ।

प्रायः शब्दका प्रयोग किया गया है उसका मृत्यु, अनशन बाहुल्य तथा सदृश अर्थ होता है ।

श्लोक १४ से ४१ तक काश्मीर में तत्कालीन प्रचलित न्याय प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है । प्राथ-मिक न्याय के पश्चात् कोई पक्ष अपील कर सकता था । राजा अपील की अन्तिम सीमा था । न्याय करते समय प्रशासकीय विषयों के समान राजा परि-षद् द्वारा सलाह प्राप्त करता था । चाणक्य के अर्थ-शास्त्र से भी प्रकट होता है कि यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आती थी । इन श्लोकों से यह भी प्रकट होता है कि उस समय किस प्रकार बही खाता रखा जाता था ।

पादटिप्पणी :

१७ (१) ऋण शोधन : कर्ज अदा करना ।

भार्यामुद्दिश्य भर्तव्यामेक एव तु वर्जितः ।
सोपानकूपो विक्रीतान्महतो वेश्मनस्ततः ॥१८॥

१८. 'भार्या के भरण पोषण के उद्देश्य से विक्रीत, उस महान् गृह से केवल एक सोपान कूप वर्जित रखा था ।

निदाघे पुष्पताम्बूलीपर्णाद्यत्रातिशीतले ।
न्यस्यद्भिर्मालिकैर्दत्तात्सा जीवेद्भाटकादिति ॥१९॥

१९. 'निदाघ काल में अति शीतल उस स्थान पर पुष्प[1], ताम्बूली[2] पत्रादि रखने वाले मालिकों द्वारा प्रदत्त भाटक[3] से वह जीवन यापन करेगी ।

ततो दिगन्तराद्भ्रान्त्वा विंशत्या वत्सरैरहम् ।
लब्धाल्पवित्तः संप्राप्तो जन्मभूमिमिमां पुनः ॥२०॥

२०. 'उसके पश्चात् बीस वर्षों तक दिगन्तर में भ्रमण करके अल्पधन लाभ कर, मैं पुनः इस जन्म भूमि पर आ गया हूँ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९ में 'कैर्द' के लिये 'पौष्पिकैः' तथा 'भाटका' के लिये 'भाटी इति भाषपा । प्रत्यहं वेतनं भाटी' पार्श्व टिप्पणी में लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

(१) मालिकैः का अर्थ पौष्पिकैः दिया गया है ।

(२) ताम्बूल पुष्प : मलयालम शब्द विरन्त है । ताम्बूल का संस्कृत अर्थ पर्ण अर्थात् पान है । मुगल दरबार में पान सुपाड़ी प्रचलित थी । मुसलिम बादशाहों तथा रईसों के यहाँ जहाँ दावतों का वर्णन किया गया है वहाँ भोजन का क्रम ठण्डे शर्बत से आरम्भ होकर पान के साथ समाप्त होता था। यह रिवाज इतना प्रचलित हो गया था कि मुसलिम कानून का खर्च पानदान एक अंग हो गया था । काश्मीर में पान अर्थात् ताम्बूल बाहर से जाता था । तम्बूलिन (तमोलिन) का कार्य पान बनाना था । तमोली शब्द ताम्बूल का अर्थ पान को अंग्रेजी में विटल कहते हैं यह मूल शब्द पोर्चगीज है । विटल शब्द मलयालम शब्द विट्टिल का अपभ्रंश है । पान शब्द संस्कृत पर्ण का अपभ्रंश है । द्रष्टव्य : रा० : ७ : ९५४ पान सुपाड़ी देना पुरातन भारतीय परम्परा है । मुगल बादशाहों तथा दरबार ने भारतीय पान की प्रथा को अपना लिया था । वर्नियर मुगलों के रीति रिवाज का उल्लेख करते इसका भी वर्णन करता है ।

ताम्बूल काश्मीर में नहीं होता था । यह काश्मीर के बाहर से मँगाया जाता था । कुलीनता का चिन्ह माना जाता था । इससे प्रकट होता है कि वादी किस प्रकार अपने स्त्री के भरण पोषण का प्रबन्ध केवल पान द्वारा करने की आशा किया था । पान काश्मीर में महंगा पड़ता था । महंगी चीज के बिक्री से पर्याप्त आय की सम्भावना की जा सकती है । द्रष्टव्य : रा० : ७ : १९०-१९५.

स्वर्ण पनडब्बा एक अधिकारी लेकर चलता था । आवश्यकतानुसार वह देता था । जयापीड के पर्णवीटिका प्रसंग से स्पष्ट होता है कि पान खाने की प्रथा काश्मीर में व्याप्त थी । ताम्बूलिन एक सेवक था जो पान लगाता था । द्रष्टव्यः (रा० : ८ : १९४, १९४७, २०५४, २१२३, २६६१)

(३) भाटक : काश्मीरी में भाटी कहते हैं । इसका हिन्दी अर्थ किराया अथवा 'भाड़ा' होता है ।

अन्विष्यता मया साध्वी स्ववधूर्ददृशेऽथ सा ।
विवर्णदेहा जीवन्ती प्रेष्यात्वेनान्यवेश्मसु ॥२१॥

२१. 'अन्वेषण करते हुए, मैंने अपनी वधू को देखा कि वह विवर्ण देह, साध्वी दासी के रूप में जीवन यापन कर रही है ।

किं दत्तजीविकाऽपि त्वमीदृशीं वृत्तिमाश्रिता ।
मयेति सा सदुःखेन पृष्टा स्वोदन्तमब्रवीत् ॥२२॥

२२. 'जीविका देने पर भी तुमने ऐसी वृत्ति क्यों अपनायी ?''—इस प्रकार दुःख पूर्वक मेरे पूछने पर उसने अपना उदन्त (वृत्तान्त) कहा ।

सोपानकूपं संप्राप्ता त्वयि याते दिगन्तरम् ।
लगुडैस्ताडयित्वाऽहं वणिजा तेन वारिता ॥२३॥

२३. 'आपके दिगन्तर जाने के पश्चात् सोपानकूप पर मैं गयी । (किन्तु) उस वणिक् ने लगुडों[1] से मारकर वारित (भगा) कर दिया ।

तदन्या कास्त मे वृत्तिरित्युक्त्वा विरराम सा ।
तदाकर्ण्य निमग्नोऽहमन्तरे शोककोपयोः ॥२४॥

२४. 'तदतिरिक्त मेरे लिये कौन वृत्ति हो सकती है ?'—यह कहकर, वह चुप हो गयी । यह सुनकर मैं शोक एवं कोप मध्य निमग्न हो गया ।

कृतप्रायोपवेशोऽथ स्थेयैस्तैस्तैः पदे पदे ।
प्रत्यर्थिनो दत्तजयैः किमप्यस्मि पराजितः ॥२५॥

२५. 'पद पद पर प्रत्यर्थी को विजय प्रदान कर तत्-तत् (न्यायपतियों) द्वारा प्रायोपवेशन[1] कारी मैं पराजित कर दिया गया ।

जडत्वाद्वेद्मि न न्यायं न विक्रीतो मया पुनः ।
सोपानकूप इत्यस्मिन्नर्थे प्राणा इमे पणः ॥२६॥

२६. 'जड़ता के कारण न्याय (की बात) नहीं जानता हूँ । 'किन्तु मैंने सोपान कूप नहीं बेचा है ।'' इसके लिये मेरे इन प्राणों का पण (बाजी) है ।

पादटिप्पणी :

२३ (१) लगुड : छड़ी, = मुद्गर = लाठी ।

पादटिप्पणी :

२५ (१) प्रायोपवेशन : किसी कार्य के सिद्धि निमित्त किसी एक स्थान पर बैठकर उपवास अथवा अनशन करने को प्रायोपवेशन कहते हैं । किसी के द्वारपर बैठकर धरना स्वरूप किया जाता है । उस समय काश्मीर में प्रायोपवेशन इतना साधारण हो गया था कि एक राज्याधिकारी होता था जिसे प्रायोपवेशाधिकृत कहते थे । द्रष्टव्य : पादटिप्पणीः रा० : ६ : १४ जोन :

सोऽहं विपद्ये क्षीणार्थो द्वारि शास्तुस्तव ध्रुवम् ।
वृजिनादस्ति चेद्भीतिर्वस्तु निर्णीयतां स्वयम् ॥२७॥

२७. 'निर्धन मैं, शासक आपके द्वार पर निश्चय ही मरूँगा । यदि पाप से भय है, तो वस्तु (तथ्य) का निर्णय स्वयं करें ।'

राजेति तेन विज्ञप्तो दत्त्वा धर्मासनं स्वयम् ।
संघटय्याखिलान्स्थेयानासीत्तत्त्वं विचारयन् ॥२८॥

२८. उससे यह जानकर राजा स्वयं धर्मासन[1] पर जाकर अखिल स्थेयों को संघटित कर के तथ्य का विचार करने लगा ।

स्थेयास्तमूचुर्बहुशो विचार्यायं पराजितः ।
शाठ्यादगणयन्न्यायं दण्डयो लिखितदूषकः ॥२९॥

२९. बहुत से स्थेयों ने (राजा से) कहा,—'विचार कर, इसे पराजित किया है । शठता के कारण न्याय का न सम्मान करने वाला लिखित दूषक (जालियाँ) यह दण्डनीय है ।'

सोपानकूपसहितं विक्रीतं गृहमित्यथ ।
राजा विक्रयपत्रस्थान्स्वयं वर्णानवाचयत् ॥३०॥

३०. 'सोपानकूप सहित गृह बेचा' ऐसा राजा ने स्वयं विक्रय पत्रस्थ वर्णों को पढ़ा ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २८ में पाठभेद 'देवा' को 'गत्वा' पढ़ा जा सकता है ।

पादटिप्पणी :

२८ (१) धर्मासन : न्यायालय को तामिल में दणाम आसन तथा उर्दू में अदालत कहते हैं । किसी विवाद का फैसला पहले साधारण न्यायालय में होता था । राजा के यहाँ आखिरी अपील होती थी । चाणक्य ने भी अर्थशास्त्र में लगभग इसी तरह की व्यवस्था का उल्लेख किया है ।

भारतीय प्राचीन परम्परा थी कि राजा स्वयं विवादों को न तो सुनता था और न निर्णय देता था । मृच्छकटिक नाटक के अंक ९ में स्पष्ट उल्लेख मिलता है । जहाँ न्यायाधीश कहता है कि वह निर्णय करदे कि अपराध तथा विवाद क्या है । अन्य बातें राजा से सम्बन्ध रखती हैं । (आर्य चारुदत्त ! निर्णये वयं प्रमाणम् । शेषे तु राजा) न्यायालय में आये हुए विवादों की सत्य अथवा असत्य का निर्णय करना धर्म शास्त्र किंवा न्यायज्ञ का कार्य था ।

कालिदास ने (शा० : ६) धर्मासन का अर्थ न्यायालय न्यायगद्दी के रूप में किया है—न संभावित-मद्य धर्मासनमध्यासितुम् । उत्तररामचरित (१:७) में भी धर्मासन का उल्लेख मिलता है—धर्मासना द्विशति वासगृहं नरेन्द्रः ।

राजा के न्यायालय को धर्मासन, धर्मस्थान या धर्माधिकरण कहते थे । (नारद : ४ : ५ : ४६; वसिष्ठ १६ : १२)

राजा निर्णय अर्थात् फलश्रुति सुनाता था । राजा यशस्कर की उक्त न्याय प्रक्रिया इसका ज्वलन्त उदाहरण है । राजा जिस प्रकार स्वयं शासन कर नहीं सकता उसी प्रकार वह स्वयं एकाकी न्याय करने में असमर्थ था ।

ततोऽधिगतमित्येव　सभ्येषु　निगदत्स्वपि ।
अन्तरात्मा　जगादेव　नृपतेरर्थिनो　जयम् ॥३१॥

३१. उससे यही सिद्ध होता है।'—इस प्रकार के शब्दों के कहने पर, नृपति की अन्तरात्मा ने प्रार्थी का ही जय कहा।

मुहूर्तमिव　संचिन्त्य　राजाऽन्याभिरभूच्चिरम् ।
कथाभिरतिचित्राभिर्मोहयन्सभ्यमण्डलम्　॥३२॥

३२. मुहूर्त भर चिन्तन करके, राजा अति विचित्र अन्य कथाओं से सभ्य मण्डल को बहुत देर तक मोहित करता रहा।

कथान्तराले सर्वेभ्यो　गृह्णन्रत्नानि　वीक्षितुम् ।
हसन्प्रत्यर्थिनो　हस्तादुपादत्ताङ्गुलीयकम् ॥३३॥

३३. कथा के बीच सभी लोगों से देखने के लिये रत्नों को लेते हुए, हँसकर उसने प्रत्यर्थी (वणिक्) के हाथ से अङ्गुलीयक (अगूँठी) ले लिया।

क्षणादेवाखिलैः　स्थेयमित्थमेवेति　सस्मितम् ।
वचो　ब्रुवाणः　प्रययौ　पादक्षालनकैतवात् ॥३४॥

३४. 'क्षण मात्र सब लोग स्थित रहे,—उस प्रकार किंचित् हँस कर कहते हुए, (नृप) पाद प्रक्षालन के व्याज से चला गया।

अभिज्ञानाय　तत्रस्थः　स　वितीर्याङ्गुलीयकम् ।
भृत्यमेकं　वणिग्वेश्म　प्राहिणोद्दत्तवाचिकम् ॥३५॥

३५. उसने वहीं से एक भृत्य परिचय के लिये अङ्गुलीयक देकर, मौखिक सन्देश के साथ वणिक् के घर भेजा।

स　वणिग्गणनाध्यक्षं　ययाचे　साङ्गुलीयकः ।
यत्राब्दे　पत्रमुत्पन्नं　गणनापत्रिकां　ततः ॥३६॥

३६. साङ्गुलीयक उस भृत्य ने वणिक् के गणनाध्यक्ष[1] से जिस वर्ष विक्रय पत्र लिखा गया, उस वर्ष की गणना पत्रिका[2] को याचना की।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४ में 'देवा' का 'दिवा' पाठ भेद मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६ में 'गणना पत्रिका' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'गणत् बतूर इति भाषणया बही इति मध्यदेशीयाः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३६ (१) गणनाध्यक्ष = मुनीब : द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र 'नर्म माला' : १ : ९

निर्णयेऽद्य तया कृत्यमस्ति भाण्डपतेरिति ।
श्रुत्वादाद्गणनाध्यक्षस्तां गृहीताङ्गुलीयकः ॥३७॥

३७. 'वणिक् को आज निर्णय में इसकी आवश्यकता है'—यह सुनकर, गणनाध्यक्ष[१] ने अङ्गुलीयक लेकर, उसे गणना पत्रिका दे दिया ।

दीन्नाराणां दशशती तस्यां भूभृदवाचयत् ।
व्ययमध्येऽधिकरणलेखकाय समर्पिताम् ॥३८॥

३८. राजा ने व्यय मध्य पढ़ा 'दश शत दीनार[१] अधिकरण[२] लेखक[३] को समर्पित किया गया ।'

तस्मै मितधनार्हाय बहुमूल्यार्पणान्नृपः ।
रेफे सकारं वणिजा कारितं निश्चिकाय सः ॥३९॥

३९. वणिक् ने मितधन के योग्य उस (अधिकरण लेखक) को बहुमूल्य अर्पण करके 'र' के स्थान पर 'स' कराया; राजा ने यह निश्चय किया ।

---

(२) गणना पत्रिका : गणना पत्रिका को काश्मीरी भाषा में गणत वतूर तथा हिन्दी में बही कहते हैं । उनमें रोकड़ तथा खाता दोनों बहियाँ आ जाती हैं । अंग्रेजी में एकाउण्ट बुक कहा जायेगा । कैश बुक रोकड़ तथा लेजर खाता की तरह प्रयोग किया जाता है ।

पादटिप्पणी :

३७ (१) गणनाध्यक्ष : मुख्य मुनीब । हिसाब किताब रखने वाला प्रमुख व्यक्ति गणना को हिसाब अर्थात् एकाउण्टेन्सी कहते हैं । खारबेल : हाथी गुम्फा अभिलेख (ई० आई : २० ७९ तथा : २ : २ तथा ५)

पाठभेद :

श्लोक सं० ३८ में 'दीनाराणां' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'दीन्नाराः द्यार इति काश्मीरभाषया' तथा 'अधिकरणलेखकाय' के लिये पार्श्व टिप्पणी में—'यत्सन्निधौ अर्थिप्रत्यर्थिनावुभौ भूमेः क्रयविक्रयं कुरुतः । येन चावस्तरमानं क्रियते सोऽधिकरणलेखकः । अवस्तरपरिमाणलेख-पत्रकारी सर्राफ इति भाषया लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३८ (१) दीनार : दीनार या द्यार कहते हैं ।

(२) अधिकरण : न्याय कक्ष : सभा को धर्माधिकरण किंवा केवल अधिकरण कहा जाता था । (मृच्छकटिका : ९ : कादम्बरी ८५)

(३) अधिकरण लेखक : काश्मीरी में सर्राफ कहते हैं । वह नाव, भूमि आदि का क्रय विक्रय आदि लिखता था । अधिकरण लेखक भूमि का नाम तथा जाँच आदि कर लिखता था । अधिकरण लेखकों को कल्हण तथा क्षेमेन्द्र ने कायस्थ वर्ग में रखा है । भट्टहारक के अनुसार अधिकरण लेखक राज्य कर्मचारी होता था । उसके सम्मुख भूमि का क्रय-विक्रय होता था । वह भूमि नाप कर विक्रय पत्र लिखता था । आजकल के सब रजिस्ट्रार के समान यह पद था जिसके सम्मुख दस्तावेजों की रजिस्ट्री की जाती है । सब रजिस्ट्रार दस्तावेज लिखता नहीं केवल रजिस्ट्री करता है । काश्मीर में अधिकरण लेखक का काम दस्तावेज लिखना भी था । द्रष्टव्य : परिशिष्ट : 'दीनार' ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३९ में 'र्पणान्नृपः' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'अधिकरणलेखकाय दीन्नार दशशती दानात्' तथा 'रेफे' के लिये—'गृहविक्रयिणा वादिना

सभायां तत्प्रदर्श्याथ पृष्ट्वा दत्त्वाऽभयं च तम् ।
आनीय लेखकं सभ्यान्संजातप्रत्ययान्व्यधात् ॥४०॥

४०. सभा में उसे दिखाकर और लेखक को लाकर, अभयदान पूर्वक, पूछकर, सभ्यों को विश्वस्त कर दिया ।

सभ्यैरभ्यर्च्यमानेन राज्ञा सार्थं वणिग्गृहम् ।
वितीर्णमर्थिने देशात्प्रत्यर्थी च प्रवासितः ॥४१॥

४१. सभ्यों से प्रार्थित नृपति ने अर्थ सहित वणिक् गृह प्रार्थी को दिया और प्रत्यर्थी को देश से प्रवासित कर दिया ।

ब्राह्मण की कथा :

कृताह्निकं भोक्तुकामं तं दिनान्ते च भूपतिम् ।
अकालावेदनाद्बिभ्यत्क्षत्ता जातु व्यजिज्ञपत् ॥४२॥

४२. कदाचित् सायंकाल आह्निक कृत्य कर के, भोजन के लिये समुद्यत, उस नृपति से अकालिक सूचना के कारण, भयभीत होते हुए, क्षत्ता (द्वारपाल) ने कहा :

देव समाप्तकृत्योऽद्य विज्ञप्तौ श्वस्तव क्षणः ।
इत्युक्तो दर्शने प्राणत्यागो विप्रो बहिः स्थितः ॥४३॥

४३. 'देव ने आज कृत्य समाप्त कर दिया है । कल तुम्हें अवसर मिलेगा ।'—ऐसा कहने पर भी दर्शन के लिये बाहर स्थित एक विप्र प्राण त्याग के लियें उद्यत था ।'

विक्रय पत्रे लिखितः । सोपान कूपरहितं विक्रीतं गृहमिति । ततस्तेन लुब्धेन वणिजा प्रत्यर्थिना रेफविषये सकारः कारितः अधिकरणलेखकहस्तेन । उत्कोचः दीन्नार दशशत्याख्यं दशकूपसहितं गृहं विक्रीतमिति लेखितं । ततोऽनन्तरं राज्ञानुमतिलेखपत्रचित्रणार्थं किमर्थ दीन्नारदशशती बहुमूल्यत्वादिति । रेफस्य सकार एव कृतोऽनेन इति । लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४० (१) अर्थिन : विज्ञप्ति करना । पार्श्वटिप्पणी में 'विज्ञप्तिकराय' देकर अर्थ स्पष्ट किया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४१ में 'मर्थिने' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'विज्ञप्तिकराय' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

श्लोक सं० ४२-५६ राजा के निर्णय का दूसरा उदाहरण है ।

४२ (१) क्षत्ता द्वारपाल : क्षत्ता को दासी पुत्र भी कहा जाता है । उस वर्णसंकर को कहते हैं जो क्षत्रिय माता एवं शूद्र पिता से होता था । (मनु : १० : ९)

श्लोक संख्या ४२-५६ में राजा के सम्मुख प्रायोपवेशकारी के विवाद के निर्णय की प्रक्रिया उपस्थित करता है ।

प्राचीन रोमन न्याय प्रथा में लेख पत्र किंवा प्रतिज्ञादि के शर्तों एवं शब्दों का कठोरता के साथ पालन एवं अर्थ किया जाता था । यही बात राजा यशस्कर के समय स्थेयों किंवा न्यायाधीशों ने किया था ।

दत्तप्रवेशादेशोऽथ रुद्धसूदेन भूभुजा ।
द्विजः प्रविष्टः पृष्टश्च तीव्रार्तिरिदमब्रवीत् ॥४४॥

४४. राजा ने सूद (रसोइया = पाचक) को रोक कर प्रवेश कर, आदेश दे दिया । प्रविष्ट द्विज से पूछने पर, उसने बड़े कष्ट से कहा—

सुवर्णरूपकशतं भ्रान्त्वा देशान्तरेऽर्जितम् ।
गृहीत्वा श्रुतसौराज्यः स्वदेशमहमागतः ॥४५॥

४५. 'देशान्तर भ्रमण करके अर्जित, शत स्वर्ण मुद्रायें लेकर, स्वदेश में सौराज्य सुनकर मैं आया ।

त्वयि राजनि निश्चौरैरध्वभिर्विशतः सुखम् ।
ह्योऽभवल्लवणोत्से मे दिनान्ते श्राम्यतः स्थितिः ॥४६॥

४६. 'आपके राज शासन में चोर भय रहित मार्गों से आते हुए, श्रान्त मैंने कल दिन के अन्त में लवणोत्स[1] में निवास किया ।

दीर्घाध्वलङ्घनक्लान्तस्तत्राहमकुतोभयः ।
मार्गारामतरोर्मूले त्रियामामत्यवाहयम् ॥४७॥

४७. 'दीर्घ मार्ग लंघन करने से क्रान्त मैं अकुतोभय[1] होकर मार्ग के एक आराम तरु मूल में रात्रि व्यतीत किया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ४४ में 'पृष्टश्च' का पाठ भेद 'पृष्टोऽथ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४५ (१) स्वर्णमुद्रा : आइने अकबरी में ब्राह्मण की कथा दी गयी है—यशस्कर देव के राज्य में एक ब्राह्मण था । उसके झोले में एक शत स्वर्ण मुहरें थीं । वह खो गयीं । वह इतना दुःखी हुआ कि आत्म हत्या करने पर उद्यत हो गया । चोर वह सुनकर उसके पास गया और बोला—'यदि मैं तुम्हारे मुहरें खोज दूं तो कितने से तुमको सन्तोष हो जायेगा ? ब्राह्मण ने कहा 'तुम जितना दे दोगे ।' चोर ने उसे दश मुहर देकर शेष ले लिया । ब्राह्मण राजा के पास न्याय हेतु आया । राजा ने चोर को बुलाया । उसे ९० मुहरें लौटाने के लिये कहा कि वह अपने परिश्रम के लिये केवल १० मुहरें पाने का अधिकारी है ।" (पृष्ठ : ४३७) कल्हण की बात को ही दूसरे शब्दों एवं बिगड़े रूप में अबुल फजल ने लिखा है ।

पादटिप्पणी :

४६ (१) लवणोत्स : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : १ : ३२९ ।

पादटिप्पणी :

४७ (१) अकुतोभय : भयरहित = सुरक्षित = जिसे किसी ओर से भय की शंका न हो । 'मादृशानामपि अकुतोभयः संचारो जातः— । (उत्तर : २) उत्तररामचरित में पुनः यह शब्द प्रयुक्त किया गया है—यानि त्रीण्यकुतोभयानि च पदान्यासन्खरायोधने (उत्तर : ५ : ३५)

वेतनं ग्रन्थिबद्धं तदुत्थास्नोरपतन्मम ।
अरघट्टे समीपस्थे कक्षयोगादलक्षिते ॥४८॥

४८. 'वहाँ उठते हुए, मेरे कक्षयोग से ग्रन्थिबद्ध वेतन अलक्षित निकटवर्ती अरघट्ट¹ (रहट) में गिर गया ।

तस्मिन्दुरवरोहेऽतिनिर्वसुत्वाज्जहद्वपुः ।
सोऽहं हारितसर्वस्वः शोचन्नुद्धश्चिरं जनैः ॥४९॥

४९. 'सर्वस्व गवाँ कर, शोक करते हुए, मैंने जब अति निर्धन होने के कारण उस दुरवरोह कूप में कूदना चाहा, तब लोगों ने रोक लिया ।

एकोऽध्यवसितः कोऽपि साहसे पुरुषोऽब्रवीत् ।
मह्यं दापितवित्ताय किं ददासीति मां ततः ॥५०॥

५०. 'तत्पश्चात् किसी एक साहसी पुरुष ने मुझसे कहा—'धन देने पर मुझे क्या दोगे ?'

तमस्म्यवोचं विवशस्तस्यार्थस्यास्मि कः प्रभुः ।
तुभ्यं यद्रोचते मह्यं तत्ततो दीयतां त्वया ॥५१॥

५१. 'विवश होकर, मैंने उससे कहा,—'उस धन पर मेरा प्रभुत्व क्या रह गया है तुम्हें जो अच्छा लगे, उसमें से वह मुझे देना ।'

अवरुह्याधिरूढोऽथ रूपकेभ्यो द्वयं मम ।
स प्रादात्स्पष्टमेवाष्टानवतिं स्वीचकार तु ॥५२॥

५२. 'उसमें उतर कर, निकालने पर, रुपयों में से उसने दो रुपया मुझे दिया । स्पष्ट है उसने ९८ स्वयं ले लिया ।

व्यवहारा वचोनिष्ठा एव राज्ञि यशस्करे ।
निन्दन्व्यवस्थां तां लोकैर्न्यक्कृतोऽस्मीति वादिभिः ॥५३॥

५३. 'उस व्यवस्था की निन्दा करते हुए, लोगों ने मुझे यह कहते हुए, न्यक्कृत कर दिया—'राजा यशस्कर के शासन में वचन निष्ठ व्यवहार होता है ।'

पाठभेद :

श्लोक सं० ४८ में 'न्मम' का पाठ भेद 'तद्भुवि' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

४८ (१) अरघट्ट : रहट, परिशियन व्हील, आदि इसके प्रचलित नाम हैं । द्रष्टव्य पाद टिप्पणी रा० : १ : २८४ 'यन्त्र' ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५० में 'से' का पाठभेद 'सी' तथा 'वित्ताय' का 'दापितलब्धाय' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ५३ में 'वचोनिष्ठा' के लिये पार्श्व

उपचारोक्तिसारल्यच्छलहारितवेतनः ।
सोऽहं जहाम्यसून्द्वारे दुर्व्यवस्थापकस्य ते ।।५४।।

५४. 'उपचार कथन की सरलता के कारण, छल से मेरा धन ले लिया गया है। मैं दुर्व्यवस्थापक आपके द्वार पर प्राण त्याग करता हूँ।'

पुंसस्तस्य स राज्ञाऽथ पृष्टः प्रकृतिनामनी ।
वदनप्रत्यभिज्ञैव ममास्तीत्यभ्यभाषत ।।५५।।

५५. राजा के उस पुरुष का प्रकृति एवं नाम पूछने पर, उसने कहा—'मुझे (उसके) बदन की ही पहिचान है।'

प्रातस्तयेप्सितावाप्तिं करिष्यामीति भूभुजा ।
प्रतिज्ञाय कथंचित्स स्वपार्श्वे कारितोऽशनम् ।।५६।।

५६. 'प्रातः तुम्हारी अभीष्ट की पूर्ति करूंगा—ऐसी प्रतिज्ञा करके, राजा ने किसी प्रकार अपने समीप (उसे) भोजन[1] कराया।

लवणोत्सौकसां दूताहूतानां स विशां ततः ।
स्थितमन्तर्द्विजोऽन्येद्युस्तं राज्ञेऽदर्शयन्नरम् ।।५७।।

५७. दूसरे दिन दूत द्वारा, आहूत लवणोत्स निवासी लोगों के मध्य स्थित उस पुरुष को उसने राजा को दिखाया।

पृष्टः स राज्ञा विप्रेण यथैवोक्तं तथैव तत् ।
सर्वमूचे वाक्प्रतिष्ठं व्यवहारमुदीरयद् ।।५८।।

५८. राजा के पूछने पर उसने जिस प्रकार विप्र ने कहा था, उसी प्रकार सब कुछ यह कहते हुए, कहा—'उसका व्यवहार वाक्य प्रतिष्ठा के अनुरूप था।'

टिप्पणी में 'वचसि वाक्य एव निष्ठा येषां। न तु न्यायविचारणे इति व्यवस्थां निन्दन्' लिखा मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५४ में 'सारल्यच्छ' का पाठभेद 'सारल्येच्छे' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ५५ में 'सैव' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'वदनमेव केवलं तदीयं विदितं मम न तु नाम प्रकृती इत्यर्थः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

५६ (१) भोजन : राजा स्वयं काश्मीरी ब्राह्मण था। अतएव उसे साथ भोजन कराने में संकोच न होना ठीक ही है। साथ ही वह राजा की महानता भी प्रकट करता है। राजा के ब्राह्मण होने का वर्णन (रा० : ५ : ४६९—४७५) किया गया है।

पादटिप्पणी :

५७ (१) लवणोत्स : द्रष्टव्य : रा० : १ ३३९; ४ : ४६, ५७, तथा ७ : ७६२, १५३७, १६५८,

सत्यवाक्पारतन्त्र्यस्य वस्तुवृत्तस्य चान्तरम् ।
अलक्षयन्तः प्रैक्षन्त दोलाकुलधियो धराम् ।।५९।।

५९. सत्य वाणी की परतन्त्रता एवं वस्तु वृत्त का अन्तर न देखते हुए दोलाकुलित[1] बुद्धि (सभ्य जन) धरा देखने लगे थे ।

धर्मासनस्थो राजाऽथ रूपकाणामभाषत ।
तमष्टानवतेः पात्रं विप्रमन्यं द्वयस्य तु ।।६०।।

६० धर्मासना[1]सीन राजा ने कहा—'वह विप्र ९८ रुपयों का और अन्य साहसी दो रुपयों का पात्र है ।'

अनुयोक्तृञ्जगादापि दुःसंचिन्त्या महात्मनः ।
धर्मस्याधर्ममुद्वृत्तं निहन्तुं धावतो गतिः ।।६१।।

६१. (राजा ने) जिज्ञासुओं से कहा,—'उद्धत अधर्म को निहत करने के लिये, दौड़ते धर्म की गति अचिन्त्य होती है ।

सायं हुताशं प्रविशन्नम्मयं चेन्दुमण्डलम् ।
स्वतेजसा संविभजन्प्रदीपैर्ज्योत्स्नयाऽप्यसौ ।।६२।।

६२. 'सायं काल (हुताश) अग्नि[१] एवं (आप[२]) जल मय चन्द्र मण्डल में प्रवेश करते तथा अपने तेज को संविभक्त करते हुए प्रदीपों एवं ज्योत्स्ना के द्वारा वह—

पादटिप्पणी :

५९ सूक्ति संग्रह का २०१ वाँ श्लोक है ।

५९ (१) दोलाकुलित : अनिश्चित अथवा द्विधा में पड़े सभ्य जिनकी बुद्धि झूला की तरह झूलती थी और स्थिर नहीं हो रही थी । दोल शब्द का प्रयोग कल्हण ने रा० : ५ : १३० में किया है ।

पादटिप्पणी :

६० (१) धर्मासन : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ६ : २८ धर्माधिकरण तथा केवल अधिकरण शब्द भी न्यायालय के लिये प्रयुक्त होता रहा है । (मृच्छकटिकः ९) कौटिल्य ने कचहरियों के लिये धर्मस्थीय शब्द का प्रयोग किया है । (३ : १) वसिष्ठ ने इसे 'धर्मस्थान' तथा 'सदस्' भी लिखा है । (१६ : २)

(२) रूपक : रुपयों का सर्व प्रथम उल्लेख कल्हण ने इस स्थान पर किया है । भारत में रुपया प्रचलित मुद्रा थी । काश्मीर में दीनार आदि मुद्रायें चलती थीं । रुपये के प्रयोग से निष्कर्ष निकलता है कि ब्राह्मण भारत से रुपया अर्जित कर स्वदेश काश्मीर लौटा था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६२ 'म्मयं' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'आप्यं' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६२ यह सूक्ति संग्रह का २०२ वाँ श्लोक है ।

६२ (१) अग्नि : माना जाता है कि सूर्य अपना प्रकाश प्रदीपों में प्रवेश करता है । अग्नि पूजा वैदिक काल से ही भारत में प्रचलित है । अग्नि

तदुत्थाय यथा भानुर्निहन्ति ध्वान्तमुद्धतम् ।
अनन्यकर्मा धर्मोऽयं तथाऽधर्मं व्यपोहति ॥६३॥युग्मम्॥

६३. 'भानु जिस प्रकार उठ कर, उद्धत ध्वान्त (अन्धकार) नष्ट करता है, उसी प्रकार अनन्यकर्मा यह धर्म अधर्म को नष्ट करता है ।

दुःसंलक्ष्यस्तु धर्मोऽसावधर्मं बाधतेऽञ्जसा ।
तिष्ठन्नित्यमधिष्ठाय दाह्यं काष्ठमिवानलः ॥६४॥

६४. 'दुर्लक्ष्य यह धर्म अधर्म को शीघ्र ही उसी प्रकार नष्ट करता है, जिस प्रकार अनल, नित्य निकट रहकर दाह्य काष्ठ को (दग्ध) नष्ट कर देता है ।

ददाति यद्भवान्दत्तां तदित्याद्युक्तमुज्झतः ।
तुभ्यं रोचत इत्यादि वचोऽस्य निःसृतं तदा ॥६५॥

६५. "आप जो देते है वह दें",—यह बात कहते हुए, इसके मुख से उस समय—'तुम्हें जो रुचे' इत्यादि वचन निकल गया ।

रुचितास्य बभूवाष्टानवतिर्लोभिनोऽस्य ताम् ।
नादादस्मायरुचितं रूपकाणां द्वयं ददत् ॥६६॥

६६. 'लोभी इस विप्र को ९८ रुपया अभीष्ट था, (किन्तु) इसे वह रुपया न देकर, अरुचिकर दो रुपया दिया ।'

इत्यादिसूक्ष्मेक्षिकया धर्माधर्मान्तरं विदन् ।
प्रत्यवेक्षापरः क्ष्माभृद्व्यधात्कृतयुगोदयम् ॥६७॥

६७. प्रत्यवेक्षा[1] तत्पर नृपति ने इस प्रकार ऐसे सूक्ष्मेक्षिका[2] द्वारा धर्म का अन्तर ज्ञान करते हुए कृतयुग का उदय कर दिया था ।

पवित्र देवता माने जाते है । अग्नि के प्रयोग का मूल रूप अज्ञात है । सलाई, चकमक, बिजली, पत्थर आदि के अभाव में अग्नि को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाता था । आर्यों में अग्निहोत्र का महत्त्व था । पारसी, रोम तथा भारत में अग्नि की रक्षा की जाती थी कि वह बुझने न पाये ।

पादटिप्पणी :

६३ सूक्ति संग्रह का २०३ वां श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६४ में 'न्नित्यम' का पाठभेद 'तिष्ठ निष्टम' मिलता है ।

६४. सूक्ति संग्रह का २०४ वां श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

६७ (१) प्रत्यवेक्षा : सब बातों पर ध्यान, देखरेख, किंवा निगरानी रखने वाला अर्थ होता है । कालिदास ने इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है :

भव्यमुख्याः समारम्भः प्रत्यवेक्ष्या निरत्ययाः ।
गर्भशालिसधर्माणस्तस्य गूढं विपेचिरे ॥ रघुवंशः १७ : ५३ ॥

(२) सूक्ष्मेक्षिका : तीव्र दृष्टि = पैनी दृष्टि बारीकी से सब बातों को देखने समझने में समर्थ ।

इत्थं जनं स विनयन्हास्योऽभून्निजदुर्नयैः ।
परस्योपदिशन्पथ्यमपथ्याशीव रोगहृत् ॥६८॥

६८. इस प्रकार वह जनता को विनीत करते हुए, अपनी दुर्नीतियों के कारण उसी प्रकार, हास्यास्पद हो गया, जिस प्रकार दूसरे को पथ्य का उपदेश करते हुए, कुपथ्य भोजी वैद्य ।

श्रोत्रियेणेव तेनापि मृदम्भःशौचशालिना ।
डोम्बोच्छिष्टभुजो भृत्याः पार्श्वान्न परिजह्रिरे ॥६९॥

६९. श्रोत्रिय (वैदिक) तुल्य मृत्तिका एवं जल से पवित्र उसने डोम्ब के उच्छिष्ट[1] भोजी भृत्यों को (अपने) समीप से नहीं छोड़ा ।

यथोत्तरं संश्रितार्थैरन्योन्यं पृष्ठपातिभिः ।
नगराधिकृतैश्चक्रे चतुर्भिः सोऽर्थसंग्रहम् ॥७०॥

७०. एक दूसरे के अनुगमन पूर्वक अधिक धन संग्रह करने वाले चार नगराधिकृतों[1] द्वारा उसने (प्रचुर) धन संग्रह किया ।

पादटिप्पणी :

६८ सूक्ति संग्रह का २०५ वां श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६९ में 'येणेव' का पाठभेद 'येणैव' तथा 'भृत्याः' का 'भृत्यान्पा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

६९ (१) उच्छिष्ट : जूठा, बचा, त्यक्त तथा भोजन का शेषांश । द्रष्टव्य रा० : ५ : ३८८ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७० में 'तैश्चक्रे' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'सोर्थसंहट्टरक्षिभिः' तथा 'सोथ सं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७० (१) नगराधिकृतैः = एक पाण्डुलिपि की पार्श्व टिप्पणी में 'नगराधिकृतैः' का अर्थ 'हट्टरक्षिभिः' दिया गया है । हट्ट अर्थात बाजार का रक्षक नगराधिकारी नहीं था । सम्भव है प्रतिलिपिकार के समय में हट्ट अर्थात् बाजार अधिकारी से इसका अभिप्राय लगाया गया है । परन्तु कल्हण का तात्पर्य सर्वथा इसके विपरीत है ।

श्रीनगर का अधिकारी वर्तमान प्रशासकीय सिटी मजिस्ट्रेट या प्रिफेक्ट समीपस्थ अर्थ होता है ।

राजाओं के क्रमागत इतिहास एवं परम्परा में श्रीनगर के केवल एक नगराधिकृत किंवा नराधिप का उल्लेख मिलता है । (रा० : ६ : २९६, ७ : १०८, ५८०, १५४२; ८ : २१६. ६३२, ८१४, ८३८, १४५९) राजा यशस्कर के समय में चार नगराधिकारी नियुक्त किये गये थे कि राज्य की आमदनी बढ़ायें । वे परस्पर स्पर्धा करके बढ़ी हुई आमदनी में से अपना पुरष्कार लेते थे ।

नगराधिकारी को अधिकार दिया गया था कि वह नवीन कर तथा आर्थिक दण्ड लगा सकता था । (रा० : ८ : ३३३४) आवश्यक किंवा वित्तीय वसूली सुविधा के लिये नगर को भागों में विभाजित कर दिया जाता था । यह प्रथा काश्मीर में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक चलती रही है । (वैली : ४२१) कर्कोट राज वंश के समय नगराधिकारी ही प्रतीत होता है कि नगराधिकृत था ।

लेभिरे निधनं तस्मात्सत्यंकारात्पदातयः ।
श्रीरणेश्वरपीठाग्रन्यस्तखड्गादपि प्रभोः ।।७१।।

७१. श्री रणेश्वर[1] पीठ के समक्ष खड्ग न्यस्त[2] कर भी, उस सत्यंकारी[3] प्रभुने पदातियों का निधन किया ।

स ज्येष्ठे भ्रातरि मृते तथाऽभून्मुदितश्चिरम् ।
तदुपज्ञं यथा प्राज्ञैस्तत्रोत्प्रैक्षि रसार्पणम् ।।७२।।

७२. ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु पर, वह चिरकाल तक, इस प्रकार प्रसन्न हुआ, जिससे उसके सम्बन्ध में प्राज्ञों ने ऐसो उत्प्रेक्षा की कि, विष प्रदान तत् कृत है । (विष उसने दिया था) ।

नीतस्य मण्डलेशत्वं वेलावित्तस्य भूभुजा ।
देवीः कामयमानस्य चक्रे गजनिमीलिका ।।७३।।

७३. राजा ने देवियों (महरानियों) के प्रणयी वेलावित्त[1] को मण्डलेश्वर[2] पद पर नियुक्त कर, उसके प्रति गजनिमीलिका[3] (देखकर भी अनदेखा) तुल्य व्यवहार किया ।

पादटिप्पणी :

७१ (१) रणेश्वर : द्रष्टव्य टिप्पणियाँ : रा० : ३ : ४५३ ।

(२) न्यस्त : राजा यशस्कर के कुछ उग्र उपायों का उल्लेख किया गया है । किस प्रकार अनेक विप्लवों तथा उत्पातों के उत्तरदायी तन्त्रियों पर नियन्त्रण किया था । किसी देवता के सन्मुख अस्त्र रख देने का अर्थ था कि अस्त्र अर्पणकर्ता पुनः अस्त्र-शस्त्र न तो धारण और न उनका प्रयोग करेगा । यह एक प्रकार की प्रथा थी जिससे सैनिक किंवा आयुधधारी अपने सैनिक किंवा सामरिक जीवन को त्याग देता था । जगत् के कामों से वैराग्य लेने की यह एक प्रथा थी । द्रष्टव्य : ६ : ९८, १०० २०६ । शस्त्र न्यस्त करने वाला एक प्रकार से घोषणा करता है कि शस्त्र त्याग कर वह शान्ति का इच्छुक है । युद्ध काल में हथियार रख देने का अर्थ शान्ति कामना करना है ।

शत्रुता त्याग कर मित्र बनने की इच्छा से मध्य-युग तथा कुछ समय पूर्व तक पराजित सेनापति अपनी कृपाण विजेता को अर्पित कर देता था । उसका तात्पर्य होता था । वह शान्ति एवं मैत्री का इच्छुक है ।

(३) सत्यंकार : इस विशेषण के लिये तुलनीय : रा० : ७ : ५६१; ८ : २२९१ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७२ में 'मुदितश्च' का पाठभेद 'भूदुदित्त' 'तदुपज्ञं य' का 'तदुपज्ञैर्य' तथा 'त्प्रेक्षि' पाठभेद 'त्रोत्प्रेक्षि' तथा 'रसा' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'भुवा' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७२ (१) उत्प्रेक्षा : अनुमान लगाना यहाँ अर्थ है । एक अलंकार भी है ।

(२) विष : कल्हण ने 'रसा' शब्द का प्रयोग किया है । रसा का सभी अनुवादकों ने विष ही अनुवाद किया है । रसा का अर्थ पाढ़ अम्बष्ट तथा शल्लवचा का भी नाम है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ७३ में 'वेलावित्तस्य' के लिये पार्श्व-टिप्पणी में 'एतन्नामकसचिवस्य' तथा 'एतन्नामक' तथा 'गजनिमीलिका' का 'उपेक्षा कृता इत्यर्थः' लिखा मिलता है ।

रागाच्छुद्धान्तकान्तानां मूर्धानमधिरोपिता ।
लल्ला नामाभवत्तस्य वेश्या वैवश्यकारिणी ।।७४।।

७४. लल्ला नाम्नी वेश्या को राग वश, (नृपति ने) अन्तःपुर की कान्ताओं के ऊपर प्रतिष्ठित किया, जिसके वश में विशेष रूप से हो गया था ।

अवकाशः सुवृत्तानां हृदयान्तर्न योषिताम् ।
इतीव विहितो धात्रा सुवृत्तो तद्बहिः कुचौ ।।७५।।

७५. योषिताओं के हृदय में सुवृत्त[1] (सदाचार) के लिये अवकाश नहीं होता है, अतएव विधाता ने सुवृत्त (सुगोल) कुचों को उस (हृदय) से बाहर कर दिया ।

पादटिप्पणी :

७३ (१) वेलावित्त : सम्भवतः इस नामका एक सचिव होता था । इसका निश्चयात्मक अर्थ करना कठिन है । एक निकट सेवक के लिये इस शब्द का प्रयोग किया गया है । एक वेलावित्त राजा के साथ चिता पर परम राज भक्त सेवक रूप में अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया था । श्री पण्डित ने वेलावित्त का अर्थ राजकीय शकुनविद् या भवितव्य ख्यापक एवं श्री स्तीन ने इस शब्द का कोई अर्थ न कर मूल शब्द रख दिया है । एक मत है कि वेला अर्थात् समय बताने वाला का नाम वेलावित्त था । कुछ अनुवादकों ने पार्श्व टिप्पणी के आधार पर वेलावित्त को सचिव नाम वाचक माना है । (द्रष्टव्य रा० : ५ : २२)

(२) मण्डलेश : मण्डल का स्वामी । मण्डल एक प्रशासकीय इकाई थी । इसे जिला तथा कहीं सूबा माना गया है । मण्डलेश, मण्डलेश्वर, मण्डलेशिन् आदि शब्द पर्यायवाची हैं । वह शब्द राज्यपाल, सूबेदार तथा गवर्नर के अर्थ में (रा० : ७ : ९९६; ८ : १२२८ १८१४, २०२९) प्रयोग किया गया है । शुक ने सामन्त, माण्डलिक, राजा तथा महाराजा की परिभाषा आयके आधार पर किया है । एक लाख कर्ष जहाँ राजा का भाग संचित होता था उसे सामन्त तथा जहाँ तीन लाख वर्ष राजा का भाग होता था उसे माण्डलिक कहते थे । यह विभाजन आय की दृष्टि से है न कि भूमि की सीमा अथवा माप से । सह्याद्रि खण्ड (उत्तरार्ध अध्याय : ४) में १०० गाँवों से मिलकर देश तथा ४ देश मिलकर मण्डल बनता था । काम्बे के अभिलेख सन् ९३० ई० से प्रकट होता है कि देश का एक खण्ड मण्डल था । बनगढ़ के महिपाल प्रथम तथा अमगची के विग्रहपाल तृतीय के अभिलेखों से पता चलता है कि मण्डल की सीमा विषय किंवा विश्य से कम थी । काश्मीर में विषय किंवा विश्य परगना को कहते थे । भारत में एक प्रदेश किंवा एक राज्य के मण्डल की परिभाषा दूसरे राज्य के समान तथा भिन्न दोनों हो सकती है ।

पादटिप्पणी :

७५ सूक्ति संग्रह का २०६ वां श्लोक है ।

७५ (१) सुवृत्त : यह शब्द श्लिष्ट है । इसका अर्थ सदाचार किंवा सदाचरण तथा सुन्दराकृति भी होता है । मुख्यतः जब यह कुचों के लिये प्रयोग किया जाता है ।

उत्तमाधमसंसक्तौ जानन्सदृशवृत्तिताम् ।
नारीणां शुचिबाह्यानामङ्गनात्वं व्यधाद्विधिः ।।७६।।

७६. बाहर से, पवित्र नारियों की उत्तम एवं मध्यम में समान रूप से, आसक्ति को जानते हुए, विधाता ने उन्हें अगंना[1] नाम प्रदान किया ।

सा लालिताऽपि राज्ञा यल्लल्ला ललितलोचना ।
चण्डालयामिकेनागाद्यामिनीषु समागमम् ।। ।।७७।। युग्मम् ।

७७. ललितलोचना लल्ला राजा द्वारा लालित होकर भी, यामिनी यामिक (प्रहरी) चाण्डाल के साथ समागम करती थी[2] ।

सुभगंकरणं किंचिच्चण्डालतरुणेऽभवत् ।
तं यत्प्रभावविवशा भेजे राजवधूरपि ।।७८।।

७८. चाण्डल तरुण में कुछ विशेष आकषर्ण था, जिसके प्रभाव से विवश होकर, राजवधू भी उसके ऊपर आसक्त हो गयी ।

सा वा चण्डालकुलजा स वा कार्मणकर्मवित् ।
अन्यथा संगमः किं स्यादसंभाव्यस्तथाविधः ।।७९।।

७९. या तो वह चाण्डाल कुलोत्पन्न थी, अथवा वह (चाण्डाल) तन्त्रविद्याविद् था, अन्यथा तथाविध असंभाव्य संगम क्यों होता ?

पाठभेद :

श्लोक सं० ७६ में 'मङ्गनात्वं' की जगह 'ङ्गनाख्यां' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७६ सूक्ति संग्रह का २०७ वाँ श्लोक है ।

७६ (१) अंगना : प्रशस्त अंग वाली सुन्दर रमणी को अंगना कहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ७७ में 'यामिकेन' के लिए पार्श्व टिप्पणी में 'प्रहरजागरूकेण' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७७ (१) यामिक : रात्रि में पहरा देने वाला प्रहरी यामिक कहा जाता है । प्रहर भर जागने वाला व्यक्ति । मुख्यतया अर्धरात्रि के पश्चात् पहरा देने वाले को यामिक कहते हैं । एक प्रहर तीन घड़ी का होता है ।

पाठभेद

श्लोक संख्या ७९ में 'कार्मण' लिए पार्श्व टिप्पणी में 'वशीकरण' तथा 'निगमं' के लिये 'सम्भवः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

७९. (१) कार्मण का अर्थ वशीकरण है । मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण, यह सब तंत्र के भेद है। कार्मण शब्द का प्रयोग, जादू, अभिचार आदि क्रिया के लिए भी किया जाता है—

'निखिलनयनाकर्षणे कार्मणज्ञा',

भामिनीविलास : २:७९; विक्रमांक : २:१४

सोऽभूत्केन प्रकारेण तया सह समागतः ।
इत्येष लेभे वृत्तान्तः प्रतिभेदं न कुत्रचित् ॥८०॥

८०. उसके साथ उस (चाण्डाल) का समागम, किस प्रकार हो गया, इस वृत्तान्त का भेद कहीं भी नहीं खुला ।

केवलं प्रत्यभात्तादृक्पापिनोः प्रेम तत्तयोः ।
दृग्व्यापारेक्षणात्क्षिप्रं हाडिनाम्नोऽधिकारिणः ॥८१॥

८१. उन दोनों पापियों का समागम, हाव[1] भाव[2] पूर्वक देखने के कारण, शीघ्र ही केवल हाडो नामक अधिकारी को ज्ञात हो गया ।

तमर्थमथ तथ्येन वीक्ष्य प्रणिधिभिर्नृपः ।
प्रायश्चित्तानुचरणक्षामः कृष्णाजिनं दधौ ॥८२॥

८२. गुप्तचरों द्वारा उस विषय को तथ्य पूर्वक देखकर, प्रायश्चित्त का अनुचरण करने से क्षीण, नृपति ने कृष्ण मृग चर्म धारण कर लिया ।

कुपितोऽपि स यन्नैनां न्यवधीद्रागमोहितः ।
तेनैवागात्पुरोभागिवितर्कातङ्कपात्रताम् ॥८३॥

८३. राग मोहित, कुपित होकर भी उसने जो उसका बध नहीं किया, इसी से पुरोभागियों (छिन्द्रान्वेषियों) के वितर्क एवं आतंक का पात्र बन गया ।

पादटिप्पणी :

८१ (१) हाव = स्त्रियों के सात्विक अलंकारों की संख्या सत्ताईस दी गयी है । हाव, भाव एवं हेला अंगज हैं । इनका सम्बन्ध शरीर से है । सात अलंकार अपत्तज हैं—शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य एवं धैर्य । वे कृत्रिम साधनों से साध्य नहीं होते । शेष अट्ठारह अलंकार कृति साध्य हैं—लीला, विलास, विच्छित्ति, विब्बोक, किलकिञ्चित, विभ्रम, ललित, भेद, विहृत, तपन, मौग्ध, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित, तथा कोती । साहित्य दर्पण में हाव की परिभाषा की गयी है—

भ्रूनेत्रादिविकारैस्तु संभोगच्छाप्रकाशकभावः ।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यः विकारो हाव उच्यते (३:९४)

(२) भाव = भाव की परिभाषा की गयी है—
निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया । (सा० द० : ३:३७)

(३) हाडी = इस व्यक्ति का उल्लेख पुनः नहीं मिलता । हाण्डा किवाँ हुण्डा आदि काश्मीरी ब्राह्मणों की एक उपजाति है ।

पादटिप्पणी :

८२ (१) कृष्ण मृग चर्म : घोर तपस्या के समय अथवा किसी अनुष्ठान के समय कृष्ण मृग चर्म धारणा करने का विधान है । (मिताक्षरा : ३ : ५ : २५४, २६८)

पाठभेद :

इलोक संख्या ८३ में 'यन्नैनां' का 'यन्नैनांन्यग्रहीद्' पाठभेद मिलता है ।

डोम्बोच्छिष्टानुगासङ्गादशुचित्वं यशस्करे ।
संक्रान्तं कुष्ठिसंस्पर्शात्कुष्ठं दुःखमिवाभवत् ॥८४॥

८४. कुष्ठी के संस्पर्श से कुष्ठ रोग सदृश, डोम्बोच्छिष्ट भोजी, अनुचरों के संग से, यशस्कर में अशुचिता संक्रान्त हो गयी ।

सामान्येन सता कैश्चित्सदृशैः शुभकर्मभिः ।
जन्मान्तरीयैः साम्राज्यं मया प्रापीति चिन्तयन् ॥८५॥

८५. 'सामान्य होते हुए भी, मैंने जन्मान्तरीय किन्हीं अनुरूप शुभ कर्मों से साम्राज्य प्राप्त किया'—चिन्तन करते हुए—

साम्राज्यकामो नृपतिर्भाविष्वपि स जन्मसु ।
युक्त्या प्रादान्निरातङ्कां राज्यलक्ष्मीं द्विजन्मने ॥८६॥

८६. भावी जन्म में भी, साम्राज्य की कामना से, उस नृपति ने युक्ति पूर्वक निरातंक राज्यलक्ष्मी एक विप्र को प्रदान कर दी ।

भूभुजा दानशौण्डेन पैतृके स्थण्डिले कृतः ।
छात्राणामार्यदेश्यानां तेन विद्यार्थिनां मठः ॥८७॥

८७. दानशौण्ड (निपुण) उस नृपति ने पैतृक भूमि पर, आर्य देशीय[१] विद्या अर्थी, छात्रों के लिये मठ स्थापित किया ।

मठाधिपतये तत्र छत्रचामरहासिनीम् ।
स नरेन्द्रश्रियं प्रादाट्टङ्कान्तःपुरवर्जिताम् ॥८८॥

८८. उसने वहां के मठाधिपति को टंक[१] (मुद्रालय-टंकशाल) एवं अन्तःपुर के अतिरिक्त छत्र[२] एवं चामर[३] से शोभित, राज्यश्री प्रदान किया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८६ में 'नृपतिर्भा' का पाठभेद 'कामोऽपि नृपो भा' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८७ में 'कृतः' का पाठभेद 'स्थितः' 'देश्यानां' का 'देशानां' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८७ (१) आर्यदेशीय = काश्मीर के राजा काश्मीरियों के अतिरिक्त अन्य ब्राह्मणों का आदर करते थे । काश्मीर में आर्य देशीय ब्राह्मण को राजा गोपादित्य ने गोप अग्रहार दिया था । (रा० : १ : ३४१) मिहिरकुल ने गान्धार देश के ब्राह्मणों को एक सहस्र अग्रहारों का दान किया था । (रा० : १ : ३१३) काश्मीर विद्या का केन्द्र था । वहाँ भारतवर्ष के सभी भागों गौड़ आदि से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आते थे ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८८ में 'नरेन्द्रश्रियं' का पाठभेद 'नरेन्द्राश्रितां' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

८८ (१) टंक = टंकशाल अर्थात् जहाँ मुद्रायें टंकित की जाती हैं । मुद्रा बनाने की प्रक्रिया के अर्थ का भी इसमें समावेश हो जाता है । टंकशाल के निरीक्षक को टंकपति अथवा वर्तमान प्रचलित शब्द

वितस्तापुलिने राजा नानोपकरणान्वितान् ।
ब्राह्मणेभ्यः सोऽग्रहारान्पञ्चपञ्चाशतं ददौ ॥८९॥

८९. उस राजा ने वितस्ता पुलिन पर, विप्रों को विविध उपकरण समन्वित, पचपन अग्रहार प्रदान किये।

वर्णट का अभिषेकः (सन् ९४८ ई०)

अथ जातोदरव्याधिर्मज्ञातो नायमित्यसौ ।
जानन्संग्रामदेवाख्यं परिवर्ज्य निजात्मजम् ॥९०॥

९०. उदर रोग ग्रस्त नृप—'यह मेरा औरस पुत्र नहीं है'—ऐसा जानकर, अपने पुत्र संग्रामदेव को छोड़ कर,—

समर्प्य सचिवैकाङ्गसामन्तानभ्यषेचयत् ।
रामदेवात्मजं राज्ये वर्णटं प्रपितृव्यजम् ॥९१॥

९१. प्रपितृव्य रामदेव के पुत्र वर्णट को सचिव, एकांग एवं सामन्तों को समर्पित कर, अभिषिक्त किया।

मिण्ट मास्टर है।

(२) छत्र = राजा के चिन्हों में छत्र प्रमुख चिन्ह है। छत्र प्रायः श्वेत होता था। बौद्ध जगत् में छत्र का क्या महत्त्व है। स्तूपों के ऊपर महानता प्रकट करने के लिये छत्र शिला किंवा ईंटा चूना का बनाया जाता था। द्रष्टव्य पादटिप्पणी : जोन: श्लोक ७६०; जैन: १:७:२२२, ।

(३) चामर : देवता तथा राजाओं पर चमर डुराया जाता था। चामर तिब्बती गाय (योक) के पूँछ के उज्ज्वल लम्बे बालों से बनाया जाता है। वह भी एक राज चिह्न है। द्रष्टव्य मनु : ७ : ९६, रघुवंश : ३:१६, कुमार संभव ४२, मेघदूत ३५ तथा पादटिप्पणी : जोन : श्लोक ७६०, जैन : १:७:२२२

पाठभेद :

श्लोक संख्या ८९ में 'ग्रहारान्' के लिए के पार्श्व टिप्पणी में—'काष्ठिलतीर्थविषये यशस्करस्याग्रहारा अभवन्नित्याहुः लोकाः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

८९. (१) अग्रहार = काष्ठील विषय अर्थात् परगना में सब अग्रहार थे। पार्श्व टिप्पणी के एक लेख से पता चलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ९० में 'निजा' का पाठभेद 'नृपा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

९०. सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०४९ = शक ८७० = लौकिक ४०२४ = सन् ९४८ ई०, स्तीन लौकिक = ४०२४ = सन् ९४८ ई०, त्रिवेद सन् ९४३ ई० - शक ८६५ देते हैं। सर्व श्री विलसन, ट्रोयर, पण्डित, कनिंघम तथा पीर हसन ने अभिषेक कालादिका उल्लेख नहीं किया है। श्री स्तीन उसका राज्यकाल १ दिन देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में उसका राज्य-६ दिन दिया गया है। पीर हसन ने भी राज्यकाल ६ दिन दिया है।

समसामयिक घटनाएँ :—वर्णट :

सन् ९४८ ई० देवपाल पुत्र प्रतिहार महेन्द्रपाल कन्नौज का राजा हुआ (सन् ९४८-९४९ ई०)। चि-न-ती सम्राट् चीन, ह-न वंश के पश्चात् हुआ। वर्णट काश्मीर का एक दिन के लिये राजा हुआ। यशस्कर की मृत्यु भाद्रपदमास कृष्ण पक्ष में हुई।

पादटिप्पणी :

९१ (१) वर्णट : पीर हसन लिखता है—

शक्ये राज्यादपाकर्तुं शिशावनभिषेचिते ।
निराशाः समपद्यन्त तदा राज्यजिहीर्षवः ॥९२॥

९२. उस समय राज्य से सरलता पूर्वक पृथक् करने योग्य शिशु का अभिषेक न होने पर, राज्य हरण करने के अभिलाषी निराश हो गये ।

स पर्वगुप्तकौटिल्यप्रयुक्तेरुदयोन्मुखः ।
विपाककालस्तत्राह्नि भङ्गोन्मुख इवाभवत् ॥९३॥

९३. पर्वगुप्त के कौटिल्य प्रयोग का उदयोन्मुख, वह विपाक काल, उस दिन भङ्गोन्मुख सदृश हो गया ।

राजधानीस्थितस्यापि वर्णटो राज्यदायिनः ।
आरोग्यवार्तयाप्यासीन्मुमूर्षोरनिरीक्षकः ॥९४॥

९४. राजधानी में भी स्थित, राज्य प्रदायी, मुमूर्षु नृप की आरोग्य वार्ता ज्ञात करने के लिये वर्णट नहीं गया ।

ततः सानुशयो राजा ताम्यन्प्रैर्यत मन्त्रिभिः ।
राज्यं संग्रामदेवाय दातुमाश्वासकारिभिः ॥९५॥

९५. इससे दुःखी होते पश्चात्ताप युक्त, राजा को मन्त्रियों ने संग्रामदेव को राज्य देने का आश्वासन देकर, प्रसन्न किया ।

राजाज्ञया निशामेकां बद्धोऽष्टस्तम्भमण्डपात् ।
बहिर्दत्तार्गलात्प्रातर्वर्णटो निरवत्स्यंत ॥९६॥

९६. राजाज्ञा से अर्गला युक्त अष्ट स्तम्भ मण्डप में वर्णट को एक रात्रि बद्धकर, प्रातः बाहर निर्वासित कर दिया गया ।

भयात्प्रजागराद्वापि तद्भृत्यानां विवेकिनाम् ।
आस्थानमण्डपं प्राप पायुक्षालनभूमिताम् ॥९७॥

९७. भय से अथवा जागरण के कारण अतिसार ग्रस्त, उसके भृत्यों के पायु क्षालन से आस्थान मण्डप दूषित हो गया ।

अपने चचाज़ात भाई वर्णट को वली अहद किया । वली अहद का अर्थ युवराज होता है । कल्हण उसका युवराज रूप में अभिषेक होना नहीं लिखता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ९३ में 'विपाककाल' का पाठभेद ,विपाकपाकस्त' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ९५ में 'देवाय' का पाठभेद 'देवस्य' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ९६ में 'निरवत्स्यंत' का पाठभेद 'निरवास्यत' मिलता है ।

एकाहराजपुरुषस्तदासिं विजयेश्वरे ।
व्रीडाद्देवप्रसादाख्यो राजबीजी समर्पयत् ॥९८॥

९८. एक दिन के लिये नृपति का राजवंशोय सेवक देवप्रसाद लज्जा से कृपाण को विजयेश्वर के अर्पित कर दिया ।

अथाभिषिच्य संग्रामदेवं तीव्रीभवद्व्यथः ।
स राजधान्या निर्गत्य मर्तुं निजमठं ययौ ॥९९॥

९९. संग्रामदेव[1] को अभिषिक्त कर, तीव्र व्यथा ग्रस्त होकर, वह नृप राजधानी से निकल कर, मरने के लिये, अपने मठ पर चला गया ।[2]

धीः केशश्मश्रुवपने शिरःशाटकवर्जनम् ।
काषायग्रहणोद्वेगः शस्त्रत्यागग्रहश्च यः ॥१००॥

१००. केश श्मश्रु का वपन (दाढ़ी मूँछ मुंडन) करने की बुद्धि, शिर:शाटक (शिरो-वस्त्र) त्याग, काषाय वस्त्र ग्रहण के लिये उद्वेग एवं शस्त्र त्याग के आग्रह की जो—

पाठभेद :

श्लोक सं ९८ में 'पुरुषस्तदासिं' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'एकाहं राजभूतस्य वर्णटस्य पुरुषो भृत्य' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

९९ (१) संग्रामदेव = श्री हसन लिखता है—बेटा संग्राम जो बहुत ही छोटा था, अपना वलीअहद फरमाया । (१०२) कल्हण उसका अभिषेक युवराज नहीं बल्कि राजा रूप में होना लिखता है । वलीअहद को फारसी इतिहासकारों ने युवराज पद के लिये सर्वदा प्रयोग है ।

(२) मठ : देवस्थान, तीर्थ, क्षेत्र किंवा पवित्र सरिता तटपर प्राण विसर्जन की प्राचीन परम्परा है । काशी में गंगा तट पर प्राण विसर्जन करना श्रेष्ठ माना गया है । बंगाल तथा नैपाल में अन्तिम काल आनेपर मरणासन्न व्यक्ति को नदी किंवासरोवर तटपर ले जाते हैं । बंगाली हरी बुलवाते हैं । काठमाण्डू में मरणासन्न व्यक्ति को पथरघट्टा घाट पर ले जाते हैं । कटा ढालुआ पत्थर नदी के जल में कुछ हवा बना रहता है । इस प्रकार की कई शिलाएँ मैंने अपनी नैपाल यात्रायें देखीं थीं । उसीपर मरणासन्न व्यक्ति को सुला देते थे । उसके शरीर का पैर ठिहुनी तक का जल में रहता था । शिला के शीर्ष भाग में शेषनागादि की मूर्तियाँ बनी रहती हैं । इसी अवस्था में भगवद् धुनि के साथ मानव प्राण त्याग करता था । काशी में श्मशान के समीप कई मकान इसी निमित्त बने हैं । जहाँ मरणासन्न व्यक्ति लाकर मृत्यु निमित्त रखे जाते हैं ।

देव स्थान, मठ, विहारादि में शरण लेने पर अपराधी व्यक्ति भी अपने को मुक्त समझता था । श्याम, बर्मा तथा बौद्ध देशों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है । यदि कोई अपराध करता है । बिहार अथवा वाट में जाकर भिक्षु हो जाता है तो उसे जबतक वह वाट में रहता है, गिरफ्तार नहीं किया जा सकता । बेंजेनटाइन यूनानियों में यह प्रथा प्रचलित थी । काश्मीर के हिन्दू काल में इस प्रचलित था का सम्मान किया जाता था ।

राजभृत्यैः प्रतिज्ञातः स तस्मिन्निश्चितक्षये ।
जीवत्येव कृतज्ञत्वव्यञ्जकैः परिवर्जितः ॥१०१॥ युग्मम्॥

१०१. कृतज्ञता प्रकट करने वाले राजभृत्यों ने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे (प्रतिज्ञा का) उसकी मृत्यु निश्चित होजाने पर, जीवित रहते ही त्याग दिया ।

द्वे सहस्रे सुवर्णस्य सार्धे बद्ध्वा पटाञ्चले ।
यो निर्जगाम राजासौ मुमूर्षुर्निजमन्दिरात् ॥१०२॥

१०२ वह मुमूर्षु[1] नृपति जो कि निज मन्दिर से दो सहस्र पाँच सौ स्वर्ण (मुद्रा ?) अंचल मे निबद्ध कर निकला था—

पञ्चभिः पर्वगुप्ताद्यैर्यौतकं तस्य मन्त्रिभिः ।
हृतं सजीवितस्येव विभक्त्वान्योन्यमग्रतः ॥१०३॥ युग्मम्॥

१०३. पर्वगुप्त आदि पांच मन्त्रियों[1] ने जीवित रहते ही (राजा की) निजी सम्पत्ति (यौतक[2]) को अपहृत कर उसके आगे ही परस्पर बांट लिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०१ में उक्त श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०२ में 'बद्ध्वा पटा०' का पाठभेद 'बद्धा पटा' तथा 'बद्धपटा' मिलता हैं ।

पादटिप्पणी :

१०२ (१) मुमूर्षु = मुमूर्षु अवस्था में किसी तीर्थ स्थान में प्राण विसर्जन करने की बड़ी प्राचीन प्रथा है । काशी में मरणासन्न व्यक्ति बहुत आते हैं । काशी में अमेरिका तथा यूरोप से हिन्दूओं के शव मृत्यु के उपरान्त दाह के लिए कफन में बन्द कर आते हैं । वही अवस्था प्रयाग तथा हरद्वार, अयोध्या आदि स्थानों की है । सबसे अधिक प्रसिद्धि काशी किंवा वाराणसी की है । काशी सुलभ न होने पर समीप का तीर्थ स्थान किंवा पवित्र मन्दिर अथवा पवित्र जलाशय तट पर प्राण विसर्जन पुण्य माना जाता है ।

मठों, मन्दिरों, विहारों आदि में आश्रय लेने वाला क्षम्य होता है । वह गिरफ्तार नहीं किया जा सकता था अथवा उसे राज दण्ड भी नहीं दिया जा सकता था । थाईलैण्ड तथा बौद्ध देशों में अभी भी यह प्रथा है कि वाट किंवा विहार मे शरण लेने पर वह दण्डित नहीं हो सकता था । पुरातन वाइजेण्टाइन यूनानियों में भी यह प्रथा थी । उसका रूप अब भी वकीलों के लिये अदालतों, व्यवस्थापकों के लिये व्यवस्थापिका सभाओं तथा संसद् सदस्यों के लिये संसद् भवन है जहाँ वे गिरफ्तार नहीं किये जा सकते । मैं जब संसद् सदस्य (ता० १९४५-१९६७ ई०) था तो विरोधी दल के नेताओं ने इस संरक्षण का बहुत दुरुपयोग किया था । एक सदस्य तो पालियामेण्ट भवन के फाटकपर चारपाई बिछाकर रात में सोते थे । दिन में पालियामेण्ट में रहते थे । पुलिस उन्हें गिरफ्तार नहीं कर सकती थी । द्रष्टव्य : रा० : ७ : ७०८; ८ : २३४४, ३२९४;

पाठभेद :

श्लोक सं० १०३ में 'विभज्या' का पाठभेद 'विभक्ता' 'विभक्त्वा' तथा श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१०३ (१) मन्त्री : स्वार्थान्ध, अवसरवादी,

विवेष्टमानः शय्यायां व्याधिदग्धान्तरो नृपः ।
तिष्ठन्मठाङ्गनकुटीगर्भे ध्वान्तान्धकारिते ॥१०४॥

१०४. व्याधि से दग्ध अन्तःकरण नृपति शय्या पर परिलुण्ठित होते हुए, मठ के प्रांगणस्थ अँधियारे कुटीगर्भ में स्थित था ।

अजातसंविद्भ्रंशोऽग्रे पश्यन्द्रोहपरान्निजान् ।
प्राणैरहानि द्वित्राणि न यदा निरमुच्यत ॥१०५॥

१०५. बुद्धि भ्रंश रहित, उसने सम्मुख द्रोह में तत्पर, अपने आत्मीयों को देखते हुए, जब दो तीन दिनों तक प्राण त्याग नहीं किया—

क्रूर कृतघ्न मन्त्रियों का कल्हण ने नग्न चित्रण किया है ।

(१) योगवासिष्ठ में राजा यशस्कर के मन्त्री का नाम दिया गया है किन्तु केवल पर्वगुप्त तथा वीरनाथ के नाम का ही उल्लेख है । योगवासिष्ठ में पर्वगुप्त तथा वीरनाथ का उल्लेख नहीं है । उसमें नरसिंह को यशस्कर का मन्त्री कहा गया है । उसके नगर तथा गृह का नाम दिया गया है । उसके नगर का नाम अधिष्ठान नगर (वर्तमान प्रागधिष्ठानपुर) पडरेथन दिया गया है । उसके निवास स्थान का नाम रत्नावली विहार है । योगवासिष्ठ में किसी अन्य मन्त्री का नाम नहीं दिया गया है । मेरा मत है कि योगवासिष्ठ यशस्कर राजा के समय में लिखा गया था । अन्यथा उसका उल्लेख उसमें न होता । योगवासिष्ठ के काल लेखन स्थान आदि के विषय में अपनी अन्य पुस्तक 'योगवासिष्ठ का काल तथा लेखन स्थान' पर प्रकाश डालूँगा । मैं समझता हूँ कि योगवासिष्ठ काश्मीर में लिखा गया था । यशस्कर के समय में ब्राह्मणों का महत्त्व मिलता है । उसके समय में पुराने शास्त्रों का शोधन किया गया था । वह स्वयं एक धार्मिक प्रवृत्ति का पुरुष था । उन दिनों बौद्ध धर्म का प्राबल्य भारत में नहीं था । उसका प्रचलन काश्मीर में था । हिन्दू तथा बौद्धधर्म दोनों माने जाते थे । काश्मीर के राजाओंने हिन्दू तथा बौद्ध दोनों धर्मों के मन्दिरों का निर्माण कराया था । अतएव नरसिंह के रहने का स्थान रत्नावली विहार कहा गया है । योगवासिष्ठ स्थिति प्रकरण सर्ग ३२ श्लोक १८–२१

(२) यौतक : यौतक का उल्लेख मनु० (९: १३१) ने किया है । माता का यौतक अविवाहित कन्या को प्राप्त होता है इसका वर्गीकरण स्त्रीधन में किया जाता है । शास्त्रों में यौतक को वह स्त्री धन माना है जिसे स्त्री विवाह के समय जब पति के साथ बैठती है उस समय जो भी कोई उसे उपहार आदि स्वरूप देता है उसकी गणना यौतक में की जाती है । इसका मूल 'युत' है । युतियुक्त जब वह रहती है । मेधातिथि तथा मनु यौतक स्थान को स्त्री का अपना धन मानते हैं । वह उसकी निजी सम्पत्ति होती है । देवस्वामी, 'यु' का अर्थ अलग करते हैं । वह धन जो स्त्री अलग से अपने पिता आदि से पाती है । क्योंकि वह धन पति की सम्पत्ति से अलग होता है । विवाद चन्द्रिका में पिता तथा अन्य लोगों के द्वारा विवाह के समय दिये गये उपहार की संज्ञा यौतक से देते हैं । यौतक एवं युवक दोनों शब्द समानार्थक हैं ।

तदा सुहृद्बन्धुभृत्यवेलावित्तैः कृतत्वरैः ।
जिहीर्षुभिश्च साम्राज्यं विषं दत्त्वा विपादितः ।।१०६।।

१०६. उस समय साम्राज्य अपहरण करने के अभिलाषी, सुहृद्, बन्धु, भृत्य, एवं वेला-वित्तों ने शीघ्र ही (उसे) विष देकर मार डाला ।

अवरोधवधूमध्यात्सती तं पतिमन्वगात् ।
एका त्रैलोक्यदेव्येव स्वप्रभेव विरोचनम् ।।१०७।।

१०७. अवरोध[1] बधुओं में से केवल एक सती त्रैलोक्यदेवी ने ही उस पति का उसी प्रकार अनुगमन किया, जैसे सूर्य की प्रभा सूर्य का अनुगमन करती है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०६ में उक्त श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१०७ (१) अवरोध वधू : श्री स्तीन ने अवरोध वधू का अर्थ 'लेडीज़ ऑफ सेरग्लियो' अन्तः-पुर की स्त्रियों, श्री सीताराम पण्डित : 'किंग्स वाइव्स' राजा की पत्नियों, श्री होरीलाल शास्त्री ने 'अन्तः-पुरिका गणेर मध्ये केवल त्रैलोक्य देवी' श्री द्विवेदी ने 'अन्तःपुर की स्त्रियों' श्री लेले ने 'अन्तःपुरोतील स्त्रियाँ, रामतेज शास्त्री 'अन्तःपुर में बहुतेरी रानियाँ थीं', अनुवाद किये हैं । किन्तु अवरोध वधू का अर्थ सबसे भिन्न है । मैंने अवरोध वधू ही शब्द रखा है । समष्टि रूप से राजा की रानियों के लिये इस शब्द का प्रयोग किया जाता है ।—अवरोधे महत्यपि— । रघुवंश : १ : ३२, ४ : ६८, ८७, ६ : ४८ अवरुद्ध स्त्री का प्रचलित अर्थ है वह स्त्री जिसे कोई अपने घर रख लेता है । वह प्रायः सवर्ण स्त्रियाँ होती हैं ।

अवरुद्ध स्त्री, अवरुद्ध दासी शब्दों तथा उनके सम्बन्ध में भरण पोषण का उल्लेख मिलता है । अवरुद्ध स्त्री एक प्रकार की रखनी होती है । उनका विवाह नियमतः नहीं होता परन्तु वे केवल एक पुरुष के साथ ही रहती हैं । वे उसकी मृत्यु के समय तक उसके साथ रहती हैं । उनका सम्बन्ध पत्नी के समान एक बार हो जाने पर अन्त तक रहता है । अवरुद्ध दासी का स्थान भुजिष्या से भिन्न होता था । अवरुद्ध दासी भी केवल एक पुरुष से मृत्यु पर्यन्त रहती थीं । स्त्री एवं वधू में अन्तर है । स्त्री साधारण शब्द है । वधू का अर्थ पत्नी, भार्या होता है । अवरोध स्त्री तथा अवरोध वधू में अन्तर है । कोई भी स्त्री अव-रोध स्त्री की तरह रखी जा सकती है परन्तु अवरोध वधू सजातीय होगी । राजा के साथ अवरोध वधुओं में केवल एक त्रैलोक्यदेवी ही सती हुई थी । नेपाल तथा राजस्थान राजाओं के यहाँ स्त्रियाँ रहती थीं । उनमें दासी तथा सजातीय भी होती थीं । सजातीय राजा के साथ सती होती थीं । मध्ययुग में और नेपाल में गत शताब्दी तक सती होने के लिये स्त्रियों की एक प्रकार से प्रथा थी । जब रानी सती नहीं होती थी, या गर्भवती होती थी तो इस प्रकार की वधू सती होती थी । काश्मीर की अवरोध वधू की प्रथा स्वतः एक अनुसन्धान का विषय है । द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : समयमातृका : २ : २१

पादटिप्पणी :

१०८. श्री पण्डित ने श्लोक १०८ से ११२ तक तथा स्तीन ने ११०-११२ का अनुवाद एक साथ किया है । स्तीन के अनुवाद पर अपना अनुवाद आधारित करने वाले अनुवादकों ने भी स्तीन का अनुकरण किया है । मैंने सबका अनुवाद अलग अलग किया है ।

कल्हण श्लोक ६ : १०८-११२ तक यशस्कर की मृत्यु के सम्बन्ध में प्रसिद्ध एक ख्याति का उल्लेख करता है । वह यशस्कर की मृत्यु का कारण जो इस ख्याति में दिया गया है स्वीकार नहीं करता ।

वर्णाश्रमप्रत्यवेक्षाबद्धकक्ष्यः क्षितीश्वरः ।
चक्रभान्वभिधं चक्रमेलके द्विजतापसम् ॥१०८॥

१०८. [1]वर्णाश्रम प्रत्यवेक्षा में बद्धकक्ष्य क्षितीश्वर ने चक्रमेलक[2] स्थानपर चक्रभानु नामक विप्र तपस्वी को—

कृतात्याचारमालोक्य राजा धर्मवशंवदः ।
निजग्राह श्वपादेन ललाटतटमङ्कयन् ॥१०९॥

१०९. जिसने अत्याचार किया था देखकर धर्म वशंवद होने के कारण उसके ललाट तट को श्वपाद[1] (श्वान पाद) से अंकित करते हुए निग्रहीत किया—

तन्मातुलेन तद्रोषाद्वीरनाथेन योगिना ।
सांधिविग्रहिकेणाथ स स्वेनैव न्यगृह्यत ॥११०॥

११०. उसके मातुल[1] योगी वीरनाथ ने जो कि राजा का सान्धिविग्रहिक[2] था, उसी रोष के कारण उसका निग्रह किया ।

---

१०८ (१) वर्णाश्रम प्रत्यवेक्षा : वर्णाश्रम धर्म पालन का ध्यान रखता था । रघुवंश में कालिदास ने इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है । (१७ : ५३)

(२) चक्रमेलक : इस स्थान का पता नहीं लग सका है । यह स्थानीय नाम है । इसका सम्बन्ध किसी तांत्रिक स्थान से होना चाहिये । यहाँ तांत्रिक क्रिया द्वारा यशस्कर की मृत्यु का प्रसंग उपस्थित किया गया है । चक्रमिलन शब्द का प्रयोग कल्हण ने रा० : ८ : २७३० में किया है । द्रष्टव्य : टिप्पणी रा० : ५ : २६७ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १०९ में उक्त श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है तथा 'कृतात्याचार' का पाठभेद 'अतिक्रान्ताचारम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१०९ (१) श्वपाद : कुत्ता के चरण चिह्न लौह मुद्रा को तप्त कर ललाट पर अंकित किया जाता था । यह दण्ड देने की एक प्राचीन प्रथा थी । मनु ने इसका उल्लेख किया है । (मनु : ९ : २३७) यदि ब्राह्मण हत्या अथवा अन्य महान् अपराध करने पर भी प्रायश्चित्त न किया हो तो उसके मस्तक पर स्त्री के गुप्तांग (गुरु शय्या अपराध) में कुत्ते के पैर का चिह्न, चोरी के अपराध में, शिरहीन शव का चिह्न ब्रह्महत्या के अपराध में दागा जाता था । (गौतम : १२ : ४४; मनु : ९ : २३७, २४१, आपस्तम्ब धर्म सूत्र २ : १० : २७ : १६-१७)

पाठभेद :

श्लोक सं० ११० में पार्श्व टिप्पणी में एक प्रतिलिपि में 'तन्मातुलेन' का पाठभेद 'चक्रभानुद्विजमातुलेन' तथा 'सान्धिविग्रहिकेण' के लिये 'सन्धिविग्रहशुद्धान्त मुख्य कर्माधिकारी सान्धिविग्रहिक कटकपालः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

११० (१) उसके : चक्रभानु द्विज के मातुल ।

(२) सान्धिविग्रहिक—एक मत है कि सान्धिविग्रहिक शुद्धान्त अर्थात् अन्तःपुर का मुख्य कर्माधिकारी सन्धि एवं विग्रह करने वाला तथा कटक अर्थात् सेना का अधिकारी किंवा पाल होता है ।

पूर्वाचार्यप्रभावेण स्वमाहात्म्याधिरोपणम् ।
प्रख्यापयद्भिर्गुरुभिः श्रद्धयेति यदुच्यते ।।१११।।

१११. पूर्वाचार्यों के प्रभाव से अपना माहात्म्य प्रख्यापित करने वाले गुरुओं[1] द्वारा श्रद्धा पूर्वक कहा जाता है।

तत्ख्यापितैव सप्ताहात्स विपन्न इति श्रुतिः ।
दीर्घव्याधिहते तस्मिन्नुपपत्तिः कथं भवेत् ।।११२।।

११२. उनके द्वारा प्रचारित यह श्रुति (किंवदन्ती) है कि वह सात दिन में मर गया, किन्तु दीर्घ कालीन व्याधि से मृत, उसके लिये यह युक्तियुक्त कैसे हो सकता है ?

अथामयान्तरेवाभूत्सा वार्तेत्युच्यते यदि ।
वर्णटाद्यभिशापोऽपि तदायात्वत्र हेतुताम् ।।११३।।

११३. यदि यह बात आमयान्तर (रोग के बीच) घटित कही जाय तो वर्णट आदि का शाप भी यहाँ हेतु हो सकता है।

भुक्तैश्वर्यो नव समाश्चतुर्विंशे स हायने ।
मासि भाद्रपदे कृष्णतृतीयस्यां व्यपद्यत ।।११४।।

११४. ऐश्वर्य भोग कर वह वत्सर चौबीस भाद्रपद मास कृष्ण पक्ष तृतीया को गत-प्राण हुआ।

कल्हण तथा चाणक्य की परिभाषा से यह परिभाषा भिन्न है। अर्थशास्त्र एवं हर्षचरित से स्पष्ट होता है कि वह आजकल के वैदेशिक मन्त्री के समान होता था। उसका कार्य युद्ध तथा सन्धि से सम्बन्धित था। युद्ध तथा शान्ति अधिकारी किंवा आधुनिक विदेश मन्त्री को प्राचीन काल में सान्धि-विग्रहिक कहते थे। परराष्ट्र मन्त्री भी प्रचलित शब्द है। शुक्र ने इसे मन्त्री माना है। सान्धिविग्रहिक के लिये साम, दाम, दण्ड और भेद की चतुर्मुखी नीति में पटु होना आवश्यक था। (शुक्र : २ : ९५) याज्ञवल्क्य में उल्लेख मिलता है कि संधिविग्रहकारी ही दान पत्र का लेखक होना चाहिए। (याज्ञ० : १ : ३१९-३२०)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १११ में 'प्रभावेण' का पाठ भेद 'प्रभावेन' तथा 'धिरोपणाम्' का 'तुरोपणीम्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१११ (१) गुरु : तान्त्रिक गुरुओं से यहाँ तात्पर्य है। तुलनीय : रा० : ५ : १२।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ११२ में 'सप्ताहात्' का पाठ भेद 'सप्ताहान्' तथा उक्त श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

११४ (१) चौबीस = सप्तर्षि ४०२४ = सन् ९४८ ई० = विक्रमी १००५ = शक ८७० भाद्र कृष्ण पक्ष तृतीया।

योग वासिष्ठ से तत्कालीन सामाजिक जीवन की

एक झाँकी मिलती है। अधिष्ठान तथा सारिका पर्वत किंवा प्रद्युम्न शिखर पर राज्यप्रासाद थे। राजा हर पर्वत पर अपने प्रासाद में रहता था। वहाँ धार्मिक कथा वार्ता होती थी। आजकल घरों तथा भीतों की दरारों में चिड़ियाँ घोसला लगा लेती हैं उसी प्रकार उस समय दरारों में चिड़ियाँ घोसला लगाती थीं। उनका घोसला धर्म के नाम पर नष्ट नहीं किया जाता था। पशु पक्षियों के प्रति अहिंसा का व्यवहार किया जाता था। राजमन्दिर में मच्छर रहते थे। काष्ठ के स्तम्भ राजमन्दिर तथा गृहों के निर्माण में लगाए जाते थे। काश्मीर में लकड़ी की अधिकता सर्वदा से रही है अतएव ७५ प्रतिशत मकान लकड़ी के बनते थे। ईंटों तथा पत्थरों के बने प्रासादों तथा मकानों में आज भी ७५ फीसदी लकड़ी का प्रयोग, छाजन, छत पाटने आदि के काम में लाया जाता है। स्तम्भ के दरार में मच्छर रहता था इससे मालूम होता है कि लकड़ी के स्तम्भ पुराने हो गए थे। लकड़ी में सूखने पर तथा पुराना होने पर दरार पड़ती है अर्थात् फट जाती है। राजा यशस्कर का राजमन्दिर पुराना मालूम पड़ता था। उसके पूर्ववर्ती राजा ने उसका निर्माण किया था। राजमन्दिर का वातावरण धार्मिक था। वहाँ धार्मिक कथाएँ होती थीं। सब लोग मिलकर सुनते थे। कथा सुनने की यह रीति नेपाल तथा भारत में प्रचलित है। किसी श्रेष्ठ पुरुष के घर में कथा होती है। पड़ोसी एकत्रित होकर सुनते हैं। कथा देवस्थानों तथा विहारों में निश्चित समयों पर आज भी कही जाती है। उस समय यह प्रथा खूब प्रचलित मालूम होती है। राजमन्दिर, प्रद्युम्नशिखर तथा विहार तीनों स्थानों पर कथा वार्ता का उल्लेख योग वासिष्ठ में आया है। अतएव स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में धार्मिक भावनाओं का जोर था। लोगों की प्रवृत्ति धर्म की ओर थी। योग वासिष्ठ की कथा सुनाई जाती थी इससे प्रकट होता है कि समाज मूर्ख किंवा अन्धविश्वासी नहीं था। कथा प्रायः रामायण, भागवत, महाभारत तथा बहुत सरल तथा सरस विषयों पर प्रायः कही जाती है। क्योंकि साधारण जनता, बालक, वृद्ध, नारी आदि के समझने में दार्शनिक सिद्धान्त नहीं आते। किन्तु योग वासिष्ठ जैसे महान् दार्शनिक ग्रन्थ का कथा रूप में, राज्य प्रासाद पर्वत शिखर तथा विहार में सुनना इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि साधारण जनता हिन्दू धर्म के गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों को सुनती थी। उनमें रस लेती। समाज अज्ञानी नहीं किन्तु ज्ञानी था। पठन पाठन तथा विचार विनिमय के प्रति रुचि थी। योग वासिष्ठ में बौद्ध, जैन, चार्वाक, द्वैत, अद्वैत तथा विभिन्न दर्शनों तथा विभिन्न सम्प्रदायों का वर्णन है। किसी सिद्धान्त विशेष, धर्म विशेष तथा दर्शन विशेष के प्रति पक्षपात नहीं किया गया है। अतएव काश्मीर की जनता की सहिष्णुता तथा उदारता इससे प्रकट होती है कि वह वह सब प्रकार के विचारों को सुनती थी। समाज में सम्प्रदायों तथा मतमतान्तरों के कारण पारस्परिक वैमनस्य तथा एक दूसरे की निन्दा करने की भावना नहीं थी। यह इस बात का प्रमाण है कि जनता का नैतिक, मानसिक तथा सामाजिक स्तर अत्यन्त उन्नत उदार तथा सहिष्णु था। उनमें धर्म निरपेक्षता की भावना थी।

आजकल कुछ कम हो गया है परन्तु अपनी बाल्यावस्था में मैंने देखा है कि काशी के प्रतिष्ठित सम्पन्न कुटुम्बों में तथा मेरे घर में पक्षियों को पाला जाता था। सुग्गा तथा मैना पालना कुलीनता तथा सम्पन्नता का चिन्ह था। साधारण लोग सुग्गा अर्थात् तोता पालते थे। धनी तथा समृद्धिशाली मैना पालते थे। समाज में लोगों के statue का पता उनके पक्षियों के बोलने से भी किया जाता था। साधारण लोग सरलता पूर्वक प्राप्त सुग्गा तथा उनसे कुछ समृद्ध, लाल, बुलबुल, काकातोता, कोयल तथा मैना क्रमशः पालते थे। यह क्रमशः समाज में लोगों के जीवन स्तर तथा उनके रहन सहन तथा समृद्धि द्योतक था। इसी प्रकार पक्षियों के पालने के पिंजड़ों के कारण

लोगों के जीवन स्तर तथा उनके सम्पन्नता की झाँकी मिलती थी। सींक, बाँस, लोहा, पीतल, ताम्बा, चाँदी तथा सोना का पिंजड़ा लोगों के वित्त के अनुसार होता था। मन्त्री नरसिंह क्रकर पक्षी चाँदी के पिंजड़े में रखा था। समाज अत्यन्त सुसंस्कृत तथा कलाप्रेमी था। चाँदी के पिंजड़े मन्त्री रखता था तो सोने के पिंजड़े अवश्य राज्य मन्दिर में होंगे। साधारण लोग बाँस, लोहा, पीतल तथा ताँबा के पिंजड़े रखते रहे होंगे। मन्त्री नरसिंह का चाँदी के पिंजड़े में क्रकर पक्षी रखना इस बात की तरफ इशारा करता है कि समाज में पक्षियों को शौक से पालना उन दिनों का फैशन था। वह फैशन पाश्चात्य देशों में भी अत्यन्त कुलीन तथा प्रतिष्ठित कुटुम्बों में प्रचलित था। क्रकर कथा सुनकर मुक्त हो गया। इसका अर्थ लगाया जा सकता है कि आजकल की तरह उन दिनों सुग्गा, मैंना आदि पालतू पक्षियों को भाषा तथा बोली सिखाई जाती थी। वे इतने पटु हो जाते थे कि मनुष्यों की बोली समझ तथा उनका उत्तर मनुष्यों की बोली में दे सकते थे। गृहों में स्त्रियाँ सुग्गों को रामनाम तथा भजन रटा देती हैं। मैना तो बिल्कुल मनुष्य की तरह बोलती तथा सुग्गे का उत्तर देती है। केवल इस बात से स्पष्ट होता है कि समाज अत्यन्त सुसंस्कृत तथा कला प्रिय था।
—योग वासिष्ठ स्थित प्रकरण सर्ग ३२ श्लो० १९–२५.

योग वासिष्ठ में राजा यशस्कर के समय के काश्मीर का वर्णन मिलता है। राजा के नगर का नाम अधिष्ठान था। यह नगर पुराधिष्ठान है। यहाँ पर पण्डरेथन का मन्दिर सरोवर के मध्य में है। यहाँ से खनन द्वारा बहुत मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। द्वितीय तथा प्रथम तरंग में इस नगर के प्रसंग में प्रकाश डाल चुका हूँ। कल्हण नगर का वर्णन नहीं करता। योगवासिष्ठकार ने नगर का सुन्दर वर्णन किया है। महापद्मसर का वर्णन नगर के प्रसंग में किया गया है। नगर के प्रसंग में योगवासिष्ठकार लिखते हैं कि काश्मीर देश के मध्य में पर्वत एवं वृक्षों से सुशोभित अधिष्ठान (पण्डरेथन) नगर है। नगर के मध्य में प्रद्युम्न नामक लघु शिखर है। नगर के मध्य वह शिखर कमल कोश की कर्णिका के समान सुन्दर लगता है। उस गिरि की मूर्धा पर राजगृह है। गृह की अटारियाँ शिखर पर दूसरे शिखर तुल्य प्रतीत होती हैं। उस राजगृह के दिवाल के दरार में गौरइय्या रहती हैं। इस राजगृह का राजा यशस्कर है। उसका प्रासाद भूमि पर शक्र के स्वर्ग तुल्य प्रतीत होता है। उसमें बहुत स्तम्भ लगे हैं। काश्मीर में चीड़ तथा देवदार के विशाल वृक्ष होते हैं। उनका स्तम्भ अर्थात् खम्भा बनाया जाता है जो ४०, ५० तथा ६० फुट ऊँचा होता है। इस प्रकार के खम्भे हजरत बल आदि मसजिदों में आज भी लगे हैं। मच्छर प्रायः लकड़ियों के दरार में रहते हैं। अतएव खम्भे लकड़ी के रहे होंगे। —योग वासिष्ठ स्थिति प्रकरण सर्ग ३२ श्लोक ११, १६

इस वर्णन से स्पष्ट प्रकट होता है कि यह वर्णन सारिका पर्वत का है। जिस पर इस समय सारिका देवी का मन्दिर तथा किला है। वह किला अकबर ने बनवाया था। इस वर्णन से पता चलता है कि पर्वत पर पूर्वकाल में भी राज्यप्रासाद था। इस समय किला में कुछ सिपाही रहते हैं। सिख राजाओं के समय के बहुत से तोप के गोले यहाँ रखे हैं। सबसे ऊँचे शिखर पर अर्थात् सारिका देवी के मन्दिर से ऊपर चढ़ने पर दुर्ग का अन्तिम परकोटा मिलता है। उसमें बड़ा फाटक लगा है। सामरिक दृष्टि से यहाँ भी किलेबंदी अच्छी हैं। ऊपर चढ़ने पर कालीजी का मन्दिर है। मन्दिर के प्रांगण में बरसाती जल एकत्रित कर रखने के लिए पक्का हौज बना है। प्रांगण में कुछ वृक्ष लगे हैं वहीं पर गोल-गोल गेंद की तरह तोप के हजारों गोले रखे हैं। स्थान सुन्दर है। अत्यन्त भग्नावस्था में है। दिवालें तथा छाजन टूट टूटकर गिर रही हैं। इसी स्थान पर यशस्कर के बड़े राजगृह का वर्णन योगवासिष्ठ में किया गया है।

मूल्यांकन : राजा यशस्कर वास्तव में तपस्वी तथा चरित्रवान व्यक्ति था। वह उत्साही और सुयोग्य

संग्रामदेव (सन् ९४८--९४९ ई०) :

पितामहीं शिशोर्गोप्त्रीं विनिवेश्य नृपासने ।
भूभटाद्यैः समं प्राभूत्पर्वगुप्तोऽथ पञ्चभिः ।।११५।।

११५. शिशु[1] की संरक्षिक पितामही को नृपासन पर सन्निविष्ट कर भूभट आदि पाँच मन्त्रियों के साथ पर्वगुप्त ने प्रभुत्व स्थापित किया ।

राजा था । ब्राह्मणोचित प्रवृत्ति उसमें मौजूद थी । उन्हें भौतिक तथा सांसारिक बन्धनों ने उदासीन रखती थी । वह धार्मिक निस्पृह राजा था ।

वह गरीब कुल का अध्यापक ब्राह्मण था अतएव उसे शास्त्र तथा उसकी मर्यादा का ज्ञान था । वर्णाश्रम धर्म पर प्रजा को चलाने का प्रयास किया । अधर्माचरण से उसे चिढ़ थी । धर्म वचनों का वह कठोरता पूर्वक पालन करता तथा करवाता था । उसने जनता के नैतिक बल तथा चरित्र को उठाने का प्रयास किया । कल्हण ने राजा की बड़ी प्रशंसा की है ।

उसका प्रारम्भिक जीवन दरिद्र तुल्य था और अन्त भी एक निर्धन व्यक्ति तुल्य निराश्रय एक मठ की अन्धकारमय कोठरी में । पास में एक फूटी कोड़ी बिना रहे ही मर गया । वह राजभवन में सुख के साथ मरना पसन्द न कर एक धर्मप्रेमी ब्राह्मण तुल्य किसी देवस्थान में एक साधारण व्यक्ति के समान मरना पसन्द किया ।

उसकी न्यायप्रियता की कहानी प्रसिद्ध कर रही है । वह कोई सैनिक यात्रा नहीं किया । एक ब्राह्मण की तरह पला पोषा होने के कारण उसका झुकाव शस्त्र तथा सेना की तरफ न होना स्वाभाविक था । परन्तु निस्सन्देह उसने काश्मीर में अराजकता के स्थान पर शास्त्र, समृद्धि, तथा मर्यादा स्थापित की । जनता का शोषण उसने नहीं किया । कोई नवीन कर नहीं लगाया ।

उसे विद्या के प्रति अनुराग था । वह विद्वानों की कदर करता था । वह दानी था । अन्त में अपना सर्वस्व दान कर दिया । अपने जीवन काल में ही राज्य त्याग दिया ।

उसका अन्तिम समय ठीक न कहा जायगा । लल्ला के साथ उसका सम्बन्ध उसके जीवन की एक कलंक घटना है । राज्य वैभव, काम, तथा ऐश्वर्य में यदि मनुष्य का चित्त स्थिर रहे तो वही योगी है । मानव की नैसर्गिक दुर्बलताओं का यदि वह शिकार बन गया तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । इस स्थिति में भी उसने अपना सन्तुलन खोया नहीं । लल्ला तथा उसके चाण्डाल प्रेमी को वह दण्ड दे सकता था । किन्तु उसके शक्ति रहते हुए भी नहीं दिया । कारण यही मालूम होता है कि यदि चाण्डाल परस्त्री गामी का अपराधी था । राजा भी स्वयं उसी अपराध का अपराधी था । अतएव चाण्डाल तथा लल्ला को वह तभी दण्ड दे सकता था जब कि वह स्वयं वही दण्ड सहने के लिए उद्यत होता । वह उसकी सहिष्णुता थी । कामी ऐसी अवस्था में जो कर बैठता है उसे उसने नहीं किया । यह उस दुर्बलता में महानता चमकती दिखाई देती है । फिर भी उसने अपने ढंग से अपने इस पाप के प्रायश्चित्त करने का प्रयास किया । उसने अनुभव किया कि उसने पाप किया है । राजा होते सर्व शक्तिमान् होते इस प्रकार का अनुभव करना बड़ी बात थी । उसने राजा होते भी इस प्रायश्चित्त निमित्त कृष्ण मृग चर्म धारण किया । अर्थात् साधु वृत्ति ग्रहण किया । उसने राज्य त्याग किया । जिस लल्ला पर आसक्त था उसका भी परित्याग मृग चर्म धारण कर किया । उसके चरित्र की महानता प्रकट करने के लिए यह कुछ कम बातें नहीं हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११५ में उक्त श्लोक में 'ग्रोप्त्रीं' का पाठभेद, गोप्त्री तथा पार्श्व टिप्पणी में 'शिशो' के लिए

क्रमात्समं पितामह्या तान्व्यापाद्येतरान्बली ।
एकः स एवमाक्रान्तः प्रबभूव नृपास्पदे ।।११६।।

११६. पितामही के साथ क्रम से इतर उन लोगों को व्यापादित कर वह (पर्वगुप्त) बली इस प्रकार क्रान्ति करके नृपास्पद का प्रभु हो गया ।

स पार्थिवत्वमन्त्रित्वमिश्रया चेष्टया स्फुरन् ।
राजा राजानकश्चेति मिश्रामेवं धियं व्यधात् ।।११७।।

११७. अपने पार्थिवत्व एवं मन्त्रित्व मिश्रित चेष्टानुरूप कार्य करते हुए राजा एवं राजानक[1] मिश्रित बुद्धि उत्पन्न कर दी ।

'संग्रामदेवस्य' तथा 'प्राभूत्' के लिये 'प्रभाभूत' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

सर्व श्रीदत्त अभिषेक काल कलि ४०४९ = शक ८७० = लौकिक ४०२४ = सन् ९०७ ई०, स्तीन लौकिक = ४०२४ भाद्रपद कृष्ण ३ = सन् ९४८ ई०, पण्डित सन् ९४९, ई० सी० एम० डफ० सन् ९४८ ई०; विलसन लौकिक = ४०२३ वर्ष ६ मास = सन् ९६९ ई०, ३ मास; कनिंघम सन् लौ० ४०२४ = ९४८ ई०, ट्रोयर लौकिक ४०२४ = डाइनास्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया सन् ९४८ ई०, तथा पीरहसन विक्रमी संवत् १०१५ = ९५८ ई० तथा विलसन, पीरहसन राज्यकाल ६ मास, पण्डित ६ मास ८ दिन देते हैं । राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल ६ मास दिया गया है । श्री ट्रोयर राज्य काल नहीं देते और लौकिक वर्ष का सन् नहीं देते ।

आइने अकबरी में नाम संग्रामदेव तथा राज्य काल ६ वर्ष ६ मास तथा ७ दिन दिया गया है ।

समसामयिक घटनाएँ :

चोल तककोलम के युद्ध में पराजित हो गये । उनके युवराज राजदेव ने वीरगति प्राप्त की । सन् ९४९ ई० सीयक हर्ष परमार वंशीय प्रतापी राजा हुआ (सन् ९४९ = ९७२ ई०)

पाठभेद :

श्लोक सं० ११६ में 'एवमाक्रान्तः' का पाठभेद 'एव साङ्क्रान्तिः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ११७ में 'स्फुरन्' का पाठभेद 'स्फुटम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

पादटिप्पणी :

११७. सूक्ति संग्रह का यह २०८ वाँ श्लोक है ।

११७. (१) राजानक : काश्मीर में वह उपाधि थी । कालान्तर में यह एक वंश का प्रतीक हो गया ।

राजदान शब्द राजानक शब्द का अपभ्रंश है । काश्मीर के ब्राह्मणों की यह एक उपाधि है । काश्मीर में क्षत्रियों की यह उपाधि अब नहीं रह गयी है । राजानक उपजाति काश्मीर के अतिरिक्त और कहीं नहीं पायी जाती । नारायण पाल के भागलपुर पत्र में राजानक शब्द मिलता है । (आई० ए० भाग १५ : पृष्ठ ३०४-३०६) दरीकुड एक पत्र में मध्य में राजदेव शैलोद्भव वंश में लिखा है कि चम्बा राजा के आधीनस्थ सरदार किंवा सामन्त राजानक कहे जाते थे । (डी० आई० ११ : पृष्ठ २८ भाग) पाण्डु लिपि के पार्श्व टिप्पणी में राजानक शब्द की व्याख्या दी गयी है । राजा पार्थिवः राजानकः मन्त्री । राज्ञः अनः प्राणनं जीवनं धरित्रीरक्षण-लक्षणं यस्मात् सः राजानः अनश्वसप्राणने । राजान

सेवमानः स्वयं बालभूपं भोज्यार्पणादिभिः ।
ऋजूनां प्रत्यभात्पर्वगुप्तो द्रोहबहिष्कृतः ॥११८॥

११८. भोज्यार्पण आदि से बाल भूप को स्वयं सेवा करता हुआ, पर्व गुप्त सरल जनों को द्रोह रहित प्रतीत होता था ;

यान्द्रोहभीरूनसंभाव्य संविभेजे यशस्करः ।
तस्य तत्तनयोच्छेदे त एवासन्प्रयोजकाः ॥११९॥

११९. यशस्कर ने जिन्हें द्रोह भीरु समझ कर, सम्मानित किया, वे ही उसके पुत्रोच्छेद के प्रयोजक (साधन) हुए ।

एव राजानकः : स्वार्थे कः । यद्वा अत्र लिङ्गात् कः सादृश्ये । देवदत्त इव देवदत्तक इतिवत् । यथा प्राणनं विना देहस्थितिर्नास्ति तथा धीसचिवं मन्त्रिणं विना पार्थिवानां स्वयं कार्याऽकार्यविवेककौशलातिशयो न संभवेदिति राजानक मपेक्षते राजा । यद्वा राज्ञः अनः प्राण इव राजानक इत्यर्थः ।

'राजा का श्वसन = प्राणन = जीवन होने के कारण राजान कहा जाता है । राजान ही राजानक है । जिस प्रकार प्राणन के बिना देह की स्थिति नहीं हो सकती है उसी प्रकार धीसचिव मन्त्री के बिना राजाओं में स्वयं कार्याकार्यविवेक कौशल सम्भव नहीं हो सकता । राजा इसीलिये राजानक की अपेक्षा करता है । अथवा राजा के प्राण सदृश होने के कारण विशेष मन्त्री राजानक कहा जाता है ।

लेख प्रकाश पृष्ठ ५८ पर भी राजन्यक की परिभाषा दी गयी है । परन्तु वह परिभाषा सत्तरहवीं शताब्दी के समयानुसार है । द्रष्टव्य : रा० : ४ : ४८९ जैन : रा० : १ : १ ; ९१, १०७, १ : ३ : ४०, १ : ७ ८०, २ : १४५; ३ : २०० ३१३; ४ : ३९८, ४१०, ४११ ४९३, ५४९, ५५१, ५५१, ५५४, ५५५; ५६९, ५६९, ४८३, शुक : राज० १ : २०, ३६, ३७ ।

काश्मीरी वंश नाम राजदान इसी राजन्यक अथ राजानक का अपभ्रंश है । मुसलमान शासन काल में यह पदवी मुसलमान अधिकारियों को भी दी जाती थी । श्रीवर के अनुसार इसका संक्षिप्त रूप राजान था । ३ : १६२ ३८८ २०८ ३५५, राजनक राजन्यक का अपभ्रंश है । इसे 'हरविजय' काव्य के लेखक राजानक रत्नाकर गणमान्य लोगों ने तथा अन्य अपने नाम के साथ इस पदवी को जोड़ा है । वंश प्रशस्ति जिसे आनन्द राजानक (सत्तरहवीं शताब्दी) ने 'नैषध-चरित' के भाष्य में लिखा उसमें इस शब्द का प्रयोग किया है । यह पदवीं त्रिगर्त कागड़ा में भी प्रचलित थी । तुलनीय : (हरचरित चिन्तामणि : १ : ४; १३ : २१३) बैजनाथ प्रशस्ति (इपी० : इण्ड : १ : १०१; रा० ८ : ७५६ ।

अमरकोषकार ने राजन्यक का अर्थ दिया है । (राजन्यकश्च नृपतिः क्षत्रियाणां गणे क्रमात् । २ : क्षत्रियवर्ग ८ : ४ :) राजानक शब्द राजाओं के गण के रूप में व्यवहृत किया गया है । अतएव राजन्यक तथा राजक शब्द में मौलिक भेद है । राजक छोटा राजा अथवा राजाओं के समूह के लिये तथा राजन्यक योद्धाओं किंवा क्षत्रियों के वर्ग के लिए प्रयुक्त किया है । पाणिनि ने राजन्य शब्द जिस अर्थ में व्यवहृत किया है वही अर्थ अमरकोषकार ने तथा कालान्तर में कल्हण ने भी लगाया है ।

करभाङ्गरुहापिङ्गे श्मश्रुणि क्षितिपालवत् ।
स ददौ कुङ्कुमालेपं वर्चः शाद्वलविस्तृते ॥१२०॥

१२०. करभ[1] के रोम सदृश तथा पिंग (पीला) एवं शाद्वल सदृश विस्तृत श्मश्रु पर राजा के समान वह चमकीला कुंकुम[2] का लेप करता था ।

बिभ्यदेकाङ्गसंघातात्प्रकटोत्पाटनाक्षमः ।
प्रमापणाय प्रायुङ्क्त शिशोः कर्माभिचारिकम् ॥१२१॥

१२१. एकांग संघ के भय से प्रकट रूपेण उत्पाटन करने में अक्षम, उस (पर्वगुप्त) ने शिशु के विनाश के लिये मारण अभिचार कर्म का प्रयोग किया ।

न्याय्यं ते सान्वयस्यास्ति राज्यं चैत्रादिवासरे ।
अन्यथाचरतो नाशः क्षिप्रं वंशायुषोर्भवेत् ॥१२२॥

१२२. 'चैत्र के प्रथम दिन वंश सहित तुम्हें राज्य की न्याय पूर्वक प्राप्ति सम्भव है, अन्यथ (विपरीत) आचरण करने पर तुम्हारी एवं वंश की आयु शीघ्र ही विनष्ट हो जायेगी ।'

इतीमामपि यामिन्यां श्रुतवान्भूतभारतीम् ।
अभिचारस्य वन्ध्यत्वं निध्यायाधिकशङ्कितः ॥१२३॥

१२३. इस प्रकार रात्रि में इस भूत भारती को सुना और अभिचार की व्यर्थता का ध्यान करके अत्यधिक सशंकित हो गया ।

पादटिप्पणी :

१२० (१) करभ : ऊँट का बच्चा यूरोप तथा पश्चिम एशिया में 'केमिल्स हेयर' कम्बल की बड़ी प्रसिद्धि है । बड़ा महँगा मिलता है । मैंने एक कम्बल इसराइल यात्रा के समय खरीदा था । कल्हण का यह वर्णन पढ़ने पर मैंने कम्बल निकाल कर देखा (कल्हण का वर्णन सत्य है ।) ऊँट का बच्चा जब अत्यन्त शिशु होता है तो उसकी रोमावाली केसरिया रंग की चमकदार होती है । यदि बालपर केसर का लेप लगा लिया जाय तो दाढ़ी केसरिया रंग की हो जायगी । उस पर यदि तेल लगा लिया जाय तो पालिश के समान चमकने लगती है । क्षेमेन्द्र ने करभ ग्रीवा का उल्लेख किया है । (समयमातृका : १ २७)

(१) कुंकुम : ग्रामीण मुसलमान लोग जो खिजाब नहीं पा सकते थे वे लम्बी दाढ़ी पर मेंहदी छोपकर उसे रंगीन बनाते थे । बाल काला करने तथा उसे रंगीन और सुन्दर आकर्षक बनाने के लिये अनेक साधनों का उपयोग प्राचीन काल से अब तक होता रहा है । कल्हण पर्वगुप्त के श्रृंगार का व्यंगात्मक वर्णन करता है । काश्मीर में मुहावरा है—'गास लोव हिस चस हार' उसकी दाढ़ी घास का बण्डल है । केसर से श्रृंगार करना राजकीय विशेषाधिकार माना जाता था । द्रष्टव्य : रा० : ८ : १११९, १८९७, ३१६६ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १२१ में 'त्पाटनाऽक्षमः' का 'त्पाटन-क्षमः' तथा 'चारिकम्' का 'चारिकां' पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१२३ (१) भूत भारती : आकाश वाणी = अदृश्य वाणी ।

एकांगेभ्यो विभिन्नेभ्यो बिभ्यदुद्भिन्नसंभ्रमः ।
उदताम्यत्तथा चिन्तालुप्तसंविद्दिवानिशम् ॥१२४॥

१२४. अलग हुए एकांगों से डरता हुआ, (वह) सम्भ्रम युक्त एवं चिन्ता से ज्ञान शून्य होकर, रात्रि दिन इस प्रकार उत्तप्त रहने लगा ।

यथा महाहिमापातनिःसंचारजने दिने ।
अकस्मात्संभृतबलो राजधानीं निरुद्धवान् ॥१२५॥

१२५. महाहिमपात से जनसञ्चार रहित, दिन में अकस्मात् बल (सैन्य) संग्रह कर, राजधानी को निरुद्ध कर लिया ।[1]

विरोधकारिणं बुद्धाभिधेन सह सूनुना ।
निर्द्रोहमाहवे हत्वा मन्त्रिणं रामवर्धनम् ॥१२६॥

१२६. बुद्ध नामक पुत्र के साथ विरोधकारी (प्रतिस्पर्धी) एवं निर्द्रोह मन्त्री रामवर्धन को युद्ध में मार कर—

पित्र्येण वेलावित्तेन प्राभृतार्थमुपाहृताम् ।
गले पुष्पस्रजं बद्ध्वा पातितं पार्थिवासनात् ॥१२७॥

१२७. पिता के वेलावित्त ने उपहार हेतु प्रदत्त पुष्पमाला को गले में बांध कर राजासन से गिरा दिया ।

स तं वक्राङ्घ्रिसंग्रामं हतमन्यत्र मन्दिरे ।
पातयित्वा वितस्तान्तःकण्ठबद्धशिलं निशि ॥१२८॥

१२८. उसने अन्यत्र गृह (मन्दिर) से हृत, उस वक्र[1] चरण संग्राम को, कंठ में शिला निबद्ध कर रात्रि में वितस्ता मध्य निक्षिप्त कर—

पाठभेद :

श्लोक सं० १२४ में 'म्यत्तथा' का पाठ भेद 'प्यत्तथा' तथा 'स्यद्यथा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१२५ (१) पीरहसन : एक घटना का उल्लेख करता है—'पर्व गुप्त जमीन्दार परगना अडविन (अर्धवन) उसकी हकूमत में खलल अन्दाज होकर उसके वजीरों को तबाह कर दिया ।'

पादटिप्पणी :

१२६ (१) पर्व गुप्त की एक ताम्र मुद्रा मिली है । उसके एक तरफ आसनस्थ लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व में 'श्री' एवं दक्षिण में 'प' तथा दूसरी तरफ दण्डायमान राजा एवं 'गुप्त' टंकणित है ।

पादटिप्पणी :

१२७ (१) वेलावित्त : द्रष्टव्य : पाद टिप्पणी रा० : ५ : २२६६ : ७३, १०६ ।

पादटिप्पणी :

१२८ (१) वक्र : कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि राजा लंगड़ा था ।

पर्वगुप्त (सन् ९४९--९५० ई०) :

चतुर्विंशस्य वर्षस्य दशम्यां कृष्णफाल्गुने ।
पापः सखड्गकवचो न्यविक्षत नृपासने ।।१२९।।चक्कलकम्।।

१२९. खड्ग एवं कवच सहित वह पापी चौबीसवें वर्ष के फालगुन कृष्ण पक्ष दशमी को सिंहासन पर आरूढ़ हुआ ।

पारेविशोकं दिविराज्जातस्याभिनवाभिधात् ।
सूनुः संग्रामगुप्तस्य स तदा पार्थिवोऽभवत् ।।१३०।।

१३०. पारेविशोका में अभिनव नामक दिविर से उत्पन्न संग्रामगुप्त का पुत्र वह पर्व गुप्त उस समय नृपति हुआ ।

केचित्तं प्रत्यवस्थानं ते पुरा प्रतिजज्ञिरे ।
ते सर्व एव तद्भीताः प्रातरेव प्रणेमिरे ।।१३१।।

१३१. जो कुछ लोग उसके विरोध की प्रतिज्ञा किये थे, वे सभी उसके भय से प्रातः ही प्रणाम कर लिये ।

पादटिप्पणी :

सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०४९ = शक ८७० = लौकिक ४०२४ = सन् ९४८ ई०, स्तीन लौकिक ४०२४ फाल्गुन कृष्ण १० = सन् ९४९ ई०, सी. एम. डफ सन् ९४९ ई०, पण्डित सन् ९५० ई०; विलसन लौकिक ४०२४ = सन् ९६९ ई० ९ मास; ट्रोयर सन् ९५१ ई० = लौकिक ४०२४, कनिंघम लौ० ४०२४ सन् ९४९ ई०, डाइनास्टिक हिस्टॉरी ऑफ इण्डिया सन् ९४९ ई०; पीर हसन विक्रमी १०-१५ = सन् ९५८ ई० देता है, त्रिवेद सन् ९४४ ई० = शक ९६६ देते हैं । राज्यकाल पण्डित १ वर्ष ४ मास ४ दिन, विलसन १ वर्ष ६ मास, ट्रोयर १ वर्ष ९ मास, तथा पीर हसन १ वर्ष ३ मास देते हैं । राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल १ वर्ष ४ मास दिया गया है । आइने अकबरी में नाम वर्दकत्त दिया है । पर्वगुप्त की एक मुद्रा मिली है । उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'श्री पर्व' तथा पृष्ठ भाग र दण्डायमान राजा तथा 'गुप्त' टंकित है ।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९५० ई० पर्वगुप्त की राज्यकाल समाप्ति आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी तथा अभिनव गुप्त का सम्भावित जन्म काल (सन् ९५०-९६० ई०)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३० में 'विशोके' का पाठभेद 'विशोकं' 'दिविरा' का 'शिखिरा' तथा 'तदा' का 'तथा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१३० (१) पारेविशोक : द्रष्टव्य : रा० : ४ : ५ : १७७ ।

(२) दिविर : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० ५ : १७७; क्षेमेन्द्र नर्ममाला : १ : १७ :

पाठभेद :

श्लोक संख्या १३१ में 'तप्प्रत्यव' का 'तं प्रत्यव' पाठभेद मिलता है ।

पार्थिवैकांगसामन्तमन्त्रिकायस्थतन्त्रिणाम् ।
तद्भीत्या द्रोहवृत्तीनां द्रोहाद्वैतमदृश्यत ।।१३२।।

१३२. द्रोह वृत्ति पार्थिव, एकांग, सामन्त, मन्त्री, कायस्थ एवं तन्त्री उसके भय से द्रोह में एकमत हो गये।

एकांगस्य तदास्थाने सुय्याभिजनजन्मनः ।
प्रमादान्मदनादित्यनाम्नो ढक्का व्यदीर्यत ।।१३३।।

१३३. उस समय आस्थान पर सुय्य वंशीय मदनादित्य नामक एकांग का ढक्का[1] प्रमाद से टूट गया।

हृतांशुकेन भूभर्त्रा कुपितेन खलीकृतः ।
स निकृत्तकचश्मश्रुस्तपस्वी समपद्यत ।।१३४।।

१३४. क्रुद्ध नृपति ने (उसका) वस्त्र अपहृत कर उसे खलीकृत (अपमानित) किया। तदनन्तर वह केश, श्मश्रु कर्तन कर तपस्वी हो गया[1]।

तादृशस्य पुनस्तस्य सस्त्रीपुत्रत्वमीयुषः ।
अद्याप्यभिजने जाता वसन्ति त्रिपुरेश्वरे ।।१३५।।

१३५. इस प्रकार विपन्न उसके स्त्री एवं पुत्र थे। त्रिपुरेश्वर[1] अभिजन में आज भी उसके वंशज बसते हैं।

पाठभेद :

श्लोक सं० १३२ में 'द्रोहाद्वै' का 'द्रोहाद् द्वै' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

१३३ (१) ढक्क : बड़ा ढोल होता है। इसी अर्थ में संस्कृत में प्रयोग होता है—'न ते' हुडुक्केन न सोपि ढक्कया न मर्दलैः सापि न तेऽपि ढक्कया—' नैषध : १५ : १५ परन्तु रणजीत सीताराम पण्डित अपने अनुवाद में इसका अर्थ हवा खुलना अर्थात् पादना लिखा है। उनका मत है कि राजसभा में हवा खोलना अभद्रता माना जाता था। राजपूत इसे बुरा मानते थे। हवा न खुले इसलिये राजपूत अफीम का भी व्यवहार करते थे।

पादटिप्पणी :

१३४ (१) इस श्लोक से स्पष्ट नहीं होता कि मदनादित्य के कुटुम्ब ने उसका अनुकरण किया या नहीं अथवा इसे अपमान कर व्यवहार के पश्चात् साधु-होकर पुनः विवाह किया या नहीं। केश आदि कटाना ब्राह्मणों को एक प्रकार से दण्ड देने का लक्षण माना जाता था। पुरातन काल में शिर; दाढ़ी, मूँछ मुड़ाकर बाजार में घुमाना एक प्रकार का नैतिक दण्ड माना जाता था।

पादटिप्पणी :

१३५ (१) त्रिपुरेश्वर : त्रिफर। द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० : ५ : ४६।

कुर्वता पर्वगुप्तेन भूभृता द्रविणार्जनम् ।
प्रापिताः पुनरुत्साहं प्रजारोगा नियोगिनः ।।१३६।।

१३६. द्रव्यार्जन करते, पर्वगुप्त नृपति ने पुनः प्रजाओं के रोगभूत नियोगियों को पुनः उत्साहित किया ।

व्यधत्त स्कन्दभवनविहारवसुधान्तिके ।
पर्वगुप्तेश्वरं सोऽपि वृजिनार्जितया श्रिया ।।१३७।।

१३७. उसने भी पापार्जित सम्पत्ति से स्कन्द भवन[1] बिहार भूमि के समीप पर्वगुप्तेश्वर (मन्दिर) निर्माण कराया ।

पादटिप्पणी :

१३६ (१) नियोगी : तिलगू में ब्राह्मणों की एक जाति हैं। इस नाम का एक कायस्थ अधिकारी काश्मीर में होता था। क्षेमेन्द्र ने 'नर्ममाला' में नियोगी के कार्यों का व्यंगात्मक वर्णन किया है—नियोगी का काम ग्रामों तथा परगनों की जाँच पड़ताल करनी होती थी। उनका हिसाब किताब, मार्गों का निरीक्षण करते थे। आज के तहसीलदारों के समान उन्हें फर्स्ट-क्लास मजिस्ट्रेट के समान अधिकार होता था। वे मुकदमों का फैसला करते थे। आजकल भी तहसील-दारों को दिवानी, माल तथा फौजदारी मुकदमों का फैसला करने का अधिकार होता है। उनका जीवन नियोगी होने के पूर्व अति कष्ट प्रद रहता था। नियोगी होने के पश्चात् समाज में उनका महत्त्व पूर्ण स्थान समाज तथा प्रशासन में हो जाता था। उसकी धन वृद्धि वस्तुओं तथा नगद घूस लेने के कारण हो जाती थी। कल्हण के वर्णन अनुसार प्रकट होता है कि नियोगियों का कार्य कृषि सम्बन्धी था। द्रष्टव्य : नर्म-माला : प्रथम परिहास : ९७-१२७ तथा पाद टिप्पणी रा० : ६ : ८।

पादटिप्पणी :

१३७ (१) स्कन्दभवन बिहार : स्कन्द गुप्त विहार वर्तमान खण्डव वन स्थान है। यह श्रीनगर नव कदल अर्थात् छठवें पुल के समीप वितस्ता नदी के दक्षिण तट पर नगर के पश्चिम तरफ था।

कल्हण के आठवें तरंग के श्लोक १४४२ के वर्णन से प्रकट होता है कि वहाँ सुस्सल की रानी सती हुई थी। उस समय मक्षिका स्वामी के समीप का स्मशान अरक्षित था। उस समय इस विहार के समीप खुला मैदान था। यह मैदान कालान्तर में कब्रिस्तान बन गया।

श्रीवर ने चौथे तरंग के १२२ तथा ६२२ श्लोकों से मालूम होता है कि महम्मद शाह (१४८४ ई०) के समय यह स्थान फौज के शिविर निमित्त काम में लाया गया था। खण्डव वन मुहल्ला के दक्षिणी तरफ शायद यह स्थान था। ब्राह्मणों की प्रचलित परम्परानुसार यह स्थान पवित्र माना जाता है। उसे स्कन्दवन कहते हैं।

श्री स्तीन ने यह स्थान सन् १८९१ ई० में देखा था। उनके अनुसार बाजार से नव कदल के उत्तर तरफ २५० गज पर सड़क के वाम तरफ था। यहाँ की जियारत मुल्लाह मुहम्मद वासुर के चहार दिवारी के अन्दर बड़ी तादाद में कब्रें बनी हैं। जिसमें हिन्दू मन्दिरों से प्राप्त पत्थर लगे हैं। इसके पश्चिम तरफ खाली मैदान मिट्टी की चहार दिवारी से घिरा है। इसके मध्य में एक ११ फिट ऊँचा ढूहा है। वह पत्थरों के नये चौकोर अधिष्ठान पर है। यह ढूहा मिट्टी तथा ईंटों का है। यहाँ दस वर्ग फिट का एक कूप अथवा कुण्ड है। इस कुण्ड के समीप जियारत के मुल्ला ने एक कुआँ लगभग सन् १८८१

श्रीयशस्करभूभर्तृशुद्धान्तस्य विशुद्धधीः ।
कौलीनमलुनादेका गौरीव नृपसुन्दरी ॥१३८॥

१३८. नृपति यशस्कर के अन्तःपुर की विशुद्धधी गौरी तुल्य एक नृप सुन्दरी ने कौलीन (लोक निन्दा) को दूर कर दिया।

सुचिराङ्कुरितप्रीतेः पर्वगुप्तस्य याऽकरोत् ।
समागमार्थिनो युक्त्या वञ्चनामुचितां सती ॥१३९॥

१३९. चिरकाल से अंकुरित प्रीति वाले समागम प्रार्थी पर्वगुप्त की युक्तिपूर्वक जो सती उचित वंचना करती थी—

इदं यशस्करस्वामिसुरवेश्मार्धनिर्मितम् ।
त्यक्त्वा पत्युर्विपन्नस्य कृत्वा निर्माणपूरणम् ॥१४०॥

१४०. 'इस यशस्कर स्वामी देव मन्दिर को अर्ध निर्मित त्याग कर, मृत पति के निर्माण को पूर्ण करने पर।

ई० में निर्माण कराया था।

पड़ोस के ब्राह्मणों ने इस स्थान के सम्बन्ध में कुछ बातें बतलाई हैं। उनके अनुसार स्कन्द वन में कुमार अथवा स्कन्द का मन्दिर एक जलस्रोत अर्थात् निर्झर के समीप था। पूर्व काल में यह निर्झर कुण्ड में गिरता था। इसका जल मार नहर में नारबल स्थान में जाकर मिलता था। यह स्थान कुण्ड से कुछ ही दूर पश्चिम स्थित है। इस निर्झर को किसी ने स्वयं अपनी आखों नहीं देखा था।

पं साहिबराम के पुत्र श्री रामचन्द्र ने बताया कि एक ६० वर्षीय ब्राह्मण ऋषि ने उन्हें बताया था कि जब वह बिल्कुल बच्चा था तो उसके एक सम्बन्धी गोवर्धन दास याजिद जो उस समय अत्यन्त वृद्ध थे यहाँ पूजा करने प्रतिदिन आया करते थे। वह शनिवार के दिन एक बड़े शहतूत के वृक्ष के मूल में नैवेद्य चढ़ाया करते थे। सूबेदार शेख गुलामुद्दीन (सन् १८४२--१८४३ ई०) के समय वृक्ष जियारत के मुल्ला के कहने पर काट डाला गया। वृक्ष जब काटा गया तो उससे कहा जाता है कि खून निकला था। गोवर्धन दास तथा उनके साथी प्रवण दिन पर वृक्ष के मूल में दीपक जलाते थे।

स्तीन के इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि स्कन्द वन का स्थान मानवीय स्मृति में पूजा का स्थान बना रहा। इसी के समीप प्रवर गुप्तेश्वर का मन्दिर भी था।

पाठभेद :

श्लोक सं० १३८ 'मलुनादेका' का 'मधुनादिका' तथा 'गौरीव नृपसु' का गौरी नृपतिंसु' एवं 'कौलीन' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'लोक निन्दाम्' लिखा मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४० में 'निर्माण' का पाठभेद 'निर्वाण' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१४० (१) यशस्कर स्वामी : इस स्थान एवं मन्दिरों का पता नहीं चलता। पीर हसन भी इस पर कुछ प्रकाश नहीं डालता वह केवल इतना लिखता है—'शौहर का बुतखाना फला मौजा में नातयाम है।' (१०२-१०३)

अमोघमस्मि नियमाद्विधास्यामि त्वदीप्सितम् ।
स ह्युपच्छन्दयन्नेवं सुभ्रुवाभिहितस्तया ॥१४१॥

१४१. 'नियम पूर्वक तुम्हारा अभीप्सित पूर्ण करूँगी।' उस सुभ्रू ने इस प्रकार प्रलोभित करते हुए उससे कहा।

अथ प्रवृद्धगर्वेण तत्स्वल्पैरेव वासरैः ।
संपूर्णतां सुरगृहं गमितं तेन भूभुजा ॥१४२॥

१४२. बड़े गर्व से उस नृपति ने थोड़े ही दिनों में उस सुर गृह को सम्पूर्ण कर दिया।

सा यागज्वलने राजललना पीतसर्पिषि ।
पूर्णाहुत्या समं साध्वी जुहाव सहसा तनुम् ॥१४३॥

१४३. घृताहुति पूर्ण यज्ञाग्नि में साध्वी, उस राज ललना ने पूर्णाहुति के साथ, सहसा शरीर को हवन कर दिया।

उपर्यस्या निरस्तासोः पुष्टाः कुसुमवृष्टयः ।
तत्कांक्षिणस्तु न्यपतन्नवर्णमुखरा गिरः ॥१४४॥

११४. गत प्राण जिस (ललना) के ऊपर प्रचुर पुष्प वृष्टि हुई और उसके अभिलाषी (पर्वगुप्त) पर कुवचन मुखरित होने लगे।

सुदीर्घसाहसारम्भचिन्तासंरम्भशोषितः ।
पर्वगुप्तो बभूवाथ तृष्णामयपथातिथिः ॥१४५॥

१४५. सुदीर्घ साहसारम्भ की चिन्ताधिक्य से शोषित पर्वगुप्त तृष्णारोग[1] पथ का अतिथि बना।

व्याध्याधिप्रशमायासैर्ज्ञात्वाप्यस्थायिनीं स्थितिम् ।
मूढाः प्ररूढिं नोज्झन्ति द्रोहश्रीलोभमोहिताः ॥१४६॥

१४६. आधि व्याधि के शमनोपायों द्वारा स्थिति को अस्थायी जानकर भी श्री लोभ मोहित मूढ़ द्रोह प्रवृत्ति को नहीं छोड़ते हैं।

पाठभेद :

श्लोक सं० १४१ में 'स्तया' का 'स्तथा' तथा पार्श्वटिप्पणी में 'अस्मि' के लिये 'अस्मीति निपात : अहमित्यर्थे' तथा श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

१४३ (१) हवन : पीरहसन इसे दूसरे ढंगसे वर्णन करता है—'रानीमजकूर ने खुद को लिवास फाखरह के साथ आरास्ता किया। और उसके बाद लकड़ी के ढेर में आग लगाकर खुदको जला दिया।' (१०३)

पाठभेद :

श्लोक सं० १४५ में 'शोषितः' का पाठभेद 'योषितः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१४५ (१) तृष्णा रोग : अंग्रेजी अनुवादकों ने अनुवाद ड्रोप्सी अर्थात् जलोदर किया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० १४६ में 'द्रोहश्री' का पाठभेद 'द्रोहे श्री' मिलता है।

आशङ्क्य तादृङ्निष्ठोऽपि सोऽकुण्ठैः प्राक्तनैः शुभैः ।
कैश्चित्सुरेश्वरीक्षेत्रे परासुः समपद्यत ॥१४७॥

१४७. ऐसी स्थिति में आशंकित होकर भी वह अकुंठित प्राक्तन कुछ शुभ कर्मों के कारण सुरेश्वरी[1] क्षेत्र में निष्प्राण[2] हुआ ।

षड्विंशवत्सराषाढबहुलेऽह्नि त्रयोदशे ।
द्रोहार्जितेन नृपतिः स राज्येन व्ययुज्यत ॥१४८॥

१४८. छब्बीस वर्ष के आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी को उस नृपति का द्रोहार्जित राज्य से सम्बन्ध टूट गया ।

अतीन्द्रियायां परलोकवृत्ताविहैव तीव्राशुभपाकशंसी ।
दृश्येत नाशो यदि नाम नाशु न कः कुकृत्येन यतेत भूत्यै ॥१४९॥

१४९. अतीन्द्रिय परलोक के उत्कट अशुभ की परिणति का सूचक, विनाश यदि शीघ्र ही इस लोक में न दिखायी दे, तो कुकृत्य द्वारा ऐश्वर्य के लिये कौन यत्न नहीं करता ।

क्षेम गुप्त (सन् ९५०-९५८ ई०)

क्षेमगुप्ताभिधानोऽभूदथ राजा तदात्मजः ।
आसवासेवनोत्सिक्तवित्ततारुण्यसंज्वरः ॥१५०॥

१५०. आसव सेवन से उन्मत्त वित्त एवं तारुण्य ज्वर ग्रस्त उसका पुत्र क्षेमगुप्त राजा हुआ ।

पादटिप्पणी :

१४६. सूक्ति संग्रह का २०९ वां श्लोक है ।

१४६. (१) लोभ : लोभ का वर्णन मर्मस्पर्शी पदों में किया गया है ।

दिनयामिन्यौ सायं प्रातः शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायुस्तदपि न मुंचत्याशावायुः !
अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं दन्तविहीनं जातं तुण्डं ।
करधन कम्पित शोभित दण्डं तदपि न मुंचत्याशाभाण्डं ।

पादटिप्पणी :

१४७ (१) सुरेश्वरी : द्रष्टव्यः टिप्पणी : रा० : ५ : ३७, ४०, ४१, पीर हसन एक विचित्र बात लिखता है—'बुतखाना श्रीश्वर (सुरेश्वरी) में राजा संग्राम की रुह देखते ही फिलफौर जान दे दी। (पृष्ठ : १०३)

(२) निष्प्राण : विलसन लिखते हैं कि राजा सुरेश्वरी क्षेत्र में शत्रु दल द्वारा मार डाला गया और राज्य अपने पुत्र के लिये छोड़ दिया । (७१) परन्तु इसका समर्थन किसी स्रोत से नहीं होता ।

पादटिप्पणी :

१४८ (१) छब्बीस : सप्तर्षि ३०२६ = सन् ९५० ई० = विक्रमी : १००७ = शक ८७२ आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १४९ में 'भूत्यै' का पाठभेद 'भृत्यै' 'भीत्यै' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१४९. सूक्ति संग्रह का २१० वां श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०५१, शक ८७२=लौकिक ४०२६ = सन् ९५० ई०, स्तीन

सोऽभूत्स्वभावदुर्वृत्तो नितरां दुर्जनाश्रयात् ।
कृष्णक्षपाक्षणो घोरमेघान्ध इव भीतिकृत् ॥१५१॥

१५१. दुर्जनों के आश्रय के कारण वह स्वभाव से दुर्वृत्त तथा घोर मेघों से अन्धकारमय, कृष्ण पक्ष की काल रात्रि सदृश, भयावह हो गया था ।

लौकिक ४०२६ आषाढ़ कृष्ण १३ सन् ९५० ई०, पण्डित सन् ९५१ ई०, सी० एम० डफ० सन् ९५० ई०, विलसन लौकिक ४०२५ वर्ष ६ मास = ९७१ वर्ष ३ मास, ट्रोयर सन् ९५२ ई० १० सन् लौ० ४०-२६ ई०; कनिंघम सन् ९५० ई० देता है । लौ० = ४०२४, पीर हसन विक्रमी संवत् १०१६ = ९५९ ई० तथा राज्य काल पण्डित ८ वर्ष ६ मास ३ दिन ट्रोयर, तथा विलसन ८ वर्ष ६ मास तथा पीरहसन ७ वर्ष ६ मास ११ दिन लिखता है । राज़तरंगिणी-संग्रह में ८ वर्ष ६ मास राज्यकाल दिया गया है ।

क्षेत्र गुप्त की एक ताम्र मुद्रा मिली है । उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ 'लक्ष्मी' तथा 'क्षेत्र गु' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा एवं गुप्त टंकणित है ।

एक मुद्रा और मिली है । वह दिद्दा क्षेत्र संयुक्त नामों से ही । उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा 'दि क्षेत्र गु' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'प्ता' टंकित है ।

समसामयिक घटनाएं—

सेन (चतुर्थ) श्री लंका का राजा । (सन् ९५०-९५३ ई०) जैजोक भुक्ति शक्तिशाली हुआ । भट्ट-तौत का सम्भावित काल धंग चन्देल का सम्भावित काल (सन् ९५०-१०००) ई० लक्ष्मण राज पुत्र कैयूर वर्ष कलचुरी चेदि राज हर्ष देव सीयक (द्वितीय) पुत्र वैरी सिंह (द्वितीय) परमार राज मालवा (धार); भीम (प्रथम) काबुल का शाही हिन्दू राजा हुआ । सन् ९५१ ई०, में इन्द्रवर्मा (तृतीय) ने चीन सम्राट् के यहाँ राजदूत भेजना अल्लत पुत्र गुहिल भट्ट मेवाड़ राजा का ज्ञात (सन् ९५१-९५३ ई०) समय ता-इ-त्सु-चीन सम्राट् यौ वंश के पश्चात् हुआ । रुद्र भट्ट का सम्भावित काल, (सन् ९५१-११२० ई०) शेख अबू इशहाक अल इस्तखरी किताबुल अकालिम की रचना किया । सन् ९५३ ई० पारन्तक चोलराज की मृत्यु । विनायक पाल प्रतिहार देवपाल कन्नौज का राजा हुआ । (सन् ९५३-९५४ ई०) । चन्द्रा-दित्य चोल का राजा हुआ । (सन् ९५३-९५७ ई०) । महेन्द्र (चतुर्थ) लंका का राजा हुआ । सन् ९५४ ई० सी-त्सुंग चीन का सम्राट् हुआ । लोथेर फ्रांस का राजा हुआ । अबुल-फवारिसे अबुल मल्लिक समनानी पिता नूह (प्रथम) का उत्तराधिकारी हुआ । सन् ९५५ ई० वक्तराज का समय था । एडन्वी इंगलैंड का राजा हुआ । स्वियाते सिलोव (कवि) रूस का प्रथम राजा हुआ । सन् ९५६ ई० बदया पुत्र युद्धमल्ल ने अम्म द्वितीय को पराजित किया । अलमासूदी इतिहासकार की मिश्र में मृत्यु । कृष्ण (तृतीय) राष्ट्रकूट राजा ने बदया को वेंगी के सिंहासन .पर बैठाया । सिंहराज चाहमान ने हर्षनाथ मन्दिर निर्माण कराया । (सन् ९५७ ई०) सुन्दर किंवा पारंतक (द्वितीय) चोल-राज हुआ (सन् ९५७-९७३ ई०) । अब्दुलमलिक समनानी ने अलप्तगीन को हिरात का सूबेदार अबू मन्सूर के स्थान पर बनाया । सन् ९५८ ई० इन्द्रवर्मा चम्पा राजा ने चीन सम्राट के यहाँ दूत भेजा । (सन् ९५८-९७० ई०) सन् ९५८ ई० क्षेत्रगुप्त काश्मीर राज मार्गशीर्ष चतुर्दशी को बीमार हुआ । क्षेत्र गुप्त की मृत्यु पौष शुक्ल नवमी को हुई ।

पादटिप्पणी :

१५१. सूक्ति संग्रह का २११ वां श्लोक है ।

स्वतुल्यवेषालंकाराः शतं लालितका नृपम् ।
तं फल्गुणप्रभृतयो दुराचाराः सिषेविरे ।।१५२।।

१५२. उसके तुल्य वेश अलंकारधारी, दुराचारी, फल्गुण प्रभृति सैकड़ों लालितक[1] उस नृप की सेवा करते थे ।

द्यूतासवाङ्गनासेवाव्यसनेऽपि स पार्थिवः ।
विटनिर्लुण्ठ्यमानोऽपि नाभूल्लक्ष्मीबहिष्कृतः ।।१५३।।

१५३. द्यूत, आसव, अंगना सेवन के व्यसन में विटों द्वारा लुण्ठ्यमान, वह पार्थिव लक्ष्मी-बहिष्कृत नहीं हुआ ।

रागी मधुप्रणयवान्विहिताक्षसक्तिर्यः सख्यमेति मधुपैर्हृतकोशसारैः ।
पद्मे प्रयाति दिनमात्रमपि प्रसक्तिं श्रीस्तत्र चेत्किमिव तन्न कुतूहलाय ।।१५४।।

१५४. रागी (रक्त वर्ण), मधुमय, अक्ष (बीज) की आसक्ति से युक्त जो (कमल) कोशगत रस (सार) के अपहर्त्ता मधुपों से मित्रता करता है, उस (कमल) में यदि श्री (शोभा) दिनमात्र ही आसक्ति रखती है तो उस अनुरागी, मद्य प्रणयी, द्यूतासक्त नृप के कोशापहारी मद्यपों के साथ मैत्री करने पर भी लक्ष्मी उसे (कुछ दिन ही) नहीं त्यागती है, तो कोई आश्चर्य नहीं है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५२ में 'वेषा' का पाठभेद 'वेशा' तथा 'लालितका' के लिये 'पदातयः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५२ (१) लालितका : दुलारा, लाडला, मुँहलगा, प्रिय, स्नेहभाजन अर्थ होता है ।

श्री स्तीन ने लालितक का फेवरिट मानकर अर्थ किया है । श्री सीताराम रणजीत पण्डित ने 'विलियन्स, साइकोफैन = 'अधम चाटुकार' अर्थ किया है । लालितक का शाब्दिक अर्थ, लाडला, दुलारा, प्रिय, स्नेह भाजन होता है । एक मत से इसका लौकिक अर्थ 'पदातयः' मानते हैं । पदातय पैदल चलने वाले को कहते है ।

पादटिप्पणी :

१५३ (१) विट : द्रष्टव्यः पाद टिप्पणीः रा०: ४ : ६६३ तथा जैनः १ : ७ : १९०, शुकः १ : २८ क्षेमेन्द्रः देशोपदेशः पंचम उपदेश विट वर्णनम् ।

पीर हसन लिखता है—शराब पीने और 'चंग' और रबाब के बजाने में मशगूल रहता । खजाने और दफीने, किमार (जूआ) बाजी और नगमा साजी में हार दिये । खुद को और अपने हमनशीनों को औरतों के तरीका पर जेवर और लिबास पहनाकर, बहशियों की तरह बदमस्ती करता था । (पृष्ठ : १०३)

चंग और रबाब का उस समय काश्मीर में प्रवेश नहीं हुआ था । रबाब तथा चंग बाजा का जैनुल आबदीन के समय इस समय के पांच शताब्दी बाद काश्मीर में प्रवेश हुआ था । पीर हसन तथा अन्य परशियन इतिहासकार काल्पनिक बातें बहुत लिखते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५४ में 'तन्न' का पाठ भेद 'तत्र' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५४. सूक्ति संग्रह का २१२ वां श्लोक है ।

१५४ (१) इस पद में अनेक श्लिष्ट शब्द हैं । इसका शाब्दिक अनुवाद बहुत सरल नहीं है । वैदर्भी

विटाः प्रविष्टा हृदयं जिष्णुजा वामनादयः ।
पिशाचस्येव रुचितामशुचिं तस्य चक्रिरे ॥१५५॥

१५५. पिशाच सदृश हृदय में प्रविष्ट जिष्णु-आत्मज वामनादि ने उस (नृप) में अशुचि रुचिता उत्पन्न कर दी ।

परोपहासकुशलः परनारीरतिप्रियः ।
परायत्ताशयस्तस्थौ पार्थिवोऽनर्थतत्परः ॥१५६॥

१५६. परोपहस कुशल, पर नारी रति प्रिय, परायत्त आशय पार्थिव अनर्थ में तत्पर हो गया ।

ष्ठीवनं श्मश्रुमालासु गालयः श्रोत्रपालिषु ।
तेन क्षिप्ताः प्रतीक्ष्याणां करोटीषु च टक्कराः ॥१५७॥

१५७. वह प्रतीक्ष्यों (मान्यों) के श्मश्रु[1] मालाओं पर ष्ठीवन करता, श्रोत्रपालियों[2] में गाली देता, और करोटियों (खोपड़ियों) पर टक्कर मारता था ।

कटिसंघटनैर्नार्यो मृगव्यज्ञा वनाटनैः ।
विटाश्चाश्लीलरटनैर्वाल्लभ्यं तस्य लेभिरे ॥१५८॥

१५८. नारियाँ, कटि संघटनों, मृगव्यज्ञा (शिकारी), वनाटनों, (भ्रमण) एवं विट अश्लील भाषणों द्वारा उसकी प्रियता प्राप्त करते थे ।

रीति जिसके आधार पर मैंने अनुवाद किया है, उससे श्लोक का सम्पूर्ण भाव स्पष्ट होता है । इसमें मुझे सन्देह है । तथापि अनुवाद मूल के अति निकट करने का प्रयास किया गया है । श्री पण्डित ने मत प्रकट किया है कि इसका अनुवाद करना सरल नहीं है राग, रागी, प्रणयवान, विहिताक्षसक्ति शब्द श्लिष्ट हैं । उनसे कमल तथा राजा दोनों का अर्थ निकलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५५ में 'मशुचिं' का पाठ भेद' 'सशुचिं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५६. सूक्तिसंग्रह का २१३ वां श्लोक है ।

१५६ (१) परायत्त : परायों अर्थात दूसरों के वश्य किंवा इच्छानुसार काम करने वाला, स्वतः स्वाधीन विचार का न होकर, दूसरों के सलाह, इच्छा नीति एवं विचारों के पराधीन था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १५७ में 'पालिषु' का पाठभेद 'पालयः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५७. सूक्तिसंग्रह का २१४ वां श्लोक है ।

(१) श्मश्रु : दाढ़ी-मूंछ के बालों पर राजा थूकता यहाँ अभिप्राय है ।

(२) श्रोत्र पालि : कान के सिरा अथवा किनारा से यहाँ तात्पर्य है । गीत गोविन्द में श्रोत्रपालि के स्थानपर, 'श्रवण पालि' शब्द का प्रयोग किया गया है । (३)

पाठभेद :

श्लोक सं० १५८ में 'घटनैर्ना०' का पाठभेद 'घटनान्ना' तथा 'घट्टनान्ना' 'वनाटनैः' का 'बनाटकैः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१५८. सूक्ति संग्रह का २१५ वां श्लोक है ।

पुंश्चलीजाल्मवैधेयबालकद्रोग्घ्रनिर्भरा ।
समभूदप्रवेशार्हा राजपर्षन्मनस्विनाम् ॥१५९॥

१५९. पुंश्चली, जालम, मूर्ख, बालभ्रंशियों से भरी राजसभा मनस्वियों के प्रवेश योग्य नहीं थी।

जिष्णुपुत्रैः क्षेमगुप्तक्षमाभृद्यन्त्रपुत्रकः ।
चारणत्वगुणाकृष्टः किं न धूर्तैरनर्त्यत ॥१६०॥

१६०. धूर्त जिष्णु पुत्रों ने चारणत्व गुणाकृष्ट क्षेमगुप्त क्षमाभृद् रूप यन्त्रपुत्रक (कठपुतली) को क्या नहीं नचाया ?

तस्य कङ्कणवर्षोऽसीत्यभिधानं विधाय ते ।
तोषिताश्चासकृच्चक्रुर्दोर्ष्णोः कङ्कणवर्षिताम् ॥१६१॥

१६१. 'आप कंकणवर्षी[1] हैं', इस प्रकार उसका अभिधान करके प्रसन्न उससे अनेक बार वे अपने हाथों पर कंकण वृष्टि प्राप्त करवाये।

निर्दोषदोषाविष्कारे नववस्तुप्रदर्शने ।
अघृष्यटक्काराधाने प्रसादः प्रापि तैर्नृपात् ॥१६२॥

१६२. वे लोग निर्दोष के दोष आविष्कृत करने में, नवीन वस्तु के प्रदर्शन तथा मान्यों को टक्कर देने में, नृप से कृपा प्राप्त करते थे।

संलक्ष्य कुचकक्ष्यान्ताः कृत्वा निजवधूः पुरः ।
रागी राजा गृहान्नीतो द्यूते तैर्निर्धनः कृतः ॥१६३॥

१६३. वे रागी राजा को (निज) गृह लाकर अपनी वधुओं के कुच, कक्ष्यान्त, दिखाकर, द्यूत में निर्धन कर देते थे।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६० में 'नर्त्यत' का पाठभेदः 'नन्यत' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६१ में 'तोषिताच्चा' का पाठभेद 'तोषिताश्चा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१६१ (१) कंकणवर्षी : इस शब्द का प्रयोग कल्हण ने रा० : ६ : ३०१ में पुनः किया है। एक ऐन्द्रजालिक का भी नाम था। (रा० : ४।२४६ कर्कण-वर्ष पुकारने का नाम है। काश्मीरियों को पुकारने का नाम मुख्य नाम से अधिक प्रिय होता है। द्रष्टव्य : रा० : १ : ३५० ; ५ : २५३, ६ : १७७; ७ : २८१; ८ : १४४५, तथा श्रीवर : जैन : राजतरंगिणी : १; ४ : ५२,।

पादटिप्पणी :

१६२. सूक्ति संग्रह का वह २१६ वां श्लोक है।

संभोगाभग्नसौभाग्यकृतस्पर्धैं परस्परम् ।
संभुज्यैता भवान्वक्तु विशेषमिति चोदितः ।।१६४।।

१६४. संभोग के सतत सौभाग्य प्रदान में परस्पर स्पर्धी लोग—'आप इनका संभोग कर, वैशिष्टय कहें'—इस प्रकार उससे कहते थे ।

उपभोगं स्वभार्याणां निर्लज्जैस्तैः स कारितः ।
का हृद्येति च रत्यन्ते पृष्टोऽभीष्टधनप्रदः ।।१६५।।

१६५. निर्लज्ज वे अपनी भार्याओं का उपभोग कराकर, रति के अन्त में उससे 'कौन हृद्य थी' ऐसा पूछकर, अभीष्ट धन प्राप्त करते थे ।

तस्य लालितकेष्वास्तां मूढौ संभोगढौकने ।
मात्रोश्चारित्ररक्षित्वाद्भिक्षाकौ हरिधूर्जटी ।।१६६।।

१६६. उसके लालितकों में हरि एवं धूर्जटी नामक मूढ़ जो कि उसके सम्भोग स्थापक थे अपनी माताओं के चरित्र रक्षक होने के कारण भिक्षुक हो गये ।

नीत्वा नर्मकथाङ्गतां निजवपुर्मुञ्चन्ति मानोन्नतिं
संदूष्य स्वयमङ्गनाः शुचितया त्यक्तं कुलं कुर्वते ।
सौख्यं घ्नन्ति सुदीर्घसेवनसमासक्त्या यदर्थं श्रमः
प्रत्याख्याय तदेव वेद्मि न विटैः किं प्रार्थ्यते सेवया ।।१६७।।

१६७. अपने शरीर को नर्म कथा का अंग बनाकर, मानोन्नति का त्याग, स्वयं अंगनाओं को सन्दूषित करके, कुल को पवित्रता से रहित एवं सुदीर्घ सेवन समासक्ति के कारण सुख का विनाश कर देते हैं, जिसके लिये श्रम किया जाता है, उसीका प्रत्याख्यान करके नहीं समझता हूँ कि विटलोग सेवा द्वारा किस वस्तु की अर्थता करते हैं ।

यशस्करस्य भूत्वाऽपि सचिवो भट्टफल्गुणः ।
तस्याभूदनुजीव्यन्ते धिग्भोगाभ्यासवासनाम् ।।१६८।।

१६८. भट्ट फल्गुणक यशस्कर का सचिव होकर भी अन्तमें (राजा) का अनुचर बन गया । भोगाभ्यास वासना को धिक्कार है !

पाठभेद :

श्लोक सं० १६४ में 'वक्तु' का पाठभेद 'वक्तुः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६५ में उक्त श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६६ में 'मात्रोश्चारित्र' का 'मात्रोच्चारित्र' तथा 'रक्षित्वाद्भि' का पाठभेद 'रक्षित्वा भि' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६७ में 'सौख्य' का पाठभेद 'सौख्ये' 'दीर्घसेवनसमा' का 'दीर्घमेव न समा' तथा 'प्रत्याख्याया' का 'प्रत्यख्यापि' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १६८ में 'वासनाम्' का पाठ भेद 'वासिना' मिलता है ।

फल्गुणस्वामिमुख्यानां प्रतिष्ठानां विधायिनः ।
तस्योपदेशो भूभर्त्रा पर्यहास्यसकृद्रहः ॥१६९॥

१६९. फल्गुण स्वामी प्रमुख प्रतिष्ठाओं के कर्ता उस मन्त्री के उपदेश पर राजा एकान्त में प्रायः हंसता था ।

गृह्णन्विद्वेषितां हन्तुं टक्करादि बलात्ततः ।
वृद्धो रक्कः कम्पनेशो दुर्गोष्ठीमध्यगोऽभवत् ॥१७०॥

१७०. विद्वेष भाव को दूर करने के लिये, उससे बलात् टक्कर आदि प्राप्त करते हुए, कम्पनेश वृद्ध रक्क दुर्गोष्ठी का मध्यवर्ती हो गया ।

तीक्ष्णाक्षेपे संप्रविष्टं हन्तुं संग्रामडामरम् ।
श्रीजयेन्द्रविहारं स निर्घृणो निरदाहयत् ॥१७१॥

१७१. संग्राम डामर को मारने के लिये तीक्ष्ण (बधिक) प्रेषित करने पर, वह जयेन्द्र बिहार में प्रविष्ट हो गया, जिसे उस निर्दयी ने जलवा दिया ।

सुगतप्रतिमारीतिं हत्वा दग्धात्ततोऽखिलात् ।
जरद्देवगृहेभ्यश्च संगृह्य ग्रावसंचयम् ॥१७२॥

१७२. पूर्ण रूपेण दग्ध वहाँ से सुगत प्रतिमा की रीति (कासा) का अपहरण तथा प्राचीन देव गृहों से पाषाण संचय करके—

पादटिप्पणी :

१६९ (१) फल्गुण स्वामी : इस मन्दिर के स्थान का पता नहीं चला है । फल्गुण नामक एक देवस्थान का उल्लेख नीलमत पुराण में है । फल्गुण का नाम इसी देवता के नाम पर रखा गया होगा । पुरातन फल्गुण देव कहाँ था यह अनुसन्धान का विषय है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७० में 'गृह्णन् विद्वेषि' का 'गृह्णन्विशेष' तथा 'रक्क' का 'रक्तः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७० (१) रक्क : तुलनीय । रा० : ५ : ४२४

पादटिप्पणी :

१७१ (१) तीक्ष्ण : द्रष्टव्य टिप्पणी = जोन० राजतरंगिणी श्लोक : ३०५,५१७ तथा श्रीवर । जैन राजतरंगिण : २ : १७५ : तीक्ष्ण उस साहसी अथवा आततायी व्यक्ति को कहते हैं, जो अपने जीवन की चिन्ता न कर हाथी से भी लड़ने के लिये उद्यत हो जाता है। ऐसे मनुष्यों को किसी भी साहसी आततायी बड़े से बड़े आदमी का वध करने में भी संकोच नहीं होता ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७२ में 'दग्धात्ततो' का 'दग्धा ततो' तथा 'संगृह्य' का पाठभेद 'सङ्ग्राह्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७२ (१) सुगत प्रतिमा : बुद्ध प्रतिमा । यह भगवान् बुद्ध की ठोस कास्य प्रतिमा है जिसका उल्लेख जयेन्द्र विहार के सम्बन्ध में किया गया है । द्रष्टव्य : रा० : ३ : ३५५ ।

सुरप्रतिष्ठया दार्ढ्यं मूढः स्वयशसो विदन् ।
नगरापणवीथ्यन्तः क्षेमगौरीश्वरं व्यधात् ।।१७३।।

१७३. सुर प्रतिष्ठा द्वारा अपने यश की स्थायित्व की भावना से उस मूढ़ ने नगर के आपण[1] वीथी में क्षेम गौरीश्वर को स्थापित किया ।[2]

भगवान् बुद्ध की मूर्तिया में तीन भारतीय शैली की मूर्तियाँ प्रसिद्ध हैं । गान्धार आदि की अपनी अलग शैली है । मथुरा की मूर्तिकला गान्धार शैली से प्रभावित है । काशी की बौद्ध मूर्ति कला में सौम्यता उसकी विशिष्टता है । मगध की भी अपनी एक शैली है । तीनों मूर्ति कलाओं के चीवर मुखाकृति एवं प्रभामण्डल की अपनी विशेषता में है। भगवान् बुद्ध ६ वर्ण कहे गये है । उन्हें मूर्तियों में दिखाने का प्रयास किया गया है । मूर्ति के मूर्धा पर शिरो ज्योति प्रदर्शित किया जाता है । उससे मूर्धा के मध्य उठा सा रहता है । एक मत है कि वह ज्योति पुंज का प्रतीक माना जाता है । श्री लंका में त्रिशूल के समान तीन उठे भाग मूर्धा पर दिखाये जाते हैं । शेष विश्व में केवल एक ही वृत्ताकार भाग मूर्धापर उठा दिखाया जाता है ।

चित्त के अकुशल—राग, मोह एव द्वेष हैं । उनके जीतने के कारण भगवान् का जिन अर्थात् जीतने वाला नाम पड़ गया है । जिन शब्द भगवान् का एक पर्यायवाची नाम है ।

विलसन का मत है कि कल्हण का वर्णन यहाँ स्पष्ट नहीं है । वर्णन पर धार्मिक रंग चढ़ाया गया है । यह बौद्धों के विरुद्ध दमन हो सकता है जिसके विषय में बहुत कुछ कहा गया है परन्तु हिन्दू इस विषय में बहुत कम जानते हैं । (७१) ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७३ में उक्त श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' लिखा है ।

पादटिप्पणी :

१७३ (१) आपण वीथी : आपण = बाजार वीथी = मार्ग बाजार मार्ग अर्थात् बाजार में मन्दिर स्थापना किया था ।

(२) क्षेम गौरीश्वर : विक्रमांक देव चरित में कवि विल्हण ने प्रवरपुरा अर्थात् श्री नगर का वर्णन करते हुए क्षेम गौरीश्वर मन्दिर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । मन्दिर के भग्नावशेष से दूसरा मन्दिर बनाने की प्रथा का यह सर्व प्रथम उदाहरण मिलता है । इसके पश्चात् मन्दिरों का पत्थर लेकर मसजिद, ज़ियारत आदि बनाना मामूली बात हो गई । १८ : २८ ।

इस मन्दिर का मण्डप विल्हण के अनुसार संगम तक विस्तृत था । किन्तु यह संगम वितस्ता सिन्धु नदी अपितु महासरित (भार) या दुग्धगंगा (चतुस्कुल) का था अथवा किसी अन्य नदी का स्पष्ट नहीं है । अतएव निश्चय पूर्वक कुछ निर्णय करना कठिन है ।

दुग्ध गंगा : दुग्धसिन्धु = चतुस्कुल । क्षिप्तिका का वर्णन श्रीनगर के घेरे के सम्बन्ध में कल्हण ने किया है । उसने इस सैन्य वेष्ठन अर्थात् घेरा का आँखों देखा वर्णन किया है । कुछ सौ गज वितस्ता के अधोभागमें वामतटपर एक नदी आकर मिलती है । इसे दूध गंगा कहते है । इसका नाम चत्सकुल हो गया है । श्रीनगर के वर्णन में विल्हण कवि ने इसका नाम दुग्ध सिन्धु दिया है । यह स्थान दिद्दामठ के दूसरी तरफ अर्थात् विरोधी दिशा में है ।

क्षेम गौरीश्वर : क्षेम गौरीश्वर मन्दिर का बड़ा ही सुन्दर वर्णन विल्हण करता है । उसके समय में मन्दिर वर्तमान था । मन्दिर श्रीनगर में संगम तक विस्तृत था था । वह संगम वितस्ता सिन्धु नहीं बल्कि महासरित वितस्ता, या वितस्ता दुग्ध-

एकः प्रयात्युपरमं द्रविणं तदीयं
हृत्वाऽपरः प्रसभमुद्वहति प्रमोदम् ।
नो वेत्ति तत्स्वनिधने परकोशगामि
धिग्वासनामसममोहकृतान्धकाराम् ॥१७४॥

१७४. एक व्यक्ति मृत होता है, उसका द्रव्य लेकर दूसरा अत्यन्त प्रमुदित होता है, वह नहीं जानता कि उसके निधन पर, वह धन दूसरे के कोश में जाने वाला है । इस असम मोह अन्धकार विधात्री वासना को धिक्कार है ।

त्यागिना क्षेमगुप्तेन भुक्त्यर्थं खशभूभुजे ।
हृत्वा विहारान्निर्दग्धान्ग्रामाः षट्त्रिंशदर्पिताः ॥१७५॥

१७५. त्यागी[1] क्षेमगुप्त ने भोग के लिये निर्दग्ध बिहार से ३६ ग्राम लेकर खश-नृपति को अर्पित किये ।

गंगा का संगम होना चाहिए । दुग्धगंगा को गंगा या चत्सकुल कहते हैं । श्रीनगर के वर्णन में विल्हण ने इसका नाम दुग्धसिन्धु दिया है । वितस्ता माहात्म्य में इसे श्वेत गंगा कहा गया है । श्वेत शब्द काश्मीरी भाषा में चुत हो गया है । चुत शब्द बिगड़कर फारसी के प्रभाव से चत्स बन गया ।

श्रीनगर के सातवें पुल के अधो भाग में दुग्ध गंगा एवं वितस्ता संगम के समीप बहुखातकेश्वर भैरव मन्दिर है । इसे मन्दिर का उल्लेख श्रीवर ने भी किया है । (२ : १२६) इसी स्थान के समीप राजा ने क्षेम गौरीश्वर मन्दिर निर्माण कराया था । वहाँ के खखन कार्य में बहुत से अलंकृत पत्थर मन्दिर के मिले हैं । विल्हण लिखता है—

तत्पर्यन्तं स्थितगुणनिका मण्डपं यत्र धत्ते ।
धाम व्योमांगणतिलकतां क्षेमगौरीश्वरस्य ॥
रामा रामानुकरणविधौ पात्र नास्य प्रयोगे ।
योगस्थानामपि सपुलकं गात्रमासूत्रयन्ति ॥
(१८ : २३)

मन्दिर गगनचुम्बी था । मन्दिर का नृत्य मण्डप सुन्दरियाँ नाट्य प्रयोग में रमणीय अभिनय किंवा राम का अभिनय कर योगियों को भी रोमांचित कर देती थीं ।

विल्हण के वर्णन से दो बातें स्पष्ट होती है । मन्दिरों में नृत्य एवं गान की प्रथा थी । उसमें स्त्रियां भाग लेती थीं । मन्दिर मण्डप में ही अभिनय आदि भी होते थे । दर्शनार्थियों की अधिक भीड़ होती थी ।

मन्दिरोंमें नृत्य एवं गान की प्रथा प्राचीन काल से चली आती है । मैंने अपनी बाल्यावस्था में काशी के मन्दिरों के मण्डलों में गान होते देखा है । बड़े मन्दिरों में प्रातः काल गान सायंकाल कथा तथा रात्रि के प्रथम याम में पुनः गान होता था । विशेष पर्वों पर नृत्य भी होता था । स्वतन्त्रता के पश्चात् राज्यों के विलय एवं जमीन्दारी उन्मूलन के कारण केवल यह प्रथा धनाभाव के कारण समाप्त होकर कथा मात्र रह गयी है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १७४ में 'परमं' का 'परितं' तथा 'हृत्वाऽपः' का पाठभेद 'कृत्वापरः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७४ सूक्ति संग्रह का २१८ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

'श्लोक सं० १७५ में 'भुक्त्वार्थ' तथा 'निर्न्दग्धात्' का पाठभेद 'निर्दग्धान' तथा 'मिहराज' के लिये 'खशभूभुजे' लिखा मिलता है ।

दिद्दा का विवाह :

दुर्गाणां लोहरादीनां शास्ता शतमखोपमः ।
नृपतिः सिंहराजाख्यस्तस्मै स्वां तनयां ददौ ॥१७६॥

१७६. लोहर[1] आदि दुर्गों के शास्ता (शासक) इन्द्रोपम सिंहराज[2] नृपति ने उस (राजा) को अपनी तनया[3] प्रदान की ।

पादटिप्पणी :

१७५ (१) त्यागी : श्री स्तीन ने 'लेविश तथा श्री पण्डित ने 'स्पेण्ड थ्रिफ्ट' (बहुत्यागिन् मुक्तहस्त, व्ययी, बहुव्ययी, वृथाव्ययिन्, अर्थनाशिन्) अनुवाद किया है । और ३६ ग्रामों का उल्लेख अपने अनुवाद में नहीं किया है यद्यपि श्री स्तीन उसका उल्लेख करते है । त्यागिना का अर्थ यहाँ धन का त्याग करने वाला अर्थात् मुक्तहस्त व्ययी होता है ।

खश नृप का अभिप्राय यहाँ पर सिंहराज से लगाना चाहिये । वह लोहर का राजा था । लोहर का क्षेत्र खश अंचल में पड़ता था । द्रष्टव्य रा० : १ : ३१७ । राजा उत्कर्ष को सिंहराज वंशज एक खश रूप में चित्रित किया गया है । (रा० : ७ : ७७३) इससे प्रमाणित होता है कि लोहर का राजवंश खश जाति का था । राजपुरी के शासक गण भी खश वंशीय थे । दोनों वंशों में विवाहादि होता था । (रा० : ७ : १२७६, १२८१, ८ : १४६६; तुलनीय रा० : ८ : १४६४, १६४४)

(२) खश : यहाँ सिंहराज से तात्पर्य है । राजा उत्कर्ष सिंहराज का वंशज था । उसे खश कहा गया है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि लोहर राजवंश खश था । राजौरी का भी राजवंश खश जातीय था । दोनों वंशों में सम्बन्ध होता था ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७६ में 'शतमखो' का पाठभेद 'शतमुखो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७६ (१) लोहर : लोहर कोट = लोहकोट तुलनीय : रा० : ४ : १७७ । विलसन लोहर को गलती से लाहौर लिखता है (७१)

(२) सिंहराज : पीर हसन लिखता है—भीम शाह वालिये लोहर कोट की मुसम्मी दीदारानी अपने निकट में लाकर हमेशा उसकी मुहब्बत और उल्फत के जाल में गिरफ्तार था। (फारसी : १११, उर्दू : १०३) एक मत है कि सिंहराज दरद देश का राजा था ।

(३) दिद्दा : रानी का नाम दिद्दा था । भीम शाही सिंहराज का श्वसुर था । रानी दिद्दा का नाना था । यही राजा भीम था । अल्बेरूनी ने भी काबुल के हिन्दू शाहियों की तालिका में उल्लेख किया है । वह कमलुक का उत्तराधिकारी था । कल्हण ने कमलुक नाम दिया है (रा० : ५ : २३३) कल्हण ने (रा० : ७ : १०८१) स्पष्ट उल्लेख किया है कि शाही राजा भीम उदभाण्डपुर का राजा था । गान्धार की उदभाण्डपुर प्राचीन राजधानी थी । शाहियों ने अपनी कन्याओं का विवाह लोहर वंश के राजाओं के साथ किया था ।

दिद्दा शब्द आदर सूचक है । बड़ी बहन के लिये इस शब्द का प्रयोग किया जाता है । काश्मीरी ब्राह्मणों में यह शब्द अभी तक प्रचलित है । दिद्दा की कथा कहानी तथा प्रेममयी गाथा अबतक काश्मीरी लोग नहीं भूले हैं । वह पुण्य कार्य करती थी । पश्चात्ताप करती थी । साथ ही साथ वह काम लिप्सा से जलती भी रहती थी ।

स तस्यां शाहिदौहित्र्यां दिद्दायां रक्तमानसः ।
दिद्दाक्षेम इति ख्यातिं ययौ लज्जावहां नृपः ।।१७७।।

१७७. उस शाही दौहित्री दिद्दा में आसक्त मन, उस नृप ने 'दिद्दा क्षेम'[1] ऐसी लज्जावह ख्याति प्राप्त की ।

मातामहेन भूभर्तृवध्वास्तस्या व्यधीयत ।
श्रीभीमशाहिनोदात्तप्रासादो भीमकेशवः ।।१७८।।

१७८. उस नृप वधू के मातामह श्री भीम शाही ने भीम केशव[1] का भव्य प्रासाद (मन्दिर) निर्मित कराया ।

पादटिप्पणी :

१७७ (१) दिद्दा-क्षेम : राजा-रानी के पारस्परिक प्रीति के कारण पति-पत्नी का नाम दिद्दा-क्षेम पड़ गया था । पत्नी का नाम पति के पूर्व रखकर पुरानी परम्परा का पालन काश्मीरी जनता ने किया था । भारतीय देवताओं के नाम के पूर्व उनकी पत्नियों का नाम रखा जाता है—सीता-राम, गौरी-शंकर आदि ।

उनमें परस्पर इतना अनुराग था कि उन्हें एक दूसरे से भिन्न समझना कठिन था । उस समय की मुद्राओं पर भी दोनों का नाम एक साथ टंकणित होता था ।

एक ताम्र मुद्रा पर एक ओर लक्ष्मी देवी के वाम पार्श्व भाग में 'दी' (दिद्दा) तथा दक्षिण पार्श्व में क्षेम (क्षेमगुप्त) टंकणित है । दूसरी तरफ दण्डायमान राजा और 'गुप्त' शब्द टंकणित है । यह ताम्रमुद्रा दिद्दा-क्षेम के अनुराग की प्रतीक है । (सी० (एम० आई० : II : III : 7) एक दूसरी ताम्र मुद्रा और प्राप्त हुई है । उसके एक तरफ लक्ष्मी देवी के पार्श्व में 'दी' तथा वाम में 'क्षेम' टंकणित है । दूसरी तरफ दण्डायमान राजा की मूर्ति टंकणित है । उस तरफ कोई लेख नहीं है । (सी० सी० आई० एम० XXVII : 10 : III : 8)

भारतीय प्राप्य मुद्राओं में यह प्रथम उदाहरण प्रतीत होता है जहाँ राजा एवं रानी दोनों का नाम टंकणित किया गया है ।

सीरिया में एक मुद्रा मिली है । उसपर राजा और रानी दोनों की आकृति टंकणित है । राजा और रानी दोनों की आकृति एवं नाम से मुद्रायें विश्व में टंकित होती रही हैं । ईसापूर्व ३७५ वर्ष टेण्डोस की मुद्रा उसकी स्त्री के साथ टंकित है । उसके पृष्ठ भाग में दो धारी परुष हैं । (वरलिन संग्रहालय मुद्रा : सं० ५२९) इसी प्रकार एटियोनस सप्तम तथा क्लियोपार्टा की मुद्रा है । इसका काल ईसापूर्व १२५-९६ वर्ष है । इसी प्रकार मिश्र में प्लोतेमी चतुर्थ की मुद्रा मिली है । सरियस तथा इसिस की मूर्तियाँ टंकित हैं । इसका काल २२१-२०४ वर्ष ईसापूर्व है ।

काश्मीरी अपने राजा को उसके उपनाम किंवा घर के नाम से पुकारने के आदी प्राचीन काल से थे । (लारेन्स : वैली : २७७) कल्हण ने घरेलू अर्थात् निकनेम रखने का उल्लेख (रा : ५ : २५४, ६ : १२८, १६१, ८ : ८५८, ९०४, १४४५) किया है ।

दिद्दा रानी में, दोष, पाप, पुण्य, एवं नीति अनीति का विचित्र मिश्रण मिलता है । वह पश्चिम के ब्रुनहिल्डस्, फ्रेडेगुण्डस् तथा इरनेस् की याद दिलाते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७८ में 'श्रीभीमशाहिनो' का पाठभेद 'श्रीभूमिस्वामिनो' तथा 'श्रीभीमस्वामिना' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७८ (१) भीम केशव : यह मन्दिर भीम शाह की शक्ति का द्योतक था । उसने यहाँ पर बहुत धन राशि तथा रत्न चढ़ाया था । एक शताब्दी

पश्चात् काश्मीर के राजा हर्ष ने यहाँ की सम्पत्ति लूट ली। भीम शाही का यह मन्दिर वामजू में है। मार्तण्ड अर्थात् वामन के पवित्र निर्झर से एक मिल उत्तर होगा। लिदर की शाखा नदी के वामतट पर है। यह मन्दिर मुसलिम ज़ियारत में बदल दिया गया है। इतना मोटा पलस्तर दिवालों पर किया गया है कि पत्थरों पर का कितना और कैसा काम किया गया है जानना कठिन है।

ज़ियारत में मुसलिम बाबा वामदीन साहब की मज़ार है। गाथा है कि यह मुसलिम संत स्वयं एक हिन्दू साधु था। बाद में वह मुसलमान हो गया। मुसलमान होने के पूर्व उसका नाम 'भूम साधो' था। भीम शाही मन्दिर में रहने के कारण साधु का नाम 'भूम साधो' हो गया था। स्थान के नाम से अबतक साधुओं का सम्बोधन भारत में होता है।

मार्तण्ड तीर्थ माहात्म्य के पटल दो में स्थान का नाम भीम द्वीप वर्णित है। 'जू' शब्द का अर्थ द्वीप होता है। अथवा भूम शब्द भीम का अपभ्रंश हो गया होगा। लिदर नदी की धारा में बहुत से प्राकृतिक द्वीप बन गये हैं।

माहात्म्य प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। उसमें भीम केशव के मन्दिर का वर्णन नहीं है। भीम द्वीप के वर्णन के साथ मार्तण्ड की एक शक्ति भीम का भी वर्णन किया गया है।

इस के समीप ही एक मन्दिर गुहा में है। दूसरा देवस्थान मुसलिम कब्र बाबा ऋषि रुकनुद्दीन मन्दिर में परिणत कर दिया गया है। बड़ी जियारत के पास ही मन्दिर का ध्वन्सावशेष स्तीन को पड़ा मिला था।

सन् १८६६ में विशप कौवी यहाँ आये थे। उन्होंने यहाँ का वर्णन किया है। बाबा वमदीन साहब शेख नूरुद्दीन साहब के शिष्य थे। वह मुसलिम सन्त हुए हैं। यह काश्मीर उपत्यका के मुसलिमधर्मावलम्बियों की ज़ियारत अर्थात् तीर्थ स्थान है। विशप के समय यह जनश्रुति प्रचलित थी। सन्त स्वयं एक हिन्दू साधु थे। कालान्तर में मुसलमान हो गए। वहाँ से एक प्राचीन लेख विशप को प्राप्त हुआ था। उससे पता चला कि मुसलिम सन्त का नाम भूम साधो था। (जे० एस० वी० सन् १८६६ : १००)

भूम साधो शब्द से भीम शाही शब्द मिलता है। अफगानिस्तान, श्रीनगर, नग्रहार (हड्डा), वामियान आदि स्थान बौद्धों के पवित्र स्थान थे। वहाँ कभी बौद्ध धर्म के स्मृतिशेष रखे गये थे। उन्हें ही जब वहाँ लोग मुसलमान हुए तो मुसलिम ज़ियारत के रूप में बदल दिए। जिस प्रकार हिन्दू तथा बौद्ध स्थानों को मुसलिम जियारतों में बदल दिया गया उसी प्रकार अफगानिस्तान में भी किया गया। हिन्दू तथा बौद्ध स्मृतिशेषों के स्थान पर मुसलिम स्मृतिशेष जैसे बाल आदि मूर्तियों के स्थान पर कब्र बना दिये गये। उनकी मान्यता उसी प्रकार उन स्थानों पर होने लगी जैसे हिन्दुओं की होती थी। बौद्ध स्मृतिशेष के स्थान पर मुसलिम धर्म सम्बन्धी स्मृतिशेष रख दिए गए। उद्देश्य यह था कि मुसलिम बने लोगों में स्थान के लिए जो आदर था वह कायम रहे केवल नाम बदल कर उसका हिन्दू नाम के स्थान पर जिस प्रकार मुसलमान होने पर उसका इसलामीकरण किया जाता है उसी प्रकार हिन्दू स्थानों का नाम भी बदल कर उनका इसलामीकरण कर दिया गया। यह स्थान अब मुसलिम सनातन पन्थियों का केन्द्र हो गया है। यह मन्दिर सन् १०८०-११०१ ई० के बीच राजा हर्ष के समय तक मौजूद था।

सिंहराज का श्वसुर भीमशाही था। वह रानी दिद्दा का इस प्रकार नाना था। कमलुक की मृत्यु के पश्चात् भीम राजा हुआ था। दिवेगदून क्षेत्र में एक मुद्रा प्राप्त हुई है। उस पर अंकित है—महाराजाधिराज परमेश्वर शाही श्री भीमदेव। कबूलिस्तान में भी श्री भीमदेव अंकित मुद्राएँ मिलती हैं।

वुमजू गुफा वुमजू ग्राम में है। 'जू' शब्द का अर्थ द्वीप होता है। वुम शब्द भीम का अपभ्रंश है। अतएव 'वुमजू' शब्द 'भीम द्वीप' का अपभ्रंश है। इस

स्थान के गुफाओं का नाम वुमजू इसलिए रख दिया गया है कि वे वुमजू ग्राम में है।

गुहा निवासी शब्द इनके लिए प्रयोग किया जा सकता है। यह स्थान लिदर अर्थात् लेदरी नदी के वाम तट पर लगभग एक मिल उत्तर दिशा में वामन तीर्थ से दूर स्थित है।

वामन से आने पर सड़क की दक्षिण तरफ गुफाएँ मिलेंगी। चेकपोस्ट अर्थात् यहाँ के जलस्रोत किंवा नाग से एक फर्लांग से आरम्भ होती है। गुफाएँ हैं। पहाड़ सीधा ऊँचा है। पत्थर सख्त है। अतएव गुफा बनाई जा सकती है। पर्वत के सम्मुख भीम केशव का मन्दिर था। जलाशय समीप था। आध्यात्मिक वातावरण था अतएव साधुओं और विरक्तों के चिन्तन एवं योग साधन निमित्त उपयुक्त स्थान था।

मैं यहाँ पर पहले भी आया था। मुझे केवल एक गुफा बाहर से दिखा दी गयी थी। मैंने इसे बहुत महत्त्व उस समय नहीं दिया था। अपनी तृतीय यात्रा में मैंने इन गुफाओं का अध्ययन किया। सड़क के वाम किनारे पर पहाड़ के मूल भाग में एक बड़ा शिलाखण्ड है। उसके पास तीन चार देवाकृति छोटे स्तम्भ हैं। यहाँ पर अखरोट के पेड़ हैं। स्थान शान्त है।

इस स्थान से ऊपर खड़बीहड़ मार्ग से लगभग २० फिट चढ़ने पर एक खोह पहाड़ के सकरी दरार तुल्य मालूम होगी। गुफा देखने से उसमें जानवरों के रहने का भय मालूम होता है। मोटा व्यक्ति कठिनता से इसमें प्रवेश पा सकेगा। इसके भीतर प्रवेश करते ही गुफा की छत नीची मिलती है जिससे सर नीचा कर चलना पड़ता है। गरमी मालूम होती है। साँस फूलने सा लगता है। लगभग ६० फिट जाने के पश्चात् गोलाकार स्थान मिलेगा। उसके वाम पार्श्व में एक और गुफा है।

स्थानीय लोग कहते हैं कि यहाँ एक साधु ने बारह वर्ष तपस्या की थी। उस स्थान पर एक पत्थर रखा है। उसपर मनुष्य आकृति का आभास होता है। कहा जाता है कि यह आकृति उन्हीं महात्मा की है।

इस गुफा से निकलकर गोलाकार खोह में आ जाने पर बाएँ तरफ शिव लिंग रखा है। गुफा आगे बढ़ती लगभग २१० फिट जाती है। लोगों का कहना है कि बहुत दूर वह जाती है परन्तु सरकार ने आगे से उसे बन्द करवा दिया है। इस गुफा को देखकर चित्रकूट के सीता स्नान अर्थात् कनफोरवा गुफा की याद आती है जिसमें कहा जाता है कि सीताजी स्नान करती थीं और कौआ ने उन्हें देख लिया था। जिसके कारण उसकी आँख फोड़ी गयी।

वर्षा काल में गुफा चूने लगती है। इसमें चमगादड़ बहुत रहते हैं और कभी-कभी शरीर पर गिर पड़ते हैं। गुफा में आगे जाने पर कुछ मन स्वस्थ होता है नहीं तो दम घुटता मालूम होता है।

इस गुफा से किंचित् और आगे एक छोटी गुफा है जिसमें शिवलिंग बने हैं।

गुफा के नीचे पहाड़ के मूल में साधुओं के बैठने योग्य कई छोटी खुली गुफाएँ हैं। उन्हें गुफा न कहकर कन्दरा कहना ठीक होगा। इस प्रकार की कन्दराएँ अफगानिस्तान के वामियान स्थान में हजारों की संख्या में होंगी। उनमें कुछ में आदमियों को रहते हुए मैंने देखा। यद्यपि पूर्व काल में वे भिक्षुओं के लिए निर्मित की गयी थीं।

ऐश मुकाम पर एक गुफा इतनी ही लम्बी लगभग २०० फिट होगी। उसमें जैन शाह की जियारत है। जैन शाह किस्तवार के जयसिंह नामक हिन्दू थे। अपने ४६० चेलों के साथ आए। शेख नुरुद्दीन ने चिनार शरीफ के कारण मुसलिम धर्म स्वीकार किया और नाम जैनुद्दीन पड़ गया। उनके साथी भी मुसलमान हो गए। उन्हें खलीफा कहा जाता है। जैनुल आबदीन बादशाह थे। उन्होंने अपने रहने के लिए स्थान चाहा। उन्हें गार शरीफ अर्थात् गुफा में रहने के लिए हुक्म हुआ। नुरुद्दीन ने एक आशा जै सिंह किंवा जैनु-

द्दीन को दिया। वह गार में आए। आशा फरीफ अज-दहाँ बन गया। गार से सापों को निकल जाने के लिए कहा। सापों को टोकरी में भरा जाने लगा। सापों ने कहा कि छेड़ छाड़ नहीं करेंगे। उनके चेला लोगों ने कहा कि उनकी मजार कहाँ बनेगी ? उन्होंने कहा जहाँ आशा का फल निकलेगा वहीं बनेगी। आशा का फल जहाँ जैनुद्दीन की मजार है उसके ऊपर निकली। वहीं उनके साथी खलीफों की कुछ मजारें बनीं। २४ खलीफा थे। कुछ लोगों की और जगह बनी। ऐश मुकाम की गुफा उक्त गुफा से बहुत अच्छी है। उसमें दरवाजा है। सीढ़ियां हैं। अन्त में गुफा में बाएँ तरफ जैसे उक्त गुफा के साथ साधु का रहना जोड़ा जाता है उसी तरह बाएँ तरफ छोटी कोठरी नुमा गुफा में जैनुद्दीन की कब्र है। कब्र पत्थर की छोटी है किन्तु उसे भव्य बनाने के लिए उसपर लकड़ी का बड़ा ताबूत रखकर उस पर कपड़ा और पगड़ी पहना दिया गया है। यह स्पष्ट है कि यह गुफा मुसलमानों की नहीं बनवाई थी परन्तु पहले से मौजूद थी। वह स्थान हिन्दुओं का था। गुफा में साधु रहते थे अथवा कोई मन्दिर था। मुसलमान इसे अपना बहुत बड़ा पवित्र स्थान मानते हैं तथा जैनुद्दीन के सम्बन्धी विचित्र घटना का वर्णन करते हैं। यहाँ बकरी की एक खोपड़ी एक धनुष आदि दिखाया जाता है। इस गुफा में बिजली की रोशनी है एक तीर्थ स्थान है। वुमजू की गुफा अन्धकार पूर्ण है। सम्मुख रहने वाले एक सिख सज्जन के यहाँ से लालटेन लाकर देखा जाता है। ऐश मुकाम के पहाड़ी पर जाने का मार्ग स्थानीय P.W.D. ने ११ नवम्बर १९५८ को तैय्यार किया है। पहाड़ी पर हौज है। मसजिद है। रहने के लिए काफी स्थान है। नीचे छोटा कस्बा है।

वुमजू की इस गुफा के पश्चात् एक और गुफा १०० फिट ऊँचाई पर है। इसका पोर्च एक ही पत्थर से काटकर बनाया गया है। इसका अन्त मार्ग अण्डाकार है। वह ४८ फिट लम्बा २७ फिट चौड़ा तथा १३½ फिट ऊँचा है। इसमें एक के बाद दूसरा चबूतरा है। ऊपर जाकर एक मन्दिर है।

सबसे श्रेष्ठ गुफा जलस्रोत के पास तिरमुहानी और चेक पोस्ट के ऊपर ग्राम में है। यह भी उसी पहाड़ में है। कुछ ऊपर मकानों के बीच होकर जाने पर एक गुफा मिलेगी जो काली हो गयी है। उसमें आदमी रहते हैं। उसके ऊपर सड़क है। लगभग ६० फिट चढ़ने पर बड़ी गुफा मिलेगी। इस गुफा का द्वार अलंकृत पत्थरों का है। द्वार के दाहिने तरफ एक शिव लिंग भूमि पर रखा है। शिव लिंग के ऊपर द्वार के दक्षिण भाग मध्य में एक मन्दिराकार गवाक्ष पर्वत में खोदा गया है।

वहाँ एक पुजारी रहता है। वह कहीं नौकर है। उसके न रहने पर स्थानीय एक मुसलमान गुफाओं को रोशनी वाला कर दिखाता है। उक्त मुसलमान सज्जन ने कहा कि जो कुछ मिलता है दोनों बाँट लेते हैं।

गुफा चौखूँटी है। उसमें १०० व्यक्ति बैठ सकते हैं। गुफा के अन्दर शिव मन्दिर बना है। मालूम होता है जैसे सिंहासन तुल्य कोई बाहर से मन्दिर लाकर यहाँ रख दिया हो। द्वार से मन्दिर तक ५० फिट लम्बाई होगी। गुफा इतनी चौड़ी भी है। बीच में जाने का मार्ग और दोनों तरफ चबूतरे बने हैं।

मन्दिर के चारों ओर परिक्रमा भी बनी है। दर्शक मन्दिर में दर्शन कर चारों तरफ मन्दिर के घूम आ सकता है। इसी तरह अजन्ता तथा एलोरा की गुफा में मुझे स्मरण है। गुफा के अन्दर बने स्तूप की परिक्रमा बनी रहती है। यात्री स्तूप की परिक्रमा कर सकता है। मन्दिर की छत अठपहली है। पत्थरों के लम्बे चौकोर पत्थरों को रखकर मन्दिराकार बनाया गया है जो साधारणतया मन्दिरों में होता है। वह गुफा साफ है। किन्तु चमगीदड़े मिलीं। मन्दिर के दाहिने चबूतरे पर पार्वती की मूर्ति है। वर्षा होने पर गुफा में जल टपकता है। पानी बरसते समय किसी भी गुफा में नहीं जाना चाहिए।

चन्द्रलेखाभिधां कन्यां राज्ञे दत्तवताऽभवत् ।
फल्गुणद्वारपतिना समं दिद्दा समत्सरा ।।१७९।।

१७९. द्वारपति फल्गुण ने नृप को चन्द्रलेखा नाम्नी कन्या प्रदान की (अतः) दिद्दा उस द्वारा पति[1] से ईर्ष्या करने लगी ।

गुरूपदेशः सुमहान्कुन्तविद्याश्रमस्तथा ।
तस्य निर्वहणाद्गर्ह्याद्भूभुजो हास्यतां ययौ ।।१८०।।

१८०. उस नृपति का सुमहान् गुरूपदेश तथा कुन्त विद्या श्रम गर्ह्य निर्वहण के कारण उपहास्य हो गया ।

अमोघपततान्प्रासान्योग्यान्संग्रामकर्मसु ।
सृगालमृगयासक्त्या स हि श्लाघ्यानमन्यत ।।१८१।।

१८१. उसने संग्राम कर्म के योग्य अमोघ क्षेप प्रासों को शृगाल मृगयासक्ति में ही श्लाघ्य माना ।

तं वृतं वागुरावाहिडोम्बाटविकपेटकैः ।
पर्यटन्तं श्वभिः सार्धमपश्यन्सततं जनाः ।।१८२।।

१८२. वागुरावाही आटविक डोम्ब समूहों से घिरे उसे, लोग कुत्तों के साथ निरन्तर घूमते हुए देखते थे ।

तस्य दामोदरारण्यलल्यानशिमिकादिषु ।
स्थानेषु क्रोष्टुमृगयारसिकस्य वयोऽगमत् ।।१८३।।

१८३. शृगाल[1] मृगया प्रेमी उसका वय (आयु) दामोदरारण्य[2], लल्यान[3], शिमिका[4] आदि स्थानों में व्यतीत हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १७९ में 'राज्ञे' का पाठभेद 'राज्ञो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१७९ (१) द्वारपति : द्रष्टव्य : रा० : ५ : २१४ तथा १ : १२२, ४ : ४०४ ५ : १३७; ८ : १६३०; ७ : १४०;

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८० में 'गर्ह्याद्' का पाठभेद 'गर्ह्या' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८१ में 'पतनान्प्रा' का 'प्रतिमान्प्रा' तथा 'न्प्रासान' का 'न्कुन्तनान' एवं 'श्लाध्यान' का पाठभेद 'श्लाघ्याम्' तथा 'श्लाघ्यम्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८२ में 'विकपे' का पाठभेद 'विटपे' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१८२ (१) बागुरा : खटकेदार पिंजड़ा जिसमें पक्षी आदि फसाये जाते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १८३ में 'क्रोष्टु' का पाठभेद 'क्रोष्टृ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१८३ (१) शृगाल मृगया : प्राचीन काश्मीर

अथ कृष्णचतुर्दश्यां स कुर्वन्मृगयां नृपः ।
ज्वालामपश्यत्क्रोशन्त्याः सृगाल्या निर्गतां मुखात् ॥१८४॥

१८४. कृष्ण चतुर्दशी[1] को मृगया करते हुए उस नृपति ने चिल्लाती श्रृगाली के मुख से निकलती ज्वाला[2] देखी ।

तदालोकनसंजातसंत्रासाकम्पितस्ततः ।
लूतामयज्वरेणाभूत्परीतो मृत्युहेतुना ॥१८५॥

१८५. उसे देखकर संत्रास से कम्पित वह (नृपति) मृत्यु के हेतुभूत लूतामय ज्वर से ग्रस्त हो गया ।

में श्रृगालों की मृगया लोक प्रिय थी । काश्मीरी अश्वोंपर चढ़कर शिकारी श्वानों के साथ श्रृगाल किंवा सियारों का शिकार खेलते थे । श्रृगाल प्रायः दिन में वहाँ निकलते । श्वान उनकी गन्ध से उनका पता लगा लेते हैं । उन्हें उनके निवास से निकालते और शिकार खेला जाता था । द्रष्टव्य : रा० : ७ : १७१; ८ : ६९९;

(२) दामोदरारण्य : वह दामोदर उद्र है । राजा दामोदर की गाथा के साथ इसका उल्लेख दामोदर सूद के सन्दर्भ में किया गया है । द्रष्टव्य : टिप्पणी : रा० : १ : १५७, १६७ ८ : ३४०८, ३४१२, । दामोदर उद्र (दमदर उद्र) में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक श्रृगालों का शिकार शिकारी कुत्तों के साथ खेला जाता था ।

(३) लल्यान : स्थान का पता नहीं चलता । इसका पुनः उल्लेख कल्हण ने नहीं किया है ।

(४) शिमिका : अनुमान किया जाता है कि यह स्थान विजब्रोर अर्थात् विजयेश्वर के समीप था । निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किस विशेष स्थान पर यह था । इसका उल्लेख कल्हण ने पुन : रा० : ७ : ३६९ में किया है ।

लल्यान एवं शिमिका उदर थे । उदर में आबादी नहीं होती थी । आबादी न होने के कारण श्रृगाल तथा जंगली जानवर छिपकर रहते थे ।

पादटिप्पणी :

१८४ (१) कृष्णचतुर्दशी : श्लोक से स्पष्ट नहीं होता है कि कल्हण का किस मास से अभिप्राय है । काश्मीर में पौष कृष्ण १४ से मासों की गणना आरम्भ की जाती है । (रा० : ५ : १८७) सम्भव है कल्हण इसी तिथि को पूर्वमास मार्गशीर्ष का मान लिया होगा । यह दिवस शिव चतुर्दशी पर्व रूप में अब भी मनाया जाता है ।

(२) ज्वाला : पीरहसन कैफ़ियत में लिखता है—'एक दिन बारहमूला के हद्द में शिकार के लिये पहाड़ पर चढ़ा । वहाँ एक गीदड़ देखा कि उसके मुँह से आग के शोले उठते थे । उसके देखने से डरा और तुरन्त ही सरखचा की बीमारी से जान दे दी । (फारसी १११ : उर्दू १०३)

विलसन लिखता है—श्रृंगाल के मुख से ज्वाला निकली तथा उसके प्रभाव के सम्बन्ध में साधारणतया अन्ध विश्वास है कि कोई जानवर यदि उसका पीछा किया जाय तो मरने के पहले उसके मुख से आग की लपट निकलती है । (७१)

पाठभेद :

श्लोक सं० १८५ में 'संत्रासा' का पाठभेद 'सत्रासा' तथा 'तस्ततः' का 'तस्थितिः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१८५ (१) लूता : द्रष्टव्य : रा० : ४ : ५२४, ५२८; ६ : १८६; ७ : १७८; ८ : १६०४ ।

मर्तुं ययौ च वाराहक्षेत्रं यत्र विधायकः ।
श्रीकण्ठक्षेममठयोरासीद्धुष्कपुरान्तिके ॥१८६॥

१८६. (वह) मरण हेतु वाराह क्षेत्र[1] गया जहाँ पर उसने हुष्कपुर[2] के समीप श्री कण्ठ[3] (मठ) एवं क्षेम[4] मठ स्थापित किया था ।

पादटिप्पणी :

१८६ (१) वाराह क्षेत्र : वाराह क्षेत्र वर्तमान नगर बारहमूला के समीपवर्ती तथा उस अंचल का नाम था । काश्मीर उपत्यका का इसे पश्चिमी द्वार कह सकते हैं । काश्मीर में बनिहाल मार्ग बनने के पूर्व यह सुविधाजनक सरल मार्ग रावलपिण्डी, उरी होते काश्मीर में पहुंचने का था । यह स्थान सुदूर प्राचीन काल से भगवान् वाराह का स्थान होने के कारण पवित्र तथा पुण्य क्षेत्र माना जाता रहा है । बारहमूला स्थान का महत्त्व वाराह क्षेत्र माहात्म्य तथा नीलमत पुराण में दिया गया है । (नी० ११८०, १३४८) कल्हण ने इस श्लोक तथा रा० : ६ : २०४ श्लोक में वाराह क्षेत्र शब्द का प्रयोग बारहमूला नगर के समीपवर्ती स्थान जिसमें हुष्कपुर सम्मिलित है उसके सहित वर्तमान नगर को बारहमूला क्षेत्र की संज्ञा दी है । माहात्म्य तथा अन्य राजतरंगिणियों में वराह क्षेत्र, वाराह क्षेत्र, वराह तीर्थ की संज्ञा दी गयी है । (श्रीवर : १ : ४०३; शुक : ४०३, ५२०, ६४४; हरचरित चिन्तामणि : १३ : ४३) वराह भगवान् का प्राचीन मन्दिर (रा० : ६ : २०६.७ : १३१०, जो० ६००) संकीर्ण भूखण्ड पर पर्वत मूल तथा वितस्ता के दक्षिण तट के मध्य स्थित था । इस स्थान पर आबादी काश्मीर इतिहास के उदय काल से रही है और है । यहाँ से वितस्ता काश्मीर उपत्यका को नमस्कार कर सेवडा पंजाब की ओर प्रस्थान करती है । इस स्थान से इतनी गाथायें सलग्न हैं कि उनका लिखना स्वतः एक गाथा ग्रन्थ हो जायगा । यद्यपि नामों में किंचित् भेद पड़ गया है । वर्तमान बारहमूल को वाराहमूला (रा० : ८ : ४५२) कहा गया है । शुक ने वराहमूला (शुक : ७७) तथा यही शब्द (रा० : ७ : १३०९) स्वयं कल्हण ने लिखा है । काश्मीर के ब्राह्मण अब भी इसे वराह मूल कहते हैं । बर्नियर के समय से ही पोपलर्स की अवली पर्यटकों का यहाँ ध्यान आकर्षित करती रही है ।

(२) हुष्कपुर : वर्तमान ग्राम उसकुर है । प्राचीन काल में समीपवर्ती नगर बारहमूला के समान ही आबाद था । यह कुछ मैदान में है । इस समय बारहमूला तथा हुष्कर के स्थान आबादी बढ़ने के कारण मिल गये हैं । हुष्कर का वर्णन अत्यधिक धार्मिक निर्माणों एवं कार्यों के सन्दर्भ में आता है । तुलनीय रा० : ४ : १८८ । हुएन्त्सांग ने हुष्कपुर का उल्लेख किया है । (इण्डिया १ : २०७) कालान्तर में हुष्कपुर किंवा उस्कुर की आबादी घटती गयी और बौद्ध स्तूपों, विहारों तथा हिन्दू मन्दिरों एवं देव स्थानों के तोड़ने के पश्चात् केवल खँड़हर मात्र रह गया था । वाराहमूला अपने पूर्ण गरिमा पर काश्मीर के प्रवेश तथा पश्चिम से होने वाले व्यापार के कारण बना रहा । क्षेमगुप्त के मठों का इस समय कोई अस्तित्व उस्कुर में नहीं रह गया है ।

जहाँगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है । 'शनीवार तीसरी को साढ़े चार कोस चलकर मुसरान में ठहरे । शुक्रवार की संध्या को परगना बारहमूला के व्यापारी गण सेवा में उपस्थित हुए । हमने वाराहमूला नाम पड़ने का कारण पूछा तो उन्होंने बतलाया कि हिन्दी भाषा में जंगली सूअर को वाराह कहते हैं और मूला स्थान है । अर्थात् वाराह का स्थान । हिन्दुओं के धर्म में लिखे अवतारों में एक वाराह अवतार है । वाराहमूला बराबर प्रयोग में आते-आते वारामूला हो गया है । पृ० ६४२

'शनीवार ८ वीं को हमने पौने ५ कोस कूच किया। और बारामूला में उतर गए। यह काश्मीर की प्रसिद्ध बस्तियों में से एक है और नगर से चौदह कोस दूर झेलम नदी के किनारे पर है। कश्मीर के बहुत से व्यापारी यहाँ आकर बस गये हैं और मकान मसजिद आदि बनवा कर सुखपूर्वक रहते हैं। पृ० ६४४

वराहमन्दिर : वाराहमूला वितस्ता के दक्षिण तथा वाम दानों तटोंपर स्थित है। आदि वराह विष्णु के नाम पर यह तीर्थ स्थान है। सनातन काल से वराह भगवान् की यहाँ पूजा होती चली आ रही है। वराह का तीर्थ पुष्कर क्षेत्र में भी है। वराह का उल्लेख ऋग्वेद १० : ९९ : ६ में है। पृथ्वी की उत्पत्ति के पूर्व केवल जल था। प्रजापति वायुरूप पृथ्वी पर घूर रहे थे। विस्तृत कथा तै० संहिता (७ : १ : ५ : १) में दी गयी है। पुराणों में कथा आती है कि हिरण्याक्ष पृथ्वी को पाताल में ले गया। विष्णु ने वारह अवतार धारण कर उसे दाँत पर उठाकर उसका उद्धार किया। उसे शेष नाग के फणपर रखा। म० वनपर्व १४४, २९, २७३; ५३; शान्तिपर्व २०७; मत्स्य० म० ४७; ४७; भागवत १; ३; २; ७; ३,१३ लिङ्ग-पुराण १; ९४ वायु० २; ३५ ऋ० सं० १; ४१, पद्म पु० १६९, २३७।

भगवान् ने पृथ्वी का जहाँ उद्धार किया था उसका नाम वराह क्षेत्र है। (म० व० ८१ : १८, पद्म उ० १६९)। एक पुराण का नाम वराह पुराण है।

वाराह क्षेत्र किंवा कोकामुख क्षेत्र बंगाल में नाथ-पुर के समीप है। वराह के प्राचीन मन्दिर का कल्हण बहुत वर्णन करता है। वर्तमान कोटि तीर्थ के समीप पुरोहितों के अनुसार वराह मन्दिर स्थित था। वितस्ता के तटपर नगर के पश्चिम तरक्ष था यहाँ प्राप्त लिंग तथा मूर्तियों से प्रकट होता है कि तीर्थ यहीं था। जोनराज मन्दिर का सिकन्दर बुतशिकन द्वारा नष्ट किया जाना वर्णन करता है। जोन ६००; नील-मत ११३।

वराह का वर्तमान नवीन मन्दिर पर्वत तथा वितस्ता के संकुचित स्थान पर प्राचीन उल्लेख अनु-सार दक्षिण तट पर स्थित है। वितस्ता पर घाट बना है। घाट के दक्षिण तरफ पुश्ता बांध कर गुरु-द्वारा का निर्माण किया गया है तथा वाम भाग में वराह का मन्दिर है।

मन्दिर तथा पर्वत के संकुचित स्थान पर सड़क तथा सड़क के पार गंगनोर जलस्रोत एक मकान के अन्दर है। मकान छोटे धर्मशाला के रूप में वर्तमान है। उसके अन्दर जाने पर एक आयताकार हौज है। उसमें सीढ़ियाँ लगी हैं। इस जलस्रोत का जल स्थानीय लोग पीने के काम में लाते हैं। जल निर्मल है। शिवलिंग यहाँ रखा है। कुछ प्राचीन मन्दिर के ध्वन्सावशेष भी यहाँ हैं।

वराह का नवीन मन्दिर मैं समझता हूँ कि पुराने मन्दिर के स्थान पर बना है। यहाँ पर प्राचीन मन्दिर के स्तम्भ, शिलाखण्ड, अलंकृत तथा मूर्तिमय शिलाएँ घाट पर तथा मन्दिर के समीप पड़े हैं।

मन्दिर में एकमुखी शिवलिंग है। ऊँचा शिव-लिंग है। उसके मध्य में मनुष्य मुख बना है। मेरी धारणा थी कि वराह भगवान् की विष्णु मूर्ति दर्शन निमित्त मिलेगी। परन्तु शिवलिंग मिला। काश्मीर में शैव मत के प्राबल्य के कारण सभी कुछ शिव स्वरूप देखा जाने लगा। सम्भव है यह लिंग प्राचीन रहा हो और उसे यहाँ स्थापित कर दिया गया हो। यह भी सम्भव है कि शिव में विष्णु के मुख की कल्पना की गयी हो और इस प्रकार शैव तथा वैष्णव मत का समन्वय किया गया हो।

पुष्कर तथा काशी में तथा पुराणों में वर्णित वराह भगवान् का शरीर मनुष्य तथा मुख शूकर का बनाया गया है। यहाँ इसकी कल्पना मैंने की थी परन्तु कल्पना साकार नहीं हुई। प्रताप सिंह संग्रहालय में वराह भगवान् की मूर्ति है। इससे स्पष्ट है कि लोग वराह की परम्परा गत मूर्ति का ज्ञान रखते थे।

आधुनिक युग में लोग यह बात अत्यधिक मुसलिम प्रभाव के कारण भूल गये हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। मुसलमान शूकर को हराम मानते हैं। जहाँगीर ने अपने जीवन में पहला मन्दिर पुष्कर में तुड़वाने की उस समय आज्ञा दी जब उसने भगवान् वराह का मुख शूकर तुल्य देखा। मुसलमानों की भावना को चोट न लगे सम्भव है इसलिए भी वराह की सनातन कल्पित मूर्ति न रखी गयी हो।

शीला भगवती : वराहमन्दिर के उस पार धारा के कुछ ऊर्ध्व भाग की तरफ श्री वराहमूला उरी जाने वाली सड़क पर अत्यन्त संकुचित मार्ग पर्वत तथा झेलम के बीच है। पर्वत के मूल में भैरव का स्थान कहा जाता है जहाँ शिला खण्डपर सिन्दूर लगा है तथा जब मैं वहाँ पहुंचा तो एक साधु रहते थे। उसके ठीक दूसरी तरफ सड़क से सटकर शीलाभगवती का मन्दिर है। मन्दिर नवीन बना है। मन्दिर का एक ट्रस्ट है उसकी तरफ से मन्दिर का प्रबन्ध होता है

शीलाभगवती एक जलस्रोत देवी बल पर स्थित है। मन्दिर में एक आयताकार कुण्ड है। कुण्ड मध्य नव निर्मित मन्दिर है। उसमें शीला देवी की संगमर्मर की मूर्ति है। इस कुण्ड के चारों ओर बैठने के लिए चौखूटा बरामदा हैं। चारों तरफ मिलाकर कमसे कम एक हजार दर्शनार्थी बैठ सकते हैं। मन्दिर के कुण्ड से जल बाहर निकलता है। वहाँ पुरुषों तथा स्त्रियों के स्नानार्थ कुण्ड बने हैं। कुण्डका जल बाहर वितस्ता में गिरता है। स्थान के नीचे वितस्ता में घाट बना है। इस मन्दिर के साथ धर्मशाला तथा पूजन पाठ करने का सुन्दर स्थान बना है। यहाँ मुझे एक बंगाली एक मदरासी साधु तथा एक मदरासी साधुनी मिली।

वह स्थान झेलम तथा पर्वत के बीच में बसे संकुचित तथा सैनिक दृष्टि से महत्त्व का स्थान वाम तट पर है। प्राचीन काल में वाराहमूला और उरी की सड़क नहीं थी। बारहमूला तथा मुजफ्फराबाद रोड बितस्ता के दक्षिण तट से जाती थी। वही सड़क चालू थी। रावलपिण्डी के महत्त्व प्राप्त करने तथा आवागमन बढ़ जाने के कारण उरी बारहमूला सड़क का महत्त्व विशेष बढ़ गया है।

शीला भगवती को क्षीर भवानी की बहन कहते हैं। इस बात को यहाँ बड़ा महत्त्व दिया जाता है।

वाराहपर्वत :

वाराहपर्वतं पुण्यं पुण्यं पंचनदं तथा।
कालाञ्जनं सगोकर्णं केदारं स महालयम्॥
८६ = १२७-१२८

वराह :

देवं नारायणस्थाने पश्चिमे तु वरप्रदम्।
गजेन्द्रमोक्षणं देवं वराहस्य समीपगम्॥
—११५८ = १३६९-१३७०

× × ×

वराहं नरसिंहं च बहुरूपं वरप्रदम्।
सप्तर्षीणां तथैवार्चा सुमुखस्य समीपगा॥
—११५९ = १३७०-१३७०

चतुर्मूर्ते महामूर्ते चतुर्वेद महाभुज।
गोविन्द पुण्डरीकाक्ष वराहाक्ष नमोऽस्तु ते॥
—१२०७ = १४२०

× × ×

वराहतीर्थे पापघ्ने राजसूये फलप्रदे।
सदैव पुण्या शुक्ले च त्रयोदश्यां विशेषतः॥
—१३५८ = १५७३-१५७४

(२) **हुष्कपुर :** उसकर ग्राम है। द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : १ : १६८; ५ : २५९,

(३) **श्रीकण्ठ मठ :** स्थान का ठीक पता नहीं चलता कि वाराह क्षेत्र में कहाँ था। इसका पुनः उल्लेख नहीं मिलता।

(४) **क्षेम मठ :** इसका निश्चित पता नहीं चलता कि वाराह क्षेत्र में यह किस स्थान पर था। इसका भी पुनः उल्लेख नहीं आता।

मसूरविदलाकारलूताक्लिन्नकलेवरः ।
पौषे चाब्दे चतुस्त्रिंशे नवमेऽह्नि सिते मृतः ॥१८७॥

१८७. मसूर के दाल सदृश लूताओं (फोफलों) से क्लिन्न कलेवर (नृपति) चौतीसवें वर्ष के पौष शुक्ल नवमी के दिन दिवंगत हुआ।

अभिमन्यु (सन् ९५८-९७२) :

क्षेमगुप्तात्मजः क्ष्माभृदभिमन्युरभूत्ततः ।
शिशुर्निस्त्रिंशधर्मिण्या दिद्दादेव्यानुपालितः ॥१८८॥

१८८. तदुपरान्त निस्त्रिंशधर्मिणी (क्रूर) दिद्दा देवी द्वारा अनुपालित शिशु क्षेमगुप्त का आत्मज अभिमन्यु क्ष्माभृत् हुआ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १८७ में 'वयेऽन्हि' का पाठभेद 'वमेऽब्दे' मिलता है।

काश्मीर पर आक्रमण : बिलहारी के शिला लेख से पता चलता है कि केयूर वर्ष अथवा युवराज प्रथम (दसवीं शताब्दी के मध्य) कलचुरी ने काश्मीर तथा हिमालय अंचल पर आक्रमण किया था। किन्तु इसका और कोई प्रमाण कहीं और स्थान से प्राप्त नहीं हो सका है।

करण के गहरवा शिला लेख से पता चलता है कि युवराज प्रथम के पश्चात् कलचुरी राजा लक्ष्मण-राज ने काश्मीर विजय किया था। किन्तु इस तथ्य पर भी ऐतिहासिक प्रकाश एवं प्रमाण नहीं मिला है। इस शताब्दी में किसी भी काश्मीर के बाहरी राजा द्वारा काश्मीर के विजित होने का प्रमाण नहीं मिलता।

पादटिप्पणी :

सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०५९ = शक ८८० = लौकिक ४०३४=सन् ९५८ ई०; स्तीन लौकिक ४०३४ पौष शुक्ल ९ = सन् ९५८ ई०, सी० एम० डफ० सन् ९५८ ई०, पण्डित सन् ९६० ई०, विलसन लौकिक ४०३४ = सन् ९७९ ई० ९ मास, ट्रोयर सन् ९६१ ई० ४ मास = लौकिक ४०३४; कनिंघम लौ० : ४०३५ सन् ९५८ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत १०२४ = सन् ९६७ ई०; डाइनास्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया सन् ९५८ ई०; त्रिवेद सन् ९५३ ई० = शक ८७५ तथा राज्यकाल विलसन, १४ वर्ष, ट्रोयर तथा पण्डित १३ वर्ष १० मास ३ दिन, दत्त १३ वर्ष १० मास, पीर हसन १३ वर्ष २ मास; राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल १३ वर्ष १० मास तथा नाम अभिमन्यु गुप्त दिया गया है।

अभिमन्यु गुप्त की एक मुद्रा मिली है। मुख्य किंवा पुरोभाग पर आसनस्थ लक्ष्मी एवं 'अभिमन्यु' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा एवं 'गुप्त' लिखा है।

समसामयिक घटनाएँ :

सन् ९५८ ई० रिचेंन-जंग-पों पश्चिम तिब्बत तथा भारत आया। सन् ९५९ ई० में इडगर इग्लैंड का राजा हुआ। अबुल-मलिक समनानी की मृत्यु के पश्चात् उसका भ्राता अबूसालेहमन्सूर उत्तराधिकारी हुआ। विजयपाल प्रतिहार पुत्र विनायक पाल कन्नौज का राजा हुआ। सोमदेव ने यशतिलक चम्पू की रचना की। जम्बू कवि का सम्भावित काल। सन् ९६० ई० शैलेन्द्र साम्राज्य ने चीन सम्राट् के यहां दूत भेजा। कुंग-त्ती तथा ताई-त्सु क्रमशः चीन के सम्राट् हुए। पुष्पदन्त ने महापुराण लिखा। पश्चिमी गंग का राजा मारसिंह (तृतीय) सन् ९६०-९७४ ई०। उत्तरी सुंग वंश का राज्य सन् ९६०-११२६ ई० चीन में था। महेन्द्र राज कवि का सम्भावित काल सन् ९६१-९६२ ई०। शैलेन्द्र साम्राज्य ने चीन सम्राट् के यहाँ दूत

संधिविग्रहशुद्धान्तमुख्यकर्माधिकारिणः ।
निःसाध्वसं राजवधूमवन्ध्यशयनां व्यधुः ॥१८९॥

१८९. सन्धिविग्रह शुद्धान्त एवं मुख्य कर्म के अधिकारी शयन करती राजवधू के समीप निर्भय होकर जाते थे।

अभिमन्यौ क्षितिं रक्षत्यकस्मादेव दारुणः ।
तुङ्गेश्वरापणोपान्तादुज्जगाम हुताशनः ॥१९०॥

१९०. अभिमन्यु के पृथ्वी पर शासन करते (समय) अकस्मात् तुङ्गेश्वर[1] आपण के समीप दारुण अग्नि प्रज्वलित हुई।

भेजा। खुरासान के फारुखी शासक की मृत्यु पर खुरासान में सरदारों ने मन्सूर के स्थान पर अलप्तगीन को खुरासान का शासक नियुक्त किया। अबूहसने सिमजूर हिरात का सूबेदार हुआ। सन् ९६२ ई० ओटो (प्रथम) का सम्राट् रूप में जर्मनी में अभिषेक हुआ। मन्सूर (प्रथम) समनानी ने अलप्तगीन के विरुद्ध सेना भेजी। किन्तु अलप्तगीन ने पराजित कर गजनी ले लिया। अलप्तगीन का उदय। अबुल हसने सिमजूर साहिबुल-जैश सेनापति नियुक्त हुआ। निशापुर के लिये प्रस्थान किया। सन् ९६३ ई० कृष्ण (तृतीय) राष्ट्रकूट राजा ने उत्तर भारत में द्वितीय सैनिक अभियान किया। अलप्तगीन ने अबूबकर लाविक से गजनी जीत कर स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। अलप्तगीन की मृत्यु। इशहाक पुत्र अलप्तगीन गजनी का शासक हुआ। सन् ९६४ ई० में चीनी यात्री तीन सौ की संख्यामें बारह वर्षीय भारत-यात्रा के लिये प्रस्थान किये। इशहाकपुत्र अलप्तगीन पर लाविक ने आक्रमण किया। इशहाक अपने पिता के गुलाम सुबुक्तगीन के साथ गजनी से बुखारा आया। मन्सूर (प्रथम) समनानी ने उसे वहाँ का शासक बनाया। सन् ९६५ ई० पुष्पदन्त ने महापुराण की रचना समाप्त की। जयपाल हिन्दू शाही राजा हुआ। इशहाक गजनी लौटा और लाविक को हटाया। सन् ९६६ ई० में चीन सम्राट् के आदेश पर एक सौ पचहत्तर चीनी बौद्ध भिक्षुओं ने भारतीय तीर्थ स्थानों की यात्रा एवं पूजन किया। वलक्तगीन जो अलप्तगीन का गुलाम था, गजनी का सूबेदार नूह समनानी ने इशहाक की मृत्यु के पश्चात् बनाया। अट्टपाल ने बृहत् संहिता पर भाष्य लिखा। वल्कातीन गुलाम इशहाक सुल्तान गजनी। सन् ९६७ ई० खोत्तिग राष्ट्रकूट राजा हुआ। सन् ९६८ ई० दिन्ह-वो-लिन्ह अनामी सामन्त ने उत्तरी चम्पा में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। राजेन्द्र वर्मा कम्बुज का देहान्त तथा जयवर्मा चतुर्थ राजा हुआ। सन् ९६९ ई० सेन (चतुर्थ) श्री लंका का राजा हुआ। सन् ९७० अम्भ द्वितीय की मृत्यु। ययाति महाशिव गुप्त–सोमवंशीय प्रथम दक्षिणी कोशल का राजा हुआ। सन् ९७१ ई० शैलेन्द्र साम्राज्य ने चीन सम्राट् के पास दूत भेजा। चामुण्ड राय का झालवाड़ में शासन। चीन कैण्टन में जहाजरानी का नियमित कार्यालय खुला। चीन में भारतीय भिक्षुओं का आगमन। महमूद गजनी का जन्म।

पाठभेद :

श्लोक सं० १८९ में 'सन्धित्रि' का पाठभेद 'मन्त्रिवि' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१९० (१) तुंगेश्वर : तुंगेश्वर बाजार के निकटस्थ स्थान से यहाँ तात्पर्य है। इस स्थान का निश्चित पता नहीं लगा है। नीलमत पुराण में तुंगेश का उल्लेख मिलता हैं। अति प्राचीन देव स्थान था।

वर्धनस्वामिपार्श्वस्थभिक्षुकीपारकावधिः ।
वेतालसूत्रपातस्थान्स ददाह महागृहान् ॥१९१॥

१९१. वर्धन स्वामी[1] के पार्श्वस्थ भिक्षुकीपारका[2] पर्यन्त वैताल सूत्रपात[3] के अनुसार स्थित महागृहों को उस अग्नि ने दग्ध कर दिया ।

डोम्बचण्डालसंस्पृष्टभूपसंपर्कदूषितान् ।
दग्ध्वा महागृहान्वह्निर्भुवः शुद्धिमिवाकरोत् ॥१९२॥

१९२. डोम्ब चाण्डाल संस्पृष्ट भूपों के संस्पर्श से दूषित महागृहों को दग्ध करके वह्नि ने मानों पृथ्वी की शुद्धि कर दी ।

रक्षित्री क्ष्मापतेर्माता स्त्रीस्वभावाद्विमूढधीः ।
सारासारविचारेण लोलकर्णी न पस्पृशे ॥१९३॥

१९३. क्ष्मापति की संरक्षिका माता स्त्री स्वभाव के कारण विमूढ़ बुद्धि लोलकर्णी (सुनी बात पर विश्वास करने वाली) एवं सारासार विवेक रहित थी ।

उस देवता के नाम पर तुंग का नाम रखा गया होगा । द्रष्टव्य रा० : २ : १४, वाराणसी में भी एक तुंगेश्वर हैं । (लिंग . १ : ९२ : ७)

बिन्दुनादेश्वरं तीर्थं सोमतीर्थं पृथूदकम् ।
तुंगेश तीर्थक्षेत्रं तु उतंकस्वामिनं तथा ॥

१३५१ = १५६६

पीर हसन लिखता है—इसके जमाना में कहर खुदा की आग रौशन हुई, जिससे शहर की अकसर इमारतें जल गयीं (फारसी १११; उर्दू १०३)

विलसन तुंगेश्वर के स्थान पर तुंगीमर लिखता है । (७२)

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९१ में 'स्थान्स' का पाठभेद 'स्थात्स' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१९१ (१) वर्धन स्वामी : द्रष्टव्य : (रा० : ३ : ३५७) प्रवरसेनपुर की सीमा पर यह मन्दिर होना चाहिए । इस स्थान का निश्चित पता देना कठिन है ।

(२) भिक्षुकीपारक : यह स्थान बौद्धों से सम्बन्धी था । भिक्षुकी शब्द मैं समझता हूँ पारक : बौद्ध भिक्षुणियों के किसी स्थान किंवा बिहार से सम्बन्धित था । इस स्थान का भी पता नहीं चलता ।

(३) वैताल सूत्रपात : राजा प्रवरसेन के प्रवरपुर नगर निर्माण के सन्दर्भ में वैताल तथा उसके द्वारा किये सूत्रपात अर्थात् सूत लगाने का उल्लेख आता है । द्रष्टव्य : रा० : ३ : ३३९–३४९

वैताल पुराणों के अनुसार एक भूत योनि है । इनका निवास स्थान स्मशान माना गया है । भूतों से कुछ श्रेष्ठ होते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९३ में 'लोलकर्णी' का पाठभेद 'लोलकर्णे' मिलता है ।

फल्गुण निष्कासित

राज्ञः सुतार्पणाद्बद्धवैरा तस्थौ पुरा यतः ।
पतिवत्न्येव सा सार्धं फल्गुणेनाग्र्यमन्त्रिणा ॥१९४॥

१९४. राजा को पुत्री अर्पण करने के कारण सपत्नी (सौत चन्द्रलेखा) के समान मंत्री फल्गुण के साथ वह पहले से ही बैर रखती थी।

पत्यौ मृते सपत्नीनां दृष्ट्वाऽनुमरणं ततः ।
दम्भेनानुमुमूर्षन्तीमनुमेने स तां द्रुतम् ॥१९५॥

१९५. पति के मृत होने पर सपत्नियों का अनुसरण (सती होना) देखकर दम्भ से सती होती हुई उसका अनुमोदन किया।

निषिषेधानुबन्धात्तु सानुतापां चितान्तिके ।
कृपालुर्मरणादेताममात्यो नरवाहनः ॥१९६॥

१९६. चिता के निकट पश्चात्ताप युक्त इस रानी को कृपालु अमात्य नरवाहन ने आग्रह करके मरण से निषिद्ध किया।

अतो निसर्गपिशुनो रक्कस्तां मन्युदूषिताम् ।
फल्गुणाद्राज्यहरणाशङ्कां राज्ञीमजिग्रहत् ॥१९७॥

१९७. निसर्ग से पिशुन रक्क ने मन्यु[1] दूषित उस रानी को फल्गुण द्वारा राज्य हरण की आशंका से ग्रस्त कर दिया।

विरागशंसिभिर्लिङ्गैस्तां ज्ञात्वा विषमाशयाम् ।
समन्युं साखिलामात्यां फल्गुणोऽप्यास्त शङ्कितः ॥१९८॥

१९८. विराग सूचक चिन्हों से सम्पूर्ण अमात्यों के सहित, क्रोधयुक्त उसके विषम आशय को जानकर, फल्गुण भी शंकित हो गया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९४ में 'पतिवन्त्येव' के लिये पार्श्वटिप्पणी में 'सभर्तृकेव सती' तथा 'पतिवत्नीव' लिखा मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या १९५ में 'पत्यौ' का 'पत्न्यौ' तथा 'नुमरणं' का पाठभेद 'नुसरणं' मिलता है।

पादटिप्पणी :

१९६ (१) अमात्य : प्राचीन प्रथा है कि राज्य का प्रधान मन्त्री किंवा अमात्य रानियों को सती होने की अनुमति दे अथवा रोक सकता है। सती होने की भी एक प्रक्रिया होती है। गर्भिणी, सन्तान हीन, स्त्री, बीमार स्त्री आदि सती नहीं हो सकती। द्रष्टव्य : रा० : ८ : ३६३

पादटिप्पणी :

१९७ (१) मन्यु = क्रोध = रोष = कोप : इसका अर्थ शोक तथा कष्ट भी होता है। मन्यु भगवान् शिव तथा अग्नि का विशेषण है। द्रष्टव्य : रघुवंश, २ : ३२, ४९, ११ : ४६; उत्तर रामचरितः ४ : ३; कि० : १ : ३५; (भाग : ३ : १२ १२)

स हि सर्वाधिकारस्थः सर्वस्याक्षिगतोऽभवत् ।
दीप्यमानोऽधिकं मन्त्रशौर्योत्साहादिभिर्गुणैः ॥१९९॥

१९९. मन्त्र, शौर्य्य, उत्साह आदि गुणों के कारण अधिक दीप्यमान वह सर्वाधिकारी[1] सबके अक्षिगत[2] हो गया था ।

अस्थीनि क्षेमगुप्तस्य गृहीत्वा जाह्नवीं गते ।
पुत्रे कर्दमराजाख्ये प्रबलैरन्वितो बलैः ॥२००॥

२००. क्षेमगुप्त की अस्थियाँ लेकर प्रबल सैन्य समन्वित कर्दमराज नामक पुत्र के जाह्नवी जाने के उपरान्त ।

तत्प्रत्यागमपर्यन्तं पर्णोत्से स्थातुमुद्यतः ।
अविश्वसन्नृपगृहे फल्गुणो वैरिशङ्कितः ॥२०१॥

२०१. वैरियों से शंकित फल्गुण उसके प्रत्यागमन पर्यन्त, नृप गृह में विश्वास न करके, पर्णोत्स में रहने के लिये उद्यत हुआ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० १९९ में 'मन्त्र' का पाठभेद 'तत्र' तथा 'तन्त्र' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

१९९. सूक्ति संग्रह का २१९ वाँ श्लोक है ।

१९९ (१) सर्वाधिकार : वर्त्तमान प्रधान मन्त्री के समकक्ष का पद था । यह सब मन्त्रियों के ऊपर था । उसे सब का अधिकारी माना जाता था । वह वर्तमान प्रधान मन्त्री किंवा प्राइममिनिस्टर के समकक्ष पद था । वह कल्हण के उल्लेखों की तुलना करने से और स्पष्ट हो जाता है । (रा० : ८ : २३६० तथा ८ : २४६०, २४७०) पहले में सर्वाधिकार तथा दूसरे में मुख्य मन्त्रिति शब्दों का प्रयोग किया गया है । यह पद आमतौर से सबको नहीं दिया जाता था । कदाचित् ही कोई अति मेधावी एवं राजभक्त व्यक्ति इसका अधिकारी होता था । रानी दिद्दा का अत्यन्त शक्तिशाली मन्त्रो तुंग इस पद से विभूषित किया गया था । (रा० : ४ : ३३३ ८ : ५६०) सर्वाधिकार के कार्य विभाग का उल्लेख रा० : ८ : २४७१ में किया गया है । द्रष्टव्य : रा० : ७ : ३६४, ५६८; ८ : ८६२, १८५०; क्षेमेन्द्र : नर्ममाला : १ : ८ ।

(२) अक्षिगत : आखों में गड़ गया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २०० में 'रन्विते' का पाठभेद 'रन्वितो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

(१) पर्णोत्स : प्राचीन काल में लोहर मण्डल के अन्तर्गत था । यह वर्तमान पूछ अथवा पुन्तस् है । तोसी अथवा तोही नदी की उतार की उपत्यका में है । ह्वेनसाँग के समय यह काश्मीर के राजा के अन्तर्गत था । पूछ के मुसलमान राजा वितस्ता उपत्यका में खखस से सम्बन्धित थे । महाराज गुलाबसिंह के विजय काल तक वे अंशतः स्वतन्त्र थे । पश्चिमी पंजाब से काश्मीर जाने के मार्ग पर पड़ने के कारण इस स्थान का विशेष महत्त्व था । पूछ के दक्षिण पश्चिम का पर्वतीय अंचल एक छोटे सरदार के आधीन बहुत दिनों तक था । उसे कोटली का राजा कहते थे ।

निर्गत्य नगराद्यावत्सभाण्डागारिसैनिकः ।
काष्ठवाटान्तिकं प्राप तावद्रक्कादिचोदिता ॥२०२॥

२०२. भाण्डागार एवं सैनिकों सहित वह नगर से निकलकर, जबतक काष्ठ[1]वाट के समीप पहुँचा, तबतक रक्क द्वारा प्रेरित होकर—

आकलय्य द्रुतं दिद्दा संत्यज्य प्रार्थनादिकम् ।
पृष्ठे प्रत्युत याष्टीकांस्तस्य हन्तुं व्यसर्जयत् ॥२०३॥

२०३. दिद्दा ने शीघ्र निश्चय करके, प्रार्थना आदि न कर, प्रत्युत उसके पीछे वधहेतु याष्टिकों[1] को भेजा ।[2]

कल्हण तथा फरिस्ता द्वारा वर्णित छोटी पर्वतीय रियासत कालिंजर इसी अंचल में थी। पूछ के उत्तर पश्चिम वितस्ता की घाटी है। यहाँ प्राचीन काल में काश्मीर सीमावर्ती जिला बोल्यास्का फैला था। पूर्वी अंचल खसों द्वारा अधिकृत था। मुसलमानी शासन काल में यह उपत्यका अनेक सरदारों में विभक्त थी। मुजफ्फराबाद तथा बुलियास के मध्य का भाग द्वारावती कहा गया है। इसी का अपभ्रंश द्वारविडी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०२ में 'प्राप' का पाठभेद 'प्राप्य' तथा 'प्राप' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'प्राप्त इत्यर्थः' लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

२०२ (१) काष्ठवाट : यह वर्तमान किश्तवार नहीं है। कुछ लोग दोनों को एक मानने का भ्रम करते हैं। यह काष्ठवाट कुहिन परगना अथवा उससे पश्चिम बुनियार तथा नौशेरा की उपत्यका के पश्चिम होना चाहिए। एक काश्तवार ग्राम दुत्त परगना में नूनर के समीप है? फल्गुन यहाँ जिस मार्ग का वर्णन करता है वह सर्वथा विपरीत दिशा में पड़ता है। यह काष्ठवाट कल्हण उल्लिखित काष्ठवाट (रा० : ८ : ३९०) है। इसका उल्लेख सुस्सल के लोहारिन (लोहर) से अभियान काश्मीर के लिए करते समय किया गया है। इस अभियान में सुस्सल ने वह मार्ग पकड़ा था जो सदरन उपत्यका से प्रुत के उत्तर में पड़ता है। वितस्ता उपत्यका में बारहमूला के अधो भाग में किया था। यह एक वह मार्ग है जिसके द्वारा जो हाजी पीर अथवा पज्जा पास से सरलता पूर्वक काश्मीर उपत्यका से प्रुत पहुंचा जा सकता है। उक्त श्लोक में सुस्सल काष्ठवाट पहुंचने के पश्चात् सुस्सल का हुस्कपुर के समीप एकत्रित सेना ने विरोध किया था। इस प्रकार देखा जाता है कि फल्गुण जब पर्णोत्स जाते समय रोक दिया जाता है तो वह बारहमूला द्वारा काष्ठवाट लौट आता है। इससे प्रकट होता है कि काष्ठवाट कुहिन परगना का पश्चिमी भाग का कोई स्थान होगा। अथवा वह बुनियार उपत्यका और नौशेरा की पहाड़ियों के ठीक पश्चिम में होगा। काष्ठवाट एक स्थानीय नाम भी है। एक छोटा गाँव कष्टवार दुत्त अर्थात् दूनस् परगना में नूनर के समीप है। द्रष्टव्य : रा० : ७ : ५९०; ८ : ४६८

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०३ में उक्त श्लोक के पश्चात् बम्बई (दुर्गाप्रसाद) संस्करण में 'चक्कलम्' मुद्रित है।

पादटिप्पणी :

२०३ (१) याष्टिक : याष्टिक का शाब्दिक अर्थ लट्ठधारी होता है। वर्तमान काल के चोबदार शब्द से इसका अर्थ निकल सकता है। यह लोग

नवावमानखिन्नः स मिलितानन्तसैनिकः ।
प्रत्यावृत्त्य ततो मानी वाराहं क्षेत्रमाययौ ॥२०४॥

२०४. नवीन अवमानना से खिन्न वह (स्वाभि)मानी अनन्त सैनिकों के साथ वहां से परावृत्त हो कर वाराह क्षेत्र आ गया।

श्रुत्वा समेतसैन्यं तं प्रत्यायातं प्रतापिनम् ।
आस्कन्दशङ्किनी दिद्दा सामात्या समकम्पत ॥२०५॥

२०५. सैन्य समेत उस प्रतापी को प्रत्यागत सुनकर, आक्रमण की आशंका से अमात्यों सहित, दिद्दा प्रकम्पित हो गयी।

तस्मिन्क्षेत्रे गतं शान्तं विलप्य स्वामिनं चिरम् ।
वराहपादसविधे तेन शस्त्रं समर्पितम् ॥२०६॥

२०६. उस क्षेत्र में दिवंगत स्वामी के लिये चिर काल तक विलाप करके, उसने वराह (भगवान्) के पाद समीप शस्त्र समर्पित कर दिया।

द्रोहसंभावनापापं शस्त्रत्यागेन मन्त्रिणा ।
स्वस्य संमार्जितं तेन राजमातुश्च साध्वसम् ॥२०७॥

२०७ उस मन्त्री ने शस्त्र त्याग द्वारा, अपने द्रोह सम्भावना रूप, पाप एवं राजमाता के उद्वेग (भय) को सम्मार्जित कर दिया।

'वेत्रिक' (रा० : ६ : ३७; ८ : ५२४) के समान थे। द्रष्टव्य : रा० : ६ : २१४, २१७, २३७ राजा के सेवक थे। यष्टि = लाठी से याष्टिक शब्द निकलता है। (पाणिनि : ४ : ४ : ५९)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २०६ में 'तेन' का पाठभेद 'तेत्र' तथा 'शान्त' का 'शान्ति' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२०६ (१) समर्पित : वह एक प्राचीन प्रथा है। किसी वीर का शस्त्र किसी देव मन्दिर में देवता के चरणों में रख देने का अर्थ होता था कि वह व्यक्ति अपने शस्त्रोपजीवी कर्म अथवा शस्त्र का त्याग मृत्यु-पर्यन्त के लिये करता है और पुनः कभी शस्त्र न धारण करेगा। बड़े पहलवानों में भी यही प्रथा है, कि प्रौढ़ावस्था पार करने पर उनकी कुस्ती माफ की घोषणा उस्ताद कर देता है। इसका अर्थ यह होता है कि दंगलों में अथवा किसी स्पर्धा किंवा चुनौती में आने से वह मुक्त किया जाता है।

जिस प्रकार एक व्यक्ति संन्यास ग्रहण कर जगत् से विरक्त हो जाता है, उसकी नागरिक मृत्यु हो जाती है, वही प्रथा शस्त्र न्यस्त के सम्बन्ध में प्रचलित थी। शस्त्र त्याग देने पर व्यक्ति का शस्त्रोपजीवी जीवन समाप्त हो जाता है। वह शस्त्र नहीं धारण करता। किसी युद्ध अथवा संघर्ष में सम्मिलित नहीं होता। उस पर कोई आक्रमण नहीं करता। यह प्रथा काश्मीर में सुलतानों के समय भी प्रचलित थी।

पादटिप्पणी :

२०७ (१) पीर हसन के अनुसार दोनों दलों में युद्ध

युक्तायुक्तविचारबाह्यमनसः सेवा महद्वैशसं
क्रुद्धेऽस्मिन्प्रतिकारकर्म गहनद्रोहापवादावहम् ।
येन न्यूनगुणेदृशोपकरणीभावोऽपि तस्मै परं
कोपः कोपि विवेकिनः समुचितः शास्त्राय शस्त्राय वा ॥२०८॥

१०८. उचित एवं अनुचित विचार से शून्य जन की सेवा कष्टकर (दुर्भाग्यपूर्ण) होती है, उसके क्रुद्ध होने पर प्रतीकार करना गहन द्रोहापवाद देता है, जिसके द्वारा न्यून गुण वाले शस्त्र अथवा शास्त्र का प्रयेगा किये जाने पर भी उस शास्त्र अथवा शस्त्र के प्रति विवेकी का क्रोध प्रकट करना उचित नहीं है ।

पर्णोत्समेव शनकैः ससैन्ये फल्गुणे गते ।
विगताध्यापका बाला इवामोदन्त मन्त्रिणः ॥२०९॥

२०९. धीरे-धीरे ससैन्य फल्गुण के पर्णोत्स गमन के पश्चात्, अध्यापक के चले जानेपर, बालकों के सदृश मन्त्री प्रसन्न हुए ।

योगक्षेमौ चिन्तयन्ती क्षेमगुप्तवधूरपि ।
अनिशं प्रजजागार स्वयं कण्टकपाटने ॥२१०॥

२१०. योग[1] क्षेम[2] का चिन्तन करती हुई क्षेमगुप्त की वधू भी कण्टकोत्पाटन में स्वयम् रात-रात जागरण करने लगी ।

हुआ । यह गलत है । वह लिखता है फल्गुण वज़ीर के शरीर मुख़ालिफ़ों में से था । पूछ की तरफ भाग गया । दिद्दारानी ने भारी फ़ौज के साथ उसका ताअकुव किया । बारहमूला के पास फरीकैन से जबरदस्त जंग वाक़ा हुई । दिद्दारानी ने बज़ीर से कहा कि अगर उसका शौहर न मरा होता तो तुझे वग़ावत और मुक़ाबिला की ताक़त न थी । इस बात के सुनते ही वज़ीर फाल्गुन ने हथियार हाथ से देकर पूछ के कौतिन्तान में गोशा नशीन अख्तियार कर ली । (उर्दू : १०४)

पाठभेद :

श्लोक सं० २०८ में 'दावहम्' का पाठभेद : 'दापहम्' तथा 'गुणेदृशोपक' का 'गुणेदृशेऽपक' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२०८ सूक्ति संग्रह का २२० वाँ श्लोक हैं ।

(१) **शास्त्र** : यहाँ शास्त्र का अभिप्राय धर्म एवं नीति शास्त्र से है ।

पादटिप्पणी :

२१० (१) **योग** = कौटिल्य ने राजा का कर्तव्य योग-क्षेम बताया है । याज्ञवल्क्य स्मृति में योग-क्षेम की परिभाषा मिताक्षरा भाष्य में दी गयी है । अलभ्य का लाभ योग है । जिसकी प्राप्ति नहीं हुई है उसे प्राप्त कर राष्ट्र सम्पत्ति या भूखण्ड में जोड़ना = योग करना—योग माना गया है । (ऋग् : १ : ५ : ३) योग शब्द क्षेम के साथ वेद में प्रयोग किया गया है । वे अलग-अलग तथा एक मिश्र शब्द रूप में प्रयुक्त किये गये हैं । (ऋग्: ७ : ५४ : ३,-७ : ८६ : ८ : १० : १६६, ५)

(२) **क्षेम** = लब्ध परिपालन को क्षेम कहा गया है । जो कुछ भी राष्ट्र की सम्पत्ति अथवा भूखण्ड है उसका प्रतिपालन करना, उसकी रक्षा करना क्षेम है । मनु : ९ : २१९; याज्ञ० : २ : ११८–११९;

राज्यप्रार्थी पर्वगुप्तो मन्त्रिणौ कोशपीथिनौ ।
अजिग्रहत्करौ पूर्वं पुत्र्योर्यौ छोजभूभटौ ॥२११॥

२११. राज्यप्रार्थी पर्वगुप्त ने कोश पीथ[1] जिन छोज और भूभट मन्त्रियों को पहले अपनो दो पुत्रियों को पाणिग्रहण कराया—

तयोः प्रजातौ तनयौ ख्यातौ महिमपाटलौ ।
अवर्धिषातां यौ राजमन्दिरे राजपुत्रवत् ॥२१२॥

२१२. उन दोनों से उत्पन्न महिम एवं पाटल नामक ख्यात तनय जोकि राजमन्दिर में राज पुत्र तुल्य प्रवर्धित हुए —

तौ तत्रावस्थितावेव तत्कालं राज्यलालसौ ।
संमन्त्र्य समगंसातामुद्दामैर्हिम्मकादिभिः ॥२१३॥

२१३. उस समय राज्य की लालसा से वे दोनों वहाँ रहते हुए, उद्दाम हिम्मक[1] आदि से मन्त्रणा करके, षडयन्त्र में सम्मिलित हुए ।

बलिनौ तावबलया राज्ञ्यापास्तौ नृपास्पदात् ।
समन्यू स्वगृहादास्तां यावत्कृतगतागतौ ॥२१४॥

२१४. अबला रानी द्वारा नृपास्पद से निर्वासित होकर बली वे दोनों क्रोध पूर्वक स्वगृह से जवतक कि आया जाया करते थे—

गौतम : ९ : ६३, ११ : १६; ।

(३) कण्टकोत्पाटन : कौटिल्य ने कण्टक शोधननाम से इस पर अध्याय ३ तथा ४ में विवेचन किया है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २११ में 'यौं' का पाठभेद : 'र्यो' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२११ (१) कोशपीथ = कोश पान = प्रतिज्ञा निर्वाह करने के समय के अतिरिक्त कोश पान एक प्रकार का दिव्य भी था । पवित्र जल का पान निर्दोषिता सिद्ध करने के लिये किया जाता था । यह पद तुलनीय है, श्लोक रा० : ४ : ४२४ से । द्रष्टव्य पादटिप्पणियाँ : रा० : ४ : ५५८; ५ : ३२६, ५ : ४२२,

पाठभेद :

श्लोक सं० २१३ में 'हिम्मका' का पाठभेद 'हिंसका' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२१३ (१) हिम्मक : सर्व श्री हैदर मलिक नारायण कौल की तारीख ने हिम्मक को तुर्क माना है ।

एकतः पृष्ठतः प्रादान्महिम्नो निर्गतस्य सा ।
निर्वासनाय याष्टीकांस्तावत्प्रकटवैकृता ॥२१५॥

२१५. तबतक वैर प्रकट कर, उस (दिद्दा) ने निर्वासन करने के लिये निर्गत, महिमन के पीछे याष्टिक को भेजा ।[1]

शक्तिसेनाभिधानस्य श्वशुरस्य निवेशनम् ।
प्रविवेश स तज्ज्ञात्वा तं ते तत्रापि दुद्रुवुः ॥२१६॥

२१६. वह शक्तिसेन नामक स्वसुर के गृह गया, यह जानकर, वे वहाँ भी उसका पीछा किये ।

शक्तिसेनेन याष्टीकाः सान्त्विता नाचलन्यदा ।
तदा भीतस्य जामातुर्व्यक्तं प्रादात्स संश्रयम् ॥२१७॥

२१७. शक्तिसेन के सान्त्वना देने पर, जब याष्टिक नहीं गये, तब भीत जामाता को उसने प्रकट रूपेण संश्रय प्रदान किया ।

तं लब्धसंश्रयं प्राप हिम्मको मुकुलस्तथा ।
एरमन्तकनामा च परिहासपुराश्रयः ॥२१८॥

२१८. संश्रय प्राप्त, उसके पास हिम्मक, मुकुल तथा परिहासपुर निवासी एरमन्तक आये ।

श्रीमानुदयगुप्ताख्योऽप्यमृताकरनन्दनः ।
ललितादित्यपुरजा यशोधरमुखा अपि ॥२१९॥

२१९. अमृताकर का पुत्र श्रीमान् उदयगुप्त, ललितादित्यपुर[1] के यशोधर प्रमुख आगये ।[2]

पाठभेद :

श्लोक सं० ६१५ में उक्त श्लोक के पश्चात् दुर्गा प्रसाद की राजतरंगिणी संस्करण में 'युग्मम्' मुद्रित है ।

पादटिप्पणी :

२१५ (१) याष्टिक=लाठी से सज्जित योद्धा । वह वेत्रिक के समान थे । याष्टिक एवं वेत्रिक में अन्तर किया गया है । याष्टिक लाठी बन्द आक्रामक भी थे और वेत्रिक केवल वेंत लिये हुए लोग थे जो वेंत से लोगों को हटाते बढ़ाते थे । वेंत धारी पुलिस मैं समझता हूँ वेत्रिक थे । द्रष्टव्य टिप्पणी : ६ : २०३

पाठभेद :

श्लोक सं० २१६ में 'शक्तिसेना' का पाठभेद 'शक्ति सेवा' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१७ में 'चलन्' का पाठभेद 'चलद्' 'भीतस्य' का 'भीमस्य' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१८ में 'मन्तक' का 'मत्तक' तथा पार्श्व में 'तं' के लिये 'महिमानं' लिखा गया है ।

पादटिप्पणी :

२१८ (१) तं : तं शब्द यहाँ महिम महिमान के लिये प्रयोग किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २१९ में श्री दुर्गाप्रसाद के संस्करण में श्लोक के पश्चात् 'युग्मम्' मुद्रित है ।

पादटिप्पणी :

२१९ (१) ललितादित्यपुर : यह प्राचीन-

एकैके ते मिथः सैन्यैर्भुवनक्षोभकारिणः ।
संभूय चक्रुर्द्रोहं महिम्नः पक्षमाश्रिताः ॥२२०॥

२२०. सैन्यों से भुवनक्षोभकारी, एक एक ने महिमन का पक्ष लेकर परस्पर संघटित होकर, विद्रोह किये ।

तस्मिन्महाभये दिद्दापक्षं मन्त्री सबान्धवः ।
एक एव तु तत्याज नाद्रोहो नरवाहनः ॥२२१॥

२२१. उस महाभय में सबान्धव एवं अद्रोही, केवल एक मन्त्री नरवाहन ने दिद्दा पक्ष का त्याग नहीं किया ।

प्रवर्धमानपृतना योद्धुं बद्धोद्यमास्ततः ।
पद्मस्वाम्यन्तिकं प्रापुर्दीप्यमानायुधा द्विषः ॥२२२॥

२२२. प्रवर्धमान सैन्य सहित युद्ध हेतु उद्यत, दीप्यमान आयुधों से युक्त, शत्रु पद्मस्वामी[1] के निकट आगये ।

अथ शूरमठे दिद्दा विसृज्यात्मजमाकुला ।
आपच्छान्तिक्षमांस्तांस्तानुपायान्समचिन्तयत् ॥२२३॥

२२३. आकुल दिद्दा ने आत्मज को शूरमठ[1] भेजकर, आपत्ति शान्ति में समर्थ तत् तत् उपायों का चिन्तन करने लगी ।

ललितादित्यपुरजान्द्विजान्स्वर्णेन भूरिणा ।
पूर्णं स्वीकृत्य विदधे रिपूणां संघभेदनम् ॥२२४॥

२२४. ललितादित्यपुर के द्विजों को प्रचुर स्वर्ण द्वारा शीघ्र ही स्वपक्ष में करके, रिपुओं का संघ भेदन कर दिया ।

स्थान वितस्ता तटपर लितपोर माना गया है । द्रष्टव्यः रा० : ४ : १८७

पाठभेद :

श्लोक सं० २२० में 'एकैके ते' का पाठ भेद 'एकैकं तं' तथा 'माश्रिता' का 'माश्रितः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२२२ (१) पद्मस्वामी : यह मन्दिर पद्मपुर अर्थात् पामपुर में था । द्रष्टव्य : रा० : ४ : ६९५ । पीर हसन के मत से भी इसकी पुष्टि होती है—उसके बाद महिमन ने शोरोशर उठाया और करेवा पामपुर पर बग़ावत का झण्डा बुलन्द कर दिया । (१०४)

पादटिप्पणी :

२२३ (१) शूरमठ : यह मठ श्रीनगर में था । द्रष्टव्य : रा० : २४३; ५ : ३८ । कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि यह आवश्यकता पड़ने पर जेलखानों के काम में लाये जाते थे ।

द्रष्टव्य रा० : ८ : ३७४, १०५२, २२०९, मुसलिम काल में मठ को 'हुट' तथा 'सराय' कहने लगे थे ।

पादटिप्पणी :

२२४ (१) ललितादित्यपुर : लितपोर : द्रष्टव्य टिप्पणी रा० : ४ : १८७ तथा रा० : ६ : २१९

एकाक्षेपेऽखिलैः कोपो विधेय इति वादिभिः ।
महिम्नः पीतकोशैस्तैः संधिर्देव्या समं कृतः ॥२२५॥

२२५. एक के आक्रमण पर, सब लोग क्रुद्ध होंगे, यह कह कर, महिम्न के साथ कोशपान पूर्वक कृत प्रतिज्ञ देवी के साथ सन्धि कर लिये ।

गोष्पदोल्लङ्घने यस्याः शक्तिर्नाज्ञायि केनचित् ।
वायुपुत्रायितं पङ्ग्वा तया संघाब्धिलङ्घने ॥२२६॥

२२६. गोष्पद[1] लंघन में भी जिसे कोई समर्थ नहीं जानता था, उसी पंगु स्त्री ने संधाब्धि लंघन में वायु पुत्र[2] का आचरण किया ।

यत्संग्रहो रत्नमहौषधीनां करोति सर्वव्यसनावसानम् ।
त्यागेन तद्यस्य भवेन्नमोऽस्तु चित्रप्रभावाय धनाय तस्मै ॥२२७॥

२२७. रत्नमहौषधियों का संग्रह, जो सर्वव्यसनावसान करता है, वह जिसके त्याग से हो जाता है, उस विचित्र प्रभावशाली धनको नमस्कार है ।

उत्कोचकाञ्चनादानेऽप्युच्चां ध्यायन्त्युपक्रियाम् ।
दिद्दा यशोधरादिभ्यः कम्पनादि समार्पयत् ॥२२८॥

२२८. उत्कोच में कांचन प्रदान की अपेक्षा उपकार को श्रेष्ठ मानती हुई, दिद्दा ने यशोधर आदि को कम्पनादि (पद) प्रदान किया ।

अभिचारं महिम्नश्च कृतवत्या मितैर्दिनैः ।
मण्डलेऽखण्डिताज्ञत्वं रण्डायाः समजृम्भत ॥२२९॥

२२९. कुछ दिनों में महिमन का अभिचार करने वाली दिद्दा की मण्डल में अखण्डित आज्ञा विजृम्भित होने लगी ।

पादटिप्पणी :

२२६ सूक्ति संग्रह का २२१ वाँ श्लोक है ।

२२६ (१) गोष्पद : गीली भूमि पर यदि गाय का पैर पड़े तो उसके खुर बराबर गड्ढा हो जाता है । यह गड्ढा धूप लगने पर सूख जाता है । वर्षा जल इस गड्ढा में भर जाता है इस जल को ही गोष्पद कहते हैं । प्रभास क्षेत्र के अन्तर्गत गोष्पद एक तीर्थ भी है ।

(२) वायुपुत्र : हनूमान : हनूमान ने समुद्र का उल्लंघन किया था । कल्हण उसी समुद्र उल्लंघन उपमा का प्रयोग वस्तुओं की संघ बद्ध शक्ति के उल्लंघन से देता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२७ में 'नमोस्तु' का पाठभेद 'धनाय' मिलता है ।

पादटिप्पणी

२२७ सूक्ति संग्रह का २२२ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२८ में 'रादिभ्यः' का पाठभेद 'रादित्यः' 'कम्पनादि' का 'कम्पनाय' तथा 'समार्पयत्' का 'सर्मर्पयत्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २२९ में 'दिद्दायाः' का पाठभेद 'रण्डायाः' मिलता है ।

कदाचित्थक्कनाख्यस्य शाहीशस्योपरि क्रुधा ।
सत्रा स्ववंशजैर्यात्रां कम्पनाधिपतिर्ददौ ॥२३०॥

२३०. कदाचित् थक्कन[1] नामक शाहीराज के ऊपर क्रुद्ध होकर, अपने वंशजों के साथ कम्पनाधिपति ने अभियान किया ।

यद्देशं निम्नगाशैलदुर्गं प्रविशता जवात् ।
अखण्डशक्तिना तेन बलादग्राहि थक्कनः ॥२३१॥

२३१. नदियों एवं शैलों से दुर्गम, उस प्रदेश में शीघ्रता पूर्वक प्रवेश करते, उस अखण्ड शक्तिशाली ने बलात् थक्कन को पकड़ लिया ।

स कृतप्रणतेस्तस्य करमादाय भूपतेः ।
अभिषेकाम्बुभिश्चक्रे श्रीलताप्यायनं पुनः ॥२३२॥

२३२. उसने उस कृतप्रणति भूपति से कर लेकर अभिषेकाम्बुओं[1] से श्रीलताको पुनः आप्यायित कर दिया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २३० में 'थक्कना' का पाठभेद 'ढक्कना' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३० (१) थक्कन : इस राजा के विषय में कुछ ज्ञात नहीं है । सम्भव है कि काश्मीर के सीमान्तवर्ती पहाड़ियों में अपने को काबुल तथा गान्धार का शाही वंशज कहने वाला छोटा राजा रहा होगा । दरद राज विद्याधर की पदवी भी शाही थी । उत्तर प्रदेश तथा विहार में शाही पद नाम धारी लोग भूमिहार, क्षत्री तथा कायस्थ तीनों जातियों में होते हैं । द्रष्टव्य : रा० : ४ : १५३; ५ : १५२-१५५; ८ : ९१३; ७ : ४४७ : थक्कन एक तन्वग का पुत्र भी था (रा० : ७ : ४२२, ४४९, ५१७, ६३२;) थकन्ना का उल्लेख रा० : ७ : १२५२ तथा थक्कन सिंह का रा० : ८ : १०४५ में किया गया है । इसी प्रकार थक्क डामर का उल्लेख रा० : ७:७ : ४०५ में किया गया है । थक्किय एक विद्वान् का उल्लेख रा० : ४ : ४९४ में तथा थक्किय कुल का उल्लेख रा० : ५ : १५१ में किया है । थक्क शब्द इस समय तक काश्मीर में प्रचलित हो गया था । मुसलिम लेखक शाहीराज थक्कन का उल्लेख नहीं करते । वे भीम के पश्चात् जयपाल का वर्णन करते हैं । फरिश्ता इष्टपाल के पुत्र जयपाल का उल्लेख करता है । कुछ इतिहासकारों का मत है कि सम्भव है कि भीमदेव के पश्चात् राजवंश बदल गया हो । राजवंश बदलने पर पाल पदधारी वंश का आविर्भाव हुआ हो । जयपाल तथा भीमदेव के बीच कुछ राजा महत्त्वहीन रहे हों जिनका वर्णन करनां उनकी कुछ ख्याति न होने के कारण छोड़ दिया गया हो । सम्भव है थक्कन यही मध्यवर्ती राजा रहा होगा ।

ऊपरी स्वात प्रदेश के वारी कोट स्थान के उत्तर पहाड़ी में एक खण्डित शिलालेख मिला है । उसपर भट्टारक महाराजधिराज जयपाल देव का उल्लेख है । प्रमाणित होता है कि किसी मन्दिर, अग्रहार, अथवा देवस्थान की स्थापना जयपाल ने वजीरस्थान में की थी । वजीरस्थान वर्तमान वजीरस्तान है । जयपाल ही इतिहास वर्णित जयपाल राजा है । इससे प्रकट होता है कि शाही राज्य उस समय वजीरस्तान जो वारीकोट के चारों तरफ, फैला हुआ था ।

पादटिप्पणी :

२३२ (१) अभिषेक : पुनः राज्य प्राप्ति पर

लब्धप्रवेशैः समये तस्मिन्रक्कादिभिः खलैः ।
कम्पनाधिपतौ राज्ञ्या विद्वेषोऽग्राहि मूढया ॥२३३॥

२३३. उस समय प्रवेश प्राप्त रक्क आदि खलों ने कम्पनाधिपति के प्रति मूढ़ रानी को विद्वेष ग्रहण करा दिया ।

उर्वीपतेश्च स्फटिकाश्मनश्च शीलोज्झितस्त्रीहृदयस्य चान्तः ।
असंनिधानात्सततस्थितीनामन्योपरागः कुरुते प्रवेशम् ॥२३४॥

२३४. उर्वीपति, स्फटिक अश्म एवं शीलोज्झित स्त्री के हृदय के अन्तः में सतत स्थित रहने वालों के असन्निधान से अन्योपराग प्रविष्ट हो जाता है ।

स्वचित्तसंवादि वचो वदन्तो धूर्ता वितन्वन्ति मनःप्रवेशम् ।
पृथग्जनानां गणिकावधूनां विटाः प्रभूणामपि गर्भचेटाः ॥२३५॥

२३५. स्वचित्त संवादी बात करते हुए धूर्त, जिस प्रकार सामान्य जनों के तथा विट गणिका स्त्रियों के मन में प्रविष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार गर्भ चेट[1] प्रभुओं के (मन में प्रवेश करते हैं) ।

द्रोग्धायं थक्कनं रक्षबन्धनादायीति पैशुनम् ।
तथ्यमेव तदीयं सा स्वयंवादादमन्यत ॥२३६॥

२३६. धन लेकर थक्कन की रक्षा करता हुआ, यह द्रोही है, उनके परस्पर बात करती, इस पिशुनता को उसने तथ्य मान लिया ।

अभिषेक आवश्यक माना गया है । द्युमत्सेन का कथानक द्रष्टव्य है । (रा० : ४ : ४१९, ५ : ११२, तथा आदि : १३८ : ५; वन : २९४ : ७, २९५ : १४, २९६ : २७, २९८ : २, ८; २९९ : ११)

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३३ में 'प्रवेशैः' का पाठभेद 'प्रवेश' तथा 'राज्ञ्या' का 'राज्ञा' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३४ में 'मन्योपरागः' का पाठभेद 'मन्योन्यरागः' तथा 'मन्योन्यरामः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३४ सूक्ति संग्रह का २२३ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

२३५ सूक्ति संग्रह का २२४ वाँ श्लोक है ।

२३५ (१) गर्भचेट : गर्भदास—घर का नौकर दास या सेवक । पेट का एक अर्थ नायक एवं नायिका को मिलाने वाला, तथा उपपति भी होता है । सेविका तथा दासी को चेरी कहते हैं । नेपाल में चेर को केटा तथा चेरी को केटी कहते हैं ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३६ में 'स्वयंवादा' का पाठभेद 'स्वयंसंवादा' मिलता है ।

अथ स्ववसतिं प्राप्ते कम्पनेशे जयोर्जिते ।
याष्टीकान्व्यसृजद्दिद्दा स्फुटं निर्वासनोद्यता ॥२३७॥

२३७. जयोर्जित कम्पनेश के स्वगृह पहुँचने पर, सुस्पष्ट रूप से निर्वासनोद्यत, दिद्दा ने याष्टिकों को भेजा ।

तदाक्षेपं समाकर्ण्य स्मरन्तः कोशसंविदम् ।
ते हिम्मकैरमन्ताद्याः पूर्ववद्विक्रियां ययुः ॥२३८॥

२३८. इस आक्षेप को सुनकर, हिम्मक एरमन्तक आदि वे लोग कोश[1] प्रतिज्ञा का स्मरण करते हुए, पूर्ववत् विद्रोही हो गये ।

नरवाहनमुख्यास्तु राज्ञीपक्षं न तत्यजुः ।
विभेदं पूर्ववत्प्रापदेवं निजबलं पुनः ॥२३९॥

२३९. इस प्रकार निज बल पुनः पूर्ववत् भेद युक्त हो गया किन्तु नरवाहन प्रमुख लोगों ने रानी का पक्ष नहीं त्यागा ।

प्रविष्टेषु ततः कोपात्पुरं शुभधरादिषु ।
भट्टारकामठे दिद्दा भूयः पुत्रं व्यसर्जयत् ॥२४०॥

२४०. तत्पश्चात् क्रोध पूर्वक, शुभधर आदि लोगों के पुर में प्रवेश करने पर, दिद्दा ने पुत्र को पुनः भट्टारक मठ[1] भेज दिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २३८ में 'कोशसंविदम्' का पाठभेद 'कोशवेदिनम्' तथा 'रमन्ताद्या' का 'रमत्ताद्याः' एवं 'केशसंविदम्' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'एकक्षिपेऽखिलैः कोपो विधेय इत्येवंरूपा' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२३८ (१) कोश : द्रष्टव्य पादटिप्पणियाँ : रा० : ४ : ५५८, ५ : ३२६, ५ : ४२२, ६ : २११

पादटिप्पणी :

२४० (१) भट्टारक मठ : ब्रुदमर के लिए कहा जाता है कि यही प्राचीन भट्टारक मठ का स्थान था । श्रीनगर का एक भाग है । यह चौथे तथा पाँचवें पुल के मध्य वितस्ता के दक्षिण तट पर स्तिथ है । विल्हण के विक्रमांक देव चरित्र के उल्लेख से प्रकट होता है कि यह बहुत बड़ी इमारत थी । काश्मीर के पुराने पण्डितों को यह स्थान इसके नाम से ज्ञात था । यह शिलाखण्डों से बना चतुष्कोणी मठ था । यह इतना मजबूत बना था कि राजभवन से अधिक मजबूत तथा सुरक्षित स्थान तथा सामरिक अभियानों के समय सुरक्षा की दृष्टि से उपयुक्त स्थान माना जाता था । (रा० : ८ : ३७४, १०५२) द्रष्टव्य : रा० : ६ : २२४, ७ : २२८, ८ : २४२६ ।

विल्हण भट्टारक मठ का उल्लेख करता है : यस्मिन्कापि स्फुरति, ललिता श्रीः कटाक्षच्छटासु, श्रीमद्भट्टारकमठपुरोपात्तसीमन्तिनीनाम् । (विक्रमाक० १८ : ११)

दत्तार्गले नृपगृहे स्थितां तां दैवमोहिताः ।
ते तदैव विना पुत्रं विमूढा नोदपाटयन् ॥२४१॥

२४१. अर्गला देकर नृप गृह में बिना पुत्र के स्थित उसे (रानी को) पथ विमोहित विमूढ़ वे, उस समय भी उत्पाटित नहीं किये ।

राज्ञ्याः संजघटे लोकः परस्मिन्नेव वासरे ।
यद्बलेन तदा स्थैर्यं सा किंचित्समदर्शयत् ॥२४२॥

२४२. दूसरे ही दिन रानी के लोग संघटित हो गये, जिनके बल से उस समय रानी ने कुछ स्थैर्य दिखाया ।

जयाभट्टारिकापार्श्वाद्यावच्छूरमठान्तिकम् ।
व्याप्य स्थितैर्द्विषत्सैन्यैरथ प्रववृते रणः ॥२४३॥

२४३. जयाभट्टारिका पार्श्व से लेकर, शूर मठ के समीप तक, व्याप्त होकर, स्थित शत्रु सेनाओं से रण प्रारम्भ हो गया ।

राजधानीं राजसैन्ये प्रविष्टे त्रासविद्रुते ।
सिंहद्वारे घटाबन्धमेकाङ्गाः समदर्शयन् ॥२४४॥

२४४. त्रास-विद्रुत राजसैन्य के राजधानी में प्रवेश करने के उपरान्त सिंहद्वार[1] पर एकांगों ने घटा बन्ध दिखाया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४१ में 'नोदपाट' का पाठभेद 'नोपपाट' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४२ में 'राज्ञ्याः' का पाठभेद 'राज्ञ्या' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४३ में 'रणः' का पाठभेद 'रणं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४३ (१) जयभट्टारिक : इसका उल्लेख प्रथम एवं अन्तिम बार यहीं पर आया है । सम्भवतः यह एक मन्दिर था ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४४ में 'राजसैन्ये' का पाठभेद 'राजसैन्यैः' तथा 'सिंहद्वारे' का 'सिंहद्वारैः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२४४ (१) सिंहद्वार : राजभवन के मुख्य प्रवेश द्वार को सिंहद्वार कहते हैं । प्रायः राजभवन के द्वारों के दोनों ओर हाथी और कहीं सिंह प्रस्तर खण्ड में बने मिलते हैं । जहाँ मूर्तियाँ नहीं रहती वहाँ द्वार के दोनों ओर हाथी किंवा सिंह का चित्र बना दिया जाता है । सम्भवतः इन्हीं मूर्तियों तथा प्रतिमाओं के कारण सिंह किंवा गजद्वार कहा जाता है । नेपाल में सिंह दरबार प्रमुख राज्य मन्त्रणालय है । द्रष्टव्य रा० : ७ : ८७९, ८८२; ८ : ३४४, ४६१ १४५ ।

२४४ (२) घटाबन्ध : अर्थ सैनिक जमाव होता है । इसका एक अर्थ सैनिक कार्य के लिए एक-

शरीरनिरपेक्षास्ते भीतं संस्तभ्य तद्बलम् ।
अधावन्विद्विषां सैन्यं चेलुः केचिच्च शत्रवः ।।२४५।।

२४५. भीत, उस बल (सेना) को संस्तम्भित करके, शरीर निरपेक्ष, वे शत्रुओं के सैन्यपर दौड़े (टूट पड़े) और कुछ शत्रु पीछे हटे ।

तस्मिन्नवसरे राजकुलभट्टः समाययौ ।
तूर्यघोषैर्द्विषां सैन्यं भिन्दन्नानन्दयन्निजम् ।।२४६।।

२४६. उस समय तूर्य घोष से शत्रु सैन्य को भयभीत (भेदन) करते तथा अपने (सैन्य) को आनन्दित करते हुए, राजकुल भट्ट आ गया ।

तस्मिन्प्राप्ते द्विषां सैन्यं विननाश विनश्वरम् ।
न द्रोहाविनयं जातु सहन्ते शस्त्रदेवताः ।।२४७।।

२४७. उसके आनेपर, शत्रुओं का विनश्वर सैन्य नष्ट हो गया, (क्योंकि) शस्त्र रूप देवता द्रोह रूप अविनय कभी नहीं सहन करते ।

त्रोटयत्यायसान्बन्धान्स्फोटयत्युपलानिति ।
यः ख्यातिमवहत्तथ्यां हिम्मको भीमविक्रमः ।।२४८।।

२४८. 'लोहा, लोहा को तोड़ देता है उपलों को फोड़ देता है'-ऐसी तथ्य ख्याति, जिस भीमविक्रमी हिम्मक को प्राप्त थी—

त्रित हुआ हाथियों का समूह होता है । कालीघटा का वर्णन संस्कृत तथा भाषा के कवियों ने बहुत किया है । घटा आनेपर वृष्टि होती है । बिजली गरजती है । हवा बहती है । बाढ़ आती है । जल विप्लव होता है । सेना भी जब आती है तो गरजती है । वाण वर्षा होती है । विप्लव होता है । हाथी का रंग तथा घटा का रंग एक होता है । घटा में मेघ गर्जन करता है । सेना में सैनिक गर्जन करते हैं । धौंसा, भेरी एवं तूर्य गर्जते हैं, शत्रुओं की काली कृपाणों के आघात से काले मेघो में कौंधती विजली के समान ज्वाला स्फुरित होती है । सैनिकों के बाण बरसते हैं । उनके रक्त से भूमि आर्द्र होती है । मेघ वर्षा से भी पृथ्वी आर्द्र होती है । कल्हण ने उक्त उपमा देकर अपने कवित्व शक्ति का परिचय दिया है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४५ में 'अधावन्' का पाठभेद 'अधावद्' तथा 'अधार्य' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४६ में 'निजम्' का पाठभेद 'निजान्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४८ में 'त्रोटय' का पाठभेद 'तोटय' 'पलानिति' का 'पलानपि' 'पलानति' 'तिमवह' का 'तिमांवह' तथा 'हत्तथ्यां' का 'हत्तथ्यां' एवं 'हन्नस्यां' मिलता है ।

तस्यासिना राजकुलभट्टदेहार्धपातिना ।
चर्ममात्रं न तुत्रोट कङ्कटस्यातिसंकटे ।।२४९।।

२४९. उस भयंकर युद्ध में राजकुल भट्ट के देहार्ध पर गिरने वाली उसकी तलवार वर्म के चर्म पात्र को तोड़ नहीं सकी ।

विलोक्य तदसंभाव्यं सैन्ये दैन्यं समाश्रिते ।
अघानि हिम्मको योधैरवाष्टम्भि यशोधरः ।।२५०।।

२५०. उस असम्भाव्य को देखकर, सैन्य की दैन्य युक्त (दयनीय) स्थिति में योद्धाओं द्वारा हिम्मक मारा गया और यशोधर पकड़ लिया गया ।

तथाप्यासीत्स्फुरन्संख्ये य एरमन्तकः क्षणम् ।
स भग्नासिरश्च्युतो वाहाज्जीवग्राहमगृह्यत ।।२५१।।

२५१. तथापि एरमन्तक कुछ क्षण तक युद्ध करता रहा, (उसकी) असि भंग हो गयी, अश्व से गिर पड़ा और जीवित पकड़ लिया गया ।

नाजौ तैरेष्यताधातुं यः श्रीमान् राजबान्धवः ।
जगामोदयगुप्तः स क्वापि त्यक्त्वा महाहवम् ।।२५२।।

२५२. युद्ध में जिस राजबान्धव श्रीमान् (उदयगुप्त) को वे पकड़ना (बन्दी बनाना) नहीं चाहे, वह उदयगुप्त महायुद्ध त्याग कर, कहीं चला गया ।

इत्थं लब्धजया राज्ञी तत्क्षणान्न्यग्रहीद्रुषा ।
यशोधरं शुभधरं मुकुलं च सबान्धवम् ।।२५३।।

२५३. इस प्रकार जय प्राप्तकर, रानी ने रोष से तत्क्षण यशोधर, शुभधर एवं सबान्धव मुकुल को निग्रहीत किया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २४९ में श्री दुर्गाप्रसाद के संस्करण में श्लोक के अन्त में 'युग्मम्' मुद्रित है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५० में 'सैन्ये' का 'सैन्यं' तथा 'वाष्टम्भि' का पाठभेद 'वष्टम्भि' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५१ में 'एरमन्तकः' का पाठभेद 'ऐरमन्तकः' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २५३ में 'मुकुलं' का पाठभेद 'सकुल' मिलता है ।

काश्मीरिकाणां यः श्राद्धशुल्कोच्छेत्ता गयान्तरे ।
सोऽप्येरमन्तकः शूरः परिहासपुराश्रयः ।।२५४।।

२५४. काश्मीरियों द्वारा गया[1] में श्राद्ध शुल्क[2] प्रदान का जिसने उच्छेद कर दिया था, परिहासपुर वासी वह एरमन्तक भी—

बद्ध्वा महाशिलां कण्ठे वितस्ताम्भसि पातितः ।
स्वदुर्नयफलं देव्याः प्रकोपेनानुभावितः ।।२५५।।

२५५. कण्ठ में महाशिला बद्ध कर वितस्ता जल में डाल दिया गया, (उसे) अपने दुर्नय का फल देवी के प्रकोप द्वारा प्राप्त हो गया ।

ये सप्तसप्तताद्वर्षादागोपालनृपात्पुरा ।
अभिमन्युं यावदासन्षोडशानां महीभुजाम् ।।२५६।।

२५६. पहले सतहत्तरवें[1] वर्ष के नृप गोपाल से लेकर (नृप) अभिमन्यु पर्यन्त सोलह राजाओं का जो—

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५४ में 'रिकारणांय' का पाठभेद 'रकाणां', 'शुल्कोच्छत्तां' का 'शुष्कोच्छता' 'गयान्तरे' को 'गमान्तरे' 'तथा' 'परिहास' का 'परिहार' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२५४ (१) श्राद्धशुल्क : गया में लगे यात्री-कर से गया को अच्छी आमदनी होती थी । बंगाल के राजा शशांक ने बुद्ध प्रतिमा के स्थान पर शिव प्रतिमा स्थापित कर दिया था ताकि गया जो उस समय उसके शत्रु क्षेत्र में था उसकी आय कम हो जाय । गया बौद्ध तथा हिन्दू दोनों के लिए पवित्र स्थान था ।

गया में श्राद्ध कर्म करना प्रत्येक हिन्दू अपने पितरों की स्वर्ग कामना निमित्त करना कर्तव्य समझता है । चीनी पर्यटक इत्सिग (सन् ६७१-६९५ ई०) के वर्णन से इस पर विशेष प्रकाश पड़ता है । **समरकन्द** से गया श्राद्ध करने यात्री आते थे । तोखरिस्तान के लोगों ने यहाँ से आनेवाले यात्रियों के लिये एक धर्मशाला का निर्माण गया जी में कराया था । चीनी पर्यटक इत्सिग इस धर्मशाला के विषय में कहता है—यह धर्मशाला अथवा आश्रम अन्य आश्रमों की अपेक्षा अधिकसुव्यवस्थित तथा उत्तम प्रबन्ध के लिये प्रसिद्ध है । उस समय कपिशा (काबुल उपत्यका) निवासियों ने भी एक आश्रम गया में बनवाया था । गया में काश्मीरियों की भी एक धर्मशाला थी । प्रायः प्राचीन तथा अर्वाचीन कालों में राज्यों तथा प्रदेशों के नाम से धर्मशालायें तथा आश्रम तीर्थ स्थानों में बनाये जाते थे । और अब भी बनाये जाते हैं । द्रष्टव्य : रा० : ७ : १००८

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५५ में 'फलं' का पाठभेद 'पुरं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२५६ (१) सतहत्तरवें = सप्तर्षि ३९७७ = फाल्गुन वदी एक = सन् ९०१-९०२ ई० ।

(२) गोपाल वर्मा = राज्यकाल सप्तर्षि ३९७७ = ९०१-९०२ ई०—३९७९ = सन् ९०४ ई० ।

वर्षषष्टिं प्रतापायुःश्रीहरा द्रोहवृत्तयः ।
ते क्षिप्रं मन्त्रिणः सर्वे सान्ववायाः सहानुगाः ।।२५७।।

२५७. साठ वर्षों में प्रताप एवं श्री हरण करने वाले द्रोह वृत्ति मन्त्री थे, कुल एवं अनुचर सहित उन सबको शीघ्र ही—

भीमभ्रूभङ्गमात्रेण दिद्दादेव्या सकोपया ।
आसन्निःशेषतां नीता दुर्गयेव महासुराः ।।२५८।। तिलकम् ।।

२५८. सकोप दिद्दा देवी ने भीम भ्रूभंग मात्र से, उसी प्रकार निवेशित कर दिया, जिस प्रकार दुर्गा[1] देवी ने महासुरों को ।

अभवन्विहिता राज्ञ्या तानुत्पाट्य मदोद्धतान् ।
रक्कादयः कम्पनादिकर्मस्थानाधिकारिणः ।।२५९।।

२५९. उन मदोद्धतों को उत्पाटित कर, रानी ने रक्क आदि लोगों को कम्पन आदि कर्मस्थानों[1] का अधिकारी बनाया ।

इत्थं मन्त्रिप्रकाण्डः स रण्डामाखण्डलोपमाम् ।
अखण्डमण्डलां चक्रे निर्द्रोहो नरवाहनः ।।२६०।।

२६०. इस प्रकार मन्त्रि प्रकाण्ड उस निर्द्रोही नरवाहन ने रण्डा[1] (रानी) को इन्द्रोपम अखण्डमण्डला कर दिया ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २५८ में इस श्लोक के पश्चात् 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२५८ (१) महासुर : महासुर संहार का वर्णन देवी माहात्म्य में अध्याय ८ : ३९—४३ तक दिया गया है । कथा है कि महासुर के शरीर से रक्तबिन्दु गिरते ही असुर उत्पन्न हो जाते थे । उनकी संज्ञा रक्तबीज से दी गयी है ।

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ।। ३९
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ।। ४०
युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ।। ४१
कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्थुस्ततो योद्धास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ।। ४२
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ।। ४३

पादटिप्पणी :

२५९ (१) कर्मस्थान : राजकीय किंवा सार्वजनिक कार्यालय (आफिस) था । पूर्वकाल में सात कर्मस्थान थे । (रा० : १ : १२०) तत्पश्चात् अट्ठारह कर्मस्थान हुए । उसके बाद उसे में पाँच और जोड़कर सबकी संख्या तेईस कर दी गयी । (रा० : ४ : १४२-१४३ ५१२,)

पादटिप्पणी :

२६० (१) रण्डा = विधवा : राँड़ शब्द इसी रण्डा का अपभ्रंश है । रण्डा शब्द आदर सूचक नहीं है । प्रायः उस विधवा के लिये अनादर पूर्वक व्यव-

राज्ञी कृतज्ञभावेनसाऽपि मन्त्रिसभान्तरे ।
तमाजुहाव निर्द्रोहं स्वयं राजानकाख्यया ॥२६१॥

२६१. स्वयं रानी भी कृतज्ञ भाव से उस निर्द्रोही (मन्त्री) को मन्त्रिसभा मध्य राजानक नाम (उपाधि) से आहूत करती थी ।

सुप्ते सुष्वाप निष्पन्नभोजनेऽस्मिन्नभुङ्क्त सा ।
हृष्टे जहर्ष निर्विण्णे निर्विवेदानुकूल्यतः ॥२६२॥

२६२. उसके शयन करने पर वह अनुकूलता पूर्वक शयन तथा भोजन करने पर भोजन करती, हर्षित होने पर हर्षित एवं निर्विण्ण होने पर निर्विण्ण (खिन्न) होती थी ।

आरोग्यान्वेषणं शिक्षाप्रार्थनां गृहवर्तिनः ।
सात्मवस्तुविसर्गं च नाकृत्वा तस्य विप्रिये ॥२६३॥

२६३. गृहवर्ती उसकी बिना आरोग्य पृच्छा एवं शिक्षा प्रार्थना किये और अपनी वस्तु (उसके पास) बिना प्रेषित किये हुए, वह प्रसन्न नहीं होती थी ।

अभूतां युग्यवाहस्त कुय्यनाम्नः सुतौ पुरा ।
यौ सिन्धुभुय्यौ तज्ज्यायान्सिन्धुर्लालितकः किल ॥२६४॥

२६४. पहले कुय्य नामक युग्य[1]वाही के जो दो पुत्र सिन्धु और भुय्य हुए उनमें ज्येष्ठ लालितक सिन्धु ने—

हार किया जाता है, जिसके चरित्र पर सन्देह होता है । काशी में कहावत है—

रॉंड़, सॉंड़, सीढ़ी, संन्यासी,
इनसे बचे तो सेवै काशी ।

क्षेमेन्द्र ने देशोपदेश में रण्डा के विषय में लिखा है :

इत्युद्देशनिदर्शनेन विविधं यत्किञ्चिदुक्तं मया
तत्सर्वं स्मितकारणं सहृदयाः शृण्वन्तुः सन्तः क्षणम् ।
क्षेमेन्द्रः प्रणतिं करोति न पटुर्लोकोपहासेष्वलं
किन्त्वेष व्यपदेशतः प्रतिपदं देशोपदेशः कृतः । ८:५२

\+ \+ \+

सुधौतवसना तीर्थे स्थित्वा पुण्यदिनेऽसकृत् ।
रण्डावेशेव कुरुते वेश्या मैथुनविक्रयम् ॥ ३ : ४०

पादटिप्पणी :

२६१ (१) राजानक : द्रष्टव्य टिप्पणी : ६ : ११७ :

पादटिप्पणी :

२६२. सूक्ति संग्रह का २२५वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६३ में 'साऽऽत्म' का पाठ भेद 'सात्म्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६३ सूक्ति संग्रह का २२६ वां श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

२६४ (१) युग्य : सभी अनुवादकों ने अर्थ पालकी किया है । युग्य का अर्थ जोतने योग्य जुता हुआ साज सामग्री से संबद्ध होता है । यथा—युग्यं रथं तस्मै प्रजिघाय पुरन्दरः (रघुवंश : १२ : ८४) द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : समयमातृका : ७ : ३८

(२) लालितक = लाड़ला = दुलारा : प्रिय ।

पर्वगुप्तगृहे भूत्वा गञ्जाध्यक्षे स्थिते क्रमात् ।
लब्ध्वा गञ्जाधिकारित्वं तस्या राश्याः शनैरभूत् ॥२६५॥

२६५. क्रमशः पर्वगुप्त के घर गंजाध्यक्ष[1] पद पर स्थित रह कर, उस रानी के यहाँ गंजाधिकारित्व पद प्राप्त कर लिया ।

रूढ्या तयैव गञ्जेशो नवायासविधायकः ।
कर्मस्थानस्य निर्माता सिन्धुगञ्जाभिधस्य यः ॥२६६॥

२६६. उसी रूढ़ि (क्रम) से नवायास विधायक, जिस गञ्जेश ने सिन्धुगञ्ज नामक कर्मस्थान[2] स्थापित किया—

प्रायशो हृतराज्यस्ते वर्तते नरवाहनः ।
इति नेयधियं राज्ञीं सोऽभ्यधत्त दुराशयः ॥२६७॥

२६७. 'नरवाहन ने तुम्हारा राज्य अपहृत कर लिया है'—इस प्रकार उस दुराशय ने चंचल बुद्धि रानी से कहा ।

सा तथेत्यब्रवीद्यावत्तावत्प्रेम्णा स जातुचित् ।
मन्त्री तां पार्थयामास भोक्तुं निजगृहागमम् ॥२६८॥

२६८. 'ऐसा ही है'—उसने जिस समय कहा—उस समय किसी दिन, उस मन्त्री ने उस (रानी) से, भोजन हेतु, निज गृहागमन के लिये प्रेम पूर्वक प्रार्थना की ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या २६५ में 'गञ्जा' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'सुरागृहे गञ्जा भाण्डागारे' पुमानथेति कोशः' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६५ (१) गंज : यह शब्द संस्कृत है । परशियन में भी 'गंज' शब्द है। इसका अर्थ कोश भण्डागार या स्टोर हाउस होता है । गञ्जाधिकारी का अर्थ खजांची है । उसे परशियन में गंजावर कहते हैं । फारसी में शब्द पुंलिंग है । गंजा सुरागृह के भण्डार अथवा कोश को भी कहते थे । गंजपति का उल्लेख उत्पल ने बृहत् संहिता (५२ : १३) में 'कोश भवन गञ्ज' लिखा है । छठवीं से आठवीं शताब्दी के तालेश्वर फलक में 'गंजपति' का उल्लेख मिलता है । (इ० आई० : १३ : १०७, ११५,)

गञ्जवर शब्द का भी महाक्षत्रप सौदास के मथुरा अभिलेख में उल्लेख मिलता है । (ई० आई० ९ : २४७) गंजदिविरः द्रष्टव्य : क्षेमेन्द्र : नर्ममाला : १ : ८३-९६ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २६६ में 'नवायास' का पाठभेद 'नवायाम' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२६६ (१) गंज : द्रष्टव्य : रा० : ४ : ५८९, ७ : १२५-१२६,

(२) कर्मस्थान : कार्यालय : आफिस । द्रष्टव्य पादटिप्पणी : रा० : ६ : २५९,

सा सानुगां तत्र यातां ध्रुवं त्वामेव भन्त्स्यति ।
इत्युक्ता सिन्धुनाऽपृच्छत्तत्कर्तव्यं भयाकुला ॥२६९॥

२६९. 'वहाँ अनुचर सहित तुम्हें निश्चय ही बाँध लेगा—सिन्धु के इस प्रकार कहने पर, भयाकुल उस (रानी) ने कर्तव्य पूछा ।

अनुक्त्वैव प्रचलिता राजधानीमलक्षिता ।
स्त्रीधर्मिण्यस्मि जातेति पश्चाद्वार्तां व्यसर्जयत् ॥२७०॥

२७०. बिना कहे ही अलक्षित होकर, राजधानी (रानी) चली गयी, और पश्चात् 'स्त्री-धर्मिणी'[1] हो गयी ऐसा सन्देश भेज दिया ।

संप्रवृत्तोपचारायां गतायां तत्पथात्तथा ।
राज्ञ्यां नाशममात्यस्य प्रीतिः संविच्च सा ययौ ॥२७१॥

२७१. उस पथ से आने पर, रानी के औपचारिक व्यवहार के कारण, अमात्य की वह प्रीति एवं संवित् (सहमति) नष्ट हो गयी ।

दिद्दा-नरवाहन वैमनस्य :

तयोस्ततः प्रभृत्येव निष्कृष्टस्नेहयोः कृतम् ।
चाक्रिकैरतिरूक्षत्वं तिलपिण्याकयोरिव ॥२७२॥

२७२. स्नेह[1] रहित, उन दोनों में तिल पिण्याक (खली) के सदृश तभी से चाक्रिकों में अति रूक्षता कर दी ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २६९ में 'भन्त्स्यति' का पाठभेद 'वन्त्स्यति' 'बत्स्यति' तथा 'भर्त्स्यति' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७० (१) स्त्रीधर्मिणी : मासिक धर्म किंवा रजस्वला होना ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २७१ में 'सम्प्रवृ' का 'स प्रवृ', 'वृत्तोपचा' का 'वृतापचा', 'तत्पथात्तथा' का 'तन्मत्तात्तथा' एवं 'राज्या' का पाठभेद 'राज्ञा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७१ (१) संविदा : इकरार = वचन-बद्धता = प्रतिज्ञा । इसी अर्थ में कालिदास ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है । (रघुवंश : ७ : ३१) इसका अंग्रेज़ी में अर्थ कन्ट्राक्ट होगा ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २७२ 'तिरूक्षत्वं' का पाठभेद 'तिरूढत्वं' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२७२ (१) स्नेह शब्द यहाँ श्लिष्ट है । स्नेह का अर्थ प्रेम तथा तेल दोनों होता है । स्नेह रहित तथा तैल रहित यहाँ अर्थ होगा । स्नेह रहित होने पर सूखी खली मात्र रह जाता है । इसी प्रकार मानवों में स्नेहहीनता हृदय में रूक्षता उत्पन्न कर देती है ।

कुलिशं सर्वलोहानामम्भसां शैलसेतवः ।
अभेद्याः प्रतिभाव्यन्ते न किंचिदसतां पुनः ॥२७३॥

२७३. सर्व लोहों के लिये कुलिश,[1] जलों के लिये शैल सेतु, अभेद्य होते हैं, परन्तु असज्जनों के लिये कुछ अभेद्य नहीं होता है।

ये बालादपि संमूढाः प्राज्ञाः सुरगुरोरपि ।
तेषां न विद्मः के तावन्निर्माणपरमाणवः ॥२७४॥

२७४. जो लोग बाल से भी सम्मूढ, और सुगुरु से भी प्राज्ञ होते हैं, मैं नहीं जानता हूँ कि, उनके निर्माण का परमाणु क्या है ?

विश्वासोज्झितधीः शिशून्कलयते काकोऽन्यदीयान्निजान्
हंसः क्षीरपयोविभागकुशलस्त्रस्यत्यसाराद्घनात् ।
लोकावेक्षणतीक्ष्णधीः खलगिरं जानाति सत्यां नृपो
धिग्वैदग्ध्यविमुग्धताव्यतिकरस्पृष्टं विधानं विधेः ॥२७५॥

२७५. विश्वास रहित बुद्धि वाला काक अन्य के शिशुओं को अपना मानता है, नीर-क्षीर विवेक में कुशल हंस असार घन से त्रस्त होता है, लोकावेक्षण में तीक्ष्णधी नृप खलों की वाणी को सत्य जानता है। वैदग्ध्य एवं मूढता के व्यतिकर मिश्रित विधि के विधान को धिक्कार है।

मूढा चरणहीना सा श्रुतिबाह्यतया तया ।
वैधेयविप्रप्रकृतिरिव प्रायाद्विगर्ह्यताम् ॥२७६॥

२७६. मूढ एवं (आ) चरण[1] हीन वह (रानी) उस श्रुति बाह्यता[2] के कारण मूर्ख विप्र की प्रकृति सदृश गर्हणीय हो गयी।

पाठभेद :

श्लोक सं० २७३. श्री दुर्गा प्रसाद के संस्करण में इस श्लोल के पश्चात् 'युग्मम्' मुद्रित है।

पादटिप्पणी :

२७३ सूक्ति संग्रह का २२७ वां श्लोक है।

२७३ (१) कुलिश : कुलिश का अर्थ वज्र एवं हीरा होता है। हीरा सबसे कठोर होता है। वह लोहा को काट देता है परन्तु लोहा वज्र को नहीं काट सकता। लोहा द्वारा ही लोहा काटा जाता है। वज्र लोहा का भेद कर देता है। देवराज इन्द्र का अस्त्र है। (मत्स्य : २५३ : २४) श्री रामचन्द्र कृष्ण एवं विष्णु के अवतारों के चरणों का एक रेख चिन्ह है। (भाग : १० : १६ : १८)।

पाठभेद :

श्लोक सं० २७४ में 'किं' का पाठभेद 'के' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२७४ सूक्ति संग्रह का २२८ वां श्लोक है

पाठभेद :

श्लोक सं० २७५ में 'राद्धनात्' का पाठ भेद 'राद्वनात्' मिलता है।

पादटिप्पणी :

२७५ सूक्ति संग्रह का २२९ वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

२७६ (१) चरण : यह शब्द श्लिष्ट है।

उद्वेजितस्तया शश्वत्तथा स नरवाहनः ।
यथा विमाननोत्तप्तः स्वयं तत्याज जीवितम् ॥२७७॥

२७७. उस (रानी) ने नरवाहन को इस प्रकार निरन्तर उद्वेजित किया, जिससे विमानना (अनादर-अपमान) से संतप्त होकर, उसने स्वयं जीवित (शरीर) त्याग दिया ।

प्रकुप्यत्यप्रतीकार्ये स्वतेजस्तप्तचेतसाम् ।
शरणं मरणं त्यक्त्वा किमिवान्यद्यशोर्थिनाम् ॥२७८॥

२७८. अप्रतीकार्य के प्रकुपित होने पर, अपने तेज से तप्त चित्त यशःप्रार्थी व्यक्ति के लिये, मरण से अतिरिक्त अन्य और क्या शरण है ?

शशिहीनेव रजनी सत्यत्यक्तेव भारती ।
विरराज न राजश्रीर्नरवाहनवर्जिता ॥२७९॥

२७९. नरवाहन रहित राज्यश्री उसी प्रकार शोभित नहीं हुई, जिस प्रकार शशिहोना रजनी एवं सत्य रहित भारती (वाणी) ।

सा क्रौर्याभ्यासविषमा हन्तुं विततविक्रमान् ।
संग्रामडामरसुतान्समीपस्थानचिन्तयत् ॥२८०॥

२८०. क्रौर्याभ्यास के कारण, विषम उस (रानी) ने समीपस्थ विततविक्रमी संग्राम डामर के पुत्रों के बध का चिन्तन किया ।

निजमुत्तरघोषं ते तद्भयेन विनिर्गताः ।
कय्यकद्वारपत्यादीन्कृतारब्धीन्व्यपादयन् ॥२८१॥

२८१. उसके भय से वे अपने उत्तर घोष को चले गये और आक्रमणोद्यत द्वारपति[1] कय्यक आदि को मार डाला ।

चरण का अर्थ पैर–पद तथा वैदिक पद का एक चरण होता है। अचरण का प्रयोग यहाँ कल्हण ने यह दिखाने के लिये किया है कि रानी लँगड़ी थी। चरण हीन अर्थात् वैदिक पद हीन ब्राह्मण मूर्ख होता है।

(२) श्रुति बाह्यता : सुनने पर विश्वास करना अर्थ से तात्पर्य है। इसका दूसरा अर्थ वेद से अनभिज्ञता होता है।

पादटिप्पणी :

२७८ सूक्ति संग्रह का २३० वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

२७९ सूक्ति संग्रह का २३१ वां श्लोक है।

पादटिप्पणी :

२८१ (१) उत्तर घोष : उत्तर परगना में गुश ग्राम है। इस स्थान की संज्ञा घोष शब्द से शारदा माहात्म्य में दी गयी है।

यहाँ का नाग नीलमत पुराण में गोश नाग नाम से उल्लिखित किया है।

अंगारकस्तथा सूर्यो निऋत्तर घोष एव च ।
अजैकपाच्चाहिबुंध्न्यो धूमकेतुर्ध्वजस्तथा

६०९ = ७३१

उत्तर एक परगना है। वह क्रमराज्य (कामराज) के धुर उत्तर पश्चिम में स्थित था। इसका

उत्पिञ्जभीतया राज्ञ्या त्यक्त्वा परिभवत्रपाम् ।
ते यत्नात्समपद्यन्त मानः स्वार्थार्थिनां कुतः ॥२८२॥

२८२. उत्पात भीत रानी ने परिभव त्रपा (लज्जा) त्याग कर यत्न पूर्वक उन्हें संघटित कर लिया—'ठीक है, स्वार्थार्थियों को मान कहाँ ?'

स्थानेश्वरादिभिर्मुख्यैर्डामरैरितरैः समम् ।
ते भीताः पुरतस्तस्याः पुनरेत्य जजृम्भिरे ॥२८३॥

२८३. स्थानेश्वर आदि एवं इतर प्रमुख डामरों के साथ, भीत वे रानी के समक्ष आकर, पुनः अपना प्रभाव प्रकट किये (विजृम्भित[1] हुए) ।

फल्गुण : पुनः पद प्राप्ति ।

अथ तद्भीतया राज्ञ्या रक्के प्रनयमागते ।
आनीतः फल्गुणो भूयो वीरार्थिन्या निजान्तिकम् ॥२८४॥

२८४. रक्क के दिवंगत होने के उपरान्त उनसे भीत वीरार्थिनी रानी पुनः फल्गुण को निज निकट लायी ।

राजकार्याणि कुर्वाणः स भूयः शस्त्रमग्रहीत् ।
न्यस्तशस्त्रोऽपि मत्सत्यं दुस्त्यजा भोगवासना ॥२८५॥

२८५. राज्य कार्य करते हुए, न्यस्त शस्त्र[1] भी वह पुनः शस्त्र ग्रहण किया । क्यों कि सत्य है,—'भोग वासना दुस्त्यज होती है ।'

महिमा राजपुर्यादिजयिनस्तस्य पश्चिमः ।
अद्भुतो वृद्धबन्धक्या अवरुद्ध इवाभवत् ॥२८६॥

२८६. राजपुरी[1] आदि (स्थानों) का विजेता उसकी प्राचीन एवं अद्भुत महिमा बृद्ध बन्धकी[2] द्वारा अवरुद्ध[3] सदृश हो गयी थी ।

उल्लेख लोक प्रकाश में 'उत्तरक' रूप से किया गया है । उत्तर परगना काश्मीर उपत्यका के धुर उत्तर पश्चिम पर्वत पादमूल से कृष्णगंगा तक फैला है । इस परगना का प्राचीन नाम उत्तर है । इसमें जो आबादी है उसका नाम घोष है । घोष स्थान ही गुस है जो उत्तर परगना के मध्य में कामिल नदी तथा जो स्रोतस्विनी लोलौ से आती है उसके संगम पर है । इस स्थान से शारदा की तीर्थ यात्रा आरम्भ की जाती थी । शारदा माहात्म्य में भी घोष नाम से ही इसका उल्लेख किया गया है ।

पादटिप्पणी :

२८३ (१) विजृम्भित : शाब्दिक अर्थ जम्हाई मुख खोलना और चौड़ा कर लेना होता है । श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने उसका यहाँ पर भाव साहसिक तथा आक्रमक लगाया है ।

पादटिप्पणी :

२८५ (१) न्यस्त शस्त्र : द्रष्टव्य टिप्पणी : ६ : ७१, २०६ ।

पादटिप्पणी :

२८६ (१) राजपुरी : वर्तमान रजौरी है । यह

पीर पन्तसाल पर्वत माला के मध्यवर्ती भाग की दक्षिण दिशा में स्थित है। तोही नदी तथा उसकी शाखा नदियों द्वारा सिंचित उपत्यका का नाम राजोरी है। काश्मोर नाम राजवीर है। राजपुरी तथा काश्मीर राज्य का बहुत ही निकट का सम्बन्ध रहा है। एक स्थान की राजनीति तथा इतिहास दूसरे स्थान से प्रभावित होता रहा है।

महाभारत द्रोण पर्व में राजपुर का वर्णन आता है। यहाँ पर कर्ण ने काम्बोजों पर विजय प्राप्त की थी।

ह्वेनत्सांग के पर्यटन काल में वह काश्मीर के आधीन था। (सी० यू० भी १ : १६३) रानी दिद्दा के राज्य काल में प्रायः स्वतन्त्र था। काश्मीर के दक्षिण मार्ग स्थान में होने के कारण इसका विशेष महत्त्व रहा है। काश्मीर के राजा सर्वदा इसपर शासन करने का प्रयास करते रहे हैं। विल्हण ने राजपुरी पर क्षितिराज बोहराधिपति के विजय का वर्णन किया है। विक्रमांक १८ : ४९।

अल्बेरुनी ने भी इसका वर्णन किया है। वह कहता है—मुसलमान व्यापारियों के काश्मीर में व्यापार करने की यह आखिरी मंजिल है। द्रष्टव्यः (वाइन : ट्रेवेलः १ : २२५ ड्रूप : जम्मूः १५५)

राजौरी का वर्णन राजतरंगिणी में किया गया है। पुराने मुगल मार्ग के वाम भाग पर पड़ता है। पुराने मुगल मार्ग की अब मरम्मत हो गयी है। केवल पूछ और श्रीनगर के मध्य वह नहीं बन सकी है। शेष भाग इस समय पाकिस्तान में है।

राजौरी देखने के साथ ही अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ सामने आ जाती हैं। शाही वंश के राजा लोग अफगान से उद्वासित होकर इस स्थान को अपने लिए क्यों चुने यह विचार मन में उठा। यहाँ की पर्वत माला सूखी है। वर्तमान डाक बँगले तथा मुगल सड़क की दक्षिण तरफ ऊँची चोटी पर एक प्रासाद बना है। यह शिखर राजौरी में सबसे ऊँचा है। पहाड़ बिल्कुल सूखा है। अफगानिस्तान में पहाड़ जहाँ जलस्रोत नहीं है बिल्कुल वृक्ष विहीन है। काबुल के रहने वालों के लिए स्थान प्रिय होगा। काबुल नदी गहरी नहीं है। बालाहिसार का दुर्ग सूखी पहाड़ी पर है। शाही वंश वालों को यह स्थान काबुल जैसा लगा होगा। यह दुर्गम स्थान भी है। उन्हें यहाँ मुसलमानों के आने का भय नहीं था अतएव इस स्थान पर आश्रय लिए थे।

राजौरी त्रिकोणीय टापू पर बसा है। शिलानी पुल नया बना है जो मुगल सड़क तथा राजौरी से पूछ जाने वाली सड़क को जोड़ता है। डाक बंगला के पास डोंगरा राजाओंका बनवाया झूला पुल है। वह मार्ग तथा राजौरी नगर में सम्बन्ध स्थापित करता है। शिलानी पुल के पूर्व यही एकमात्र साधन मुगल मार्ग तथा राजौरी के दूसरे ओर जोड़ने का था। शिलानी बृज से एक फरलांग ऊपर नियार नदी एक दूसरी नदी से जिसे सक्तो नाला कहते हैं मिलती है। नगर के दक्षिण दिशा में एक नदी है। सक्तो नदी के तट से होता मार्ग पूछ तक गया है। वाम भाग वाली नदी में भी काफी जल है। नदियाँ प्रायः ग्रीष्म ऋतु में सूख जाती हैं।

यहाँ उपत्यका अत्यन्त शोभनीय है। इसमें धान अर्थात् शाली की खेती खूब होती है। मैं सितम्बर मास में आया था। उपत्यका शालि पूर्ण थी। शालि यहाँ सुनहले रंग की होती पूरी उपत्यका सुवर्ण रंग की जैसे साड़ी पहन चुकी थी। शालि और मक्का की खेती मुख्य है। दाल में मूँग होती है। मक्का धान तथा मूँग मुख्य आहार है। राजौरी से पूछ तक शालि की खेती होती है। हस्पताल, डाकबंगला तथा अन्य राजकीय इमारतें पुरानी मुगल सराय किंवा थाना के आसपास और उसकी भूमि में बने हैं।

यहाँ का दृश्य काशीकी याद दिलाता है। नदी के तट पर कहीं कहीं घाट बने हैं। घाट पर मुझे ५ मन्दिर तथा ४ मसजिदें पुरानी पक्की दिखाई पड़ीं। डाक बंगला तथा नगर के बीच नदी में एक बड़ा

मन्दिर टापू पर बना है। मन्दिर के साथ निवास के लिए मकान बना है। इस समय सब खाली है। बड़े मन्दिर के पास ही एक छोटा मन्दिर भी बना है। दोनों ही मन्दिर भग्नावस्था में हैं। उन पर पेड़ उग आये हैं। नदी में पानी बढ़ जाने पर मन्दिर तक जाना असम्भव हो जाता है।

राजौरी नगर सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम स्थान है। नदियों के दोनों तरफ करारों पर मकान बने हैं जो दूर से काशी के घाटों की तरह लगते हैं। राजघाट पुल से जैसा दृश्य काशी का लगता है वैसा ही पुलों से दृश्य दिखता है। नगर पुराना है। गली सँकरी है। उन्हें अब चौड़ी किया जा रहा है। यहाँ के रहने वाले मुसलमान पाकिस्तानी आक्रमण के पश्चात् भाग गये हैं। राजौरी खण्ड का एक भाग हिन्दुस्तान तथा दूसरा पाकिस्तान में पड़ गया है। पाकिस्तान की सीमा वहाँ से थोड़ी दूर पर है। मुसलमान जनता यहाँ से पाकिस्तान चली गयी। पाकिस्तान से इस इलाके के हिन्दू यहाँ आकर आबाद हुए हैं। उन्हीं की आबादी अधिक है। गूजर, वक्कर, बाल वगैरह को आबाद करने का प्रयास किया जा रहा है।

नगर में मैंने कुछ प्राचीन स्थान खोजने का प्रयास किया। कुछ मिला नहीं। एक मसजिद के पीछे की दिवाल पुरानी मालूम होती है। जेलखाना नदी तट पर बुर्जपर बना है। यह पुस्तादार बुर्ज ही प्राचीन काल की स्मृति दिला सकते हैं। नगर गन्दा है। नालियाँ गलियों में बहती हैं। यहाँ कोई व्यापार तथा उद्योग धन्धा नहीं है। मसजिदें अच्छी हालतों में हैं परन्तु मन्दिर सभी मुझे ढलती हालत में लगे।

मुझे यहाँ एक विचित्र दुःखद घटना जब मैं दूसरी बार आया तो मिली। मैं डाक बंगले में ठहरा था। बगल में ही अस्पताल है। डाक्टर साहब किसी को देखने डाक बंगले में आए थे। इसी समय एक चारपाई पर एक युवती को लिटाए चार मुसलमान तथा एक मुस्लिम महिला आई। युवती का शरीर ढका था। डाक्टर साहब यहीं थे अतएव चारपाई लिए लोग आए। चारपाई रख दी गयी। मैं भी गया। भीड़ इकट्ठी हो गयी। युवती का मुख ढका था। कपड़ा पर खून लगा था।

पूछने पर मालूम हुआ। युवती की किसी ने दोनों आँख निकाल ली थी। युवती अन्धी हो गई थी। पीडा से त्रस्त थी। बहुत पूछने पर लोगों से मालुम हुआ कुछ धरेलू बात रही होगी। यह घटना मुरादपुर ग्राम में हुई थी। गाँव राजौरी से एक मिल पर था। उसके पास भारतीय सेना की छावनी पड़ी थी। मैंने स्पष्ट पूछा क्या सैनिकों पर सन्देह है। सबने कहा-सैनिक ग्राम वालों से दूर रहते हैं। इनका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। युवती से बहुत पूछा गया कि किसने आँख निकाली परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। अफसोस कर रहा था। मेरा साहस नहीं हुआ कि मुख खोलकर देखूं। पूछने पर एक सम्भ्रान्त सज्जन बोले—यह लोग मार्शल रेसके हैं। यह सब होता ही रहता है।

जहाँगीर अपनी आत्मकथा में लिखता है; 'शुक्रवार ८ वीं को राजौर में पड़ाव हुआ। यहाँ के लोग पूर्व काल में हिन्दू थे। और वहाँ के जमींदार राजा कहे जाते थे। सुलतान फिरोज ने इन्हें मुसलमान बनाया। ये अब भी राजा कहलाते हैं। अभी तक इनमें मूर्खता काल की प्रथाएं बची हुई है। इनमें एक यह है कि जिस प्रकार हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति के साथ सती होती हैं उसी प्रकार यहाँ की स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ कब्र में गाड़ दी जाती हैं। हमने सुना कि अभी इधर ही एक दस बारह वर्ष की लड़की को उसको इसी अवस्था में पति के शव के साथ गाड़ दिया है। यह भी है कि जब किसी दरिद्र मनुष्य को लड़की होती है तो उसे गला घोंटकर मार डालते हैं। ये हिन्दुओं से सम्बन्ध करते हैं और लड़की लेते देते हैं। लेना तो अच्छा है पर देना ईश्वर न करे। हमने आज्ञा दी कि अबसे वे ऐसा न करें। और जो भी ऐसा करेगा उसे प्राण दण्ड दिया जायगा।

अभूदुदयराजस्य देवीभ्रातुरतिप्रियः ।
यः सहायोऽक्षपटले जयगुप्ताभिधः कुधीः ।।२८७।।

२८७. देवी भ्राता उदयराज का अतिप्रिय एवं सहायक दुर्बुद्धि जयगुप्त अक्षपटलाधिकारी हुआ ।

वहाँ एक नदी है । उसका जल वर्षा ऋतु में बहुत विषैला हो जाता है । वहाँ के बहुत से आदमियों को घेघा निकल आता है । और पीले तथा निर्बल होते हैं । राजौर का चावल काश्मीर के चावल से बहुत अच्छा होता है । वहाँ पहाड़ियों की तलहटी में सुगंधित बनफशे के स्वतः लगे हुए पौधे बहुत हैं ।
(६९०-६९१)

कैप्टन नाइट सन् १८६० जून १७ को राजोरी में आया था । उसने यहाँ का बहुत संक्षिप्त वर्णन दिया है :

'नगर अनेक शैलियों की इमारतों से बना है । यहाँ बड़ा सुन्दर लगता है । इसके एक छोर पर एक खड़हर प्रासाद है । हम एक पुरानी सराय में ठहरे । सराय के साथ एक गिरा बगीचा है । उसमें सुन्दर फुहारों के कुछ अवशेष बाकी रह गये हैं । वह एक चट्टान पर नदी से कई सौ फीट ऊँचाई पर बनी है । नदी इसे शहर से अलग करती है । अपने ऊँचे स्थान से हमें सब स्थानों का पूर्ण दृश्य मिलता है । यहाँ के निवासियों के रहन सहन का आन्तरिक ज्ञान होता है क्योंकि वे यह नहीं जानते कि उनके समीप हम उन्हें देख रहे हैं ।

महिलायें तथा लड़के तातारी जैसी लिवास में मिलते हैं । स्त्रियां छोटी चौखूटी नुकीली फेज शैली की लाल टोपियाँ पहनती हैं । उनपर एक कपड़ा सुन्दरता पूर्वक पड़ा रहता है । वे नीला पाजामा लाल इजारबन्द के साथ या एक ढीला टोंगा हरे कपड़े का पहनती हैं । जो उनके पैर तक पहुँचता है । छोटी लड़कियाँ तातार ढंग जिनसे क्रीमियाँ देश की याद आती है पहनती हैं परन्तु उनमें कपड़ों में काम कम किया होता है । क्रीमियाँ की तातार महिलाएँ तीकोनी जन्तर गले में पहनती हैं । जबकि राजोरी का युवाजन्य फैशन सभी प्रकार के कृत्रिम शृंगारों के स्थान पर केवल प्रकृति को अपना दर्जी बनाती हैं । वे अपनी पोशाक अपनी शैली के अनुसार ठीक से पहनती हैं । (४८-४९)

डब्लू वेक फील्ड सन् १८५७ में राजौरी में आए थे । वे लिखते हैं : 'राजौरी को कभी-कभी रामपुर कहते हैं । तवी तथा एक छोटी नदी के संगम पर वह त्रिकोणीय नगर आबाद है । तवी नदी यहाँ के प्रासाद के दिवालों से टकराती चलती है जो नदी के तल से सीधा उठा है । अभी पहाड़ियाँ जो जंगल से ढकीं हैं नगर को घेरे है । नगर काफी बड़ा है । यहाँ के मकान लकड़ी, ईंट तथा कच्चे बने हैं । कुछ दर्शनीय मन्दिर इमारतें स्थान चहार दिवाली के अन्दर तथा समीप बने हैं । यहाँ पहले एक राजा का राज्य था । अब काश्मीर के राजा के अन्दर है । यहाँ के पुराने राजा कांगड़ा चले गये । (४०-४१)

(२) वृद्ध बन्धकी : वृद्धा वेश्या या पण्य स्त्री या वारांगना या किसी के साथ बन्धन सूत्र में पड़ी स्त्री से तात्पर्य । असती स्त्रियां होती हैं ।

न मे त्वया कौमारबन्धक्या प्रयोजनम् ।
(मा० ७; वेणीः २)

बलाद्धृतोऽसि मयेति, बन्धकी धाष्टर्यम् (का० : २४७)

(३) अवरुद्ध : अवरुद्ध स्त्री अर्थात् रखनी स्त्री जिस प्रकार पर पुरुष के साथ रहती है उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को रख लेती है । इस प्रकार के पुरुष को अवरुद्ध कहते हैं । द्रष्टव्य रा० : ४ : ६७८, ६ : १०७

पादटिप्पणी :

२८७ (१) अक्षपटल : इसका अर्थ लेखा

अन्येऽधिकारिणस्तेन सहिताः क्रूरवृत्तयः ।
कश्मीरेषु व्यधुर्लुण्ठिं दुष्कृतैस्तदुपार्जितैः ।।२८८।।

२८८. उसके सहित क्रूर वृत्ति अन्य अधिकारियों में, वहाँ के उपार्जित दुष्कृतों के कारण कश्मीर को लुण्ठित किया (लूटा) ।

दौःशील्यभाजो मातुश्च पाप्मभिर्विधुरीकृतः ।
अभिमन्युः क्षणे तस्मिन्क्षयरोगेण पस्पृशे ।।२८९।।

२८९. उस समय दौश्शील्य भाजन माता के पापों से दुःखित अभिमन्यु क्षय रोग ग्रस्त हो गया ।

पण्डितः पुण्डरीकाक्षो विद्वत्पुत्रैरुपस्कृतः ।
कृतश्रुतः स वैदुष्यतारुण्याभ्यां विदिद्युते ।।२९०।।

२९०. पण्डित पुण्डरीकाक्ष विद्वत्पुत्र प्रिय एवं कृत श्रुत (शास्त्रज्ञ) वह (अभिमन्यु) वैदुष्य (पाण्डित्य) तथा तारुण्य से दीप्यमान हुआ ।

तथा विशुद्धप्रकृतेस्तस्य दुष्कृतसंगमः ।
शोषाधायी शिरीषस्य रविताप इवाभवत् ।।२९१।।

२९१. दुष्कृत संगम, विशुद्ध प्रकृति उस अभिमन्यु का उसी प्रकार शोषक हुआ, जिस प्रकार रविताप का शिरीष (पुष्प) ।

अर्धमानः प्रजाचन्द्रस्तृतीयस्यां स कार्तिके ।
शुक्लेऽष्टचत्वारिंशाब्दे ग्रस्तो नियतिराहुणा ।।२९२।।

२९२. अष्टचत्वारिंशत्[1] कार्तिक शुक्ल तृतीया को अर्धमान[2] वह प्रजाचन्द्र नियति राहु द्वारा ग्रस्त[3] हो गया ।

एकाउण्ट तथा अभिलेख (रिकार्ड) विभाग है । द्रष्टव्य पाद टिप्पणी रा० : ५ : ३०१ तथा ई० आई० १ : ३१६, ३१८; कर्ण प्रथम का अनुदान संवत् विक्रमी ११४८ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९० में 'विद्वत्पुत्रै' का पाठभेद 'विद्युत्पुत्रै' तथा 'श्रुतः सः' का 'श्रुतो यो' तथा 'विदिद्युते' का 'विदुद्युते' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२९१. सूक्ति संग्रह का २३२ वां श्लोक है ।

२९१ (१) शिरीष पुष्प : सरसों का फूल बहुत ही कोमल होता है । कड़ी धूप में कुम्हला जाता है । कल्हण इसी प्रकार की उपमा का प्रयोग पहले भी (रा० : २ : ८३) किया है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० २९२ में 'अर्धमानः' का पाठभेद 'वर्धमानः' तथा 'अर्धमाना' के लिया पार्श्व टिप्पणी में 'अर्धवया' खण्डविम्बश्च' लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

२९२ (१) चत्वारिंशत : सप्तर्षि : ४०४८ = सन्

नन्दिगुप्त (सन् ९७२-९७३ ई०)

तत्पुत्रो नन्दिगुप्तस्तु बालश्चक्रे निजासने।
वृद्धस्तनयशोकस्तु दिद्दाया हृदये पदम् ।।२९३।।

२९३. उसका बाल पुत्र नन्दिगुप्त[1] निजासन (सिंहासन) पर तथा दिद्दा का वृद्ध तनय-शोक (उसके) हृदय में बैठ गया।

सा शोकपिहितक्रौर्या तस्थौ प्रशमशीतला।
रविरत्नशलाकेव ध्वान्तच्छन्नोष्मवैकृता ।।२९४।।

२९४. शोक ने उसकी क्रूर प्रवृत्ति को छिपा लिया था। वह स्थैर्य द्वारा उसी प्रकार ठण्डी (शीतल) हो गयी थी जिस प्रकार अन्धकार द्वारा आच्छादित होने पर सूर्यकान्त मणि[1] की उष्णता।

---

९७२ ई० = विक्रमी : १०२९ = शक ८९४ कार्तिक शुक्ल तृतीया।

(२) **अर्धमान** = खण्ड चन्द्र विम्ब।

(३) **ग्रस्त** = दिवंगत हो गया। मुहम्मद आजिम का मत है कि अभिमन्यु को विष दिया गया था।

पादटिप्पणी :

२९३ सर्व श्री दत्त अभिषेक काल ४०७३ = शक ८९४ = लौकिक ४०४८ सन् ९७२ ई०, स्तीन लौकिक ४०४८ कार्तिक शुक्ल पक्ष ३ = सन् ९७२ ई०, पण्डित सन् ९७३ ई०, विलसन लौकिक ४०४८ = सन् ९९३ ई० ९ मास, ट्रोयर सन् ९७५ ई०, कनिंघम लौ० ४०४८ सन् ९७२ ई०, डाइ-नास्टिक हिस्टारी ऑफ इण्डिया सन् ९७२ ई०; त्रिवेद सन् ९६७ ई० – शक ८८९, सी० एम-डफ सन् ९७२ ई०, राज्यकाल ट्रोयर १ वर्ष; पण्डित १ वर्ष १ मास ९ दिन, विलसन एवं दत्त १ बर्ष १ मास, पीर हसन १ वर्ष १ मास ९ दिन देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल १ वर्ष १ मास दिया गया है।

नन्दिगुप्त की एक मुद्रा मिली है। उस पर पुरो अर्थात् मुख्य भाग पर लक्ष्मी 'नन्दिगु' तथा पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'प्त' लिखा मिलता है।

सामयिक घटनाएँ—

सन् ९७२–९७३ ई० वेनडिक्ट (षष्ठ) पोप हुआ। कारागार में उसकी हत्या की गयी। नर-वाहन पुत्र अल्लट गुहिल मेवाड़ का राजा हुआ। पीरिति या पिरे अलप्तगीन का गुलाम गजनी का शासक वलक्तगीन की मृत्यु पर हुआ। तैल (द्वितीय) चालुक्य कुन्तल में राष्ट्रकूट राज्य समाप्त किया। सीयक परमार ने राष्ट्रकूट राजधानी मालखेद लूटा। खोत्तिग (खोनिक) राष्ट्रकूट राजा की मृत्यु। धन-पाल का रचनाकाल (सन् ९७२-९७३ ई०)। परमे-श्वर चम्पा राजा ने चीन सम्राट् के पास कम से कम ६ दूत भेजा (सन् ९७२-९७९ ई०) करक्रक द्वितीय या कक्रक पुत्र अमोघवर्ष (चतुर्थ) राष्ट्रकूट का स्थिति काल। सन् ९७३ ई० नन्दिगुप्त काश्मीर राज मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष द्वादशी को मृत हुआ।

पादटिप्पणी :

२९४ सूक्ति संग्रह का २३३ वां श्लोक है।

(१) रविरत्न : सूर्यकान्त मणि : सूर्यकान्त मणि तथा चन्द्रकान्त मणि की उपमा संस्कृत कवि बहुत देते हैं। कल्हण भी पूर्व संस्कृत कवियों की परम्परा का पालन करता उसी उपमा का अनुकरण करता है। चन्द्रकान्त मणि : द्रष्टव्य पाद टिप्पणी : रा० : ४ : २५५।

ततः प्रभृत्यद्भुताभिस्तस्या धर्मप्रवृत्तिभिः ।
कुकर्मभिरुपोढाऽपि लक्ष्मीः प्राप्ता पवित्रताम् ।।२९५।।

२९५. तब से लेकर उसकी अद्भुत धर्म प्रवृत्तियों से कुकर्म संगृहीत लक्ष्मी पवित्र हो गयो ।

नगराधिपतिर्भुय्यः सिन्धुभ्राता शुभाशयः ।
तदीयधर्मचर्यायां बभूव परिपोषकः ।।२९६।।

२९६. सिन्धु का शुभाशयी भ्राता नगराधिपति[1] भुय्य उसकी धर्मचर्या का परिपोषक हुआ ।

सा तेनोत्पादितानर्घजनरागा गतैनसा ।
ततः प्रभृत्यभूद्देवी सर्वलोकस्य संमता ।।२९७।।

२९७. उसके द्वारा उत्पादित, अमूल्य प्रजा प्रेम के कारण, विगत पाप, वह देवी तब से लेकर सर्व लोक संमत हो गयी ।

राज्ञः स सचिवः सत्यं दुष्प्रापो लुप्तचण्डिमा ।
कुर्याद्यः सुखसेव्यत्वं हेमन्त इव भास्वतः ।।२९८।।

२९८. चण्डिमा (ताप) लुप्त करने वाला वह सचिव, निश्चय ही दुष्प्राप्य होता है, जो कि राजा को उसी प्रकार सुख सेव्य बना देता है, जिस प्रकार हेमन्त[1] सूर्य को ।

सा निर्मात्री विपन्नस्य सूनोः सुकृतवृद्धये ।
अभिमन्युस्वामिनोऽभूदभिमन्युपुरस्य च ।।२९९।।

२९९. विपन्न सूनु (पुत्र) सुकृत वृद्धि हेतु उसने अभिमन्यु स्वामी[1] एवं अभिमन्युपुर[2] निर्मित किया ।

अथ दिद्दापुरोपेतो दिद्दास्वामी तया कृतः ।
मठश्च मध्यदेशीयलाटशौडोत्रसंश्रयः ।।३००।।

३००. उस (रानी) ने दिद्दापुर[1] सहित दिद्दा स्वामी[2] तथा मध्य देशीय[3], लाट[4] तथा शौडोत्र[5] वासियों के हेतु मठ[6] बनवाया ।

---

२९६ (१) नगराधिपति : द्रष्टव्य टिप्पणी : रा० : ६ : ७० ।

पादटिप्पणी :

२९८ (१) हेमन्त : अगहन एवं पूष मास मिलकर षट् ऋतुओं में हेमन्त ऋतु बनाते हैं। द्रष्टव्यः रा० : ५ : १९० ।

पादटिप्पणी :

२९९ (१) अभिमन्यु स्वामी : मन्दिर के स्थान का पता नहीं चलता ।

(२) अभिमन्युपुर : द्रष्टव्य : रा० : १५७५ ।

पादटिप्पणी :

३०० (१) दिद्दापुर : इस स्थान के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हो सका है ।

(२) दिद्दा स्वामी : स्थान का पता नहीं चलता ।

(३) मध्यदेश : कवि बिल्हण कहता है कि

भर्तुः कङ्कणवर्षस्य पुण्योत्कर्षाभिवृद्धये ।
चकार कङ्कणपुरं रमणी स्वर्णवर्षिणी ।।३०१।।

३०१. कंकणवर्षी[1] भर्ता के पुण्योत्कर्ष अभिवृद्धि हेतु स्वर्णवर्षिणी रानी ने कंकणपुर[2] बसाया ।

श्वेतशैलमयं चान्यं सा दिद्दास्वामिनं व्यधात् ।
धवलं चरणोद्भूतगङ्गाम्भःप्लवनैरिव ।।३०२।।

३०२. उसने श्वेत शैल मय अन्य दिद्दा स्वामी को स्थापित किया, जोकि चरणोद्भूत गंगा जल छालन से ही मानो धवल थे ।

उसका कौशिक गोत्रीय प्रपिता मध्यदेश से आकर काश्मीर में आबाद हो गया था । वह अपने ग्राम का नाम खनमुस देता है । खनमुस ग्राम वर्तमान खुनामोह गांव है । यह स्थान डोंगरा राज्य काल में 'रख' अर्थात् शिकार के लिये रक्षित स्थान था ।

(४) लाट : वह प्रदेश जो नर्वदा तथा ताप्ती नदियों के मध्य स्थित है । अवन्ती के पश्चिम तथा विदर्भ के उत्तर पश्चिम, तथा अधोवर्ती माही तथा ताप्ती नदियों के मध्य था । इसकी सीमा बदलती रही है । माही से आगे भी सीमा बढ़ जाती थी । भड़ौच (भृगुकच्छ) तथा नौसारी (नौसारिका) भी लाट देश में थे । कामसूत्र में पश्चिमी मालवा को लाट देश माना गया है । स्कन्द पुराण में लाट देश के ग्रामों की संख्या २१ हजार मानी गयी है । द्रष्टव्य परिशिष्ट रा० १ : खण्ड १ तथा पादटिप्पणी रा० : ४ : २०९ ।

(५) शौडोत्र : एक मत है कि यह शब्द शौडोड्र है । उड्र शब्द प्राचीन उड़ीसा का नाम है । उड्र का अपभ्रंश ही उड़ीसा हो गया है । शौडोड्र शब्द दो शब्द शौड तथा उड्र की सन्धि है । सौड किंवा शौत शब्द का उल्लेख एक शिलालेख में मिला है (इण्ड : एण्ट : १२ : २१८) यह गुजरात तथा मालवा का मध्यवर्ती प्रदेश है । लास्सेन ने शौड शब्द को गौड से मिलाया है । (इण्ड : अल्ट : ३ : १०४४)

श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने इसे सौराष्ट्र अर्थात् वर्तमान काठियावाड़ होने का अनुमान किया है । सौराष्ट्र का उल्लेख रा : ३ : ३२८ में कल्हण ने किया है ।

(६) दिद्दामठ : यह दिद्दा मठ रा० ७ : ११, : ८ : ३४९ में वर्णित मठ है । छठवें तथा सातवें पुल के बीच दिदमर स्थान है । वितस्ता के दक्षिण तटपर है । श्रीवर (३ : १७३, १८६, ४ : १२६) तथा शुक ने (३२२, ५५०, ६२९, ६९८) इसका उल्लेख किया है ।

आनन्द कौल के मत से दिद्दामठ इस समय मलिक साहब के कब्रीस्तान में परिणत कर दिया गया है । (आर्कियोलोजिकल डिटेल्स : २६)

पादटिप्पणी :

३०१ (१) कंकणवर्षी : अभिमन्यु का यह उपनाम किंवा उपाधि हो गया था । कंकणवर्षी शब्द का उल्लेख कल्हण ने (रा० : ६ : १६१) किया है । जहाँ क्षेमगुप्त को भी कंकणवर्षी उपाधि दी गयी है । कालान्तर में श्रीवर ने कल्हण का अनुकरण कर जैनुल आबदीन को स्वर्णवर्षी लिखा है । (जैन : १ : ४ : ५२)

(२) कंकणपुर : सिन्धु नदी के दक्षिणी तटपर वर्तमान कंगन गाँव है ।

पादटिप्पणी :

३०२ (१) दिद्दा स्वामी : दिद्दा स्वामी मंदिर

चक्रे काश्मीरिकाणां च दैशिकानां समाश्रयः ।
तयात्युच्चचतुःशालो विहारश्चारुसंपदा ॥३०३॥

३०३. उसने सुन्दर सम्पत्ति से काश्मीर एवं देशी जनों के आश्रय हेतु अति उन्नत चतुःशालाओं[1] से युक्त विहार का निर्माण कराया ।

श्रीसिंहस्वामिनं नाम्ना सिंहराजस्य सा पितुः ।
मठं च विदधे स्थित्यै दैशिकानां द्विजन्मनाम् ॥३०४॥

३०४. उसने पितामह सिंहराज के नाम से श्री सिंह[1]स्वामी तथा दैशिक द्विजन्माओं के निवास हेतु (एक) मठ स्थापित किया ।

वह नहीं है जिसका वर्णन रा० : ६ : ३०० में किया गया है ।

रानी दिद्दा के समय की एक कांस्य प्रतिमा प्राप्त हुई है । यह प्रतिमा बोधि सत्त्व पद्मपाणि की है । मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है । इस पर खुदे अभिलेख से पता चलता है कि यह मूर्ति रानी दिद्दा के समय बनायी गयी थी । मूर्ति चतुर्भुज है । सिन्धु नदी के दक्षिण वर्तमान कंगन ग्राम है । मुखमण्डल सुन्दर शान्त गम्भीर तथा सरल है । मस्तक पर बाल बाँधकर उर्म बना लिया गया है । उर्म के मध्य भगवान् ध्यानी बुद्ध अमिताभ की मूर्ति है । बायें हाथ में पूर्ण प्रस्फुटित पद्म तथा बायें निकले हाथ में मृणाल दण्ड है । आसन पीठ प्रस्फुटित दोहरे पद्म पर है । एक अलंकृत अधिष्ठान पर बैठे हैं । दक्षिण पद आसन पर तथा वाम पद आसन के नीचे भूमि से लगा है । दक्षिण कर में माला तथा दाहिना निचला हाथ वरद मुद्रा में तो नहीं है किन्तु खुला है । उगलियाँ नीचे हैं । अँगूठा तर्जनी मूल से लगा है । यज्ञोपवीत, भुजबन्द, कण्ठ में मुक्तामाला, धोती तथा कटि में मुक्तामय किंकिणी (करधनी) है । दक्षिण पैर की धोती ठेहुनी के नीचे और बायें की ठेहुनी के ऊपर तक है । दोनों ओर तारा तथा शक्ति की छोटी मूर्तियाँ पद्म पर बैठी हैं । इसकी कला अद्भुत है । रानी दिद्दा के समय मूर्ति कला किस स्तर पर पहुंच चुकी थी । उसका यह एक नमूना है । मूर्ति की मुखाकृति गान्धार शैली की मुखाकृति से मिलती है । यह मूर्ति संग्रहालय में सुरक्षित है ।

नीलमतपुराण में कंकण का उल्लेख मिलता है ।

हवनं चेश्वरो मृत्युः कपालीयं च कंकणम् ।
एकादशैते विज्ञेया रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरः ॥

६१० = ७३१ ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०३ में 'रिकाणां' का पाठभेद 'रकाणां'; 'समाश्रयः' का 'जनाश्रयः'; 'सम्पदा' का 'संपदः' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३०३ (१) चतुःशाल : विलसन ने चतुःशाल का अर्थ सराय किया है । इसका शब्दिक अर्थ है चार मकानों का वर्ग । अथवा चारों ओर चार भवनों से घिरा हुआ चतुष्कोणीय भवन । मिलने का हाल ।

पादटिप्पणी :

३०४ (१) सिंह स्वामी : वह मन्दिर लोहर में था । (रा० : ८ : १८२२)

(२) दैशिकः : यहाँ पर दैशिक का अर्थ दिद्दा के देश के ब्राह्मणों के लिए किया गया है । काश्मीरी ब्राह्मणों के सन्दर्भ में उन्हें विदेशी ब्राह्मणों की संज्ञा दी जायगी । जोनराज ने श्रीकण्ठचरित्र की व्याख्या में देशांतरीय शब्द का प्रयोग उसी भाव अर्थात्

मठप्रतिष्ठावैकुण्ठनिर्माणाद्यैः स्वकर्मभिः ।
तयातिपावनश्चक्रे वितस्तासिन्धुसंगमः ॥३०५॥

३०५. उसने मठ प्रतिष्ठा, वैकुण्ठ निर्माण आदि स्वकर्मों से वितस्ता सिन्धु संगम को अति पावन कर दिया।

तेषु तेषु प्रदेशेषु किमुक्तैर्भूरिभिः शुभैः ।
सा प्रतिष्ठा व्यरचयच्चतुःषष्टिमिति श्रुतिः ॥३०६॥

३०६. उन उन प्रदेशों में प्रचुर शुभ (कर्मों) को कहने से क्या लाभ ? उसने चौसठ प्रतिष्ठायें कीं ऐसी श्रुति है।

जीर्णोद्धारकृता देव्या प्लुष्टप्राकारमण्डलाः ।
प्रायः सुरगृहाः सर्वे शिलावप्रावृताः कृताः ॥३०७॥

३०७. देवी ने दग्ध प्राकार मण्डलों देवगृहों का जीर्णोद्धार[1] करके उन्हें शैल वप्रों (प्राचीर दीवाल) से आवृत किया।

गैर काश्मीरी अर्थ में किया है। (२५ : १०२) इसी अर्थ में कल्हण ने इस शब्द का प्रयोग (रा०:७ : ९२, १८९, १९३; ८ : ४९३) प्रयोग किया है। रा० : ८: ३०५८ का उल्लेख सन्देहास्पद है। विक्रमांकदेव चरित में दैशिक शब्द ब्राह्मणों के लिये प्रयोग किया गया है। यह ब्राह्मण वर्ग पुरातन काश्मीरियों से भिन्न था। (विक्रमांकदेवचरित : १८ ४४) हेम अभिनव गुप्त तथा विल्हण के पूर्वज मध्यदेशीय ब्राह्मण थे। कादम्बरीकथासार का लेखक अभिनन्द गौड़ ब्राह्मण था। चन्द्र ने दैशिक का अर्थ यात्री किंवा पर्यटक दिया है। पर्वतीय किंवा पहाड़ी लोग भारत के उत्तरीय मैदान में रहने वालों को आज भी 'देशी' कहते हैं। कमायूँ की पर्वतीय आबादी उत्तर प्रदेश के मैदानी इलाकों के निवासियों को 'देशी' कहते हैं। काश्मीरी तथा गैर काश्मीरी ब्राह्मणों में भेद दिखाने के लिये इसका इस स्थान पर प्रयोग किया गया है। द्रष्टव्य : रा० : ७ : ९७, ८६१, ८ : ३०५८ ।

(३) सिंहराजमठ : यह मठ कहीं विजयेश्वर के समीप होने का अनुमान किया गया है। (रा० : ७ : १५६८)

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०५ में 'स्वकर्मभिः' का पाठभेद 'सुकर्मभिः' तथा 'पावन' का 'पवन' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३०५ (१)वितस्ता सिंधु संगम : काश्मीर का संगम अर्थात् प्रयाग। द्रष्टव्य : रा० : ४ : ३९१, ७ : २१४, ९०९, ५ : ९७-१०४, ६ : ३०५, ७ : २१४, ९०९, १५९५, ८ : ५०६, ३१४९।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०६ में 'शुभैः' का 'श्रुता' पाठभेद मिलता है।

पादटिप्पणी :

३०६ (१)चौंसठ : चौंसठ प्रतिष्ठासे पता नहीं चलता कि किस देवता अथवा देवी की प्रतिष्ठा की गयी थी। जबलपुर में अत्यन्त प्राचीन चौंसठ योगिनी का मन्दिर है। मन्दिर की मूर्तियाँ खण्डित है। मैं उन्हें चार बार देख चुका हूँ। सम्भव है दिद्दा स्वयं स्त्री होने के कारण चौंसठ देवियों किंवा योगिनियों की प्रतिष्ठायें की होंगी। इस प्रकार की प्रतिष्ठा करने की उस समय प्रथा थी। रानीपुर झरियल तथा हीरापुर उड़ीसा दोनों स्थानों में चौंसठ योगिनी का मन्दिर है उनमें चौंसठ योगिनियों की मूर्ति रखी है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०७ में 'द्वारकृता' का पाठभेद 'द्वारा कृता' तथा 'मण्डला' का 'मण्डलः' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३०७ (१) जीर्णोद्धार : काश्मीर में भी नैपाल

क्रीडाचङ्क्रमणे राज्ञ्याः पङ्ग्वा विग्रहवाहिनी ।
वल्गाभिधा वैवधिकी वल्गामठमकारयत् ॥३०८॥

३०८. क्रीडा चंक्रमण में पंगु रानी के शरीर को (ढोने वाली) वलगा नाम्नी वैविध की ने वलगा मठ[1] स्थापित किया ।

तीर्थसेवनमौनभागपि तिमिः सक्तः स्वकुल्याशने
वाताशान्ग्रसते शिखी घनपयोमात्राशनोऽप्यन्वहम् ।
विश्वस्ताञ्जलचारिणः प्रकटितध्यानोऽपि भुङ्क्ते बकः
सत्कर्माचरणेऽपि दोषविकृतौ न प्रत्ययः पापिनाम् ॥३०९॥

३०९. तीर्थसेवी एवं मौनी भी तिमि अपने कुल के अशन में आसक्त रहता है, केवल घन का जल पीने वाला मयूर भी प्रतिदिन सर्पों को ग्रसता है, प्रकट ध्यानी बक भी, विश्वस्त जल चारी (मत्स्यादि) को खाता है, सत्कर्म का आचरण करने पर भो पापियों के सत्कर्माचरण या दोष विकृति में विश्वास नहीं किया जा सकता ।

चर्षणी वर्षमात्रेण शान्तशोका बभूव सा ।
भोगोत्सुकाऽर्भके तस्मिन्नप्तरि व्यभिचारकृत् ॥३१०॥

३१०. वर्ष मात्र में उस चर्षणी[1] का शोक शान्त हो गया और भोगोत्सुक होकर, उस (ने) अर्भक[2] नप्ता (पौत्र) पर अभिचार किया ।

तुल्य लकड़ी के मन्दिर तथा देवस्थान बनाने की प्रथा थी । कारण यह था कि लकड़ी अधिकता से सरलता पूर्वक मिलती थी । उससे बनाना आसान था । अग्नि काण्ड के कारण भस्म हुए मन्दिरों को चिरस्थायी रखने के लिए रानी ने उन्हें पत्थर का बनवाकर जीर्णोद्धार का पुण्य कार्य किया ।

पादटिप्पणी :

३०८ (१) वलगा मठ : इस स्थान का पता नहीं चलता । इसका पुनः उल्लेख नहीं मिलता ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३०९ में 'सेवन' का पाठभेद 'सेचन' तथा 'विकृतौ' का 'विरतौ' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३०९. सूक्ति संग्रह का २३४ वाँ श्लोक है ।

३०९ (१) एक अरबी कहावत है कि 'यदि तुम सुनो कि पहाड़ चलने लगा तो उसका विश्वास कर लो परन्तु यदि सुनो कि एक व्यक्ति ने अपना आचरण बदल दिया है, तो विश्वास मत करो ।'

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१० में 'चर्षणी' का पाठभेद 'चर्षिणीः' 'वर्षिणी' एवं 'शोभा' या 'शङ्का' तथा 'चर्षणी' के लिये पार्श्व टिप्पणी में 'चर्षणी असती इत्यर्थः' लिखा मिलता है ।

३१० (१) चर्षणी = कुलटा स्त्री = असती ।

(२) अर्भक = बालक = बच्चा :—श्रुतस्य यायादयमन्तमर्भक : (रघुवंश : ३ : २१, २५)

(३) नप्ता = पौत्र ।

वर्ष एकान्नपञ्चाशे नीतः पक्षे सिते क्षयम् ।
स मार्गशीर्षद्वादश्याममार्गव्यग्रया तया ॥३११॥

३११. कुमार्ग पर जाने के लिये व्यग्र उस (रानी) द्वारा उनचासवें वर्ष के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष द्वादशी को उसका क्षय कर दिया गया।

त्रिभुवन (सन् ९७३-९७५ ई०)

पौत्रस्त्रिभुवनो नाम मार्गशीर्षे सितेऽह्नि ।
पञ्चमेऽप्येकपञ्चाशे वर्षे तद्वत्तया हतः ॥३१२॥

३१२. उसी प्रकार उसके द्वारा इक्कानबे[1] वर्ष के मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष पंचमी को पौत्र त्रिभुवन भी हत कर दिया गया।

भीमगुप्त (९७५-९८०-८१ ई०)

अथ मृत्युपथे राज्यनाम्नि स्वैरं निवेशितः ।
क्रूरया चरमः पौत्रो भीमगुप्ताभिधस्तया ॥३१३॥

३१३. उस क्रूरा ने स्वेच्छा से अन्तिम पौत्र भीमगुप्त को राज्य नामक मृत्यु पथ पर निवेशित किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३११ में 'एकोनपंच' का पाठभेद 'एकान्नप' तथा 'सिते' का 'मिते' मिलता है।

३११ (१) उनचासवें = सप्तर्षि ४०४९ = सन् ९७३ ई० = विक्रमी १०३० = शक ८९५ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष द्वादशी।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१२ में 'मार्गशीर्षे' का पाठभेद 'मार्गशीर्ष' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१२ (१) सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०७४ = शक ८९५ = लौकिक ४०४९ = सन् ९७३ ई०, स्तीन लौकिक ४०४९ मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष १२, पण्डित सन् ९७३ ई०, सी० एम० डफ० सन् ९७३ ई०, विलसन लौकिक ४०४९ वर्ष १ मास, सन् ९९४ ई०, १० मास, ट्रोयर सन् ९७६ ई० २ मास लौकिक = ४०४९, कनिंघम लौ० ४०४९ सन् ९७३ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १०३८ श्री सन् ९८१ ई० देता है। डाइनास्टिक हिस्टारी आफ इण्डिया सन् ९७३ ई०, त्रिवेद सन् ९६८ ई० = शक ८९० देते हैं। राज्य काल दत्त, विलसन, पीर हसन, ट्रोयर २ वर्ष तथा पण्डित १ वर्ष ११ मास १३ दिन देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्य काल ४ वर्ष तथा नाम त्रिभुवन गुप्त दिया गया है।

त्रिभुवन गुप्त की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है। उसके एक ओर आसनस्थ देवी है। उसके बायें ओर 'थ्रि' तथा दक्षिण तरफ 'भुव' (न) टंकणित है। दूसरी तरफ दण्डायमान राजा है। तथा 'गुप्त' शब्द टंकणित है। कनिंघम मिडिवल क्याइम आफ इण्डिया, प्लेट : ४।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३१३ में 'स्तया' का पाठभेद 'स्तथा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१३ सर्व श्री दत्त अभिषेक काल कलि ४०७६ = शक ८९७ = लौकिक ४०५१ = सन् ९७५ ई०;

स्तीन लौकिक ४०५१ मार्गशीर्ष मुक्ल पक्ष ५=सन् ९७५ ई०; पण्डित सन् ९७६ ई०; विलसन लौ० ४०५१ वर्ष १ मास=सन् ९९६ ई० १० वाँ मास, ट्रोयर सन् ९७८ ई० २ मास=लौकिक ४०५१, कनिंघम लौ० ४०५१=सन् ९७५ ई०, (१) डाइनास्टिक हिस्टॉरी आफ इण्डिया सन् ९७५ ई०, पीर हसन विक्रमी संवत् १०४०=सन् ९८३ ई०; त्रिवेद सन् ९७२ ई०=शक ८९४; सी० एम० डफ० सन् ९७५ ई०, तथा राज्यकाल दत्त तथा पण्डित ५ वर्ष, विलसन ४ वर्ष ३ मास, और पीर हसन ५ वर्ष ४ मास देते हैं। राजतरंगिणी संग्रह में राज्यकाल ५ वर्ष दिया गया है। ट्रोयर ४ वर्ष ४ मास देते हैं।

आइने अकबरी ने नाम भीम कन्त तथा राज्यकाल ४ वर्ष ३ मास २० दिन दिया है।

भीम गुप्त की एक ताम्र मुद्रा प्राप्त हुई है उसके मुख्य भाग पर लक्ष्मी बायें पार्श्व में 'भी' तथा दक्षिण पार्श्व में 'मगु', पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'प्त' टंकणित है। सब अक्षर मिला देने से भीम गुप्त नाम बन जाता है। (सी० एम० आर० : १५ : ३ : १२)

समसामयिक घटनाएं :— त्रिभुवन :—

सन् ९७३ ई० धर्मदेव भिक्षु नालन्दा का चीन सम्राट् द्वारा आदर सत्कार। पीरी या पिरे गुलाम अलप्तगीन सुल्तान गजनी तथा विग्रहराज द्वितीय चाहमान राजा हुआ। तैल (द्वितीय) सन् ९७१ ई० ९९७ ई०) ने करक्रक राष्ट्रकूट के विरुद्ध विद्रोह और कल्याणी में चालुक्य वंश की स्थापना किया। जटाछोड भीम युद्ध में दानार्णव को पराजित कर स्वयं वेंगी का राजा तथा उत्तम चोल राजा हुआ। (सन् ९७३-१८५ ई०)। अलबेरुनी का काल (सन् ९७३-१०४८ ई०)। सन् ९७४ ई० तैल ने मारसिंह गंग को पराजित किया। पीरी ने सुबुक्तगीन के साथ गजनी पर आक्रमण कर भारतीय सेना को पीछे हटाया। हलायुध ने मुंज परमार के लिये मृत संजीवनी की रचना की। (सन् ९७४-९९५ ई०)। राछमल्ल या राजमल्ल पश्चिमी गंग का राजा हुआ। (सन् ९७४-९८५ ई०)। जरोपोल्क (प्रथम) रूस का राजा हुआ। बेनी केस (सप्तम) पोप हुआ। मुंज अपर नाम वाक्पति पुत्र हर्षदेव परमार राजा हुआ। दशरूपक कवि का सम्भावित काल। सन् ९७५ ई० त्रिभुवन काश्मीरराज मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष पंचमी को दिवंगत हुआ।

समसामयिक घटनाएं— भीमगुप्तः

सन् ९७५ ई० में वेनडिक्ट (सप्तम) पोप हुआ। एडवर्ड दी मार्टायर इंगलैण्ड का राजा हुआ। विजय सिंह ने भुवन-सुन्दरी नाटक लिखा। युवराज देव (द्वितीय) पुत्र लक्ष्मणराज कलचुरी, चेदि राजा का स्थिति काल। सन् ९७६ ई० चीन-त्सुंग चीन सम्राट् शुंगवंश के पश्चात् हुआ। मन्सूर (प्रथम) समानी की शौवाल ११ को मृत्यु। उसका पुत्र अबुल कासिम नूह राज्य प्राप्त किया, जिसकी मान्यता खलीफा उत्ताइल्लाह ने दी। सन् ९७७ ई० शक्तिकुमार गुहिल मेवाड़ राज का काल। वज्रदमन ने ग्वालियर पर आक्रमण किया। सुबुक्तगीन गुलाम अलप्तगीन गजनी के सिंहासन पर बैठा तथा पीरी ने अधिकार प्राप्त किया। पीरी पदच्युत किया गया और सुबुक्तगीन गजनी का शासक सामानी के अन्तर्गत रहा। परन्तु कुछ समय पश्चात् स्वतंत्र शासक हो गया। सन् ९७८ ई० भास्कर रविवर्मा का तामिल अधिकार पत्र (सन् ९७८-१०३६ ई०)। चामुण्ड राय ने चामुंड पुराण की रचना की। इथेलरेड इंगलैण्ड का राजा हुआ। क्रु-ल्कु-मेस तथा सुम-याँ पूर्व से मध्य तिब्बत लौट आये। सन् ९७९ ई० परमेश्वर वर्मा व चम्पा का नाविक अभिमान। जैपाल ने गजनी पर आक्रमण किया। सन्धि हुई। दिन्ह-हो-लिन्ह अनामा सामन्त की मृत्यु। महेन्द्र पंचम लंका का राजा हुआ। (सन् ९७९-१०२७ ई०) सन् ९८० ई० असितदीपांकर का जन्म। वल्दी मीयर दी ग्रेट रूस का राजा हुआ। वाल प्रसाद राष्ट्रकूट कुल हस्ति कुण्डी का राजा हुआ। शैलेन्द्र साम्राज्य ने

तस्मिन्नवसरे वृद्धः फल्गुणोऽपि व्यपद्यत ।
निगूढक्रौर्यदौःशील्या दिद्दा यद्गौरवादभूत् ।।३१४।।

३१४. उसी समय वृद्ध फल्गुण भी दिवंगत हो गया, जिसके गौरव से दिद्दा की क्रूरता एवं दु:शीलता निगूढ़ (छिपी) रहती थी ।

बभूव साऽथ सुस्पष्टदुष्टचेष्टाशतोत्कटा ।
भ्रष्टवक्त्रपटा मत्तदन्तिमूर्तिरिवोत्कटा ।।३१५।।

३१५. वह मत्त हाथी को उत्कट मूर्ति सदृश, मुख वस्त्र भ्रष्ट (हटा) कर सैकड़ों सुस्पष्ट दुष्ट चेष्टायें करने लगी ।

महाभिजनजातानामपि हा धिङ् निसर्गतः ।
सरितामिव नारीणां वृत्तिर्निम्नानुसारिणी ।।३१६।।

३१६. 'हा धिक्कार है ?' कि महाभिजनोत्पन्न नारियों की प्रवृत्ति निसर्ग से सरिताओं के समान निम्नगामिनी होती है ।

स्रोतोधिराज्यमधिगम्य विराजमानात्सिन्धोः प्रसूय कमलाल्पपयोनिकेते ।
जाते सरस्यविरतं जलजे प्रसक्ता नार्यो महाभिजनजा अपि नीचभोग्याः ।।३१७।।

३१७. नदियों का अधिराज्य प्राप्तकर विराजमान सिन्धु से उत्पन्न कमला[1] (लक्ष्मी) अल्प पय के निकेत सरोवर से संजात जलज (कमल) में निरन्तर प्रसक्त रहती है । इसी प्रकार महाभिजनोत्पन्न नारियाँ भी नीच भोग्य होती हैं ।

चीन सम्राट् के पास दूत भेजा । शान्ति वर्मा पुत्र पित्तुग रट्ट सामन्त सौन्दत्ती (प्रथम शाखा); कार्तवीर्य नन्न रट्ट सामन्त सौन्दत्ती (द्वितीय शाखा) तथा वज्रहस्त अन्यांक भीम गंग का राजा हुआ । (सन् ९८०-१११५ ई०) सुबुक्तगीन ने वुस्त (विस्त) लिया । सन् ९८०-९८१ ई० में भीमगुप्त की वन्दी-अवस्था में हत्या ।

पादटिप्पणी :

३१५ सूक्ति संग्रह का २३६ वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

३१६ सूक्ति संग्रह का २३७वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

३१७ सूक्ति संग्रह का २३८वाँ श्लोक है ।

३१७ (१) कमला : कमला का अर्थ लक्ष्मी होता है । कमल पुष्प लक्ष्मी को अत्यन्त प्रिय है उससे उनकी पूजा की जाती है । समुद्र मन्थन से निकले चौदह रत्नों में एक रत्न लक्ष्मी हैं ।

(२) जलज : यह एक संकेत है । जिसका तात्पर्य 'जडज' अर्थात् मूर्ख से उत्पन्न हुआ माना गया है । तुलनीय : रा० : ४ : १०, ७ : ११०८

मर्यादा शील गम्भीर समुद्र से उत्पन्न लक्ष्मी (कमला) कमल के स्नेह के कारण समुद्र का त्याग-कर अमर्यादित क्षुद्र कमल सरोवर में निवास कर लेती है ।

खशस्य वद्दिवासाख्यपर्णोत्सग्रामजन्मनः ।
बाणस्य सूनुस्तुङ्गाख्योऽविशन्महिषपालकः ॥३१८॥

३१८. पर्णोत्स स्थित वद्दिवास नामक ग्राम में बाण नामक खश का पुत्र तुंग था। जोकि विश (प्रजाजन) के भैंसों का चरवाहा था।

प्रविष्टो जातु कश्मीराँल्लेखहारककर्मणा ।
सुगन्धिसीहप्रकटनागाट्टयिकषण्मुखैः ॥३१९॥

३१९. वह किसी समय सुगन्धि सीह, प्रकट, नाग, अट्टयिक, षण्मुख, नामक पाँच भाइयो के साथ काश्मीर में प्रविष्ट हुआ।

पञ्चभिर्भ्रातृभिः सार्धं सांधिविग्रहिकान्तिके ।
देव्या दृग्गोचरं यातो हृदयावर्जकोऽभवत् ॥३२०॥ तिलकम्॥

३२०. लेखहारक के कार्य से जब वह सान्धिविग्रहिक के पास गया था तो देवी (रानी दिद्दा) ने उसे देखा और रानी के हृदय को आर्कषित किया।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१८ में 'जन्मनः' का पाठभेद 'वासिनः' 'विशं म' का 'विशन्म' तथा 'वद्दिवास' के लिये पार्श्व टिप्पणी 'बोदोल' ग्राम लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१८ (१) वद्दिवास : बोदोल ग्राम है। यह प्रसिद्ध ग्राम है। पीर पन्तसल पर्वत के दक्षिण वर्तमान बोदोल या बुदिल ग्राम है। यह अनस नदी की ऊपरी शाखा नदी पर स्थित है। इसके नाम से एक पास किंवा दर्रा है। यह पर्वतीय मार्ग काफी चलता है। (तुलनीय ड्यू : जम्मू १३७ : ५२४) स्तीन ने शंका प्रकट की है कि बुदिल ही वद्दिवास है। क्योंकि यह स्थान बहुत दूर प्रुन्त्स में पड़ता है जो काश्मीर उपत्यकाको उत्तुंग पर्वत माला से अलग करता है। कनिंघम ने इसे 'बदवाल' किंवा 'वद्वास' काश्मीर के दक्षिणी एक पर्वतीय रियासत की तालिका में दिया है। श्री स्तीन को वदबाल स्थान नहीं मिल सका। उनका मत है कि कनिंघम का तात्पर्य 'बुदिल' से ही है। (स्तीन टिप्पणी रा० : ६ : ३१८-३२०)

(२) तुंग : तुंग का प्रारम्भिक जीवन पहाड़ियों मुख्यतया गूजरों से मिलता है। गूजरों की आबादी पर्वतीय क्षेत्रों में फैली है। प्रून्त तथा समीपवर्ती जिलों से काश्मीर में वे अपने भैंसों, पशुओं तथा ढोरों के साथ आते हैं। वे शिकारी चीट्टीरसा आदि विश्वासपात्र कार्यों में लगते थे। वे अत्यंत विश्वासपात्र माने जाते थे। गूजरों का भी कार्य अब नवीन प्रगति के कारण बदल गया है। वे घरों में रहने लगे हैं। तथापि मैंने देखा है कि शीतकाल में वे पर्वतों से उतर कर मैदानों में चले आते हैं जहाँ तुषारपात की कम सम्भावना रहती है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३१९ में 'कश्मीरा' का पाठभेद 'काश्मीरा' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३१९ (१) लेखहारक : आज अदालतों के खासिद के समान पद होता है। उनका काम चिट्ठी-पत्री ले जाना था। आजकल के हरकारे के समान थे। हर्षचरित में भी लेखहारक का उल्लेख इसी अर्थ में किया गया है।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२० में 'सान्धिविग्रहि' का पाठ-

रहःप्रवेशितो दूत्या स भाव्यर्थबलाद्युवा ।
संभुक्तभूरिजाराया अपि तस्याः प्रियोऽभवत् ॥३२१॥

३२१. भावी अर्थबल से दूती द्वारा एकान्त में प्रवेशित वह युवा, प्रचुर जारभोगिणी उस (रानी) का भी प्रिय हो गया ।

तुङ्गानुरागिणी राज्ञी पापा लज्जोज्झिता ततः ।
रसदानेन वैमुख्यभाजं भुय्यमघातयत् ॥३२२॥

३२२. तुगांनुरागी पापी रानी ने लज्जा त्यागकर, विमुख भुय्य को विषदान द्वारा हत करा दिया ।

धिङ्निर्विचारान्कुपतीन्येषां विषमचेतसाम् ।
फलशून्या स्तुतिस्तोषे दोषे प्राणधनक्षयः ॥३२३॥

३२३. निर्विचारी कुपतियों को धिक्कार है, विषयचेता जिनका तोष होनेपर, फल शून्य स्तुति और दोष के होने पर, प्राण एवं धन का क्षय होता है ।

रक्कजो देवकलशो वेलावित्तः कृतस्तया ।
भुय्याधिकारे कौट्टन्यमाचरन्निस्त्रपो विटः ॥३२४॥

३२४. कौट्टन्य आचरण करते हुए निस्त्रप, विट, त्रेलावित्त, रक्कपुत्र देवकलश को उसने भुय्य के अधिकार पर किया ।[1]

येऽपि कर्दमराजाद्या वीरा द्वारादिनायकाः ।
तेऽपि कौट्टन्यमभजन्नन्येषां गणनैव का ॥३२५॥

३२५. द्वारादिनायक कर्दमराज आदि जो वीर थे, वे भी कौट्टन्य करते थे । अन्यों की गणना ही क्या ?

भेद 'सन्धिविग्रह' तथा 'सन्धिविग्रहि' तथा 'कांतिके' का 'कान्तरे' तथा श्लोक के अन्त में 'तिलकम्' लिखा मिलता है ।

पाठभद :

श्लोक संख्या ३२३ में 'स्तोषे' का पाठभेद 'स्तो-षो दधे' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३२३ सूक्ति संग्रह का २३९वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक संख्या ३२४ में 'कौट्टन्यमा' का पाठभेद 'कौट्टन्यामा' तथा 'विट' का 'विटा' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३२४ (१) तुलनीयः रा० : ६ : २९६ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२५ में 'कौट्टन्य' का पाठभेद 'कौटिल्य' तथा 'कौट्टिन्य' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३२५ (१) कौट्टिन्य = स्त्रियों को फँसाकर जार के पास ले जाने वाली अथवा पुरुषों को स्त्रियों के

चतुष्पञ्चानि वर्षाणि तिष्ठन्नृपगृहे शिशुः ।
भीमगुप्तोऽभवद्यावत्किंचित्प्रौढीभवन्मतिः ॥३२६॥

३२६. चार पांच वर्षों तक नृप गृह में रहते हुए (वह) शिशु भीमगुप्त कुछ प्रौढ़ मति हो गया था ।

राज्यव्यवस्था यावच्च पितामह्याश्च वृत्तयः ।
दुःस्थिताः प्रत्यभासन्त संस्थाप्यास्तस्य चेतसि ॥३२७॥

३२७. दुःखित राजव्यवस्थाएँ एवं पितामही की वृत्तियां, उसके चित्त में सुस्थित (सुधार) करने योग्य प्रतीत हुईं ।

अङ्गशीलविहीनाया निर्घृणाया निसर्गतः ।
तावन्नेयधियस्तस्याः स चिन्त्यः समपद्यत ॥३२८॥

३२८. अंग एवं शील विहीन तथा निसर्ग से निर्दयी, चंचल चित्त, उस रानी के लिये वह (शिशु) चिन्ता का विषय हो गया ।

अभिमन्युवधूस्तं हि चक्रे गूढप्रवेशितम् ।
महाभिजनजं पुत्रं तस्मात्सोऽभूत्तथाविधः ॥३२९॥

३२९. अभिमन्यु वधू ने महाभिजनोत्पन्न उसे गुप्त रूप से लाकर पुत्र बनाया था, अतएव वह उसी प्रकार (कुलीन) हुआ ।

सा देवकलशेनाथ दत्तमन्त्रा विशङ्किता ।
त्रपोज्झिता स्पष्टमेव भीमगुप्तमबन्धयत् ॥३३०॥

३३०. देवकलश द्वारा मन्त्रणा प्राप्तकर, विशंकित, उसने निर्लज्ज होकर, स्पष्ट रूपेण, भीमगुप्त को बँधवा लिया (बन्दी बनाया) ।

पास ले जाने वाली स्त्रियों को कुट्टनी कहते हैं । दिद्दा रानी स्वयं स्त्री थी अतएव वह पुरुष चाहती थी । पुरुष को फँसाकर लाने वाले लोगों को कौट्टिन्य कर्मकर्ता कहा जाता था । कुट्टनी का अपभ्रंश कुटनी है । कुट्टनी मतम् में इस विषय पर खूब चर्चा की गयी है । क्षेमेन्द्र ने कुटनी की परिभाषा की है । (समय मातृका : १ : ४०-४५) गणिका वृत्ति संग्रह : ३०१ ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३२८ में 'चिन्त्यः' का पाठभेद 'चिन्त्याः' तथा उक्त श्लोक के पश्चात् श्रीदुर्गा प्रसाद के संस्करण में 'तिलकम्' मुद्रित है ।

पादटिप्पणी :

३२८ (१) अंग एवं शील : दिद्दा की अंग विहीनता अर्थात् लङ्गड़पन की ओर कल्हण ने संकेत किया है । वह अंग विहीन तो थी ही साथ ही शील विहीन, निर्दयी, एवं चंचल चित्त होने के कारण उसमें कोई गुण शेष नहीं रह गया था ।

पादटिप्पणी :

३३० (१) चोन का उदाहरण : इतिहास में अपने पुत्र तथा पौत्रों को अपनी पिपासा शान्ति निमित्त

निगूढे नन्दिगुप्तादिद्रोहे लोकस्य योऽभवत्।
संदेहः स तया तेन व्यक्तकृत्येन वारितः ॥३३१॥

३३१. निगूढ़ (बन्दी) नन्दिगुप्त आदि के द्रोह (वध) के विषय में लोगों को जो सन्देह था, उस रानी ने उस व्यक्त कृत्य द्वारा वारित (दूर) कर दिया।

दिद्दा (सन् ९८०-९८१—१००३ ई०)

ताभिस्ताभिर्यातनाभिर्भीमगुप्तं निपात्य सा।
षट्पञ्चाशेऽभवद्वर्षे स्वयं क्रान्तनृपासना ॥३३२॥

३३२. तत् तत् यातनाओं द्वारा भीमगुप्त की हत्याकर छप्पनवें वर्ष वह स्वयं नृपासनासीन हो गयी।

मारने का इसी तरह का उदाहरण उत्तरी चीन प्रस्तुत करता है। 'वीं' वंश की विधवा रानी 'हूँ' थी। उसने अपने पुत्र को विष देकर उत्तरी चीन पर शासन किया। राजा को कठपुतली बनाकर शासन सूत्र अपने हाथों में रखती थी। राज्याधिकारी उससे तंग आगए थे। उसे जल में डुबोकर मार डाले। रानी धर्मभीरु बौद्ध थी। उसने प्रसिद्ध चीनी पर्यटक सुंग-युन तथा हिसंग (सन् ५१८—५२२ ई०) को गान्धार से महायान पन्थी बौद्ध ग्रन्थ लाने के लिए भेजा था।

चीन का दूसरा उदाहरण तंग इतिवृत्त में मिलता है। व-त्सं-तीन रानी दिद्दा तुल्य चीन की रानी थी। उसने अपनी इच्छा पूर्ति में बाधक जान अपने पुत्र की हत्या करा दी। दूसरे पुत्र को सिंहासन से उतार कर स्वयं अपने राज्य करने लगी। भीमगुप्त चार पाँच वर्ष नृपगृह में रहते हुए कुछ वयस्क हो गया था। राज्य की दुर्दशा तथा पितामही के दुश्चरित्रता का उसे ज्ञान हो गया था। उसने सुधार का कुछ प्रयास किया। रानी सतर्क हो गयी। उसका मन सशंकित हो उठा। भीमगुप्त उच्चवंशोत्पन्न बालक था। अभिमन्यु की भार्या ने गुप्त रूप से उसे अपने पुत्र के बदले में प्राप्त किया था। रानी ने भीमगुप्त को देवकलश की राय से बन्दी गृह में डाल दिया।

जनता में सन्देह था कि नन्दिगुप्त आदि के साथ रानी ने द्रोह कार्य किया था। उसके इस प्रत्यक्ष कार्य से जनता ने सन्देह को सत्य मान लिया। बन्दी गृह में भीमगुप्त को नाना प्रकार की यातनाएँ दी गयी। वह लौकिक संवत् ४०५६ में कारागार में ही दिवंगत हुआ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३२ में 'ऽभवद्व' का पाठभेद 'भवेद्व' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३३२ सर्व श्री कल्हण अभिषेक काल ४०५६; दत्त कलि ४०८१ = शक ९०२ = लौकिक ४०५६, सन् ९८० ई०, स्तीन लौकिक ४०५६ = सन् ९८० -९८१ ई०, पण्डित सन् ९८१ ई०, सी. एम. डफ. सन् ९८० ई०, विलसन ४०५५ वर्ष ४ मास = सन् १००० ई० १ मास, ट्रोयर सन् ९८२ ई० ६ मास - लौकिक ४०५६, कनिंघम लौ० ४०५६ = सन् ९७९ ई०, डाइनास्टिक हिस्टॉरी आफ इण्डिया सन् ९८० ई०, तथा पीर हसन विक्रमी संवत् १०४६—९८९ त्रिवेद सन् ९७७ ई० एवं शक ८९९; देते हैं। तथा राज्यकाल पण्डित २२ वर्ष ९ मास ३ दिन, दत्त २८ वर्ष, ट्रोयर २४ वर्ष ३ मास, विलसन २३ वर्ष छह मास, तथा पीर हसन १८ वर्ष ४ मास ८ दिन, आइने अकबरी २३ वर्ष ८ मास, तथा

राजतरंगिणी संग्रह २३ वर्ष देती है।

दिद्दा की एक ताम्र मुद्रा मिली है। उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ लक्ष्मी तथा वाम पार्श्व में 'दि' तथा 'क्षेम', एवं पृष्ठ भाग की तरफ दण्डायमान राजा तथा गुप्त टंकणित है।

समसामयिक घटनाएँ :—

सन् ९८२ ई० में अनुवादकों का एक प्रतिष्ठान चीन ने बनाया। उसमें तीन भारतीय मुख्य थे। अनुवादक संस्थान ने दो सौ से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद किया। तो हो-अन अनामी सामन्त चम्पा से लूट की सम्पत्ति लेकर लौटा, चामुण्ड राय ने श्रवण-बेलगोला में बस्ती आबाद किया। चीन के अनुवादक प्रतिष्ठान ने दो सौ से अधिक ग्रन्थों का अनुवाद किया। इन्द्र रट्ट कन्दर्प पौत्र कृष्ण (तृतीय) का स्थिति काल। सन् ९८३ ई० चामुण्डराय ने श्रवण-बेलगोला में गोमतेश्वर की विशाल प्रतिमा प्रतिष्ठा किया। जैन खाँ या काबुल शाह गक्खर, काश्मीर से भाग कर सुबुक्तगीन गजनी की नौकरी किया। सन् ९८४ ई० में उदयन ने तत्त्व शुद्धि तथा लक्षण-वती की रचना की। जान (चौदह) तथा (पन्द्रह) क्रम से पोप हुए। सन् ९८५ ई० राज-राज (प्रथम) चोल नरेश हुआ। (सन् ९८५-१०१४ ई०) रक्कस पश्चिमी गंग का राजा हुआ। (सन् ९८५-१०२४ ई०)। कमितान इराक से निकाले गये सिन्ध में आबाद हुए। सन् ९८६ ई० में जैपाल शाही हिन्दू राज ने गजनी पर आक्रमण किया। सुबुक्तगीन ने कुशदार लेकर भारतीय सीमा पर आक्रमण किया। सन् ९८७ ई० में हरिसेन ने अपभ्रंश ग्रन्थ धम्म पारिख लिखा। कारवोजियन वंश का फ्रांस में अन्त। हुक कपेट फ्रांस का राजा हुआ। भास्कर शिव वर्मा (सन् ७८७-१०३६ ई०) सन् ९८८ ई० महिपाल (द्वितीय) पुत्र विग्रहपाल राजा हुआ। सुबुक्तगीन ने जैपाल पर आक्रमण किया। सुबुक्तगीन ने काबुल लिया। राजपाल प्रतिहार पुत्र विजयपाल कन्नौज का राजा हुआ। सन् ९८९ ई० विजय श्री हरि वर्मा (द्वितीय) विजय में राजा हुआ। लमगान में हिन्दू राजाओं के प्रति संघ को सुबुक्तगीन ने पराजित किया। सन् ९९० ई० जावा ने शैलेन्द्र राज्य पर आक्रमण किया। इल्का खाँ तुर्क ने बुखारा पर अधिकार किया। क्षेमेन्द्र कविका स्थिति काल (सन् ९९०-१०६६ ई०। सुबुक्तगीन अपने पुत्र महमूद गजनी को गजनी में बन्दी बनाकर रखा। सन् ९९१ ई० श्रीधर भट्ट ने न्यायकन्दली की रचना की। अभिनव गुप्त का रचना काल। (सन् ९९१-१०१५ ई०) सन् ९९२ ई० ने ली हो-अन अनामी सामन्त ने अनेक चमवन्दियों को मुक्त किया। जावा का दूत चीन सम्राट् के यहाँ उपस्थित हुआ। अमीर नूह सामानी सुबुक्तगीन के साथ हिरात गया, और खुरासान के सूबेदार अली सिमजूर को हटाया। सन् ९९३ ई० अभिनव गुप्त ने भैरव स्तोत्र की रचना की। रत्न ने अजित पुराण लिखा। शिहबुद्दौला बुघरा खाँ ने बुखारा के विरुद्ध सैनिक अभियान किया। परन्तु सुबुक्तगीन ने परास्त किया। सन् ९९४ ई० महमूद गजनी खुरासान का सेनापति बना। सन् ९९५ ई० मूलराज चालुक्य ने पुत्र चामुण्ड राय के पक्ष में राज त्याग किया। सिन्धुराज पुत्र हर्ष देव परमार राज का स्थिति काल। अबू अली सिमजूर गुरगान से चलकर महमूद को निशापुर में परास्त किया। तत्पश्चात् अदू अली तथा फाइक दोनों सुबुक्तगीन और महमूद से तूस में पराजित हो गये। सन् ९९६ ई० तैलं (द्वितीय) का अन्तिम ज्ञात समय। सन् ९९६ ई० सुबुक्तगीन की सावान मास में मृत्यु। इसमाइल पुत्र सुबुक्तगीन सुल्तान सन्याश्रम चालुक्य (सन् ९९७-१००८ ई०)। अपराजित पुत्र विज्जद, शिलाहार वंश उत्तरी कोंकण। अमीर नूर (द्वितीय) सामानी की मृत्यु। उसका पुत्र अबुल-हिर्स-मन्सूर उत्तराधिकारी हुआ। जून मास सन् ९९८ ई० महमूद गजनी सुल्तान बना। समनी वंश का अन्त। सन्

९९९ ई० जैपाल हिन्दू शाही राजा ने लाहुर का राज्य लिया। दुर्लभराज चाहमान राजा हुआ। राज-राज ने जटाछोड़ भीभसे बेंगी राज जीता। उसका पुत्र शक्तिवर्मा बेंगी राज्य का शासक हो गया। इसमाइल गजनी से निष्कासित तथा महमूद गजनी ने बलख हिरात तथा खुरासान लिया। समनियों को अलकादिर बिल्लाह बुखारा से निकाला। खलीफा ने महमूद गजनी को मान्यता दी। महमूद ने स्वतंत्रता घोषित कर बलख को राजधानी बनाया। महमूद गजनी ने प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करने की प्रतिज्ञा की। अबू-नासिर सार घरजिस्तान ने महमूद की अधीनता स्वीकार की। शक्तिवर्मा (प्रथम) पूर्वीय चालुक्य का राजा हुआ। (सन् ९९९-१०११ ई० सन् १००० ई० शोढ्ढल कोकण राजकवि ने उदयसुन्दरी की रचना की। कोकल देव (द्वितीय) पुत्र युवराज देव (द्वितीय) कलचुरी चेदिराज का स्थिति काल। महमूद ने निशापुर पर अधिकार किया। खलीफा के खिलाफ महमूद ने सिजिस्तान पर आक्रमण किया। महमूद अबुल अब्बास फैजल को हटाकर अहमद इब्न हसन मैमन्दी को वजीर बनाया। सिन्धुराज परमार के राज्य का अन्त। उग्रभूति, जगधर, चिच्चुभट्ट का काल। महमूद ने प्रथम आक्रमण भारत पर किया। पद्मगुप्त अथवा परिमल ने नवसाहसांक चरित की रचना की। धनिक कवि का सम्भावित काल। चोलराज राज ने भूमि सर्वेक्षण आरम्भ किया। भीमरथ महाभाव गुप्त (द्वितीय सन् १०००-१००५ ई०) भोज परमार राजा हुआ। भोजदेव धारका (सन् १०००-१०५५ ई०) ग्रन्थ रचना काल। सन् १००१ ई० जयवर्मा कम्बुज की मृत्यु। महमूद ने प्रथम सैनिक आक्रमण भारत पर किया। जयपाल को महमूद गजनी ने पराजित किया। गण्डरादित्य चोल पत्नी सेम्बियम महादेवी की मृत्यु। धर्मदेव नालन्द भक्षु का चीन में निर्वाण। शैलेन्द्र राजा ने जावा के बिना अवरोध किये चीन सम्राट् के पास दूत भेजा। सन् १००२ ई० महमूद गजनी ने सीस्तान विजय किया। जैपाल पराजय की ग्लानि से स्व-शरीर दाह किया। सन् १००३ ई० दिद्दा की भाद्र शुक्ल अष्टमी को मृत्यु हुई। श्री चूड़ामणि वर्म देव शैलेन्द्र ने दो दूत मण्डल चीन सम्राट् के यहाँ भेजा। महमूद सिजिस्तान में खलफ द्वारा शासक घोषित किया गया। मुहम्मद ने खलफ इब्न अहमद को ताक के दुर्ग में घेर कर बन्दी बनाया। मुहम्मद सीजिस्तान लेकर खलफ को जूज़ानान दिया।

चीन की साम्राज्ञी वीवंशीय 'हूँ' ने उत्तरी चीनपर पुत्र को विष द्वारा मारकर एक कठपुतली शासक को गद्दी पर बंठाकर शासन किया। रानी दिद्दा की तुलना उससे की जा सकती है। तथापि इस सामाज्ञी ने दिद्दा के समान पुण्य कार्य किये थे। बौद्ध धर्मानुयायी थी। उसने सुग-चुन तथा हिन-सेंग को (सन् ५१८-२२ ई०) भारत में महायान संबंधीं ग्रन्थ अफगानिस्तान तथा गान्धार लाने के लिये भेजा था। तंग राज वंश के इतिहास ऊ-त्से-तीन रानी का चरित्र दिद्दारानी से मिलता है। उसने अपने पुत्र की हत्या की थी। अपने दूसरे पुत्र को सिंहासन से उतार दिया था। स्वयं अपने को साम्राज्ञी सन् ६९० ई० में घोषित कर दिया था। उसने विद्रोह को दबाया था। अपने विरोधियों का मस्तक छिन्न करवा दिया था। उसने अपने सब कामचारों को सन्तुष्ट किया था। उसने एक युवक भिक्षु को यंग देव स्थान में नियुक्त की थी। उसे अधिकार दिया था। वह चाहे जब राजप्रासाद में रात-दिन कभी इच्छानुसार प्रवेश पा सकता था और प्रासाद से बाहर जा सकता था। उसकी पवित्रता उसके क्रूरता तथा राग के साथ ही साथ बढ़ती गयी। उसकी धार्मिकता इतनी बढ़ गयी थी कि उसने सन् ७७२ से ७७५ ई० के मध्य लेगमेन के गुफा में बृहद् बुद्ध की मूर्ति बोधिसत्व, लोकपाल, तथा भिक्षुओं के साथ निर्माण

प्रवृद्धरागया राज्ञ्या दत्तोद्रेको दिने दिने।
सर्वाधिकारी तुङ्गोऽथ बभूवाधरिताखिलः ॥३३३॥

३३३. प्रवृद्धराग रानी द्वारा प्रतिदिन वृद्धि प्राप्ततुङ्ग अखिल जनों को[1] अधरित (दबा) कर सर्वाधिकारी होगया।

सभ्रातृकेन तुङ्गेन मीलिताः पूर्वमन्त्रिणः।
राज्यविप्लवमाधातुमयतन्त विरागिणः ॥३३४॥

३३४. भ्राता सहित तुङ्ग द्वारा च्युत एवं विरागी पूर्व मन्त्रियों ने राज विप्लव करने का यत्न किया।

तेऽथ संमन्त्र्य कश्मीरानानिन्युः क्रूरपौरुषम्।
उग्रं विग्रहराजाख्यं दिद्दाभ्रातुः सुतं नृपम् ॥३३५॥

३३५. वे मन्त्रणा करके दिद्दा के भ्रातृ पुत्र, क्रूर पौरुष एवं उग्र नृप विग्रहराज को काश्मीर ले आये।

मुख्याग्रहारान्स प्राप्तो विधातुं राज्यविप्लवम्।
धीमान्प्रायोपवेशाय द्रुतं प्रावेशयद्द्विजान् ॥३३६॥

३३६. आकर उस बुद्धिमान् ने राज्य विप्लव करने के लिये मुख्य अग्रहारों में विप्रों को शीघ्र ही प्रायोपवेशन हेतु प्रेरित किया।

विहितैक्येषु विप्रेषु लोकः सर्वोऽपि विप्लुतः।
अन्वियेषान्वहं तुङ्गं तत्र तत्र जिघांसया ॥३३७॥

३३७. विप्रों के एक बद्ध होने पर, क्रुद्ध सभी लोग मारने की इच्छा से तुङ्ग[1] को यत्र तत्र प्रति दिन तत् तत् स्थानोंपर, अन्वेषित करने लगे।

करायी थी।

पाठभेद :

श्लोक सं० ६३३ में 'धरिता' का पाठभेद 'धारित्रा' एवं 'दाधिता' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३४ में 'सभ्रातृकेण' का पाठभेद 'सभ्रातृकेन' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३६ में 'प्रायोजय' का पाठभेद 'प्रावेशय' तथा 'प्रायोपवेशाय' के लिये 'प्रायः' 'भोजन-त्यागः' पार्श्व टिप्पणी में लिखा मिलता है।

पादटिप्पणी :

३३६ (१) प्रयोपवेशाय : द्रष्टव्यः रा० : ४ : ८२, ९९, ५ : ४६८, : ६ : २५,।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३८ में 'द्वारे' का 'द्वार' तथा 'द्वारो' का पाठभेद मिलता है।

कस्मिंश्चित्पिहितद्वारे तुङ्गं प्रच्छाद्य वेश्मनि ।
दिनानि कतिचिद्दिद्दा तस्थावास्कन्दशङ्किनी ।।३३८।।

३३८. आक्रमण की आशंका से दिद्दा ने कुछ दिनों तक किसी बन्द द्वार के वेश्म में तुंग को गुप्त रखा ।

तथा स्वर्णप्रदानेन सुमनोमन्तकादयः ।
ब्राह्मणाः समगृह्यन्त ततः प्रायो न्यवर्तत ।।३३९।।

३३९. उसने सुवर्ण प्रदान द्वारा सुमनोमन्तक आदि ब्राह्मणों को स्वपक्ष में कर लिये जिससे प्रायोपवेशन समाप्त हो गया ।

एवं तस्मिन्महाक्षेपे तया दानेन वारिते ।
ययौ विग्रहराजः स भग्नशक्तिर्यथागतम् ।।३४०।।

३४०. इस प्रकार उस महाक्षेप के उसके द्वारा दान से निवारित हो जाने पर भग्नशक्ति वह विग्रहराज जैसे आया था, वैसे (लौट) गया ।

अथ दार्ढ्यं समासाद्य तुङ्गाद्याः प्रभविष्णवः ।
शनैः कर्दमराजादीञ्जघ्नुर्विहितविप्लवान् ।।३४१।।

३४१. अनन्तर, दृढ़ता प्राप्तकर, तुंग आदि प्रभविष्णु (प्रभावशाली) लोगों ने धीरे-धीरे विप्लवकारी कर्दमराज आदि लोगों को मार डाला ।

सुलक्कनो रक्कसूनुस्तथाऽन्ये मुख्यमन्त्रिणः ।
रुष्टैर्निर्वासिता देशात्तुष्टैस्तैः संप्रवेशिताः ।।३४२।।

३४२. रुष्ट होकर, देश से निर्वासित किये गये, सुलक्कन, रक्क पुत्र तथा अन्य मुख्य मन्त्रियों को उन लोगों ने (पुनः) संप्रवेशित किया (बुलाया) ।

प्रवर्धमानवैरेण गूढदूतैर्विसर्जितैः ।
प्रायं विग्रहराजेन ब्राह्मणाः कारिताः पुनः ।।३४३।।

३४३. बढ़ते हुए वैर के कारण, विग्रहराज ने गुप्त दूतों को भेजकर, ब्राह्मणों को पुनः प्रायोपवेशन कराया ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३३९ में 'सुमनो' का 'स्वमनो' तथा 'मन्तका' का पाठभेद 'मत्तका' एवं 'मतुका' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४२ में 'सुलक्कनो' का 'संल्लकनो' 'रुष्टैः' का 'दुष्टैः' पाठभेद मिलता है ।

उत्कोचादित्सया विप्रा भूयः प्रायविधायिनः ।
लब्धस्थैर्येण तुंगेन संनिपत्यापहस्तिताः ॥३४४॥

३४४. उत्कोच ग्रहण करने की इच्छा से पुनः प्रायोपवेशनविधायी विप्रों को लब्ध स्थैर्य तुङ्ग ने आक्रमण कर भगा दिया ।

तेषां मध्ये वसन्गूढमादित्याख्यः पलायितः ।
हतो विग्रहराजस्य प्रियः कटकवारिकः ॥३४५॥

३४५. उनके मध्य गुप्त रूप से रहता हुआ विग्रहराज का प्रिय कटकवारिक आदित्य जो कि पलायित था, मारा गया ।

शस्त्रक्षतः प्रतीहारो वत्सराजाभिधः पुनः ।
न्यङ्कोतकादिभिर्धावञ्जीवग्राहमगृह्यत ॥३४६॥

३४६. शस्त्र क्षत एवं भागता हुआ, वत्सराज नामक प्रतिहार भी न्यंकोतक आदि के द्वार जीवित पकड़ लिया गया ।

ते स्वर्णाग्राहिणो विप्राः सुमनोमन्तकादयः ।
सर्वेऽपि बद्धास्तुङ्गेन कारागारं प्रवेशिताः ॥३४७॥

३४७. सुमनोमन्तक आदि स्वर्णग्राही, वे सब विप्र भी, तुङ्ग द्वारा बद्धकर, कारागार भेज दिये गये ।

राजपुरी अभियान

अथ फल्गुणनाशेन दृप्ते राजपुरीपतौ ।
तां प्रत्यारब्धिरभवत्क्रुध्यतां सर्वमन्त्रिणाम् ॥३४८॥

३४८. फल्गुण के नाश के कारण राजपुरीपति के दृप्त, (मदोन्मत्त) होने पर क्रुद्ध हुए मन्त्रियों ने उसके प्रति अभियान आरम्भ किया ।

पादटिप्पणी :

३४५ (१) कटकवारिक = इस शब्द के निश्चित अर्थ का पता नहीं चलता । श्री स्तीन ने इसे एक फेवरिट 'आफिसर' तथा श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने मूल शब्द ही उठाकर अनुवाद में रख दिया है ।

कटकवारिक सम्भवतः कटक राज अर्थात् राजकीय छाउनी किंवा शिविर के निरीक्षक के अन्तर्गत काम करने वाला था । कटक का अर्थ सेना होता है । कटक का अर्थ सैन्य शिविर अर्थात् छाउनी भी होता है । वारिक का अर्थ 'वारण' करने वाला होता है । इसका सरल अर्थ सेना को रोकने वाला अथवा सेना रोकने में समर्थ अधिकारी हो सकता है । इसका भाव यह भी हो सकता है कि एडवान्स करती हुई सेना की बाढ़ रोकने वाला फारवर्ड चलता सैनिक अधिकारी ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४७ में 'स्वर्णाग्रा' का पाठभेद

निपत्य संकटे वीरः पृथ्वीपालाभिधस्ततः ।
चक्रे राजपुरीराजः काश्मीरिकबलक्षयम् ।।३४९।।

३४९. राजपुरी के राजा वीर पृथ्वीपाल[1] ने संकट[2] में आक्रमण कर काश्मीरी सेना का क्षय कर दिया।

शिपाटको हंसराजो विपन्नौ तत्र मन्त्रिणौ ।
चन्द्राद्यैर्दुर्गतिर्दृष्टा मरणं यत्र भेषजम् ।।३५०।।

३५०. वहाँ शिपाटक और हंसराज मन्त्री मर गये और चन्द्रादि ने (वह)दुर्गति देखी, जिसका भेषज मरण ही था।

अथान्येन पथाऽकस्मात्तुङ्गः सार्धं सहोदरैः ।
कृत्स्नां राजपुरीं वीरः प्रविश्य सहसाऽदहत् ।।३५१।।

३५१. सहोदरों के साथ वीर तुङ्ग, अन्य मार्ग से अकस्मात् प्रवेश कर, समग्र राजपुरी को जला डाला।

ननाश तेनोपायेन पृथ्वीपालः स पार्थिवः ।
शेषाणां मन्त्रिणां सैन्यं प्राप मुक्तिं च संकटात् ।।३५२।।

३५२. उस उपाय से वह पार्थिव पृथ्वीपाल नष्ट हो गया और शेष मन्त्रियों का सैन्य संकट से मुक्त हुआ।

अबलः सन्स भूपालस्तुङ्गाय प्रददौ करम् ।
एवं कृतं तदा तेन नष्टस्यार्थस्य योजनम् ।।३५३।।

३५३. निर्बल होकर उस नृप ने तुंग को कर प्रदान किया, इस प्रकार उस समय उस (तुंग) ने नष्ट कार्य का योजन किया (बना लिया)।

'स्वर्णग्रा' तथा 'मन्तका' का 'मत्तका' एवं 'मतुका' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३४९ में 'काश्मीरिक' का पाठभेद 'काश्मीरक' मिलता है।

पादटिप्पणी :

३४९ (१) पृथ्वीपाल = इसका परिचय कल्हण ने नहीं दिया है।

(२) संकट = कुछ अनुवादकों ने संकट का अर्थ दर्रा या अंग्रेजी शब्द पास किया है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३५० में 'चन्द्राद्यैर्दु' का पाठभेद 'चन्द्राद्रेर्दु' तथा 'दुर्गतिर्द्दष्टा' का 'दुर्गतिंदृष्ट्वा' एवं 'भेषजम्' का 'भैषजं' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३५१ में 'सहोदरैः' का पाठभेद 'सहोदरः' मिलता है।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३५३ में 'तदा' का पाठभेद 'ततः', मिलता है।

प्रविशन्नगरं तुङ्गस्ततः स्वीकृतकम्पनः ।
चकार डामरग्रामसंहारं सिंहविक्रमः ।।३५४।।

३५४. तत्पश्चात् कम्पन पद स्वीकृत कर, नगर (श्रीनगर) में प्रविष्ट होते सिंहविक्रमी तुङ्ग ने डामर ग्राम समूहका संहार किया ।

दिद्दाऽप्युदयराजस्य भ्रातुः पुत्रं परीक्षितम् ।
चक्रे संग्रामराजाख्यं युवराजमशङ्किता ।।३५५।।

३५५. अशंकित दिद्दा ने भी भ्राता उदयराज के परीक्षित पुत्र सग्रामराज को युवराज पद प्रदान किया ।

सा हि सर्वाञ्शिशुप्रायान्पुरो भ्रातृसुतान्स्थितान् ।
परीक्षितुं मुमोचाग्रे पालेवतफलावलिम् ।।३५६।।

३५६. सम्मुख स्थित, शिशु प्राय सभी भ्रातृ पुत्रों की परीक्षा के लिये, उसने उनके समक्ष पालेवत (सेव) फल राशि क्षिप्त कर दी ।

शक्तः कियन्ति कः प्राप्तुं फलान्यत्रेतिवादिनी ।
साऽभवद्राजपुत्राणां तेषां कलहकारणम् ।।३५७।।

३५७. 'कौन कितना लेने में समर्थ है ?'—यह कहती हुई, वह उन राजपुत्रों के कलह का कारण बनी ।

गृहीताल्पफलाँल्लग्नप्रहाराँस्तान्ददर्श च ।
संग्रामराजं त्वस्वल्पफलभाजमविक्षतम् ।।३५८।।

३५८. प्रहार प्राप्तकर, अन्य फल ग्रहण किये, उनमें अविक्षत तथा अधिक फल प्राप्त संग्रामराजको देखा ।

अनन्तफलसंप्राप्तावक्षतत्वे च कारणम् ।
सविस्मयं तया पृष्टः स तामेवं तदाऽब्रवीत् ।।३५९।।

३५९. उसने विस्मय पूर्वक अनन्त फल प्राप्ति एवं अक्षत रहने का कारण पूछने पर, उससे, इस प्रकार कहा—

पादटिप्पणी :

३५६ (१) पालेवत = श्री स्तीन ने इसे सेव फल माना है । श्री रणजीत सीताराम पण्डित ने भी इसका अर्थ सेव ही किया है । काश्मीरी पण्डितों का विश्वास है कि पालवेत सेवरी फल का नाम है । मंख कोश भाष्य में 'पालवेत' का उल्लेख किया गया है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३५७ में 'कारणम्' का पाठभेद

अन्योन्यकलहव्यग्रानेतान्कृत्वा पृथग्वसन् ।
समवापं फलान्यस्मिन्न चाभूवं परिक्षतः ॥३६०॥

३६०. 'परस्पर कलह में व्यग्र कर पृथक् रहते हुए, फलों को प्राप्त किया और परिक्षत नहीं हुआ ।

व्यसनं संप्रवेश्यान्यान्स्थितानामप्रमादिनाम् ।
न काः क्लेशविहीनानां घटन्ते स्वार्थसिद्धयः ॥३६१॥

३६१. 'दूसरों को व्यसन में प्रविष्टकर स्थित अप्रमादी एवं क्लेशविहीनों की कौन स्वार्थ सिद्धियाँ नहीं होतीं ?'

श्रुत्वेति तस्य सा वाचमप्रमत्तत्वदूतिकाम् ।
भीरुर्नारीस्वभावेन राज्येऽमन्यत योग्यताम् ॥३६२॥

३६२. उसकी अप्रमत्तत्व[1] सूचक वाणी सुनकर, भीरु नारीस्वभाव के कारण उस (रानी) ने उसे राज्य (सिंहासन) योग्य समझा ।

शूरस्य लभ्यं शौर्येण भीरोर्भीरुतया यथा ।
कार्यं हि प्रतिभात्यन्तर्न भवेच्च तदन्यथा ॥३६३॥

३६३. जिस प्रकार शूर को शौर्य्य एवं भीरु को भीरुता से कार्य लभ्य प्रतीत होता है, अन्यथा उनमें अन्तर न होता :

काष्ठं वह्न्युज्झितमपि भवेच्छीतशान्त्यै कपीनां
लोम्नां शुद्ध्यै सलिलमनलश्चाग्निशौचैणकानाम् ।
जन्तोर्भावा विदधति यथा भाविनः कार्यसिद्धिं
तत्त्वं तेषां क्वचन सहजं वस्तुतो नास्ति किंचित् ॥३६४॥

३६४. अग्नि इसे तभी काष्ठ[1] कपियों (बन्दरों) की शीत शान्त करता है तथा अग्नि शौच एणक (मृग) के लोमभ शुद्धि में अग्नि सलिल का कार्य करता है ।

'कारिणीम्' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६१ में 'व्यसने' का पाठभेद 'व्यसनं'; 'सम्प्रवेश्या' का 'सम्प्रविश्या'; 'प्रमादिनाम्' का 'प्रसादिनां'; 'काः' का 'कः'; 'विहीनानां' का 'विहीनां'; पाठभेद मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६१. सूक्तिसंग्रह का २४० वाँ श्लोक है ।

पादटिप्पणी :

३६२ (१) अप्रमत्तत्व = सावधान किंवा जागरूक द्योतक वाणी ।

पादटिप्पणी :

३६३. सूक्तिसंग्रह का २४१ वाँ श्लोक है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६४ में 'यथा भाविनः' का पाठभेद 'यथा भावनं'; 'तत्त्वं' का 'तत्त्वे'; 'वस्तुतो' की 'वस्तुते' 'वस्तुता'; एवं 'अग्निशौचैणकानाम्' के लिए पार्श्व टिप्पणी में, 'अग्निशौचा मृगा अग्निमश्नन्ति' विषमूषकाः विषं च न विपद्यन्ते जीविता, लिखा मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६४ सूक्तिसंग्रह का २४२ वाँ श्लोक है ।

(१) काष्ठ : लकड़ी जो विना जले बन्दरों की शीत दूर कर उसे गर्मी पहुँचाती है, उसका उल्लेख

तस्यामेकान्नशीत्यब्दशुक्लभाद्राष्टमीदिने ।
देव्यां दिवं प्रयातायां युवराजोऽभवन्नृपः ॥३६५॥

३६५. उन्नासीवें वर्ष के भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन उस देवी के दिवंगत होने पर युवराज न्टप हुआ स्त्री संम्बन्ध से भूपाल को यह भुवनाद्भु त तृतीय परिवर्तन हुआ ।[1]

स्त्रीसंबन्धेन भूपालवंश्यानां भुवनाद्भुतः ।
तृतीयः परिवर्तोऽयं वर्ततेऽमुत्र मण्डले ॥३६६॥

३६६. इस मण्डल में स्त्री सम्बन्ध के कारण भूपाल वंशीय लोगों का संसार में अद्भुत यह तीसरा परिवर्तन है ।

निर्नष्टकण्टककुले वसुसंपदाढ्य श्रीसातवाहकुलमाप महीतलेऽस्मिन् ।
दावाग्निदग्धकुतरौ जलदाम्बुसिक्ते चूतप्ररोह इव केलिवने प्रवृद्धिम् ॥३६७॥

३६७. निर्नष्ट कण्टक कुल एवं वसु सम्पत्ति सम्पन्न इस महीतल पर उसी प्रकार श्री सात-[1] वाहन कुल प्रवृद्ध हुआ जिस प्रकार दावाग्नि से दग्ध कुतरु तथा जलद अम्बु से सिक्त केलिवन में चूत प्ररोह प्रवृद्ध होता है ।

कल्हण ने पुनः रा० : ८ : २६२७ में 'वानरेन्धन, रूप में किया है। उसे वानर का इन्धन कहा गया है। इसका अर्थ है कि वह एक प्रकार का काष्ठ था जो जलता नहीं था परन्तु बन्दर यदि उसके समीप पहुँचता था तो उसे शीत काल में भी पर्याप्त गरमी मिल जाती थी ।

मृग के सम्बन्ध में रा० : ५ : १५ द्रष्टव्य है।

श्री ट्रोयर ने हितोपदेश कथामुख का निम्नलिखित श्लोक उक्त श्लोक की पादटिप्पणी में उद्धृत किया है ।

आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ।
पञ्चैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥२७॥

ब्रह्मा ने (१) आयुष्य, (२) कर्म, (३) वित्त (४) विद्या तथा (५) निधन गर्भ से ही निर्धारित कर दिया है ।

अवश्यम्भाविनो भावा भवन्ति महतामपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाऽहिशयनं हरे ॥२८॥

महान् पुरुषों को भी संसार में अवश्यम्भावी सुख-दुःख, वैभव-दारिद्रय होते हैं। नीलकण्ठ भगवान् शिव को नग्न तथा भगवान् विष्णु को अहि अर्थात् शेष नाग पर शयन करना पड़ता है :

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६५ में 'न्नशीत्यब्द' का पाठभेद 'न्नशीताब्द' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६५ (१) उन्नासीवें : सप्तर्षि ४०७९ = सन् १००३ ही = विक्रमी १०६० = शक९२५ भाद्र शुक्ल अष्टमी ।

कल्हण ने कर्कोट वंश की राज्य प्राप्ति के कारण की ओर संकेत किया है। वह संकेत दुर्लभवर्धन तथा अनंगलेखा (रा० : ३ : ४८१) निर्जित वर्मा रानी सुगन्धा के सम्बन्ध (रा० : ५ : २५१) की ओर लक्ष्य करता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६६ में 'वंशानां' का पाठभेद 'वंश्यानां' मिलता है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६७ में 'निर्दिष्ट' का पाठभेद 'निष्पन्न' तथा 'सातवाह' का 'सालवाह' 'मालवाह'

अथ स मृदुतयान्तर्गूढधैर्यानुभावः सुखमवनिमशेषां दोष्णि संग्रामराजः ।
बिसकुलनिभशोभानिह्नुतप्राणसारः फणकुल उरगाणामीशितेव न्यधत्त ।।३६८।।

३६८ मृदुता के कारण अन्दर धैर्य प्रभाव को गुप्त रखने वाले उस संग्रामराज ने उसी प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी को बाहुपर धारण किया जिसप्रकार कमल पुंज सदृश शोभा तथा सामर्थ्य को छिपाये रखने वाले सर्पों के अधिपति फण समूह पर सम्पूर्ण पृथ्वी को ।

इति श्रीकाश्मीरिकमहामात्यचण्पकप्रभुसूनोः कल्हणस्य कृतौ राजतरङ्गिण्यां षष्ठस्तरङ्गः ॥ ६ ॥

अत्र वर्षचतुःषष्टौ मासेष्यर्धे दिनेषु च । अष्टस्वभूवन्भूपाला दश भूभोगभोगिनः ॥

इस प्रकार काश्मीर के महामात्य चण्पक प्रभु के पुत्र कल्हण विरचित राजतरंगिणी में छठवाँ तरंग समाप्त हुआ ।

'चूतप्र' का 'दतप्र' 'प्रवृद्धिम्' काः 'प्ररूढिम्' मिलता है ।

पादटिप्पणी :

३६७ (१) सातवाहन : लोहर वंश के पूर्व पुरुष थे । (रा० : ७ : १२८२) 'निर्नष्टकण्टक-कुले' तथा 'वसुसंवदाढये पातो' काश्मीर के लिये अथवा आनन्दकानन के अर्थ में प्रयोग किया है जिसमें काश्मीर की तुलना की गयी है ।

पाठभेद :

श्लोक सं० ३६८ में 'फणकुल' का पाठभेद 'फल-कुल', 'फणकुले' रा० : १०; ग्र० ३६९; आदितः रा० ९१, ग्रन्थः २६३३; राजानः १०; आदितः ९० ग्रन्थाणि ३३८, आदितः २६२८ राजानः **१०**, आदिः ९७; ग्रन्थानि ३६८ आदितः २६२६; संवत् १८७७ मिति जेठवदि २ वारः अतरवारः लिखकाश्ये मध्ये गंगा नदि ।

पादटिप्पणी :

३६८ (१) शेषनाग : सहस्र फण पर पृथ्वी धारण करते हैं । कमल दण्ड से उपमा दी गयी है ।

पाठभेद :

इति वाक्य में 'त्य चम्पक' का पाठ भेद 'त्यचम्पक' 'त्याचार्यक' तथा तरंग के पश्चात् लिखा मिलता है—लिखितश्चैष राजानकरत्नकण्ठेन' ।

आज जितनी राज तरंगिणियों की प्रतियों प्राप्त है । प्रायः सबका आधार राजानक रत्नकण्ठ की प्रति-लिपि है । इसका काल सत्तरहवीं शताब्दी दिया जाता है । सभी प्रतिलिपियों तथा राजतरंगिणी संग्रह में इतिपाठ के पश्चात् लिखा मिलता है ।

अत्र वर्षं चतुष्षष्टौ मासेऽप्यर्धे दिनेषु च ।
अष्टस्वभूवन् भूपाला दश भूभोगभागिनः ॥

'भोगभागिनाः' का पाठ भेद : 'भोगभोगिनः' मिलता है ।

चौंसठ वर्ष, एक मास, अर्धमास, आठ दिन में १० राजाओं ने भूमि का भोग किया ।

राजतरंगिणी संग्रह में राजाओं की संख्या १० तथा राज्यकाल ६४ वर्ष २३ दिन दिया गया है । आइने अकबरी टेबुल संख्या ७ के नीचे लिखा है—१० राजा, राज्यकाल ६४ वर्ष ३ मास ११ दिन ।

मूल्यांकन : दिद्दा रानी काश्मीर की अनोखी प्रतिभाशील चतुर शासिका हुई है । गृहनीति उसकी सर्वदा सफल रही । वैदेशिक नीति में उसने ध्यान ही नहीं दिया । सीमान्त पर हिन्दूराज थे । सीमान्त पर शाही राज्य था । जिसकी वह स्वयं कन्या थी । अतएव विजययात्रा आदि करने अथवा काश्मीर राज्य बढ़ाने की कोई सम्भावना नहीं थी । शाहीवंश की होने के कारण उसका उस वंश के प्रति स्नेह था । इस स्नेह यज्ञ की पूर्णाहुति उस समय होगाई जब काश्मीर राज्य को ही उसने शाही राजकुमार संग्राम

राज को युवराज बना दिया। वह उसकी मृत्यु के पश्चात् काश्मीर का राजा हुआ। वह अपने कामुक प्रवृत्ति दुश्चरित्रता तथा शक्ति संचय निमित्त उत्कट इच्छा होते हुए भी अपनी चातुरी से काश्मीर में शान्ति स्थापित रखा। उसने अपने विरुद्ध होने वाले सभी षड्यन्त्रों तथा विद्रोही को समयानुसार नीति एवं शक्ति दोनों से दबा दिया।

उसमें शासन करने का उत्साह तथा ओजस्विता पायी जाती है। उसकी कूटनीति कहीं भी असफल नहीं होने पायी है। वह स्वयं पंगु थी। वल्गा के पीठ पर बैठकर चलती थी फिर भी उसमें कार्य करने की इतनी शक्ति, सूझ तथा स्फूर्ति थी कि उसकी प्रशंसा करना ही होगा। पुत्रों तथा पौत्रों के साथ उसका क्रूरता पूर्ण व्यवहार अक्षम्य माना जायगा परन्तु काश्मीर में शान्ति स्थापित रखने में उसने जो सफलता पाई, उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ेगी। उसने कोई सुधार नहीं किया। स्मश्मान वैराग्य तुल्य पुत्र (अभिमन्यु) के मरने पर लगभग एक वर्ष तक पुण्य किया। धर्म की ओर रुचि रही परन्तु समय बीतते ही उसकी पुरानी पाशविक वृत्ति जाग उठती है। उसकी राजसभा एवं मन्त्रि परिषद् में सज्जन तथा दुर्जन दोनों पाये जाते है। जिस प्रकार के मनुष्यों की जब आवश्यकता हुई, उसने उनका उपयोग किया।

दिद्दा कायर नहीं थी। उसमें नारी भीरुता का भी दर्शन मिलता है। विप्लव काल में स्वयं राजधानी त्यागकर गयी नहीं। हाँ, राजा को सर्वदा सुरक्षित स्थानों पर भेजकर स्वयं डटी रहती थी। उसकी इस दृढ़ता ने उसके सेवकों का मनोबल कभी टूटने नहीं दिया।

उसके मार्ग में जो आया चाहे वह सज्जन हो या दुर्जन, कृतज्ञ हो अथवा अकृतज्ञ, वीर हो अथवा कायर उसने निःसंकोच उन्हें अपने मार्ग से हटाकर अपना पथ कभी कंटकाकीर्ण नहीं होने दिया। परन्तु जो उसके मार्ग में किसी प्रकार के कंटक सिद्ध न हुए उनपर उसने हाथ नहीं उठाया। यही कारण है कि उसके अनाचारी होने के बावजूद जनता में क्षोभ न फैला। वह शान्त रही। उसने उन ब्राह्मणों को भी नहीं छोड़ा जो प्रायोपवेशन को अपना साधन बना रखे थे। उन्हें उत्कोच देकर उसने पहले उन्हें पथ भ्रष्ट कर अपना कार्य निकाला तत्पश्चात् उन्हें ही बन्दी बनाकर दण्ड भी दिया। उसे जो कुछ करना होता था उसे दृढ़तापूर्वक निःसंकोच करती थी। उसकी इस दृढ़ता तथा आत्मविश्वास में उसकी सफलता का रहस्य छिपा है।

सीमांत पर मुसलिम शक्ति का उदय : दिद्दारानी का राज्य काल मुसलिम शक्ति के पश्चिम उत्तर में उदय का काल कहा जायगा। इस शक्ति के उदय के कारण कालान्तर में काश्मीर राजनीति पर विशेष प्रभाव पड़ा है। दिद्दारानी का राज्य काल सुबुक्तगीन तथा महमूद गजनी के उत्कर्ष का काल था। भारत को इसी काल में अपनी स्वतंत्रता के लिए खतरा पैदा हुआ।

अलप्तगीन का गुलाम सुबुक्तगीन था। अलप्तगीन ने बादशाह होते हुए भी अपनी कन्या की शादी अपने गुलाम सुबुक्तगीन से कर दिया था। सुबुक्तगीन ९ अप्रैल सन् ९७७ ई० को गजनी के सिंहासन पर बैठा था। बुखारा के बादशाह नूर द्वितीय से उसने बादशाहत की मान्यता प्राप्त कर लिया था।

सुबुक्तगीन सिन्धु नदी पार कर भारत पर आक्रमण नहीं किया था। कुछ इतिहासकारों का यही मत है। उसने हिन्दुओं के विरुद्ध जेहाद का नारा बुलन्द किया। हिन्दुओं में इसलाम फैलाने के लिए मुसलमानों को प्रोत्साहित किया। उसने अपने राज्य के शासन काल के प्रथम बारह वर्षों में गजनी के समीपवर्ती क्षेत्रों में राज्य विस्तार कर उसकी सीमा उत्तरी आमू दरया अर्थात् वक्षु नदी तक और पश्चिम ईरान तक फैला लिया था।

राजा होने के पश्चात् ही जैपाल ने गजनी पर आक्रमण किया परन्तु सन्धि हो गई।

सन् ९८६ ई० में सुबुक्तगीन ने जैपाल पर आक्रमण किया। बहुत सम्पत्ति हरण किया। बहुत से

हिन्दूओं को पकड़ कर गुलाम बनाया गया। बाद में वे मुसलमान बना लिए गये।

दो वर्ष पश्चात् सुबुक्तगीन ने पुनः जैपाल पर आक्रमण किया। काबुल ले लिया। सन् ९९७ ई० में सुबुक्तगीन की मृत्यु बुखारा के समीप हो गई। उसके वसीयत के अनुसार सुबुक्तगीन के कनिष्ठ पुत्र इसमाइल को सरदारों ने बादशाह बनाना चाहा। कारण यह मालूम होता है जैसा फिरदौसी ने लिखा है कि महमूद दोगला था। परन्तु वास्तव में उसकी माँ कुलीन वंश की नारी थी। सम्भव है कि वह गुलाम रही हो। किन्तु एक दल ने तेजस्वी महमूद गजनी के पक्ष का समर्थन किया। महमूद ने अपने भाई से गजनी का अधिकार सौंपने के लिए कहा। इसमाईल ने अस्वीकार किया। गजनी के समीप दोनों भाइयों में युद्ध हुआ। इसमाईल पकड़ा गया और जीवन पर्यन्त कारागार में सड़ता रहा।

महमूद सन् ९९८ ई० में तख्त पर बैठा। उसने अपनी मान्यता खलीफा अल कादिर विल्लाह से प्राप्त कर लिया। खलीफा ने उसे यमीनुद्दौला तथा अमीनुल मिल्लाह की पदवी दिया। उसकी इस पदवी यमीन से ही उसके वंश का नाम यमीनी वंश पड़ा। पिता की मृत्यु के समय उसका राज्य अफगानिस्तान तथा खुरासान अर्थात् पूर्वीय ईरान तक था।

कुछ लोगों का मत है कि महमूद ने १२ बार आक्रमण किया था। भारत पर उसने आक्रमण नहीं जेहाद बोला था। उसने प्रबल धार्मिक भावना से प्रेरित होकर भारत पर जेहाद की घोषणा की थी। उसने भारत पर प्रथम आक्रमण सन् ९९९ अथवा १००० में किया था। उस समय काश्मीर में दिद्दा-रानी राज्य कर रही थी। शीस्तान विजय के पश्चात् उसने भारत के सीमावर्ती नगरों को लूटकर युद्ध में व्यय हुए धन की पूर्ति कर ली।

सितम्बर सन् १००१ में महमूद गजनी १५,००० अश्वरोही, के साथ पेशावर की ओर अग्रसर हुआ। पंजाब का राजा जयपाल १२,००० अश्वरोही, ३०००० पदातिक, तथा ३०० हाथियों के साथ महमूद का आक्रमण रोकने के लिए बढ़ा। जैपाल कुछ और सहायता की अपेक्षा कर रहा था कि महमूद ने उसे युद्ध करने के लिए विवश कर दिया। महमूद तथा जैपाल की सेनाओं का संघर्ष २७ नवम्बर को हुआ। मध्याह्न काल तक जैपाल के १५,००० सैनिक मारे गये। जैपाल तथा उसके १५ सम्बन्धी पकड़ लिये गये। राजा के कण्ठ में पड़ा अमूल रत्नहार तथा बहुत सम्पत्ति महमूद को मिली।

महमूद ने उण्द पर आक्रमण किया। उसे खूब लूटा। महमूद ने जैपाल से बहुत धन तथा १५० हाथी लिया। महमूद के लौटते ही जैपाल विधर्मी मुसलमान का बन्दी हो जाने के कारण निन्दा का पात्र बन गया। उसने आनन्दपाल को राजा बना दिया। स्वयं चितारोहण कर प्राण त्याग दिया। महमूद काश्मीर की सीमा तक पहुंच गया। पराजित अथवा युद्ध में सफल न होने पर चितारोहण की प्रथा पुरानी है। जयद्रथ का वध समय पर न होने के कारण अर्जुन भी चितारोहण कर प्राण त्याग करना चाहता था।

अदवउल मुलुक वा किफायतउल ममलूक का लेखक मुहम्मद बिन मनसूर (सन् १२१०-१२३६ ई०) अल्तमस के समय में हुआ था। उसने लोहर तथा जयपाल के युद्ध का वर्णन किया है—भद्र का पुत्र ह-ह ने लोहर नगर स्थापित किया था। उसने ७५ वर्ष तक राज्य किया। उसका पुत्र भरत उसे हटा-कर राजा बन गया। उसे कलहुर-के दुर्ग में बन्दी बना दिया।

भरत ने लोहर में एक दुर्ग बनवाया। वियाह नदी के तटपर एक ग्राम बसाया। उसने नन्दुना (झेलम) तथा टाकेशर के नमक के खानो पर अधिकार करना चाहा। वे जयपाल के राज्य में थे। उसने चन्द्रहार नदी पार किया। अपनी सेना के साथ टाकेशर पर आक्रमण किया। वहाँ आनन्दपाल के पुत्र जयपाल ने उसका विरोध किया।

जयपाल से पराजित होकर बन्दी बन गया। आनन्दपाल लोहर आकर नगर पर अधिकार कर लिया। भरत ने उसे बहुत धन देकर उसके अधीनस्थ राजा की हैसियत से राज्य करना स्वीकार कर लिया। आनन्दपाल के चले जाने पर भरत के पुत्र इन्द्ररथ ने उसे राज्यच्युत कर स्वयं राजा बन बैठा। इन्द्ररथ पराजित कर दिया गया। बन्दी बना लिया गया। उसका पुत्र जालन्धर के सामंत कोर राय के यहाँ शरण लिया। जयपाल ने सन् ९९९ में लोहर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष महमूद का प्रथम जेहाद भारत पर किया गया।

सीमांत—अलवेरुनी के अनुसार काश्मीर के सीमान्त पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। लोगों ने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया था। वह कहता है—सिन्धु नदी पर्वत उनंग से निकलती है। यह तुर्कों के क्षेत्र में है। वहाँ इस प्रकार पहुंचा जा सकता है। काश्मीर में जिस घाटी से प्रवेश किया जाता है उसे पार कर काश्मीर अधित्यका में चलते हुए अपने वाम पार्श्व में बोलोर तथा शमिलान पर्वत माला छोड़ते दो दिन का मार्ग समाप्त कर तुर्की जाति जिसे भट्टवार्यान कहती हैं पहुँचा जाता है। उनके राजाओं की उपाधि भट्टशाह की है। उनका नगर गिलगिट, अश्वीर तथा शिलतास है। उनकी भाषा तुर्की है। काश्मीर उनसे आने वालों के रास्तों के कारण बहुत त्रस्त रहता है। नदी के वाम तट से चलते हुए कृषि पूर्ण भूमि से होते राजधानी पहुंचा जाता है। दक्षिण तट से एक के बाद दूसरे गाँवों में जाते हुए राजधानी के दक्षिण पहुंचा जाता है। वहाँ से कुलार्जक पर्वत पहुंचा जाता है। वह गुम्बज के समान है। वह दुनबावन्द पर्वत तुल्य है। वह ताकेश्वर तथा लौहावर से दिखाई पड़ता है। इस शिखर तथा काश्मीर के मध्य २ फरसरव का अन्तर है। राजगिरी का दुर्ग इसके दक्षिण पड़ता है। लहुर का दुर्ग इसके पश्चिम पड़ता है। यह दोनों सबसे मजबूत सुरक्षित स्थान है जिन्हें मैंने अब तक देखा है। नगर राजा वरी ३ फरसरग शिखर से है। यह हमारे व्यापारियों की अन्तिम मंजिल है जहाँ तक वे व्यापार करने आते हैं। इससे आगे नहीं बढ़ सकते।

पश्चिम ओर अफगानों के अनेक कबीले रहते हैं। वे सिन्ध उपत्यका के समीप तक फैले हुए हैं। १ : २०७-२०८

उत्तरी पर्वत हिमाच्छादित हिमवन्त है। उसके केन्द्र में काश्मीर है। उनका सम्बन्ध तुर्कों के देशों से है। यह पर्वत ठण्डा और ठण्डा होता चला जाता है जब तक कि गैर आबादी वाली दुनियाँ पर्वत मेरु तक न पहुंच जाय। इस पर्वत के उत्तरी ओर से निकलने वाली नदियाँ तुर्क, तिब्बत, खज़र स्लाबोनिया, देशों में प्रवाहित होती। सागर ज़ुरजान (कस्पियन) अथवा ख़ारजिम (अरल) सागर में, या पोन्तुस (काला) सागर अथवा उत्तरी स्लेबोनिया (बाल्टिक) सागर में गिरती है। दक्षिणी ढाल से निकलने वाली नदियाँ भारत से बहती महासागर में गिरती हैं। कुछ अकेली गिरती हैं और कुछ मिलकर गिरती हैं। १ : २५८

अल्बेरुनी के अनुसार शाही वंश :—काबुल में हिन्दू राजा थे। वे तुर्क जातीय तिब्बत वंशी थे। उनमें प्रथम वरहत कीण काबुल में सर्व प्रथम आया और एक गुफा में चला गया। उसमें कोई बिना हाथ और पैर के सहारे बिना रेंग कर न जा सकता था। उसके समीप उसने कई दिनों के लिए रसद रख दिया। यह हमारे समय में बात प्रचलित थी उसे वर कहते हैं।

कृषकों का एक समूह गुफा के सम्मुख कार्य करता था। उन्हें दिन-रात काम करने के लिए प्रभावित किया गया ताकि स्थान जनविहीन न हो। कुछ दिन पश्चात् वह रेंगता गुफा के बाहर नवजात शिशु के रूप में निकला। वह तुर्की पहनावा पहने था। एक छोटा चोगा जो सामने खुला था। ऊँचा हैट

तुल्य शिरोभूषण था। बूट पैरों में था।

लोगों ने उसे देखकर एक चमत्कारिके होने के कारण उसका आदर किया। जो वहाँ का राजा होने वाला था। उस देश को अपने आधीन कर काबुल शाहिय के नाम से राज्य करने लगा। उसके वंश में काबुल का शासन ६० पीढ़ियों तक रहा।

दुर्भाग्य वश हिन्दू लोग ऐतिहासिक क्रमों पर ध्यान तथा महत्त्व नहीं देते। वे राजाओं के राज्य काल देने में बड़े असावधान होते हैं। उन्हें जब कुछ कहने के लिये दबाव दिया जाता है कि वे कुछ बतावें तो वे वास्तव में भूल जाते हैं क्या कहें इसलिये और कहानी बनाकर कहने लगते हैं। किन्तु शाही वंश के सम्बन्ध में मैंने कुछ लोगों से जानकारी प्राप्त की है जो जानते थे। मुझे बताया गया कि इस राज्य वंश की वंशावली रेशमी वस्त्र पर लिखी नगर कोट के दुर्ग में सुरक्षित है। मेरी बहुत इच्छा थी कि मैं इस वंशावली को देखूँ परन्तु घटनाओं ने उन्हें देखना असम्भव बना दिया।

इस वंश का अन्तिम राजा 'लगतुरमान' था। उसका वजीर कल्लर ब्राह्मण था। उसे भाग्यवश एक छिपा खजाना मिल गया जिससे उसकी प्रभाव शक्ति बढ़ गई थी। शाही वंश के राजा के हाथों से धीरे-धीरे शक्ति निकल कर कल्लर के हाथों में आने लगी। इसके अतिरिक्त लगतुरमान का चलन अच्छा नहीं था। उसके व्यवहार के कारण लोग असन्तुष्ट होकर कल्लर की ओर त्राण निमित्त देखने लगे।

वजीर कल्लर ने उसे बन्दी बना लिया। उसे सुधार निमित्त कारागार में रख दिया। उसने शासन करते हुए राज्य सिंहासन पर स्वयं अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् ब्राह्मण सामन्द (सामन्त) कमल् भिम (भीम) जैपाल (जयपाल) अन्नलापद (आनन्दपाल) नरोजन यस (त्रिलोचनपाल) ने राज्य किया। अंतिम राजा सन् १०२१ में मारा गया तथा उसका पुत्र भीमपाल पाँच वर्ष पश्चात् अर्थात् सन् १०२६ में मारा गया।

इस समय हिन्दू शाही वंश का लोप हो गया है। उस पूरे वंश का किञ्चित् मात्र भी चिह्नअथवा अवशेष नहीं रह गया है। किन्तु उनके विषय में यह सन्देह कहा जायगा कि अपने पूर्ण गौरव गरिमा में भी वे कभी अपनी इस इच्छा से विमुख नहीं हुए कि जो उचित है तथा न्यायपूर्ण से किया जाय वे उदार भावना के आदमी थे उदार चित्त थे।

मैं आनन्दपाल के निम्नलिखित पत्रके उस अंश की प्रशंसा करता हूँ। जिसे उसने महमूद गजनवी को लिखा था जब कि दोनों का सम्बन्ध अपनी अन्तिम सीमा तक बिगड़ जा चुका था—मुझे मालूम हुआ कि तुर्कों ने आपके विरुद्ध विद्रोह किया है। वे खुराशान में फैल रहे हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो आपकी सहायता निमित्त मैं ५००० अश्वरोही, १०००० पदातिक तथा १०० हाथी सेना के साथ आऊँ या यदि आप चाहें तो मैं अपने पुत्र को आपके पास इस सेना की दूनी शक्ति के साथ भेज दूं। इस प्रकार के कार्यों से मैं किसी बात की कल्पना नहीं कह रहा हूँ जो शायद आप करें। अपने मुझे फतह किया है। किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि आप पर दूसरा फतह पाये।

यह राजा मुसलमानों के प्रति घोर द्वेष उस समय से रखने लगा था जब कि मुसलमानों ने उसे बन्दी बनाया था। जब कि त्रिलोचनपाल अपने पिता के ठीक उल्टा था। २ : १०, १४

रघुनाथ सिंह, पुत्र बटुकनाथ सिंह जन्मस्थान पंचक्रोशी अन्तर्गत वरुणा तीर स्थित ग्राम खेवली रामेश्वर स्थान समीप तथा निवासी मुहल्ला घीहट्टा (औरंगाबाद) काशी नगरी वाराणसी ने कल्हण कृत राजतरंगिणी का अनुवाद एवं भाष्य सन् १९७२ में लिखकर समाप्त किया।

श्लोकानुक्रमणिका

आ

इ

प

ह

उत्पल वंश (तरंग ५)

- उत्पल सन् ८५३ ई०
  - सुखवर्मा सन् ८५५ ई०
    - अवन्ति वर्मा सन् ८८३ ई०
      - शंकर वर्मा = सुगन्धा
        सन् ९०२ ई० सन् ९१४ ई०
        - गोषाल वर्मा सन् ९०४ ई०
        - संकठा सन् ९०४ ई०
    - शूर वर्मा
      - सुख वर्मा
        - निर्जित वर्मा (पंगु) सन् ९२३ ई०
          - पार्थ सन् ९३७ ई०
          - चक्र वर्मा सन् ९३७ ई०
          - शूर वर्मा प्रथम (राज्य च्युत सन् ९३४ ई०)
    - समर

अन्यवंश (तरंग ६)

- वीर देव
  - कामदेव
    - प्रभाकरदेव
      - यशस्कर देव सन् ९४८ ई०
        - संग्राम देव सन् ९४९ ई०
  - रामदेव
    - वरन्त सन् ९४८ ई०

- पर्व गुप्त सन् ९५० ई०
  - क्षेम गुप्त सन् ९५८ ई० = दिद्दारानी सन् १००३ ई०
    - अभिमन्यु सन् ९७२ ई०
      - नन्दि गुप्त सन् ९७३ ई०
      - त्रिभुवन सन् ९७५ ई०
      - भीम गुप्त सन् ९८० ई०

परिशिष्ट

'क'

शाही

(रा० : ४ : १४३)

जहाँ तक इतिहास का मैं अध्ययन कर सका हूँ, शाही वंश का सर्व प्रथम उल्लेख राजा ललितादित्य के प्रसंग में किया गया है। ललितादित्य का समय सन् ७०० ई० श्री स्तीन की गणना के अनुसार होता है। कल्हण लिखता है—'उस समय से प्राक् सिद्ध अष्टादश कर्मस्थानों पर और पांच कर्मस्थान स्थापित हुए। महाप्रतिहार पीडा, महासंधि विग्रह, महाश्वशाला, महाभाण्डार तथा पाँचवें महा साधन भागादि नाम थे, जिनपर मुख्य-मुख्य शाही वंशीय पृथ्वीभुज अध्यक्ष हुए।' (रा० : ४ : १४१—१४३)

शाह या साही पदवी शक काल से भारत में राजाओं तथा सम्राटों की पदवी हो गयी थी। श्वेत हूण तथा तुर्क, जो काबुल उपत्यका एवं गान्धार देश में शासन करते थे, उन्होंने शाही पदवी धारणा कर ली थी। वे मूलतः तुर्क वंशीय थे। अल्वेरुनी ने तिब्बत लिखा है। यह तुर्क होना चाहिए। ओ-कुंग जब गान्धार की यात्रा सन् ७५३ ई० तथा ७६४ ई० में कर रहा था, तो उसे वहाँ तुर्क वंशीय राजा राज्य करते मिले थे।

इससे प्रकट होता है। महमूद गजनी के भारत आक्रमण और उदभाण्डपुर में शाही राजधानी स्थापित होने के दो शताब्दी पूर्व से शाही वंश और काश्मीर का निकट सम्बन्ध था। अल्बेरुनी के दो शताब्दी पूर्व यह ऐतिहासिक प्रमाण शाहियों का मिलता है।

कल्हण उल्लिखित 'पृथिवीभुजः' शब्द महत्त्वपूर्ण है। काश्मीरराज ललितादित्य की सेवा में शाही वंशीय 'पृथिवीभुज' थे, इस वर्णन से प्रकट होता है कि शाही वंशीय राजा या सामन्त ही राज्य किंवा शासन कर रहे थे। उनके ही वंशज कल्हण के शब्दों में ललितादित्य के यहाँ उच्च पदों पर नियुक्त थे। कल्हण शाही राज का नाम नहीं देता। यदि अल्बेरुनी का वर्णन ठीक माना जाय, तो शाही वंशज उस समय काबुल में राज्य करते थे। राजा थे। जिन्हें अल्बेरुनी तुर्क शाही लिखता है।

कल्हण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है। अल्बेरुनी के तुर्क शाही हिन्दू थे। यदि वे मुसलमान होते तो चंकुण के समान कल्हण उनकी संज्ञा यवन, तुरुष्क अथवा म्लेच्छ से देता।

काश्मीरराज महाराज प्रवरसेन द्वितीय के काल में 'मुम्मिन' का उल्लेख कल्हण ने किया है। उसे राजा प्रवरसेन ने सात बार पराजित किया था। (रा० : ३ : ३३२) मुम्मिन को ललितादित्य ने तीन बार पराजित किया था। (रा० : ४ : १६) जयापीड राजा के प्रसंग में वर्णन मिलता है कि वे रात्रि में प्रतिहारी के समान कार्य करते थे। (रा० : ४ : ५१६) कल्हण ने (रा० : ८ : १०९०, २१७९) पुनः मुम्मिन का उल्लेख किया है। वह संगत भ्राता इस स्थान पर लिखा गया है। 'प्रवरसेन द्वितीय' का राज्य काल लौकिक वर्ष ३१८६=सन् ११० ई०, ललितापीड का लौकिक वर्ष ३७७६=सन् ७०० ई० तथा जयापीड का लौकिक वर्ष ३८२८=सन् ७५२ ई० रखा जाता है।

मुम्मिन व्यक्ति विशेष नाम न होकर जाति का सूचक है। श्री स्तीन ने जिज्ञासा की है कि मुम्मिन शब्द शाही या खांन-खान के समकक्ष राजाओं का पद रहा होगा। मुम्मिन शब्द भारतीय नहीं है। यह शब्द विदेशी है। सम्भव है। कल्हण ने जिन मुम्मिन राजाओं का वर्णन किया है, वे तुर्क वंशीय शाही राजा थे। कल्हण के वर्णन में उनका अल्बेरुनी के ९०० वर्ष पूर्व होना निश्चित होता है। अल्बेरुनी ने लिखा है कि शाही वंश काबुल में ६० पीढ़ी तक शासन करता रहा। तत्पश्चात् हिन्दू शाही वंश ने राज्य प्राप्त किया। अन्तिम तुर्क शाही राजा का नाम लुगत तूरमान मिलता है। यह अभारतीय राजा है। इस तर्क में तथ्य है। मुम्मिन सम्भवतः शाही राज वंश के राजा अथवा राजवंशीय थे। उनका काश्मीर राज्य से प्रथम शताब्दी से पूर्व ही सम्पर्क स्थापित हो गया था। कालान्तर में भी सम्बन्ध पूर्ववत् बना रहा। वे काश्मीर में अनेक राजपदों पर नियुक्त थे। अल्बेरुनी से चार शताब्दी चीनी पर्यटक हुएन्त्सांग गान्धार देश का उल्लेख करता है। गान्धार के विषय में लिखता है कि उसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। राजवंश का लोप हो गया था। कपिसा राज के अन्तर्गत गांव तथा नगर उजड़ गये थे। आबादी कम थी। कपिसा का राजा क्षत्री था। समकालीन ऐतिहासिक वर्णनों से यही निष्कर्ष निकलता है कि हुएन्त्सांग वर्णित राजा शाही वंशीय रहे होंगे या थे।

'ख'

शाही वंश

(रा० : ५ : १५२-१५५)

अल्बेरुनी के अनुसार शाह वंश तुर्की तथा हिन्दू दोनों था। दोनों की स्थिति मुसलिम शासन स्थापित होने के पूर्व थी। तुर्कीशाही हिन्दू थे। तुर्कीशाही हिन्दूराज्य काबुल में ६० पीढ़ियों तक शासन किया था। इस वंश का अन्तिम राजा लगतूरमाण था। उसके मन्त्री ने उसे राज्यच्युत कर, हिन्दू शाही राज वंश की स्थापना की थी। शाही लोग क्षत्री माने जाते थे। आज भी शाही क्षत्री तथा भूमिहारों की एक उपजाति है।

अल्बेरुनी हिन्दू शाही वंश का संस्थापक कल्लर को मानता है। प्रोफेसर सेवोल ने अपने पाण्डित्य-पूर्ण लेख द्वारा प्रमाणित किया है कि अरबी में 'कल्लर' और 'लल्लिय' लिखने में भ्रम हो जाता है। भ्रम के कारण 'कल्लर' और 'लल्लिय' एक ही नाम होते हुए भी दो समझ लिये गये हैं (जेड० डी० एम० जी० : ४८ : ७००) जनरल कनिंघम ने भी कल्लर एवं लल्लिय को एक ही माना है (आर्कियोलौजिकता सर्वे: रिपोर्ट्स)।

कल्लर राजतरंगिणी वर्णित लल्लिय शाही माना गया है। कल्हण लिखता है—'उस रागिणी की सम्पत्ति लुण्ठित कर उस कोशाध्यक्ष ने उदभांडपुर का शाही राज्य विजय किया। उसने आज्ञा अतिक्रमण-कारी शाही का राज्य लल्लिय पुत्र तोरमाण को कमलुक नाम रखकर प्रदान किया।" (रा० : ५ : २३३)।

अल्बेरुनी लिखता है—'कनिक (कनिष्क)' के वंश का अन्तिम राजा लगतूरमाण था। उसका वजीर कल्लर ब्राह्मण था। वजीर को गुप्त खजाना मिल गया था। उस धन के कारण प्रभाव सम्पन्न एवं शक्तिशाली हो गया। तिब्बती (तुर्क) कुल के राजा की शक्ति धीरे धीरे उसके हाथों से निकलती गयी। इसके अति-रिक्त लगतूरमाण का व्यवहार अच्छा नहीं था। उसका आचरण बुरा था। इस लिये जनता वजीर से राजा

की शिकायत करती थी। वजीर ने राजा को उसकी दमनकारी नीति के कारण बन्दी बना लिया। उसने सुशिष्ट व्यवहार से शासन आरम्भ किया। उसका धन उसकी योजना पूर्ण करने में सहायक हुआ। इस प्रकार उसने सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् क्रमशः उसका पुत्र ब्राह्मण राजा सामन्द (सामन्त ?) कमलू, भीम (भीमा) जयपाल (जयपाला), आनन्दपाल, तरोजन पाल (त्रिलोचन पाल) ने राज्य किया। कमलू हिजरी ४१२ (सन् १०२१ ई०) में मार डाला गया। भीम उसका पुत्र पाँच वर्ष पश्चात् सन् १०२६ ई० में मारा गया।

'हिन्दू शाही वंश का अब लोप हो गया है। उनकी पूरे वंश का नाममात्र भी शेष नहीं है। हम इसे अवश्य स्वीकार करेंगे कि वे अपने पूरे वैभव काल में भी; अच्छा और न्यायप्रिय कार्य करने की उत्कट इच्छा में किंचित् मात्र भी ढिलाई नहीं करते थे। वे लोग उच्च विचार एवं आचरण के थे। मैं आनन्दपाल के निम्नलिखित पत्र की प्रशंसा करता हूँ। जिसे उसने महमूद गजनी को लिखा था। जिस समय कि उन दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त तनाव पूर्ण था।

"मैंने सुना है कि तुर्कों ने आपके प्रति विद्रोह किया है। और खुराशान में फैल रहे हैं। यदि आप चाहें, तो आपकी सहायता के लिए पांच सहस्र अश्वरोहियों तथा दश हजार पैदल सैनिकों और एक शत हाथी के साथ आऊँ। यदि आप चाहें, तो मैं अपने पुत्र को उक्तसंख्या की दूनी संख्या के साथ ससैन्य भेज दूँ। इस प्रकार कार्य करते हुए मैं किसी प्रकार का विमर्श नहीं करना चाहता कि आप पर इसका क्या प्रभाव होगा ? मैं आपके द्वारा पराजित किया गया हूँ। किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि दूसरा आदमी आप पर विजय प्राप्त करे।

"वही राजा मुसलमानों के प्रति घोर घृणा उस समय से करता था, जब से उसका पुत्र बन्दी बना लिया गया था। यद्यपि उसके पुत्र त्रिलोचन की प्रवृत्ति पिता के बिल्कुल विपरीत थी।"

उक्त उदाहरण ही शाही वंश के इतिहास के अध्ययन का सोपान है। तुर्की शाही वंश काबुल उपत्यका तथा गान्धार देश पर बहुत समय तक राज्य करता रहा। इससे यह भी प्रकट होता है।

कल्लर ने हिन्दू शाही वंश की स्थापना की थी। उसे राजतरंगिणी का लल्लिय शाही (रा० : ५. २३३) इतिहासज्ञों ने माना है। लल्लिय बहुत दिनों तक काबुल पर शासन नहीं कर सका। सन् ८७० ई० में याकूब इब्नलेथ ने काबुल पर अधिकार कर लिया। लल्लिय पराजय के पश्चात् राजधानी उदभाण्डपुर वर्तमान उण्ड में बनाया। उण्ड स्थान, सिन्ध के दक्षिण तटपर, अटक से पन्द्रह मिल ऊपर है। रावलपिण्डी जिला में है। लल्लिय का राज्य काबुल उपत्यका से कृष्णगंगा उपत्यका अर्थात दूर देश तक विस्तृत था। अलखान का राज्य झेलम एवं चिनाव के दोआबा के ऊपरी भाग और दार्वाभिसार के दक्षिण पड़ता था। वह तथा पंजाब का एक भाग लल्लिय के आश्रित था।

काश्मीर राजा शंकर वर्मा ने अलाखान पर आक्रमण किया था। (सन् ८८३-९०२ ई०) उससे टक्क देश ले लिया था। टक्क देश चेनाव नदी के अधोभाग में पहाड़ियों के पूर्व था अटक नदी के तट पर तथा पंजाब गजेटियर के अनुसार सिन्ध और झेलम नदी का मध्य भू भाग मात्र है।

कल्हण ने लल्लिय की वीरता तथा लाभ का प्रशंसात्मक शब्दों में वर्णन किया है। वह यहाँ तक कहता है कि लल्लिय की कीर्ति पृथ्वी के सब राजाओं में सबसे अधिक थी। वह कीर्तिमान राजा है। उसकी राजधानी में अनेक राजाओं तथा उत्तर के शासकों ने शरण ली थी।'

लल्लिय का पुत्र तूरमाण था। उसकी मृत्यु के पश्चात् सिंहासन शाही वंश के एक वंशज द्वारा हस्तगत कर लिया गया था। 'श्री सामन्त' नाम की मुद्राएँ अफगानिस्तान में प्राप्त हुई हैं।

शंकर वर्मा पुत्र गोपाल वर्मा के मन्त्री प्रभाकर ने उद्भाण्डपुर के लड़ाकू शाहियों का दमन किया था। उसने तूरमाण को सिंहासन पर बैठाया। उसका नाम कमलूक रखा था। अल्बेरुनी ने नाम कमलू दिया है। उसके उत्तराधिकारी के एक शिलालेख में उसे कमल वर्मा लिखा गया है।

कल्हण लिखता है—''युद्ध में उसने गुर्जर राज अलखान की बद्ध मूल लक्ष्मी को क्षण में उत्खनित कर दीर्घ शोक स्थापित किया। गुर्जराधिप ने विनय पूर्वक, उसे टक्क देश प्रदानकर, मण्डल की उसी प्रकार रक्षा थी, जैसे अंगुलि दानकर, शरीर की रक्षा की जाती है' (रा० : ५ : १४९, १५०) कल्हण का बर्तांव अल्बेरुनी तथा अन्य इतिहासकारों की अपेक्षा अधिक विस्तार पूर्वक और वास्तविकता के समीप है। कल्हण तुर्की तथा हिन्दू ब्राह्मण शाही वंश में भेद नहीं करता। केवल शाही शब्द का ही प्रयोग करता है। किन्तु शाही शब्द में तुर्क एवं हिन्दू शाही का समावेश हो जाता है। तुर्क जाति उस समय मुसलमान नहीं हुई थी। उन्हें मुसलमान मान कर कुछ लेखकों ने भ्रम उत्पन्न किया है।

मुहम्मद औफी (सन् १२११ ई०) उसे हिन्दुस्तान का राय अर्थात् राजा लिखता है। जबुलिस्तान के सूबेदार अमीर बिनलैथ (सन् ८७९-९०० ई०) के आधीन था। हिन्दुओं के तीर्थस्थान सकावन्द को लूटा था। सकावन्द शाही राज्य के अन्तर्गत था। सकावन्द भारत-काबुल मार्ग में एक दर्रा था। वर्तमान जलालाबाद के समीप था। कमलुक ने एक विशाल सेना मुसलिम शक्ति के विरुद्ध अभियान हेतु संघटित की थी। किन्तु यह समाचार मिलने पर कि मुसलमानों ने एक बड़ी सेना लड़ने के लिये एकत्रित की है, कमलुक ने आक्रमण की योजना त्याग दी।

भीम पिता कमलुक की मृत्यु पश्चात् राजा हुआ। भीम ऐतिहासिक राजा है। उसके नाम का एक शिलालेख दबोई, गदून क्षेत्र में मिला है। उसपर 'महाराज धिराज परमेश्वर शाहि श्री भीम देव' लिखा है। भीम की कन्या का विवाह लोहर वंशीय राजा सिंहराज के साथ हुआ था। कल्हण का वर्णन अन्य इतिहासकारों की अपेक्षा तथ्य के अधिक समीप है। वह लिखता है—'लोहर आदि दुर्गों के शास्ता (शासक) इन्द्रोपम सिंहराज नृपति ने उसे (राजा क्षेमगुप्त) को अपनी तनया प्रदान किया। शाही दौहित्री दिद्दा में आसक्त मन उस नृप ने 'दिद्दा-क्षेम' ऐसी लज्जावह ख्याति प्राप्त की। उस नृप वधू के मातामह श्री भीम शाही ने भीम केशव का भव्य प्रासाद (मन्दिर) निर्मित किया।' (रा० : ६ १७७–१७९ : ७ : १०८१) लोहर स्थान पूंछ क्षेत्र में है। लोहर ही लोहकोट है। लोहकोट किंवा लोहर का विस्तृत वर्णन मैंने जोनराज कृत राजतरंगिणी परिशिष्ट 'ग' में किया है।

काश्मीर की रानी दिद्दा भीम की पौत्री तथा सिंहराज की कन्या थी। उसका विवाह काश्मीरराज क्षेमगुप्त (सन् ९५०-९५८ ई०) से हुआ था। रक्त सम्बन्ध के कारण भीम काश्मीरराजकुल को प्रभावित करता था। भीम ने काश्मीर में भीम केशव मन्दिर की स्थापना की थी। यह बूमजू का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस समय जियारत में परिणत कर लिया गया है। इस मन्दिर पर बहुत सम्पत्ति चढ़ी थी। श्री भीम देव के नाम की कुछ मुद्रायें काबुलिस्तान में मिली हैं।

मुसलिम इतिहासकारों ने भीम का उत्तराधिकारी जयपाल को माना है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि राजा अभिमन्यु (सन् ९५८-९७२ ई०) दिद्दा रानी का पुत्र था। एक शिलालेख स्वात, के ऊर्ध्व भाग बरीकोट के उत्तर पहाड़ी पर मिला है। उसपर परम भट्टारक महाराज धिराज श्री जयपाल देव खुदा है। शिलालेख भग्नावस्था में है। उससे प्रकट होता है कि किसी ने वजीरस्थान में कुछ स्थापित किया था। बजीरस्थान ही वर्तमान वजीरिस्तान है। इससे प्रकट होता है कि हिन्दू शाहीराज बजीरिस्तान अथवा उत्तरीय स्वात प्रदेश तक विस्तृत था।

परिशिष्ट

इतिहासकार मुहम्मद बिन मन्सूर ने अपनी पुस्तक आदाब-उल-मुल्कब किफायतुल ममालुक जो सुलतान अल्तमश (सन् १२१९-१२३६ ई०) काल की रचना है, उसमें जयपाल के साथ लाहौर के सरदारों के युद्ध का वर्णन किया है। उसमें लिखा है कि हाट पुत्र भाद्र ने लाहुर नगर की स्थापना की थी। उसने वहाँ पचहत्तर वर्ष राज्य किया था। उसे उसके पुत्र भरत ने कहलूर के किला में बन्दी बना दिया था। उसने लाहोर का राज्य प्राप्त किया। भरत ने लाहौर दुर्ग का निर्माण कराया। विपाह (मुलतान के पूर्व) नदी के तट पर एक ग्राम की भी स्थापना की थी। उसने झेलम तथा टकेश्वर की नमक की खानों पर अधिकार करने का प्रयास किया था। दोनों ही उस समय जैपाल के अधिकार में थे। उसने चन्द्रहाह (चनाव) नदी पार कर तकेश्वर पर आक्रमण किया। जयपाल के पुत्र आनन्दपाल ने उसका सामना किया। युद्ध के पश्चात् भरत पराजित हो गया। बन्दी बना लिया गया। आनन्दपाल लाहोर पर आक्रमण किया। अधिकार कर लिया। काफी धन प्राप्त करने पर आनन्द पाल ने भरत को करदराजा बना लिया। लाहौर पर शासन करने का अधिकार उसे दे दिया। आनन्दपाल के लौटने पर राजा भरत के पुत्र हृद्रत (हरीदत्त ?) ने अपने पिता को पदच्युत कर, राज्य पर अधिकार कर लिया। जयपाल ने आनन्दपाल के नेतृत्व में हृद्रत को दण्ड देने के लिये ससैन्य भेजा। हृद्रत पराजित हो गया। बन्दी बना लिया गया। उसके पुत्रों ने जालन्धर के राजा सामा कोरा राय के यहाँ शरण ली। जयपाल ने लाहौर के राज्य पर सन् ९९९ ई० (हि० : ३८९) में अधिकार कर लिया। जयपाल अपने समय भारत का सबसे शक्तिशाली राजा था। सरहिन्द से लमगान या लघमान तथा काश्मीर की सीमा से मुलतान के मध्यवर्ती भूखण्ड का एकक्षत्र राजा था। उसमें वर्तमान पूर्वीय अफगानिस्तान, पाकिस्तान का सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी पंजाब के भूखण्ड का समावेश हो जाता है।

गजनी शक्ति के उदय के साथ शाही लोगों का पतन आरम्भ हो गया। उदभाण्डपुर अर्थात् उण्ड के शाही राजाओं पर सुबुक्तगीन का सैनिक अभियान निरन्तर होता रहा। इतिहासकार सुबुक्तगीन के इन सैनिक अभियानों को ज़िहाद की संज्ञा देता है। सुबुक्तगीन ने शाही राज्य के सीमान्त दुर्गो तथा नगरों पर, आक्रमण एवं लूट पाट कर, काफी धन संग्रह कर लिया।

राजा जयपाल इन सैनिक अभियानों का अर्थ समझता था। उसने युद्ध का निश्चय किया। गजनी और लमघान मध्य जयपाल का युद्ध सुबुक्तगीन तथा उनके पुत्र महमूद गजनी के साथ हुआ। नाजिम इतिहासकार के अनुसार युद्ध सन् ९८६–९८७ ई० में हुआ था। मुसलिम इतिहासकारों ने स्वीकार किया है। जैपाल की सेना सफलता प्राप्त करती जा रही थी। सुबुक्तगीन ने प्रत्यक्षयुद्ध से विजय की आशा न होने से नीति से काम लिया। जयपाल के शिविर के पास एक ऊँची पहाड़ी थी। उसे उकवा घूजाक कहते हैं। उसकी एक द्रोणी में एक जलस्रोत था। उस अंचल में जनश्रुति प्रचलित थी कि यदि जलस्रोत का जल गन्दा हो जायगा, तो घनघोर काली छटा छा जायगी, बवंडर उठेगा, पर्वत शिखर काला हो जायगा, वर्षा होगी, समीपस्थ क्षेत्र में शीत लहरी फैल कर मृत्यु आजायगी। सुबुक्तगीन के अनुचरों ने गन्दगी स्रोत में छोड़ दी। जिसके कारण उपरोक्त घटनाएँ घटीं। जयपाल ने बाध्य होकर सन्धि कर ली।

जयपाल अपनी सीमा में लौटते ही सन्धि से विमुख हो गया। सुबुक्तगीन क्रोधित हो उठा। सुबुक्तगीन और जयपाल में घनघोर युद्ध हुआ। सुबुक्तगीन को विजय मिली। उसने लघमान तक क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया।

जयपाल ने पुनः सेना एकत्रित की। अपने देशों को वापस लेने का प्रयास किया। सुबुक्तगीन ने जयपाल की विशाल सेना आती देखा। एक ऊँचे शिखर पर चढ़ गया। जयपाल की विशाल सेना से प्रत्यक्ष

लड़ना सम्भव नहीं था। उसने पाँच सौ सैनिकों का एक-एक दल बनाकर जयपाल की सेना पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मुसलिम इतिहासकारों के अनुसार सुबुक्तगीन की नीति के कारण जैपाल की सेना में अस्तव्यस्त हो गयी। सेना पराजित हो गयी। सुबुक्तगीन ने लमघान से पेशावर तक का भूखण्ड अपने राज्य में कर लिया।

महमूद गजनी ने भारत पर प्रथम आक्रमण सन् १००० ई० में किया था। जयपाल ने पेशावर के समीप महमूद की सेना का सामना किया। परन्तु बन्दी बना लिया गया। अपने कुटुम्ब के साथ मिराँद स्थान पर बन्दी रखा गया। जयपाल दो लाख पचास हजार दीनार तथा पचीस हाथी देने पर मुक्त कर दिया गया। किन्तु मुसलिमों से तीन बार पराजित होने के कारण जयपाल ने चितारोहण कर प्राण त्याग दिया। काबुल पर पुनः शाही वंशका कभी अधिकार नहीं हुआ। अल्बेरुनी के अनुसार जयपाल के पश्चात् आनन्दपाल और आनन्दपाल के अनन्तर त्रिलोचनपाल राजा हुआ था। कल्हण लिखता है—'तदनन्तर शाही राजा त्रिलोचनपाल ने राजा संग्रामराज से सहायता माँगी। राजा ने तुंग को त्रिलोचनपाल की सहायतार्थ भेज दिया। तुंग के साथ विश्व को क्षुब्ध करने वाली विशाल सेना थी। तुंग का शाही राजा त्रिलोचनपाल आगे बढ़ कर स्वागत किया। तुंग पाँच छः दिन तक आनन्द पूर्वक स्वागत तथा आदर प्राप्त करता वहाँ निवास किया। तुंग को रात्रि में गुप्तचरों को कार्य करते तथा सैनिक अभ्यास न करते देखकर त्रिलोचन-पाल ने कहा—'तुर्कों की रणनीति का आप लोग जब तक अध्ययन न कर लें तब तक पर्वत मूल में ही सेना का निवास करना उचित है।'

युद्धोत्सुक तुग को त्रिलोचन पाल की बात अच्छी न लगी। उसी समय तुरुष्क सेनापति हम्मीर (महमूद गजनी) ने सेना का एक दल तौषी नदी पर भेजा। तुंग ने तत्काल नदी पार कर तुरुष्कों की सेना को खदेड़ दिया।

इस साधारण विजय से तुंग का मन बढ़ गया। अभिमान हो गया। त्रिलोचन पाल ने उसे पुनः समझाया कि तुरुष्कों की रणनीति, समझ कर योजना बनानी चाहिए। तुंग ने ध्यान नहीं दिया। दूसरे दिन हम्मीर ने कपट युद्ध का आश्रय लिया। तुरुष्क सेनापति हम्मीर क्रुद्ध हो कर समस्त सेना के साथ स्वयं दार्वाभिसार की दिशा से शाही राज्य पर आक्रमण कर दिया। तुंग की सेना परास्त हो गयी। परन्तु शाही सेना जो तुरुष्कों की रणनीति से परिचित थी लड़ती रही। शाही राज त्रिलोचन पाल ने युद्ध में अद्भुत वीरता प्रदर्शित की। त्रिलोचन युद्ध में मुसलमानों को परास्त कर कुछ दूर चला गया। किन्तु वहाँ पर पहुँचने से टिड्डी की तरह शत्रु सेना से वह भूखण्ड आच्छादित हो गया। त्रिलोचन पाल अपनी गज सेना के द्वारा विजय प्राप्त करने का प्रयास करने लगा। किन्तु भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। कुछ समय पश्चात् शाही राज्य का अस्तित्व ही संसार से लुप्त हो गया।' (रा० ७: ४७–६७)

कल्हण शाही राज्य के पतन पर दुःख प्रकट करता है—'राजा शंकर वर्मा के राज्यकाल में शाही राज्य के विपुल वैभव का वर्णन किया जा चुका है। किन्तु उस भूखण्ड को देखकर, विचार करना पड़ता है कि वह विशाल शाही राज्य वहाँ के राजा, परिजन, मन्त्री आदि कभी वहाँ थे भी या नहीं ?' (रा० ७ : ६८–६९)

शाही वंश समाप्त हुआ। उसके साथ अफगानिस्तान का शासक हिन्दूराजवंश भी समाप्त हो गया। किन्तु शाही वंश ने अपनी गौरव गाथा, वीर गाथा, इतिहास के दुःखान्त अध्याय को बन्द कर दिया। उनके लोप होने के शताब्दियों पश्चात् लोग उन्हें स्मरण करते थे। आदर से मस्तक झुकाते थे।

कल्हण लिखता है—'शाही राजा के पुत्र रुद्रपाल आदि कश्मीर राजा के प्रियमित्र थे। अत्यधिक वेतन लेकर, वे राज्य धन का अपहरण करते थे। रुद्रपाल को प्रति दिन डेढ़लाख दीनार मिलता था।, (रा० ७ : १४६–१४६)

कल्हण शाही वंशजों के विषय में पुनः लिखता है—'रुद्रपाल ने कश्मीरराज की तरफ से दरदों तथा म्लेच्छों से युद्ध किया था। उसने शत्रु सेना को पराजित किया। म्लेच्छ अर्थात् मुसलिम राजे युद्ध में मारे गये। कालान्तर में रुद्रपाल लूता रोग से ग्रस्त होकर मर गया। अन्य शाही पुत्र भी शीघ्र ही दिवंगत हो गये।' (रा० ७ : १७४–१७८)

काश्मीर राज सभा में शाही वंशजों का आदर होता था। उन्हें कल्हण ने राजपुत्र विशेषण से सम्बोधित किया है। राजा कलश के मित्र शाही वंशीय राजपुत्र विज्ज, पित्थराज, पाज आदि थे। (रा० ७ : २:४) शाही वंश की कन्याओं का विवाह राज वंश में होता था। राजा हर्ष की रानी वसन्तलेखा शाही कुल की थी।

शाही वंश का राज्य शेष नहीं रह गया था। तथापि उनका देश में आदर था। शाही वंश के पुरुष अपनी वीर परम्परा का निर्वाह करते थे। शाही राजकन्यायें राज कार्य में भाग लेती थीं। कल्हण लिखता है—'शाही कुल में उत्पन्न रानियों ने हर्ष के पास सन्देश भेजा कि मल्लराज, राजा के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा है। उसकी यथा शीघ्र हत्या कर देनी चाहिए।' राजा ने उसकी हत्या करा दी। (रा० : ७ : १४६९, १४७०—१४८४

शाही वंश की रानियों की वीरता का उल्लेख करता कल्हण लिखता है—'जब शत्रु समीप आ गया तो रानियाँ व्याकुल हो गयीं। तत्काल शाही राज पुत्रियाँ तथा रानियाँ प्राण त्याग के लिये उत्सुक हो गयीं। हाथ में प्रज्वलित मशालें लेकर शतद्वार नामक हर्म्य चतुष्किका के ऊपर चढ़ गयीं। राजा हर्ष शत्रुओं से युद्ध कर रहा था। परन्तु उसने सन्देश भेजा कि रानियां अग्नि प्रवेश न करें। राजा शत्रुओं पर काबू न पा सका। भयातुर वह शतद्वार प्रांगण में प्रवेश किया। वह निराश था। कातर दृष्टि से राजप्रासाद पर खड़ी रानियों की तरफ देखता था। रानियों को आग न लगाने का संकेत करता था।

राजप्रासाद के प्रांगण में परिभ्रमण कर रहा था। इसी समय राजप्रासाद समीपस्थ मल्लराज के भवन में जनकचन्द्र ने आग लगा दी। पुत्र युवराज भोजदेव विजय की आशा न देखकर, कुछ अश्वारोहियों के साथ द्वार पर खड़े शत्रुओं को चीरता लोहर की ओर प्रस्थान किया। पुत्र को इस प्रकार जाता देखकर, हर्ष की आंखों में आंसू आ गये। वह उसी ओर देख रहा था, जिस ओर युवराज गमनशील हुआ था।

राजा हर्ष राजद्वार पर कुछ सैनिकों के साथ खड़ा हो गया। रानियों को आग लगाने के लिये तत्पर देखकर कुछ राजसेवक चिन्तित हुए। उन्होंने बन्द राजद्वार तोड़कर, और उनके पास पहुँचकर उन्हें मृत्यु से विरत करने का विचार किया। वे चतुष्किका तोड़ने लगे। उनका अभिप्राय रानियाँ न समझ सकीं। रानियों ने राजप्रासाद के ऊपरी खण्ड में आग लगा दी। शाही वंश की रानियाँ तथा अन्य सत्रह महिलायें रक्षा का कोई उपाय न देखकर अग्निज्वाला में कूदकर प्राण दे दीं।' (रा०: ५: १५५०—१५७१)

शाही वंशज क्षत्री तथा भूमिहार आज भी उत्तर प्रदेश तथा विहार में फैले हैं। परन्तु कितने जानते है, अपने पूर्वजों का गौरवपूर्ण बलिदान, त्याग और अपनी बहनों और माताओं का अपूर्व उत्सर्ग।

शाही लोगों की क्षत्रियों में गणना होती थी। यद्यपि मूलतः के काबुल ब्राह्मण शाही के वंशज थे। राज्य प्राप्त करने पर ब्राह्मण राजाओं तथा उनके वंशजों ने याचक वृत्ति त्याग कर अयाचक ब्राह्मण, महिवाल, त्यागी, भूमिहार एवं चितपावनों के समान हो गये थे।

ब्राह्मण राजा भी अपने नाम के साथ सिंह शब्द जोड़ते थे। वह प्रथा अभी प्रचलित है। भूमिहार आदि अपने को भूमिहार ब्राह्मण कहने पर भी कृषी जमीन्दारी एवं शासन का कार्य करते रहे हैं। शताब्दियों बीतने पर, अपने मूल रूप को भूल गये। यही कारण है कि उत्तर भारत की शाही जाति में भूमिहार ब्राह्मण तथा क्षत्री दोनों बड़ी संख्या में मिलते हैं। उनका सम्बन्ध उनके मूल स्थान से नहीं रहा, अपने घर ही में उजड़ गये अतएव उनकी परम्परा का भी लोप हो गया। वे देश में बिखर गये, बिना जाने अपना गौरवशाली इतिहास।

'ग'

प्रवरसेनपुर

(रा० : ४ : ३११)

काश्मीर की सबसे प्राचीन राजधानी पुराधिष्ठान थी। महाभारत काल से थी। उसका स्थान वर्तमान पण्डरेथन हैं। पण्डरेथन शब्द पुराधिष्ठान का अपभ्रंश है। अधिष्ठान शब्द राजधानी का पर्यायवाची है। पुराधिष्ठान के पश्चात् सम्राट् अशोक ने श्रीनगर नवीन राजधानी पुराधिष्ठान के समीप स्थापित किया। प्रवरसेन द्वितीय के समय तक यही राजधानी थी। परशियन इतिहासकारों ने बहुधा काश्मीर शब्द का प्रयोग श्रीनगर के लिये किया है। प्रवरसेन द्वितीय पितामह प्रवरसेन प्रथम की राजधानी पुराधिष्ठान में निवास करता था।

द्वितीय दिग्विजय से लौटने पर प्रवरसेन द्वितीय ने नवीन राजधानी स्थापित करने का निश्चय किया था। कल्हण ने गाथात्मक शैली में राजधानी निर्माण का वर्णन किया है।

एक समय राजा प्रवरसेन द्वितीय क्षेत्र एवं दिव्य लग्न ज्ञात करने के लिये, रात्रि काल में वीरचर्या के लिये निकला। पर्यटन करते हुए, राजा सरिता तटपर पहुँचा। वहाँ प्रान्त भाग में श्मशान था। अनन्त चिताओं के प्रकाश द्वारा तटवर्ती पादपावली भयंकर लग रही थी। नदी पार ऊर्ध्वबाहु, चीत्कार करता हुआ, महान् भूत प्रादुर्भूत हुआ। उसके प्रज्वलित दृष्टिपातों से कपिशीकृत राजा, उल्का ज्योतियों से अलंकृत, कुलाद्रि तुल्य, प्रदीप्त हुआ। भयंकर प्रतिध्वनि से, दिशाओं को व्याप्त करते हुए, निशाचर ने उच्चहास करते हुए, राजा से कहा—'भूपाल ! विक्रमादित्य, सत्त्वशाली शूद्रक, एवं आपके अतिरिक्त अन्यत्र पर्याप्त धैर्य दुर्लभ है। वसुधापते ! इस सेतु को पार कर, मेरे पास आइये। मैं तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करूँगा।'

नदी पार करने का कोई साधन नहीं था। उस राक्षस ने जानु प्रसारित कर, महासरिता का जल विभक्त कर दिया। सेतु को राक्षस के शरीर से निर्मित जानकर, वीर प्रवरसेन ने छुरिका से उसका मांस काट काटकर सोपान मार्ग निर्मित किया। राजा ने जहां नदी पार किया था, उसे छुरिकाबल कहते हैं। 'प्रातः मेरा सूत्रपात देखकर नगर निर्माण करो'—लग्न कहकर भूत तिरोहित हो गया।

राजा ने प्रातःकाल शारीटक ग्राम में बैताल पतित सूत्र देखा। देवी शारिका एवं यक्ष अट्टा से अधिष्ठित था। वहाँ भक्तिपूर्वक राजा प्रवरसेन द्वितीय द्वारा प्रवरेश स्थापना के पूर्व, जयस्वामी स्वयं मन्त्र

भेदन कर, पीठ पर आसीन हो गये। राजा ने वैताल कथित, लग्नवेत्ता स्थपति 'जय' के नाम से उसे प्रख्यात किया। राजा की भक्ति के कारण नगराभिमुख हेतु विनायक भीम स्वामी स्वयं पूर्वाभिमुख हो गये। उस राजा ने श्रीशब्दलाञ्छित सद्भवश्री आदि पाँच देवियों को उस नगर मे स्थापित किया।

राजा ने वितस्ता पर बृहत् सेतु निर्माण कराया। वह श्रीनगर में बना प्रथम नौका सेतु था। नरेन्द्र के मातुल ने जयेन्द्र विहार निर्माण और बृहद् बुद्ध की स्थापना की। मोराक नामक सचिव ने नगर में सिंहलादि द्वीपनिवासियों के लिए 'मोराक भवन' निर्माण कराया। पूर्व काल में यह ख्याति थी कि नगर में छत्तीस लाख गृह थे। जिसका सीमान्त वर्धन स्वामी एवं विश्वकर्मा का देव स्थान था। वितस्ता के दक्षिण तटपर, राजा ने सुविख्यात बाजारों से युक्त नगर निर्मित कराया। वहाँ गगनचुम्बी राजप्रासाद थे। उन पर आरूढ़ होकर ग्रीष्म काल के अन्त में वृष्टि, एवं चैत्र मास में विकसित कुसुम पूर्ण जगत् का नेत्राभिराम दृश्य देखा जाता था। पृथ्वी पर उस नगर के अतिरिक्त और कहाँ क्रीडागृह, पथों के तट तथा पवित्र एवं सुन्दर नहरें सुलभ हो सकती थीं। वहाँ के निवासी ग्रीष्म के दिन में अपने गृहों के सम्मुख प्रवाहित, तुहिन खण्ड मय वितस्ता वारि प्राप्त किया करते थे। वहाँ के अतिरिक्त और वह कहाँ प्राप्त हो सकता था? (रा० : ३ : ३३६–३६३)।

कल्हण वर्णित स्थानों द्वारा प्रवरसेनपुर की सीमा तथा स्थान निश्चित हो जाता है। महासरित वर्तमान मारी नदी है। उसे सुन्द कुल कहते हैं। वह डल से निकल कर वितस्ता में गिरती है। महाराज रणवीर सिंह के समय वितस्ता–मारी संगम पर श्मशान था। लगभग बारह शताब्दियों तक श्रीनगर का श्मशान उस एक ही स्थान पर था। कल्हण ने वर्णन किया है कि राजा उच्चल की हत्या के पश्चात् उसका शरीर दाह किस प्रकार शीघ्रता पूर्वक इसी श्मशान भूमि में किया गया था।

हुएन्त्सांग तथा चीन वंश के तंग इतिहास में प्रवरपुर का उल्लेख है। उनका वर्णन कल्हण के वर्णन से मिलता है। सातवीं शताब्दी तक प्रवरसेनपुर वितस्ता नदी के पूर्वीय तट पर विस्तृत था। प्रवरसेन के समान नवीन राजधानी कालान्तर में ललितादित्य ने परिहासपुर, जयापीड ने जयपुर, अवन्तिवर्मा ने अवन्तिपुर तथा शंकर वर्मा ने शंकरपुर में स्थापित किया था। ललितादित्य ने परिहासपुर की श्रेष्ठता प्रकट करने के लिए प्रवरपुर को भस्म करने की एक समय आज्ञा दे दी थी।

राजा प्रवरसेन के लगभग पांच शताब्दियों पश्चात् प्रवरपुर का बड़ा ही सुन्दर आँखों देखा वर्णन महाकवि विल्हण ने किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से उसे यहाँ उद्धृत कर देना उचित होगा। यह वर्णन कल्हण से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व लिखा गया था।

'महादेव एवं पार्वती के विवाह का साक्षीरूप काश्मीर देश में प्रवरपुर नगर है। वह वितस्ता के तट पर है। मधुर अंगूर का रस वहाँ सुगमता से मिलता है। प्रवरपुर ब्राह्मणों का निवास स्थान है। उत्तुंग मणिगृहों में शास्त्र व्याख्याताओं पर देवता पुष्प वृष्टि करते हैं। प्रवरपुर में विद्या का अत्यधिक प्रचार है। वहाँ की महिलायें भी मातृभाषा की तरह सुसंस्कृत श्रुति प्रिय भाषा बोलती हैं। वहाँ श्वेत अंगूर मिलते हैं। प्रवरपुर में कलियुग का प्रभाव दिखायी नहीं देता। वितस्ता के दोनों तटों पर गृहों की अवलियाँ हैं। प्रवरपुर में सुन्दर भट्टारक मठ है। पादपों की श्रेणियों से हरित एवं वाटिका गृहों की रचना वैशिष्ट्यसे प्रवरसेनपुर विलक्षण दिखायी देता है। घरों में आंगन स्फटिक के बने हैं। मेरु पर्वत के समान सारिका पर्वत प्रवरसेन पुर की शोभा है। काश्मीरियों द्वारा रचित मनोहर काव्य स्वभाव से ही मनोहर, केसर से भी अधिक

सुन्दर हैं। वहाँ के राजपथ कमनीय कलेवर नारियों की मेखला में लगे घुघरुओं के नाद से गुंजित रहते हैं। चन्दन जल द्वारा स्नान की हुई अङ्गनाओं के कपोलों के समान शुभ्र द्राक्षा स्तबकों से युक्त लता मण्डप, नन्दन वन से भी अधिक रमणीय हैं। वितस्ता सिन्धु संगम मध्य राजा अनन्त के मन्त्री हलधर द्वारा स्थापित ब्राह्मणों के अग्रहार हैं। प्रवरपुर में कोई ऐसा उपवन अथवा वन नहीं है, जहां क्रीड़ा सर नहीं है। प्रवरपुर का विद्या मठ नगर का अलंकार है। वह गौरव एवं कीर्ति का स्थान है। प्रवरपुर के प्रान्त भाग में सोमगुप्त द्वारा निर्मित क्षेम गौरीश्वर का मन्दिर है। वह आकाश स्वरूप अंगना के आभूषण सदृश लगता है। उसके मण्डप में सुन्दरियाँ नाट्य प्रयोग में रमणीय अभिनय करती, योगियों को भी रोमांचित कर देती हैं। उसमें राजा संग्राम द्वारा निर्मित नेत्राभिराम मठ है। वितस्ता तट प्रान्त में राजा अनन्त द्वारा स्थापित वृत्ताकार मुक्ताहार तुल्य अग्रहार हैं।

'काष्ठील ब्राह्मणों की शब्दायमान खिड़कियों से परिलक्षित शास्त्र गोष्ठियाँ हैं। वहाँ प्रातः एवं सायं काल आहुति द्वारा उत्पन्न धूम्र रेखा कलियुग को भयभीत करती है। महाराज अनन्त की रानी सुभटा द्वारा निर्मित उत्तुंग गौरीश्वर मन्दिर के समीप अन्नागार है। वहां कबूतरों के मुक्त कण्ठों से उद्भूत ध्वनि का अनुकरण करती पुरबालाएँ शब्दानुकरण में प्रवीण हो जाती हैं।

'प्रवरसेनपुर में राजा प्रवरसेन द्वारा निर्मित महादेव मन्दिर है। उस मन्दिर में सशरीर स्वर्गारोहण करने वलि प्रवरसेन के गमन हेतु छिद्र अभी दिखायी देता है। प्रवरसेनपुर की नारियों की नृत्य कला देखकर रम्भा एवं चित्रलेखा अप्सराएँ आश्चर्य चकित हो जाती हैं। शीत काल में केसर के लेप एवं कस्तूरी सुगन्ध युक्त राङ्कव से उष्मा प्राप्त करती स्त्रियों तथा उष्ण स्नान गृहों से नगर सुशोभित है। प्रवर-पुर से तीन कोस की दूरी पर जयवन नामक उत्तुंग चैत्यस्थान है। वहां तक्षक का स्वच्छ जलपूरित सरोवर है। जयवन के समीप खोनमुष नामक ग्राम है। उस खोनमुष गांव के एक भाग में केसर तथा दूसरी ओर पाण्डु वर्ण अंगूर होते थे। उस ग्राम में कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण निवास करते हैं। गोपादित्य राजा ने मध्य देश के भूषणस्वरूप, उन ब्राह्मणों को काश्मीर का भूषण बनाया था। उन ब्राह्मणों के यज्ञ के धूम से आकाश धूमिल हो जाता है। मुक्तिकलश उन ब्राह्मणों का कुलपति था। उसका पुत्र राजकलश था। राजकलश ने स्थान-स्थान पर अंगूरों से पूर्ण उद्यानों में निर्मल जल कूप एवं शास्त्र व्याख्या हेतु गृहों का निर्माण कराया था। उसका पुत्र ज्येष्ठकलश था। और ज्येष्ठ कलश का पुत्र महाकवि विल्हण है।' राजा अनन्त की रानी ने अधिष्ठान मध्य सुभटा मठ की स्थापना की थी। उसने वितस्ता तट पर गगनचुम्बी शिव मन्दिर का निर्माण कराया था।

प्रवरसेनपुर चीनी इतिवृत्त में वो-लो-आप-लो लिखा गया है। लगभग आठ शताब्दी पश्चात् भी प्रवरपुर अपने पूर्ण गरिमा में तत्कालीन विश्व में विख्यात था। प्रवरपुर, प्रवरसेनपुर आदि एक ही नगर के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

'घ'

डामर

(रा० : ४ : ३४८)

डामर शब्द अनेकार्थक है। बराहमिहिर ने संहिता में इसका उल्लेख किया है। अलबेरुनी ने

डामर को एक देश माना है। भारत के ईशान दिशावर्ती देश में कीर, काश्मीर, शारदा, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध, राष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्व, डामर, बनराज, किरात, खश, घोष, आदि देशों के साथ डामर का उल्लेख किया गया है। वर्णन क्रम में दार्व तथा बनराज के मध्य डामर लिखा है। इससे प्रकट होता है कि डामर काश्मीर के पश्चिमोत्तर सीमावर्ती निवासी थे।

डामर का देश रूप में वर्णन किया गया है। अतएव वहाँ के निवासी डामर कहे जा सकते हैं। डामर का शाब्दिक अर्थ डरावना, भयावह, भयानक होता है। यह कहना गलत होगा कि डामर शब्द का प्रयोग संस्कृत साहित्य में नहीं होता था। संस्कृत साहित्य डामर शब्द से अपरिचित नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों को इस सम्बन्ध में भ्रम हुआ है। मालती माधव में उल्लेख है—'पर्याप्तं मयि, रमणीयडामरत्वं संधत्ते गगनतलप्रमाणवेगः।' (५ : ३) गीत गोविन्द में भी डामर शब्द का प्रयोग किया गया है—'रति-जलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डकडामरे—' (१२) स्पष्ट है कि दंगा, हुड़दंग, होहल्ला, फसाद, हंगामा करने वालों की संज्ञा डामर से दी जाती थी।

डामर एक तन्त्र भी है। उसके छह भेद—योग डामर, शिव डामर, दुर्गा डामर, सारस्वत डामर, ब्रह्म डामर, और गन्धर्व डामर हैं। यह उनचास भैरवों में से एक है। ब्रज भाषा में 'डामरी' शब्द ब्रज नारियों के लिये प्रयुक्त किया गया है—'गाय उठीं ब्रज डामरियाँ'—(प्रेमघनः भा : २ : पृष्ठ : १८८) काश्मीर के बाहर भी डामर शब्द ज्ञात था। यह कहना उचित नहीं है कि यह शब्द लौकिक काश्मीरी है।

काश्मीर के डामरों की कुछ विशेष परिस्थिति थी। वे भूमि स्वामी थे। जमीन्दार, जागीरदार, सरदार किंवा सामन्त के समकक्ष थे। ग्रामीणों में भूमि पर निर्वाह करने वाला कुलीनों का वर्ग था। उनका स्तर राजपूतों के समकक्ष नहीं मालूम होता। परन्तु उनका विवाह सम्बन्ध क्षत्रियों तथा राजवंशों में होता था। कोई भी सफल कृषक डामर वर्ग में सम्मिलित हो सकता था।

कल्हण जातियों के विषय में कम परिचय देता है। जात-पाँत का बन्धन काश्मीर में कभी कठोर नहीं था। अतएव कल्हण तथा उत्तरकालीन लेखकों ने जात-पाँत का न तो उल्लेख किया है और न उसे महत्त्व ही दिया है।

कल्हण के एक शताब्दी पूर्व क्षेमेन्द्र ने डामर का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् सभी पुरावृत लेखकों ने डामर शब्द का प्रयोग किया है—डामर, डामराधिपति; तन्त्रपतिः, आदि।

डामर जाति किंवा वर्ग का उल्लेख कल्हण तथा सभी राजतरंगिणीकार करते हैं। परन्तु किसी ने डामर शब्द की परिभाषा नहीं की है। उनके विषय में कुछ परिचय नहीं दिया है। साधिकार नहीं लिखा जा सकता कि डामरों का मूल रूप क्या था। प्रतीत होता है। डामर शब्द इतना प्रचलित एवं साधारण था कि उसकी परिभाषा किंवा भाष्य करने की आवश्यकता नहीं समझी गयी।

विलसन के मत से डामर एक उत्पाती जाति थी। काश्मीर में आकर बस गयी थी। परन्तु यह मत मान्य नहीं है। सेण्टपीटर्स कोश में डामर का अर्थ झगड़ालू तथा विद्रोही किया गया है। प्रोफेसर एच० कर्ण ने डामरों के लिये 'बोजर' शब्द का प्रयोग किया है। उसका अर्थ अंग्रेजी में फ्यूडल लैण्ड लार्ड वा वैरन तथा भाषा में जमीन्दार या भूमि स्वामी, सामन्त हो सकता है।

डामरों का प्रथम बार उल्लेख कल्हण रा० : ४ ३४८ में करता है। ललितादित्य का वसीयत नामा अथवा इच्छापत्र इस सन्दर्भ में महत्त्वपूर्ण है। उसमें डामर शब्द का उल्लेख किया गया है—

'यदि कृषकों के पास आवश्यकता से अधिक धन या कृषि रहने दी जायगी, तो एक ही वर्ष में मजबूत डामर बन जाँयगे। राज्याज्ञा उल्लंघन करेंगे।'

दूसरा उल्लेख डामरों का अवन्तिवर्मा के प्रसंग में मिलता है। (रा० : ५ : ४८) धन्व एक शक्तिशाली डामर, लहर प्रदेश में था। वह भूतेश्वर पर चढ़े अग्रहार किंवा देवोत्तर सम्पत्ति का स्वयं उपभोग करता था। अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर के सन्देश पर सन्देश, भेजने पर, वह आया। उसके साथ शस्त्रधारी सैनिक थे। इससे प्रकट होता है। डामर लोग उस समय शक्तिशाली थे। वे कृषक वर्ग के कुलीन सामन्त तुल्य थे। उनसे राज्य शासन सर्वदा भयभीत रहता था।

डामर किस प्रकार शक्तिशाली हो गये थे, इसका पता संग्राम के कथानक से मिलता है। (रा० : ५ : ३०६) राजा चक्रवर्मा जब तन्त्रियों द्वारा राज्य च्युत कर दिया गया, तो वह संग्राम डामर को सहायता के लिये, उसके निवास स्थान पर पहुँचा। संग्राम मडव राज्य में निवास करता था। राजा चक्रवर्मा संग्राम तथा अन्य डामरों की सहायता से पुनः राज्य प्राप्त किया। डामर जिनका उल्लेख सामन्त रूप में किया गया है, तन्त्रियों को पराजित किये थे। (रा० : ५ : ३९५) चक्रवर्मा ने डामरों में षड्यन्त्र द्वारा भेद डाल दिया। परन्तु वह डामरों द्वारा मारा भी गया। (रा० ५ : ४०५) राजा उम्मतवन्ती तथा रानी दिद्दा के समय डामर शक्तिशाली एवं उच्छृंखल हो गये थे। (रा० : ५ : ४४ ; ६ : ३५४) उनके दमन का उल्लेख सैनिक अभियानों द्वारा मिलता है।

लोहर वंश राज्य काल में डामरों की शक्ति तथा उनका प्रभाव बढ़ गया था। वे राजाओं के उलटने और शासन में हस्तक्षेप करने लगे थे। संग्राम राज तथा राजा उत्कर्ष के काल में राजस्थान के जागीरदारों अथवा अवध के तालुक्केदारों तुल्य उनकी स्थिति अर्ध स्वतन्त्र सामन्तों के समान राज्यान्तर्गत थी। डामर पिता के विरुद्ध पुत्र तथा पुत्र के विरुद्ध पिता को उभाड़ने की की दुर्बलता का लाभ उठाकर, वे यूरोप के फ्यूडल लार्डों के समान हो गये थे। राज्याधिकारी समय-समय पर डामरों के विरुद्ध सैनिक अभियान करते दिखायी पड़ते हैं। (रा० ७ : १५४,)

कल्हण तथा अन्य काश्मीरी लेखक डामरों के इतिहास तथा उनके मूल रूप पर कोई प्रकाश नहीं डालते। तथापि कल्हण के वर्णन से कुछ प्रकाश डामरों पर पड़ता है।

जयक एक चतुर व्यक्ति सेल्यपुर निवासी था। अपनी प्रतिभा तथा शक्ति से डामर हो गया था। भूमि की आय तथा व्यापार से यथेष्ट धन एकत्रित कर लिया था। सुरक्षा की दृष्टि से मुद्रा भूमि में गाड़ दिया था। राजा कलश ने उसकी सम्पत्ति का हरण कर लिया। तथापि उसके पास इतना धन बच गया था कि वह सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता था। इस वर्णन से प्रकट होता है। कोई भी व्यक्ति डामर हो सकता था। परन्तु यह निर्विवाद है। उसका सम्बन्ध भूमि से अवश्य होना चाहिए था। एक समय तो काश्मीर की प्रायः समस्त भूमि डामरों के अधिकार में आयी थी। लक्ष्मण चन्द्र एक डामर था। दुग्धघाट के दुर्ग में रहता था। वह दरद देश से काश्मीर में आने वाले सीमान्त मार्ग का प्रहरी था। (रा० : ७ : ११७१) राजा कलश के आदेश पर उसका बध कर दिया गया था। (रा० : ७ : ११७१) कालान्तर में उस पर्वती दुर्ग को उसकी स्त्री ने राजा कलश को देने की इच्छा प्रकट की। राजा कलश ने दुर्ग नहीं लिया। दरद राज का उसपर अधिकार हो गया। राजा हर्ष ने दुर्ग पर पड़ोसी डामरों की सहायता से अधिकार किया। कल्हण के इस वर्णन से प्रकट होता है। डामरों का उत्तराधिकार दुर्ग तथा भू संपत्ति

एवं अधिकारों के साथ उनके उत्तराधिकारी को जाता था। दुर्ग आदि के वे खान्दानी अधिकारी जागीर-दारों के समान हो गये थे।

हर्ष ने डामरों का दमन किया। राजसत्ता को मजबूत बनाना चाहा। (रा० ७ : १२२७) हर्ष राज कार्य में डामरों का प्रभाव समाप्त करना चाहता था। डामरों के प्राबल्य के कारण काश्मीर के राजा उनके कठपुतली बन गये थे। काश्मीर उपत्यका के पूर्वीय खण्ड के डामरों के उत्पाटन के सन्दर्भ में कल्हण ने लवण्यों का भी उल्लेख किया है। कभी कभी भ्रम हो जाता है। डामरों के लिये कहीं कल्हण लवन्य शब्द का प्रयोग तो नहीं कर रहा था ? (रा० : ७ : ११२८; १२२९, १२३६, १२३७, १२४५)

राजा हर्ष सफल नहीं हो सका। डामर उच्चल तथा सुस्सल की सहायता से राजा हर्ष का शासन तथा जीवन समाप्त किये थे। तत्पश्चात् काश्मीर का केन्द्रीय शासन डामरों एवं लवन्यों द्वारा शासित भूखण्ड की शक्ति के कारण दुर्बल हो गया। उनके उत्पात से गृह युद्ध की स्थिति सर्वदा बनी रहती थी। (रा० : ८ : १२६३)। कल्हण ने डामरों के लिए 'दस्यु' शब्द का प्रयोग किया है। (रा० ७ : ५७२ : ८ : ७९५, ८१६, ११५७. १४४५)। उनके कारण अन्तिम मुगल सम्राटों के समान काश्मीर के राजाओं का शासन श्रीनगर के आस-पास तक ही सीमित रह गया था। गंगनचन्द्र डामर राजा को बनाने और बिगाड़ने वाला हो गया था। राजाओं ने भी अपनी रक्षा तथा शक्तिवृद्धि के लिए एक डामर कुल अथवा सरदार को दूसरे से लड़ाकर, उनकी शक्ति दुर्बल कर, अपनी शक्ति सुदृढ़ करने का सर्वदा प्रयास करते थे। सुस्सल डामरों को उनके मजबूत स्थानों पर सैनिक घेरा डालकर, एक दूसरे के विरुद्ध खड़ाकर, दमन करने में सफल हुआ था। (रा० ८ : १५ : ४१५, ५८८, ६५१, ८०१)।

कल्हण ने डामरों के स्थानीय चरित्रों का चित्रण किया है। उनकी शक्ति स्थानीय थी। वे एक दूसरे का दुर्ग तथा कोट लेने के लिए परस्पर संघर्ष करते थे। उन्हें कल्हण ने कभी-कभी लवन्य भी लिखा है। लवन्य वर्तमान मुसलिम क्रम लुन हैं। (रा: ७ : १६३१, ८ : ४२४, ३११५, ७३३, १४३०,१०२२, ३९१, १५१, २७४९)।

कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है। डामरों का निवास स्थान अत्यन्त उपजाऊ खेतों के समीप होता था। वे ऐश्वर्य पूर्ण जीवन यापन करते थे। उनका उपनिवेश अर्थात् निवास स्थान सैनिक दृष्टि से सुरक्षित और मजबूत होता था। (रा० ७। १२५४; ८। १०७०) कल्हण उनके असंस्कृत आचरण, व्यवहार तथा शक्ति मिलने पर अत्यन्त व्ययी कुप्रवृत्ति का वर्णन करता है। (रा० ८:८५६; १५३५, १५४५) डामरों के नगर निवास का कम उल्लेख मिलता है। वे नगरों की सीमा पर, अथवा कुछ दूर रहते थे। वे नागरिकों के समान नहीं, बल्कि शस्त्रधारी कृषकों के समान लगते थे। (रा० : ८ : ७०९) कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है। डामर स्त्रियाँ शुद्ध आचरण नहीं होती थीं। जब डामर कोष्ठक युद्ध में घायल होकर, वीर गति प्राप्त किया, तो उसकी स्त्री उसके साथ सती हो गयी थीं। इस घटना को कल्हण बहुत महत्त्व देता है। कोष्ठक की पत्नी के चरित्र की प्रशंसा करते हुए, कल्हण लिखता है—'उसका यह आचरण कुलीन क्षत्री वंश की कन्या होने के कारण था।' इससे निष्कर्ष निकलता है। डामरों का विवाह सम्बन्ध क्षत्रियों से होता था। कालान्तर में उन्होंने विवाह सम्बन्ध काश्मीर के राजकुल में भी कर लिया था। (रा० ८ : ४५९; ९९५३) कल्हण ने डामरों को अशिष्ट आचरण युक्त तथा खर्चीला चित्रित किया है।

क्षेमेन्द्र ने समयमातृका तथा लोकप्रकाश में डामरों का उल्लेख किया है। उसने उन्हें सम्पन्न, धनी तथा प्रभावशाली कुलके रूपमें चित्रित किया है। (समयमातृका : २ : २१;)।

द्वितीय राजतरंगिणी का लेखक जोनराज है । उसने सन् ११४९ ई० से सन् १४५० ई० का इतिहास लिखा है। डामरों के सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रकाश नहीं डालता। उसने चन्द्र डामर का उल्लेख किया है (श्लोक : ४०२) चन्द्र भी इस स्थल पर सैनिक रूप में चित्रित किया गया है। वह शस्त्रोपजीवी था। जोनराज ने डामर और लवन्य दोनों को समानार्थी मान लिया है।

तृतीय राजतरंगिणी के लेखक श्रीवर ने डामरों का कल्हण के समान अधिक उल्लेख किया है। हिन्दू राज के पतन के कारण अनियन्त्रित तथा उच्छृंखल डामरों का पारस्परिक एवं गृह संघर्ष होता था। मुसलिम शासन स्थापित होने पर, डामरों का पूर्ण रूपेण दमन किया गया। उन्होंने मुसलिम धर्म स्वीकार कर लिया।

मुसलिम काल में डामरों ने महत्त्व पूर्ण भाग काश्मीर की राजनीति में लिया है। श्रीवर उनका प्रचुर उल्लेख करता है (द्रष्टव्य जोन : राज० : १ : १, ९४, ४ : २३२, ४१२, ५३९, ५४४, ४९०, ६०१, ३३९) आदि। श्रीवर ने भी उन्हें सशस्त्र सैनिक रूप में, दंगायी रूप में, चित्रित किया है। उन्हें डामरेश, डामरेन्द्र आदि विशेषणों सहित सम्बोधित करता है।

चतुर्थ राजतरंगिणीकार शुक ने डामरों का प्रचुर उल्लेख किया है। फारसी में इतिहास लिखने की परंपरा आरम्भ हुई। उसमें डामरों को 'डग्रे' लिखा गया है। डागर शब्द का भी फारसी इतिहास में प्रयोग किया गया है। डामर लोग हिन्दुस्तान के बाहर भी रहते थे। काश्मीर के सुल्तान तथा उनके मन्त्री लोग इच्छानुसार अपनी मदद के लिये उन्हें बुला लेते थे (शुक: ४२, ४५) पीर हसन ने उनका डागरे नाम से सम्बोधन किया है। डामरों का एक सैनिक वर्ग ही मुसलिम काल में बन गया था। (शुक० : ४६-५१) शुक ने उन्हें उत्पाती, अराजक रूप में चित्रित किया है। शुकने भी डामर राजान तथा डामरेन्द्र विशेषणों के साथ उनका उल्लेख किया है। इससे प्रकट होता है कि शुक के समय भी डामर लोगों का प्रतिष्ठित वर्ग था राजनीति में सक्रिय भाग लेता था। अपने शक्तियों का समय समय पर प्रदर्शन करता था।

सातवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक अर्थात् ९ शताब्दियाँ बीत जाने पर भी डामरों का चरित्र एवं व्यवहार वही था जैसा कल्हण ने उनका चित्रण किया है। मुसलमान हो जाने पर, उनकी प्रकृति में किंचित् मात्र अन्तर नहीं हुआ था। वे सर्वदा लड़ते-भिड़ते और मुसलिम सुल्तानों के लिए भी हिन्दू राजाओं के समान शिरदर्द थे। (द्रष्टव्य: शुक: १ : ४२, ४५, ४६,–५१, ५५, ५६, ६४) मुगल शासन स्थापित होने पर डामरों की शक्ति लोप हो गयी। मुगलों के व्यवस्थित एवं संघटित सैनिक शक्ति के आगे वे कुछ न कर सके।

'ङ'

प्रयाग

वितस्ता-सिन्धु-संगम

(रा० : ४ : ३९१)

काश्मीर का प्रयाग जमुना-गंगा के संगम के समान वितस्ता-सिन्धु संगम है। वितस्ता की

सबसे बड़ी सहायक नदी काश्मीरी सिन्धु नदी है। यह महानद सिन्धु नहीं है। काश्मीरी महाकवि मंख के अनुसार प्रयाग संगम शिव का प्रिय स्थान है। (श्री कण्ठ : ३ : २०) काश्मीर में सिन्धु को यमुना कहते हैं। सिन्धु नदी द्रस उपत्यका तथा हरमुख पर्वत के उत्तर पूर्व क्षेत्रों का जल ग्रहण करती है। यह दरास या द्रस के पर्वतों से निकलती है। सोन मर्ग, कंगन, गन्दर बल होती वितस्ता जिसे वेहुत, झेलम जल्मु कहते हैं, प्रयाग में मिल जाती है।

नील मत पुराण के अनुसार यह प्रयाग तीर्थ स्थान है—

वितस्तां तु सरिच्छ्रेष्ठां सर्वकल्मषनाशिनीम्।
गंगा सिन्धुस्तु विज्ञेया वितस्ता यमुना तथा। (२९५ = ३९४)
स प्रयागसमो देशस्तयोर्यत्र तु संगमः।
गंगातोयमथादाय गंगां तु यमुनाऽब्रवीत्॥ (नी० : २९६ = ३९६)

प्रयाग संगम (इलाहाबाद) के किला में वट वृक्ष की पूजा होती है। काश्मीर के प्रयाग में भी चौतरे पर लगा वृक्ष, वट वृक्ष के समान पूजनीय हो गया है। श्रीनगर से उत्तर पश्चिम नव मोल पर संगम है। स्थान रम्य है। मैंने यहाँ को कई बार यात्रा की है। संगम स्थित वृक्ष के नोचे बैठा घण्टों काश्मीर के इतिहास, उसके अतीत गौरव का स्मरण करता रहा हूँ।

संगम पर दाह संस्कार पुण्य माना जाता है। स्वर्गीय श्री जवाहरलाल जी के भस्म प्रवाह के लिए मैंने संगम भी एक स्थान श्रीमती इन्दिरा गान्धी को बताया। वहाँ पण्डित जी के कुछ भस्म का प्रवाह हुआ था।

इस समय संगम एक बड़े ग्राम शादीपुर के नाम से प्रख्यात है। वह वास्तव में शहाबुद्दीनपुर है। जोनराज द्वारा इसकी स्थापना के विषय में प्रकाश पड़ता है—'सुलतान शहाबुद्दीन ने सन् १३५४-१३७३ में उसकी स्थापना की थी। उस राजा ने निर्माण को अपनी उदारता के अनुरूप न देखकर, वितस्ता सिन्धु संगमपर अपने नाम से पुरी बसायी। उस पुरी के प्रतिबिम्ब के ब्याज से स्वर्गपुरी ही मानो जल में निमज्जित हो रही थी, (जोन : ४११)।

पुराने परशियन इतिहासकारों ने शहाबुद्दीनपुर का नाम शादपुर भी लिखा है। कल्हण तथा जौनराज के समयों में दो शताब्दियों का अन्तर है। इस मध्यवर्ती काल और अब की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आज जोनराज को द्वितीय राजतरंगिणी की रचना किये भी पाँच शताब्दियाँ बीत गयीं। संगम यथा स्थान यथावत् सुरम्य एवं दर्शनीय है। केवल एक ही अन्तर पड़ा है। हिन्दू देवस्थानों का लोप हो गया है। हिन्दुओं की आबादी नगण्य है।

जनश्रुति है। गंगा यमुना, सरस्वती तीन नदियों के संगम के कारण प्रयाग त्रिवेणी कहा जाता है। शादीपुर अर्थात् काश्मीर के प्रयाग में भी तीन नदियों का संगम होता है। पश्चिम-उत्तर से एक नोर अर्थात् नाला आकर शादीपुर के समीप मिलता है। उत्तर-पूरब से सिन्धु और वितस्ता गम्भीर गति से बहती आती है। उत्तर पश्चिम संगम का जल ग्रहण करती चली जाती है। सिन्धु का जल गंगा जल की तरह उज्ज्वल तथा वितस्ता का कुछ कम उज्ज्वल होता है। दोनों के जलों के रंग में उसी प्रकार अन्तर प्रतीत होता है, जैसे प्रयाग में गंगा एवं यमुना के जलों में मिलता है।

शादीपुर के दक्षिण-पश्चिम त्रिगामी है। वैन्य स्वामी त्रिगामी के दक्षिण पश्चिम तथा विष्णु स्वामी परिहासपुर एवं गोवर्धन धर स्थान के क्रमशः दक्षिण-पश्चिम पड़ते हैं।

वितस्ता के उत्तर पश्चिम अन्दर कोट, द्वारावती, जयपुर तथा अभ्यन्तर कोट क्रम से पड़ते हैं। पूर्व काल में उक्त नोर नौ परिवहन के काम में आता था। श्रीनगर से वितस्ता में नाव चलती शादीपुर पहुँचती है। उक्त नोर द्वारा जो शादीपुर में वितस्ता से मिलता है नावें सोपुर तक पहुँच जाती थीं। नावों को ऊलर का खतरा नहीं उठाना पड़ता था।

शादीपुर स्थान सुन्दर है। सुरम्य है। यहाँ बैठ कर चिन्तन करने पर, काश्मीर का इतिहास जैसे मूर्तमान खड़ा हो जाता है।

संगम का स्थान तथा नदियों की धारा महाराज अवन्ति वर्मा के समय से यथावत् अपने स्थान पर है। उनमें परिवर्तन नहीं हुआ है। कल्हण की भविष्यद्वाणी सत्य बताती है—'सुय्य के उपक्रमानुसार कल्प क्षय में भी, अनश्वर, उन दोनों नदियों का वह संगम आज नगर के समीप है।' (रा : ५ : ९८) उस समय सुय्य ने नदी को बान्धकर वितस्ता की धारा मोड़ दी थी। वह आज भी यथावत् है। बान्ध भी पूर्व स्थिति में स्थित हैं। वह प्रमाणित करता है—हिन्दू कालीन अभियन्ताओं का कौशल, निर्माण कला एवं दूरदर्शिता।

सुय्य के पूर्ववर्ती वितस्ता मूल धारा के अध्ययन के लिये त्रिगामी स्थान का अध्ययन आवश्यक है। कल्हण लिखता है—'उसने परिहास केशव को मध्यस्थ मान कर गौडराज का तीक्ष्ण पुरुषों द्वारा वध त्रिगामी में करा दिया' (रा : ४ : २२३)। त्रिगामी वर्तमान ग्राम त्रिगूम है। परसपोर परगना में है। परिहास ध्वन्सावशेषों के मन्दिरसे लगभग डेढ़ मिल उत्तर-पूर्व है। कल्हण लिखता है—'त्रिगामी के वाम भाग से सिन्धु एवं दक्षिण से वितस्ता जाती हुई पूर्व काल में वैन्य स्वामी के समीप संगम प्राप्त करती थी; (रा० : ४ : ९७)

त्रिगामी वितस्ता के पश्चिम ओर है। उससे परसपोर अधित्यका की ओर फैली उपगामी की श्रृंखला है। उनका नाम गुन्देखलील, परेपुर, मालिकपुर है। क्रालपुर, गूरीपुर, उतर खाबु पश्चिम तथा जेरपुर दक्षिण हैं। उत्तर में नोर है।

त्रिगाम तक दक्षिण पश्चिम से एक छिछली कछार भूमि आकर मिलती है। वह लगभग एक चौथाई मिल चौड़ी है। उसमें पूरे वर्ष बँधा जल भरा रहता है। वह कछारी भूमि जेरपुर से क्रमशः तीन चौथाई मील दूर होती, दक्षिण पश्चिमी मालिकपुर ग्राम तक पहुँचती है।

मालिकपुर के समीप बदर हिल नाला से मिलती है। बदरहिल नाला विष्णुस्वामी और वैनस्वामी के दक्षिण तथा परिहासपुर के अधित्यका के मध्य है। परिहासपुर अधित्यका से नाला उत्तर है। वह परसपोर अर्थात् परिहासपुर की अधित्यका को त्रिगामी से अलग करता है।

मालिकपुर के मकानों के पीछे दक्षिण दिशा में मन्दिर का तल मिला है। मन्दिर सैय्यद अहमद किरमानी की ज़ियारत में परिणत कर दिया गया है। मूलतल अलंकृत शिलाखण्डों पर बना है। भूमि तल से कुछ ऊपर उठी दीवाल पर वर्गाकार मन्दिर है। मन्दिर का तल पूर्व से पश्चिम लगभग ६८ फीट है। श्री स्तीन को यहाँ मन्दिर तल के समीप तथा जियारत के प्राकार के अन्दर शिवलिंग का अधिष्ठान स्तम्भ, मूर्धा तथा अन्य शिलाखण्ड बिखरे मिले थे। वे भग्न मूल मन्दिर के थे। स्थानीय ब्राह्मणों में जनश्रुति प्रचलित है। यही वैन्य स्वामी का मन्दिर था।

परिशिष्ट

कल्हण के वर्णन से प्रकट हो जाता है कि वितस्ता की पूर्व धारा की गति किस ओर थी। यहाँ पर दक्षिण पश्चिम की ऊँची भूमि पर यदि खड़े होकर शादीपुर की तरफ देखा जाये तो बाएँ तरफ कछारी भूमि पड़ती है जो उत्तर पश्चिम त्रिगामी की तरफ जाती है। तथा दाहिनी तरफ बद्रहिल नाला पड़ता है। त्रिगामी तथा परिहासपुर की अधित्यका को अलग करता है। बाएँ ओर की कछारी भूमि ही सिन्ध की प्राचीन धारा थी। इसी प्रकार बद्रहिल नाला ही वितस्ता की प्राचीन धारा थी।

कल्हण वर्णन करता है कि दोनों नदियाँ पूर्व काल में वैन्य स्वामी के मन्दिर के समीप मिलती थीं। ग्रामीणों से पता चला है कि जेरपुर के दक्षिण पश्चिम जिस कछारी भूमि का अन्त हो जाता है, वह कुछ ही पीढ़ियों पूर्व और आगे बढ़ती गुन्द खलील के पास तक उत्तर पूर्व तक चली जाती थी। पानी के बढ़ाव तथा तटीय भूमि के कटाव के कारण कछारी भूमि का पट जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इससे प्रमाणित होता है। वह एक सूखा नाला है। उसे 'सेर' कहते हैं वह गुन्द खलील के मकानों के पश्चिम होकर जाता है। उसे कुछ और दूर उत्तर पूर्व की ओर शादीपुर की तरफ देखा जा सकता है। नोर संगम के ठीक दूसरी तरफ अर्थात् वितस्ता के पार पश्चिम ओर पड़ता है। वह दक्षिण पश्चिम में करीब आधा मिल बहता है। एक तिहाई मील अन्दर ही गुन्द खलील से नोर उत्तर पश्चिम की ओर मुड़ जाता है। काश्मीर में गुन्द पुराने मुगल बाँध में घिरे भूमि को कहते थे।

बद्रहिल नाला के तटों का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि वह किसी पुरानी नदी का पेटा था। स्थानीय ग्रामीण आज भी कहते हैं कि किसी समय वहाँ नदी बहती थी। बद्रहिल नाला सबसे कम लगभग ३२० गज चौड़ा है। अन्य स्थानों पर अधिक चौड़ा है। यह पूर्व में पंजनोर नम्बल की बड़ी कछारी भूमि और हारतथ किंवा हारतीर्थ को कच्छभूमि से जोड़ता है। वह स्रोत प्रायः सूखा रहता है। पंजनोर नम्बल में जब वितस्ता का पानी भर जाता है, तो इसी से निकल कर जल बह जाता है। एक बड़ा बाँध बद्रहिल नाला के आर पार बनाया गया है। इसे कन्वे सुथ कहते हैं। परिहासपुर त्रिगामी अधित्यका को जोड़ता है। पुरातन मन्दिरों, मठ एवं बिहारों के अलंकृत तथा अन्य शिलाखण्डों से बनाया गया है। परिहासपुर के वर्णित देवस्थानों में प्रचुर पत्थर बिखरे आज भी पड़े हैं। मैंने उनका विस्तार से वर्णन 'परिहासपुर' परिशिष्ट 'जोनराज तरंगिणी' में किया है।

ग्रामीणों का कहना है कि नाला पर पुल पठानों के समय बनाया गया था। उससे दो काम होते थे। वह दोनों अधित्यकाओं परिहासपुर एवं त्रिगामी को जोड़ता है तथा पंजनोर नम्बल का बढ़ा जल उदन सर में जाने से रोकता है। यह 'सुथ' अथवा 'सेतु' या पुल इस समय नष्ट प्राय है। सेतु में लगे मन्दिरों के अलंकृत पत्थर इस बात को प्रमाणित करते हैं कि सिकन्दर बुत शिकन के परिहासपुर स्थित देवस्थानों के नष्ट करने के पश्चात् का निर्माण है। इस सेतु के उत्तर पश्चिम गहरा उदन सर है। गांव वालों का कहना है कि पूर्वकाल में उदन सर बहुत दूर तक फैला था।

बद्रेहिल नाला ही 'वितस्ता' की प्राचीन धारा का स्थान है। जिसे मोड़कर सुय्य ने धारा प्रवाह बदलकर वर्तमान रूप में किया है। वह बात पंजिनोर नाला पर बढ़ते त्रिगामी एवं परिहासपुर अधित्यका के पूर्वीय भाग को देखने से और स्पष्ट हो जाता है। यहाँ की भूमि वितस्ता नदी के जल स्तर से नीची है। उसकी रक्षा सर्वदा बाँध बनाकर की जाती है। श्री विलसन के वर्णन से वह और स्पष्ट हो जाता है कि

पंजनोर नम्बल से ही वितस्ता की पुरानी धारा बहती थी। विलसन लिखते हैं—पंजनोर के समीपवर्ती निवासियों को सर्वदा बाढ़ का भय बना रहता था। भूमि झेलम के जल स्तर से नीची है। सुखनाग नदी तथा दक्षिण कछार पर बाँध बनाना खेती के लिये आवश्यक हो जाता है। धारा परिवर्तन से कृषि के लिए भूमि उपयोगी निकल आयी है। धारा परिवर्तन के कारण सिन्धु तथा वितस्ता का जल नियन्त्रित रूप से उत्तर में जाने लगा। उत्तर में यथेष्ट भूमि परावृत अर्थात् रिक्लेम कर ली गयी है। उसे कुण्डल कहते हैं। कल्हण लिखता है—'पालियों से जल निरुद्ध कर, कुण्ड सदृश जिन्हें निर्मित किया था, सर्वान्त समृद्ध, उन्हें आज लोग कुण्डल कहते हैं।' (रा : ५ : १०६) सुय्य द्वारा वितस्ता धारा परिवर्तन के कारण भौगोलिक स्थिति में परिवर्तन हो गया था। कल्हण उसका वर्णन करता है—'संगम के दोनों तट पर फूलपुर एवं परिहासपुर स्थित विष्णु स्वामी एवं वैन्य स्वामी आज भी है। किन्तु सुन्दरी भवन के समीप आज भी तट पर सुय्य अभ्यर्चीत योगशायी हृषीकेश विष्णु हैं।' (रा० : ५ : ९९-१००)

योगशायी विष्णु का मन्दिर सिन्धु के उत्तरीय तट पर नरायण बाग के उत्तर पश्चिम तथा वितस्ता के पूर्व एवं संगम के ठीक उत्तर पड़ेगा। योगशायी विष्णु का पुनः उल्लेख नहीं मिलता। सुय्य ने मन्दिर का निर्माण कराया था। नरायण बाग के समीप वितस्ता के दाहिने तट पर एक मन्दिर का ध्वन्सावशेष मिलता है।

मैं जब यहाँ आया था तो यहाँ दो नवीन मन्दिर थे। मन्दिर के समीप ही एक टीला अर्थात् ढूहा की ऊँची जमीन थी। मन्दिरों के अलंकृत एवं गढ़े शिलाखण्ड स्थान-स्थान पर लगे दिखायी दिये। निः-सन्देह प्राचीन मन्दिर के ध्वन्सावशेष से उठाकर, लगा लिये गये हैं। वे मन्दिर अवन्ति वर्मा कालीन ही थे, क्योंकि यहाँ किसी और निर्माण का उल्लेख नहीं मिला था।

इस मन्दिर से उत्तर गया तीर्थ है। उसे आजकल गम वोर कहते हैं। स्तीन ने अपनी यात्रा के समय स्थानीय पुरोहितों से विष्णु मन्दिर के विषय में पूछा था। उन्होंने इस सम्बन्ध में अनभिज्ञता प्रकट की। गया तीर्थ उक्त ध्वंसावशेष से लगभग दो सौ गज उत्तर है। गया तीर्थ से पश्चिम दूसरी तरफ वितस्ता धारा मध्य एक द्वीप बन गया है। यह द्वीप ठोस पक्का चबूतरा है। उसपर स्तीन के समय चिनार का वृक्ष लगा था। उसके नीचे कुछ लिंग तथा मूर्तियाँ रखी थीं। जनश्रुति है कि चिनार वृक्ष न तो बढ़ता है और न घटता। यहाँ की यात्रा काश्मीरी पण्डित सर्वदा किया करते हैं। उसे प्रयाग कहते हैं। मैंने चबूतरा देखा है। वह मेरी यात्रा के समय वर्तमान था। उस पर वृक्ष भी लगा था। मैं भूल गया हूँ कि वह वृक्ष चिनार का था या किसी और का। वैन्य स्वामी का मन्दिर अपने पूर्ववत् स्थान पर, वितस्ता के पश्चिम, मालिकपुर ग्राम की जियारत में परिणत है। किन्तु कल्हण लिखता है कि मन्दिर परिहासपुर में था। परसपोर परगना में मालिकपुर ग्राम वर्तमान काल तक सम्मिलित रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिहासपुर या परसपोर एक अलग परगना था। अबुलफजल ने भी 'परसपोर' परगना का नाम परगनों की तालिका में दिया है। क्रमराज के परगनों की तालिका में परसपोर को अबुलफजल, मूरक्राफ्ट, दुगेल तथा बेटस गजेटियर ने रखा है। यद्यपि परिहासपुर समीपस्थ त्रिगाम, शादीपुर तथा अन्य पड़ोसी ग्राम सैरूल मवाजी पैन में है। अबुलफजल, मूरक्राफ्ट, हुगेल तथा वेट्स गजेटियर में इस परगना का उल्लेख है। परिहासपुर तथा सैरुलमवाजी पैन सटे हैं। बैन्य स्वामी का स्थान अर्थात् मालिकपुर सम्भव है, कल्हण के समय परिहासपुर परगना किंवा विषय में रहा होगा। अतएव कल्हण ने वैन्य स्वामी का स्थान परिहासपुर में लिखा है। अन्यथा बैन्य स्वामी परिहासपुर में हो ही नहीं

सकता, क्योंकि परिहासपुर तथा वैन्य स्वामी के बीच बद्रेहिल नाला पड़ता है, जो वितस्ता नदी का पुराना प्रवाह था। और आज भी त्रिगामी तथा परिहासपुर अधित्यका को अलग करता है।

कल्हण विष्णु स्वामी का मन्दिर का निर्देश वितस्ता सिन्धु के पूर्व संगम पर ही करता है। इस समय विष्णु स्वामी का स्थान त्रिगामी अधित्यका पर है। बद्रेहिल नाला के उत्तर है। त्रिगामी से दक्षिण पश्चिम है। कल्हण लिखता है—विष्णु स्वामी का मन्दिर फलपुर में था। वैन्य स्वामी मन्दिर के दूसरी ओर दक्षिण-पश्चिम पड़ता है।

गुन्देखलील से यदि त्रिगाम अधित्यका के मध्यवर्ती भाग से होते दिवर की ओर चले, तो दो पुराने स्थान कनेत सुथ मसजिद उतर खाव मिलता है। दिवार उतर खाव से दक्षिण जरा पश्चिम हटकर परिहास-पुर उपत्यका पर पड़ता है। वहाँ पर एक छोटे मन्दिर के तल का ध्वन्सावशेष मिलता है। कुछ और आगे बढ़ने पर त्रिगामी तथा उदन सर से एक संकीर्ण उठी बाहर निकली भूमि है। इस स्थान से ठीक नीचे दक्षिण कन्ये सुथ बद्रेहिल नाला के आरपार को जोड़ता है। वही स्थान विष्णु स्वामी का था। श्री स्तीन को वहाँपर अलंकृत शिलाखण्ड बिखरे पड़े मिले थे। मैंने अपनी यात्रा में देखा था कि वहाँ के पुराने पत्थर तोड़कर उनका ढोका बनाया गया था। ढोके से गिट्टी बनायी जा रही थी। उक्त शिलाखण्डों के समीप एक वर्गाकार मन्दिर के तल का ध्वन्सावशेष है। नींव में लगे पत्थरों के कारण मन्दिर के आकार का ज्ञान होता है। यह अन्य देवस्थानों के समान जियारत तथा कबरिस्तान में परिणत कर लिया गया था। स्थानीय गाँव वाले तिम्बर शादूनः मरगुजार अर्थात् तिमूर शाह की इसे कबरिस्तान कहते हैं। स्तीन के मत से विष्णु स्वामी का मन्दिर वहीं जियारत अथवा उसके समीप कहीं था। विष्णु स्वामी एवं वैन्य स्वामी के मन्दिर के मध्य केवल आध मील का अन्तर होगा। दोनों यद्यपि बद्रेहिल नाला के पश्चिमी तट पर हैं, परन्तु उनके बीच बद्रेहिल नाला की धारा तथा कछार है। उल्लिखित कन्या सुथ से विष्णु स्वामी मन्दिर के पत्थर एवं सामान बनाया गया था।

कल्हण के अनुसार विष्णु स्वामी का मन्दिर फलपुर में था। फलपुर का उल्लेख कल्हण ने किया है—'उस राजा (ललितादित्य) ने जहाँ फल ग्रहण किया था, वह फलपुर और जहाँ पर्ण लिया था पर्णोत्स और जहाँ क्रीड़ा किया था वहां क्रीड़ाराम विहार निर्मित कराया।' (रा० : ५ : १८४) पुनः फलपुर का उल्लेख करता है—'यह राजा (ललितादित्य) जिसने सुवर्ण पार्श्व, फलपुर तथा लोयनोत्स अग्रहार ब्राह्मणों को दान किया था, बारह वर्ष राज्य कर दिवंगत हुआ।' (रा० : ५:६७३) कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है। परिहासपुर के समीप फलपुर स्थान था। स्तीन का मत है। परिहासपुर जैसे परसपोर 'परगना' हो गया था उसी प्रकार 'फलपुर' भी एक जिला बन गया होगा। कालान्तर में परगना का नाम सैरुल मवाजी पड़ जाने से फलपुर का नाम विस्मृत हो गया।

कल्हण ने सुन्दरी भवन का वर्णन किया है। वह संगम के समीप था। परन्तु उसका अब कोई चिन्ह अथवा अवशेष नहीं मिलता। सुन्दरी भवन का पुनः उल्लेख किसी राजतरंगिणी में मुझे नहीं मिल सका है।

कल्हण संगम पर की रानी दिद्दा के प्रतिष्ठाओं का उल्लेख करता है—'उसने मठ, प्रतिष्ठा, वैकुण्ठ निर्माण आदि स्वकर्मों से वितस्ता सिन्धुसंगम को अति पावन कर दिया।' (त० : ६ : ३०५)।

राजा अनन्त (सन् १०२८–१०६३ ई०) के सर्वाधिकारी हलधर ने भी कल्हण के शब्दों में वितस्ता सिन्धु संगम को सुन्दर बना दिया था—'करों को हटाने वाले (हलधर) ने वितस्ता सिन्धु संगम को चमकते

स्वर्ण मण्डित मन्दिरों एवं अग्रहारों से शोभा युक्त कर दिया।' (रा० : ८ : २१४) उक्त मन्दिर अग्रहार तथा मठ आदि नवीन संगम स्थान में बनाये गये थे। कल्हण लिखता है : वितस्ता-सिन्धु संगम पर, यात्रा के समय नगर के समान जनता रात्रि पर्यन्त विचरण करती थी।'(रा० : ८ : ३१४९)।

काश्मीर के कवि एवं लेखक सर्वदा प्रयाग को पवित्र एवं पुण्य स्थान मानते आये हैं। उसकी प्रशंसा करते नहीं थकते।

श्रीवर ने भी सिन्धु संगम नाम से ही स्थान का उल्लेख किया है (१ : ५ : ५६) कल्हण के वर्णन से प्रकट होता है कि वितस्ता सिन्धु संगम पर पुल भी बनता था—'वितस्ता-सिन्धु संगम पुल बाढ़ के कारण टूट गया था, घोड़े से उतरकर, उसने अपनी स्त्री के साथ तैरते हुए नदी पार किया।' (रा० : ७ : ९००) राजा हर्ष के प्रसंग में कल्हण ने संगम का पुनः उल्लेख किया है (रा० : ७ : १५९५-८ : ५०६)।

'च'

दीनार-दिन्नार

(रा० : ४ : ४९५)

दीनार शुद्ध संस्कृत शब्द है। संस्कृत साहित्य में दीनार का प्रचुर उल्लेख मिलता है। कल्हण ने सर्व प्रथम तोरमाण के सन्दर्भ में दीनार शब्द का उल्लेख किया है--'तोरमाण ने भ्रातृ अंकित मुद्रा का असंगत प्राचुर्य निवारण कर स्वनामांकित दीनार प्रवर्तित किया'। (रा० : ३ : १०३)

तोरमाण या तूरमाण काश्मीर राजा हिरण्य का भ्राता था। श्री स्तीन के अनुसार उसका काल लौकिक ३१५२ वर्ष है। २७६ सन् ई० है। सर्व श्री एस० पी० पण्डित की गणना से समय सन् ८८ ई०, श्री ट्रोयर सन् ८८ ई०, कनिंघम ४१४ ई०, पीर हसन विक्रमी ९८ तथा विलसन सन् ८७ ई० देते हैं।

मुसलमानों के भारत प्रवेश पूर्व, भारतीय साहित्य में दीनार शब्द प्रचलित था। 'हरिवंश' तथा 'महावीर चरित' में दीनार का उल्लेख मिलता है। साँची बौद्ध स्तूप के द्वार पर चन्द्रगुप्त का एक लेख है। उस लेख में दीनार शब्द का उल्लेख किया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य का काल ईसा पूर्व ३२५ तथा गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय का सन् ३७५ ई० माना जाता है।

गुप्त कालीन पहाड़पुर अभिलेख (सन् ४७८-४७९ ई०) से प्रकट होता है कि एक ब्राह्मण तथा उसकी स्त्री ने तीन दीनार नगर परिषद् में जमा किया था। ताकि उसकी आय से विहार में अर्हत के पूजा की व्यवस्था होती रहे। (इ० आई० २०:५९)।

गुप्त अभिलेख संस्था ६२ पृष्ठ २६१ में एक दान पत्र का उल्लेख मिलता है। बारह सुवर्ण दीनार से अक्षयिणी स्थापित कर उसके सूद से एक भिक्षु को प्रतिदिन भोजन की व्यवस्था की गयी थी।

बुध गुप्त (छठी शताब्दी) के दामोदरपुर ताम्रपत्र में दीनार शब्द का मुद्रा के लिए व्यवहार किया गया है।

पंच तन्त्रकार (पाँचवीं शताब्दी) दीनार का उल्लेख करता है—'दीनारो रोपकैरष्टो विंशत्यः परिकीर्तितः। सुवर्णसप्ततितमो भागो रौपक उच्यते (११३)।

प्राचीन काल में भारतीय दीनार सामान्यतः ३२ रत्ती का होता था। एक दीनार का मूल्य २८ रूपक अर्थात् रुपया होता था। कात्यायन ने लिखा है कि ४८ ताम्र कार्षापण का एक सुवर्ण दीनार होता था। छठवीं शताब्दी में २५ ताम्र मुद्रा का एक दीनार मिलता था। नारद, कात्यायन, बृहस्पति स्मृतियों में ४ कार्षापण = १ अण्डिका तथा ४ अण्डिका = १ सुवर्ण दीनार इसी प्रकार ४८ रजत मुद्रा = १ स्वर्ण दीनार होता था।

परिशिष्ट

चाँदी तथा ताम्र मुद्राओं में एक-बासठ का अनुपात था। यह अनुपात भारत में नया पैसा प्रारम्भ होने के पूर्व एक तथा चौसठ था। यह भी उल्लेख मिलता है कि रजत रूपक अर्थात् रुपया तथा दीनार का अनुपात सात = एक का होता था। एक स्थान पर उल्लेख मिलता है कि ५६ ताम्र मुद्रा का एक दीनार मिलता था। विभिन्न कालों में अनुपात भिन्न हो जाता था। आजकल भी मुद्राओं का मूल्य घटता बढ़ता रहता है। यही अवस्था उस समय भी थी। कुमार गुप्त के वैग्राम ताम्रपत्र से पता चलता है कि एक सुवर्ण दीनार सोलह रुपयों के बराबर होता था। भास्कराचार्य ने लीलावती ग्रन्थ में एक रजत द्रम को सोलह ताम्बे का सिक्का पाया है। वह द्रम भारत में नये सिक्का प्रचलित होने के पूर्व चवन्नी अर्थात सोलह पैसा के समान था।

अमरकोषकार ने दीनार शब्द की परिभाषा संस्कृत शब्द मानकर किया है—'दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री।' (तृतीय काण्ड : नानार्थ वर्ग : ३ : १४) अमरकोष की रचना का काल चौथी शताब्दी माना जाता है। महाकवि दण्डी का काल छठवीं शताब्दी माना गया है। दशकुमार चरित में दीनार का उल्लेख कवि ने किया है—'जितश्चासौ मया षोडशसहस्राणि दीनाराणाम्।' बारहवीं शताब्दी के भास्कराचार्य ने चान्दी तथा सोना का अनुपात ७ = १ रक्खा है। उक्त उद्धरणों से निर्विवाद सिद्ध होता है कि दीनार शब्द भारत में मुसलिम प्रवेश के बहुत पूर्व प्रचलित था। संस्कृत कोषों में संस्कृत शब्द मानकर उसकी व्युत्पत्ति भी दी गयी है। एशिया माइनर में लोहिया राज्य में सर्वप्रथम मुद्रा बनाने का उदाहरण मिलता है। इस्तख्र तथा रूसा तक उनका प्रचलन नहीं हुआ था।

ईरान अर्थात् फारस पेशदादियान अथवा हुखमशियान वंशीय राजा जिन्हें अंग्रेजी में एचमीनियन लिखा जाता है अत्यधिक सम्पत्ति संग्रह किये थे। उन्हें सुवर्ण खण्ड रूप में रखा गया था। राजा के कोश में मूल्यवान धातुएँ ईंटों के आकार में ढालकर संग्रहीत की जाती थीं। सिकन्दर ने सूसा पर आक्रमण किया तो ४०,००० टेलेण्ट सुवर्ण रूप में तथा ९००० स्वर्ण मुद्रा आकार में मिला था। दारा ने प्रथम बार मुद्रा टंकित कराया। वे डैरिक और सिडलाय कहे जाते थे। डैरिक यूनानी शब्द है। इसका मूल शब्द दारी कूह था। इसका मूल अर्थ अज्ञात है। सिडलाय इब्रानी शब्द सेकेल से बना है। सेकेल स्वर्ण मुद्रा का मूल्य में बीसवाँ भाग था। वह रजत का था। डैरिक का तौल १३० ग्रेन होता था। शुद्ध सुवर्ण से बनता था। एक मत है कि डैरिक से दीनार शब्द बना है। कालान्तर में यह रजत मुद्रा हो गया था। डिलोरियस रोमन साम्राज्य के रजत की लघु मुद्रा होती थी। यह भारतीय नवीन मुद्रा के पूर्व चान्दी की चवन्नी के बराबर था। डिनेरियस को ही बाइबिल में पेनी लिखा गया है। पेनी के लिये 'डी' लिखा जाता है यह डिनेरियस का संक्षिप्त रूप है। इसके आधार पर बनी उमय्या ने अरबी सिक्का दीनार प्रचलित किया। यह बार्जन तीनों दीनार की प्रतिकृति था। इसकी तौल अर्ध्य सावरेन से कुछ अधिक थी।—जो लगभग ४६.३४९ ग्रेन्स था। सबसे पहला डेरिक ईशा पूर्व ५१६ वी० सी० में बनाया गया था। इसमें तिथि नहीं दी जाती थी। ईरानी मुद्राओं में चित्र केवल एक तरफ टंकित होता था। दूसरी तरफ चौखुटा गहरा चिह्न बना रहता था। राजा के मूर्ति धनुष-वाण के साथ कुछ झुकते हुए प्रत्यंचा पर बाण खींचते दिखाया जाता था। पार्थिव की मुद्रा दिरहम होती थी। दिरहम पर अस्सासिस की मूर्ति टंकित रहती थी। उसके हाथ में धनुष होता था। रजत तथा ताम्र मुद्रायें टंकित होती थीं। स्वर्ण का अभाव था।

कुरान शरीफ में दीनार शब्द का उल्लेख मिलता है—व मिन अहलिल किताबे मन इन तामन हो

बे क़िन्तारिन यो अद्देहो इलैका व मिन्हन मन इन तामनहो दीनारिन ला यो अद्देहो इलैका इल्ला मा दुमता अलैहे क़ायमन–सूरा आले इमरान सकू आठ आपत ७५।

भारत में दीनार स्वर्ण मुद्रा थी। रोम में दिनेरियस रजत मुद्रा थी। लैटिन भाषा में दिनेरियस इसलिये कहा जाता था कि उसमें दस एस्से आते थे। रोम गणतन्त्र तत्पश्चात् रोम सम्राटों के समय ईशा पूर्व द्वितीय शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक दीनार मुद्रा प्रचलित थी। यही विनिमय का माध्यम था। यह रजत मुद्रा थी। कालान्तर में इसका रूप एवं मूल्य बदलता गया। दिनारियस औरस (स्वर्ण) सोलिडस का साधारणतया नाम था। नवीन बाइबिल में दिनारियस का उल्लेख मिलता है। उस समय यह शुक्ल था। मध्य युग में रजत मुद्रा पेनी तुल्य था। रोम का एक दीनार इंगलिश शिलिंग के बराबर होता था। रोम में सन् २१५ ई० करकल्ला के शासन काल में द्विदीनारी अण्टो निनियानस का प्रचलन हुआ था। कल्हण ने भी द्विदीनारी का उल्लेख किया है। रोम में यह रजत मुद्रा थी। परन्तु तृतीय शताब्दी की ताम्र पर चान्दी चढ़ी दीनार मुद्रा मिलती है। दीनार तथा द्विदीनार में भेद था। द्विदीनार पर मुकुटधारी ज्योतिर्मय सम्राट की मूर्ति बनी रहती थी।

रोम में 'दिनेरियस' स्वर्ण भी टंकित होते थे। पेरीप्लस का कथन है कि स्वर्ण एवं रजत दीनारे 'वर्णगज' (भड़ौच) में यूरोप से भेजी जाती थी। संस्कृत, फारसी, पहेलवी, ग्रीक तथा लैटिन सभी आर्य भाषाएँ हैं। उनका मूल स्रोत एक ही है। परन्तु देश एवं काल के प्रभाव से उनके अन्तर पड़ता गया।

जेकोस्लेविका की मुद्रा आज भी दीनार कही जाती है। भारत में आज से साठ वर्ष पूर्व मेरी बाल्यावस्था में कौड़ियों अर्थात वाराटक का व्यवहार होता था। प्राचीन समय में १०० वाराटक का एक ताम्र दीनार होता था। बत्तीस रत्ती सोना का स्वर्ण दीनार बनता था।

दीनार शब्द अरबी नहीं है। दीनार शब्द पश्चिम एशिया में फारसी शब्द माना गया है। फारस अथवा ईरान में स्वर्ण दीनार मुद्रा प्रचलित थी। 'दीनारे सुर्ख' का भी प्रयोग मिलता है। केवल स्वर्ण मुद्रा के लिये 'दीनारे सुर्ख' शब्द का प्रयोग किया जाता था। स्वर्ण, रजत, ताम्र तथा पीतल की दीनारें बनने लगीं, तो स्वर्ण दीनार के लिये दीनारें सुर्ख शब्द का प्रयोग किया जाने लगा। संस्कृत एवं फारसी दोनों भाषाओं में दीनार शब्द पुलिंग है।

अरबों के आक्रमण के पूर्व दीनार ईरान तथा सीरिया में विनिमय मुद्रा था। अरब आक्रमण पश्चात् दिरहम मुद्रा प्रचलित हुई। दिरहम शब्द दीनार का तद्भव है। आइने अकबरी के अनुसार एक दीनार एक दिरहम का तीन बटा सातवां भाग था। फिरिस्ता लिखता है कि दीनार का मूल्य दो रुपयों के बराबर होता था। यह मूल्य मुगलकालीन है।

प्रारम्भिक पश्चिमी एशिया के मुसलिम सुल्तानों की दीनार स्वर्ण विनिमय मुद्रा थी। प्रारम्भिक मध्य युग में भी विनिमय की मुख्य साधन थी। सातवीं शताब्दी में अरब ने सीरिया तथा उत्तरी अफरीका जीता, तो बेजण्टाइन साम्राज्य में प्रचलित मुद्रा की नकल किया। बेजण्टाइन स्वर्ण मुद्रा, उस समय वेसन्त तथा औरियस कही जाती थी। सन् ६९६ ई० में मुसलमानों ने उन्हीं मुद्राओं के आधार पर मुद्रा टंकित करवायी। यह मुद्रा भी सुवर्ण की थी। इंगलिश अर्ध्य सोवरेन के बराबर थी। उम्मैया तथा अब्बासी खलीफाओं के काल की प्रामाणिक मुद्रा थी।

विषय विचारणीय है। दीनार का काश्मीर में क्या अर्थ लगाया जाता था ? मूल्यांकन किस प्रकार

होता था ? विलसन ने सर्वप्रथम इस विषय पर मत व्यक्त किया है। उसका मत अब तक मान्य है। कल्हण लिखता है—'दुर्भिक्ष विपन्न देश में खारी धान्य हेतु दश शत पचास दीनार व्यय होती थी।' (रा : ५: ७१) कल्हण और लिखता है—'प्रतिदिन एक लक्ष दीनार वेतन प्राप्त करने वाले विद्वान् भट्ट उद्भट, उस राजा का सभापति था।' (रा : ४ : ४९५) यदि दीनार यहाँ स्वर्ण या रजत मान लिया जाय, तो काश्मीर की जितनी वार्षिक आय होती रही होगी, इतना एक व्यक्ति का वेतन हो जायगा।

विलसन को इस वर्णन से सन्देह उत्पन्न हो गया था। उसने काश्मीरी दीनारों को स्वर्ण के स्थान पर ताम्र माना। (पृष्ठ ६० : नोट : ९ : हिन्दू हिस्टॉरी ऑफ काश्मीर) कल्हण पुनः लिखता है—'जिस काश्मीर मण्डल में सृष्टि के प्रारम्भ से उत्तम सुभिक्ष होने पर भी एक खारी धान्य की प्राप्ति के लिये २०० दीनार व्यय होते थे।' (रा० : ५ : ११६) 'उसी काश्मीर मण्डल में एक खारी धान्य का क्रय छत्तीस दीनारों में हो गया।' (रा० : ५ : ११७) कल्हण पुनः लिखता है —'उसके सुकवि बिना वेतन के थे और उस (राजा) की कृपा से भारिक लवट दो हजार दीनार प्राप्त करता।' (रा० : ५ : २०५)

कल्हण ने अनेक लोगों के दीनार वेतन का भी उल्लेख किया है—'इसी प्रकार रुद्रपाल शाही को राज्य कोश से डेढ़ लाख दीनार प्रति दिन निर्वाह के लिये दिया जाता था तथापि उसकी दरिद्रता दूर नहीं होती थी।' (रा० : ७ : १४५) यदि दीनार स्वर्ण अथवा रजत का मान लिया जाय, तो एक व्यक्ति को ५ करोड़ ४० लाख प्रति वर्ष मिलेगा। इतनी आय काश्मीर राज्य की बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में रजत रुपयों में भी नहीं थी। स्वर्ण की बात तो दूर है।

कल्हण ने राजा उच्चल काल के एक बनिये का प्रसंग उपस्थित किया है। उससे तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश पड़ता है—एक धनी ने एक वणिक् के घर एक लक्ष दीनार सुरक्षा की दृष्टि से रख दिया। (रा०: ८ : १२४) उस धन राशि से समय समय पर कुछ लेता जाता था। वणिक् से रुपया माँगने गया, तो उसने हिसाब समझाया। कुछ बाकी नहीं रह गया था। बही में लिखा था—'६०० दीनार नदी पार उतरवाई, २०० दीनार जूता मरम्मत, ५०० दीनार का घी पैर में बिवाय फटने पर दासी लगाने के लिये ले गयी, दुध मुहें बच्चे को खाँसी आती थी, उसे रोकने के लिये, एक सौ दीनार का अदरख और शहद खरीदा गया। सभी खर्च सौ की संख्या में थे।' (रा० : ८ : १३६-१४४) विश्वास करना कठिन होता है यह सब व्यय स्वर्ण तथा रजत दीनार में दिया गया होगा।

कल्हण का पूर्व कालिक वर्णन गाथा भी मान लिया जाय, तो भी कल्हण अपने समय जिसका, वह प्रत्यक्षदर्शी था वर्णन किया है। उसमें अविश्वास का स्थान नहीं है। उससे भी प्रकट होता है। दीनार का प्रयोग मुद्रा अथवा सिक्का के लिये होता था, ताकि स्वर्ण किंवा रजत मुद्रा के लिये कल्हण लिखता है—'तदनन्तर निर्धन होते भी समय के पारखी, राजा जय सिंह ने सोमपाल को छत्तीस लाख दीनार देकर, वृद्ध लक्ष्मण मंत्री को छुड़ाया।' (रा० : ८ : १९१८) कल्हण के वर्णन से स्पष्ट नहीं होता कि पुरातन काश्मीर में मुद्राओं का मूल्य तथा उनका प्रकार क्या था।

हिन्दू काल में मुसलिम काल की अपेक्षा वस्तुएँ अधिक सस्ती थीं। इब्नबतूता लिखता है कि तीन व्यक्तियों के कुटुम्ब के लिये बारह महीनों के लिये सामग्री के केवल एक चान्दी के दीनार में खरीदता था। दीनार एक रुपये के बराबर होता था। एक चान्दी के दीनार में लगभग तीस मन धान मिलता था। अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में साढ़े सात जितल में एक मन, धान दाल; पाँच जितल में एक मन चीनी;

सौ जितल में एक मन घी मिलता था। मुहम्मद तुगलक के समय घोर अकाल पड़ा था। तथापि सोलह जितल (पैसा) से एक सेर अन्न मिलता था। फिरोज तुगलक के समय ८ जितल में पाँच सेर अन्न मिलता था। लोदी काल में एक व्यक्ति दस मन अन्न, पाँच सेर तेल, तथा दस गज मोटा कपड़ा केवल सोलह जितल में खरीद सकता था। बंगाल में तीन चान्दी के दीनारों अर्थात् डेढ़ रुपया में एक गाय तथा आठ मोटे ताजे कुक्कुट एक दिरहम अर्थात् दो आना में खरीदता था।

सतरहवीं शताब्दी के अन्त में सर हेनरी मूले के अनुसार लगभग ७ मन चावल तथा साठ पालतू मुर्गियाँ एक रुपये में खरीदी जाती थीं। भारत के समृद्धिशाली प्रदेशों जहाँ यातायात व्यापार तथा संचार का प्रचुर साधन न था, वहाँ की जब ऐसी अवस्था थी, तो काश्मीर जहाँ, आवागमन का साधन कम था वहाँ और सस्ता होना चाहिए था।

कल्हण के उक्त वर्णनोंके कारण होरेस हेमैन विलसन के मत की पुष्टि होती है। ट्रोयर (१ : ५२८) तथा लास्सेन (३ : १००) में भी काश्मीर दीनार के स्वर्ण मुद्रा होने में सन्देह किया है। लास्सेन ने एक राजकवि को एक लाख दीनार प्रति दिन देने की बात को अतिशयोक्ति माना है। अतएव दीनार काश्मीरी भारतीय दीनार के समान स्वर्ण की नहीं थी।

कल्हण ने दीनार का दो प्रकार से वर्णन किया है। एक के साथ वह संख्या नहीं देता है। इन स्थलों पर दीनार का अर्थ मुद्रा लगाना चाहिए। दूसरे स्थानों पर दीनार के साथ संख्या दिया है। यहाँ पर ताम्र दीनार से तात्पर्य है। जहाँ स्वर्ण या रजत दीनार का कल्हड़ ने वर्णन किया है, वहाँ दीनार के साथ स्वर्ण तथा रजत स्वयं लिख दिया है। निम्नलिखित श्लोकों में मुद्रा के अर्थ में (रा० : ३ : १०३, ५ : ८४, ८७, ८९, १०८, ७ : ४९६, ५००, ९५०; ८ : १५१, ८८३, ३३३५) दीनार का प्रयोग किया गया है।

जहाँ ताम्र दीनार के अर्थ में दीनार का उल्लेख किया है, वहाँ उसने दीनार के साथ शत, सहस्र लक्ष्य तथा कोटि की संख्या दी है। (रा० : ४ : ४९५, ६१७, ६९८; ५ : ७१, ११६, २०५; ६ : ३८; ७ : १६३, १११८, २२२०; ८ : १२४, १९१८) कल्हण के निम्नलिखित वर्णनों से वह और स्पष्ट हो जाता है—उस समय स्वर्ण तथा रजत दीनार मुद्राओं की इस देश में अधिकता थी परन्तु ताम्र मुद्रायें विरल थी। कल्हण के वर्णन से स्पष्ट होता है कि उसने मुद्रा के लिये दीनार शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि दीनार सभी धातुओं की टंकित होती थी। उनमें अंतर करने के लिये जिस प्रकार मुद्रा के आगे स्वर्ण रजत एवं ताम्र लिखते थे, उसी प्रकार दीनार के साथ भी स्वर्ण, रजत एवं ताम्र लिखा जाता था।

कल्हण पुनः लिखता है—'राजा ने व्यय मध्य पढ़ा दश शत दीनार अधिकरण लेखक को समर्पित किया गया।' (रा० : ६ : ३८) एक दस्तावेज लिपिक अर्थात् अरायज नवीश को एक कागज लिखने के लिये, दस सहस्र स्वर्ण या रजत दीनार दी जाय, यह असभ्य व प्रतीत होता है। यहाँ पर दीनार का अभिप्राय: ताम्र दीनार से है। एक पाण्डुलिपि में उक्त श्लोक के पार्श्व टिप्पणी में किसी लिपिक के दीनार का अर्थ स्पष्ट किया है। जिस समय वह प्रतिलिपि की गयी होगी, उस समय दीनार शब्द का प्रचलन बन्द हो गया था। —'दीन्नारा : द्नार इति काश्मीरभाषया।' इससे प्रकट होता है कि काश्मीरी भाषा में दीनार को द्नार कहा जाने लगा था। द्नार शब्द दीनार का अपभ्रंश है। द्नार शब्द काश्मीर में मुद्रा, सिक्का के लिये बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक प्रचलित था। रुपये, पैसे आदि के प्रचलन के पश्चात्, पुराने नाम उसी प्रकार बदल गये, जिस प्रकार सेर के लिये किलो शब्द का प्रयोग होने लगा है। दीनार का स्थान रुपया

शब्द ने ले लिया। काश्मीर में रुपया स्वर्ण तथा रजत दोनों का होता था। लोक प्रकाश के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है।

उन्नाद कोश में दीनार शब्द का अर्थ मुद्रा दिया गया है। लोक प्रकाश के द्वितीय प्रकाश में 'दीनार हुण्डिका' तथा 'धान्य हुण्डिका' 'यव गोधूम हुण्डिका' आदि हुण्डियों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार 'चोरिका' ऋणबन्ध पत्र या इकरारनामा सन्दर्भ में 'धान्योज्जाम चोरिका' 'दीनारोज्जाम चोरिका' बन्ध पत्रों का उल्लेख मिलता है। लोक प्रकाश में कुछ लोक लेखा के प्रति रूप दिये गये हैं। उनमें दीनार शब्द का प्रयोग सर्वत्र मुद्रा के लिये किया गया है। द्रष्टव्य पृष्ठ : १७, १८, १९। काश्मीर में जब रुपया प्रचलित हुआ तो लोक लेखा के प्रतिरूप में दीनार के साथ रुपया शब्द का भी प्रयोग आरम्भ किया गया। (पृष्ठ : २२) इससे दीनार और रुपयों का अनुपात मालूम होता हैं।

भारतीय तथा काश्मीरी रुपया में अन्तर दिखाने के लिये 'काश्मीरी रुपया' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस स्थान पर दीनार के साथ रुपया नहीं लिखा गया है। (पृष्ठ : २९) काश्मीर के दीनार किंवा रुपयों का मूल्य समय समय पर बदलता रहा है।

लोक प्रकाश से प्रकट होता है कि ५ तोला सोना ४०,००० दीनार तथा एक तोला ८००० दीनार मूल्य का होता था—'अत्र अलङ्करणाद्धूर्तपक्षात्सौ० तोलपञ्चकं ५, तद्द्रव्याद्दी(नार)सहस्रचत्वारिंशति वेदमूले दत्तं प्रविष्टं' (लोक : ३ पृष्ठ ३८) लोक प्रकाश के इस वर्णन से प्रकट होता है। काश्मीर का दीनार स्वर्ण एवं रजत का नहीं था। वह ताम्र का था। काश्मीर में हिन्दू कालीन मुद्रायें ताम्र की ही प्रचुर संख्या में सर्वत्र मिली हैं। प्रवरसेन द्वितीय की स्वर्ण तथा रजत मुद्रायें मिली हैं।

रुपये का आज जो मूल्य है वह ४० वर्ष पूर्व नहीं था। उस समय एक रुपये का १० सेर गेहूँ मिलता था। आज एक रुपये का एक सेर गेहूँ मिलता है। काश्मीर के किस राजा के समय दीनार की कीमत क्या थी, स्थिर करने के लिये तत्कालीन वस्तुओं का भाव जानना आवश्यक है।

काश्मीर की मुद्राओं पर दीनार आदि टंकित नहीं है। आजकल मुद्राओं पर, रुपया, पैसा, आना, डालर, पाउण्ड, टंकित रहता है। परन्तु प्राचीन काश्मीरी मुद्राओं पर दीनार आदि शब्द टंकित नहीं है। अतएव यह जानना कठिन है कि स्वर्ण, रजत तथा ताम्रमुद्राओं के लिये किन भिन्न भिन्न शब्दों का प्रयोग होता था। प्रवरसेन की ताम्रमुद्रायें अभी तक नहीं मिली हैं। प्रवरसेन द्वितीय के पश्चात् राजा हर्ष की स्वर्ण एवं रजत मुद्राएँ मिली हैं। हर्ष की ताम्रमुद्राएँ प्रचुर संख्या में मिली हैं। उसकी स्वर्ण तथा रजत मुद्राएँ कम मिलती हैं। स्वर्ण, रजत तथा ताम्र मिश्रित धातुओं की मुद्राएँ भी काश्मीर में प्रचलित थीं।

स्वर्ण रुप्यका शब्द का प्रयोग कल्हण ने किया है। इसका अर्थ होता है कि रुपया सुवर्ण तथा रजत दोनों का होता था। अन्यथा स्वर्ण शब्द यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं थी। काश्मीर में स्वर्ण मुद्राएँ बहुत कम प्रचलित थीं।

कल्हण के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ण रुपया काश्मीरी बाहर से अर्जित कर लाये थे— 'देशान्तर में भ्रमण कर मैंने शत सुवर्ण रुपया अर्जित करके और यह सुनकर कि इस देश में सौराज्य है, आया था।' (रा० : ६ : ४५) भारत में इस समय मुसलिम शासन नहीं था। यह स्वर्ण मुद्राएँ भारतीय राजाओं की थी। काश्मीर में महाराज यशस्कर (सन् ९३९-९४८ ई०) का समय था। मुस्लिम काल में स्वर्ण मुद्रा को 'अशरफी' 'मोहर' अथवा 'दीनारे सुर्ख' कहते थे।

मुमूर्षु राजा यशस्कर जब राजप्रासाद त्याग कर चला था, तो उसके पास दो सहस्र पाँच सौ स्वर्ण थे—'मुमूर्षु नृपति, जो कि निज मन्दिर से दो सहस्र पाँच सौ स्वर्ण अंचल में निबद्ध कर निकला था, पर्व-गुप्त आदि मन्त्रियों ने जीवित रहते ही, राजा की निजी सम्पत्ति (यौतक) अपहृत कर, उसके आगे ही परस्पर बाँट लिया।' (रा० : ६ : १०२-१०३)

कल्हण ने यहाँ स्वर्ण शब्द का प्रयोग किया है। दीनार, रुपया या मुद्रा शब्दों का प्रयोग नहीं किया है। इससे स्पष्ट है कि वे स्वर्ण टुकड़े मात्र अथवा गैर काश्मीरी मुद्राएँ थीं। क्योंकि स्वर्ण दीनार का कल्हण स्वयं उल्लेख राजा हर्ष (सन् १०८९-११०१ ई०) के सन्दर्भ में करता है—'उसके श्रम को सफल करते हुए, राजा ने उसे पारितोषिक स्वरूप एक लाख स्वर्ण दीनार दिये।' (रा० : ७ : १११८)

वराटक अर्थात् कौड़ी भी विनिमय का साधन थी। कल्हण लिखता है—'यह पुत्र (चन्द्रमुख) तुंग के आश्रय में राजा का लालित बन गया और कौड़ी से करोड़ संचय कर लिया' (रा० : ७ : ११२) यहाँ पर कल्हण ने दीनार शब्द का प्रयोग कोटि के साथ नहीं किया है, परन्तु निम्नलिखित श्लोक में ९६ करोड़ दीनार का उल्लेख करता है—'इस प्रकार कृतज्ञता प्रकट करने के लिये, भृत्यों को ९६ करोड़ दीनार दिया।' (रा० : ७ : १६३)

जैनुल आबदीन के समय दीनार प्रचलित थी। उसका उल्लेख जोनराज करता है—'एक ही दिन राजा ने जप्प भट्ट के द्वारा एक करोड़ दीनार बालकों को दिया।' (जोन : राज० : ९७३) श्रीवर ने भी दीनार का उल्लेख किया है—'पहले तीन सौ दीनार से धान की खारी का क्रय होता था। और दुर्भिक्ष के कारण उस समय डेढ़ हजार में भी उससे नहीं प्राप्त हो सकती थी।' (जैन : राज० : १ : २ : २५) उक्त दोनों लेखक सुल्तान जैनुल आबदीन के समकालीन थे। उन्होंने आँखों देखा वर्णन किया है।

हिन्दू राज्य काल के पश्चात् मुस्लिम काल में काश्मीर मुद्रा प्रणाली में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था। सुल्तानों के समय मुद्रायें ताम्र की होती थीं। उन्हें कसिरस अथवा पुञ्छस कहते थे। विनिमय की प्रथम इकाई कौड़ी थी। जैनुल आबदीन ने जस्ता तथा पीतल की मुद्राएँ टंकित करायी थीं। रजत मुद्रा कम तथा स्वर्ण मुद्रा बाजार में बहुत कम चलती थी। चक वंश राज्य के समय कुछ स्वर्ण मुद्राओं का प्रचलन हुआ था। चकों के समय जजिया पल में दिया जाता था। सिकन्दर बुतशिकन के समय जो ब्राह्मण इस्लाम कबूल नहीं करते थे, उन्हें प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष दो पल चाँदी, जजिया रूप में देना पड़ता था। दो पल चाँदी आठ तोला होता था। जैनुल आबदीन ने उसे घटाकर एक माशा कर दिया था।

काश्मीर में बारह दीनार का एक बहगनी, दो बहगनी का एक पुञ्चू, चार पुञ्चू का एक हथ, दश हथ का एक ससून, एक शत ससून का एक लाख तथा एक शत लाख का एक कोटि दीनार होता था।

हसन शाह (सन् १४७२-१४८४ ई०) के पूर्व काश्मीर में तूरमान की मुद्राएँ प्रचलित थीं। उनका अधिक प्रचलन न देखकर, हसन शाह ने द्विदीनारी टंकित कराया था। श्रीवर लिखता है—तोरमान के दीनारों का अभाव जानकर उसने नागयुक्त नवीन द्विदीनारी प्रवर्तित किया। ताम्र निर्मित वह पुराना पचीस मूल्य वाले दीनार का कमी के कारण कुछ मूल्य कम हो गया। (जैन० : ३ : २११, २१२) श्रीवर के समय तक दीनार मुद्रा प्रचलित थी। श्रीवर लिखता है—नगर में पचीस दीनार का डेढ़ पल नमक मिलता था। (४ : ५७९) यह समय सन् १४८६ ई० के लगभग आता है। मुहम्मद शाह के समय अशरफी तथा तङ्क प्रचलित थे।

कल्हण के वर्णनों से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि काश्मीर में दीनार शब्द का प्रयोग मुद्रा के अर्थ में किया जाता था। दीनार सुवर्ण, रजत, ताम्र, सीसा, पीतल देश में उपलब्ध धातुओं से टंकित होते थे। काश्मीर में दीनार ताम्र के ही अधिक टंकित होते थे। स्वर्ण एवं रजत दीनारों का स्थान विशेष पर विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। उन प्रयोगों से प्रचलित ताम्र दीनारों और स्वर्ण तथा रजत में अन्तर प्रकट किया गया है।

●

'छ'

काश्मीरी मुद्रा

(रा० : ४ : ४९५)

मुद्रा राजा के प्रभुत्व, राज्य विस्तार, तथा राष्ट्रों के स्वतंत्रता का द्योतक है। मुद्राशास्त्र एवं मुद्रांकन का अध्ययन पुरातत्त्व का अंग है। मुद्राओं के अध्ययन से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। मुद्रा के कारण कितने ही राज्यों, राजवंशों एवं राजाओं का पता चला है, जिनका उल्लेख साहित्यिक रचनाओं एवं इतिहास में नहीं मिलता। धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही यह भी प्रकट होता है कि तत्कालीन राज भाषा एवं लिपि क्या थी ? मुद्राओं के लेख द्वारा भाषा के क्रमिक विकास का ज्ञान होता है।

दिमितस् की मुद्रा पर खरोष्ठी एवं प्राकृत भाषा टंकित है। उससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन प्राकृत भाषा का रूप क्या था ?

मुद्राओं की आकृतियों एवं लाक्षणिक चिन्हों द्वारा तत्कालीन धार्मिक प्रवृत्तियों का पता चलता है। उत्तर पश्चिम भारत की मुद्राओं द्वारा प्रकट होता है। वहाँ शैव मत का प्राबल्य था। गुप्त कालीन मुद्राओं के अध्ययन से वैष्णव धर्म का प्रभाव मालूम होता है।

मेरु, स्वतिक, वेष्ठनी, बोधि वृक्ष, वेदी, यज्ञ कुण्ड, षड्चक्र, अर्धचन्द्र, वीणा, सनाल कमल, त्रिशूल, गरुड़ध्वज कमल, चैत्य, स्तूप, वृक्ष आदि मुद्राओं पर टंकित चिन्हों से सूत्र मिलता है। राष्ट्र में शैव, वैष्णव, तन्त्र, बौद्ध, तथा किस धर्म किंवा सम्प्रदाय की स्थिति क्या थी इस पर प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार ओइशो (शिव), परम भागवत, राजाधिराज, जयतु वृष, आदि प्रतीकात्मक शब्दों से हमें राजा का झुकाव किस धर्म या सम्प्रदाय के प्रति था, पता चलता है। यही बात गणतन्त्रों की मुद्राओं के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

राजाओं, गणतन्त्रों, देशों, प्रदेशों के नाम उनके कालों का ज्ञान मुद्राओं पर टंकित लेखों से लगता है। कितने ही राजाओं, उनके शासन, और राज्य का विस्तार केवल मुद्राओं से मिल सका है।

शक तथा क्षत्रपों का ज्ञान मुद्राओं के कारण हुआ है। शक तथा पल्हव काल की सूचनाएँ मुद्राओं से मिलती हैं। अनेक गणतन्त्रों का ज्ञान, मुद्राओं के कारण प्राप्त हुआ है। शासन पद्धति पर मुद्राएँ प्रकाश डालती हैं। राजाओं के साथ क्षत्रपों, राजपालों, युवराजों आदि का नाम मुद्राओं पर अंकित होने के कारण राज्य पद्धति, राजतन्त्र, द्वैराजतन्त्र, गणतन्त्र अथवा क्षत्रप तन्त्र का ज्ञान होता है। कितने राजपाल

स्वतन्त्र रूप से मुद्रा चलाते थे, कितने ही केन्द्रीय शासन की सत्ता स्वीकार करते, वे स्वयं मुद्रा टंकित करवाते थे। इसका पता चलता है।

यह बातें केवल हिन्दू कालीन राज्यों तक ही सीमित नहीं थीं। मुस्लिम शासन काल में भी यह पद्धति स्वीकार की गयी थी। दिल्ली के कतिपय सुल्तानों की मुद्राओं पर खलीफाओं के नाम अंकित हैं। वे खलीफा के प्रतिनिधि रूप शासन करते थे। खलीफा से मान्यता प्राप्त करते थे। कुछ सुल्तानों ने खलीफाओं की मान्यता को स्वीकार नहीं किया है। वे अपनी स्थिति स्वतन्त्र मानते थे। सुल्तान के पश्चात् मुद्राओं पर शाह तथा शाहंशाह शब्द टंकित मिलता है। वे प्रकट करते हैं। उनकी स्थिति पूर्णतया स्वतन्त्र थी। स्वयं अपनी सर्वोच्च सत्ता मानते थे। सुल्तान एवं बादशाह, शाहंशाह एवं शाह में अन्तर है। सूबेदारों द्वारा टंकित सिक्कों से पता चलता है कि वे सुल्तानों एवं बादशाहों के अन्तर्गत थे।

महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी की मुद्राओं पर हिन्दू प्रतीक एवं संस्कृत टंकित है। लिपि अरबी तथा फारसी के स्थान पर भारतीय है। परन्तु अल्तमश ने संस्कृत भाषा एवं हिन्दू प्रतीक मुद्राओं से हटा दिया। शुद्ध इसलामी जामा पहना दिया गया। वह इस बात को प्रकट करता है। अल्तमश के समय भारत में मुस्लिम शासन दृढ़ हो गया था। उसे हिन्दू जनता से भय नहीं था।

मौर्य साम्राज्य से तेरहवीं शताब्दी तक भारतीय परिस्थितियों में किस प्रकार परिवर्तन होते रहे, देश किंवा प्रदेश की क्या मनःस्थिति थी, मुद्राओं से उन पर प्रकाश पड़ता है।

मुद्राओं पर ब्राह्मी, खरोष्ठी, नागरी आदि लिपियों से प्रकट होता है। तत्कालीन लिपि क्या थी। मुद्राओं पर मुद्रित अंकों एवं अक्षरों के कारण भारतीय लिपि का मूल स्रोत क्या था, किस प्रकार वह विकसित होकर, नागरी लिपि का रूप ली है, इस पर प्रकाश पड़ता है। मुद्रा के इतिहास के आधार पर ही लिपि विकास इतिहास की रचना हुई है।

मुद्रा का महत्त्व केवल विनिमय का माध्यम होने के कारण नहीं है। किस धातु की है, समय-समय पर उसका क्या मूल्य था, किन-किन धातुओं का मिश्रण था, उनका रूप क्या था, इनके कारण धातु विज्ञान, मुद्रा एवं मुद्रण विज्ञान, पर प्रकाश पड़ता है।

प्राचीन काल में आज के समान स्वर्ण, रजत एवं ताम्र मुद्रायें प्रचलित थीं। पीतल तथा मिश्रित धातु मुद्राओं का भी प्रसार था। धातु मुद्राओं का स्थान कागजी मुद्राओं ने ले लिया। सन् १३३० ई० में चीन ने कागजी मुद्राओं का प्रसार किया। उसके पूर्व ईरान में कागजी मुद्राओं का प्रसार हो चुका था। आज कोई स्वर्ण, रजत, ताम्र मुद्रा का ध्यान भी नहीं करता। कागजी मुद्रा का वही मूल्य हो गया है, जो स्वर्ण अथवा रजत मुद्रा का है।

वैदिक काल में सामानों के विनिमय के लिये बदलौन जिसे अंग्रेजी में बार्टर कहते हैं, उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् गायें विनिमय की माध्यम बन गयीं। पशु के पश्चात् धातु विनिमय का माध्यम बन गया। विश्व में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ सर्वप्रथम धातुएँ विनिमय का साधन बनी थीं। मुद्रा भी भारत में सर्वप्रथम टंकित हुई थीं। यद्यपि यूनानी इतिहासकारों ने लीडिया में सर्वप्रथम मुद्रा का प्रसार होना लिखे हैं। हिरोडोट्स ने लीडिया को मुद्रा का आविष्कारक माना है। हिरोडोट्स को भारत का ज्ञान नहीं था। लीडिया यूनान के समीप है। अतएव यह माना जा सकता है कि पश्चिम में लीडिया में मुद्रा प्रणाली विकसित हुई थी। वहाँ स्वर्ण तथा रजत दोनों मुद्राओं का प्रसार था।

परिशिष्ट

पशु तथा पशुओं की खालें विनिमय की बहुत समय तक माध्यम थीं। पशु के पश्चात् पशु की खालें तथा फर यहूदियों तथा इस्थोनिया में विनिमय की माध्यम बन गयीं। रोम, स्पार्टा तथा कार्थेज में चमड़ा विनिमय का साधन था। कालान्तर में खालों, चमड़ों तथा फरों का स्थान पश्चिम में धातुओं ने लिया।

भारत में गाय अन्न एवं पशुओं एवं बदलवन के स्थान पर, धातु विनिमय का साधन बन गया। स्वर्ण का सर्वप्रथम प्रयोग किया गया। भारत में स्वर्ण होता था। वही सर्वप्रथम विनिमय का साधन बना। उसके पश्चात् ताम्र की मुद्राएँ टंकित हुई। चाँदी का प्रयोग कम होता था। चाँदी का आयात होता था। स्वर्ण की कमी तथा वाणिज्य व्यवसाय की वृद्धि होने पर अन्तर्देशीय मुद्राएँ ताम्र एवं पीतल की टंकित होने लगीं।

बेबिलोन में रजत का प्रयोग मुद्रा टंकण के लिये अधिक होता था। वहाँ स्वर्ण तथा ताम्र की खानें नहीं थीं। वैदिक तथा परवर्ती काल में सुवर्ण चूर्ण एवं हिरण्य पिण्ड विनिमय का साधन था। धातु के इन्हीं उपकरणों का नाम मुद्रा है। धातु मुद्रा प्रसार का प्रमुख स्थान भारत, चीन, एवं लीडिया है। मिश्र में तवनू स्वर्ण तथा चान्दी विनिमय के लिये व्यवहार किया जाता था।

भारत में धातु मुद्रायें निगम एवं श्रेणियों द्वारा भी टंकित होती थी। तक्षशिला में कुछ मुद्रायें मिली हैं। उन पर नेगम टंकित है। मौर्य शासन के पूर्व जनता द्वारा मुद्रा का टंकण होता था। आजकल के सर्राफों के समान उस समय स्वर्णकार होते थे। आधुनिक काल में बैंक यूरोप में नोट प्रसारित करते हैं। उनका मूल्य राजकीय मुद्रा के समान होता है। उनकी मान्यता विश्व में सर्वत्र होती है। इसी प्रकार प्राचीन भारत में श्रेष्ठी होते थे। गणतन्त्रों में निगम होते थे। वे मुद्रा टंकित करते थे।

मौर्य साम्राज्य स्थापित होने पर, गणतन्त्रों एवं लघु राज्यों का लोप हो गया। मुद्रा केन्द्रीय विषय हो गया। मुद्रा का टंकण एवं नियन्त्रण दोनों राज्य अथवा राज्य द्वारा अधिकृत लोग करने लगे। निगम एवं श्रेणी द्वारा टंकित मुद्राओं पर लाक्षणिक चिह्न टंकित होता था। राज्य नियन्त्रित तथा राजतन्त्र में राजा की आकृति, नाम, राज चिह्न आदि मुद्राओं पर टंकित होने लगा।

चाणक्य ने लक्षणाध्यक्ष अधिकारी का उल्लेख किया है। वह टंकशाल तथा मुद्रा विभाग का प्रधान था। यह विभाग इतना सुगठित था कि कोई भी व्यक्ति सुवर्ण तथा रजत टंकशाल में ले जाकर, मुद्रा टंकित करा सकता था। स्वर्ण एवं रजत देकर मुद्रा ले सकता था।

मौर्यकालीन मुद्राओं पर 'मेरु' पर्वत टंकित होता था। यही राज्य चिह्न था। मौर्यकालीन मुद्राओं पर लेख नहीं मिलते। मुद्राओं की जाँच करने के लिये रूपादर्शक अधिकारी नियुक्त थे।

काश्मीर में कनिष्क के पूर्ववर्ती राजाओं की मुद्रा न मिलने का यह भी एक कारण हो सकता है कि तत्कालीन मौर्य राजाओं के समान काश्मीर की मुद्राओं पर राजाओं के नाम के स्थान पर, किसी प्रकार का चिह्न टंकित होता रहा होगा। वे लाक्षणिक चिह्न क्या थे। यह अभी भी गवेषणा का विषय है।

यूनानी तथा विदेशी प्रभावों के कारण नामांकन की प्रथा प्रचलित हुई। भारत में यूनानी मुद्राओं पर यूनानी अक्षर टंकित है। ईशा पूर्व १४० वर्ष में अपल दत्तस् यूनानी राजा ने सर्वप्रथम खरोष्ठी लिपि मुद्राओं पर टंकित कराया। भारतीय लाक्षणिक चिह्न नन्दी भी उस पर टंकित है। तत्पश्चात् पंतलेव तथा अगथुक्लेव ने खरोष्ठी के स्थान पर ब्राह्मी लिपी टंकित कराना आरम्भ किया था। प्रारम्भिक यूनानी मुद्राओं पर यूनानी तथा खरोष्ठी दोनों लिपियाँ टंकित की गयीं। इन्हीं द्वैभाषी मुद्राओं के कारण खरोष्ठी लिपि पढ़ी

गयी है। खरोष्ठी भाषा तथा लिपि का ज्ञान जगत् को हुआ है। इसी प्रकार दिमितस् की मुद्रा पर खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा टंकित है। वे दोनों भाषाओं के ज्ञान की सीढ़ियाँ हैं।

औदुम्बर तथा कुणिन्द मुद्राओं पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपि दोनों टंकित थीं। द्विभाषी होने के कारण ब्राह्मी लिपि भी पढ़ ली गयी। दूसरी शताब्दी के पश्चात् खरोष्ठी लिपि हटा दी गयी। केवल ब्राह्मी लिपि मुद्राओं पर टंकित होने लगी। इन्हीं मुद्राओं पर टंकित लिपियों द्वारा भारतीय लिपि का विकास किस प्रकार उत्तरोत्तर होता रहा, अध्ययन किया गया है।

कनिष्क ने पुनः यूनानी लिपि का प्रयोग मुद्राओं पर आरम्भ किया। परन्तु गुप्त काल से ब्राह्मी लिपि का ही प्रयोग मुद्राओं पर होने लगा। हूण शासकों ने भी ब्राह्मी लिपि मुद्राओं पर टंकित कराया है। भाषा संस्कृत है। इससे प्रकट होता है। गुप्त काल में राष्ट्रभाषा संस्कृत थी।

मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् गणतन्त्रों का पुनः उदय हुआ। मालव, अर्जुनायण, यौधेय, राजन्य, कुणिन्द, महाराज जनपद आदि गणराज्यों की मुद्रायें मिली हैं। इस समय तक भारत की मुद्राओं का विकास उसका स्वयं का है। जिन गणतन्त्रों में निर्वाचित शासक किंवा अध्यक्ष नहीं होता था। उनकी मुद्रायें उनके गण के नाम से टंकित होती थीं। वृष्णियों की मुद्राओं पर वृष्णिराजन्नगणात्य टंकित है। अर्जुनायनों तथा मालवों यौधेयों की मुद्रा पर उनके गण की जय हो टंकित है। यौधेयों की एक मुद्रा पर यंत्रधरों एवं गण दोनों के नाम से कुछ मुद्रायें मिली हैं। जिनपर केवल राजन्य शब्द टंकित है। राज्य एवं गण के नाम का उल्लेख नहीं है।

ईशा पूर्व प्रथम शती में पूर्वी राजस्थान से राजन्य की मुद्राएँ मिली हैं। एक मत है कि राजन्य एक जाति थी। उसपर संस्कृत में लेख है। इसी प्रकार केदार भूमि, अपरान्त, अश्वकश, औदुम्बर, अवन्ती, अयोध्या, कुलूत, कदस, एरण, कौसाम्बी, मथुरा, पांचाल, शिवि, तक्षशिला, त्रिपुरी, वृष्णि, विमका, उद्देहिका, उपगौड़ भूखण्डों की भी मुद्रायें मिली हैं।

कुषाणों के समय से भारतीय मुद्राओं पर विदेशी प्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ था। कुषाण विदेशी थे। अतएव उन्होंने विदेशी मुद्राओं की शैली पर मुद्रायें टंकित करायीं। यूनान तथा रोम के मुद्राओं के समान उनपर राजाओं का नाम तथा पदवियाँ टंकित की जाने लगीं। कनिष्क काल में व्यापार पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत था। मुद्रायें केवल राजकीय टंकसाल में टंकित होती थीं। कनिष्क ने स्वर्ण की मुद्रायें टंकित करायीं। उनका तौल रोम की मुद्राओं के बराबर था। उनपर हिन्दू, पारसी, यूनानी तथा बौद्ध देवी-देवताओं की मूर्तियाँ टंकित हैं। भारतीय लिपि मुद्राओं पर टंकित नहीं हैं। मुद्रायें स्वर्ण तथा ताम्र दोनों की हैं। हविष्क की मुद्राओं पर यूनानी, पारसी तथा हिन्दू देवताओं की मूर्तियाँ हैं। मुद्रायें स्वर्ण तथा ताम्र दोनों की हैं।

गुप्त काल में परिस्थितियाँ बदलीं। मुद्राओं पर विदेशी के स्थान पर भारतीय छाप पड़ने लगी। मुद्रा नीति राज्य द्वारा नियन्त्रित हो गयी। मौर्य काल अथवा सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व से ही भारत में मुद्रायें टङ्कित होती रही हैं। भारत का मुद्रा टङ्कण विज्ञान स्वतः उसका विकास है। तथापि वैबिलोन, वैक्ट्रिया, यूनान एवं रोम की शैली का उस पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। भारतीय मुद्राएँ विदेशी मुद्राओं की नकल नहीं हैं।

भरहुत स्तूप के वेष्ठनी पर जेतवन का चित्रण किया गया है। उसमें मुद्रायें चौकोर चित्रित की गयी हैं। ईशा से लगभग पाँच शताब्दी पूर्व का दृश्य है। इसी प्रकार बोध गया स्तम्भ पर भी एक दृश्य चित्रित

किया गया है । यह मुद्रायें कार्षापण कही जाती थीं ।

सुवर्णपिण्ड कालान्तर में निष्क नाम से प्रख्यात हुए। निष्क का तौल तीन सौ बीस रत्तिका या रत्ती माना गया है । तैत्तरीय संहिता, शतपथ, ऐतरेय ब्राह्मण आदि में उनका उल्लेख मिलता है। (ऋ०: २:३३ : १०, ८ : ४७ : १५; अथर्व० : ५ : १४ : ३, ७ : ९९ : १, २० : १३१ : ८; ५ : १३ : २; श० ब्राह्मण०: १३ : ४ : १; ७ : ११; जै० ब्रा० : उ० : १ : ३६ : ७ : ८;) यह स्वर्ण का होता था । कण्ठहार था । उसे निष्क कण्ठ भी कहते थे। (ऐ० : ब्रा० : ८, २२; ऋ० : ५ : १९ : ३, अथर्व० : ५ : १७ : १४;)

पंचविंशब्राह्मण में व्रात्य द्वारा पहने एक रजत निष्क का उल्लेख है । ऋग्वेद काल में निष्क विनिमय का माध्यम था। एक ऋषि के एक सहस्र अश्व तथा एक सहस्र निष्क प्राप्त करने का वर्णन है । कालान्तर में निष्क का स्पष्ट उल्लेख मुद्राओं के लिये होने लगा था। (अथर्व० : २० : १२७ : ३, वात्स्यायन श्रौत सूत्र : ९ : ९ : २०; शतपथ ब्राह्मण ११ : ४ : १ : ८; गोपथ ब्राह्मण : १ : ३ : ६) निष्क यदि अलंकार रूप से आज से हजारों वर्ष पूर्व धारण किया जाता था तो इसमें आश्चर्य नहीं है । आज भी ग्रामीण स्त्रियाँ रुपया तथा अशर्फी को गुहाकर कण्ठहार स्वरूप पहनती हैं । उन्हें पूर्वीय उत्तर प्रदेश में हुमेल कहते हैं । अशर्फी पहनने की प्रथा आज से तीस वर्ष पहले तक खूब प्रचलित थी । शिक्षित स्त्रियाँ इंगलिश गिनी का अलंकार बनवाकर पहनती हैं ।

शतमान तथा कृष्णाल का उल्लेख मिलता है। माशक तथा कार्षापण मुद्रा का प्रचुर उल्लेख मिलता है । वे तौल तथा मुद्रा दोनों के काम में आते थे। भारत में रुपया, चवन्नी, दुअन्नी भी तौल तथा मुद्रा दोनों के काम में आता था । अस्सी चाँदी रुपयों का तौल बृटिश काल में एक सेर होता था ।

शतमान १०० रत्ती, कार्षापण ८० रत्ती स्वर्ण का होता था। चाणक्य ने स्वर्ण, पुय या धरण, शतमान, पाद, पण तथा काकनी मुद्रा का उल्लेख किया है । पण का सोलहवाँ भाग माशक था । धरण रजत मुद्रा थी । माशक की चौथाई काकनी थी ।

अष्टाध्यायी में रुप्य मुद्रा का भी उल्लेख मिलता है । कार्षापण ही पाली साहित्य में काहपन हो गया है । भारत में यूनानी मुद्रायें अर्ध द्रम कही जाती थीं। द्रम मुद्रायें ५० से ६० ग्रेन की मिली हैं। पाद चौथाई द्रम तथा अर्धपाद मुद्रायें सात ग्रेन की प्राप्त हुई हैं । इनका प्रसार उत्तर पश्चिम भारत में था। इनपर नन्दी, अश्वारोही, तथा नागरी में राजा का नाम अंकित है ।

सबसे प्राचीन मुद्रा, जो अब तक मिली है, वह चान्दी की है। भारत में रजत या चान्दी का आयात होता था । ईरानी रजत मुद्रा उस समय 'सिग्लोस' कही जाती थी । भारत में सबसे प्राचीन मुद्रा सिग्लोस मिली है । सिग्लोस मुद्रा की लिपी खरोष्ठी है । दूसरी विदेशी मुद्रा रोम की है । ईशा से चार सौ वर्ष पूर्व इनका प्रसार उत्तर पश्चिम भारत में था। पंजाब के राजा सम्भूती ने इसी के प्रतिरूप मुद्रा चलाया था। यह तीसरे प्रकार की विदेशी मुद्रा यूनानी है। उक्त तीनों विदेशी मुद्राओं का प्रसार उत्तर-पश्चिम भारत में था ।

उत्तर-पश्चिम दिशा से उत्तरी भारत में प्रवेश होता था । व्यापार का स्थल मार्ग सीमान्त प्रदेश, अफगानिस्तान होता ईरान, सीरिया, ग्रीक, मिश्र तथा रोम को जोड़ता था। विदेशियों का इन भूखंडों पर शासन स्थापित होता और बिगड़ता रहा है । दक्षिण भारत की स्वर्ण खानों के समान सिन्ध आदि पर्वतीय नदियों से स्वर्ण धूल एकत्रित की जाती थी । उनकी मुद्रायें बनती थीं । चाँदी भी पश्चिम एशिया की ओर से अफगानिस्तान होते भारत में प्रवेश करती थी । ताम्र खानें काश्मीर में थी । अतएव वहाँ विदेशी मुद्राओं का

तथा स्थानीय मुद्राओं का मिलना स्वाभाविक है।

काश्मीर में कुषाण राज कनिष्क तथा हूण राज मिहिरकुल का राज्य था। अशोक भी काश्मीर पर राज्य कर चुका था। काश्मीर का सम्बन्ध भारत के प्रसिद्ध सम्राट्, अशोक तथा कनिष्क से जुटा है। दोनों सम्राटों का सम्बन्ध विदेशों से था। उनके समय व्यापार समृद्धि पर था।

काश्मीर में प्राचीन मुद्रायें मिली हैं। उनमें कई प्रकार की मिहिरकुल की मुद्राएँ हैं। उसकी रजत मुद्रा के मुख्य किंवा पुरोभाग पर राजा का मस्तक, तथा राजकीय स्टैंडर्ड के पीछे वृषभ है। 'जयति मिहिरकुल' टंकित है। अन्य मुद्राओं पर जयति वृषभध्वज टंकित है। ताम्र मुद्राएँ भी इसी प्रकार की हैं। पुरोभाग पर 'श्री मिहिर कुल' तथा पृष्ठभाग पर 'वृषभ' तथा 'जयतु वृष' टंकित है। इसकी कुछ बड़ी ताम्र मुद्राओं पर दो प्रकार के लेख टंकित हैं। एक प्रकार पर 'जयति मिहिरकुल' तथा दूसरी प्रकार पर 'मिहिर कुल' टंकित है। ताम्र मुद्रा की शैली शसैनिक है। प्रकट करता है। मिहिर कुल का राज्य काश्मीर के बाहर उत्तर पश्चिम दिशा तक विस्तृत था।

जनरल कनिंघम का मत है कि 'जयतु मिहिर कुल' काश्मीर तथा 'शाही मिहिर कुल' तक्षशिला में टंकित हुई थी। तृतीय प्रकार की और बड़ी मुद्रा मिली है। उसके पुरोभाग पर अश्वारोही तथा लेख दाहिनी से बायें लिखा मिलता है।

मिहिरकुल के पश्चात् तूरमान तथा उसके पुत्र प्रवरसेन की मुद्रायें मिली हैं। उक्त दोनों प्रकार की मुद्राओं पर लम्बाकार बायें ओर 'किदार' टंकित है। तीन मुद्रायें श्री कनिंघम को मिली थीं। उन पर 'किदार कुशान शाही' लिखा है। इन मुद्राओं को मुद्राशास्त्रियों ने 'किदार कुषाण' वर्ग में रखा है। काश्मीर में तूरमान की मुद्रायें पन्द्रहवीं शताब्दी तक चलती रही हैं (रा० : ३ : २१३) अवन्तीपुर के खनन कार्यों में मुसलिम सुलतानों की मुद्राओं के साथ मिली हैं।

मुद्राओं पर 'किदार' शब्द टंकित है। उसका कुछ अर्थ होना चाहिए। इतिहास के विद्वान् 'किदार' कुषाण वंशीय एक राजा का नाम देते हैं। किदार शब्द कुशान वंश का परिचायक है। परन्तु नवीं शताब्दी के 'कुट्टनीमतम्' ग्रन्थ के उल्लेख से प्रकट होता है। किदार शब्द मुद्रा के लिये उसी प्रकार प्रयोग किया जाता था जिस प्रकार 'दीनार' शब्द कालान्तर में प्रयोग किया जाने लगा था। पूर्वं दत्तस्योपरि मुक्ताहारस्य केदारास्त्रिंशत्—तुम्हारी दासी गिरवी रखी मुक्ता माला के लिये तीस केदार ला चुकी है। (कुट्टनीमतम् : श्लोक ६०६)

ककोर्ट वंश की मुद्रायें बड़ी स्पष्ट हैं। उनमें स्वर्ण एवं रजत का मिश्रण है। किसी एक धातु की शुद्ध मुद्रा नहीं है। जयापीड की ताम्र मुद्रायें प्रचुर संख्या में मिली हैं। उनका तौल १२० तथा १२१ ग्रेन है। राजा कनिष्क तथा हविष्क की प्रतिरूप तौल में है। उनका टंक भद्दा है। कलात्मक नहीं है। उत्पल वंश के राजाओं की मुद्राओं के टंकण में कुछ विकास नहीं हुआ। वे पुरानी मुद्राओं की भद्दी नकल मात्र हैं।

अब तक ३८ हिन्दू राजाओं की मुद्रायें प्रामाणिक तौर पर मिल चुकी हैं। उनका राज्य काल छठवीं से तेरहवीं शताब्दी तक है। बहुसंख्यक मुद्रायें ताम्र की हैं। परन्तु उस काल में रजत तथा स्वर्ण मुद्रायें भी प्रचलित थीं। स्वर्ण मुद्रा ७२ या ७३ ग्रेन तथा रजत ३५ ग्रेन की मिली है।

हर्ष देव की स्वर्ण मुद्रा कर्णाटक शैली मुद्रा की प्रतिरूप है। उन्हें उत्कोश कहते हैं। उत्कोश का अर्थ शुद्ध स्वर्ण होता है। सर वाल्टर इलियट का मत है कि मुद्रायें कोग देश अथवा कोयम्टूर की है। परन्तु श्री कनिंघम इस मत की पुष्टि नहीं करते।

परिशिष्ट

काश्मीर में सर्वप्रथम मुद्रा तूरमाण की दीनार मिली है। 'तद्य' या 'टक्क' ताम्रमुद्रा के लिये काश्मीरी भाषा में प्रयोग किया जाता है। 'टकहवा' ताम्र मुद्रा जिसकी कीमत दो पैसे के बराबर थी सन् १९१९ के पूर्व ब्रिटिश भारत तथा काश्मीर में प्रचलित थी।

काश्मीर मुद्रा पर लक्ष्मी एवं दण्डायमान राजा की आकृतियाँ टंकित मिलती हैं। यह कुषाण राजा कनिष्क मुद्रा की नकल है। यह आश्चर्य की बात नहीं है। कनिष्क का राज्य काश्मीर में था। कनिष्क ने बौद्ध परिषद् का आयोजन काश्मीर में किया था। समस्त त्रिपिटक ताम्रपत्रों पर टंकित कराया था। वे कहीं गाड़ दिये गये थे। उनका अन्वेषण अभी तक काश्मीर में जारी है। उक्त प्रकार की मुद्राएँ गुप्तकालीन मुद्राओं की प्रतिरूप कही जायँगी। उनकी प्रकार गुप्तकालीन है। और गुप्तकालीन मुद्रा प्रकार कनिष्क की अथवा कुशानवंशी राजाओं की प्रतिरूप है। गुप्तवंश के पूर्व कुशानों का राज्य भारतवर्ष में था। उनका सम्पर्क पश्चिम एशिया तथा तुर्किस्तान से था। कुषाणकालीन मुद्राओं पर यूनानी मुद्राओं के टंकण कला की झलक मिलती है। कालान्तर में वही प्रकार भारत में प्रचलित हो गया।

प्रारम्भिक मुद्राओं की शैली मिहिरकुल, हिरण्यकुल तथा गोकर्ण की मुद्राओं में मिलती है। उनमें राजा सामने खड़ा तथा मुख वाम भाग की ओर मुड़ा, टंकित किया गया है। उसके वामहस्त में बर्छा अर्थात् कुन्त, तथा वाम हाथ सम्भवतः वेदी पर फैला है। उसके मुख्य भाग पर आसनस्थ देवी है। कुशाण मुद्राओं पर यह देवी 'ओर दोक्षो' अथवा 'अर दोक्षो' है। कुषाण मुद्रा पर अंकित इस नाम के सम्बन्ध में विवाद उठ खड़ा हुआ है। श्री एम. डी. खरेघाट आइ.सी.एस. का एक लेख (जनरल ऑफ दी नुमिस्टिक सोसाइटी ऑफ इण्डिया, जून सन् १९४८ ई०, पृष्ठ २५) छपा है। श्री खरेघाट सन् १९२१ ई० में बनारस में मजिस्ट्रेट थे। उन्होंने मेरी सजा उस वक्त राजनीति आन्दोलन में भाग लेने के कारण की थी। उन्होंने श्री स्तीन का लेख (इण्डियन एण्टीक्वेरी १७ अप्रैल : १८८८ ई० —) के सम्बन्ध में लिखा है। श्री स्तीन ने 'अरदोक्षो' की तुलना पारसियों की देवी 'अशी बंगुही' से किया है। पारसियों में यह देवी लक्ष्मी के समान समृद्धि तथा सौभाग्य की देवी मानी जाती है। खरेघाट ने 'अर्द' शब्द को 'अशी' माना है। शेष को 'वकशो' माना है। 'वक्षो' शब्द 'वक्षु' नदी आमू दरया अर्थात् 'ओक्सस' महानद है। अर्धखुश नगर का नाम है। 'अदेव खुश' नगर खीव अर्थात् ख्वारिजम से एक दिन का मार्ग पड़ता है।

'वक्षु' नदी का नाम 'वेह' भी है। सिन्ध को भी 'वेह' कहते हैं। झेलम नदी का नाम 'वेहुत' है। एक मत है कि यह समुद्र की देवी है। उसे 'अर्दविशुर' माना जाना चाहिए। 'ओरदोक्षो' शब्द पारसी शब्द 'अशिवंग' या 'अदिस्वंग' के समीप हैं। एक मत है कि यह देवी यूनानी देवी 'ताइचे' से मिलती है।

मुद्रा पर टंकित देवी के वामहस्त में समृद्धि शृंग तथा दक्षिण में राजकीय पट्ट है। एक मत है कि देवी पृथ्वी की प्रतीक है। कुषाण काल के पश्चात् गुप्तकाल में हिन्दू प्रभाव के कारण देवी का स्थान लक्ष्मी ने ले लिया।

कमल भारतीय संस्कृति का चिह्न है। देवी के वामहस्त में शृंग के स्थान पर कमल बना दिया गया। इसी प्रकार तूरमान तथा प्रवरसेन की मुद्राओं पर देवी के हस्त में कमल है।

प्रवरसेन की स्वर्ण तथा रजत मुद्रायें मिली हैं। मुख्य भाग पर लक्ष्मी के हाथ में कमल है। दक्षिण ओर 'श्रीप्रवर' ब्राह्मी अक्षरों में टंकित है। पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा अर्धचन्द्राकार दण्ड है। दाहिना हाथ फैला है। उसमें त्रिशूल है। दक्षिण भाग में 'सेन' तथा वामहस्त के नीचे 'किदार' टङ्कित है।

चन्द्रमौलि शिव हैं । त्रिशूल शिव का आयुध है । तत्कालीन जनजीवन पर शैव धर्म का प्रभाव ज्ञात होता है । राजा शैव था । कालान्तर में जब मुद्राओं पर लिखने की प्रथा प्रचलित हुई, तो हस्त के स्थान पर लेख टङ्कित होने लगा । फैला हाथ गायब हो गया । इसकी भी प्रतिक्रिया हुई थी । पहले वामहस्त हटाया गया । जैसा शंकर वर्मा तथा गोपाल वर्मा के मुद्राओं से प्रकट होता है । तत्पश्चात् दक्षिण हस्त के स्थान पर 'श्री' लिखा जाने लगा । मुद्राओं का यह प्रकार राजा हर्ष के समय तक चलता रहा ।

राजा हर्ष के समय हस्ती शैली की मुद्रायें स्वर्ण तथा रजत की टङ्कित होने लगीं । कर्णाट तथा काबुल के ब्राह्मण शाही राजाओं की मुद्रायें, जिनपर अश्वारोहो टङ्कित था, उसी की नकल है। हर्ष की ताम्र मुद्रायें बहुत कम मिलती हैं। हर्ष की स्वर्ण मुद्रायें दो प्रकार की मिली हैं । एक तरफ अश्वारोही तथा दक्षिण भाग पर कुन्त अर्थात् बर्छा और 'हर्षदेव' टङ्कित है। पुरो अर्थात् मुख्य भाग पर लक्ष्मी हैं । द्वितीय वर्ग की मुद्राओं के पुरोभाग पर 'हाथी' तथा पृष्ठ भाग पर 'हर्षदेव' टङ्कित है । हर्ष की रजत मुद्रा दूसरी प्रकार की स्वर्ण मुद्रा के समान है ।

प्रवरसेन की स्वर्ण मुद्रा रजत से कुछ भिन्न है । उसके मुख्य अर्थात् पुरोभाग पर सिंहवाहिनी देवी हैं । देवी के वामहस्त में कमल तथा वाम भाग में पुष्पयुक्त पात्र है । वाम भाग में ही 'किदार' लम्बाकार टङ्कित है । पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा है । उसका वामहस्त कटि पर है । दक्षिण हाथ उठा है । दो मूर्तियाँ दक्षिण तथा वामभाग में बैठी हैं । 'प्रवरसेन' ब्राह्मी लिपि में टङ्कित है ।

श्री कनिंघम ने देवी को लक्ष्मी माना है । परन्तु लक्ष्मी का वाहन सिंह नहीं होता । दुर्गा का वाहन सिंह है । प्रवरसेन ने दिग्विजय किया था । उसके प्रतीक स्वरूप शक्ति के प्रतीक स्वरूप, सिंहवाहिनी दुर्गा की मूर्ति टङ्कित की गयी है । निम्न भाग की दोनों मूर्तियाँ मैं समझता हूँ, ऋद्धि तथा सिद्धि हैं ।

काश्मीर की मुद्राओं का प्रकार कनिष्क (सन् ७८ ई०) से मुस्लिम काल के प्रारम्भ (सन् १३३९ ई०) लगभग १२६१ वर्षों एक ही जैसा रहा है । उनके टङ्कण तथा ढालने में गिरावट आती गयी है । वे परिष्कृत नहीं हो सकी हैं ।

मुद्रा तीन प्रकार से बनती थी । एक प्रकार यह था कि धातु का छड़ बना लिया जाता था । उसे काट कर मुद्रा बनायी जाती थी । दूसरा प्रकार धातु का पत्तर बनाया जाता था । मुद्रा के आकार का टुकड़ा काट कर, उसे ठप्पे में टङ्कित किया जाता था । तीसरा प्रकार मुद्रा ढालने का था । मुद्रा का साँचा मिट्टी या लोहा का बनाया जाता था । उसमें पिघली धातु डाल दी जाती थी । मिट्टी में धान की भूसी भी मिला दी जाती थी । उससे साँचा चिटकता नहीं था ।

काश्मीर में हिन्दू काल की निम्नलिखित मुद्रायें मिली हैं । उनका सम्भावित काल श्री स्तीन की गणना के अनुसार दिया गया है । जहाँ कनिंघम की गणना दी गयी है वहाँ 'क०' संकेत लिखा गया है ।

१. कनिष्क (सन् ७८ ई०), २. हविष्क, ३. मिहिर कुल (लौ० २३७२ वर्ष ४ मास), ४. गोकर्ण (लौ० २७६७ = ६० = १९), ५. तूरमाण (लौ० ३१५२), ६. प्रवरसेन (लौ० ३१८६ = ११ = १), ७. नरेन्द्रादित्य (लौ० ३२८६ = २ = १), ८. दुर्लभ (लौ० ३६७७ = १० = १ = ६२५ ई० क०), ९. दुर्लभक (लौ० ३७१०, सन् ६३० ई० क०), १०. विग्रह (सन् ६५० ई० क०), ११. प्रतापादित्य (सन् ६६१ ई० क०), १२. प्रतापादित्य II (सन् ७१९ ई० क०), १३. यशोवर्मा (सन् ७३० ई० क०), १४. नम्बी, १५. ए–जयापीड (सन् ७५७ ई० क०), १५. बी–जयापीड या विनयादित्य, १६. आदित्य

वर्मा (?), १७. शंकर वर्मा (सन् ८८३ ई०), १८. गोपाल वर्मा (सन् ९०२ ई०), १९. सुगन्धारानी (सन् ९०४ ई०), २०. पार्थ (सन् ९०६ ई०), २१. निजित वर्मा (सन् ९२ ई०१), २२. चक्रवर्मा (सन् ९२३ ई०), २३. उम्मतवन्ती (सन् ९३७ ई०), २४. यशस्कर (सन् ९३९ ई०), २५. पर्वगुप्त (सन् ९४८ ई०), २६. क्षेमगुप्त (सन् ९५० ई०), २७. दिद्दाक्षेम (सन् ९५० ई०), २८. अभिमन्यु-गुप्त (सन् ९५८ ई०), २९. नन्दिगुप्त (सन् ९७२ ई०), ३०. त्रिभुवनगुप्त (सन् ९७३ ई०), ३१. भीमगुप्त (सन् ९७५ ई०), ३२. दिद्दारानी (सन् ९८०–८१ ई०), ३३. संग्रामदेव (सन् १००३ई०), ३४. अनन्तदेव (सन् १०२८ ई०), ३५. कलश (सन् १०६३ ई०), ३६. हर्ष (सन् १०८९ ई०), ३७. उच्चल (सन् ११०१ ई०), ३८. सुस्सल (सन् ११११२ ई०), ३९. सल्ल (सन् १११ ई० ?), ४०. जयसिंहदेव I (सन् ११२८ ई०; सन् ११२७-११३० ई० क०), ४१. जयसिंहदेव II (सन् ११३२–११४५ ई० क०), ४२. श्री जय श्रीतानदेव, ४३. प्रमाणुक (सन् ११५५ ई०), ४४. अवन्तिदेव (सन् ११६४ ई०), बोपदेव = बुप्पेदेव (सन् ११७१ ई०) सन्दिग्ध मुद्रा। ४५. जगदेव (सन् ११९९ ई०), ४६ राजदेव (सन् १२१३ ई०), ४७. प्रतापदेव, ४८. गुल्हण (पुत्र जयसिंह)।

अन्तिम दोनों मुद्राएँ राजाओं को नहीं है। जयसिंह के पश्चात् काल गणना जोनराज के अनुसार दी गयी है। उनमें काश्मीरी मुद्राओं के अतिरिक्त शकों, पल्हव तथा भारतीय-यूनानी शासकों की मुद्रायें काश्मीर में बहुत मिली हैं। उनसे प्रकट होता है कि काश्मीर का विदेशी व्यापार समृद्धिशाली था। काश्मीर के राजाओं की मुद्रा पर विस्तार के साथ उन राजाओं के प्रसंग में यथास्थान लिखा गया है। विदेशी मुद्राएँ चलती थीं। किसी विदेशी मुद्रा का किसी देश में मिलना एक देश का दूसरे देश पर अधिकार होना नहीं मान लेना चाहिए यह मानकर कुछ लेखकों ने त्रुटि की है। ब्रिटिश काल में निजाम हैदराबाद तथा कुछ देशी रियासतों में मुद्राएँ टङ्कित होती रही हैं। उनका उन रियासतों में प्रसार था; परन्तु वे स्वतन्त्र प्रभुत्व की न तो द्योतक थीं और न उनका काशी में मिलने से काशी या उन राज्यों का अधिकार नहीं माना जायगा।

भारतीय मुद्राएँ कुछ ही वर्ष पूर्व नेपाल, अफगानिस्तान, वर्मा, कुवेत, सीलोन आदि पश्चिमी एशि-याई देशों में खुलेआम चलती थीं। बुहलर को स्वयं बहुत विदेशी मुद्रायें काश्मीर यात्रा में मिली थीं। चक्रधर विजयेश्वर समीपस्थ स्थान में तो ढेर ही मिला था। इसका अर्थ नहीं है कि काश्मीर पर विदेशी शासन था।

चौथी तथा पाँचवीं शताब्दी की मुद्राओं पर ब्राह्मो लिपि टंकित है। करकोट कालीन मुद्रायें भद्दी टंकित हुई हैं। कुषाण प्रकार की हैं। दुर्लभवर्धन प्रथम राजा ने अपने नाम से मुद्राएँ टंकित करवायी थीं। पुरोभाग पर लक्ष्मी तथा 'श्री दुर्लभ देव' टंकित है। पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा तथा 'जय' 'केद्दार' टंकित है। प्रतापादित्य नाम की मुद्रायें ललितादित्य मुक्तापीड की मानी जाती हैं। अभी तक ललितादित्य मुक्तापीड के नाम की मुद्रा नहीं मिली है। ललितादित्य के वर्णन प्रसंग में इस विषय पर विस्तार के साथ लिखा गया है।

जयापीड विनयादित्य ने अपने नाम से मुद्रा टंकित करायी थी। उसके एक तरफ 'श्री विनयादित्य' तथा दूसरी तरफ 'जयति' तथा 'किदा' टंकित है।

कर्कोट शैली की एक मुद्रा यशोवर्मा की मिली है। यशोवर्मा काश्मीर का कोई राजा नहीं हुआ था। जयन्त भट्ट के 'आगमदम्बर' नाटक से पता चलता है कि शंकरवर्मा राजा का दूसरा नाम यशोवर्मा था। वह

मुद्रा मनकिपल स्तूप के अतिरिक्त पंजाब में मिली है। शंकर वर्मा ने भी दिग्विजय किया था। उसका काफी समय विदेश तथा सीमावर्ती क्षेत्रों में बीता था उसकी मृत्यु भी काश्मीर के बाहर हुई थी।

कर्कोट वंश की एक और मुद्रा श्री विग्रह की मिली है। उसपर दक्षिण भाग पर 'श्री विग्रह' तथा वाम भाग पर 'तुङ्ग' लिखा है। विक्रमी संवत् ९६९ में ग्वालियर क्षेत्र में 'विग्रह तुंगीय' नाटक प्रचलित था। सियादोनी शिल्प लेख से प्रकट होता है। वह मुद्रा काश्मीर में एक पात्र में मिली थी। जिसमें दुर्लभ वर्धन तथा जयापीड की भी मुद्रायें थीं। कर्कोट काल की मुद्रायें शुद्ध स्वर्ण, रजत एवं ताम्र की नहीं हैं। उनमें १० से १२ प्रतिशत सुवर्ण, १३–१५ प्रतिशत रजत शेष ताम्र तथा कुछ गिलट (Nichel) रहता था। अष्ट-धातु का घण्टा, घण्टी, मूर्तियाँ तथा अन्य वस्तुएँ बनती थीं। उसी आधार पर प्रतीत होता है कि मुद्रा में भी धातुओं का मिश्रण किया जाता था। इन्हें मिश्र वर्ग की मुद्रा कह सकते हैं।

स्वर्ण एवं रजत के अतिरिक्त अन्य मुद्राएँ ताम्र की थीं। ताम्र मुद्रायें कर्कोट राजाओं की नहीं मिलतीं। वे तोरमाण लेख सहित टंकणित मिलती हैं। जयापीड ने निस्सन्देह ताम्र मुद्राएँ अपने नाम से टंकित करायी थीं। उत्तर प्रदेश में काश्मीर राजाओं की जो मुद्राएँ मिली हैं वे ताम्र तथा मिश्र धातुओं की थीं।

शंकर वर्मा के पश्चात् टंकित मुद्रायें भद्दी तथा पुरानी शैली की हैं। राजा और रानी संयुक्त 'क्षेम-दिद्दा' नाम से भी ताम्र मुद्रायें टंकित हुई हैं। उसपर 'दि' तथा 'क्षेम' टंकित है। मुद्रा के पृष्ठ भाग पर दण्डायमान राजा राजकीय भेष में है। नीचे दाहिने तरफ 'गुप्त' लिखा है।

शंकर वर्मा के समय से निम्नलिखित ताम्र मुद्राएँ मिली हैं—१. शंकर वर्मा, २. गोपाल वर्मा, ३. सुगन्धा, ४. पार्थ, ५. निर्जित वर्मा, ६. चक्रवर्मा, ७. उम्मतवन्ति, ८. यशस्कर, ९. पर्वगुप्त, १०. क्षेमगुप्त, ११. अभिमन्यु गुप्त, १२. नन्दिगुप्त, १३. त्रिभुवन गुप्त, १४. भीम गुप्त, १५, दिद्दा, १६. संग्राम देव, १७. अनन्त, १८. कलश, १९. हर्ष, २०. उच्चल, २१. पुस्सल, २२. रुल्हण, २३. गुल्हण ? २४. जयसिंह, २५. जयदेव, २६. प्रमाणुक, तथा २७. राजदेव।

भारत में कौड़ी विनिमय की प्रथम इकाई थी। मेरी बाल्यावस्था में कौड़ी चलती थी। सोलहगण्डा कौड़ी का एक पैसा काशी में मिलता था। काश्मीर में भी वही अवस्था थी। क्षेमेन्द्र ने कला विलास (तथा २ : ५, ७), तथा समय मात्रिका (८ : ८०) में 'वाराटक' अर्थात् कौड़ी को सबसे निम्नकोटि के विनिमय का माध्यम बताया है। कल्हण (७ : ११२) के लेख से प्रकट होता है कि कौड़ी विनिमय की प्रथम साधन थी। जोनराज (५८८) ने भी कौड़ी का प्रसार लिखा है।

कौड़ी के साथ-साथ धान्य भी विनिमय का साधन था। कल्हण के वर्णन (५ : १७१) से प्रकट होता है। मालगुजारी तथा लगान धान्य में दी जाती थी। लोक प्रकाश से प्रकट होता है कि खारी धान्य जुर्माना, मजदूरी तथा मालगुजारी आदि में दिया जाता था। यह आश्चर्य की बात नहीं है। आज भी अनाज से बदल कर सामान ग्रामों में बनिया बेचते हैं। ग्रामों में तरकारी नमक शाक अनाज के बदले में बिकता है। मेरी छाउनी पर मजदूरों को मजदूरी आज भी अनाज में ही दी जाती है। वह पुरानी प्रथा ग्रामों में चली आती है। आज भी प्रचलित है।

मुद्रा के प्रकारों से देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होता है। कुषाण कनिष्क के विस्तृत साम्राज्य का काश्मीर अंग था। उस समय द्विधातु मुद्राओं का प्रसार था। काश्मीर व्यापार का केन्द्र था। काश्मीर से होकर मार्ग लद्दाख, तिब्बत तथा तुर्किस्तान जाता था। कुषाण साम्राज्य संघटन तथा शासन व्यवस्था के

कारण व्यापार मार्ग खुल गये थे।

रोम की स्वर्ण मुद्रा शैली कुषाणकाल में भारतीय रूप लेती काश्मीर में प्रचलित हो गयी थी। स्वर्ण मुद्राएँ विदेशी व्यापार विनिमय की मुख्य माध्यम थीं। विदेशी व्यापारी काश्मीर में एवं काश्मीरी विदेश में ताम्र आदि मुद्रा स्वीकार नहीं करता था। स्वर्ण मुद्रा मूल्य के कारण विश्व में कहीं भी बिक सकती है। यह आज भी सत्य है। प्रत्येक देश यथाशक्ति स्वर्ण संचय करना चाहता है। ताम्र तथा अन्य मिश्रित मुद्राओं का स्थानीय मूल्य एवं महत्त्व था। काश्मीर के बाहर वे बेकार थीं। उनका मूल्य उनमें निहित धातु मात्र था। बीसवीं शताब्दी के दो दशक तक पूर्वीय उत्तर प्रदेश में गोरखपुरी पैसा चलता था। यह ताम्र छड़ का टुकड़ा मात्र था। अंग्रेजी पैसे के साथ वह भी बाजार में स्वीकार किया जाता था। उसका मूल्य उसके ताम्र मूल्य के कारण था। ताम्र का मूल्य जैसे-जैसे बढ़ने लगा गोरखपुरी पैसा बाजार में गायब हो गया। हलका बृटिश पैसे ने उसका स्थान ले लिया। यही अवस्था द्वितीय महायुद्ध के समय हुई। ताम्र पैसा ताम्बे की महंगाई के कारण लोप हो गया। उसे गलाकर व्यापारी धातु बना लिये। वह धातु स्वर्ण होकर बिकने लगा। बृटिश सरकार ने पैसा में छेद कर दिया। उसे हलका बनाया। वह पैसा वाशर के काम में आने लगा। ताम्र के स्थान पर पीतल का पैसा बना। पीतल धातु महंगी होने लगी। पीतल की मुद्रा बाजार में गलने लगीं। आज बाजार में न तो ताम्बे का पैसा है और न पीतल का।

कुषाण साम्राज्य के विघटित होने तथा हूण आक्रमण के कारण भारत की स्थिति अचानक बदल गयी। चौथी शताब्दी के उत्तरार्ध में मध्येशिया तथा उत्तर पश्चिम में हूणों के कारण राजनीतिक परिस्थिति बिगड़ गयी। अन्तर्देशीय व्यापार शिथिल हो गया। सुवर्ण मुद्रायें आपत्तिकाल के लिये संचित की जाने लगीं। कुषाणों के पश्चात् स्वर्ण मुद्रा का प्रसार कम हो गया। उनका स्थान रजत तथा ताम्र मुद्रायें लेने लगीं।

ताम्र—काश्मीर में सुवर्ण की खानें नहीं हैं। तामा मिलता था। सुवर्ण प्राचीन पिप्पिल, पिप्पिलीका, सिन्धु आदि नदियों के बालू से निकाला जाता था। विदेशी व्यापार की अवनति के कारण स्वर्ण का आयात काश्मीर में कम होने लगा। पिप्पिलिका से इतना सोना नहीं निकलता था कि उनकी मुद्रा टंकित की जा सके। ताम्र मुद्राओं का प्रसार बढ़ गया। चान्दी भारत में नहीं होती थी। भारत चान्दी के लिये विदेशों का मुखापेक्षी था। केवल मेवाड़ जावर खान से कुछ चान्दी निकलती थी। वह भारत के लिये अपर्याप्त थी। उसे खान से निकालकर चान्दी बनाने की कीमत चान्दी के बाजार भाव से अधिक हो जाती थी। चान्दी की आवश्यकता के लिये भारत आज के समान विदेशों का मुखापेक्षी था। हूणों का अभियान जब शान्त हुआ और व्यापार मार्ग खुल गये तो मुस्लिम शक्ति का उदय हुआ। उसके कारण ईरान, अफगानिस्तान तथा तुर्किस्तान से काश्मीर का व्यापार छिन्न-भिन्न हो गया। उन देशों में धार्मिक क्रांतियाँ हो रही थीं। वे गृह युद्धों में फंस गये थे।

काश्मीर का व्यापार भारत तिब्बत तथा चीन तक ही सीमित रह गया। मिश्रित धातु की मुद्रायें चान्दी तथा स्वर्ण के अभाव में प्रचलित हो गयीं। उनमें कुछ अंश सुवर्ण एवं रजत का होता था। वे भारत, तिब्बत तथा चीन में आंशिक रूप से स्वीकार की जाने लगीं। ललितादित्य तथा जयापीड के भारतीय दिग्विजयों के कारण काश्मीर का व्यापार पुनः जोर पकड़ गया। राजा अनन्त एवं यशस्कर के समय स्वर्ण संचय की वस्तु हो गया। आज भी सुवर्ण संचय की प्रवृत्ति है। उनका आभूषण आदि बनाकर रख लिया जाता है। ताकि समय पर उन्हें बेचकर काम चलाया जा सके। सुवर्ण ही एक ऐसी धातु है जिससे कम

वजन का होने पर अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त कर सकता है। मुस्लिम काल में सुरक्षा की दृष्टि से स्वर्ण संचय की प्रवृत्ति बढ़ गयी थी। विदेशी व्यापार का जहाँ अभाव होता था वहाँ स्वर्ण मुद्रा की विशेष आवश्यकता नहीं थी। अन्तर्देशीय कार्यों के लिये रजत एवं ताम्र मुद्रा पर्याप्त थी। इसलिये काश्मीर में दशवीं शताब्दी के पश्चात् सुवर्ण मुद्रा का अभाव एवं ताम्र मुद्रा का प्रसार बढ़ गया था।

राजतरंगिणी तथा और किसी स्थान पर काश्मीर के हिन्दू राजाओं की मुद्रा तथा मूल्य के विषय में कोई जानकारी नहीं मिलती। जोनराज श्रीवर तथा शुक भी प्रकाश नहीं डालते। सर्वप्रथम अकबर के समय अबुलफजल के आईने अकबरी के लेखों से कुछ प्रकाश पड़ता है।

अकबर के समय चालीस दाम का एक रुपया होता था। अबुलफजल के अनुसार रव ससून रजत मुद्रा नवमाशा की थी। पुंछुहु ताम्र मुद्रा थी। वह दाम की चतुर्थांश थी। पुंछूहू या पंछी का अपरनाम कसीर भी था। कसीर का चतुर्थांश बारहकानी या बरहनी था। वह बरहगनी का अपभ्रंश है। बरहनी या बहगनी चतुर्थांश शकरी था। चार कसीर का एक हत, चालीस कसीर का एक सासनू; डेढ़ सासूनू का एक सिक्का, एक शत सासून का एक लाख होता था, जो एक सहस्र दाम के बराबर होता था। पुन्तश् शब्द पुन्तसह का अर्थात् पंचविशंति से निकला है। हथ शब्द संस्कृत शब्द शत का अपभ्रंश है। ससून शब्द शत सहस्र का अपभ्रंश है। हत अकबर के सिक्के के एक दाम के अथवा रुपये के चालीसवें अंश के बराबर था। पुन्तश् ताम्र मुद्रा थी। इसका तौल ८१ ग्रेन था। संस्कृत शब्द द्वादश का अपभ्रंश बाहगनी है। इसका अर्थ बारह भाषा में होता है। सत्तरहवीं शताब्दी के पूर्व यह शब्द रसी अर्थ में प्रयोग किया जाता था। इसे काश्मीरी में उस समय वाह गन्य कहा जाता था। वह बारह दीनार के बराबर था। हथ मुद्रा अकबर के ताम्र दाम के बराबर थी। सासून अथवा सहस्र दस हथ के बराबर था। वह दस दाम के बराबर था। अथवा अकबर के रुपया का चतुर्थांश था। शत सासून अकबर के एक सहस्र दाम के बराबर था।

सिक्का का अर्थ मुद्रा है। वह दिल्ली के सुल्तानों की रजत मुद्रा थी। उसका तौल एक सौ पचहत्तर ग्रेन था। डेढ़ सासून पन्द्रह दाम के बराबर था। कनिंघम का मत है कि डेढ़ सासनुस एक रोप सासून के बराबर होता था। अबुलफजल के अनुसार दो बहगनी = एक पुन्तश् या पचीसा, चार पुन्तश् = एक हथ या सैकड़ा, १० हथ एक सासून अर्थात् हजारा तथा १०० सासून एक लाख के बराबर था।

काश्मीर में गत शताब्दी तक हथ अंग्रेजी एक पैसा के बराबर था। दस हथ या पैसा बराबर एक सासून के होता था। पुन्तश् मुद्रा हथ की चतुर्थांश तथा बाहगनो की अष्टांश होती थी। सोलह कौड़ी का एक पुन्तश् तथा आठ कौड़ी का एक बाहगनी था।

कौड़ी का प्रसार काश्मीर में डोंगरा महाराज रणवीर सिंह के प्रारम्भिक शासन काल में लुप्त हो गया था। काश्मीर में अंग्रेजी मुद्रा और अब भारतीय मुद्रा प्रसार के कारण लोग पुराने सिक्कों तथा उनके रूप को भी भूल गये हैं। निष्कर्ष निकलता है कि एक दाम बराबर रुपया का चालीसवां भाग था। वह वर्तमान नए सिक्कों के पूर्व एक पैसा अर्थात् रुपये का चौसठवाँ भाग था। सासून रुपये का पाँच बटा बत्तीसवाँ भाग था। अथवा ढाई आने के बराबर था।

कल्हण के समय अथवा उसके पूर्व जो मुद्रा चलती थी वह उक्त अनुपात तथा मूल्य से प्राय: मिलती है। उन्हें क्रमश: पुन्तश् = पंचविंशति, हथ = सासून = शत, सहस्र तथा लाख लक्ष के बराबर था। कोटि भी प्रचलित था। एक शत सासून का एक कोटि माना जाता था।

परिशिष्ट

दशमलव मुद्रा प्रणाली भारत ने आजादी के पश्चात् स्वीकार की है। आश्चर्य है कि काश्मीर में हिन्दू काल में दशमलव मुद्रा प्रणाली प्रचलित थी। पंचविंशत मुद्रा का उल्लेख श्रीवर ने (३: २१४४: ५८४) किया है। उसे हसन शाह (सन् १४७२–८४) ने २८ गुना प्रसारित किया था। मुद्रा संकट के कारण उनका तौल घटा दिया गया था। (श्रीवर : ३ : २१४) कल्हण ने पचास दीनार दो पुन्तश् के के बराबर लिखा है। (५ : ७१, ८ : १३, ७) शत का उल्लेख भी कल्हण ने (राज० ५ : ११६, ७ : १२२०, ८ : १३६—१४२,) किया है। श्रीवर (१ : २०२) का उल्लेख मिलता है। कनिंघम का मत है कि हर्ष की रजत मुद्रा जिसकी तौल २३.५ ग्रेन थी वह पांच हथ अथवा पाँच सैकड़ा अथवा अर्ध सासून के बराबर थी। ताम्र की एक शत दीनार या एक हथ चार पंचविंशति के बराबर थी। हथ में लगभग पाँच ग्रेन चान्दी थी। कनिंघम का मत है कि स्वर्ण तथा रजत मूल्य का अनुपात १ : ८ का था। तूरमान की ताम्र मुद्राएँ ९१ ग्रेन की थीं। जबकि पश्चात् के राजाओं की मुद्रा ११० ग्रेन की थी। आठ तूरमान की मुद्रा पुन्तशुश १० के बराबर थी।

स्तीन का मत है कि तूरमान की पंचविशमिष्टिका तथा अन्य प्रकार की मुद्रायें कर्कोट काल में चलती थीं। नवीं शताब्दी के पश्चात् काश्मोर के हिन्दू राजाओं की मुद्रायें दशमलव पर आधारित थीं। उनका निम्नलिखित अनुपात श्रीस्तीन ने निश्चय किया है—

१२ दीनार = द्वादश = बहगनी = बारही। २ द्वादस = २५ दीनार = पंचविष्टिकाः = पुन्तश् = पचीसा। ४ पंचविष्टिका = १०० दीनार = शत = हथ = सैकड़ा। १० शत = १००० दीनार = सहस्र = सासून = हजारा। १७० सहस्र = १००,००० दीनार = एक लाख = लख। १०० लक्ष = १००,०००,००० दीनार = कोटि = करोड़।

स्तीन के अनुसार अकबर के समय का सम्भावित मूल्य

दीनार मूल्य	प्रकार	प्रारम्भिक हिन्दू मुद्रा ८५५ तक	परवर्ती हिन्दू मुद्रा ८५५ के पश्चात्	मुस्लिम मुद्रा	अबुल फजल के अनुसार मूल्य
१२	द्वादश (बहगनी)	—	४५ ग्रेन	—	१/८ दाम या १/३२० रु०
२५	पंचविष्टिका (पुन्तश्)	१०० ग्रेन (१)	९१ ग्रेन	८३ ग्रेन —	१/४ दाम या १/१०० रु०
१००	शत (हथ)	—	—		१ दाम या १/४० रुपया
५००	—	—	२३.५ ग्रेन	—	५ दाम या १/८ रुपया
१०००	सहस्र	—	—	९४ ग्रेन	२० दाम = १/२ रुपया
२०००	—	१२० ग्रेन (१)	—		२५ दाम = २५/४० रुपया
१२५००	—	—	—	७३ ग्रेन (१)	१२५ दाम = ३१/८० रु०
१००,०००	लक्ष (लाख)	— —	— —	—	२५ रुपया
१०,०००,०००	कोटि (करोड़)	— —	— —	—	२५०००

हिन्दू काल में मुद्रायें अधिकतया ताम्र की थीं। स्वर्ण तथा चान्दी की मुद्रायें अपवाद थीं। कुछ ही

राजाओं के समय स्वर्ण तथा रजत की मुद्राओं का प्रसार था। कौड़ी विनिमय की प्रथम इकाई थी। कौड़ी से करोड़ का मुहावरा आज के समान उस समय भी प्रचलित था। (कौड़ी गरीबी की निशानी मानी जाती थी। (कला विलास : २ : ५, ७ समय मातृका: (श्रीवर : ४ १००) प्रारम्भिक हिन्दू राजाओं के पश्चात् की ताम्र मुद्राओं का तौल १२ प्रतिशत अधिक था। ताम्र ९१ ग्रेन मुद्रा १०० कौड़ियों के बराबर थी। तंक या टंक ताम्र मुद्रा का साधारण नाम था। काश्मीर की मानक मुद्राओं में कनिष्क के समय ही हिन्दूकाल के समाप्ति सन् १३३९ ई० तक अर्थात् १२६१ वर्षों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ था।

'ज'

द्वार-द्रंग-ढक्क

(रा० : ५ : ३९)

काश्मीरी कोशकार मंख ने द्रंग का अर्थ रक्षा स्थान दिया है। वल्लभी राजाओं के अनुदानों के ताम्र पत्रों में 'द्रंगिका' 'द्रांगिका' तथा 'द्रगिन्' शब्द लिखा मिलता है। काश्मीर में ही नहीं 'द्रंग' शब्द तथा उसका अर्थ उसके कार्य से समस्त भारत परिचित था। उस पर यहाँ विस्तार से लिखने से काश्मीर की द्रंग व्यवस्था समझने में सरलता होगी।

कल्हण ने द्वार का उल्लेख सर्वप्रथम राजा जलौक की रानी ईशान देवी के सन्दर्भ में किया है। ईशान देवी ने प्रभावशालो मातृचक्रों की स्थापना द्वार देशों में किया था। (रा० : १ : १२२) पुनः द्वार का वर्णन कल्हण ने राजा मिहिरकुल के सम्बन्ध में किया है 'काश्मीर द्वार पहुँचने पर गर्त में गिरे गज के आर्तनाद को सुनकर वह हर्ष से रोमांचित हो गया। (रा० : १ : ३०२)

काश्मीर चारों ओर पर्वत मालाओं से वेष्ठित है। वह एक प्रकार से परिवेष्ठित गृह के समान है। प्राकार में जिस प्रकार आवागमन के लिये द्वार बने रहते हैं उसी प्रकार प्रकृति ने विदेश से काश्मीर में आवागमन के लिये पर्वत श्रेणी में द्वार अर्थात् दर्रा बना दिया है। प्राचीन काल में दर्रा को संकट कहते थे।

अलबेरुनी ने भी उनकी संज्ञा द्वार से दी है। हुएन्त्सांग तथा ओकुंग चीनी यात्री ने भी उनका उल्लेख किया है। द्वार को कालान्तर में 'द्रंग' अथवा 'ढक्क' कहा जाने लगा। द्वार का अपभ्रंश 'द्रंग' है। कल्हण ने द्वार का पुनः उल्लेख राजा जयापीड के सम्बन्ध (रा०:४:४०४)में किया है—'नयविद् वह वश में किये हुए नृपों के साथ अपने देश से निर्गत होते हुए काश्मीर द्वार पर वृद्धों से पूछा। द्वार सैनिक पहरे की छाउनी किंवा स्थान था। ढक्क शब्द का उल्लेख कल्हण पाँचवें तरंग में करता है—उसने क्रमवर्त प्रदेश स्थित ढक्क को स्वकृत पत्तनवर शूरपुर में निर्वासित किया। क्रमवर्त ही कामलेन कोट स्थान है। हीरपुर या हूरपुर से साढ़े पांच मील पर एक अलग पहाड़ी है। यहाँ वापीर पत्तमल तथा रुपरी दर्रा से आती स्रोतस्विनियाँ मिलती हैं। यह पर्वतमाला से निकली अन्तिम पहाड़ी है। वह लगभग २०० फीट ऊपर से आती है। दो स्रोतस्विनियों को अलग करता है। पहाड़ी के ऊपर समतल छोटी अधित्यका है। वह २०० फीट लम्बी तथा ५० फीट चौड़ी होगी। वहाँ पर दो पहरा देनेका अठपहली मीनार या बुर्ज हैं। गिरे हुए (रा० : ५ : ३०) द्वार का उल्लेख कल्हण जयापीड के दिग्विजय के पश्चात् शंकर वर्मा के दिग्विजय के प्रसंग से करता है—काल बल से देश में जन धन क्षीण होने पर भी द्वार से निष्क्रमण करते उसके साथ नव लक्ष

पदाति (पैदल सैनिक) थे (रा० : ५ : १३७) । स्तीन का मत है कि यह बुर्जी तथा दूसरी तरफ उपत्यका स्थित बुर्ज पठानों द्वारा उनके शासन काल में सन् १८०२ में पीरपंजाल तथा दुरहल मार्ग की रक्षा की दृष्टि से बनाये गये थे। उस समय सिखों का आक्रमण काश्मीर लेने के लिये होता था। इस स्थान का सैनिक महत्त्व सुदूर पूर्व हिन्द काल से ही मान लिया गया था। कामलेन कोट की पहाड़ी की महत्ता पर्वत मूल के मार्गों पर खटका करती थी जो रूपरी पास और पीर पन्तसल की स्रोतस्विनियों तक जाते थे। पहला नवीन मार्ग पीर पन्तसल उपत्यका पर उत्तर की तरफ से चढ़ता है। परन्तु हस्तिबेज से आने वाला मार्ग पुराना है। वह दामरेग की तरफ से आता था। इस प्रकार वह कामलेन कोट पहाड़ी के मूल में स्थित द्रंग से होता जाता था। क्रमवर्त पीर पन्तसाल मार्ग पर एक चौकी था। इन्हें कामलेन कोट कहते थे। कल्हण क्रमवर्त नामक प्रदेश में काम्बुक संज्ञक ढक्क का उल्लेख राजा मातृगुप्त के सन्दर्भ में करता है—तदनन्तर वह क्रमवर्त नामक प्रदेश में काम्बुक संज्ञक ढक्क पहुँचा जो आज शूरपुर (हरपुर) में स्थित है। (रा० : ३ : २२७)

अवन्तिवर्मा के मन्त्री शूर ने अपने नाम पर शूरपुर नगर स्थापित किया था। उसने सीमान्त चौकी जो क्रमवर्त में थी, उसे हटाकर शूरपुर में स्थित किया। शूरपुर स्थान 'हरपुर' या 'हरिपुर' कहा जाता है। यह रामव्यार नदी की उपत्यका में स्थित है। वहाँ से पीर पन्तसल के दर्रा अथवा द्वार या संकट या ढक्क दुरहल और रुपरी को जाता है।

पुराने मुगल मार्ग से पर्वत माला दर्रा से पार करने का काश्मीर उपत्यका में प्रथम जनस्थान या आबादी हूरपुर या शूरपुर की मिलती है वह एक संकीर्ण घाटी से काश्मीर उपत्यका के मैदान से अलग होता है। हूरपुर में बाहर से आने वाले सामानों पर सरकारी चुंगी ली जाती थी। वहाँ से दक्षिण जाने के लिए शूरपुर प्रमुख मार्ग था।

'द्रंग' सर्वदा चौकी के लिये राजतरंगिणी में प्रयोग किया गया है। द्रंग सुरक्षा किंवा सैनिक चौकी और शुल्क चौकी के लिये व्यवहृत किया जाता था। उसका सम्बन्ध पुलिस चौकी से नहीं था जिसे राहदारी कहते थे। सन् १८७९ ई० तक राहदारी अर्थात् पुलिस चौकी पीर पन्तसल मार्ग पर इगनारी बुर्ज, जाजीनर (अलियाबाद सराय समीपस्थ) तथा हूरपुर की हिफाजत करती थी। यह राहदारी कमलेन कोट के दूसरी तरफ था। उनका काम पुराने द्वार एवं द्रंग चौकियों के समान था। कालान्तर में कर्मावर्त अथवा कमलेन कोट द्रंग का नाम बदल कर शूरपुर द्रंग पड़ गया।

यह शब्द द्रम्म एक मुद्रा के लिये भी प्रयोग किया है। यह शब्द ग्रीक शब्द से व्युत्पन्न हुआ है। सम्भव है कि 'दाम' शब्द जो भाषा में प्रचलित है और मुद्रा के अर्थ में प्रयोग किया जाता है इसी 'द्रम्म' का अपभ्रंश है। यह शब्द एक कसबा, नगर, चौकी तथा चुंगी स्थान के लिये प्रयोग किया जाता था। 'उद्रंग' शब्द का भी प्रयोग 'द्रंग' के लिये किया जाता था। यह मालगुजारी तथा चुंगी दोनों के लेने का स्थान था। द्रंग का अधिकारी द्रंग-पाल कहा जाता था। 'द्रंगिक' शब्द का भी प्रयोग मिलता है। यह पदाधिकारी शहर के स्टेशन अथवा पहरे की चौकी का मालगुजारी अथवा लगान वसूल करने के लिये होता था। वह चुंगी भी वसूल करता था। 'द्रंगिक' किसी द्रंग का अधिकारी होता था। 'औद्रांगिका' शब्द का भी उल्लेख है। 'ध्रुवस्थान अधिकरण' अर्थात् राजा के अन्नभाग को वसूल करने वाला अधिकारी था। 'द्रंगेश' शब्द का भी उल्लेख मिलता है। वह सीमान्त चौकी का अभिभावक किंवा रक्षक अधिकारी माना जाता था। अन्य राजतरंगिणी-

कारों ने भी 'द्रंग' को पहरे की चौकी एवं सीमान्त चुंगी की चौकी के अर्थ में प्रयोग किया है।

कल्हण ने शूरपुर 'द्रंग' का उल्लेख राजा हर्ष (सन् १०८९-११०१) के प्रसंग में किया है। 'माणिक्य सेनापति को शूरपुर द्रंग पर पराजित कर विजयश्री के साथ विपुल सम्पत्ति प्राप्त की। (रा० : ७ : १३५२) यद्यपि इसी तरंग में राजा अनन्त के समय विग्रह राज के प्रसंग में द्वार शब्द का प्रयोग किया गया है। (रा० : ७ : १४०)। कल्हण शूरपुर द्वार के लिये 'द्रंग' शब्द का उल्लेख राजा जयसिंह के राज्य काल में उत्पल की मृत्यु के सन्दर्भ में किया है—'अत्रान्तर लौटता हुआ उत्पल गिरिगह्वर में शूरपुर के द्रंगाधिप पिंचदेव द्वारा मार डाला गया। ठेहुनी पर एक बाण लगने के कारण वह घोड़े से भूमि पर गिर पड़ा। मरने के पूर्व उसने एक शत्रु सैनिक को मार डाला जो कि उसके पास आ रहा था। राजा जब कम्पनेश सत्कृत्य कर लौट कर अवन्तिपुर में ठहरा था तो द्रंगेश ने राजा के सम्मुख शत्रु का मस्तक रख दिया' (रा० : ७ : १७७–१८०)।

श्रीवर ने भी शूरपुर का प्रचुर उल्लेख किया है। (जैन० : १ : १ : १०७; १६४, १ : ५ : २२; ३ : ४२७; ४ : ३९, ४४२, ५२६, ५३१, ५५८, ५८४, ६०६) श्रीवर के अनुसार जैनुल आब्दीन ने शुल्क चुंगी के स्थान पर अविच्छिन्न अन्नसत्र प्रदान कर शूरपुर मार्ग से जाने वाले अभिसारकों को भारवाही बना दिया। (जैन० : १ : ५ : २२) जैनुल आबदीन के समय द्रंग अर्थात् चुंगी वसूल करने का स्थान शूरपुर में बन गया था।

कर्मवर्त द्रंग के अतिरिक्त कल्हण ने कारकोट द्रंग का भी उल्लेख किया है। कारकोट द्रंग तोश मैदान मार्ग से लोहा जाने के मार्ग पर था। (रा० : ८ : १५९६), बीरू परगना में एक गाँव द्रंग है। ग्रीष्म ऋतु में श्रीनगर से लोहर जाने का यह सबसे नजदीक का मार्ग है। दोनों के बीच दूरी ६० मील है। अल्बेरूनी ने भी लिखा है कि लोहर और श्रीनगर के मध्य का मार्ग ५६ मील है। आधा मार्ग पथरीला एव पर्वतीय तथा शेष मैदान है। यह स्थान बरबल कहा जाता है। बरबल का अर्थ फाटक का स्थान होता है। दर्रा पर्वत पर १३,००० फिट की ऊँचाई पर है। द्रंग में एक पुराना पहरे के स्थान का चिह्न मिलता है। कल्हण के वर्णन से प्रतीत होता है कि कोष्ठेश्वर ने चुंगी शुल्क जो लोहर के समीप द्रंग था उसे ले लिया था। उसने अपने नाम की मुहर लगा दी थी मानो वह स्वयं ही राजा था। (रा० : ८ : २०१०) कल्हण द्रंग के सामरिक महत्त्व का भी उल्लेख करता है। लोठन ने मार्ग द्रंगों को सर्वत्र नष्ट किया था। इससे उसे मौलिक दृष्टि से सफलता मिलती गयी। (रा० : ८ : १९९१) पर्वत पार करने के पश्चात् उसने अपनी रक्षापंक्ति करकोट द्रंग में बनायी जहाँ उसका किसी प्रकार का विरोध नहीं हुआ था। (रा० : ८ : १९९७)

हय होम के समीप द्रंग का भी उल्लेख कल्हण करता है। यह द्रंग कृष्णगंगा उपत्यका जाने के मार्ग में पड़ता था। उत्तर परगना से शारदा तीर्थ पहुँचने के लिये सीधे मार्ग पर था। सिन्धु तटवर्ती तिलग्राम में जब धन्य तथा अन्य लोगों ने तिलग्राम पर अधिकार कर लिया जो सिन्धु नदी तट पर कोट था तो द्रंगिका जो कि द्रंग का अधिकारी था उसने पीछे से मार्ग बन्द कर लिया। (रा० : ८ : २५०७)

यह द्रंग हयाश्रम अर्थात् हयहोम से आध मिल पश्चिम दक्षिण पड़ता है। यहाँ पर पुराने मीनार का ध्वन्सावशेष मार्ग पर मिलता है, जो कि सीधा द्रंग के पीछे उत्तर दिशावर्ती पर्वत की ओर पड़ता है। यह स्थान स्थानीय लोगों द्वारा 'सुनद्रंग' ('स्वर्णद्रंग') कहा जाता है। माहात्म्यों में उसे 'सुवर्ण धान्यक' कहा गया है। लारेन्स 'द्रंग' हेहामा के प्रसंग में लिखता है—सबसे अधिक Interesting उपनिवेश कूकी खेथल

अफरीदियों की द्रंग हैहामा की है। वे लोग पठानों के सब रीति रिवाजों का पालन करते हैं। वे ज्यादातर पश्तू भाषा बोलते हैं। वे रंगीन कपड़ा पहनते हैं। ढाल तलवार के साथ चलते हैं। उन्हें अपनी वीरता पर गर्व है। वे शूअर का शिकार पैदल तलवार से करते हैं अथवा अपने टट्टू पर चढ़े हुए उन्हें बर्छे से मार देते हैं।

खेल पठान जाति के ही भारत के प्रथम मुस्लिम राष्ट्रपति जाकिर हुसेन थे। परन्तु खेल मूल स्थान के थे न कि काश्मीर निवासी खेल कबीला पठानों के।

पठान लोगों की आबादी काश्मीर पर पठानों के शासन काल में बसी थी। वे वहाँ इसलिये आबाद किये गये थे कि बम्बा लोग जो प्रायः विद्रोह कर बैठते थे उन्हें दबाते रहें। जो सम्भवतः किशन गंगा उपत्यका में रहते थे। उन्हें इसलिये भी वहाँ आबाद किया गया था कि वे चिलासो के हमले से रक्षा कर सकें।

अन्तिम राजतरंगिणीकार शुक ने 'द्रंगा शुल्क' का उल्लेख किया है—'तत्पश्चात् मुहम्मद शाह जाफर लोहर पहुँचा। और पूर्व उर्वरेशों के समान द्रंगाशुल्क आदि ग्रहण किया।' (शुक : २ : ३९) उक्त उद्धरण से प्रकट होता है कि शुक के समय पन्द्रहवीं शताब्दी तक द्रंग का प्रयोग चुंगी की चौकी के अर्थ में किया जाता था। कल्हण के समय से शुक तक द्रंगों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ा था। वे पहरे की चौकी से सैनिक दृष्टि एवं आर्थिक दृष्टि से शुल्क द्वारा राज्यकोश भरते थे।

कल्हण के समय द्वारपति शब्द अधिक प्रचलित था। परन्तु श्रीवर के पश्चात् 'द्रंगेश' शब्द का प्रयोग मिलने लगता है। उन्हें 'मार्गेश' सुलतानों के उत्तरार्ध काल में कहा जाने लगा। 'मार्गेश' को परशियन इतिहासकारों ने 'माग्रे' लिखा है। उनका कार्य द्वाराधिप अथवा द्वारपति के समान था। मुगलों के समय स्थिति बदल गयी। मुगलों ने 'मार्गेश', 'द्वारपति', 'द्वाराधिप' एवं 'माग्रे' के स्थान पर 'मलिक' उनके लिये प्रचलित किया। द्वार की रक्षा करने तथा पहरा देने वाले अधिकारी को मलिक कहने लगे थे।

मलिक लोगों को उनकी सेवा के बदले जागीर मिली थी। सिखों के राज्य के समय मलिकों की जागीर छिन गयी। मलिकों के वंशज सुपियान, शाहाबाद, अन्य स्थानों में काश्मीर के राजपथों तथा उन मार्गों के निकट आबाद मिलते हैं—जो पर्वतों पर मैदान से उठते जाते हैं।

कल्हण ने 'ढक्क' शब्द का भी प्रयोग 'द्रंग' के लिये किया है—'एकदा भ्रष्टश्री चक्रवर्मा रात्रि में श्री ढक्कवासी डामर श्रेष्ठ संग्राम के घर में प्रवेश किया। (रा० : ५ : ३०६) श्री ट्रोपर ने श्री ढक्क पर पादटिप्पणी (रा० : ५ : ३०५; पेरिस) लिखी है। इस स्थान का पता कल्हण नहीं देता, परन्तु श्री विलसन का मत है कि यह स्थान शूरपुर के समीप था। शूरपुर में 'द्रंग' था इसका उल्लेख मैं कर चुका हूँ।

'ज्ञ'

उदभाण्डपुर

(रा० : ५ : १५३)

उदभाण्ड संस्कृत शब्द है। उसका शाब्दिक अर्थ उद = जल + भाण्ड = पात्र। जल पात्र किंवा जल कलश विद्वानों ने लगाया है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार उद के स्थान पर उदकम् होना चाहिए। हुएन्त्सांग ने उदक हाण्ड लिखा है। उदक् का अर्थ उत्तर की ओर, उत्तर में तथा ऊपर होता है। उद् का

अर्थ स्थान, पद, शक्ति की श्रेष्ठता आदि होता है। यदि यह अर्थ लगाया जाय तो स्थान भाण्ड या शक्तिशाली भाण्ड होगा। या कलश के समान स्थान होगा। मैंने स्थान नहीं देखा है अतएव कुछ और अनुमान लगाना उचित नहीं है। अलबेरूनी लिखता है—वैहिन्द सिन्ध नदी के पश्चिम २० फरसख (लगभग ५२ मील) दूर कन्धार की राजधानी है।' (मूल : पृष्ठ १०१) वह पुनः लिखता है—'सिन्ध या वैहिन्द नाम की नदी' है। (मूल पृष्ठ : १२९) वह स्थानों का अक्षांश भी देता है 'वैहिन्द का अक्षांश ३४° ३०" है।" (मूल : पृष्ठ १६३) उदभाण्डपुर का ही नाम उदखण्ड बैहिन्द, ऊँडगाय, ओहिन्द, हुण्ड, उहुण्ड उद्खण्ड आदि है।

राजतरंगिणी में कल्हण तथा जोनराज ने उदभाण्डपुर का उल्लेख किया है। उन्होंने उद्भाण्डपुर के लिये वैहिन्द उण्ड अथवा हिन्द नहीं लिखा है। फारसी तथा अरबी इतिहासकारों ने वैहिन्द, उण्ड, ओहिन्द तथा हिन्द नाम दिया है। सभी उद्भाण्डपुर शब्द के अपभ्रंश किंवा संक्षिप्त रूप हैं।

फारसी तथा अरबी लिपियों में शुद्ध नाम नहीं लिखा जा सकता। अतएव उनकी विभिन्न विवर्तनी (हिज्जे) मिलती है। हिज्जे भेद के कारण उच्चारण में अन्तर पड़ जाना स्वाभाविक है।

सर्वश्री स्तीन तथा जनरल कनिंघम दोनों ने अनुसन्धान तथा अथक परिश्रम द्वारा सिद्ध किया है कि सिन्ध के पश्चिम तट पर ऊटक से १५ मील ऊपर उण्ड ग्राम है। यही प्राचीन उद्भाण्डपुर है। पश्चिमी पंजाब निवासी 'उन्द' कहते हैं। उन्द हिन्दी भाषा का शब्द कहा गया है। हिन्दी को उस समय हिन्दकी कहते थे। पश्तू भाषा भाषी पठानों का 'उन्द' उच्चारण 'हिन्द' जैसा लगता है।

मुस्लिम लेखकों ने कन्धार को गान्धार मान लिया है। पुरानी फारसी में काफ और गाफ एक तरह से ही लिखा जाता था। अतएव 'क' का 'ग' पढ़ लेना आश्चर्य की बात नहीं है। गन्धार को कन्धार तथा गन्धार दोनों पढ़ा जा सकता है। कन्धार वास्तव में गान्धार नहीं है। गान्धार का पुरासाहित्य में प्रचुर उल्लेख मिलता है। भौगोलिक स्थिति का वास्तविक ज्ञान हो जाता है। कन्धार अंचल काबुल किंवा अफगानिस्तान के दक्षिण है। पुरासाहित्य वर्णित गान्धार प्रदेश अफगानिस्तान के पूर्व पड़ता है।

साही राजाओं का उदभाण्डपुर मुसलमानों के विरुद्ध अन्तिम मोर्चा था। वैहिन्द अथवा उदभाण्डपुर के सम्मुख ही महमूद गजनी तथा साही राजा से निर्णायक युद्ध हुआ था। साहियों के पराजय के पश्चात् भारत प्रवेश द्वार सर्वदा के लिये खुल गया।

हुएत्सांग ने उदभाण्डपुर की यात्रा की थी। उसे वह अपनी भाषा में—उ-तो-किया-हन-तू-(छा ?) गान्धार का एक नगर मानता है। "भीमा (भीमल) से १५० ली० और जाने पर यू-तो-की-हन-तू (छा ?) नगर पहुँच जाते हैं। जो २० ली० की परिधि (छा ?) में होगा। सिन्ध (नदी) उसके दक्षिण ओर है। वहाँ के लोग खुशहाल हैं। यहाँ मूल्यवान् अनोखी वस्तुएँ अनेक स्थान से आती हैं।" (वाटर : २२९ : लंदन १९०४) उदभाण्डपुर की सीमा देता है। उसके दक्षिण सिन्ध नदी बहती है। यह भी लिखता है। पहले कपिशा का राजा उदभाण्डपुर में निवास करता था। यह वर्णन शाही राजाओं के उदभाण्डपुर राजधानी बनाने के चार शताब्दी पूर्व का है।

हुएन्त्सांग नगर के विषय में लिखता है कि वह तीन मील में फैला था। ब्राह्मण वंश का राज्य था। उनकी राजधानी होने पर निस्सन्देह उदभाण्डपुर की प्रसिद्धि तथा समृद्धि हो गयी। भारत की प्रसिद्ध राजधानियों में उसकी गणना होती थी। मंगोल चंगेज खां के वंशजों के समय में भी उसका यथेष्ट महत्त्व था।

उसे 'कोर जोग' नाम से लिखा गया है। अटक के निर्माण तथा नवीन राजपथ बनने के कारण नगर सड़क से दूर हो गया। और सिन्ध नदी के कटाव से लगभग पुराना शहर आधा नदी में कटकर समाप्त हो गया। उसने अपना महत्त्व खो दिया।

हुएन्त्सांग दोलुआ से ३३ मील दक्षिण-पूर्व चलने पर—अ-टो-किया-हन-छ—पहुँचा था। श्री जुनियन ने उसे उदखण्ड लिखा है। श्री एम. विवेन डी. सेंट मार्टिन ने उसे सिन्धु नदी स्थित ओहिन्द माना है। हुएन्त्सांग लिखता है—

'नगर का दक्षिणी भाग नदी के करार पर था। पुरुषपुर का राजवंश समाप्त हो गया। वह कपिशा राज्य के अन्तर्गत था। नगर तथा ग्राम उजड़ गये थे। निवासियों की संख्या बहुत थोड़ी रह गयी थी। कपिशा के राजाओं ने नवीन राजधानी उदभाण्डपुर में बनवायी थी।'

जनरल कोर्ट तथा वरनीस स्थान को हुण्ड मानते हैं। श्री लोइवेन्थल ने उसका गलत उच्चारण किया है। मिर्जा मोगल बेग (सन् १७९० ई०) ने स्थान का नाम 'ओहिन्द' दिया है। रशीदुद्दीन ने सन् १३१० ई० में नाम 'वेहुण्ड' लिखा है। उक्त सभी लेखक स्वीकार करते हैं। वैहिन्द गान्धार देश की राजधानी था। रशीदुद्दीन और लिखता है। मोगल लोग उसे 'कारजोग' बोलते थे। निजामुद्दीन तवक्काते अकबरी का लेखक लिखता है 'महमूद गजनी ने जैपाल राजा को 'हिन्द' के किले में सन् १००२ ई० में घेर लिया था।' फिरिस्ता ने उसे 'वथन्दा' का किला लिखा है। कुछ विद्वान् वथन्दा को भटिण्डा मानते हैं। यह भ्रामक है।

हुएन्त्सांग तथा फिरिस्ता के दिये नाम में ध्वनि साम्य है।

जनरल कनिंघम का मत है कि 'विथण्ड' शब्द ही हुएन्त्सांग का दिया उत्तरखण्ड शब्द है। मूल नाम उत्तरखण्ड था। वह बिगड़कर 'उथण्ड' या 'विथण्ड' हो तथा उसका संक्षिप्त रूप 'उहण्ड' या 'ओहिण्ड' हो गया। जनरल जेम्स एब्वोट ने स्थान का नाम 'ऊण्ड' दिया है। वह यह भी लिखता है। उसका पूर्व नाम 'ऊरा' था। अनुमान लगाया है। 'ऊरा' सिकन्दर के इतिहासकारों द्वारा वर्णित ही 'ऊण्ड' अथवा 'उदभाण्ड-पुर' है। वह मत भी प्रचलित था। अटक ही उत्तरखण्ड होना चाहिये। परन्तु इस मत ने मान्यता नहीं प्राप्त की। उत्तरापथ, उदखंड अथवा उदभाण्डपुर कपिशा के राजा द्वितीय की राजधानी थी। कपिशा में उस समय दश राज्य-लम्पक (लगमान) नगर या अग्रहार (जलालाबाद) गान्धार, वर्ण (वन्नू) जागूदा जो सम्भवतः अफगानिस्तान का दक्षिणी भाग था। उसका मुख्य नगर गजनी था।

अबुलफजल ने 'अटक-बनारस' किला का उल्लेख किया है। उसने यह भी लिखा है। किला सम्राट् अकबर के समय निर्माण किया गया था। बाबर ने अपने जीवन चरित में सिन्ध नदी का उल्लेख किया है। परन्तु ओहिन्द का कोई उल्लेख नहीं करता।

रशीउद्दीन लिखता है। परशावर नदी सिन्ध में तंकुर के समीप मिलती है। यह स्थान कनिंघम के मत से खैराबाद होना चाहिए। उनका मत है कि 'अटक' शब्द 'तंकुर' शब्द का अपभ्रंश है। अरबी के 'अल' उपसर्ग शब्द के शतृ लगा देने में 'अलाकुर' उच्चारण हो जायगा।

'बनारस' शब्द का सम्बन्ध वर्तमान नगर 'वाराणसी' 'काशी' से नहीं है। वह 'बनार' शब्द है। इसी नाम से पुराना जिला था। जिसके अन्तर्गत अटक था।

कनिंघम लिखता है। 'ओहिन्द' काबुल के ब्राह्मण राजाओं की राजधानी था। मसूदी ने भारत का

भ्रमण सन् ९१५ ई० में किया था। उसके अनुसार 'अलकन्धार' (गान्धार) का राजा 'अस्सिन्ध' का राजा था। उसका नाम 'जहज' था। वह नाम भारत के सभी राजाओं के लिये प्रसिद्ध किंवा सामान्य था। हेनरी इलियट ने मुहम्मडन हिस्टॉरी ऑफ़ इण्डिया (१ : ५७) नवीन संस्करण में (प्रो० डौसन : १ : २२) 'जहाज' नाम 'हजाज' में बदल दिया है।

छछ नाम उस बड़े मैदान का है जो सिन्ध नदी के पार ओहिन्द के सामने पड़ता है। 'बनार' का मैदान कहा जाता था। यह नाम राजा बनार के नाम पर पड़ा है। कनिंघम के मत से मैदान का 'छछ' नाम ओहिन्द के ब्राह्मण वंश के नाम पर रखा गया था। विचित्र बात है। बनारस 'वाराणसी' में जनश्रुति है। राजा बनार का किला काशी में राजघाट पर था। वह काशी का राजा था। यह भी विचित्र बात है। सिन्ध का ब्राह्मण वंश भी 'छछ' या 'चच' के द्वारा सन् ६४१ ई० में स्थापित किया गया था। उससे भी विचित्र बात यह है कि इसी समय 'जझोती' या 'छिछितों' का ब्राह्मण वंश खजुरा के चन्देलों द्वारा उत्पाटित किया गया था। कनिंघम ने अनुमान लगाया है। जझोतिया ब्राह्मण खजुरा अपने राज्य से निकाले गये थे। सिन्ध में आकर राज स्थापित कर ओहिन्द तथा काबुल पहुँचे होंगे।

उदभाण्डपुर सिन्ध के कटाव के कारण आधा नदी के गर्त में नष्ट हो गया। नगर नदी के कटाव तथा उसके भय के कारण उजड़ गया। उसकी प्रसिद्धि कम हो गयी।

करार के मूल तट कनिंघम के अनुसार गिरे मकानों के मलवों से बालू से भर गया था। सोना धोने वाले वहाँ बहुत मुद्रायें तथा छोटे-छोटे आभूषण पाते हैं। वह इस बात का प्रमाण है। नगर बहुत समृद्धिशाली था। कौतूहलवश कनिंघम स्वयं इसका प्रयोग करना चाहता था। उसने बालू एक स्थान से उठवाया। वह धोया गया। उसमें से एक स्वर्ण पट्टबंध मिल गया। यह पट्ट बंध किसी दुलहिन का था। स्वर्णपट्ट गले में पहना जाता था। आजकल भी ग्रामीण स्त्रियाँ गले में स्वर्ण पट्ट पहनती हैं। उसे पूर्वीय उत्तर प्रदेश में टीक कहते हैं। नगरों में भी विवाह के समय दुलहिन को टीक पहनात थे। टीक पहनने की प्रथा आधुनिक आभूषणों के प्रचार के पश्चात् लुप्त हो गयी है।

जनरल कोर्ट राजा रणजीत सिंह का एक फ्रान्सीसी सैनिक अधिकारी था। उण्ड की यात्रा किया था। उसे भी यहाँ के ध्वन्सावशेष से बहुत सी पुरानी चीजें मिली थीं। (जे. ए. एस. बी. : ५ : ६९५) सर अलेक्जेण्डर बरनीज़ को सन् १८३७ ई० में शारदा लिपि में संस्कृत शिला लेख मिला था वह कलकत्ता राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। (काबुल : १२०) श्री स्तीन को भी एक शिला खण्ड शारदा लिपि में लिखा मिला था। वह पढ़ा नहीं जाता था। उसे उन्होंने मसजिद की एक दीवाल से निकलवाया था। वह लाहौर संग्रहालय पाकिस्तान में संग्रहीत है।

इस समय भी उदभाण्डपुर अर्थात् उण्ड के मकानों तथा जियारतों तथा मसजिदों में हिन्दू राज्य कालीन अलंकृत पत्थर लगे हैं। वहाँ बहुत सी आँख में रंग लगाने की सलाइयां मिली हैं। भारतीय शक तथा काबुल के ब्राह्मण राजाओं की मुद्रायें भी मिलीं हैं। इससे प्रकट होता है कि नगर शक काल की पहली शताब्दी में अपना अस्तित्व रखता था।

सिकन्दर बजारिया से चलते समय सिन्ध पर पुल बनाने का आदेश दिया था। बजारिया से दूर दक्षिण इम्बोलिया सिन्ध तट पर पड़ता था। महावन से दस मील पूर्व इम्बोलिया था। जनरल एबोट ने इम्बोलिया को अम्बवालिया निश्चय किया है। अम्बर आज भी ओहिन्द के दो मिल उत्तर ग्राम है। कनि-

घम का मत है कि निर्मित सेतु उदभाण्डपुर में ही था। वहाँ से यूनानी सेना ने सिन्ध पार किया था। किसी यूनानी अथवा भारतीय इतिहासकार ने किस स्थान पर पुल निर्माण किया गया था नाम नहीं दिया है। सिकन्दर ने अपनी सेना के लिये सामग्री एकत्रित करने का आदेश दिया था। वह इम्बोलिया स्थान में संग्रह किया गया था। यह स्थान एओरनोस की चट्टानों से दूर नहीं था। यह एओरनोस तथा अटक के मध्य पड़ता था। स्थान का नाम कनिंघम के मत से 'ओहिन्द' या 'अम्बर ओहिन्द' था। वे काश्मीर के समान हिन्दू तथा बौद्ध देवस्थानों के स्थानों पर निर्मित किये गये हैं। अम्बर आज भी एक ग्राम ओहिन्द के दो मिल ऊपर है। पर्याय भाग (३ : १ : २४) बिजपत्ती में दिहन्द शब्द का गान्धार के साथ उल्लेख किया गया है। वैजयन्ती रचनाकार यादव प्रकाश अलबेरूनी का समकालीन है। ओहिन्द अथवा उदभाण्डपुर पर कुछ प्रकाश पड़ता है। गान्धार तथा दिहन्द को विद्वान् समानार्थक मानते हैं। कुछ लोगों का मत है कि कन्धार ही गान्धार है। मैं लिख चुका हूँ। यह धारणा गलत है। कन्धार दक्षिणी अफगानिस्तान का अंचल है।

मैं कन्धार दो बार जा चुका हूँ। खत्री हिन्दुओं की यहाँ आबादी है। वे व्यापारी हैं। कन्धार में कब्रिस्तान बहुत हैं। अंगूर और अनार होता है। गान्धार, रावलपिण्डी, तथा पेशावर के दो जिले मिलकर बनता था। प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों से पता चलता है। गान्धार देश सिन्ध महानद के दोनों तटपर आबाद था। मुख्य नगर पुष्कलावती, तथा तक्षशिला थे। तक्षशिला प्रसिद्ध स्थान है। ओहिन्द से पूर्व दिशा में पड़ता है।

बौद्ध साहित्य में तक्षशिला का अनेक प्रसंगों में वर्णन किया गया है। जीवक वैद्य ने तक्षशिला में शिक्षा पायी थी। तक्षशिला पश्चिमी उत्तरी हिन्दुस्तान का उसी प्रकार विद्या केन्द्र था जैसे काश्मीर में शारदा एवं विजयेश्वर तथा भारत में काशी, नवद्वीप एवं कांची हैं। तक्षशिला पश्चिम पाकिस्तान रेलवे के सराय काला जंकशन से बीस मील रावलपिण्डी के उत्तर पश्चिम पड़ता है। पेशावर से पूर्व दिशा में है। हारी उपत्यका में स्थित है। वहाँ तीन नगरों के ध्वन्सावशेष मिलते हैं। धुर दक्षिणी स्थान मीर टीला कहा जाता है। पुष्कलावती स्वात उपत्यका का नगर था। वह वर्तमान परगना चरसद्दा मीर जियारत क्षेत्र में पेशावर से सत्तरह मील उत्तर-पूर्व है।

हुदूदुल आलम (सन् ९८२-९८३ ई०) के अनुसार वैहिन्द एक बड़ा नगर था। उसमें कुछ मुस्लिम आबादी भी थी।

कल्हण ने उदभाण्डपुर के प्रभाकर देव द्वारा विजय का उल्लेख पुनः किया है (रा० : ५ : २३२) उसने रा० : ५ : १५३ में उदभाण्डपुर का उल्लेख किया है।

ओहिन्द इस समय पाकिस्तान में है। वहाँ जाना सम्भव नहीं है। श्री स्तीन ने वहाँ की यात्रा की थी। स्तीन स्थान का प्रत्यक्षदर्शी साक्षी है। उसका वर्णन वास्तविकता के अत्यन्त समीप माना जायगा। स्तीन ने उण्ड की यात्रा दिसम्बर सन् १८९१ में की थी।

कल्हण ओहिन्द का भूगोल उपस्थित करता है। उससे पता चलता है। उत्तर में दरद तथा दक्षिण में तुरुष्क थे। ओहिन्द उनके मध्य था। दरद जाति कोहिस्तान और ऊपरी सिन्ध घाटी चिलास तथा चिनाल में रहती थी। तुरुष्क का तात्पर्य कल्हण के तरंग आठ श्लोक ५१ के वर्णन से उन लोगों से है जो काबुल पर सन् ८७१ ई० में अधिकार कर लिये थे।

जोनराज ने सुल्तानों के राज्यकाल में उदभाण्डपुर का उल्लेख किया है—उदभाण्डपुर में जिसका

पालक गोविन्द खान था। पहले उसके बाणों ने तत्पश्चात् उस (सुल्तान शिहाबुद्दीन सन् १३५४-१३७३ ई०) के सैनिकों ने प्रवेश किया। जब उसको सेना शैल शृंगपर पहुँची तो भयातुर विरोधी उत्तुङ्ग शृंग से उतर गये। सदृश उपहार प्रस्तुत करने में असमर्थ सिन्धुप (सिन्धुपति) ने रक्षा के लिये भूपति को कन्या रत्न भेंट किया। पृथ्वी के भार से राजा के बाहु में गौरव तथा भय के भार से उन गान्धारों में लाघव आ गया था। (जोन० : ३७१-३७५) इस उद्धरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि गोविन्द खान उदभाण्डपुर का राजा था और उदभाण्डपुर गान्धार के अन्तर्गत था।

जोनराज ने सिकन्दर बुत शिकन के काल जिसका वह प्रत्यक्षदर्शी था उदभाण्डपुर का पुनः उल्लेख किया है—'कदाचित् दृप्त राजा ने उदभाण्डपुर के नृपति को जीतकर उसकी पुत्री श्री मेरा को मूर्तिमती जयश्री सदृश प्राप्त किया। निश्चय साहिकुल में वह कोई देवता अवतरित हुई थो। उसका पुत्र म्लेच्छ द्वारा नष्ट काश्मीर को पराजित किया।' (जोन० : ५७७, ५७८) जोनराज के वर्णन से सिद्ध होता है कि उस समय उदभाण्डपुर में साही वंश का ही राज्य था।

जोनराज ने उदभाण्डपुर का पुनः उल्लेख किया है—'सिन्धु राजा द्वारा उन्मादित उदभाण्डपुराधीश को उसने कन्दुक के समान बार-बार उठाकर गिराया' (जोन० : ८३२) यह वर्णन सुल्तान जैनुल आबदीन के राज्यकाल का है। गोविन्द खान तथा वहाँ पर उदभाण्डपुराधीश के प्रयोग से प्रकट होता है कि तत्कालीन उदभाण्डपुर नदी के कटाव में ध्वस्त नहीं हुआ था। वह समृद्धिशाली नगर था। राजधानी एवं व्यापारिक केन्द्र था। पन्द्रहवीं शताब्दी तक मुस्कराता, जगमगाता शहर था।

श्रीवर ने उदभाण्डपुर का उल्लेख तृतीय राजतरंगिणी में नहीं किया है। श्रीवर ने सन् १४५९-१४८६ ई० तक का इतिहास लिखा है। उसके वर्णित तीनों काश्मीर के सुल्तान दुर्बल थे। वे गृह युद्ध में उलझे थे। उन्हें बाहर भटकने की फुरसत नहीं थी।

प्रजा भट्ट की चौथी राजतरंगिणी अप्राप्य है। परन्तु पाँचवीं और अन्तिम राजतरंगिणी शुक ने लिखी है। उसमें उल्लिखित सुल्तानों का समय सन् १५१३-१५३९ ईस्वी है। उसने भी उदभाण्डपुर का कुछ उल्लेख नहीं किया है। उसके काल में काश्मीर सुल्तान अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। सत्ता मन्त्रियों एवं सेनानियों के हाथों में थी।

'ग'

स्कन्द भवन

(रा० : ६ : १३७)

महाराज प्रवरसेन (द्वितीय) का पुत्र युधिष्ठिर (द्वितीय) था। उसकी माता रानी रत्नप्रभा थी। राजा ने उन्तालीस वर्ष तीन मास काश्मीर मण्डल का राज्य किया था। उसका मन्त्री स्कन्द गुप्त था। स्कन्दगुप्त ने स्वनामांकित विहार स्थापित किया था। उसका नाम स्कन्दगुप्त विहार था। वह कालान्तर में खण्डवन नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्रीनगर का एक मुहल्ला है। वितस्ता के दक्षिण तटपर है। वह ईदगाह तथा नव कदल के मध्य है। उस समय निर्माणकर्ताओं के नाम पर विहार रखने की प्रथा थी। निर्माणकर्ता अपनी स्मृति अथवा पुण्यार्जन के लिये देवस्थान, चैत्य एवं विहारों का निर्माण करते थे। अमृत भवन, इन्द्रभवन, अनंगभवन, मोराकभवन, आदि इसके उदाहरण हैं। धार्मिक स्थानों के नाम पर मुहल्लों का नाम पड़ जाता

था। काशी में इस प्रकार के अनेक मुहल्ले हैं। ओंकारेश्वर, हरितीर्थ, दूधविनायक, शनिश्चर गली, विश्वनाथगली, सरस्वती फाटक आदि। इसी प्रकार श्रीनगर में भी दिद्दामठ के नाम पर दिदमर, भट्टारकमठ के नाम पर ब्रदमर तथा समुद्रमठ के लिये सुदमर मुहल्ले कहे जाने लगे थे।

कल्हण ने (रा० : ८ : १४४२) पुनः इसका उल्लेख किया है। यहाँ पर राजा सुस्सल की रानी सती हो गयी थी। उस समय मक्षिका स्वामी स्मशान के समीप विद्रोहियों की उपस्थिति के कारण रानी स्मशान में सती नहीं हो सकी थी। कल्हण लिखता है—चार रानियाँ सती होने के लिये आयीं। विद्रोहियों के आक्रमण भय से और अचानक गहरे Forst के आ जाने के कारण वे वहाँ से दूर स्मशान पर रानियों को नहीं ले जा सके। अतएव उन लोगों ने उनकी शीघ्रतापूर्वक स्कन्दभवन में दाह क्रिया कर दी जो राजभवन से दूर नहीं था। सती होने वाली रानियों में देवलेखा थी। वह चम्पा राजा की अति सुन्दर कन्या, अपनी बहन तारालेखा, जज्जला वल्लापुरी की कन्या, जो अपने गुणों के लिये प्रसिद्ध थी, वे सती हुईं तथा राजलक्ष्मी जो गग्ग की पुत्री थी वह भी वहाँ सती हो गयी। (रा० : ८ : १४४१–१४४४)

मक्षिका स्वामी का अपभ्रंश मयसुम है। उस समय स्कन्द भवन के समीप खुला मैदान था। मुसलमान लोग कबरिस्तान के काम में इसे लाने लगे थे।

श्रीवर स्कन्द भवन बिहार का उल्लेख मुहम्मद शाह (सन् १४८४–१४८६ ई०) के शासन काल में करता है। श्रीवर लिखता है—'नौपुर आदि स्थानों पर सेतुबन्ध भंग कर दिये जाने पर, पुरी दुर्ग रचना सदृश विरोधियों के लिये दुर्गम हो गयी थी। स्कन्दभवन की ओर से आक्रमण की आशंका करके सैयदों ने पाँच हाथ चौड़ी परिखा बना ली थी। शत्रु भय की निवृत्ति के लिये सैयदों ने रुद्र राजानक के निकट द्वार धरनी के समीप में भी उसी प्रकार की एक दूसरी परिखा तैयार कर ली थी।' (जेन : ४ : १२१-१२४)

श्रीवर स्कन्द भवन विहार का पुनः उल्लेख (जोन : ४ : ६२३) करता है।—'पीरूज प्रतिहारादि मडवराज्य से आये और राजा का पक्ष त्याग कर, खान पक्ष का आश्रय लिये। स्वभेद से सैन्य को जर्जर जानकर, सैयदों के समान किंकर्तव्य व्याकुल होकर, स्कन्द भवन में दो तीन रात्रि व्यतीत किये।' सिकन्दर बुत शिकन के समय स्कन्द भवन विहार देव स्थान होने के कारण नष्ट कर दिया गया था। सेना ने स्कन्द भवन स्थान के मैदान में शिविर लगाया था।

खण्डवन मुहल्ला के दक्षिणी प्रान्त भाग में स्कन्द भवन विहार का स्थान निश्चित किया जा सकता है। स्थानीय ब्राह्मण उस स्थान को परम्परागत जनश्रुति के अनुसार स्कन्द भवन विहार मानते हैं। नवकदल से दो सौ पचास गज उत्तर वह स्थान है। इसके वाम पार्श्व में मुल्ला मुहम्मद वशूर की ज़ियारत है। इसकी चहार दीवारी के अन्दर बहुत सी कबरें हैं। उन पर मन्दिरों के भग्न अलंकृत शिलाखण्ड लगे हैं। ज़ियारत स्कन्दभवन विहार के तोड़े गये शिलाखण्डों से बनायी गयी है, जिसे आज भी देखा जा सकता है। श्रीस्तीन ने इस स्थान की यात्रा अस्सी वर्ष पूर्व अगस्त मास सन् १८९१ ई० में की थी। इस समय चारों ओर इमारतें तथा मकान बन गये हैं। अतएव पूर्व स्थिति का पता लगाना कठिन है। स्तीन का तत्कालीन आँखों देखा वर्णन यहाँ उद्धृत कर देना अधिक उचित होगा।

'चहारदीवारी के पश्चात् ही पश्चिम तरफ एक खाली बेकार जगह है। वह मिट्टी की चहारदीवारी से परिवेष्टित है। इस स्थान के मध्य में लगभग बारह फिट ऊँचा ढूहा है। उसकी नींव में चौकोर शिलाखण्ड लगे हैं। ढूहा मिट्टी तथा ईंटों का है। इसके दक्षिण तथा उत्तर की दिशा में उनका आधार देखा जा सकता

है। वह अड़तीस फीट वर्गाकार होगा। इस वर्ग के दक्षिण-पूर्व तरफ यहाँ एक गहरी जमीन करीब दश फीट वर्गाकार होगी। यह प्राचीन कूप अथवा कुण्ड रहा होगा। इससे बहुत दूर पर नहीं यहाँ के मुल्ला ने एक गोला छोटा कुँआ मेरी यात्रा से लगभग दश वर्ष पूर्व खोद लिया था।'

'समीपस्थ बाजार के पण्डित दुकानदारों ने यहाँ की परम्परा के विषय में रोचक वर्णन किया। यह स्थान प्रायः 'स्कन्द बवन' नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ कुमार अथवा स्कन्द का मन्दिर नाग के समीप था। प्राचीनकाल में उक्त गहरी जमीन में ही नाग का जल बहकर, एकत्रित होता रहा होगा। इस कुण्ड से जल तारबल के समीप कुछ पश्चिम तरफ मार नहर में गिरता था। नाग को चलता यहाँ किसी व्यक्ति ने अपने जीवन में नहीं देखा था।

'रामचन्द्र ऋषि पुत्र साहिब राम जिनकी उम्र लगभग साठ वर्ष होगी, उन्हें अच्छी तरह स्मरण है, जब वह बालक थे, तो गोवर्धन दास याज़िद, जो उस समय बहुत वृद्ध थे, प्रतिदिन इस स्थान पर पूजा करने आते थे। शनिश्चर को वहाँ पर उगे एक बड़े शहतूत वृक्ष मूल में नैवेद्य कुमार को चढ़ाते थे। यह वृक्ष शेख गुलाम मुहिउद्दीन (सन् १८४२-१८४५ ई०) के सूबेदारी के समय ज़ियारत के मुल्ला ने काट दिया। जनश्रुति प्रचलित है। वृक्ष कटने पर उसमें से रक्त प्रवाह निकला था। गोवर्धन दास तथा अन्य उपासकगण परवण के दिन दीप दान उस ढूहे पर करते थे, जैसा कि आज भी रिवाज है देवस्थानों पर दीपदान किया जाता है।

'उक्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि स्मृति में ही स्कन्दभवन का स्थान पवित्र माना जाता था। वहाँ पूजा की जाती थी। यही बात यहाँ के ज़ियारत के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं। जहाँ प्राचीन मान्यता के अनुसार उपासक आते थे।' (स्तीन राजतरंगिणी : २ : ३३९)

काशी में भी जिन प्रसिद्ध मन्दिरों को तोड़कर, उनके स्थान पर, ज़ियारत अथवा मस्जिदें बनायी गयी हैं, वहाँ अब भी शिवरात्रि के दिन हिन्दू पूजा करने जाते हैं। मैं अपनी बाल्यावस्था में स्वर्गीय मामा जगन्नाथ सिंह के साथ जाता था। वह शिव भक्त थे एवं पार्थिव पूजन करते थे। विशेश्वरगंज स्थित मसजिद जो हरतीर्थ तोड़कर बनी है, लोग हमारे होश में वहाँ तथा ज्ञानवापी की मस्जिद, जहाँ काशी विश्वनाथ का मन्दिर था, पूजा करने जाते थे। कुछ पुराने पण्डित अब भी जाते हैं। इसी प्रकार काशी के लाटभैरव की मस्जिद के प्रांगण में ही पूर्वस्मृति स्वरूप एक छोटा लाट बना है। वहाँ नित्य पूजा होती है। यद्यपि यह विवाद हिन्दू मुसलमानों में शताब्दियों से चला आता है कि स्थान पर किसका अधिकार है।

स्कन्द भवन विहार का स्थान स्तीन के अनुसन्धान के कारण निश्चित हो गया है। इसे कुमार का स्थान इसलिये कहने लगे थे कि स्कन्द का पर्याय वाची नाम कुमार है। स्कन्द विहार अपने मूल रूप में प्रसिद्ध था। बौद्ध धर्म के लोप के पश्चात् अनेक विहार मन्दिरों में परिणत कर उनका नाम हिन्दू देवताओं पर रख दिया गया। स्कन्द भवन विहार के सम्बन्ध में भी यही प्रक्रिया हुई होगी। विहार नाम बौद्धों के अभाव में अप्रचलित हो गया। केवल स्कन्द शब्द स्मरण रह गया। उसी नाम से स्थान की प्रसिद्धि हो गयी।

'ट'

श्रीनगर

कल्हण ने श्रीनगर का प्रथम उल्लेख सम्राट् अशोक के सन्दर्भ में किया है। अशोक ने नगर की स्थापना की थी—'उस श्रीमान् ने श्रीनगर की स्थापना की जिसका महत्त्व उसके लक्ष्मी द्वारा समुज्ज्वल

छानबे लाख गृहों के कारण था।' (रा० : १ : १०४) अशोक के पूर्व पुराधिष्ठान (पण्डरेथन) राजधानी थी। राजा अभिमन्यु (द्वितीय) (सन् ९५८-९७२ ई०) के समय प्रवरसेनपुर अग्निदाह के कारण नष्ट हो गया था। आग इतनी भयंकर थी कि केवल एक मन्दिर जो जल के अन्दर था शेष रह गया था।

पण्डरेथन स्थान पर कुछ खनन कार्य हुआ है। प्राचीन मन्दिरों के शिला खण्ड प्रचुर संख्या में बिखरे मिले थे। वहाँ एक ६ फुट ऊँचा तथा दूसरा लगभग १६ फुट ऊँचा भग्न शिव लिङ्ग मिला था। इन दोनों के मध्यवर्ती स्थान पर किसी आसनस्थ मूर्ति का पद जो ठिहुनी भर ऊँचा था, पड़ा था। वैरन हुगेल ने इसे बुद्ध की प्रतिमा का अवशेष माना है। ह्यूम ने लिखा है। पाद किसी बीस फुट ऊँची मूर्ति के अव-शेष हैं। समीपस्थ मस्जिद में पुराधिष्ठान के भग्न मन्दिरों के अवशेष लगे हैं।

'योगवासिष्ठ रामायण' में पुराधिष्ठान का उल्लेख है। उसमें विस्तार से स्थान का वर्णन किया गया है। योगवासिष्ठ के वर्णन से पुराधिष्ठान की भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। पुराधिष्ठान के सम्बन्ध में प्राचीनकालीन यही एक मात्र वर्णन प्राप्य है।

पण्डरेथन का सबसे प्राचीन चित्र कर्नल कोल की पुस्तक में छपा है। पण्डरेथन के मन्दिर का दृश्य है। शंकराचार्य पर्वत मूल के लगभग दो मील दक्षिण पूर्व पण्डरेथन स्थान है।

अधिष्ठान का प्रयोग राजधानी के लिये किया जाता है। पुराधिष्ठान का अर्थ पुरानी राजधानी होता है। योगवासिष्ठ में वर्णन है—'वृक्षों तथा पर्वतों से सुशोभित पुराधिष्ठान काश्मीर के मध्य में स्थित है।' पण्डरेथन से खनन कार्य में प्राप्त मूर्तियाँ प्रताप सिंह संग्रहालय में रखी हैं। एक भगवान् बुद्ध की मूर्ति है। वह मूर्ति भंजकों द्वारा विकृत कर दी गयी है। मुखाकृति ललाट के नीचे अफगानिस्तान के बामियान मूर्ति के समान छील दी गयी है। भगवान् बुद्ध की अभयमुद्रा में एक और मूर्ति मिली है। मूर्ति भव्य है। मनपर अनायास अभय भावना का प्रभाव पड़ता है। बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। यज्ञोपवीत, धोती, हाथों में मृणाल् सहित पद्म तथा माला और मूर्द्धा पर केश और केश पर मुकुट है। मूर्ति की मुखा-कृति सरल है। हृदय आकर्षित करती है।

यहाँ की संग्रहीत मूर्ति (संख्या : १०४) भगवान् बुद्ध का लुम्बिनि में जन्म का प्रदर्शन करती है। देवी महामाया शाल वृक्ष की शाखा पकड़े खड़ी हैं। उनका वाम हस्त एक महिला के स्कन्ध पर है। आख्या-यिका है। यह सेविका प्रजापति गौतमी है। वह भगवान् की माता महामाया देवी की कनिष्ठ बहिन थी। भगवान् के जन्म के सातवें दिन माता का देहान्त हो गया। प्रजापति गौतमी ने भगवान् का लालन पालन किया था। भगवान् बुद्ध से गौतमी ने स्वयं प्रव्रज्या ले ली थी। अपने ही पुत्र की शिष्य हुई थी। पुत्र को शास्ता स्वीकार किया था।

मूर्ति के पृष्ठ भाग में चामरधारिणी युवती बनी है। तत्कालीन महिलाओं की क्या वेशभूषा थी, वह इस मूर्ति में देखने से प्रकट होता है।

एक विचित्र खण्डित मूर्ति इस संग्रहालय में और है। मूर्ति के पाद से कटि प्रदेश तक का भाग शेष रह गया है। वह पुरुष मूर्ति है। सिंह वाहन है। उसका पाद अंगुष्ठ से कटि तक पादत्राण वस्त्रादि से विभूषित है। किसी कुषाण वंशीय राजा की मूर्ति मालूम होती है। मूर्ति की पाद भूषा पेशावर जिला के ग्रामीण क्षेत्रों में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक प्रचलित थी।

पर्वत ढाल के मूल में लगभग एक मीलतक प्राचीन मूर्तियाँ, खिलौने तथा पात्र मिले हैं। मूर्तियाँ आदि

इस प्रकार तोड़कर, चूर-चूर कर दी गयी हैं कि खण्ड मात्र शेष रह गया है। प्राचीन पुराधिष्ठान क्षेत्र में बादामी बाग के समीप कैण्ट तथा अस्पताल आदि समाजोपयोगी संस्थाएँ बनी हैं। सैनिक छावनी काश्मीर पाकिस्तान युद्ध स्थिति के कारण बनी है। खनन कार्य में हयग्रीव, वराह, रुद्र, पार्वती, शिव, भैरव, लक्ष्मी, त्रिमूर्ति आदि पौराणिक देवताओं की मूर्तियाँ मिली हैं। वे इतनी बुरी तरह तोड़ी गयी हैं कि देखकर दुःख होता है। मूर्तियाँ भव्य, सुन्दर तथा कलापूर्ण हैं। उनकी मौलिक शैली है।

कैप्टन नाइट के समय खनन कार्य नहीं हुआ था। किन्तु उसके वर्णन से प्रकट होता है कि पण्डरेथन के समीप यथेष्ट भग्नावशेष बिखरे पड़े थे। वह यह भी लिखता है कि स्थानीय लोग उजड़े पण्डरेथन को ध्वन्सावशेषों का स्थान मानते हैं। उसने एक मूर्ति का ठोस 'अधिष्ठान' देखा था। फसल कटे एक खेत में पड़ा था। सात फिट ऊँचा था। मूर्ति का केवल अधो भाग शेष रह गया था। मूर्ति की उंगलियाँ तथा अँगूठे तोड़ डाले गये थे। इस स्थान से आधमील दूरी पर एक विशाल स्तम्भ की वेदी पड़ी थी। उसका व्यास छः फीट था। बिना किसी यन्त्र के उसे उठाना सम्भव नहीं था। कुछ दूर पर स्तम्भ का भाग पड़ा था। वह तीन भागों में खण्डित था। बारह फिट लम्बा था। उसका अधोभाग बहुकोणीय था। मध्यभाग गोलाकार था। शिरोभाग कोणीय शुण्डाकार था। श्री डब्लू-वेक फील्ड (सन् १८७९ ई०) लिखते हैं—'पण्डरेथन एक अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। प्रदेश की राजधानी था। कितने दुःख की बात है कि अपने एक पुराने राजा के कारण वह पत्थरों का ढेर मात्र रह गया है। कहा जाता है। नगर एक समय मीलों तक विस्तृत था। उसमें दर्शनीय भवन थे। अशोक ने वहाँ एक देवस्थान निर्माण कराया था। उसमें भगवान् बुद्ध की धातु रखी गयी थी।' (जे. ए. एस. बी : भाग १७)

पण्डरेथन स्थान के निरीक्षण, दृश्य तथा खनन कार्य देखने पर यह स्पष्ट होता है। पण्डरेथन में बौद्ध तथा हिन्दू दोनों धर्म विकसित थे। विभिन्न सम्प्रदायों के देवस्थान साथ-साथ बनते थे। नगर समृद्धिशाली था। विकसित था।

अशोक ने पण्डरेथन त्याग कर, श्रीनगर क्यों राजधानी बनाया ? विचारणीय है। अशोक ने दो कारणों से नवीन राजधानी बनाने का विचार किया होगा। प्रथम कारण था वितस्ता की बाढ़ से नवीन नगर को खतरा नहीं पहुँच सकता था। ऊँचा स्थान था। पृष्ठ भाग में पर्वत है। पर्वत की ढाल पर ऊँची पथरीली भूमि है। पर्वत पक्का होने के कारण लैण्ड स्लाइड अर्थात् भूभ्रंश का भय नहीं था। दूसरा कारण है पण्डरेथन ग्राम तथा शंकराचार्य पर्वत के मध्य समतल तथा उपजाऊ भूमि है। विस्तृत भूखण्ड है। पण्डरेथन वर्तमान श्रीनगर से दक्षिण पूर्व है। हुएन्त्सांग ने श्रीनगर सन् ६३१ ई० में देखा था। उसका वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि से सबसे प्राचीन है। यद्यपि योगवाशिष्ठ रामायण में भी पुराधिष्ठान का उल्लेख है। रामायण का वर्तमान संस्करण राजा यशस्कर (सन् ९०९ ई०) काल का है। क्योंकि उसका उसमें उल्लेख है।

हुएन्त्सांग लिखता है—'नगर एक बड़ी नदी (विस्तता) के तटपर है। उत्तर पश्चिम १२ या १३ ली० और पूर्व से पश्चिम ४ या ५ ली० चौड़ा है। लगभग १० ली० इस नवीन नगर के दक्षिण-पूर्व बौद्ध विहार है। वह उत्तर में ऊँचे पर्वत तथा पुराने नगर स्थान से दक्षिण है।' हुएन्त्सांग की दी गयी लम्बाई चौड़ाई ठीक है। पण्डरेथन के पूर्व ओर तीन हजार फिट ऊँचा पर्वत है। पुराधिष्ठान का प्रथम बार उल्लेख कल्हण ने प्रवरसेन प्रथम के समय किया है। प्रवरसेन का ही नाम श्रेष्ठसेन तथा तुजीन द्वितीय (ली०

३१२२ = सन् ४६ ई०) कल्हण लिखता है—'प्रथम प्रवरेशपुर की प्रतिष्ठा करके उसने तत्पश्चात् मातृचक्र तथा अन्य पवित्र देवस्थानों की स्थापना पुराधिष्ठान में की थी' (रा० : ३ : ९९)। प्रवरेशपुर बसाने वाला प्रवरसेन द्वितीय था। (लौ० ३१४८ = सन् ७२ ई०) दोनों भिन्न व्यक्ति थे। दशवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में मेरुवर्धन ने पुराधिष्ठान में मेरुवर्धन स्वामो का मन्दिर स्थापित किया था। यही वर्तमान पण्डरेथन मन्दिर सरोवर मध्य है।

श्रीवर ने भी पुराधिष्ठान का उल्लेख किया है। श्रीवर के समय (सन् १४५९–१४८६ ई०) यह स्थान पुराधिष्ठान नाम से काश्मीर निवासियों को ज्ञात था। (जैन : ४ : २९० तथा ४ : २००)

पश्चिमी विद्वानों का मत है। पुराधिष्ठान अशोक निर्मित श्रीनगर है। अशोक पुत्र जालोक ने श्रीनगर में ज्येष्ठेश्वर की स्थापना की थी। यह ज्येष्ठेश्वर मन्दिर वर्तमान शंकराचार्य मन्दिर है। यद्यपि इस मन्दिर का जीर्णोद्धार होता रहा है। अतएव यह नहीं कहा जा सकता। मन्दिर का मूलरूप जालोक के समय का ही है अथवा परिवर्तित।

पुराधिष्ठान नाम से ही प्रकट होता है। नवीन राजधानी के पूर्व काश्मीर की पुरानी राजधानी था। खनन कार्यों की प्राप्य सामग्रियों से भी स्पष्ट हो जाता है। वहाँ पर किसी समय समृद्धिशाली नगर था। कल्हण पुराधिष्ठान के अतिरिक्त काश्मीर में और किसी दूसरे नगर का राजधानी रूप में नहीं वर्णन करता। प्रवरसेन द्वितीय ने नवीन श्रीनगर की स्थापना की थी। उसका नाम प्रवरसेनपुर रखा था। वर्तमान श्रीनगर पूर्व कालीन प्रवरसेनपुर है।

अशोक ने श्रीनगर अर्थात् नवीन राजधानी की स्थापना की थी। उसके पूर्व काश्मीर की राजधानी कहाँ थी। इस पर कल्हण प्रकाश नहीं डालता। प्रश्न उपस्थित होता है। अशोक को श्रीनगर राजधानी बनाने की क्या आवश्यकता थी ?

सिकन्दर ने ईसा पूर्व ३२६ वसन्त ऋतु में सिन्धु नदी पार किया था। मई मास में सिकन्दर तथा पोरस का युद्ध हुआ था। जुलाई मास में व्यास नदी तक पहुँचकर सिकन्दर ने सितम्बर मास में भारत का त्याग किया था। तत्कालीन जगत् सिकन्दर की महान् शक्ति से आतंकित था।

ईरान के बादशाह दारा (डारियस, दारयुः) ने भारत से भी सिकन्दर से युद्ध हेतु सैनिक सहायता माँगी थी। सिकन्दर दारा को पराजित कर, उसकी राजधानी जला दिया। तत्पश्चात् सिकन्दर भारत विजय के लिये अग्रसर हुआ। उसने ईसा पूर्व : ३२७ में पूर्वीय ईरान हिन्दूकुश के पश्चिमी भूखण्ड को जीत लिया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य सिकन्दर के आक्रमण के दो वर्ष ई० पूर्व ३२४ में पाटलिपुत्र का राजा बना था। वह अपने समय का महान् दूरदर्शी सम्राट् था। चाणक्य उसका प्रधान मन्त्री था। उसने यूनानियों के खतरे को समझा था। सिकन्दर से उसका संघर्ष नहीं हो सका था। उसने सिकन्दर से युद्ध करने का निश्चय किया था। सिकन्दर बहुत कम दिन भारत में रहा। पाटलिपुत्र से सेना चलकर पंजाब एवं सिन्धु नदी पहुँच नहीं सकती थी। सिकन्दर धूमकेतु तुल्य आया। और केवल चार मास पश्चात् विजय आदि कर लौट गया।

चन्द्रगुप्त के पश्चात् विन्दुसार ई० पू० ३०० में सम्राट् हुआ। सिल्यूकस पुनः ईसा पूर्व ३०५ में सिन्ध नदी पर सेना सहित पहुँच गया। यूनानियों के खतरे से भारतीय जागरूक थे। वे जानते थे। ओहिन्द

से तक्षशिला, रावलपिण्डी, झेलम, शाकल, होता सिकन्दर गुरुदासपुर जिला में व्यास तट पर, बिना किसी अवरोध के पहुँच गया था। यही कारण था कि अशोक की कुमारावस्था में उत्तर पश्चिम भारत सीमान्त पर नियुक्ति की गयी थी। अशोक रण कुशल था। नीतिज्ञ था। उसने सीमान्त को मजबूत बनाया। यूनानियों का साहस नहीं हो सका। वे पुनः भारत पर सैनिक अभियान करते। अशोक युवा काल में श्रीनगर का शासक हुआ था। काश्मीर पहुँचकर, एक कुशल सैनिक नेता के समान सुरक्षित स्थान पर, राजधानी बनाने का निश्चय किया।

मैंने पण्डरेथन का स्थान देखा है। अशोक ने वहाँ क्यों श्रीनगर की स्थापना की थी? इस पर भी विचार किया। पाकिस्तान-भारत युद्ध के समय पण्डरेथन अर्थात् पुराधिष्ठान का उपयोग सैनिक छावनी के रूप में किया गया था। यह सेना की पूर्ति का मुख्य केन्द्र था। सबसे सुरक्षित स्थान माना गया। यह सूत्र देता है। और यह भी सूत्र देता है। अशोक की उस समय मनःस्थिति क्या थी? किन कारणों से श्रीनगर राजधानी के लिये चुना?

काश्मीर उपत्यका में पहुँचने के लिये बारहमूला और बनिहाल दो मार्ग हैं। इन्हीं दोनों मार्गों से आक्रमण हो सकता था। पुराधिष्ठान का स्थान रक्षा की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ था। अशोक की कुशाग्र दृष्टि का परिचायक है। बनिहाल, विजयेश्वर एवं पामपुर की तरफ से आने पर, पाण्डो चक का संकीर्ण मार्ग ही एक मात्र मार्ग है, जिससे श्रीनगर इस समय पहुँचा जा सकता है। पाण्डो चक सकीर्ण मार्ग के उत्तर पर्वत तथा दक्षिण वितस्ता नदी है। यह संकीर्ण मार्ग सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पाण्डोचक के उत्तर से पर्वत चलता दुर्गा गलिक तक पहुँचता है। इस पर्वत के दक्षिण महासरित डललेक से वितस्ता तक जाती है। यह स्थान रुस्तम गढ़ी है। इस प्रकार पर्वत पाण्डु चक से रुस्तम गढ़ी तक एक अभेद्य प्राचीर पुराधिष्ठान के पूर्व एवं उत्तर बना देता है। पश्चिम दक्षिण वितस्ता नदी बहती है। प्राकृतिक दुर्ग बनकर यह पर्वत एवं जल रक्षा पंक्ति द्वारा वेष्ठित हो जाता है। इसी के मध्य पुराधिष्ठान है। आजकल के समान प्राचीन काल में भी सैनिक शिविर बनाकर शत्रु का सामना किया जाता था। यह स्थान पर्वत मूल में होने के कारण बाढ़ काल में रक्षित था। बाढ़ के समय मैं वहाँ मौजूद था। उस समय देखा। बनिहाल श्रीनगर सड़क के तट तक वितस्ता का जल लहरा रहा था। काश्मीर के जलप्लावन, तुषारपात एवं अग्नि प्राकृतिक शत्रु हैं। भीषण बाढ़ के समय भी पुराधिष्ठान की आबादी उत्तर-पूर्व पर्वतीय ढालपर, हटती अपनी रक्षा कर सकती है। यहाँ से डललेक का तटवर्ती उपजाऊ मैदान, नगर के खाद्य की आवश्यकता पूर्ण कर सकता है।

प्रवरसेन द्वितीय ने नवीन राजधानी बनाने की कल्पना तत्कालीन नगर विकास की दृष्टि से की थी। काश्मीर के राजाओं के दिग्विजयों तथा उसकी सैनिक एवं व्यापारिक ख्याति के कारण भारत तथा सीमावर्ती स्थानों से लोग श्रीनगर में आबाद होने लगे थे। पण्डरेथन का स्थान छोटा पड़ता था। अतएव प्रवरसेन ने नवीन राजधानी निर्माण की योजना बनायी। आज भी दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई आदि नगरों की विकास योजना के कारण पुराने नगर की सीमाओं पर उपनगर आबाद होते जा रहे हैं। यही प्रक्रिया उस समय भी हुई होगी।

प्रवरसेन ने जिस नगर की स्थापना की थी। वही वर्तमान श्रीनगर है। प्रवरपुर में जयेन्द्र विहार था। उसमें हुएन्त्सांग ने निवास किया था। बारह शताब्दियों तक प्रवरपुर ही वर्तमान श्रीनगर माना जाता रहा है। प्रवरपुर या प्रवरेशपुर का एक नाम भीमावत भी था। क्षेमेन्द्र, विल्हण, तथा अन्य काश्मीरी लेखकों ने इसे प्रवरपुर ही लिखा है।

परिशिष्ट

प्रवरपुर स्थापना के सन्दर्भ में परिशिष्ट 'प्रवरपुर' में प्रकाश डाल चुका हूँ। उसे दुहराना असंगत होगा। प्रवरसेन के समान कालान्तर में ललितादित्य ने सैनिक सुरक्षा दृष्टि से परिहासपुर में नवीन राजधानी की स्थापना की थी। किन्तु वह राजाधानी का रूप ले नहीं सका। जयापीड ने दिग्विजय के पश्चात् जयपुर नगर बसा कर नवीन राजधानी का रूप देना चाहा। अवन्ति वर्मा ने इसी दृष्टि से अवन्तिपुर तथा शंकर वर्मा ने शंकरपुर की स्थापना की थी। फिर भी श्रीनगर राजधानी बनी। अन्य नवीन राजधानियाँ अपने नामों एवं स्मृतियों को छोड़ती लुप्त हो गयी हैं।

श्रीनगर काश्मीर उपत्यका मध्य है। नव परिवहन के लिये सुगम स्थान है। डल तथा अंचर लेक के कारण समीपस्थ भूमि उपजाऊ है। खाने-पीने का सामान सर्वदा मिलता रहता है। मध्येशिया, लद्दाख, तथा तिब्बत का मार्ग श्रीनगर से कुछ ही मीलों पर आकर मिलता है। व्यापारियों के लिये सुविधाजनक स्थान है। यही कारण है। प्रतिभाशाली शक्तिमान राजाओं के राजधानी दूसरे स्थान ले जाने पर भी श्रीनगर पूर्ववत् महत्त्वपूर्ण स्थान बना रहा।

नवीन राजधानी प्रवरसेनपुर पुरानी राजधानी श्रीनगर का विकास मात्र है। वह भी सुरक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। पूर्व में डल लेक महासरित और वितस्ता है। पश्चिम दक्षिण में भी वितस्ता है। उत्तर में अंचर लेक तथा डल लेक है। इस प्रकार नवीन नगरी भी प्राकृतिक प्राचीर से परिवेष्ठित थी। पूर्व में भीमा देवी के समीप पर्वत डललेक से मिलकर मार्ग अत्यन्त संकीर्ण बनाता है। उत्तर में शारिका पर्वत है। वहाँ संकीर्ण मार्ग अंचर लेक तथा डल को विभाजित करता है। पाण्डु चक का मार्ग भी अत्यन्त संकीर्ण है। श्रीनगर प्राकृतिक सुरक्षा व्यवस्था के कारण सर्वदा सुरक्षित रहा है। वितस्ता की तटीय आबादी उतनी सुरक्षित नहीं कही जायगी जितनी दक्षिणी तट की है। इस समय आबादी जहाँ है वह सम्भवतः मलवों से पाट कर बनाया गया है। इतिहास से यह नहीं ज्ञात होता कि किस समय वाम तटपर आबादी का बढ़ाव आरम्भ हुआ। प्राचीन ध्वन्सावशेष एवं निर्माण वाम तट पर नगण्य है। राजपथ तथा राजप्रासाद भी राजा अनन्त (सन् १०२८-१०६३ ई०) के समय में वाम तट पर थे। इस तट पर आबादी सैनिक दृष्टि से सुरक्षित मानी जायगी। पूरब-उत्तर वितस्ता अर्धचन्द्राकार बहती है। दक्षिण क्षिप्तिका अर्थात् कुटकुल है। इस प्रकार वह क्षेत्र एक प्रकार से जल पूर्ण प्राकार के समान परावृत हो जाता है। क्षिप्तिका के वाम तट कुछ दूर दुग्ध सिन्धु दक्षिण से बहती आती है। क्षिप्तिका से पश्चिम वितस्ता से मिल जाती है। इस प्रकार पश्चिम किंवा वाम तट पर दोहरी जल सुरक्षा पंक्ति प्राप्त हो जाती है।

श्रीनगर के उत्तर शारिका पर्वत है। उसे हारी-होरी किंवा हरि पर्वत भी कहते हैं। पूर्व काल में इसके दक्षिण कुछ हट कर आबादी थी। इस समय नगर यहाँ तक विस्तृत हो गया है। पर्वत पर शारिका मूर्ति के शिला खण्ड पर श्री चक्र बना है। स्थानीय पण्डित कहते हैं। कभी-कभी चक्र की लकीरें उभड़ कर दिखायी पड़ने लगती हैं। मैंने कुछ कोणों को गिना। परन्तु चक्र का पूर्ण रूप नहीं दिखायी देता। सिन्दूर लगने के कारण चक्र का पूर्ण दर्शन नहीं होता। शिला खण्ड का रूप शारिका किंवा मैना से मिलता है। उसमें चंचु बना दिखायी पड़ता है। जोनराज के वर्णन से मालूम होता है। शाहमीर वंश के चतुर्थ सुलतान ने शारिका पर्वत मूल में अपनी पत्नी लक्ष्मी के नाम पर नगर निर्माण किया था—'उसने शारिका शैलराज के मूल में महिषी लक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध नगरी निर्मित की, जिसमें पुण्यशाली लोग निवास करते थे

और जिसे लोग सुमेरु में स्थित अलका सदृश देखते थे।' (जोन : ४१०) इससे प्रकट होता है। प्रवरेशपुर तथा शारिका के मध्य काफी विस्तृत मैदान था वहाँ नगर निर्माण किया गया था।

शारिका पर्वत पर अकबर ने दुर्ग निर्माण कराया था। दुर्ग अच्छी अवस्था में है। सैनिकों के निवास हेतु बैरिक बने हैं। पुरानी तोपों के गोले बहुत रखे हैं। पर्वत पर गणेश, काली, चक्रेश्वर तथा हारी किंवा शारिका देवी का मन्दिर है। एक बहुत गहरा कूआं है। शारिका पर्वत के पीछे तड़ाग है। पर्वत ढाल पर शारिका देवी का तीर्थ स्थान है। राज्य की ओर से शारिका तक पहुँचने के लिये सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं। शिखर पर चढ़ने के लिये जहाँ से सीढ़ियाँ आरम्भ होती हैं, वहाँ एक आधुनिक मन्दिर बना है। मन्दिर के बाह्य स्थान में शिव लिंग है। भीतर देवी की मूर्ति है। मन्दिर के नीचे सड़क के समीप ब्राह्मणों के पाँच-सात मकान हैं। यहाँ एक ढका जलखाता है। यहीं से स्थानीय आबादी जल ग्रहण करती है। शारिका पर्वत बाहर से देखने पर एक बड़े दुर्ग के अन्दर मालूम पड़ता है।

शारिका देवी का स्थान उत्तर-पश्चिम शैल पर है। इसका एक नाम प्रद्युम्न पर्वत भी है। कल्हण के समय यह नाम प्रचलित था—'रणारम्भा स्वामी एवं रणारम्भा देव को दम्पति ने निर्माण कराया। प्रद्युम्न मूर्धा (शिखर) पर पाशुपतों के लिये मठ निर्मित कराया' (रा० : ३ : ४६०)। कल्हण ने पुनः प्रद्युम्न का उल्लेख किया है—'राजा हर्ष (सन् १०८९–११०१ ई०) सब ओर से निराश हो गया था, उसे अपने निकटवर्ती लोगों पर भी अविश्वास हो गया था। उसके साथियों ने उसे त्याग दिया था। जब वह प्रद्युम्न शिखर के समीप पहुँचा था।' (रा० : ७ : १६१६)

शिखर के पूर्वीय ढाल पर मुकद्दम शाह तथा आखून मुल्ला की ज़ियारतें हैं। उन स्थानों पर पूर्व काल में मन्दिर थे। नवमी पर्व पर शारिका उत्सव मनाया जाता है। देवी का जन्म दिन है। इस दिन होम होता है।

पर्वत के धुर दक्षिण एक शिलाखण्ड है। पर्वत से ही सम्बन्धित है। इसे भीम स्वामी गणेश की मूर्ति कहते हैं। यह गढ़ित मूर्ति नहीं है। स्वयम्भू मूर्ति है। समस्त शिलाखण्ड गाढ़े सिन्दूर से रंगा है।

हिन्दू काल में शारिका पर्वत की किलेबन्दी हुई थी, इसका कोई उदाहरण नहीं मिलता। शारिका पर्वत को परावृत करती दीवाल सम्राट् अकबर का निर्माण है।

भीम स्वामी के दक्षिण पूर्व अकबर के किले के बाहर जियारत बहाउदीन साहब है। वह मन्दिर के स्थान पर, मन्दिर के ध्वन्सावशेषों से बनाया गया है। यहाँ अनेक कबरें तथा प्राचीन मन्दिर की टूटी दीवाल का भग्नावशेष दिखायी पड़ता है। आज़ादी के पश्चात् इस ज़ियारत की काफी उन्नति हुई है। ज़ियारत के दक्षिण-पश्चिम कोण पर एक टूटा प्राचीन फाटक खड़ा है। उसमें पत्थर बड़े भारी-भारी लगे हैं। श्रीनगर के पण्डितों में मान्यता है कि प्रवरसेन द्वितीय द्वारा निर्मित यही प्रवरेश्वर का मन्दिर था। इस द्वार का उल्लेख विल्हण ने विक्रमांक देव चरित (१८ : २८) में किया है—'इस नगर में राजा प्रवरसेन का निर्मित गिरिजा वल्लभ का अद्भुत मन्दिर है। किन की आशा (इसे देखकर) अमरावती में पहुँचने की नहीं होती? यहाँ पर प्रवरसेन के सशरीर स्वर्ग जाने के लिये द्वार सदृश छिद्र आज भी दिखायी पड़ता है।'

बहाउद्दीन साहब में ज़ियारत के दक्षिण-पश्चिम जामा मसजिद है। इसके चारों ओर पुराने मन्दिरों के भग्नावशेष बिखरे अब भी दिखायी देते हैं। वहाँ से कुछ और दक्षिण पश्चिम चलने पर पीर हाजी मुहम्मद की ज़ियारत मिलती है। यह अष्टकोणीय अधिष्ठान पर बनाया गया है। इसका तल तथा पार्श्ववर्ती दीवालें अभी भी अच्छी हालत में है। इसका प्रांगण प्राचीन प्राकार से घिरा है। द्वार अलंकृत शिलाखण्डों से

बनाया गया है।

कल्हण रणादित्य मन्दिर का उल्लेख करता है—'माहेश्वर होने के कारण, रणादित्य प्रतिष्ठा सज्ज होनेपर, पहले रणेश्वर की प्रतिष्ठा हेतु जबतक उद्यत हो रहा था, तबतक रणादम्भा के प्रभाव से विस्मय करने वाले स्वयं रणस्वामी यन्त्र भेदन कर पीठ पर बैठ गये।' (रा० : ३ : ४५३-४५४) मंख ने श्रीकण्ठ चरित (३ : ६८) में रणस्वामी मन्दिर का उल्लेख किया है। उसके पिता इस मन्दिर में पूजा करने आते थे। जोनराज ने श्रीकण्ठ चरित के भाष्य में लिखा है कि विष्णु रणस्वामी प्रवरसेनपुर का एक मुख्य देवस्थान था। जोनराज ने वर्णन किया है कि प्रद्युम्न गिरि प्रान्त में सुल्तान जैनुल आबदीन ने जैन नगरी की स्थापना की थी। जैन नगर जैन गंगा पर आबाद था। रणस्वामी प्रासाद समीप तक जैन गिर नगर विस्तृत था। (जोन ८६९-८७०) जैन गंगा को लक्षम कहते हैं। मारी या महासरित में कादी कदल के समीप मिलती थी। इस संगम के एक कोने पर रणस्वामी का मन्दिर था। वह मन्दिर पीर हाजी मुहम्मद साहब की ज़ियारत में परिणत कर दिया गया है। म्हारिष राय ने अपने तीर्थ संग्रह में रणस्वामी मन्दिर का स्थान हरी या हारी पर्वत के पश्चिम बताया है।

दक्षिण तरफ मार नदी पार करने पर चौथे तथा पाँचवें पुल के मध्य वितस्ता के दक्षिण तटपर बद्रीमर स्थान पड़ता है। यही प्राचीन भट्टारक मठ स्थान है। इसका उल्लेख कल्हण करता है—'तत्पश्चात् क्रोधपूर्वक समुधर आदि लोगों के पुर में प्रवेश करने पर दिद्दा ने पुनः पुत्र को भट्टारक मठ भेज दिया।' (रा० : ६ : २४०) बिल्हण भट्टारक मठ के विषय में लिखता है—'जिसमें भट्टारक मठ समीपस्थ कामिनियों की कटाक्ष छटा में कोई अति ललित एवं विचित्र शोभा स्फुरित होती है, जो बिना किसी शंका के कर्णोत्पल के अपलाप में प्रवृत्त थी किन्तु सुगन्धि के कारण संलग्न भ्रमरों के गुञ्जार से उसका प्रभाव किंचित् न्यून हो गया था। (विक्र० : १८ : ११) शिलाखण्डों द्वारा निर्मित चतुष्कोणीय भट्टारक मठ था। यह इतना सुदृढ़ तथा सुरक्षित माना जाता था कि युद्ध के समय इसका प्रयोग किया जाता था।

वितस्ता के उत्तर दिदमर स्थान पर दिद्दा मठ था। छठवें पुल के पास बल्दीमर की तरफ है। बल्दीमर स्थान पर प्राचीन बलाढ्य मठ था। राजा राजदेव (सन् १२१३–१२३६ ई०) के मन्त्री बलाढ्य चन्द्र ने इसका निर्माण कराया। जोन लिखता है—'महान् ओजस्वी बलाढ्य चन्द्र ने नगर मध्य राशीभूत मूर्तिमान् पुण्य सदृश स्वनामांकित मठ निर्मित किया। (जोन : ८२)

छठवें पुल के कुछ उत्तर स्कन्दभवन विहार था। उसका वर्णन परिशिष्ट में विस्तार के साथ किया गया है। स्कन्द भवन अर्थात् खाण्डववन के उत्तर-पूर्व कब्रिस्तान है। उससे और उत्तर नरवोर अर्थात् प्राचीन नदवन है। मेघवाहन की एक रानी ने यहाँ विहार निर्माण कराया था। वह प्राचीन शब्द नदवाट का अपभ्रंश है। वाट शब्द दक्षिण पूर्व एशिया में विहार के लिये प्रयुक्त किया जाता है।

तारीखे रशीदी (४३१) से पता चलता है। वितस्ता पर तीस नाव के पुल बने थे। उनमें सात केवल श्रीनगर में थे। उन दिनों काश्मीर में स्थायी पुल बनाने की प्रथा प्रचलित नहीं हुई थी। पहला स्थायी नाव का पुल प्रवरसेन (द्वितीय) ने वितस्ता पर बनवाया था। उसे बृहत्सेतु कहते थे—'उस भूपाल ने वितस्ता नदी पर बृहत्सेतु का निर्माण कराया था। उस समय से नौका द्वारा सेतु निर्माण ख्यात हुआ।' प्रवरसेन द्वितीय का अनुमानित काल सन् ११२ ई० है। उस समय विश्व में नौका सेतुओं का ही निर्माण होता था। यूनान तथा रोम में नाव सेतु बनाने की प्रथा प्रचलित थी। प्रवरसेन पुल या सेतु का वर्तमान चौथे

पुल के समीप होने का अनुमान श्री स्तीन ने लगाया है। जैनुल आबदीन ने (सन् १४२४–१४७० ई०) प्रथम स्थायी पुल जैन कदल बनवाया था। वह पुल पाषाण एवं काष्ठ से युक्त था। काश्मीर में इस शैली का निर्मित यह पहला स्थायी पुल था। श्रीवर लिखता है—

'नगर में वितस्ता के मध्य बसनेवाले काष्ठ एवं शैल से पूर्ण चतुर्गृह से युक्त पार करनेवाले पंक्तिबद्ध दश अश्वों की चौड़ाई से युक्त जैन कदल नामक सेतुबन्ध को इस राजा ने बनवाया।' (जैन : १ : ३ : ८२-८३) वह पुल निर्माण शैली काश्मीर की विशेष कला थी। उसने प्रायः सभी पर्यटकों को आकर्षित किया है। उनका वर्णन विदेशी पर्यटक करने से नहीं चूकते।

राजा हर्ष ने (सन् १०८९–११०१ ई०) एक नाव सेतु अपने राज्य प्रासाद के सम्मुख बनवाया था। उसे कल्हण ने महासेतु की उपमा दी है। (रा० : ७ : १५४९) वह वितस्ता के वाम तटपर इसी पुल हवा कदल के पास था।

हिन्दूकाल में श्रीनगर में वितस्ता पर घाट बँधे थे। स्नान के लिये स्नान काष्ठ गृह सरिता के तटों पर रखे रहते थे। श्रीनगर में वे शोभा की सामग्री थे। क्षेमेन्द्र ने उन्हें स्नान कोष्ठक नाम से लिखा है। काशी में घाटों का दृश्य अपूर्व है। घाट पर खुले स्थान में स्नान करते हैं। स्त्रियाँ भी इसी प्रकार स्नान करती हैं। कुछ दिनों से दो एक घाटों पर लकड़ी तथा लोहे के स्नान गृह बना दिये गये हैं। वहाँ स्त्रियाँ स्नान करती हैं। पुरुष खुले ही सीढ़ियों पर स्नान करते हैं।

शाह हमदान के स्थान पर वे प्राचीन काल में लोकश्री का मन्दिर था। यहाँ एक स्रोत है। वितस्ता में मिलता है। ऊपर शाह हमदान की इमारत है। घाट के पास सिन्दूर से रंगी दिवाल है। यही स्थान लोक कहा जाता है। सोमपार घाट पर सोम तीर्थ है। यह दूसरे पुल के नीचे है। कल्हण ने इस तीर्थ का उल्लेख किया है (रा० : ८ : ३३६०)। काश्मीरी पण्डित यहाँ की यात्रा करते हैं। नदी तटपर कुछ लिंग एवं मूर्तियाँ है। वह मुहल्ला सुद्रमर कहा जाता है। नदी के अधोभाग में दक्षिण तटपर है। नदी के दूसरी तरफ जैनपोर, करफल, मलिकपार आदि स्थान हैं समुद्रमठ का अपभ्रंश सुद्रमर है। राजा रामदेव (सन् १२५२–१२७३ ई०) की स्त्री समुद्रा ने इसकी स्थापना की थी। 'विमुद्रित समुद्रजा समुद्रा नाम्नी देवी ने वितस्ता पर नगर के अन्तर्गत स्वनामांकित मठ निर्माण कराया।' (जोन : १११) श्रीवर ने भी इसका उल्लेख किया है। डिण्डिम घोष पूर्वक शासन करते समय समुद्र मठ से लेकर जैन नगर तक पुरवासियों में चोरी का भय नहीं था। (जैन : ४ : १२०) और वह सेना भी समुद्र मठ मार्ग से प्रवेश कर, सैयद भटों का क्षय करने के लिये, लोष्ट विहार, में पहुँच गयी।' (जैन : ४ : १६८) समुद्र मठ से लेकर पूर्वाधिष्ठान तक मार्गों में ईंधन के गट्ठर के समान निर्वस्त्र शव पड़े हुए थे।' (जैन : ४ : २८८)

मलयार घाट के पास वर्धमानेश का मन्दिर था। वितस्ता माहात्म्य में वर्धमानेश का उल्लेख है। उसके अनुसार वर्धमानेश का मन्दिर गणपति तीर्थ के समीप था। सन् १८१८ ई० में यहाँ के निवासी पुरोहितों ने मलयार घाट के निकट मन्दिर का निर्माण कराया है। वह स्थान गणेश घाट या गनपत पार कहा जाता है। इस मन्दिर में स्थापित शिव लिंग प्राचीन मन्दिर का ही शिव लिंग है। पहले एक मस्जिद में शामदान के काम में लाया जाता था। मस्जिद की दीवाल प्राचीन वर्धमानेश्वर मन्दिर के ध्वन्सावशेषों से बनायी गयी है।

मारी संगम तीर्थ वितस्ता तथा महासरित् अर्थात् सुन्थ कुल के संगम पर है। मयसुम ही प्राचीन

मक्षिमा स्वामी का स्थान था—'उसका समवयस्क बाल्यावस्था से अध्ययन में अधर्य मक्षिका स्वामी समीप रहनेवाला अभिचारवेत्ता विप्र शंकनीय है।' (रा० : ८८) कल्हण पुनः उल्लेख करता है—'बृहत् सेतु पर से मक्षिका स्वामी से उठते हुए धूम्र को कोई देख सकता था। जो दौड़ते हुए हाथियों के झुण्ड की तरह लगते थे। उसी समय इन्द्रभवन विहार पर जोर से अग्नि गिरी और उस समय समस्त नगर ज्वालाओं में देखा गया।' (रा० : ८ : ११७१–११७२) वितस्ता के दक्षिण तट पर चलते क्षुरिका बल अर्थात् खुदबल मिलता है। यहाँ पुराना बाँध अथवा सेतु देखा जा सकता है। इस बाँध के उत्तर डल से वरारी नम्बल नहर आती है। कछार है। उसे भट्टार नडवल कहते हैं। भट्टार का अपभ्रंश ब्रारी तथा नदवल का नम्बल है। इसका उल्लेख कल्हण करता है—'जय्यक प्रतीहार ने शिरश्छेद कर दिया, तो उसका शरीर भट्टार नडवल में फेंक दिया गया और मछलियों का भोजन बना।' (रा० : ७ : १०३८)

सेतु की पूर्वीय सीमा पर जहाँ शंकराचार्य पर्वत का चट्टानी पाद मूल मिलता है। वहाँ पर पहले एक द्वार था। यहाँ से सुन्थ कुल डल का पानी निकलता था। यह जल द्वार उस समय बन्द कर दिया जाता था, जब वितस्ता का जल स्तर डल झील से ऊँचा उठता था। इसके पश्चात् द्रुगजन पड़ता है। यह प्राचीन काल में दुर्गा कहा जाता था। कल्हण इसका उल्लेख करता है—'राज्येच्छा से दौड़ते हुए राजा को उसके मन्त्रियों ने दुर्गा गलिका में बन्दी बना दिया ऐसा कुछ लोगों ने कहा। (रा० : २ : ४) दुर्गा गलिका में शंकराचार्य के पश्चिमस्थ पादमूल से डल झील जल द्वार की मध्यवर्ती भूमि सम्मिलित थी।

डललेक के दक्षिणी पूर्वी भाग को गगरीबल कहते हैं। शंकराचार्य पर्वत का एक शैल बाहु उत्तर की ओर निकलता, डललेक के समीप पहुँच जाता है। इसके तथा डललेक के मध्यवर्ती भाग को गगरीवल कहते हैं। उसके उत्तर पूर्व डल के भाग को भी गगरीबल की संज्ञा दी गयी है। गगरीबल स्थान भी डल के गगरीबल भाग के दक्षिण पड़ता है। गगरीबल जल भाग से एक चौड़ी नहर दक्षिण पश्चिम की ओर चली गयी है। इसे महासरित् कहते हैं।

वितस्ता से एक नहर निकलकर नवपुरा की ओर गयी है। सेतु से पुनः दक्षिण पश्चिम की ओर मुड़ जाती है। महासरित् पर जो पुल बँधा था उसे नवपुरा सेतु कहते थे। वहाँ से सेतु का बंध आरम्भ होता है। इस बंध के उत्तर एक नहर डल लेक से आती है। यही द्वारी नम्बल है। इसके पूर्वीय छोर पर जहाँ शंकराचार्य पर्वत के पथरीले भाग को स्पर्श करती है, वहाँ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व एक द्वार था। वहाँ से सुन्थ कुल द्वारा डललेक का जल बाहर जाता था। इसी के पास दुर्गागलिका की आबादी है। राजा अन्ध-युधिष्ठिर यहाँ बन्दी रखा गया था। उक्त सेतु का उल्लेख श्रीवर ने भी किया है। 'नौपुर आदि में सैनिकों द्वारा सेतुबन्ध काट दिये जाने पर शत्रु भय से दुर्ग के सदृश नगरी को दुर्गम बना दिया। (जैन : २४१) इस समय यहाँ घनी आबादी हो गयी है। स्थान का पहचानना कठिन है।

मैं यहाँ पर आया तो स्थानीय पण्डितों से दुर्गा गलिका के विषय में जिज्ञासा किया। एक पण्डित ने दुर्गा गलिका का स्थान श्रीनगर बनिहाल राजपथ पर बनिहाल की ओर वाम भाग स्थित एक दुर्गा का मन्दिर दिखाया। वहाँ दो जल कुण्ड भी हैं। एक ऊपर है। दूसरा नीचे है। स्थान सुरम्य है। कुछ ब्राह्मणों के कुल यहाँ रहते हैं। धर्मशालायें बनी हैं। देवी का मन्दिर है। ऊपर शिव लिंग है। वहाँ एक नाग भी है।

उत्तर चलते हुए रनणवोर पहुँचते है। इसे राजान वाटिका कहते थे। वहाँ ब्राह्मणों की पूर्वकाल में बहुत आबादी थी। कल्हण इसका उल्लेख (रा० : ८ : ७५६, ७६८, ८९९) करता है।

वितस्ता-मारी संगम के दूसरी तरफ पार में शेरगढ़ी स्थान है। काश्मीर के डोगरा राजाओं का राजभवन है। इस स्थान का सिख तथा डोगरा राज्य के पूर्व पठान सूबेदारों ने सुरक्षा दृष्टि से निवास हेतु चयन किया था। शेर गढ़ी के नीचे कुतकुल या क्षिप्तिका वितस्ता से फूट कर निकलती है। कथूल प्राचीन काष्ठिला है। यह क्षिप्तिका तथा वितस्ता नदी के मध्य है। विल्हण के अनुसार यहाँ ब्राह्मणों की खूब आबादी थी—'संग्राम राजा द्वारा मठों के प्रदेशों से सीमित चन्द्रसीमा प्रदेश नेत्रों में अमृत सिंचन करते हैं। जहाँ वितस्ता नदी के तट प्रान्त में काश्मीर राजा अनन्त के निर्मित ब्राह्मणों के अग्रहार हर के धवल कान्ति से हार सदृश दिखायी देते हैं। (विक्रमांक १८ : २५) कल्हण भी इसका उल्लेख करता है—ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को जब महारण आरम्भ हुआ, तो काष्ठील के गृहों में डामरों ने आग लगा दी।' (रा० : ८ : ११६९)

हिन्दू राजाओं ने निवास हेतु राजप्रासादों का निर्माण नहीं कराया था। उनकी रुचि मन्दिरों, मठों, विहारों तथा शालाओं के निर्माण कराने में थी। अतएव उनके ध्वन्सावशेष मिलते हैं परन्तु राजभवन, राजप्रासाद का कहीं चिह्न नहीं मिलता। काश्मीर के राजा इस दिशा में विश्व के राजाओं में आदर्श कहे जायँगे। उन्होंने अपने विलास के लिये भवन रचना एवं जनता का धन अपव्यय नहीं किया था।

कथूल आबादी के उत्तर, दूसरे पुल के समीप उत्तरकालीन हिन्दू राजाओं का निवास स्थान था। कल्हण संकेत करता है—'राजराज नामक पुत्र के दिवंगत हो जाने पर, राजा (राजा अनन्त सन् १०२८–१०६३ ई०) राजा-रानी राजवेश त्यागकर, सदाशिव के समीप निवास करने लगे। उसी समय से यह परम्परा चल गयी कि पूर्व राजाओं ने पुराना स्थान त्याग दिया। इसी स्थान पर निवास करने लगे।' (रा० : ७ : १८६–१८७)

सदाशिव स्थान कल्हण के उल्लेख से मालूम हो जाता है कि किस स्थान पर था।—'राजधानी के अन्त में क्षिप्तिका सरिता के तट पर पृथ्वीहर ने युद्ध किया और बहुत सैनिकों को मारा।' पुनः कल्हण लिखता है—'राजधानी में बिना प्रवेश किये ही वह भिक्षु को खोजने लगा जो पहले भाग गया था। तत्पश्चात् क्षिप्तिका तट पर लवन्यों के साथ दिखायी पड़ा। (रा० : ८ : ९५५) क्षिप्तिका ही कुतकुल नहर है। यह वितस्ता से फूटकर शेरगढ़ी के समीप निकलती है। डेढ़ मिल बह कर सातवें पुल के समीप वितस्ता में ही मिल जाती है। कल्हण के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि राजधानी अर्थात् राजप्रासाद नदी के वाम तट पर था। 'उसी समय राजधानी के दूसरी तरफ नदी के तट उत्तर ओर से हल्ला उठा कि मल्ल का ज्येष्ठ पुत्र आ गया। पुल तोड़ दो।'' (रा० : ७ : १५३९) इससे प्रकट होता है कि राजप्रासाद वितस्ता के वामतट तथा कुतकुल के मध्य कहीं स्थित था। सदाशिव स्थान के विषय में कल्हण लिखता है—'रानी सूर्यमती द्वारा निर्मित गौरीश समीपस्थ गृह त्याग कर वे सदाशिव मन्दिर जो नजदीक ही था, विरोधियों को मारते पहुँचे। (रा० : ७ : ६७३) जनक सिंह वीरतापूर्वक अपने सैनिकों के साथ पुल पर युद्ध करने लगा जो सदाशिव मन्दिर के सम्मुख था यद्यपि प्रयास उसे समझाने का किया गया था।' (रा० : ८ : ९३४) कल्हण पुनः सदाशिव मन्दिर का उल्लेख करता है—'सदा समीपस्थ शून्य राजधानी में मल्लकोष्ठ ने तस्करों को रात्रि में भेजकर आग लगवा दी।' (रा० : ८ : ११२५)

उक्त उद्धरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं। सदाशिवपुर वितस्ता के वाम तट पर समुद्र मठ के दूसरी तरफ था। श्रीवर ने भी समुद्र मठ का उल्लेख किया है। उससे स्थान का निश्चय हो जाता है। (जैन :

४ : १२०, १६८, २८८) यह स्थान सुदरमल महल्ला है। इसके दूसरी तरफ, वितस्ता के वाम तट पर, जैन्द्र महल, पुरुसपार, करफल, मलिकपार आदि सभी जिला तोशवान में हैं। यहीं पर सदाशिव स्थान तथा कल्हण वर्णित राजधानी किंवा राजप्रासाद थे। स्तीन ने लिखा है। उन्हें यहाँ के पण्डितों से मालूम हुआ था कि कुछ वर्ष पूर्व पुरुसपार घाट (पारबल) इसी पुल के पचास गज नीचे एक शिव लिंग था जिसे यहाँ के पुरोहित सदाशिव कहते थे। नदी के वाम तट पर लिंग स्थान के समीप ही यह लिंग एक मन्दिर में अब रख दिया गया है।

उक्त स्थान के समीप ही राजधानी अर्थात् काश्मीर के राजाओं का राजप्रासाद था। जैनुल आबदीन ने अपने लिये राजान निर्माण कराया था। राजधानी का अपभ्रंश राजान है। जैसे राजानक का अपभ्रंश राजदान हो गया है। राजधानी का सम्बोधन राजतरंगिणी में राज्य प्रासाद के लिये किया गया है। उसे राज्य किंवा देश की राजधानी अर्थात् केपिटल के अर्थ में नहीं मान लेना चाहिए। राजधानी जलाने का जहाँ भी कल्हण ने वर्णन किया है वहाँ राजप्रासाद से अर्थ लगाना अभिप्रेत है। (रा० : ७ : १५६५ : १५८३)

आजकल के समान राजप्रासाद के साथ बाग किंवा उद्यान भी लगाये जाते थे। कल्हण राजधानी के साथ उद्यान का भी उल्लेख करता है। वह राजा विहार करते थे। (रा० : ७ : १५३८) राजा हर्ष ने राजधानी का दृश्य रोकने वाले ऊँचे वृक्षों को कटा दिया था कि जनता राजप्रासाद का दृश्य प्राप्त कर सके। अनुवादकों ने देश की राजधानी या केपिटल मान कर राजधानी अनुवाद कर भ्रम उत्पन्न कर दिया है।

राजा अनन्त के पूर्व काश्मीर राजाओं का राजप्रासाद कहा था, यह अनुसन्धान का विषय है। श्री स्तीन का मत है। राजप्रासाद या राजधानी पुराने प्रवरसेनपुर में वितस्ता के दक्षिण तट पर थी। कल्हण ने पुराण राजधानी शब्द का प्रयोग किया है। काश्मीर से जाते ही सभी मन्त्री पुराण राजधानी के सम्मुख सेना सहित एकत्रित हो गये। (रा० : ८ : ८३७) 'पुराण राजधानी' स्थान के सम्बन्ध में कल्हण लिखता है—'उसका विहार जो कि पूर्व राजकुलों के अखण्ड स्थण्डिल पर बना था, वह नगर का नेत्राभिराम स्थान था।' (रा० : ८ : २४३–२४१७) इससे प्रकट होता है कि पुरानी राजधानी वितस्ता के दक्षिण तट पर थी। उसके स्थान पर विहार का निर्माण हो गया था।

'ठ'

काश्मीर के सीमान्त

वर्तमान काश्मीर तथा प्राचीन काश्मीर के सीमा प्रान्तीय देशों में समय समय पर अन्तर होता रहा है। हिन्दू काल में काश्मीर का अर्थ मुख्यतया काश्मीर मण्डल से लिया जाता था।

काश्मीर उपत्यका—काश्मीर मण्डल किंवा उपत्यका बनिहाल मूल से आरम्भ होकर लोलाव, सोनमार्ग, तथा बारहमूला के मध्य विस्तृत है। लम्बाई ८४ मील तथा चौड़ाई २५ मील है। अनन्तनाग के समीप उपत्यका केवल १० मील चौड़ी है। श्रीनगर के समीप चौड़ाई विस्तृत हो जाती है। काश्मीर उपत्यका से मरबल दर्रा द्वारा, जो ११५०० फिट ऊँचा है, काष्ठ वाट जाते थे। अनन्त नाग से ७४ मिल दूर है, काश्मीर उपत्यका एवं चम्बा (चम्पा) के मध्य स्थित है। समुद्र की सतह से ३२३५ फिट की ऊँचाई पर है। विद्वानों ने अनुमान किया है। इस राज्य की स्थापना १०वीं शताब्दी में हुई थी। किश्तवार

उपत्यका अण्डाकार है। मैदानी क्षेत्र के चारों ओर पर्वतमाला है। किश्तवार की अधित्यका ६ मील लम्बी तथा ६ मील चौड़ी है। भूमि उपजाऊ है। उपज अच्छी होती है।

इस समय काश्मीर पाँच देशों के मध्य स्थित है। उत्तर में चीन और रूस, दक्षिण में पश्चिमी पाकिस्तान, भारतीय पंजाब, हिमांचल प्रदेश तथा तिब्बत, पूर्व हिमांचल प्रदेश, तिब्बत वर्तमान चीन, पश्चिम पाकिस्तान एवं अफगानिस्तान है। भारत-पाकिस्तान विभाजन पूर्व का काश्मीर डोगरा राजाओं की देन है। उन्होंने अपने अध्यवसाय पुरुषार्थ तथा सैनिक शक्ति के आधार पर, वर्तमान संगठित काश्मीर का रूप दिया था। सफलता पूर्वक एक राज्य के रूप में उसका नियोजन किया है। जो पूर्वकाल में कभी नहीं था। काश्मीर के इतिहास अध्ययन के लिये काश्मीर का प्राचीन तथा अर्वाचीन भूगोल जानना आवश्यक है।

यहाँ संक्षेप में केवल सीमान्त देशों एवं राज्यों का वर्णन अभिप्रेत है। जिनका सम्बन्ध काश्मीर के इतिहास से रहा है। भारत-पाकिस्तान युद्ध के पूर्व काश्मीर जम्मू, तथा सरहदी इलाकों के सात प्रशासकीय विभागों में विभाजित था। सरहदी इलाकों में लद्दाख, करगिल, स्कर्द, गिलगित, अस्तोर, पोहरबजी, कोलगीत, अखेसीये, हुंजा, गिर, मूनियाल, अश्कोयन, चिनास, पासीन, कोह गूजर तथा गोयस थे। भारत पाकिस्तान युद्ध के पश्चात्, जम्मू काश्मीर तथा सरहदी इलाकों के प्रशासकीय विभागों में विभाजित है। सरहदी इलाके में इस समय केवल लद्दाख है।

प्राचीन समय में काश्मीर के सरहद अर्थात् सीमा पर वर्तमान काश्मीर के सरहदी इलाके सम्मिलित थे। प्राचीन काल से ही समय समय पर सीमान्त रेखाएँ बदलती रही हैं। परन्तु इसके साधारण रूप में विशेष परिवर्तन नहीं होता था। सीमान्त जिनका सम्बन्ध काश्मीर के इतिहास से है उन्हीं का वर्णन करना उचित है।

काष्टवार = किश्तवार : काश्मीर के दक्षिण पूर्व काष्टवाट उपत्यका है। यह वर्तमान किश्तवार है। चिनाव अर्थात् चन्द्रभागा नदी के ऊर्ध्वभाग में है। किश्तवार आज कल काश्मीर का प्रशासकीय जिला है। इस समय से सड़क उद्यमपुर चनेमी होती; कुड आती है। वहाँ से किश्तकार होते सोन्दर ओपराट, हैजल तथा पोछी जाती है। किश्तवार से एक सड़क सहपुर जाती है।

कल्हण ने दो काष्टवाटों का उल्लेख किया है। एक का वर्णन तरंग ६ : २०२ किया गया है। पर किश्तवार अंचल नहीं है। कल्हण ने काष्टवाट धराधिप का उल्लेख (रा० ७ : ५९०) किया है। केसर किश्तवार में भी पामपुर के समान होती है। जहाँगीर मुगल बादशाद ने किश्तवार की केसर को काश्मीर की अपेक्षा अच्छा माना है।

काष्टवाट का पुनः उल्लेख कल्हण ने (रा० : ८ : ३९०, ४६८) किया है। राजा कलश के समय काष्टवाट एक पर्वतीय राज्य था। यहाँ के राजा हिन्दू थे। औरंगजेब के पिता शाहजहाँ के समय सैयद फरीदुद्दीन बगदादी का किश्तवार में आगमन हुआ। उसके कारण औरंगजेब के समय में वे मुस्लिम धर्म में दीक्षित हो गये थे। तथा राजा अपनी सत्ता काश्मीर से अलग बनाये रखा क्योंकि पंजाब एवं दिल्ली में मुस्लिम राज्य था। काश्मीर में वहाँ सैयद फरीदुद्दीन बगदादी तथा उसके पुत्र इशारुद्दीन की जियारतें हैं। मैं वहाँ दो बार आ चुका हूँ। डोगरा राजा गुलाब सिंह ने उसे काश्मीर राज्य में सम्मिलित किया था।

जोनराज ने काष्ठवाट का उल्लेख किया है 'उसका पुत्र राजदेव भय से काष्टवाट गया था। द्वारेश वामपार्श्व के विरोधियों के द्वारा पुनः लाया गया।' (जोन : ७६) इसमें प्रकट होता है कि राजा राज-

देव (सन् १२१३—१२३६ ई०) के समय स्वतन्त्र राज्य था। प्रथम सुलतान शाहमीर के समय उल्लेख मिलता है—'उस राजा' (शाहमीर) ने राजस्थानीय को जो काष्ट वाट गये थे वहाँ से भी भगाकर श्लाघनीय यश प्राप्त किया। (जोन : ३१३)

श्रीवर ने जैनुलआबदीन के समय काष्टवाट का उल्लेख किया है। उस समय काष्टवाट स्वतन्त्र राज्य ही था—'वह कष्ट से अवट (गर्त) पथ से काष्टवाट पहुँचा। हिमानी से उसका चरण क्षत हो गया था। और वह हिमानी मध्य पहुँचा।' (जैन : १ : १ : ४६) इससे प्रकट होता है, मरबल पास द्वारा यात्रा की गयी थी। जोनराज पुनः काष्टवाट का उल्लेख करता है—'काष्टवाट देश से आगत दौलत सिंह आदि शिष्ट मल्हण, हंस, एवं शाहिभंग नृपति के पुत्र....।' (जैन : ४ : २११)

इतिहासकारों ने भी किश्तवार का उल्लेख किया है। तवक्काते अकबरी में उसे 'करसवार' (पृष्ठ ४५४) लिखा गया है। फिरिश्ता नाम किश्तवार ही देता है।

भद्रावकाश = भद्रवा—यह वर्तमान भद्रवा स्थान है। किश्तवार के दक्षिण तथा चम्बा (हिमांचल प्रदेश) की सीमा पर है। सड़क कुडबल राह होती भद्रवा आती है। यहाँ मैं आ चुका हूँ। प्रथम खण्ड में इसका वर्णन किया है। कल्हण लिखता है—'जब वह चन्दावकाश में ठहरा था, उसका प्रासन नामक आत्मज घूस देकर, डामरों को मिला कर, षड़यन्त्र करने लगा। (रा० : ८ : ५०१) इसके राजा चम्बा राज के करद थे।

चम्पा = चम्बा—चम्पा का उल्लेख काश्मीर इतिहास प्रसंग में बहुत किया गया है। वीतनाम का पुराना नाम चम्पा था। चम्पा अनेक स्थानों तथा नगरों का नाम भारत में है। चम्पा एक नदी भी है। यह अंग एवं मगध की सीमा बनाती थी। भागलपुर के एक उपनगर का नाम चम्पा है। पूर्व काल में चम्पा एक राष्ट्र भी था। वहाँ की राजधानी गग्गरा थी (सुमंगल विलासिनी १ : २७) भगवान् बुद्ध ने चम्पा में गग्गर पुष्करिणी तट पर विहार किया था। (दीघ निकाय : १ : १११) बौद्ध साहित्य में चम्पा को महानगर माना गया है। अंग की राजधानी थी। यह इस समय लखीसराय मुँगेर जिला विहार में है। चम्पारण्य वर्तमान चम्पारन है। हिमांचल के चम्पा किंवा चम्बा को अन्य चम्पा से मिलाना ठीक नहीं है। कल्हण चम्पा का उल्लेख करता है—'राजा अनन्त (सन् १०२८-१०६३ ई०) अनेक राजाओं के विजेता ने चम्पा में राजा साल को हटाकर वहाँ एक नये व्यक्ति को राजा बनाया।' (रा० : ७ : २१८) चम्पा राज्य में रावी की सभी स्रोतस्विनियों का उद्‌गम तथा चिनाव नदी की ऊर्ध्व उपत्यका लाहुल एवं किश्तवार के मध्य का भाग पूर्व चम्बा में सम्मिलित था। हुएन्त्सांग ने चम्पा का वर्णन नहीं किया है। चम्पा की प्राचीन राजधानी वर्मपुर अथवा वरसावर थी। यह बुधिल नदी तट पर आबाद है। यहाँ अनेक भव्य एवं सुन्दर मन्दिर हैं। पीतल का एक वृषभ पूरे आकार का बना है। उससे प्रकट होता है चम्पा समृद्धिशाली राज्य था। सब निर्माण एक मत से नवीं तथा दशवीं शताब्दी के हैं। महाराज अनन्त ने चम्पा पर आक्रमण किया था—साल के पुत्र ने एक नवीन राजधानी चम्पापुर की स्थापना की थी। चम्पापुर नाम चम्पावती देवी पर रखा गया था। चम्बा के राजवंश से काश्मीर के राजवंश ने विवाह सम्बन्ध किया था। मुस्लिम आक्रमण के समय चम्बा एक स्वतन्त्र राष्ट्र बना रहा। यहाँ के राजा राजपूत थे और काश्मीर के लोहर वंश के साथ उनका वैवाहिक सम्बन्ध होता था।

वल्लापुर = वल्लावर—भद्रावकाश तथा चम्बा के पश्चिम वल्लापुर था। उसका वर्तमान नाम

वल्लावर है। कल्हण वल्लापुर का वर्णन करता है—'अनन्त ने जब तुक्क के पुत्र कलश से उसके सैनिक खिन्न हो गये थे। हलधर ने उसे वल्लापुर से युक्तिपूर्वक मुक्त किया।' (रा० : ७ : २२०)

बल्लापुर जम्मू के पूर्व पहाड़ियों पर आबाद है। जम्मू द्वारा वल्लापुर विजय पूर्व, वहाँ के राजा ने अपनी राजधानी रानी तट वसौली में स्थापित किया था। प्राचीन वल्लापुर का ध्वन्सावशेष मिलता है। वल्लापुर के राजा कलश का उल्लेख कल्हण ने पुनः किया है—'राजा अनन्त के सम्मुख चम्पा के राजा, कलश तुक्क का पुत्र राजा वल्लापुर उपस्थित हुआ।' (रा० : ७ : ५८८) कल्हण ने वल्लापुर का उल्लेख सुस्सल के शासन काल में किया है—'चाम्पेय, जासठ, बब्बापुर के राजा वज्रधर, वर्तुल देश का राजा सहजपाल, त्रिगर्त तथा वल्लापुर नरेन्द्रों के दोनों युवराज वल्ह तथा आनन्दराज यह पाँच राजे संघबद्ध होकर काश्मीर पर आक्रमण करने की योजना बनाये।' (रा० : ८ : ५३८–५४१) 'पद्मक वल्लापुरेश ने युवराज और जसट की प्रेरणा पर एक कन्या का विवाह भिक्षाचर से कर दिया। (रा० : ८ : ५४७)

'उस राजा को जब विश्वास हो गया कि राजा की शत्रुता किसी प्रकार मिटायी नहीं जा सकती, तो उसने सुस्सल के शत्रु भिक्षाचर को वल्लापुर से बुलाया।' (रा० : ८ : ६२२) राजा सुस्सल की पत्नी जज्जिला भी वल्लापुर की थी। (रा० : ८ : १४४४) वह पति सुस्सल के साथ सती हो गयी थी। राजा जयसिंह के समय पुनः बल्लापुर का उल्लेख मिलता है—'राजा जयसिंह ने राजा विक्रमराज को वल्लापुर से हटाकर उसके स्थान पर राजा गुल्हन को बैठाया।' (रा : ८ : २४५२) वल्लापुर के राजा कलश का नाम मिलता है। इससे कल्हण के वर्णन का समर्थन मिलता है। अल्बेरूनी वल्लापुर का उल्लेख कन्नौज काश्मीर मार्ग पर पड़ने वाले स्थानों में करता है। (१ : इण्डिया : १ : २०५)

वल्लापुर के निवासी डोंगर हैं। देश को डुगर कहते हैं। द्विगर्त शब्द का डोगरा शब्द अपभ्रंश है। एक मत है कि मूल शब्द दुर्गर है। सिख राज्य के समय पंजाब के कोहिस्तान में ११ छोटे-छोटे राज्य थे। जम्मू भी उनमें एक था। विकसित जम्मू में सब मिल गये। इस क्षेत्र में ठाकुरों का उल्लेख इतिहास में मिलता है। (रा : ८ : १९८९)।

विषलाटा = विचलारी—बनिहाल पर्वतीय दर्रा के पादमूल में विषलाटा नामक क्षेत्र था। कल्हण इसका उल्लेख करता है 'भिक्षाचर राज्य प्राप्त हेतु सुज्जि के आगमन की प्रतीक्षा करता टिक्क के जामाता एवं खशों के प्रभु भागिक के यहाँ निर्भय निवास करने लगा। वह बाणशाल (बनिहाल) दुर्ग में जो कुछ कम ऊँचा था निवास करता डामरों को विद्रोह के लिये उभाड़ दिया। (रा० : ८ : १६६५, १६६६) चनाव नदी की सहायक नदी विचलारी सरिता है। उसकी उपत्यका को विषलाटा कहा जाता है। दिवसर तथा शाहाबाद परगनों के दक्षिणी भाग को इस समय बनिहाल कहते हैं। विचलारी नाम विषलाटा का अपभ्रंश है। कल्हण इसका उल्लेख भिक्षाचर के प्रसंग में करता है—'तदनन्तर, विजय ने हर्ष के पौत्र भिक्षाचर को विषलाटा के मार्ग से बुला लिया।' (रा० : ८ : ६८४) विषलाटा के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि वहाँ खशों की आबादी थी (राजा के मन्त्री जनक, श्रीवक तथा राजपुत्र पर्वत लांघकर विषलाटा खशों की शरण में पहुँचे।' (रा० : ८ : १०७४) विषलाटा स्थान का और निश्चय कल्हण के वर्णन से हो जाता है—'सुदूरदर्शी राजा जयसिंह ने देगपाल के गृह विषलाटा मार्ग की ओर से आक्रमण की सम्भावना पर विचार किया।' (रा० : ८ : १७२०) देगपाल के निवास स्थान का वर्णन कल्हण करता है—'चन्द्रभागा तट निवासी दैगपाल ने अपनी कन्या बापिका का विवाह भिक्षाचर के साथ कर दिया और उसे अपने

घर लाया। (रा० : ८ : ५५४) तत्पश्चात् जय्यक लवन्य विषलाटा जनक और श्रीवक आदि सेनानायकों बुलाकर पुस्सल के पास गया। (रा० : ८ : ११३१) कल्हण पुनः उल्लेख करता है—'राजा जयसिंह से डामरों का मतभेद हो गया है और उन फूटकर निकले डामरों के साथ भिक्षाचर शीत काल में विषलाटा पहुँचा' (रा० : ८ : १६६२) श्रीवर ने इसका उल्लेख जैन: १ : ७ : २०४ में किया है।

दक्षिण-पश्चिम सीमान्तवर्ती राज्यों ने काश्मीर इतिहास को बहुत प्रभाविता किया है। उनका उल्लेख सर्वाधिक कल्हण ने किया है। दर्वाभिसार का कल्हण ने उल्लेख सर्व प्रथम रा० : १ : १८०७ में किया है। रावी तथा वितस्ता नदियों के अधोभागीय मध्यवर्ती पर्वतीय क्षेत्र की संज्ञा दर्वाभिसार से दी गयी है। राजौरी किंवा राजपुरी का क्षेत्र दर्वाभिसार के अन्तर्गत था। भीमवर पूर्व काल में इसीके अन्तर्गत छोटा राज्य था। दर्वाभिसार उत्पलापीड के समय काश्मीर राज्य के अन्तर्गत था। (रा : ४ : ७१२) तत्पश्चात् वह काश्मीर राज्य से बाहर निकल गया था। शंकर वर्मा ने उसे पुनः उस समय विजय किया था जब वह भीमवर होता पंजाब से गुजरात को जीतने गया था। (रा० : ५ : २०८) यहाँ के निवासियों के चरित्र का वर्णन कल्हण ने किया है। (रा० : ८ : १५३१) उनमें मैत्रीभाव का अभाव पाया जाता था। दर्व एक जाति है। वल्लावर तथा जम्मू में आबाद थी। दर्व जाति के साथ ही अभिसार जाति भी आबाद थी। दोनों जातियों के नाम पर देश का नाम दर्वाभिसार पड़ गया था। पूछ और मैशेरा अंचल दर्वाभिसार में सम्मिलित थे। वह काश्मीर की पश्चिम–दक्षिण सीमा पर पड़ता है। राजा जयसिंह की रानी रत्नदेवी ने दर्वाभिसार में अपने नाम से रत्नपुर बसाया था। (रा० : ८ : २४४०)।

महाभारत (सभा : ४८ : १२, १३–५१ : १३ : ९ : ५४) तथा बृहद् संहिता में दर्वाभिसार संयुक्त नाम का उल्लेख किया गया है। अल्बेरूनी ने भी दर्वाभिसार का उल्लेख किया है। (इण्डिया न० : ३०३,.) सिकन्दर के आक्रमण के सन्दर्भ में दर्वाभिसार का उल्लेख किया गया है। वहाँ का राजा सिकन्दर की सहायता करने के लिये आया था।

राजौरी अर्थात् राजपुरी ने काश्मीर के इतिहास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। भारत-काश्मीर मार्ग पर राजौरी पड़ता है। इसी नगर से पुराना मुगल मार्ग भी जाता था। पूछ भी वहाँ से जाते हैं।

कल्हण ने सर्वप्रथम इसका उल्लेख (रा० : ६ : २८६) राजा अभिमन्यु (सन् ९५८–९७२ ई०) के समय किया है—"राजपुरी आदि का विजेता उसकी प्राचीन एवं अद्भुत महिमा वृद्ध बन्धश्री द्वारा अवरुद्ध सदृश हो गयी थी।" राजौरी पीर पन्तसल पर्वत के मध्यवर्ती भाग में है। काश्मीर के दक्षिण है। तेरही तथा उसकी शाखा नदियों द्वारा सिंचित क्षेत्र का सम्बोधन राजपुरी किंवा राजौरी से किया जाता है। काश्मीरी में राजवीर कहते हैं। महाभारत द्रोण पर्व में राजपुरी का उल्लेख है। यहाँ कर्ण ने कम्बोजों पर विजय प्राप्त की थी।

हिन्दूसाही वंश के राजा अफगानिस्तान से उद्वासित एवं उत्पाटित होने पर यहाँ आबाद हुए थे। पर्वत सूखा है। अफगानिस्तान तुल्य आबहवा होने के कारण साही वंशज यहाँ बसने के लिये आकर्षित हुए थे। काबुल नदी गहरी नहीं है। राजौरी की तेरही नदी भी गहरी नहीं है। स्थान दुर्गम भी है। सैनिक अभियान के लिये सरल नहीं है।

राजौरी त्रिकोणीय भूखण्ड पर बसा है। इस समय नवीन पुल बन गया है। पुरानी मुगल सड़क तथा राजौरी से पूछ जाने वाली सड़क को जोड़ता है। डाक बंगला के समीप डोगरा राजाओं द्वारा निर्मित

झूला पुल है। मुगल मार्ग तथा राजौरी नगर से सम्बन्ध जोड़ता है। शिलानी पुल के पूर्व एक मात्र साधन मुगल मार्ग तथा राजौरी के दोनों तटों को जोड़ने का था। शिलानी पुल से एक फलाँग ऊपर नियार नदी सिक्तो नाला से मिलती है। सक्तो के तट से होता मार्ग पूछ जाता है।

राजपुरी सुन्दर स्थान है। धान की खेती खूब होती है। मैं सितम्बर मास में यहाँ आया था। उपत्यका शाली से सुनहली लगती थी। शाली और मक्का की खेती अधिक होती है। दाल में मूँग की पैदावार अच्छी होती है। अस्पताल, डाक बंगला, स्कूल तथा पुलिस थाना यहाँ है।

नदी के तट पर कहीं-कहीं घाट बने हैं। घाट पर पाँच पुराने मन्दिर तथा चार मस्जिदें हैं। नदी में एक बड़ा मन्दिर टापू पर बना है। बड़े मन्दिर के समीप एक और छोटा मन्दिर है। सुरक्षा दृष्टि से स्थान उत्तम है। राजौरी का एक भाग हिन्दुस्तान तथा दूसरा पाकिस्तान में है। जहाँगीर की अपनी आत्मकथा में राजौरी का वर्णन है।

हुएन्त्सांग इसी मार्ग से काश्मीर गया था। उसके समय राजौरी काश्मीर राज्य का अंग था। दशवीं शताब्दी के पश्चात् राजौरी के राजा स्वतन्त्र हो गये थे। काश्मीर राजाओं का सैनिक अभियान उस पर अधिकार करने के लिये सर्वदा होता रहा है। नोही की ऊपरी प्रुत्त उपत्यका जो पीर पन्तसल दर्रा तक जाती है, राजपुरी क्षेत्र में सम्मिलित थी। राजौरी की राजनीतिक भौगोलिक सीमा सर्वदा बदलती रही। अतएव निश्चयपूर्वक किसी एक काल की सीमा को ठीक मान लेना उचित नहीं है। कल्हण पुष्पानाद का उल्लेख करता है : 'भिक्षु (भिक्षाचर) ने काश्मीर त्याग पृथ्वीहर के साथ कर दिया। तथा शेष लोग पुष्पानाद गाँव की तरफ बढ़े। वह सोमपाल के राज्य में था। पुष्पानाद वर्तमान पुशियान है। वह पीर पन्तसल पास पर पंजाब अर्थात् पश्चिम दिशा में अन्तिम आबाद गाँव है। पुशियान ८३०० फिट ऊँचाई पर है। शीत ऋतु में घोर तुषार पात के कारण आबादी स्थान त्याग देती है। नाद शब्द नाले या नोर के लिये प्रयोग किया जाता है।

पुष्पानाद सोमपाल के राज्य में था। इसका अर्थ यह है कि वह राजौरी के राजा के अन्तर्गत था। अल्बेरूनी ने इसका उल्लेख राजगिरी नाम से किया है। (इण्डिया १ : २०८) अल्बेरूनी के अनुसार यहाँ एक दुर्ग था। इस समय राजौरी में कोई किला या दुर्ग नहीं है। मैंने किला की बात यहाँ के लोगों से उठाई। मुझे एक टूटी चहारदिवारी से कुछ घिरा स्थान दिखाया गया। परन्तु वहाँ आबादी हो गयी है। पूर्व किला का कोई आकार नहीं मिलता। राजौरी का राजनीतिक महत्त्व समाप्त होने पर किला स्वत: खड़हर हो गया होगा।

प्राचीन ध्वन्सावशेष बहुत मिलते हैं। यहाँ के राजा खश थे। कालान्तर में राजवंश मुस्लिम प्रभाव के कारण मुसलमान हो गया था। मुस्लिम राजपूत कहे जाते थे।

राजपुरी के उत्तर-पश्चिम लोहर क्षेत्र है। लोहर ही लोहरकोट है। लोहरकोट के लिये द्रष्टव्य है परिशिष्ट 'लोहरकोट' जोन राजतरंगिणी।

प्रारम्भ में लाहौर को भ्रम से कुछ विद्वानों ने लोहर मान लिया था। श्री स्तीन ने इस भ्रम को दूर किया है। लोहर, लोहरिन उपत्यका प्रुत्त अर्थात् प्राचीन पर्णोत्स में है। जनधन सम्पन्न समृद्धिशाली उपत्यका है। पीर पंजाल पर्वत के दक्षिणी ढाल किंवा निम्न भूमि के ततकुटी शिखर तथा तोश मैदान के अंचल का जल बहाकर लोहरिन नदी लाती है। लोहरिन नदी पर्वतीय स्रोतस्विनियों से बनती है। इस क्षेत्र की

सबसे उपजाऊ भूमि मण्डी से ८ मील ऊर्ध्वभाग में है।

लोहर राजवंश काश्मीर सिंहासन पर बैठा था। काबुल के बाह्मन शाहीवंशीय मुसलमानों से उत्पादित होकर लोहरकोट में आश्रय लिये थे। उन्हें पराजित करने के लिये महमूद गजनी ने दो बार लोहरकोट पर असफल आक्रमण किया था। कालान्तर में लोहर और काश्मीर वंश मिलकर एक हो गया था। लोहर के सामन्तगण खश वंशज थे।

पर्णोत्स = पूछ—कल्हण लिखता है—'उस राजा (ललितादित्य) ने जहाँ फल ग्रहण किया था वहाँ फलपुर, और जहाँ पर्ण लिया था वहाँ पर्णोत्स तथा जहाँ क्रीडा किया था वहाँ क्रीड़ाराम विहार निर्मित कराया।' (रा० : ४ : १८४) पर्णोत्स, पूछ, प्रुन्तस सब एक पर्यायवाची नाम हैं।

हुएन्त्सांग के समय पर्णोत्स के राजा काश्मीर के करद राजा थे। वितस्ता वैली के खखवा लोग प्रुत्तस के मुस्लिम राजाओं से सम्बन्धित थे। डोगरा राजा गुलाब सिंह के पूर्व कुछ आज़ाद थे। पर्णोत्स पंजाब जाने वाले बड़े मार्ग पर पड़ता है। अतएव राजतरंगिणी में उसका विशेष उल्लेख मिलता है। प्रुन्तस की आबादी में काफी संख्या काश्मीरियों की है। प्रुन्तस के दक्षिण पश्चिम पर्वती राज्य उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में था। उसे कोटली का राजा कहा जाता था। इसी क्षेत्र में कालिंजर का राज्य था। कल्हण लिखता है—'ज्येष्ठ भ्राता राजपुरी की ओर बढ़ा तथा कनिष्ठ कालिंजर के शासक कल्हण के राजदरबार में पहुँचा।' (रा० : ७ : १२५६)

मैंने पूछ की यात्रा दो बार की है। राजौरी से पूछ तक नवीन सड़क सैनिक दृष्टि से बनायी गयी है। पूछ नगर भी पूर्व की अपेक्षा तृतीयांश रह गया है। बहुत मुसलमान पाकिस्तान चले गये हैं। भारत पाकिस्तान विभाजन के पूर्व पूछ उरी होकर जाते थे। इस समय श्रीनगर से पूछ पहुँचने में दो दिन लग जाता है। यहाँ का हवाई अड्डा ७ दिनों के अन्दर बनाया गया था। पूछ पहले लघु राज्य काश्मीर के अन्तर्गत था। परन्तु सन् १९२९ ई० में काश्मीर राज्य में इसका विलय हो गया। अन्तिम राजा शिवरत सिंह कुल सम्पत्ति बेचकर, देहरादून रहने लगे।

नगर के मध्य में पहाड़ी पर एक किला बना है। किले में राजकीय कार्यालय है।

पर्णोत्स अर्थात् पूछ से उत्तर-पश्चिम चलने पर वितस्ता उपत्यका में पहुँचते हैं। यहाँ काश्मीर का सीमान्त जिला बोलपाश्क था। उसे इस समय बुनिसा कहते हैं। इसके पश्चात् खशों की आबादी है। मुस्लिम काल में उपत्यका अनेक खखवा तथा बोम्बा जातीय सरदारों में बँटी थी। वे मुजफ्फराबाद के खखवा राजा को सरदार मानते थे। मुजफ्फराबाद तथा बुलियास का मध्यवर्ती क्षेत्र पूर्व काल में द्वारावती कहा जाता था। इस समय इसे द्वारवीडी कहते हैं।

उरशा का उल्लेख कल्हण शंकर वर्मा (सन् ८८३–९०२ ई०) के दिग्विजय प्रसंग में करता है—उसके उरशा में प्रवेश करते समय आवास हेतु उरशा निवासियों के साथ सैनिकों का अकस्मात् कलह हो गया। (रा० : ५ : २१७) पाणिनि ने उरशागण का उल्लेख किया है। (रा० : ४ : २ : ८२) सिन्ध एवं वितस्ता नदी के अधोभागीय मध्यवर्ती क्षेत्र उरशा है। प्लोतेमी ने उरशा क्षेत्र को वितस्ता-सिन्ध नदी का मध्यवर्ती अंचल माना है। चीनी पर्यटकों ने उसे उतसी लिखा है। यह पाकिस्तान का हजारा जिला है। अबुलफजल वर्णित परवली अंचल उरशा है। उसकी दक्षिणी सीमा अटक थी। इस समय उरशा क्षेत्र के प्रसिद्ध नगर मनसेरा, नौशेरा और किशनगढ़ या हरीपुर हैं। प्राचीन नगर अत्युग्रपुर है वर्तमान अग्रोर है। हजारा

जिला की सीमा पर है। कनिंघम का मत है कि उरसा मुजफ्फराबाद का जिला का रश स्थान है।

हुएन्त्सांग के अनुसार उरशा की परिधि दो सहस्र ली अर्थात् तीन सौ तैंतीस मील थी। कुन्हर नदी के मूल स्रोत से गण्डगढ़ पहाड़ी तक लम्बाई एक सौ मील के लगभग तथा चौड़ाई सिन्ध से झेलम तक पचपन मील थी। काश्मीर से उरशा की दूरी हुएन्त्सांग ने एक सहस्र ली पर लिखा है। मीलों में लगभग वह दूरी एक सौ सड़सठ मील होगी। वह दूरी राजधानी के नौशेहरा के समीप तक ले जाता है।

राजा कलश के समय उरशा पर काश्मीरी सेना का अधिकार हो गया था। सेना कृष्णगंगा पार कर पहुँची थी। (रा० : ७ : ५८५) काश्मीर से सीधा मार्ग जिला हजारा के लिये मुजफ्फराबाद होकर जाता था। उरशा का राजा अभययुंग का पुत्र था। (रा० : ७ ५८९) अभय की कन्या का विवाह राजा हर्ष के पुत्र भोज के साथ हुआ था। उरशा का राजा काश्मीरराज सुस्सल को कर देता था। कल्हण के समय उरशा के राजा पर काश्मीरराज जयसिंह ने विजय प्राप्त किया था। (रा० : ८ : ३४०२)

सिकन्दर के आक्रमण के समय उरशा का राजा अरस्कस था। अबुलफजल ने काश्मीर एवं सिन्ध के समस्त मध्यवर्ती भाग को परवली लिखा है। इस प्रकार उरशा भी परवली क्षेत्र में सम्मिलित था।

कर्णाह का वर्तमान नाम करनाव या करनौ है। कल्हण लिखता है—'सर्वत्र कर्णाह तथा अन्य स्थानों पर जहाँ पर वह जाने के पश्चात् देखा गया, कुछ लोग विद्रोही तथा कुछ लोग स्वामिभक्त रहने का विचार करने लगे। (रा० : ८ : २४८५) कल्हण पुनः लिखता है—'लोठन आदि कर्णाह के दुर्ग से कठिनता पूर्वक निकलने पर अलंकार चक्र के पास पहुँचे, तो यह समझा गया कि देश जीत लिया गया। (रा० : ८ : २५२५) कर्णाढ तथा कर्णाह दोनों पाठ राजतरंगिणी में मिलता है। दोनों एक ही स्थान के नाम हैं। शारदा लिपि में 'ह' तथा 'ढ' में अन्तर साधारणतया नहीं मालूम पड़ता।

कर्णाह मुजफ्फराबाद जिला तथा कृष्णागंगा उपत्यका का उत्तरीय भूभाग है। यह पर्वतीय क्षेत्र कमराज या कामराज के पश्चिम है। इसमें करनाव नदी की उपत्यकायें भी सम्मिलित हैं। करनाव नदी दक्षिण से आकर कृष्णगंगा में मिलती है।

हिन्दू काल में इस क्षेत्र में छोटे छोटे हिन्दू राजा थे। नाम के लिये काश्मीर राज्यान्तर्गत थे। इस क्षेत्र में खसों की आबादी है। इस समय भी बोम्बा जाति क्षेत्र के खसों का प्रतिनिधित्व करती है, जिसके अधिकार में करनाव था। उनके राजा सिख आक्रमण के पूर्व स्वतंत्र थे। वे उत्तर पश्चिम काश्मीर की सीमा को त्रस्त करते रहते थे। खखवा सरदार वितस्ता उपत्यका तथा करनाव के बोम्बा सरदारों का अन्तिम उत्पात सन् १८४६ ई० में हुआ था।

करनाव तथा कृष्ण गंगा के संगम से शारदी तक भू-भाग अलग द्राव माना जाता था। सम्भवतः यह कल्हण वर्णित दुराण्ड है। (रा० : ८ : २७०९) शारदी से चिलास के लिये मार्ग जाता है। किन्तु इसके उत्तर के भू-खण्ड का बहुत कम वर्णन काश्मीर के इतिहास में मिलता है।

दरद देश शारदी के पश्चात् पड़ता है। वहाँ के निवासी आर्य जातीय हैं। प्राचीन यूनानियों को दरद जाति का ज्ञान था। सिन्ध नदी के पश्चिम चित्राल यासीन से गिलगिट, चिलास, बुंजी तथा कृष्ण गंगा की उपत्यका में निवास करते हैं। काश्मीर मण्डल के उत्तर दरद देश पड़ता है। (रा० : ३ : ३१२; ७ : ९११, ११७१; ८ : २७०९) हिन्दूकाल निवासी हिन्दू थे वहाँ के राजाओं ने कई वार काश्मीर पर आक्रमण करने का प्रयास किया था।

दरद देश का नगर दरदपुरी था। (द्रष्टव्य : परिशिष्ट 'घ' 'दरद' प्रथम खण्ड)

कल्हण ने उत्तर-पूर्व की सीमा पर भौट्ट देश का वर्णन किया है। कल्हण भौट्ट देश के भूगोल तथा उसके इतिहास के विषय में कोई प्रकाश नहीं डालता। वह लोह का उल्लेख करता है—'देश के एक भाग से जिसका नाम 'लोह' था उसके पितृ गुरु जिन्हें उनकी भाषा में स्तोन्या कहते थे, आर्य और स्तूप लो स्तोन्या बनवाया।' (रा० : ३ : १०) कतिपय विद्वानों का मत है कि कल्हण वर्णित लोह वास्तव में लद्दाख की राजधानी लेह नगर है।

जोनराज तथा श्रीवर ने भौट्ट देश का बहुत उल्लेख किया है। प्रथम विदेशी राजा रिंचन के काश्मीर में राज्य प्राप्त करने के पश्चात् उत्तरी पश्चिमी काश्मीरी सीमान्त प्रदेश की जनता के मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लेने के पश्चात् तथा काश्मीर में मुस्लिम शासन स्थापित होने के पश्चात् दरदिस्तान तथा भौट्ट देश की ओर से काश्मीर पर आक्रमण होने लगा। छोटा तिब्बत (लुखबुटून) तथा बड़े तिब्बत (बड़-बुटून) दोनों की गणना भौट्ट देश में होती थी। चीनी भाषा में उन्हें पेगलिपू कहते हैं। चीनी इतिहास में छोटा तिब्बत तथा बड़ा तिब्बत और भौट्ट देश का उल्लेख मिलता है। जोनराज की राजतरंगिणी से प्रतीत होता है कि चौदहवीं शताब्दी से भौट्ट लोग काश्मीर का राजनीति को प्रभावित करने लगे थे। (जोन० : १४६, १५८, १६८, २१०, २३४, २४०, २८०, ३८७, ५४९, ८३३, ८३६) श्रीवर भुट्ट, भुट्टदेश तथा भुट्टमार्ग तीनों का वर्णन करता है। भुट्टदेश काश्मीर सीमान्त पर सर्वदा माना जाता रहा है (जैन : ३ : ३२ १ : १ : ५१,) मुस्लिम सुलतानों के समय में भी काश्मीर से अलग भौट्ट देश था। सुलतान भौट्ट देश विजय करने के लिये जाया करते थे। (१ : १ ८२, ४४२) शुक ने भी भुट्ट का वर्णन किया है (शुक: १ : २८)

पूर्व में जोजिला पास से किश्तवार तक पर्वत है, इस पर्वत माला के पूर्व संकीर्ण उपत्यका मास वर्धन है। वहाँ का जल एक बड़ी नदी ग्रहण करती है। चनाव किंवा चन्द्रभागा में किश्तवार के समीप वह मिलती है। पर्वत की ऊँचाई, उपत्यका की भी ऊँचाई तथा प्रकृति की कठोरता के कारण आबादी बहुत ही कम है। निवासी काश्मीरी है। काश्मीरी ग्रन्थों तथा राजतरंगिणी में अन्य उपत्यका का वर्णन हिन्दूकाल में नहीं मिलता। अबुल फजल ने इसे काश्मीर का एक परगना माना है। (आइने अकबरी २ : ३६९) इसके पूर्व में ऊँची पर्वत मालाएँ तथा हिमानियों का क्रम मासवर्धन अर्थात् मडिवाडवन को तिब्बती क्षेत्र सूरू तथा जंसकर से अलग करता है।

'ङ'

एम. ए. ट्रोयर

(सन् १७६९—१८६५ ई०)

प्रथम राजतरंगिणी के पश्चिमी अनुवादक एवं भाष्यकार एम. ए. ट्रोयर के विषय में बहुत कम ज्ञात है। इस महापुरुष के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। उसने सन् १८४० ई० में ही राजतरंगिणी के प्रथम छः तरंगों का अनुवाद टिप्पण एवं भाष्य फ्रान्सीसी भाषा में लिखकर, पेरिस से मुद्रण कराया था। उसमें कल्हण कृत राजतरंगिणी प्रथम से छः तरंग तक नागरी लिपि में मुद्रित है। ट्रोयर का मत था कि सप्तम

तथा अष्टम तरंग कल्हण की रचना नहीं है। परन्तु यह प्रमाणित हो चुका है कि आठों तरंगों का लेखक कल्हण ही था।

हमारे ज्ञान का स्रोत ट्रोयर के सम्बन्ध में श्रीस्तीन है। ट्रोयर एवं स्तीन प्रथम महायुद्ध के पूर्व आस्ट्रिया हंगरी के नागरिक थे। उन्होंने सन् १९४० ई० में जनरल राँयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल में ट्रोयर के जीवन पर एक लेख लिखा है। (भाग : ६२ पृष्ठ ४५) स्तीन का उसके जीवन वृत्त लिखने की ओर आकर्षित होना आवश्यक था। प्रस्तुत लेख श्री स्तीन के लेख पर ही आधारित है।

ट्रोयर का जन्म आस्ट्रिया के टाइरोल स्थान में लगभग १७६० ई० में हुआ था। उसने आस्ट्रिया में सैनिक एकाडेमी में शिक्षा प्राप्त की थी। फ्रांस की राज्यक्रान्ति में युवक तोपखाने के अधिकारी के रूप में उसे पाते हैं। फ्रेण्डर्स के युद्ध से वह तोपखाने के पदाधिकारी रूप से संस्था से निकला था। वह सन् १७९२ ई० में फ्लेण्डर्स के युद्ध में भाग लिया। इस समय एक परित्यक्त चर्च में उसका शिविर था। एक दिन उसने देखा कि उसके सिपाही तोप के लिये एक पुरानी पुस्तक से कागज फाड़ रहे थे। वह एक सुन्दर बहुभाषीय बाइबिल का अरबी लिपि में एक पृष्ठ था। उसने उनसे बाइबिल की शेष पुस्तक ले ली। वह अरबी के उस न्यू टेस्टामेण्ट के द्वारा अरबी का अध्ययन आरम्भ किया। यही उसका प्राच्य जगत् से प्रथम सम्पर्क हुआ था।

ट्रोयर का स्थानान्तरण आस्ट्रिया की सेना जो इटली में लड़ रही थी वहाँ के लिये हो गया। इंगलिश नौ सेना का वह सम्पर्क अधिकारी नियुक्त हुआ। जिनेवा के घेरे के समय सन् १८०० ई० में वह आस्ट्रिया का कमिश्नर ब्रिटिश हेड क्वार्टर में नियुक्त हुआ। इसी समय लार्ड विलियम वेण्टिक से उसका सम्पर्क स्थापित हुआ। वह ब्रिटिश फौज में उस समय कर्नल थे। कालान्तर में वह भारत के अष्टम गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। विलियम वेंटिक मद्रास के गवर्नर हुए तो सन् १८०३ ई० में ट्रोयर को वह भारत लाये। यहाँ वह सैनिक सेवा में ही लिया जा सकता था। परन्तु ट्रोयर ब्रिटिश सैनिक नहीं था। ब्रिटिश सेना का कमीशण्ड आफिसर नहीं हो सकता था। उसे भारत में रखने के लिये सीलोन राइफल रेजिमेण्ट में उसकी नियुक्ति की गयी। इस प्रकार विलियम वेण्टिक के निजी सचिवालय में स्थान पा गया। मद्रास में वह गणित का व्याख्याता हो गया। तत्पश्चात् मुहम्मडन कालेज का प्रिन्सपल बना।

श्री स्तीन ने आस्ट्रिया सेना विभाग से ट्रोयर के विषय में जानकारी प्राप्त की। उन्हें साधिकार बताया गया कि कैप्टन एन्थोनी ट्रोयर आस्ट्रिया समाट् की सेना में अधिकारी थे। ट्रोयर ने सन् १७९४ ई० के युद्ध का क्रमबद्ध इतिहास लिखा। इतिहास में युद्ध विषयक घटनाओं का आदर्श था। वह इतना प्रसिद्ध हुआ कि विश्व के युद्धों के वर्णन के लिये वह मोडेल मान लिया गया। सेना विभाग में स्तीन को वह देखने को मिला था। इतिहास इतना सुन्दर और पूर्ण लिखा गया था कि सन् १८१६ ई० में उसी के आधार पर इतिहास लिखा गया।

स्तीन को ट्रोयर के वंश एवं चरित्र का ज्ञान आस्ट्रिया के कागज पत्रों से मिल गया। उसके जीवन की गतिविधि मालूम हो गयी। इसमें उसकी सन् १८०९ ई० तक की घटनाओं का वर्णन था। उसने दो या तीन वर्ष की छुट्टी सेना विभाग से भारत जाने के लिये माँगी थी। भारत आगमन के पश्चात् का कोई रिकार्ड आस्ट्रिया के ऐतिहासिक युद्ध विभाग में नहीं है।

आस्ट्रिया युद्ध विभाग के कागजों से पता चलता है। एन्थोनी ट्रोयर का जन्म सन् १७७५ ई० में

परिशिष्ट

खनाऊ स्थान वोहमिया प्रदेश में हुआ था। वह लेफ्टिनेण्ट जोसेफ ट्रोयर फान आफकिर चेन, आस्ट्रियन ड्रैगन रेजिमेण्ट, जोसियस प्रिंज जुन्सचसेन-कोवर्ग सालफ्लेड का पुत्र था। ट्रोयर सन् १७८७ ई० में मिलिटेरी एकाडेमी वीनर नियुसटास्ट (Neustadt) जो आस्ट्रिया एवं यूरोप में सैनिक शिक्षा के लिये प्रसिद्ध था प्रवेश पाया। सन् १७९१ ई० में उसने प्रथम सैनिक कमीशन प्राप्त किया। इनफेण्टरी रेजिमेण्ट संख्या ३८ में केडेट इन साइन रूप में नियुक्त हुआ। सन् १७९३ ई० में द्वितीय लेफ्टिनेण्ट हुआ।

अपने रेजिमेण्ट के साथ फ्रान्स, लोकण्ट्री तथा राइन पर युद्ध में भाग लिया था। सन् १७९३ ई० में वलेन्सीन्नेस के समीप घायल हुआ। क्वार्टर मास्टर जनरल के स्टाफ के साथ सम्बन्धित कर दिया गया। सन् १७९५ ई० के डुस्सेलड्राफ के युद्ध में भाग लिया। उसी वर्ष क्वार्टरमास्टर जनरल के स्टाफ में प्रथम लेफ्टिनेण्ट पद पर उसकी उन्नति हुई। सन् १७९६ के युद्ध में ट्रोयर बीमारी के कारण भाग नहीं ले सका। किन्तु सन् १७९७ ई० में राइन के युद्ध में भाग लिया। सन् १७९८ ई० में सर्वेक्षण कार्य के लिये इटली भेजा गया। वहाँ युद्धरत सेना के साथ संबंधित कर दिया गया। सन् १७९९ ई० में नोवी के युद्ध में घायल हुआ। उसकी पदोन्नति हुई। क्वार्टर मास्टर के स्टाफ में कैप्टन बन गया। सन् १८०० ई० में युद्ध में भाग लिया। मई सन् १८०१ ई० में युद्ध आराकाइव में उसकी नियुक्ति हुई। यही आराकाइव विकसित हो कर आज कल का युद्ध इतिहास विभाग हो गया है।

दो या तीन वर्ष युद्ध इतिहास विभाग में कार्य किया। विलियम वेण्टिक के आह्वान पर भारत जाने के लिये सेना विभाग से दो या तीन वर्ष की छुट्टी मांगा। आस्ट्रिया सम्राटीय प्रस्ताव दिनांक २३ फरवरी सन् १८०३ ई० के द्वारा उसका प्रार्थना पत्र स्वीकार किया गया। वह छुट्टी से पुन: वापस नहीं आया। रेजिमेण्ट के प्रार्थना पर मार्च सन् १८०९ ई० में आस्ट्रिया सेना विभाग से उसकी सेवा समाप्त कर दी गयी।

मद्रास में ट्रोयर आया। उसने सैनिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवा की। सेना विभाग में स्थान सर्वेक्षण के पदाधिकारियों में कार्य किया। इटली में उसने स्थान सर्वेक्षण का कार्य किया था। वह सम्भवत: पहला व्यक्ति था जिसने सैनिक सर्वेक्षण शिक्षा एवं कार्य का प्रवेश भारत में कराया।

लार्ड विलियम वेण्टिक से उसका परिचय अकस्मात् युद्ध क्षेत्र में हो गया था। जिनेवा का घेरा सन् १८०० ई० में आस्ट्रिया की सेना में जनरल मेलास के नेतृत्व में किया था। लार्ड विलियम वेण्टिक युवक कर्नल था। वह अंग्रेजों के प्रतिनिधि रूप में आस्ट्रिया की सेनामें जो उस समय इटली में सन् १७९९–१८०१ ई० में युद्ध कर रही थी, नियुक्त हुआ। ट्रोयर आस्ट्रिया सेना तथा ब्रिटिश नौ शक्ति के बीच सम्पर्क अधिकारी था। इससे प्रकट होता है। ट्रोयर को इंगलिश का ज्ञान था। भारत में उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन था। ट्रोयर लार्ड विलियम वैण्टिक के साथ मद्रास सन् १८०३ ई० में आया था। उसे कमीशन इनसाइन ब्रिटिश १२ वीं पैदल सेना में मिला था।

सन् १८०४ ई० में लार्ड विलियम वैण्टिक ने स्थान सर्वेक्षण के लिये विशेष शिक्षण का प्रबन्ध किया। मेजर जनरल डगाल्ड कैम्पबेल सेनापति मद्रास द्वारा १२ नवम्बर सन् १८०४ ई० को ड्राइंग तथा मैथमेटिकल शिक्षक नियुक्त किया गया। नवम्बर १३ को उसका दो सौ पचास पगोडा वेतन निश्चय किया गया। जुलाई ३० सन् १८०६ ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक मंडल ने ट्रोयर की नियुक्ति पर स्वीकृत दे दी।

ट्रोयर के संचालकत्व में वह शिक्षा स्थान मिलिटेरी इन्स्टीट्यूशन में परिणत हो गया। दिसम्बर १८०७ ई० में इन्स्टीट्यूशन क्वार्टर मास्टर जनरल के निरीक्षण में रख दिया गया। इस कार्य से ट्रोयर को कार्य करने की और अधिक सुविधा हो गयी। अक्टूबर २४ सन् १८०८ ई० के पत्र द्वारा ट्रोयर के कार्य की साधिकारिक प्रशंसा की गयी थी।

सन् १८१५ ई० में पालियामेन्ट के एक विधि के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुछ अधिकार सीमित कर दिये गये। कम्पनी के संचालक मंडल ने छटनी आरम्भ की। इन्स्टीट्यूशन बन्द करने की बात उठी। मद्रास के सेनापति ने घोर विरोध किया। दिखाया गया कि सिन्धु एवं नील नदी के मध्यवर्ती क्षत्र के देशों का सर्वश्रेष्ठ मानचित्र तैयार किया गया था। सैनिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। किन्तु यह संस्था आर्थिक कारणों से बन्द कर दी गयी। बहुत विवाद के पश्चात् ट्रोयर १५ जुलाई सन् १९१३ ई० के सीलोन रेजिमेण्ट से सम्बन्धित किया गया। उसे कार्य इतना प्रिय था कि वह उसी में रहना चाहता था। जुलाई २५ सन् १८१५ को उसे आधे वेतन पर कार्य करने का अवसर दिया गया। मृत्यु तक इसी रेजिमेण्ट की लिस्ट पर उसका नाम था।

ट्रोयर मद्रास प्रवास के काल में पाण्डीचेरी के एक फ्रान्सीसी महिला से विवाह कर लिया था। मद्रास के प्रवास काल ही में ट्रोयर ने परसियन, हिन्दुस्तानी तथा तामिल भाषा सोखी थी। ट्रोयर ने मद्रास में फिरदौसी के शाहनामा का अनुवाद जरमन भाषा में करना आरंभ किया। ट्रोयर सन् १८१७ ई० में सेना से सेवा निवृत्त हो गया। एक मत है कि वह पत्नी के साथ पेरिस में निवास करता प्राच्य साहित्य अध्ययन में समय व्यतीत करता था। किन्तु यह निश्चय है कि वह भारत में नहीं था।

लार्ड विलियम वैंटिक बंगाल के गवर्नर जनरल बनकर पुनः भारत आये सन् १८२७ में। ट्रोयर भी उनके साथ भारत आया। दिसम्बर २८ सन् १८२७ ई० के पत्र से प्रकट होता है कि ब्रिटेन से भारत लार्ड वैंण्टिक के दल के साथ आने वाले में 'कैप्टन एन्थोनी ट्रोयर आधे वेतन पर सीलोन रजिमेंट एड डी कैम्प के रूप में' का नाम डिसपैच में लिखा मिलता है। भारतीय पदाधिकारियों की तालिका में ट्रोयर का नाम जब तक विलियम वैंण्टिक भारत में रहे यथावत् चलता रहा। ट्रोयर कलकत्ता में संस्कृत कालेज का प्रिन्सपल नियुक्त किया गया और इस पद पर सन् १८३५ ई० तक बना रहा। अधिक आयु होने पर भी वहाँ वह पण्डितों के साथ संस्कृत का अध्ययन परिश्रम पूर्वक करता रहा। राजतरंगिणी का शुद्ध पाठ सरकारी खर्च पर प्रकाशित करने की योजना बन गयी थी। ट्रोयर ने बंगाल फरवरी सन् १८३५ ई० में छोड़ दिया। ट्रोयर पेरिस अपने साथ राजतरंगिणी तथा उसका स्वरचित अनुवाद ले गया। वह अपने अवसर प्राप्त जीवन के लम्बे तीस वर्षों का जीवन स्थिर होकर अध्ययन में व्यतीत किया। इस लम्बे काल में उसकी केवल दो रचना प्रकाश में आ सकी। राजतरंगिणी के ६ अध्यायों का अनुवाद तथा भाष्य एवं परशियन पुस्तक दविस्तान का अनुवाद।

विलसन पहला व्यक्ति था, जिसने यूरोप को राजतरंगिणी का ज्ञान कराया था। उसका लेख सन् १८२५ में प्रकाशित हुआ था। ट्रोयर ने ५ जून सन् १८४५ को पेरिस से विलसन को पत्र लिखा था। जिससे प्रकट होता है कि राजतरंगिणी के सम्बन्ध में उसने कितना परिश्रम किया था। ट्रोयर ने अपने पत्र में लिखा था कि अनुवाद करने में फ्रांसीसी और संस्कृत दोनों भाषाओं का ज्ञान प्राप्ति के लिये संघर्ष कर रहा था। दोनों भाषायें उसके लिये विदेशी थीं। उसने यह भी मत व्यक्त किया था कि तरंग ७ तथा

८ कल्हण की कृतियाँ नहीं है। इसीलिये प्रतीत होता है कि उसने केवल ६ तरंगों का ही अनुवाद पूर्ण किया था। उसने अपनी ७० वर्ष की अवस्था में पत्र लिखा था। लेखनी से लेखक की शारीरिक दुर्बलता का कोई चिन्ह नहीं मिलता था।

ट्रोयर की दूसरी रचना अंग्रेजी में फारसी पुस्तक 'दविस्तान' का अनुवाद है। डेविडशी ने इसके दो तिहाई अंश का अनुवाद किया था। शेष का अनुवाद ट्रोयर ने पूर्ण किया था। ग्रन्थ सन् १८४५ ई० में प्रकाशित हुआ था।

ट्रोयर प्रसिद्धि तथा प्रचार से बहुत दूर रहता था। एकान्त प्रिय था। परिश्रम एवं अध्यवसाय पर विश्वास करता था। उसकी मृत्यु सम्भवत: जून २ सन् १८६५ ई० में हुई थी। उस समय उसकी आयु ९० वर्ष की थी। उसने अपने पीछे दो विवाहित कन्या तथा एक पुत्र छोड़ा था। जिन लोगों ने उसे देखा था उनका कहना है। भले तथा बुरे का उसके मृदुल स्वभाव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वह अपने विचारों को निर्भीकता एवं स्वतन्त्रता पूर्वक प्रकट करता था। जीवन में जब भी विपत्तियाँ आती थीं, उन्हें शान्ति पूर्वक बिना उद्विग्न हुए वह सहता था। ब्रिटिश सेना से आधी वेतन अर्ध शताब्दी तक लेता रहा, जिसके कारण वह जीवन यापन कर सका था।

'ढ'

होरेस-हेमैन विल्सन

(सन् १७८६—१८६० ई०)

डॉक्टर होरेस हेमैन विल्सन का जन्म सन् १७८६ ई० लन्दन में हुआ था। उसकी शिक्षा सोहो स्क्वायर लन्दन तथा सन्त थॉमस होस्पिटल में हुई थी। उसने भैषज्य विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी।

विल्सन सन् १८०८ ई० सितम्बर मास में भारत आया। रसायन शास्त्र का ज्ञाता था। धातुओं के पृथक्करण का अनुभव था। डॉक्टर था किन्तु उसकी नियुक्ति कलकत्ता टंकशाला में हुई। डाक्टर लेडेन के सम्पर्क में कार्य करने लगा। कलकत्ता में हेनरी. टी. कोलब्रुक से परिचय हुआ। उनका सहयोग उसे जीवन पर्यन्त मिलता रहा। उनसे प्रेरणा मिलती थी। एक अनुभवी विद्वान् से मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ। रुचि अध्ययन की ओर बढ़ती गयी। अध्ययन चलता रहा।

अध्ययन के कारण उस समय विल्सन विश्व में संस्कृत, धर्मशास्त्र, तथा पुरातत्त्व का साधिकारिक विद्वान् माना जाता था। पुरातत्त्व वेत्ता रूप में उसकी प्रसिद्धि हो गयी। साथ ही भारतीय सभ्यता, संस्कृति, इतिहास एवं व्यवहार शास्त्र का पण्डित ख्यात हो गया।

डॉक्टर हण्टर की मृत्यु पश्चात् सन् १८११-१८१२ ई० में डाक्टर कोलब्रुक की संश्रुति पर बंगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी का मन्त्री हुआ। इस समय विल्सन के संस्कृति ज्ञान की ख्याति भारत तथा युरोप में हो चुकी थी। मन्त्री पद पर भारत में रहते हुए सन् १८३३ ई० तक वह बना रहा।

सन् १८१३ ई० में उसका मेघदूत का अनुवाद प्रकाशित हुआ। इस साहित्यिक रचना के कारण विश्व में उसकी ख्याति में और वृद्धि हुई।

ग्रन्थ का सम्मान देखकर विल्सन का उत्साह बढ़ा। उसने कोलब्रुक द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार

पर प्रसिद्ध संस्कृत-इंगलिश कोश रचना में हाथ लगाया।

सन् १८१६ ई० में कलकत्ता टंकशाला में धातुपरीक्षक (एस्से मास्टर) नियुक्त किया गया। सन् १८१९ ई० में उसका कोश सटिप्पण कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। कोश अभिनव रचना थी। इसका द्वितीय संस्करण सन् १८३२ ई० में कलकत्ता से ही प्रकाशित हुआ। इस कोश का तत्कालीन जगत् ने आदर किया। कोश के कितने ही संस्करण अब तक हो चुके हैं। इसका तृतीय संस्करण कलकत्ता ही से उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रकाशित हुआ था।

यह कोश युरोपीय किंवा पाश्चात्य विद्वानों के लिये उनके संस्कृत अध्ययन के लिये माध्यम बना। इस कोश के कारण प्रतीच्य का प्राच्य के लिये द्वार खुल गया। विल्सन प्राच्य और प्रतीच्य को अपनी साहित्यिक रचना तथा कोश के कारण समीप लाया। पाश्चात्य विद्वानों ने कोश के माध्यम से संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया। भारतीय तथा विदेशी विद्वानों में उसने अपनी रचना के कारण श्रेष्ठता प्राप्त की।

विल्सन के पाण्डित्य, परिश्रम तथा सुनिश्चित योजना के कारण एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की काया पलट हो गयी। सोसाइटी पुरातत्त्वविदों एवं गम्भीर विद्वानों का केन्द्र बन गई। उसका सदस्य होना प्रतिष्ठा की बात बन गयी।

विल्सन आत्मश्लाघा एवं प्रचार रोग से पीड़ित नहीं था। सोसाइटी का मन्त्री होते भी लगभग तेरह वर्षों तक उसका कोई भी निबन्ध सोसाइटी के जनरल में प्रकाशित नहीं हुआ। अन्य विद्वानों को प्रोत्साहित करता था। उनका लेख जनरल में प्रकाशित कर विश्व के सम्मुख उनके विचारों को रखता था। शोध पूर्ण लेख जनरल में स्थान पाते थे। जनरल का अध्ययन विश्व के विद्वानों के लिये अनिवार्य हो गया था।

सर्वप्रथम उसका लेख सन् १८२५ ई० में जनरल में प्रकाशित हुआ। जिस विषय पर उसकी लेखनी उठी, वह अछूता था। वह विषय था—काश्मीर। काश्मीर पर उन दिनों सिक्खों का राज्य था। काश्मीर के विषय में लोगों को बहुत कम जानकारी थी।

सन् १७८३-८६ ई० में फ्रान्सिस ग्रेडविन ने आइने अकबरी का अनुवाद किया। उसमें सूबा काश्मीर का वर्णन था। उसके कारण कुछ अंग्रेज विद्वानों को काश्मीर के प्रति जिज्ञासा हुई। काश्मीर विषयक कुछ अनुसन्धान हुआ। किन्तु इस दिशा में विशेष प्रगति नहीं हो सकी। कुछ समय पश्चात् काश्मीर की चर्चा विस्मृत हो गयी।

सर विलिमय जोन्स ने काश्मीर के सम्बन्ध में कुछ रुचि ली। योजना भी बनायी। किन्तु योजना कार्यान्वित नहीं हो सकी। श्री. एच. टी. कोलब्रुक को सन् १८०५ ई० अर्थात् विल्सन के भारत में आने के तीन वर्ष पूर्व, कुछ सफलता मिली थी। ब्राह्मण का एक कुटुम्ब कलकत्ता में निवास करता था। उस कुटुम्ब के एक सदस्य से राजतरंगिणी की पाण्डुलिपि क्रोलब्रुक को मिल गयी। श्री पीटर स्टेक को राजतरंगिणी की एक और पाण्डुलिपि लखनऊ से मिल गयी। इन्हीं दिनों कुछ पाण्डुलिपियाँ कलकत्ता में बिकने के लिये आयीं। उन्हें भी प्राप्त किया गया। इस प्रकार कलकत्ता में विदेशी विद्वान् कोलब्रुक के पास तीन राजतरंगिणी की पाण्डुलिपियाँ हो गयीं। कोलब्रुक की इच्छा थी। जनता के समक्ष राजतरंगिणी का प्रामाणिक संस्करण उपस्थित किया जाय।

विल्सन ने कोलब्रुक की सामग्रियों, तीनों संस्कृत राजतरंगिणी की पाण्डुलिपियों के अतिरिक्त काश्मीर इतिहास सम्बन्धी परशियन पाण्डुलिपियों में 'नवादिरुल अखबार' 'वाक़याते काश्मीर' 'तारीखे

काश्मीर' (नारायण कौल) तथा 'गौहरे आलम' का भी अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणामस्वरूप 'एन एस्से ऑन दि हिन्दू हिस्टॉरी आफ काश्मीर' एशियाटिक रिसर्चेज श्रीरामपुर (सन् १८२५ ई० १५ : १-११९) में तीन निबन्ध प्रकाशित हुए। उन्हीं निबन्धों का शीर्षक 'दी हिन्दू हिस्टॉरी ऑफ काश्मीर' है। (सन् १९६० ई० कलकत्ता)।

राजतरंगिणी की ओर विश्व का ध्यान आकर्षित हुआ। भारत तथा संस्कृत साहित्य में भी इतिहास ग्रन्थ नहीं है। यह मिथ्या धारणा विश्व के विद्वानों में बनी थी। विलसन का संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित होते ही विश्व की आँखें खुलीं। ध्यान आकर्षित हुआ। इस भ्रम को दूर करने के कारण आज भी विलसन के उस लेख का उद्धरण दिया जाता है।

विश्व ने जिस प्रकार उक्त निबन्धों का स्वागत किया उसके कारण जनरल के प्रति संस्करण में विलसन के एक या दो लेख छपने लगे। भारतवर्ष एवं विश्व में सर विलियम जोन्स तथा कोलब्रुक का योग्य उत्तराधिकारी विलसन माना जाने लगा। विलसन के प्रयास के कारण जगत् को ज्ञान हुआ। भारतीय संस्कृत साहित्य के अनुसन्धान की आवश्यकता थी। उसमें प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री संचित थी। उनका उपयोग करना आवश्यक था।

विलसन के इस प्रयास पर श्रीस्तीन ने लिखा है—इस विद्वत्तापूर्ण कार्य के कारण यूरोप के विद्यार्थियों को सर्वप्रथम कल्हण की रचना तथा उसके रूप का प्रथम ज्ञान प्राप्त हुआ। उसने उनके लिये राजतरंगिणी के छः तरंगों के आलोचनात्मक अध्ययन के साथ उनका सार भी उपस्थित किया था। पाण्डित्य की गम्भीरता के साथ इस प्रकाशन में सम्पूर्णता का जो दर्शन मिलता है, वह और भी प्रशंसा को प्राप्त है—क्योंकि तीनों देवनागरी राजतरंगिणियों की पाण्डुलिपियाँ अपूर्ण थीं और इतनी त्रुटिपूर्ण थीं कि उनका अनुवाद करना सम्भव नहीं था। श्री विलसन के निबन्धों में जो त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं इसका यही कारण है (भूमिका : राजतरंगिणी : भाग १ : पृष्ठ ८ : ९)।

विलसन ने डाक्टर आटकिन्सन के सहयोग से एक पत्रिका भी प्रकाशित करना आरम्भ किया। किन्तु पत्रिका सफलतापूर्वक चल न सकी।

विल्सन ने प्रथम बर्मा युद्ध इतिहास को रचना की। विलसन के अनुसन्धान कार्यों से प्रभावित होकर, भारत सरकार ने कोलिन मेंकजी द्वारा दक्षिण भारत में संग्रहीत पाण्डुलिपियों की तालिका बनाने का भार दिया।

सन् १८३४ ई० में 'हिन्दू थियेटर्स' शीर्षक संस्कृत के चार नाटकों के अनुवाद सहित, उनपर निबन्ध लिखा। संस्कृत नाटकों का अनुवाद तथा उनपर लिखे गये आलोचनात्मक निबन्धों को देखकर जगत् चकित हो गया। विश्व में उनका आदर हुआ। नाटकों की योजना, पात्रों का चरित्र-चित्रण पढ़कर, पाश्चात्य विद्वानों के आश्चर्य की सीमा न रही। घटनाओं का रोचक वर्णन, मुख्यतः मृच्छकटिक नाटक से लोग अधिक आकर्षित हुए। उसकी शैली, संवाद तथा मध्य प्रदेश के सुदूर प्राचीन काल के समाज का व्यवहार एवं रूप पढ़कर पाठक मुग्ध हो गये।

शकुन्तला का अनुवाद उसके पूर्व सर विलियम जोन्स ने किया था। परन्तु विलसन के चारों नाटकों को देखकर, उन्हें सबसे अधिक कौतूहल हुआ। भारत की इन अद्भुत कृतियों का न तो अब तक अध्ययन किया गया था और न ये विश्व के प्रकाश में आयी थीं।

कलकत्ता टंकशाल धातुपरीक्षक अधिकारी एवं टंकशाल कमेटी के मन्त्री होने के कारण विल्सन का अधिक समय टंकशाल के कार्यों में लग जाता था। उसने टंकशाल विज्ञान में यथेष्ट सुधार किया। विल्सन इतना अध्ययनशील था कि टंकशाल विभाग के साथ अपना अध्ययन जारी रखा। उसमें कमी नहीं होने पायी।

विल्सन केवल काल्पनिक विद्वान् नहीं थे। सफल कलाकार थे। चौरंगी थियेटर सफलता के वे कारण थे। उनके सफल संचालन के कारण थियेटर ने ख्याति प्राप्त की थी। उसने नाटच प्रदर्शन कला को नवीन दिशा दी। अभिनय कला को सार्वजनिक बनाया। वह स्वयं पात्रों का समय-समय पर अभिनय करता था। विल्सन संगीतज्ञ था। संगीत कार्यक्रमों में भाग लेता था। उत्सवों में भाग आदि लेने के कारण उसकी यथेष्ट ख्याति हो गयी थी।

विल्सन पहला यूरोपीय विद्वान् था, जिसने यूरोपीय विज्ञान तथा इंगलिश साहित्य की शिक्षा की व्यवस्था भारतीय जनता में की। उसने भारतीयों में अंग्रेजी भाषा तथा पाश्चात्य विज्ञान के प्रसार की सुनिश्चित योजना बनायी। और उसे कार्यान्वित किया। अंग्रेजी भाषा का अध्ययन अब तक केवल सरकारी नौकरी पाने के लिये किया जाता था। विल्सन ने यह मनोवृत्ति बदल दी। इंगलिश भाषा तथा उसके अध्ययन की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया। भाषा केवल अर्थकरी न होकर, कला साहित्य तथा अध्ययन के लिये भी मातृभाषा के समान है, इस ओर लोगों को प्रवृत्त किया।

बहुत समय तक सार्वजनिक प्रशिक्षण कमेटी कलकत्ता का मन्त्री था। उसने कलकत्ता हिन्दू कालेज में अध्ययन अध्यापन कार्य का संचालन किया। कालेज के स्थापना काल से ही इस कार्य में लगा था।

भारत में परीक्षा की पद्धति अभी तक प्रचलित नहीं हुई थी। विल्सन ने पढ़ने वालों की परीक्षा की व्यवस्था की। स्नातकगण पदवी पाने लगे। उनके अध्ययन का मूल्यांकन हुआ।

सन् १८३३ ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के कर्नल वेरडेन के दान से संस्कृत अध्यापक का स्थान बनाया गया। विल्सन उस स्थान पर प्रथम संस्कृत प्रोफेसर, जब वह भारत में ही था, नियुक्त किया गया। इस स्थान पर उसके पाण्डित्य के कारण नियुक्ति हुई थी। उसने इस नियुक्ति के लिये किसी प्रकार का प्रयास नहीं किया था।

विल्सन इङ्गलैण्ड पहुँचा। उसे आक्सफोर्ड में अध्यापन के साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी लाइब्रेरी का लाइब्रेरियन भी नियुक्त किया गया। इन दो नियुक्तियों के कारण वह आर्थिक चिन्ताओं से मुक्त हो गया। ज्ञान एवं शक्ति को अपने सुरुचि पूर्ण कार्यों में लगाने लगा।

विल्सन रायल एशियाटिक सोसाइटी लण्डन का संचालक नियुक्त किया गया। उसके कारण सोसाइटी का महत्त्व बढ़ गया। इस सोसाइटी का संचालक अपने मृत्यु दिन तक वह बना रहा। उसके कारण सोसाइटी प्राचीन कालीन अध्ययन एवं विद्वानों के विचार व्यक्त करने का एक केन्द्र हो गयी। सोसाइटी ने जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त की। उसने सोसाइटी का सफल संचालन कर विद्वानों के लिये एक उपयोगी संस्था बना दी। विश्व में सोसाइटी भी प्रतिष्ठा बढ़ गयी। सोसाइटी के जनरल का एक भी संस्करण ऐसा नहीं मिलेगा जिसमें उसकी लेखनी से कुछ न कुछ लिखा गया न होगा।

भारत से लण्डन लौटने पर उसने बहुत कुछ लिखा है। उसके लेख अपनी मौलिकता के कारण, नवीन विचारों के कारण, नवीन दृष्टि कोणों, तथा अनुसन्धानात्मक मानसिक झुकावों के कारण, आज भी मौलिक, नवीन तथा प्रेरणाप्रद लगते हैं। विद्वत्ता तथा तथ्य की दृष्टि से उनका मूल्य है। उनके कारण

वेदों तथा पुराणों के अनुवाद तथा अध्ययन के लिये मार्ग प्रशस्त हुआ है।

संस्कृत-इङ्गलिश कोश, व्याकरण तथा मिल के ब्रिटिश इण्डिया के इतिहास रचना का क्रम जारी रखकर, विद्या तथा शिक्षा क्षेत्र में अद्भुत योग दान दिया है।

अरियन एण्टीक्य द्वारा अफगानिस्तान के पुरातत्त्व तथा नाणक शास्त्र की ओर जगत् का ध्यान आकर्षित किया। उसके कारण पूर्व की खिड़की से पश्चिम झाँक कर देखने लगा था। भारत तथा एशिया उसका सर्वदा ऋणी रहेगा।

विल्सन ने उन सब कार्यों के लिये परिश्रम किया, जिसे उसने उपयोगी समझा था। उसने प्रसिद्धि तथा विशिष्टता प्राप्त करने की कभी चिन्ता नहीं हुई। इस दृष्टिकोण से अपने जीवन में उसने कभी कार्य नहीं किया। उसका नाम उसके देश, भारत तथा विश्व में सर्वदा आदर के साथ लिया जायगा। काश्मीर को जगत् के मानचित्र पर रखने के लिये उसने जो प्रयास किया है, उससे काश्मीर कभी ऋण नहीं हो सकता।

विल्सन के समय का सबसे बड़ा संस्कृत का विद्वान् था। तत्कालीन पुराकालीन विद्वानों का नेता था। वह भाषाविद्, इतिहासकार, रासायनिक, धातु विशेषज्ञ, गुणक, टंकशालविद्, सफल पात्र, संगीतज्ञ आलोचक एवं पुरातत्त्वविद् था। उसमें अद्भुत नेतृत्व शक्ति थी। वह जिस दिशा में गया वह शिखर पर चमक उठा था। उसके पश्चात् ही जर्मन देशीय संस्कृत विद्वानों का उदय हुआ था। जर्मन विद्वानों के उदय के कारण ब्रिटेन में जिस परम्परा की नींव विल्सन से डाली थी वह सुविकसित नहीं हो सकी। लम्बी बीमारी तथा ऑपरेशन के पश्चात् १८ मई सन् १८६० ई० में ७४ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हो गयी।

अपनी मृत्यु के एक पक्ष पूर्व उसने अपने रचित ग्रंथों तथा निबन्धों आदि की तालिका बनायी थी। निम्नलिखित तालिका जो उसके हाथों की लिखी है, रायल एशियाटिक सोसाइटी लण्डन के जनरल भाग १७ सन् १८६० ई० में प्रकाशित हुई।

(१) मेघदूत : अनुवाद एवं टिप्पण : कलकत्ता सन् १८१३ ई०। पुनर्मुद्रण : इंगलिश : प्रथम भाग : लण्डन : सन् १८१४ ई०। पुनर्मुद्रण : मूल तथा अनुवाद शब्द अर्थ सहित लण्डन : सन् १८१९ ई०।

(२) संस्कृत-इंगलिश कोश : कलकत्ता : सन् १८१९ ई०। पुनर्मुद्रण—बृहद् संस्करण : कलकत्ता सन् १८३२ ई०। पुनर्मुद्रण बृहद् संस्करण : कलकत्ता

(३) सिलेक्ट स्पेसीमेन ऑफ हिन्दू थियेटर ऑफ हिन्दूज़ : कलकत्ता सन् १८२७ ई०। पुनर्मुद्रण : लण्डन सन् १८३५ ई०

(४) मेकेञ्जी संग्रह : कलकत्ता ; सन् १८२८ ई०

(५) प्रथम वर्मा युद्ध का इतिहास : कलकत्ता : सन् १८२७ ई०। द्वितीय वर्मा युद्ध सहित—द्वितीय संस्करण : लण्डन

(६) रिव्यू ऑफ विदेशी वाणिज्य : बंगाल : सन् १८२३ ई० से १८२८ ई० कलकत्ता : सन् १८३० ई०

(७) मेनुअल ऑफ यूनिवर्सल हिस्टोरी एण्ड क्रॉनोलोजी : कलकत्ता। पुनर्मुद्रण : लण्डन : सन् १८३५ ई०

(८) सांख्य कारिका : ऑक्सफोर्ड : सन् १८३७ ई०

(९) विष्णु पुराण—लण्डन : सन् १८४० ई०

(१०) हिन्दुओं की धार्मिक तथा दार्शनिक पद्धति पर दो व्याख्यान : आक्सफोर्ड
(११) संस्कृत व्याकरण : लण्डन
(१२) द्वितीय बृहद् संस्करण : ऑक्सफोर्ड : सन् १८४७ ई०
(१३) एरियन एण्टीक्य : लण्डन : सन् १८४१ ई०
(१४) ब्रिटिश इण्डिया हिस्टॉरी : सन् १८०५—१८३५ ई० श्री मिल के इतिहास के क्रम में लण्डन : सन् १८४४—४८ ई०
(१५) इण्डियन रेविन्यू जुडीशियल ग्लोसेरी : लण्डन : सन् : १८५५ ई०
(१६) ऋग्वेद अनुवाद : लण्डन : सन् १८५७ ई०

सम्पादन—७ ग्रन्थ। पत्रिकाओं में एशिया अनुसन्धान सम्बन्धी प्रकाशित निबन्ध : एशियाटिक रिसर्च : १-९ जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल में निबन्ध : १०-११ कलकत्ता क्वाटर्ली = १२-३२ अशमोलीन सोसाइटी = २४ जनरल एशियाटिक सोसाइटी लण्डन = २६-४१ विदेशी त्रैमासिक = ४२

विलसन रचित तालिका में निम्नलिखित प्रकाशन छूट गया है, भूमिका आदि जे० डी० पोटरमन। ओड्स ऑफ ऋग्वेद : कलकत्ता : सन् १८१८ ई०। दी ओरिएण्टल = लण्डन : सन् १८४२ ई०। श्री इस्टविक का अनुवाद : वोप्वस् का तुलनात्मक व्याकरण।

'ण'

सर अलेक्जेण्डर कनिंघम

(सन् १८१४—१८९३ ई०)

उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ प्रमुख विदेशी विद्वान्, जिन्होंने काश्मीर सम्बन्धी अनुसंधान कार्य किया है, वे सैनिक सेवा से जीवन आरम्भ किये थे।

अल्लन कनिंघम का द्वितीय पुत्र अलेक्ज़ेण्डर कनिंघम था। उसके अन्य तीन भ्राता जोसेफ, पीटर, तथा फ्रान्सिस कनिंघम थे। कनिंघम का जन्म सन् १८१४ ई०, २३ जनवरी को ज्हॉन स्ट्रीट, वेस्टमिनिस्टर, इङ्गलैण्ड में हुआ था। जोसेफ कनिंघम के साथ उसने क्राइस्ट हास्पिटल में शिक्षा प्राप्त की थी।

एक मित्र दूसरे मित्र की किस प्रकार सहायता करते हैं, स्थिति सुधारने में सहायक होते हैं, जीवन-द्वार सुपथ की ओर खोलते हैं, कनिंघम का जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

एक समय उसके पिता के यहाँ सर वाल्टर स्कॉट प्रातःकाल कलेवा कर रहे थे। उस समय अपने पुराने मित्र अल्लन कनिंघम से सर वाल्टर स्कॉट ने पूछा—'अल्लन ! तुम इन सब लड़कों का क्या करने जा रहे हो ?' अल्लन ने उत्तर दिया—'मैं स्वयं अपने मन से यह प्रश्न पूछता रहता हूँ। मैं भला उनका क्या उत्तर दे सकता हूँ ?' सर वाल्टर स्कॉट ने पूछा—'ज्येष्ठ की क्या रुचि है ?' अल्लन ने उत्तर दिया—'वह सैनिक होना पसन्द करेगा।' स्कॉट ने जिज्ञासा की—'इस सम्बन्ध में क्या किया है ?' अल्लन ने उत्तर दिया—'मुझे अधूरा विश्वास दिलाया गया है। उसे किंग्स आरमी में कमीशन मिलेगा। मैं यह चाहता हूँ कि वह भारत जाय। वहाँ वेतन से रहने इत्यादि का खर्च निकल आता है और फिर आगे बढ़ने के लिये कदम कदम पर सिफारिश की आवश्यकता नहीं पड़ती।'

परिशिष्ट

लार्ड मेल विल्ले उस समय नियन्त्रण बोर्ड के अध्यक्ष थे। सर वाल्टर स्कॉट की उन दिनों लेखक रूप में प्रसिद्धि हो गयी थी। वे सीधे लार्ड मेल विल्ले के पास पहुँचे। उन्होंने तुरन्त स्कॉट को वचन दिया। एक को केडेट बना लेंगे।

सर वाल्टर स्कॉट पाँच दिन पश्चात् अर्थात् २३ मई को लेडी स्टाफफोर्ड के साथ भोजन करने गये। वहाँ दो भाइयों लोच तथा ज्हॉन लोच से भेंट हुई। उन्होंने भी प्रतिज्ञा की कि एक लड़के को वे केडेट बना देंगे।

सर वाल्टर स्कॉट की संश्रुति पर दोनों भाइयों को भारतीय केडेटशिप मिल गयी। सैनिक कालेज एड्डिसकोम्वी में परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् कनिंघम को बंगाल इञ्जिनियर्स का कमीशन ९ जून सन् १८३१ ई० को मिल गया। वह द्वितीय लेफ्टिनेण्ट नियुक्त किया गया। उस समय के नियमानुसार उसने ६ मास चेथम में तकनीकी शिक्षा ग्रहण की।

फ्रांसिस कनिंघम मद्रास सेना में सन् १८३८ ई० में कमीशन पा गया। अस्वस्थता के कारण, वह लेफ्टिनेण्ट कर्नल होकर, सन् १८६२ ई० में अवसर ग्रहण किया। समय साहित्यिक कार्यों में लगाया। उसने मसिजर, मारलो तथा वेनज्हॉन्सन की रचनाओं का सम्पादकत्व किया। सन् १८७५ ई० में अपने भ्राता पीटर के 'हैण्डबुक ऑफ लण्डन' का सम्पादकत्व कर रहा था कि देहावसान हो गया।

कनिंघम भारत में ९ जून सन् १८३३ ई० में आया। उसका प्रथम तीन वर्ष सफरमैना पल्टन (सैपर्स) में बीता। सन् १८३४ ई० में वह लार्ड विलयम वैण्टिक (सन् १८२८–१८३६ ई०) का ए. डी. सी. नियुक्त हुआ। लार्ड आकलैण्ड (सन् १८३६–१८४२ ई०) जब भारत में गवर्नर जनरल बनकर आये तो वह उनके ए. डी. सी. अर्थात् अंगरक्षकों में से एक था।

कनिंघम ने प्रथम निबन्ध बंगाल रायल एशियाटिक सोसाइटी पत्रिका के लिये सन् १८३४ ई० में लिखा। निबन्ध एक रोमन मुद्रा के सम्बन्ध में था। मनिक्यालस्तूप में श्री कोर्ट को मिला था। श्री जेम्स प्रिन्सेप ने बीमारी के कारण अक्टूबर सन् १८३८ ई० में भारत छोड़ दिया। इसी वर्ष श्री लास्सेन का वेक्ट्रिया मुद्रा के सम्बन्ध में विश्लेषणात्मक लेख प्रकाशित हुआ।

कनिंघम लिखता है कि वह सन् १८३६ ई० से सन् १८३७ ई० में बहुत ही क्रियाशील था। इस काल में जेम्स प्रिन्सेप से सर्वदा मिलता था। वे अभिन्न मित्र हो गये थे। प्रिन्सेप के सभी अनुसन्धानों में वह सक्रिय सहयोग करता था। उस समय प्रिन्सेप वेक्ट्रियन तथा सौराष्ट्र की मुद्राओं पर कार्य करते थे। जेम्स प्रिन्सेप की मुद्राओं पर टंकित खरोष्ठी आदि लेखों के पढ़ने में सहायता करता था।

कनिंघम चार वर्षों तक गवर्नर जनरल के स्टाफ में कार्य करता रहा। सन् १८३९ ई० में विशेष कार्यों से काश्मीर भेजा गया। मार्च सन् १८४० ई० में डाक्टर रोयर का अनुवाद उक्त मुद्राओं के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ। इस कार्य से भारत के पुरातत्त्व अनुसन्धान सम्बन्धी कार्यों में तीव्र प्रगति हुई।

सन् १८४० ई० में कनिंघम का विवाह कुमारी एलिस पुत्री मार्टिन ह्विश बंगाल सविल सर्विस के साथ हुई। वह अपने पति की मृत्यु पश्चात् तक विधवा जीवित थी।

कनिंघम अवध के नवाब के यहाँ एक्ज़ीक्यूटिव इंजिनीयर नियुक्त किया गया। इस काल में वह निबन्ध जनरल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के लिये लिखता रहा। किन्तु अगले ६ वर्षों में वह केवल एक ही निबन्ध लिख सका था। लखनऊ से कानपुर तक की सड़क निर्माण करा रहा था। उसी समय सन् १८४२

ई० में युद्ध में सम्मिलित होने के लिये बुला लिया गया।

बुन्देलखण्ड में विद्रोह हो रहा था। उसके दमन में अंग्रेजी सेना लगी थी। यह विद्रोह जयपुर के राजा द्वारा यह समाचार मिलने पर आरम्भ हो गया था कि काबुल में अंग्रेज सेना पराजित हो गयी थी।

अनन्तर कनिंघम नव स्थापित सैनिक केन्द्र नौगाव सेण्ट्रल भारत में नियुक्त किया गया। उसने सन् १८४३–१८४४ ई० में ग्वालियर युद्ध में मेजर जनरल ग्रे के साथ युद्ध में भाग लिया। सन् १८४३ ई० के बुनिपार युद्ध में कनिंघम उपस्थित था। यह युद्ध ग्वालियर की विद्रोही सेना ने किया था। कनिंघम ने शत्रु की तोप का मुँह शत्रु की तरफ करके ख्याति पायी थी। वीरता प्रदर्शन के कारण, उसे ताम्रपदक तथा छ मास का भत्ता पुरस्कार में मिला था। सन् १८४४ ई० में ग्वालियर कण्टिनजेण्ट का एक्जीक्यूटिव आफिसर नियुक्त किया गया।

सन् १८४४–१८४५ ई० में कनिंघम ने ग्वालियर के अधिशासी अभियन्ता के रूप में कार्य किया। मोरार नदी का दश मिहराबों का पुल उसकी स्मृति आज भी दिलाता है।

सन् १८४६ ई० में सतलज युद्ध में भाग लेने के लिये कनिंघम बुलाया गया। यह समय सोबराओं के निर्णायक युद्ध के कुछ दिन पूर्व का है। उसपर उत्तरदायित्व रखा गया था। व्यास नदी पर दो पुल यथा शीघ्र निर्माण करा दें। कनिंघम ने समय के अन्दर पुल बनवाकर ख्याति प्राप्त की थी।

प्रथम सिख युद्ध (सन् १८४५ ई०) के परिणाम स्वरूप सतलज तथा व्यास नदी के मध्यवर्ती भू-भाग पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। यह भू-भाग ज्होन लारेन्स के अधिकार में रख दिया गया। लारेन्स ने कनिंघम को कांगड़ा तथा कुलू भू-भाग जीतने के लिये आदेश दिया। उसने यह कार्य सफलतापूर्वक कर दिया। उसे काश्मीर लद्दाख सूबा तथा तिब्बत के मध्य सीमा निर्धारण का काम दिया गया। उस समय तिब्बत हिमालय में स्वतन्त्र राज्य था। कनिंघम को पहले लौट आना पड़ा। अनन्तर सर रिकार्ड स्ट्रेची के साथ उसने सीमा निर्धारण का कार्य समाप्त किया। इसी समय वह बहावलपुर तथा बीकानेर राज्यों की सीमा का निर्धारण किया।

कनिंघम सन् १८४६ ई० में कुलू तथा लाहौल मार्ग द्वारा लद्दाख एक मिशन पर भेजा गया। उसने छूमोरारी लेक की यात्रा की। सन् १८४६ ई० में लाहौर की सन्धि हुई थी। सन् १८४८ ई० में जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी में इस समय जो अनुसन्धान तथा भ्रमण किया था, उस सम्बन्ध में लेख लिखा। इसी समय महाराज गुलाब सिंह तथा अंग्रेजी राज्य के सीमा निर्धारण के सम्बन्ध में कम्पनी को प्रतिवेदन दिया।

जनवरी १८४७-१८४८ ई० में पश्चिमोत्तर प्रदेश की सीमा निर्धारण किया। सन् १८४८ ई० में एन. एन. रेनु नेमुसट का फ्रान्सीसी भाषा में फाहियान की भारत यात्रा का विवरण प्रकाशित हुआ। हुएन्त्सांग का विवरण उसके पश्चात् का लिखा गया है इस मत का प्रतिपादन विलियम एण्डरसन ने किया था। कनिंघम ने इस मत का जोरदार खण्डन किया। काश्मीर के आर्यन शैली मन्दिर पर उसने विद्वत्ता पूर्ण लेख लिखा उसमें १८ प्लेट भी सम्मिलित थे। इसी समय कनिंघम की प्रथम पुस्तक 'एस्से ऑन दि आर्यन, आर्डर ऑफ आर्टिटेकचर ऐज इक्सिविरेड इन दी टेम्पलस ऑफ काश्मीर' प्रकाशित हुआ। इसी समय सन् १८४९ ई० में दूसरा सिक्ख युद्ध आरम्भ हो गया। कनिंघम ने युद्ध में भाग लिया। कनिंघम को पोनटून ट्रेन फील्ड इन्जीनियर रूप में उसे कमाण्ड दिया गया।

परिशिष्ट

कनिंघम १३ जून सन् १८४९ ई० के चिलियान वाला तथा २२ फरवरी गुजरात के युद्धों में उपस्थित था। उसका उल्लेख सैनिक डिसपैचों में किया गया। सेना में मेजर बना दिया गया। युद्ध समाप्त हुआ। पंजाब अंग्रेजी राज्य में सम्मिलित कर लिया गया। कनिंघम सन् १८५० ई० में पुन ग्वालियर लौट गया। इस समय उसने मध्य भारत के बौद्ध स्मारकों को देखा तथा अध्ययन किया।

कैप्टन मैस्सी इसी समय सांची स्तूप के द्वार का चित्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों के लिए बना रहा था। मैस्सी से मिलकर अक्टूबर मास में कनिंघम सांची पहुँचा। यद्यपि इस स्तूप का सन् १८१८ ई० में जनरल टेलर को सबसे पहले पता चला और कैप्टन फेल ने सन् १८१९ ई० में इसके विषय में लिखा था परन्तु इस दिशा में कुछ कार्य नहीं किया गया था। कनिंघम का भाई कैप्टन जे. एल. कनिंघम भूपाल राज्य में कम्पनी का रेजिडेण्ट था। वह २३ जनवरी सन् १८५१ ई० को पहुँचा। दूसरे दिन अर्थात् २४ जनवरी को स्तूप के मूर्धा से साफ्ट गलाना शुरू किया। स्तूप में पुरातत्त्व सम्बन्धी स्मारक मिले। उन्हीं में सारिपुत्र एवं मुग्गलायन की अस्थियाँ थीं। अस्थियाँ एक पेटारी में बन्द थीं। जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी में उसने इस सम्बन्ध में एक लेख लिखा। विदिशा स्तूप सम्बन्धी उसकी रचना 'दि भिलसा टि टॉयस् ऑर बुधिष्ट मानुमेण्टस् आफ सेण्ट्रल इण्डिया' सन् १८५४ ई० में लण्डन से प्रकाशित हुआ।

सन् १८५३ ई० में मुल्तान का प्रशासक कनिंघम बनाया गया। यहाँ कार्य करते हुए, विदिशा स्तूप तथा मध्यभारत के बौद्ध स्मारकों तथा बौद्धों के उत्थान पतन के सम्बन्ध में लेख लिखा। मुल्तान में कनिंघम ने पेट्रिक अलेक्ज़ेण्डर वान्स एन्यू तथा डब्लू ए० एण्डरसन के स्मारकों की भू कल्पना बनायी। उक्त दोनों महानुभावों की धोखे से हत्या कर दी गयी थी और द्वितीय सिख युद्ध का कारण हुआ था।

सन् १८५४ ई० में लद्दाख के प्राकृतिक भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि विषयों पर उसका लेख लण्डन से प्रकाशित हुआ। 'लद्दाख, फिज़िकल स्टेटिकल एण्ड हिस्टारिकल' रचना सन् १८५४ में लण्डन से प्रकाशित हुई। सन् १८५६ ई० में कनिंघम लेफ्टिनेण्ट कर्नल बनाया गया। उसकी पदोन्नति कर समस्त नव विजित वर्मा का मुख्य एक्जीक्यूटिव इन्जीनियर बनाया गया। उसने पब्लिक सर्विस विभाग का संघटन किया। सीमान्त चौकियों का तौगू से नवोई तक निरीक्षण तथा उनकी व्यवस्था की। यही कारण है कि कनिंघम सन् १८५७ ई० के विद्रोह के समय भारत में उपस्थित नहीं था।

नवम्बर सन् १८५८ ई० में कनिंघम भारत आया। वह वर्तमान उत्तर प्रदेश का चीफ एक्ज़ीक्यूटिव इन्जीनियर तथा प्रदेशीय सरकार का सचिव नियुक्त किया गया। उसने दोनों विभागों का संघटन किया।

सन् १८६० ई० में लार्ड कैनिंग (सन् १८५६—१८६२) ने भारत में आर्कियोलोजिकल इन्स्टीच्यूट खोलने का निश्चय किया। कनिंघम ने इस इन्स्टीच्यूट की संघटनात्मक योजना बनायी।

सन् १८६१ ई० में भारतीय सेना में मेजर जनरल होकर २८ वर्ष की सरकारी सेवा के पश्चात् सेवानिवृत्त हुआ। सन् १८६१ ई० में वह उक्त इन्स्टीच्यूट का सुपरिण्टेडेण्ट नियुक्त किया गया तथा दिसम्बर मास में कार्य भार ग्रहण किया।

सन् १८६३–१८६४ के मध्यवर्ती शीतऋतु में कनिंघम ने पंजाब का पर्यटन आरम्भ किया। सेवा निवृत्त होने पर उसे शान्तिमय एकाकी जीवन पसन्द नहीं आया। उसने साहित्यिक क्षेत्र में पूर्णतया प्रवेश कर, अनुसन्धान कार्य आरम्भ किया। उसका यह कार्य एक सफल सैनिक तथा इन्जीनियर की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण माना गया।

सन् १८६४–१८६५ ई० के मध्य यमुना तथा नर्मदा नदियों के मध्यवर्ती क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य किया। इस क्षेत्र के खनन कार्यों का वर्णन सन् १८७१ ई० में प्रकाशित किया गया है।

सन् १८६६ ई० में लार्ड लारेन्स गवर्नर जनरल ने (सन् १८६४–१८६९ ई०) ने पुरातत्त्व सर्वेक्षक विभाग तोड़ दिया। कनिंघम इंगलैंड लौट गया। सन् १८६७ ई० में कनिंघम ने न्युमिस्टिक क्रोनिकल लिखना आरम्भ किया। इसमें सिकन्दर के समकालीन भारतीय राजा सोफाइनेस की भी मुद्रा थी।

सन् १८७० ई० जुलाई मास में भारत पुनः पुरातत्त्व सम्बन्धी अनुसन्धान के सम्बन्ध में आया। लार्ड मेयो (सन् १८६९–१८७२ ई०) ने भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की पुनः स्थापना की थी। इस विभाग का कनिंघम डाइरेक्टर नियुक्त किया गया। इस समय उसकी उम्र ५७ वर्ष थी। भारत के यूरोपियन सेवानिवृत्त होकर इस उम्र में यूरोप लौट जाते हैं और शान्तिमय जीवन आराम से व्यतीत करते हैं। उसने भारत में पुरातत्त्व सम्बन्धी विभाग में ५ वर्ष कार्य करने का निश्चय किया था परन्तु १५ वर्ष कार्य करता रहा। उसने मध्यभारत का कार्य सबसे पहले उठाया। पश्चिम भारत का पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्य वर्गेस को स्वतन्त्रता पूर्वक करने के लिये छोड़ दिया गया। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग का १५ वर्षों तक सुयोग्यता एवं उत्साह के साथ कनिंघम ने संचालकत्व का कार्य किया। वह शीत ऋतु में पश्चिम में तक्षशिला से पूर्व गौड़ तक उत्तरी भारत में अनुसन्धान करता था।

सन् १८७१ ई० में 'एन्शियेण्ट ज्योग्रेफी आफ इण्डिया बुद्धिष्ट पीरियड' लिखा। इस पुस्तक में सिकन्दर तथा चीनी पर्यटकों के मार्ग का मानचित्र तथा स्थानों का वर्णन किया गया था। इतिहासज्ञों के लिये अनिवार्य पुस्तक हो गयी थी।

सन् १८६८-१८७३ ई० के मध्य सिकन्दर के उत्तराधिकारियों की मुद्राओं के सम्बन्ध में निबन्ध लिखा। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के चौबीस वार्षिक प्रतिवेदनों में १३ प्रतिवेदनों में संख्या : १, २, ३, ५, ९, १०, ११, १४, १५, १६, १७, २०, २१, उसके अधीनस्थ कर्मचारियों द्वारा उसके नियन्त्रण में लिखे गये थे। सन् १८७१ ई० में विनसेण्ट स्मिथ ने उनकी पूरी अनुक्रमणिका बनाकर तैयार कर ली थी। उक्त मुद्राओं के सम्बन्ध में सन् १८८४ ई० में 'क्लाइन्स ऑफ अलेक्ज़ेण्डर्स सकसेसर्स इन दी ईस्ट' पुस्तक लण्डन से प्रकाशित हुई।

कनिंघम ने सन् १८७७ ई० में 'कोरपस इन्शक्रिपशन्स इण्डिकेरम' प्रथम भाग प्रकाशित हुआ। इसमें अशोक के अभिलेखों का संग्रह था। पुस्तक में अशोक के ३० फलकों का संग्रह भी है। सब फलक कनिंघम द्वारा स्वयं खींचे गये थे। अशोक का अभिलेख केवल नंगी आँखों से ही जो उस समय देखा जा सकता था कनिंघम ने देखकर उतारा था। द्वितीय भाग में भारतीय-सीथियन तथा उससे भी पूर्व कालीन अभिलेख थे। फलक कनिंघम के अवकाश ग्रहण करने के पूर्व ही प्रकाशित हो चुके थे। तृतीय भाग गुप्त कालीन अभिलेखों का संग्रह था। उसे डाक्टर जे. एफ. फ्लीट ने तैयार किया था। यह सन् १८८८ में प्रकाशित हुआ था।

कनिंघम ने भरहुत के स्तूप के विषय में एक विशेष प्रकाशन सन् १८७९ ई० में 'स्तूप ऑफ भरहुत ए बुद्धिस्ट मानुमेण्ट' किया था। उसमें ७७ फलक थे। उसकी कृतियों में यह श्रेष्ठ मानी गयी है।

भारतीय संवतों के तुलनात्मक अध्ययन के सन्दर्भ में सन् १८८३ ई० में 'दि बुक ऑफ इंडियन इरा' 'विद टेबुल्स ऑफ केल कुलोटेगडेट्स' लिखा था। यह रचना कप्तान बार्रेन की रचना पर आधारित थी। उसने सन् १८८१ तथा १८८३ ई० के एशियाटिक जनरल बंगाल में भारतीय मुद्राओं के सम्बन्ध में लेख

लिखा था। उसने एक निबन्ध 'रिलिक्स फ्रॉम एन्शिएण्ट परशियन इन गोल्ड, सिल्वर एण्ड कोपर' पर लिखा था।

कनिंघम लम्बा तड़ंगा प्रतिभाशाली व्यक्ति था। हाथी से गिर जाने के कारण ७० वर्ष की अवस्था में घायल हो गया था। यह घटना सन् १८८४ ई० की है। वह सन् १८८५ ई० में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग से सेवा निवृत्त हुआ। इस समय उसकी आयु लगभग ७२ वर्ष की थी।

सन् १८७१ ई० में सी. एस. आई. तथा जनवरी सन् १८७८ ई० में सी. आई. डी. तथा अवकाश ग्रहण करने पर सन् १८८७ ई० में के. सी. आई. ई की उपाधि प्राप्त किया।

इंगलैण्ड लौटने पर वह अपने प्रिय विषयों का अध्ययन मृत्यु पर्यन्त करता रहा। इस काल में उसके अध्ययन का मुख्य विषय मुद्रा शास्त्र अर्थात् नुमिस्टिक था। भारत में सेवा के समय उसने बहुत मुद्राओं का संग्रह किया था। उनमें से कुछ अप्राप्य मुद्रायें थीं। उसका संग्रह किसी संग्रह की तुलना में श्रेष्ठ एवं ज्ञानप्रद था। उसके समान पुनः किसी व्यक्ति ने मुद्रा संग्रह नहीं किया था। जीवनपर्यन्त मुद्राओं के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने के कारण मुद्रा के लिये उसमें अन्तर्बोध उत्पन्न हो गया था। उसका ज्ञान प्रमादहीन था। मुद्रा के आधारों पर इतिहास की व्याख्या करने में सहायता मिलती थी।

भारत में सरकारी सेवा करते समय उसने मूर्तियाँ, मुद्रायें तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी बहुत सामग्री एकत्रित की थी। उसने समस्त सामग्री लेख, पत्र, अनुसन्धान सम्बन्धी नोट आदि समुद्री जहाज 'इण्डस' द्वारा इंगलैण्ड भेजा। दुर्भाग्यवश श्रीलंका के उत्तर पूर्व 'मुल्लेत्तिव्रू' के समीप कोरलरीक से टकराकर जहाज डूब गया। कनिंघम द्वारा जीवनपर्यन्त एकत्रित की गयी सामग्रियाँ तथा नोट समुद्र गर्भ में चिर विश्राम करने के लिये चली गयीं। डूबे संग्रह में ताम्र मुद्रायें बहुत थीं। स्वर्ण तथा रजत की मूल्यमान मुद्रायें पहले ही इंगलैण्ड भेज दी गयी थीं। अतएव वे बच गयीं। कनिंघम ने ब्रिटिश संग्रहालय लण्डन को जो मुद्रायें वे चाहते थे उन्हें जिस मूल्य पर, उसने भारत में खरीदा था, लेकर दे दिया। शेष मुद्रायें भी उसकी मृत्यु के पश्चात् खरीदकर, ब्रिटिश संग्रहालय में रख दी गयीं। ब्रिटिश संग्रहालय के मेडल कक्ष में उसकी स्मृति जीवित रखने के लिये एक फलक लगा है।

इंगलैण्ड लौटने पर काम न रहने के कारण कनिंघम का जीवन कार्याभाव में आलस्यमय हो गया। सन् १८८९ ई० में 'नुमेस्टिक क्रोनिकल' में उसने तोखरी, कुशान तथा यू-ए-वी पर निबन्ध लिखा।

सन् १८९० तथा १८९२ ई० में शक मुद्राओं का अध्ययन कर उसने अपना विचार व्यक्त किया। सन् १८९१ ई० में 'क्वाइन्स आफ एन्शिएण्ट इण्डिया फ्रॉम दि अलिपेष्ट टाइम्स डाऊन टु दी सेविन्थ सेंचुरी ए. डी. लण्डन से प्रकाशित हुई। उसने मुद्रा शास्त्र पर मौलिक विचार किया कि मुद्राओं का विकास किस प्रकार हुआ था। उसने मुद्राओं के अध्ययन के कारण निश्चयात्मक विचार प्रकट किया कि सिकन्दर के भारत पर आक्रमण के पूर्व भारत में टंकशाल थे। मुद्रायें टंकित होती थीं।

सन् १८९२ ई० में उसने उसकी बोध गया मन्दिर के विषय में "महाबोधि ऑर दि ग्रेट बुद्धिष्ट टेम्पुल अण्डर दी बोधि ट्री ऐट बोध गया" पुस्तक लण्डन से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में बौद्ध स्थानों तथा बारह वर्षों में जो खनन कार्य किया गया था उस पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला गया था। पुस्तक विलम्ब से प्रकाशित होने का कारण था कि मूल सामग्रियाँ समुद्र में डूब गयी थीं। प्रतिलिपियों के आधार पर पुस्तक की रचना की गयी थी।

सन् १८९२ ई० में लण्डन में आयोजित सितम्बर मास के अन्तर्राष्ट्रीय पुरातत्त्व कांग्रेस में उसने 'इफथेलाडट्स' अथवा श्वेत हूणों के सम्बन्ध में एक निबन्ध उपस्थित किया था।

सन् १८९३ ई० में क्वाइन्स आफ इण्डो सीथियन्स शक तथा कुशान तथा 'लेटर इण्डो सीथियन्स' पुस्तकें लण्डन से प्रकाशित हुई।

कनिंघम बीमार पड़ गया। वह बिस्तर पर पड़ा था। तथापि उसने तीन नवीन निबन्ध नुमिस्टिक क्रोनिकल में 'ससेनियन्स' 'लिटिल कुशान' तथा 'लेटर इण्डो सीथियन' लिखा उसके जीवन के वे अन्तिम लेख थे।

पाण्डित्य में वह कर्नल कोलिन मेकेञ्जी तथा जेम्स प्रिन्सेप का उत्तराधिकारी माना जायगा। वे लोग परिश्रम तथा स्वअर्जित ज्ञान से पुरातत्त्व की ओर आकर्षित हुए थे। कनिंघम भी इतिहास, भूगोल तथा पुरातत्त्व सम्बन्धी शिक्षा वहीं प्राप्त किया था। इन विषयों पर उसका ज्ञान अर्जित ज्ञान था। उसे कोलब्रुक के समान विवेक बुद्धि नहीं प्राप्त थी। फरगुसन तथा रेकमैन के समान साधिकारिक, तुलनात्मक तथा वैज्ञानिक व्यवकलन नहीं प्राप्त था। वह पुरानी परम्परा के विद्वानों की पीढ़ी में था। किन्तु प्रतिपाद्य विषय के प्रति निष्ठा एवं प्राप्त साधनों की सूचनाओं को योजित कर, एक रूप खड़ा कर देना, उसके प्रखर बुद्धि-निपुणता का परिचायक है।

कनिंघम सज्जन था। उदार था। विनयी था। प्रियवादी था। ज्ञानकोश था। रचना शक्ति कौटुम्बिक देन थी। शैली वर्णनात्मक थी। वह वैज्ञानिक के स्थान पर साहित्यिक अधिक था। उसने जो कुछ लिखा है, अपने परिश्रम द्वारा अर्जित ज्ञान से, अनुसन्धान से, लिखा है। पुरातत्त्व सम्बन्धी खोजों, उनके वर्णन के समय, साहित्यिक होने के कारण, काल्पनिक बन जाता था। विदिशा के स्तूप के प्रसंग में लिखते समय, जैसा वह हो गया था।

कनिंघम की मृत्यु २८ नवम्बर सन् १८९३ ई० उसके निवास स्थान कार्नले मेनशियन साउथ कोन्सेगटन में लम्बी बीमारी के पश्चात् हो गयी। उसे केनसल ग्रीन कौटुम्बिक सिमेट्री में मिट्टी दी गयी। उसके पीछे उसकी विधवा पत्नी तथा दो पुत्र थे। एक ने पिता के समान बंगाल इंजिनीयर्स तथा दूसरे ने बंगाल सिविल सर्विस में सेवा कर लिया था। उसकी मृत्यु के पश्चात् सन् १८९४ ई० में 'क्वाइन्स ऑफ मिडीवल इण्डिया' ग्रन्थ का प्रकाशन हुआ था।

'त'

वुहलर

(सन् १८३७-१८९८ ई०)

लेखक का जीवन चरित्र उसकी रचना है। जीवन मरण घटनावलियाँ केवल तिथियों का क्रम जाल है। उनका सम्बन्ध प्राणियों से रहता है। परन्तु रचनाएँ सबके वश की बात नहीं हैं। रचना द्वारा रचनाकार शताब्दियों तक जीवित रहता है। आने वालों को अनुप्राणित करता है। अपनी बात सुनाता है। जब कि कब्र में पड़ी अस्थियाँ दीमकों से चाट ली जाती हैं। राख हो जाती हैं। शायद किसी दिवाल में पुतती हैं। अथवा ईंट बन कर निर्माण के नींव में लगती हैं। अथवा वर्षा जल में बहकर समुद्र में

मिल जाती हैं। भौतिक अस्तित्व लोप कर देती हैं। लेकिन रचनाएँ, भाषा लोगों के बीच शताब्दियों तक रहती हैं।

बुहलर जन्म जात जर्मन था। जुलाई १९ सन् १८३७ ई० के वोरस्टेल में जन्म लिया था। वह एक पादड़ी पुत्र था। वोरस्टेल स्थान नीनवर्ग के समीप है। हेनोवर राज्य में था। वह हेनोवर स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर, गोट्टिन जेन बेनफे का प्रिय शिष्य बन गया। विश्व विद्यालय में सन् १८५५ ई० में शिक्षा प्राप्ति हेतु प्रवेश किया। सन् १८५८ ई० में स्नातक हुआ। पेरिस, लण्डन, तथा ऑक्सफोर्ड संस्कृत पाण्डुलिपियों के अन्वेषण में गया। मूलतः वैदिक पाण्डुलिपि खोजता था।

वैदिक साहित्य में वुहलर की रुचि थी। वह थोड़े दिनों में वेद का अर्थ समझ ने लगा। तत्सम्बन्धी शोध लेख भी प्रकाशित हुआ। वैदिक गाथाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया। उसने अध्ययन किया। किस प्रकार संस्कृत की कथायें, बौद्ध माध्यम से धीरे धीरे एक मंजिल पश्चात् दूसरी मंजिल पार करती पहेलवी, परशियन, अरबी, ईरानी, लैटिन भाषाओं की यात्रा करती आधुनिक यूरोप में आयी थी।

वैदिक भाषा एवं संस्कृत में रुचि होने के कारण जॉर्ज बुहलर भारत आना चाहता था। श्री आर० सीवेल से उसने ऑक्सफोर्ड में इच्छा प्रकट की कि यदि भारत में उसे कोई कार्य मिल जाय तो अच्छा है। श्री हॉवर्ड शिक्षा विभाग के निर्देशक बम्बई प्रदेश में थे। उन्हें श्री सिवेल ने लिखा। बुहलर की नियुक्ति भारत में कराने का वचन दिया। बुहलर जब भारत पहुँचा, तो कोई स्थान खाली नहीं था। श्री हॉवर्ड बम्बई में नहीं थे। बुहलर का दुःखमय समय बीतने लगा। किन्तु वह हतोत्साह नहीं हुआ। उसने श्री सिवेल के एक दूसरे मित्र सर श्री अलेक्जेण्डर ग्राण्ट से परिचय किया। उनकी कृपा से उसकी नियुक्ति उस स्थान पर हो गयी जिसकी कामना बहुत दिनों से कर रहा था।

सन् १८६५ ई० में उसने एलिफेण्टसन कॉलेज में व्याख्यान देना आरम्भ किया। वह सफल व्याख्याता तथा शिक्षक साबित हुआ। भारत की आबहवा अनुकूल न होते हुए भी, उसने लगन से कार्य आरम्भ किया। प्रभावशाली व्यक्तियों से परिचय प्राप्त कर लिया। सर रेमाण्ड वेस्ट ने उसे हिन्दू ला डाइजेस्ट संग्रह के लिये सहयोगी बना लिया। संस्कृत के मूल उद्धरणों को सर रेमाण्ड वेस्ट को दिया। ग्रन्थ सन् १८६७ ई० में प्रकाशित हो गया।

बुहलर और गम्भीर अध्ययन करना चाहता था। सूत्रों का काल उसने वैदिक काल के अन्त में रखा था। वे शकों के भारत आक्रमण के पूर्व थे। सिवेल के आग्रह पर सूत्रों का अनुवाद करने के लिये उद्यत हो गया। दो भागों में आपस्तव, गौतम, वशिष्ठ तथा बौधायन का अनुवाद प्रकाशित हुआ। सिवेल ने अनुवाद पर टिप्पणी तैयार की।

सन् १८८६ ई० में उसने मनुस्मृतिका अनुवाद आरम्भ किया। उसे सर विलियम जोन्स ने सात पण्डितों के सहयोग से शुद्ध किया था। बुहलर के उक्त कार्य उसके पाण्डित्य के लिये पर्याप्त थे। उसने उन्हें अपने मित्रों के कहने पर लिखा था।

प्रश्न उठा। वैदिक तथा सूत्रों के काल में अन्तर क्या था। वह इसलिये उस समय आवश्यक हो गया कि तत्कालीन विद्वान् मनुस्मृति तथा कालिदास का समय सन् ईस्वी से पूर्व मानने लगे थे। विवाद उठ खड़ा हुआ। मनुस्मृति धर्मसूत्र के बाद की रचना है। कालिदास का समम छठवीं शताब्दी अथवा पाँचवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है। संस्कृत के पद्यात्मक ग्रन्थ और भी बाद के हैं।

बुहलर ने इस विवाद का निराकरण किया। संस्कृत में जो सामग्री उस समय उपलब्ध थी। वह गुप्त काल के पूर्व की थी। अलंकृत संस्कृत शैली पूर्व गुप्त कालीन शिला लेखों में मिलती है। काव्यकारों ने अलंकार सूत्र का अनुकरण कर रचनाएँ की हैं। बुहलर के अनुसन्धान से यह सिद्ध हुआ कि साहित्यिक रचनाओं का समय प्रथम शताब्दी बी-सी० से तीसरी शताब्दी ए–डी० रखा जा सकता है। बुहलर का मत है कि तृतीय शताब्दी के पूर्व की रचनाएँ अप्राप्य हैं। पाँचवीं शताब्दी के पूर्व काव्य ग्रन्थों की परम्परा नहीं जाती। उसने सिवेल की भ्रान्ति दूर किया कि वेद का जो काल निर्णय किया गया है वह उससे बहुत पूर्व का है।

सिवेल के 'रेनासा इन संस्कृत लिटरेचर' के अभिवृद्ध संस्करण करने में बुहलर ने सहायता दी। तत्कालीन पाश्चात्य संस्कृत विद्वानों ने उसके संस्कृत ज्ञान एवं शोधकार्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए, उसे अपने समय का प्रकांड विद्वान् माना है।

सिवेल को इसी समय जापान से एक पाण्डुलिपि 'प्रज्ञापारमिता हृदय सूत्र' मिली थी वह पाण्डुलिपि होरीपूजी विहार में सन् ७०० ई० से ही सुरक्षित रखी थी। यह प्रति भारत से चीन होते सम्भवतः सातवीं शताब्दी में जापान पहुँची थी। उन्होंने उसे बुहलर के पास प्रसन्नता पूर्वक भेज दिया। इस प्रकार उस समय विश्व के संस्कृत अनुरागी विद्वानों तथा भारत के भी विद्वानों का केन्द्र बुहलर हो गया था।

इसी समय पेरिस से अश्वघोष कृत 'बुद्ध चरित' की एक जापानी स्नातक ने पेरिस प्रतिलिपि की। वह प्रतिलिपि भी बुहलर के पास भेजी गयी। बुद्ध चरित का चीनी भाषा में भी अनुवाद हुआ था। बुहलर का नाम संस्कृत इतिहास के अध्ययन एवं पांडुलिपियों के संग्रह के सम्बन्ध में अमर रहेगा। यूरोपीय विद्वानों को भी अध्ययन के लिये भारत से पांडुलिपि बुहलर भेजता रहा।

भारत सरकार ने बहुत दिनों पश्चात् उसके गुणों को समझा। उसे संस्कृत पांडुलिपियों के संग्रह का भार दिया। इसके पूर्व ह्विटले स्ट्रोक ने कुछ कार्य इस दिशा में किया था। परन्तु इस अनुसन्धान में बुहलर से आगे अब तक कोई नहीं जा सका है। पांडुलिपियों के साथ ही साथ वह प्राचीन अभिलेखों तथा शिला लेखों मुद्राओं को भी खोजता रहा। उनमें से अनेक ग्रन्थों का सर्व प्रथम ज्ञान विश्व को हुआ। उनके अनुवाद तथा अध्ययन से भारतीय इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ने लगा।

बुहलर अभिलेखों की लिपियों का ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास कर रहा था कि लिपियों का उदय कब और किस प्रकार हुआ था। लिपियों का उदय अचानक नहीं हुआ था। वे शताब्दियों के प्रयास एवं विकास के परिणाम थे। बुहलर ने स्कूलों के निरीक्षक तथा शिक्षक के रूप में भी कार्य किया था।

उसका स्वास्थ्य गिरने लगा। भारत में रहना उसके लिये कठिन कर दिया। वह जरमनी लौट आया। उसका स्वास्थ्य ठीक हो गया। वीयना, आस्ट्रिया में अध्यापक का कार्य करने लगा।

उसने इन्डो-आर्यन भाषा शास्त्र अर्थात् फिलोलोजी के निरीक्षक तथा सम्पादक का काम किया।

बुहलर की दुःखद मृत्यु सन् १८९८ ई० में हुई। उस समय उसकी आयु केवल ६१ वर्षों की थी। वह ८ जुलाई सन् १८९८ ई० लेक कॉन्सटेन्स में नौका विहार सायंकाल कर रहा था। उसका एक डाड़ा लेक में गिर गया। डाड़ा लेने का प्रयास करने लगा कि नाव का सन्तुलन बिगड़ गया। नाव एक करवट हो गयी। लेक की क्रूर शीतल लहरों ने उसे अपनी गोद में ले लिया। जरमनी, इगलैंड, फ्रान्स, भारत

के विद्वानों तथा अपने स्नेहियों के नेत्रों को आर्द्र करता अपने अपार ज्ञान सागर के साथ लहरों में डूब गया।

काश्मीर में संस्कृत पाण्डुलिपियों के अन्वेषण में बुहलर ने स्वयं अपना अनुभव तथा कार्य जनरल आफ दि बोम्बे ब्रांच आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी सन् १८७७ ई० में छपाया था। यह एक ग्रन्थ ही है। उसने अपनी यात्रा का विवरण ९० पृष्ठ परिशिष्ट प्रथम में प्राप्य ८२३ पुस्तकों की तालिका, उनके संक्षिप्त परिचय के साथ ५२ पृष्ठों में, परिशिष्ट दो में उन पाण्डुलिपियों का सार दिया है, जिसे सन् १८७५-७६ ई० में प्राप्त किया था। परिशिष्ट के पृष्ठ ६६ से ८२ तक कल्हण की राजतरंगिणी के अनुवाद का प्रतिरूप दिया है। इसी प्रकार क्षेमेन्द्र के 'रामायण कथा सार', भट्ट भीम का 'रावणार्जुनीय' 'शुकन्तला नाटक', मंख का 'श्रीकण्ठ चरित', क्षेमेन्द्र की 'समयमातृका', 'स्तुति कुसुमांजलि' जयद्रथ की 'हरचरित चिन्तामणि', रत्नाकर का 'हरिविजय', भट्ट कल्लट पुत्र मुकल का 'अभिधावृत्ति मातृका' शोभाकर मित्र का 'अलंकार रत्नाकर', माणिक्यदेव का 'अलंकार शेखर', 'उणादि वृत्ति', अभिनवगुप्त का 'ध्वनालोक लोचन', मम्मट का 'शब्द व्यापार', जयादित्य एवं वामन की 'काशिका वृत्ति', क्षीरस्वामी की 'क्षीर तरंगिणी', शवर स्वामी एवं हर्षवर्धन की 'लिंगानुशासन वृत्ति', 'व्याडी परिभाषा वृत्ति', महक्षपणक की 'एकार्थ ध्वनिनिमंजिनी', मंख का 'मंख कोश', क्षेमेन्द्र का 'नीति कल्पतरु', अपरादित्य देव का—याज्ञवल्क्य का 'धर्मशास्त्र निबन्ध', श्रीधर की 'न्यायकन्दली टीका', जयन्त की 'न्यायकलिका', प्रशस्त का 'प्रशस्त भाष्य', रघुनाथ का 'लौकिक न्याय संग्रह', अभिनवगुप्त की 'भगवद्गीता टीका', अभिनवगुप्त तथा विवेक का 'तन्त्रलोक', अभिनवगुप्त का 'परात्रिंशिका तत्त्व विवरण', 'पराप्रवेशिका', 'प्रत्यभिज्ञा विवृति विमर्शनी', अवधूत का 'भगवद्भक्ति स्तोत्र', अभिनवगुप्त का 'भैरव स्तोत्र', शिवाचार्य का 'विज्ञान भैरवोद्योत संग्रह', भट्ट नारायण तथा क्षेमराज की 'स्तव चिन्तामणि विवृति', वसुगुप्त की 'स्पन्द कारिका', रामकण्ठ का 'स्पन्द विवरण सारमात्र' 'स्पन्द सूत्र', (वामनाचार्य द्वारा सार) क्षेमराज का 'स्वच्छन्दोद्द्योत' का सार दिया है। परिशिष्ट तीन में क्रम ८२४-८३४ तक की पुस्तक तालिका है।

तत्कालीन ब्रिटिश भारत सरकार ने बुहलर को जुलाई १८ सन् १८७५ ई० को आदेश दिया कि संस्कृत पाण्डुलिपियों का वे काश्मीर राजपूताना तथा मध्य भारत में खोज करें। उन्होंने बम्बई से २१ जुलाई को लाहौर के लिये प्रस्थान किया और २५ जुलाई को लाहौर पहुँचे। गुजरात (पंजाब) के लिये २९ जुलाई को प्रस्थान किया। भीमवर तथा पीर पंजाल होते पुराने मुगल मार्ग से काश्मीर के लिये यात्रा की। नौशेरा तथा राजपुरी (राजौरी) में उन्होंने पंजाबी तथा काश्मीरी पण्डितों से बातचीत की। किन्तु प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। अगस्त ११ को श्रीनगर पहुँचा। मेजर हेण्डरसन ने स्वर्गीय नीलाम्बर मुकर्जी द्वारा बनाई स्थानीय पुस्तकालयों तथा पाण्डुलिपियों के विषय में एक स्मृति पत्र दिया।

दीवान कृपाराम से उन्होंने १३ अगस्त को भेंट किया। उन्होंने बुहलर का परिचय काश्मीर के पण्डितों से कराया। अगस्त १४ को काश्मीर राज श्री रणवीर सिंह से साक्षात् किया। महाराज स्वयं संस्कृत जानते और समझते थे। उन्हें वेदान्त तथा धर्मशास्त्र का अच्छा ज्ञान था। धर्मशास्त्र पर उन्होंने लिखा भी था। उन्होंने श्रीनगर के ब्राह्मणों को हर प्रकार की सहायता देने के लिये आदेश दिया। अगस्त १५ को काश्मीर के पण्डितों का एक दल बुहलर से मिला। काशीराम तथा दयाराम पंडित से बुहलर को बहुत सूचनायें प्राप्त हुईं। पंडित दयाराम को काश्मीर के भूगोल का ज्ञान था। उनके पिता पंडित साहिबराम को काश्मीर इतिहास आदि का अच्छा ज्ञान था। दयाराम की सहायता से राजतरंगिणी में वर्णित अनेक स्थानों

का पता बुह्लर को लग गया।

बुह्लर ने विल्हण के विक्रमांक देव चरित का सम्पादन किया। विल्हण के निवास स्थान खोनमुख देखने की इच्छा हुई। उन्होंने यह भी सूचना दी कि काश्मीरी गत्यूति एक कोश नहीं दो कोश की होती थी। बुह्लर ने खोनमुख की सर्वप्रथम यात्रा की। बुह्लर ने लिखा था 'खोनमुख में दो आबादी थी। दोनों में ५० या ६० मकान थे। एक दूसरे के ऊपर पर्वत की ढाल पर बसे थे। पर्वत का उत्तरीय किनारा जिसे भश-सर कहते थे, उससे तीन सौ फिट ऊँचाई पर एक झरना था। उसके समीप कुछ चिनार के वृक्ष थे। स्रोत के मुख पर एक शिला खंड रखा था। उस पर शारदा लिपि में प्रतिष्ठा का उल्लेख था। यह सप्तर्षि किंवा लौकिक वर्ष ५१ था। एक सौ फिट की ऊँचाई पर भुवनेश्वरी का कुंड था। पास ही में पुरोहित का मकान भी था। पर्वत शिखर पर हर्षेश्वर का मन्दिर था। खोनमुह के पूर्वीय पर्वत से एक छोटी नदी गर्मी में बहती थी। यह नदी दो स्रोतों से भी जल प्राप्त करती थी जो उक्त कुंड से निकलते थे। उनमें एक जो खोनमुष के प्रवेश स्थान पर नीचे पड़ता था उसे सोमनाग और जो ऊपर पड़ता था उसे दामोदर नाग कहते थे। दामोदर सोमनाग गन्दा स्रोत था। उसमें एक खंडित शिलालेख रखा था। जो यूनानियों के मृतक स्मारक लेखशिला के समान था। नाग के पास बहुत से शिलाखंड रखे थे तथा उन पर मूर्तियाँ बनी थीं। उसके उत्तरी दीवाल पर दो शिलालेख थे। वे प्रतिष्ठा सम्बन्धी थे। तीसरा शिलालेख पढ़ा नहीं जाता था। आबादी पंडितों तथा मुसलमानों की मिली जुली थी। पंडितों को संस्कृत का ज्ञान नहीं था। पंडितों में फारसी पढ़े कुछ व्यापारी तथा कुछ हर्षेश्वर के पुजारी थे। ऊपरी खोनमुख में एक प्राचीन मन्दिर का खड़हर था। विल्हण ने विक्रमांक देव चरित में जैसा वर्णन खोनमुख का किया था ठीक वैसा ही वहाँ देखने को मिला था।'

विल्हण वर्णित जयवन स्थान वर्तमान जेवन है। मैं खोनमुष दो बार आ चुका हूँ। तक्षक कुंड भी अभी तक मौजूद है। वह सड़क के दक्षिण कब्रिस्तान के पास है। जियारत तथा कब्रिस्तान के समीप बहुत अलंकृत शिला खण्ड पड़े हैं। खोनमुष में केसर की खेती है।

अगस्त १८ को पण्डित बाल कौल लाल पण्डित, दयाराम ज्योतिषी पण्डित गोविन्द कौल, से बुहलर को पाण्डुलिपियों के सम्बन्ध में काफी सूचना मिली। केशवराम पण्डित के यहाँ बुहलर गये। उनके पास राज-तरंगिणी थी। बुहलर पाण्डुलिपियों की सूचना प्राप्त कर २० सितम्बर को नाव से चलकर बारह मूला ३० सितम्बर को पहुँचे।

बुहलर ने यात्रा में विभाटक वृक्ष देखा। वह फलों से लदा था। शादीपुर सम्बल के मार्ग में एक द्वीप नदी में पड़ता है। बुहलर एक पुरानी मसजिद देखने के लिये द्वीप पर उतर गये। छन्दराम पण्डित साथ थे। मसजिद के समीप पुरातन मन्दिरों के गढ़े हुए शिखाखण्ड पड़े थे। छन्दराम पंडित विभाटक वृक्ष छाया पड़ते ही चिल्ला उठे अशुद्ध हो गया। बुहलर के पूछने पर उसने बताया विभाटक वृक्ष में काली का निवास रहता है। वृक्ष १८ या २० फिट से ऊँचा नहीं था। विभाटक का फल जूआ खेलने में प्रयोग होता है। मनसा वल के विषय में बुलहर लिखता है कि मुगलों के निर्माण के बहुत पूर्व काश्मीरियों ने यहाँ निर्माण किया था। मनसा लेक के पूर्वीय तट पर एक बौद्ध मन्दिर था। जहाँ एक स्रोतस्विनी पर्वत से आती है। विक्रमांक देव चरित में मनसावल का वर्णन विल्हण ने किया है। (विक्र० : १८ : ५५)

बारह मूला में प्राचीन मन्दिर या देवस्थान नगण्य हैं। तोलाराम पंडित पुरोहित से बारहमूला के विषय में सूचनाएँ बुहलर को मिली थीं। कोटिमर वहाँ पर एक आधुनिक मन्दिर था। आदि वाराह के मूल

स्थान पर सिखों ने एक धर्मशाला बना ली है। दो पुराने सूर्य तथा चन्द्र कुण्ड थे। गुप्त गंगा भी। मन्दिर के प्रांगण में प्राचीन मन्दिरों के शिलाखण्ड, स्तम्भ, मूर्धा, तथा अप्सरा, मूर्तियाँ रखी थीं। यहाँ एक लेखस्तम्भ मन्दिर के दूसरी तरफ से नदों में मिला था। उस पर शारदालिपि में लिखा था—'ओं सम्बत् ६७....एतस्य दुहिता सुभिक्षुका, बुहलर के मत से यह सती अथवा दिवंगत की स्मृति में बनाये गये थे। इस प्रकार के लेख स्तम्भ राजस्थान तथा काशी में भी बहुत मिलते हैं। गुजरात में जहाँ ठाकुरों की आबादी होती है वहाँ इस प्रकार के स्मारक स्तम्भ प्रत्येक गाँव के बाहर मिलते हैं। उन्हें वहाँ वालियास कहते है। सत्ती का चौरा काशी में कहा जाता है। हुष्कर आदि स्थानों को बुहलर ने देखा। उसे वहाँ के पण्डितों से बौद्धों के सम्बन्ध में केवल इतना ज्ञात हुआ कि काशिका वृत्ति के लेखक जिनेन्द्र बुद्धि का नाम लोगों को अब तक स्मरण था।

बुलहर २७वीं सितम्बर को शादीपुर नहर के द्वारा उलर लेक का खतरा न उठाकर लौटा। लौटते समय द्वारावती देखा। उसके चारों तरफ जल था। नहर के स्तर से अन्दर कोट गाँव का तल तीस फुट ऊँचा था। नहर से अन्दर कोट गाँव तक खड़पा लगा मार्ग था। वहाँ झण्डे तथा अलंकृत शिला खण्ड पड़े थे। गाँव में जाते समय बुहलर को दर्जनों टूटे मन्दिर के ध्वन्सावशेष पड़े मिले थे। बहुत सी मसजिदें भी थीं। ईंटें तोड़े मन्दिरों के शिलाखण्डों से बनायी गयी थीं। बुहलर के मार्ग दर्शक छन्दराम ने बताया। स्थानीय लोग कहते हैं। मन्दिर जयापीड का निर्माण कार्य था। स्थान का नाम अन्दरकोट नहीं बहिर्कोट था।

जिस अधित्यका पर बहिर्कोट स्थित है वह आधा से चौथाई मिल लम्बी तथा चार या पांच सौ गज चौड़ी थी। अर्धचन्द्राकार थी। दक्षिण में शादीपुर नहर, उत्तर, पश्चिम और दक्षिण सुम्बल लेक जल था। लेक तथा नहर दोनों का जल मिला था।

उत्तरी तथा पूर्वीय सीमा पर पत्थर की दिवालों का चिन्ह दिखायी पड़ता था। ध्वन्स मन्दिर अधिकतया अधित्यका के तट पर बने थे। उत्तर-पूर्व तथा कुछ उत्तर के तट से दक्षिण तट तक थे। पश्चिमी किनारे पर गढ़े और अनगढ़े बहुत शिला खण्ड रखे थे। उनसे प्रमाणित होता था। वहाँ पर भी बड़ा मन्दिर बना था। अधित्यका के अन्य भाग पर भी फर्स लगे मार्गों के चिह्न मिलते थे। वहाँ कूप, छोटे कुण्ड तथा अनगढ़ बहुत से पत्थरों का समूह था जिससे मालूम होता था कि वे रहने के मकान थे।

उत्तर ओर इस अधित्यका से अन्दरकोट जाने के लिये ठोस पुल बना था। इस समय यह गिरा पड़ा था। उनके मध्य से जल बहता था।

बुहलर २८ तथा २९ सितम्बर को अन्दरकोट तथा बहिर्कोट के ध्वन्सावशेषों को देखता शिला लेख खोजता रहा। अधित्यका के पश्चिमो कोण पर पत्थरों का ढेर पड़ा था। खोजने पर भी कोई अभिलेख नहीं मिला। शिला खण्ड पर विष्णु मूर्ति देखकर, सहज अनुमान लगाया जा सकता था कि वहाँ विष्णु मन्दिर था। कल्हण के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि बाह्य कोट द्वारावती तथा अभ्यन्तर कोट अन्दरकोट था।

सितम्बर ३० को बुहलर काश्मीर लौट आये। उसने २० दिन तक श्रीनगर में रहकर प्राप्त पांडुलिपियों की तालिका आदि बनाया। जेथर, गुपकर, डल, हरवान, सुरेश्वरी तीर्थ तथा शंकराचार्य मन्दिर भी देखा। बुहलर ने वर्तमान श्रीनगर को ही प्रवरपुर माना है। उसने दिद्दामठ (दिदमर), शारिका पर्वत तथा श्रीनगर के अन्य प्राचीन स्थानों को देखकर उन्हें कल्हण वर्णित स्थानों से मिलाने का प्रयास किया।

उसने मुसलमानों के इस मत का खण्डन किया है कि शंकराचार्य पर्वत तख्त सुलेमान था। सुलेमान

का अभभ्रंश सन्धिमान नहीं माना है । बाल कौल के पुत्र पं० गोविन्द कौल ने सन्धिमान से सम्बन्धित किवदन्ती को गलत माना है । शंकराचार्य मन्दिर को वे गोपाद्रि मन्दिर मानते हैं ।

अक्टूबर २० को बुहलर ने काश्मीर से प्रस्थान किया । उसने ३०० पाण्डुलिपियों का संग्रह किया था । उन दिनों बनिहाल मार्ग महाराज काश्मीर की निजी सडक मानी जाती थी । वह आम सड़क नहीं थी । बुहलर ने राजा से सड़क से जाने की अनुमति प्राप्त की । यह मार्ग इसलिये चुना कि वह काश्मीर के पूर्वीय भाग को अभी तक नहीं देख सका था ।

उसने २० अक्टूबर को नाव से अपने मार्ग दर्शक छन्दराम के साथ यात्रा आरम्भ की । साथ में तीन बक्सों में बन्द पाण्डुलिपियाँ थीं । साथ एक मुसलिम मुन्शी भी लिया । जिसे काश्मीरी भाषा का अच्छा ज्ञान था । उसने वामपुर, अवन्तिपुर, विजयेश्वर, अनन्तनाग, तथा वेरी नाग में मन्दिरों के ध्वन्सावशेषों को देखा । उसने विजयेश्वर के पश्चिम स्थित चक्रधर के स्थान को देखा । इस समय उजाड़ था । लोगों से मालूम हुआ कि किसी समय चक्रधर आबाद था । यहाँ पर शक तथा काबुल के सिक्के प्रचुर संख्या में मिलते थे । बुहलर ने विजयेश्वर में स्वयं ५०० मुद्रायें खरीदी थीं । वे चक्रधर में प्राप्त हुई थीं । उसे बताया गया कि पहले चक्रधर में स्वर्ण तथा रजत मुद्रायें बहुत मिलती थीं ।

बुलहर २५ अक्तूबर को वेरी नाग पहुँचा और २५ अक्तूबर सन् १८७५ ई० को काश्मीर त्याग दिया ।

बुहलर पहला विद्वान् है । जिसने राजतरंगिणी की नागरी लिपि की प्रतिलिपियों के स्थान पर शारदा लिपि की प्रतिलिपियों की मान्यता दिया था । उसने यह प्रमाणित किया कि नागरी पाण्डुलिपियाँ शारदा की एक ही पाण्डुलिपि की प्रतिलिपियाँ मात्र है ।

उसने राजतरंगिणी के पाठ को शुद्ध करने की एक नवीन दिशा तत्कालीन विद्वानों को दी थी । उसने यह भी मन्तव्य प्रकट किया कि कल्हण को समझने के लिये काश्मीर के भूगोल तथा वहाँ के स्थानों का ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक था । बिना भौगोलिक ज्ञान के कल्हण का तात्पर्य समझना कठिन था । उसने काश्मीर का भूगोल समझने के लिये नील मत पुराण, तीर्थों, माहात्म्यों आदि ग्रन्थों के अवलोकन एवं अध्ययन को अनिवार्य माना । कल्हण की शैली, तथा भाषा कठिनाइयाँ तत्कालीन काश्मीर लेखकों के साहित्य एवं अध्ययन से सरल हो जाती हैं । उसने कल्हण के अध्ययन के लिये जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, उसके अनुकरण से कल्हण का भाव स्पष्ट प्रकट हो जाता है । वे भारतीय तथा काश्मीर इतिहास को पुरातन साहित्य के सन्दर्भ में समझने के लिये मार्ग दर्शन करते हैं । उसने अनुवादकों के लिये राजतरंगिणी के कुछ श्लोकों का अनुवाद भी कर प्रारूप उपस्थित किया है । किस प्रकार भविष्य में अनुवाद का गुरुतर कार्य उठाकर उसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है । उसने इस कार्य को अत्यन्त कठिन बताया था । परन्तु श्रीस्तीन ने अपने परिश्रम से उसे पूरा किया है ।

परिशिष्ट

'ठ'

डॉ. सर मार्क औरेल स्तीन

(सन् १८६२-१९४३ ई०)

उस महापुरुष, उस विदेशी का जीवन वृत्त लिखने में लेखनी उत्साहित होती है। उसे स्मरण कर मस्तक आदर से नत होता है। उसका जीवन किसी योगी से, किसी तपस्वी से कम नहीं था। वह स्वेच्छया ब्रह्मचारी था। साधन सम्पन्न होने पर भी विवाह नहीं किया। समस्त जीवन पुरातत्त्व अन्वेषण में, लुप्त जातियों, लुप्त नगरों, लुप्त देशों, लुप्त संस्कृतियों, लुप्त सभ्यता, लुप्त स्मृति को पुनः जागृत करने का अथक प्रयास किया है।

उसने जगत् में अपने लिये मकान नहीं बनाया। धन संचय नहीं किया। विश्व में सम्पत्ति नाम की कोई चीज़ नहीं रखी। असंग्रही था। निरपेक्ष था। एक क्षण के लिये नहीं सोचा। उसका अन्त कैसे बीतेगा? कल उसका क्या होगा? उसकी जन्म भूमि हेंगरी थी। कर्म भूमि पुरातन आर्य भूखण्ड था। उसकी मृत्यु भूमि आवानी (अफगानिस्तान) था।

वह थकना नहीं जानता था। आराम करना नहीं जानता था। अस्सी वर्ष की आयु में भी वह लण्डन से आया अफगानिस्तान के खड़हरों में खोजने अतीत की कहानी। वहीं उसने आँख मूँद ली। उसकी कब्र बनी ईसाइयों के एक कब्रिस्तान में। शास नोड़ा काबुल के अमेरिकी दूतावास में जहाँ कोई उसका परिचित नहीं था। सगा सम्बन्धी नहीं था।

दुःख में उसे किसी ने सन्तोष नहीं दिया। उसके लिये उसके शव पर किसी ने दो बूँद आँसू नहीं बहाया। उसने इसकी अपेक्षा भी नहीं की थी। वह इसी में प्रसन्न था। वह आर्य था। आर्य देश में कल्पना मय जगत् में विश्राम कर रहा था।

उसने एक उद्देश्य के साथ जीवन आरम्भ किया था। वह उद्देश्य ही उसके सम्बन्धी थे, साथी थे, सब कुछ थे। उस उद्देश्य पूर्ति की कल्पना में इस विश्वास के साथ श्वास तोड़ दिया कि उसके छोड़े कार्य को जगत् आगे बढ़ायेगा।

वह संस्कृत में बोलता था एक सुसंस्कृत संस्कृत पण्डित के समान। वह खरोष्ठी पढ़ता था, ब्राह्मी पढ़ता था, वह क्या नहीं पढ़ सकता था? यह सोचना पड़ेगा। किन्तु उसने कभी गर्व नहीं किया अपनी विद्या पर। उसने गर्व नहीं किया, अपने पद पर। उसने गर्व नहीं किया, अपने कार्य पर।

वह विनयी था। विनय मूर्ति था। सरल मूर्ति था। सादगी का प्रतिबिम्ब था। उसके साथी यूरोपियन नहीं बने। उसके साथी धनी नहीं बने। उसके साथी शासक नहीं बने। उसके साथी बने गरीब। उसके साथी बने ग्रामीण। उसके साथी वे सब बने, जिनसे वह जिज्ञासा करता था। जिनके मन में बैठ कर, उनकी बात जान लेता था।

उसके साथी यूरोपियन नहीं थे। निष्ठावान भारतीय सर्वेक्षक उसके साथी थे। लाल सिंह, साम सिंह तथा अफजल खाँ पठान उसके साथी थे। स्तीन का यहाँ छोटा सा समाज था। उनसे बातचीत करता। वे भी चार जनों जितना अकेले काम करते थे।

आस्ट्रिया हंगरी साम्राज्य का नागरिक था। उसकी भाषा न अँग्रेजी थी, न जर्मन थी, व अरबी और न फारसी थी। किन्तु उसने संस्कृत सीखी, अरबी सीखी, फ़ारसी सीखी, अंग्रेजी सीखी, फ्रान्सीसी सीखी, काश्मीरी सीखी, पुश्तो सीखी, जर्मन सीखी। शायद उसकी भाषा सीखने की सीमा न थी।

वह जीवन में कभी बीमार नहीं पड़ा। उसे कभी किसी ने कष्ट में नहीं देखा। उसे कभी किसी ने उदास नहीं देखा। वह था, कद का नाटा। परन्तु शरीर सन्तुलित था। शरीर से काम लेता था। शरीर उसका साथ देता गया। कर्तव्य के प्रति निष्ठा, उसमें उत्साह भरता गया। दृढ़ निश्चय ने उसे कठोर परिश्रमी बना दिया था। उसकी शक्ति एवं तितिक्षा की जैसे कोई सीमा नहीं थी। वह अपने शरीर पर भी दया नहीं करता था। किसी ने उसे जीवन पर्यन्त शिथिल नहीं देखा।

सन् १९०८ ई० में उसका पैर का अँगूठा कूनलून पास बीस हजार फिट की ऊँचाई के यात्रा काल में तुषार के कारण खराब हो गया था। वह जबर्दस्ती चलता लेह के मोरवियन अस्पताल में ३०० मिल की यात्रा समाप्त करता पहुँचा। उसका दाहिना पैर का अंश काट दिया गया ताकि शेष पैर की रक्षा हो सके और वह पंगु न हो जाय। तथापि पर्वरोहण में अपने सिख तथा पठान साथियों से पीछे कभी नहीं रहता था। छोट कद, वृद्धावस्था तथा पैर की खराबी के होने पर भी वह आगे रहता था।

सन् १९१४ ई० में जब वह नन-शान में अन्वेषण कर रहा था उसका घोड़ा भड़क उठा। पीछे हटते हुए स्तीन के ऊपर ही वह गिर पड़ा। उसकी जाँघ बेकाम हो गयी। उसे कुछ दिनों तक अस्पताल में रहना पड़ा।

स्तीन की गले की हड्डी अर्थात् कालर वोन दो तीन बार पर्यटन कालीन घटनाओं में टूट गयी थी। सन् १९३७ ई० में उत्तर पश्चिम ईरान में काम बन्द कर वीना (आट्रेटिया) में आपरेशन कराना पड़ा था। किन्तु यह सब कष्ट एवं घटनाएँ उसे अपने कार्यों से विरत नहीं कर सकीं।

वह अपना कैम्प काश्मीर एवं सिन्ध घाटियों में ग्यारह हजार फिट ऊँचे पर लगाता था। थकने पर अपने गोल बिस्तर के बण्डल पर उठंग कर आराम कर लेता था। यही उसकी आरामकुर्सी होती थी। अध्ययन या विषय में सन्देह होने पर श्रीनगर आता था। काम समाप्त होते ही वह पुनः कैम्प में लौट आता था। दिन में काम करता था। रात्रि में लिखता था। मित्रों को पत्र लिखता। उसके परिचायक, सेवक मार्ग दर्शक जब सोते थे तो वह जागता था। काम करता था। वह सेवकों तथा साथियों से कभी जोर से नहीं बोलता था। उनसे विनम्र व्यवहार करता था। उनके आराम की चिन्ता रखता था, जब कि स्वयं बँधे गोल बिस्तरे पर विश्राम करने लगता था। वह 'नहीं' से हताश नहीं होता था। कुछ समय पश्चात् 'नही' से लड़ने के लिये सोत्साह उद्यत हो जाता था।

उसके सरल स्वभाव, एवं सादे व्यवहार से अपरिचित तथा उसकी भाषा न जानने वाले सामान्य, अशिक्षित दुनियां की नयी रोशनी से दूर रहने वाले व्यक्ति भी आकर्षित हो जाते थे। उसकी सहायता करने में उत्साह का अनुभव करते थे। उसका धैर्य, उसकी निश्चयात्मक बुद्धि, विस्तार पूर्वक किसी वस्तु के अध्ययन की अद्‌भुत स्मरण शक्ति, भगवान् की देन थी। मित्रों, परिचितों तथा किंचित् मात्र भी सहायता कर देने वालों के प्रति विनय पूर्वक तुरन्त आभार प्रकट करने के कारण वह सहज ही दूसरे के दिल पर काबू पा लेता था।

स्तीन को भगवान् ने विशेष रूप से अध्ययन एवं अनुसन्धान शील बनाया था। उसकी स्मरण शक्ति

बहुत ही तेज थी। वह भूतकालिक घटनाओं को विस्तार के साथ स्मरण रखता था। वह योजना विस्तार के साथ बनाता था। वह मितव्ययिता, श्रम एवं आय-व्यय पर सतर्क दृष्टि रखता था। सब जाति, धर्म, सम्प्रदाय एवं देश प्रदेश के मनुष्यों से अपरिचित होने पर भी अपनी व्यवहारकुशलता के कारण सबका प्रिय पात्र बन जाता था। वह एकान्तप्रिय था। अपने को प्रकट करने की उसे कभी इच्छा नहीं होती थी। वह उदार तथा सहानुभूति पूर्ण हृदय वाला व्यक्ति था। वह मित्र बनाता था और मित्रता का निर्वाह करता था। वह कार्यों में व्यस्त होने पर भी पत्रों का उत्तर तुरन्त देता था। पत्र व्यवहार बन्द नहीं करता था। उनसे वह लोगों पर छाप छोड़ता था। कि वह मित्रों के दैनिक एवं कौटुम्बिक जीवन जानने में रुचि रखता था। वह जल्दी जल्दी तथा साफ अक्षर लिखता था।

वह किसी तथ्य पर बहुत जल्दी पहुँचता था। उसकी बुद्धि विश्लेषणात्मक थी। इस प्रवृत्ति के कारण जीवन में इतने बिस्तृत भूखण्डों का भ्रमण तथा इतने थोड़े समय में जो कुछ लिखा है, वह अद्‌भुत कार्य कहा जायगा।

कष्ट का अनुभव नहीं किया। उसे कुलीन समाज का वैभव, आमोद प्रमोद आकर्षित नहीं कर सका। वह अपने काम में इतना तल्लीन था कि उसे अन्य विषयों को सोचने की फुरसत नहीं थी। वह अपना एक मिनट समय व्यर्थ नहीं खोता था।

जीवन सम्बन्धी आवश्यकतायें इतनी स्वल्प थीं कि उसे कभी किसी ने अपने सुख के लिये, आराम के लिये, कुछ करते नहीं देखा था। वह अपने आपको अपने उद्देश्य के लिये समर्पित कर दिया था। वह अपने आप में, अपने काम में तुष्ट था। इस महान् व्यक्ति के विषय में कुछ लिखने में लेखनी गौरव का अनुभव करती है। उसका जीवन वृत्त स्वतः एक दर्शन है। उस दर्शन का दर्शन कौन नहीं करना चाहेगा?

श्रीस्तीन का जन्म २६ नवम्बर सन् १८६२ ई० में बुडापेस्ट में हुआ था। नाथन स्तीन का द्वितीय पुत्र था। उसकी माता का नाम अन्ना था। वह मार्क हिरश्चेलर की कन्या थी। हिरश्चेलर गूढ़वादी पुरातत्त्वविद् तथा हंगरी की द्वितीय सभा का सदस्य था।

जन्म के समय स्तीन की माता की आयु ४५ वर्ष तथा उसके पिता की आयु माता से अधिक थी। स्तीन के माता की सन् १८८७ ई० में मृत्यु हुई थी। तत्पश्चात् पिता का देहावसान सन् १८८९ ई० में हो गया। उसका परिवार बिखर गया।

पब्लिक स्कूल बुडापेस्ट तथा ड्रेसडेन में शिक्षा प्राप्त की। उसने वीना विश्वविद्यालय तथा लिपजिग विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त की थी। भारतीय तथा ईरानी अध्ययन की प्रवृत्ति के कारण वह टुविन जेन विश्वविद्यालय में अध्ययन आरम्भ किया। वह आर. बोन रोथ के अन्तर्गत अध्ययन आरम्भ किया। सन् १८८३ ई० में पी. एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। उसने रुडोल्फ बॉन रोथ से परशियन तथा भारतीय पुरातत्त्व की शिक्षा ग्रहण की थी।

स्तीन डाक्टरी की उपाधि लेने के पश्चात् सन् १८८४ ई० में इङ्गलैण्ड आया। उसने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास, भाषाओं तथा प्राच्य पुरातत्त्व का अध्ययन किया। ब्रिटिश म्युजियम में भी उसने अध्ययन किया था। सन् १८८५ ई० में वह बुडापेस्ट लौट आया। लूडोवीसियम में वालिण्टीयर शिक्षा प्राप्त किया। इसी काल में उसने सैनिक एकाडेमी में सर्वेक्षण तथा भूगोल का ज्ञान प्राप्त किया। जो उसे आगे चल कर वरदानस्वरूप सिद्ध हुआ। इंगलैण्ड में निवास करते समय वह सर एच. लारिन्सन से

प्रभावित हुआ। लारिन्सन ने उसे भारत में सेवा वृत्ति अपने प्रभाव से दिला दी। सन् १८८८ ई० में वह ओरियण्टल कॉलेज लाहौर का प्रिन्सपल नियुक्त किया गया। यहाँ उसने भूगोल तथा भाषाओं का अध्ययन भी किया।

स्तीन की पहली काश्मीर यात्रा सन् १८८८ ई० में हुई थी। वह काश्मीर मण्डल के ध्वन्सावशेषों, परम्परा तथा इतिहास से बहुत प्रभावित हुआ। उसने इसी समय राजतरंगिणी पर रचना करने का विचार किया। उसने काश्मीर की दूसरी बार यात्रा सन् १८८९ ई० में की थी। पुरातत्त्व सम्बन्धी ध्वन्सावशेष बिखरे पड़े थे जो काश्मीर इतिहास पर प्रचुर प्रकाश डालते थे। काश्मीर के इतिहास के प्रतीक थे।

काश्मीर का सम्पूर्ण दर्शन जगत् को कराना चाहता था। सन् १८९२ ई० में उसने राजतरंगिणी का क्रिटिकल संस्करण प्रकाशित किया। स्तीन ने कल्हण वर्णित स्थानों को देखा। उसके मन में कल्हण के वर्णन तथा प्राचीन ध्वन्सावशेषों तथा स्थानों को मिलाकर कल्हण की प्रामाणिकता प्रमाणित करते हुए, विस्तृत ग्रन्थ लिखने की इच्छा हुई। राजतरंगिणी का क्रिटिकल संस्करण प्रकाशित होने पर उसका विचार और दृढ़ हो गया कि उसके नव प्रकाशन से इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ेगा।

दशमी अन्तर्राष्ट्रीय पुरातत्त्वविदों की कांग्रेस ने स्तीन के विचारों का आदर करते हुए पंजाब विश्वविद्यालय तथा काश्मीर डोगरा राज दरबार को लिखा कि स्तीन को अनुसन्धान की सुविधा दी जाय। कांग्रेस की संश्रुति पर स्तीन को वांछित सुविधायें प्राप्त हो गयीं। सन् १८९५, १८९६ तथा १८९८ ई० में उसे ग्रीष्म अवकाश के साथ ही साथ दो-दो मास का और अवकाश दिया गया, ताकि वह अपने अनुसन्धान में अधिक समय दे सके। इस सुविधा के कारण स्तीन ने पुस्तक की मूल योजना में परिवर्तन किया। प्रथम योजना थी कि भूमिका तथा कुछ परिशिष्टों के साथ कल्हण की राजतरंगिणी प्रकाशित कर दी जाय।

पुरानी योजना में आमूल परिवर्तन कर, अनुवाद, भाष्य, परिशिष्ट तथा ऐतिहासिक उद्धरणों एवं भौगोलिक वर्णनों को एक साथ करने की योजना बना ली। उसी योजना का साकार रूप स्तीन की वर्तमान राजतरंगिणी है।

स्तीन के पूर्व विदेशी विद्वानों में डाक्टर बर्नियर (सन् १६६४ ई०), होरेश हेमैन विलसन (सन् १८२३ ई०) एम. ए. ट्रोयर (सन् १८४० ई०), प्रोफेसर लास्सेन, बुहलर, डॉ० ई० हुल्तजस्च, जनरल कनिंघम (सन् १८४६ ई०) तथा जोगेशचन्द्र दत्त (सन् १८७९-८७ ई०) को काश्मीर सम्बन्धी रचनाएँ तथा निबन्ध प्रकाश में आ चुके थे।

बुहलर के अनुवाद के प्रतिरूप से स्तीन अधिक प्रभावित था। उसने उसी को आदर्श मानकर, उसी शैली को आधार मान कर, अनुवाद करने की योजंना बनायी। स्तीन ने पुरानी पाण्डुलिपियों के पार्श्व टिप्पणियों का अध्ययन किया। उनका मूल्य समझा। उनसे स्थानों को पहचानने में सरलता हुई। उनसे पुस्तक लिखने में यथेष्ट सहायता ली। एक पाण्डुलिपि पण्डित राजानक रत्नकण्ठ की थी। पाण्डुलिपि में संशोधन तथा परिवर्धन भी किये गये थे। उनकी पार्श्व टिप्पणी के कारण मूल समझने में सहायता मिली। यह प्रति सत्तरहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लिखी गयी थी। इसी प्रति के आधार पर स्तीन ने सन् १८९२ ई० का क्रिटिकल संस्करण काश्मीर डोगरा दरबार के संरक्षणत्व में प्रकाशित किया था।

स्तीन ने पुरातत्त्व सम्बन्धित काश्मीर की यात्रा के पश्चात् सन् १८९४-१८९६ ई० में पुनः यात्रा की। इस यात्रा में प्राप्त सामग्रियों के आधार पर प्राचीन ध्वन्सावशेषों तथा स्थानों पर जाकर, प्रत्यक्ष

ज्ञान प्राप्त किया। उसे इस यात्रा में काश्मीर को जातियों का ज्ञान हुआ। आर्थिक तथा सामाजिक बातें जनता के सीधे सम्पर्क में आकर जाना, काश्मीर को उसके हृदय में बैठकर देखा। वह पूर्व लेखकों, ग्रन्थों तथा लेख संग्रहों पर अपना ज्ञान आधारित नहीं रखा। उसने प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त किया। इस अनुभव के कारण वह कल्हण के वास्तविक भावों को समझने में सफल हो सका। काश्मीर शेष भारत से प्राकृतिक स्थिति के कारण दूर था। कुछ बातों में यदि पीछे रहा भी तो एक बात में वह यथावत् था। उसकी कहानियाँ, उसके गीत, उसकी विचारधारायें, अपनी बनी रहीं। भारतवर्ष के किसी प्रदेश में दो चार प्राचीन ध्वन्सावशेष होते हैं। उनके अध्ययन द्वारा इतिहास की गुत्थी सुलझायी जाती है। परन्तु काश्मीर में ग्रामों, कसबों और नगरों में ध्वन्सावशेषों के समूह पड़े थे। उनके साथ कोई न कोई कहानी गुथी थी। उनके साथ काश्मीर का इतिहास गुथा था। यह कार्य उस स्थान पर जाकर, वहाँ के लोगों में बैठकर, उनसे पूछ कर, उनका इतिहास जानना आवश्यक था। स्तीन ने इस कार्य को सफलतापूर्वक किया है।

स्तीन को इस कार्य में पं० गोविन्द कौल काश्मीर से विशेष सहायता मिली थी। उनके वंश में काश्मीर परम्परा जीवित थी। वे स्वयं काश्मीर कोश थे। उन्होंने एक काश्मीरी के समान, एक प्राच्य पण्डित के समान, स्तीन को अपनी व्याख्या बतायी। स्तीन ने पश्चिमी विद्वानों एवं पूर्व के विद्वानों की व्याख्या में मौलिक अन्तर देखा। पूर्व का व्याख्याकार आत्मा तक पहुँचता है, परन्तु पश्चिम का व्याख्याकार काया तक ही सीमित रह जाता है। गोविन्द कौल पुरातन शैली के पण्डित थे। संस्कृत तथा काश्मीर के भूगोल तथा इतिहास का ज्ञान था। स्तीन को कल्हण को आत्मा का दर्शन गोविन्द कौल के द्वारा हुआ।

स्तीन ने पुस्तक की पाण्डुलिपि अक्तूबर सन् १८९६ ई० में तैय्यार कर ली थी। ग्यारहवीं अन्तर्राष्ट्रीय पुरातत्त्वविदों की कांग्रेस सन् १८९७ ई० की संश्रुति पर काश्मीर दरबार तथा पंजाब विश्वविद्यालय ने उसे दो मास का अतिरिक्त अवकाश दिला दिया। स्तीन को समय मिल गया तथा सन् १८९८ ई० में उसने राजतरंगिणी की विवेचनात्मक भूमिका लिखी।

सन् १८९९ ई० में जब स्तीन राजतरंगिणी सम्बन्धी कार्य समाप्त कर चुका तो ग्रीष्म ऋतु में पं० गोविन्द कौल का देहान्त हो गया। गोविन्द कौल काश्मीर की पुरानी परम्परा के प्रतीक थे। उनकी मृत्यु से स्तीन ने अपना सच्चा सहायक खो दिया। यही समय उसको प्रसिद्ध पुस्तक एन्शियेण्ट ज्योग्रेफी ऑफ काश्मीर का रचना काल है।

इंगलैण्ड में सर हेनरी पूले तथा सर चार्ल्स रालिन्सन के सम्पर्क में आया। उनके जीवन से स्तीन बहुत प्रभावित हुआ। उनके चरित्र की उसके जीवन पर छाप पड़ी थी।

वह भारत में सन् १८८८ ई० में ओरियण्टल कालेज लाहौर के प्रिन्सपल के साथ ही साथ पंजाब विश्वविद्यालय का रजिस्ट्रार नियुक्त किया गया। इस पद पर सन् १८९९ ई० तक बना रहा। इसी समय उसका परिचय सर चार्ल्स अरनाल्ड, सर एडवर्ड डगलस अकलगन तथा फ्रेज हेनरी एण्ड्रूज़ जो लाहौर स्कूल आफ आर्ट के प्रिन्सपल थे, हुआ। वे सभी महानुभाव स्तीन के जीवनपर्यन्त मित्र बने रहे।

सरकारी कामों से छुट्टी मिलने पर, स्तीन काश्मीर सीमान्त पश्चिमोत्तर प्रदेश में पुरातत्त्व तथा भौगोलिक अनुसन्धान सम्बन्धी कार्यों में समय व्यतीत करता था।

स्तीन का प्रथम काश्मीर सम्बन्धी प्रकाशन कल्हण राजतरंगिणी का शुद्ध पाठ था। यह प्रकाशन (सन् १८९२ ई०) नागरी लिपि में मुद्रित हुआ था। सन् १९०० ई० में कल्हण की राजतरंगिणी—'ए

क्रोनिकल ऑफ दी किंगस ऑफ काश्मीर' प्रकाशित हुई। यह साधारिक तथा गवेषणा पूर्ण कार्यों का परिणाम था। स्तीन ने अनुवाद के साथ भाष्य, टिप्पणी तथा काश्मीर का भूगोल भी लिखा। स्तीन की प्रसिद्धि इस कार्य से भारत तथा विश्व में हुई।

उसने काबुल के शाही राजाओं के ऊपर एक निबन्ध लिखा। अपने पुराने शिक्षक फेस्ट ग्रव एन रुडाल्फ वॉन रॉथ टुविनेग के लिये लिखा था। सन् १८९८ में बूनर फील्ड फोर्स के साथ पर्वतीय क्षेत्रों का सर्वप्रथम भ्रमण किया। वहाँ के पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्रियों को देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ। इस प्रारम्भिक प्रभाव के कारण काश्मीर उसका अध्ययन विषय बन गया।

सन् १८९९ ई० में स्तीन ने भारतीय शिक्षा विभाग की सेवा ग्रहण कर ली। वह कलकत्ता मदरसा का प्रिन्सपल नियुक्त किया गया। किन्तु कुछ ही मास इस पद पर उसने कार्य किया। इस समय अवकाश का समय उसने गया तथा हजारीबाग जिला में व्यतीत किया। यहाँ भ्रमण कर उसने चीन यात्रियों द्वारा उल्लिखित स्थानों का पता लगा कर स्थान निश्चय किया। यह अनुसन्धान इण्डियन एण्टीक्वेरी सन् १९०१ ई० में प्रकाशित हुआ है। मध्येशिया के पुरातत्त्व सम्बन्धी सर्वेक्षण की उसने योजना बनायी। उसे पंजाबी मित्रों तथा अन्य सहयोगियों का सहयोग मिला।

सन् १९०० ई० मार्च में ३७ वर्ष को अवस्था में उसने अपनी प्रथम मध्येशिया की यात्रा आरम्भ की। तत्पश्चात् ४२ वर्षों तक स्तीन पुरातत्त्व अनुसन्धान एवं शोध कार्यों में दत्तचित्त लगा रहा। उसके अनुसन्धानों का वर्गीकरण चार वर्गों में किया जा सकता है ?

(१) मध्येशिया यात्रा—सन् १९००-१६०१, १९०६-१९०८ तथा १९३० ई०।

(२) बलूचिस्तान तथा ईरान की यात्रा की। उसने सिन्धु सभ्यता को इफरेरीज (फुरात) से जोड़ा। यह कार्य उसका सन् १९२७-१९३६ ई० में हुआ था।

(३) स्तीन ने सिकन्दर के आक्रमण एवं युद्ध मार्ग की व्याख्या की। कि किस प्रकार (ईस पूर्व ३३१-३२३) वह अखेल के युद्ध के पश्चात् बेवलोन पहुँचा था।

(४) स्तीन ने पार्थिया तथा रोम साम्राज्य की सीमा का परीक्षण कर एक निश्चित मत पर पहुँचने का प्रयास किया। उत्तरी इराक तथा जज़ीरा में उसने अनुसन्धान अपने जीवन के उत्तर काल में किया था।

स्तीन ने अपनी यात्रा में केवल एक ही मार्ग का अनुगमन नहीं किया था। वह सर्वदा नवीन मार्गों से मध्येशिया आदि स्थानों में पहुँचता था। सर्वदा नवीन मार्गों द्वारा अनुगमन करने के कारण उसे नवीन भूखण्डों, नवीन जातियों तथा नवीन स्थानों को देखने, उनके अध्ययन करने का, अवसर मिलता था। उसने तुर्किस्तान, गिलगिट, तद्य, डम्वास, पामीर, पेशावर, मलकन्द, स्वात, चित्राल, दकोट और वरोधिल पास से यात्रा की थी। दरेल तथा तेगीर के मार्ग को भी पकड़ा था। यह मार्ग अनजान था। इस ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था। पूर्वीय ईरान या फारस तथा सीस्तान की भी यात्रा की।

सन् १९००-१९०१ ई० स्तीन ने प्रथम मध्येशिया की यात्रा लार्ड कर्जन की सरकार के समर्थन से की थी। दन्दन ओरालिक, निया इण्डरे तथा अन्य स्थानों में अनुसन्धान कर उस क्षेत्र के अन्धकारपूर्ण इतिहास को प्रकाश में लाया। इस क्षेत्र के इतिहास को जगत् अभी तक नहीं जानता था।

तकलमकन के दक्षिणी ओसिस शाद्वल किंवा नखलिस्तान का अध्ययन करता, खोतान तक पहुँचा था। वहाँ उसने अद्भुत दृश्य देखा था। वहाँ बालू से ढँके नगरों, ध्वन्सावशेषों तथा नदी तीरवर्ती स्थानों से

खरोष्ठी, चीनी, पुरानो तिब्बती तथा अन्य अज्ञात लिपियों में प्राप्त किया। यहाँ का वर्णन सर्वप्रथम 'सैण्ड वरिड रुइन्स ऑफ खोतान' (सन् १९०३ ई०) में उसने किया था। वहाँ के वैज्ञानिक अध्ययन पर उसकी पुस्तक एन्शियेण्ट खोतान दो भागों में प्रकाशित हुई है। (सन् १९०७ ई०)

द्वितीय यात्रा उसने सन् १९०६–१९०८ ई० में की। इस बार उसने और गहन कार्य किया। उसने अपना अनुसन्धान क्षेत्र लॉप समुद्री तल स्थान तक बढ़ा दिया। ईशा पूर्व तृतीय शताब्दी के परित्यक्त भीरान में भित्ति चित्र पुरातन परिकल्पना पर आधारित मिली। यहाँ उसे कपड़े तथा घर-गृहस्थी का सामान देखने को मिला। जिनमें कुछ तो प्रथम शताब्दी की थी।

लौ-लन चीनी आबादी का एक पुराना तथा प्रशासकीय केन्द्र था। ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी में आबादी थी। वहाँ उसे खरोष्टी तथा चीनी भाषा में बहुत अभिलेख मिले। उसने लॉप समुद्री तल में पूर्व-कालीन कारवाँ मार्ग को भी ढूँढ़ निकाला। वह मार्ग चीन तथा पश्चिम को जोड़ता था। उसे उत्तर प्रस्तर-युगीय उपकरण, धातुओं के पात्र, गुरिया, (गुटिका) तथा हन वंशीय पुरानी मुद्रायें मिलीं। इस खोज के कारण उसे तुन-हुआंग-सू-चौ, ननशान, इस्तीन गोल द्रोणी, तथा ४०० मील लम्बी सीमा, सीमान्त पर पहरे की चौकियाँ आदि इतिहास सम्बन्धी देखने को मिलीं।

स्तीन की महत्त्वपूर्ण खोज सहस्र बुद्ध की गुफा थी। वहाँ से बहुत अभिलेख, पत्र, मन्दिग की पता-काएँ, चित्र आदि मिले। वे सब ग्यारहवीं शताब्दी से दिवालों के अन्दर बन्द थे।

इनका वर्णन स्तीन ने अपने ग्रन्थ सेरेण्डिया के पाँच भागों में किया है। उसकी यह रचना सन् १९२१ ई० की है। इसका एक और सर्वप्रिय संस्करण दो भागों में सन् १९१२ ई० में रुइन्स आफ डेज़र्ज कैथे नाम से हुआ था। सहस्र बुद्ध की गुफा के चित्रों आदि का वर्णन उसने दि थाउजेण्ड बुद्ध (सन् १९२१ ई०) में किया है।

उस समय मुसलिम आक्रामकों तथा उनके जिहाद के उन्माद में अनेक तुर्किस्तान तथा उसके सीमा वर्ती प्रदेशों के बौद्धविहारों तथा देवस्थानों जहाँ के लोग लड़कर मुसलमानों से अपनी रक्षा नहीं कर सकते थे, मन्दिरों एवं विहारों की सम्पत्तियाँ गुफाओं में गाड़कर अथवा गुफा में रखकर बाहर से दिवाल चुनकर, स्थान त्याग देते थे। इस प्रकार की प्रचुर सामग्रियाँ आज भी गुफाओं एवं भूगर्भ में बन्द पड़ी हैं। उनके अनुसन्धान के पश्चात् इतिहास पर नवीन प्रकाश पड़ेगा।

स्तीन की तृतीय यात्रा सन् १९१३–१९१६ ई० में मध्येशिया की हुई। वह इस बार बहुत लम्बी यात्रा ३० डिग्री Registrde तक किया। दरेल से मरुस्थल के दक्षिणी Renge से पूर्व खीटो तक गया। ननशान पर्वत माला से कन-चौ पार करता भयंकर पीशन से दुगेरिया उत्तर पहुँचा। यह यात्रा तीन शन से काशगर अंचल के साथ करता पामीर से होता समरकन्द वहाँ से ईरान होता बलूचिस्तान पहुँचा। उसने मार्ग के सभी स्थानों को पहचाना। उसका यह अनुसन्धान अछूता था। तीनों अनुसन्धानों के कारण पुरा-तन ईरान तथा भारत का प्रभाव चीन के सुदूरवर्ती उजड़े प्रदेशों पर पड़ा उसने प्रमाणित किया।

स्तीन ने अपनी प्रत्येक यात्रा में हजारों मील का भ्रमण किया था। मध्येशिया से वह सैकड़ों बक्सों में सामग्रियाँ भारत तथा इङ्गलैण्ड लाया।

स्तीन सीमान्त पश्चिमोत्तर तथा बिलोचिस्तान का इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ एजुकेशन भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया गया। सन् १९०४ ई० में स्तीन ने बृटिश नागरिकता स्वीकार की। सन् १९१० ई० में भारत

के डाइरेक्टर जनरल आर्कियोलोजी पद पर उसकी नियुक्ति की गयी। इसी पद पर कार्य करते हुए उसने सन् १९२९ ई० में भारत सरकारी सेवा से सेवा निवृत्ति ग्रहण किया। उसकी तीसरी सबसे बड़ी खोज इसी काल में सम्पन्न हुई थी।

स्तीन ने लॉप नॉर तथा इस्तिन गोल की यात्रा की। उसने वहाँ नवीन ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की। कराखोनो पहुँच गया। वहाँ प्रायः जनशून्य उजड़े प्रदेश में ५०० मोल लम्बे क्षेत्र में अनुसन्धान कार्य करता रहा।

स्तीन पी० शन० डेजुन गरिया गया। उसने तूरफान की निचली भूमि में अन्वेषण आरम्भ किया। वह क्षेत्र समुद्र की सतह से एक हजार फिट नीचा है। वहाँ से काशगर पहुँचा। इस प्रकार उसने तलकमन की परिधि पूर्ण की। तत्पश्चात् रूस में प्रवेश किया। उसने अलेयमिर पार किया। ताशकन्द जाने वाले पुराने रेशम कारवाँ मार्ग को खोज निकाला। पूर्वीय फारस से दक्षिण मुड़ता बलुचिस्तान पहुँचा। मार्ग में सीस्तान की हेलमण्ड नदी के द्रोणी में पुरातत्त्व सर्वेक्षण करता गया।

अपनी तृतीय यात्रा में चीनी लाइम्स अथवा चीन के चार सौ मिल विस्तृत किलों तथा दीवालों को देखा। उनका निर्माण ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में सु चौ तथा जेड गेट के मध्य किया गया था। तृतीय यात्रा का वर्णन उसने इन्नर मोस्ट एशिया में चार भागों में किया है। (सन् १९२६ ई०) ।

सन् १९२६ ई० में स्तीन ने उदपान की यात्रा की। यह यात्रा बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई। अनेक बौद्ध स्थानों का स्थान निश्चय करने के पश्चात् बजरिया तथा सिकन्दर के ऐतिहासिकों द्वारा वर्णित अओरनस चट्टान का पता लगा लिया। (इसका वर्णन उसने अपनी पुस्तक 'ऑन अलेक्जेण्डर्स ट्रैक टु इण्डस' में किया है। (सन् १९२९ ई०) प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध (सन् १९१४—१९४५ ई०) का मध्यवर्ती काल रूस में तानाशाही होने के कारण भ्रमण योग्य नहीं रह गया था। इस ओर नहीं बढ़ सका।

सन् १९३० ई० में नानकिंग केन्द्रीय चीन की अनुमति से उसने पुनः योजना बनायी। किन्तु राजनीतिक स्थिति अनुकूल न होने के कारण विचार त्याग दिया। तथापि तलकम मरुस्थल में २ सहस्र मिल का भ्रमण कर, उसने पुरातत्त्व सम्बन्धी बहुत सामग्रियाँ प्राप्त कीं।

अध्ययन काल में स्तीन ने प्राच्य भाषा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया था। वह उसके अनुसन्धानों के समय बहुत काम आया। उसने चीन के इतिहास तथा बौद्धपर्यटकों के वर्णनों को ध्यानपूर्वक पढ़ा। वे उसके लिये लाभदायक सिद्ध हुए।

सर जॉर्ज मार्शल ने सन् १९२३—१९२७ ई० में सिन्धु सभ्यता के चिन्हों को खोज निकाला। इसके पूर्व सन् १९१५—१९१६ ई० में स्तीन ने कुछ पुरातत्त्व सामग्रियाँ पायी थीं। स्तीन सोचता था। उसका यह अनुसन्धान डी० मोदगन के प्राप्त सूसा की पुरातत्त्व खोज तथा वहाँ से प्राप्त सामग्रियों के सदृश था। मेजर मोकलर ने भी मकरान के ग्लदर स्थान पर अन्वेषण किया था। उनके आधार पर उसने अनुमान किया। सिन्ध से ईरान तक, प्राग् ऐतिहासिक काल में एक ही संस्कृति एवं सभ्यता विस्तृत थी। मार्शल के अनुसन्धानों को देखकर स्तीन में नवीन प्रेरणा का उदय हुआ।

स्तीन ने मार्शल के कार्यों को और आगे बढ़ाया। बजीरिस्तान से बलूचिस्तान होते दक्षिणी तथा पश्चिमी फारस की यात्रा की। ईराक की सीमा तक पहुँच गया। यह यात्रा उसने सन् १९२७-१९३८ ई० के मध्य की थी।

परिशिष्ट

सिन्धु सभ्यता का सम्बन्ध इफरेटीज अर्थात् फुरात नदी से जोड़ दिया। उसके मतानुसार सिन्धु सभ्यता भारत से ईराक तक विस्तृत थी। उसकी इन यात्राओं तथा अनुसन्धान का वर्णन 'मेमॉयर्स ए-एस आर्ट आर्कियोलोजिकल रिकोन्सेन्स इन एन डब्लू० इण्डिया एण्ड साउथ वेस्ट ईरान (सन् १९३७ ई०) तथा 'ओल्ड रूटस ऑफ वेस्टर्न इरान (सन् १९४० ई०) ग्रन्थ रूप से प्रकाशित हुआ है।

सन् १९२७ तथा १९२८ ई० में उसने वजीरिस्तान, बलूचिस्तान तथा मकरान की यात्रा की। उसने सुदूर प्राचीन सभ्यता के चिन्हों को खोज निकाला।

स्तीन ने सन् १९२९ ई० में वोस्टन के लोवेल इन्स्टीच्यूट में भाषण दिया। भाषण पुस्तकाकार 'ऑन एन्शिएण्ट सेण्ट्रल एशियन ट्रैक्स' (सन् १९३३) शोर्षक से प्रकाशित हुए हैं।

सन् १९३० ई० मे स्तीन पासपोर्ट प्राप्त करने के लिये नानकिंग (चीन) गया। चौथी बार पुनः मध्येशिया अनुसन्धान की योजना बनायी। उसका विचार हसीन चियांग तथा मंगोलिया के भीतरी भागों में घुसकर अनुसन्धान करने का था। किन्तु चीन सरकार की मूढ़ता के कारण उसे सफलता नहीं मिल सकी। अनेक स्थानों पर तत्कालीन चीन सरकार विरोधी प्रवृत्तियों के कारण रोक लिया जाता था। उसने यात्रा का विचार त्याग दिया। लौट पड़ा।

अपनी लगन तथा पुरातत्त्व रुचि के कारण चन-चून पहुँचा। इस प्रकार उसने दो सहस्र मिलों की यात्रा तलकमन के चारों तरफ की। यात्रा मार्गों का सर्वेक्षण तथा अनुसन्धान किया।

सन् १९३०-१९३३ ई० में स्तीन ग्लदर तथा मकरान होते हुए करमन की यात्रा की। दक्षिण पश्चिम फारस मीनाव से लरिस्तान होते बुशिरे गया। वहाँ उसने अनेक पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज किया। सन् १९३०-१९३४ ई० में फिर प्रदेश में अनुसन्धान कार्य किया। वहाँ प्रस्तर युगीन काल की प्रचुर वस्तुएँ मिलीं।

सन् १९३५ ई० में बख्तियारी तथा लरिस्तान का भ्रमण किया। पश्चिमी फारस करमन शाह से उरमिका अथवा रियाज़देह लेक क्षेत्रों में खोज कार्य आरम्भ किया। इन दिनों अफगानिस्तान, मध्येशिया एवं फारस की राजनीतिक परिस्थितियाँ डांवाडोल थीं। अतएव स्तीन का ध्यान बेवलोन के ऐतिहासिक खोजों की तरफ गया।

पूर्वीय एशिया में स्तीन को अपेक्षित सहायता नहीं मिल सकी। भूयात्रा कठिन थी। हवाई जहाज के माध्यम से पुरातत्त्व सम्बन्धी स्थानों को देखने लगा।

रायल एयरफोर्स ब्रिटेन की सहायता से (सन् १९२९-१९३५ ई०) ईराक तथा जजेरिया में पुरातन रोमन साम्राज्य की सीमा खोज निकाली।

सन् १९३८-१९३९ ई० में उसने उन स्थानों का स्वयं भ्रमण किया। अनेक रोमन ध्वन्सावशेषों को खोज निकाला। जिनका नाम केवल इतिहास में मिलता था। किन्तु उन्हें विश्व जानता नहीं था।

सीरिया में रोमन लाइम का पता पोइदे बर्ड ने लगाया था। चीन की दीवाल का पता लगाते समय उसका ध्यान रोमन लाइम की ओर गया था। स्तीन ने रायल एयर फोर्स के द्वारा प्रारम्भिक पर्यवेक्षण (सन् १९२९ ई०) किया था। सन् १९३८ तथा १९३९ ई० में टिगरिस नदी के उत्तर पश्चिम भूखण्ड स्थित, लाइम को ट्रान्स जार्डन से अकवा की खाड़ी तक देखा।

स्तीन विश्व में पहला व्यक्ति है। जिसने पुरातत्त्व सर्वेक्षण सम्बन्धी कार्यों में वायुयान का प्रयोग

किया था। वायुयान द्वारा सर्वेक्षण तथा पुरातत्त्व अन्वेषण की ओर जगत् का ध्यान आकर्षित किया था। उक्त खोजों का वृत्तान्त अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व लिपिबद्ध किया था।

ईराक आदि स्थानों के अन्वेषण काल में वह सिकन्दर के उन पूर्वीय विजय मार्ग एवं स्थानों को भी खोजने लगा, जिन से होकर सिकन्दर ने सैनिक अभियान किया था। ईराक पर्यटन काल में, उसने उस स्थान का पता लगा लिया, जहाँ से सिकन्दर ने टिगरिस पार किया था।

सन् १९३४ ई० में जब वह उत्तर-पश्चिम फारस-अनुसन्धान कर रहा था तो उसने यूनानी इतिहास लेखकों द्वारा वर्णित भौगोलिक वर्णनों को ध्यानपूर्वक पढ़ा। स्थान निश्चय करने लगा। सिकन्दर के आक्रमण काल का इतिहास लिखने वाले यूनानी रचनाकार एरियन, कुरटिस, तथा दियोदोरस ने घटना क्रमों से जो वर्णन लिखा है, उनका अध्ययन कर स्थानों का खोजकर पता लगाता रहा।

सन् १९२६ ई० में जब स्तीन स्वात प्रदेश में यूनानी तथा बौद्ध ध्वन्सावशेषों की खोज कर रहा था, तो पूर्वकाल वर्णित सिकन्दर के सैनिक मार्ग का अनुकरण किया। उसने सिन्धु नदी के मोड़ को ढूँढ़ निकाला। पुरा भूगोल के आधार पर एओरनोस की चट्टानों का पता लगा लिया।

सन् १९३१ ई० में स्तीन तक्षशिला साल्टरेंज से झेलम मध्यवर्ती भूखण्ड का भ्रमण तथा सर्वेक्षण किया। उसने उस निश्चित स्थान का पता लगा लिया जहाँ पोरस और सिकन्दर का युद्ध हुआ था।

स्तीन के अन्तिम तीन वर्ष सिन्ध, कोहिस्तान, तथा सरस्वती नदी की सूखी धारा का पता लगाने में व्यतीत हुआ। लसवेला स्टेट से जिड्रोसिया के कुछ भागों का पुरातत्त्व सम्बन्धी अनुसन्धान करता रहा।

हुएन्त्सांग के यात्रा विवरण के आधार पर वह स्थानों का पता लगाने लगा। वे विवरण उसके मार्ग प्रदर्शक हुए थे। वह हुएन्त्सांग को अपना संरक्षक सन्त मानता था।

उसने सिन्ध नदी की गहरी घाटी का भ्रमण किया। वहाँ अबतक कोई यूरोपियन नहीं पहुँच सका था। कबीलाई क्षेत्र था। किसी का भी प्रवेश वर्जित था। क्षेत्र उन दिनों बृटिश राज्यान्तर्गत नहीं था।

सन् १९३९ ई० में स्वात के वाली ने उसे सूचित किया। मार्ग सिन्धु नदी के पश्चिम तट तक ठीक हो गया था। वह आ सकता था।

सन् १९४१ ई० अक्तूबर-नवम्बर मास में सिन्धु नदी की गहरी घाटी की यात्रा की। सिन्धु के पश्चिमी तटीय स्थानों का भ्रमण करता अनुसन्धान करने लगा।

सन् १९४२ ई० के जुलाई-सितम्बर मास में उसने अपनी अस्सी वर्ष की आयु में वह लम्बी यात्रा की। किन्तु स्थानीय फकीर के जेहाद के नारे के कारण उसका यह कार्य रुक गया। वह सिन्ध के पूर्वीय तटका पूरा भ्रमण उत्तुङ्ग पर्वत मालाओं और ऊँची चढ़ाइयों के कारण नहीं कर सका।

अक्तूबर सन् १९४३ ई० में उसने काश्मीर से लिखा था। वह एरियाना (अफगानिस्तान) पुरातत्त्व पर बाल्यावस्था से ही रुचि रखता था। इस सम्बन्ध में वह अनुसन्धान करना चाहता था। उसने १३ अक्तूबर को पेशावर से पत्र लिखा था। अफगानिस्तान में कार्य करने के लिये पूर्ण स्वस्थ था। अफगानिस्तान भूखण्ड पर बिखरे अगणित ध्वन्सावशेषों तथा स्थानों का वह पता लगाना चाहता था। उसकी यह इच्छ प्रारम्भ से ही थी। परन्तु इस दिशा में उसका प्रयास सर्वदा विफल होता रहा। अपने दृढ़ाग्रह के कारण पूर्व विचार एवं इच्छा को त्याग नहीं सका।

परिशिष्ट

उसने ८० वर्ष को आयु में पुनः अफगानिस्तान पुरातत्त्व सर्वेक्षण एवं अनुसन्धान की योजना बनायी। और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के काबुल स्थित राजदूत के माध्यम से अफगानिस्तान सरकार से कार्य करने के लिये अनुमति ले ली। वह काबुल १९ अक्तूबर सन् १९४३ ई० को पहुँच गया। किन्तु इस बार भगवान् उसके कार्यों में बाधा डाल दिया। उसकी अन्तिम इच्छा पूर्ण न हो सकी।

उसमें लोगों ने अद्‌भुत उत्साह देखा। दो दिन पश्चात् उसे शीत लग गयी। उसे गल-शोथ था। ब्रॉन काइटिस हो गया। काबुल पहुँचने के ५ दिन पश्चात् २४ अक्तूबर से उसकी बीमारी साघांतिक हो गयी। अक्तूबर २६ को वह अमेरिकन दूतावास में प्राण विसर्जन किया। काबुल में ही वह ईसाई कब्रिस्तान में गाड़ा गया। जिस भूमि के पुरातत्त्व सर्वेक्षण की उसकी अन्तिम इच्छा थी। उसी भूमि की गोद में अन्तिम श्वास लिया।

स्तीन ने जब अपना जीवन आरम्भ किया तो उसके पास कुछ आर्थिक व्यवस्था नहीं थी। जीवन में कभी कोई निश्चित स्थान नहीं बना सका। कोई मकान न तो खरीदा और न बनवाया। इङ्गलैण्ड आने पर एल्लेन ऑफ कारपस ऑक्सफोर्ड में ठहरता था। हँगरी की नागरिकता का त्याग बृटिश नागरिक होने के पश्चात् भी नहीं किया था। यह मृत्यु के पश्चात् अदालत में विवाद का यह विषय बन गया था। मुकदमा सन् १९४६. क्रम संख्या ३३६ है। जिसका निर्णय २ मार्च सन् १९४७ में हुआ।

स्तीन ने जो कुछ धन बचाया था उससे अपने हंगरी के सम्बन्धियों की सहायता की थी। उसने 'स्तीन अरनेल्ड' फण्ड बनाया। अपना संचित धन उसमें दिया। फण्ड का उद्देश्य मध्य तथा दक्षिण पश्चिम एशिया का भौगोलिक एवं पुरातत्त्व अन्वेषण करना था।

स्तीन ने जो कुछ सामग्रियाँ एकत्रित की हैं उनका अध्ययन आदि गत ३० वर्षों से हो रहा है। उसके कार्य में सहायक उसका जीवन सखा एफ. एच. एण्डरूज़ था। उसके सभी अन्वेषण तथा पर्यटन काल में भारत सरकार के सर्वेक्षक उसके साथ रहे और उसकी सहायता करते थे।

स्तीन सन् १९१० ई० में सी. आई. ई. तथा १९१२ ई० में एफ. बी. ए. चुना गया। के. सी. एस. आई. हुआ। फ्रिण्डर्स पेट्री पदक सन् १९२८ में पाया। तथा सर की उपाधि से विभूषित किया गया। १९०४ ई० में रायल ज्योग्रेफिकल सोसाइटी से बैंक ग्राण्ट पाया था। उसका भौगोलिक कार्य ही उसका स्मृति शेष रखने के लिये पर्याप्त है। वहीं से संस्थापक का स्वर्णपदक सन् १९०९ तथा रायल एशियाटिक सोसाइटी से स्वर्णपदक, सन् १९२८ ई० में फिलडर्स पेट्री पदक तथा सोसाइटी आफ एण्टीक्य ने भी सन् १९३५ में स्वर्णपदक द्वारा उसका सम्मान किया था। इनके अतिरिक्त कम्पवेल स्मारकपदक, हक्सले मेडिल्टनपदक, ज्योग्रेफिकल, क्लेरियन सोसाइटी फ्रान्स, हंगरी स्वीडेन आदि स्थानों से अपने विद्वत्तापूर्ण कार्यों के लिये पदक प्राप्त किया था। ऑक्सफोर्ड तथा केम्ब्रिज तथा सैण्ट एड्रूज़ से सम्मानित डिग्रियाँ मिली थीं।

श्री स्तीन की मुख्य रचनाएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) कॉनिकल्स ऑफ किंग्स ऑफ काश्मीर (सन् १९०० ई०)

(२) एन्शिएण्ट खोतान (सन् १९०७ ई०)

(३) इनर मोस्ट एशिया ४ भाग

(४) ओल्ड रूट ऑफ वेस्टर्न ईरान (सन् १९४० ई०)

(५) मेम्वॉयर्स ऑन मैप्स ऑफ चाइनीज़ तुर्किस्तान एण्ड कालूर ४७ मान चित्र
(६) सैण्ड वरिड रुइन्स ऑफ खोतान (सन् १९०३ ई०)
(७) रुइन्स ऑफ डेज़र्ट कैथे २ भाग (सन् १९१२ ई०)
(८) दि थाउसैण्ड बुद्धास् (सन् १९२१ ई०)
(९) आर्कियोलॉजिकल रिकोन्नैस्सेन्स इन वेस्टर्न इण्डिया एण्ड साउथ इस्टर्न ईरान (सन् १९३७ ई०)

मैं स्तीन का संक्षिप्त जीवन चरित लिखकर सो गया। अकस्मात् रात्रि में मुझे स्वप्न हुआ। एक बड़ा हाल है। उसमें गणमान्य लोग उपस्थित थे। श्रीस्तीन के अभिनन्दन हेतु समाज एकत्रित था। मैं भी उनके विषय में कुछ कहने के लिये मंच पर बैठा था। किन्तु श्रीस्तीन कहीं दिखायी नहीं दिये। सभा समाप्त हुई। मैं बाहर निकल रहा था। मैंने श्रीस्तीन को अत्यन्त सादे कुछ फटे कपड़े में उन्हें हाल से निकलते देखा। उन्हें देखकर चकित हो गया। मैंने पूछा आप कहाँ थे ? उन्होंने मुस्कराकर कहा पीछे बैठा था। उससे अधिक मुझे आश्चर्य हुआ कि वह धोती पहने थे। नंगे सर थे। कमीज के ऊपर ओपिन कालर का कोट पहने थे। मेरी आँख खुल गयी। मैं स्वप्नविद् नहीं हूँ। अतएव स्वप्न का रहस्य नहीं बता सकता। श्रीस्तीन के दिवंगत हुए २८ वर्ष बीत चुके हैं। मुझे जो सबसे अधिक प्रभावित किया वह उनका अपने में भूला-भूला गर्वहीन, सरल रूप और सादगी था। जिसका दर्शन किया था। उन्हें जैसे चिन्ता भी नहीं थी कि लोग उनके विषय में क्या कहते और विचार कर रहे थे।

'द'

स्त्री-राज्य

(रा० : ४ : १७५,१८५,५८१,)

स्त्री-राज्य कोरी कल्पना थी, अथवा वास्तव में इस विश्व में कहीं राज्य था, यह विषय यद्यपि विवादास्पद रहा है, परन्तु प्रमाण कुछ मिले हैं, जिनसे उनका अस्तित्व साधिकार प्रमाणित होता है।

महाभारत काल आधुनिक विद्वान् ईसा पूर्व १२०० वर्ष मानते हैं। परन्तु यह भ्रामक है। महाभारत वास्तव में ईसा पूर्व ३०७६ वर्ष में हुआ था। विश्व साहित्य में इस दृष्टि से स्त्री राज्य का सर्वप्रथम उल्लेख महाभारत (वन पर्व : ५१ : २५) में मिलता है। तत्पश्चात् यूनान तथा रोम के इतिहासकारों ने उसका उल्लेख किया है। अन्तिम उल्लेख कल्हण की राजतरंगिणी (सन् ११४७–११४९ ई०) में मिलता है।

महाभारत के अनुसार राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था। उस यज्ञ में देश एवं विदेशों के राजागण सम्मिलित हुए थे। उसमें स्त्रीराज्य के भी सम्मिलित होने का उल्लेख है। यह उल्लेख यवन, हूण, चीन तुषार, आदि जातियों के साथ किया गया है। अन्त में काश्मीर राज्य का उल्लेख मिलता है। पर पूर्व वर्णन द्वारा निष्कर्ष निकलता है। स्त्री राज्य की भौगोलिक दिशा उत्तर-पश्चिम थी। तुषार, हूणादि जाति का स्थान भारत से पश्चिम-उत्तर था। स्त्रीराज्य महाभारत के अनुसार उत्तर पश्चिम अर्थात् तुर्किस्तान, काकेसस तथा पोन्तुस की दिशा में था। भारत से उत्तर-पश्चिम उक्त देश आज भी हैं।

परिशिष्ट

महाभारत का भौगोलिक वर्णन यूनान तथा रोम के इतिहासकारों के वर्णन से मिलता है। पुराकालीन पश्चिमी इतिहासकारों ने स्त्रीराज्य प्रदेश किंवा देश काकेसस पर्वत एवं भूखण्ड से कृष्ण सागर (ब्लेक सी) तटवर्ती भू-भाग माना है। काश्मीर से कैस्पियन (कश्यप) सागर बहुत दूर नहीं है। कैस्पियन सागर के पश्चिम काकेसस पर्वत माला है। तत्पश्चात् कृष्ण सागर और उसके तटवर्ती देश हैं। महाभारत, यूनान और रोम इतिहासकारों के वर्णनों में एकरूपता है। विरोध नहीं है। एक निश्चित स्थान का संकेत करते हैं।

बृहत्संहिता में स्त्रीराज्य का उल्लेख है। वाराह मिहिर (सन् ५०५–५८५ ई०) ने स्त्रीराज्य को काल्पनिक नहीं माना है। उसे एक सच्चा रूप में स्वीकार किया है। राज्य का उल्लेख किया है।

मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (ईसा पूर्व ३२४-३०० वर्ष) के यूनानी राजदूत मेगस्थनीज (चतुर्थ शताब्दी) ने भी स्त्रीराज्य का उल्लेख किया है। उसके अनुसार दक्षिण भारत के पाण्डच राज्य में स्त्रियाँ शासन करती थीं। रानियाँ राज्य की पूर्ण अधिकारिणी होती थीं। राज्य करती थीं। उनका राज्याभिषेक होता था। (एन्शिएण्ट इण्डिया : मैकक्रिण्डल L. U. I)

कल्हण ने राजा ललितादित्य (कलिगताब्द : ३१०१–३८३८ = सप्तर्षि : ३७७६, ३८१३ = सन् ७००–७३१ ई०) तथा राजा जयापीड (कलि० ३८५३–३८२४ = सप्तर्षि ३८२८–३८५९ = सन् ७५२–७८३ ई०) की विजय यात्रा का वर्णन किया है। (राज० : ४ : १७५,२८५,५८७) काश्मीर के उक्त राजाओं ने दिग्विजय किया था। वे भारत के अन्तिम राजा थे। जिनकी सेनाएँ भारत से बाहर गई थीं। विदेशी राष्ट्रों को जीता था।

राजा ललितादित्य दिग्विजय के पश्चात् काश्मीर लौटे थे। पुनः कुछ समय पश्चात् ससैन्य दिग्विजय हेतु भारत बाहर उत्तर पश्चिम दिशा में अभियान किये थे। उस दिशा के राजाओं को परास्त किया। उनकी मृत्यु दिग्विजय करते हुए, काश्मीर के बाहर उत्तर पश्चिम दिशा में हुई थी। (रा० : ४ : १५३) कल्हण ललितादित्य की मृत्यु का स्थान 'आर्यणक' देश देता है। (रा० : ४ : ३६७) जहाँ शीत ऋतु के अतिरिक्त भी तुषारपात होता है।

'आर्यणक' देश वर्तमान ईरान हैं। ईरान के राजा दारियस (दारियुह) के अभिलेखों में ईरान का नाम 'अर्यण' दिया गया है। यह देश वर्तमान ईरान है। पश्चिमी विद्वान् सर्वश्री टोयर तथा लस्सेन का मत है। कल्हण वर्णित आर्याक, दारियसवर्णित अर्यण, तथा यूनानियों द्वारा वर्णित अर्यन एक ही देश का नाम है। वह देश ईरान है।

कल्हण वर्णन करता है। उस देश में शीत ऋतु के अतिरिक्त तुषारपात होता है। तुषारपात के कारण ही सम्भवत: ललितादित्य तथा उसकी सेना नष्ट हुई थी। कल्हण पुराकालीन लेखकों का मत उद्धृत करता है। राजा अत्यन्त दूर उत्तरापथ चला गया। (रा० : ४ : ३६९) यहाँ उत्तरापथ से अर्थ उत्तर भारत से लगाना उचित नहीं है। क्योंकि भारतीय उत्तरापथ में तुषारपात नहीं होता। इस उत्तरापथ का तात्पर्य काश्मीर से उत्तर जाने वाला मार्ग लगाना उचित है। कल्हण काश्मीरी कवि है। उसका जन्म श्रीनगर से उत्तर परिहासपुर में हुआ था। अतएव कल्हण ने "स्युत्तरापथे" शब्द का प्रयोग किया है। भारत के किसी प्रदेश अथवा अफगानिस्तान ईरान आदि में शीत ऋतु के अतिरिक्त तुषारपात नहीं होता। यह देखना है। ग्रीष्म ऋतु में भी कहीं तुषारपात होता है या नहीं। मध्येशिया के देशों से आगे बढ़ने पर

काकेसस है। यहाँ गीष्म ऋतु में भी तुषारपात होता है। काश्मीर तथा किसी अन्य स्थान पर ग्रीष्म ऋतु में तुषार पात नहीं होता। अतएव स्त्रीराज्य का स्थान वहीं होना चाहिए जहाँ ग्रीष्म ऋतु में भी तुषार-पात होता है। यह स्थान काकेसस तथा उसके समीपस्थ देश ही हो सकते हैं। अन्य जितने भी स्त्रीराज्यों का वर्णन पुरा तथा अर्वाचीन लेखकों ने किया है। उनमें तुषारपात नहीं होता। अमेरिका अफरीका के स्त्रीराज्यों के जिन क्षेत्रों का वर्णन किया गया है वे क्षेत्र तुषार पात रहित हैं। किसी ने वहाँ तुषार का दर्शन भी नहीं किया है। कल्हण तथा यूनानियों द्वारा वर्णित स्त्रीराज्य में तुषार पात होता था। इस दृष्टि से यह स्थान काकेसस समीपस्थ भूखण्ड है। शीत ऋतु में पन्तुम, कापोडोमिया तथा कृष्णसागर के तटवर्तीय देशों में तुषार पात होता है। परन्तु ग्रीष्म ऋतु में भी वहाँ यदा-कदा तुषार पात हो जाता है।

महत्त्वपूर्ण एक बात और है। ललितादित्य के विजय प्रसंग में कल्हण लिखता है—'मरीचिका जल का भ्रम उत्पन्न करने वाले बालुकाम्बुद में उसके गजेन्द्र महाग्रह सदृश लग रहे थे।' काश्मीर से स्त्री-राज अथवा पोन्तुस अथवा कृष्ण सागर या काकेसस पहुँचने के लिये दो मार्ग हैं। पश्चिम उत्तर द्वारा आर्य-णक अथवा ईरान तथा उत्तरी मार्ग द्वारा तुर्किस्तान का मरुस्थल मध्य में पड़ेगा। काश्मीर से यदि ईरान मार्ग द्वारा कृष्ण सागर जाया जाय तो ईरान का रेगिस्तान मध्य में पड़ता है। इसी प्रकार काश्मीर से तुर्किस्तान होते हुए काकेसस की यात्रा की जाय, तो मध्य में पूर्वी तुर्किस्तान का मरुस्थल पड़ेगा। कल्हण ने बालुकाम्बुद का प्रयोग रेगिस्तान के लिये किया है।

कल्हण का वर्णन प्राचीन परम्परा तथा तत्कालीन स्थिति देखते हुए ठीक मालूम पड़ता है। पश्चिम तथा पूर्वीय इतिहासकारों ने स्त्रीराज्य के क्षेत्र की दिशा तथा भौगोलिक परिचय ठीक दिया है। यह नहीं भूलना चाहिए कि प्राकृतिक तथा भौगोलिक स्थितियों में परिवर्तन होता रहता है। आज से पांच शताब्दियों पूर्व कैस्पियन तथा अरल सागर मिले थे। किन्तु आज वे एक दूसरे सैकड़ों मील दूर हैं। काश्मीर भी पूर्वकाल में जलमय सर था। उसका प्राचीन नाम सतीसर है। किन्तु आज काश्मीर हराभरा फलपुष्प धनधान्यपूर्ण प्रदेश है। कल्हण ने ललितादित्य की मृत्यु के चार शताब्दियों पश्चात् राजतरंगिणी लिखी थी। उन दिनों साधन कम थे। जो कुछ साधन उपलब्ध थे, उससे कल्हण वर्णित स्त्रीराज्य का प्रामाणिक सूत्र मिलता है।

कल्हण ने दूसरी दिग्विजय यात्रा का वर्णन राजा जयापीड़ के संदर्भ में किया है। (रा० : ४ : ५३७)। राजा जयापीड भी ललितादित्य के समान दिग्विजय करता स्त्रीराज्य में पहुँचा था। वहाँ से वह, "कर्णश्रीपट" लाया था। (रा० : ४ : ५८८)। "श्रीपट" का अर्थ वस्त्र एवं पताका दोनों होता है। राजा विजय के पश्चात् विजित देश की पताका विजय प्रतीक स्वरूप ले लेता है। इससे प्रगट होता है। जयापीड ने स्त्रीराज्य विजय किया था। यह राज्य भारतवर्ष तथा काश्मीर से बाहर था।

यूनानी तथा रोमन इतिहासकारों के वर्णन से स्पष्ट होता है। स्त्रीराज्य कृष्ण सागर तथा कैस्पियन सागर के मध्य काकेसस पर्वत माला समीपस्थ भूखण्ड एवं उसके निकट था। कालान्तर में स्त्रीराज्य की आबादी पश्चिम-दक्षिण बढ़ती कृष्णसागर के तटवर्ती क्षेत्र तथा एशिया माइनर में पहुँच गयी। इस भूभाग का सम्बोधन पूर्वकाल में पोन्तुस तथा कप्पोंडेसिया के नाम से होता था। उक्त क्षेत्र ईरान के उत्तर तथा उत्तर पश्चिम पड़ते हैं। एशिया माइनर ईरान से उत्तर पश्चिम तथा कप्पोडेसिया पोन्तुस एवं कृष्ण सागर तटीय क्षेत्र पश्चिम की अपेक्षा उत्तर अधिक पड़ता है।

परिशिष्ट

कल्हण भी स्त्रीराज्य का स्थान उत्तर में निश्चित करता है। महाभारत ने भी उन्हें तुषार (तुर्क) चीन आदि के समान भारत से उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर रखा है। काश्मीर से तुर्किस्तान उत्तर-पश्चिम है। यूनानी भौगोलिकों तथा इतिहासकारों का वर्णन सत्य मान लिया जाय, तो उसकी पुष्टि महाभारत एवं कल्हण के वर्णनों से हो जाती है। महाभारत काल में स्त्री राज्य का स्थान काकेशस समीपस्थ क्षेत्र रहा होगा। कालान्तर में आबादी पोन्तुस या एशिया माइनर में पहुँच गई। वहाँ स्त्री राज्य की स्थापना की गई थी। पश्चिमी साहित्य में स्त्री राज्य की संज्ञा अमेजोन राज्य नाम से दी गई है। यूनानियों ने स्त्री राज्य के स्त्रियों के स्तनों का बहुत वर्णन किया है।

खनन कार्यों द्वारा पुरातत्त्व विभाग की दो कलाकृतियां मिली हैं। वे इस समय ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित हैं। एक में यूनानी और स्त्री राज्य के सैनिकों के युद्ध का दृश्य पत्थरों में खोदा गया है। उनकी आकृति से स्त्री सैनिकों के सामरिक वेष-भूषा एवं अस्त्र-शस्त्रों पर प्रकाश पड़ता है। दूसरी मूर्ति का नाम "अमेजोन" है। यह प्रतिमा अपनी सुन्दरता के लिये विश्वविख्यात है। मूर्ति का वाम स्तन खुला है। दाहिना वस्त्र से ढंका है। मूर्ति शस्त्र युक्त है। कुछ विद्वान् स्त्री राज्य कवि कल्पना मानते थे, परन्तु इन दोनों कलाकृतियों के कारण जिनका काल लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व है, प्रमाणित होता है कि स्त्रीराज्य था। स्त्री सैनिक थीं। वे पुरुषों के समान राज्य करती थीं। युद्ध में पुरुष सैनिकों के साथ युद्ध करती थीं।

उक्त मूर्तियों के स्तन तथा यूनानी इतिहासकार और कल्हण के वर्णनों में विचित्र समता है। वाम-स्तन खुला और दाहिना ढँका कुछ अर्थ रखता है। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार स्त्री सैनिकों का दाहिना स्तन काट या जला दिया जाता था। इसलिये दाहिना मूर्तियों में ढँका दिखाया गया है। वाम स्तन उत्तुंग दिखाया गया है। कल्हण ने स्त्री सैनिकों के "तुंग" स्तन का उल्लेख किया है। (रा० : ४ १७३) उक्त मूर्तियों में भी वाम स्तन उत्तुंग दिखाया गया है। दोनों स्त्री सैनिक मूर्तियां अत्यन्त सुन्दर हैं। उनका शरीर पुरुष सैनिकों के समान पुष्ट एवं संतुलित है। कल्हण यूनानी इतिहासकारों के समान स्त्री सैनिकों के स्तन का विस्तृत वर्णन नहीं करता। न तो दक्षिण स्तन के काटने और जलाने की बात करता है। किन्तु कल्हण के समय में स्त्री राज्य के स्त्री सैनिकों के सम्बन्ध में कोई न कोई गाथा प्रचलित रही होगी। जिसका संकेत वह करता है। यूनानी इतिहासकारों का वर्णन कल्हण के अपूर्ण वर्णन का पूरक है।

स्त्री राज्य की रानियां तथा सैनिकायें वीर पुरुषों का सहवास पसन्द करती थीं। इस लिये कि उनसे वीर नारियों का प्रजनन संभव हो सके। उनका यह सहवास कुछ दिनों का होता था।

सिकन्दर की विजय यात्रा (ईसापूर्व ३३६-३२३ वर्ष) के समय स्त्रीराज्य की रानी उसकी विजय गाथा सुनकर उसके पास सन्तान कामना से आयी थी। स्त्री राज में पुरुष-सहवास काम किंवा सुख की दृष्टि से नहीं बल्कि सन्तानोत्पत्ति हेतु होता था। महाभारत में कुन्ती ने सूर्य, चन्द्र आदि का आवाहन इसी प्रयोजन से किया था। इन्द्रिय जन्य सुख एवं विषय वासना नहीं था।

कल्हण यूनानी इतिहासकारों के समान वर्णन करता है। स्त्री राज्य की रानी ललितादित्य के समक्ष राजा की विजय यात्रा के समय आयी थी। सिकन्दर ने स्त्री राज्य की रानी के साथ तेरह दिनों तक सहवास किया था। परन्तु ललितादित्य सहवास से दूर था। कल्हण लिखता है—'उसके समक्ष स्त्री राज्य की देवी (रानी) की कम्पनादि क्रिया का निरीक्षण करना, यह सन्त्रास जन्य था अथवा अभिलाषा जन्य इसका कोई निर्णय नहीं कर सका। (रा० : ४ : १७३, १७४) भारत में परस्त्री के प्रति जो परम्परा गत आदर

भाव था वही ललितादित्य एवं सिकन्दर के आचरणों में अन्तर डालता है।

राजा जयापीड के विजय प्रसंग में भी कल्हण ने स्त्री राज्य का वर्णन किया है। 'आश्चर्य है, स्त्री राज्य में महामण्डल के विजेता उस राजा के इन्द्रिय समूह विजय की ही लोगों ने प्रशंसा की। (रा० : ४ : ५८७)।

स्त्री राज्य की शासन प्रणाली अपनी थी। आदर्श नैतिकता पर आधारित थी। शासन प्रणाली में पुरुषों का स्थान नहीं था। सामाजिक गठन स्पार्टा के समान सुसंघटित थी। किन्तु एकांगी थी। पुरुष विहीन थी। पुरुषों का प्रवेश एवं निवास वर्जित था।

भारत में स्त्री राज्य था या नहीं, इस विवाद में न पड़कर, यह निश्चय करना है कि ललितादित्य का सम्पर्क किसी स्त्री राज्य से हुआ था या नहीं ? स्त्री राज्य दो प्रकार के होते थे। पहला प्रकार वह था, जहां मातृसत्तात्मक व्यवस्था एवं विधि प्रचलित थी। केवल महिलायें उत्तराधिकार प्राप्त कर सकती थीं। सम्पत्ति, राज्य, अथवा गृह का उत्तरदायित्व मिलता था। पुरुष का स्थान उसी प्रकार गौण था, जिस प्रकार का स्त्रियों का स्थान पुरुष राज्य में गौण होता है। भारत में ट्रावनकोर राज्य वंश में मातृसत्तात्मक पद्धति आजादी के पूर्व प्रचलित थी। राज्य की उत्तराधिकारिणी रानियां होती थीं।

यह प्रथा अनेक असभ्य जातियों में प्रचलित है। जिप्सी तथा कुछ कंजड़ जातियों में उनके कुटुम्ब एवं वर्ग का अनुशासन स्त्रियों के हाथों में होता था।

प्रश्न है—क्या वास्तव में विश्व में स्त्री राज्य था ? जहाँ पुरुष का निवास एवं प्रवेश वर्जित था। स्त्रियों का विवाह पुरुषों के साथ नहीं होता था ? स्त्री एवं पुरुष मिल कर नहीं रहते थे ? और घर गृहस्थी जमाते थे ? यदि यह बात थी तो फिर स्त्रियों की उत्पत्ति कैसे होती थी। उनकी वंश परम्परा किस प्रकार चलती थी ?

पूर्व काल में इस प्रकार की समस्याओं का निराकरण किया गया था। स्त्रीराज्य थे। उनमें केवल स्त्रियों का स्थान था। स्त्री शासिका, मन्त्री, दण्डधर, न्यायाधीश एवं सैनिक होती थी। स्त्री राज्य में केवल स्त्रियों की सेना होती थी। स्त्रियों के नेतृत्व में सेना युद्ध करती थी। युद्ध का संचालन स्त्रियाँ करती थीं। उनका युद्ध पुरुष राज्यों से होता था। वे पुरुष राष्ट्रों पर आक्रमण करती थीं। विजय करती थीं। वीर गति प्राप्त करती थीं। पराजित होती थीं। पर राष्ट्रों से सन्धि करती थीं। युद्ध में स्त्रियों के वीर गति प्राप्त होने पर उनका स्मारक बनता था।

स्त्री राज्य में जल सेना होती थी। वे जलपोतों का निर्माण करती थीं। उन्हें चलाती थीं। उनका व्यापार समृद्धि पर था। किन्तु इन सब कार्यों में पुरुषों का स्थान नहीं था।

यूनानी इतिहासकारों ने स्त्रीराज्य का सप्रमाण वर्णन किया है। उनमें कुछ कपोलकल्पना हो सकती है परन्तु स्त्री राज्य के ऐतिहासिक सच्चाई से अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

हिरोदोतुस (ईशा पूर्व ४८४) जैसे इतिहासकारों ने उनका उल्लेख किया है। उनका अस्तित्व स्वीकार किया है। प्रसिद्ध रोमन लेखक प्लूटार्क (जन्म सन् २३ ई०) ने सप्रमाण स्वयं भ्रमण एवं अनुसन्धान द्वारा स्त्री राज्य के अस्तित्व का पता लगाया था। उक्त दोनों इतिहासकारों ने कृष्ण सागर (ब्लैक सी) के दक्षिणी तट पर स्त्रीराज्य होने की बात लिखी है। वे पुराकाल में पन्तुस एवं कम्पोडेशिया देश किंवा प्रदेश थे।

परिशिष्ट

स्त्री राज्य कम्बोडिया देश में थर्मोडीन नदी के तट पर था। उस राज्य की महिलायें शारीरिक व्यायाम करती थीं। सैनिक स्त्रियों की परेड तथा कवायद होती थी। अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण थीं। पुरुषों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती थीं। यदि कोई राज्य उनपर आक्रमण करता था, तो स्त्री सैन्य बल द्वारा आक्रामकों का सामना होता था। शत्रुओं से बदला सैकड़ों मील दूर चलकर लेती थीं। आक्रामकों को खदेड़ती सैकड़ों मील पीछे कर देती थीं।

सन्तानोत्पत्ति किंवा प्रजनन हेतु वे कुछ दिनों के लिये पड़ोसी पुरुष राज्य किंवा वहाँ के पुरुषों से सम्पर्क स्थापित करती थीं। उनकी जाति तथा वंश प्रजनन के अभावमें नष्ट नहीं होता था। इस प्रकार के सम्बन्ध द्वारा यदि सन्तान पुरुष हुआ, तो उसे उसके पिता को दे देती थीं। कन्या अपने पास लालन पालन एवं शिक्षा के लिये रख लेती थीं। कन्या पुष्ट सुडौल शरीर सैनिक बन जाती थी।

जस्टिन (द्वितीय शताब्दी) इतिहासकार का मत है। यदि सन्तान बालक होता था तो मातायें तुरन्त गला घोंटकर उसे मार देती थीं। यह प्रथा पुरुष राज्य भारत तथा अरब निवासियों में प्रचलित थी। बालक की रक्षा की जाती थी। कन्या मार डाली जाती थी। राजपूत कन्याओं को मारते थे। अरब कन्याओं को जीते जी दफन कर देते थे। यदि पुरुष राज्य कन्या के साथ इस प्रकार व्यवहार करता था, तो स्त्री राज्य बालकों के साथ पुरुष राज्य जैसा व्यवहार करें, तो उन्हें दोष कैसे दिया जा सकता है। इसमें आश्चर्य क्या है ?

दियोदोरस (प्रथम शताब्दी ईशापूर्व) लिखता है। स्त्री राज्य में शिशुओं की हत्या न कर उनका अंग भंग कर उन्हें पंगु बना दिया जाता था। साथ ही यह भी उल्लेख मिलता है कि बालक शिशु को मारने के लिये स्त्रियां खुले निश्चित स्थानों में छोड़ देती थीं। वे वहां स्वतः मर जाते थे। किन्तु कन्याओं का पालन पोषण किया जाता था। उन्हें शिक्षा दी जाती थी। समाजोपयोगी बनाया जाता था। वे कुश्ती लड़ती थीं। दौड़ लगाती थीं। व्यायाम करती थीं। अश्त्र-शस्त्र चलाना सीखती थीं। कृषि करती थीं। उद्योग धन्धों में लगी रहती थीं।

स्तन के कारण स्त्रियों को धनुष बाण चलाने, भाला फेंकने तथा तलवार चलाने में कठिनता होती थी अतएव कन्याओं का दाहिना स्तन काट या जला दिया जाता था। इस प्रकार दाहिने हाथ से धनुष बाण चलाने, तलवार से आघात करने, बर्छा या भाला फेंकने अथवा गदा चलाने में किंचित् मात्र कठिनाई नहीं होती थी। यही कारण है कि खनन कार्यों में आमेजन अथवा स्त्री राज्य के सैनिकों की जो मूर्तियाँ अब तक मिली हैं, उनमें दाहिना स्तन समथर तथा वस्त्र से ढका और वाम स्तन खुला प्रदर्शित किया गया है। वस्त्र ढकने से मूर्ति की सुन्दरता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता। स्त्री राज्य की स्त्रियाँ अत्यन्त सुन्दर होती थीं। आज भी स्त्री-राज्य के पूर्वकालीन प्रदेश काकेसस की स्त्रियाँ विश्व में परम सुन्दरी मानी जाती हैं। काकेसस के पुरुष एवं स्त्री आज कल विश्व में अपने स्वरूप एवं दीर्घ जीवन के लिये प्रसिद्ध हैं।

पश्चिमीय देशों के स्त्री-राज्य शाकाहारी नहीं होते थे। मांसादि पुष्ट पदार्थों का सेवन किया जाता था। एशिया माइनर में उनका साम्राज्य स्थापित था। थर्मोदोन नदी तक विस्तृत था।

यूनानियों ने स्त्रीराज्य पर आक्रमण किया था। थर्मोदोन नदी के तट पर घोर युद्ध हुआ था। वे पराजित हो गयी थीं। परन्तु उन्होंने पुनः शक्ति संग्रह किया। तनैश देश तथा कैस्पियन सागर पारवर्ती भू-खण्डों पर आक्रमण कर, राज्य सुदृढ़ कर लिया गया।

थेमाडा-कारा उनके राज्य का प्रसिद्ध नगर था। अनेक पुरातत्त्वविदों का मत है। प्राचीन काल के प्रसिद्ध नगर स्मर्ना, मेगनेशिया, थाइटिरा, इफिसुस आदि की उन्होंने स्थापना की थी। यह स्त्रीराज्य एशिया में था।

अफ्रीका में भी स्त्रीराज्य था। इतिहासकार दियोदोरस का मत है। एशिया से प्राचीन स्त्रीराज्य अफ्रिका का था। सर वाल्टर रेले सोलहवीं शताब्दी का प्रसिद्ध नाविक एवं पर्यटक था। उसने स्त्री राज्य का आँखों देखा वर्णन लिखा है।

अफ्रीका के मध्य घाना देश में अशान्ती जाति निवास करती है। उनकी जनसंख्या पन्द्रह लाख होगी। पूर्वकाल में वहाँ मातृसत्तात्मक प्रणाली प्रचलित थी। आज कल भी इस पद्धति में कुछ सुधार हो गया है तथापि उत्तराधिकार एवं गोत्रीय कार्यों में मातृसत्तात्मक प्रणाली प्रचलित है। आधुनिक युग के प्रभाव के कारण राजनीति तथा धार्मिक क्षेत्र में उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है। इस समय वहाँ लोकतन्त्र स्थापित हो गया है। जिसके कारण पूर्व शासन पद्धति बदल गयी है। अन्य स्त्री राज्यों के समान यहाँ स्वर्ण को अत्यधिक महत्ता प्राप्त थी। कुछ समय पूर्व केवल स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन था। स्वर्ण नदी की द्रोणी से निकाला जाता था जैसे भारत में स्वर्ण पीपितिका भारत की पश्चिमी उत्तरी सीमान्त नदियों के रेत से निकाले जाते थे।

दक्षिण अमेरिका में भी स्त्रीराज्य था। उसका वर्णन सर वाल्टर रेले ने किया है। उसने आमेजन नदी तथा ओरेनोक की यात्रा की थी। स्त्रीराज्य तोमागो प्रदेश में नदी के दक्षिण अंचल में था। यह स्त्रीराज्य एक द्वीप पर था। नदी के मुहाने से लगभग ६० मील दूर दक्षिण दिशा में था।

एशिया के स्त्रीराज्य की रानी सीथिया के समीप तनैस किंवा थर्मदोन नदी के समीप निवास करती थी।

गिनी देश में स्त्रीराज्य था। वहाँ की महिलायें वर्ष में केवल एक बार अप्रैल मास अर्थात् बसंत ऋतु में पुरुषों के साथ निवास करती थीं। सर्वप्रथम रानी अपने लिये पुरुष चुनती थी। तत्पश्चात् स्त्री एवं पुरुषों में गोटी डाली जाती थी। जिसके नाम पर गोटी निकलती थी उसके साथ स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध होता था। स्त्री या पुरुष मनचाही साथी प्राप्त करने के लिये स्वतंत्र नहीं था। स्त्रियां पुरुषों के देश में एक मास समय बिताकर पुनः स्त्रीराज्य में लौट आती थीं। पुरुषों से उनका कोई सम्पर्क नहीं रह जाता था।

स्त्री राज्य की स्त्रियाँ स्वभाव से पुरुषों के प्रति क्रूर होती थीं। वे पुरुष जाति या देश से शत्रुता रखती थीं। उनके राज्य पर आक्रमण करते या करना चाहते थे। स्पेन निवासियों ने उनसे बहुत मूल्यवान रत्न लेकर उन्हें सुवर्ण दिये थे। स्त्रियाँ सुवर्ण बहुत पसन्द करती थीं। सुवर्ण पात्र में भोजन करना पसन्द करती थीं। (हारवर्ड प्र० : वाइजेज एण्ड ट्रेवेल्स : डिसकवरी आफ गाइना : १९५६ पृष्ठः ३२७।

मध्ययुगीय अमेरिका अन्वेषण के लेखों में स्त्री राज्य का कुछ चिह्न उत्तर अमेरिका में मिलता है। वहाँ स्त्रियों का अपना राज्य था। वे धनुष बाण चलाती थीं। शरीर पर सैनिकों तुल्य ताम्र वर्म धारण करती थीं। उनका निवास एक द्वीप पर था। वह हिसपानिपोला से बड़ा था। वहाँ स्वर्ण का बाहुल्य

था। वहीं से स्पेन के पन्द्रह शताब्दी के अन्वेषक तथा पर्यटक सोना लाते थे। (अमेरिकन : हिस्टोरिकल डोकुमेण्ट्स: हार्वर्ड : भाग ४३ : पृष्ठ २५—२७।

सोलहवीं शताब्दी के स्पेनिश अन्वेषक फ्रान्सिसको डी० ओरेल्ला ने साधिकार लिखा है। उसने दक्षिणी अमेरिका में मरानोत नदी के तटपर स्त्री राज्य देखा था। स्त्री राज्य की सेना तथा उसके पुरुष स्पेनिश सेनानियों में युद्ध हुआ था। उसी युद्ध की स्मृति में दक्षिण अमेरिका के सबसे बड़े महानद का नाम अमेजन स्पेनिश उपनिवेशकों ने रखा था।

बींसवी शताब्दी में अफ्रीका के दहोमी राज्य की सेना स्त्री सैनिकों की थी। वह सेना पुरुष सेनानियों के समान युद्ध करती थी। किन्तु फ्रान्स के संरक्षण में देश के आ जाने पर स्त्री राज्य तथा सेना संघटन समाप्त हो गया। वही प्रक्रिया अमेरिका में हुई। वहाँ यूरोपियनों का राज्य तथा उपनिवेश बनने पर, स्त्री राज्य समाप्त हो गया।

पेश्चायलुस (ईशापूर्व : ५२५–४२६ वर्ष) यूनानी इतिहासकार एशिया के स्त्री राज्य का वर्णन करता है। उसने स्त्री राज्य का स्थान थर्मोडोन नदी स्थित स्थान थेमिस काइरा दिया है। उसका कथन हैं। स्त्री राज्य की स्त्रियाँ पुरुषों से घृणा करती थीं। उसने प्रमाण उपस्थित किया है। जिस समय स्त्री राज्य का सम्पर्क यूनानियों से हुआ, तो यूनान के विद्वानों में उनके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उनके विषय में अनुसन्धान तथा लेख लिखे जाने लगे।

यूनान के थ्रेस प्रदेश में उस समय स्त्री राज्य तथा उनके सम्बन्ध में अनेक सूत्र मिले थे। थ्रेस में स्त्री राज्य की सेना थर्मोडोन नदी के तटवर्ती अंचल पोन्तुस प्रदेश से आयी थी। इस उल्लेख से प्रकट होता है। यूनान की पूर्व दिशा से उनका आगमन एवं यूरोप तथा यूनान में प्रवेश हुआ था। यूनान में उनके संबंध में जो लेख तथा प्रस्तर एवं अन्य स्मारक मिले थे, उनसे प्रकट होता था कि वे 'थ्रके' प्रदेश से तौरिस चर्सोनिसोस से आयी थीं। उन्होंने अपने पीछे जो परम्परा छोड़ी है, वह एथेन्स के राजा थिसुयुस के एटिक गाथा में मिलती है।

प्लूटार्क जैसे प्रामाणिक एवं अनुसन्धान कर लिखने वाले इतिहासकार ने स्त्री राज्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। उसने स्त्री राज्य के उन सैनिकों का बना स्मारक स्वयं अपनी आखों से देखा था, जो युद्ध में हत हुई थीं। उसके अनुसार स्त्री राज्य के समीप यूनानियों का एक जहाज पहुंचा। स्त्री राज्य ने औपचारिक ढंग से उनके पास सौगात या भेंट भेजा। किन्तु एथेन्स का राजा थिसियस जहाज पर स्त्री राज्य की एक सेनानी एण्टिओप के आते ही, आदर सत्कार के बहाने जहाज का लंगर उठा दिया। एण्टिओप सहित जहाज द्वारा पलायन कर गया। यही घटना स्त्री राज्य एवं यूनान के संघर्ष का कारण हुई थी।

मेनी क्रेट्स जिसने विथानिया में नाइसी का इतिहास लिखा है, वर्णन करता है 'थीसियस एण्टीओप के साथ समुद्री यात्रा करता रहा। थिसियस का यह व्यवहार स्त्री राज्य को खल गया। बदला लेने का निश्चय किया गया।

स्त्री राज्य की सेना ने एटिका पर आक्रमण (ईशा पूर्व १२६० वर्ष) किया। एटिका में पाइक्स तथा यूसिथुस के समीप स्त्री राज्य एवं एटिका की सेना से घोर युद्ध हुआ। स्त्री राज्य की सेना समीपवर्ती क्षेत्रों पर विजय करती, नगर में प्रवेश की।

नगर में जहाँ स्त्री राज्य की सेना ने शिविर लगाया था, उस स्थान का आज भी लोग स्मरण करते हैं। स्थानीय लोग बताते हैं कि स्त्री राज्य की सेना किन किन स्थानों पर ठहरी थी। यह बात इसलिये सत्य प्रतीत होती है कि प्लुटार्क के अनुसार युद्ध में हत स्त्री सेनानियों की समाधियाँ उसके काल तक वहाँ आज भी सुरक्षित अवस्था में दिखायी देतीं। प्लुटार्क का यह वर्णन आज से लगभग दो सहस्र पूर्व का है।

यूनान तथा स्त्रीराज्य की सेनायें आमने सामने पड़ी थीं। बोइड्रोसियन मास में एथेन्स के राजा थिसियस ने उनपर आक्रमण किया। प्लुटार्क के अनुसार बाइड्रोसियन मास युद्ध की स्मृति में उसने जब यूनान की यात्रा स्त्रीराज्य अन्वेषणार्थ की थी तो एथेन्स में उत्सव मनाया जा रहा था।

थीसियस की सेना आगे बढ़ी। स्त्रीसेना थीसियस अर्थात् यूनानी सेना की गति देखकर, उस स्थान की ओर बढ़ी जिसे आज भी 'एमोजीन' के नाम पर 'एमोजीनियम' कहते हैं। इस युद्ध में वीर गति प्राप्त सैनिकों की समाधियाँ पिराइक नगर द्वार के समीप बनी थीं। जिन्हें प्लुटार्क ने स्वयं देखा था। थीसियस की सेना पीछे हटती फुर्रास के मन्दिर तक पहुंच गयी थी।

इसी समय एथेन्स की सेना की सहायता के लिये, पलोडियम, अर्देन्तुस, लाइसियस की सेनायें पहुंच गयीं। इस नवीन संघटित सेना ने व्यूह बद्ध हो स्त्री सेना के दक्षिण पार्श्व पर आक्रमण किया। स्त्री सेना अपनी कुशल रणनीति का अनुकरण करती शिविर की ओर आ गयी। इस भयंकर लोमहर्षण युद्ध में स्त्री सैनिकों में अत्यधिक वीर गति प्राप्त कीं।

स्त्री सेना पराजित नहीं हुई। चार मासों तक यूनानी सेना से उसका निरन्तर युद्ध होता रहा। युद्धनिर्णायक न होने पर यूनान तथा स्त्रीराज्य में सन्धि हो गयी। इस युद्ध में एन्टिओप थीसियस के साथ युद्ध करती हत हुई थी। उसका स्मारक 'ओलेम्पियन अर्थ' पर निर्माण किया गया। स्थान आज भी अमजो-नियम नाम से प्रसिद्ध है।

यूनान के मगदा प्रदेश में प्लुटार्क को एक और स्मारक दिखाया गया था। वह भी कुछ स्त्री सैनिकों की समाधियाँ थीं। यह स्थान बाजार के समीप रहुस नामक स्थान पर था। कुछ स्त्री सैनिकायें चोरीनिया में भी हत हुई थीं। एक नाले के समीप जिसे 'हीमोन' कहते थे वे गाड़ी गयी थीं।

अकाटच प्रमाण और मिलता है। यूनान के मन्दिरों में एमेज़ोन तथा यूनान युद्ध सम्बन्धी दृश्यों एवं घटनाओं को प्रस्तरों पर गढ़ कर लगाया गया था। उनकी वीर गाथा तथा अद्भुत चारित्र बल के कारण यूनान तथा रोम की अनेक गाथाओं में उन्हें स्थान मिला था। उनके सम्बन्ध में अनेक महान् यूनानी तथा रोमन कवियों ने काव्य रचना की है। उनका राज्य लोप हो जाने पर भी यूरोप तथा पश्चिम एशियाई देशों में आदर के साथ उनका नाम लिया जाता है।

विश्व प्रसिद्ध वक्ता डेमोस्थनीज (ईशापूर्व ३८४–३२२ वर्ष) के जीवन चरित में अमेज़ोन किंवा स्त्रीराज्य का उल्लेख मिलता है। यूनान के साथ सन्धि हो जाने पर भी स्त्रीराज्य की सेना पर यदा कदा यूनान की ओर से आक्रमण होता रहता था। यूनानी अपनी पराजय का बदला लेना चाहते थे। वह आक्रमण सन्धि पश्चात्, जब स्त्रीराज्य की सेना वापस जा रही थी तो हुआ था। इस पुनरार्वतन काल में मार्ग में हत स्त्री सैनिकों की समाधियाँ स्कोहुस्सा तथा साइनो स्केफेलाई में मिलती हैं।

यूनानी इतिहासकार होमर के (ईशापूर्व ८१०–७३० वर्ष) से प्रतीत होता है कि स्त्रीराज्य का फाइगिया से युद्ध हुआ था। फ्राइगिया लाइसिया प्रदेश में था। वहीं पर ट्राय नगर के राजा प्रियाम तथा

वेल्लरोफोन से क्रमशः स्त्री राज्य से सम्पर्क स्थापित हुआ था। होमर के लेख से प्रकट होता है। स्त्री राज्य पर हरकुलीज़ ने थीसियस के साथ आक्रमण किया था। ट्राय के साथ यूनान का युद्ध (ईशापूर्व ११८४ वर्ष) हुआ था। उस युद्ध में स्त्री राज्य की सेना ने अपनी रानी के नेतृत्व में यूनानियों से युद्ध किया था। रानी का नाम पेन्थ शीलिया था। उस युद्ध में स्त्री राज की रानी तथा सेनापति पेन्थ शीलिया ने वीर गति प्राप्त की थी। रानी थ्रेस से स्त्री सेना युद्ध में भाग लेने के लिये लायी थी।

स्त्री सेना, वर्म, शिरस्त्राण, धनुषबाण, परशु, कृपाण, एवं बर्छों से सुसज्जित थी। यूनानी सेना के पुरुषों की ढाल गोलाकार, चतुष्कोण तथा त्रिकोणीय थी। स्त्री राज्य की सेना अर्ध चन्द्राकार ढाल से सज्जित थी।

रानी का युद्ध अकेले महान् यूनानी वीर अचीलेस से हुआ था। अचीलेस या एचली यूनान जगत् का आदर्श वीर सेनानी माना जाता है। रानी ने एचली के साथ सीधे एकाकी युद्ध करके वीर गति प्राप्त की थी। ट्राय विजय के पश्चात् यूनानी सेना तथा राज्य का प्रभाव बढ़ता गया। वे एशिया माइनर एवं भूमध्य सागर में अपनी स्थल एवं जल सेना के कारण शक्तिशाली हो गये।

ट्राय युद्ध के पश्चात् लौटते समय हरकुलीज ने स्त्री राज्य अर्थात् एमेजोन पर आक्रमण कर स्त्री राज्य का पशुधन अपहृत कर लिया था।

तत्कालीन हिट्टाइट साम्राज्य के इतिहास में 'अन्तरिस्थस्स' शब्द का उल्लेख मिलता है। मैं समझता हूँ कि यह स्त्री राज का समानार्थक शब्द है। अत्तरिस्थ शब्द स्त्री शब्द का अपभ्रंश मालूम होता है। हरकुलीज के आक्रमण का काल ईशापूर्व १२००-११९० वर्ष माना जाता है।

हरकुलीज के साथ जो लोग अमेजोन अर्थात् स्त्री राज्य पर आक्रमण करने के लिये गये थे, वे मार्ग में अपना स्मारक बनवाते गये। उनके सैनिक्र अभियान के समय की अनेक किंवदन्तियाँ यूनान रोम तथा पुराकालीन जगत् में प्रसिद्ध हो गयीं। तत्कालीन कवियों ने उनके आधार पर अनेक काव्यों की रचना की थी। हरकुलीज़ का आक्रमण समुद्री डाकुओं के आक्रमण के समान था।

ट्राय युद्ध के पश्चात् जैसे ट्राय नगर एवं राज्य समाप्त हो गया, उसी प्रकार स्त्री राज्य की वह शक्ति शेष नहीं रह गयी थी, जो पूर्व काल में थी। परन्तु ट्राय के समान उनके राज्य का लोप नहीं हुआ था।

सिकन्दर के समय तक स्त्री राज्य, उसकी सेना तथा उसकी रानी के अस्तित्व का पता चलता है। सिकन्दर के समय स्त्री राज्य की रानी थलेस्ट्रिस थी। रानी थलेस्ट्रिस सिकन्दर की विजय कथा सुनकर उससे सन्तान प्राप्ति की कामना से सिकन्दर के पास आयी थी। उस समय सिकन्दर एशिया विजय कर रहा था। रानी ने उससे निवेदन किया। वह एक महान् सन्तान अपने ही जैसा जन्म लेने में योगदान दें। रानी तेरह दिनों तक सिकन्दर के साथ पति-पत्नीवत् रहकर अपने राज्य वापस चली गयी।

तत्कालीन जगत् में स्त्री राज्य की सेना धनुष बाण चलाने में इतनी निपुण थी कि धनुष बाण चलाने में विचक्षण होने वालों के लिये 'अमेजोनियन' शब्द ही रूढ़ हो गया था।

स्त्री राज्य की तीन रानियों का विशेष उल्लेख मिलता है। वे महान् सेनानी थीं। रानी हिप्पोताडट के सम्बन्ध में यूनान में अनेक गाथायें प्रचलित हैं। वह एक करधनी या मेखला पहनती थी। हरकुलीज़ ने उसकी करधनी प्राप्त करने के लिये रानी की हत्या कर दी।

दूसरी प्रसिद्ध रानी लेम्पीटा अथवा लेम्पीडो थी। उसने एशिया के अनेक नगरों पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया था। अकस्मात् वारवेरियनों की सेना ने अनजाने चुपके से उसपर आक्रमण कर दिया। रानी स्त्री सेना सहित नष्ट हो गयी।

तीसरी महान् वीर रानी मरयीसिया थी। उसने काकेसस पर आक्रमण किया था। काकेसस निवासी पराजित हो गये। रानी के इस विजय के कारण काकेसस का युवा काल में नाम 'मारयीसियुस मोन्स' पड़ गया था।

स्त्री राज्य तथा वहाँ के निवासियों के विषय में एक गाथा प्रचलित है। वे सुदूर प्राचीन काल में कासेसस से एशिया माइनर तथा कृष्ण सागर के तट पर आकर आबाद हुई थीं। एशिया माइनर एवं कृष्ण सागर तट पर राज्य स्थापित किया था। वहीं वह जाति आबाद हो गयी थी।

उक्त उद्धरणों एवं वर्णनों से स्पष्ट होता है कि महाभारत तथा राजतरंगिणि में वर्णित स्त्री राज्य की वही दिशा तथा स्थान है जिसका उल्लेख यूनानी इतिहासकारों ने किया है। यह राज्य एजियन सागर एवं काकेसस के मध्य था।

स्त्री राज्य के धर्म, जाति के विषय में किसी पुराकालीन एवं अर्वाचीन लेखकों ने प्रकाश नहीं डाला है। उल्लेख मिलता है कि उनकी समाधियाँ थीं। उनका स्मारक था। प्राप्त मूर्ति से निःसन्देह यह प्रमाणित होता है कि वे आर्य थीं। उनकी मुखाकृति एवं शरीर रचना आर्य जातीय थी। आर्यों में शवदाह प्रथा थी। आर्य धर्मावलम्बी जहाँ गये वहाँ शव दाह प्रथा अपने साथ लेते गये और उसका प्रचार किया। यूनान तथा रोम में शवदाह प्रथा आर्य लाये थे। मिस्र, असुर तथा यहूदियों में शव गाड़ने की प्रथा थी जिसे कालान्तर में ईसाइयों तथा मुसलमानों ने स्वीकार किया। ट्राय के युद्ध में वीरों की अन्त्येष्टि चिता पर की जाती थी। सिकन्दर के समय वीरों का दाह चिता पर किया जाता था। सिकन्दर ने स्वयं अपने एक साथी की चिता दो सौ फिट ऊँची बनवा कर शवदाह किया था। साथ ही साथ गाड़ने की भी प्रथा थी। परन्तु वह आर्य प्रथा नहीं थी। आर्य लोग शव संस्कार चार प्रकार से करते थे। दाह, समाधि, खुले स्थान पर वृक्षों पर रख तथा जल प्रवाह द्वारा किया जाता है। सनातनी आर्यों ने शवदाह प्रथा को स्वीकार किया था। पारसी अर्थात् ईरान के आर्य वृक्षों पर टाँगकर अथवा शव पक्षियों को खाने के लिये खुले स्थान में छोड़कर करते थे। जल प्रवाह समुद्र एवं नदी के समीपस्थ स्थानों पर कुछ प्रचलित था। जल दूषित हो जाता था अतएव यह प्रथा लुप्त हो गयी। केवल समुद्री नाविक समुद्र में ही शव प्रवाह करते थे। गाड़ने की प्रथा वहाँ प्रचलित थी जहाँ न तो जल था और न जलाने के लिये लकड़ी जैसे अरब और फिलस्तीन।

पुराकालीन लेखकों ने अमेजोन अर्थात् स्त्रियाँ जो युद्ध में हत हुई थीं उनकी समाधि एवं स्मारक का वर्णन किया है। स्पष्ट नहीं लिखा है कि हत होने पर वे गाड़ी गयी थीं। मेवाड़ में वीरों के स्मारक स्थान-स्थान पर मिलते हैं। उनका चौरा बना मिलता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे गाड़े गये थे। स्त्री राज्य जहाँ था वहाँ पर अभी तक समाधि अर्थात् कब्रें नहीं मिली हैं जहाँ वे गाड़ी गयी होंगी। अतएव अनुमान यही लगाना ठीक होगा कि उनकी जाति आर्य थी और वे सुमेर, हित्ती, यूनान तथा रोम के समान आर्य प्रथा एवं धर्म का अनुकरण करती थीं। वह प्रथा तथा धर्म का रूप सब स्थान तथा जातियों में एक समान नहीं था। देश काल एवं परिस्थितियों के कारण उनमें अन्तर दिखायी देता था परन्तु उनका स्रोत एवं मूल एक ही था।

कह्लण-कृत

राजतरंगिणी

सम्पादक

डॉ० रघुनाथ सिंह

एम० ए०, एल-एल बी०, पी-एच० डी०,
डी० लिट्०, एफ० आर० ए० एस०

प्रथम भाग

महाभारत काल से ५०० ई० तक

अशाक जलोक, कनिष्क, मिहिकुल आदि प्रभावशाली सम्राटों एवं नाग, दरद, कुरु, शक गान्धार, गुह्यक, यक्ष, पिशाच, किन्नर, कर्णाट, चोल खस आदि जातियों का विश्वस्त वर्णन।

द्वितीय भाग

५०१ ई० से ९८१ ई० तक

तालपीड, ललितापीड, गयापीड, अयन्तिवर्मा, यशस्कर देव आदि ४२ राजाओं के चित्र: अनेक राजाओं का काल, शासन प्रबन्ध नये अन्वेषणों एवं गम्भीर भाष्य के आधार पर।

तृतीय भाग

दशवीं शताब्दी से बारहवीं शदाब्दी तक

कल्हण के सातवें तरंग का भाष्य, महायशस्वी दिग्विजयी राजाओं का वर्णन, महमूद गजनवी तथा अन्य मुस्लिम आक्रमणों एवं उनकी पराजयों का प्रामाणिक इतिहास।

प्रत्येक भाग का मूल्य एक सौ रुपये
तीनों भाग एक साथ मंगाने में केवल दो सौ रुपये

हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६ पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१